शा

न्ति

प

र्व

[भाग २]

महाभारत

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhuji. Varanasi Collection. eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

२-३

१२

महाभारत

शान्तिपर्व

(भाग - २)

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

पारडी [जि. बलसाड]

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संवत् २०३६, शक १९०२, सन् १९८०

*

प्रथम आवृत्ति

*

प्रकाशक और मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
किल्ला-पारडी | जि. वलसाड] गुजरात राज्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शान्ति पर्व

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आ भा र प्र द र्श न

इस महाभारत प्रकाशनके लिए भारतसरकारके शिक्षा मंत्रालयने आर्थिक सहायता प्रदान करके जो महान् कार्य किया है, उसके लिए हम हृदयसे आभारी हैं।

इस महाभारत प्रकाशनके लिए हम माननीय सेठ श्री गंगाप्रसादजी बिरला और माननीय सेठ श्री बी. एम. बिरलाजी का भी उपकार नहीं भूल सकते। उन्होंने कागज देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शान्ति पर्व
मोक्ष धर्म पर्व

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ॐ

मोक्षधर्मपर्व ।

युधिष्ठिर उवाच—

धर्माः पितामहेनोक्ता राजधर्माश्रिताः शुभाः ।
धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! पृथ्वीनाथ ! आपने राजधर्माश्रित परम पवित्र आपद्धर्म पूर्ण रीतिसे कहे; अब गृहस्थ आदि सब आश्रमवालोंके लिये जो श्रेष्ठ धर्म हो, उस धर्म विषयका वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलं तपः ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया ॥ २ ॥

भीष्म बोले—हे भरतसत्तम ! वेदोंमें सर्वत्र सब आश्रमोंके लिये स्वर्ग साधक फलकी प्राप्ति करानेवाली तपस्याका विधान है; आश्रममात्रमें ही धर्म विहित है, उसमेंसे सत्यस्वरूप परमात्म विषयको सुनना, मनन, निदिध्यासनमय, तपस्याके ज्ञानरूप फल इस जीवनमें ही दीख पडते हैं; धर्मके द्वार अनेक तरहके हैं, इस लोकमें उनकी समस्त क्रिया कभी निष्फल नहीं होती ॥ २ ॥

यस्मिन्यस्मिंस्तु विनये यो यो याति विनिश्चयम् ।
स तमेवाभिजानाति नान्यं भरतसत्तम ॥ ३ ॥

हे भरतसत्तम ! ज्ञानलाभ, उसके निमित्त चित्तशुद्धि, स्वर्गकामना और पुत्रोंको उत्पन्न करना आदि जिन जिन विषयोंमें मनुष्य पूर्ण निश्चय करता है, उसे ही वह कल्याणकारी समझा करता है; विषयान्तरोंमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती; ॥ ३ ॥

यथा यथा च पर्येति लोकतन्त्रमसारवत् ।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

जब मनुष्यको संसार तृण आदि तुच्छ वस्तुओंकी तरह असार रूपसे समझ पडता है, तभी इनमें निःसंदेह उसको विराग उत्पन्न हुआ करता है ॥ ४ ॥

एवं व्यवसिते लोके बहुदोषे युधिष्ठिर ।
आत्ममोक्षनिमित्तं वै यतेत मतिमान्नरः ॥ ५ ॥

हे युधिष्ठिर ! अनेक दोषोंका आधार संसार जब इस प्रकार असार कहके निश्चित हुआ है, बुद्धिमान् मनुष्यको आत्ममोक्षके निमित्त यत्न करना उचित है ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरे वा मृते ।
यया बुद्ध्या नुदेच्छोकं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! धननाश अथवा स्त्री, पुत्र वा पिताके परलोकगामी होनेपर, जिस बुद्धिके जरिये शोक दूर किया जाता है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji), Veda Nidhi Karanji. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

नष्टे धने वा दारे वा पुत्रे पितरि वा मृते ।
अहो दुःखमिति ध्यायञ्शोकस्यापचितिं चरेत् ॥ ७ ॥

भीष्म बोले—धन नष्ट होने तथा स्त्री, पुत्र और पिताके मरनेपर 'हाय! यह संसार कैसा दुःखमय है!' ऐसा विचार करते हुए शोक दूर करनेके लिये आत्मज्ञानके निमित्त शम-दम आदिकोंका अनुष्ठान करे ॥ ७ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा सेनजितं विप्रः कश्चिदित्यब्रवीद्वचः ॥ ८ ॥

इस विषयमें पण्डित लोग इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी ब्राह्मणने सेनजित् राजाके निकट सुहृद्भावसे आके जो कहा था, उसे सुनो ॥ ८ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं राजानं शोकविह्वलम् ।
विषण्णवदनं दृष्ट्वा विप्रो वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

पुत्रकी मृत्युके शोकसे दुःखित और विषण्ण मुख राजा सेनजित्को देखकर ब्राह्मण बोला ॥ ९ ॥

किं नु खल्वसि मूढस्त्वं शोच्यः किमनुशोचसि ।
यदा त्वामपि शोचन्तः शोच्या यास्यन्ति तां गतिम् ॥ १० ॥

हे राजन्! तुम क्यों मूढ मनुष्यकी भांति मोहित होते हो? स्वयं शोचनीय होकर किस निमित्त दूसरोंके लिये शोक करते हो? जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते हैं; वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे ॥ १० ॥

त्वं चैवाहं च ये चान्ये त्वां राजन्पर्युपासते ।
सर्वे तत्र गमिष्यामो यत एवागता वयम् ॥ ११ ॥

राजन्! तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं; सबको ही जहांसे हम आये हैं, वहांही फिर जाना पडेगा ॥ ११ ॥

सेनजिदुवाच—

का बुद्धिः किं तपो विप्र कः समाधिस्तपोधन ।
किं ज्ञानं किं श्रुतं वा ते यत्प्राप्य न विषीदसि ॥ १२ ॥

सेनजित् बोले—हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते हैं; ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके आप शोकित नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

ब्राह्मण उवाच—

पश्य भूतानि दुःखेन व्यतिषिक्तानि सर्वशः ।
आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम ॥ १३ ॥

ब्राह्मण बोला—देखो, इस जगत्में समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे हैं। "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्मा—यह शरीर भी मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वी भी मेरी नहीं है, ॥ १३ ॥

CC-0 Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा मम तथान्येषामिति बुद्ध्या न मे व्यथा ।
एतां बुद्धिमहं प्राप्य न प्रहृष्ये न च व्यथे ॥ १४ ॥

यह जैसी मेरी है, दूसरोंकी भी वैसी ही है, ऐसा ही बुद्धिपूर्वक विचार करनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता; मैं इस ही बुद्धिको पाकर हर्षित वा दुःखित नहीं होता ॥ १४ ॥

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ १५ ॥

जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर पृथक् होते हैं, उसी प्रकार जीवोंका समागम यहां होता है ॥ १५ ॥

एवं पुत्राश्च पौत्राश्च ज्ञातयो बान्धवास्तथा ।
तेषु स्नेहो न कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पुत्र, पौत्र, स्वजन और बान्धव सब ही इसी प्रकार मिलते हैं; इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है; क्योंकि इनका अवश्यही विच्छेद होता है ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
न त्वासौ वेद न त्वं तं कः सन्कमनुशोचसि ॥ १७ ॥

जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है; वह तुम्हें नहीं जानता था, तुम भी उसे नहीं जानते थे; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो ? ॥ १७ ॥

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम् ।
सुखात्संजायते दुःखमेवमेतत्पुनः पुनः ।
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ॥ १८ ॥

विषयवासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःखका नाश ही सुख हुआ करता है; सुखसे भी दुःख प्रकट होता है; इसी प्रकार बार बार सुख और दुःख उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख उत्पन्न हुआ करता है ॥ १८ ॥

सुखाच्चं दुःखमापन्नः पुनरापत्स्यसे सुखम् ।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम् ॥ १९ ॥

अब तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। इस जगत्में मनुष्य कभी सदा सुख और दुःखका भोग नहीं करता ॥ १९ ॥

नालं सुखाय सुहृदो नालं दुःखाय शत्रवः ।
न च प्रज्ञालमर्थानां न सुखानामलं धनम् ॥ २० ॥

मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रुभी दुःख नहीं दे सकते; बुद्धि रहनेसे धन प्राप्त नहीं हो सकता और धन होनेपर भी सुख नहीं हो सकता ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ २१ ॥

बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है; मूर्खता भी निर्धनताका कारण नहीं होती; इससे प्राज्ञपुरुष ही संसार चक्रकी गतिका वृत्तान्त जानता है, दूसरा नहीं ॥ २१ ॥

बुद्धिमन्तं च मूढं च शूरं भीरुं जडं कविम् ।
दुर्बलं बलवन्तं च भागिनं भजते सुखम् ॥ २२ ॥

बुद्धिमान, मूढ, शूर, कायर, गूंगा, विद्वान्, निर्बल और बलवान, जो पुरुष भाग्यवान् होता है, वही दैवकी अनुकूलताके कारण बिना प्रयत्नही सुखभोग किया करता है ॥ २२ ॥

धेनुर्वत्सस्य गोपस्य स्वामिनस्तस्करस्य च ।
पयः पिबति यस्तस्या धेनुस्तस्येति निश्चयः ॥ २३ ॥

गौ बछडेकी, गोप्रतिपालककी, उसके मालिककी या तस्करकी है ? इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, उस ही की वह गाय है, ऐसा विद्वानोंका निश्चय है ॥ २३ ॥

ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः ।
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ २४ ॥

जनसमाजमें जो अत्यन्त मूढ मनुष्य हैं और जिन्होंने बुद्धितत्वसे अतीत परब्रह्मको जाना हैं, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते हैं; बीचके लोग कष्ट भोगते हैं ॥ २४ ॥

अन्त्येषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।
अन्त्यप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्तयोः ॥ २५ ॥

तत्त्वज्ञ पुरुष अन्तिम स्थितियोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यम स्थितिमें रत नहीं होते; अन्तिम स्थितिकी प्राप्ति सुख स्वरूप और उन दोनोंके बीचकी स्थिति दुःखमय कही गयी है ॥२५॥

ये तु बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वंद्वातीता विमत्सराः ।
तान्नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन ॥ २६ ॥

जिन्होंने सुख–दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धिसुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते ॥ २६ ॥

अथ ये बुद्धिमप्राप्ता व्यतिक्रान्ताश्च मूढताम् ।
तेऽतिवेलं प्रहृष्यन्ति संतापमुपयान्ति च ॥ २७ ॥

जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए, परन्तु मूढताको लंघ चुके हैं, वे सुख प्राप्त होनेपर अत्यन्त आनन्दित और विपदमें दुःखित होते हैं ॥ २७ ॥

नित्यप्रमुदिता मूढा दिवि देवगणा इव ।
अवलेपेन महता परिहृब्धा विचेतसः ॥ २८ ॥

सुरपुरके देवताओंकी तरह मूढ लोग महागर्व और ऐश्वर्यसे अचेत होकर सदा विषय सुखमें आनन्दित हुआ करते हैं ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुखं दुःखान्तमालस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयम् ।
भूतिश्चैव श्रिया सार्धं दक्षे वसति नालसे ॥ २९ ॥

दुःखके बीतने पर सुख होता है, आलस्यही दुःखका और दक्षता ही सुखका कारण होती है; सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित दक्ष पुरुषमें ही निवास करती है, आलसीमें नहीं ॥ २९ ॥

सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥ ३० ॥

सुख या दुःख, प्रिय वा अप्रिय, जिस समय जो जो प्राप्त होवे, सावधान चित्तसे उसकी उपासना करे, हिम्मत न हारे ॥ ३० ॥

शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ३१ ॥

शोकके सहस्रों विषय हैं और हर्षके सैकडों विषय हैं; वे प्रतिदिन मूढ मनुष्योंपर प्रभाव डालते हैं, पण्डितोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते ॥ ३१ ॥

बुद्धिमन्तं कृतप्रज्ञं शुश्रूषुमनसूयकम् ।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम् ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान्, स्वाभाविक बुद्धिशक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्यासमें रत, असूयारहित, दान्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्तचित्तश्चरेद्बुधः ।
उदयास्तमयज्ञं हि न शोकः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ३३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके काम, क्रोधादिसे स्वयंको सुरक्षित रखकर बर्ताव करते हैं; जो प्राणियोंके उदय और लयके विषयको जानता है, उसे स्पर्श करनेमें शोक समर्थ नहीं होता ॥ ३३ ॥

यन्निमित्तं भवेच्छोकस्त्रासो वा दुःखमेव वा ।
आयासो वा यतोमूलस्तदेकाङ्गमपि त्यजेत् ॥ ३४ ॥

शोक, ताप, दुःख वा परिश्रम जिसके कारण हुआ करता है, वह दुःखका कारण अपने शरीरका एक अङ्ग भी हो तो उसे त्यागना चाहिये ॥ ३४ ॥

यद्यत्त्यजति कामानां तत्सुखस्याभिपूर्यते ।
कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति ॥ ३५ ॥

विषयोंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है, वही सुखका कारण हो जाता है; कामानुयायी मनुष्य कामके सहित ही नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ३६ ॥

लोकमें भोग–विषयोंका सुख है और स्वर्गका महान् सुख कहके जो विख्यात है, वे वासना-क्षयजनित सुखके सोलहवें अंशके समान नहीं हैं ॥ ३६ ॥

पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतम् ॥ ३७ ॥

पूर्वजन्ममें किये हुए शुभ वा अशुभ कर्म जिस प्रकारसे किये गये हैं, वैसे ही वे बुद्धिमान्, मूढ अथवा शूर पुरुषको फलरूप भोगने पडते हैं ॥ ३७ ॥

एवमेव किलैतानि प्रियाण्येवाप्रियाणि च ।
जीवेषु परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च । ॥ ३८ ॥

इसी तरह प्रिय और अप्रिय, सुख तथा दुःखकी प्राप्ति क्रमसे जीवोंको होती ही रहती है, यह निःसंशय है ॥ ३८ ॥

तदेवं बुद्धिमास्थाय सुखं जीवेद्गुणान्वितः ।
सर्वान्कामाञ्जुगुप्सेत सङ्गान्कुर्वीत पृष्ठतः ।
वृत्त एष हृदि प्रौढो मृत्युरेष मनोमयः ॥ ३९ ॥

गुणवान् मनुष्य ऐसीही बुद्धिका अवलम्बन करके सुखमें निवास करता है; इसलिये समस्त कामभोगोंसे विरक्त होते हुए उनका त्याग किया जाय । हृदयसे उत्पन्न होनेवाला यहकाम हृदयमें ही बढता है, पश्चात् यही मृत्युरूप होता है ॥ ३९ ॥

यदा संहरते कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
तदात्मज्योतिरात्मा च आत्मन्येव प्रसीदति ॥ ४० ॥

कछुवेके निज अङ्गोंको सब ओरसे समेटनेकी तरह यह जीव जब सब तरहके कामोंका संकोच करता है, तब आप ही आत्मज्योति तथा आत्माका साक्षात्कार स्वयंको होता है ॥ ४० ॥

किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम् ।
तदेव परितापार्थं सर्वं संपद्यते तदा ॥ ४१ ॥

जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है, वेही सब उसके दुःखके कारण हुआ करते हैं ॥४१॥

न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४२ ॥

जबतक जो वस्तु हमारी कहके मानी जाती हैं, उस समय तक वे सब दुःखके कारण हुआ करती हैं । यह जब किसीसे डरता नहीं और इससे कोई भय नहीं करते, यह जब इच्छा और द्वेषसे रहित होता है, तब ब्रह्मस्वरूप लाभ करता है ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ भयाभये ।
प्रियाप्रिये परित्यज्य प्रशान्तात्मा भविष्यसि ॥ ४३ ॥

सत्य और असत्य, शोक और हर्ष, भय और अभय, प्रिय और अप्रिय—सब द्वन्द्वोंका परित्याग करनेसे ही चित्त शान्त होगा ॥ ४३ ॥

यदा न कुरुते धीरः सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४४ ॥

जब कर्म, मन और वचनसे धीर पुरुष सब प्राणियोंके विषयमें कुछ असत् अभिप्राय वा पाप नहीं करता, तभी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति कर लेता है ॥ ४४ ॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४५ ॥

नीचबुद्धि मनुष्य जिसे किसी तरह परित्याग नहीं कर सकते, मनुष्यके जीर्ण होनेपर भी जो स्वयं जीर्ण नहीं होती, जो प्राणान्तक रोगरूपसे वर्णित हुई है, उस तृष्णाको जो मनुष्य परित्याग कर सकता है, वही सुखी होता है ॥ ४५ ॥

अत्र पिङ्गलया गीता गाथाः शृण्वन्ति पार्थिव ।
यथा सा कृच्छ्रकालेऽपि लेभे धर्मं सनातनम् ॥ ४६ ॥

हे राजन् ! इस विषयमें पिङ्गलाकी कही हुई सब गाथाएं सुनी जाती हैं; दुःखके समयमें उसने जिसके अनुसार आचरण करके सनातन धर्मका लाभ किया था ॥ ४६ ॥

संकेते पिङ्गला वेश्या कान्तेनासीद्विनाकृता ।
अथ कृच्छ्रगता शान्तां बुद्धिमास्थापयत्तदा ॥ ४७ ॥

पिङ्गला वेश्या संकेत स्थानपर बहुत देरतक अपने प्रियतमकी राह देखती रही, परंतु वह उसके पास नहीं आया; इस कारण वह दुःखी हो गयी, और शान्त मन करके विचार करने लगी ॥ ४७ ॥

पिङ्गलोवाच—

उन्मत्ताहमनुन्मत्तं कान्तमन्ववसं चिरम् ।
अन्तिके रमणं सन्तं नैनमध्यगमं पुरा ॥ ४८ ॥

पिङ्गला बोली—मैंने मेरे निर्विकार वृत्तिके प्रियतम कान्तके साथ बहुत समय तक वास किया; परंतु मैंने उन्हें मेरी उन्मत्तताके कारण पहले पहचान ही नहीं लिया ॥ ४८ ॥

एकस्थूणं नवद्वारमपिधास्याम्यगारकम् ।
का हि कान्तमिहायान्तमयं कान्तेति मंस्यते ॥ ४९ ॥

एक खंभेवाले और नौ दरवाजेवाले इस शरीररूपी घरको मैं दूसरोंके लिये बंद करूंगी; यहां आनेवाले उस प्रियतमको जानकर कौन स्त्री शरीरधारी दूसरेको अपना मानेगी ? ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अकामाः कामरूपेण धूर्ता नरकरूपिणः ।
न पुनर्वञ्चयिष्यन्ति प्रतिबुद्धास्मि जागृमि ॥ ५० ॥

मैंने इस समय कामनाओंको त्याग दिया है; नरकरूपी धूर्त्त लोग कामुक रूपसे फिर मुझे नहीं ठग सकेंगे, अब मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ, मैं सदा सजग हूं ॥ ५० ॥

अनर्थोऽपि भवत्यर्थो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
संबुद्धाहं निराकारा नाहमद्याजितेन्द्रिया ॥ ५१ ॥

पहिलेके किये हुए सुकृतोंसे वा दैववशसे अनिष्ट भी इष्ट रूपसे परिणत होता है; इस समय निराश होकर भी मुझे इन्द्रिय-विजय और बोधका उदय हुआ; वासना भी दूर होगई है ॥ ५१ ॥

सुखं निराशः स्वपिति नैराश्यं परमं सुखम् ।
आशामनाशां कृत्वा हि सुखं स्वपिति पिङ्गला ॥ ५२ ॥

जिसे किसी प्रकारकी आशा नहीं है, वही सुखसे सोता है; नैराश्यही परम सुख है; पिङ्गला इस समय आशाको निराश करके अनायास ही सोती है ॥ ५२ ॥

भीष्म उवाच—

एतैश्चान्यैश्च विप्रस्य हेतुमद्भिः प्रभाषितैः ।
पर्यवस्थापितो राजा सेनजिन्मुमुदे सुखम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ६१२५ ॥

भीष्म बोले- ब्राह्मणके इन सब तथा दूसरे युक्तियुक्त वचनोंसे राजा सेनजित् स्थिर हो गये; वे शोक छोडकर सुखी होके हर्षित हुए ॥ ५३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ ६१२५ ॥

: १६९ :

युधिष्ठिर उवाच—

अतिक्रामति कालेऽस्मिन्सर्वभूतक्षयावहे ।
किं श्रेयः प्रतिपद्येत तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले- हे पितामह ! इन सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहनेपर, किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है ? आप उसे वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितुः पुत्रेण संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ २ ॥

भीष्म बोले- हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें पुराने लोग पिता और पुत्रके संवाद युक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, उसे सुनो ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

द्विजातेः कस्यचित्पार्थ स्वाध्यायनिरतस्य वै ।
बभूव पुत्रो मेधावी मेधावी नाम नामतः ॥ ३ ॥

हे पृथापुत्र ! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नामका एक बुद्धिमान् पुत्र था ॥३॥

सोऽब्रवीत्पितरं पुत्रः स्वाध्यायकरणे रतम् ।
मोक्षधर्मार्थकुशलो लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४ ॥

मोक्ष और धर्म अर्थकी व्याख्यामें निपुण तथा लोकतत्वको जाननेवाला वह पुत्र वेदविहित कार्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४ ॥

धीरः किं स्वित्तात कुर्यात्प्रजानन्क्षिप्रं ह्यायुर्ह्रियते मानवानाम् ।
पितस्तदाचक्ष्व यथार्थयोगं ममानुपूर्व्या येन धर्मं चरेयम् ॥ ५ ॥

हे तात ! मनुष्योंकी परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है, इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य करें । आप फलसम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपूर्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये; जिसे सुनके मैं धर्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा ॥ ५ ॥

पितोवाच —

वेदानधीत्य ब्रह्मचर्येण पुत्र पुत्रानिच्छेत्पावनार्थं पितॄणाम् ।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ६ ॥

पिताने कहा– हे पुत्र ! पहले ब्रह्मचर्य व्रतका अवलम्बन करके सब वेदोंका अध्ययन करे; फिर गृहस्थाश्रममें पितरोंकी सद्गतिके लिये पुत्रकामना करे । अनन्तर विधिके अनुसार अग्नियोंको स्थापित करके यज्ञकार्य पूर्ण करे; अनन्तर वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके संन्यासी होनेकी अभिलाषा करे ॥ ६ ॥

पुत्र उवाच —

एवमभ्याहते लोके समन्तात्परिवारिते ।
अमोघासु पतन्तीषु किं धीर इव भाषसे ॥ ७ ॥

पुत्र बोले– हे पिता ! लोकके इस प्रकार सब भांतिसे मृत्युसे ताडित होने तथा जरासे घिरे रहने और निरन्तर सफलतापूर्वक दिन-रात बीत रहनेपर भी आप निर्विकार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं ? ॥ ७ ॥

पितोवाच—

कथमभ्याहतो लोकः केन वा परिवारितः ।
अमोघाः काः पतन्तीह किं नु भीषयसीव माम् ॥ ८ ॥

पिताने कहा– हे पुत्र ! यह लोक किस प्रकार ताडित तथा किससे जा घिरा रहा है और यहां कौन व्यक्ति अपना काम सफलतापूर्वक करके व्यतीत हो रहे हैं ? क्यों तुम मुझे भय दिखाते हो ? ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुत्र उवाच—

मृत्युनाभ्याहतो लोको जरया परिवारितः ।
अहोरात्राः पतन्त्येते ननु कस्मान्न बुध्यसे ॥ ९ ॥

पुत्र बोला— यह जगत् मृत्युसे ताडित और चारोंओरसे जरासे घिरा हुआ है, और परमायु-हरणके कारण अमोघा रात्रि प्रतिदिन आती जाती है। आप इस बातको क्यों नहीं समझते हो ? ॥ ९ ॥

यदाहमेतज्जानामि न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये जालेनापिहितश्चरन् ॥ १० ॥

जब मैं यह जानता हूं, कि मृत्यु क्षणभरके लिये भी नहीं रुक सकती और मैं उसके जालमें बंधा हुआ विचर रहा हूं, तब मैं थोडी देर भी कैसे प्रतीक्षा कर सकता हूं ? ॥ १० ॥

रात्र्यां रात्र्यां व्यतीतायामायुरल्पतरं यदा ।
गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा ।
तदेव वन्ध्यं दिवसमिति विद्याद्विचक्षणः ॥ ११ ॥

जब कि प्रतिरात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयु बहुत क्षीण होती जाती है। तब थोडे जलमें रहनेवाली मछलिकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख पानेमें समर्थ होगा ? बुद्धिमान् पुरुषको उचित है, कि वह उस दिनको निष्फल ही समझे ॥ ११ ॥

अनवाप्तेषु कामेषु मृत्युरभ्येति मानवम् ।
शष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्रगतमानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ १२ ॥

मनुष्यकी कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु उसपर आक्रमण करती है; जब मनुष्यका मन काम्य कर्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर रहता है, तब जैसे घास चरते हुए वाघिन भेडके बच्चेको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उसे ग्रहण करके प्रस्थान करती है ॥१२॥

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वा कालोऽत्यगादयम् ।
अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै संप्रकर्षति ॥ १३ ॥

जो कुछ कल्याणसाधक कर्म है, उसे आजही समाप्त कर डालिये। आपका यह समय तुम्हें अतिक्रम न करे; क्योंकि कर्त्तव्य कार्योंके पूरा न होते ही मृत्यु आपको लेकर चली जायगी ॥१३॥

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युसेना निवेक्ष्यते ॥ १४ ॥

जो काम कल करना होगा, उसे आज ही पूरा करना योग्य है; सायंकालके कर्त्तव्य कर्मको प्रातःकालमेंही करना चाहिये; मनुष्यका कर्त्तव्य कर्म पूरा हुआ है, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उसे आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती। आज किसके लिये मृत्युकाल उपस्थित होगा, इसे कौन जान सकता है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhu) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

युवैव धर्मशीलः स्यादनिमित्तं हि जीवितम् ।
कृते धर्मे भवेत्कीर्तिरिह प्रेत्य च वै सुखम् ॥ १५ ॥

मनुष्य युवा अवस्थामें ही धर्मका यथावत् आचरण करे, क्योंकि जीवन अत्यन्त अकारण है; धर्मकार्य करनेसे इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है ॥ १५ ॥

मोहेन हि समाविष्टः पुत्रदारार्थमुद्यतः ।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा पुष्टिमेषां प्रयच्छति ॥ १६ ॥

मनुष्य मोहमें फंसके पुत्र, स्त्री आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्योंको करके उनका पालन पोषण करता है ॥ १६ ॥

तं पुत्रपशुसंमत्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं व्याघ्रं महौघो वा मृत्युरादाय गच्छति ॥ १७ ॥

जैसे सोये हुए शेरको बाढ बहाकर ले जाती है, वैसे ही पुत्रवान्, पशुओंसे युक्त और संसारमें फंसे हुए मनुष्यको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है ॥ १७ ॥

संचिन्वानकमेवैकं कामानामवितृप्तकम् ।
व्याघ्रः पशुमिवादाय मृत्युरादाय गच्छति ॥ १८ ॥

जो पुरुष कामभोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र, कलत्र आदि परिवारोंको अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धनसञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे शार्दूल हरिणको पकडता है ॥ १८ ॥

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ।
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे ॥ १९ ॥

यह कार्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य पूरे नहीं हुए, इस प्रकारके वासना-सुखमें आसक्त पुरुषको मृत्यु ग्रास किया करती है ॥ १९ ॥

कृतानां फलमप्राप्तं कर्मणां फलसङ्गिनम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति ॥ २० ॥

मनुष्य क्षेत्र, दूकान और भवनमें आसक्त होके अपने किये हुए उन सब कर्मोंका फल नहीं पाता है, उसके पहले ही उसे मृत्युके वशमें होना पडता है ॥ २० ॥

मृत्युर्जरा च व्याधिश्च दुःखं चानेककारणम् ।
अनुषक्तं यदा देहे किं स्वस्थ इव तिष्ठसि ॥ २१ ॥

मरण, जरा, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होते रहते हैं, तब आप किस प्रकार आरोगीकी तरह निवास करते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जातमेवान्तकोऽन्ताय जरा चान्वेति देहिनम् ।
अनुषक्ता ह्ययेनैते भावाः स्थावरजङ्गमाः ॥ २२ ॥

देहधारी जीवके जन्मतेही जरा और मृत्यु उसके नाशके लिये उसका अनुगमन करते हैं; स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तुमात्र इन दोनोंसे आक्रान्त हो रही है ॥ २२ ॥

मृत्योर्वा गृहमेवैतद्यत् ग्रामे वसतो रतिः ।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः ॥ २३ ॥

गांवमें वास करके स्त्री–पुत्र आदिमें लोगोंको जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका गृहस्वरूप है और जो वनमें निवास करता है, वही इन्द्रियोंको संयममें रखनेके लिये गोशालाके तुल्य है, ऐसी जनश्रुति है ॥ २३ ॥

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैनां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ २४ ॥

ग्राममें निवास करनेवालोंको जो सम्बन्धियोंके लिये अनुराग उत्पन्न होता है, वह बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग ही उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते ॥ २४ ॥

न हिंसयति यः प्राणान्मनोवाक्कायहेतुभिः ।
जीवितार्थापनयनैः कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २५ ॥

मन, वचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करता, वह जीने तथा अर्थमें बाधा करनेवाले कर्मोंसे बाधित नहीं होता ॥ २५ ॥

न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते ।
ऋते सत्यमसंत्याज्यं सत्ये ह्यमृतमाश्रितम् ॥ २६ ॥

जरा व्याधिरूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है, तब कोई मनुष्य सत्यके बिना कभी उसका सामना नहीं कर सकता । असत्यका परित्याग करना चाहिये; सत्यमें ही अमृतत्त्व सदा स्थित रहता है ॥ २६ ॥

तस्मात्सत्यव्रताचारः सत्ययोगपरायणः
सत्यारामः समो दान्तः सत्येनैवान्तकं जयेत् ॥ २७ ॥

इसलिये मनुष्य यम–नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए, चिदाभासरूपी जीवके एक साधन सत्ययोगमें रत, सत्यमें श्रद्धावान्, सम और जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरिएही मृत्युको जीत सकता है ॥ २७ ॥

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् ।
मृत्युमापद्यते मोहात्सत्येनापद्यतेऽमृतम् ॥ २८ ॥

अमृत और मृत्यु ये दोनों शरीरमें स्थित हैं; उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होता है और सत्यसे अमृतत्वलाभ करता है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽहं ह्यहिंस्रः सत्यार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः ।
समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्त्यवत् ॥ २९ ॥

इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके, सुख-दुःखको समान जानके, सत्यकी खोज करूंगा और कल्याणकारी होकर देवताओंकी तरह मृत्युके भयको त्यागूंगा ॥ २९ ॥

शान्तियज्ञरतो दान्तो ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः ।
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युदगायने ॥ ३० ॥

उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासी होकर शान्तियज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थविचार-रूप ब्रह्मयज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त, मननशील, प्रणवजपरूपी वाग्यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरुसेवा आदि कर्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा ॥ ३० ॥

पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ।
अन्तवद्भिरुत प्राज्ञः क्षत्रयज्ञैः पिशाचवत् ॥ ३१ ॥

मेरे समान बुद्धिमान् पुरुष पिशाचके निष्फल क्षत्रयज्ञकी तरह हिंसासाध्य पशुवधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होगा ॥ ३१ ॥

यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक्प्रणिहिते सदा ।
तपस्त्यागश्च योगश्च स वै सर्वमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

जिसके वचन और मन, तपस्या, त्याग और योग– ये पांचों सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वह सब कुछ प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं बलम् ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥ ३३ ॥

विद्याके समान नेत्र, विद्याके समान बल, रागके समान दुःख और त्यागके समान दूसरा कोई सुख नहीं है ॥ ३३ ॥

आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।
आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा ॥ ३४ ॥

मैं अपुत्र होकर भी आत्मासे आत्माके जरिये आत्मजरूपसे उत्पन्न हुआ हूं; आत्मामें ही स्थित हूं; और भविष्यमें भी आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार नहीं करेगा ॥ ३४ ॥

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च ।
शीले स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥ ३५ ॥

एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्यादा, दण्डका त्याग, सरलता और सब कार्योंमें आसक्तिहीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहस्ते क्व गतः पिता च ॥ ३६ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपको जब अवश्यही कालके ग्रासमें पडना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र-कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है ? अन्तःकरणसे निष्ठावान् होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं; उसे विचारिये ॥ ३६ ॥

भीष्म उवाच—

पुत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा तथाकार्षीत्पिता नृप ।
तथा त्वमपि वर्तस्व सत्यधर्मपरायणः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ६१६२ ॥

भीष्म बोले– हे धर्मराज ! पिताने पुत्रका यह वचन सुनके उसके अनुसार सत्यधर्मका आचरण किया था, तुम भी सत्यधर्ममें तत्पर होके ऐसाही अनुष्ठान करो ॥ ३७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १६९ ॥ ६१६२ ॥

: १७० :

युधिष्ठिर उवाच—

धनिनो वाधना ये च वर्तयन्ति स्वतन्त्रिणः ।
सुखदुःखागमस्तेषां कः कथं वा पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! धनवान् अथवा निर्द्धन मनुष्य जो कि पृथक् पृथक् धर्मशास्त्रको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन लोगोंका सुख वा दुःख लाभ कैसा है । और किस तरह हुआ करता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शम्याकेन विमुक्तेन गीतं शान्तिगतेन ह ॥ २ ॥

भीष्म बोले– प्राचीन पण्डित लोग इस विषयमें शान्तिसुखसे युक्त मुक्तिपथ अवलम्बी शम्याकके कहे हुए इस पुराने इतिहासको कहते हैं ॥ २ ॥

अब्रवीन्मां पुरा कश्चिद्ब्राह्मणस्त्यागमास्थितः ।
क्लिश्यमानः कुदारेण कुचैलेन बुभुक्षया ॥ ३ ॥

कुभार्या, फटे-पुराने वस्त्र और भूखसे क्लेशित होकर संन्यासधर्म अवलम्बन करनेवाले शम्याक नामक किसी ब्राह्मणने पहिले मुझसे यह कथा कही थी ॥ ३ ॥

उत्पन्नमिह लोके वै जन्मप्रभृति मानवम् ।
विविधान्युपवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ ४ ॥

मनुष्यके इस लोकमें उत्पन्न होते ही अनेक तरहके सुख और दुःख उसे अवलम्बन करते हैं ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तयोरेकतरं मार्गं यद्येनमभिसंनयेत् ।
न सुखं प्राप्य संहृष्येन्न दुःखं प्राप्य संज्वरेत् ॥ ५ ॥

परन्तु उसे सुख वा और दुःखमेंसे किसी एकके मार्गपर विधाता ले जाय, तो वह मनुष्य सुखलाभसे हर्षित और दुःखसे असन्तुष्ट नहीं होता ॥ ५ ॥

न वै चरसि यच्छ्रेय आत्मानो वा यदीहसे ।
अकामात्मापि हि सदा धुरमुद्यम्य चैव हि ॥ ६ ॥

तुम कामनाहीन होकर भी सदा राज्यका भार धारण करते हुए अपने कल्याणका आचरण नहीं करते हो; और तुम चित्तसंयम करनेमें प्रयत्नवान् नहीं हो ॥ ६ ॥

अकिंचनः परिपतन्सुखामास्वादयिष्यसि ।
अकिंचनः सुखं शेते सम्मुत्तिष्ठति चैव हि ॥ ७ ॥

जिसके धन, स्त्री आदि कुछ भी नहीं है, उसे अकिञ्चन कहते हैं; तुम वही अकिञ्चन होके गृह आदि सब कुछ त्यागके भ्रमण करते हुए सुखका अनुभव करोगे । दरिद्र पुरुषही सुखसे सोता और जागता है; ॥ ७ ॥

आकिंचन्यं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम् ।
अनमित्रमथो ह्येतद्दुर्लभं सुलभं सताम् । ॥ ८ ॥

दरिद्रताही लोकमें सुख है; वही हितकारक कल्याणकारी और अनामय सुखस्वरूप है । यह शत्रुरहित मार्ग कामियोंको दुर्लभ और साधु पुरुषोंको अनायासही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

अकिंचनस्य शुद्धस्य उपपन्नस्य सर्वशः ।
अवेक्षमाणस्त्रीँल्लोकान्न तुल्यमुपलक्षये ॥ ९ ॥

मैं तीनों लोकोंको देखकर इस समय सब ओरसे वैराग्ययुक्त, शुद्ध स्वभाववाले तथा अकिञ्चन पुरुषके समान दूसरा कोई नहीं देखता हूं ॥ ९ ॥

आकिंचन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम् ।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम् ॥ १० ॥

मैंने अकिञ्चनता और राज्य दोनोंको तुलादण्डपर तौला था, परन्तु राज्यसे समधिक गुणशालिनी अकिंचनता ही अधिक हुई थी ॥ १० ॥

आकिंचन्ये च राज्ये च विशेषः सुमहानयम् ।
नित्योद्विग्नो हि धनवान्मृत्योरास्यगतो यथा ॥ ११ ॥

अकिंचनता और राज्य इन दोनोंके बीच महान् विशेषता यही है, कि समृद्धियुक्त राजा काल-कवलितकी तरह सदा उद्विग्न रहता है, ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नैवास्याग्निर्न चादित्यो न मृत्युर्न च दस्यवः ।
प्रभवन्ति धनज्यानिर्मुक्तस्य निराशिषः ॥ १२ ॥

और जो मनुष्य धनरत्नोंको परित्याग करनेसे उसकी आसक्तिसे विमुक्त तथा आशारहित हुआ है; अग्नि, आदित्य आदि उपद्रव, मृत्यु तथा डाकूलोग उसका कुछ भी नहीं बिगाड सकते ॥ १२ ॥

तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः ॥ १३ ॥

सुरपुरवासी देवता लोग उस दैवेच्छाके कामचारी, शय्यारहित, बाहुपर शिर रखके पृथ्वीमें शयन करनेवाले तथा शान्तिमार्गको अवलम्बन करनेवालेकी सदा प्रशंसा किया करते हैं ॥१३॥

धनवान्क्रोधलोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः ।
तिर्यग्रीक्षः शुष्कमुखः पापको भ्रुकुटीमुखः ॥ १४ ॥

धनवान् क्रोध और लोभसे युक्त होकर विचार शक्तिसे रहित होता है; वह वक्र-दृष्टि, रूखा मुख, कुटिल भौं और पापकर्ममें रत रहता है ॥ १४ ॥

निर्दशंश्चाधरोष्ठं च क्रुद्धो दारुणभाषिता ।
कस्तमिच्छेत्परिद्रष्टुं दातुमिच्छति चेन्महीम् ॥ १५ ॥

और क्रोधयुक्त होकर ओठ चबाता हुआ निष्ठुर वचन बोलता है; वह यदि पृथ्वीका राज्य भी दान करनेकी इच्छा करे, तौभी कौन पुरुष उसे देखनेकी इच्छा करेगा ? ॥ १५ ॥

श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो मोहयत्यविचक्षणम् ।
सा तस्य चित्तं हरति शारदाभ्रमिवानिलः ॥ १६ ॥

लक्ष्मीके साथ सदा सहवास होना मूर्खोंको मोहित करता है । जैसे वायु शरद् कालके बादलोंको उडा देती है, वैसे ही सम्पत्ति धनवान् पुरुषोंके चित्तको हरण किया करती है ॥१६॥

अथैनं रूपमानश्च धनमानश्च विन्दति ।
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि नास्मि केवलमानुषः ।
इत्येभिः कारणैस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रसिच्यते ॥ १७ ॥

और रूप तथा धनका अभिमान उसे अवलम्बन करता है, और "मैं सद्वंशमें उत्पन्न हुआ, सिद्ध तथा मैं सामान्य मनुष्य नहीं हूं" ऐसा वह मानने लगता है ॥ १७ ॥

स प्रसिक्तमना भोगान्विसृज्य पितृसंचितान् ।
परिक्षीणः परस्वानामादानं साधु मन्यते ॥ १८ ॥

इन तीनों कारणोंसे उसका चित्त प्रमत्त होता है, उसके मनपर इनका प्रभाव पडता है, वह भोगोंमें आसक्त होके पिताकी इकट्ठी की हुई सब सम्पत्ति व्यय करके, निर्द्धन होनेपर, दूसरेका धन हरनेमें पाप नहीं समझता ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Babaji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानं ततस्ततः ।
प्रतिषेधन्ति राजानो लुब्धा मृगमिवेषुभिः ॥ १९ ॥

जैसे व्याध बाणोंसे हरिणोंको विद्ध करके उनकी गति रोकते हैं, वैसेही राजालोग उस मर्यादारहित इधर-उधरसे परधन हरनेवाले मनुष्यके विषयमें दण्डविधान किया करते हैं ॥ १९ ॥

एवमेतानि दुःखानि तानि तानीह मानवम् ।
विविधान्युपवर्तन्ते गात्रसंस्पर्शजानि च ॥ २० ॥

इसी प्रकार इसी भांतिके मनको संतप्त करनेवाले और शरीरमें स्पर्शसे होनेवाले अनेक दुःख इस लोकमें मनुष्यको प्राप्त होते हैं; ॥ २० ॥

तेषां परमदुःखानां बुद्ध्या भैषज्यमाचरेत् ।
लोकधर्मं समाज्ञाय ध्रुवाणामध्रुवैः सह ॥ २१ ॥

इस विनश्वर देह आदिके सहित अपत्य और धन रत्नरूपी लोकधर्मोंकी अवज्ञा करके बुद्धि-बलसे उन अवश्य होनेवाले क्लेशोंकी विचारपूर्वक चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव ॥ २२ ॥

विना त्यागके सुख नहीं मिलता; त्यागके विना परम श्रेष्ठ परमात्मा प्राप्त नहीं होता; विना त्यागके निर्भय होके शयन नहीं किया जाता; इसलिये तुम सब विषयोंको परित्याग करके सुखी हो जाओ ॥ २२ ॥

इत्येतद्धास्तिनपुरे ब्राह्मणेनोपवर्णितम् ।
शम्याकेन पुरा मह्यं तस्मात्त्यागः परो मतः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ६१८५ ॥

पहिले हस्तिनापुरमें शमक नामक ब्राह्मणने मेरे समीप इसी तरह त्यागकी महिमाके विषयको वर्णित किया था; इसलिये त्यागही सबसे उत्तम है; यह सर्वसम्मत है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥ ६१८५ ॥

: १७१ :

युधिष्ठिर उवाच—

ईहमानः समारम्भान्यदि नासादयेद्धनम् ।
धनतृष्णाभिभूतश्च किं कुर्वन्सुखमाप्नुयात् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— कृषि, वाणिज्य, यज्ञ और दान आदि कर्मकी अभिलाष करते हुए मनुष्य अर्थलाभमें असमर्थ होकर धनकी तृष्णासे युक्त होनेपर, कौन कार्य करके सुखभोग कर सकता है ? ॥ १ ॥

CC-0. Swâmi Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच –

सर्वसाम्यमनायासः सत्यवाक्यं च भारत ।
निर्वेदश्चाविवित्सा च यस्य स्यात्स सुखी नरः ॥ २ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! जिसे लाभ–हानि, मान–अपमान, इन विषयोंमें समभाव, धन आदिके निमित्त व्यर्थ आयासका अभाव, सत्य वाक्य, वैराग्य और कर्ममें आसक्ति नहीं है, वही मनुष्य सुखी कहके वर्णित होता है ॥ २ ॥

एतान्येव पदान्याहुः पञ्च वृद्धाः प्रशान्तये ।
एष स्वर्गश्च धर्मश्च सुखं चानुत्तमं सताम् ॥ ३ ॥

प्राचीन ज्ञानी लोग इन पांचों विषयोंको शान्तिका कारण कहा करते हैं; यही स्वर्ग, धर्म और अत्यन्त उत्तम सुखस्वरूपसे माना गया है ॥ ३ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
निर्वेदान्मङ्किना गीतं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ४ ॥

हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासको वर्णन किया करते हैं । मंकि नामक किसी पुरुषने विरक्त होकर जो कहा था, उसे सुनो ॥ ४ ॥

ईहमानो धनं मङ्किर्भग्नेहश्च पुनः पुनः ।
केनचिद्धनशेषेण क्रीतवान्दम्यगोयुगम् ॥ ५ ॥

मंकि धनकी इच्छासे अनेक तरहके प्रयत्न करते थे; परंतु वारंवार उसकी कोशिश निष्फल होती थी; तब जो कुछ धन बाकी रह गया था, उसके ही जरिये उसने जुआ काष्ठके सहित दमनके योग्य दो बैल खरीदे ॥ ५ ॥

सुसंबद्धौ तु तौ दम्यौ दमनायाभिनिःसृतौ ।
आसीनमुष्ट्रं मध्येन सहसैवाभ्यधावताम् ॥ ६ ॥

जुआके दोनों ओर जुते हुए वे दमनीय दोनों बैल हल चलानेकी शिक्षाके लिये वह लेजा रहा था, तब दौडके मार्गमें बैठे हुए एक ऊंटको बीचमें करके सहसा उसके ऊपर जा गिरे ॥ ६ ॥

तयोः संप्राप्तयोरुष्ट्रः स्कन्धदेशममर्षणः ।
उत्थायोत्क्षिप्य तौ दम्यौ प्रससार महाजवः ॥ ७ ॥

जब दोनों बैल सहसा ऊंटके कन्धेपर गिरे, तब महावेगशाली ऊंट क्रोधयुक्त होकर उठा और उन दोनोंको ऊपर लटकाये जोरसे चलने लगा ॥ ७ ॥

ह्रियमाणौ तु तौ दम्यौ तेनोष्ट्रेण प्रमाथिना ।
म्रियमाणौ च संप्रेक्ष्य मङ्किस्तत्राब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥

बलवान् ऊंटके जरिये दोनों बैलोंका हरण तथा मरण देखके मंकिने उस समय यह वचन कहा, ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चैवाविहितं शक्यं दक्षेणापीहितुं धनम् ।
युक्तेन श्रद्धया सम्यगीहां समनुतिष्ठता ॥ ९ ॥

दैवके धन दान न करनेपर निपुण पुरुष भी यदि अत्यन्त श्रद्धा तथा पूर्ण रीतिसे चेष्टा करे, तौभी उसे प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ९ ॥

कृतस्य पूर्वं चानर्थैर्युक्तस्याप्यनुतिष्ठतः ।
इमं पश्यत संगत्या मम दैवमुपप्लवम् ॥ १० ॥

मैंने पहिले अनेक उपायोंके जरिये सावधान चित्तसे धन उपार्जनका अनुष्ठान किया; परन्तु किसीसे भी कृतकार्य न हो सका; उन अनर्थोंसे युक्त होनेपर भी मैंने धन प्राप्तिके लिये फिर प्रयत्न किया; परंतु देखो, उसमें भी इन बैलोंके कारण यह दैवविडम्बना दीख पडी ॥१०॥

उद्यम्योद्यम्य मे दम्यौ विषमेणेव गच्छति ।
उत्क्षिप्य काकतालीयमुन्माथेनेव जम्बुकः ॥ ११ ॥

उत्पथमें दौडनेवाला यह ऊंट काकतालीय न्याय–दैव–से मेरे दोनों प्रिय बैलोंको गर्दनपर उठाकर बार बार उछालते हुए बुरे मार्गसे जम्बुककी तरह गमन कर रहा है ॥ ११ ॥

मणी वोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम ।
शुद्धं हि दैवमेवेदमतो नैवास्ति पौरुषम् ॥ १२ ॥

मेरे प्यारे दोनों बैल ऊंटके गलेमें मानो दो मणियोंकी तरह लटक रहे हैं; इसलिये यह केवल दैव-विहित ही है; इस विषयमें पराक्रम प्रकाश करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १२ ॥

यदि वाप्युपपद्येत पौरुषं नाम कर्हिचित् ।
अन्विष्यमाणं तदपि दैवमेवावतिष्ठते ॥ १३ ॥

पुरुषके यत्न करनेपर किसी विषयमें यदि कोई कार्य सिद्ध होवे, तो विशेष अनुसन्धान करके देखनेसे वह भी दैवविहित कहके प्रतिपन्न होता है ॥ १३ ॥

तस्मान्निर्वेद एवेह गन्तव्यः सुखमीप्सता ।
सुखं स्वपिति निर्विण्णो निराशश्चार्थसाधने ॥ १४ ॥

इसलिये इस संसारमें जो पुरुष सुखकी इच्छा कर, उसे धन आदिसे वैराग्य अवलम्बन करना ही अवश्य उचित है । धनप्राप्तिकी चेष्टासे निराश हुआ हुआ पुरुष वैराग्यवान् होके सुखसे सोता है ॥ १४ ॥

अहो सम्यक्शुकेनोक्तं सर्वतः परिमुच्यता ।
प्रतिष्ठता महारण्यं जनकस्य निवेशनात् ॥ १५ ॥

सब तरहकी आसक्तिसे रहित शुकदेवने जब जनकके यहांसे महावनके बीच प्रस्थान किया, उस समय कई एक उत्तम वचन कहा था ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यः कामान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैनान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ १६ ॥

जो सब काम्य वस्तुओंको प्राप्त करता है और जो इन समस्त कामनाओंका केवल परित्याग करता है– इन दोनोंके बीच सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्तिसे उनका परित्याग ही उत्तम कल्प है ॥ १६ ॥

नान्तं सर्वविवित्सानां गतपूर्वोऽस्ति कश्चन ।
शरीरे जीविते चैव तृष्णा मन्दस्य वर्धते ॥ १७ ॥

कोई भी पुरुष पहले धनोपार्जन प्रवृत्तिके पारगामी नहीं हुआ है; मूढ मनुष्यको ही शरीर और जीवनमें तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है ॥ १७ ॥

निवर्तत्व विवित्साभ्यः शाम्य निर्विद्य मामक ।
असकृच्चासि निकृतो न च निर्विद्यसे तनो ॥ १८ ॥

हे मन ! इसलिये धनोपार्जनकी प्रवृत्तिओंसे निवृत्त होजा, वैराग्य अवलम्बन करके शान्तिलाभ कर; तूं बार बार वञ्चित होता है; तौभी वैराग्यका आसरा नहीं करता है ॥ १८ ॥

यदि नाहं विनाश्यस्ते यद्येवं रमसे मया ।
मा मां योजय लोभेन वृथा त्वं वित्तकामुक ॥ १९ ॥

हे वित्त–कामुक मन ! यदि मैं तेरे सम्बन्धमें विनाश्य कहके न समझा जाऊं और तू यदि मेरे सङ्ग इसी तरह विहार करे; तो अनर्थक मुझे लोभमें आसक्त मत कर ॥ १९ ॥

संचितं संचितं द्रव्यं नष्टं तव पुनः पुनः ।
कदा विमोक्ष्यसे मूढ धनेहां धनकामुक ॥ २० ॥

तूने बार बार द्रव्यका सञ्चय किया वह सब बार बार नष्ट हुआ है । रे मूढ चित्त ! तू कब धनकी अभिलाषको परित्याग करेगा ? ॥ २० ॥

अहो नु मम बालिश्यं योऽहं क्रीडनकस्तव ।
किं नैव जातु पुरुषः परेषां प्रेष्यतामियात् ॥ २१ ॥

अहो ! मेरी कैसी मूर्खता है ? मैं अबतक भी तेरा विलास–भाजन हुआ हूं; परन्तु इसी तरह पुरुष किसी किसी समय दूसरेके अधीनतापाशमें बद्ध होता है ? ॥ २१ ॥

न पूर्वे नापरे जातु कामानामन्तमाप्नुवन् ।
त्यक्त्वा सर्वसमारम्भान्प्रतिबुद्धोऽस्मि जागृमि ॥ २२ ॥

पहलेके वा अन्य मनुष्य कभी कामनाकी पराकाष्ठाको प्राप्त नहीं हुए हैं; होगा भी नहीं । मैं इस समय सब कर्मोंको त्यागकर मोहनिद्राको विसर्जन करके जाग्रत हुआ हूं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नूनं ते हृदयं काम वज्रसारमयं दृढम् ।
यदनर्थशताविष्टं शतधा न विदीर्यते ॥ २३ ॥

हे काम ! बोध होता है, तुम्हारा हृदय फौलादका बना हुआ है, इसलिये अत्यन्त दृढ है; क्योंकि सैकडों अनर्थोंसे अनिष्ट होनेपर भी सौ टुकडे होकर फट नहीं जाता ॥ २३ ॥

त्यजामि काम त्वां चैव यच्च किंचित्प्रियं तव ।
तवाहं सुखमन्विच्छन्नात्मन्युपलभे सुखम् ॥ २४ ॥

हे काम ! मैं तुम्हें तथा तुम्हारी जो कुछ प्रिय वस्तु है; उसे भी जानता हूं; मैं तुम्हारी प्रिय कामना करते हुए आत्माको सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ २४ ॥

काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे ।
न त्वां संकल्पयिष्यामि समूलो भविष्यसि ॥ २५ ॥

काम ! संकल्पसे तेरा जन्म हुआ है; इसलिये सङ्कल्पही तुम्हारा मूल है; वह भी मुझसे छिपा नहीं है, उसे मैं जानता हूं । मैं तेरे सङ्कल्पको परित्याग करूंगा, इससे तूं जडके सहित नष्ट होगा ॥ २५ ॥

ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी ।
लब्धनाशो यथा मृत्युर्लब्धं भवति वा न वा ॥ २६ ॥

धनकी लालसासे सुखलाभ नहीं होता; धन प्राप्त होनेपर भी बहुतसी चिन्ता हुआ करती है; प्राप्त धनके नष्ट होनेसे मृत्युके समान दुःख होता है; धन लाभ होगा या नहीं, यह भी संशयसे युक्त है; ॥ २६ ॥

परेत्य यो न लभते ततो दुःखतरं नु किम् ।
न च तुष्यति लब्धेन भूय एव च मार्गति ॥ २७ ॥

दूसरेके समीप प्रार्थना करनेपर भी यदि धन न मिले, तो उससे बढके दुःख और कुछ भी नहीं है, प्राप्त हुए धनसे भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता; बल्कि फिर भी अधिककी इच्छा किया करता है ॥ २७ ॥

अनुतर्षुल एवार्थः स्वादु गाङ्गमिवोदकम् ।
मद्विलापनमेतत्तु प्रतिबुद्धोऽस्मि संत्यज ॥ २८ ॥

स्वादिष्ट गङ्गाजलकी तरह धन तृष्णाकी अत्यन्त ही वृद्धि करता है, और यही मुझे नष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है; जो हो, इस समय मैं मोहनिद्रासे रहित हुआ हूं, इसलिये । हे काम ! अब तू मुझे परित्याग कर ॥ २८ ॥

य इमं मामकं देहं भूतग्रामः समाश्रितः ।
स यात्वितो यथाकामं वसतां वा यथासुखम् ॥ २९ ॥

यह पांचों भूतोंका समुदाय मेरे शरीरका आसरा लेकर स्थित है, वह इसमेंसे इच्छानुसार सुखसे चला जाय या इसमें रहे ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न युष्मास्विह मे प्रीतिः कामलोभानुसारिषु ।
तस्मादुत्सृज्य सर्वान्वः सत्यमेवाश्रयाम्यहम् ॥ ३० ॥

तुम सब काम और लोभके पीछे लगे रहते हो, इसीलिये तुम्हारे ऊपर यहां मेरी प्रीति नहीं है; इससे तुम सब कामनाओंका परित्याग करके मैं केवल सत्यगुणकाही अवलम्बन करूंगा ॥३०॥

सर्वभूतान्यहं देहे पश्यन्मनसि चात्मनः ।
योगे बुद्धिं श्रुते सत्त्वं मनो ब्रह्मणि धारयन् ॥ ३१ ॥

मैं शरीरमें सब भूतों और मनमें आत्माको देखते हुए, योगविशेषमें बुद्धि लगाकर तथा श्रवण विषयमें सत्त्वगुण अवलम्बन करके, परब्रह्ममें मन स्थिर कर, ॥ ३१ ॥

विहरिष्याम्यनासक्तः सुखी लोकान्निरामयः ।
यथा मा त्वं पुनर्नैवं दुःखेषु प्रणिधास्यसि ॥ ३२ ॥

निरामय, आसक्तिहीन और सुखी होकर लोकोंके बीच इस प्रकार भ्रमण करूंगा, कि अब तू मुझे फिर दुःखसमूहमें न डुबा सकेगा ॥ ३२ ॥

त्वया हि मे प्रणुन्नस्य गतिरन्या न विद्यते ।
तृष्णाशोकश्रमाणां हि त्वं काम प्रभवः सदा ॥ ३३ ॥

हे काम ! तू यदि मुझे परिचालित करे, तो मुझे दूसरा उपाय ही नहीं है; तृष्णा, शोक और परिश्रम तुझसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ३३ ॥

धननाशोऽधिकं दुःखं मन्ये सर्वमहत्तरम् ।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते मित्राणि च धनच्युतम् ॥ ३४ ॥

मुझे बोध होता है कि धन नष्ट होनेपर सबसे अधिक दुःख उत्पन्न होता है; धनहीन मनुष्यकी स्वजन बन्धु और मित्र लोग भी अवज्ञा किया करते हैं ॥ ३४ ॥

अवज्ञानसहस्रैस्तु दोषाः कष्टतराधने ।
धने सुखकला या च सापि दुःखैर्विधीयते ॥ ३५ ॥

दरिद्रको हजारों तिरस्कार सहने पडते हैं; इसलिये धनहीन अवस्थामें बहुतेरे कष्टपूरित दोष हैं; धनविषयमें जो कुछ सुख है, वह भी दुःखसे मिला हुआ है ॥ ३५ ॥

धनमस्येति पुरुषं पुरो निघ्नन्ति दस्यवः ।
क्लिश्यन्ति विविधैर्दण्डैर्नित्यमुद्वेजयन्ति च ॥ ३६ ॥

डाकू लोग अगाडी धनवान् पुरुषका ही धनके लिये वध करते हैं, अनेक तरहके दण्डसे दुःख देते और सदा व्याकुल किया करते हैं ॥ ३६ ॥

मन्दलोलुपता दुःखमिति बुद्धं चिरान्मया ।
यद्यदालम्बसे काम तत्तदेवानुरुध्यसे ॥ ३७ ॥

अर्थलोभही दुःखका कारण है, इसे मैंने बहुत देरके बाद समझा है । हे काम ! तू जिसे अवलम्बन करता है, उसे ही अवरुद्ध कर रखता है; ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अतत्त्वज्ञोऽसि बालश्च दुस्तोषोऽपूरणोऽनलः ।
नैव त्वं वेत्थ सुलभं नैव त्वं वेत्थ दुर्लभम् ॥ ३८ ॥

तू तत्त्व ज्ञानसे रहित और बालककी तरह मूर्ख है; किसीसे भी तेरी तुष्टि नहीं होती और अग्निकी भांति किसी प्रकार तुझे परिपूर्ण नहीं किया जा सकता। तू कौनसी वस्तु दुर्लभ है और कौनसी सुलभ है, यह कुछ भी नहीं जानता; ॥ ३८ ॥

पातालमिव दुष्पूरो मां दुःखैर्योक्तुमिच्छसि ।
नाहमद्य समावेष्टुं शक्यः काम पुनस्त्वया ॥ ३९ ॥

पातालकी भांति तुझे भरना कठिन है, तू मुझे दुःखयुक्त करनेकी अभिलाष करता है। हे काम ! अब तू फिर मेरा आश्रय न कर सकेगा, ॥ ३९ ॥

निर्वेदमहमासाद्य द्रव्यनाशाद्यदृच्छया ।
निर्वृत्तिं परमां प्राप्य नाद्य कामान्विचिन्तये ॥ ४० ॥

मैं दैववशात् धनका नाश हो जानेसे वैराग्य अवलम्बन करके परम सुख प्राप्त करके, इस समय अब काम्य वस्तुओंकी इच्छा नहीं करता ॥ ४० ॥

अतिक्लेशान्सहामीह नाहं बुध्याम्यबुद्धिमान् ।
निष्कृतो धननाशेन शये सर्वाङ्गविज्वरः ॥ ४१ ॥

मैंने इसके पहिले अत्यन्त क्लेश सहा है; क्योंकि बुद्धिहीन होकर धनकी कामनामें कष्ट है,—ऐसा नहीं समझता था; मैंने धनहानिनिबन्धनसे छुटकारा पाके इस समय सब अंगोंमें क्लेश-रहित होकर सुखसे सोता हूं ॥ ४१ ॥

परित्यजामि काम त्वां हित्वा सर्वमनोगतीः ।
न त्वं मया पुनः काम नस्योतेनेव रंस्यसे ॥ ४२ ॥

हे काम ! मैं मनकी सब वृत्तियोंको त्यागके तुझे भी परित्याग करता हूं। तू अब फिर मेरे सङ्ग अनुरक्ति तथा निवास नहीं कर सकेगा ॥ ४२ ॥

क्षमिष्येऽक्षममाणानां न हिंसिष्ये च हिंसितः ।
द्वेष्यमुक्तः प्रियं वक्ष्याम्यनादृत्य तदप्रियम् ॥ ४३ ॥

जो मेरी निन्दा किया करते हैं, मैं उन लोगोंके विषयमें क्षमा करूंगा; दूसरे यदि मेरी हिंसा करें तौभी मैं उनकी हिंसा न करूंगा; मेरे विषयमें विद्वेष प्रकाशित करके यदि कोई अप्रिय वचन कहे, तो मैं उसके उस अप्रिय वचनका अनादर करके उसे प्रिय वचनही कहूंगा ॥४३॥

तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं यथालब्धेन वर्तयन् ।
न सकामं करिष्यामि त्वामहं शत्रुमात्मनः ॥ ४४ ॥

मैं तृप्तियुक्त होके और इन्द्रियोंको जीतकर जो कुछ वस्तु प्राप्त होंगी, उससे ही जीवन बिताते हुए, आत्मशत्रु तुम्हें फिर सकाम नहीं करूंगा ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Maharaj Varanasi. Digitized by eGangotri

निर्वेदं निर्वृतिं तृप्तिं शान्तिं सत्यं दमं क्षमाम् ।
सर्वभूतदयां चैव विद्धि मां शरणागतम् ॥ ४५ ॥

यह समझ रखे कि वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब भूतोंमें दया– ये सद्गुण प्राप्त हो गये हैं ॥ ४५ ॥

तस्मात्कामश्च लोभश्च तृष्णा कार्पण्यमेव च ।
त्यजन्तु मां प्रतिष्ठन्तं सत्त्वस्थो ह्यस्मि साम्प्रतम् ॥ ४६ ॥

अब सत्त्वगुणावलम्बी होकर मुक्तिमार्गमें प्रस्थान करता हूं; इसलिये, काम, लोभ, तृष्णा और दीनता मुझे परित्याग करे ॥ ४६ ॥

प्रहाय कामं लोभं च क्रोधं पारुष्यमेव च ।
नाद्य लोभवशं प्राप्तो दुःखं प्राप्स्याम्यनात्मवान् ॥ ४७ ॥

मैं काम, लोभ, क्रोध और क्रूरताको त्यागके सुखी हुआ हूं, इस समय असंयमी पुरुषकी तरह लोभके वशमें होकर फिर दुःखभोग न करूंगा ॥ ४७ ॥

यद्यत्त्यजति कामानां तत्सुखस्याभिपूर्यते ।
कामस्य वशगो नित्यं दुःखमेव प्रपद्यते ॥ ४८ ॥

कामनाओंके जिस जिस अंशका मनुष्य परित्याग करता है; उसकी ओरसे वह सुखी होता है । जो सदा कामके वशमें रहता है वह केवल दुःख ही भोग करता है ॥ ४८ ॥

कामान्व्युदस्य धुनुते यत्किंचित्पुरुषो रजः ।
कामक्रोधोद्भवं दुःखमह्रीररतिरेव च ॥ ४९ ॥

कामसे युक्त जो कुछ रजोगुण है, उसे पुरुषमात्रको त्यागना उचित है; क्योंकि दुःख, निर्लज्जता और असंतोष– ये काम तथा क्रोधसे उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ४९ ॥

एष ब्रह्मप्रविष्टोऽहं ग्रीष्मे शीतमिव ह्रदम् ।
शाम्यामि परिनिर्वामि सुखमास्े च केवलम् ॥ ५० ॥

ग्रीष्म ऋतुमें ठण्डे जलयुक्त तालाबमें प्रवेश करनेकी भांति इस समय मैं परब्रह्ममें प्रविष्ट हुआ हूं; सब कर्मोंसे मुक्त होकर दुःखरहित– शान्त हुआ हूं, निर्वाणको प्राप्त हो गया हूं; केवल निर्विकार सुखही सदा मेरे समीप स्थित है ॥ ५० ॥

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ५१ ॥

इस लोकमें जो कुछ कामसुख है तथा स्वर्गमें जो कुछ दिव्य महान् सुख है, वे सब तृष्णाक्षयरूपी सुखके सोलहवें अंशके समान नहीं हैं ॥ ५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मना सप्तमं कामं हत्वा शत्रुमिवोत्तमम् ।
प्राप्यावध्यं ब्रह्मपुरं राजेव स्यामहं सुखी ॥ ५२ ॥

देहधारियोंके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य और ममता– ये सात शत्रु हैं– इनमें सातवां कामरूप शत्रु है; उनके साथ सब अनर्थोंका मूलस्वरूप परम शत्रु कामका नाश करके मैं अविनाशी ब्रह्मपुर पाके राजाकी तरह सुखी हो जाऊंगा ॥ ५२ ॥

एतां बुद्धिं समास्थाय मङ्किर्निर्वेदमागतः ।
सर्वान्कामान्परित्यज्य प्राप्य ब्रह्म महत्सुखम् ॥ ५३ ॥

मंकिने ऐसा ही विचार करके शोकरहित हो सब कामनाओंको त्यागके विरक्त होकर महत् सुखस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त होके अमरत्व लाभ किया ॥ ५३ ॥

दम्भनाशकृते मङ्किरमरत्वं किलागमत् ।
अच्छिनत्कामसूलं स तेन प्राप महत्सुखम् ॥ ५४ ॥

बैलोंके नाशको कारण बनाकर ही मङ्कि अमृतत्वको प्राप्त हुआ । उसने कामके मूल माया-बन्धनको तोडा था, इसीसे महान् सुखलाभ किया ॥ ५४ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं विदेहराजेन जनकेन प्रशाम्यता ॥ ५५ ॥

हे धर्मराज ! विदेहराज जनकने सब कर्मोंसे मुक्त हो शान्त भावको प्राप्त होकर जो कुछ कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ ५५ ॥

अनन्तं बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किंचन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन ॥ ५६ ॥

उन्होंने कहा था, " हमारे पास अनन्त साधन है, तौभी मेरा कुछ भी नहीं है; सारी मिथिला नगरीके भस्म होनेपर भी मेरा कुछ न जलेगा ॥ ५६ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीमं बोध्यस्य पदसंचयम् ।
निर्वेदं प्रति विन्यस्तं प्रतिबोध युधिष्ठिर ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिर ! बोध्य ऋषिने वैराग्यविषयक जिन श्लोकोंको कहा था; प्राचीन लोग उनका भी इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो ॥ ५७ ॥

बोध्यं दान्तमृषिं राजा नहुषः पर्यपृच्छत ।
निर्वेदाच्छान्तिमापन्नं शान्तं प्रज्ञानतर्पितम् ॥ ५८ ॥

नहुषपुत्र राजा ययातिने वैराग्यके कारण दान्तभावसे युक्त, शास्त्रज्ञानसे तृप्त, शान्त बोध्य नामक ऋषिसे पूछा था; ॥ ५८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उपदेशं महाप्राज्ञ शमस्योपदिशस्व मे ।
कां बुद्धिं समनुध्याय शान्तश्चरसि निर्वृतः ॥ ५९ ॥

हे महाबुद्धिमान् ! आप कृपा करके वह शान्तिमय उपदेश दान करिये, जिस बुद्धिका अवलंबन करके आप सुखी होकर शान्तिसे विचरते हैं ॥ ५९ ॥

बोध्य उवाच—

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन ।
लक्षणं तस्य वक्ष्येऽहं तत्स्वयं प्रविमृश्यताम् ॥ ६० ॥

बोध्य बोले—मैं दूसरोंसे उपदेश ग्रहण करके निवास करता हूं; परन्तु किसीको भी उपदेश दान नहीं करता । इस समय मुझे मिले हुए उपदेशका लक्षण कहता हूं, आप स्वयं उसका विचार करिये ॥ ६० ॥

पिङ्गला कुररः सर्पः सारङ्गान्वेषणं वने ।
इषुकारः कुमारी च षडेते गुरवो मम ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ६२४६ ॥

पिङ्गला, कुरर पक्षी, सांप, वनके बीच सारङ्ग पक्षीकी खोज, बाण बनानेवाला और कुमारी ये छः मेरे उपदेष्टा—गुरु हैं ॥ ६१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ६२४६ ॥

: १७२ :

युधिष्ठिर उवाच—

केन वृत्तेन वृत्तज्ञ वीतशोकश्चरेन्महीम् ।
किं च कुर्वन्नरो लोके प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे व्यवहारज्ञ पितामह ! मनुष्य किस व्यवहारसे शोकरहित होकर पृथ्वीपर विचर सकता है और जगतमें कौनसा कार्य करके उत्तम गति प्राप्त कर सकता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ २ ॥

भीष्म बोले—प्राचीन लोग इस विषयमें प्रह्लाद और अजगर वृत्तिको अवलम्बन करके जीविका निर्वाह करनेवाले किसी मुनिके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं ॥ २ ॥

चरन्तं ब्राह्मणं कंचित्कल्पचित्तमनामयम् ।
पप्रच्छ राजन्प्रह्लादो बुद्धिमान्प्राज्ञसंमतः ॥ ३ ॥

राजन् ! प्राज्ञ सम्मत बुद्धिमान् राजा प्रह्लादने रागद्वेषसे रहित सुदृढ चित्तसे भ्रमण करनेवाले किसी ब्राह्मणसे प्रश्न किया ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वस्थः शक्तो मृदुर्दान्तो निर्विचित्सोऽनसूयकः ।
सुवाग्बहुमतो लोके प्राज्ञश्चरसि बालवत् ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप स्वस्थ, शक्तिमान्, दयावान्, जितेन्द्रिय, मुक्त दूसरोंके दोषोंको न देखनेवाले, मधुरवचन बोलनेवाले, जगतमें बहुमत और तत्वज्ञ होकर भी बालककी तरह घूम रहे हैं ॥ ४ ॥

नैव प्रार्थयसे लाभं नालाभेष्वनुशोचसि ।
नित्यतृप्त इव ब्रह्मन्न किंचिदवमन्यसे ॥ ५ ॥

आप वस्तुलाभकी इच्छा नहीं करते; प्राप्त न होनेपर भी असन्तुष्ट नहीं होते; सदा तृप्तकी भांति किसी विषयकी अवज्ञा नहीं करते ॥ ५ ॥

स्रोतसा ह्रियमाणासु प्रजास्वविमना इव ।
धर्मकामार्थकार्येषु कूटस्थ इव लक्ष्यसे ॥ ६ ॥

सारी प्रजा काम-क्रोधके प्रबलवेगमें बही जा रही है, तौभी आप विरक्तकी तरह जान पडते हैं; धर्म, काम और अर्थयुक्त कार्योंमें भी निर्विकार चित्तके समान मालूम होरहे हैं ॥ ६ ॥

नानुतिष्ठसि धर्मार्थौ न कामे चापि वर्तसे ।
इन्द्रियार्थाननादृत्य मुक्तश्चरसि साक्षिवत् ॥ ७ ॥

आप धर्म और अर्थका अनुष्ठान नहीं करते तथा काममें भी प्रवृत्त नहीं होते हैं । रूप, रस आदि इन्द्रियोंसे विषयोंका अनादर करके कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि अभिमानसे रहित होकर साक्षीकी तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ ७ ॥

का नु प्रज्ञा श्रुतं वा किं वृत्तिर्वा का नु ते मुने ।
क्षिप्रमाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्श्रेयो यदिह मन्यसे ॥ ८ ॥

ब्रह्मन् ! आपका कैसा तत्त्वदर्शन, किस प्रकार शास्त्रका सुनना और किस प्रकारका धर्मानुष्ठान है जिससे आपका जीवन ऐसा हुआ है ? यदि उसे मेरे विषयमें उत्तम समझते हो, तो शीघ्रही वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥

अनुयुक्तः स मेधावी लोकधर्मविधानवित् ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा प्रह्लादमनपार्थया ॥ ९ ॥

लोकधर्मको जाननेवाले उस मेधावी मुनिने पूछनेपर अर्थयुक्त मधुर वचनसे प्रह्लादको उत्तर दिया ॥ ९ ॥

पश्यन्प्रह्लाद भूतानामुत्पत्तिमनिमित्ततः ।
ह्रासं वृद्धिं विनाशं च न प्रहृष्ये न च व्यथे ॥ १० ॥

हे प्रह्लाद ! कारणरहित एकमात्र अद्वितीय परम परमात्मासे जीवोंकी उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि वा नाशके विषयकी आलोचना कर, मैं इसे देखके भी हर्षित तथा दुःखित नहीं होता ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वभावादेव संदृश्य वर्तमानाः प्रवृत्तयः ।
स्वभावनिरताः सर्वाः परितप्ये न केनचित् ॥ ११ ॥

स्वभावके कारण वर्त्तमान प्रवृत्तियों और स्वभावमें रत सब लोगोंको भली भांति देखना उचित है, मैं इसे जानकर किसी भी परिस्थितिमें सतप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

पश्यन्प्रहाद संयोगान्विप्रयोगपरायणान् ।
संचयांश्च विनाशान्तान्न क्वचिद्विदधे मनः ॥ १२ ॥

हे प्रह्लाद ! वियोगपरायण प्राणियोंके संयोग और विनाशावसान समस्त सञ्चयोंको अवलोकन करके मैं किसी विषयमें ही मन नहीं लगाता ॥ १२ ॥

अन्तवन्ति च भूतानि गुणयुक्तानि पश्यतः ।
उत्पत्तिनिधनज्ञस्य किं कार्यमवशिष्यते ॥ १३ ॥

जो गुणयुक्त जीवोंको अन्तवन्त अवलोकन करता और उत्पत्ति तथा लयके विषयको जानता है; उसके लिये कोई कार्य शेष नहीं रहता है ॥ १३ ॥

जलजानामपि ह्यन्तं पर्यायेणोपलक्षये ।
महतामपि कायानां सूक्ष्माणां च महोदधौ ॥ १४ ॥

यह देखता हूं, कि महासमुद्रके बीच क्या बडे, क्या छोटे शरीरवाले जलचर जीवोंका पर्याय-क्रमसे नाश हो रहा है, ॥ १४ ॥

जङ्गमस्थावराणां च भूतानामसुराधिप ।
पार्थिवानामपि व्यक्तं मृत्युं पश्यामि सर्वशः ॥ १५ ॥

हे दानवराज ! स्थावर जङ्गम आदि पृथ्वीपरके सब जीवोंको स्पष्ट भावसे मृत्युके मुखमें पतित होते देखता हूं ॥ १५ ॥

अन्तरिक्षचराणां च दानवोत्तम पक्षिणाम् ।
उत्तिष्ठति यथाकालं मृत्युर्बलवतामपि ॥ १६ ॥

हे दानवश्रेष्ठ ! आकाशचारी बलवान् पक्षियोंकी भी यथा समयमें मृत्यु होती है; ॥ १६ ॥

दिवि संचरमाणानि ह्रस्वानि च महान्ति च ।
ज्योतींषि च यथाकालं पतमानानि लक्षये ॥ १७ ॥

आकाशमें घूमनेवाले छोटे और बडे दिव्य तारे भी यथा समय नष्ट होते दीख पडते हैं ॥ १७ ॥

इति भूतानि संपश्यन्ननुषक्तानि मृत्युना ।
सर्वसामान्यतो विद्वान्कृतकृत्यः सुखं स्वपे ॥ १८ ॥

इसी तरह सब भूतोंको मृत्युके वशमें होते देखकर, ब्रह्मनिष्ठ और कृतकृत्य होकर सबके प्रति समान भाव रखकर सुखकी नींद सोता हूं ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुमहान्तमपि ग्रासं ग्रसे लब्धं यदृच्छया ।
शये पुनरभुञ्जानो दिवसानि बहून्यपि ॥ १९ ॥

कभी अनायास दैवेच्छासे प्राप्त हुए उत्तम भक्ष्य भोजन किया करता हूं; कभी कई दिनोंतक विना भोजन किये ही सोता हूं, ॥ १९ ॥

आस्रवन्त्यपि मामन्नं पुनर्बहुगुणं बहु ।
पुनरल्पगुणं स्तोकं पुनर्नैवोपपद्यते ॥ २० ॥

कभी लोग मुझे अनेक गुणोंसे सम्पन्न बहुतसा खिलाते हैं; और कभी थोडा फिर उससे भी थोडा अन्न भोजन कराते हैं; कभी कुछ भी अन्न उपस्थित नहीं होता ॥ २० ॥

कणान्कदाचित्खादामि पिण्याकमपि च ग्रसे ।
भक्षये शालिमांसानि भक्षांश्चोच्चावचान्पुनः ॥ २१ ॥

मैं कभी चावलोंके किनकोंको भक्षण करता हूं, कभी तिलकी खलीका भोजन किया करता हूं । कभी पक्वान्न आदिक अनेक प्रकारकी भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करता हूं, इस प्रकार वार वार उत्तम और कनिष्ठ भोजन प्राप्त होते रहते हैं ॥ २१ ॥

शये कदाचित्पर्यङ्के भूमावपि पुनः शये ।
प्रासादेऽपि च मे शय्या कदाचिदुपपद्यते ॥ २२ ॥

मैं कभी पलङ्गपर सोता हूं, कभी पृथ्वीपर शयन किया करता हूं; कभी महलमें मेरी शय्या सज्जित हुआ करती है ॥ २२ ॥

धारयामि च चीराणि शाणीं क्षौमाजिनानि च ।
महार्हाणि च वासांसि धारयाम्यहमेकदा ॥ २३ ॥

कभी चीरवसन, कभी शनसूतके बने हुए वस्त्र, कभी कभी क्षौमवस्त्र और कभी मृगछाल धारण करता हूं; समयके अनुसार महामूल्यवान वस्त्रोंको भी पहना करता हूं ॥ २३ ॥

न संनिपतितं धर्म्यमुपभोगं यदृच्छया ।
प्रत्याचक्षे न चाप्येनमनुरुध्ये सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥

यदृच्छाप्राप्त धर्मयुक्त उपभोग वस्तुओंमें मैं अनास्था– द्वेष नहीं करता और इसके अत्यन्त दुर्लभ वस्तु प्राप्त न होनेपर भी उसके लिये मेरी रुचि नहीं होती ॥ २४ ॥

अचलमनिधनं शिवं विशोकं शुचिमतुलं विदुषां मते निविष्टम् ।
अनभिमतमसेवितं च मूढैर्व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २५ ॥

मैं सदा पवित्र भावसे रहकर अत्यंत स्थिरतायुक्त, मरण–विरोधी, मंगलजनक, शोकहीन, शुद्ध, विद्वानोंसे मान्य और तुलनारहित इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं । अत्यन्त मूढ लोग इसका आचरण करना तो दूर रहे, इसे जाननेमें भी समर्थ नहीं होते; यह ब्रह्म-प्राप्तिका उपाय स्वरूप है ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अचलितमतिरच्युतः स्वधर्मात्परिमितसंसरणः परावरज्ञः ।
विगतभयकषायलोभमोहो व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २६ ॥

मैं स्थिर चित्तसे निज धर्मसे विचलित न होकर, पूर्वापर सब मालूम करके, परिमित भावसे जीविका निर्वाह करते हुए निर्भय, राग-द्वेष आदिसे रहित, निर्लोभ और मोहहीन होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ २६ ॥

अनियतफलभक्ष्यभोज्यपेयं विधिपरिणामविभक्तदेशकालम् ।
हृदयसुखमसेवितं कदर्यैर्व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २७ ॥

इसमें फल, भक्ष्य, भोज्य और पेय विषयके मिलनेका नियम नहीं है; अदृष्टके परिणामके कारण देश और कालकी व्यवस्था की है; कुत्सित पुरुष जिसके आचरण करनेमें असमर्थ हैं, उस हृदयको सुखदायक आजगर व्रतका मैं पवित्र भावसे आचरण करता हूं ॥ २७ ॥

इदमिदमिति तृष्णयाभिभूतं जनमनवाप्तधनं विषीदमानम् ।
निपुणमनुनिशाम्य तत्त्वबुद्ध्या व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २८ ॥

"अमुक धन मैं लाभ करूंगा" इसी तरह तृष्णासे युक्त होकर, धन न प्राप्त होनेपर दुःखित होते हैं, ऐसे लोगोंकी तत्वबुद्धिके जरिये निपुणताके सहित आलोचना करके, मैं पवित्र भावसे इस आजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ २८ ॥

बहुविधमनुदृश्य चार्थहेतोः कृपणमिहार्यमनार्यमाश्रयन्तम् ।
उपशमरुचिरात्मवान्प्रशान्तो व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ २९ ॥

श्रेष्ठ मनुष्य भी दीनभावसे सत् और असत् सबहीके निकट धनके निमित्त आश्रित होते हैं, इसे देखकर मैं शान्तिकी अभिलाष करके और चित्तको जीतके इस आजगर व्रतका पवित्र भावसे आचरण करता हूं ॥ २९ ॥

सुखमसुखमनर्थमर्थलाभं रतिमरतिं मरणं च जीवितं च ।
विधिनियतमवेक्ष्य तत्त्वतोऽहं व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३० ॥

सुख-दुःख, लाभ-हानि, रति-अरति, जीना और मरना- ये सब दैवके अधीन हैं; इसे यथार्थ रीतिसे जानकर मैं पवित्र भावसे इस आजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ ३० ॥

अपगतभयरागमोहदर्पो धृतिमतिबुद्धिसमन्वितः प्रशान्तः ।
उपगतफलभोगिनो निशाम्य व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३१ ॥

मैं भय, राग, मोह और अभिमानसे रहित होकर, धृति, मति और बुद्धिसे युक्त तथा प्रशान्त हो गया हूं; दैववशात् उपस्थित वस्तुका ही उपभोग करनेवालोंको देखकर मैं पवित्र भावसे इस आजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनियतशयनासनः प्रकृत्या दमनियमव्रतसत्यशौचयुक्तः ।
अपगतफलसंचयः प्रहृष्टो व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३२ ॥

मेरे सोने और भोजन करनेका कोई नियमित स्थान नहीं है; मैं स्वभावसे ही दम, नियम, व्रत, सत्य और शौचाचरणसे युक्त, फलसञ्चयसे रहित और आनन्दित होकर पवित्र भावसे इस आजगरव्रतका आचरण करता हूं ॥ ३२ ॥

अभिगतमसुखार्थमीहनार्थैरुपगतबुद्धिरवेक्ष्य चात्मसंस्थः ।
तृषितमनियतं मनो नियन्तुं व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३३ ॥

इच्छाके विषय पुत्र और वित्त आदि निबन्धन परिणाम दुःखके कारण हैं, उन समस्त दुःखदायी पदार्थोंसे विरक्तको देखकर, मैं ज्ञानलाभ करके, अन्तःकरणको तृषित और अस्थिर देखकर उसे स्थिर करनेके लिये पवित्र भावसे इस आत्मनिष्ठ आजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ ३३ ॥

न हृदयमनुरुध्यते मनो वा प्रियसुखदुर्लभतामनित्यतां च ।
तदुभयमुपलक्षयन्निवाहं व्रतमिदमाजगरं शुचिश्चरामि ॥ ३४ ॥

मैं वचन, मन और अन्तःकरणका अनुरोध न करके प्रिय लगनेवाले विषय सुखोंकी दुर्लभता और अनित्यता देखते हुए, पवित्र भावसे इस आजगर व्रतका आचरण करता हूं ॥ ३४ ॥

बहु कथितमिदं हि बुद्धिमद्भिः कविभिरभिप्रथयद्भिरात्मकीर्तिम् ।
इदमिदमिति तत्र तत्र तत्तत्स्वपरमतैर्गहनं प्रतर्कयद्भिः ॥ ३५ ॥

बुद्धिमान् विद्वानोंने आत्मकीर्तिको प्रसिद्ध करते हुए, निजमत और परमतके जरिये यह शास्त्र ऐसा कहता है इसी तरह अनेक वितर्क करके बहुतायतके सहित आत्मतत्त्वका विषय वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

तदहमनुनिशाम्य विप्रयातं पृथगभिपन्नमिहाबुधैर्मनुष्यैः ।
अनवसितमनन्तदोषपारं नृषु विहरामि विनीतरोषतृष्णः ॥ ३६ ॥

मूर्ख मनुष्य उस प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे प्रसिद्ध तर्कसे अगोचर आत्मतत्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते; मैं उसे ही अज्ञान आदि नाशक, अन्तरहित और अनन्त दोष निवारक रूपसे आलोचना करके दोष और तृष्णा त्यागके मनुष्योंके बीच भ्रमण किया करता हूं ॥ ३६ ॥

भीष्म उवाच—

अजगरचरितं व्रतं महात्मा य इह नरोऽनुचरेद्विनीतरागः ।
अपगतभयमन्युलोभमोहः स खलु सुखी विहरेदिमं विहारम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ ६२८३ ॥

भीष्म बोले— इस पृथ्वीमण्डल पर जो महानुभाव मनुष्य रागहीन और भय, लोभ, मोह तथा मानरहित होकर इस आजगर व्रतका आचरण करता है, वह अवश्यही इस जगत्में सुखी होता है ॥ ३७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७२ ॥ ६२८३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१७३

युधिष्ठिर उवाच—

बान्धवाः कर्म वित्तं वा प्रज्ञा वेह पितामह ।
नरस्य का प्रतिष्ठा स्यादेतत्पृष्टो वदस्व मे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! बान्धवों, कर्म, वित्त, और बुद्धि—इन सबके बीच मनुष्यकी किस विषयसे प्रतिष्ठा होती है ? मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

प्रज्ञा प्रतिष्ठा भूतानां प्रज्ञा लाभः परो मतः ।
प्रज्ञा नैःश्रेयसी लोके प्रज्ञा स्वर्गो मतः सताम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले—बुद्धिमेंही जीवोंकी प्रतिष्ठा होती है, बुद्धिही उनका सबसे श्रेष्ठ लाभ है; इस लोकमें बुद्धिसेही निःश्रेयस लाभ हुआ करता है; बुद्धिही साधुओंमें स्वर्गरूपसे सम्मत है ॥२॥

प्रज्ञया प्रापितार्थो हि बलिरैश्वर्यसंक्षये ।
प्रह्लादो नमुचिर्मङ्किस्तस्याः किं विद्यते परम् ॥ ३ ॥

ऐश्वर्य नष्ट होनेपर राजा बलिने फिर उसे बुद्धिसे प्राप्त किया था; प्रह्लाद, नमुचि और मंकिने भी बुद्धिसेही अपना पुरुषार्थ लाभ किया था; इससे जगतमें बुद्धिसे श्रेष्ठ और क्या है ॥३॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इन्द्रकाश्यपसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ४ ॥

हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें पण्डित लोग इन्द्र और कश्यपके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो ॥ ४ ॥

वैश्यः कश्चिदृषिं तात काश्यपं संशितव्रतम् ।
रथेन पातयामास श्रीमान्दृप्तस्तपस्विनम् ॥ ५ ॥

हे तात ! ऐश्वर्यसे मतवाले किसी वैश्यने संशितव्रती तपस्वी ऋषि काश्यपको रथचक्रसे गिराया था ॥ ५ ॥

आर्तः स पतितः क्रुद्धस्त्यक्त्वात्मानमथाब्रवीत् ।
मरिष्याम्यधनस्येह जीवितार्थो न विद्यते ॥ ६ ॥

गिरनेसे पीडित और क्रुद्ध होकर ऋषिने शरीर त्यागनेका निश्चय करके कहा—मैं अवश्यही जीवन परित्याग करूंगा; इस पृथ्वीमण्डलपर निर्द्धन मनुष्यको जीवन धारण करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ६ ॥

तथा मुमूर्षमासीनमकूजन्तमचेतसम् ।
इन्द्रः सृगालरूपेण बभाषे क्रुद्धमानसम् ॥ ७ ॥

ऋषिके मुमूर्षु होकर चेतनारहित अवस्थामें इस प्रकार क्रोधितचित्त और शब्द रहित होके निवास करनेपर देवराज इन्द्र सियारका रूप धरके उसके समीप आके बोले ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मनुष्ययोनिमिच्छन्ति सर्वभूतानि सर्वशः ।
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं सर्व एवाभिनन्दति ॥ ८ ॥

समस्त जीव सब तरहसे मनुष्ययोनि प्राप्त होनेकी इच्छा करते हैं; मनुष्य जन्म होनेसे सब कोई ब्राह्मणत्वकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ ८ ॥

मनुष्यो ब्राह्मणश्चासि श्रोत्रियश्चासि काश्यप ।
सुदुर्लभमवाप्यैतददोषान्मर्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

हे काश्यप ! तुम मनुष्य-जन्म पाके ब्राह्मण हुए हो, विशेष करके तुमने वेदाध्ययन भी किया है; अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व-ब्राह्मणत्व और श्रोत्रियत्व लाभ करके मूढताके वशमें होकर तुम्हें शरीर त्यागना उचित नहीं है ॥ ९ ॥

सर्वे लाभाः साभिमाना इति सत्या बत श्रुतिः ।
संतोषणीयरूपोऽसि लोभाद्यदभिमन्यसे ॥ १० ॥

लाभमात्रही अभिमानसे युक्त है, अर्थात् " मैंने यह धन प्राप्त किया है " सब वस्तुओंके प्राप्त होनेपर इसी प्रकार अभिमान हुआ करता है । इस विषयमें जो जनश्रुति है, अर्थात् किसीके धनमें अभिलाषा मत करो, यह अवश्यही तुम्हें विदित होगा; तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त ही सन्तोषयुक्त है; इसलिये तुमने जो मरनेका निश्चय किया है, उस विषयमें लोभके कारण तुम उसकी अवमानना करते हैं ॥ १० ॥

अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।
पाणिमद्भ्यः स्पृहास्माकं यथा तव धनस्य वै ॥ ११ ॥

इस जगत्में जिन्हें पांच अंगुलियोंसे युक्त हाथ हैं, उनका सभी प्रयोजन सिद्ध होता है; वे कृतार्थ हैं; धनके निमित्त तुम्हारी जैसी इच्छा है, हाथ युक्त मनुष्योंके विषयमें हम पशुओंकी वैसीही अभिलाषा हुआ करती है, ॥ ११ ॥

न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन विद्यते ।
अपाणित्वाद्वयं ब्रह्मन्कण्टकान्नोद्धरामहे ॥ १२ ॥

हस्तलाभसे अधिक लाभ और कुछ भी नहीं है । हे ब्राह्मन् ! हाथ नहीं है; इसहीसे हम लोग शरीरमें गडे कांटे नहीं निकाल सकते हैं ॥ १२ ॥

अथ येषां पुनः पाणी देवदत्तौ दशाङ्गुली ।
उद्धरन्ति कृमीनङ्गादृशमानान्कषन्ति च ॥ १३ ॥

जिन्हें भगवान् दिये हुए दस अंगुलियोंसे युक्त दोनों हाथ विद्यमान हैं, वे लोग दशन करनेवाले कीटोंको सहजमें ही हटा या नष्ट कर सकते हैं, ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिमवर्षातपानां च परित्राणानि कुर्वते ।
चेलमन्नं सुखं शय्यां निवातं चोपभुञ्जते ॥ १४ ॥

सर्दी, वर्षा और धूपसे अपना बचाव करनेमें वे समर्थ होते हैं। वस्त्र, अन्न, सुख, शय्या और एकान्त स्थान आदि सहजमें ही उपभोग कर सकते हैं ॥ १४ ॥

अधिष्ठाय च गां लोके भुञ्जते वाहयन्ति च ।
उपायैर्बहुभिश्चैव वश्यानात्मनि कुर्वते ॥ १५ ॥

जनसमाजके बीच बैलोंसे जुते हुए वाहनपर चढके उन्हें चलाते हुए, सुखभोग कर सकते हैं और आत्मसुखके लिये अनेक प्रकारके उपायोंसे सबको वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं ॥१५॥

ये खल्वजिह्माः कृपणा अल्पप्राणा अपाणयः ।
सहन्ते तानि दुःखानि दिष्ट्या त्वं न तथा मुने ॥ १६ ॥

हे मुने ! जिनके हाथ और जीभ नहीं हैं, वे दीन तथा दुर्बल हैं, वेही उन सब दुःखोंको सहते हैं। दैवयोगसे वे तो तुम्हें सहने नहीं पडते हैं ॥ १६ ॥

दिष्ट्या त्वं न शृगालो वै न कृमिर्न च मूषकः ।
न सर्पो न च मण्डूको न चान्यः पापयोनिजः ॥ १७ ॥

हे मुनि ! भाग्यसेही तुम सियार, कीट, मूषिक, सांप वा मेडक नहीं हुए अथवा दूसरी किसी पापयोनिमें जन्म नहीं लिया ॥ १७॥

एतावतापि लाभेन तोष्टुमर्हसि काश्यप ।
किं पुनर्योऽसि सत्त्वानां सर्वेषां ब्राह्मणोत्तमः ॥ १८ ॥

हे काश्यप ! इतने लाभसेही तुम्हें सन्तुष्ट रहना उचित है; तुम जब सब जीवोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हो, तब फिर दूसरे लाभकी क्या आवश्यकता है ? ॥ १८ ॥

इमे मां कृमयोऽदन्ति तेषामुद्धरणाय मे ।
नास्ति शक्तिरपाणित्वात्पश्यावस्थामिमां मम ॥ १९ ॥

मेरी यह दुर्दशा देखो, ये सब कृमिसमूह मुझे डंस रहे हैं, खा रहे हैं हाथ नहीं है, इसीसे मैं इन्हें नष्ट तथा निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

अकार्यमिति चैवेमं नात्मानं संत्यजाम्यहम् ।
नेतः पापीयसीं योनिं पतेयमपरामिति ॥ २० ॥

प्राणियोंको शरीर त्यागना पापका कारण हुआ करता है, इसलिये मैं इस शरीरको नहीं त्याग सकता और इससे अधिक पापयुक्त दूसरी योनिमें पडनेकी इच्छा नहीं होती ॥२०॥

मध्ये वै पापयोनीनां सार्गाली यामहं गतः ।
पापीयस्यो बहुतरा इतोऽन्याः पापयोनयः ॥ २१ ॥

समस्त पापयोनियोंके बीच मैंने जो शृगाल योनि पाई है, इससे भी अधिक पापयुक्त दूसरी अनेक पापयोनियां है ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जात्यैवैके सुखतराः सन्त्यन्ये भृशदुःखिताः ।
नैकान्तसुखमेवेह क्वचित्पश्यामि कस्यचित् ॥ २२ ॥

कितनेही जीव जातिके जरिये ही अत्यन्त सुखी हुआ करते हैं; दूसरे जीव उसहीसे अत्यन्त दुःखित होते हैं; इस जगत्में किसीको किसी विषयमें इकबारगी सुखी नहीं देखता हूं ॥२२॥

मनुष्या ह्याढ्यतां प्राप्य राज्यमिच्छन्त्यनन्तरम् ।
राज्याद्देवत्वमिच्छन्ति देवत्वादिन्द्रतामपि ॥ २३ ॥

मनुष्य लोग धनवान होके फिर राज्यकी इच्छा करते हैं, राज्य प्राप्त होनेपर फिर देवत्वकी इच्छा किया करते हैं और देवत्व प्राप्त होनेपर इन्द्रत्व लाभके अभिलाषी होते हैं ॥ २३ ॥

भवेस्त्वं यद्यपि त्वाढ्यो न राजा न च दैवतम् ।
देवत्वं प्राप्य चेन्द्रत्वं नैव तुष्येस्तथा सति ॥ २४ ॥

तुम यदि धनवान हो जाओ तथापि राजा वा देवता न होगे; यद्यपि देवत्वलाभ करके अन्तमें इन्द्रत्व लाभ करो; तौभी तुम उतनेसे सन्तुष्ट न होगे ॥ २४ ॥

न तृप्तिः प्रियलाभेऽस्ति तृष्णा नाद्भिः प्रशाम्यति ।
संप्रज्वलति सा भूयः समिद्भिरिव पावकः ॥ २५ ॥

प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे कभी तृप्ति नहीं होती । बहुत जल रहनेपर भी बढती प्यास कभी नहीं शान्त होती; काष्ठ प्राप्त होनेसे अग्निकी तरह प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे विषयतृष्णा अत्यन्तही बढती है ॥ २५ ॥

अस्त्येव त्वयि शोको वै हर्षश्चास्ति तथा त्वयि ।
सुखदुःखे तथा चोभे तत्र का परिदेवना ॥ २६ ॥

जैसा तुम्हें शोक हुआ है, वैसाही हर्ष भी तुममें निवास कर रहा है; इससे तुम आत्मगत हर्षसे शोकको दूर करो । जब कि सुख और दुःख दोनोंही प्राप्त होते हैं, तब फिर उसके लिये दुःख करनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २६ ॥

परिच्छिद्यैव कामानां सर्वेषां चैव कर्मणाम् ।
मूलं रुन्धीन्द्रियग्रामं शकुन्तानिव पञ्जरे ॥ २७ ॥

कामनाओं और सब कार्योंकी मूल बुद्धि तथा इन्द्रियां हैं; उन्हें पिञ्जरेमें बद्ध पक्षियोंकी तरह शरीरके बीच रोक रखा जाय, तो कुछ भय नहीं है ॥ २७ ॥

न खल्वप्यरसज्ञस्य कामः क्वचन जायते ।
संस्पर्शादर्शनाद्वापि श्रवणाद्वापि जायते ॥ २८ ॥

जो पुरुष जिस विषयका रसज्ञ नहीं है, उसमें उसकी कामना नहीं होती; स्पर्शन, दर्शन और श्रवण निबन्धनसे भी कामना उत्पन्न हुआ करती है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न त्वं स्मरसि वारुण्या लट्वाकानां च पक्षिणाम् ।
ताभ्यां चाभ्यधिको भक्ष्यो न कश्चिद्विद्यते क्वचित् ॥ २९ ॥

तुम कभी मद्य और चिडिया–इनका कभी स्मरण नहीं करते होंगे, क्योंकि इनका स्वाद तुमने ग्रहण नहीं किया है; किन्तु ऊपर कही हुई दोनों वस्तुओंसे बढके उत्तम भक्ष्य और कुछ भी नहीं है ॥ २९ ॥

यानि चान्यानि दुरेषु भक्ष्यभोज्यानि काश्यप ।
येषामभुक्तपूर्वं ते तेषामस्मृतिरेव च ॥ ३० ॥

अन्य जो सब अनन्त भक्ष्य पदार्थ हैं, उनमेंसे तुमने जिनको नहीं खाया है, उनके विषयमें तुम्हारी स्मृति तुमको कभी नहीं होगी ॥ ३० ॥

अप्राशनमसंस्पर्शमसंदर्शनमेव च ।
पुरुषस्यैष नियमो मन्ये श्रेयो न संशयः ॥ ३१ ॥

इसलिये अशन, स्पर्शन और दर्शन त्याग विषयमें नियम निर्द्धारण करना ही पुरुषको निःसन्देह कल्याणकारी है, ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३१ ॥

पाणिमन्तो धनैर्युक्ता बलवन्तो न संशयः ।
मनुष्या मानुषैरेव दासत्वमुपपादिताः ॥ ३२ ॥

हाथयुक्त जीवही निःसंदेह बलवान् और धनवान् हुआ करते हैं । मनुष्योंने मनुष्योंको दास बनाया है ॥ ३२ ॥

वधबन्धपरिक्लेशैः क्लिश्यन्ते च पुनः पुनः ।
ते खल्वपि रमन्ते च मोदन्ते च हसन्ति च ॥ ३३ ॥

कितनेही मनुष्य वध तथा बन्धन आदि विविध क्लेशोंसे बार बार क्लेशित हुआ करते हैं, परंतु वे लोग वैसी अवस्थामें पडके भी क्रीडा, आमोद तथा हास्य किया करते हैं ॥ ३३ ॥

अपरे बाहुबलिनः कृतविद्या मनस्विनः ।
जुगुप्सितां सुकृपणां पापां वृत्तिमुपासते ॥ ३४ ॥

दूसरे बाहुबलशाली विद्वान् मनस्वी पुरुष भी अत्यन्त निन्दित पापकर्ममें अनुरक्त होते हैं, ॥३४॥

उत्सहन्ते च ते वृत्तिमन्यामप्युपसेवितुम् ।
स्वकर्मणा तु नियतं भवितव्यं तु तत्तथा ॥ ३५ ॥

वे लोग अत्यन्त घृणित नीच व्यवहार करनेमें भी उत्साह किया करते हैं । परंतु अपने कर्मके अनुसार जो होनेवाला है, वैसाही भविष्यमें होता है ॥ ३५ ॥

न पुल्कसो न चण्डाल आत्मानं त्यक्तुमिच्छति ।
असंतुष्टः स्वया योन्या मायां पश्यस्व यादृशीम् ॥ ३६ ॥

पुल्क–भंगी और चाण्डाल जातीय पुरुष भी मायाके प्रभावसे आत्मयोनिमेंही सन्तुष्ट रहके आत्मत्यागकी इच्छा नहीं करता; इसलिये मायाका कैसा प्रभाव है, इसे देखिये ॥ ३६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दृष्ट्वा कुणीन्पक्षहतान्मनुष्यानामयाविनः ।
सुसंपूर्णः स्वया योन्या लब्धलाभोऽसि काश्यप ॥ ३७ ॥

हे काश्यप ! विकल अंगवाले, पक्षाघातके कारण अर्द्धाङ्ग और रोगमें फंसे हुए मनुष्योंको देखकर, तुम निज जातिके बीच अपनेको सहजमेंही सब तरहसे नीरोग और परिपूर्ण अंगवाले हो; तुम अपनेको सुखी और लाभवान समझो ॥ ३७ ॥

यदि ब्राह्मण देहस्ते निरातङ्को निरामयः ।
अङ्गानि च समग्राणि न च लोकेषु धिक्कृतः ॥ ३८ ॥

हे ब्राह्मण ! तुम्हारा यह शरीर यदि निर्भय और रोगरहित रहे तथा सब अङ्ग विकल न हों, तो तुम जनसमाजमें निन्दित न होंगे ॥ ३८ ॥

न केनचित्प्रवादेन सत्येनैवापहारिणा ।
धर्मायोत्तिष्ठ विप्रर्षे नात्मानं त्यक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥

हे विप्रवर ! कोई जाति नाशकारी कलङ्क होनेपर भी जब आत्म परित्याग करना उचित नहीं है, तब किस कारण तुमने शरीर त्यागनेका सङ्कल्प किया है । तुम्हें आत्मत्याग करना योग्य नहीं है, तुम धर्मसाधनके लिये उठके खडे हो जाओ ॥ ३९ ॥

यदि ब्रह्मञ्शृणोष्येतच्छ्रद्दधासि च मे वचः ।
वेदोक्तस्य च धर्मस्य फलं मुख्यमवाप्स्यसि ॥ ४० ॥

हे ब्रह्मन् ! यदि तुम मेरा यह वचन सुनेंगे और इसमें श्रद्धा करेंगे, तो वेदमें कहे हुए धर्मके मुख्य फल पाओगे ॥ ४० ॥

स्वाध्यायमग्निसंस्कारमप्रमत्तोऽनुपालय ।
सत्यं दमं च दानं च स्पर्धिष्ठा मा च केनचित् ॥ ४१ ॥

तुम प्रमादरहित होके वेदाध्ययन, अग्निसंस्कार, सत्य वचन, इन्द्रिय दमन और दानधर्मका प्रतिपालन करो; किसीके साथ ईर्षा न करना ॥ ४१ ॥

ये केचन स्वध्ययनाः प्राप्ता यजनयाजनम् ।
कथं ते जातु शोचेयुर्ध्यायेयुर्वाप्यशोभनम् ॥ ४२ ॥

जो ब्राह्मण स्वाध्यायमें रत होके यजन-याजन आदि कर्मोंके अधिकारी हुए हैं, वे शोक क्यों करेंगे ? किस लियें ही अमङ्गल चिन्ता करनेमें रत होंगे ? ॥ ४२ ॥

इच्छन्तस्ते विहाराय सुखं महदवाप्नुयुः ।
उत जाताः सुनक्षत्रे सुतीर्थाः सुमुहूर्तजाः ॥ ४३ ॥

वे लोग यथा उचित यज्ञ आदिके जरिये समय बितानेकी इच्छा करके अत्यन्त सुखलाभ करेंगे । वे लोग शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें जन्म लेते हैं ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नक्षत्रेष्वासुरेष्वन्ये दुस्तीर्था दुर्मुहूर्तजाः
संपतन्त्यासुरीं योनिं यज्ञप्रसववर्जिताम् ॥ ४४ ॥

जो दूसरे लोग आसुर नक्षत्र, दुष्ट तिथि तथा अशुभ मुहूर्तमें उत्पन्न हुए हैं, वे यज्ञहीन और सन्तानरहित होके आसुरी योनिमें पडते हैं ॥ ४४ ॥

अहमासं पण्डितको हैतुको वेदनिन्दकः ।
आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम् ॥ ४५ ॥

मैं पूर्व जन्ममें पण्डित, तार्किक—पाखंडी और वेदनिन्दक था; पुरुषार्थरहित, तथा निरर्थक, कुतर्कविद्यामें अनुरक्त था ॥ ४५ ॥

हेतुवादान्प्रवदिता वक्ता संसत्सु हेतुमत् ।
आक्रोष्टा चाभिवक्ता च ब्रह्मयज्ञेषु वै द्विजान् ॥ ४६ ॥

सभाओंमें तर्क और युक्तियुक्त बातें बोलता था; वेदवचनमें और यज्ञकार्यमें अनादर प्रकाशित करके चीत्कारस्वरसे श्रद्धायुक्त ब्राह्मणोंको अतिक्रम करके वक्तृता करता था ॥ ४६ ॥

नास्तिकः सर्वशङ्की च मूर्खः पण्डितमानिकः ।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिः सृगालत्वं मम द्विज ॥ ४७ ॥

मैं नास्तिक, सबपर संदेह करनेवाला और पाण्डित्याभिमानी महामूर्ख था; हे द्विजवर! उसही फलके परिणाम बलसे मुझे यह शृगालत्व प्राप्त हुआ है; ॥ ४७ ॥

अपि जातु तथा तत्स्यादहोरात्रशतैरपि ।
यदहं मानुषीं योनिं सृगालः प्राप्नुयां पुनः ॥ ४८ ॥

मैं सियार होके अब सैंकडों दिन—रातोंतक साधन करके फिर वह मनुष्ययोनि पानेके लिये क्या उपाय कर सकूंगा ॥ ४८ ॥

संतुष्टश्चाप्रमत्तश्च यज्ञदानतपोरतिः ।
ज्ञेयज्ञाता भवेयं वै वर्ज्यवर्जयिता तथा ॥ ४९ ॥

जिससे मनुष्ययोनिमें सदा सन्तुष्ट, प्रमादरहित होकर यज्ञ दान और तपस्यामें रत रहके ज्ञेय पदार्थोंका ज्ञान और त्याज्य विषयोंको परित्याग करूंगा ॥ ४९ ॥

ततः स मुनिरुत्थाय काश्यपस्तमुवाच ह ।
अहो बतासि कुशलो बुद्धिमानिति विस्मितः ॥ ५० ॥

सियारका वचन समाप्त होनेपर काश्यप मुनिने विस्मययुक्त होके उठकर कहा— कैसा आश्चर्य है; तुम अत्यन्त निपुण वक्ता और बुद्धिमान् हो ॥ ५० ॥

समवैक्षत तं विप्रो ज्ञानदीर्घेण चक्षुषा ।
ददर्श चैनं देवानामिन्द्रं देवं शचीपतिम् ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणने ऐसा वचन कहके ज्ञानयुक्त नेत्रसे उस सियारकी ओर देखते ही, उसके रूपमें देवोंके देव शचीपति इन्द्रका दर्शन किया, ॥ ५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततः संपूजयामास काश्यपो हरिवाहनम् ।
अनुज्ञातश्च तेनाथ प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ ६३३५ ॥

अनन्तर द्विजवर काश्यपने देवराजकी भक्ति और श्रद्धाके सहित पूजा की और उनकी आज्ञासे निज आश्रममें प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ तिहत्तरवांअध्याय समाप्त ॥ १७३ ॥ ६३३५ ॥

: १७४ :

युधिष्ठिर उवाच—

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा तपस्तप्तं तथैव च ।
गुरूणां चापि शुश्रूषा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! यदि दान, यज्ञ, तपस्या, और गुरुसेवा कल्याणमय कर्म है, तो उसका फल होता ही होगा; उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः ।
स्व कर्म कलुषं कृत्वा क्लेशे महति धीयते ॥ २ ॥

भीष्म बोले— मन स्वयं काम, क्रोध आदि अनर्थके वशमें होकर पापमें प्रवृत्त होता है । और निज कर्मोंको पापयुक्त करके क्लेशदायक दुःखभोगका अधिकारी हुआ करता है ॥ २ ॥

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् ।
मृतेभ्यः प्रमृतं यान्ति दरिद्राः पापकारिणः ॥ ३ ॥

पाप करनेवाले दरिद्र पुरुष बार बार दुर्भिक्षसे दुर्भिक्ष, क्लेशसे क्लेश, भयसे भय और मरे हुओंसे भी अधिक मृतकतुल्य होते हैं ॥ ३ ॥

उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखम् ।
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनाढ्याः शुभकारिणः ॥ ४ ॥

श्रद्धावान्, दान्त, धनाढ्य और सत्कर्मोंमें रत, मनुष्य सदा उत्सवसे उत्सव, स्वर्गसे स्वर्ग और सुखसे अधिक सुखका लाभ किया करते हैं ॥ ४ ॥

व्यालकुञ्जरदुर्गेषु सर्पचोरभयेषु च ।
हस्तावापेन गच्छन्ति नास्तिकाः किमतः परम् ॥ ५ ॥

नास्तिकोंको दोनों हाथ बांधके दुष्ट हाथियोंके जरिये दुर्गम और सांप तथा चोर भयसे युक्त वनके बीच रखना उचित है; इसके अतिरिक्त उन लोगोंके लिये और कुछ शासन क्या हो सकता है ? ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रियदेवातिथेयाश्च वदान्याः प्रियसाधवः ।
क्षेम्यमात्मवतां मार्गमास्थिता हव्यदक्षिणम् ॥ ६ ॥

जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंके विषयमें प्रीति किया करते हैं, वे सब उदार पुरुष दान आदि कर्मोंकी अनुकूलताके कारण योगियोंके दाहिने हाथके समान कल्याणकारी देवयान मार्गमें निवास करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तद्विधास्ते मनुष्येषु येषां धर्मो न कारणम् ॥ ७ ॥

धान्यके बीच थोथा पौधा और पक्षियोंके बीच जैसे मशक निकृष्ट हैं, वैसेही जिन मनुष्योंका धर्मकर्ममें सुखकी आशा नहीं है, वे भी मनुष्योंके बीच निकृष्ट समझे जाते हैं ॥ ७ ॥

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ॥ ८ ॥

पुरुषके परम यत्नवान् होनेपर भी पूर्वकर्म उसका अनुसरण करता है; यदि वह शीघ्रतासे दौडता है, तो वह भी उसके पीछे तेजीके साथ जाता है; उसके सोनेपर उसका वह कर्म फल भी उसके सहित शयन करता है; प्राचीन कर्म जब जिस प्रकारसे किया जाता है, उसही समय वह उसी प्रकार फलदायक वा अफलदायक हुआ करता है ॥ ८ ॥

उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ।
करोति कुर्वतः कर्म छायेवानुविधीयते ॥ ९ ॥

जब वह खडा होता है, तो वह भी पास ही खडा रहता है; जब वह चलता है तो वह भी पीछे चलता है; कोई कार्य करते समय वह कर्म उसका साथी होता है; छायाके समान पीछे रहता है ॥ ९ ॥

येन येन यथा यद्यत्पुरा कर्म समाचितम् ।
तत्तदेव नरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना ॥ १० ॥

पहिले जिस-जिस तरहसे जो कर्म किये गये हैं; मनुष्य उसही आत्मकृत कर्मको उसही प्रकार सदा अकेला ही भोग किया करता है ॥ १० ॥

स्वकर्मफलविक्षिप्तं विधानपरिरक्षितम् ।
भूतग्राममिमं कालः समन्तात्परिकर्षति ॥ ११ ॥

निज कर्मफलका आश्रय स्वरूप पूर्वकर्मके कारण अदृष्टके जरिये परिरक्षित रहता है और अवसरपर यह काल सदा उसको प्राणियोंके पास आकर्षण करता है ॥ ११ ॥

अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।
स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥ १२ ॥

जैसे फूल और फल प्रेरणाके बिना निज समयको अतिक्रम नहीं करके वृक्षोंमें लग जाते हैं, पहलेके किये हुए कर्म भी अपने फलभोगके समयका उल्लंघन नहीं करते ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhuji Maharaj Nidhi Mumukshu Bhawan Varanasi. Digitized by eGangotri

संमानश्चावमानश्च लाभालाभौ क्षयोदयौ ।
प्रवृत्ता विनिवर्तन्ते विधानान्ते पुनः पुनः ॥ १३ ॥

मान-अवमान, लाभ-हानि, क्षय और उदय आदि प्राक्तन कर्मके भीतर बार बार प्रवृत्त और निवृत्त होते हैं ॥ १३ ॥

आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् ।
गर्भशय्यामुपादाय भुज्यते पौर्वदेहिकम् ॥ १४ ॥

दुःख अपने किये हुए कर्मोंका फल है और सुख भी पूर्वकृत कर्मोंका परिणाम है; जीव गर्भशय्यामें शयन करते हुए भी पूर्वदेह सम्बन्धीय आत्मकृत सुख-दुःखका भोग करता है ॥ १४ ॥

बालो युवा च वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥ १५ ॥

क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध, वह जो जिस अवस्थामें जो कुछ शुभाशुभ कर्म किया करता है, वह दूसरे जन्ममें उसही अवस्थामें उस कर्मका फल पाता है ॥ १५ ॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १६ ॥

जैसे बछडा हजार गऊके बीच निज जननीको खोज लेता है, वैसे ही पूर्वकर्म भी कर्त्ताका अनुगमन किया करता है ॥ १६ ॥

समुन्नमग्रतो वस्त्रं पश्चाच्छुध्यति कर्मणा ।
उपवासैः प्रतप्तानां दीर्घं सुखमनन्तकम् ॥ १७ ॥

जैसे वस्त्र पहले मलसे मलिन होके फिर क्षार आदिसे धोनेसे साफ होता है, उसी तरह विषयत्यागनिबन्धनसे तथा उपवासपूर्वक तपस्यासे लोगोंको अत्यन्त महान् अनन्त सुख मिलता है ॥ १७ ॥

दीर्घकालेन तपसा सेवितेन तपोवने ।
धर्मनिधूतपापानां संसिध्यन्ते मनोरथाः ॥ १८ ॥

तपोवनमें बहुत समयतक तपस्या करके तथा धर्मबलसे जिनके पाप धोये गये हैं, उन्हींके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ १८ ॥

शकुनीनामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके ।
पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः ॥ १९ ॥

जैसे आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके पदचिन्ह नहीं दीखते, ज्ञानवान् मनुष्योंकी गति भी वैसी ही है ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अलमन्यैरुपालम्भैः कीर्तिनैश्च व्यतिक्रमैः ।
पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ६३५५ ॥

दूसरोंके आक्षेप और अपराधवाक्यके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है; निपुणताके सहित अपने अनुरूप हितसाधन करना उचित है, ऐसा होनेसे ही प्रज्ञा और कल्याण लाभ हुआ करता है ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७४ ॥ ६३५५ ॥

: १७५ :

युधिष्ठिर उवाच—

कुतः सृष्टमिदं विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! यह स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलयकालमें किसमें जाके लयको प्राप्त होता है ? आप मुझसे वही कहिये ॥ १ ॥

ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः ।
सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः ॥ २ ॥

समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, पृथ्वी, अग्नि और पवनके सहित इस संसारको किसने बनाया है ? ॥ २ ॥

कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः ।
शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मावथो कथम् ॥ ३ ॥

सब जीव किस तरह उत्पन्न हुए हैं ? वर्णोंका विभाग किस प्रकार हुआ है ? सब वर्णोंके शौच तथा अशौच और धर्माधर्मकी विधि कैसी है ? ॥ ३ ॥

कीदृशो जीवतां जीवः क्व वा गच्छन्ति ये मृताः ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं सर्वं शंसतु नो भवान् ॥ ४ ॥

जीवोंका जीवात्मा कैसा है ? सब जीव मरनेपर कहां जाते हैं ? इस लोकसे परलोकमें कैसे जाना होता है ? आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ४ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भृगुणाभिहितं श्रेष्ठं भरद्वाजाय पृच्छते ॥ ५ ॥

भीष्म बोले—भरद्वाजके प्रश्नके अनुसार भृगु मुनिके कहे हुए उत्तम वचनके इस प्राचीन इतिहासको पुराने पण्डित लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कैलासशिखरे दृष्ट्वा दीप्यमानमिवौजसा।
भृगुं महर्षिमासीनं भरद्वाजोऽन्वपृच्छत ॥ ६ ॥

कैलास पर्वतके शिखरपर बैठे हुए महातेजस्वी दीप्यमान महर्षि भृगुका दर्शन करके भरद्वाज प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६ ॥

ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः।
सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः ॥ ७ ॥

समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, भूमि, अग्नि और पवनके सहित इस विश्वको किसने बनाया है ? ॥ ७ ॥

कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः।
शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मावथो कथम् ॥ ८ ॥

सब भूत किस प्रकार उत्पन्न हुए ? और वर्णोंका विभाग किस तरह हुआ है ? सब वर्णोंके शौच-अशौच और धर्माधर्मकी विधि कैसी है ? ॥ ८ ॥

कीदृशो जीवतां जीवः क्व वा गच्छन्ति ये मृताः।
परलोकमिमं चापि सर्वं शंसतु नो भवान् ॥ ९ ॥

जीवित लोगोंका जीवात्मा कैसा है ? सब जीव मरके ही कहां गमन करते हैं ? परलोक और इस लोकके विषय किस प्रकारके हैं ? आपही यह सब वर्णन करनेके योग्य हैं; इसलिये ऊपर कहे हुए सब विषयोंको वर्णन करिये ॥ ९ ॥

एवं स भगवान्पृष्टो भरद्वाजेन संशयम्।
महर्षिर्ब्रह्मसंकाशः सर्वं तस्मै ततोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

ब्रह्माके समान तेजस्वी ब्रह्मर्षि भगवान् भृगुने भरद्वाजके ऐसे संशययुक्त विषयोंको पूछनेपर उनसे सब विषय कहने लगे ॥ १० ॥

मानसो नाम विख्यातः श्रुतपूर्वो महर्षिभिः।
अनादिनिधनो देवस्तथाभेद्योऽजरामरः ॥ ११ ॥

पूर्वकालमें मानस नामसे प्रसिद्ध जिस पुरुषको महर्षियोंने सुना था, वह अनादि, अनन्त, अभेद्य, अजर और अमर है ॥ ११ ॥

अव्यक्त इति विख्यातः शाश्वतोऽथाक्षरोऽव्ययः।
यतः सृष्टानि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ १२ ॥

वही अव्यक्त रूपसे विख्यात, शाश्वत, अक्षर और अव्यय एक देवता है; जन्म विशिष्ट जीव इससे उत्पन्न होते और अन्तमें लीन हुआ करते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽसृजत्प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः ।
आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः ॥ १३ ॥

वही स्वयम्भू देव पहले महत् तत्त्वकी सृष्टि करता है; सर्व भूतोंको धारण करनेवाले भगवान्‌ने आकाशको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥

आकाशादभवद्वारि सलिलादग्निमारुतौ ।
अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन्मही ॥ १४ ॥

आकाशसे जल, जलसे अग्नि और वायुकी उत्पत्ति हुई; और अग्नि तथा वायुके मेलसे मही-मण्डल उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयंभुवा ।
तस्मात्पद्मात्समभवद्ब्रह्मा वेदमयो निधिः ॥ १५ ॥

अनन्तर स्वयम्भू मानसने एक तेजोमय दिव्य कमलकी सृष्टि की; उसही कमलसे वेद पूर्ण ऐश्वर्यनिधि ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत् ।
ब्रह्मा वै सुमहातेजा य एते पञ्च धातवः ॥ १६ ॥

आकाश आदि पञ्चभूतमयरूप और जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके आत्मा तथा उन भूतोंकी सृष्टि कर्ता वह महातेजस्वी ब्रह्मा उत्पन्न होते ही "सोहं" – यह वाक्य उच्चारण करनेसे अहङ्कार नामसे विख्यात हुए हैं ॥ १६ ॥

शैलास्तस्यास्थिसंज्ञास्तु मेदो मांसं च मेदिनी ।
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा ॥ १७ ॥

सब पर्वत जिनकी हड्डियां, पृथ्वी जिनका मेद और मांस है, सागर उनका रुधिर और आकाश पेट है ॥ १७ ॥

पवनश्चैव निःश्वासस्तेजोऽग्निर्निम्नगाः सिराः ।
अग्नीषोमौ तु चन्द्रार्कौ नयने तस्य विश्रुते ॥ १८ ॥

पवन निःश्वास, अग्नि तेज, नदियां शिरा, चन्द्रमा और सूर्य– जिन्हें अग्नि और सोम भी कहते हैं, उनके दोनों नेत्र कहके प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥

नभश्चोर्ध्वं शिरस्तस्य क्षितिः पादौ दिशो भुजौ ।
दुर्विज्ञेयो ह्यनन्तत्वात्सिद्धैरपि न संशयः ॥ १९ ॥

आकाशका उपरी भाग शिर, पृथ्वी दोनों चरण और सब दिशाएं उनके हाथ हुए हैं; वह अचिन्त्यस्वभाव ब्रह्मा सिद्धोंको भी निःसंदेह दुर्विज्ञेय हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स एव भगवान्विष्णुरनन्त इति विश्रुतः ।
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ॥ २० ॥

वही विश्वव्यापी भगवान् विष्णु अनन्त नामसे विख्यात हैं। सब भूतोंके आत्मभूत अहङ्कार तत्वमें जो स्थित हैं; उन्हें मन्द—मूढ पुरुष सहजमें जाननेमें समर्थ नहीं होते ॥ २० ॥

अहंकारस्य यः स्रष्टा सर्वभूतभवाय वै ।
यतः समभवद्विश्वं पृष्टोऽहं यदिह त्वया ॥ २१ ॥

वेही सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण अहङ्कारकी सृष्टि करनेवाले, जिनसे कि यह संसार उत्पन्न हुआ है; उसका विषय तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने तुमसे कहा ॥ २१ ॥

भरद्वाज उवाच—

गगनस्य दिशां चैव भूतलस्यानिलस्य च ।
कान्यत्र परिमाणानि संशयं छिन्धि मेऽर्थतः ॥ २२ ॥

भरद्वाज बोले— आकाश, दिशा, भूमि और वायुका क्या परिमाण है? पूरी रीतिसे उसे वर्णन करके मेरा संशय छेदन करिये ॥ २२ ॥

भृगुरुवाच—

अनन्तमेतदाकाशं सिद्धचारणसेवितम् ।
रम्यं नानाश्रयाकीर्णं यस्यान्तो नाधिगम्यते ॥ २३ ॥

भृगु बोले— हे तपोधन ! चौदहों भुवन परिपूरित, सिद्ध और चारणोंसे सेवित यह रमणीय आकाश अनन्त है; इसका अन्त नहीं मालूम होता ॥ २३ ॥

उर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न दृश्यतः ।
तत्र देवाः स्वयं दीप्ता भास्वराश्चाग्निवर्चसः ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वगति और अधोगतिके अनुसार दिनमें चन्द्रमा और रात्रिमें सूर्यदेव हमलोगोंके नेत्रोंसे नहीं दीखते; उस दृष्टिके अगोचर स्थानमें सूर्यके समान प्रकाशयुक्त अग्निके समान तेजस्वी स्वयं प्रकाशमान देवता लोग निवास करते हैं ॥ २४ ॥

ते चाप्यन्तं न पश्यन्ति नभसः प्रथितौजसः ।
दुर्गमत्वादनन्तत्वादिति मे विद्धि मानद ॥ २५ ॥

मानद ! वे तेजस्वी नक्षत्रस्वरूप देवता लोग भी दुर्गमत्व और अनन्तत्व निबन्धनसे आकाशका अन्त नहीं देख सकते। यह तुम मेरे समीप अच्छी तरह मालूम करो ॥ २५ ॥

उपरिष्टोपरिष्टात्तु प्रज्वलद्भिः स्वयंप्रभैः ।
निरुद्धमेतदाकाशमप्रमेयं सुरैरपि ॥ २६ ॥

उपरके सब प्रकाशित लोक भी स्वयं प्रकाशमान देवताओंके जरिये इस अप्रमेय आकाशमें रुके हुए हैं ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृथिव्यन्ते समुद्रास्तु समुद्रान्ते तमः स्मृतम् ।
तमसोऽन्ते जलं प्राहुर्जलस्यान्तेऽग्निरेव च ॥ २७ ॥

पृथ्वीके अन्तमें समुद्र हैं, समुद्रके अन्तमें अन्धकार है, अन्धकारके अन्तमें जल और जलके अन्तमें अग्नि है ॥ २७ ॥

रसातलान्ते सलिलं जलान्ते पन्नगाधिपः ।
तदन्ते पुनराकाशमाकाशान्ते पुनर्जलम् ॥ २८ ॥

इसी तरह रसातलके अन्तमें जल है; जलके अन्तमें नागराज शेष है; उसके अन्तमें फिर आकाश और आकाशके बाद फिर जल है ॥ २८ ॥

एवमन्तं भगवतः प्रमाणं सलिलस्य च ।
अग्निमारुततोयेभ्यो दुर्ज्ञेयं दैवतैरपि ॥ २९ ॥

इसी प्रकार भगवान्‌का, आकाशका, जलका और अग्नि—वायुका अन्त तथा परिमाण जानना देवताओंको भी दुर्ज्ञेय है ॥ २९ ॥

अग्निमारुततोयानां वर्णाः क्षितितलस्य च ।
आकाशसदृशा ह्येते भिद्यन्ते तत्त्वदर्शनात् ॥ ३० ॥

अग्नि, वायु, जल और पृथ्वीतलके रंगरूप आकाशसे गृहीत होते अर्थात् आकाशके समानही हैं; परन्तु तत्वदर्शन न मालूम होनेके कारण आकाशसे पृथक् मालूम होते हैं ॥ ३० ॥

पठन्ति चैव मुनयः शास्त्रेषु विविधेषु च ।
त्रैलोक्ये सागरे चैव प्रमाणं विहितं यथा ।
अदृश्याय त्वगम्याय कः प्रमाणमुदाहरेत् ॥ ३१ ॥

मुनिलोगोंने विविध शास्त्रोंमें इसी प्रकार तीन लोक और सागरके विषयमें निश्चित प्रमाण बताया है; अदृश्य और अगम्य परामात्माके विषयका प्रमाण कौन कह सकता है ? ॥३१॥

सिद्धानां देवतानां च यदा परिमिता गतिः ।
तदा गौणमनन्तस्य नामानन्तेति विश्रुतम् ।
नामधेयानुरूपस्य मानसस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥

देवताओं और सिद्धोंका ज्ञान तो परिमित ही है; तब अनन्त नामसे विख्यात नामहीके अनुरूप परमात्मा स्वरूप महात्मा मानसका अन्त किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? ॥३२॥

यदा तु दिव्यं तद्रूपं ह्रसते वर्धते पुनः ।
कोऽन्यस्तद्वेदितुं शक्यो योऽपि स्यात्तद्विधोऽपरः ॥ ३३ ॥

जब कि उस दिव्य रूपकी ह्रास और वृद्धि होरही है, तब उससे भिन्न दूसरा कौन उसके समान प्रतिभाशाली पुरुष उसके स्वरूपका यथार्थ परिमाण जाननेमें समर्थ होगा ? ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः पुष्करतः सृष्टः सर्वज्ञो मूर्तिमान्प्रभुः ।
ब्रह्मा धर्ममयः पूर्वः प्रजापतिरनुत्तमः ॥ ३४ ॥

जो हो, उस स्थूल सूक्ष्म कार्य रूप पुष्करसे पहिले सर्वज्ञ, मूर्त्तिमान्, सर्वशक्तिमान्, धर्ममय, परम श्रेष्ठ तथा प्रथम प्रजापति सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं ॥ ३४ ॥

भरद्वाज उवाच—

पुष्कराद्यदि संभूतो ज्येष्ठं भवति पुष्करम् ।
ब्रह्माणं पूर्वजं चाह भवान्संदेह एव मे ॥ ३५ ॥

भरद्वाज बोले— ब्रह्मा यदि पुष्करसे उत्पन्न हुए तो पुष्कर उनसे ज्येष्ठ प्रतीत हुआ; परन्तु आप ब्रह्माको पूर्वज कहते हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह होता है ॥ ३५ ॥

भृगुरुवाच—

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता ।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥ ३६ ॥

भृगु बोले— मानसकी जो मूर्त्ति ब्रह्मरूपसे विख्यात हुई है, उसही ब्रह्माके आसन विधानके लिये मानस पृथ्वीही पद्म रूपसे कही गई है; अर्थात् स्थूल सृष्टिके पहिले सूक्ष्म रूपसे जो मानस सृष्टि हुई थी, उस सूक्ष्म सृष्टिके अनन्तर दृश्यमान स्थूल जगत्की सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ३६ ॥

कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः ।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान्सृजते जगतः प्रभुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ६३९२ ॥

जो हो, आकाश पर्यन्त ऊंचा सुमेरु पर्वत उस मानस पद्मकी कर्णिका स्वरूप है; जगत्-प्रभु प्रजापति उसके बीच निवास करते हुए सब लोगोंकी सृष्टि करते हैं ॥ ३७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ पचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७५ ॥ ६३९२ ॥

: १७६ :

भरद्वाज उवाच—

प्रजाविसर्गं विविधं कथं स सृजते प्रभुः ।
मेरुमध्ये स्थितो ब्रह्मा तद्ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले— हे द्विजसत्तम! मेरुके बीच निवास करते हुए सर्वशक्तिमान् ब्रह्मा किस प्रकार विविध प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसे वर्णन करिये ॥ १ ॥

भृगुरुवाच—

प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसासृजत् ।
संधुक्षणार्थं भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम् ॥ २ ॥

भृगु बोले— मानसने पहिले अपने मनके संकल्पसे विविध प्रजाकी सृष्टि की थी; जीवोंकी रक्षाके लिये सबसे पहिले जलकी सृष्टि हुई ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्प्राणाः सर्वभूतानां वर्धन्ते येन च प्रजाः ।
परित्यक्ताश्च नश्यन्ति तेनेदं सर्वमावृतम् ॥ ३ ॥

जो कि सब जीवोंका प्राण स्वरूप है; जिससे सब प्रजाकी बढती होती है और जिसे परित्याग करनेसे सब कोई नष्ट हुआ करते हैं; उसही जलसे यह समस्त जगत् घिरा हुआ है– व्याप्त किया है ॥ ३ ॥

पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमन्तश्च ये परे ।
सर्वं तद्वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तम्भिरे पुनः ॥ ४ ॥

पृथ्वी, पर्वत, बादल और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो सब विग्रहविशिष्ट वस्तु हैं, वे सबही जल सम्बन्धी हैं; क्योंकि इसे जानना चाहिये कि, जलही घन होकर पृथ्वी आदि रूपसे परिणत हुआ है ॥ ४ ॥

भरद्वाज उवाच—

कथं सलिलमुत्पन्नं कथं चैवाग्निमारुतौ ।
कथं च मेदिनी सृष्टेत्यत्र मे संशयो महान् ॥ ५ ॥

भरद्वाज बोले– किस प्रकार जल उत्पन्न हुआ ? किस तरह अग्नि और वायु प्रकट हुए ? पृथ्वीकी भी किस प्रकार उत्पत्ति हुई ? इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह है ॥ ५ ॥

भृगुरुवाच –

ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन्ब्रह्मर्षीणां समागमे ।
लोकसंभवसंदेहः समुत्पन्नो महात्मनाम् ॥ ६ ॥

भृगु बोले– हे ब्रह्मन् ! पहिले समय सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मर्षियोंका एक स्थानमें समागम हुआ; उन महात्मा लोगोंके अन्तःकरणमें सर्वलोक उत्पत्तिविषयक सन्देह उत्पन्न हुआ था ॥ ६ ॥

तेऽतिष्ठन्ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थाय निश्चलाः ।
त्यक्ताहाराः पवनपा दिव्यं वर्षशतं द्विजाः ॥ ७ ॥

उन सब ब्रह्मर्षियोंने निश्चल और निराहारी होकर वायुभक्षण करते हुए मौनी होके तथा ध्यान अवलम्बन करके दैव परिमाणसे एकसौ वर्ष पर्यन्त वहां निवास किया ॥ ७ ॥

तेषां धर्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत् ।
दिव्या सरस्वती तत्र संबभूव नभस्तलात् ॥ ८ ॥

उस अवस्थामें धर्ममयी वाणी सबके ही श्रवणगोचर हुई । अनन्तर वहां आकाशसे दिव्य-सरस्वती प्रकट हुई ॥ ८ ॥

पुरा स्तिमितनिःशब्दमाकाशमचलोपमम् ।
नष्टचन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव संबभौ ॥ ९ ॥

सृष्टिके पहिले यह अनन्त आकाश पर्वतकी तरह निश्चल था; उसमें चन्द्रमा, सूर्य और वायुके दर्शन नहीं होते थे; इससे यह प्रसुप्तकी भांति प्रकाशित होता था ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri Collection. Digitized by eGangotri

ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीवापरं तमः ।
तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः ॥ १० ॥

तमोराशिके बीच दूसरे अन्धकारके प्रवेशकी तरह उस आकाशसे जल उत्पन्न हुआ; जल संघर्षसे वायु प्रकट हुआ ॥ १० ॥

यथा भाजनमच्छिद्रं निःशब्दमिव लक्ष्यते ।
तच्चाम्भसा पूर्यमाणं सशब्दं कुरुतेऽनिलः ॥ ११ ॥

छिद्ररहित पात्र निःशब्दसा जान पडता है, परन्तु छिद्रवाला पात्र जलसे भरा जानेपर वायु उसे शब्दयुक्त करता है ॥ ११ ॥

तथा सलिलसंरुद्धे नभसोऽन्ते निरन्तरे ।
भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान् ॥ १२ ॥

इस प्रकार जलसे पूर्णनिरवकाश आकाशके बीच शब्दयुक्त वायु सागर तलको भेदते हुए उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

स एष चरते वायुरर्णवोत्पीडसंभवः ।
आकाशस्थानमासाद्य प्रशान्तिं नाधिगच्छति ॥ १३ ॥

उसही जलसंघर्षणसे उत्पन्न हुआ यह वायु बह रहा है; आकाशको आश्रय करनेकी अवधिसे कभी प्रशान्त नहीं होता ॥ १३ ॥

तस्मिन्वाय्वम्बुसंघर्षे दीप्ततेजा महाबलः ।
प्रादुर्भवत्यूर्ध्वशिखः कृत्वा वितिमिरं नभः ॥ १४ ॥

वायु और जलके संघर्षणसे दीप्ततेजोमय उर्ध्वशिखा महाबलवान् अग्नि आकाश–मण्डलके अंधकारको प्रकाशित करती हुई प्रकट हुई ॥ १४ ॥

अग्निः पवनसंयुक्तः खात्समुत्पतते जलम् ।
सोऽग्निर्मारुतसंयोगाद्घनत्वमुपपद्यते ॥ १५ ॥

वायुके संयोगसे अग्नि जलको आकाशमें उछालने लगी; फिर वही जल अग्नि और वायुके संयोगसे घनीभूत हो गया ॥ १५ ॥

तस्याकाशे निपतितः स्नेहस्तिष्ठति योऽपरः ।
स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमुपगच्छति ॥ १६ ॥

उसके आकाशसे गिरते रहने पर उसका जो स्नेहभाग था, वही घनीभूत होकर पृथ्वीरूपसे परिणत हुआ ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रसानां सर्वगन्धानां स्नेहानां प्राणिनां तथा ।
भूमिर्योनिरिह ज्ञेया यस्यां सर्वं प्रसूयते ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ६४०९ ॥

भूमि ही समस्त रस, गन्ध, स्नेह और प्राणियोंकी योनि है, भूमिसे ही सब उत्पन्न होती हैं ॥ १७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७६ ॥ ६४०९ ॥

: १७७ :

भरद्वाज उवाच—

एते ते धातवः पञ्च ब्रह्मा यानसृजत्पुरा ।
आवृता यैरिमे लोका महाभूताभिसंज्ञितैः ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले— प्रजापतिने जो पहिले पांच धातुओंको निर्माण किया, जो महाभूतके नामसे कहे जाते हैं; इनके जरिये ही ये सब लोक घिरे हुए हैं ॥ १ ॥

यदासृजत्सहस्राणि भूतानां स महामतिः ।
पञ्चानामेव भूतत्वं कथं समुपपद्यते ॥ २ ॥

और उन महाबुद्धिमान् ब्रह्माने जब सहस्रों भूतोंकी सृष्टि की है; तब आकाश आदि इन पांचोंकी ही महाभूत नामसे प्रसिद्धी क्यों हुई ? यह कैसे युक्तियुक्त है ? ॥ २ ॥

भृगुरुवाच—

अमितानां महाशब्दो यान्ति भूतानि संभवम् ।
ततस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते ॥ ३ ॥

भृगु बोले— अपरिमित पदार्थके पहले ही महत् शब्दका योग होता है और ये पांच अपरिमित पदार्थ ही भूत नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं; इन्हींसे भूतोंकी उत्पत्ति होती है; इस ही कारण आकाश आदिकोंका महाभूत नाम युक्तियुक्त होता है ॥ ३ ॥

चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः ।
पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥ ४ ॥

चेष्टात्मक वायु, श्रोत्रात्मक—खोखलापन आकाश, उष्णात्मक अग्नि, द्रवमय जल और अस्थिमांसमय कठिनात्मक पृथ्वी है, इन पञ्चमहाभूतोंके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

इत्येतैः पञ्चभिर्भूतैर्युक्तं स्थावरजङ्गमम् ।
श्रोत्रं घ्राणं रसः स्पर्शो दृष्टिश्चेन्द्रियसंज्ञिताः ॥ ५ ॥

इस प्रकार स्थावर—जङ्गम सब पदार्थही इन पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं; कान, नाक, जीभ, त्वचा और नेत्र इन पांचोंका नाम इन्द्रिय है ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भरद्वाज उवाच—

पञ्चभिर्यदि भूतैस्तु युक्ताः स्थावरजङ्गमाः ।
स्थावराणां न दृश्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः ॥ ६ ॥

भरद्वाज बोले—स्थावर-जङ्गम सब पदार्थ ही यदि पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं, तो स्थावरोंके शरीरोंमें पञ्चभूत नहीं दीखायी देते हैं ॥ ६ ॥

अनूष्मणामचेष्टानां घनानां चैवं तत्त्वतः ।
वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः ॥ ७ ॥

ऊष्माभावनिबन्धन निरग्नि और चलनेसे रहित होनेसे चेष्टा हीन, प्रकृत रूपसे निबिड संयोगविशिष्ट वृक्षोंके शरीरमें पञ्चभूत नहीं दीख पडते ॥ ७ ॥

न शृण्वन्ति न पश्यन्ति न गन्धरसवेदिनः ।
न च स्पर्शं विजानन्ति ते कथं पाञ्चभौतिकाः ॥ ८ ॥

जिन्हें सुनने, देखने, सूंघने, चखने और स्पर्श करनेकी शक्ति तथा ज्ञान नहीं है, फिर वे किस प्रकार पाञ्चभौतिक होंगे ? ॥ ८ ॥

अद्रवत्वादनग्नित्वादभौमत्वादवायुतः ।
आकाशस्याप्रमेयत्वाद्वृक्षाणां नास्ति भौतिकम् ॥ ९ ॥

जो द्रव पदार्थ नहीं हैं, जिनमें अग्नि, भूमि और वायु नहीं है तथा जिनमें अप्रमेय आकाश नहीं मालूम होता; उन वृक्षोंमें भौतिकत्व सम्भव नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

भृगुरुवाच—

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः ।
तेषां पुष्पफले व्यक्तिर्नित्यं समुपलभ्यते ॥ १० ॥

भृगु बोले—वृक्षोंके निबिडसंयोगविशिष्ट होने पर भी उनमें निःसन्देह आकाश है, क्योंकि सदाही उनमें फूल और फल प्रकाशित होते हैं ॥ १० ॥

ऊष्मतो ग्लानपर्णानां त्वक्फलं पुष्पमेव च ।
म्लायते चैव शीतेन स्पर्शस्तेनात्र विद्यते ॥ ११ ॥

उष्णताके कारण उनके पत्ते, छाल, फल और पुष्प मलिन होते हैं; जाडेसे मुरझाते हैं; इससे उनमें स्पर्शका होना सिद्ध होता है ॥ ११ ॥

वाय्वग्न्यशनिनिष्पेषैः फलपुष्पं विशीर्यते ।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः ॥ १२ ॥

अग्नि, वायु और बिजलीके भीषण शब्दसे वृक्षोंके फल, फूल झडकर गिरते हैं, इससे जबकि श्रोत्रसे शब्दका ज्ञान होता है, तब अवश्य ही वे वृक्ष भी सुनते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति ।
न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः ॥ १३ ॥

जबकि लता वृक्षमें लपटती और सब ओर ऊपरी भागतक गमन किया करती है; तब वृक्षोंको अवश्यही दर्शनशक्तिसे युक्त कहना पडेगा; क्योंकि दर्शन शक्तिसे हीनको गमन करनेकी सम्भावना नहीं रहती ॥ १३ ॥

पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि ।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥ १४ ॥

पवित्र और अपवित्र गन्ध और अनेक तरहके धूपोंके गन्धसे वृक्ष रोगरहित होकर पुष्पित तथा फलित हुआ करते हैं, इससे वे अवश्यही सूंघते हैं ॥ १४ ॥

पादैः सलिलपानं च व्याधीनामपि दर्शनम् ।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे ॥ १५ ॥

जडसे वृक्ष जल पीते हैं, व्याधि और उसकी प्रतिक्रिया दर्शन–निबन्धनसे यह स्वीकार करना पडेगा, कि वृक्षोंमें चखनेकी शक्ति है, उनमें रसनेन्द्रिय है ॥ १५ ॥

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत् ।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः ॥ १६ ॥

वक्त्र, उत्पलमृणालसे जैसे मनुष्य ऊपरको जल खींचता हैं, वैसेही वृक्ष वायुसे संयुक्त होकर मूलके जरिये जल खींचकर पीता है ॥ १६ ॥

ग्रहणात्सुखदुःखस्य छिन्नस्य च विरोहणात् ।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

वृक्षोंको सुख–दुःखका ज्ञान है, उसे वे ग्रहण करते हैं और वृक्ष कट जानेसे फिर नये अंकुरकी उत्पत्ति होती है, इससे मैं देखता हूं, कि उनमें जीवन है; इसलिये यह नहीं कह सकते कि वृक्षोंमें चैतन्यता नहीं है ॥ १७ ॥

तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ ।
आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते ॥ १८ ॥

वृक्ष जो जल अपने मूलसे खींचता है, उसके अंदरकी अग्नि और वायु उसे जीर्ण किया करते हैं; उनके आहारके परिमाण अनुसार वृक्षमें स्निग्धता आती है और उनकी वृद्धि होती है ॥१८॥

जङ्गमानां च सर्वेषां शरीरे पञ्च धातवः ।
प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यैः शरीरं विचेष्टते ॥ १९ ॥

सब जङ्गम पदार्थोंके शरीरोंमें पञ्चभूत संयुक्त हैं, तथापि वहां उनके स्वरूपमें भेद होता है; उन पांच भूतोंके सहयोगसे सब शरीरमें चेष्टा उत्पन्न होती है ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वक्च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायु च पञ्चमम् ।
इत्येतदिह संख्यातं शरीरे पृथिवीमयम् ॥ २० ॥

त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा और स्नायु, ये पांचों पार्थिव पदार्थ संहतरूपसे शरीरमें विद्यमान हैं ॥ २० ॥

तेजोऽग्निश्च तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च ।
अग्निर्जरयते चापि पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः ॥ २१ ॥

देहधारी प्राणियोंके शरीरमें अग्निस्वरूप तेज, क्रोध, नेत्र, ऊष्मा और जठराग्नि जो कि सब भक्ष्य वस्तुओंको परिपाक करती है, ये पांचो आग्नेय पदार्थ हैं ॥ २१ ॥

श्रोत्रं घ्राणमथास्यं च हृदयं कोष्ठमेव च ।
आकाशात्प्राणिनामेते शरीरे पञ्च धातवः ॥ २२ ॥

कान, नाक, मुख, हृदय और कोठे अर्थात् अन्न आदिके स्थान, ये पांच धातुमय खोखलापन प्राणियोंके शरीरमें आकाशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥

श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च ।
इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा ॥ २३ ॥

कफ, पित्त, पसीना, चर्बी और रुधिर, ये पांचों जलके अंश प्राणियोंके शरीरमें सदा स्थित रहते हैं ॥ २३ ॥

प्राणात्प्रणीयते प्राणी व्यानाद्व्यायच्छते तथा ।
गच्छत्यपानोऽवाक्चैव समानो हृव्यवस्थितः ॥ २४ ॥

प्राणी प्राणवायुके आसरे गमन आदि कार्य करता है, व्यानवायुको अवलम्बन करके बलसाध्य कार्योंके लिये तैयार होता है, अपान वायु अधोगमन करता है, समान वायु हृदयमें स्थित रहता है ॥ २४ ॥

उदानादुच्छ्वसिति च प्रतिभेदाच्च भाषते ।
इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनम् ॥ २५ ॥

और उदान वायुसे उच्छ्वास लेता है, और कण्ठ, ताल और शिरस्थानको भेदकर शब्दोंका उच्चारण होता है । ये पांचो प्रकारकी वायु इसी भांति प्राणियोंकी अंगचालन आदि चेष्टा सिद्ध करती है ॥ २५ ॥

भूमेर्गन्धगुणान्वेत्ति रसं चाद्भ्यः शरीरवान् ।
ज्योतिः पश्यति चक्षुभ्यां स्पर्शं वेत्ति च वायुना ॥ २६ ॥

शरीरधारी जीवको भूमिसे गन्ध,जलसे रस, नेत्रोंसे तेज और वायुसे स्पर्शज्ञान हुआ करता है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य गन्धस्य वक्ष्यामि विस्ताराभिहितान्गुणान् ।
इष्टश्चानिष्टगन्धश्च मधुरः कटुरेव च ॥ २७ ॥

उनके बीच गन्धके गुणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन हूं; इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, ॥ २७ ॥

निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च ।
एवं नवविधो ज्ञेयः पार्थिवो गन्धविस्तरः ॥ २८ ॥

दूरगामी, तेज, स्निग्ध, रूखा और विशद,– ये गन्धके नौ प्रकार जानने चाहिये; यह पार्थिव गन्धका विस्तार है ॥ २८ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसश्चापां गुणाः स्मृताः ।
रसज्ञानं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २९ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप और रस– ये चारों जलके गुण माने गये हैं; इनमें जिस तरह रसज्ञान हुआ करता है, उसे कहता हूं, सुनो ॥ २९ ॥

रसो बहुविधः प्रोक्तः सूरिभिः प्रथितात्मभिः ।
मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा ।
एष षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः ॥ ३० ॥

विख्यात विद्वान् महर्षियोंने रसको अनेक प्रकारका कहा है; मीठा, खारा, तीखा, कषैला, खट्टा और कडुवा– ये छः तरहके रस जलमय कहके प्रसिद्ध हैं ॥ ३० ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते ।
ज्योतिः पश्यति रूपाणि रूपं च बहुधा स्मृतम् ॥ ३१ ॥

शब्द, स्पर्श और रूप– ये तीनों अग्निके गुण बताये हैं; ज्योतिके जरिये वस्तुका रूप देखा जाता है । रूप भी अनेक प्रकारका माना गया है ॥ ३१ ॥

ह्रस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्चतुरस्रोऽणु वृत्तवान् ।
शुक्लः कृष्णस्तथा रक्तो नीलः पीतोऽरुणस्तथा ।
एवं द्वादशविस्तारो ज्योतीरूपगुणः स्मृतः ॥ ३२ ॥

ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, अणु, गोलाकार, सफेद, काला, लाल, नीला, पीला, अरुण– ये बारह तरहके रूपके गुण ज्योतिर्मय कहके विख्यात हैं ॥ ३२ ॥

शब्दस्पर्शौ तु विज्ञेयौ द्विगुणो वायुरुच्यते ।
वायव्यस्तु गुणः स्पर्शः स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः ॥ ३३ ॥

शब्द और स्पर्श– ये दोनों वायुके गुण जानने चाहिये; वायुका प्रमुख गुण स्पर्श है, उसमें स्पर्शके अनेक प्रकार माने गये हैं । कठिन, चिकना, अल्प, पिच्छल, मृदु, दारुण, ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कठिनश्चिक्कणः श्लक्ष्णः पिच्छलो मृदुदारुणः ।
उष्णः शीतः सुखो दुःखः स्निग्धो विशद एव च ।
एवं द्वादशविस्तारो वायव्यो गुण उच्यते ॥ ३४ ॥

गर्म, ठण्डा, सुखदायक, दुःखदायक, स्निग्ध और विशद– ये बारह प्रकार वायुके गुण हैं ॥३४॥

तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव तत्स्मृतम् ।
तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरं विविधात्मकम् ॥ ३५ ॥

आकाशका एक ही गुण केवल शब्द माना गया है; उस शब्द गुणका अनेक भेदोंमें विस्तार हुआ है, उसे कहता हूं, सुनो ॥ ३५ ॥

षड्ज ऋषभगान्धारौ मध्यमः पञ्चमस्तथा ।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः ॥ ३६ ॥

षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद– ये गुण जानने चाहिये ॥ ३६ ॥

एष सप्तविधः प्रोक्तो गुण आकाशलक्षणः ।
त्रैस्वर्येण तु सर्वत्र स्थितोऽपि पटहादिषु ॥ ३७ ॥

ये सात प्रकारके गुण आकाशके लक्षण होते हैं; ये सब शब्द व्यापकभावसे सर्वत्र रहनेपर भी पटह आदि वाद्ययन्त्रोंमें विशेषरूपसे तीन स्वरोंमें मालूम हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥

आकाशजं शब्दमाहुरेभिर्वायुगुणैः सह ।
अव्याहतैश्चेतयते न वेत्ति विषमागतैः ॥ ३८ ॥

पण्डित लोग वायु सम्बंधी गुणोंके साथ ही आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति कहा करते हैं । ये सब शब्द स्पर्शसे प्रतिहत होकर बीच तरङ्गकी तरह उत्पन्न होते हैं और विषम अवस्थामें रहनेसे वे मालूम नहीं होते ॥ ३८ ॥

आप्यायन्ते च ते नित्यं धातवस्तेस्तु धातुभिः ।
आपोऽग्निर्मारुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥ ६४४८ ॥

देहारम्भक त्वक् आदि, प्राण और इन्द्रियोंके जरिये प्रथमसे ही बढते रहते हैं । जल, अग्नि और वायु– ये तीन तत्त्व सदा देहधारियोंमें जागृत रहते हैं ॥ ३९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥ ६४४८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: १७८ :

भरद्वाज उवाच—

पार्थिवं धातुमाश्रित्य शारीरोऽग्निः कथं भवेत् ।
अवकाशविशेषेण कथं वर्तयतेऽनिलः ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले— हे भगवन् ! शरीरमें स्थित अग्नि इस पाञ्चभौतिक देहको अवलम्बन करते हुए किस प्रकार निवास करती है और वायुही किस प्रकार आकाश विशेषके जरिये सब शारीरिक चेष्टाओंको समाधान किया करता है ? ॥ १ ॥

भृगुरुवाच —

वायोर्गतिमहं ब्रह्मन्कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ।
प्राणिनामलिनो देहान्यथा चेष्टयते बली ॥ २ ॥

भृगु बोले— हे ब्रह्मन् ! अनघ ! मैं तुम्हारे समीप वायुकी गतिका विषय कहता हूं; प्रबल वायु किस प्रकार प्राणियोंके शरीरोंको चेष्टाशील बनाता है, उसका विषय सुनो ॥ २ ॥

श्रितो मूर्धानमग्निस्तु शरीरं परिपालयन् ।
प्राणो मूर्धनि चाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते ॥ ३ ॥

अग्नि मस्तकमें निवास करके शरीरको पालती हुई, शारीरिक चेष्टाओंको समाधान करती है और प्राणवायु मस्तक और अग्नि दोनोंमें वर्त्तमान रहके शरीरके गमन आदि कार्योंको सिद्ध किया करता है ॥ ३ ॥

स जन्तुः सर्वभूतात्मा पुरुषः स सनातनः ।
मनो बुद्धिरहंकारो भूतानि विषयाश्च सः ॥ ४ ॥

वह प्राणसे संयुक्त आत्मा ही जीव है, वही सर्वभूतमय सनातन पुरुष है; वही मन, बुद्धि, अहङ्कार, सब भूत और शब्द स्पर्शरूपी विषयोंके स्वरूप है ॥ ४ ॥

एवं त्विह स सर्वत्र प्राणेन परिपाल्यते ।
पृष्ठतश्च समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः ॥ ५ ॥

आन्तरिक विज्ञान और बाह्य इन्द्रिय आदि प्राणसेही परिचालित होते हैं । अनन्तर समान वायुके जरिये इन्द्रिय आदि निज निज गतिको अवलम्बन करता है ॥ ५ ॥

वस्तिमूलं गुदं चैव पावकं च समाश्रितः ।
वहन्मूत्रं पुरीषं चाप्यपानः परिवर्तते ॥ ६ ॥

अपान वायु जठराग्निको अवलम्बन करके मूत्राशय और पुरीषाशयमें स्थित असित पीत वस्तुओंको परिपाक करके मूत्र और पुरीषको निकालता हुआ ऊपरसे नीचेको घूमता है ॥ ६ ॥

प्रयत्ने कर्मणि बले य एकस्त्रिषु वर्तते ।
उदान इति तं प्राहुरध्यात्मविदुषो जनाः ॥ ७ ॥

गमन आदिके कार्य, उसके अनुकूल चेष्टा और बोझा ढोनेकी सामर्थ, इन तीनों विषयोंमें जो वायु वर्त्तमान रहती है, अध्यात्मवित् पुरुष उसे उदान वायु कहा करते हैं ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संधिष्वपि च सर्वेषु संनिविष्टस्तथानिलः ।
शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते ॥ ८ ॥

मनुष्योंके शरीरोंमें तथा उनकी सब सन्धियोंमें जो वायु संयुक्त है, उसे व्यान वायु कहा जाता है ॥ ८ ॥

धातुष्वग्निस्तु विततः समानेन समीरितः ।
रसान्धातूंश्च दोषांश्च वर्तयन्नवतिष्ठति ॥ ९ ॥

त्वक् आदि शरीरके धातुओंमें फैली हुई जठराग्नि समान वायुमे सञ्चालित होती है; रस, धातु, रुधिर और पित्त आदिकी परिणति करती हुई शरीरमें स्थित है ॥ ९ ॥

अपानप्राणयोर्मध्ये प्राणापानसमाहितः ।
समन्वितः स्वधिष्ठानः सम्यक्पचति पावकः ॥ १० ॥

यह जठराग्नि नाभीके नीचे स्थित होकर अपनी ऊर्ध्वगतिको प्राणके मध्यस्थलमें स्थित करके उसकी सहायतासे अन्न आदि परिपाक करती है ॥ १० ॥

आस्यं हि पायुसंयुक्तमन्ते स्यादुगुदसंज्ञितम् ।
स्रोतस्तस्मात्प्रजायन्ते सर्वस्रोतांसि देहिनाम् ॥ ११ ॥

मुखसे पायु (गुदा) पर्यन्त एक प्रवाहवान् स्रोत है, वही शेषमें गुदाका स्थान है । उस स्रोतसे चारों ओरसे देहके बीच असंख्य नदियां विस्तीर्ण होरही है ॥ ११ ॥

प्राणानां संनिपाताच्च संनिपातः प्रजायते ।
ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम् ॥ १२ ॥

प्राणवायुकी सहायतासे उसकी सहचर जठराग्निका समागम हुआ करता है; उस जठराग्निका नाम ऊष्मा है; यही देहधारियोंके भुक्त अन्न आदिको परिपाक करती है ॥ १२ ॥

अग्निवेगवहः प्राणो गुदान्ते प्रतिहन्यते ।
स ऊर्ध्वमागम्य पुनः संमुत्क्षिपति पावकम् ॥ १३ ॥

जठराग्निके वेगसे बहनेवाला प्राणवायु गुदा तक आके प्रतिघातको प्राप्त होता है । तब वह फिर ऊपरको आके जठराग्निको सब तरहसे उत्क्षिप्त करता है ॥ १३ ॥

पक्वाशयस्त्वधो नाभेरूर्ध्वमामाशयः स्थितः ।
नाभिमध्ये शरीरस्य सर्वे प्राणाः समाहिताः ॥ १४ ॥

नाभीके नीचे पक्वाशय अर्थात् पक्वअन्न आदिकोंका स्थान है और ऊपरके हिस्सेमें आमाशय स्थित है; नाभिके मध्य स्थलमें शरीर सम्बन्धी समस्त प्राण स्थित होरहे हैं ॥ ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रसृता हृदयात्सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।
वहन्त्यन्नरसान्नाड्यो दश प्राणप्रचोदिताः ॥ १५ ॥

प्राण आदि पञ्च वायु और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय नाम पञ्चवायु, इन दस प्रकारके वायुके सहारे चलकर सब नाडियां तिर्यग्, ऊर्ध्व और अधोभाग हृदय प्रदेशमें प्रस्थान करती हुई अन्नके रसोंको ढोया करती हैं ॥ १५ ॥

एष मार्गोऽथ योगानां येन गच्छन्ति तत्पदम् ।
जितक्लमासना धीरा मूर्धन्यात्मानमादधुः ॥ १६ ॥

मुखसे गुदातक जो स्रोत है, वही योगियोंके योगका पथ है; क्लान्तिविजयी, सुख–दुःखको समान जाननेवाले धीर लोग मस्तकस्थित सहस्र दल पद्ममें सुषुम्ना नाडीके जरिये इसही मार्गमें आत्माको धारण करते हुए परम पद लाभ करते हैं ॥ १६ ॥

एवं सर्वेषु विहितः प्राणापानेषु देहिनाम् ।
तस्मिन्स्थितो नित्यमग्निः स्थाल्यामिव समाहितः ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥ ६४६५ ॥

स्थालीमें रखी हुई बाह्य अग्निकी तरह देहधारियोंकी बुद्धि, मन, कर्मेन्द्रिय और प्राण अपानके जरिये समर्पित जठराग्नि सदा प्रदीप्त हुआ करती है ॥ १७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७८ ॥ ६४६५ ॥

: १७९ :

भरद्वाज उवाच—

यदि प्राणायते वायुर्वायुरेव विचेष्टते ।
श्वसित्याभाषते चैव तस्माज्जीवो निरर्थकः ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले– प्राणवायुही यदि प्राणियोंको जीवित और चेष्टायुक्त करती है और प्राणकी सहायतासेही यदि सब जीव श्वास छोडते और वार्त्तालाप किया करते हैं, तब शरीरमें जीवकी सत्ता स्वीकार करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १ ॥

यद्यूष्मभाव आग्नेयो वह्निना पच्यते यदि ।
अग्निर्जरयते चैव तस्माज्जीवो निरर्थकः ॥ २ ॥

और अग्निका गुण उष्ण भाव है, उस अग्निके जरिये ही यदि अन्न आदि परिपाक होते और अग्निही यदि सब वस्तुओंको जीर्ण करती है, तब जीवकी सत्ता निरर्थक है ॥ २ ॥

जन्तोः प्रमीयमाणस्य जीवो नैवोपलभ्यते ।
वायुरेव जहात्येनमूष्मभावश्च नश्यति ॥ ३ ॥

मरे हुए प्राणीमें जीव नहीं प्राप्त होता; प्राणवायु ही उसे परित्याग करता है और उसका उष्म भाव नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदि वातोपमो जीवः संश्लेषो यदि वायुना ।
वायुमण्डलवद्दृश्यो गच्छेत्सह मरुद्गणैः ॥ ४ ॥

यदि जीव वायुमय है अथवा वायुके सहित संश्लिष्ट रहता है, तो वायुचक्रकी तरह प्रत्यक्ष अनुभवमें आना चाहिये और मृत्यूके पश्चात् वायुकी तरह जाता हुआ दिखायी देना चाहिये ॥४॥

श्लेषो यदि च वातेन यदि तस्मात्प्रणश्यति ।
महार्णवत्रिमुक्तत्वादन्यत्सलिलभाजनम् ॥ ५ ॥

जैसे पत्थरमें बंधा हुआ तुंबीफल समुद्रके जलमें डालनेपर डूब जाता है और बन्धनसे छूटनेपर ऊपर आया करता है, वैसेही जीव यदि वातप्रधान संघातसे संश्लिष्ट रहे, तो संघातनाशसे वह भी प्रनष्ट होगा ॥ ५ ॥

कूपे वा सलिलं दद्यात्प्रदीपं वा हुताशने ।
प्रक्षिप्तं नश्यति क्षिप्रं यथा नश्यत्यसौ तथा ॥ ६ ॥

जैसे कूएंके बीच सलिलान्तर और जलती अग्निमें जला हुआ दीपक डाल दिया जाय तो वे प्रवेश करते ही शीघ्र नष्ट होते हैं, वैसेही वायुमण्डल विशिष्ट जीव भी नष्ट हो सकता है ॥६॥

पञ्चसाधारणे ह्यस्मिञ्शरीरे जीवितं कुतः ।
येषामन्यतरत्यागाच्चतुर्णां नास्ति संग्रहः ॥ ७ ॥

इस पाञ्चभौतिक शरीरमें जीवन कहां है ? इसलिये पाञ्चभौतिक संघातसे भिन्न जीव नहीं है, ऐसे सिद्ध होगा; पञ्चभूतोंमेंसे एकका अभाव होनेसे ही अन्य चारोंका एकत्र संग्रह नहीं होता ॥ ७ ॥

नश्यन्त्यापो ह्यनाहाराद्वायुरुच्छ्वासनिग्रहात् ।
नश्यते कोष्ठभेदात्खमग्निर्नश्यत्यभोजनात् ॥ ८ ॥

अनाहारके कारण समस्त जल, उच्छ्वासनिग्रहनिबन्धनसे वायु, वात आदिसे कोष्ठ निरुद्ध होनेपर आकाश और अभोजनके कारण अग्नि नष्ट हुआ करती है; ॥ ८ ॥

व्याधिव्रणपरिक्लेशैर्मेदिनी चैव शीर्यते ।
पीडितेऽन्यतरे ह्येषां संघातो याति पञ्चधा ॥ ९ ॥

व्याधि घाव तथा अन्य क्लेशोंसे पराक्रम नष्ट होनेपर पार्थिव अंश शीर्ण हो जाता है; इन पांचों तत्त्वोंके बीच एक भी पीडित होनेसे सारा भौतिक संघात ही पञ्चत्वको प्राप्त होता है; ॥९॥

तस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने जीवः किमनुधावति ।
किं वेदयति वा जीवः किं शृणोति ब्रवीति वा ॥ १० ॥

पञ्चभौतिक शरीर पञ्चत्वको प्राप्त होनेपर जीव किसका अनुसरण करेगा ? किन विषयोंका ज्ञान करता है ? क्या सुनता है और क्या बोलता है ? ॥ १० ॥

CC-0. Swami Harinanda Saraswati (Parivrajaka Vidyapeeth Varanasi). Digitized by eGangotri

एषा गौः परलोकस्थं तारयिष्यति मामिति ।
यो दत्त्वा म्रियते जन्तुः सा गौः कं तारयिष्यति ॥ ११ ॥

" परलोकगमन करनेपर यह गऊ मेरा उद्धार करेगी " इस उद्देश्यसे गऊ दान करनेपर कोई पुरुषके मरनेपर वह जीव तो रहताही नहीं; तो वह गऊ फिर किसका उद्धार करेगी ? ॥ ११ ॥

गौश्च प्रतिग्रहीता च दाता चैव समं यदा ।
इहैव विलयं यान्ति कुतस्तेषां समागमः ॥ १२ ॥

गऊ, गोदान लेनेवाला और दाता, सभी जीव समान भावसे इस जगत्में मृत्युको प्राप्त होते हैं; तब फिर परलोकमें उनका समागम कैसे होता है ? ॥ १२ ॥

विहगैरुपयुक्तस्य शैलाग्रात्पतितस्य वा ।
अग्निना चोपयुक्तस्य कुतः संजीवनं पुनः ॥ १३ ॥

इनमें जो मरता है, वह पक्षियोंसे उपभुक्त होता है, वा पहाडकी शिखरसे गिरे जाकर चूर होता है अथवा अग्निमें जलकर भस्म होता है, तो उनकी पुनर्जीवन कहां ? ॥ १३ ॥

छिन्नस्य यदि वृक्षस्य न मूलं प्रतिरोहति ।
बीजान्यस्य प्रवर्तन्ते मृतः क पुनरेष्यति ॥ १४ ॥

जब कि कटे हुए वृक्षकी जड फिर उत्पन्न नहीं होती, केवल उसके बीज उत्पन्न हुआ करते हैं; तब मरा हुआ मनुष्य कहांसे पुनरागमन करेगा ? ॥ १४ ॥

बीजमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत्परिवर्तते ।
मृता मृताः प्रणश्यन्ति बीजाद्बीजं प्रवर्तते ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ६४८० ॥

पहिले बीजमात्र उत्पन्न हुआ था; जो इस समय भी परिवर्त्तित होता है । मरणधर्मसे युक्त प्राणी लोग मरके प्रनष्ट होते हैं; बीजसे बीजही प्रवर्त्तित हुआ करता है ॥ १५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ उनासीवां अध्याय समाप्त ॥ १७९ ॥ ६४८० ॥

: १८० :

भृगुरुवाच—

न प्रणाशोऽस्ति जीवानां दत्तस्य च कृतस्य च ।
याति देहान्तरं प्राणी शरीरं तु विशीर्यते ॥ १ ॥

भृगु बोले— हे महर्षि ! जीवका तथा उसके दिये हुए दानका और किये हुए कर्मका कभी विनाश नहीं होता; जीव देहान्तरमें गमन करता है, केवल उसका शरीरही नष्ट होता है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति ।
यथा समित्सु दग्धासु न प्रणश्यति पावकः ॥ २ ॥

जैसे लकडियोंके जलनेपर अग्नि विद्यमान रहती है, नष्ट नहीं होती, वैसेही शरीरके नष्ट होनेपर शरीराश्रित जीव कभी नष्ट नहीं होता ॥ २ ॥

भरद्वाज उवाच—

अग्नेर्यथा तथा तस्य यदि नाशो न विद्यते ।
इन्धनस्योपयोगान्ते स चाग्निर्नोपलभ्यते ॥ ३ ॥

भरद्वाज बोले— हे महात्मन् ! यदि अग्निकी तरह जीवका विनाश नहीं होता यही आपको सम्मत है, तब काष्ठके जलनेपर अग्नि तो अदृश्य होती है और उसकी उपलब्धि नहीं होती है ॥ ३ ॥

नश्यतीत्येव जानामि शान्तमग्निमनिन्धनम् ।
गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न दृश्यते ॥ ४ ॥

इससे बोध होता है, कि जैसे अग्नि काष्ठ न मिलनेसे बुझ जाती है; उसी प्रकार जीव भी नष्ट हुआ करता है । जिसकी गति, प्रमाण वा संस्थान कुछ भी नहीं रहता, उसे विद्यमान वस्तु कहके किस प्रकार विवेचना की जावे ? ॥ ४ ॥

भृगुरुवाच—

समिधामुपयोगान्ते सन्नेवाग्निर्न दृश्यते ।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्रहः स निराश्रयः ॥ ५ ॥

भृगु बोले— यह ठीक है कि काष्ठोंके जल जानेपर अग्निकी प्राप्ति नहीं होती; परंतु उसका नाश नहीं होता; क्योंकि अग्नि निराश्रय होकर आकाशके अनुगत होनेसे ग्रहण होनेके लिये अत्यंत कठिन हुआ करती है ॥ ५ ॥

तथा शरीरसंत्यागे जीवो ह्याकाशवत्स्थितः ।
न गृह्यते सुसूक्ष्मत्वाद्यथा ज्योतिर्न संशयः ॥ ६ ॥

वैसे ही शरीरके त्यागनेपर जीव आकाशकी तरह स्थिति करता है; जीव अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे ज्योतिवाले पदार्थोंकी भांति इन्द्रियगोचर नहीं होता परंतु रहता है, इसमें संशय नहीं है ॥६॥

प्राणान्धारयते ह्यग्निः स जीव उपधार्यताम् ।
वायुसंधारणो ह्यग्निर्नश्यत्युच्छ्वासनिग्रहात् ॥ ७ ॥

विज्ञानरूपी अग्नि प्राणोंको धारण करती है, इसलिये उसेही जीव रूपसे जानो । यह अग्नि वायुके सहित निवास करती है और उच्छ्वास वायुके निग्रह निबन्धनसे अग्नि भी नष्ट होती है ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नष्टे शरीराग्नौ शरीरं तदचेतनम् ।
पतितं याति भूमित्वमयनं तस्य हि क्षितिः ॥ ८ ॥

उस शरीराग्निके नष्ट होनेसे देह चेतनारहित हुआ करता है, और गिरके पृथ्वीमें लीन हो जाता है, पृथ्वी ही शरीरके निवासका स्थान–आधार है ॥ ८ ॥

जङ्गमानां हि सर्वेषां स्थावराणां तथैव च ।
आकाशं पवनोऽभ्येति ज्योतिस्तमनुगच्छति ।
तत्र त्रयाणामेकत्वं द्वयं भूमौ प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥

स्थावर और जङ्गम समस्त पदार्थनिष्ठ वायु आकाशके अनुगत होता है, और अग्नि भी वायुका अनुगमन किया करती है । इस प्रकार आकाश, वायु और अग्नि– ये तीन तत्त्व एकत्र होते हैं, और जल तथा पृथ्वी– ये दो तत्त्व भूमिपर रहते हैं ॥ ९ ॥

यत्र खं तत्र पवनस्तत्राग्निर्यत्र मारुतः ।
अमूर्तयस्ते विज्ञेया आपो मूर्तास्तथा क्षितिः ॥ १० ॥

जहांपर आकाश वहांही वायु है और जहां वायु है वहांही अग्नि स्थिर रहती है; ये तीनोंही निराकार–अदृश्य हैं, परंतु केवल देहधारियोंके सम्बन्धमें दृश्य–मूर्तमान् हुआ करते हैं ॥ १० ॥

भरद्वाज उवाच—

यद्यग्निमारुतौ भूमिः खमापश्च शरीरिषु ।
जीवः किंलक्षणस्तत्रेत्येतदाचक्ष्व मेऽनघ ॥ ११ ॥

भरद्वाज बोले– हे निष्पाप महात्मन्! यदि अग्नि, वायु, भूमि, आकाश और जल ये पञ्चभूतही देहधारियोंमें वर्त्तमान हैं; तो इनके बीच जीवके क्या लक्षण हैं ? यही आप मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ११ ॥

पञ्चात्मके पञ्चरतौ पञ्चविज्ञानसंयुते ।
शरीरे प्राणिनां जीवं ज्ञातुमिच्छामि यादृशम् ॥ १२ ॥

पञ्चभूतात्मक, पंच विषयोंमें रत, पञ्च इन्द्रिय और चेतनतायुक्त प्राणियोंके शरीरमें जीव जिस प्रकार निवास करता है, उसे मैं जाननेकी अभिलाषा करता हूं ॥ १२ ॥

मांसशोणितसंघाते मेदःस्नाय्वस्थिसंचये ।
भिद्यमाने शरीरे तु जीवो नैवोपलभ्यते ॥ १३ ॥

रुधिर, मांस, मेद, स्नायु और हड्डियोंसे युक्त शरीरको चीरने–फाडनेपर उसमें जीवकी उपलब्धि नहीं होती ॥ १३ ॥

यद्यजीवं शरीरं तु पञ्चभूतसमन्वितम् ।
शारीरे मानसे दुःखे कस्तां वेदयते रुजम् ॥ १४ ॥

पञ्चभूतोंसे युक्त शरीर यदि जीवरहित हो, तो शारीरिक वा मानसिक दुःख उपस्थित होनेपर कौन उस क्लेशको अनुभव करेगा ? ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शृणोति कथितं जीवः कर्णाभ्यां न शृणोति तत् ।
महर्षे मनसि व्यग्रे तस्याज्जीवो निरर्थकः ॥ १५ ॥

हे महर्षि ! जीव दोनों कानोंसे किसीका कहा वचन सुनता है; परन्तु मन विषयान्तरमें व्यग्र रहनेसे, वह उसे सुननेमें समर्थ नहीं होता; इसलिये मनके अतिरिक्त जीव निरर्थक है ॥१५॥

सर्वं पश्यति यद्दृश्यं मनोयुक्तेन चक्षुषा ।
मनसि व्याकुले तद्धि पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १६ ॥

जीव सावधान हो मनसे संयुक्त होनेपर नेत्रसे सब दृश्य वस्तुओंको देखता है, पर मन व्याकुल होनेपर नेत्रोंसे देखकर भी नहीं देख सकता ॥ १६ ॥

न पश्यति न च ब्रूते न शृणोति न जिघ्रति ।
न च स्पर्शरसौ वेत्ति निद्रावशगतः पुनः ॥ १७ ॥

जीव निद्राके वशमें होनेसे देखने, बोलने, सूंघने और सुननेमें समर्थ नहीं होता तथा स्पर्शज्ञान और रसका ज्ञान भी नहीं हो सकता ॥ १७ ॥

हृष्यति क्रुध्यति च कः शोचत्युद्विजते च कः ।
इच्छति ध्यायति द्वेष्टि वाचमीरयते च कः ॥ १८ ॥

इस शरीरके बीच कौन प्रसन्न होता, कौन क्रुद्ध होता है, कौन शोक करता और कौन व्याकुल होता है, कौन इच्छा करता, कौन चिन्ता करता, कौन द्वेष करता है और कौन वाक्य उच्चारण करता है ? आप मुझसे उसे ही कहिये ॥ १८ ॥

भृगुरुवाच—

न पञ्चसाधारणमत्र किंचिच्छरीरमेको वहतेऽन्तरात्मा ।
स वेत्ति गन्धांश्च रसाञ्श्रुतिं च स्पर्शं च रूपं च गुणाश्च येऽन्ये ॥ १९ ॥

भृगु बोले—हे ब्रह्मन् ! मन भी पञ्चभूतात्मक ही है, वह पञ्चभूतोंसे पृथक् नहीं है । इससे मनके जरिये शारीरिक क्रियाका निर्वाह नहीं होता । एकमात्र अन्तरात्माही स्थूल और सूक्ष्म शरीरके कार्योंका निर्वाह करता है; अन्तरात्माही गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श और रूप आदि तथा अन्य सब विषयोंको जानता है ॥ १९ ॥

पञ्चात्मके पञ्चगुणप्रदर्शी स सर्वगात्रानुगतोऽन्तरात्मा ।
स वेत्ति दुःखानि सुखानि चात्र तद्विप्रयोगात्तु न वेत्ति देहः ॥ २० ॥

वह अन्तरात्माही पाञ्चभौतिक शरीरमें पञ्चगुणोंसे युक्त मनका द्रष्टा है और मनके जरिये सब शरीरके अनुगत होकर सुख—दुःखोंका अनुभव करता है । अन्तरात्मा जब देहसे पृथक् होता है, तब भौतिक शरीर कुछ भी अनुभव करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥ २० ॥

यदा न रूपं न स्पर्शो नोष्मभावश्च पावके ।
तदा शान्ते शरीराग्नौ देहं त्यक्त्वा स नश्यति ॥ २१ ॥

शरीराग्निके शान्त होनेपर जब कि दर्शन, स्पर्शन और ऊष्मभाव कुछ भी अग्निमें नहीं रहता, तब वह शरीरको त्यागकर नष्ट होता है ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) , Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अम्मयं सर्वमेवेदमापो मूर्तिः शरीरिणाम् ।
तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्वभूतेषु लोककृत् ॥ २२ ॥

दृश्यमान समस्त संसार जलमय है, जलही देहधारियोंकी मूर्त्ति है; जलके बीच ही चित् स्वरूप मानस ब्रह्मा निवास करते हैं, वेही सर्व भूतोंकी सृष्टि किया करते हैं ॥ २२ ॥

आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम् ।
तस्मिन्यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥ २३ ॥

तुम सर्वलोकोंके सुख स्वरूप हितकारी क्षेत्रज्ञ आत्माको मालूम करो। जो पद्मके बीच जलकी बूंदके समान शरीरके बीच पृथक् रूपसे स्थित होरहा है, ॥ २३ ॥

क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम् ।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान् ॥ २४ ॥

उसेही सदा जगत्का सुखात्मक क्षेत्रज्ञ आत्मा कहके जानना चाहिये। सत्त्व, रज और तम —इन तीनोंको जीवके गुण समझो ॥ २४ ॥

सचेतनं जीवगुणं वदन्ति स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदं वदन्ति प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त ॥ २५ ॥

पण्डित लोग जीवके गुणोंको सचेतन कहा करते हैं। वह आत्माके प्रभावसे स्वयं चेष्टायुक्त होकर सब कार्योंमें तत्पर होकर चेष्टा करवाता है। आत्मज्ञ पुरुष इस क्षेत्रज्ञ जीवसे परमात्माको परमश्रेष्ठ कहा करते हैं; उसनेही सप्त भुवनोंकी सृष्टि की है ॥ २५ ॥

न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः ।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति दशार्धतैवास्य शरीरभेदः ॥ २६ ॥

शरीरके नष्ट होनेसे जीवका नाश नहीं होता; " जीव मर गया "— यह वचन करनेवाले अज्ञानी हैं और उनका वह कहना मिथ्या है। शरीरके पञ्चत्व प्राप्त होनेपर जीव दूसरे शरीरमें गमन करता है ॥ २६ ॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढश्चरति संवृतः ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥ २७ ॥

आत्मा इसी प्रकार सर्वभूतोंमें संवृत रहके गूढभावसे विचरण करता है; तत्वदर्शी लोग परम-सूक्ष्म बुद्धिके जरिये उसे देखनेमें समर्थ होते हैं ॥ २७ ॥

तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ २८ ॥

विद्वान् पुरुष पूर्व और अपर रात्रिमें ध्यान योगमें रत तथा लघु आहार करता हुआ पवित्र-चित्त होके अपने हृदयमेंही उस आत्माको अवलोकन करता है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २९ ॥

प्रसन्नतासे शुभाशुभ कर्मोंको त्यागकर शुद्धचित्त और आत्मनिष्ठ होनेसे मनुष्य अनन्त सुख भोग करनेमें समर्थ होता है ॥ २९ ॥

मानसोऽग्निः शरीरेषु जीव इत्यभिधीयते ।
सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्चये ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ६५१० ॥

जरायुज आदि शरीरोंमें अग्निकी तरह प्रकाशमान जो चैतन्य है, वही जीव नामसे विख्यात है; उसही प्रजापतिसे यह समस्त सृष्टि हुआ करती है, यह बात अध्यात्मतत्त्वका निश्चय करके कही गयी है ॥ ३० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ १८० ॥ ६५१० ॥

: १८१ :

भृगुरुवाच –

असृजद्ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतिः ।
आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान्भास्कराग्निसमप्रभान् ॥ १ ॥

भृगु बोले– हे द्विजसत्तम ! पहिले प्रजापति ब्रह्माने अपने तेजसे सूर्य और अग्निके समान प्रकाशयुक्त ब्राह्मणोंको ही उत्पन्न किया था ॥ १ ॥

ततः सत्यं च धर्मं च तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ।
आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ॥ २ ॥

अनन्तर उन्होंने स्वर्ग प्राप्तिके सुखके लिये सत्य, धर्म, तपस्या, शाश्वत वेद, पवित्रता और आचारका विधान किया ॥ २ ॥

देवदानवगन्धर्वदैत्यासुरमहोरगाः ।
यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा ॥ ३ ॥

अनन्तर देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महान् सर्प, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्योंको निर्माण किया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
ये चान्ये भूतसंघानां संघास्तांश्चापि निर्ममे ॥ ४ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णोंकी रचना की और इनके अतिरिक्त सब भूतोंके सत्त्व, रज और तमोगुणसे युक्त जो सब समुदाय हैं, उनकी भी सृष्टि की थी ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः ।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंका सफेद, क्षत्रियोंका लाल, वैश्योंका पीला और शूद्रोंका काला वर्ण बनाया ॥ ५ ॥

भरद्वाज उवाच—

चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभज्यते ।
सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसंकरः ॥ ६ ॥

भरद्वाज बोले— ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंमेंसे एक वर्णके साथ दूसरे वर्णका रंगभेद है, तो सब जातिकाही सभी वर्णोंमें विभिन्न रंग होनेके कारण वर्णसंकर दृष्टिगोचर होता है ॥६॥

कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः ।
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ७ ॥

काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और श्रम— हम सबमें समान भावसे सम्भव होता है; इसलिये किस प्रकारसे वर्ण विभिन्न होगा ? ॥ ७ ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् ।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ८ ॥

पसीना, मल, मूत्र, कफ, पित्त और रुधिर— ये हमारे शरीरसे निकलते रहते हैं; इससे किस प्रकार रंगभेदसे वर्णविभाग हो सकता है ? ॥ ८ ॥

जङ्गमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः ।
तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥ ९ ॥

पशु, पक्षी, मनुष्य आदि जङ्गम प्राणियों और वृक्ष आदि स्थावर पदार्थोंकी असंख्य जातियां हैं; और रंग भी अनेक हैं; उन सब विभिन्न जातियोंके वर्ण किस तरह निर्णय किये जा सकेंगे ? ॥ ९ ॥

भृगुरुवाच—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥

भृगु बोले— पहले सब वर्णोंमें कोई विशेषता नहीं थी, यह सब जगत् पहले ब्रह्माके जरिये उत्पन्न होके ब्राह्मणमय ही था; फिर विविध कर्मोंके अनुसार विविध वर्ण हुए हैं ॥ १० ॥

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥

जो सब अपने ब्राह्मणोचित धर्मका त्याग करके कामभोगमें अनुरक्त, तीक्ष्णभाववाले, क्रोधी और साहसी हो गये और इस कारण जिनके शरीरका रंग लाल हो गया, वेही ब्राह्मण क्षत्रियत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गोषु वृत्तिं समाधाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्मं नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२ ॥

जो लोग गौओंसे और कृषिकर्मसे जीविका निर्वाह करने लगे, तथा इस कारण जिनके रंग पीले हुए, और जो ब्राह्मण-धर्मका अनुष्ठान नहीं करते थे, उन्हीं ब्राह्मणोंने वैश्यत्व लाभ किया है ॥ १२ ॥

हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३ ॥

और जो सब ब्राह्मण पवित्रता और सदाचारसे भ्रष्ट होकर हिंसा तथा मिथ्याकर्ममें रत तथा लोभयुक्त होकर सब प्रकारके निंद्य कर्मोंसे जीविका चलाने लगे, वे काले रंगके होकर, शूद्र हुए हैं ॥ १३ ॥

इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ।
धर्मो यज्ञक्रिया चैषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १४ ॥

इन सब कर्मोंसे पृथक् किये गये ब्राह्मण लोगोंने ही वर्णान्तरमें गमन किया है। उन लोगोंके लिये नित्य यज्ञक्रिया आदि धर्मका अनुष्ठान सदा प्रतिषिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

वर्णाश्चत्वार एते हि येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः ॥ १५ ॥

इस प्रकार ये चार वर्ण हुए, इनके लिये ब्रह्माने पहले ब्राह्मी सरस्वती (वेदवाणी) प्रकट की; केवल जो लोग लोभ-भोगके कारण ज्ञानहीन हुए उन शूद्रोंको वेदमें अधिकार नहीं है; इसे विधाताने कहा है ॥ १५ ॥

ब्राह्मणा धर्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति ।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥ १६ ॥

जो सब ब्राह्मण वेदोक्त धर्म-कर्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं और सदा व्रत तथा नियम धारण करते हुए वेदाध्ययन करते हैं, उनकी तपस्या नष्ट नहीं होती ॥ १६ ॥

ब्रह्म चैतत्पुरा सृष्टं ये न जानन्त्यतद्विदः ।
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ॥ १७ ॥

जो लोग पहले इस सारी सृष्टिको परब्रह्म परमात्माने निर्माण किया यह जानकर भी नहीं जानते हैं, वे लोग अज्ञानी उनको हैं; उनको अनेक प्रकारकी बहुविध योनियोंमें जन्म लेना पडता है ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पिशाचा राक्षसाः प्रेता बहुधा म्लेच्छजातयः ।
प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छन्दाचारचेष्टिताः ॥ १८ ॥

वे ज्ञान-विज्ञानसे रहित स्वेच्छाचारी लोग पिशाच, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकारकी म्लेच्छ जातिके होते हैं ॥ १८ ॥

प्रजा ब्राह्मणसंस्काराः स्वधर्मकृतनिश्चयाः ।
ऋषिभिः स्वेन तपसा सृज्यन्ते चापरे परैः ॥ १९ ॥

प्राचीन महर्षियोंने अपने तपोबलसे वेदविहित संस्कारमें रत, स्वधर्म-कर्मोंमें निश्चय करनेवाली और भी दूसरे प्रजासमूहको उत्पन्न किया है ॥ १९ ॥

आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाव्यया ।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ ६५३० ॥

आदि देव विधाताकी सृष्टि उनके मनसे उत्पन्न हुई है, जो ब्रह्मा-वेदमूलक, अक्षय, अव्यय तथा योगानुष्ठानपरायण है और वह मानसी सृष्टि करके विख्यात है ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८१ ॥ ६५३० ॥

: १८२ :

भरद्वाज उवाच—

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम ।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले- हे वक्तृवर द्विजोत्तम विप्रर्षि ! किन कर्मोंसे ब्राह्मण होता है, क्या करनेसे क्षत्रिय हुआ करता है और किस तरहके कार्योंसे वैश्य तथा शूद्र होते हैं ? आप उसे वर्णन करिये ॥ १ ॥

भृगुरुवाच—

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः ।
वेदाध्ययनसंपन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥ २ ॥

भृगु बोले- जाति, कर्म संस्कारोंसे जो संपन्न और पवित्र हुआ है और जिसने वेदाध्ययन किया है; प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजा, आतिथ्य, वा बलि वैश्वदेव, इन षट्-कर्मोंको किया करता है ॥ २ ॥

शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥ ३ ॥

पवित्रता और सदाचारसे युक्त, पूर्ण रीतिसे उत्तम यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करनेवाला, गुरुजनोंका प्रियपात्र, नित्यव्रती और सत्यपरायण है, उसेही ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्यं दानं दमोऽद्रोह आनृशंस्यं क्षमा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ४ ॥

जिसमें सत्य, दान, दम, अद्रोह, क्रूरताका अभाव, क्षमा, दया और तपस्या—ये गुण देखे जाते हैं वही ब्राह्मण होता है ॥ ४ ॥

क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंमतः ।
दानादानरतिर्यश्च स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥

जो युद्ध आदि क्षत्रियका कार्य किया करता है, वेदाध्ययनमें अनुरक्त होता और ब्राह्मणोंको अर्थदान तथा प्रजासमूहसे धनग्रहण करता है, उसे ही क्षत्रिय कहा जाता है ॥ ५ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं यो विशत्यनिशं शुचिः ।
वेदाध्ययनसंपन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥ ६ ॥

जो कृषि, गो—पशुपालन और व्यापार करता, अन्नसंग्रह तथा दान करनेमें अनुरक्त रहता, पवित्रता और वेदाध्ययनसे युक्त है, वही वैश्य कहा जाता है ॥ ६ ॥

सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥ ७ ॥

जो पुरुष सदा सब वस्तुओंके भक्षणमें ही अनुरक्त, सब कर्मोंके करनेमें आसक्त, वेदज्ञानसे रहित, अपवित्र और अनाचारी है, उसेही शूद्र कहा जाता है ॥ ७ ॥

शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे चैतन्न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥ ८ ॥

ये लक्षण यदि शूद्रमें दिखायी दें तो वैसा शूद्र शूद्र नहीं है और ब्राह्मणमें यदि उसके लक्षण न हों, तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं कहा जाता ॥ ८ ॥

सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
एतत्पवित्रं ज्ञातव्यं तथा चैवात्मसंयमः ॥ ९ ॥

सब उपायोंसे क्रोध और लोभका निग्रह—जीतना आवश्यक है, तथा यही ज्ञानका पवित्र लक्षण जानना चाहिये; आत्मसंयम यही है ॥ ९ ॥

नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेत मत्सरात् ।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥ १० ॥

सदा सावधान होके क्रोधसे तपस्या, मत्सरसे धनसंपत्ति, मान तथा अपमानसे विद्या और प्रमादसे आत्मकी रक्षा करनी उचित है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Kabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्य सर्वे समारम्भा निराशीर्बन्धनास्त्विह ।
त्यागे यस्य हुतं सर्वं स त्यागी स च बुद्धिमान् ॥ ११ ॥

जिसके सब कर्म कामनाओंके बन्धनोंसे रहित हैं, और दान–त्याग विषयमें जिसकी समस्त सम्पत्ति समर्पित हुई है, उसेही त्यागशील और बुद्धिमान् कहा जाता है ॥ ११ ॥

अहिंस्रः सर्वभूतानां मैत्रायणगतश्चरेत् ।
अविस्रम्भे न गन्तव्यं विस्रम्भे धारयेन्मनः ॥ १२ ॥

सब भूतोंकी हिंसा न करके सबके विषयमें मित्र भाव दिखाते हुए भ्रमण करे; अविश्वासी पथसे कहीं भी नहीं जाना; मनको विश्वासयुक्त पथपर नियुक्त करे ॥ १२ ॥

परिग्रहान्परित्यज्य भवेद्बुद्ध्या जितेन्द्रियः ।
अशोकं स्थानमातिष्ठेदिह चामुत्र चाभयम् ॥ १३ ॥

परिजनोंकी ममता, आसक्ति त्यागकर, बुद्धिपूर्वक जितेन्द्रिय होवे; शोकरहित स्थान अर्थात् आत्मामें निवास करे तो इस लोक और परलोकमें किसी भयकी सम्भावना न होवे ॥१३॥

तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना ॥ १४ ॥

सदा तपस्यामें रत, दान्त, मौनव्रतावलम्बी, संयतात्मा, अजित, काम आदिको जय करनेके अभिलाषी और सङ्गके कारण पुत्र कलत्र आदिमें आसक्तिरहित होना योग्य है ॥ १४ ॥

इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥ १५ ॥

इन्द्रियोंसे जिस वस्तुका ज्ञान हुआ करता है, उसेही व्यक्त कहते हैं और सूक्ष्म शरीरगोचर अतीन्द्रिय– इन्द्रियातीत होनेके कारण अनुमानसे जाना गया पदार्थही अव्यक्त है, यह समझना चाहिये ॥ १५ ॥

मनः प्राणे निगृह्णीयात्प्राणं ब्रह्मणि धारयेत् ।
निर्वाणादेव निर्वाणो न च किंचिद्विचिन्तयेत् ।
सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्म स वै तेनाधिगच्छति ॥ १६ ॥

प्राण उपाधिक "तुम" इस पदके अर्थ गोचर जीवात्मामें मन समर्पण करो और जीवात्माको परब्रह्ममें अर्पण करो। निवृत्तिसेही निर्वाणपद (मोक्ष) मिलता है; योगियोंको ध्यातृ–ध्यानादिके सिवाय दूसरी कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण वैराग्यसे सहजमें ही सुखस्वरूप परब्रह्मको पाता है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शौचेन सततं युक्तस्तथाचारसमन्वितः ।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ ६५४७ ॥

सदा पवित्रता, सदाचारका पालन और सब भूतोंमें यथायुक्त दयाभावका व्यवहारही ब्राह्मणका मुख्य लक्षण है ॥ १७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ बयासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८२ ॥ ६५४७ ॥

: १८३ :

भृगुरुवाच—

सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं सृजति च प्रजाः ।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥ १ ॥

भृगु बोले— वेदज्ञानसे सत्यस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, स्वधर्मानुष्ठानरूपी तपस्याही सत्य है; सत्यनेही प्रजासमूहको उत्पन्न किया है; सत्यसेही यह लोग स्थित है और सत्यसेही मनुष्य स्वर्गमें जाता है ॥ १ ॥

अनृतं तपसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः ।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसावृतम् ॥ २ ॥

सत्यके विपरीत, वेदाचारसे पृथक् यथेष्ट आचरणको मिथ्या कहते हैं, वह अज्ञान-अंधकार स्वरूप है; अज्ञानसेही मनुष्यकी अधोगति होती है; अज्ञानसे घिरे हुए लोग तमोगुणसे ग्रस्त होकर ज्ञानके प्रकाशका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ २ ॥

स्वर्गः प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च ।
सत्यानृतात्तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः ॥ ३ ॥

पण्डित लोग देवताओंके निवासस्थान स्वर्गको प्रकाशमय और तिर्यग् जातिके निवासस्थान नरकको अन्धकारमय कहा करते हैं। भूलोकवासी जीव सत्य और मिथ्या, ज्ञान और अज्ञान दोनोंही प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

तत्र त्वेवंविधा वृत्तिर्लोके सत्यानृता भवेत् ।
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखं सुखं तथा ॥ ४ ॥

लोकमें सत्य और मिथ्याकी विषयमें जो वृत्ति है, उसके जो व्यवहार होता है, वही धर्म और अधर्म, उजाला और अन्धेरा, तथा सुख और दुःख है ॥ ४ ॥

तत्र यत्सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत्सुखमिति ॥ १ ॥
तत्र यदनृतं सोऽधर्मो योऽधर्मस्तत्तमो यत्तमस्तद्दुःखमिति ॥ २ ॥ ५ ॥

उसके बीच जो सत्य है, वही धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है, और जो प्रकाश है वही सुख है[1]। उसमें जो मिथ्या है, वही अधर्म है, जो अधर्म है वही अन्धेरा है, जो अन्धकार है वही दुःख है[2] ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्रोच्यते—

शारीरैर्मानसैर्दुःखैः सुखैश्चाप्यसुखोदयैः ।
लोकसृष्टिं प्रपश्यन्तो न मुह्यन्ति विचक्षणाः ॥ ६ ॥

जगत्की सृष्टि शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे युक्त है; यहां जो सुख हैं, वे अन्तमें दुःखदायकही होते हैं; यह विचार करनेवाले बुद्धिमान् लोग कभी मोहित नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

तत्र दुःखविमोक्षार्थं प्रयतेत विचक्षणः ।
सुखं ह्यनित्यं भूतानामिहलोके परत्र च ॥ ७ ॥

इस विषयमें यही कहा जाता है— बुद्धिमान् पुरुष दुःख नष्ट होनेके लिये सदा यत्नवान् होवे। इस लोक और परलोकमें प्राणियोंको जो सुख मिलता है, वह नित्य नहीं है ॥ ७ ॥

राहुग्रस्तस्य सोमस्य यथा ज्योत्स्ना न भासते ।
तथा तमोभिभूतानां भूतानां ह्रश्यते सुखम् ॥ ८ ॥

जैसे राहुमे ग्रस्त चन्द्रमाकी किरण प्रकाशित नहीं होती, वैसेही अज्ञानयुक्त जीवोंका सुख भी अन्तर्हित— नष्ट हुआ करता है ॥ ८ ॥

तत्खलु द्विविधं सुखमुच्यते शारीरं मानसं च ॥१॥ इह खल्वमुष्मिंश्च लोके सर्वारम्भप्रवृत्तयः सुखार्था अभिधीयन्ते ॥२॥ न ह्यतस्त्रिवर्गफलं विशिष्टतरमस्ति ॥३॥ स एष काम्यो गुणविशेषो धर्मार्थयोरारम्भस्तद्धेतुरस्योत्पत्तिः सुखप्रयोजना ॥ ४ ॥ ९ ॥

वह सुख दो प्रकारका माना जाता है— शारीरिक और मानसिक[1]। लोकमें सुखके लिये ही दृष्ट फलोंकी प्राप्तिके लिये सब कार्यकी प्रवृत्तियां अभिहित होती हैं[2]। सुखसे बढके त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का फल और कुछ भी विशेष नहीं है[3]। वह सुखही प्राणीका अभिलषित गुणविशेष है, सुखहीके लिये धर्म और अर्थमें प्रवृत्ति होती है; धर्म और अर्थसेही सुखकी उत्पत्ति हुआ करती है, सब कार्यही सुखके लिये आरंभ किये जाते हैं[4] ॥ ९ ॥

भरद्वाज उवाच—

यदेतद्भवताभिहितं सुखानां परमाः स्त्रिय इति तन्न गृह्णीमः ॥ १ ॥ न ह्येषामृषीणां महति स्थितानामप्राप्य एष गुणविशेषो न चैनमभिलषन्ति ॥ २ ॥ श्रूयते च भगवांस्त्रिलोककृद्ब्रह्मा प्रभुरेकाकी तिष्ठति ॥ ३ ॥ ब्रह्मचारी न कामसुखेष्वात्मानमवदधाति ॥ ४ ॥ अपि च भगवान्विश्वेश्वर उमापतिः

भरद्वाज बोले— हे ब्रह्मन्! आपने कहा, सुखही सबसे परम श्रेष्ठ पदार्थ है, सुखसे अधिक त्रिवर्गका फल नहीं हैं, परन्तु मैं ऐसा नहीं विचार करता[1]। आपने सुखको ही आत्माका गुण विशेष कहा है; परन्तु जो योगनिष्ठ ऋषि लोग हैं, उनके लिये यह अप्राप्य न होनेपर भी वे इसकी अभिलाषा नहीं करते[2]। सुना जाता है, कि त्रिलोकविधाता प्रभु ब्रह्मा अकेले ही रहते हैं[3]। वे ब्रह्मचारी रहकर तपमें निष्ठावान् रहते हैं। वे कभी कामसुखमें आत्मसमाधान

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

काममभिवर्तमानमनङ्गत्वेन शममनयत् ॥ ५ ॥ तस्माद्ब्रूमो न महात्मभिरयं प्रतिगृहीतो न त्वेष तावद्विशिष्टो गुण इति नैतद्भगवतः प्रत्येमि ॥ ६ ॥ भगवता तूक्तं सुखानां परमाः स्त्रिय इति ॥ ७ ॥ लोकप्रवादोऽपि च भवति द्विविधः फलोदयः सुकृतात्सुखमवाप्यते दुष्कृताद्दुःखमिति ॥ ८ ॥ अत्रोच्यताम् ॥ ९ ॥ १० ॥

नहीं करते हैं[४] और जगत्के ईश्वर भगवान् भवानीपतिने सम्मुख आये हुए रतिपति कामको जलाकर शान्त किया और अनङ्ग बना दिया[५]। इन सब प्रमाणोंको देखकर हम कहते हैं, कि महानुभाव पुरुषोंने इसे स्वीकार नहीं किया है; यह कामसुख सबसे बढकर सुख विशेष नहीं है; मैं आपके इस वचनसे प्रतीति नहीं पा सकता[६], आपने कहा है कि सुखोंमें श्रेष्ठ स्त्रियां हैं[७] फलोदययुक्त लोकप्रवाद दो प्रकारका है, पहला सुकृत; उससे सुखलाभ होता है, दूसरा दुष्कृत उससे दुःख प्राप्त हुआ करता है। ऐसा कहते हैं ॥ १० ॥

भृगुरुवाच—

अनृतात्खलु तमः प्रादुर्भूतं तमोग्रस्ता अधर्ममेवानुवर्तन्ते न धर्मम् ॥ १ ॥ क्रोधलोभमोहमानानृतादिभिरवच्छन्ना न खल्वस्मिँल्लोके न चामुत्र सुखमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥ विविधव्याधिगणोपतापैरवकीर्यन्ते ॥ ३ ॥ वधबन्धरोगपरिक्लेशादिभिश्च क्षुत्पिपासाश्रमकृतैरुपतपैरुपतप्यन्ते ॥ ४ ॥ चण्डवातात्युष्णातिशीतकृतैश्च प्रतिभयैः शारीरैर्दुःखैरुपतप्यन्ते ॥ ५ ॥ बन्धुधनविनाशविप्रयोगकृतैश्च मानसैः शोकैरभिभूयन्ते जरामृत्युकृतैश्चान्यैरिति ॥ ६ ॥ ११ ॥

भृगु बोले— इस विषयमें मैं अपना अभिप्राय कहता हूं, अज्ञानसे अन्धकार—अज्ञान उत्पन्न होता है; इसलिये तमोग्रस्त लोग अधर्मका आचरण किया करते हैं, धर्ममार्गमें कदापि नहीं विचरते[१], जो लोग क्रोध, लोभ, मोह और असत्य आदिसे आच्छादित हैं, वे लोग इस लोक और परलोकमें सुख नहीं पाते[२]। वे अनेक व्याधि, रोग और उपतापसे परिपूरित होते हैं[३]। वध, बन्धन, रोग आदिके क्लेशोंसे तथा भूख, प्यास और श्रमजनित उपतापसे पीडित होते हैं[४] और प्रचण्ड वायु, अत्यंत गर्मी और अतिशय सर्दीके कारण दारुण शारीरिक दुःखोंसे सन्तापित होते हैं[५] तथा बान्धवोंकी मृत्यु, धनके विनाश और प्रियजनोंके वियोगके कारण मानसिक दुःख वा जरा-मरण जनित शोकोंसे परिपूरित हुआ करते हैं[६] ॥ ११ ॥

यस्त्वेतैः शारीरैर्मानसैर्दुःखैर्न स्पृश्यते स सुखं वेद ॥ १ ॥ न चैते दोषाः स्वर्गे प्रादुर्भवन्ति ॥ २ ॥ तत्र भवति खलु ॥ ३ ॥ १२ ॥

जो इन समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे रहित है; वही सुखका अनुभव करनेमें समर्थ होता है[१], स्वर्गमें इन सब दुःख—दोषोंकी उत्पत्ति नहीं है[२]; वहां ऐसे होता है[३] ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुसुखः पवनः स्वर्गे गन्धश्च सुरभिस्तथा ।
क्षुत्पिपासाश्रमो नास्ति न जरा न च पापकम् ॥ १३ ॥

वहां सुख स्पर्श सुरभि वायु सदा बहती है; भूख, प्यास और श्रम नहीं हैं; जरा और पापका सम्पर्क नहीं है ॥ १३ ॥

नित्यमेव सुखं स्वर्गे सुखं दुःखमिहोभयम् ।
नरके दुःखमेवाहुः समं तु परमं पदम् ॥ १४ ॥

स्वर्गमें नित्य सुख है और इस लोकमें सुख और दुःख दोनोंही हैं । निरवच्छिन्न दुःखही नरक है; इसलिये पण्डित लोग समानताकोही परम पदार्थ कहा करते हैं ॥ १४ ॥

पृथिवी सर्वभूतानां जनित्री तद्विधाः स्त्रियः ।
पुमान्प्रजापतिस्तत्र शुक्रं तेजोमयं विदुः ॥ १५ ॥

पृथ्वी सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता है; स्त्रियां भी उसके समान संतानकी जननी हैं; पुरुष वहां प्रजापतिके समान है; उसमें जो वीर्य है वह तेजोमय माना जाता है ॥ १५ ॥

इत्येतल्लोकनिर्माणं ब्रह्मणा विहितं पुरा ।
प्रजाः विपरिवर्तन्ते स्वैः स्वैः कर्मभिरावृताः ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ६५६३ ॥

पहिले समयमें प्रजापति ब्रह्माने इसही प्रकार स्त्री–पुरुषोंके सहयोगसे लोक सृष्टिका विधान किया है । यहां प्रजा निज निज कर्मोंमें आवृत रहके सुखदुःखका अनुभव करती है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८३ ॥ ६५६३ ॥

: १८४ :

भरद्वाज उवाच –

दानस्य किं फलं प्राहुर्धर्मस्य चरितस्य च ।
तपसश्च सुतप्तस्य स्वाध्यायस्य हुतस्य च ॥ १ ॥

भरद्वाज बोले– हे भगवन् ! पुराने लोगोंने दान, धर्म, आचार, उत्तम रीतिसे की हुई तपस्या, स्वाध्याय और अग्निहोत्रके फलको किस प्रकार कहा है ? ॥ १ ॥

भृगुरुवाच –

हुतेन शाम्यते पापं स्वाध्याये शान्तिरुत्तमा ।
दानेन भोग इत्याहुस्तपसा सर्वमाप्नुयात् ॥ २ ॥

भृगु बोले– अग्निहोत्रसे पापकी शान्ति होती है, स्वाध्यायसे परम श्रेष्ठ शान्तिसुख मिलता है। दानसे भोग और तपस्यासे सब प्रकारके सुखकी प्राप्ति हुआ करती है; यही प्राचीन लोगोंके मत है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दानं तु द्विविधं प्राहुः परत्रार्थमिहैव च ।
सद्भ्यो यदीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठति ॥ ३ ॥

पण्डित लोग दानको दो प्रकारका कहा करते हैं; पहिला पारलौकिक और दूसरा ऐहिक । साधुओंको जो कुछ दान किया जाता है, परलोकमें उसका फल भोग हुआ करता है ॥ ३ ॥

असत्सु दीयते यत्तु तद्दानमिह भुज्यते ।
यादृशं दीयते दानं तादृशं फलमाप्यते ॥ ४ ॥

और असत्पुरुषोंको जो कुछ दान किया जाता है, इस लोकमें उसका फलभोग हुआ करता है । मनुष्य जैसा दान करता है, वैसाही फल-भोग भी किया करता है ॥ ४ ॥

भरद्वाज उवाच—

किं कस्य धर्मचरणं किं वा धर्मस्य लक्षणम् ।
धर्मः कतिविधो वापि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ५ ॥

भरद्वाज बोले— किसका कैसा धर्माचरण होता है वा धर्मका क्या लक्षण है और वह कितने प्रकारका है ? इसेही वर्णन करना आपको उचित है ॥ ५ ॥

भृगुरुवाच—

स्वधर्मचरणे युक्ता ये भवन्ति मनीषिणः ।
तेषां धर्मफलावाप्तिर्योऽन्यथा स विमुह्यति ॥ ६ ॥

भृगु बोले— जो बुद्धिमान् पुरुष धर्माचरणमें नियुक्त होते हैं, उन्हें धर्म फलकी प्राप्ति होती है और जो इसके विपरीत आचरण करता है, वह मोहित होता है ॥ ६ ॥

भरद्वाज उवाच—

यदेतच्चातुराश्रम्यं ब्रह्मर्षिविहितं पुरा ।
तेषां स्वे स्वे य आचारास्तान्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

भरद्वाज बोले— पहिले समयमें ब्रह्मर्षियोंने जिन चारों आश्रमोंका विधान किया है, आप उन सब आश्रमोंके अपने अपने धर्म क्या है, उन्हें वर्णन करिये ॥ ७ ॥

भृगुरुवाच—

पूर्वमेव भगवता लोकहितमनुतिष्ठता धर्मसंरक्षणार्थमाश्रमाश्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टाः ॥ [1] ॥ तत्र गुरुकुलवासमेव तावत्प्रथममाश्रममुदाहरन्ति ॥ २ ॥ सम्यगत्र शौचसंस्कारविनयनियमप्रणीतो विनीतात्मा उभे संध्ये भास्कराग्निदैव-

भृगु बोले— सब लोकोंके हित करनेवाले भगवान् ब्रह्माने पहिले धर्मरक्षाके निमित्त चार आश्रमोंका निर्देश किया था[1] । उसके बीच गुरुकुलमें निवासरूपी ब्रह्मचर्य पहला आश्रम कहा जाता है[2] । इस आश्रममें पूरी रीतिसे पवित्रता, संस्कार, विनयपूर्ण आचरण, तथा नियमोंका पालन करते हुए विनीतात्मा होना चाहिये; दोनों सन्ध्यामें सूर्य और अग्निकी उपासना,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तान्युपस्थाय विहाय तन्द्रालस्ये गुरोरभिवादनवेदाभ्यासश्रवणपवित्रीकृतान्तरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्याग्निपरिचरणगुरुशुश्रूषानित्यो भैक्षादिसर्वनिवेदितान्तरात्मा गुरुवचननिर्देशानुष्ठानाप्रतिकूलो गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यायतत्परः स्यात् ॥ ३ ॥ ॥ ८ ॥

तन्द्रा और आलस त्यागके, गुरुको प्रणाम करना; वेदाभ्यास और वेद सुनके चित्तको पवित्र करना; त्रिकाल-स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन, अग्नि परिचर्या करते हुए गुरुसेवा और नित्य भिक्षा करनी होती है। भिक्षा आदिसे प्राप्त हुई सब वस्तु तथा अपनी अन्तरात्माको भी गुरुको समर्पण करे; गुरु-वचन निर्दिष्ट अनुष्ठानके अनुकूल होकर गुरुकी कृपासे प्राप्त हुए स्वाध्यायमें रत होना चाहिये[3] ॥ ८ ॥

भवति चात्र श्लोकः ।

गुरुं यस्तु समाराध्य द्विजो वेदमवाप्नुयात् ।
तस्य स्वर्गफलावाप्तिः सिध्यते चास्य मानसम् ॥ ९ ॥

इस विषयमें यह श्लोक है, जो ब्राह्मण पूर्णरीतिसे गुरुकी सेवा करके वेदज्ञानका लाभ करता है, उसकी स्वर्गफलकी प्राप्ति और मनकामना सिद्ध होती है ॥ ९ ॥

गार्हस्थ्यं खलु द्वितीयमाश्रमं वदन्ति ॥ १ ॥ तस्य समुदाचारलक्षणं सर्वमनुव्याख्यास्यामः ॥ २ ॥ समावृत्तानां सदाराणां सहधर्मचर्याफलार्थिनां गृहाश्रमो विधीयते ॥ ३ ॥ धर्मार्थकामावाप्तिर्ह्यत्र त्रिवर्गसाधनमवेक्ष्यागर्हितेन कर्मणा धनान्यादाय स्वाध्यायप्रकर्षोपलब्धेन ब्रह्मर्षिनिर्मितेन वा अद्रिसारगतेन वा हव्यनियमाभ्यासदैवतप्रसादोपलब्धेन वा धनेन गृहस्थो गार्हस्थ्यं प्रवर्तयेत् ॥ ४ ॥ तद्धि सर्वाश्रमाणां मूलमुदाहरन्ति ॥ ५ ॥ गुरुकुलवासिनः

गार्हस्थ्यको दूसरा आश्रम कहते हैं;[1] उसके यथा उचित पालन करने योग्य व्यवहारोंके लक्षण हम कहते हैं[2]। जिनका गुरुकुलमें वास समाप्त होचुका है, जो भार्याके सहित धर्माचरणके फलकी इच्छा करते हैं, उन्हीं सब सदाचारी पुरुषोंके लिये गृहस्थाश्रम विहित है[3]। इस आश्रममें धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग प्राप्त हुआ करता है। इसलिये त्रिवर्ग साधनकी इच्छा रखकर अनिन्दित तथा उत्तम कर्मोंसे धन उपार्जन अथवा वेदपाठ वा दक्षिणासे प्राप्त हुआ धन, वा ब्रह्मर्षियोंकी भांति उञ्छवृत्ति, अथवा खानसे लाया हुआ धन, वा हव्य (यज्ञ), नियम, वेदाभ्यास प्रदानसे तथा देवताओंकी कृपासे प्राप्त हुए धनसे गृहस्थ, गार्हस्थ्य आश्रमका निर्वाह करे ॥ ४ ॥ पण्डित लोग इस गार्हस्थ्य आश्रमको सब आश्रमोंका मूल कहा करते हैं ॥ ५ ॥ गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, परिव्राजक, दूसरे सङ्कल्पित व्रत, नियम

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

परिव्राजका ये चान्ये संकल्पितव्रतनियमधर्मानुष्ठायिनस्तेषामप्यत एव भिक्षाबलिसंविभागाः प्रवर्तन्ते ॥ ६ ॥ १० ॥

तथा धर्मके अनुष्ठान करनेवाले पुरुष; और संन्यासी सबके ही इस आश्रमसे भिक्षा, अतिथि-सत्कार और दान आदि पाकर अपने धर्मके पालनमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ६ ॥ १० ॥

वानप्रस्थानां द्रव्योपस्कार इति प्रायशः खल्वेते साधवः साधुपथ्यदर्शनाः स्वाध्यायप्रसङ्गिनस्तीर्थाभिगमनदेशदर्शनार्थं पृथिवीं पर्यटन्ति ॥ १ ॥ तेषां प्रत्युत्थानाभिवादनानसूयावाक्प्रदानसौमुख्यशक्त्यासनशयनाभ्यवहार-सत्क्रियाश्चेति ॥ २ ॥ ११ ॥

वानप्रस्थोंके लिये द्रव्य संग्रह करना निषिद्ध है; वानप्रस्थ लोगोंके लिये फल-मूल आदि सम्पादन गृहस्थाश्रममें ही निभता है। ये सब साधु लोग सुन्दर, पथ्य वस्तुओंका भोजन करके वेदपाठमें अनुरक्त होते हैं; ये लोग तीर्थगमन और विविध देश दर्शनके निमित्त पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं ॥ १ ॥ उन्हें देखते ही उठके सम्मुख आकर स्वागत करना, नमस्कार करना, असूयारहित होके वचन कहना, सुखासन, सुखशय्या और भोजनकी सामग्री दान करके उत्तम सत्कार करना उचित है। यही गृहस्थका उनके प्रति कर्त्तव्य है ॥ २ ॥ ११ ॥

भवति चात्र श्लोकः।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ १२ ॥

इस विषयमें यह श्लोक है- जिस गृहस्थके गृहसे आशाके भङ्ग होनेपर- भिक्षा न पानेके कारण- अतिथि लौट जाता है, वह उसे निज दुष्कृत देकर उसके सञ्चित पुण्यका ग्रहण करके गमन करता है ॥ १२ ॥

अपि चात्र यज्ञक्रियाभिर्देवताः प्रीयन्ते निवापेन पितरो वेदाभ्यासश्रवण-धारणेन ऋषयः ॥ १ ॥ अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति ॥ २ ॥ १३ ॥

गार्हस्थ्य आश्रममें रहकर यज्ञ कर्म करनेसे देवता, पितृतर्पणसे पितर, वेदविद्याके अभ्यास, श्रवण और धारणासे ऋषि ॥ १ ॥ और पुत्र उत्पन्न करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ १३ ॥

श्लोकौ चात्र भवतः।

वत्सलाः सर्वभूतनां वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः।
परिवादोपघातौ च पारुष्यं चात्र गर्हितम् ॥ १४ ॥

इस विषयमें दो श्लोक हैं- इस आश्रममें सब प्राणियोंके प्रति स्नेहयुक्त, श्रवणसुखदायक वचन कहना उचित है और दूसरोंको दोष देना, पीडादान और कठोर वचन सुनाना- ये निन्दित कार्य हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चैव विगर्हितः ।
अहिंसा सत्यमक्रोधः सर्वाश्रमगतं तपः ॥ १५ ॥

अवज्ञा करना, अहंकार और दम्भ– ये अत्यंत निन्दित हैं । अहिंसा, सत्यवचन और क्रोध-हीनता यह सब आश्रमवालोंके लिये तपस्या स्वरूप है ॥ १५ ॥

अपि चात्र माल्याभरणवस्त्राभ्यङ्गगन्धोपभोगनृत्तगीतवादित्रश्रुतिसुखनयनाभिरामसंदर्शनानां प्राप्तिर्भक्ष्यभोज्यपेयलेह्यचोष्याणामभ्यवहार्याणां विविधानामुपभोगः स्वदारविहारसंतोषः कामसुखावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

गार्हस्थ्य आश्रममें फूलोंकी माला, आभूषण और वस्त्रधारण, तैलमर्द्दन, सुगंध, उपभोगकी वस्तु, नृत्य, गीत, वाद्य आदि सुनना; नेत्रको प्रसन्न करने योग्य दर्शनीय वस्तुओंको देखना; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चोष्य आदि विविध खाद्य वस्तुओंके उपभोगसे भार्याके साथ विहार, सन्तोष और काम सुखकी भी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

त्रिवर्गगुणनिर्वृत्तिर्यस्य नित्यं गृहाश्रमे ।
स सुखान्यनुभूयेह शिष्टानां गतिमाप्नुयात् ॥ १७ ॥

गृहाश्रममें रहकर जिसकी सदा धर्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंके सहित सत्त्व, रज और तमोगुणकी कृतार्थता होती है, वह इस लोकमें सब सुखोंका अनुभव करके शिष्ट पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

उञ्छवृत्तिर्गृहस्थो यः स्वधर्मचरणे रतः ।
त्यक्तकामसुखारम्भस्तस्य स्वर्गो न दुर्लभः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ ६५८१ ॥

जो गृहस्थ स्वधर्माचरणमें रत रहकर उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाता है और कामसुखको त्यागता है, उसके विषयमें स्वर्ग दुर्ल्लभ नहीं है ॥ १८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८४ ॥ ६५८१ ॥

: १८५ :

भृगुरुवाच—

वानप्रस्थाः खलु ऋषिधर्ममनुसरन्तः पुण्यानि तीर्थानि नदीप्रस्रवणानि सुविविक्तेष्वरण्येषु मृगमहिषवराहसृमरगजाकीर्णेषु तपस्यन्तोऽनुसंचरन्ति ॥ १ ॥

भृगु बोले– वानप्रस्थाश्रमी लोग ऋषि प्रणीत धर्मका अनुसरण करके मृग, महिष, वराह, शार्दूल और जङ्गली हाथियोंसे युक्त निर्जन वनमें तपस्या करते हुए, पुण्य तीर्थोंमें तथा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्यक्तग्राम्यवस्त्राहारोपभोगा वन्यौषधिमूलफलपर्णपरिमितविचित्रनियताहाराः स्थानासनिनो भूमिपाषाणसिकताशर्करावालुकाभस्मशायिनः काशकुशचर्मवल्कलसंवृताङ्गाः केशश्मश्रुनखरोमधारिणो नियतकालोपस्पर्शना अस्कन्नहोमबलिकालानुष्ठायिनः समित्कुशकुसुमोपहारहोमार्जनलब्धविश्रामाः शीतोष्णपवननिष्टप्तविभिन्नसर्वत्वचो विविधनियमयोगचर्याविहितधर्मानुष्ठानहृतमांसशोणितास्त्वगस्थिभूता धृतिपराः सत्त्वयोगाच्छरीराण्युद्वहन्ति ॥ २ ॥ १ ॥

नदी और झरनोंके किनारे रहकर विचरते हैं ॥ १ ॥ वे लोग ग्राम्य वस्त्र, आहार और उपभोग परित्याग करके, सदा वनकी औषधी, फल, मूल और पत्रोंको परिमित, विचित्र तथा नियत रीतिसे आहार किया करते हैं। पृथ्वीही उनका आसन है; भूमि, पत्थर, रेत, कंकरीली मिट्टी, वालुका और भस्म ही उनकी शय्या होती है; काश, कुश, मृग चर्म और वल्कल ही उनके अङ्गके वस्त्र हैं। ये लोग केश, श्मश्रु, नख और रोम धारण किये रहते हैं; यथासमय स्नान करते, बलि—वैश्वदेव, पूजा और अग्निहोत्रके समयको अतिक्रम नहीं करते। समिधा, कुशा और फूल आदिका संग्रह करके, आश्रमको सम्मार्जन करनेके बादही वे विश्राम लाभ करते हैं; सर्दी, गर्मी, वर्षा और वायुको खेलवाडकी तरह सहते रहते, इस कारण इन लोगोंके सब शरीरका चमडा फट जाता है। विविध नियम, पञ्चाग्निसाधन, आहारसङ्कोच, धर्मानुचरण और तीर्थपर्यटनके कारणसे इन लोगोंका मांस, रुधिर, चमडा और हड्डी पर्यन्त सूख जाती है; ये लोग सत्त्वगुण अवलम्बन करके धैर्यशाली होकर शरीर धारण करते हैं ॥ २ ॥ १ ॥

यस्त्वेतां नियतश्चर्यां ब्रह्मर्षिविहितां चरेत्।
स दहेदग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च दुर्जयान् ॥ २ ॥

जो पुरुष इस ब्रह्मर्षिविहित इस वानप्रस्थ धर्मके व्रतका सदा आचरण करता है, वह अग्निकी तरह आपने दोषोंको जलाकर दुर्जय लोकोंको जय करता है ॥ २ ॥

परिव्राजकानां पुनराचारस्तद्यथा ॥ १ ॥ विमुच्याग्निधनकलत्रपरिबर्हसङ्गानात्मनः स्नेहपाशानवधूय परिव्रजन्ति समलोष्टाश्मकाञ्चनास्त्रिवर्गप्रवृत्तेष्वारम्भेष्वसक्तबुद्धयोऽरिमित्रोदासीनेषु तुल्यवृत्तयः स्थावरजरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जानां भूतानां वाङ्मनःकर्मभिरनभिद्रोहिणोऽनिकेताः पर्वतपुलिन-

परिव्राजकोंका— संन्यासियोंका यही आचार है ॥ १ ॥ ये लोग अग्निहोत्र, वित्त, स्त्री आदि परिवार और शय्या आदि भोगसामग्रियोंके उपभोगसे आत्माको विरत करके स्नेहपाशोंको त्यागकर संन्यासधर्म ग्रहण करते हैं; ये लोग सुवर्ण, लोष्ठ तथा पत्थरको समान मानते हैं; धर्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें असंसक्तबुद्धि; शत्रु, मित्र और उदासीनके विषयमें

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prof. Retd. Sanskrit, Kashi Vidyapith, Varanasi. Digitized by eGangotri

वृक्षमूलदेवतायतनान्यनुचरन्तो वासार्थमुपेयुर्नगरं ग्रामं वा नगरे पञ्चरात्रिका ग्रामैकरात्रिकाः ॥ २ ॥ प्रविश्य च प्राणधारणमात्रार्थं द्विजातीनां भवनान्यसंकीर्णकर्मणामुपतिष्ठेयुः पात्रपतितायाचितभैक्षाः कामक्रोधदर्पमोहलोभकार्पण्यदम्भपरिवादाभिमानहिंसानिवृत्ता इति ॥ ३ ॥ ३ ॥

समदृष्टि; स्थावर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि भूतोंके विषयमें मन, वचन और कर्मसे कभी अनिष्ट आचरण नहीं करते; ये लोग गृहमें निवास नहीं करते; पर्वत, नदीका किनारा, वृक्षका मूल और देवालयोंमें घूमते हुए वास करनेके लिये गांव अथवा नगरमें उपस्थित होते हैं। ये लोग नगरमें पांच रात्रि और गांवमें केवल एक रात्रि निवास किया करते हैं। ॥ [२] ॥ नगर वा गांवमें पहुंचके असंकीर्ण कर्मवाले द्विजातियोंके गृहपर प्राण-धारणके निमित्त उपस्थित होते हैं। पात्रमें पडी, विना मांगी भीख ग्रहण करते हैं; काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा, अभिमान और हिंसा रहित होते हैं ॥ [३] ॥ ३ ॥

भवति चात्र श्लोकः।

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो मुनिः।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥ ४ ॥

इस विषयमें ये सब श्लोक हैं- जो मुनि सब भूतोंको अभय दान करता हुआ भ्रमण करता है, उसे सब जीवोंसे कभी भय नहीं उत्पन्न होता ॥ ४ ॥

कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति।
यो भैक्षचर्योपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निनां स व्यतियाति लोकान् ॥ ५ ॥

निज शरीरमें स्थित प्राण आदि पञ्च वायुको अग्निहोत्रविधान करके जो ब्राह्मण अग्निके उद्देश्यसे अपने मुखमें भिक्षारूप हविष्यकी आहुति प्रदान करता है, वह अवश्य चिताग्निके परम लोकमें गमन करता है ॥ ५ ॥

मोक्षाश्रमं यःकुरुते यथोक्तं शुचिः सुसंकल्पितबुद्धियुक्तः।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ॥ ६ ॥

जो उत्तम रीतिसे बुद्धिको संकल्प युक्त करके और पवित्र होकर यथा रीतिसे मोक्षाश्रमके नियमोंका अवलम्बन करता है, वह द्विजाति विना ईंधनकी अग्निकी तरह प्रशान्त ब्रह्मलोकमें निवास किया करता है ॥ ६ ॥

भरद्वाज उवाच—

अस्माल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते।
तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

भरद्वाज बोले- हे भगवन्! ऐसा सुना जाता है, कि इस लोकके अनन्तर श्रेष्ठ लोक है; परन्तु यह जाना नहीं जाता, कि वह कैसा है; इसलिये मैं उसे जाननेकी इच्छा करता हूं, आप कृपा करके मेरे समीप उसे वर्णन करिये ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भृगुरुवाच—

उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते ।
पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स वरो लोक उच्यते ॥ ८ ॥

भृगु बोले— हे ब्रह्मन् ! उत्तर दिशाकी ओर सब गुणोंसे सम्पन्न, रमणीय, पवित्र हिमालय पर्वतकी बगलमें पुण्य और कल्याणकारी जो सब सुन्दर देश है, उसेही श्रेष्ठलोक कहा जाता है ॥ ८ ॥

तत्र ह्यपापकर्माणः शुचयोऽत्यन्तनिर्मलाः ।
लोभमोहपरित्यक्ता मानवा निरुपद्रवाः ॥ ९ ॥

वहांपर कोई मनुष्य पापकर्म नहीं करते, सदा पवित्र और अत्यन्त निर्मल हुआ करते हैं; लोभ और मोहको परित्याग करते और उपद्रवहीन होते हैं ॥ ९ ॥

स स्वर्गसदृशो देशस्तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः ।
काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च ॥ १० ॥

वह देश स्वर्गके समान शुभगुणोंसे युक्त है, वहां यथासमय पर मृत्यु होती है, समस्त व्याधि मनुष्योंको स्पर्श नहीं कर सकती ॥ १० ॥

न लोभः परदारेषु स्वदारनिरतो जनः ।
न चान्योन्यवधस्तत्र द्रव्येषु न च विस्मयः ।
परोक्षधर्मो नैवास्ति संदेहो नापि जायते ॥ ११ ॥

वहांके सब लोग निज स्त्रियोंमें रत रहते, कभी पराई स्त्रियोंके विषयमें लोभ नहीं करते। लोभके कारण एक दूसरेका वध नहीं करते; धनके विषयमें उन्हें विस्मय नहीं होता; विशेष करके वहां अधर्म नहीं है, किसीको किसी विषयमें सन्देह नहीं होता ॥ ११ ॥

कृतस्य तु फलं तत्र प्रत्यक्षमुपलभ्यते ।
शय्यायानासनोपेताः प्रासादभवनाश्रयाः ।
सर्वकामैर्वृताः केचिद्धेमाभरणभूषिताः ॥ १२ ॥

वहां किये हुए कार्योंका फल प्रत्यक्ष प्राप्त होता है; कोई कोई समस्त काम्य वस्तुओंसे युक्त होकर विविध शय्या, वाहन, आसन और भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त सुन्दर अट्टालिकाओंका आश्रय करते हैं; सुवर्णादि आभूषणोंसे विभूषित होते हैं ॥ १२ ॥

प्राणधारणमात्रं तु केषांचिदुपपद्यते ।
श्रमेण महता केचित्कुर्वन्ति प्राणधारणम् ॥ १३ ॥

कुछ लोगोंको केवल प्राणधारणके लिये ही भोजन प्राप्त होता है। कुछ लोग अत्यंत परिश्रमसे तपस्या करते हुए प्राण धारण करते हैं ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इह धर्मपराः केचित्केचिन्नैकृतिका नराः ।
सुखिता दुःखिताः केचिन्निर्धना धनिनोऽपरे ॥ १४ ॥

इस लोकमें कोई धर्मपरायण और कोई पापनिष्ठ होते हैं; कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई निर्द्धन और कोई धनवान् हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

इह श्रमो भयं मोहः क्षुधा तीव्रा च जायते ।
लोभश्चार्थकृतो नृणां येन मुह्यन्ति पण्डिताः ॥ १५ ॥

इस लोकमें श्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है; जिस अर्थके जरिये पण्डित लोग भी मोहित होते हैं, मनुष्योंको उस ही अर्थके लिये लोभ उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

इह चिन्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कर्मणः ।
यस्तद्वेदोभयं प्राज्ञः पाप्मना न स लिप्यते ॥ १६ ॥

इस विषयपर धर्म और अधर्म करनेवाले मनुष्योंके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके विचार होते हैं; जो विद्वान् मनुष्य उनके परिणामको जानता है, वह पाप पंकमें लिप्त नहीं होता ॥ १६ ॥

सोपधं निकृतिः स्तेयं परिवादोऽभ्यसूयता ।
परोपघातो हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा ॥ १७ ॥

कपट, शठता, चोरी, निन्दा, असूया, परपीडन, हिंसा, चुगली खाना और झूठ बोलना ॥१७॥

एतानासेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते ।
यस्त्वेतान्नाचरेद्विद्वांस्तपस्तस्याभिवर्धते ॥ १८ ॥

जो इन दुर्गणोंका सेवन करता है, उसकी तपस्या नष्ट होती है और जो विद्वान् पुरुष इन सबका आचरण नहीं करता, उसकी तपस्याकी वृद्धि हुआ करती है ॥ १८ ॥

कर्मभूमिरियं लोक इह कृत्वा शुभाशुभम् ।
शुभैः शुभमवाप्नोति कृत्वाशुभमतोऽन्यथा ॥ १९ ॥

इस लोकमें यह पृथ्वी कर्मभूमि है; यहांपर शुभाशुभ कर्म करनेसे मनुष्यकोशुभ कर्मोंसे शुभफल और अशुभ कर्मोंसे अशुभ फल प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

इह प्रजापतिः पूर्वं देवाः सर्षिगणास्तथा ।
इष्ट्वेष्टतपसः पूता ब्रह्मलोकमुपाश्रिताः ॥ २० ॥

पहिले प्रजापतिने देवताओं और ऋषियोंके सहित इस लोकमें यज्ञ और अभीष्ट तपस्या करके पवित्र होकर परम पुण्यसे प्राप्त ब्रह्मलोकको प्राप्त किया था ॥ २० ॥

उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः ।
इहत्यास्तत्र जायन्ते ये वै पुण्यकृतो जनाः ॥ २१ ॥

पृथ्वीका उत्तर भाग अत्यन्त पुण्ययुक्त और शुभमय है; इस लोकमें जो सब पुरुष पुण्यकार्य करते हैं, वे लोग दूसरी बार वहांपर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

असत्कर्माणि कुर्वन्तस्तिर्यग्योनिषु चापरे ।
क्षीणायुषस्तथैवान्ये नश्यन्ति पृथिवीतले ॥ २२ ॥

दूसरे लोग जो यहां पापकर्म करते हैं, वे पशु–पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेते हैं और दूसरे कितने आयु क्षय होनेपर नष्ट होते हैं, और पातालमें जाते हैं ॥ २२ ॥

अन्योन्यभक्षणे सक्ता लोभमोहसमन्विताः ।
इहैव परिवर्तन्ते न ते यान्त्युत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥

कितने ही लोभमोहसे युक्त और परस्पर भक्षणमें आसक्त होकर इस लोकमें ही रूपान्तरोंमें परिणत होते हैं; वे लोग उत्तर दिशामें स्थित परलोकमें गमन नहीं करते ॥ २३ ॥

ये गुरूनुपसेवन्ते नियता ब्रह्मचारिणः ।
पन्थानं सर्वलोकानां ते जानन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥

जो सब विद्वान् पुरुष सदा संयतेन्द्रिय हो ब्रह्मचर्यमें रत रहके गुरुसेवा–उपासना करते हैं, वे मनीषि लोग सब लोकोंकी गति मालूम करते हैं ॥ २४ ॥

इत्युक्तोऽयं मया धर्मः संक्षेपाद्ब्रह्मनिर्मितः ।
धर्माधर्मौ हि लोकस्य यो वै वेत्ति स बुद्धिमान् ॥ २५ ॥

इस प्रकार मैंने ब्रह्मनिर्मित यह धर्म संक्षिप्त रूपमें वर्णन किया है; जो लोकके धर्म और अधर्मके विषयको जानता है, वही बुद्धिमान् है ॥ २५ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तो भृगुणा राजन्भरद्वाजः प्रतापवान् ।
भृगुं परमधर्मात्मा विस्मितः प्रत्यपूजयत् ॥ २६ ॥

भीष्म बोले– परम धर्मशील प्रतापवान् भरद्वाज महर्षिने भृगुसे इतनी कथा सुनके विस्मययुक्त चित्तसे उनकी पूजा की ॥ २६ ॥

एष ते प्रभवो राजञ्जगतः संप्रकीर्तितः ।
निखिलेन महाप्राज्ञ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ६६०८ ॥

हे महाप्राज्ञ महाराज ! यही मैंने तुमसे विस्तारके सहित जगत्की उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है, फिर क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ २७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ पचासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८५ ॥ ६६०८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: १८६ :

युधिष्ठिर उवाच—

आचारस्य विधिं तात प्रोच्यमानं त्वयानघ ।
श्रोतुमिच्छामि धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पापरहित धर्मज्ञ पितामह ! मैं आपके मुखसे सदाचरणकी विधि सुननेकी इच्छा करता हूं; आप सर्वज्ञ हैं ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

दुराचारा दुर्विचेष्टा दुष्प्रज्ञाः प्रियसाहसाः ।
असन्तो ह्यभिविख्याताः सन्तश्चाचारलक्षणाः ॥ २ ॥

भीष्म बोले—जो लोग दुराचारी, दुष्टचेष्टायुक्त, दुर्बुद्धि और दुःसाहसी हैं, वेही दुष्ट कहके विख्यात होते हैं; परन्तु उत्तम आचार ही साधुओंका लक्षण है ॥ २ ॥

पुरीषं यदि वा मूत्रं ये न कुर्वन्ति मानवाः ।
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमन्ये च ते शुभाः ॥ ३ ॥

जो लोग राजमार्ग, गोष्ठ और धान्यके बीच मल या मूत्रका परित्याग नहीं करते हैं, वेही शुद्ध आचारसे युक्त श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

शौचमावश्यकं कृत्वा देवतानां च तर्पणम् ।
धर्ममाहुर्मनुष्याणामुपस्पृश्य नदीं तरेत् ॥ ४ ॥

आवश्यक शौच करके आचमन करे, फिर नदीमें स्नान करे और अपने अधिकारानुसार देवताओंका तर्पण करे; प्राचीन लोगोंने इसे ही मनुष्यका धर्म कहा है ॥ ४ ॥

सूर्यं सदोपतिष्ठेत न स्वप्याद्भास्करोदये ।
सायं प्रातर्जपन्संध्यां तिष्ठेत्पूर्वां तथापराम् ॥ ५ ॥

सदा सूर्यकी उपासना करे, सूर्यके उदय होनेपर कभी न सोये; सन्ध्या और सबेरेके समय पूर्व और पश्चिम मुख होकर सन्ध्याके उपलक्षमें स्वगृह्योक्त मन्त्रके सहित सावित्रीका पूजन करे; गायत्री मन्त्रका जप करे ॥ ५ ॥

पश्चार्द्रौ भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखो मौनमास्थितः ।
न नन्देदन्नभक्ष्यांश्च स्वाद्वस्वादु च भक्षयेत् ॥ ६ ॥

दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पांचों अंगोंको धोकर पूर्वकी ओर मुख करके मौनभावसे भोजन करे; भक्ष्य अन्न आदिकी निन्दा न करे, वह स्वादिष्ट हो या न हो, स्वाद लेते हुए भोजन करे ॥ ६ ॥

नार्द्रपाणिः समुत्तिष्ठेन्नार्द्रपादः स्वपेन्निशि ।
देवर्षिनारदप्रोक्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ७ ॥

भोजनके अनन्तर हाथ धोके उठे; रातमें भींगे पैरसे न सोये; देवऋषि नारदने इसीको सदाचरका लक्षण कहा है ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुचिकाममनड्वाहं देवगोष्ठं चतुष्पथम् ।
ब्राह्मणं धार्मिकं चैव नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥

यज्ञ आदि पवित्र स्थान, वृषभ, देवालय, चौराहा, ब्राह्मण, धर्मात्मा और चैत्य आदि देवस्थानको देखकर सदा प्रदक्षिणा करे ॥ ८ ॥

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते ॥ ९ ॥

सब प्रकारसे अतिथि, स्वजन और सेवकोंके सहित समान रीतिसे भोजन करना गृहस्थोंके लिये प्रशंसनीय है ॥ ९ ॥

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत् ॥ १० ॥

मनुष्योंको दिन और रात्रिमें भोर और सन्ध्याके मध्यान्हकालमें भोजन करनाही देवनिर्दिष्ट है; बीचमें भोजन करनेकी विधि नहीं है; जो इस नियमका पालन करता है, उसे उपवासका फल मिलता है ॥ १० ॥

होमकाले तथा जुह्वन्नृतुकाले तथा व्रजन् ।
अनन्यस्त्रीजनः प्राज्ञो ब्रह्मचारी तथा भवेत् ॥ ११ ॥

होमके समय होमकारी, एकपत्नीक होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे सहवास करनेवाला और परायी स्त्रीपर दृष्टि न डालनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचारीके समान माना जाता है ॥ ११ ॥

अमृतं ब्राह्मणोच्छिष्टं जनन्या हृदयं कृतम् ।
उपासीत जनः सत्यं सत्यं सन्त उपासते ॥ १२ ॥

ब्राह्मणके भोजनसे बचा हुआ अन्न जननीके हृदय—स्तन्यके समान हितकर और अमृत रूपसे ऋषियोंने वर्णन किया है; इससे सब लोग सब तरहसे सत्यकी उपासना करें, साधु लोग आहारशुद्धिसे सत्त्वशुद्धि लाभ करते हुए सत्य स्वरूप परब्रह्मको पाते हैं ॥ १२ ॥

यजुषा संस्कृतं मांसं निवृत्तो मांसभक्षणात् ।
न भक्षयेद्वृथामांसं पृष्ठमांसं च वर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो मांस भक्षण नहीं करता हो, वह यजुर्वेदके मन्त्रोंसे संस्कार किया हुआ मांस भी न खाय; दूसरे वृथा मांसको त्याग दें और श्राद्धसे शिष्ट मांसभोजन भी वह त्याग दें ॥ १३ ॥

स्वदेशे परदेशे वा अतिथिं नोपवासयेत् ।
काम्यं कर्मफलं लब्ध्वा गुरूणामुपपादयेत् ॥ १४ ॥

गृहस्थ मनुष्य स्वदेश और परदेशमें कभी अतिथिको भूखा न रखे; भिक्षा आदि काम्य कर्मोंके फल और अन्न आदि मिलनेपर पिता, माता आदि गुरुजनोंके समीप उसे उपस्थित करे ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुरुभ्य आसनं देयं कर्तव्यं चाभिवादनम् ।
गुरूनभ्यर्च्य युज्यन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ १५ ॥

बडे लोगोंको—गुरुजनोंको बैठनेके लिये आसन देना और उन्हें प्रणाम करना उचित है। मनुष्य लोग गुरुजनोंकी पूजा करके परमायु, यश और सम्पत्तिसे युक्त होते हैं ॥ १५ ॥

नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं न च नग्नां परस्त्रियम् ।
मैथुनं समये धर्म्यं गुह्यं चैव समाचरेत् ॥ १६ ॥

उदयशील सूर्यका दर्शन न करे; वस्त्ररहित स्त्रीकी ओर देखना उचित नहीं है। निज स्त्रीसे धर्मानुसार ऋतुकालमें निर्जन स्थानमें समागम करना योग्य है ॥ १६ ॥

तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः ।
सर्वमार्यकृतं शौचं वालसंस्पर्शनानि च ॥ १७ ॥

सब तीर्थोंके बीच उत्तम तीर्थ विशुद्ध हृदय है, पवित्र पदार्थोंमें परम पवित्र विशुद्ध हृदयही है; आर्य— श्रेष्ठ पुरुषके आचरित सब आचरण ही श्रेष्ठ हैं; गोपूंछके बालोंका स्पर्श आदि कार्य भी पवित्र कहके वर्णित है ॥ १७ ॥

दर्शने दर्शने नित्यं सुखप्रश्नमुदाहरेत् ।
सायं प्रातश्च विप्राणां प्रदिष्टमभिवादनम् ॥ १८ ॥

ब्राह्मणको तथा परिचित मनुष्यको जब देखे तभी उससे सुखप्रश्न करे; सन्ध्या और सवेरेके समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करना कर्तव्य कर्म कहा गया है ॥ १८ ॥

देवगोष्ठे गवां मध्ये ब्राह्मणानां क्रियापथे ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ १९ ॥

देवस्थान, गौओंके बीच, ब्राह्मणोंके श्रौतस्मार्त कर्मोंके अनुष्ठान, वेदपाठ और भोजनके समय दाहिना हाथ उठावे अर्थात् उपवीतयुक्त होवे ॥ १९ ॥

पण्यानां शोभनं पण्यं कृषीणां वाह्यते कृषिः ।
बहुकारं च सस्यानां वाह्ये वाह्यं तथा गवां ॥ २० ॥

जैसे श्रेष्ठ पण्यकी वस्तु, उत्तम खेती कर्म और धान्य आदि शस्योंके निमित्त तत्पर रहनेसे प्रत्यक्ष फल दीखता है, वैसे ही ब्राह्मणकी यथाविधि पूजा करनेसे दिव्य स्त्री और अन्नपान आदिकी वृद्धि तथा वाहनोंमें गोजातिके श्रेष्ठ वाहन प्राप्ति स्वरूप अभिलषित फल मिलता है ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संपन्नं भोजने नित्यं पानीये तर्पणं तथा ।
सुश्रुतं पायसे ब्रूयाद्यवागूं कृसरे तथा ॥ २१ ॥

भोजनकी समाप्ति हो जानेपर दाता सदा पूछे " सम्पन्न है ? " दान लेनेवाला " सुसम्पन्न है " ऐसा वचन उच्चारण करे । और पीनेकी वस्तु दान करनेके समय दाता पूछे– " तर्पण ? " और दान लेनेवाला " सुतर्पण " ऐसा वचन उच्चारण करे । पायस, हलुआ और खिचडी दानके समय दाता ' सुश्रुत ' यह वचन कहे और उत्तर भी इसी प्रकट होना चाहिये ॥ २१ ॥

श्मश्रुकर्मणि संप्राप्ते क्षुते स्नानेऽथ भोजने ।
व्याधितानां च सर्वेषामायुष्यमभिनन्दनम् ॥ २२ ॥

हजामत बनाने, छींकने, स्नान और भोजन करनेपर मनुष्यको तथा पीडित पुरुषोंका ब्राह्मणोंको प्रसन्न करनेका कर्तव्य है; इससे आयु बढती है ॥ २२ ॥

प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् ।
सुतस्त्रिया च शयनं सहभोज्यं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥

सूर्यके सम्मुख होकर पेशाब करना उचित नहीं है, अपनी विष्ठापर दृष्टि न डाले; स्त्रीके सङ्ग एकत्र सोना और एकत्र एक थालीमें भोजन करना छोड दे ॥ २३ ॥

त्वंकारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत् ।
अवराणां समानानामुभयेषां न दुष्यति ॥ २४ ॥

बडे लोगोंका नाम लेकर या तू कहके वार्ता न करे; समान और छोटे पुरुषको " तुम " कहना दोषयुक्त नहीं है ॥ २४ ॥

हृदयं पापवृत्तानां पापमाख्याति वैकृतम् ।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥ २५ ॥

पापियोंका अन्तःकरणही उनके किये हुए पाप कर्मोंका प्रकाश कर देता है अर्थात् उनके मुख और नेत्रविकार आदिसे भीतरी मनके भाव प्रकाशित हुआ करते हैं । जो लोग महजनोंके समीप जानके अपने पापकर्मोंको छिपाते हैं, वे अवश्यही नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

ज्ञानपूर्वं कृतं पापं छादयन्त्यबहुश्रुताः ।
नैनं मनुष्याः पश्यन्ति पश्यन्ति त्रिदिवौकसः ॥ २६ ॥

मूर्ख लोग किये हुए पापोंको जानबूझ कर छिपाया करते हैं । मनुष्योंके न देख सकनेपर भी देवता लोग उसे तो देखते ही हैं ॥ २६ ॥

पापेन हि कृतं पापं पापमेवानुवर्तते ।
धार्मिकेण कृतो धर्मः कर्तारमनुवर्तते ॥ २७ ॥

पापसे छिपा हुआ पापकर्म पापहीका अनुगमन करता है; धर्मात्माका आचरित धर्म धर्मका ही अनुसरण करता है ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पापं कृतं न स्मरतीह मूढो विवर्तमानस्य तदेति कर्तुः ।
राहुर्यथा चन्द्रमुपैति चापि तथाबुधं पापमुपैति कर्म ॥ २८ ॥

इस लोकमें मूर्ख मनुष्य अपने किये हुए पापोंको स्मरण नहीं करता, परंतु पापमें प्रवृत्त हुएका वह पाप स्वयंही उपस्थित होता है। जैसे राहु चन्द्रमाके निकटवर्त्ती होता है, वैसेही पापकर्म मूढ मनुष्यका आश्रय करता है ॥ २८ ॥

आशया संचितं द्रव्यं यत्काले नेह भुज्यते ।
तदबुधा न प्रशंसन्ति मरणं न प्रतीक्षते ॥ २९ ॥

आशाके जरिये सञ्चित किया हुआ धन जो समय पर यहां नहीं उपभोगमें लाया जाता, ज्ञानवान् मनुष्य उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं; मृत्यु कभी किसीकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥२९॥

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात्सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत् ॥ ३० ॥

विद्वान् पुरुष सब जीवोंके किये मानस द्वारा किया हुआ धर्म ही श्रेष्ठ है ऐसा कहा करते हैं; इससे मनसे सब जीवोंके मङ्गलका आचरण करे ॥ ३० ॥

एक एव चरेद्धर्मं नास्ति धर्मे सहायता ।
केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिष्यति ॥ ३१ ॥

अकेले वेदविहित धर्मका आचरण करें; धर्मसाधनके विषयमें किसीके सहायताकी अपेक्षा न करें; धर्मरहित मानसमें दूसरेकी सहायता मिलनेसे क्या होगा ? ॥ ३१ ॥

देवा योनिर्मनुष्याणां देवानामसृतं दिवि ।
प्रेत्यभावे सुखं धर्माच्छश्वत्तैरुपभुज्यते ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ ६६४० ॥

देवता ही मनुष्योंकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण है; धर्म ही सुरपुरमें देवताओंका अमृत है; मनुष्य लोग परलोकमें जानेपर अपूर्व देह पाके धर्मसे ही निरन्तर परम सुख भोगते हैं ॥ ३२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ छियासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥ ६६४० ॥

: १८७ :

युधिष्ठिर उवाच—

अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह चिन्त्यते ।
यदध्यात्मं यताचैतत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! चित्तको अवलम्बन करके जो योगधर्म चिन्तनीय हुआ करता है उसे अध्यात्म कहते हैं, यह सामान्यरीतिसे मुझे मालूम है; परन्तु वह अध्यात्म क्या है और किस प्रकारका है ? आप मुझसे उसे ही कहिये ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhaji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

अध्यात्ममिति मां पार्थ यदेतदनुपृच्छसि ।
तद्व्याख्यास्यामि ते तात श्रेयस्करतरं सुखम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे तात पृथापुत्र ! तुम जो मुझसे अध्यात्म विषय पूछते हो, वह तुम्हारे लिये कल्याणकारी और सुखदायक है । इसलिये मैं उस विषयको वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके प्रीतिं सौख्यं च विन्दति ।
फललाभश्च सद्यः स्यात्सर्वभूतहितं च तत् ॥ ३ ॥

इस लोकमें मनुष्य जिसे जानकर प्रसन्न और सुखी होता है तथा सर्व कामका प्राप्ति रूपी फल लाभ किया करता है; उस अध्यात्म--ज्ञानसे आत्महितकर विषय प्राणियोंके लिये दूसरा कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ॥ ४ ॥

पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पांचोंको महाभूत कहते हैं; ये पांच सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं ॥ ४ ॥

ततः सृष्टानि तत्रैव तानि यान्ति पुनः पुनः ।
महाभूतानि भूतेषु सागरस्योर्मयो यथा ॥ ५ ॥

जैसे लहरें समुद्रसे ही उत्पन्न होकर उसहीमें लीन होती हैं, वैसे ही पृथिवी आदि महाभूत आनन्दस्वरूप अधिष्ठान परब्रह्मसे उत्पन्न होकर बार बार उसहीमें प्राणियोंके सहित लीन होते हैं ॥ ५ ॥

प्रसार्य च यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः
तद्वद्भूतानि भूतात्मा सृष्ट्वा संहरते पुनः ॥ ६ ॥

जैसे कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, वैसे ही सर्वभूतमय आत्मा परब्रह्म परमेश्वर सब भूतोंको उत्पन्न करके फिर उनका संहार करता है ॥ ६ ॥

महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु सूतकृत् ।
अकरोत्तेषु वैषम्यं तत्तु जीवोऽनु पश्यति ॥ ७ ॥

प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरने सब भूतोंके शरीर आदिमें पञ्चमहाभूतोंको स्थापित किया है और स्थापित करके उनमें वैषम्यभाव कर दिया है; शरीर आदिकोंमें जीव उसे देख सकता है ॥ ७ ॥

शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशयोनिजम् ।
वायोस्त्वक्स्पर्शचेष्टाश्च वागित्येतच्चतुष्टयम् ॥ ८ ॥

शब्द, श्रोत्र इन्द्रिय और शरीरके छिद्र—ये तीनों आकाशयोनिज हैं; त्वचा, स्पर्श, चेष्टा और वाणी ये चार वायुयोनिज हैं; ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रूपं चक्षुस्तथा पक्तिस्त्रिविधं तेज उच्यते ।
रसः क्लेदश्च जिह्वा च त्रयो जलगुणाः स्मृताः ॥ ९ ॥

नेत्र, रूप और अन्न आदिके परिपाकस्थान ये तीनों विषय अग्निसे प्रकट हुए हैं; रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा-- ये तीन जलके गुणकार्य माने गये हैं ॥ ९ ॥

घ्रेयं घ्राणं शरीरं च ते तु भूमिगुणास्त्रयः ।
महाभूतानि पञ्चैव षष्ठं च मन उच्यते ॥ १० ॥

गन्ध, घ्राणेंद्रिय और शरीर, ये तीनों भूमिके गुण हैं; इस प्रकार शरीरमें पांच महाभूत हैं; मनको छठवां गिनते हैं ॥ १० ॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव विज्ञानान्यस्य भारत ।
सप्तमी बुद्धिरित्याहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः ॥ ११ ॥

हे भरतकुलप्रदीप ! सब इन्द्रियां और मन ये जीवात्माके विषयोंका ज्ञान कराते हैं; बुद्धि इनकी सातवीं श्रेणीमें है; साक्षी स्वरूप क्षेत्रज्ञ आठवां कहा जाता है ॥ ११ ॥

चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसायाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत्स्थितः ॥ १२ ॥

नेत्र आदि इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है; मन सन्देह करता है; निश्चय करनेवाली चित्तवृत्तिका नाम बुद्धि है; क्षेत्रज्ञ साक्षीकी तरह निवास करता है ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वं पादतलाभ्यां यदर्वागूर्ध्वं च पश्यति ।
एतेन सर्वमेवेदं विद्ध्यभिव्याप्तमन्तरम् ॥ १३ ॥

पैरोंके तलुएसे ऊर्ध्वस्थित शरीरके ऊपर और नीचे सब स्थलोंमें साक्षी चैतन्य व्यापक भावसे निवास करता है, बाहरी हिस्सेमें जो कुछ दृश्यमान शून्य स्थान हैं, वह साक्षी चैतन्यसे परिव्याप्त हैं, यह तुम जान लो ॥ १३ ॥

पुरुषे चेन्द्रियाणीह वेदितव्यानि कृत्स्नशः ।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि भावांस्तदाश्रयान् ॥ १४ ॥

सब इन्द्रियां मन और बुद्धि आदिकी सब तरहसे मनुष्योंको अच्छी तरह जानकारी रखनी उचित है। तम, रज और सत्वगुण उन्हीं इन्द्रियोंके आश्रित है ॥ १४ ॥

एतां बुद्ध्वा नरो बुद्ध्या भूतानामागतिं गतिम् ।
समवेक्ष्य शनैश्चैव लभते शममुत्तमम् ॥ १५ ॥

मनुष्य बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जीवोंकी इसी प्रकार उत्पत्ति और लयके विषयको विचार कर धीरे धीरे परम शान्ति लाभ करता है ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुणान्नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्धयभावे कृतो गुणाः ॥ १६ ॥

तम आदि गुणोंके जरिये बुद्धि बार बार विषयोंमें उपस्थित हुआ करती है; और बुद्धिके साथ मन और पांच इन्द्रियोंको और उनकी वृत्तियोंको भी ले जाते हैं; बुद्धिके अभावमें सत्यादि गुणोंकी संभावना कैसे हो सकती है ? ॥ १६ ॥

इति तन्मयमेवैतत्सर्वं स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलीयते चोद्भवति तस्मान्निर्दिश्यते तथा ॥ १७ ॥

इसी प्रकार ये स्थावर–जङ्गम सब बुद्धिमय हैं, बुद्धि नाश होनेपर सब नष्ट होते हैं, और बुद्धिके प्रभावसे ही सब उत्पन्न हुआ करते हैं; इसही कारण वेदमें समस्त बुद्धिमय कहा गया है ॥ १७ ॥

येन पश्यति तच्चक्षुः शृणोति श्रोत्रमुच्यते ।
जिघ्रति घ्राणमित्याहू रसं जानाति जिह्वया ॥ १८ ॥

बुद्धि जिसके द्वारा देखती है, उसे नेत्र कहते हैं; जिससे सुनती है, उसे कान कहते हैं; जिससे सूंघती है, उसका नाम नाक है; जिससे रसका ज्ञान करती है, उसे जिह्वा कहते हैं ॥ १८ ॥

त्वचा स्पृशति च स्पर्शान्बुद्धिर्विक्रियतेऽसकृत् ।
येन संकल्पयत्यर्थं किंचिद्भवति तन्मनः ॥ १९ ॥

और त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है । बुद्धि बार बार विकृत होती है; जब वह किसी विषयकी कामना जिस कारणसे करती है, तब उसे मन कहा जाता है ॥ १९ ॥

अधिष्ठानानि बुद्धेर्हि पृथगर्थानि पञ्चधा ।
पञ्चेन्द्रियाणि यान्याहुस्तान्यदृश्योऽधितिष्ठति ॥ २० ॥

भिन्न विषयोंको ग्रहण करनेके लिये बुद्धिके पांच निवासस्थान हैं, इन पांचोंको पञ्च इन्द्रिय कहते हैं । बुद्धिसे अदृश्य चिदात्मा प्रागुक्त इन्द्रियोंमें निवास करता है ॥ २० ॥

पुरुषाधिष्ठिता बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते ।
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदनुशोचति ॥ २१ ॥

पुरुषाधिष्ठित बुद्धि सत्त्व, रज, तम इन तीनों भावोंसे वर्त्तमान रहती है; इसहीसे कभी प्रीति-लाभ करती है, कभी दुःख पाती है ॥ २१ ॥

न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते ।
एवं नराणां मनसि त्रिषु भावेष्ववस्थिता ॥ २२ ॥

कभी सुख तथा दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती और मोहमें आच्छन्न होती है । मनुष्योंके मनमें इसी प्रकार बुद्धि तीनों भावोंमें निवास करती है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतान्नातिवर्तते ।
सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान् ॥ २३ ॥

जैसे नदियोंका स्वामी उत्ताल तरङ्गोंसे संयुक्त हो अपनी महान् तट भूमिको कभी लांघ नहीं जाता, वैसेही सुख, दुःख, मोह आदि सर्वभाव स्वरूपी बुद्धि सुख, दुःख, मोह आदिको अतिक्रम नहीं कर सकती ॥ २३ ॥

अतिभावगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते ।
प्रवर्तमानं हि रजस्तद्भावमनुवर्तते ॥ २४ ॥

बुद्धि सुख–दुःख आदिसे अतिक्रान्त होकर सत्तामात्र वृत्तिको अवलम्बन करके निवास करती है; शेषमें उत्थानके समय प्रवर्त्तमान रजोगुण बुद्धिका अनुगमन किया करता है; ॥ २४ ॥

इन्द्रियाणि हि सर्वाणि प्रदर्शयति सा सदा ।
प्रीतिः सत्त्वं रजः शोकस्तमो मोहश्च ते त्रयः ॥ २५ ॥

तब रजोगुणसे युक्त वैसी बुद्धि इन्द्रियोंको प्रदर्शित करती है; सत्त्वगुण प्रीतियुक्त, रजोगुण शोकात्मक और तमोगुण मोहस्वरूप कहके वर्णित हुए हैं ॥ २५ ॥

ये ये च भावा लोकेऽस्मिन्सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु ।
इति बुद्धिगतिः सर्वा व्याख्याता तव भारत ॥ २६ ॥

हे भारत ! इस लोकमें इन्हीं सत्त्व, रज, तम तीनों भावोंमें शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषय आदि जो सब भाव वर्त्तमान हैं, वे सभी बुद्धिके आश्रय हैं; यह मैंने तुम्हारे समीप बुद्धिकी सम्पूर्ण गतिकी व्याख्या की है ॥ २६ ॥

इन्द्रियाणि च सर्वाणि विजेतव्यानि धीमता ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्राणिनां संश्रिताः सदा ॥ २७ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको अपनी सब इन्द्रियोंको जीतना उचित है; इसे भी विस्तारपूर्वक कहा है । सत्त्व, रज और तम–ये तीनों गुण सदा प्राणियोंमें स्थित होरहे हैं ॥ २७ ॥

त्रिविधा वेदना चैव सर्वसत्त्वेषु दृश्यते ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति भारत ॥ २८ ॥

हे भारत ! और इनके कारण सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी, ये तीन प्रकारकी पीडा भी सब प्राणियोंमें दीख पडती हैं ॥ २८ ॥

सुखस्पर्शः सत्त्वगुणो दुःखस्पर्शो रजोगुणः ।
तमोगुणेन संयुक्तौ भवतोऽव्यावहारिकौ ॥ २९ ॥

सत्त्वगुण सुखयुक्त और रजोगुण दुःखयुक्त है; ये दोनों जब तमोगुणसे मिलते हैं, तब अव्यावहारिक हुआ करते हैं ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
वर्तते सात्त्विको भाव इत्यवेक्षेत तत्तदा ॥ ३० ॥

जब शरीर या मनमें प्रीतियुक्त प्रसन्नताका भाव उत्पन्न हो, तब सात्त्विक भावका निर्माण हुआ है, ऐसे जानना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ यद्दुःखसंयुक्तमतुष्टिकरमात्मनः ।
प्रवृत्तं रज इत्येव तन्नसंरभ्य चिन्तयेत् ॥ ३१ ॥

जब मनमें आत्माको अप्रसन्न करनेवाला तथा दुःखमिश्रित भाव जाग्रत हो जाय, तब वह रजोरूपसे प्रवृत्त है, यह समझना चाहिये; दुःखकी खोजके कारण भययुक्त होके उस विषयकी चिन्ता न करे ॥ ३१ ॥

अथ यन्मोहसंयुक्तमव्यक्तमिव यद्भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ३२ ॥

जब मनमें मोहयुक्त अव्यक्त, अप्रतर्क्य और अविज्ञेय विषय निर्माण हो, तो तमोगुणकी वृद्धि हुई है, ऐसा ही निश्चय करे ॥ ३२ ॥

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता ।
कथंचिदभिवर्तन्त इत्येते सात्त्विका गुणाः ॥ ३३ ॥

जब मनमें प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्तचित्तता आदिका उद्भव हो गया हो, तो इन गुणोंको सात्त्विक जानिये ॥ ३३ ॥

अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाक्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुभिः ॥ ३४ ॥

अप्रसन्नता, परिताप, शोक, लोभ और असहनशीलता, ये सब रजोगुणके लक्षण कभी कारण कभी अकारणसे ही दीख पडते हैं ॥ ३४ ॥

अभिमानस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिता ।
कथंचिदभिवर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः ॥ ३५ ॥

अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा, इस प्रकारके विविध दोष किसी तरह घेरते हों तो वे तामस गुणके विविध रूप समझे ॥ ३५ ॥

दूरगं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम् ।
मनः सुनियतं यस्य स सुखी प्रेत्य चेह च ॥ ३६ ॥

दूर भागनेवाला, विविध कार्योंमें शीघ्रतासे जानेवाला, कामनायुक्त और सदा संदेह करनेवाला, मन जिसने स्वाधीन किया है, वह मनुष्य इस लोक और परलोकमें सुखी होता है ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः ।
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् ॥ ३७ ॥

सूक्ष्म बुद्धि और साक्षी चैतन्य क्षेत्रज्ञके इस महत् अन्तरको देखो; तमायःपण्डिवत् इतरेतर अविचार निबन्धन बुद्धि, अहङ्कार आदि सब गुणोंको उत्पन्न करती है; साक्षी चैतन्य स्वयं निर्लिप्त रहके कुछ भी उत्पन्न नहीं करता; बुद्धिके सब कार्योंको देखता है ॥ ३७ ॥

मशकोदुम्बरौ चापि संप्रयुक्तौ यथा सदा ।
अन्योन्यमन्यौ च यथा संप्रयोगस्तथा तयोः ॥ ३८ ॥

जैसे गूलरका फल और उसके अंदर रहनेवाले कीडे एक साथ रहते हुए भी पृथक् हैं, वैसे ही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ आत्माका एक साथ रहना और भिन्न होना जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ।
यथा मत्स्यो जलं चैव संप्रयुक्तौ तथैव तौ ॥ ३९ ॥

जैसे जल और मछली एक दूसरेसे अलग होकर भी परस्पर सदा संयुक्त रहते हैं, वैसेही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ निरन्तर संयुक्त रहनेपर भी स्वभावके जरिये पृथग्भूत हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥

न गुणा विदुरात्मानं स गुणान्वेत्ति सर्वशः ।
परिद्रष्टा गुणानां च संस्रष्टा मन्यते सदा ॥ ४० ॥

सत्त्व आदि गुण जड होनेके कारण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु चेतन आत्मा गुणोंको सब प्रकारसे ही जानता है। क्षेत्रज्ञ आत्मा देह, अहंकार आदि गुणोंका द्रष्टा होकर भी अविद्याके कारण " मैं गौर, मैं काण, मैं सुखी, मैं कर्त्ता " इत्यादि अभिमान किया करता है;– भिन्न होनेपर भी अपनेको उन गुणोंसे संयुक्त मानता है ॥ ४० ॥

इन्द्रियैस्तु प्रदीपार्थं कुरुते बुद्धिसप्तमैः ।
निर्विचेष्टैरजानद्भिः परमात्मा प्रदीपवत् ॥ ४१ ॥

परमात्मा घटाच्छन्न दीपककी भांति निश्चेष्ट और ज्ञानहीन पञ्च इन्द्रिय, मन और बुद्धि–इन सातोंके जरिये विषयोंको प्रकाशित करता है– अनुभव करता है ॥ ४१ ॥

सृजते हि गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ।
संप्रयोगस्तयोरेष सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवः ॥ ४२ ॥

बुद्धि गुणोंकी सृष्टि करती है; क्षेत्रज्ञ– आत्मा साक्षी बनकर उसे पूर्ण रीतिसे देखा करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका सम्बन्ध अनादिसिद्ध है ॥ ४२ ॥

आश्रयो नास्ति सत्वस्य क्षेत्रज्ञस्य च कश्चन ।
सत्त्वं मनः संसृजति न गुणान्वै कदाचन ॥ ४३ ॥

बुद्धिका परमात्माके सिवा दूसरा कोई आश्रय नहीं है और क्षेत्रज्ञका भी कोई दूसरा आश्रय नहीं है। बुद्धि मनसेही सम्बन्ध रखती है; गुणोंके साथ उसका कोई संपर्क नहीं होता ॥४३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रश्मींस्तेषां स मनसा यदा सम्यङ्नियच्छति ।
तदा प्रकाशतेऽस्यात्मा घटे दीपो ज्वलन्निव ॥ ४४ ॥

बुद्धि मनकी सृष्टि करती है, परन्तु मूलभूत तीनों गुण कदापि उससे नहीं उत्पन्न हुए हैं; इससे मनकी सृष्टि आरंभ करके बुद्धिका कार्य प्रवर्त्तित हुआ करता है। घडेके बीच जलते हुए दीकपकी भांति अब आत्मा मनसे इन्द्रियवृत्तियोंको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस ही समय वह बुद्धिके निकट प्रकाशित होता है ॥ ४४ ॥

त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म नित्यमात्मरतिर्मुनिः ।
सर्वभूतात्मभूतः स्यात्स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४५ ॥

जो स्वाभाविक कर्मोंका परित्याग करके सदा आत्मरत, मननशील और सब भूतोंका आत्मरूप होता है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

यथा वारिचरः पक्षी लिप्यमानो न लिप्यते ।
एकमेव कृतप्रज्ञो भूतेषु परिवर्तते ॥ ४६ ॥

जैसे हंस आदि चलचर पक्षी जलमें भ्रमण करके भी उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही कृतबुद्धि पुरुष निर्लिप्त रहकर सब भूतोंमें विचरता है ॥ ४६ ॥

एवंस्वभावमेवैतत्स्वबुद्ध्या विहरेन्नरः ।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्च चरेद्विगतमत्सरः ॥ ४७ ॥

यह आत्मतत्त्व ऐसाही निर्लिप्त और शुद्ध स्वभाववाला है, यह जानकर वह विद्वान् निज बुद्धिबलके सहारे शोकरहित, अप्रहृष्ट, मत्सररहित और सब भूतोंमें समदर्शी होकर विहार करे ॥ ४७ ॥

स्वभावसिद्धया संसिद्धान्स नित्यं सृजते गुणान् ।
ऊर्णनाभिर्यथा स्रष्टा विज्ञेयास्तन्तुवद्गुणाः ॥ ४८ ॥

जैसे मकडी निमित्त और उपादान होकर सूत–जाला बनाती है, वैसेही स्वभाव–योगयुक्त विद्वान् पुरुष देहेन्द्रियादिकोंसे अभेदज्ञानजनित पररूपता परित्याग करके भूतभौतिक गुणोंको उत्पन्न किया करता है; इसलिये सत्त्वादि गुणोंको धागेके समान जानना चाहिये ॥ ४८ ॥

प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते निवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं तदनुमानेन सिध्यति ॥ ४९ ॥

आत्मसाक्षात् हो जानेपर गुणोंके प्रध्वस्त होनेपर उनकी पूर्णरूपसे निवृत्ति नहीं होती; प्रत्यक्षमें निवृत्तिकी प्राप्ति नहीं देखी जाती; इसलिये वह परोक्ष विषय अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे ।
उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति ॥ ५० ॥

अनेक जीववादी पुरुष व्यवहारके अनुरोधसे इसही प्रकार निश्चय करते हैं; एक जीववादी बुद्धिमान् पुरुष निवृत्तिको ही अज्ञानकृत प्रपञ्च कहा करते हैं। ऊपर कहे हुए दोनों विषयोंकी आलोचना करके निज बुद्धिके अनुसार ध्यानसे प्रत्यक्ष करे ॥ ५० ॥

इतीमं हृदयग्रन्थिं बुद्धिभेदमयं दृढम् ।
विमुच्य सुखमासीत न शोचेच्छिन्नसंशयः ॥ ५१ ॥

इसही प्रकार जलते हुए लोहेकी तरह बुद्धि और क्षेत्रज्ञके परस्पर मेलके कारण क्षेत्रज्ञमें बुद्धि-धर्म दुःख आदि और बुद्धिमें क्षेत्रज्ञके धर्म सत्त्व चित्तत्व आदि दीख पडते हैं। तत्वजिज्ञासु मनुष्य इस बुद्धिभेदमय दृढ हृदयग्रन्थि छुडाकर सुखसे निवास किया करता है, संशयोंके कट जानेपर फिर वह शोक प्रकाश नहीं करता ॥ ५१ ॥

मलिनाः प्राप्नुयुः शुद्धिं यथा पूर्णां नदीं नराः ।
अवगाह्य सुविद्वांसो विद्धि ज्ञानमिदं तथा ॥ ५२ ॥

जैसे मैले शरीरवाले मनुष्य जलसे भरी हुई नदीमें स्नान करके शुद्ध हो जाते हैं, वैसेही मलिन चित्त मनुष्य विज्ञान अवलम्बन करके सिद्धि लाभ किया करते हैं; इसलिये इस जगत्में ज्ञानके समान पवित्र पदार्थ दूसरा कुछ भी नहीं है, यह जानो ॥ ५२ ॥

महानदीं हि पारज्ञस्तप्यते न तरन्यथा ।
एवं ये विदुरध्यात्मं कैवल्यं ज्ञानमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

महानदीके पार जानेका उपाय जाननेवाला पुरुष केवल जाननेसे कृतार्थ नहीं होता; जबतक वह नौकासे पार न हो जाय, तबतक वह चिन्तासे युक्त रहता है; इसी प्रकार जो लोग हृदयाकाशमें निर्विषय श्रेष्ठ ज्ञानकी आलोचना करते हैं, वे कृतार्थ होते हैं ॥ ५३ ॥

एतां बुद्ध्वा नरः सर्वां भूतानामागतिं गतिम् ।
अवेक्ष्य च शनैर्बुद्ध्या लभते शं परं ततः ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य जीवोंकी उत्पत्ति और लयके विषयोंको बुद्धिसे धीरे धीरे आलोचना करके उस ज्ञानको प्राप्त करता है, वह अनन्त सुख, कल्याण भोग करता है ॥ ५४ ॥

त्रिवर्गो यस्य विदितः प्राग्ज्योतिः स विमुच्यते ।
अन्विष्य मनसा युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ ५५ ॥

धर्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग नाशवान् हैं, यह जिसे विदित है, किये हुए कार्य अर्थात् कामसुख आदि अनित्य हैं, यह जानके जो उन्हें परित्याग करता है, वह श्रवण मननके जरिये निश्चय करके ध्याननिष्ठ और तत्वदर्शी होकर आत्मदर्शनसे ही सब कामना लाभ करके निरुत्सुक रहता है ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियेषु विभागशः ।
तत्र तत्र विसृष्टेषु दुर्जयेष्वकृतात्मभिः ॥ ५६ ॥

जिन्होंने अपने मनको संयमित नहीं किया है, वे भिन्न विषयोंकी ओर प्रेरित हुई दुर्जय इंद्रियोंमें आत्माका दर्शन नहीं कर सकते ॥ ५६ ॥

एतद्बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ।
विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥ ५७ ॥

मनुष्य इसे जानके ज्ञान युक्त होता है, इससे बढके ज्ञानका लक्षण और कौनसा है ? मनीषी पुरुष इस ही परमात्मातत्त्वको जानके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं ॥ ५७ ॥

न भवति विदुषां ततो भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् ।
न हि गतिरधिकास्ति कस्यचित्सति हि गुणे प्रवदन्त्यतुल्यताम् ॥ ५८ ॥

रसरीमें सर्पभ्रम आदि जिस अज्ञानसे मूर्ख पुरुषोंको महत् संसारदुःख हुआ करता है, विद्वान् मनुष्योंको उससे भयकी संभावना नहीं होती । मुक्ति ही सबकी गति है, उसमे बढके किसीके विषयमें और उपाय कुछ नहीं है; तब शम, दम आदि गुणोंकी प्रधानतासे मुक्तिकी अतुल्यता होती है; ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं ॥ ५८ ॥

यत्करोत्यनभिसन्धिपूर्वकं तच्च निर्णुदति यत्पुरा कृतम् ।
नाप्रियं तदुभयं कुतः प्रियं तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥ ५९ ॥

जो निष्काम होकर कर्म करता है, उस निष्काम कर्म करनेवालेका कर्म पूर्वके किये हुए दोषोंको नष्ट करता है; पूर्वकृत् अथवा वर्त्तमानके किये हुए वे दोनों प्रकारके कर्म ज्ञानी कर्त्ताको प्रिय वा अप्रिय फलवाले नहीं होते हैं ॥ ५९ ॥

लोक आतुरजनान्विराविणस्तत्तदेव बहु पश्य शोचतः ।
तत्र पश्य कुशलानशोचतो ये विदुस्तदुभयं पदं सदा ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ६७०० ॥

जनसमाजमें पूर्णरीतिसे अभिनिवेशपूर्वक देखो, आतुर लोग मरे हुए स्त्री–पुत्रादिकोंके निमित्त अत्यन्त शोक प्रकाश करते हैं, और जो लोग सार–असार विवेकमें निपुण हैं, वे उस विषयमें शोकरहित होकर निवास करते हैं; इससे जो लोग क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति इन दोनों विषयोंको जानते हैं, वेही ज्ञानियोंके गमन करने योग्य पद प्राप्त करते हैं, उनकी अवस्था भी देखलो ॥ ६० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ सतासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ ६७०० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: १८८ :

भीष्म उवाच—

हन्त वक्ष्यामि ते पार्थ ध्यानयोगं चतुर्विधम् ।
यं ज्ञात्वा शाश्वतीं सिद्धिं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ १ ॥

भीष्म बोले—हे पृथापुत्र ! मैंने तुमसे आत्मतत्वके विषय कहे, अब उसके जाननेका उपाय चार प्रकारके ध्यानयोगका विषय कहूंगा; महर्षि लोग इसे जानके इस लोकमें शाश्वती सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः ।
महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः ॥ २ ॥

ज्ञानसें तृप्त निर्वाणनिष्ठ चित्तवाले महर्षि लोग उसी उपायका अवलम्बन करते हैं, जिस प्रकारसे ध्यान भली भांति अनुष्ठित हो ॥ २ ॥

नावर्तन्ते पुनः पार्थ मुक्ताः संसारदोषतः ।
जन्मदोषपरिक्षीणाः स्वभावे पर्यवस्थिताः ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! संसारके काम, क्रोध आदि दोषोंसे छूटकर फिर लौटके संसारमें नहीं आते; क्यों कि वे लोग जन्मदोषसे रहित होके आत्मस्वरूपमें निवास करते हैं ॥ ३ ॥

निर्द्वंद्वा नित्यसत्त्वस्था विमुक्ता नित्यमाश्रिताः ।
असङ्कीर्णविवादीनि मनःशान्तिकराणि च ॥ ४ ॥

सर्दी, गर्मी, आदि द्वन्द्वोंके क्लेशोंसे रहित, सदा सत्त्वगुणमें स्थित, लोभ आदि सब प्रकारके दोषोंसे रहित, निष्परिग्रह और शौच, सन्तोष आदि नियमोंमें निष्ठावान् रहें; स्त्रियोंमें आसक्तिहीन, प्रतिपक्षरहित, मनके शान्तिकारी स्थानमें ॥ ४ ॥

तत्र स्वाध्यायसंश्लिष्टमेकाग्रं धारयेन्मनः ।
पिण्डीकृत्येन्द्रियग्राममासीनः काष्ठवन्मुनिः ॥ ५ ॥

इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे एकत्रित कर, काष्ठकी भांति बैठके और मननशील होकर ध्यानके जरिये संश्लिष्ट मनको एकाग्र रूपसे ध्यान धारणामें लगावे ॥ ५ ॥

शब्दं न विन्देच्छ्रोत्रेण स्पर्शं त्वचा न वेदयेत् ।
रूपं न चक्षुषा विद्याज्जिह्वया न रसांस्तथा ॥ ६ ॥

योगी पुरुष कानसे शब्दग्रहण, त्वचासे स्पर्शज्ञान, नेत्रसे रूप और जीभसे रस मालूम नहीं करे ॥ ६ ॥

ध्येयाण्यपि च सर्वाणि जह्याद्ध्यानेन योगवित् ।
पञ्चवर्गप्रमाथीनि नेच्छेच्चैतानि वीर्यवान् ॥ ७ ॥

और ध्यानके जरिये सब सूंघने योग्य विषयोंको भी परित्याग करे। योगबलशाली पुरुष श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियोंको प्रमथन करनेवाले इन शब्द आदि विषयोंकी कामना नहीं करे ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततो मनसि संसज्य पञ्चवर्गं विचक्षणः ।
समादध्यान्मनो भ्रान्तमिन्द्रियैः सह पञ्चभिः ॥ ८ ॥

अनन्तर बुद्धिमान् योगी मनमें श्रोत्र आदि पांचों इंद्रियोंको निगृहीत करके, फिर पांचों इन्द्रियोंके सहित मिलकर चञ्चल मनको ध्यानमें स्थिर करे ॥ ८ ॥

विसंचारि निरालम्बं पञ्चद्वारं चलाचलम् ।
पूर्वे ध्यानपथे धीरः समादध्यान्मनोऽन्तरम् ॥ ९ ॥

धीर योगी पहले विषयोंमें भ्रमणशील, देहादि अवलम्बनशून्य, पञ्चद्वार और चञ्चल मनको हृदयाकाशमें ध्यानपथमें स्थित करे ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम् ।
एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः ॥ १० ॥

जब यह योगी इन्द्रियोंके सहित मनको एकाग्र करता है, तब उसके ध्यानमार्गका आरम्भ होता है; यह प्रथम ध्यानपथ मुख्य रीतिसे मेरे जरिये वर्णित हुआ है ॥ १० ॥

तस्य तत्पूर्वसंरुद्धं मनःषष्ठमनन्तरम् ।
स्फुरिष्यति समुद्भ्रान्तं विद्युदम्बुधरे यथा ॥ ११ ॥

इस प्रकार इंद्रियोंसहित स्थिर हुआ मन, जैसे घूमती हुई बिजली बादलोंके निकट स्फूर्त्तियुक्त हुआ करती है, वैसेही वह षष्ठांश मन ध्यानके समयमें भी चञ्चल होकर विषयोंकी ओर जाने लगता है ॥ ११ ॥

जलबिन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः ।
एवमेवास्य तच्चित्तं भवति ध्यानवर्त्मनि ॥ १२ ॥

जैसे कमलके पत्तेपर स्थित चपल जलबिन्दु सब तरहसे चंचल रहती है, ध्यानमार्गमें वर्त्तमान योगीका चित्त पहले वैसे ही चञ्चल हुआ करता है ॥ १२ ॥

समाहितं क्षणं किंचिद्ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति ।
पुनर्वायुपथं भ्रान्तं मनो भवति वायुवत् ॥ १३ ॥

मन ध्यानपथमें स्थिर होकर क्षणभर स्थित रहता है, फिर वायुमार्गको पाके अनेक प्रकारके रूप दिखाते हुए वायुकी भांति भ्रमण किया करता है ॥ १३ ॥

अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रीरमत्सरः ।
समादध्यात्पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित् ॥ १४ ॥

ध्यानयोगको जाननेवाला योगी निर्वेदशून्य, क्लेशरहित, आलस और मत्सरताहीन होकर, ध्यानके जरिये फिर चित्तको स्थिर करनेका प्रयत्न करे ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विचारश्च वितर्कश्च विवेकश्चोपजायते ।
मुनेः समादधानस्य प्रथमं ध्यानमादितः ॥ १५ ॥

समाधि करनेमें उद्यत मननशील मनुष्यके मनमें अधिकारभेदसे ध्यानके पहिले विचार, विवेक और वितर्क आदि उपस्थित होते हैं ॥ १५ ॥

मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत् ।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत्कुर्यादेवात्मनो हितम् ॥ १६ ॥

उसमेंसे पहले अधिकारियोंके अन्तःकरणमें मनसे कल्पित पीताम्बर आदि विग्रहोंमें जो चित्तका प्रणिधान होता उसे विचार करते हैं, इस विचारसे आलम्बन स्वरूप स्थूल विग्रहके एक एक अंशको परित्याग कर ध्येय वस्तुके एक अवयवभूत चरण आदिको विचारते विचारते विवेक उपस्थित होता है। उस विवेकके जरिये ईश्वरस्वरूपसे चिन्तितव्य मूर्त्तिका जडत्वभाव दूर होकर चेतनमात्रकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रकार विवेकसे निर्गुण परब्रह्म विषयका ज्ञान उत्पन्न होता है; इसलिये मननशील साधक मनुष्य मनके जरिये क्लेशित होकर भी एकाग्र मनसे समाधि किया करे, वह कदापि निर्वेद प्राप्त नहीं होवे, अपने हित कार्यमेंही नियुक्त रहे ॥ १६ ॥

पांसुभस्मकरीषाणां यथा वै राशयश्चिताः ।
सहसा वारिणा सिक्ता न यान्ति परिभावनाम् ॥ १७ ॥

जैसे पांशु, भस्म और शुष्क गोमयसे संचित ढेर सहसा जलसे भींगनेपर इतने तरल नहीं होते कि उनसे आवश्यक कार्य किया जा सके ॥ १७ ॥

किंचित्स्निग्धं यथा च स्याच्छुष्कचूर्णमभावितम् ।
क्रमशस्तु शनैर्गच्छेत्सर्वं तत्परिभावनम् ॥ १८ ॥

और शुष्कचूर्ण पदार्थ अल्पस्नेहके कारण पहिले अभिभावित रहके फिर बहुत समय तक जलसे क्लिन्न होकर क्रमसे मूर्त्ताकार धारण किया करते हैं ॥ १८ ॥

एवमेवेन्द्रियग्रामं शनैः संपरिभावयेत् ।
संहरेत्क्रमशश्चैव स सम्यक्प्रशमिष्यति ॥ १९ ॥

वैसे ही इन्द्रियोंको धीरे धीरे विषयोंकी ओरसे हटावे और चित्तको ध्यानके अभ्याससे क्रमशः स्नेहयुक्त बनावे; जो ऐसा करता है वही सम्यक् रूपसे चित्तको प्रशान्त कर सकता है ॥ १९ ॥

स्वयमेव मनश्चैव पञ्चवर्गश्च भारत ।
पूर्वं ध्यानपथं प्राप्य नित्ययोगेन शाम्यति ॥ २० ॥

हे भारत ! योगी स्वयं मन और पंच इन्द्रियोंको सदा अभ्यस्तयोगके जरिये पहले ध्यानमार्गमें स्थापित करके दग्धेन्धन अग्निकी तरह आप भी शान्त होवे, अर्थात् ब्रह्माकार चित्तवृत्ति दूसरी समस्त वृत्तियोंको प्रशान्त करती हुई निर्माल्यकी भांति स्वयं शान्त हुआ करती है ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Kabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित् ।
सुखमेष्यति तत्तस्य यदेवं संयतात्मनः ॥ २१ ॥

मनोनिग्रहपूर्वक ध्यानमें रत योगीको जो परम सुख मिलता है, वह पुरुषार्थसे वा दैव योगसे भी नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि ।
गच्छन्ति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तन्निरामयम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ ६७२२ ॥

योगी उस ही ध्यानके परम सुखसे युक्त होकर ध्यान कार्यमें अधिक अनुरक्त रहता है; इसी प्रकार योगी दुःख-शोकसे रहित निरामय निर्वाण पद लाभ किया करते हैं ॥ २२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥ ६७२२ ॥

: १८९ :

युधिष्ठिर उवाच—

चातुराश्रम्यमुक्तं ते राजधर्मास्तथैव च ।
नानाश्रयाश्च बहव इतिहासाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— आपने चार आश्रम और राजधर्मोंको वर्णित किया तथा अनेक प्रकारके विषयोंसे सम्बन्धित इतिहास भी कहे ॥ १ ॥

श्रुतास्त्वत्तः कथाश्चैव धर्मयुक्ता महामते ।
सन्देहोऽस्ति तु कश्चिन्मे तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २ ॥

और हे महाबुद्धिमान् ! आपसे धर्मयुक्त सब कथाएं मैंने सुनी है, अब मुझे किसी विषयमें सन्देह है, आप उस विषयमें उपदेश दान करनेकी कृपा करें ॥ २ ॥

जापकानां फलावाप्तिं श्रोतुमिच्छामि भारत ।
किं फलं जपतामुक्तं क्व वा तिष्ठन्ति जापकाः ॥ ३ ॥

हे भारत ! मैं जापकोंके फलप्राप्ति विषयको सुननेकी अभिलाषा करता हूं। शास्त्रमें जापक लोगोंके लिये कैसा फल वर्णित हैं ? जापक लोग किन लोकोंमें स्थान प्राप्त करते हैं ॥३॥

जप्यस्य च विधिं कृत्स्नं वक्तुमर्हसि मेऽनघ ।
जापका इति किं चैतत्साङ्ख्ययोगक्रियाविधिः ॥ ४ ॥

हे पापरहित ! जपकी कैसी विधि है ? यह आप सब मेरे समीप वर्णन करिये। "जापक" इस शब्दके जरिये वेदान्तविचार, अथवा चित्तवृत्तिनिरोध वा कर्म, इस सबका प्रकाश अर्थात् विचारयुक्त कर्म और आचार वर्णित हुआ करता है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

किं यज्ञविधिरेवैष किमेतज्जप्यमुच्यते ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ५ ॥

अथवा यह जप ब्रह्मयज्ञविधिरूपसे कहा जाता है ? जप किसको कहते हैं ? यह सब मेरे समीप वर्णन करिये, आपको मैं सर्वज्ञ समझता हूं ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यमस्य यत्पुरा वृत्तं कालस्य ब्राह्मणस्य च ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— पहिले समयमें यम, काल और किसी ब्राह्मणसे आपसमें जो वार्त्ता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ ६ ॥

संन्यास एव वेदान्ते वर्तते जपनं प्रति ।
वेदवादाभिनिर्वृत्ता शान्तिर्ब्रह्मण्यवस्थितौ ।
मार्गौ तावप्युभावेतौ संश्रितौ न च संश्रितौ ॥ ७ ॥

वेदान्त—सांख्यमें जप क्रिया त्यागका विषय ही वर्णित हुआ है; क्योंकि सांख्य मतके अनुयायी वेदवाक्य निवृत्तिप्रधान, शान्त और ब्रह्मपरायण हैं। प्रमाणान्तरोंसे न मालूम होने योग्य ब्रह्मात्मैक्यज्ञानरूप कैवल्य पदलाभके कारण वेदान्तवाक्य जपकी उपेक्षा नहीं करते। दूसरे शुभदर्शी मुनियोंके जरिये जो सांख्य और योगरूपसे कहे गये हैं, वे दोनों मार्ग ही जप विषयमें संश्रित और असंश्रित हुआ करते हैं ॥ ७ ॥

यथा संश्रूयते राजन्कारणं चात्र वक्ष्यते ।
मनःसमाधिरत्रापि तथेन्द्रियजयः स्मृतः ॥ ८ ॥

हे महाराज ! ऊपर कहे हुए दोनों मार्ग—सांख्य और योग—जिस प्रकार जपके सङ्ग संयुक्त होते हैं, उसका कारण कहता हूं। इन दोनों मार्गोंमें मनके निग्रह और इन्द्रियजयकी आवश्यकता होती है ॥ ८ ॥

सत्यमग्निपरीचारो विविक्तानां च सेवनम् ।
ध्यानं तपो दमः क्षान्तिरनसूया मिताशनम् ॥ ९ ॥

सत्य कहना, अग्नि परिचर्या, शुद्ध आहार और निर्जन स्थानमें निवास, ध्येयाकारप्रत्यय-प्रवाह लक्षण ध्यान, विषयोंके दोषदर्शन (आलोचना) रूपी तपस्या, वशमें की हुई इन्द्रियोंकी तत्वप्रतिपत्तियोग्यतारूपी दम, क्षान्ति, अनसूयता, परिमित भोजन, ॥ ९ ॥

विषयप्रतिसंहारो मितजल्पस्तथा शमः ।
एष प्रवृत्तको धर्मो निवृत्तकमथो शृणु ॥ १० ॥

काम आदि विषयोंको जीतना, परिमित वचन और निगृहीत मनका विक्षेपहीनतारूपी शम, ये सब सकाम पुरुषोंके स्वर्गादिजनक जपके अङ्गभूत धर्म हुआ करते हैं। अब जापकके कर्म-निवृत्ति लक्षण मोक्ष धर्म कहता हूं, सुनो ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा निवर्तते कर्म जपतो ब्रह्मचारिणः ।
एतत्सर्वमशेषेण यथोक्तं परिवर्जयेत् ।
त्रिविधं मार्गमास्थाय व्यक्ताव्यक्तमनाश्रयम् ॥ ११ ॥

जप करनेवाले ब्रह्मचारीका कर्म जिस प्रकार निवृत्त होता है, उसे प्रदर्शित करता हूं। मनः-समाधि आदि जिन सब विषयोंको पहिले विशेष रीतिसे कहा है, निष्काम अनुष्ठानसे स्थूल सूक्ष्म निर्विषय शुद्ध चिन्मात्र निवृत्तिमार्गको- जो तीन तरहका है- व्यक्त, अव्यक्त और अनाश्रय- अवलम्बन करके उन सबका परिवर्त्तन करे ॥ ११ ॥

कुशोच्चयनिषण्णः सन्कुशहस्तः कुशैः शिखी ।
चीरैः परिवृतस्तस्मिन्मध्ये छन्नः कुशैस्तथा ॥ १२ ॥

जापक योगी कुशासनपर बैठे; वह हाथमें कुश धारण करे; शिखाको कुशोंसे परिपूरित करे और चारों ओर वल्कलोंसे घिरकर बैठे और मध्यभागमें भी कुशोंसे आच्छादित रहे ॥१२॥

विषयेभ्यो नमस्कुर्याद्विषयान्न च भावयेत् ।
साम्यमुत्पाद्य मनसो मनस्येव मनो दधत् ॥ १३ ॥

विषयोंको दूरसे ही नमस्कार करे और मनमें कभी उनका चिन्तन न करे; मनसे ही समताकी भावना करके जीव ब्रह्मकी ऐक्यता सिद्ध करके मनमेंही मनका लय करे ॥ १३ ॥

तद्धिया ध्यायति ब्रह्म जपन्वै संहितां हिताम् ।
संन्यस्यत्यथ वा तां वै समाधौ पर्यवस्थितः ॥ १४ ॥

फिर बुद्धिके द्वारा हितकारी वेदसंहिताका, प्रणव और गायत्री मन्त्रका जप करे; फिर चित्तकी स्थिरता होनेपर निश्चल भावसे सावधान होकर पूर्वोक्त संहिता एवं गायत्री मन्त्रके जपको भी त्याग दे ॥ १४ ॥

ध्यानमुत्पादयत्यत्र संहिताबलसंश्रयात् ।
शुद्धात्मा तपसा दान्तो निवृत्तद्वेषकामवान् ॥ १५ ॥

वह शुद्धचित्त, जितेन्द्रिय, द्वेष-कामनारहित और परब्रह्मके पानेका इच्छुक होकर विचारके जरिये संहिताबल अवलम्बन करनेसे ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाहरूप ध्यानको सिद्ध करता है॥१५॥

अरागमोहो निर्द्वंद्वो न शोचति न सज्जते ।
न कर्तारं करणीयानां न कार्याणामिति स्थितिः ॥ १६ ॥

रागमोहसे रहित और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे हीन होकर, किसी विषयमें शोक नहीं करता और किसी विषयमें आसक्त भी नहीं होता। ऐसा जापक अपनेको कर्मकर्त्ता वा कर्म-फलभोक्ता नहीं समझता ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चाहंकारयोगेन मनः प्रस्थापयेत्क्वचित्।
न चात्मग्रहणे युक्तो नावमानी न चाक्रियः ॥ १७ ॥

अहङ्कारयोगसे मनको किसी कर्मके कर्तृत्व वा कर्मफलभोक्तृत्वमें प्रस्थापित नहीं करता; वह अर्थग्रहण करनेमें आसक्त नहीं होता, किसीका अपमान नहीं करता और क्रियारहित भी नहीं होता ॥ १७ ॥

ध्यानक्रियापरो युक्तो ध्यानवाध्यानिश्चयः।
ध्याने समाधिमुत्पाद्य तदपि त्यजति क्रमात् ॥ १८ ॥

वह ध्याननिष्ठ समाधिविशिष्ट होकर ध्यानसे तत्वनिश्चय किया करता है। वह ध्यान अवलम्बन करके चित्तकी एकाग्रताको उत्पन्न करता हुआ धीरे धीरे उस अवलम्बनको भी परित्याग करता है ॥ १८ ॥

स वै तस्यामवस्थायां सर्वत्यागकृतः सुखी।
निरीहस्त्यजति प्राणान्ब्राह्मीं संश्रयते तनुम् ॥ १९ ॥

वह उस ही अवस्थामें सर्वत्यागी निर्बीजसमाधिस्थ योगीके प्रत्यगानन्दस्वरूप सुखका अनुभव करता है। वह अणिमा आदि योगफलोंमें निस्पृह होकर लोकान्तर गति साधन लिङ्ग शरीर परित्याग करता है और वह सुख स्वरूप ब्राह्म शरीरमें प्रविष्ट होता है ॥ १९ ॥

अथ वा नेच्छते तत्र ब्रह्मकायनिषेवणम्।
उत्क्रामति च मार्गस्थो नैव क्वचन जायते ॥ २० ॥

अथवा यदि वह ब्रह्मस्वरूप सुखमें स्थिति करनेकी इच्छा नहीं करता, तो देवयान मार्गमें निवास करता हुआ, फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता ॥ २० ॥

आत्मबुद्धिं समास्थाय शान्तीभूतो निरामयः।
अमृतं विरजःशुद्धमात्मानं प्रतिपद्यते ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ ६७४३ ॥

वह योगी इच्छानुसार मोक्षमार्ग वा ब्रह्मलोकमें गमन करनेमें समर्थ होता है; वह तत्वदर्शनसे रजोगुणहीन अमृत अवलम्बन करके शान्त और जरामरणसे रहित होकर पवित्र परमात्माको पाता है ॥ २१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥ ६७४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: १९० :

युधिष्ठिर उवाच—

गतीनामुत्तमा प्राप्तिः कथिता जापकेष्विह ।
एकैवैषा गतिस्तेषामुत यान्त्यपरामपि ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! आपने जापकोंको योगसिद्धिप्राप्तिके जरिये जरामरणहीनता, इच्छानुसार शरीरत्याग, ब्रह्मलोकगमन और कैवल्यप्राप्ति विषय कहे; परन्तु उन लोगोंकी यह एकही प्रकारकी गति है, अथवा वे लोग दूसरी भांति गति लाभ किया करते हैं ? ॥१॥

भीष्म उवाच—

शृणुष्वावहितो राजञ्जापकानां गतिं विभो ।
यथा गच्छन्ति निरयमनेकं पुरुषर्षभ ॥ २ ॥

भीष्म बोले—हे नरश्रेष्ठ महाराज ! जापक लोग जिस प्रकार अनेक प्रकारके निरयोंमें गमन किया करते हैं; उसे तुम सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥

यथोक्तमेतत्पूर्वं यो नानुतिष्ठति जापकः ।
एकदेशक्रियश्चात्र निरयं स निगच्छति ॥ ३ ॥

जो जापक पहिले जैसा बताया गया है, उसी तरह नियमोंके अनुसार आचरण नहीं करता, केवल एक देशका—एक ही नियमका अनुष्ठान करता है, वह अपूर्ण मनोरथ होकर नरकमें गमन किया करता है ॥ ३ ॥

अवज्ञानेन कुरुते न तुष्यति न शोचति ।
ईदृशो जापको याति निरयं नात्र संशयः ॥ ४ ॥

जो अश्रद्धाके सहित जप करता और उससे प्रसन्न वा दुःखित नहीं होता, ऐसा जापक निःसंदेह नरकमें गमन करता है ॥ ४ ॥

अहंकारकृतश्चैव सर्वे निरयगामिनः ।
परावमानी पुरुषो भविता निरयोपगः ॥ ५ ॥

जो अहङ्कारपूर्वक जप करता और दूसरेकी अवज्ञा करता है; वैसा जापक पुरुष अवश्यही नरकगामी होता है ॥ ५ ॥

अभिध्यापूर्वकं जप्यं कुरुते यश्च मोहितः ।
यत्राभिध्यां स कुरुते तं वै निरयमृच्छति ॥ ६ ॥

जो पुरुष मोहित होकर फलाभिसन्धिपूर्वक जप करता है, उसे जिस कर्ममें प्रीति होती है, वैसे फलको भोगनेके लिये उसे उसहीके अनुरूप शरीर प्राप्त होकर नरकमें पडता है ॥ ६ ॥

अथैश्वर्यप्रवृत्तः सञ्जापकस्तत्र रज्यते ।
स एव निरयस्तस्य नासौ तस्मात्प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

अणिमा आदि ऐश्वर्यभोगप्रवृत्तिके वशमें होकर जो जापक उसमें अनुरक्त होता है, वह अनुराग ही उसके लिये निरयस्वरूप है; फिर वह उससे कदापि नहीं छूट सकता ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) .. Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रागेण जापको जप्यं कुरुते तत्र मोहितः ।
यत्रास्य रागः पतति तत्र तत्रोपजायते ॥ ८ ॥

ऐश्वर्य तथा विषयासक्ति विषयक रागसे मोहित होकर जो जापक जप करता है, उसे जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न होता है; उसे भोगनेके निमित्त उसे उसहीके अनुरूप शरीर धारण करके जन्म लेना पडता है ॥ ८ ॥

दुर्बुद्धिरकृतप्रज्ञश्चले मनसि तिष्ठति ।
चलामेव गतिं याति निरयं वाधिगच्छति ॥ ९ ॥

जो भोगासक्तचित्त सब भोगोंके दुरन्तत्वमें ज्ञानरहित और चञ्चलचित्तसे निवास करता है, वह जापक चपलगति लाभ करता है अथवा निरयमें गमन किया करता है; यह बुद्धि समयको अतिक्रम करके जा रही है, प्रमादके कारण उसका निश्चय नहीं होता है ॥ ९ ॥

अकृतप्रज्ञको बालो मोहं गच्छति जापकः ।
स मोहान्निरयं याति तत्र गत्वानुशोचति ॥ १० ॥

इस विषयमें मूर्ख विवेकशून्य स्वभाववाला जापक मोहको प्राप्त होता और उसही मोहके कारण नरकमें गमन करता है, और वहां जाके शोक किया करता है ॥ १० ॥

दृढग्राही करोमीति जप्यं जपति जापकः ।
न संपूर्णो न वा युक्तो निरयं सोऽधिगच्छति ॥ ११ ॥

जो पुरुष दृढ निश्चय करके जप करनेमें प्रवृत्त होता है, और वह अविरक्त होकर बलपूर्वक भोगोंको त्यागते हुए जपकी समाप्ति करनेमें समर्थ नहीं होता, वह अन्तमें निरयगामी हुआ करता है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

अनिमित्तं परं यत्तदव्यक्तं ब्रह्मणि स्थितम् ।
सद्भूतो जापकः कस्मात्स शरीरमथाविशेत् ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले— जो वस्तु अनागन्तुक कहके स्वभावसे ही अनिवृत्त और मनवचनसे अगोचर होकर प्रणवके बीच स्थित है, जापक उस ही ब्रह्मस्वरूपको पाके किस कारण इस संसारमें शरीर धारण करता है ? ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच—

दुष्प्रज्ञानेन निरया बहवः समुदाहृताः ।
प्रशस्तं जापकत्वं च दोषाश्चैते तदात्मकाः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ ६७५६ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! सकाम बुद्धिके कारण बहुतेरे निरय पूर्ण रीतिसे उदाहृत हुए हैं । जापकोंका धर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है; परन्तु राग आदि सब दोष—दुष्ट अज्ञानरूप हैं, उस ही लिये विविध गति हुआ करती है ॥ १३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ १९० ॥ ६७५६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: १९१ :

युधिष्ठिर उवाच—

कीदृशो जापको याति निरयं वर्णयस्व मे ।
कौतूहलं हि मे जातं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! जापक पुरुष उसके दोषोंके कारण किस प्रकारके निरयोंमें गमन करता है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये । शुभ कर्म करनेवाले पुरुष भी अशुभ निरयको पाते हैं, इसे सुनके मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हो रहा है, इसलिये आपको यह विषय वर्णन करना उचित है ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

धर्मस्यांशः प्रसूतोऽसि धर्मिष्ठोऽसि स्वभावतः ।
धर्ममूलाश्रयं वाक्यं शृणुष्वावहितोऽनघ ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे पापरहित ! तुम धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए हो और स्वयं स्वभावसे ही धर्मिष्ठ हो; इसलिये सावधान होकर मेरे इस धर्मानुगत वचनको सुनो ॥ २ ॥

अमूनि यानि स्थानानि देवानां परमात्मनाम् ।
नानासंस्थानवर्णानि नानारूपफलानि च ॥ ३ ॥

हे राजन् ! महाबुद्धिमान् देवताओंके इन सब स्थानोंको जिसे कहता हूं, वे परमात्माके स्थानसे भिन्न नहीं हैं । इन सब स्थानोंमें दिव्य देहोंके रूप—रंग अनेक प्रकारके हैं; तथा अनेक तरहके फल भी दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥

दिव्यानि कामचारीणि विमानानि सभास्तथा ।
आक्रीडा विविधा राजन्पद्मिन्यश्चामलोदकाः ॥ ४ ॥

राजन् ! वहां इच्छानुसार विचरनेवाले दिव्य विमान, सभाएं और विविध क्रीडास्थान दीखते हैं और बावलियां निर्मल जलयुक्त तथा कमलोंसे शोभित होती हैं ॥ ४ ॥

चतुर्णां लोकपालानां शुक्रस्याथ बृहस्पतेः ।
मरुतां विश्वदेवानां साध्यानामश्विनोरपि ॥ ५ ॥

हे तात ! वरुण, कुबेर, इन्द्र और यम— ये चार लोकपाल, शुक्राचार्य, देवगुरु बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्य, दोनों अश्विनीकुमार, ॥ ५ ॥

रुद्रादित्यवसूनां च तथान्येषां दिवौकसाम् ।
एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ॥ ६ ॥

रुद्र, आदित्य और वसुगण तथा दूसरे सुरपुरवासी देवताओंके जो लोक हैं, वे सब परमात्माके परमधामके सामने नरक ही है ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभयं चानिमित्तं च न च क्लेशभयावृतम् ।
द्वाभ्यां मुक्तं त्रिभिर्मुक्तमष्टाभिस्त्रिभिरेव च ॥ ७ ॥

परमात्माका परमधाम भयसे रहित है, क्योंकि वह कारणरहित नित्य है; वहां अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि क्लेशोंकी सम्भावना नहीं है, अर्थात् आसक्ति हीनताके कारण वहां आगन्तुकको भयकी भी सम्भावना नहीं होती। वह स्थान प्रिय और अप्रिय इन दोनों पदार्थोंसे मुक्त है; प्रिय-अप्रियके कारणभूत तीनों गुणोंसे सत्त्व, रज और तम रहित है; भूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, कर्म, वासना, वायु और अविद्या, इन अष्टपुरीसे परित्यक्त है; ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता इन त्रिपुटियोंसे मुक्त है ॥ ७ ॥

चतुर्लक्षणवर्जं तु चतुष्कारणवर्जितम् ।
अप्रहर्षमनानन्दमशोकं विगतक्लमम् ॥ ८ ॥

क्योंकि वह दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान इन चारों लक्षणोंसे रहित है; ज्ञानके कारण-भूत प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—इनसे परे है; अर्थात् वह स्थान रूप आदिसे रहित होनेसे प्रत्यक्षका विषय नहीं है। गुण—जाति—क्रियाही हीनताप्रयुक्त शब्दज्ञानगोचर नहीं है। असङ्गत्वके कारण अनुमानके अनुगत नहीं है; सर्वसाक्षित्वनिबन्धन बुद्धिसे भी नहीं जाने जाते। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे स्थान प्रागुक्त दर्शन आदि चारों कारणोंसे रहित प्रहर्ष और आनन्दहीन, विशोक और क्लम विवर्जितरूपसे प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

कालः संपच्यते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः ।
स कालस्य प्रभू राजन्स्वर्गस्यापि तथेश्वरः ॥ ९ ॥

अखण्डभावसे स्थित काल वहांपर भूत, भविष्य, वर्त्तमान आदि व्यवहारोंका कारण होकर उत्पन्न होता है। काल संयम वहां प्रभुता नहीं कर सकता अर्थात् वह वस्तु आदि अन्तसे रहित है। हे राजन्! वह परमात्मा कालका प्रभु और स्वर्गका ईश्वर है ॥ ९ ॥

आत्मकेवलतां प्राप्तस्तत्र गत्वा न शोचति ।
ईदृशं परमं स्थानं निरयास्ते च तादृशाः ॥ १० ॥

जो जापक उस आत्माके सहित ऐक्यलाभ करता है, वह उक्त स्थानमें जाके शोकरहित होता है। ऐसा स्थान परम श्रेष्ठ है; पहिले कहे हुए सब सुख-भोगोंसे युक्त लोक उसकी तुलनामें नरक हैं ॥ १० ॥

एते ते निरयाः प्रोक्ताः सर्व एव यथातथम् ।
तस्य स्थानवरस्येह सर्वे निरयसंज्ञिताः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥ ६७६७ ॥

राजन्! यह हमने तुमसे ज्योंके त्यों सब निरयोंके विषय यथार्थ कहे; ऊपर कहे हुए मनोहर परम श्रेष्ठ स्थानके सामने ये सब लोक नरक ही कहलाने योग्य हैं ॥ ११ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९१ ॥ ६७६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

१९२

युधिष्ठिर उवाच—

कालमृत्युयमानां च ब्राह्मणस्य च सत्तम ।
विवादो व्याहृतः पूर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे श्रेष्ठ पितामह ! परमायुको नष्ट करनेवाले काल, प्राण वियोजक मृत्यु और पुण्य-पापके फल देनेवाले यमराजके किसी ब्राह्मणसे विवाद हुआ था, आपने इस उपाख्यानके पहले इसकी चर्चा की थी; इसलिये अब उसे स्पष्ट रीतिसे वर्णन करना उचित है ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
इक्ष्वाकोः सूर्यपुत्रस्य यद्वृत्तं ब्राह्मणस्य च ॥ २ ॥

भीष्म बोले— राजा इक्ष्वाकु, सूर्यपुत्र यम और ब्राह्मणके सम्बन्धमें जो विवाद हुआ था, प्राचीन लोग उसही पुराने इतिहासका इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं ॥ २ ॥

कालस्य मृत्योश्च तथा यद्वृत्तं तन्निबोध मे ।
यथा स तेषां संवादो यस्मिन्स्थानेऽपि चाभवत् ॥ ३ ॥

काल और मृत्युके सन्मुखमें जो घटना हुई थी और जिस स्थानमें जिस प्रकार उन लोगोंकी वार्त्ता हुई थी, वह मुझसे सुनो ॥ ३ ॥

ब्राह्मणो जापकः कश्चिद्धर्मवृत्तो महायशाः ।
षडङ्गविन्महाप्राज्ञः पैप्पलादिः स कौशिकः ॥ ४ ॥

धर्माचारी, महायशस्वी, वेदके छहों अंगोंका ज्ञाता, अत्यंत बुद्धिमान् और जपमें तत्पर कोई एक ब्राह्मण था, वह कौशिकगोत्रीय पिप्पलादका पुत्र था ॥ ४ ॥

तस्यापरोक्षं विज्ञानं षडङ्गेषु तथैव च ।
वेदेषु चैव निष्णातो हिमवत्पादसंश्रयः ॥ ५ ॥

वह महाबुद्धिमान् विप्र शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, वेदके इन छहों अंगोंको प्रत्यक्ष जानता था; वह वेदनिष्ठ था और हिमालयके प्रत्यन्त पर्वतका आश्रय करके निवास करता था ॥ ५ ॥

सोऽन्त्यं ब्राह्मं तपस्तेपे संहितां संयतो जपन् ।
तस्य वर्षसहस्रं तु नियमेन तथा गतम् ॥ ६ ॥

उसने सावधान होके सावित्री संहिताका जप करते हुए स्वधर्मानुष्ठान रूपी अत्यन्त उत्तम तपस्या की । इसी प्रकार नियम पूर्वक जप-तप करते हुए उसके एक हजार वर्ष व्यतीत हुए ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स देव्या दर्शितः साक्षात्प्रीतास्मीति तदा किल ।
जप्यमावर्तयंस्तूष्णीं न च तां किंचिदब्रवीत् ॥ ७ ॥

तब सावित्रीदेवीने "मैं प्रसन्न हुई हूं" ऐसा वचन कहके उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया । ब्राह्मण वेदके गायत्री मंत्रका जप करता था, इसलिये चूप बैठकर देवीसे कुछ न बोला ॥ ७ ॥

तस्यानुकम्पया देवी प्रीता समभवत्तदा ।
वेदमाता ततस्तस्य तज्जप्यं समपूजयत् ॥ ८ ॥

वेदमाता गायत्री उसके विषयमें उस समय कृपा करके उसके व्यवहारसे भी अत्यन्त प्रसन्न हुई; और उसके जप–मन्त्रकी अधिक प्रशंसा करने लगीं ॥ ८ ॥

समाप्तजप्यस्तूत्थाय शिरसा पादयोस्तथा ।
पपात देव्या धर्मात्मा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

धर्मात्मा ब्राह्मणने जप समाप्त होनेपर उठके देवीके चरणोंपर गिरके उन्हें प्रणाम किया और यह वचन कहा ॥ ९ ॥

दिष्ट्या देवि प्रसन्ना त्वं दर्शनं चागता मम ।
यदि वापि प्रसन्नासि जप्ये मे रमतां मनः ॥ १० ॥

हे देवी ! मेरे भाग्यसे ही आपने प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दिया है । हे भगवती ! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुई हों, तो आपकी कृपासे मेरा मन सदा जपमें ही रत रहे ॥ १० ॥

सावित्र्युवाच—

किं प्रार्थयसि विप्रर्षे किं चेष्टं करवाणि ते ।
प्रब्रूहि जपतां श्रेष्ठ सर्वं तत्ते भविष्यति ॥ ११ ॥

सावित्री बोली– हे जापकश्रेष्ठ विप्रर्षि ! तुम क्या प्रार्थना करते हो ? मैं तुम्हारा कौनसा अभिलषित विषय सिद्ध करूं ? उसे कहो; तुम जो मांगोगे वह सब सिद्ध होगा ॥ ११ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तः स तदा देव्या विप्रः प्रोवाच धर्मवित् ।
जप्यं प्रति ममेच्छेयं वर्धत्विति पुनः पुनः ॥ १२ ॥

भीष्म बोले– देवीने जब ऐसे वचन कहे, तब वह धर्म जाननेवाला ब्राह्मण बोला– हे देवी ! मेरी यह अभिलाषा जपमेंही सदा बढती रहे ॥ १२ ॥

मनसश्च समाधिर्मे वर्धेताहरहः शुभे ।
तत्तथेति ततो देवी मधुरं प्रत्यभाषत ॥ १३ ॥

हे शुभे ! मेरे मनकी एकाग्रता भी दिन प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होवे । अनन्तर देवीने मधुर भावसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इदं चैवापरं प्राह देवी तत्प्रियकाम्यया ।
निरयं नैव यातासि यत्र याता द्विजर्षभाः ॥ १४ ॥

फिर देवीने उसकी प्रियकामनासे यह दूसरा वचन भी कहा– जिस स्थानमें मुख्यामुख्य ब्राह्मण लोग गमन किया करते हैं, तुम्हें उस क्षयशील स्वर्गमें न जाना पडेगा ॥ १४ ॥

यास्यसि ब्रह्मणः स्थानमनिमित्तमनिन्दितम् ।
साध्ये भविता चैतच्चत्वयाहमिहार्थिता ॥ १५ ॥

तुम आवागमनसे रहित तथा निर्दोष ब्रह्मलोकमें गमन करोगे; अब मैं निज स्थानपर जाती हूं । तुमने मेरे समीप यहां जो प्रार्थना की है वही पूरी होगी; मैं उसे पूर्ण करूंगी ॥१५॥

नियतो जप चैकाग्रो धर्मस्त्वां समुपैष्यति ।
कालो मृत्युर्यमश्चैव समायास्यन्ति तेऽन्तिकम् ।
भविता च विवादोऽत्र तव तेषां च धर्मतः ॥ १६ ॥

तुम सावधान और एकाग्रचित्त होकर तप करो; धर्म स्वयं तुम्हारे निकट आवेगा और काल मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे समीप आगमन करेंगे। इस ही स्थानमें उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्मविवाद होगा ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा भगवती जगाम भवनं स्वकम् ।
ब्राह्मणोऽपि जपन्नास्ते दिव्यं वर्षशतं तदा ॥ १७ ॥

भगवती सावित्री ऐसा कहके अपने स्थानपर चली गई । इधर ब्राह्मण भी जप करते हुए देव परिमाणसे एकसौ वर्ष बिताने लगा ॥ १७ ॥

समाप्ते नियमे तस्मिन्नथ विप्रस्य धीमतः ।
साक्षात्प्रीतस्तदा धर्मो दर्शयामास तं द्विजम् ॥ १८ ॥

अनन्तर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणके जपका नियम समाप्त होनेपर उस समय धर्मने स्वयं प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया ॥ १८ ॥

धर्म उवाच—

द्विजाते पश्य मां धर्ममहं त्वां द्रष्टुमागतः ।
जप्यस्य च फलं यत्ते संप्राप्तं तच्च मे शृणु ॥ १९ ॥

धर्म बोले– हे द्विजवर ! मेरी ओर देखो, मैं धर्म हूं; तुम्हें देखनेको आया हूं; तुम जो जप करते हो, उसका फल जो तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह सब इस समय मुझसे सुनो ॥ १९ ॥

जिता लोकास्त्वया सर्वे ये दिव्या ये च मानुषाः ।
देवानां निरयान्साधो सर्वानुत्क्रम्य यास्यसि ॥ २० ॥

हे साधु ! जो सब दिव्य वा मनुष्य लोक हैं, तुमने उन सबको जय किया है; तुम देवताओंके सब लोकोंको अतिक्रम करके गमन करोगे ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्राणत्यागं कुरु मुने गच्छ लोकान्यथेप्सितान् ।
त्यक्त्वात्मनः शरीरं च ततो लोकानवाप्स्यसि ॥ २१ ॥

हे मुनिवर ! इस समय तुम अपने प्राण छोडके निज अभिलषित लोकोंमें गमन करो; तुम अपना शरीर त्यागनेपर सब पुण्य लोक प्राप्त करोगे ॥ २१ ॥

ब्राह्मण उवाच—

कृतं लोकैर्हि मे धर्म गच्छ च त्वं यथासुखम् ।
बहुदुःखसुखं देहं नोत्सृजेयमहं विभो ॥ २२ ॥

ब्राह्मण बोला— हे धर्म ! मुझे परलोक प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है ? आप सुखसे गमन करिये । हे विभु ! मैं बहुतसे सुखदुःखमिश्रित इस शरीरका परित्याग नहीं करूंगा ॥ २२ ॥

धर्म उवाच—

अवश्यं भोः शरीरं ते त्यक्तव्यं मुनिपुंगव ।
स्वर्गं आरोह्यतां विप्र किं वा ते रोचतेऽनघ ॥ २३ ॥

धर्म बोले— हे मुनिपुङ्गव ! तुम्हें अवश्य शरीर त्यागना योग्य है । हे पापरहित ब्राह्मण ! तुम स्वर्गमें गमन करो, अथवा जो अभिलाषा हो वह कहो ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच—

न रोचये स्वर्गवासं विना देहादहं विभो ।
गच्छ धर्म न मे श्रद्धा स्वर्गं गन्तुं विनात्मना ॥ २४ ॥

ब्राह्मण बोला— हे धर्म ! मैं विना शरीरके स्वर्गमें वास करनेकी इच्छा नहीं करता । हे विभो ! मुझे शरीरके विना स्वर्गमें गमन करनेकी श्रद्धा नहीं है; इसलिये आप निज स्थान पर जाइये ॥ २४ ॥

धर्म उवाच—

अलं देहे मनः कृत्वा त्यक्त्वा देहं सुखी भव ।
गच्छ लोकानरजसो यत्र गत्वा न शोचसि ॥ २५ ॥

धर्म बोले— तुम शरीरमें मन न लगाओ, शरीर त्यागके सुखी हो जाओ; रजोगुणसे रहित निर्मल लोकोंमें गमन करो; जहांपर जाके शोक रहित होगे ॥ २५ ॥

ब्राह्मण उवाच—

रमे जपन्महाभाग कृतं लोकैः सनातनैः ।
सशरीरेण गन्तव्यो मया स्वर्गो न वा विभो ॥ २६ ॥

ब्राह्मण बोला— हे महाभाग ! मैं जपसाधनमें अनुरक्त हूं, मुझे सनातन लोकोंसे क्या प्रयोजन है ? हे विभो ! मैं शरीरके सहित यदि स्वर्ग लोकमें जा सकूं, तो अच्छाही है; नहीं तो कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Kailashanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्म उवाच—

यदि त्वं नेच्छसि त्यक्तुं शरीरं पश्य वै द्विज ।
एष कालस्तथा मृत्युर्यमश्च त्वामुपागताः ॥ २७ ॥

धर्म बोले— हे द्विजवर ! तुम यदि शरीर न त्यागोगे, तो देखो, तुम्हारे समीप ये यम, मृत्यु और काल उपस्थित हुए हैं ॥ २७ ॥

भीष्म उवाच—

अथ वैवस्वतः कालो मृत्युश्च त्रितयं विभो ।
ब्राह्मणं तं महाभागमुपागम्येदमब्रुवन् ॥ २८ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! अनन्तर सूर्य-नन्दन यम, काल और मृत्यु, ये तीनों उस महाभाग ब्राह्मणके समीप उपस्थित होके क्रमसे अपना अभिप्राय कहने लगे ॥ २८ ॥

तपसोऽस्य सुतप्तस्य तथा सुचरितस्य च ।
फलप्राप्तिस्तव श्रेष्ठा यमोऽहं त्वामुपब्रुवे ॥ २९ ॥

हे ब्राह्मण ! मैं यम हूं, और स्वयं तुम्हारे समीप आके यह कहता हूं, कि तुम्हारे इस बहुत समयसे अनुष्ठित तपस्या और सुचरितके उत्तम फलप्राप्तिका समय हुआ है ॥ २९ ॥

यथावदस्य जप्यस्य फलं प्राप्तस्त्वमुत्तमम् ।
कालस्ते स्वर्गमारोढुं कालोऽहं त्वामुपागतः ॥ ३० ॥

हे विप्र ! मैं काल हूं, और तुम्हारे समीप प्रत्यक्ष आया हूं; तुमने इस जपका उत्तम फल विधिपूर्वक प्राप्त किया है; इस समय तुम्हारा स्वर्गमें जानेका समय हुआ है ॥ ३० ॥

मृत्युं मा विद्धि धर्मज्ञ रूपिणं स्वयमागतम् ।
कालेन चोदितं विप्र त्वामितो नेतुमद्य वै ॥ ३१ ॥

हे धर्मज्ञ ! मैं मृत्यु मूर्त्तिमान् होकर स्वयं तुम्हारे निकट यहां आया हूं । तुम मुझे मालूम करो । हे विप्र ! आज तुम्हें इस स्थानसे ले जानेके वास्ते मैं कालसे प्रेरित हुआ हूं ॥३१॥

ब्राह्मण उवाच—

स्वागतं सूर्यपुत्राय कालाय च महात्मने ।
मृत्यवे चाथ धर्माय किं कार्यं करवाणि वः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मण बोला— हे सूर्यपुत्र यम ! महात्मन् काल,— हे मृत्यु !— हे धर्म ! आप लोगोंने सुखसे आगमन किया है न ? इस समय मैं आप लोगोंके किस कार्यका अनुष्ठान करूं ? ॥ ३२ ॥

भीष्म उवाच—

अर्घ्यं पाद्यं च दत्त्वा स तेभ्यस्तत्र समागमे ।
अब्रवीत्परमप्रीतः स्वशक्त्या किं करोमि वः ॥ ३३ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर वह ब्राह्मण आये हुए यम आदिको अर्घ्य, और पाद्य देकर उन लोगोंके वहांपर समागमसे प्रसन्न होकर बोला— मैं निज शक्तिके अनुसार आप लोगोंका कौनसा प्रिय कार्य सिद्ध करूं ? ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नेवाथ काले तु तीर्थयात्रामुपागतः ।
इक्ष्वाकुरगमत्तत्र समेता यत्र ते विभो ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! ब्राह्मण ऐसाही वचन कह रहा था, उस ही समय जिस स्थानमें वे सब एकत्रित हुए थे, वहां तीर्थयात्राप्रसङ्गसे घूमते हुए सूर्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु आके उपस्थित हुए ॥३४॥

सर्वानेव तु राजर्षिः संपूज्याभिप्रणम्य च ।
कुशलप्रश्नमकरोत्सर्वेषां राजसत्तमः ॥ ३५ ॥

अनन्तर नृपसत्तम राजर्षि इक्ष्वाकुने उन लोगोंको प्रणाम करके उनकी पूजा की और सबसेही कुशल प्रश्न किया ॥ ३५ ॥

तस्मै सोऽथासनं दत्त्वा पाद्यमर्घ्यं तथैव च ।
अब्रवीद्ब्राह्मणो वाक्यं कृत्वा कुशलसंविदम् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण भी उस अभ्यागत राजाको पाद्य, अर्घ्य और आसन देकर कुशल पूंछके बोला ॥३६॥

स्वागतं ते महाराज ब्रूहि यद्यदिहेच्छसि ।
स्वशक्त्या किं करोमीह तद्ब्रवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३७ ॥

हे महाराज ! आप सुखसे आये हैं न ? आपका स्वागत है ! इस स्थानमें जो इच्छा हो, उसे कहिये; मैं निज शक्तिके अनुसार आपकी क्या सेवा करूं ? आप उसकी आज्ञा करिये ॥३७॥

राजोवाच—

राजाहं ब्राह्मणश्च त्वं यदि षट्कर्मसंस्थितः ।
ददामि वसु किंचित्ते प्रार्थितं तद्ददस्व मे ॥ ३८ ॥

राजा बोला– मैं क्षत्रिय राजा हूं; आप षट्कर्मशाली ब्राह्मण हैं; इसलिये मैं आपको कुछ धन देना चाहता हूं; आप प्रख्यात धनरत्नकी इच्छा कीजिये ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण उवाच—

द्विविधा ब्राह्मणा राजन्धर्मश्च द्विविधः स्मृतः ।
प्रवृत्तश्च निवृत्तश्च निवृत्तोऽस्मि प्रतिग्रहात् ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण बोला– हे राजन् ! प्रवृत्त और निवृत्त भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं और धर्म भी दो प्रकारके हैं; इसमेंसे मैं प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं ॥ ३९ ॥

तेभ्यः प्रयच्छ दानानि ये प्रवृत्ता नराधिप ।
अहं न प्रतिगृह्णामि किमिष्टं किं ददानि ते ।
ब्रूहि त्वं नृपतिश्रेष्ठ तपसा साधयामि किम् ॥ ४० ॥

हे नरनाथ ! जो प्रतिग्रहणमें प्रवृत्त हो आप उन्हें ही धन दान करिये; मैं आपसे कुछ भी दान नहीं लूंगा । हे राजन् ! आप क्या इच्छा करते हैं ? मैं आपको क्या दूं ? उसे कहिये । मैं अपनी तपस्यासे आपका कौनसा कार्य सिद्ध करूं ? ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजोवाच—

क्षत्रियोऽहं न जानामि देहीति वचनं क्वचित् ।
प्रयच्छ युद्धमित्येवं वादिनः स्मो द्विजोत्तम ॥ ४१ ॥

राजा बोला— हे द्विजवर ! मैं क्षत्रिय हूं, 'देहि' यह वचन कभी नहीं कहता, 'युद्ध दान करो' ऐसाही वचन कहना हम जानते हैं ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उवाच—

तुष्यसि त्वं स्वधर्मेण तथा तुष्टा वयं नृप ।
अन्योन्यस्योत्तरं नास्ति यदिष्टं तत्समाचर ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण बोला— हे नृपवर ! हम लोग उसी प्रकार स्वधर्मसे सन्तुष्ट रहते हैं, जैसे आप भी निज धर्ममें परितुष्ट होते हैं; इसलिये हम लोगोंमें परस्पर भेद नहीं है; इस समय आप इच्छानुसार आचरण करिये ॥ ४२ ॥

राजोवाच —

स्वशक्त्याहं ददानीति त्वया पूर्वं प्रभाषितम् ।
याचे त्वां दीयतां मह्यं जप्यस्यास्य फलं द्विज ॥ ४३ ॥

राजा बोला— हे द्विजवर ! पहले आपने "निज शक्तिके अनुसार दान करूंगा" ऐसा वचन कहा है; इसलिये मैं आपके समीप प्रार्थना करता हूं, कि आप मुझे इस जपका फल दान करिये ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच—

युद्धं मम सदा वाणी याचतीति विकत्थसे ।
न च युद्धं मया सार्धं किमर्थं याचसे पुनः ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण बोला— आपने इस प्रकार अपनी बडाई की थी, कि "मेरा मन सदा युद्धकी प्रार्थना किया करता है;" परन्तु तुम्हारे साथ मुझसे युद्धकी संभावना नहीं है, तब किस लिये युद्धकी प्रार्थना करते हो ? ॥ ४४ ॥

राजोवाच

वाग्वज्रा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः क्षत्रिया बाहुजीविनः ।
वाग्युद्धं तदिदं तीव्रं मम विप्र त्वया सह ॥ ४५ ॥

राजा बोला— ब्राह्मणोंका वचन ही वज्रस्वरूप है और क्षत्रिय बाहुजीवी कहके वर्णित हुए हैं। हे विप्र ! इसलिये आपके साथ मेरा यह कठोर वचनयुद्ध होरहा है ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण उवाच —

सैवाद्यापि प्रतिज्ञा मे स्वशक्त्या किं प्रदीयताम् ।
ब्रूहि दास्यामि राजेन्द्र विभवे सति माचिरम् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मण बोला— "मैं निज शक्तिके अनुसार क्या प्रदान करूं,"— पहिले जो ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इस समय भी वही प्रतिज्ञा है । हे राजेन्द्र ! इससे मेरा जो कुछ विभव है, उसके अनुसार मैं क्या दान करूं ? उसेही कहिये, विलम्ब न करिये ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजोवाच—

यत्तद्वर्षशतं पूर्णं जप्यं वै जपता त्वया ।
फलं प्राप्तं तत्प्रयच्छ मम दित्सुर्भवान्यदि ॥ ४७ ॥

राजा बोला— आपने पूरे एक सौ वर्षतक जप करके जो फल पाया है, यदि मुझे दान करनेकी इच्छा करते हैं, तो उसे ही दान करिये ॥ ४७ ॥

ब्राह्मण उवाच—

परमं गृह्यतां तस्य फलं यज्जपितं मया ।
अर्धं त्वमविचारेण फलं तस्य समाप्नुहि ॥ ४८ ॥

ब्राह्मण बोला— हे महाराज ! मैंने जो जप किया है, उसका उत्तम फल आप ग्रहण करिये; मेरे जपका आधा फल तो आप विचार न करके ही प्राप्त करें ॥ ४८ ॥

अथ वा सर्वमेवेह जप्यकं मामकं फलम् ।
राजन्प्राप्नुहि कामं त्वं यदि सर्वमिहेच्छसि ॥ ४९ ॥

यदि आप मेरे जपके पूरे फलकी इच्छा करते हों, तो मेरे जपका सब फल प्राप्त कर सकते हैं ॥ ४९ ॥

राजोवाच—

कृतं सर्वेण भद्रं ते जप्यं यद्याचितं मया ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि किं च तस्य फलं वद ॥ ५० ॥

राजा बोला— मैंने जो आपके जपका सब फल मांगा है, उन सबकी पूर्ति हो गयी । आप सुखी रहिये; मैं जाता हूं; परन्तु आपके जपका फल क्या है वही मुझसे कहिये ॥ ५० ॥

ब्राह्मण उवाच—

फलप्राप्तिं न जानामि दत्तं यज्जपितं मया ।
अयं धर्मश्च कालश्च यमो मृत्युश्च साक्षिणः ॥ ५१ ॥

ब्राह्मण बोला— मैंने जो जप किया है और आपको दान किया है, उससे क्या फल प्राप्त हुआ है, वह मैं कुछ भी नहीं जानता । ये धर्म, काल, यम और मृत्यु, इस विषयके साक्षी हैं ॥ ५१ ॥

राजोवाच—

अज्ञातमस्य धर्मस्य फलं मे किं करिष्यति ।
प्राप्नोतु तत्फलं विप्रो नाहमिच्छे ससंशयम् ॥ ५२ ॥

राजा बोला— इस धर्मका फल अज्ञात रहनेसे मुझे क्या फल होगा ? इस फलको आपही पावें; मैं संशयके सहित फललाभ करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्राह्मण उवाच—

नाददेऽपरवक्तव्यं दत्तं वाचा फलं मया ।
वाक्यं प्रमाणं राजर्षे ममापि तव चैव हि ॥ ५३ ॥

ब्राह्मण बोला— हे राजर्षि ! दूसरेसे जो कहना होता है और मैंने जो फल दान किया है; उसे अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा; इस समय तुम्हारा और मेरा वचनही इस विषयमें प्रमाण है ॥ ५३ ॥

नाभिसंधिर्मया जप्ये कृतपूर्वः कथंचन ।
जप्यस्य राजशार्दूल कथं ज्ञास्याम्यहं फलम् ॥ ५४ ॥

मैंने पहले जप करते समय कभी फलकी आशा नहीं की थी; हे नृपश्रेष्ठ ! इसलिये मैं इस जपका फल किस प्रकार जानूं ? ॥ ५४ ॥

ददस्वेति त्वया चोक्तं ददामीति तथा मया ।
न वाचं दूषयिष्यामि सत्यं रक्ष स्थिरो भव ॥ ५५ ॥

आपने ' दान करो ' ऐसा वचन कहा, मैंने भी ' दान किया ' यह वचन कहा है, और इस समय अपना वचन दूषित नहीं कर सकूंगा; आप स्थिर होके सत्यकी रक्षा करिये ॥५५॥

अथैवं वदतो मेऽद्य वचनं न करिष्यसि ।
महानधर्मो भविता तव राजन्मृषाकृतः ॥ ५६ ॥

हे राजन् ! मैं इसी प्रकार कहता हूं, इससे यदि मेरा वचन न मानोगे, तो तुम्हें मिथ्या वचनके कारण महान् अधर्म – पाप होगा ॥ ५६ ॥

न युक्तं तु मृषा वाणी त्वया वक्तुमरिंदम ।
तथा मयाप्यभ्यधिकं मृषा वक्तुं न शक्यते ॥ ५७ ॥

हे शत्रुनाशन ! जैसे आपको मिथ्या कहना उचित नहीं है, वैसेही मैंने भी जो कुछ कहा है, उसे भी मिथ्या करना योग्य नहीं है ॥ ५७ ॥

संश्रुतं च मया पूर्वं ददानीत्यविचारितम् ।
तद्गृह्णीष्वाविचारेण यदि सत्ये स्थितो भवान् ॥ ५८ ॥

मैंने पहिले अविचारित चित्तसे " दान किया " कहके अङ्गीकार किया है, इसलिये यदि आप सत्यपथमें स्थित हों, तो विचार न करके मेरे दिये हुए फलको ग्रहण करिये ॥ ५८ ॥

इहागम्य हि मां राजञ्जाप्यं फलमयाचिथाः ।
तन्मन्निसृष्टं गृह्णीष्व भव सत्ये स्थिरोऽपि च ॥ ५९ ॥

हे राजन् ! आपने इस स्थानमें आके मुझसे जपका फल मांगा, मैंने आपको उसे दान किया है; इससे आप ग्रहण करिये और सत्य पथमें स्थित होइये; ॥ ५९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नायं लोकोऽस्ति न परो न च पूर्वान्स तारयेत् ।
कुत एवावराञ्राजन्मृषावादपरायणः ॥ ६० ॥

मिथ्या वचन कहनेवाले मनुष्यको इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं मिलता है; राजन् ! जब कि वह पूर्व पुरुषोंका ही उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है, तब किस प्रकार उत्पन्न हुए सन्तानपरम्परका कल्याण साधन करेगा ? ॥ ६० ॥

न यज्ञाध्ययने दानं नियमास्तारयन्ति हि ।
यथा सत्यं परे लोके यथा वै पुरुषर्षभ ॥ ६१ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जैसा इस लोक और परलोकमें सत्य लोगोंके निस्तारका कारण है; यज्ञ अध्ययन, दान और सब नियम वैसे नहीं हैं ॥ ६१ ॥

तपांसि यानि चीर्णानि चरिष्यसि च यत्तपः ।
समाः शतैः सहस्रैश्च तत्सत्यान्न विशिष्यते ॥ ६२ ॥

मनुष्योंने सौ हजार वर्षोंतक जो तपस्याएं की हैं और करेंगे, उनको सौ गुना या सहस्र गुना करें, तो भी उसका फल सत्यफलसे बढकर नहीं हो सकता ॥ ६२ ॥

सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षरं तपः ।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः सत्यमेकाक्षरं श्रुतम् ॥ ६३ ॥

सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, सत्य ही अक्षय तपस्या है; सत्य ही केवल सदा फल देनेवाला यज्ञ है, सत्य ही नित्य वेदस्वरूप है ॥ ६३ ॥

सत्यं वेदेषु जागर्ति फलं सत्ये परं स्मृतम् ।
सत्याद्धर्मो दमश्चैव सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ६४ ॥

वेदोंमें सत्य ही प्रकाशमान होरहा है, सत्यका फल सबसे श्रेष्ठ है, ऋषियोंने ऐसा ही कहा है । सत्यसे ही धर्म और इन्द्रियजयरूपी दमगुण प्राप्त होता है । सत्यसे ही सब प्रतिष्ठित हैं ॥ ६४ ॥

सत्यं वेदास्तथाङ्गानि सत्यं यज्ञस्तथा विधिः ।
व्रतचर्यास्तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च ॥ ६५ ॥

सत्य ही वेद और वेदाङ्ग स्वरूप है । सत्य ही विद्या और विधि स्वरूप है । सत्य ही ब्रह्मचर्य और सत्य ही ओंकार स्वरूप है ॥ ६५ ॥

प्राणिनां जननं सत्यं सत्यं संततिरेव च ।
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ॥ ६६ ॥

प्राणियोंकी उत्पत्ति और विस्तृति—संतति सत्यस्वरूप है । सत्यके कारण वायु बहता है और सत्यसे ही सूर्य तपता है ॥ ६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
सत्यं यज्ञस्तपो वेदाः स्तोभा मन्त्राः सरस्वती ॥ ६७ ॥

सत्यसे अग्नि जलती है और सत्यसे ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। सत्य ही यज्ञ, तपस्या, वेद, सामोच्चारण वर्ण, मन्त्र और सरस्वती स्वरूप है ॥ ६७ ॥

तुलामारोपितो धर्मः सत्यं चैवेति नः श्रुतम् ।
समां कक्षां धारयतो यतः सत्यं ततोऽधिकम् ॥ ६८ ॥

सुना गया है, तुल्यता जाननेके लिये सत्य और धर्म तुलादण्डपर रखे गये थे, समान भावसे परिमाण करनेके समय जिधर सत्य था, उधरका ही पलडा अधिक हुआ ॥ ६८ ॥

यतो धर्मस्ततः सत्यं सर्वं सत्येन वर्धते ।
किमर्थमनृतं कर्म कर्तुं राजंस्त्वमिच्छसि ॥ ६९ ॥

जहांपर धर्म है वहां ही सत्य है, सत्यसे ही सबकी वृद्धि होती है। हे महाराज ! इससे आप किस निमित्त अपने वचनको मिथ्या करनेकी इच्छा करते हैं ? ॥ ६९ ॥

सत्ये कुरु स्थिरं भावं मा राजन्ननृतं कृथाः ।
कस्मात्त्वमनृतं वाक्यं देहीति कुरुषेऽशुभम् ॥ ७० ॥

हे राजन् ! आप अपना अन्तःकरण सत्यमें ही स्थिर कीजिये, मिथ्या आचरणमें अनुरक्त न होइये। आपने "देहि" यह अशुभ और मिथ्या वचन क्यों कहा ? ॥ ७० ॥

यदि जप्यफलं दत्तं मया नेषिष्यसे नृप ।
स्वधर्मेभ्यः परिभ्रष्टो लोकाननुचरिष्यसि ॥ ७१ ॥

हे महाराज ! यदि आप मेरे दिये हुए जपके फलको ग्रहण करनेकी इच्छा न करेंगे, तो अपने सब धर्मसे भ्रष्ट होकर निकृष्ट लोकोंमें विचरेंगे ॥ ७१ ॥

संश्रुत्य यो न दित्सेत याचित्वा यश्च नेच्छति ।
उभावानृतिकावेतौ न मृषा कर्तुमर्हसि ॥ ७२ ॥

जो अङ्गीकार करके देनेकी इच्छा नहीं करता और जो मांगके दान लेनेसे विमुख होता है; वे दोनों ही मिथ्याचारी होते हैं; इसलिये आप अपने और मेरे वचनको मिथ्या नहीं कर सकते ॥ ७२ ॥

राजोवाच—

योद्धव्यं रक्षितव्यं च क्षत्रधर्मः किल द्विज ।
दातारः क्षत्रियाः प्रोक्ता गृह्णीयां भवतः कथम् ॥ ७३ ॥

राजा बोला—हे द्विजवर ! युद्ध और प्रजापालन करना क्षत्रियका धर्म है, तथा क्षत्रिय लोग ही दाता कहके वर्णित हुए हैं; इसलिये मैं आपके समीपसे कैसे दान ले सकूंगा ? ॥ ७३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्राह्मण उवाच—

न छन्दयामि ते राजन्नापि ते गृहमाव्रजम्।
इहागम्य तु याचित्वा न गृह्णीषे पुनः कथम् ॥ ७४ ॥

ब्राह्मण बोला— हे राजन्! मैं तुम्हारे घरपर देनेके लिये नहीं आया था और 'ग्रहण करो' कहके बार बार आग्रहके सहित प्रार्थना भी नहीं की थी; आप ही मेरे समीप आकर मांगकर अब क्यों ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हो रहे हैं? ॥ ७४ ॥

धर्म उवाच—

अविवादोऽस्तु युवयोर्वित्तं मां धर्ममागतम्।
द्विजो दानफलैर्युक्तो राजा सत्यफलेन च ॥ ७५ ॥

धर्म बोले— तुम दोनोंके विवादका निवटारा होवे, तुम दोनोंको विहित हो कि मैं धर्म इस स्थानमें आया हूं। ब्राह्मण दानफलसे और राजा सत्यफलसे संयुक्त होवें ॥ ७२ ॥

स्वर्ग उवाच—

स्वर्गं मां विद्धि राजेन्द्र रूपिणं स्वयमागतम्।
अविवादोऽस्तु युवयोरुभौ तुल्यफलौ युवाम् ॥ ७६ ॥

स्वर्ग बोला— हे राजेन्द्र! तुम्हें विदित हो कि मैं स्वर्ग स्वयं मूर्तिमान् होके यहां आया हूं; तुम दोनोंका विवाद मिट जावे; तुम दोनों ही समानफलभागी हुए हो ॥ ७६ ॥

राजोवाच—

कृतं स्वर्गेण मे कार्यं गच्छ स्वर्ग यथासुखम्।
विप्रो यदीच्छते दातुं प्रतीच्छतु च मे धनम् ॥ ७७ ॥

राजा बोला— स्वर्गके साथ मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हे स्वर्ग! जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां सुखपूर्वक जाओ। ब्राह्मण यदि देनेकी इच्छा करे, तो मेरे धनको ग्रहण करनेकी इच्छा करे ॥ ७७ ॥

ब्राह्मण उवाच—

बाल्ये यदि स्यादज्ञानान्मया हस्तः प्रसारितः।
निवृत्तिलक्षणं धर्ममुपासे संहितां जपन् ॥ ७८ ॥

ब्राह्मण बोला— बालक अवस्थामें यदि अज्ञानके वशमें होकर मैंने ग्रहण करनेके वास्ते हाथ पसारा हो, तो नहीं कह सकता; परन्तु ज्ञान होनेपर आजतक मैं सावित्री संहिता जप करते हुए निवृत्तिलक्षण धर्मकी उपासना करता हूं ॥ ७८ ॥

निवृत्तं मां चिरं राजन्विप्रं लोभयसे कथम्।
स्वेन कार्यं करिष्यामि त्वत्तो नेच्छे फलं नृप।
तपःस्वाध्यायशीलोऽहं निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ॥ ७९ ॥

हे राजन् मैं बहुत समयसे प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं, इसलिये मुझे आप क्यों लोभ दिखाते हैं? हे नृपवर! मैं तपस्या और स्वाध्यायमें रत और प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं; इसलिये स्वयं ही अपना कार्य करूंगा, आपके निकट कुछ फल ग्रहण करनेका अभिलाषी नहीं हूं ॥ ७९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजोवाच—

यदि विप्र निसृष्टं ते जप्यस्य फलमुत्तमम् ।
आवयोर्यत्फलं किंचित्सहितं नौ तदस्त्विह ॥ ८० ॥

राजा बोला— हे विप्रवर ! आपने अपने परमश्रेष्ठ जपका फल यदि दे दिया है, तो हम दोनोंका जो कुछ पुण्य फल है, वह इस स्थानमें एकत्रित करके हम दोनों साथही भोगें; हम दोनोंका उसपर समान अधिकार रहे ॥ ८० ॥

द्विजाः प्रतिग्रहे युक्ता दातारो राजवंशजाः ।
यदि धर्मः श्रुतो विप्र सहैव फलमस्तु नौ ॥ ८१ ॥

ब्राह्मण दान लेनेवाले और राजवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय दाता कहके विख्यात हैं । हे विप्र ! वेदोक्त धर्म सत्य हो, तो हम दोनोंका फल एकत्रित होवे और साथही उपयोगमें आवे ॥८१॥

मा वा भूत्सहभोज्यं नौ मदीयं फलमाप्नुहि ।
प्रतीच्छ मत्कृतं धर्मं यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ ८२ ॥

यदि आपकी इच्छा न हो तो हम लोगोंको वह फल एकत्र भोगनेकी आवश्यकता नहीं है; तोभी आप मेरे फलको पावें । यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हुई हो, तो आप मेरे किये हुए धर्मका फल ग्रहण करिये ॥ ८२ ॥

भीष्म उवाच—

ततो विकृतचेष्टौ द्वौ पुरुषौ समुपस्थितौ ।
गृहीत्वान्योन्यमावेष्ट्य कुचेलावूचतुर्वचः ॥ ८३ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर मैले वस्त्र और विकृत बर्तन करनेवाले दो पुरुष वहांपर उपस्थित हुए । उनमेंसे एकका नाम विरूप और दूसरेका नाम विकृत था; वे दोनों एक दूसरेको घेरके पकडकर यह वचन कहने लगे ॥ ८३ ॥

न मे धारयसीत्येको धारयामीति चापरः ।
इहास्ति नौ विवादोऽयमयं राजानुशासकः ॥ ८४ ॥

एक पुरुष बोला, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," दूसरा बोला, "मैं अवश्यही तुम्हारे निकट ऋणी हूं ।" पहलेने कहा— इस समय हम दोनोंमें यह विवाद होरहा है; इसलिये यह सबका शासन करनेवाला राजा इसका निर्णय करेंगे ॥ ८४ ॥

सत्यं ब्रवीम्यहमिदं न मे धारयते भवान् ।
अनृतं वदसीह त्वमृणं ते धारयाम्यहम् ॥ ८५ ॥

दूसरा बोला— मैं सत्यही कहता हूं, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है।" पहिला बोला— परन्तु तुम यह मिथ्या कहते हो; मुझपर तुम्हारा ऋण है ॥ ८५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तावुभौ भृशसंतप्तौ राजानमिदमूचतुः ।
परीक्ष्यतां यथा स्याव नावामिह विगर्हितौ ॥ ८६ ॥

वे दोनों ऐसेही वचनसे अत्यन्त संतप्त होके राजाके निकट जाके बोले– हे महाराज ! हम लोग इस विषयमें जिस भांतिसे निन्दित न होवें, आप उसही प्रकार परीक्षा करिये ॥ ८६॥

विरूप उवाच—

धारयामि नरव्याघ्र विकृतस्येह गोः फलम् ।
ददतश्च न गृह्णाति विकृतो मे महीपते ॥ ८७ ॥

विरूप बोला– हे नरश्रेष्ठ महाराज ! मैंने इस समय इस विकृतके गऊ दानका फल ऋण किया है; परन्तु मैं ऋण चुकानेमें प्रवृत्त हूं, तो भी विकृत उसे नहीं लेता है ॥ ८७ ॥

विकृत उवाच—

न मे धारयते किंचिद्विरूपोऽयं नराधिप ।
मिथ्या ब्रवीत्यहं हि त्वां मिथ्याभासं नराधिप ॥ ८८ ॥

विकृत बोला– हे नरनाथ ! इस विरूपने मुझसे कुछ भी ऋण नहीं लिया है, यह आपसे झूठके समान भावसे मिथ्या कह रहा है ॥ ८८ ॥

राजोवाच—

विरूप किं धारयते भवानस्य वदस्व मे ।
श्रुत्वा तथा करिष्यामीत्येवं मे धीयते मतिः ॥ ८९ ॥

राजा बोला– हे विरूप ! तुमने इसके निकट क्या ऋण लिया है, वह मुझसे कहो; मैं सुनके उसका विचार करूंगा; यही मेरे अन्तःकरणमें जंच रहा है ॥ ८९ ॥

विरूप उवाच -

शृणुष्वावहितो राजन्यथैतद्धारयाम्यहम् ।
विकृतस्यास्य राजर्षे निखिलेन नरर्षभ ॥ ९० ॥

विरूप बोला– हे महाराज ! राजर्षि ! मैं जिस प्रकार इस विकृतके निकट ऋणी हुआ हूं, वह सब वृत्तान्त आप सावधान होकर सुनिये ॥ ९० ॥

अनेन धर्मप्राप्त्यर्थं शुभा दत्ता पुरानघ ।
धेनुर्विप्राय राजर्षे तपःस्वाध्यायशीलिने ॥ ९१ ॥

हे पापरहित राजर्षि ! इसने पहिले धर्मप्राप्तिके लिये तप और स्वाध्यायशील किसी ब्राह्मणको एक शुभलक्षणवाली गऊ दान की थी ॥ ९१ ॥

तस्याश्चायं मया राजन्फलमभ्येत्य याचितः ।
विकृतेन च मे दत्तं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ९२ ॥

हे राजन् ! मैंने इसके समीप आके उस गऊ दानका फल मांगा था, और विकृतने भी शुद्ध चित्तसे मुझे वह फल दान किया था ॥ ९२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो मे सुकृतं कर्म कृतमात्मविशुद्धये ।
गावौ हि कपिले क्रीत्वा वत्सले बहुदोहने ॥ ९३ ॥

हे राजन् ! अनन्तर मैंने आत्मशुद्धिके निमित्त सुकृत कर्म किया और बहुतसा दूध देनेवाली बछडायुक्त दो कपिला गऊ खरीदके ॥ ९३ ॥

ते चोञ्छवृत्तये राजन्मया समपवर्जिते ।
यथाविधि यथाश्रद्धं तदस्याहं पुनः प्रभो ॥ ९४ ॥

यथाविधि श्रद्धापूर्वक एक उञ्छवृत्तिवालेको दोनों गऊ प्रदान की । उसीका फल मैं फिर वापस करना चाहता हूं ॥ ९४ ॥

इहाद्य वै गृहीत्वा तत्प्रयच्छे द्विगुणं फलम् ।
एकस्याः पुरुषव्याघ्र कः शुद्धः कोऽत्र दोषवान् ॥ ९५ ॥

हे पुरुषप्रवर ! इस लोकमें एक गोदानका फल लेकर आज मैं इसे दूना फल दे रहा हूं; इस लिये आपही कहिये कि हम दोनोंमेंसे इस समय कौन शुद्ध है और कौन दोषी होगा ? ॥९५॥

एवं विवदमानौ स्वस्त्वामिहाभ्यागतौ नृप ।
कुरु धर्ममधर्मं वा विनये नौ समाधय ॥ ९६ ॥

हे महाराज ! इसी प्रकार विवाद करते हुए हम दोनों आपके निकट आये हैं; आप धर्म वा अधर्मसे विचार करके हम दोनोंको न्यायके मार्गपर ले चलिये ॥ ९६ ॥

यदि नेच्छति मे दानं यथा दत्तमनेन वै ।
भवानत्र स्थिरो भूत्वा मार्गे स्थापयतु प्रभुः ॥ ९७ ॥

हे राजन् ! इसने मुझे जिस प्रकार दान किया है, वैसेही यदि मेरे दानको यह स्वीकार न करे, तो आप सावधान चित्तसे विचार करके हम लोगोंको सत्पथमें स्थापित करनेमें समर्थ होइये ॥ ९७ ॥

राजोवाच—
दीयमानं न गृह्णासि ऋणं कस्मात्त्वमद्य वै ।
यथैव तेऽभ्यनुज्ञातं तथा गृह्णीष्व माचिरम् ॥ ९८ ॥

राजा बोला— हे विकृत ! तुम पहिले दिये हुए ऋणके लेनेमें क्यों विमुख होरहे हो ? तुम्हारा जैसा ज्ञान हो, उसके अनुसार ग्रहण करनेमें देरी मत करो ॥ ९८ ॥

विकृत उवाच—
दीयतामित्यनेनोक्तुं ददानीति तथा मया ।
नायं मे धारयत्यत्र गम्यतां यत्र वाञ्छति ॥ ९९ ॥

विकृत बोला— यह कहता है, "मैं ऋणी हूं" परन्तु मैंने 'दान' करके वह दिया था, इससे यह पुरुष इस समय मेरे समीप ऋणी नहीं है; इसकी जहां इच्छा हो, वहां जावे ॥ ९९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजोवाच—

ददतोऽस्य न गृह्णासि विषमं प्रतिभाति मे ।
दण्ड्यो हि त्वं मम मतो नास्त्यत्र खलु संशयः ॥ १०० ॥

राजा बोला— यह पुरुष दे रहा है, तोभी तुम नहीं लेते हो, यह मुझे अनुचित बोध होता है; मेरे मतमें निःसन्देह तुम्हीं दण्डनीय हो ॥ १०० ॥

विकृत उवाच—

मयास्य दत्तं राजर्षे गृह्णीयां तत्कथं पुनः ।
काममत्रापराधो मे दण्डमाज्ञापय प्रभो ॥ १०१ ॥

विकृत बोला— हे राजर्षि ! मैंने इसे जो दान किया है, उसे, फिर किस प्रकार ले सकता हूं ? प्रभो ! इसमें मेरा अपराध हो, तो अवश्यही आप दण्ड की आज्ञा करिये ॥ १०१ ॥

विरूप उवाच —

दीयमानं यदि मया नेषिष्यसि कथंचन ।
नियंस्यति त्वां नृपतिरयं धर्मानुशासकः ॥ १०२ ॥

विरूप बोला— हे विकृत ! मेरे दिये हुए धनको ग्रहण करना यदि तुम अङ्गीकार न करोगे, तो धर्मके नियमके अनुसार यह शासनकर्त्ता राजा तुम्हें शासन करेगा ॥ १०२ ॥

विकृत उवाच —

स्वं मया याचितेनेह दत्तं कथमिहाद्य तत् ।
गृह्णीयां गच्छतु भवानभ्यनुज्ञां ददानि ते ॥ १०३ ॥

विकृत बोला— मैंने मांगने पर तुम्हें जो धन दान किया है, इस समय उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूं ? जो हो, मैं तुम्हें आज्ञा करता हूं, तुम निज स्थान पर जाओ ॥ १०३ ॥

ब्राह्मण उवाच—

श्रुतमेतत्त्वया राजन्नयोः कथितं द्वयोः ।
प्रतिज्ञातं मया यत्ते तद्गृहाणाविचारितम् ॥ १०४ ॥

ब्राह्मण बोला— हे राजन् ! इन दोनोंने जो कहा, उसे तुमने सुना; इस समय मैंने आपको जो प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये ॥ १०४ ॥

राजोवाच—

प्रस्तुतं सुमहत्कार्यमावयोर्गह्वरं यथा ।
जापकस्य दृढीकारः कथमेतद्भविष्यति ॥ १०५ ॥

राजा बोला— इन लोगोंका कार्य जैसा महान् और गूढ है, यह कार्य भी उसी भांति प्रस्तुत हुआ है । इस जापकके वचनकी दृढता किस प्रकार सिद्ध होगी ? ॥ १०५ ॥

यदि तावन्न गृह्णामि ब्राह्मणेनापवर्जितम् ।
कथं न लिप्येयमहं दोषेण महताद्य वै ॥ १०६ ॥

यदि ब्राह्मणकी दी हुई वस्तु ग्रहण न करूं, तो किस प्रकार महान् पापसे दूर रह सकूंगा ? ॥ १०६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

तौ चोवाच स राजर्षिः कृतकार्यौ गमिष्यथः।
नेदानीं मामिहासाद्य राजधर्मो भवेन्मृषा ॥ १०७ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर वह राजर्षि विरूप और विकृतसे बोले— तुम लोग कृतकार्य होके ही यहांसे गमन करो; इस समय मेरे समीप आकर कार्य पूर्ण हुए बिना न जाना; राजधर्म मिथ्या न हो जाय ॥ १०७ ॥

स्वधर्मः परिपाल्यश्च राज्ञामेष विनिश्चयः।
विप्रधर्मश्च सुगुरुर्मामनात्मानमाविशत् ॥ १०८ ॥

यह निश्चय है, कि राजाओंको सब तरहसे अवश्य स्वधर्म पालन करना चाहिये; मैं अत्यन्त अनात्मज्ञ हूं, इस समय विप्रधर्मने मुझमें प्रवेश किया है ॥ १०८ ॥

ब्राह्मण उवाच—

गृहाण धारयेऽहं ते याचितं ते श्रुतं मया।
न चेद्ग्रहीष्यसे राजञ्शपिष्ये त्वां न संशयः ॥ १०९ ॥

ब्राह्मण बोला— हे राजन् ! आपने जो मांगा है उसे ग्रहण कीजिये और मैंने भी जो अङ्गीकार किया है उसे धारण करूं। आप यदि जांचके ग्रहण न करेंगे, तो मैं निःसंदेह शाप दूंगा ॥ १०९ ॥

राजोवाच—

धिग्राजधर्मं यस्यायं कार्यस्येह विनिश्चयः।
इत्यर्थं मे ग्रहीतव्यं कथं तुल्यं भवेदिति ॥ ११० ॥

राजा बोला— जिसके कार्यका ऐसा निश्चय है, उस राजधर्मको धिक्कार है। इस समय विप्रधर्म और राजधर्म दोनों किस प्रकार समान होंगे, इसेही जाननेके लिये मुझे ग्रहण करना उचित होता है ॥ ११० ॥

एष पाणिरपूर्वं भो निक्षेपार्थं प्रसारितः।
यन्मे धारयसे विप्र तदिदानीं प्रदीयताम् ॥ १११ ॥

मेरा जो हाथ पहिले ग्रहण करनेके वास्ते नहीं पसारा गया था, इस समय वही हाथ दान लेनेके लिये पसारा जा रहा है। इससे, हे विप्र ! आप मेरे निकट जो ऋणी है, इस समय उसे प्रदान करिये ॥ १११ ॥

ब्राह्मण उवाच—

संहितां जपता यावान्मया कश्चिद्गुणः कृतः।
तत्सर्वं प्रतिगृह्णीष्व यदि किंचिदिहास्ति मे ॥ ११२ ॥

ब्राह्मण बोला— मैंने सावित्री संहिता जप करते हुए जो कुछ फल या गुण उपार्जन किया है, वह सब आप ग्रहण करिये। इसके सिवा मेरे पास जो कुछ पुण्य हो, उसे ग्रहण करिये ॥ ११२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजोवाच—

जलमेतन्निपतितं मम पाणौ द्विजोत्तम ।
सममस्तु सहैवास्तु प्रतिगृह्णातु वै भवान् ॥ ११३ ॥

राजा बोला— हे द्विजवर ! मेरे करतलमें यह जल पडा हुआ है, यह दोनोंके सम्बन्धमें समान हो और हम एकत्र मिलकर उसका उपभोग करें; इसलिये आप प्रतिग्रह करिये ॥ ११३ ॥

विरूप उवाच—

कामक्रोधौ विद्धि नौ त्वमावाभ्यां कारितो भवान् ।
समेति च यदुक्तं ते समा लोकास्तवास्य च ॥ ११४ ॥

विरूप बोला— हम काम और क्रोध दोनों इस स्थानमें आये हैं, हमने ही आपके निकट विचारकी प्रार्थना की थी । आपने जो कहा है कि "समान होवे," उससे आपके और इसके सब पुण्यलोक तुल्य होंगे ॥ ११४ ॥

नायं धारयते किंचिज्जिज्ञासा त्वत्कृते कृता ।
कालो धर्मस्तथा मृत्युः कामक्रोधौ तथा युवाम् ॥ ११५ ॥

यह मेरा कुछ भी ऋण धारण नहीं करता है; यह सब आपकी परीक्षा लेनेके लियेही किया था । काल, धर्म, मृत्यु; काम, क्रोध और आप दोनों पुरुष, ॥ ११५ ॥

सर्वमन्योन्यनिकषे निघृष्टं पश्यतस्तव ।
गच्छ लोकाञ्जितान्स्वेन कर्मणा यत्र वाञ्छसि ॥ ११६ ॥

सब तुम्हारे सन्मुखमें ही एक दूसरेकी कसौटीपर परीक्षित हुए हैं । इस समय निज कर्मके जरिये विजित लोकोंके बीच जिस स्थानमें जानेकी इच्छा हो, वहां जाइये ॥ ११६ ॥

भीष्म उवाच—

जापकानां फलावाप्तिर्मया ते संप्रकीर्तिता ।
गतिः स्थानं च लोकाश्च जापकेन यथा जिताः ॥ ११७ ॥

भीष्म बोले— जापकोंकी फलप्राप्ति और गम्य स्थान तुम्हारे समीप प्रदर्शित किया और जापकोंके जरिये जिस प्रकार सब लोक विजित होते हैं, वह भी कहा है ॥ ११७ ॥

प्रयाति संहिताध्यायी ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
अथ वाग्निं समायाति सूर्यमाविशतेऽपि वा ॥ ११८ ॥

जो जापक सावित्री संहिताका अध्ययन करता है, वह परमेष्ठी ब्रह्माको प्राप्त होता है अथवा अग्निलोकमें गमन किया करता है, वा सूर्य लोकमें प्रवेश करता है ॥ ११८ ॥

स तैजसेन भावेन यदि तत्राश्नुते रतिम् ।
गुणांस्तेषां समादत्ते रागेण प्रतिमोहितः ॥ ११९ ॥

यदि वह उन सूर्यादि लोकोंमें प्रकाशमय रति रूपमें अनुरक्त रहे, तो रागसे मोहित होकर सूर्य आदिकी तरह प्रकाश आदि गुण अवलम्बन करता है ॥ ११९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं सोमे तथा वायौ भूम्याकाशशरीरगः ।
सरागस्तत्र वसति गुणांस्तेषां समाचरन् ॥ १२० ॥

और चन्द्रलोक, वायुलोक, भूलोक और आकाशमें उसके अनुरूप शरीर धारण करके उन लोकोंमें जो जो गुण हैं, उसहीका आचरण करता हुआ रागयुक्त होकर वहां निवास करता है ॥ १२० ॥

अथ तत्र विरागी स गच्छति त्वथ संशयम् ।
परमव्ययमिच्छन्स तमेवाविशते पुनः ॥ १२१ ॥

यदि वहांपर वह रागरहित होकर संशययुक्त हो, तो ब्रह्मलोकसे श्रेष्ठ अक्षय लोकको इच्छा करता हुआ उसमेंही प्रविष्ट होता है ॥ १२१ ॥

अमृताच्चामृतं प्राप्तः शीतीभूतो निरात्मवान् ।
ब्रह्मभूतः स निर्द्वंद्वः सुखी शान्तो निरामयः ॥ १२२ ॥

अमृतरूप परमेष्ठी भावकी प्राप्तिसे भी बढकर कैवल्यरूप अमृतको पाकर वह निष्काम, अहङ्काररहित, द्वंद्वहीन, नित्य सुखी, शान्त और रोग-शोकसे रहित ब्रह्मस्वरूप होता है ॥ १२२ ॥

ब्रह्मस्थानमनावर्तमेकमक्षरसंज्ञकम् ।
अदुःखमजरं शान्तं स्थानं तत्प्रतिपद्यते ॥ १२३ ॥

पुनरावृत्तिसे रहित, अद्वितीय, अक्षरसंज्ञक-अविनाशी, संज्ञारहित, दुःख और जराहीन, शुद्ध और शान्तिमय ब्रह्मलोकमें गमन करता है ॥ १२३ ॥

चतुर्भिर्लक्षणैर्हीनं तथा षड्भिः सषोडशैः ।
पुरुषं समतिक्रम्य आकाशं प्रतिपद्यते ॥ १२४ ॥

अनन्तर वह वहांपर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—इन चारों प्रमाणोंसे रहित, भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन छः लक्षणोंसे रहित, प्राण आदि पञ्चवायु, पांचों ज्ञानेन्द्रियां, पांचों कर्मेन्द्रियां और मन,—इन षोडश विकारोंसे मुक्त, उस कारणस्वरूप ब्रह्मको अतिक्रम करके उपाधिरहित चैतन्यमात्र परब्रह्मको पाता है ॥ १२४ ॥

अथ वेच्छति रागात्मा सर्वं तदधितिष्ठति ।
यच्च प्रार्थयते तच्च मनसा प्रतिपद्यते ॥ १२५ ॥

अथवा यदि वह सकाम होकर सर्वमय कारणस्वरूप निर्गुण ब्रह्म लाभकी इच्छा न करे, अर्थात् तदभिमानी हो, तब वह मनही मन जो इच्छा करे, उसेही प्राप्त करता है ॥ १२५ ॥

अथ वा वीक्षते लोकान्सर्वान्निरयसंस्थितान् ।
निःस्पृहः सर्वतो मुक्तस्तत्रैव रमते सुखी ॥ १२६ ॥

इसके अतिरिक्त वह सब उत्तम लोकोंको नरकतुल्य देखता है और निःस्पृह तथा सर्व शङ्कासे विमुक्त होकर वहां परम सुखके साथ विराजता है ॥ १२६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवमेषा महाराज जापकस्य गतिर्यथा ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १२७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ६८९४ ॥

हे महाराज ! यह जपसे जापककी गति विस्तारपूर्वक कही, फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ १२७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ बानबेवां अध्याय समाप्त ॥ १९२ ॥ ६८९४ ॥

: १९३ :

युधिष्ठिर उवाच—

किमुत्तरं तदा तौ स्म चक्रतुस्तेन भाषिते ।
ब्राह्मणो वाथ वा राजा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! उस समय उस विरूपका वचन सुनके जापक ब्राह्मण अथवा राजाने क्या उत्तर दिया ? आप मुझसे वही कहिये ॥ १ ॥

अथ वा तौ गतौ तत्र यदेतत्कीर्तितं त्वया ।
संवादो वा तयोः कोऽभूत्किं वा तौ तत्र चक्रतुः ॥ २ ॥

अथवा सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति और लोकान्तरप्राप्ति इन तीनों गतियोंके विषयको जो आपने कहा है, उसके बीच वे लोग कहां गये ? उन लोगोंकी वहां जानेपर क्या वार्त्ता हुई और उन्होंने वहां जाके क्या किया ? उसे वर्णन करिये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

तथेत्येवं प्रतिश्रुत्य धर्मं संपूज्य चाभिभो ।
यमं कालं च मृत्युं च स्वर्गं संपूज्य चार्हतः ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– हे महाराज ! अनन्तर उस ब्राह्मणने ऐसाही होवे, यह वचन कहके पहले धर्म, यम, काल, मृत्यु और स्वर्ग–इन पूज्य देवताओंका पूर्णरीतिसे पूजन किया ॥ ३ ॥

पूर्वं ये चापरे तत्र समेता ब्राह्मणर्षभाः ।
सर्वान्संपूज्य शिरसा राजानं सोऽब्रवीद्वचः ॥ ४ ॥

फिर वहांपर पहलेसे और दूसरे भी जो सब मुख्य ब्राह्मण उपस्थित हुए थे, शिर झुकाकर उन सबकी पूजा करके राजासे बोला ॥ ४ ॥

फलेनानेन संयुक्तो राजर्षे गच्छ पुण्यताम् ।
भवता चाभ्यनुज्ञातो जपेयं भूय एव हि ॥ ५ ॥

हे राजर्षि ! आप इस फलसे संयुक्त होकर श्रेष्ठ पुण्य गतिको प्राप्त करिये; मैं भी आपकी सम्मतिके अनुसार फिर जप करनेमें नियुक्त होऊंगा ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरश्च मम पूर्वं हि देव्या दत्तो महाबल ।
श्रद्धा ते जपतो नित्यं भवितेति विशां पते ॥ ६ ॥

हे महाबली नरनाथ ! पहिले ही सावित्री देवीने मुझे यह वर दिया है, कि "जप विषयमें तुम्हारी सदा श्रद्धा रहे।" ॥ ६ ॥

राजोवाच—

यद्येवमफला सिद्धिः श्रद्धा च जपितुं तव ।
गच्छ विप्र मया सार्धं जापकं फलमाप्नुहि ॥ ७ ॥

राजा बोला—हे विप्र ! मुझे जपका फल दान करनेसे यदि आपकी सिद्धि निष्फल हुई हो और जप करनेमें ही यदि आपकी श्रद्धा हो; तो मेरे सङ्ग चलिये, जपफल दान करनेके पुण्यसे ही आप जपका फल पावेंगे ॥ ७ ॥

ब्राह्मण उवाच—

कृतः प्रयत्नः सुमहान्सर्वेषां संनिधाविह ।
सह तुल्यफलौ चावां गच्छावो यत्र नौ गतिः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण बोला— इस स्थानमें सबके समीप मैंने आपको जपका फल देनेके लिये अत्यन्त महान् प्रयत्न किया है; इस समय हम दोनों समान रीतिसे तुल्य फलभागी होकर जहां हमारी गति होगी वहां तक गमन करेंगे ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच—

व्यवसायं तयोस्तत्र विदित्वा त्रिदशेश्वरः ।
सह देवैरुपययौ लोकपालैस्तथैव च ॥ ९ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर त्रिदशेश्वर देवराज इन्द्र उनका ऐसा निश्चय जानके लोकपाल और देवताओंके सहित वहां उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

साध्या विश्वेऽथ मरुतो ज्योतींषि सुमहान्ति च ।
नद्यः शैलाः समुद्राश्च तीर्थानि विविधानि च ॥ १० ॥

साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवगण, सुमहान् नक्षत्र, समस्त वाद्य, नदियां, पर्वत, समुद्र और विविध तीर्थ ॥ १० ॥

तपांसि संयोगविधिर्वेदाः स्तोभाः सरस्वती ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहा हुहूः ॥ ११ ॥

तपस्या, योग—विधि, जीव—ब्रह्मकी एकताप्रतिपादक सब वेद, सामगान पूरणार्थ (हायि हावु आदि) सब अक्षर, सरस्वती, नारद, पर्वत विश्वावसु, हाहा, हूहू ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गन्धर्वश्चित्रसेनश्च परिवारगुणैर्युतः ।
नागाः सिद्धाश्च मुनयो देवदेवः प्रजापतिः
विष्णुः सहस्रशीर्षश्च देवोऽचिन्त्यः समागमत् ॥ १२ ॥

और परिवारके सहित चित्रसेन गन्धर्व, नाग, सिद्ध, मुनि, देवाधिदेव प्रजापति, सहस्र शीर्ष शेषनाग और अचिनयदेव भगवान् विष्णु वहां उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

अवाद्यन्तान्तरिक्षे च भेर्यस्तूर्याणि चाभिभो ।
पुष्पवर्षाणि दिव्यानि तत्र तेषां महात्मनाम्
ननृतुश्चाप्सरःसंघास्तत्र तत्र समन्ततः ॥ १३ ॥

उस समय आकाशमें भेरी और तूर्यवाद्य होने लगा। वहांपर उन महानुभावोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी; चारों ओर अप्सराएं नृत्य करने लगीं ॥ १३ ॥

अथ स्वर्गस्तथा रूपी ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
संसिद्धस्त्वं महाभाग त्वं च सिद्धस्तथा नृप ॥ १४ ॥

अनन्तर मूर्तिमान् स्वर्ग ब्राह्मणसे बोला—हे महाराज ! आपने सब तरहसे सिद्धि लाभ की है; फिर राजासे कहा महाराज ! तुम भी सिद्ध हुए हो ॥ १४ ॥

अथ तौ सहितौ राजन्नन्योन्येन विधानतः ।
विषयप्रतिसंहारमुभावेव प्रचक्रतुः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! अनन्तर वे दोनों ही परस्परके उपकारके जरिये एक साथ हो गये; उन्होंने एक साथही अपने मनको विषयोंकी ओरसे हटाया ॥ १५ ॥

प्राणापानौ तथोदानं समानं व्यानमेव च ।
एवं तान्मनसि स्थाप्य दधतुः प्राणयोर्मनः ॥ १६ ॥

प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, इन प्राणवायुओंको हृदयमें स्थापित करके, एकीभूत प्राण और अपान वायुमें मनको धारण किया ॥ १६ ॥

उपस्थितकृतौ तत्र नासिकाग्रमधो भ्रुवौ ।
कुङ्कुण्यां चैव मनसा शनैर्धारयतः स्म तौ ॥ १७ ॥

अनन्तर उन्होंने प्राण और अपानको, उनके निवासस्थल उदरमें स्थापित करके पद्मासन होकर भृकुटीके नीचे नासिकाका अग्रभाग देखते हुए भृकुटीके बीच मनके सहित प्राण और अपान वायुको क्रमसे धारण किया ॥ १७ ॥

निश्चेष्टाभ्यां शरीराभ्यां स्थिरदृष्टी समाहितौ ।
जितासनौ तथाधाय मूर्धन्यात्मानमेव च ॥ १८ ॥

इसी प्रकार उन्होंने चित्तजय करके चेष्टारहित दोनों शरीरोंके जरिये स्थिरदृष्टि और समाहित होकर प्राणके सहित चित्तको मस्तकमें स्थापित करके धारण किया ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तालुदेशमथोद्दाल्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
ज्योतिर्ज्वाला सुमहती जगाम त्रिदिवं तदा ॥ १९ ॥

अनन्तर उस महात्मा ब्राह्मणका ब्रह्मरन्ध्र विदीर्ण होके एक बहुत बडी ज्योतिशिखा निकलके स्वर्ग लोकमें गई ॥ १९ ॥

हाहाकारस्ततो दिक्षु सर्वासु सुमहानभूत् ।
तज्ज्योतिः स्तूयमानं स्म ब्रह्माणं प्राविशत्तदा ॥ २० ॥

उस समय सब दिशाओंमें सब जीवोंके बीच महान् हाहाकार होने लगा । वह प्रशंसनीय स्तुत्य ज्योति उस समय ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हुई ॥ २० ॥

ततः स्वागतमित्याह तत्तेजः स पितामहः ।
प्रादेशमात्रं पुरुषं प्रत्युद्गम्य विशां पते ॥ २१ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पितामह ब्रह्मा प्रादेशके बराबर लंबे पुरुषका आकार धारण किये उस ज्योतिके प्रवेशके समय उठे और उसका स्वागत किया ॥ २१ ॥

भूयश्चैवापरं प्राह वचनं मधुरं स्म सः ।
जापकैस्तुल्यफलता योगानां नात्र संशयः ॥ २२ ॥

फिर उसे वे मधुर वचनसे बोले– योगियोंको जो फल मिलता है वह निःसन्देह जापक लोगोंके समान है ॥ २२ ॥

योगस्य तावदेतेभ्यः फलं प्रत्यक्षदर्शनम् ।
जापकानां विशिष्टं तु प्रत्युत्थानं समाधिकम् ॥ २३ ॥

योगियोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह इन्होंने प्रत्यक्ष देखा है; परन्तु जापकोंके पक्षमें यही विशेष है कि उन्हें देखतेही उठकर स्वागत करना होता है ॥ २३ ॥

उष्यतां मयि चेत्युक्त्वाचेतयत्स ततः पुनः ।
अथास्य प्रविवेशास्यं ब्राह्मणो विगतज्वरः ॥ २४ ॥

अनन्तर ब्रह्मा उस ब्राह्मणसे बोले– "तुम मुझमें सदा वास करो;" ऐसा कहके फिर उसे सचेतन किया । अनन्तर उस ब्राह्मणने आनन्दित होके ब्रह्माके मुखमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

राजाप्येतेन विधिना भगवन्तं पितामहम् ।
यथैव द्विजशार्दूलस्तथैव प्राविशत्तदा ॥ २५ ॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, राजाने भी उसही विधिसे भगवान् पितामहके शरीरमें उसी समय प्रवेश किया ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वयंभुवमथो देवा अभिवाद्य ततोऽब्रुवन् ।
जापकार्थमयं यत्नस्तदर्थं वयमागताः ॥ २६ ॥

अनन्तर देवता लोग ब्रह्माको प्रणाम करके बोले– इस जापकके लिये ही आपका इस प्रकार प्रयत्न हुआ है और हम भी इसीको देखनेके लिये इस स्थानमें उपस्थित हुए थे ॥ २६ ॥

कृतपूजाविमौ तुल्यं त्वया तुल्यफलाविमौ ।
योगजापकयोर्दृष्टं फलं सुमहदद्य वै ।
सर्वाँल्लोकानतीत्यैतौ गच्छेतां यत्र वाञ्छितम् ॥ २७ ॥

यह ब्राह्मण और राजा आपके समान फलके भागी हुए हैं, इसलिये आपने इन दोनों तुल्य पुरुषोंका समान सत्कार किया है । योगी और जापकके महान् फलको आज हमने प्रत्यक्ष देखा । इस समय ये लोग सब लोकोंको अतिक्रम करके जहां इच्छा हो, वहां गमन करें ॥२७॥

ब्रह्मोवाच—

महास्मृतिं पठेद्यस्तु तथैवानुस्मृतिं शुभाम् ।
तावप्येतेन विधिना गच्छेतां मत्सलोकताम् ॥ २८ ॥

ब्रह्मा बोले– जो शिक्षा आदि वेदाङ्गस्वरूप महास्मृतिके शास्त्रका अध्ययन करता है और जो मनु आदि प्रणीत शुभफल देनेवाली मनुस्मृति आदिका पाठ किया करता है, वह भी इसी विधिके अनुसार हमारे समान लोकमें गमन कर सकता है ॥ २८ ॥

यश्च योगे भवेद्भक्तः सोऽपि नास्त्यत्र संशयः ।
विधिनानेन देहान्ते मम लोकानवाप्नुयात् ।
गम्यतां साधयिष्यामि यथास्थानानि सिद्धये ॥ २९ ॥

जो योग विषयमें अनुरक्त रहता है, वह भी शरीर त्यागने पर इस ही रीतिसे हमारे समान लोकको पाता है, इसमें सन्देह नहीं है । इस समय मैं जाता हूं । तुम लोग भी गमन करो; मैं सिद्धिके अनुसार यथास्थानोंका प्रयोजन करूंगा ॥ २९ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।
आमन्त्र्य तं ततो देवा ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥ ३० ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! प्रजापति ब्रह्मा उस समय ऐसाही कहके उसही स्थानमें अन्तर्हित हुए । अनन्तर देवता लोग भी परस्पर आमन्त्रण करके निज निज स्थान पर गये ॥ ३० ॥

ते च सर्वे महात्मानो धर्मं सत्कृत्य तत्र वै ।
पृष्ठतोऽनुययू राजन्सर्वे सुप्रीतमानसाः ॥ ३१ ॥

राजन् ! यम आदि महानुभावोंने अत्यन्त प्रसन्न होके धर्मका सत्कार करके उनके पीछे पीछे गमन किया ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतत्फलं जापकानां गतिश्चैव प्रकीर्तिता ।
यथाश्रुतं महाराज किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ ६९२६ ॥

हे महाराज ! जापकोंके फल और गतिका विषय जैसा मैंने सुना था, वैसा ही तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर किस विषयको तुम सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ ३२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९३ ॥ ६९२६ ॥

: १९४ :

युधिष्ठिर उवाच—

किं फलं ज्ञानयोगस्य वेदानां नियमस्य च ।
भूतात्मा वा कथं ज्ञेयस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! ज्ञानयुक्त योग, सब वेदों और अग्निहोत्र आदि नियमोंका क्या फल है ? और सब प्राणियोंमें रहनेवाले परमात्माको किस प्रकार जाने ? आप मुझसे वही कहिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मनोः प्रजापतेर्वादं महर्षेश्च बृहस्पतेः ॥ २ ॥

भीष्म बोले—प्राचीन लोग इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ २ ॥

प्रजापतिं श्रेष्ठतमं पृथिव्यां देवर्षिसंघप्रवरो महर्षिः ।
बृहस्पतिः प्रश्नमिमं पुराणं पप्रच्छ शिष्योऽथ गुरुं प्रणम्य ॥ ३ ॥

देवता और ऋषियोंमें मुख्य महर्षि बृहस्पतिने शिष्यभाव स्वीकार करके पृथ्वीपरके श्रेष्ठतम प्रजापति मनुको गुरु समझके उन्हें प्रणाम करके यह प्राचीन प्रश्न पूंछा ॥ ३ ॥

यत्कारणं मन्त्रविधिः प्रवृत्तो ज्ञाने फलं यत्प्रवदन्ति विप्राः ।
यन्मन्त्रशब्दैरकृतप्रकाशं तदुच्यतां मे भगवन्यथावत् ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! जो इस जगत्का कारण है, जिसके निमित्त कर्मकाण्डकी विधि प्रचलित हुई है, जिसे जाननेसे परमफलकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्राह्मण लोग कहा करते हैं; वेदोक्त मन्त्र जिसे पूर्णरूपसे प्रकाश नहीं कर सकते, आप विधिपूर्वक उस नित्यका वर्णन करिये ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदर्थशास्त्रागममन्त्रविद्भिर्यज्ञैरनेकैर्वरगोप्रदानैः ।
फलं महद्भिर्यदुपास्यते च तत्किं कथं वा भविता क्व वा तत् ॥ ५ ॥

धर्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग शास्त्र और वेद मन्त्रोंके जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके महत् यज्ञ और श्रेष्ठ गोदानके जरिये जिस फलकी उपासना किया करते हैं, वह वस्तु कैसी है ? किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है ? और वह कहां है ? ॥ ५ ॥

मही महीजाः पवनोऽन्तरिक्षं जलौकसश्चैव जलं दिवं च ।
दिवौकसश्चैव यतः प्रसूतास्तदुच्यतां मे भगवन्पुराणम् ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! महीमण्डल, स्थावर और जङ्गम, वायु, आकाश, जलचर जीव, जल, द्युलोक और देवता लोग जिससे उत्पन्न हुए हैं, आप मेरे समीप उसही पुराण पुरुषका विषय वर्णन करिये ॥६॥

ज्ञानं यतः प्रार्थयते नरो वै ततस्तदर्था भवति प्रवृत्तिः ।
न चाप्यहं वेद परं पुराणं मिथ्याप्रवृतिं च कथं नु कुर्याम् ॥ ७ ॥

मनुष्य जिस विषयमें ज्ञानकी इच्छा करता है, ज्ञानसे उसे उसके निमित्त प्रवृत्ति हुआ करती है; मैं उस पुरातन परमश्रेष्ठ पुरुषको नहीं जानता, तब उसे जाननेके लिये किस प्रकार मिथ्या प्रवृत्ति करनेमें प्रवृत्त होऊं ? ॥ ७ ॥

ऋक्सामसंघांश्च यजूंषि चाहं छन्दांसि नक्षत्रगतिं निरुक्तम् ।
अधीत्य च व्याकरणं सकल्पं शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि ॥ ८ ॥

मैं ऋक्, साम और सम्पूर्ण यजुर्वेद; छन्द, नक्षत्र, निरुक्त, व्याकरण, कल्प और शिक्षा, यह सब विद्याओंको पढके भी आकाश आदिके उपादान कारण आत्माको जाननेमें समर्थ न हुआ ॥८॥

स मे भवाञ्शंसतु सर्वमेतज्ज्ञाने फलं कर्मणि वा यदस्ति ।
यथा च देहाच्च्यवते शरीरी पुनः शरीरं च यथाऽभ्युपैति ॥ ९ ॥

आत्माको पूरी तरहसे जाननेसे क्या फल होता है ? कर्म करनेसे ही कौनसा फल मिलता है ? देहधारी आत्मा शरीरसे जिस प्रकार पृथक् होता है, और फिर जिस प्रकार शरीरमें स्थित होता है, आप वह सब वर्णन करिये ॥ ९ ॥

मनुरुवाच—

यद्यत्प्रियं यस्य सुखं तदाहुस्तदेव दुःखं प्रवदन्त्यनिष्टम् ।
इष्टं च मे स्यादितरच्च न स्यादेतत्कृते कर्मविधिः प्रवृत्तः ।
इष्टं त्वनिष्टं च न मां भजेतेत्येतत्कृते ज्ञानविधिः प्रवृत्तः ॥ १० ॥

मनु बोले— प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जिसे प्रिय है उसे उसहीसे सुख है, जिसे जो अप्रिय है, वही उसका दुःख है । "मेरी भलाई हो और कुछ बुराई न हो," इसही लिये मनुष्य कर्म करनेमें प्रवृत्त हुआ करता है; "मेरी भलाई बुराई कुछ न हो," इसही निमित्त मनुष्य ज्ञानके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कामात्मकाश्छन्दसि कर्मयोगा एभिर्विमुक्तः परमश्नुवीत ।
नानाविधे कर्मपथे सुखार्थी नरः प्रवृत्तो न परं प्रयाति ।
परं हि तत्कर्मपथादपेतं निराशिषं ब्रह्मपरं ह्यवश्यम् ॥ ११ ॥

वेदमें कहे हुए सब कर्म कामप्रधान कहके निर्दिष्ट हुए हैं; जो उन सब कर्मोंसे मुक्त होता है, वह परम सुखका भोग करता है, परमात्माको पाता है । अनेक प्रकारके कर्मपथमें प्रवृत्त होके सुखकी इच्छा करनेवाला मनुष्य परमात्माको प्राप्त नहीं होता । धर्ममें प्रवृत्त मनुष्य चित्तशुद्धि आदि कर्मोंसे राग आदि दोषोंके रहित होनेके कारण आइनेकी तरह प्रकाशमान होकर कर्म पथसे अत्यन्त अगोचर निष्काम परब्रह्मको पाता है ॥ ११ ॥

प्रजाः सृष्टा मनसा कर्मणा च द्वावप्येतौ सत्पथौ लोकजुष्टौ ।
दृष्ट्वा कर्म शाश्वतं चान्तवच्च मनस्त्यागः कारणं नान्यदस्ति ॥ १२ ॥

मन और कर्मके सहित प्रजा उत्पन्न की गयी है; इसलिये मन और धर्म संसारप्रद होनेपर भी सर्वलोकसेवित सत्पथ स्वरूप अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हुए हैं । कर्म—सनातन और विनाशशील— दो प्रकारका हैं; वेदविहित कर्म मोक्षके कारण होनेपर भी उनका फल बहुत कम है; मनसे क्रियमाण कर्मफलका त्यागही मोक्षके विषयमें कारण है, दूसरा कुछ भी नहीं है ॥१२॥

स्वेनात्मना चक्षुरिव प्रणेता निशात्यये तमसा संवृतात्मा ।
ज्ञानं तु विज्ञानगुणेन युक्तं कर्माशुभं पश्यति वर्जनीयम् ॥ १३ ॥

जैसे नेत्र रूपी नायक रात्रिके बीतनेपर अन्धकारसे रहित होकर त्यागने योग्य कांटे आदिको स्वयं देखता है, वैसेही ज्ञान विवेक गुणसे संयुक्त होकर त्यागने योग्य अशुभ कर्मोंको देखता रहता है ॥ १३ ॥

सर्पान्कुशाग्राणि तथोदपानं ज्ञात्वा मनुष्याः परिवर्जयन्ति ।
अज्ञानतस्तत्र पतन्ति मूढा ज्ञाने फलं पश्य यथा विशिष्टम् ॥ १४ ॥

जैसे मनुष्य रास्तेमें सांप, कुशाग्र और कूएंको जानके उन्हें परित्याग करके निकलते हैं, वैसेही मूढ मनुष्य अज्ञानताके कारण उनके ऊपर गिरते हैं; इसलिये ज्ञानमें जो विशेष फल है, वह इस उदाहरणसे ही देखो ॥ १४ ॥

कृत्स्नस्तु मन्त्रो विधिवत्प्रयुक्तो यज्ञा यथोक्तास्त्वथ दक्षिणाश्च ।
अन्नप्रदानं मनसः समाधिः पञ्चात्मकं कर्मफलं वदन्ति ॥ १५ ॥

विधिपूर्वक प्रयोग किये गये मन्त्र, यथोक्त विधियुक्त यज्ञका अनुष्ठान, दक्षिणादान, अन्नप्रदान और देवताके ध्यानमें मनकी एकाग्रता—ज्ञानपूर्वक किये गये इन पांचों अंगोंसे सम्पन्न यज्ञको ही प्राचीन लोग फलवत् कर्म कहा करते हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Panchajiji) Veda Vidhi Vidyalaya. Digitized by eGangotri

गुणात्मकं कर्म वदन्ति वेदास्तस्मान्मन्त्रा मन्त्रमूलं हि कर्म।
विधिर्विधेयं मनसोपपत्तिः फलस्य भोक्ता तु तथा शरीरी ॥ १६ ॥

वेद सब कर्मोंको सात्विक, राजसिक और तामसिक कहा करता है, इससे मन्त्र भी त्रिगुणात्मक हैं; क्योंकि मन्त्रपूर्वक कर्महीं सिद्ध होते हैं। सात्विक आदि भेदोंसे विधि भी तीन प्रकार की है; मनके जरिये फलकी उत्पत्ति हुआ करती है और फलभोक्ता देहधारी भी तीनों गुणोंके भेदसे सुखी, दुःखी और मूढ भेदसे तीन प्रकारका हुआ करता है ॥ १६ ॥

शब्दाश्च रूपाणि रसाश्च पुण्याः स्पर्शाश्च गन्धाश्च शुभास्तथैव।
नरो नसंस्थानगतः प्रभुः स्यादेतत्फलं सिध्यति कर्मलोके ॥ १७ ॥

शब्द, रूप, पवित्र रस, स्पर्श और शुभ गन्ध आदि कर्मफलोंसे प्राप्त होने योग्य स्वर्ग आदि लोक सिद्ध होते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेसे ही ज्ञान फलका अधिकारी नहीं होता; ज्ञानका फल, कर्मसे प्राप्य स्वर्ग आदि लोक ही सिद्ध हुआ करता है। कर्म फलकी प्राप्ति दैवाधीन है ॥ १७ ॥

यद्यच्छरीरेण करोति कर्म शरीरयुक्तः समुपाश्नुते तत्।
शरीरमेवायतनं सुखस्य दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम् ॥ १८ ॥

शरीरसे जो कर्म करता है, शरीरयुक्त होकर जीव उस ही कर्मका फल भोग किया करता है; क्योंकि अकेला शरीर ही केवल सुखका स्थान और शरीरही केवल दुःखका आश्रय है ॥१८॥

वाचा तु यत्कर्म करोति किंचिद्वाचैव सर्वं समुपाश्नुते तत्।
मनस्तु यत्कर्म करोति किंचिन्मनःस्थ एवायमुपाश्नुते तत् ॥ १९ ॥

वचनसे जो कुछ कर्म करता है, जीव वाक्यके सहित उन सब फलोंको भोग किया करता है; मनसे जो कुछ कर्म करता है, जीव मनके सहितही उन कर्मफलोंको भोग किया करता है ॥१९॥

यथागुणं कर्मगणं फलार्थी करोत्ययं कर्मफले निविष्टः।
तथा तथायं गुणसंप्रयुक्तः शुभाशुभं कर्मफलं भुनक्ति ॥ २० ॥

जीव कर्मके फलमें रत और फलकी इच्छा करके जिस प्रकार जो जो गुणयुक्त कर्म करता है, उन्हीं गुणोंसे संयुक्त होकर उनही शुभाशुभ कर्मफलोंका भोग करता है ॥ २० ॥

मत्स्यो यथा स्रोत इवाभिपाती तथा कृतं पूर्वमुपैति कर्म।
शुभे त्वसौ तुष्यति दुष्कृते तु न तुष्यते वै परमः शरीरी ॥ २१ ॥

जैसे जलके सोतेमें पडी हुई मछली बहावके साथ बह जाती है, उसी तरह जीव पूर्वकृत कर्मोंका अनुसरण करता है; उसके बीच वह श्रेष्ठ शरीरधारी जीव शुभ कर्मोंमें सन्तुष्ट और अशुभकर्मोंसे असन्तुष्ट होता है ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यतो जगत्सर्वमिदं प्रसूतं ज्ञात्वात्मवन्तो व्यतियान्ति यत्तत् ।
यन्मन्त्रशब्दैरकृतप्रकाशं तदुच्यमानं शृणु मे परं यत् ॥ २२ ॥

जिससे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसे जानके चित्तको जीतनेवाले योगी लोग जगत्को अतिक्रम करके परमपद प्राप्त करते हैं और वेदके मन्त्रोंसे– वचनोंसे जिसके स्वरूपको प्रकाश नहीं कर सकते, उस परम पदार्थका विषय कहता हूं, सुनो ॥ २२ ॥

रसैर्वियुक्तं विविधैश्च गन्धैरशब्दमस्पर्शमरूपवच्च ।
अग्राह्यमव्यक्तमवर्णमेकं पञ्चप्रकारं ससृजे प्रजानाम् ॥ २३ ॥

जो स्वयं रसहीन और विविध गन्धोंसे रहित है; जो शब्द, स्पर्श और रूप, इन तीनोंसे युक्त नहीं है; जो इन्द्रियोंसे अगोचर, अव्यक्त, वर्णहीन और एक मात्र है; जिसने प्रजा समूहके प्रयोजनके निमित्त पांच प्रकार रस आदिकी सृष्टि की है, ॥ २३ ॥

न स्त्री पुमान्वापि नपुंसकं च न सन्न चासत्सदसच्च तन्न ।
पश्यन्ति यद्ब्रह्मविदो मनुष्यास्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ६९५० ॥

वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसकही है; वह न सत् है, न असत् है और सदसत् भी नहीं है; ब्रह्मवित् मनुष्य जिसे ज्ञाननेत्रसे देखते हैं, उसे ही क्षयरहित अक्षय परब्रह्म परमात्मा जानो ॥ २४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ चौरानब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ १९४ ॥ ६९५० ॥

: १९५ :

मनुरुवाच—

अक्षरात्खं ततो वायुर्वायोर्ज्योतिस्ततो जलम् ।
जलात्प्रसूता जगती जगत्यां जायते जगत् ॥ १ ॥

मनु बोले– माया-सहाय अक्षर पुरुषसे आकाश उत्पन्न होता है, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे यह पृथ्वी उत्पन्न होती है और पृथ्वीसे स्थावरजङ्गमयुक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ करता है ॥ १ ॥

इमे शरीरैर्जलमेव गत्वा जलाच्च तेजः पवनोऽन्तरिक्षम् ।
खाद्वै निवर्तन्ति नभाविनस्ते ये भाविनस्ते परमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

अन्तमें सब शरीरधारी स्थावरजङ्गमात्मक इन सम्पूर्ण पार्थिव शरीरोंके जरिये लवणकी भांति पहिले जलमें लीन होते हैं; फिर जलसे अग्नि, अग्निसे वायु और वायुसे आकाशमें जाके निर्वृति लाभ करते हैं । जो लोग ज्ञानी भक्त नहीं हैं, वे फिर आकाशसे लौट आते हैं; जो लोग ज्ञानी– मुमुक्षु होते हैं, वे मोक्ष स्वरूप परमात्माको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नोष्णं न शीतं मृदु नापि तीक्ष्णं नाम्लं कषायं मधुरं न तिक्तम् ।
न शब्दवन्नापि च गन्धवत्तन्न रूपवत्तत्परमस्वभावम् ॥ ३ ॥

मोक्षका आश्रय परमात्मा न गर्म है, न ठण्डा है; न कोमल है, न कठोर है; न खट्टा है, न कषैला है; न मीठा है, न तीखा है; न वह शब्दयुक्त है, न गन्धविशिष्ट है और न वह रूपवान् है। वह सहज स्वभावयुक्त सर्वोत्कृष्ट है ॥ ३ ॥

स्पर्शं तनुर्वेद रसं तु जिह्वा घ्राणं च गन्धाञ्श्रवणे च शब्दान् ।
रूपाणि चक्षुर्न च तत्परं यद्गृह्णन्त्यनध्यात्मविदो मनुष्याः ॥ ४ ॥

त्वक्से स्पर्शज्ञान, जीभसे रस, नाकसे गन्ध, कानसे शब्दका ज्ञान अनुभव करते हैं और नेत्रसे रूप दर्शन किया करते हैं; ये इन्द्रियां परमात्माको प्रत्यक्ष नहीं करतीं; अध्यात्म ज्ञानसे रहित मनुष्य इस परम पुरुषको नहीं जान सकते ॥ ४ ॥

निवर्तयित्वा रसनां रसेभ्यो घ्राणं च गन्धाच्छ्रवणे च शब्दात् ।
स्पर्शात्तनुं रूपगुणात्तु चक्षुस्ततः परं पश्यति स्वं स्वभावम् ॥ ५ ॥

मनुष्य रससे जिह्वा, गन्धसे नासिका, शब्दसे कान, स्पर्शसे त्वचा और रूपसे नेत्रको निवृत्त करके—इन सबको अंतर्मुख करे, तो वही मूल स्वरूप परमात्माका दर्शन कर सकता है ॥५॥

यतो गृहीत्वा हि करोति यच्च यस्मिंश्च तामारभते प्रवृत्तिम् ।
यस्मिंश्च यच्चेन च यश्च कर्ता तत्कारणं तं समुपायमाहुः ॥ ६ ॥

जो कर्त्ता जो ज्ञान वा कर्मसे जो प्राप्त होता है, उसहीके लिये जिस देश वा समयमें निमित्त-भूत सुख वा दुःखमें उसके अनुकूल यत्न आरंभ करते और आरंभ करके अदृष्ट अथवा ईश्वरेच्छा अवलम्बन करके उस आरम्भ कार्यके दर्शन—गमन आदि कार्योंको सिद्ध किया करते हैं, मुनि लोग उन सबको ही कारण कहते हैं; इसलिये कर्त्ता, कर्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति, यत्न, गमन आदि क्रिया अनुराग और अदृष्ट आदि सबका जो कारण है, उस चिन्मात्रको स्वभाव कहा जाता है ॥ ६ ॥

यच्चाभिभूः साधकं व्यापकं च यन्मन्त्रवच्छंस्यते चैव लोके ।
यः सर्वहेतुः परमार्थकारी तत्कारणं कार्यमतो यदन्यत् ॥ ७ ॥

जो ईश्वरस्वरूपसे सर्वव्यापी और जो जीवरूपसे व्याप्त तथा कार्यसाधक है, जो नित्य परमात्मा अकेला सब भूतोंमें निवास करता है। जलमें चन्द्रमाकी परछांईके समान जो एक होकर भी अनेक दीखता है; इस मन्त्रार्थके समान जो सदा जगत्में निवास करता है, जो सबका कारण है; जो अद्वितीय होके भी आप ही सब कार्य कर रहा है वही कारणपदवाच्य है; उसके अतिरिक्त सब पदार्थ ही कार्य हैं ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा च कश्चित्सुकृतैर्मनुष्यः शुभाशुभं प्राप्नुतेऽथाविरोधात् ।
एवं शरीरेषु शुभाशुभेषु स्वकर्मजैर्ज्ञानमिदं निबद्धम् ॥ ८ ॥

जैसे मनुष्य पूर्ण रीतिसे किये हुए पुण्य–पापके जरिये किये हुए कर्मोंसे अविरोध शुभाशुभ फल पाता है, वैसे ही यह स्वभाव नामक परम कारण ज्ञान निज पुण्य–पापकर्मोंके कारण उत्तम और अधम शरीरोंमें फंसा करता है ॥ ८ ॥

यथा प्रदीपः पुरतः प्रदीप्तः प्रकाशमन्यस्य करोति दीप्यन् ।
तथेह पञ्चेन्द्रियदीपवृक्षा ज्ञानप्रदीप्ताः परवन्त एव ॥ ९ ॥

जैसे अग्निसे प्रज्वलित दीपक अग्रभागकी सब वस्तुओंको प्रकाशित करता है, वैसेही शरीररूप वृक्षमें स्थित पञ्चेन्द्रिय स्वरूप दीपक ज्ञानरूप प्रकाशसे प्रज्वलित होकर बाहरी सब वस्तुओंको प्रकाशित किया करते हैं ॥ ९ ॥

यथा हि राज्ञो बहवो ह्यमात्याः पृथक्प्रमाणं प्रवदन्ति युक्ताः ।
तद्वच्छरीरेषु भवन्ति पञ्च ज्ञानैकदेशाः परमः स तेभ्यः ॥ १० ॥

जैसे राजाके पृथक् पृथक् कार्योंमें नियुक्त बहुतसे अमात्य एकत्रित होकर कार्यनिर्णयके लिये अपने कार्योंके प्रमाण निर्देश किया करते हैं, वैसे ही शरीरके बीच स्थित पांच इन्द्रियां अपने एकदेशीय विषयक परिचय ज्ञानको देती हैं; इसलिये ज्ञान इन्द्रियोंसे भी श्रेष्ठ है, जैसे अमात्योंसे राजा श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

यथार्चिषोऽग्नेः पवनस्य वेगा मरीचयोऽर्कस्य नदीषु चापः ।
गच्छन्ति चायान्ति च तन्यमानास्तद्वच्छरीराणि शरीरिणां तु ॥ ११ ॥

जैसे अग्निकी शिखाएं, पवनका वेग, सूर्यकी किरणें और नदियोंके जल आते–जाते तथा चलते हैं, उसी तरह शरीरधारियोंके शरीर भी आवागमनके प्रवाहमें पडे हैं ॥ ११ ॥

यथा च कश्चित्परशुं गृहीत्वा धूमं न पश्येज्ज्वलनं च काष्ठे ।
तद्वच्छरीरोदरपाणिपादं छित्त्वा न पश्यन्ति ततो यदन्यत् ॥ १२ ॥

जैसे कोई मनुष्य कुल्हाडा लेकर काठको काटनेसे उसमें धूंआ वा अग्नि कुछ भी नहीं देखता, वैसे ही शरीरसे उदर और हाथ–पांव आदि काटनेसे उसे नहीं देख सकता, वह तो अन्तर्यामी आत्मा शरीरसे भिन्न है ॥ १२ ॥

तान्येव काष्ठानि यथा विमथ्य धूमं च पश्येज्ज्वलनं च योगात् ।
तद्वत्सुबुद्धिः सममिन्द्रियत्वाद्बुधः परं पश्यति स्वं स्वभावम् ॥ १३ ॥

उन सब काठोंके युक्तिपूर्वक मथनेसे जैसे धूंआं और अग्नि दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ही उत्तम बुद्धिवाला विद्वान् पुरुष योगसे इन्द्रिय और बुद्धिमें ऐक्यज्ञान करता हुआ उस कारणस्वरूप स्वभावका– परमश्रेष्ठ आत्माका– दर्शन करता है ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Swami Harikrishnanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथात्मनोऽङ्गं पतितं पृथिव्यां स्वप्नान्तरे पश्यति चात्मनोऽन्यत् ।
श्रोत्रादियुक्तः सुमनाः सबुद्धिर्लिङ्गात्तथा गच्छति लिङ्गमन्यत् ॥ १४ ॥

जैसे मनुष्य सपनेमें निज शरीरके कटे हुए अङ्गको अपनेसे पृथक् और पृथ्वीपर पडा देखता है, वैसे ही कान आदि दस इन्द्रिय, पञ्चप्राण तथा मन और बुद्धि युक्त अत्यंत बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको अपनेसे पृथक् समझे । जो यह नहीं जानता वह स्थूल शरीरसे देहान्तररूपी लिङ्गशरीरमें गमन किया करता है ॥ १४ ॥

उत्पत्तिवृद्धिक्षयसंनिपातैर्न युज्यतेऽसौ परमः शरीरी ।
अनेन लिङ्गेन तु लिङ्गमन्यद्गच्छत्यदृष्टः प्रतिसंधियोगात् ॥ १५ ॥

आत्मा शरीरसे पृथक् होनेके कारण उसकी उत्पत्ति, वृद्धि, ह्रास और मृत्यु नहीं हैं; परंतु अज्ञानी मनुष्य सुख–दुःखप्रद कर्म सम्बन्धके कारण सूक्ष्म शरीरके साथ दूसरे शरीरमें चला जाता है ॥ १५ ॥

न चक्षुषा पश्यति रूपमात्मनो न चापि संस्पर्शमुपैति किंचित् ।
न चापि तैः साधयतेऽथ कार्यं ते तं न पश्यन्ति स पश्यते तान् ॥ १६ ॥

मनुष्य नेत्रसे आत्माका रूप नहीं देख सकता, किसी प्रकार उसे स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं होता, नेत्र आदि इन्द्रियोंसे आत्माको जाननेका कोई कार्य सिद्ध नहीं कर सकता; इन्द्रियां उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं; परन्तु वह आत्मा उन सबको देखता है ॥ १६ ॥

यथा प्रदीपे ज्वलतोऽनलस्य संतापजं रूपमुपैति किंचित् ।
न चान्तरं रूपगुणं बिभर्ति तथैव तद्दृश्यते रूपमस्य ॥ १७ ॥

जैसे निकटवर्त्ती अयःपिण्ड जलती हुई प्रज्वलित अग्निके सन्तापजनित दाहकताके रूपको प्राप्त होता है, यथार्थमें वह जलाना और पिंगलत्व आदि दूसरे गुण तथा रूपको धारण नहीं करता, वैसेही शरीरमें आत्माका रूप चैतन्य मात्र दृष्टिगोचर होता है; यथार्थमें देह चेतन नहीं है; तथापि जैसे लोहगत चतुष्कोन आदि अग्निमें मालूम होते हैं, वैसेही देहसे दुःख आदि आत्मामें मालूम हुआ करते हैं ॥ १७ ॥

यथा मनुष्यः परिमुच्य कायमदृश्यमन्यद्विशते शरीरम् ।
विसृज्य भूतेषु महत्सु देहं तदाश्रयं चैव बिभर्ति रूपम् ॥ १८ ॥

जब मनुष्य अपने दृश्य शरीरको छोडके दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है, जब वह स्थूल शरीरको पञ्च महाभूतोंमें मिलनेके लिये छोडकर देहान्तरका आश्रय ले उसीको अपना रूप मानकर धारण करता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

खं वायुमग्निं सलिलं तथोर्वीं समन्ततोऽभ्याविशते शरीरी ।
नानाश्रयाः कर्मसु वर्तमानाः श्रोत्रादयः पञ्च गुणाञ्श्रयन्ते ॥ १९ ॥

देहधारी मनुष्यके शरीरमें जो आकाशका अंश है वह आकाशमें, वायुका वायुमें, अग्निका अग्निमें, जलका जलमें और पृथ्वीका पृथ्वीमें— जब वह शरीर छोडता है, तब विलीन हो जाता है; नाना भूतोंके आश्रित कान आदि पञ्च इन्द्रिय विलीन होकर अनेक गुणोंको अवलम्बन कर अपने कर्मोंमें वर्त्तमान रहके, दूसरे शरीरमें शब्द आदि गुणोंका आश्रय किया करतीं हैं ॥ १९ ॥

श्रोत्रं खतो घ्राणमथो पृथिव्यास्तेजोमयं रूपमथो विपाकः ।
जलाश्रयः स्वेद उक्तो रसश्च वायवात्मकः स्पर्शकृतो गुणश्च ॥ २० ॥

श्रवणेन्द्रिय आकाशके शब्द गुणका आश्रय करती है, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गन्ध गुणको अवलम्बन करती है और दर्शनेन्द्रिय रूप और विपाक ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं;— ये सब तेजोमय हैं । जीभ जलाश्रय रसको अवलम्बन करती है; स्पर्श इन्द्रिय वायुमय स्पर्श गुणका आश्रय किया करती है, कान आदि पांचों इन्द्रियां शब्द आदि वासनाके सहित कार्यमें रत होती हैं ॥ २० ॥

महत्सु भूतेषु वसन्ति पञ्च पञ्चेन्द्रियार्थाश्च तथेन्द्रियेषु ।
सर्वाणि चैतानि मनोनुगानि बुद्धिं मनोऽन्वेति मनः स्वभावम् ॥ २१ ॥

पांचों इन्द्रियोंसे विज्ञेय शब्द आदि, पञ्च महाभूतों और पांचों इन्द्रियोंमें निवास किया करते हैं । आकाश आदि महाभूत और इन्द्रियां मनके अनुगत होतीं हैं, मन बुद्धिका अनुगामी हुआ करता है और बुद्धि स्वभावका—आत्माका अनुसरण करती है; इसलिये यह सिद्ध होता है, कि विषयोंका कारण इन्द्रिय, इन्द्रियोंका कारण मन, मनका कारण बुद्धि और बुद्धिका कारण चिदात्मा है ॥ २१ ॥

शुभाशुभं कर्म कृतं यदस्य तदेव प्रत्याददते स्वदेहे ।
मनोऽनुवर्तन्ति परावराणि जलौकसः स्रोत इवानुकूलम् ॥ २२ ॥

जब जीवात्मा निज कर्मोंसे प्राप्त हुए नवीन शरीरमें स्थित रहकर ऐहिक और पूर्वजन्मके जो कुछ शुभाशुभ कर्म रहते हैं, तब वह उन्हींका फल प्राप्त करता है; जैसे जल—जन्तु अनुकूल स्रोतके अनुगत होते हैं, वैसे ही पूर्व संस्कारके कारण उत्तरोत्तर शरीरोंके क्रियमाण कर्म मनका अनुवर्त्तन किया करते हैं— मनके द्वारा फल देते हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चलं यथा दृष्टिपथं परैति सूक्ष्मं महद्रूपमिवाभिपाति ।
स्वरूपमालोचयते च रूपं परं तथा बुद्धिपथं परैति ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ ६९७३ ॥

जैसे भ्रान्तिज्ञानसे अस्थिर वस्तुतत्व मालूम होता है, सूक्ष्म पदार्थ मन भी वैसे ही महत्‌रूपकी तरह प्रकाशित हुआ करता है। जैसे दर्पण मुखके प्रतिबिम्बको मुखस्वरूपसे दर्शन करता है, वैसे ही अज्ञानकल्पित बुद्धिरूपी आइना एकमात्र प्रत्येक पदार्थकी आलोचना कराया करता है; इसलिये भ्रान्तिके अनादि होनेपर भी तत्वज्ञानके जरिये उसमें बाधा होती है; बाधा होनेसे फिर दूसरी बार उसके उठनेकी सम्भावना नहीं रहती; इससे भ्रान्तिज्ञान दूर करनेके निमित्त तत्वज्ञानके प्राप्त करनेमें अत्यन्त यत्न करना उचित है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ पञ्चानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९५ ॥ ६९७३ ॥

: १९६ :

मनुरुवाच—

यदिन्द्रियैस्तूपकृतान्पुरस्तात्प्राप्तान्गुणान्संस्मरते चिराय ।
तेष्विन्द्रियेषूपहतेषु पश्चात्स बुद्धिरूपः परमः स्वभावः ॥ १ ॥

मनु बोले— जो बुद्धिके साथ उपहित जीव चैतन्य है, वह मनके सहित इन्द्रियोंके जरिये पहिलेके अनेक अनुभूत विषयोंको चिरकालतक स्मरण करता है; अर्थात् बाल्यकालमें मैंने यह अनुभव किया था, इस प्रकारके मनोरथके समय विषयेन्द्रियसन्निकर्ष आदिके अभाव निबन्धनसे ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञातृ वासनायुक्त बुद्धि ही सर्वात्मताको प्राप्त होकर साक्षी चैतन्यके जरिये प्रकाशित होती है। अन्तमें इन्द्रियां विलीन होनेपर ज्ञानस्वरूप परमात्माके रूपमें निवास करतीं हैं; इसलिये यह अङ्गीकार करना पडेगा, कि बुद्धिसे स्वतन्त्र चैतन्यस्वरूप आत्मा अवश्य है ॥ १ ॥

यथेन्द्रियार्थान्युगपत्समस्तान्नावेक्षते कृत्स्नमतुल्यकालम् ।
यथाबलं संचरते स विद्वांस्तस्मात्स एकः परमः शरीरी ॥ २ ॥

जो साक्षी चैतन्य जब एक समय, असमय और अनेक समयमें निकटवर्त्ती शब्द आदि इन्द्रिय विषयोंकी उपेक्षा न करके प्रकाश किया करता है, तब वह साक्षी परस्पर व्यभिचारी तीनों अवस्थाओंमें भ्रमण करता है, इससे सबको जाननेवाला साक्षी एक मात्र चैतन्य जीव ही परम श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रजस्तमः सत्त्वमथो तृतीयं गच्छत्यसौ ज्ञानगुणान्विरूपान् ।
तथेन्द्रियाण्याविशते शरीरी हुताशनं वायुरिवेन्धनस्थम् ॥ ३ ॥

काठमें स्थित अग्नि काठको जलाती है, जैसे वायु उस काठका जलानेवाला न होकर भी केवल अग्निको उद्दीपन किया करता है, वैसेही इन्द्रियनिष्ठ बुद्धि ही इन्द्रियजनित सुख-दुःख आदि भोग करती है; चैतन्य उस बुद्धिको सचतन कर रखता है; परन्तु इन्द्रियजनित सुख-दुःखोंको नहीं भोगता । इस ही दृष्टान्तके अनुसार सत्त्व, रज, तम गुणात्मक जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों बुद्धिस्थानोंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी साक्षी चैतन्य उनमें जिस प्रकार निवास करता है, वैसे ही इन्द्रिय आदि भी स्थित हुआ करती हैं ॥ ३ ॥

न चक्षुषा पश्यति रूपमात्मनो न पश्यति स्पर्शनमिन्द्रियेन्द्रियम् ।
न श्रोत्रलिङ्गं श्रवणे निदर्शनं तथागतं पश्यति तद्विनश्यति ॥ ४ ॥

नेत्रसे आत्माको देखा नहीं जाता और इन्द्रियोंके बीच जिसमें स्पर्शशक्ति है, उससे भी आत्माको स्पर्श नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह इन्द्रियोंकी भी इन्द्रिय– उनका प्रकाशक है । आत्मा शब्दरहित है, इसलिये शब्दके श्रवणेन्द्रियके जरिये भी वह नहीं जाना जाता; इससे जिस इन्द्रिय वा मनके जरिये आत्माको जाना जाता है, वह भी परिणाममें विनष्ट होती है ॥ ४ ॥

श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति स्वं स्वमात्मानमात्मना ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति ॥ ५ ॥

कान आदि इन्द्रियां आपही अपनेद्वारा अपनको नहीं जान सकतीं; आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है । दृश्य और द्रष्टा, इस अभेद रूपसे जो सर्वज्ञ होकर सभी देख रहा है, और सब विषयोंको जानता है, वह आत्मा ही उन सब इन्द्रियोंको जानता है ॥ ५ ॥

यथा हिमवतः पार्श्वं पृष्ठं चन्द्रमसो यथा ।
न दृष्टपूर्वं मनुजैर्न च तन्नास्ति तावता ॥ ६ ॥

आत्माके इन्द्रियोंसे अगोचर होनेसे उसके अस्तित्व विषयमें संशय नहीं किया जा सकता; क्योंकि हिमालय पर्वत और चन्द्रलोकके पृष्ठभाग कभी मनुष्योंको नहीं दीखते, तो यह नहीं कहा जा सकता, कि वे नहीं हैं ॥ ६ ॥

तद्वद्भूतेषु भूतात्मा सूक्ष्मो ज्ञानात्मवानसौ ।
अदृष्टपूर्वश्चक्षुर्भ्यां न चासौ नास्ति तावता ॥ ७ ॥

इसलिये सब भूतोंमें चैतन्यरूपसे स्थित सूक्ष्म ज्ञानस्वरूप आत्मा पहिले कभी किसीको नेत्रोंसे दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तोभी ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि वह नहीं है ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पश्यन्नपि यथा लक्ष्म जगत्सोमे न विन्दति ।
एवमस्ति न वेत्येतन्न च तन्न परायणम् ॥ ८ ॥

दर्पणसमान चन्द्रमण्डलमें जगत्की परछाईको कलङ्क रूपसे देखकर जैसे मनुष्य यह अनुभव नहीं कर सकते, कि यह जगत्ही चन्द्र मण्डलमें दीख पडता है, वैसे ही आत्मज्ञान है, वह अस्मत् प्रत्ययके विषय और प्रत्यगात्मरूपसे प्रसिद्ध होनेसे अपरोक्ष है; इसलिये न वह अत्यन्त अविषय है, और न उत्पन्न ज्ञान है; इससे वह आत्मज्ञानही परम निवृत्तिका स्थान है, इसे जानके भी मनुष्य बुद्धिदोषसे उसे देखकर भी नहीं देखता ॥ ८ ॥

रूपवन्तमरूपत्वादुदयास्तमये बुधाः ।
धिया समनुपश्यन्ति तद्गताः सवितुर्गतिम् ॥ ९ ॥

पण्डित लोग स्थूलदृष्टिसे रूपवान् वृक्षोंकी आदि अन्तमें अर्थात् उत्पत्तिके पहिले और विनाशके बाद रूपहीनतानिबन्धन बुद्धिबलसे रूपहीन रीतिसे देखते हैं; क्योंकि आदि और अन्तमें जो वस्तु नहीं रहती, वर्त्तमानमें भी वह वैसीही है; इससे जो लोग इस प्रकार देखते हैं, वे लोग दूरत्वदोषनिबन्धन प्रत्यक्षके जरिये अगृह्यमाण सूर्यकी गतिको देशान्तरप्राप्तिरूपी कारणसे अनुमानके सहारे अवलोकन करते हैं । इसी प्रकार दृश्यमान पदार्थोंका असत्व और अदृश्यमान वस्तुओंका अस्तित्व सिद्ध हुआ करता है ॥ ९ ॥

तथा बुद्धिप्रदीपेन दूरस्थं सुविपश्चितः ।
प्रत्यासन्नं निनीषन्ति ज्ञेयं ज्ञानाभिसंहितम् ॥ १० ॥

जैसे दूरदेशवर्ती सूर्यकी गतिका अनुमान किया जाता है, वैसेही अत्यन्त धीर लोग दूरस्थित, ज्ञानसे मालूम होने योग्य ज्ञेय आत्माको बुद्धिरूपी दीपकके सहारे देखते हैं और उसे निकटवर्त्ती करनेमें प्रवृत्तिके वशमें हुआ करते हैं ॥ १० ॥

न हि खल्वनुपायेन कश्चिदर्थोऽभिसिध्यति ।
सूत्रजालैर्यथा मत्स्यान्बध्नन्ति जलजीविनः ॥ ११ ॥

विना उपाय किये कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे जलजन्तुजीवी मछुवाहे शणके सूतसे बने हुए जालके जरिये मछलियोंको बांधते हैं ॥ ११ ॥

मृगैर्मृगाणां ग्रहणं पक्षिणां पक्षिभिर्यथा ।
गजानां च गजैरेवं ज्ञेयं ज्ञानेन गृह्यते ॥ १२ ॥

स्वजातीय हरिनके सहारे हरिनोंको, पक्षीसे पक्षियोंको और हाथियोंसे हाथियोंको पकडा जाता है, वैसे ही ज्ञानसे ज्ञेय आत्माको जाना जा सकता है ॥ १२ ॥

अहिरेव ह्यहेः पादान्पश्यतीति निदर्शनम् ।
तद्वन्मूर्तिषु मूर्तिस्थं ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति ॥ १३ ॥

ऐसे कहा जाता है, कि सांपही सांपके पांवको देखता है, वैसेही स्थूल देहके बीच लिङ्गशरीरमें रहनेवाले ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारेही देखा जाता है ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नोत्सहन्ते यथा वेत्तुमिन्द्रियैरिन्द्रियाण्यपि ।
तथैवेह परा बुद्धिः परं बुद्ध्या न पश्यति ॥ १४ ॥

जैसे इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रियोंको जाननेके लिये कोई भी उत्साह नहीं करता, वैसे ही चरम बुद्धिवृत्ति शुद्ध बोध्य आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होती, परंतु ज्ञाता ही बुद्धिसे उसे जानता है ॥ १४ ॥

यथा चन्द्रो ह्यमावास्यामलिङ्गत्वान्न दृश्यते ।
न च नाशोऽस्य भवति तथा विद्धि शरीरिणम् ॥ १५ ॥

जैसे अमावस्यामें सूर्यके सहवासके कारण उपाधिरहित चन्द्रमण्डल नहीं दीखता, परन्तु दृष्टि-गोचर न होनेसे जैसे चन्द्रमाके नाशकी सम्भावना नहीं है, शरीरधारी जीव—आत्माको भी वैसाही जानो ॥ १५ ॥

क्षीणकोशो ह्यमावास्यां चन्द्रमा न प्रकाशते ।
तद्वन्मूर्तिवियुक्तः सञ्शरीरी नोपलभ्यते ॥ १६ ॥

जैसे अमावस्यामें क्षीणावरण चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होता, वैसेही देहधारी आत्मा शरीरसे रहित होनेपर नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

यथा कोशान्तरं प्राप्य चन्द्रमा भ्राजते पुनः ।
तद्वल्लिङ्गान्तरं प्राप्य शरीरी भ्राजते पुनः ॥ १७ ॥

जैसे पूर्णमासीको फिर चन्द्रमाका प्रकाश होता है, वैसेही जीव शरीरान्तरमें जाके फिर प्रकाशमान हुआ करता है ॥ १७ ॥

जन्मवृद्धिक्षयश्चास्य प्रत्यक्षेणोपलभ्यते ।
सा तु चान्द्रमसी व्यक्तिर्न तु तस्य शरीरिणः ॥ १८ ॥

जन्म, वृद्धि और क्षय, जो कि प्रत्यक्ष ज्ञात होते हैं, वह चन्द्रमण्डलमें दीखनेवाली चन्द्रमाकी वृत्ति नहीं है, उसी तरह शरीरका जन्म आदि धर्म है, शरीरधारी जीवका नहीं ॥ १८ ॥

उत्पत्तिवृद्धिव्ययतो यथा स इति गृह्यते ।
चन्द्र एव त्वमावास्यां तथा भवति मूर्तिमान् ॥ १९ ॥

उत्पत्ति, वृद्धि और अवस्थाके परिमाणके अनुसार शरीरका भेद होनेपर भी "वह पुरुष यही है," इसी प्रकार जैसे शरीरके ऐक्य विषयमें प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, वैसे ही अमावस्यामें अदृश्य चन्द्रमाही फिर मूर्तिमान् हुआ हुआ, "वही चन्द्रमा प्रकाशित होरहा है"— ऐसा ही ज्ञान हुआ करता है; इसलिये बाल्य आदि अवस्थान्तरप्राप्ति निबन्धनसे देहान्तर प्राप्त होनेपर भी शरीर चन्द्रमाकी भांति एक ही है ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाभिसर्पद्विमुञ्चद्वा शशिनं दृश्यते तमः ।
विसृजंश्चोपसर्पंश्च तद्वत्पश्य शरीरिणम् ॥ २० ॥

जैसे अन्धकार चन्द्रमण्डलकी ओर स्पर्श करने आता वा उसे परित्याग करके जाता हुआ दिखाई नहीं देता, उसी तरह जीवात्मा भी शरीरमें आता और उसे छोडकर जाता हुआ नहीं दीखता; शरीर और जीवका परस्पर सम्बन्ध न मालूम होनेपर तीनों कालोंमें भी उसका सम्भव नहीं है । शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध रहनेसे ही वह प्रकाशित है ॥ २० ॥

यथा चन्द्रार्कसंयुक्तं तमस्तदुपलभ्यते ।
तद्वच्छरीरसंयुक्तः शरीरीत्युपलभ्यते ॥ २१ ॥

सूर्य ग्रहण कालमें चन्द्रमा और सूर्यके सहित जैसे संयोगके कारण अंधकाररूपी राहुको जाना जाता है, वैसे ही जड शरीरके साथ संयुक्त होनेसे चैतन्यस्वरूप आत्माको शरीरधारी कहके मालूम किया जाता है ॥ २१ ॥

यथा चन्द्रार्कनिर्मुक्तः स राहुर्नोपलभ्यते ।
तद्वच्छरीरनिर्मुक्तः शरीरी नोपलभ्यते ॥ २२ ॥

जैसे चन्द्रमा और सूर्यके सम्पर्कसे रहित होनेसे राहु मालूम नहीं होता, वैसेही शरीरसे रहित होनेपर शरीरधारी जीवकी उपलब्धि नहीं की जासकती ॥ २२ ॥

यथा चन्द्रो ह्यमावास्यां नक्षत्रैर्युज्यते गतः ।
तद्वच्छरीरनिर्मुक्तः फलैर्युज्यति कर्मणः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ६९९६ ॥

जैसे चन्द्रमा अमावस्या तिथिमें गमन करनेसे नक्षत्रोंके सहित संयुक्त होता है, वैसेही शरीरसे छुटा हुआ जीव कर्मफल–भूत शरीरान्तरमें संयुक्त हुआ करता है; देहके अभावसे आत्माका अभाव नहीं होता, वह शरीरान्तर अवलम्बन किया करता है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ छानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९६ ॥ ६९९६ ॥

: १९७ :

मनुरुवाच—

यथा व्यक्तमिदं शेते स्वप्ने चरति चेतनम् ।
ज्ञानमिन्द्रियसंयुक्तं तद्वत्प्रेत्य भवाभवौ ॥ १ ॥

मनु बोले– शरीरके सहित आत्माका सम्बन्ध अपरिहार्य है, इसे सुनकर मुमुक्षु पुरुषोंके अन्तःकरणमें उद्वेगका सञ्चार हो सकता है; इसलिये उसके निवृत्तिसाधन योगका विषय कहता हूं, सुनो । स्वप्नावस्थामें जैसे इन्द्रियोंके सहित इस स्थूल शरीरके निद्रित होनेपर चेतनमात्र सूक्ष्म शरीर विचरण किया करता है, उस ही प्रकार सुषुप्तिकालमें इन्द्रिय संयुक्त करके ज्ञानमात्र जीवात्मा निवास करता है, यही संसार और मोक्षका निदर्शन अर्थात् जैसे सुषुप्तिकालमें इन्द्रियोंके सहित लिङ्ग शरीरके निद्रित होनेपर भी केवल ज्ञान स्थिति करता है, मोक्ष अवस्थामें भी वैसे ही ज्ञानमात्र स्थिति किया करता है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथाम्भसि प्रसन्ने तु रूपं पश्यति चक्षुषा ।
तद्वत्प्रसन्नेन्द्रियवाञ्ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति ॥ २ ॥

जैसे मनुष्य निर्मल तथा स्थिर जलमें नेत्रके सहारे अपना रूप देखता है, वैसेही इन्द्रियोंके प्रसन्न होनेपर ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारे देखा जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंको जय करनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न होनेपर मनुष्य उसहीके जरिये विमुक्त हो सकता है ॥ २ ॥

स एव लुलिते तस्मिन्यथा रूपं न पश्यति ।
तथेन्द्रियाकुलीभावे ज्ञेयं ज्ञाने न पश्यति ॥ ३ ॥

जलके चञ्चल होनेसे जैसे उसमें मनुष्यको अपने रूपका दर्शन सम्भव नहीं होता, वैसेही इन्द्रियोंको विना वशमें किये वे चञ्चल रहनेपर बुद्धिसे ज्ञेय आत्मा नहीं जानी जाती ॥ ३ ॥

अबुद्धिरज्ञानकृता अबुद्ध्या दुष्यते मनः ।
दुष्टस्य मनसः पञ्च संप्रदुष्यन्ति मानसाः ॥ ४ ॥

अज्ञानसे अविद्या—बुद्धि भ्रष्टता—उत्पन्न होती है, अविद्यासे मन राग आदि विषयोंमें आक्रान्त होता है; मनके दूषित होनेपर मनःप्रधान कान आदि पांच इन्द्रियां भी दूषित हुआ करती हैं; ॥ ४ ॥

अज्ञानतृप्तो विषयेष्ववगाढो न दृश्यते ।
अदृष्ट्वैव तु पूतात्मा विषयेभ्यो निवर्तते ॥ ५ ॥

विषयोंमें अत्यन्त मग्न, अज्ञान—मोहपूर्ण मनुष्य कभी तृप्त नहीं दीखता; वह पवित्र जीव अदृष्टके सहित शब्दादि विषयभोगके निमित्त मरके फिर जन्म लेता है ॥ ५ ॥

तर्षच्छेदो न भवति पुरुषस्येह कल्मषात् ।
निवर्तते तथा तर्षः पापमन्तं गतं यथा ॥ ६ ॥

इस लोकमें पापके कारण पुरुषकी तृष्णा नष्ट नहीं होती; जब पाप नष्ट होता है, तभी तृष्णा निवृत्त हुआ करती है ॥ ६ ॥

विषयेषु च संसर्गाच्छाश्वतस्य नसंश्रयात् ।
मनसा चान्यदाकाङ्क्षन्परं न प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

विषयोंके संसर्गसे, नित्यत्वके संश्रयनिबन्धन मनके सहारे सुख—दुःख साधन दोनों उपायोंकी विपरीतताके कारण मनुष्य परब्रह्म परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ।
अथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ ८ ॥

पाप कर्मोंके नष्ट होनेसे ही मनुष्योंको ज्ञान उत्पन्न होता है, तब मनुष्य निर्मल दर्पणतलकी भांति आत्मासे ही आत्माका दर्शन करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी तैरेव नियतैः सुखी ।
तस्मादिन्द्रियरूपेभ्यो यच्छेदात्मानमात्मना ॥ ९ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुगत होनेसे मनुष्य उसहीके जरिये दुःखभागी होता है और निगृहीत इन्द्रियोंसे सुखी हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियोंके विषयोंसे आपही अपनेको नियमित करे अर्थात् इन्द्रियोंको संयम करके आत्माको निगृहीत करना उचित है ॥ ९ ॥

इन्द्रियेभ्यो मनः पूर्वं बुद्धिः परतरा ततः ।
बुद्धेः परतरं ज्ञानं ज्ञानात्परतरं परम् ॥ १० ॥

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे ज्ञान श्रेष्ठतर है और ज्ञानसे परात्पर परमात्मा परमश्रेष्ठ है ॥ १० ॥

अव्यक्तात्प्रसृतं ज्ञानं ततो बुद्धिस्ततो मनः ।
मनः श्रोत्रादिभिर्युक्तं शब्दादीन्साधु पश्यति ॥ ११ ॥

शुद्ध चिन्मात्र अव्यक्तसे ज्ञान प्रकट होता है, ज्ञानसे बुद्धि और बुद्धिसे मन उत्पन्न हुआ करता है । वह मन श्रोत्रादि इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर शब्द आदि विषयोंको भली भांति अनुभव करता है ॥ ११ ॥

यस्तांस्त्यजति शब्दादीन्सर्वांश्च व्यक्तयस्तथा ।
विमुञ्चत्याकृतिग्रामांस्तान्मुक्त्वामृतमश्नुते ॥ १२ ॥

जो उन शब्दादि विषयों और हृदयाकाशमें भासमान शब्द आदिके आश्रयभूत आकाशादिको परित्याग करनेमें समर्थ होता है, और प्रकृतिसे समुत्थित ग्रामकी भांति अन्तःकरण पथिकके आश्रयस्थान स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करता है, वही केवल अमृत स्वरूप परमात्माको प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

उद्यन्हि सविता यद्वत्सृजते रश्मिमण्डलम् ।
स एवास्तमपागच्छंस्तदेवात्मनि यच्छति ॥ १३ ॥

जैसे सूर्य उदय होनेके समय किरणमाला उत्पन्न करता है और अस्त होनेके समय उन सब किरणोंको अपनेमें ही संहार करता है, ॥ १३ ॥

अन्तरात्मा तथा देहमाविश्येन्द्रियरश्मिभिः ।
प्राप्येन्द्रियगुणान्पञ्च सोऽस्तमावृत्य गच्छति ॥ १४ ॥

वैसे ही अन्तरात्मा शरीरमें प्रकट होके इन्द्रियरूपी किरणोंके जरिये पञ्च इन्द्रियोंके भोग्य विषय रूप आदिको भोग करता है और अस्तरूपी शरीरको छोडते समय उनको समेटकर साथ ले जाता है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रणीतं कर्मणा मार्गं नीयमानः पुनः पुनः ।
प्राप्नोत्ययं कर्मफलं प्रवृद्धं धर्ममात्मवान् ॥ १५ ॥

जीव अपने किये हुए कर्मोंसे नीयमान होकर बार बार शरीर धारण किया करता है; प्रारब्ध कर्मोंके फलको भोगनेके लिये प्रवृत्तिप्रधान पुण्य और पापकर्मोंका फल प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ १६ ॥

विषयभोगसे रहित जीवका विषयाभिलाष विशेष रूपसे निवृत्त होता है, परन्तु उसकी वासनाका रस निवृत्त नहीं होता; जिसने परमात्माका दर्शन करके समस्त कामनाका फल पाया है, उसकी ही वासना क्षय हुआ करती है ॥ १६ ॥

बुद्धिः कर्मगुणैर्हीना यदा मनसि वर्तते ।
तदा संपद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतम् ॥ १७ ॥

जब बुद्धि विषयासक्तिसे रहित होकर मनःप्रधान "त्वं" पदार्थमें अर्थात् "अस्मिता" मात्रमें निवास करती है, तब जीवात्मा भी ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मत्व लाभ किया करता है ॥ १७ ॥

अस्पर्शनमशृण्वानमनास्वादमदर्शनम् ।
अघ्राणमवितर्कं च सत्त्वं प्रविशते परम् ॥ १८ ॥

जो स्पर्श इन्द्रियसे रहित होनेसे स्पर्शन क्रियाका आश्रय नहीं है, श्रवणेन्द्रियसे हीन होनेसे श्रवण आदि क्रियासे रहित है, नेत्रेन्द्रियसे रहित होनेसे दर्शन क्रियाका अनाश्रय है, घ्राणेन्द्रियसे रहित होनेसे आघ्राणका आश्रय नहीं है और जो अनुमानसे अगम्य है, उसही परमात्मामें विशुद्ध बुद्धि प्रवेश किया करती है ॥ १८ ॥

मनस्याकृतयो मग्ना मनस्त्वतिगतं मतिम् ।
मतिस्त्वतिगता ज्ञानं ज्ञानं त्वभिगतं परम् ॥ १९ ॥

मनके सङ्कल्पजनित घट पट आदि सब बाह्यवस्तु मनमें निमग्न होतीं हैं, मन बुद्धिमें लीन हुआ करता है, बुद्धि चैतन्यस्वरूप जीवमें—ज्ञानमें लयको प्राप्त करती है और जीव—ज्ञान परब्रह्ममें मिलित होजाता है ॥ १९ ॥

इन्द्रियैर्मनसः सिद्धिर्न बुद्धिं बुध्यते मनः ।
न बुद्धिर्बुध्यतेऽव्यक्तं सूक्ष्मस्त्वेतानि पश्यति ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ७०१६ ॥

इन्द्रियोंके जरिये मनकी सिद्धिलाभ नहीं होती; मन बुद्धिको नहीं जान सकता, बुद्धि अव्यक्त जीवको जाननेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु सूक्ष्मस्वरूप चिदात्मा इन सबकोही देखता और जानता है ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ सत्तानबेवां अध्याय समाप्त ॥ १९७ ॥ ७०१६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

: १९८ :

मनुरुवाच—

ज्ञानं ज्ञेयाभिनिर्वृत्तं विद्धि ज्ञानगुणं मनः ।
प्रज्ञाकरणसंयुक्तं ततो बुद्धिः प्रवर्तते ॥ १ ॥

मनु बोले— ज्ञेयरूपमें परमात्मासे ज्ञान प्रकट होता है और मनको ज्ञानका धर्म जानना चाहिये; वह मन जब ज्ञानेन्द्रियके सहित संयुक्त होता है, तब विषयाकार बुद्धि वृत्तिरूपसे प्रकाशित हुआ करती है ॥ १ ॥

यदा कर्मगुणोपेता बुद्धिर्मनसि वर्तते ।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म ध्यानयोगसमाधिना ॥ २ ॥

जबतक बुद्धि कर्मके निमित्त संसारके सहित सम्मिलित होकर जननात्मक चित्तवृत्तिमें निवास करती है, तबतक ध्येयाकारप्रत्यय सन्तति युक्त समाधिके सहारे परब्रह्मको जाननेमें समर्थ होती है ॥ २ ॥

सेयं गुणवती बुद्धिर्गुणेष्वेवाभिवर्तते ।
अवताराभिनिःस्रोतं गिरेः शृङ्गादिवोदकम् ॥ ३ ॥

पहाडके शिखरसे जलकी धारा निकलनेकी तरह ये इन्द्रियादि गुणोंसे युक्त बुद्धि अज्ञानसे प्रकट होके रूप आदि विषयोंमें वर्त्तमान रहती है ॥ ३ ॥

यदा निर्गुणमाप्नोति ध्यानं मनसि पूर्वजम् ।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म निकष्यं निकषे यथा ॥ ४ ॥

और अज्ञान नाश होनेके समय अज्ञानके कारण ध्यानसे निर्गुण परमात्माके निकटवर्ती होती है, उस समय कसौटी स्थित सुवर्णकी रेखाके समान बुद्धि ब्रह्मको विशेषरूपसे जान सकती है ॥ ४ ॥

मनस्त्वपहृतं बुद्धिमिन्द्रियार्थनिदर्शनम् ।
न समक्षं गुणावेक्षि निर्गुणस्य निदर्शनम् ॥ ५ ॥

मन इन्द्रियोंके विषय रूप आदिका प्रदर्शक होकर पहले अखण्ड बुद्धि प्रकाशके जरिये तिरोभूत होता है, अन्तमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा न करके रूप आदिसे रहित, निर्गुण ईश्वरका प्रदर्शक हुआ करता है ॥ ५ ॥

सर्वाण्येतानि संवार्य द्वाराणि मनसि स्थितः ।
मनस्येकाग्रतां कृत्वा तत्परं प्रतिपद्यते ॥ ६ ॥

जीव सब इन्द्रियद्वारोंको विधानपूर्वक सङ्कल्पमात्र मनमें निवास करता है, फिर संङ्कल्पकोभी बुद्धिमें लीन करके एकाग्रताके सहारे परब्रह्मको पाता है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा महान्ति भूतानि निवर्तन्ते गुणक्षये ।
तथेन्द्रियाण्युपादाय बुद्धिर्मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

जैसे अपञ्चीकृतभूतसंज्ञक शब्दतन्मात्र आदिके सुषुप्ति कालमें क्षय होनेपर पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत विनिष्ट होते हैं, वैसे ही अहंकारमें फंसी हुई बुद्धि निज कार्य इन्द्रियोंको ग्रहण करके मनमें लय होती है ॥ ७ ॥

यदा मनसि सा बुद्धिर्वर्ततेऽन्तरचारिणी ।
व्यवसायगुणोपेता तदा संपद्यते मनः ॥ ८ ॥

वह अहंकारचारिणी बुद्धि निश्चयात्मिका होकर जब मनमें निवास करती है, तब वह लवणोदक वा मधुर जलकी भांति अथवा रूपान्तर प्राप्त कुण्डलके स्वर्णत्व सदृश मनही हुआ करता है ॥ ८ ॥

गुणवद्भिर्गुणोपेतं यदा ध्यानगुणं मनः ।
तदा सर्वगुणान्हित्वा निर्गुणं प्रतिपद्यते ॥ ९ ॥

ध्यानके जरिये सर्व उत्कर्षशाली अहंकारात्मक मन जब रूप आदि विशिष्ट विषयोंके सहित सत्वादिगुण युक्त होता है, तब सर्व-गुणात्मक अव्यक्तको अवलम्बन करके निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है ॥ ९ ॥

अव्यक्तस्येह विज्ञाने नास्ति तुल्यं निदर्शनम् ।
यत्र नास्ति पदन्यासः कस्तं विषयमाप्नुयात् ॥ १० ॥

अव्यक्त न सत् है, न असत् है; इसलिये उसके विज्ञान विषयमें प्रकृत प्रमाण नहीं है । जिसे वचनसे भी नहीं कहा जा सकता, कौन पुरुष वैसे विषयको वर्णन करनेमें समर्थ होगा ? ॥ १० ॥

तपसा चानुमानेन गुणैर्जात्या श्रुतेन च ।
निनीषेत्तत्परं ब्रह्म विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ११ ॥

इससे आलोचनासे ध्यानजनित साक्षात्कार, मनन नामक बुद्धिका अनुसन्धान, शम, दम आदि गुणागुण, जातिके अनुसार स्वधर्म प्रतिपालन और वेदान्त वाक्य सुननेसे शुद्ध अन्तः-करणके जरिये परब्रह्मको जाननेकी इच्छा करे ॥ ११ ॥

गुणहीनो हि तं मार्गं बहिः समनुवर्तते ।
गुणाभावात्प्रकृत्या च निस्तर्क्यं ज्ञेयसंमितम् ॥ १२ ॥

तपस्या आदि गुणोंसे रहित मनुष्य बाहर रहकर बाह्य मार्गका अनुसरण करता है; वह ज्ञेय परमात्मा स्वाभाविकही निर्गुण है, इससे वह तर्कके जरिये नहीं जाना जाता ॥ १२ ॥

नैर्गुण्याद्ब्रह्म चाप्नोति सगुणत्वान्निवर्तते ।
गुणप्रसारिणी बुद्धिर्हुताशन इवेन्धने ॥ १३ ॥

काष्ठमें स्थित अग्निकी भांति विषयोंमें गमन करनेवाली बुद्धिके विषयहीन होनेपर परब्रह्मकी प्राप्ति होती है, विषययुक्त होनेसे ब्रह्मके सन्निधानसे निवृत्ति लाभ किया करती है ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा पञ्च विमुक्तानि इन्द्रियाणि स्वकर्मभिः ।
तथा तत्परमं ब्रह्म विमुक्तं प्रकृतेः परम् ॥ १४ ॥

जैसे पांचों इन्द्रियां निज निज कर्मोंसे भिन्न हुआ करती हैं, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिसे अत्यन्त विमुक्त होरहा है ॥ १४ ॥

एवं प्रकृतितः सर्वे प्रभवन्ति शरीरिणः ।
निवर्तन्ते निवृत्तौ च सर्गं नैवोपयान्ति च ॥ १५ ॥

इसी प्रकार प्रकृतिसे चिदाभास संज्ञक सब जीव कर्मफलके अनुसार उत्पन्न होते हैं और समयपर इसमें विनष्ट होते हैं; कालक्रमसे अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर वे स्वर्गमें गमन नहीं करते हैं ॥ १५ ॥

पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिर्विशेषाश्चेन्द्रियाणि च ।
अहंकारोऽभिमानश्च संभूतो भूतसंज्ञकः ॥ १६ ॥

जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहङ्कार और अभिमान,— इन सबका समूह ही भूत—प्राणी नामसे कहाता है ॥ १६ ॥

एकस्याद्या प्रवृत्तिस्तु प्रधानात्संप्रवर्तते ।
द्वितीया मिथुनव्यक्तिमविशेषान्नियच्छति ॥ १७ ॥

अप्राकृत अव्यक्तसे पहिले इन भूतोंकी सृष्टि हुआ करती है, अनन्तर बीजांकुर न्यायके अनुसार पञ्चमहाभूत रूप विशेष पदार्थ पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और अहंकार प्रकृतिके जरिये अभिव्यक्त होते हैं ॥ १७ ॥

धर्मादुत्कृष्यते श्रेयस्तथाश्रेयोऽप्यधर्मतः ।
रागवान्प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानवान्भवेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ ७०३४ ॥

धर्मसे उत्तम कल्याण और अधर्मसे अकल्याण हुआ करता है; रागवान् पुरुष लयके समय प्रकृतिको प्राप्त होता और विरक्त मनुष्य ज्ञानवान् होके विमुक्त होता है ॥ १८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ अट्ठानबेवां अध्याय समाप्त ॥ १९८ ॥ ७०३४ ॥

: १९९ :

मनुरुवाच—

यदा ते पञ्चभिः पञ्च विमुक्ता मनसा सह ।
अथ तद्द्रक्ष्यते ब्रह्म मणौ सूत्रमिवार्पितम् ॥ १ ॥

मनु बोले— जिस समय मनुष्य उन शब्द आदि विषयोंसे मुक्त होकर मनके साथ इन्द्रियोंको काबूमें करता है, तब मणियोंमें ओतप्रोत तागेके समान सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ करता है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेव च यथा सूत्रं सुवर्णे वर्तते पुनः ।
मुक्तास्वथ प्रवालेषु मृन्मये राजते तथा ॥ २ ॥

जैसे सूत सुवर्ण मालाके बीच तथा मुक्ता, प्रवाल, मृण्मय और रजतमय दानोंकी मालामें ओतप्रोत होकर शोभित होता है, ॥ २ ॥

तद्वद्गोषु मनुष्येषु तद्वद्धस्तिमृगादिषु ।
तद्वत्कीटपतङ्गेषु प्रसक्तात्मा स्वकर्मभिः ॥ ३ ॥

उसी प्रकार वह परमात्मा गऊ, मनुष्य, हाथी, मृग, कीट और पतङ्ग आदि सब शरीरोंमें व्याप्त है; विषयासक्त जीवात्मा कर्मफलके अनुसार भिन्न शरीर धारण करता है ॥ ३ ॥

येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोत्ययम् ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ४ ॥

जीव जिस जिस शरीरसे जो जो यज्ञ आदि कर्म करता है, उसही शरीरसे उन कर्मफलोंको भोग किया करता है ॥ ४ ॥

यथा ह्येकरसा भूमिरोषध्यात्मानुसारिणी ।
तथा कर्मानुगा बुद्धिरन्तरात्मानुदर्शिनी ॥ ५ ॥

जैसे एकरसा भूमि सब औषधियोंकी प्रयोजन–अनुसारिणी होती है, वैसे ही कर्मानुगामिनी बुद्धि अन्तरात्माको दर्शन करती है ॥ ५ ॥

ज्ञानपूर्वोद्भवा लिप्सा लिप्सापूर्वाभिसंधिता ।
अभिसंधिपूर्वकं कर्म कर्ममूलं ततः फलम् ॥ ६ ॥

मनुष्यको पहिले बुद्धिपूर्वक इच्छा उत्पन्न होती है, लिप्सा होनेसे अभिसन्धि–प्रयत्नकी इच्छा उत्पन्न होती है; प्रयत्नपूर्वक कर्म करनेके बाद वह सम्पन्न होता है और कर्ममूलक फल हुआ करता है ॥ ६ ॥

फलं कर्मात्मकं विद्यात्कर्म ज्ञेयात्मकं तथा ।
ज्ञेयं ज्ञानात्मकं विद्याज्ज्ञानं सदसदात्मकम् ॥ ७ ॥

इसलिये फलको कर्मात्मक, कर्मको ज्ञेयात्मक, ज्ञेय वस्तुको ज्ञानात्मक और ज्ञानको चित् और जड रूपसे सदसदात्मक जाने ॥ ७ ॥

ज्ञानानां च फलानां च ज्ञेयानां कर्मणां तथा ।
क्षयान्ते तत्फलं दिव्यं ज्ञानं ज्ञेयप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥

चित् और जडग्रन्थिरूप ज्ञान, देहरूप फल, बुद्धि रूप ज्ञेय और सञ्चित कर्मोंके नष्ट होनेपर जो फल हुआ करता है, वही दिव्य फल और ज्ञेय वस्तुमें प्रतिष्ठित ज्ञानस्वरूप परमात्मा है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महद्धि परमं भूतं युक्ताः पश्यन्ति योगिनः ।
अबुधास्तं न पश्यन्ति ह्यात्मस्था गुणबुद्धयः ॥ ९ ॥

योगी लोग जिसे देखते हैं, वह नित्य सिद्ध महत्तत्वही परम श्रेष्ठ है; विषयासक्त बुद्धिवाले मूर्ख मनुष्य उस बुद्धिस्थ महत् पदार्थको देखनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

पृथिवीरूपतो रूपमपामिह महत्तरम् ।
अद्भ्यो महत्तरं तेजस्तेजसः पवनो महान् ॥ १० ॥

इस लोकमें पृथ्वीके रूपसे जलका रूप बडा है, जलसे तेज महान् है, तेजसे पवन महान् है ॥ १० ॥

पवनाच्च महद्व्योम तस्मात्परतरं मनः ।
मनसो महती बुद्धिर्बुद्धेः कालो महान्स्मृतः ॥ ११ ॥

पवनसे आकाश बृहत् है, मन आकाशसे भी श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि बडी है, बुद्धिसे काल महान् हुआ करता है ॥ ११ ॥

कालात्स भगवान्विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत् ।
नादिर्न मध्यं नैवान्तस्तस्य देवस्य विद्यते ॥ १२ ॥

कालसे वह भगवान् विष्णु बडे हैं; यह समस्त जगत् जिसने बनाया है उस देवका आदि, मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है ॥ १२ ॥

अनादित्वादमध्यत्वादनन्तत्वाच्च सोऽव्ययः
अत्येति सर्वदुःखानि दुःखं ह्यन्तवदुच्यते ॥ १३ ॥

वह भगवान् अनादि, मध्यहीन और अनन्त हैं । इसही कारण वह अव्यय अर्थात् क्षय रहित है, उन्होंने सब दुःखोंको अतिक्रम किया है । दुःखही ज्ञातृज्ञेय विभागवत् अन्तयुक्त कहके वर्णित हुआ है ॥ १३ ॥

तद्ब्रह्म परमं प्रोक्तं तद्धाम परमं स्मृतम् ।
तद्गत्वा कालविषयाद्विमुक्ता मोक्षमाश्रिताः ॥ १४ ॥

जो हो, वह भगवान् परब्रह्म कहके वर्णित हुआ है, उनका आश्रयही परम पद है; इसे जानकर अनित्य दुःखमय कालके विषयसे विमुक्त पुरुष मुक्ति अवलम्बन किया करते हैं ॥ १४ ॥

गुणैस्त्वेतैः प्रकाशन्ते निर्गुणत्वात्ततः परम् ।
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथानन्त्याय कल्पते ॥ १५ ॥

ये सब शुद्ध चिदात्मस्वरूप पुरुष प्रमाण प्रमेय व्यवहाररूप गुणोंमें प्रकाश लाभ करते हैं; और परब्रह्म निर्गुणत्व निबन्धन प्राग्उक्त सब गुणोंसे परम श्रेष्ठ है; शम, दम, उपरमादिरूप निवृत्तिलक्षण निर्विकल्पक धर्म मालूम होनेपर मोक्ष हुआ करती है ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Collection. Digitized by eGangotri

ऋचो यजूंषि सामानि शरीराणि व्यपाश्रिताः ।
जिह्वाग्रेषु प्रवर्तन्ते यत्नसाध्या विनाशिनः ॥ १६ ॥

ऋक्, यजु और समस्त सामवेद—ये अध्ययनके समय लिङ्गशरीरको आश्रय करके, जिव्हाग्रमें वर्त्तमान रहते हैं; इसलिये ये यत्नसाध्य होके भी विनाश होते हैं ॥ १६ ॥

न चैवमिष्यते ब्रह्म शरीराश्रयसंभवम् ।
न यत्नसाध्यं तद्ब्रह्म नादिमध्यं न चान्तवत् ॥ १७ ॥

परन्तु परब्रह्म— परमात्मा शरीर अवलम्बन करके उत्पन्न होनेपर भी यत्नसाध्य नहीं है; क्योंकि उसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है ॥ १७ ॥

ऋचामादिस्तथा साङ्गां यजुषामादिरुच्यते ।
अन्तश्चादिमतां दृष्टो न चादिर्ब्रह्मणः स्मृतः ॥ १८ ॥

वही, ऋक्, यजु और सामका आदि कहा जाता है; और जिनका कोई आदि है, उनका अन्त भी देखा जाता है; परन्तु ब्रह्मका कोई भी आदि नहीं कहा जाता है ॥ १८ ॥

अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथाव्ययम् ।
अव्ययत्वाच्च निर्द्वंद्वं द्वंद्वाभावात्ततः परम् ॥ १९ ॥

ब्रह्म अनादि और अनन्त है, इसीसे वह अव्यय और अविनाशी है; अव्यय होनेसे ही निर्द्वंद्व है, और निर्द्वंद्व रहनेसेही उसे मान अपमान आदि कुछ भी नहीं है, वह सबसे परे है ॥१९॥

अदृष्टतोऽनुपायाच्चाप्यभिसंधेश्च कर्मणः ।
न तेन मर्त्याः पश्यन्ति येन गच्छन्ति तत्परम् ॥ २० ॥

मनुष्य लोग अदृष्ट— दुर्भाग्य, साधनहीनता और कर्मके प्रतिबन्धन निबन्धनसे—जिस मार्गसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति होती है, उस मार्गको देखनेमें समर्थ नहीं होते हैं ॥ २० ॥

विषयेषु च संसर्गाच्छाश्वतस्य च दर्शनात् ।
मनसा चान्यदाकाङ्क्षन्परं न प्रतिपद्यते ॥ २१ ॥

मनुष्योंकी विषयोंमें आसक्ति है, यह सदा रहनेवाला है, ऐसी उनकी भावना है; और वे मनही मन सांसारिक ऐश्वर्यसुखका अभिलाष करते हैं, इसलिये वे परब्रह्मका दर्शन नहीं कर सकते हैं ॥ २१ ॥

गुणान्यदिह पश्यन्ति तदिच्छन्त्यपरे जनाः ।
परं नैवाभिकाङ्क्षन्ति निर्गुणत्वाद्गुणार्थिनः ॥ २२ ॥

दूसरे लोग यहां जिन विषयोंका दर्शन करते हैं उन्हें ही उपभोग करनेकी अभिलाषा करते हैं; वे विषयाभिलाषी लोग परब्रह्मको पानेकी मनमें इच्छा भी नहीं करते; कारण वे विषयाभिलाषी होते हैं और परब्रह्म निर्गुण है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुणैर्यस्त्ववरैर्युक्तः कथं विद्याद्गुणानिमान् ।
अनुमानाद्धि गन्तव्यं गुणैरवयवैः सह ॥ २३ ॥

जो पुरुष मूढताके कारण बाह्य विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह योगियोंको प्राप्त होने योग्य इन दिव्य गुणोंको कैसे जान सकता है ? इसलिये धुंएके जरिये अग्निका अनुमान करनेकी तरह सत्यकामत्व आदि आन्तरिक गुणोंके सहारे अनुमानसे परब्रह्मको जाना जा सकता है ॥ २३ ॥

सूक्ष्मेण मनसा विद्मो वाचा वक्तुं न शक्नुमः ।
मनो हि मनसा ग्राह्यं दर्शनेन च दर्शनम् ॥ २४ ॥

हम लोग ध्याननिर्मल शुद्ध तथा सूक्ष्म बुद्धिके जरिये परब्रह्मको जान सकते हैं; परंतु वचनसे उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होते; क्योंकि मनसेही मानसिक विषयका ग्रहण होता है और ज्ञानसेही ज्ञेयको जाना जाता है ॥ २४ ॥

ज्ञानेन निर्मलीकृत्य बुद्धिं बुद्ध्या तथा मनः ।
मनसा चेन्द्रियग्राममनन्तं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥

ब्रह्माकार चित्तवृत्तिरूप ज्ञानके जरिये शरीर आदिमें आत्मभ्रमके निमित्त कलुषित बुद्धिको निर्मल अर्थात् सब संशयोंसे रहित करके बुद्धिके जरिये मन और मनके सहारे इन्द्रियोंको निर्मल करके क्षयरहित चैतन्यमात्र परब्रह्मका दर्शन प्राप्त हुआ करता है ॥ २५ ॥

बुद्धिप्रहीणो मनसासमृद्धस्तथा निराशीर्गुणतामुपैति ।
परं त्यजन्तीह विलोभ्यमाना हुताशनं वायुरिवेन्धनस्थम् ॥ २६ ॥

ध्यानपरिपाकसमुत्थित बुद्धिहीन मनुष्य विचारात्मक मनके सहारे समृद्ध अर्थात् श्रवणमनन-विशिष्ट अप्राप्तप्रार्थनारहित, सब इच्छाओंसे अतीत निर्गुण आत्माको प्राप्त होता है और जैसे वायु काष्ठान्तर्गत अग्निको उद्दीपित न करके उसे परित्याग करती है, वैसेही अप्राप्तप्रार्थनाके जरिये व्याकुलचित्त मनुष्य लोग आत्माको जाननेमें असमर्थ होकर उसे परित्याग करते हैं ॥ २६ ॥

गुणादाने विप्रयोगे च तेषां मनः सदा बुद्धिपराभ्याम् ।
अनेनैव विधिना संप्रवृत्तो गुणादाने ब्रह्मशरीरमेति ॥ २७ ॥

सब विषयोंके आत्मामें लीन होनेपर मन बुद्धिसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मको जाननेमें समर्थ हो जाता है; और पृथक् रूपसे सब विषयोंका ज्ञान होनेपर मन सब समयमें ही बुद्धि कल्पित ब्रह्मलोक पर्यन्त ऐश्वर्य और अनैश्वर्य प्राप्तिका निमित्त हुआ करता है । इसलिये आत्मामें सब विषयोंके प्रविलापनविधानसे जो लोग प्रवृत्त होते हैं, वे सब विषयोंके नष्ट होनेसे ब्रह्म-शरीरमें लीन होते हैं ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अव्यक्तात्मा पुरुषोऽव्यक्तकर्मा सोऽव्यक्तत्वं गच्छति ह्यन्तकाले ।
तैरेवायं चेन्द्रियैर्वर्धमानैर्ग्लायद्भिर्वा वर्तते कर्मरूपः ॥ २८ ॥

मन वचनसे अगोचर अव्यक्त पुरुष निर्लिप्त होकर भी देहादि उपाधि सम्बन्ध निबन्धन कर्म-समवायीकी भांति दीखता है, फिर अन्त समयमें वह अव्यक्तत्व प्राप्त हुआ करता है। यह आत्मा बुद्धिशील ग्लानियुक्त प्रसिद्ध इन्द्रियोंके सहित असंस्पृष्ट रहके संस्पृष्टकी तरह स्वशरीरमें निवास करता है ॥ २८ ॥

सर्वैरयं चेन्द्रियैः संप्रयुक्तो देहः प्राप्तः पञ्चभूताश्रयः स्यात् ।
नासामर्थ्याद्गच्छति कर्मणेह हीनस्तेन परमेणाव्ययेन ॥ २९ ॥

यह चिदाभास सब इन्द्रियोंके सहित संयुक्त तथा लिङ्गशरीर पाके स्थूल देहाकारसे परिणत पञ्च भूतोंका आश्रय करता है; परन्तु विश्वभूत अव्यय अन्तर्यामीके सम्पर्कसे हीन होनेपर असामर्थ्यके कारण गमन आदि कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये वह उस अविनाशी परमेश्वरसे वञ्चित रहता है ॥ २९ ॥

पृथव्या नरः पश्यति नान्तमस्या ह्यन्तश्चास्या भविता चेति विद्धि ।
परं नयन्तीह विलोड्यमानं यथा प्लवं वायुरिवार्णवस्थम् ॥ ३० ॥

मनुष्य इस पृथ्वीका अन्त देखनेमें समर्थ नहीं होता है, परन्तु यह जानना चाहिये, कि इसका अन्त अवश्य ही है। जैसे समुद्रमें चलनेवाली नौका इधर-उधर ऊपर-नीचे होते हुए भी अनुकूल वायुके जरिये ही किनारे लगती है; वैसे ही संसारसागरमें पडे हुए जीवको अनुकूल वातावरण चित्तशुद्धि आदि उपायके सहारे परम पारमें उतार देता है ॥ ३० ॥

दिवाकरो गुणमुपलभ्य निर्गुणो यथा भवेद्व्यपगतरश्मिमण्डलः ।
तथा ह्यसौ मुनिरिह निर्विशेषवान्स निर्गुणं प्रविशति ब्रह्म चाव्ययम् ॥ ३१ ॥

जैसे सूर्य किरणोंके जरिये जगद्व्यापित्वका गुण प्राप्त करके अस्ताचलको जाते समयमें अपने किरणमण्डलको समेट लेनेपर निर्गुण होता है, वैसे ही जीव इस लोकमें मननशील और सुख-दुःखमें निर्विशेष होकर गुणरहित अव्यय ब्रह्ममें प्रवेश करता है ॥ ३१ ॥

अनागतिं सुकृतिमतां परां गतिं स्वयंभुवं प्रभवनिधानमव्ययम् ।
सनातनं यदमृतमव्ययं पदं विचार्य तं शाममृतत्वमश्नुते ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनद्विशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥ ७०६६ ॥

मनुष्य संसारमण्डलमें पुनरावृत्तिरहित, सुकृतशालियोंकी परमगति, जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारण, अविनाशी, आदि, मध्य और अन्तरहित, अपरिणामी, विचलनविवर्जित, स्वयम्भू परब्रह्मका दर्शन करके परम मोक्ष पाता है ॥ ३२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक सौ निन्यानबेवां अध्याय समाप्त ॥ १९९ ॥ ७०६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २०० :

युधिष्ठिर उवाच—

पितामह महाप्राज्ञ पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
कर्तारमकृतं विष्णुं भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे भरतश्रेष्ठ महाप्राज्ञ पितामह ! कमलनयन अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण सबके कर्ता, नित्य, सर्वव्यापी आकाश आदि पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं ॥ १ ॥

नारायणं हृषीकेशं गोविन्दमपराजितम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि केशवम् ॥ २ ॥

ये अपराजित हैं। ये ही नारायण, हृषीकेश, गोविन्द और केशव नामोंसे प्रख्यात हैं; मैं इनके स्वरूपका तात्त्विक वर्णन सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

श्रुतोऽयमर्थो रामस्य जामदग्न्यस्य जल्पतः ।
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ ३ ॥

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर ! जमदग्निपुत्र परशुराम, देवर्षि नारद और श्रीकृष्णद्वैपायनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था ॥ ३ ॥

असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् ॥ ४ ॥

तात ! असित, देवल, महातपस्वी वाल्मीकि और मार्कण्डेय मुनि श्रीकृष्णके विषयमें उत्तम, महत् और अद्भुत कथा कहा करते हैं ॥ ४ ॥

केशवो भरतश्रेष्ठ भगवानीश्वरः प्रभुः ।
पुरुषः सर्वमित्येव श्रूयते बहुधा विभुः ॥ ५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! षडैश्वर्यपूर्ण सर्वव्यापी केशव ही अन्तर्यामी रूपसे सबके नियन्ता है; वह विभुही सर्वमय पुरुष है; इनकी महिमाका अनेक प्रकारसे वर्णन किया जाता है ॥ ५ ॥

किं तु यानि विदुर्लोके ब्राह्मणाः शार्ङ्गधन्वनः ।
माहात्म्यानि महाबाहो शृणु तानि युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

हे महाबाहु युधिष्ठिर ! लोकके बीच ब्राह्मण लोग शार्ङ्ग धनुषधारी माधवके जिन सब माहात्म्योंको जानते हैं, वह अनन्त होने पर भी उसमेंसे कुछ माहात्म्य कहता हूं, सुनो ॥ ६ ॥

यानि चाहुर्मनुष्येन्द्र ये पुराणविदो जनाः ।
अशेषेण हि गोविन्दे कीर्तयिष्यामि तान्यहम् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! पुराण जाननेवाले पुरुष गोविन्दके जिन सब लीलाओं—कर्मोंको कहा करते हैं, इस समय मैं उन सबका निःशेष रूपसे वर्णन करूंगा ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri Ji Maharaj Varanasi. Digitized by eGangotri

महाभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ।
वायुर्ज्योतिस्तथा चापः खं गां चैवान्वकल्पयत् ॥ ८ ॥

सर्व भूतोंके आत्मा महात्मा पुरुषोत्तमने वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी—इन पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टि की है ॥ ८ ॥

स दृष्ट्वा पृथिवीं चैव सर्वभूतेश्वरः प्रभुः ।
अप्स्वेव शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥

उस सर्वभूतेश्वर, महानुभाव प्रभु पुरुषोत्तमने इस पृथ्वीकी सृष्टि करके जलके बीच शयन किया था ॥ ९ ॥

सर्वतेजोमयस्तस्मिञ्शयानः शयने शुभे ।
सोऽग्रजं सर्वभूतानां संकर्षणमचिन्तयत् ॥ १० ॥
आश्रयं सर्वभूतानां मनसेति विशुश्रुम ।
स धारयति भूतात्मा उभे भूतभविष्यती ॥ ११ ॥

हमने सुना है, सर्वतेजोमय पुरुषोत्तमने जलके बीच उत्तम स्थानमें शयन करके सब जीवोंके आश्रय तथा सर्वभूतोंके अग्रज अहंकार—संकर्षणको मनके सहित उत्पन्न किया; वह ही सर्वभूतों तथा भूत और भविष्यत् दोनोंकोही धारण कर रहा है ॥ १०-११ ॥

ततस्तस्मिन्महाबाहो प्रादुर्भूते महात्मनि ।
भास्करप्रतिमं दिव्यं नाभ्यां पद्ममजायत ॥ १२ ॥

हे महाबाहो ! अनन्तर उस महानुभावके प्रकट होनेपर भगवान्‌की नाभीसे सूर्यके समान एक दिव्य कमल उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

स तत्र भगवान्देवः पुष्करे भासयन्दिशः ।
ब्रह्मा समभवत्तात सर्वभूतपितामहः ॥ १३ ॥

हे तात ! सब प्राणियोंके पितामह भगवान् ब्रह्मा सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसही कमलसे उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

तस्मिन्नपि महाबाहो प्रादुर्भूते महात्मनि ।
तमसः पूर्वजो जज्ञे मधुर्नाम महासुरः ॥ १४ ॥

हे महाबाहो ! उस महात्मा ब्रह्माके उत्पन्न होनेपरही तमोगुणसे प्रथम कार्यभूत योगविघातक मधु नामक महासुरने जन्म लिया; जो असुरोंका पूर्वज था ॥ १४ ॥

तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम् ।
ब्रह्मणोपचितिं कुर्वञ्जघान पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

उस प्रचण्डमूर्त्ति और उग्र कर्म करनेवाले—दुष्टबुद्धियुक्त कर्म करनेको उद्युक्त महासुरको चिदात्मा पुरुषोत्तमने ब्रह्माका हित करनेके लिये मार डाला ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Public Library Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य तात वधात्सर्वे देवदानवमानवाः ।
मधुसूदनमित्याहुर्वृषभं सर्वसात्वताम् ॥ १६ ॥

हे तात ! उस मधु असुरके वध करनेके कारण उसही समयमे सब देवता, दानव और मनुष्य लोग योगियोंमें श्रेष्ठ भगवान्को " मधुसूदन " कहा करते हैं ॥ १६ ॥

ब्रह्मा तु ससृजे पुत्रान्मानसान्दक्षसप्तमान् ।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ १७ ॥

अनन्तर ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष, इन सात मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया; इनमें दक्ष सातवें थे ॥ १७ ॥

मरीचिः कश्यपं तात पुत्रं चासृजदग्रजम् ।
मानसं जनयामास तैजसं ब्रह्मसत्तमम् ॥ १८ ॥

हे तात ! सबसे बडे मरीचिने कश्यप नामक ज्येष्ठ मानस पुत्रको उत्पन्न किया; वह ब्रह्म-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ और अत्यंत तेजस्वी था ॥ १८ ॥

अङ्गुष्ठादसृजद्ब्रह्मा मरीचेरपि पूर्वजम् ।
सोऽभवद्भरतश्रेष्ठ दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ १९ ॥

हे भारत ! ब्रह्माने अपने अंगूठेसे मरीचिसे भी बडे दक्षको उत्पन्न किया था; इसलिये वह प्रजापतिके पदपर अधिष्ठित हुए ॥ १९ ॥

तस्य पूर्वमजायन्त दश तिस्रश्च भारत ।
प्रजापतेर्दुहितरस्तासां ज्येष्ठाभवद्दितिः ॥ २० ॥

हे भारत ! उन प्रजापति दक्षके पहिले तेरह कन्याएं उत्पन्न हुईं, उनके बीच दिति सबसे जेठी थी ॥ २० ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञः पुण्यकीर्तिर्महायशाः ।
मारीचः कश्यपस्तात सर्वासामभवत्पतिः ॥ २१ ॥

तात ! सब धर्मोंको विशेष रूपसे जाननेवाले, पवित्र कीर्ति, महायशस्वी मरीचि-पुत्र कश्यप उन सब कन्याओंके पति हुए ॥ २१ ॥

उत्पाद्य तु महाभागस्तासामवरजा दश ।
ददौ धर्माय धर्मज्ञो दक्ष एव प्रजापतिः ॥ २२ ॥

अनन्तर महाभाग धर्मज्ञ दक्ष प्रजापतिने उक्त कन्याओंके अतिरिक्त और दस कन्याएं उत्पन्न करके, उनका धर्मके साथ विवाह कर दिया ॥ २२ ॥

धर्मस्य वसवः पुत्रा रुद्राश्चामिततेजसः ।
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च मरुत्वन्तश्च भारत ॥ २३ ॥

हे भारत ! वसुगण, अत्यन्त तेजस्वी रुद्रगण, विश्वेदेव, साध्य और मरुद्गण—ये धर्मके पुत्र हैं ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपरास्तु यवीयस्यस्ताभ्योऽन्याः सप्तविंशतिः ।
सोमस्तासां महाभागः सर्वासामभवत्पतिः ॥ २४ ॥

फिर प्रजापति दक्षके उक्त तेईस कन्याओंके अतिरिक्त और सत्ताईस कन्याएं उत्पन्न हुईं, जो उनसे छोटी थीं; महाभाग चन्द्रमाने उन सबका ही पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥

इतरास्तु व्यजायन्त गन्धर्वांस्तुरगान्द्विजान् ।
गाश्च किंपुरुषान्मत्स्यानौद्भिदांश्च वनस्पतीन् ॥ २५ ॥

इनके अतिरिक्त दक्षके अनेक कन्याएं हुईं; उन्होंने गन्धर्व, तुरग, पशु-पक्षी, किम्पुरुष, मत्स्य, उद्भिज्ज और वनस्पतियोंको प्रसव किया ॥ २५ ॥

आदित्यानदितिर्जज्ञे देवश्रेष्ठान्महाबलान् ।
तेषां विष्णुर्वामनोऽभूद्गोविन्दश्चाभवत्प्रभुः ॥ २६ ॥

अदितिने देवताओंमें श्रेष्ठ महाबलवान् आदित्योंको उत्पन्न किया; उनमें सर्वव्यापी भगवान् विष्णु-गोविंद वामन रूपसे प्रकट हुए ॥ २६ ॥

तस्य विक्रमणादेव देवानां श्रीर्व्यवर्धत ।
दानवाश्च पराभूता दैतेयी चासुरी प्रजा ॥ २७ ॥

उनके विक्रमके प्रभावसे देवताओंकी श्रीवृद्धि हुई और दितिपुत्र असुर तथा दनुनन्दन दानवोंकी पराजय हुई थी ॥ २७ ॥

विप्रचित्तिप्रधानांश्च दानवानसृजद्दनुः ।
दितिस्तु सर्वानसुरान्महासत्त्वान्व्यजायत ॥ २८ ॥

दनुने विप्रचित्ति आदि प्रमुख सब दानवोंको उत्पन्न किया; दितिसे सब महाबलवान् असुरोंने जन्म ग्रहण किया ॥ २८ ॥

अहोरात्रं च कालं च यथर्तु मधुसूदनः ।
पूर्वाह्णं चापराह्णं च सर्वमेवान्वकल्पयत् ॥ २९ ॥

मधुसूदन विष्णुने दिन-रात्रि, ऋतुके अनुसार कालका विभाग, पूर्वाह्ण और अपराह्ण आदि उत्पन्न किया ॥ २९ ॥

बुद्ध्यापः सोऽसृजन्मेघांस्तथा स्थावरजङ्गमान् ।
पृथिवीं सोऽसृजद्विश्वां सहितां भूरितेजसा ॥ ३० ॥

उन्होंने आलोचना करके जल, बादल और स्थावरजङ्गम जीव तथा सब पदार्थोंसे युक्त महान् तेजसे सम्पन्न अखण्ड भूमण्डलकी सृष्टि की ॥ ३० ॥

ततः कृष्णो महाबाहुः पुनरेव युधिष्ठिर ।
ब्राह्मणानां शतं श्रेष्ठं मुखादसृजत प्रभुः ॥ ३१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! अनन्तर महाबाहु प्रभु मधुसूदनने फिर मुखसे अनगिनत ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बाहुभ्यां क्षत्रियशतं वैश्यानामूरुतः शतम् ।
पद्भ्यां शूद्रशतं चैव केशवो भरतर्षभ ॥ ३२ ॥

हे भरत श्रेष्ठ ! इन केशवने दोनों भुजाओंसे सैकडों क्षत्रिय, जांघोंसे सैकडों वैश्य और दोनों पावोंसे सैकडों शूद्रोंको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

स एवं चतुरो वर्णान्समुत्पाद्य महायशाः ।
अध्यक्षं सर्वभूतानां धातारमकरोत्प्रभुः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार इन महायशस्वी भगवान्ने चारों वर्णोंको उत्पन्न करके स्वयं ही विधाताको सर्वभूतोंके अध्यक्ष पदपर अभिषिक्त किया ॥ ३३ ॥

यावद्यावदभूच्छ्रद्धा देहं धारयितुं नृणाम् ।
तावत्तावदजीवंस्ते नासीद्यमकृतं भयम् ॥ ३४ ॥

पहले मनुष्योंको जितने दिनोंतक देहधारणके निमित्त अभिलाषा थी, वे उतने दिनोंतक जीवित रहते थे; उन लोगोंको यमका भय नहीं था ॥ ३४ ॥

न चैषां मैथुनो धर्मो बभूव भरतर्षभ ।
संकल्पादेव चैतेषामपत्यमुदपद्यत ॥ ३५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय उन लोगोंमें मैथुन धर्मकी प्रवृत्ति नहीं थी; इनको संकल्पसे ही सन्तान उत्पन्न होती थी ॥ ३५ ॥

तत्र त्रेतायुगे काले संकल्पोज्जायते प्रजा ।
न ह्यभून्मैथुनो धर्मस्तेषामपि जनाधिप ॥ ३६ ॥

हे प्रजानाथ ! अनन्तर त्रेतायुगमें स्त्रीपुरुषोंके परस्पर संकल्प मात्रसे सन्तान उत्पन्न होते थे; उन लोगोंमें भी मैथुनधर्मका प्रचार नहीं था ॥ ३६ ॥

द्वापरे मैथुनो धर्मः प्रजानामभवन्नृप ।
तथा कलियुगे राजन्द्वंद्वमापेदिरे जनाः ॥ ३७ ॥

हे राजन् ! फिर द्वापरयुगमें प्रजाके बीच मैथुनधर्म प्रवृत्त हुआ और कलियुगमें भी मनुष्य द्वन्द्वरूपसे मिलित हुए हैं ॥ ३७ ॥

एष भूतपतिस्तात स्वध्यक्षश्च प्रकीर्तितः ।
निरध्यक्षांस्तु कौन्तेय कीर्तयिष्यामि तानपि ॥ ३८ ॥

हे तात कुन्तीपुत्र ! यह भगवान् श्रीकृष्ण ही भूतपति और सर्वाध्यक्ष रूपसे वर्णित हुए हैं। जो लोग गृह न बनाकर उदासीन भावसे निवास करते थे, अब उनका विषय कहता हूं, सुनो ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दक्षिणापथजन्मानः सर्वे तलवरान्ध्रकाः ।
उत्साः पुलिन्दाः शबराश्चूचुपा मण्डपैः सह ॥ ३९ ॥

दक्षिणापथमें उत्पन्न हुए समस्त अन्ध्रक, उत्स, उपाधिधारी चाण्डाल जातिविशेष, पुलिन्द, शबर, चूचुप और मण्डपजातिके लोग पहिले उदासीनभावसे निवास करते थे ॥ ३९ ॥

उत्तरापथजन्मानः कीर्तयिष्यामि तानपि ।
यौनकाम्बोजगान्धाराः किराता बर्बरैः सह ॥ ४० ॥

दूसरे जो लोग उत्तरकी ओर उत्पन्न हुए थे, उनका भी विषय कहता हूं, सुनो । यौन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्बरजाति- ॥ ४० ॥

एते पापकृतस्तात चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
श्वकाकबलगृध्राणां सधर्माणो नराधिप ॥ ४१ ॥

ये सब पापाचारी होकर इस पृथ्वीपर भ्रमण किया करते हैं । हे नरनाथ ! इन लोगोंके धर्म चाण्डाल, कौए और गिद्धोंके समान हैं ॥ ४१ ॥

नैते कृतयुगे तात चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।
त्रेताप्रभृति वर्तन्ते ते जना भरतर्षभ ॥ ४२ ॥

हे तात भरतश्रेष्ठ ! ये लोग सत्ययुगमें इस भूमण्डलपर विचरण नहीं करते थे; त्रेतायुगसे ये लोग वृद्धिशील हुए हैं ॥ ४२ ॥

ततस्तस्मिन्महाघोरे संध्याकाले युगान्तिके ।
राजानः समसज्जन्त समासाद्येतरेतरम् ॥ ४३ ॥

अनन्तर त्रेता और द्वापर युगका महाघोर सन्धिकाल उपस्थित होनेपर राजा लोग परस्पर टक्कर लेकर युद्धमें आसक्त हुए थे ॥ ४३ ॥

एवमेष कुरुश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महात्मनः ।
देवदेवर्षिराचष्ट नारदः सर्वलोकदृक् ॥ ४४ ॥

हे कुरुवर ! महात्मा विष्णु नित्यसिद्ध होनेपर भी इस ही प्रकार उत्पन्न हुए थे । सर्वलोकदर्शी देवर्षि नारदने भगवान् विष्णुके विषयमें इस ही प्रकार कहा है ॥ ४४ ॥

नारदोऽप्यथ कृष्णस्य परं मेने नराधिप ।
शाश्वतत्वं महाबाहो यथावद्भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ महाबाहु नरनाथ ! महर्षि नारदने भी श्रीकृष्णके परम नित्यत्वको यथावत् रूपसे जाना और माना है ॥ ४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवमेष महाबाहुः केशवः सत्यविक्रमः ।
अचिन्त्यः पुण्डरीकाक्षो नैष केवलमानुषः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ७११२ ॥

यह महाबाहु सत्यविक्रम पुण्डरीकाक्ष केशव इसही प्रकार अचिन्तनीय हैं; ये साधारण मनुष्य नहीं हैं ॥ ४६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौवां अध्याय समाप्त ॥ २०० ॥ ७११२ ॥

: २०१ :

युधिष्ठिर उवाच—

के पूर्वमासन्पतयः प्रजानां भरतर्षभ ।
के चर्षयो महाभागा दिक्षु प्रत्येकशः स्मृताः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! पहिले कौन कौनसे लोग प्रजापति थे, और कौन कौनसे महाभाग प्रत्येक ऋषि किन किन दिशाओंमें वास करते हैं ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

श्रूयतां भरतश्रेष्ठ यन्मा त्वं परिपृच्छसि ।
प्रजानां पतयो ये स्म दिक्षु प्रत्येकशः स्मृताः ॥ २ ॥

भीष्म बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! इस लोकमें जो लोग प्रजापति हैं और जो प्रत्येक ऋषि जिन दिशाओंमें वास करते हैं, यह विषय जो कि तुम मुझसे पूछते हो, उसे सुनो ॥ २ ॥

एकः स्वयंभूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः ।
ब्रह्मणः सप्त पुत्रा वै महात्मानः स्वयंभुवः ॥ ३ ॥

एकमात्र स्वयम्भू और सनातन भगवान् ब्रह्मा सबके आदि पुरुष हैं; उन महात्मा स्वयम्भू ब्रह्माके सात पुत्र हुए ॥ ३ ॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महाभागः सदृशा वै स्वयंभुवा ॥ ४ ॥

उनके नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महाभाग वसिष्ठ—इस प्रकार हैं; ये सब स्वयम्भू ब्रह्माके समान हैं ॥ ४ ॥

सप्त ब्रह्माण इत्येष पुराणे निश्चयो गतः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानेव प्रजापतीन् ॥ ५ ॥

ये सातों प्रजापति कहके पुराणमें निश्चित रूपसे वर्णित हुए हैं । मैं अब सब प्रजापतियोंका वर्णन करता हूं ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्रिवंशसमुत्पन्नो ब्रह्मयोनिः सनातनः ।
प्राचीनबर्हिर्भगवांस्तस्मात्प्राचेतसो दश ॥ ६ ॥

अत्रिवंशमें सनातन ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनबर्हि उत्पन्न हुए थे, उनसे दस प्राचेतस नामके प्रजापति उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥

दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः ।
तस्य द्वे नामनी लोके दक्षः क इति चोच्यते ॥ ७ ॥

दक्ष नामके प्रजापति उन दसोंके एकमात्र पुत्र हैं; लोकके बीच उनके दक्ष और कश्यप ये दो नाम कहे गये हैं ॥ ७ ॥

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी श्रुते ।
अरिष्टनेमिरित्येकं कश्यपेत्यपरं विदुः ॥ ८ ॥

मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, उनके भी दो नाम कहे जाते हैं; कोई कोई उन्हे अरिष्टनेमि और दूसरे लोग उन्हें कश्यप कहते हैं ॥ ८ ॥

अङ्गश्चैवौरसः श्रीमान्राजा भौमश्च वीर्यवान् ।
सहस्रं यश्च दिव्यानां युगानां पर्युपासिता ॥ ९ ॥

अंगके औरस पुत्र श्रीमान् और वीर्यवान् राजा भौम हैं; जिन्होंने सहस्र दिव्य युगोंतक भगवान्‌की उपासना की थी ॥ ९ ॥

अर्यमा चैव भगवान्ये चान्ये तनया विभो ।
एते प्रदेशाः कथिता भुवनानां प्रभावनाः ॥ १० ॥

हे विभो ! भगवान् अर्यमा और उनके सब दूसरे पुत्र हैं, वे सबही जगत्स्रष्टा और आज्ञापयिता कहे गये हैं ॥ १० ॥

शशबिन्दोश्च भार्याणां सहस्राणि दशाच्युत ।
एकैकस्यां सहस्रं तु तनयानामभूत्तदा ॥ ११ ॥

हे अच्युत ! शशबिन्दुके दस हजार भार्याएं थीं; उन एक एक भार्यासे एक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे; ॥ ११ ॥

एवं शतसहस्राणां शतं तस्य महात्मनः ।
पुत्राणां न च ते कंचिदिच्छन्त्यन्यं प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार उन महात्माके एक करोड पुत्र सन्तान उत्पन्न हुई । उन्होंने उन पुत्रोंके अतिरिक्त दूसरे किसीको भी प्रजापति करनेकी इच्छा नहीं की ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रजामाचक्षते विप्राः पौराणीं शाशबिन्दवीम् ।
स वृष्णिवंशप्रभवो महान्वंशः प्रजापतेः ॥ १३ ॥

प्राचीन ब्राह्मण लोग प्रजासमूहको शाशविन्दवी कहा करते हैं; प्रजापतिके उस महावंशसे वृष्णिवंश उत्पन्न हुआ है ॥ १३ ॥

एते प्रजानां पतयः समुद्दिष्टा यशस्विनः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ १४ ॥

ये सब यशस्वी पुरुष प्रजापति रूपसे वर्णित हुए हैं । इसके अनन्तर जो सब देवता लोग त्रिभुवनके ईश्वर हैं, उनका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १४ ॥

भगोंऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ॥ १५ ॥

भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबलवान् विवस्वान्, ॥ १५ ॥

पूषा त्वष्टा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
त एते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥ १६ ॥

पूषा, त्वष्टा, इन्द्र और बारहवें विष्णु– ये द्वादश आदित्य कश्यपके पुत्र हैं ॥ १६ ॥

नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ॥ १७ ॥

दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नामसे वर्णित होते हैं; ये दोनों अष्टम प्रजापति मार्त्तण्डके पुत्र हैं ॥ १७ ॥

त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान्विश्वरूपो महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः ॥ १८ ॥

महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप त्वष्टाके पुत्र हैं । अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, ॥१८॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ।
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
पूर्वमेव महाभागा वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥

हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त और अपराजित पिनाकी, ये सब रुद्र हैं; महाभाग अष्ट वसुओंके नाम पहलेही वर्णित हुए हैं ॥ १९ ॥

एत एवंविधा देवा मनोरेव प्रजापतेः ।
ते च पूर्वे सुराश्चेति द्विविधाः पितरः स्मृताः ॥ २० ॥

इसी प्रकार ये सब देवता प्रजापति मनुके पुत्र हैं; ये तथा पूर्वोक्त देवता–ये दो प्रकारके पितर निर्दिष्ट हुए हैं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शीलरूपरतास्त्वन्ये तथान्ये सिद्धसाध्ययोः ।
ऋभवो मरुतश्चैव देवानां चोदिता गणाः ॥ २१ ॥

कुछ देवता शील और रूपसे सम्पन्न हैं; अन्य सिद्ध और साध्य हैं; देवताओंके गणोंके नाम ऋभु और मरुत् हैं ॥ २१ ॥

एवमेते समाम्नाता विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ।
आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशस्तु मरुतस्तथा ॥ २२ ॥

येही विश्वेदेव और दोनों अश्विनीतनय भी देवताओंके गण वर्णित हुए हैं; उनके बीच आदित्यगण क्षत्रिय और मरुद्गण वैश्य माने जाते हैं ॥ २२ ॥

अश्विनौ तु मतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समाहितौ ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ।
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

उग्र तपस्यामें अभिनिविष्ट दोनों अश्विनीकुमार शूद्र रूपसे स्मृत हुए हैं, और यह निश्चित है, कि अङ्गिराके पुत्र देवता लोग ब्राह्मण हैं; यही सब देवताओंके चातुर्वर्ण्य कहे गये ॥२३॥

एतान्वै प्रातरुत्थाय देवान्यस्तु प्रकीर्तयेत् ।
स्वजादन्यकृताच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ २४ ॥

जो प्रातःकालमें उठकर इन सब देवताओंके नाम लेता है वह स्वकृत वा अन्यकृत सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २४ ॥

यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू ।
औशिजश्चैव कक्षीवान्नलश्चाङ्गिरसः सुताः ॥ २५ ॥

यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औशिज, कक्षीवान् और नल,– ये अंगिराके पुत्र हैं ॥२५॥

ऋषेर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा ।
त्रैलोक्यभावनास्तात प्राच्यां सप्तर्षयस्तथा ॥ २६ ॥

मेधातिथि ऋषिके कण्व और बर्हिषद पुत्र हैं। हे तात ! त्रैलोक्यभावन सप्तर्षि लोग भी उनके पुत्र हैं, जो पूर्वदिशामें निवास करते हैं ॥ २६ ॥

उन्मुचो विमुचश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ।
प्रमुचश्चेध्मवाहश्च भगवांश्च दृढव्रतः ॥ २७ ॥

उन्मुच, विमुच, वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, भगवान् दृढव्रत, इध्मवाह ॥ २७ ॥

मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथागस्त्यः प्रतापवान् ।
एते ब्रह्मर्षयो नित्यमाश्रिता दक्षिणां दिशम् ॥ २८ ॥

और मित्रावरुणके प्रतापवान् पुत्र अगस्त्य,– ये सब ब्रह्मर्षि लोग सदा दक्षिण दिशामें वास किया करते हैं ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रुषद्गुः कवषो धौम्यः परिव्याधश्च वीर्यवान् ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ॥ २९ ॥

रुषद्गु, कवष, धौम्य, वीर्यवान् परिव्याध, महर्षि एकत, द्वित, त्रित ॥ २९ ॥

अत्रेः पुत्रश्च भगवांस्तथा सारस्वतः प्रभुः ।
एते नव महात्मानः पश्चिमामाश्रिता दिशम् ॥ ३० ॥

और अत्रिके पुत्र भगवान् निग्रहानुग्रहसमर्थ सारस्वत,—ये नौ महात्मा पश्चिम दिशामें निवास करते हैं ॥ ३० ॥

आत्रेयश्च वसिष्ठश्च काश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमः सभरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ३१ ॥

आत्रेय, वसिष्ठ, महर्षि काश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक पुत्र विश्वामित्र ॥ ३१ ॥

तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ।
जमदग्निश्च सप्तैते उदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ ३२ ॥

और महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि,—ये सातों ऋषि उत्तर दिशाका आश्रय कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

एते प्रतिदिशं सर्वे कीर्तितास्तिग्मतेजसः ।
साक्षिभूता महात्मानो भुवनानां प्रभावनाः ॥ ३३ ॥

प्रत्येक दिशामें जो महर्षि निवास कर रहे हैं, वे सब तीक्ष्णतेजस्वी महर्षि लोग वर्णित हुए । ये सबही जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ महात्मा और साक्षी स्वरूप हैं ॥ ३३ ॥

एवमेते महात्मानः स्थिताः प्रत्येकशो दिशः ।
एतेषां कीर्तनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३४ ॥

इसही प्रकार ये महात्मा लोग प्रत्येक दिशाओंका आश्रय करके स्थित हैं । मनुष्य इन लोगोंका नाम लेनेसे सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३४ ॥

यस्यां यस्यां दिशि ह्येते तां दिशं शरणं गतः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान्व्रजेत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥ ७१४७ ॥

ये लोग जिस जिस दिशामें निवास कर रहे हैं, मनुष्य उसही दिशामें जानेपर इनका शरणागत होनेसे सब पापोंसे मुक्त होता और स्वस्तिमान् होकर निज गृहमें लौटता है ॥३५॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ एकवां अध्याय समाप्त ॥ २०१ ॥ ७१४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ः २०२ ः

युधिष्ठिर उवाच—

पितामह महाप्राज्ञ युधि सत्यपराक्रम ।
श्रोतुमिच्छामि कात्स्न्र्येन कृष्णमव्ययमीश्वरम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे सत्यपराक्रमी महाप्राज्ञ पितामह ! मैं अव्यय ईश्वर श्रीकृष्णका माहात्म्य विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

यच्चास्य तेजः सुमहद्यच्च कर्म पुरातनम् ।
तन्मे सर्वं यथातत्त्वं प्रब्रूहि भरतर्षभ ॥ २ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णका जैसा रूप, महान् तेज और जिस प्रकार इनके पूर्वकृत कर्म हैं, वह सब आप प्रकृत रूपसे वर्णन करिये ॥ २ ॥

तिर्यग्योनिगतं रूपं कथं धारितवान्हरिः ।
केन कार्यविसर्गेण तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥

हे पितामह ! भगवान् श्रीकृष्णने तिर्यग्योनिमें अवतार लेके किन कार्योंके निमित्त कैसा रूप धारण किया था, उसे भी आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच—

पुराहं मृगयां यातो मार्कण्डेयाश्रमे स्थितः ।
तत्रापश्यं मुनिगणान्समासीनान्सहस्रशः ॥ ४ ॥

भीष्म बोले– पहले समयमें मैंने मृगयाके निमित्त यात्रा करके मार्कण्डेय मुनिके आश्रममें निवास किया था; वहां उपस्थित होके सहस्रों मुनियोंको बैठे हुए देखा ॥ ४ ॥

ततस्ते मधुपर्केण पूजां चक्रुरथो मयि ।
प्रतिगृह्य च तां पूजां प्रत्यनन्दमृषीनहम् ॥ ५ ॥

अनन्तर उन्होंने मधुपर्कसे मेरा अतिथिसत्कार किया; मैंने उनके उस सत्कारको ग्रहण करके ऋषियोंको प्रणाम किया ॥ ५ ॥

कथैषा कथिता तत्र कश्यपेन महर्षिणा ।
मनःप्रह्लादिनीं दिव्यां तामिहैकमनाः शृणु ॥ ६ ॥

उस ही स्थानमें महर्षि कश्यपके जरिये चित्तको प्रसन्न करनेवाली यह दिव्य कथा कही गई थी, तुम एकाग्रचित्त होकर उस कथाको सुनो ॥ ६ ॥

पुरा दानवमुख्या हि क्रोधलोभसमन्विताः ।
बलेन मत्ताः शतशो नरकाद्या महासुराः ॥ ७ ॥

पहिले समयमें नरकासुर आदि सैकडों दानवश्रेष्ठ क्रोध और लोभसे युक्त हो बलके मदसे उन्मत्त हो गये थे ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथैव चान्ये बहवो दानवा युद्धदुर्मदाः ।
न सहन्ते स्म देवानां समृद्धिं तामनुत्तमाम् ॥ ८ ॥

इनके अतिरिक्त और भी दूसरे युद्धदुर्मद बहुतेरे दानव लोग देवताओंकी परम समृद्धि देखकर असहिष्णु हुए थे ॥ ८ ॥

दानवैरर्द्यमानास्तु देवा देवर्षयस्तथा ।
न शर्म लेभिरे राजन्विशमानास्ततस्ततः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! देवता और देवर्षि लोग दानवोंसे पीडित होकर इधर उधर स्थित होनेपर भी सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ९ ॥

पृथिवीं चार्तरूपां ते समपश्यन्दिवौकसः ।
दानवैरभिसंकीर्णां घोररूपैर्महाबलैः ।
भारार्तामपकृष्टां च दुःखितां संनिमज्जतीम् ॥ १० ॥

देवताओंने घोररूप धारी महाबलवान् दानवोंसे परिपूरित पृथ्वीको दानवोंके पापोंसे अत्यन्त पीडित और आर्त देखा । पृथ्वीको उस समय भारसे अत्यन्त आक्रान्त, अप्रहृष्ट और दुःखित होकर रसातलमें डूबती हुई देखा ॥ १० ॥

अथादितेयाः संत्रस्ता ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ।
कथं शक्यामहे ब्रह्मन्दानवैस्पमर्दनम् ॥ ११ ॥

यह देखकर अदितिनन्दन देवता लोग अत्यन्त भयभीत होकर ब्रह्माके निकट जाके यह वचन बोले– हे ब्रह्मन् ! हम लोग दानवोंका दारुण पीडन किस प्रकार सहेंगे ? ॥ ११ ॥

स्वयंभूस्तानुवाचेदं निसृष्टोऽत्र विधिर्मया ।
ते वरेणाभिसंमत्ता बलेन च मदेन च ॥ १२ ॥

स्वयम्भू ब्रह्मा देवताओंका वचन सुनके उन लोगोंसे बोले– हे देवता लोगों ! मैंने इस विपत्तिको दूर करनेके लिये उपाय किया है; वे वरके प्रभावसे बल और मदसे मत्त हुए हैं ॥ १२ ॥

नावभोत्स्यन्ति संमूढा विष्णुमव्यक्तदर्शनम् ।
वराहरूपिणं देवमधृष्यममरैरपि ॥ १३ ॥

ये अत्यन्त मूढ दानव लोग देवताओंके भी अधर्षणीय वराहरूपी भगवान् अव्यक्तदर्शन विष्णुको नहीं जानते ॥ १३ ॥

एष वेगेन गत्वा हि यत्र ते दानवाधमाः ।
अन्तर्भूमिगता घोरा निवसन्ति सहस्रशः ।
शमयिष्यति श्रुत्वा ते जहृषुः सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥

वे सब सहस्रों महाघोर अधम दानवलोग भूमिके अन्तर्गत होकर जिस स्थानमें वास कर रहे हैं, ये वराहरूपी विष्णु वेगके प्रभावसे वहां जाके उन सब दानवोंका संहार करेंगे । देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके परम हर्षित हुए ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो विष्णुर्महातेजा वाराहं रूपमाश्रितः ।
अन्तर्भूमिं संप्रविश्य जगाम दितिजान्प्रति ॥ १५ ॥

अनन्तर महातेजस्वी भगवान् विष्णु वराहरूप धारण करके भूगर्भमें प्रवेश करके दितिपुत्रोंकी ओर दौडे ॥ १५ ॥

दृष्ट्वा च सहिताः सर्वे दैत्याः सत्त्वममानुषम् ।
प्रसह्य सहसा सर्वे संतस्थुः कालमोहिताः ॥ १६ ॥

कालमोहित दैत्य लोग बलपूर्वक सहसा इकट्ठे होकर उस अमानुष—अलौकिक सत्वको देखकर स्थिरभावसे सामना करनेके लिये खडे रहे ॥ १६ ॥

सर्वे च समभिद्रुत्य वराहं जगृहुः समम् ।
संक्रुद्धाश्च वराहं तं व्यकर्षन्त समन्ततः ॥ १७ ॥

अनन्तर उन सब लोगोंने एक बारही क्रुद्ध होकर सम्मुख जाके उस वराहको धारण किया और चारों ओर खींचने लगे ॥ १७ ॥

दानवेन्द्रा महाकाया महावीर्या बलोच्छ्रिताः ।
नाशक्नुवंश्च किंचित्ते तस्य कर्तुं तदा विभो ॥ १८ ॥

हे राजन् ! महावीर्यबलसे उन्मत्त वे सब महाकाय दानवेन्द्रगण उस समय उसका कुछ भी बिगाड न सके ॥ १८ ॥

ततोऽगमन्विस्मयं ते दानवेन्द्रा भयात्तदा ।
संशयं गतमात्मानं मेनिरे च सहस्रशः ॥ १९ ॥

अन्तमें वे सब दानवेन्द्रगण भयभीत और विस्मित हुए तथा वे सहस्रों दानव अपने जीवनको संशययुक्त मानने लगे ॥ १९ ॥

ततो देवादिदेवः स योगात्मा योगसारथिः ।
योगमास्थाय भगवांस्तदा भरतसत्तम ॥ २० ॥

हे भरतसत्तम ! अनन्तर योगसहाय योगात्मा देवोंके देव भगवान् वाराहने योगका अवलम्बन करके ॥ २० ॥

विननाद महानादं क्षोभयन्दैत्यदानवान् ।
संनादिता येन लोकाः सर्वाश्चैव दिशो दश ॥ २१ ॥

दैत्य और दानवोंको क्षोभित करते हुए ऊंचे स्वरसे निनाद किया; उस शब्दसे सब लोक और दसों दिशाएं अनुनादित हुईं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेन संनादशब्देन लोकाः संक्षोभमागमन् ।
संभ्रान्ताश्च दिशः सर्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ २२ ॥

उस भीषण शब्दसे सब लोगोंके अन्तःकरणमें क्षोभ उत्पन्न हुआ; इन्द्र आदि देवता लोग और सब दिशाएं अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ २२ ॥

निर्विचेष्टं जगच्चापि बभूवातिभृशं तदा ।
स्थावरं जङ्गमं चैव तेन नादेन मोहितम् ॥ २३ ॥

स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् उस शब्दसे मोहित होकर अत्यन्तही निश्चेष्ट हुआ ॥ २३ ॥

ततस्ते दानवाः सर्वे तेन शब्देन भीषिताः ।
पेतुर्गतासवश्चैव विष्णुतेजोविमोहिताः ॥ २४ ॥

अनन्तर वे सब दानव लोग उसही शब्दसे भीत, विष्णुके तेजसे विमोहित और चेतनारहित होकर गिर पडे ॥ २४ ॥

रसातलगतांश्चैव वराहस्त्रिदशद्विषः ।
खुरैः संदारयामास मांसमेदोऽस्थिसंचयम् ॥ २५ ॥

वराहरूपी भगवानने रसातलमें जाकर भी अपने खुरोंसे देवताओंके शत्रु दानवोंका मांस, मेद और अस्थियोंको विदारण किया ॥ २५ ॥

नादेन तेन महता सनातन इमि स्मृतः ।
पद्मनाभो महायोगी भूताचार्यः स भूतराट् ॥ २६ ॥

वह भूतराट् भूताचार्य, महायोगी, पद्मनाभ, विष्णु उस महानादसे सदा भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये चेष्टा करते हैं, इसहीसे सनातन नामसे वर्णित हुए हैं ॥ २६ ॥

ततो देवगणाः सर्वे पितामहमुपाब्रुवन् ।
नादोऽयं कीदृशो देव नैनं विद्म वयं विभो ।
कोऽसौ हि कस्य वा नादो येन विह्वलितं जगत् ॥ २७ ॥

अनन्तर सब देवताओंने जगत्पतिसे कहा, हे देव ! हे प्रभो ! यह निनाद कैसा है ? हम इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह क्या शब्द है ? यह किसका शब्द है ? जिससे यह जगत् विह्वल होरहा है ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्वाराहं रूपमास्थितः ।
उदतिष्ठन्महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ २८ ॥

इतनेही समयमें वराहरूपधारी श्रेष्ठ देव भगवान् विष्णु महर्षियोंसे स्तुतियुक्त होकर रसातलसे उत्थित हुए ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पितामह उवाच—

निहत्य दानवपतीन्महावर्ष्मा महाबलः ।
एष देवो महायोगी भूतात्मा भूतभावनः ॥ २९ ॥

पितामह बोले— ये महाकाय, महाबलवान्, महायोगी, भूतात्मा, भूतभावन, भगवान् विष्णु दानव राजाओंका वध करके आ रहे हैं ॥ २९ ॥

सर्वभूतेश्वरो योगी योनिरात्मा तथात्मनः ।
स्थिरीभवत कृष्णोऽयं सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३० ॥

ये सर्वभूतेश्वर, योगी, उत्पत्ति स्थान, आत्माके भी आत्मा और सब पापोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण हैं; इससे तुम सब कोई स्थिर हो जाओ ॥ ३० ॥

कृत्वा कर्मातिसाध्वेतदशक्यममितप्रभः ।
समायातः स्वमात्मानं महाभागो महाद्युतिः ।
पद्मनाभो महायोगी भूतात्मा भूतभावनः ॥ ३१ ॥

यह अपरिमित प्रभासे युक्त, महाद्युति, महाभाग, महायोगी, भूतभावन, महात्मा पद्मनाभ दूसरेसे न होने योग्य, साधु कार्य सिद्ध करके स्व—स्वभावसे समागत हुए हैं ॥ ३१ ॥

न संतापो न भीः कार्या शोको वा सुरसत्तमाः ।
विधिरेष प्रभावश्च कालः संक्षयकारकः ।
लोकान्धारयतानेन नादो मुक्तो महात्मना ॥ ३२ ॥

हे सुरसत्तमगण ! इसलिये तुम लोगोंको शोक, सन्ताप अथवा भय करनेकी आवश्यकता नहीं है । येही विधि, येही प्रभाव और येही संक्षयकारक काल स्वरूप हैं; इन्हीं महानुभाव भगवान्ने सब लोकोंको धारण करते हुए महान् शब्द किया था; ॥ ३२ ॥

स एव हि महाभागः सर्वलोकनमस्कृतः ।
अच्युतः पुण्डरीकाक्षः सर्वभूतसमुद्भवः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ७१८० ॥

सब भूतोंके उत्पत्तिके कारण, सब लोकोंके नमस्कृत यह महाभाग पुण्डरीकाक्ष अच्युत ईश्वर यही विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ दोवां अध्याय समाप्त ॥ २०२ ॥ ७१८० ॥

: २०३ :

युधिष्ठिर उवाच—

योगं मे परमं तात मोक्षस्य वद भारत ।
तमहं तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि वदतां वर ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे तात भारत ! आप मेरे समीप मोक्ष—विषयके परमयोगको वर्णन करिये । हे वक्तृवर ! मैं उक्त विषयको यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच —

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं मोक्षसंयुक्तं शिष्यस्य गुरुणा सह ॥ २ ॥

भीष्म बोले— गुरुके साथ एक शिष्यका मोक्षवाक्य संयुक्त जो वार्त्तालाप हुआ था, प्राचीन लोग उस पुराने इतिहासका इस विषयमें प्रमाण दिया करते हैं ॥ २ ॥

कश्चिद्ब्राह्मणमासीनमाचार्यमृषिसत्तमम् ।
शिष्यः परममेधावी श्रेयोर्थी सुसमाहितः ।
चरणावुपसंगृह्य स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३ ॥

परम मेधावी कल्याणकी इच्छा करनेवाले अत्यन्त सावधान किसी शिष्यने आसनपर सुखसे बैठे हुए किसी ऋषिसत्तम आचार्य ब्राह्मणके दोनों चरण छूके हाथ जोडके सामने खडा होकर कहा ॥ ३ ॥

उपासनात्प्रसन्नोऽसि यदि वै भगवन्मम ।
संशयो मे महान्कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! यदि आप मेरी उपासनासे प्रसन्न हुए हों, तो मुझे जो कुछ महान् संशय है, मेरे समीप उस विषयको वर्णन करना आपको उचित है ॥ ४ ॥

कुतश्चाहं कुतश्च त्वं तत्सम्यग्ब्रूहि यत्परम् ।
कथं च सर्वभूतेषु समेषु द्विजसत्तम ।
सम्यग्वृत्ता निवर्तन्ते विपरीताः क्षयोदयाः ॥ ५ ॥

हे द्विजसत्तम ! मैं किस उपादान और कौन निमित्त कारणसे उत्पन्न हुआ हूं, आप भी किस उपादान वा निमित्त कारणसे उत्पन्न हुए हैं ? उस परम कारणके स्वरूपको पूर्ण रीतिसे कहिये; और उपादान कारण पञ्चभूतोंके समान होनेपर भी किस लिये क्षय और उदय विषम—रूपसे दीख पडता है ? ॥ ५ ॥

वेदेषु चापि यद्वाक्यं लौकिकं व्यापकं च यत् ।
एतद्विद्वन्यथातत्त्वं सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥

हे विद्वन् ! वेद और स्मृतियोंमें जो लौकिक और व्यापक भावसे वर्त्तमान है, आप वह सब विषय प्रकृत रूपसे वर्णन करिये ॥ ६ ॥

गुरुरुवाच —

शृणु शिष्य महाप्राज्ञ ब्रह्मगुह्यमिदं परम् ।
अध्यात्मं सर्वभूतानामागमानां च यद्वसु ॥ ७ ॥

गुरु बोले— हे महाप्राज्ञ शिष्य ! सर्व विद्या और समस्त आगमोंकी जो सम्पत्ति है, जो वेदके बीच परम गुह्य भावसे वर्णित है, वह अध्यात्म विषय कहता हूं, सुनो ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वासुदेवः सर्वमिदं विश्वस्य ब्रह्मणो मुखम् ।
सत्यं दानमथो यज्ञस्तितिक्षा दम आर्जवम् ॥ ८ ॥

भगवान् वासुदेव सब वेदोंके आदिभूत प्रणव हैं; वेही सत्य, दान, यज्ञ, तितिक्षा, इन्द्रिय-संयम और आर्जव स्वरूप हैं ॥ ८ ॥

पुरुषं सनातनं विष्णुं यत्तद्वेदविदो विदुः ।
सर्गप्रलयकर्तारमव्यक्तं ब्रह्म शाश्वतम् ।
तदिदं ब्रह्म वार्ष्णेयमितिहासं शृणुष्व मे ॥ ९ ॥

वेद जाननेवाले पण्डित लोग जिस सनातन पुरुषको विष्णु कहके जानते हैं, वही सृष्टि और प्रलयके कर्त्ता अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं; उसही ब्रह्मने वृष्णिवंशमें अवतार लिया है, इस विषयका इतिहास मुझसे सुनो ॥ ९ ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणैः श्राव्यो राजन्यः क्षत्रियैस्तथा ।
माहात्म्यं देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
अर्हस्त्वमसि कल्याण वार्ष्णेयं शृणु यत्परम् ॥ १० ॥

अपरिमित तेजसे युक्त देवाधिदेव विष्णुका माहात्म्य ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको और क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंको सुनावें । तुम परम कल्याणकारी श्रीकृष्णके उपाख्यानको सुननेके योग्य पात्र हो, इसलिये उसे सुनो ॥ १० ॥

कालचक्रमनाद्यन्तं भावाभावस्वलक्षणम् ।
त्रैलोक्यं सर्वभूतेषु चक्रवत्परिवर्तते ॥ ११ ॥

हे पुरुषप्रवर ! आदि और अन्तहीन यह जो परम श्रेष्ठ कालचक्र है, वह श्रीकृष्णका स्वरूप है; सब भूतोंमें ये तीनों लोक चक्रकी भांति घूमते हैं ॥ ११ ॥

यत्तदक्षरमव्यक्तममृतं ब्रह्म शाश्वतम् ।
वदन्ति पुरुषव्याघ्रं केशवं पुरुषर्षभम् ॥ १२ ॥

पुरुषसिंह पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकोही पण्डित लोग अक्षय, अव्यक्त, अमृत और शाश्वत ब्रह्म कहते हैं ॥ १२ ॥

पितॄन्देवानृषींश्चैव तथा वै यक्षदानवान् ।
नागासुरमनुष्यांश्च सृजते परमोऽव्ययः ॥ १३ ॥

ये अविनाशी परमात्मा श्रीकृष्णनेही पितरगण, देवता, ऋषि, यक्ष, दानव, नाग, असुर और मनुष्योंको उत्पन्न किया है ॥ १३ ॥

तथैव वेदशास्त्राणि लोकधर्मांश्च शाश्वतान् ।
प्रलये प्रकृतिं प्राप्य युगादौ सृजते प्रभुः ॥ १४ ॥

उस परिणामरहित परम पुरुष श्रीकृष्णनेही फिर सृष्टिके आरम्भमें महदादि कार्योंके लयस्थान प्रकृतिको निर्माण करके वेदशास्त्र और शाश्वत लोकधर्मोंका विधान किया है ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मादृरात्रिषु ॥ १५ ॥

जैसे ऋतुकाल पर्यायक्रमसे अनेक प्रकारके ऋतुओंके चिन्ह–लक्षण दीख पडते हैं, अर्थात् प्रतिवर्ष वसन्तकालमें आमके वृक्ष, ग्रीष्मकालमें मल्लिका और वर्षाके समय कदम्बके वृक्ष नियमपूर्वक फूलते हैं, वैसे ही युगके आरम्भमें अपने अपने पूर्वलक्षणोंकी परमात्माके दिन–रात आदि अभिव्यक्ति होती है ॥ १५ ॥

अथ यद्यदा भावि कालयोगाद्युगादिषु ।
तत्तदुत्पद्यते ज्ञानं लोकयात्राविधानजम् ॥ १६ ॥

आदि युगमें कालसम्पर्कके कारण जो जो प्रकाशित होता है, लोकयात्राविधानके लिये वही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है ॥ १६ ॥

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ १७ ॥

पूर्वयुगमें जो कुछ था– जो युगके अन्तमें लुप्त हुआ था– युगके आरम्भमें महर्षियोंने पहले स्वयम्भू ब्रह्माकी आज्ञानुसार तपस्याके सहारे इतिहासके सहित उन्हीं सब वेदोंको प्राप्त किया था ॥ १७ ॥

वेदविद्वेद भगवान्वेदाङ्गानि बृहस्पतिः ।
भार्गवो नीतिशास्त्रं च जगाद जगतो हितम् ॥ १८ ॥

उस समय भगवान् ब्रह्माको वेदोंकी और बृहस्पतिको वेदाङ्गोंका ज्ञान हुआ; असुराचार्य भार्गवको नीतिशास्त्रका ज्ञान हुआ; इन्होंने जगत्के हितके लिये इन विषयोंको कहा ॥१८॥

गान्धर्वं नारदो वेदं भरद्वाजो धनुर्ग्रहम् ।
देवर्षिचरितं गार्ग्यः कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम् ॥ १९ ॥

महर्षि नारदने गान्धर्वविद्या, भरद्वाजने धनुर्विद्या, गर्गने देवर्षिचरित और कृष्णात्रेयने चिकित्साशास्त्रको जाना था ॥ १९ ॥

न्यायतन्त्राण्यनेकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभिः ।
हेत्वागमसदाचारैर्यदुक्तं तदुपास्यते ॥ २० ॥

ऋषियोंने परस्पर विवादमान होकर जो न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा दर्शन बनाये हैं, उनके बीच युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ऋषियोंके जरिये जो ब्रह्म वर्णित हुआ है, उसकी ही उपासना करनी चाहिये ॥ २० ॥

अनाद्यं यत्परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ।
एकस्तद्वेद भगवान्धाता नारायणः प्रभुः ॥ २१ ॥

देवता वा ऋषि लोग उस आदिकारणसे रहित परब्रह्मको नहीं जानते हैं; सर्व शक्तिमान् जगद्विधाता एकमात्र नारायण ही उसे जानते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Vidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नारायणाद्दषिगणास्तथा मुख्याः सुरासुराः ।
राजर्षयः पुराणाश्च परमं दुःखभेषजम् ॥ २२ ॥

नारायणसेही ऋषियों और मुख्य मुख्य सुरासुरों तथा प्राचीन राजर्षियोंने उस दुःखराशिके महौषध स्वरूप परब्रह्मको जाना है ॥ २२ ॥

पुरुषाधिष्ठितं भावं प्रकृतिः सूयते सदा ।
हेतुयुक्तमतः सर्वं जगत्संपरिवर्तते ॥ २३ ॥

जब प्रकृति पुरुषके आलोचित महदादि कार्योंके प्रसवोन्मुखी होती है, उसके पहले धर्माधर्म-युक्त जगत् सब तरहसे वर्त्तमान रहता है ॥ २३ ॥

दीपादन्ये यथा दीपाः प्रवर्तन्ते सहस्रशः ।
प्रकृतिः सृजते तद्वदानन्त्यान्नापचीयते ॥ २४ ॥

जैसे तैलवर्ती आदि कारणसे एक दीपकसे सहस्रों दीपक प्रज्वलित हुआ करते हैं और पहले दीपकको कोई हानि नहीं होती, वैसेही प्रकृति पूर्वादृष्टयुक्त महदादि कार्य उत्पन्न करती है। और अनन्त होनेके कारण उसका क्षय नहीं होता ॥ २४ ॥

अव्यक्तकर्मजा बुद्धिरहंकारं प्रसूयते ।
आकाशं चाप्यहंकाराद्वायुराकाशसंभवः ॥ २५ ॥

अव्यक्त प्रकृतिसे उत्पन्न बुद्धिसे अहङ्कार उत्पन्न होता है; अहङ्कारसे शब्द तन्मात्र आकाश और आकाशसे वायुकी उत्पत्ति होती है ॥ २५ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्त्वद्भ्यो हि वसुधोद्गता ।
मूलप्रकृतयोऽष्टौ ता जगदेतास्ववस्थितम् ॥ २६ ॥

वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है। ये आठों मूल प्रकृति हैं, जगत् इन सबमें ही स्थित है ॥ २६ ॥

ज्ञानेन्द्रियाण्यतः पञ्च पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
विषयाः पञ्च चैकं च विकारे षोडशं मनः ॥ २७ ॥

पुरुषाधिष्ठित अष्ट मूलप्रकृतिसे पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च विषय और एकमात्र मन उत्पन्न होता है, इन षोडश पदार्थोंको षोडश विकार कहते हैं ॥ २७ ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं पञ्चेन्द्रियाण्यपि ।
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक्कर्मणामपि ॥ २८ ॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका– ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। पद, पायु, उपस्थ, हाथ और वागिंद्रिय– ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शब्दः स्पर्शोऽथ रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
विज्ञेयं व्यापकं चित्तं तेषु सर्वगतं मनः ॥ २९ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध– ये पांचों ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। चित्त इन सबमें व्यापक-भावसे स्थित है और मन उन शब्द आदि समस्त विषयोंमें श्रोत्रादिरूपसे स्थित होरहा है, इसे जानना योग्य है ॥ २९ ॥

रसज्ञाने तु जिह्वेयं व्याहृते वाक्तथैव च ।
इन्द्रियैर्विविधैर्युक्तं सर्वं व्यस्तं मनस्तथा ॥ ३० ॥

रस–ज्ञानके विषयमें यह मनही जिह्वास्वरूप होता है और शब्दप्रयोग विषयमें मनही वागिंद्रिय स्वरूप हुआ करता है; मन विविध इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर महदादि घटपर्यन्त सब व्यक्त पदार्थोंका स्वरूपत्व लाभ करता है ॥ ३० ॥

विद्यात्तु षोडशैतानि दैवतानि विभागशः ।
देहेषु ज्ञानकर्तारमुपासीनमुपासते ॥ ३१ ॥

दस इन्द्रिय, मन और पञ्चभूत इन षोडश पदार्थोंको विभागके अनुसार देवता कहके जाने। मनुष्य शरीरके बीच अध्यासीन जो ज्ञानकर्ता जीवात्मा है, उसकी ये उपासना किया करते हैं ॥ ३१ ॥

तद्वत्सोमगुणा जिह्वा गन्धस्तु पृथिवीगुणः ।
श्रोत्रं शब्दगुणं चैव चक्षुरग्नेर्गुणस्तथा ।
स्पर्शं वायुगुणं विद्यात्सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ ३२ ॥

जलका कार्य जिह्वा, पृथ्वीका कार्य नासिका, आकाशका कार्य कान, अग्निका कार्य नेत्र और वायुका कार्य त्वचा है, इन्हें सब भूतोंमें सर्वदा विद्यमान जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

मनः सत्त्वगुणं प्राहुः सत्त्वमव्यक्तजं तथा ।
सर्वभूतात्मभूतस्थं तस्माद्बुध्येत बुद्धिमान् ॥ ३३ ॥

पण्डित लोग मनको सत्त्वका कार्य कहा करते हैं; सत्त्व अव्यक्त– प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है; इससे बुद्धिमान् पुरुष जाने कि वह सब भूतोंके आत्मभूत ईश्वरमें उपाधि रूपसे निवास करता है ॥ ३३ ॥

एते भावा जगत्सर्वं वहन्ति सचराचरम् ।
श्रिता विरजसं देवं यमाहुः परमं पदम् ॥ ३४ ॥

ये सब सत्व आदि पदार्थ स्थावरजङ्गमात्मक जगत्को आश्रयपूर्वक धारण कर रहे हैं; जो प्रकृतिसे अतीत रजोगुण रहित हैं और ये परम देव परमात्माके आश्रित हैं ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम् ।
व्याप्य शेते महानात्मा तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ ३५ ॥

शब्द आदि विषयोंसे युक्त ज्ञानेन्द्रियपञ्चक, बुद्धि, मन, देह और प्राण इस नवद्वारवाले पवित्र पुरको व्याप्त करके वह महान् जीवात्मा शयन कर रहा है, इसही कारण उसे पुरुष कहा जाता है ॥ ३५ ॥

अजरः सोऽमरश्चैव व्यक्ताव्यक्तोपदेशवान् ।
व्यापकः सगुणः सूक्ष्मः सर्वभूतगुणाश्रयः ॥ ३६ ॥

वह अजर और अमर है, वेद उसे मूर्त्त और अमूर्त्त, इन दोनों रूपोंसे वर्णन किया करते हैं; वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त है। वह सूक्ष्म और सब भूतों तथा सत्वादि गुणोंका आश्रय है ॥ ३६ ॥

यथा दीपः प्रकाशात्मा ह्रस्वो वा यदि वा महान् ।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यात्पुरुषं सर्वजन्तुषु ॥ ३७ ॥

उपाधिके कारण ह्रस्वही हो, वा महान् ही होवे; पर जैसे दीपक बाह्य पदार्थोंको प्रकाशित किया करता है, सब जीवोंमें स्थित ज्ञानस्वरूप पुरुषको भी उस ही प्रकार जानो ॥ ३७ ॥

सोऽत्र वेदयते वेद्यं स शृणोति स पश्यति ।
कारणं तस्य देहोऽयं स कर्ता सर्वकर्मणाम् ॥ ३८ ॥

जिसके रहनेसे कान शब्द सुननेमें समर्थ होते हैं, वही सुनता और वही देखता है, यह शरीर उन शब्दादिज्ञानका निमित्त कारण मात्र है, वही जीवात्मा सब कर्मोंका कर्त्ता है ॥ ३८ ॥

अग्निर्दारुगतो यद्वद्भिन्ने दारौ न दृश्यते ।
तथैवात्मा शरीरस्थो योगेनैवात्र दृश्यते ॥ ३९ ॥

काठमें छिपी हुई अग्नि जैसे काठके काटनेसे नहीं दीखती, वैसेही शरीरमें रहनेवाले आत्माको भी नहीं देखा जाता; योगसे ही उसका यहां दर्शन होता है ॥ ३९ ॥

नदीष्वापो यथा युक्ता यथा सूर्ये मरीचयः ।
संतन्वाना यथा यान्ति तथा देहाः शरीरिणाम् ॥ ४० ॥

जैसे नदियोंमें जल रहता है और सूर्यमण्डलमें किरणें सदा संयुक्त रहती हैं, वैसे ही जीवोंके शरीर आत्माके सहित संयुक्त हैं, योगाभावसे देहसम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता ॥ ४० ॥

स्वप्नयोगे यथैवात्मा पञ्चेन्द्रियसमागतः ।
देहमुत्सृज्य वै याति तथैवात्रोपलभ्यते ॥ ४१ ॥

जैसे स्वप्नमें पंच ज्ञानेन्द्रिय युक्त आत्मा इस शरीरको छोडकर दूसरी जगह जाता है, उसी तरह मरनेके अनन्तर वह इस शरीरको त्यागके देहान्तरमें गमन करता है; यह शास्त्रदृष्टिके सहारे मालूम हुआ करता है ॥ ४१ ॥

CC-0 Swami Dayanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्मणा व्याप्यते पूर्वं कर्मणा चोपपद्यते ।
कर्मणा नीयतेऽन्यत्र स्वकृतेन बलीयसा ॥ ४२ ॥

जीव पहले अपने किये हुए बलवान् कर्मोंसे प्रेरित होकर जन्म लेता है और कर्मोंसे ही देहान्तरमें गमन किया करता है ॥ ४२ ॥

स तु देहाद्यथा देहं त्यक्त्वान्यं प्रतिपद्यते ।
तथा तं संप्रवक्ष्यामि भूतग्रामं स्वकर्मजम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥ ७२२३ ॥

जैसे मनुष्य शरीर त्यागके एक शरीरके अनन्तर दूसरा शरीर पाता है, वैसेही निज कर्मके अनुसार जन्म लेनेवाले दूसरे जीव भी एक शरीरसे देहान्तरमें गमन करते हैं, इसे फिर कहूंगा ॥४३॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तीनवां अध्याय समाप्त ॥ २०३ ॥ ७२२३ ॥

: २०४ :

गुरुरुवाच—

चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
अव्यक्तप्रभवान्याहुरव्यक्तनिधनानि च ।
अव्यक्तनिधनं विद्यादव्यक्तात्मात्मकं मनः ॥ १ ॥

गुरु बोले— पण्डित लोग स्थावरजङ्गमात्मक चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीवोंको अव्यक्तप्रभव और अव्यक्तनिधन कहा करते हैं, अर्थात् जीवोंकी देहान्तरप्राप्ति और पूर्वदेहका वियोग गृहसे गृहान्तरमें गमनकी तरह विस्पष्ट नहीं है । आत्मा अव्यक्त है, मन उस ही अव्यक्त आत्माका स्वरूप है, अर्थात् दूसरे चन्द्रमाकी भांति आत्मामेंही कल्पित है, इससे मनका लक्षण भी विस्पष्ट नहीं है; इसलिये यह जानना चाहिये, कि मन कल्पित उत्पत्ति निधन और अव्यक्त है ॥ १ ॥

यथाश्वत्थकणीकायामन्तर्भूतो महाद्रुमः ।
निष्पन्नो दृश्यते व्यक्तमव्यक्तात्संभवस्तथा ॥ २ ॥

जैसे अश्वत्थ बीजके अन्तर्गत अत्यन्त छोटे अंशके बीच बृहत् वृक्ष अव्यक्त रूपसे रहता है; फिर बीजके उगनेपर वृक्ष रूपमें वह व्यक्त रूपसे दीखता है, अव्यक्तसे दृश्य वस्तु मात्रका सम्भव भी वैसाही है ॥ २ ॥

अभिद्रवत्ययस्कान्तमयो निश्चेतनावुभौ ।
स्वभावहेतुजा भावा यद्वदन्यदपीदृशम् ॥ ३ ॥

जैसे अचेतन लोहा चुम्बककी ओर— दोनों अचेतन होनेपर भी— दौडता है, वैसेही पूर्व संस्कारके कारण कर्मजनित धर्माधर्म तथा अज्ञान आदि भी अभिव्यक्त शरीरके अनुगत हुआ करते हैं ॥३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तद्वदव्यक्तजा भावाः कर्तुः कारणलक्षणाः ।
अचेतनाश्चेतयितुः कारणादभिसंहिताः ॥ ४ ॥

प्रागुक्त न्यायके अनुसार अविद्याजनित काम, कर्मवासना, देह और इन्द्रिय आदि अचेतन पदार्थ सब तरहसे संहत होकर कारण स्वरूप चेतयिता परब्रह्मका कारणत्व लक्ष्य किया करते हैं, और कारण रूप परब्रह्मके निकटसे सत्त्व, चित्त्व और आनन्दत्व आदि आत्मधर्म सब तरहसे शरीरमें सङ्गत होते अर्थात् देहान्तर प्राप्ति होनेपर आत्मानात्मगुणसमूह पहलेकी भांति संहत हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

न भूः खं द्यौर्न भूतानि नर्षयो न सुरासुराः ।
नान्यदासीद्दते जीवमासेदुर्न तु संहितम् ॥ ५ ॥

भूमि, आकाश, स्वर्ग, भूतगण, ऋषिगण, देवता और असुरगण आदि जगत्की उत्पत्तिके पहिले कुछ भी न थे; चेतनके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुकी सत्ताही नहीं थी; जड और चेतनका संयोगही नहीं था ॥ ५ ॥

सर्वनीत्या सर्वगतं मनोहेतु सलक्षणम् ।
अज्ञानकर्म निर्दिष्टमेतत्कारणलक्षणम् । ॥ ६ ॥

अनादि, नित्य, सर्वगत, मनका कारण और लक्षणसहित वह आत्मा पहले विद्यमान था, यह कारण स्वरूप जगत् अज्ञानका कार्य– माया कार्य कहके वर्णित है ॥ ६ ॥

तत्कारणैर्हि संयुक्तं कार्यसंग्रहकारकम् ।
येनैतद्वर्तते चक्रमनादिनिधनं महत् ॥ ७ ॥

जीव पूर्ववासनाके वशमें होकर कर्ममें प्रवृत्त होता है; वासनासे कर्म और कर्मसे वासना, यह जो सदा प्रवहमान अनादिनिधन महत् चक्र संग्रहके जरिये वर्त्तमान है, जीव स्वरूप आत्मा वासना समूहमें संयुक्त होकर उन कार्योंको संग्रह कर रहा है ॥ ७ ॥

अव्यक्तनाभं व्यक्तारं विकारपरिमण्डलम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चक्रं स्निग्धाक्षं वर्तते ध्रुवम् ॥ ८ ॥

अव्यक्त बुद्धिवासना समूह जिसकी नाभी अर्थात् नाभीकी भांति अन्तरङ्ग, व्यक्त देहेन्द्रिय आदि जिसके अर अर्थात् नाभी और नेमिके सन्धानकारक काष्ठोंकी तरह बहिरङ्ग, ज्ञान, क्रिया आदि विकार जिसकी नेमि अर्थात् नेमिकी भांति व्यापक, रञ्जनात्मक रजोगुण जिसका अक्ष अर्थात् पहियेकी तरह चलनेवाला है, वही जन्ममरणप्रवाहरूप संघातचक्र क्षेत्रज्ञके जरिये अधिष्ठित होकर अविचलित रूपसे वर्त्तमान है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्निग्धत्वात्तिलवत्सर्वं चक्रेऽस्मिन्पीड्यते जगत् ।
तिलपीडैरिवाक्रम्य भोगैरज्ञानसंभवैः ॥ ९ ॥

जैसे तिलको पेरनेवाले तेली लोग प्रीतिपूर्वक तिलोंको चक्रके बीच पेरते हैं, वैसेही सब दुःख-भोग रजोगुणके आक्रमण निबन्धनसे इस संघातचक्रमें आक्रमण करके अज्ञानसे समस्त जगज्जनोंको निष्पीडन कर रहा है ॥ ९ ॥

कर्म तत्कुरुते तर्षादहंकारपरिग्रहम् ।
कार्यकारणसंयोगे स हेतुरुपपादितः ॥ १० ॥

वह संघातस्वरूप चक्र फलतृष्णाके कारण अभिमानसे परिगृहीत होकर कर्म करता है, कार्य और कारण, इन दोनोंके संयोग उपस्थित होनेसे वह कार्य ही कारणरूपसे समर्थित होता है ॥ १० ॥

नात्येति कारणं कार्यं न कार्यं कारणं तथा ।
कार्याणां तूपकरणे कालो भवति हेतुमान् ॥ ११ ॥

रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति कार्यकारणकी विषमसत्तासे कारणमें कार्य और कार्यमें कारण प्रवेश संघटित नहीं होता । कार्योंके अभिव्यक्त निमित्त अदृष्टादि सहाययुक्त काल ही हेतु रूपसे समर्थ हुआ करता है ॥ ११ ॥

हेतुयुक्ताः प्रकृतयो विकाराश्च परस्परम् ।
अन्योन्यमभिवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठिताः सदा ॥ १२ ॥

कर्म हेतुयुक्त पहले कही हुई अष्ट प्रकृतियां और षोडश विकार पुरुषके अधिष्ठानसे सदा एक दूसरेसे मिलते रहते हैं और सृष्टिका विस्तार करते हैं ॥ १२ ॥

सरजस्तामसैर्भावैश्च्युतो हेतुबलान्वितः ।
क्षेत्रज्ञमेवानुयाति पांसुर्वातेरितो यथा ।
न च तैः स्पृश्यते भावो न ते तेन महात्मना ॥ १३ ॥

जैसे वायुके जरिये धूलि उडती है, वैसे ही पूर्व देहसे विभ्रष्ट जीव, राजस वा तामस संस्कार-युक्त और कर्म तथा पूर्व प्रज्ञासे संयुक्त होकर क्षेत्रज्ञको लक्ष्य करते हुए लोकान्तरमें गमन किया करता है । रज, सत्त्व, तमोगुणसे देहेन्द्रियभूत सूक्ष्म भावनिवह पूर्वोक्त कर्म और पूर्व प्रज्ञा आदि आत्माको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ १३ ॥

सरजस्कोऽरजस्कश्च स वै वायुर्यथा भवेत् ।
तथैतदन्तरं विद्यात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्बुधः ।
अभ्यासात्स तथा युक्तो न गच्छेत्प्रकृतिं पुनः ॥ १४ ॥

महान् आत्मकर्तृ कभी उक्त सब भाव स्पृष्ट नहीं होते अर्थात् जैसे रजोहीन वायुमें सरजस्कत्व की भ्रान्ति हुआ करती है, आत्मामें देह आदि सङ्ग भी उसही प्रकारके कार्य हैं । विद्वान् पुरुष वायु और धूलिके पृथक्भावकी तरह जीव का पृथक् भाव—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अन्तर—जानकर भी देहादिके आत्माके सहित आत्माके तादात्म ज्ञानके अभ्यासके कारण शुद्ध स्वरूप आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संदेहमेतमुत्पन्नमच्छिनद्भगवान्ऋषिः ।
तथा वार्तां समीक्षेत कृतलक्षणसंमिताम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उन महर्षि भगवान् गुरुने शिष्यके उत्पन्न हुए संदेहको नष्ट किया; इसलिये विद्या साधनके समय, जो क्रियाओंसे उद्देशकी सिद्धिके लिये सहायक हो, ऐसे ही उपायोंपर विद्वान् दृष्टि रखे ॥ १५ ॥

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः ।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संबध्यते पुनः ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ ७२३९ ॥

जैसे अग्निमें जले हुए बीज फिर नहीं जमते, वैसेही ज्ञान रूपी अग्निसे अविद्या आदि क्लेशोंके जल जानेपर आत्मा फिर शरीर ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चारवां अध्याय समाप्त ॥ २०४ ॥ ७२३९ ॥

: २०५ :

गुरुरुवाच—

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो यथायमुपपद्यते ।
तेषां विज्ञाननिष्ठानामन्यत्तत्त्वं न रोचते ॥ १ ॥

गुरु बोले— जिस प्रकार कर्मनिष्ठ मनुष्योंको प्रवृत्तिलक्षण धर्म अभिलषित है, वैसेही विज्ञाननिष्ठ पुरुषोंको विज्ञानके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें रुचि नहीं होती ॥ १ ॥

दुर्लभा वेदविद्वांसो वेदोक्तेषु व्यवस्थिताः ।
प्रयोजनमतस्त्वत्र मार्गमिच्छन्ति संस्तुतम् ॥ २ ॥

वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कार्य और शम, दम आदि विषयोंमें निष्ठावान् वेदविद्याशाली पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं; अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष महत् प्रयोजनके कारण स्वर्ग और मोक्ष, इन दोनोंके बीच सबके द्वारा प्रशंसित श्रेष्ठ मोक्षमार्गकी ही कामना किया करते हैं ॥ २ ॥

सद्भिराचरितत्वात्तु वृत्तमेतदगर्हितम् ।
इयं सा बुद्धिरन्येयं यया याति परां गतिम् ॥ ३ ॥

साधु पुरुषोंने सदा इसही मार्गका आचरण किया है, इसलिये यही अनिन्द्य है; निवृत्ति लक्षणवाली बुद्धिको अवलम्बन करनेसे मनुष्य परमगति— मोक्षको पाता है ॥ ३ ॥

शरीरवानुपादत्ते मोहात्सर्वपरिग्रहान् ।
कामक्रोधादिभिर्भावैर्युक्तो राजसतामसैः ॥ ४ ॥

शरीराभिमानी मनुष्य मोहके कारण रजोगुण और तमोगुण जनित काम—क्रोध—लोभ आदिके सहित संयुक्त होकर सब विषयोंको ग्रहण किया करता है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Digitized by eGangotri

नाशुद्धमाचरेत्तस्मादभीप्सन्देहयापनम् ।
कर्मणो विवरं कुर्वन्न लोकानाप्नुयाच्छुभान् ॥ ५ ॥

इसलिये जो शरीरके बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा करता है, उसे अशुद्ध आचरण करना उचित नहीं है। वह निष्काम कर्मके जरिये आत्मज्ञान-मोक्षका- द्वार खोलकर, स्वर्ग आदि शुभ लोकोंके सुखसम्भोगको स्वीकार न करे ॥ ५ ॥

लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते ।
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते ॥ ६ ॥

जैसे लोहमिश्रित सुवर्ण अग्निमें पकाकर शुद्ध किये बिना शोभित नहीं होता, वैसेही जिस पुरुषने राग आदि दोषोंको जय नहीं किया, उसमें विज्ञान स्वरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता ॥ ६ ॥

यश्चाधर्मं चरेन्मोहात्कामलोभानुगो प्लवन् ।
धर्म्यं पन्थानमाक्रम्य सानुबन्धो विनश्यति ॥ ७ ॥

जो पुरुष मोहके वशमें होकर काम-क्रोधका अनुसरण करते हुए धर्मपथका उल्लंघन करके अधर्मका आचरण करता है, वह बन्धु-बान्धवोंके सहित विनष्ट होता है ॥ ७ ॥

शब्दादीन्विषयांस्तस्मादसंरागादनुप्लवेत् ।
क्रोधहर्षौ विषादश्च जायन्ते हि परस्परम् ॥ ८ ॥

इसलिये अपने कल्याणकी इच्छा करते हुए धर्मपथको अवलम्बन करनेवाला मनुष्य रागाधिक्यके कारण शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आसक्त न होवे; क्योंकि क्रोध, हर्ष और विषाद, -ये रज, सत्व और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ८ ॥

पञ्चभूतात्मके देहे सत्त्वराजसतामसे ।
कमभिष्टुवते चायं कं वा क्रोशति किं वदेत् ॥ ९ ॥

सत्त्व, रज और तमोगुणके कार्यभूत पञ्चभूतात्मक, शरीरमें रहकर यह निर्विकार जीव किसकी क्या कहके स्तुति और निन्दा करेगा ? ॥ ९ ॥

स्पर्शरूपरसाद्येषु सङ्गं गच्छन्ति बालिशाः ।
नावगच्छन्त्यविज्ञानादात्मजं पार्थिवं गुणम् ॥ १० ॥

मूढ लोगही स्पर्श रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वे विज्ञान रहित बुद्धिके कारण देहको पृथ्वीका विकार नहीं समझते ॥ १० ॥

मृन्मयं शरणं यद्वन्मृदैव परिलिप्यते ।
पार्थिवोऽयं तथा देहो मृद्विकारैर्विलिप्यते ॥ ११ ॥

जैसे मट्टीमय गृह मृत्तिकासे लिप्त होता है, वैसेही यह पार्थिव शरीर पृथ्वीके विकार अन्नादिका उपयोग करके जीवित रहता है, नष्ट नहीं होता है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मधु तैलं पयः सर्पिर्मांसानि लवणं गुडः ।
धान्यानि फलमूलानि मृद्विकाराः सहाम्भसा ॥ १२ ॥

मधु, तेल, दूध, घृत, अनेक प्रकारके मांस, नमक, गुड, अनेक तरहके धान्य और फल, मूल, जल— ये सभी पृथ्वीके विकारमात्र हैं ॥ १२ ॥

यद्वत्कान्तारमतिष्ठन्नौत्सुक्यं समनुव्रजेत् ।
अमादाहारमादद्यादस्वाद्वपि हि यापनम् ॥ १३ ॥

जैसे वनमें रहनेवाला संन्यासी मिष्टान्नादिके भोजनमें अनुराग न करके, देहयात्रा निर्वाहके निमित्त अस्वादिष्ट ग्राम्य श्रमपूर्वक मिला हुआ आहार किया करता है ॥ १३ ॥

तद्वत्संसारकान्तारमतिष्ठञ्श्रमतत्परः ।
यात्रार्थमश्नादाहारं व्याधितो भेषजं यथा ॥ १४ ॥

वैसे ही संसाररूपी वनमें रहनेवाला मनुष्य परिश्रममें तत्पर होकर वेद आदि श्रवण निर्वाहके निमित्त, जैसे रोगी जीवनरक्षाके लिये औषध सेवन करता है, उसी तरह सात्त्विक आहार करे; इन्द्रियोंकी प्रीतिकरी वस्तुको भोजन करनेमें अनुरक्त न होवे ॥ १४ ॥

सत्यशौचार्जवत्यागैर्यशसा विक्रमेण च ।
क्षान्त्या धृत्या च बुद्ध्या च मनसा तपसैव च ॥ १५ ॥

यथार्थ वचन, अन्तर्बाह्य शौच, सरलता, वैराग्य, अध्ययनजनित यश, मनको जय करनेमें पराक्रम, सन्तोष, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तपस्याके प्रभावसे ॥ १५ ॥

भावान्सर्वान्यथावृत्तान्संवसेत यथाक्रमम् ।
शान्तिमिच्छन्नदीनात्मा संयच्छेदिन्द्रियाणि च ॥ १६ ॥

सब विषयमय भावोंको अवलोकन करके उदारचित्त होकर शान्तिकी इच्छा करते हुए इन्द्रियोंको संयत करके निवास करे ॥ १६ ॥

सत्त्वेन रजसा चैव तमसा चैव मोहिताः ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते ह्यज्ञानाज्जन्तवो भृशम् ॥ १७ ॥

सब असंयमी जीव सत्व, रज और तमोगुणसे मोहित होके अज्ञानके वशमें होकर चक्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं ॥ १७ ॥

तस्मात्सम्यक्परीक्षेत दोषानज्ञानसंभवान् ।
अज्ञानप्रभवं नित्यमहंकारं परित्यजेत् ॥ १८ ॥

इसलिये अज्ञान सम्भव दोषोंकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके अज्ञानप्रभव दुःख और अहंकारको सदाके लिये परित्याग करे ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महाभूतानीन्द्रियाणि गुणाः सत्त्वं रजस्तमः ।
त्रैलोक्यं सेश्वरं सर्वमहंकारे प्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥

पांच महाभूत, इन्द्रियां, शब्द आदि गुण, सत्व, रज, तम, लोकपालों सहित तीनों लोक और कर्म अहंकारमें प्रतिष्ठित है, अर्थात् ये सब अहंकार कल्पित हैं ॥ १९ ॥

यथेह नियतं कालो दर्शयत्यार्तवान्गुणान् ।
तद्वद्भूतेष्वहंकारं विद्याद्भूतप्रवर्तकम् ॥ २० ॥

जैसे इस लोकमें नियमित काल ऋतुगुणोंको प्रदर्शित करता है, वैसेही अहंकारको भी सब प्राणियोंमें उनके अद्भूत कर्मोंका प्रवर्त्तक जानो ॥ २० ॥

संमोहकं तमो विद्यात्कृष्णमज्ञानसम्भवम् ।
प्रीतिदुःखनिबद्धांश्च समस्तांस्त्रीनथो गुणान् ।
सत्त्वस्य रजसश्चैव तमसश्च निबोध तान् ॥ २१ ॥

अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका हैं; अन्धकारके समान काला, अज्ञान-सम्भव तमोगुण सम्मोहजनक है; सत्त्वगुण प्रीति जनक और रजोगुण दुःखजनक है, इसी प्रकार तीनों गुणोंका स्वरूप जानना योग्य है । अब सत्त्व, रज और तमोगुणके कार्यभूत विशेष गुणोंको सुनो ॥ २१ ॥

प्रमोहो हर्षजः प्रीतिरसंदेहो धृतिः स्मृतिः ।
एतान्सत्त्वगुणान्विद्यादिमान्राजसतामसान् ॥ २२ ॥
कामक्रोधौ प्रमादश्च लोभमोहौ भयं क्लमः ।
विषादशोकावरतिर्मानदर्पावनार्यता ॥ २३ ॥

प्रमोह, हर्षजनित प्रीति, असन्देह, धृति और स्मृति, इन सबको सत्वगुण जाने और काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह, भय, क्लम, विषाद, शोक, अप्रसन्नता, अभिमान, दर्प और अनार्यता, इन्हें राजस और तामस गुण जानना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

दोषाणामेवमादीनां परीक्ष्य गुरुलाघवम् ।
विमृशेदात्मसंस्थानामेकैकमनुसंततम् ॥ २४ ॥

इस ही प्रकार दोषोंके गौरव और लाघवकी परीक्षा करके अपनेमें इनके बीच कौन कौनसे दोष हैं, कौन दोष नष्ट हुए हैं और कौन कौनसे दोष बाकी हैं, उन्हें एक एक करके सदा आलोचना करे ॥ २४ ॥

शिष्य उवाच—

के दोषा मनसा त्यक्ताः के बुद्ध्या शिथिलीकृताः ।
के पुनः पुनरायान्ति के मोहादफला इव ॥ २५ ॥

शिष्य बोला— प्राचीन मुमुक्षु मनुष्योंने किन किन दोषोंका मनसे परित्याग किया था ? किन किन दोषोंको बुद्धिबलसे शिथिल किया था ? कौन कौनसे दोष अपरिहार्य हैं, कौन कौनसे दोष उपस्थित होकर भी निष्फल होते हैं ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केषां बलाबलं बुद्ध्या हेतुभिर्विमृशेद्बुधः ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यथा विद्यामहं प्रभो ॥ २६ ॥

और विद्वान् पुरुष बुद्धि और युक्तिके सहारे किन किन दोषोंके बलाबलकी आलोचना करे ? हे प्रभो ! आप मेरे समीप उस विषयको यथावत् वर्णन करिये, जिससे मैं जान सकूं ॥२६॥

गुरुरुवाच—

दोषैर्मूलादवच्छिन्नैर्विशुद्धात्मा विमुच्यते ।
विनाशयति संभूतमयस्मयमयो यथा ।
तथाकृतात्मा सहजैर्दोषैर्नश्यति राजसैः ॥ २७ ॥

गुरु बोले— इन दोनोंका मूल—अज्ञान—सहित नाश होनेपर मनुष्य शुद्ध चित्तवाला होकर मुक्त होता है; जैसे लोहेकी धार छेनीकी लोहनिगडको काटके स्वयं विनष्ट होती है, वैसेही ध्यान संस्कृता बुद्धि सहज राजस दोषोंसे उत्पन्न दोषोंको विनाश करके उनके साथ स्वयं नष्ट हुआ करती है ॥ २७ ॥

राजसं तामसं चैव शुद्धात्माकर्मसंभवम् ।
तत्सर्वं देहिनां बीजं सर्वमात्मवतः समम् ॥ २८ ॥

राजस, तामस और कामरहित शुद्धात्मक सत्व, ये सब गुण शरीरधारियोंके देह-प्राप्ति विषयमें बीज स्वरूप हैं; परन्तु जितचित्त पुरुषके लिये ब्रह्मप्राप्तिका उपाय सत्त्वमात्र है ॥ २८ ॥

तस्मादात्मवता वर्ज्यं रजश्च तम एव च ।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तं सत्त्वं निर्मलतामियात् ॥ २९ ॥

इसलिये चित्तविजयी मनुष्यको रजोगुण और तमोगुणका त्याग करना उचित है । रजोगुण और तमोगुणसे निर्मुक्त बुद्धिही निर्मलताको प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

अथ वा मन्त्रवद्ब्रूयुर्मांसादानां यजुष्कृतम् ।
हेतुः स एवानादाने शुद्धधर्मानुपालने ॥ ३० ॥

अथवा बुद्धि वशीकरण निमित्त विहित मन्त्रयुक्त यज्ञादि कर्मोंको कोई कोई दुष्कृति कहा करते हैं, अर्थात् यज्ञादि कर्मोंमें जीवहिंसा रहनेसे वह दुरदृष्टविधायक कहके किसी किसी मतावलम्बी मनुष्योंने उसे निन्दित कार्य रूपसे गिना है, यथार्थमें वे मन्त्र युक्त कार्यही वैराग्यके निमित्त हुआ करते हैं और शुद्ध धर्म स्वरूप दम आदिकी रक्षाके विषयमें यज्ञादिही धर्म रूपसे विहित है; यज्ञादिके अतिरिक्त पशुहिंसाही अनर्थका कारण हुआ करती है, विधि-विहित हिंसामें वैसी अनर्थ हेतुता न रहनेपर भी यदि हिंसासे कुछ बुराई उत्पन्न हो, तो वह सामान्य प्रायश्चित्तसे दूर की जाती है । जिसका यज्ञ आदिकोंसे बहुतसा पुण्यसञ्चय हुआ है, उसका थोडा पाप प्रायश्चित्तसे दूर हो सकता है; सुखसमुद्रमें मग्न मनुष्य अल्पदुःख सहनेमें अवश्यही समर्थ हुआ करते हैं ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रजसा धर्मयुक्तानि कार्याण्यपि समाप्नुयात् ।
अर्थयुक्तानि चात्यर्थं कामान्सर्वांश्च सेवते ॥ ३१ ॥

मनुष्य रजोगुणके जरिये धर्मयुक्त तथा अर्थयुक्त कार्योंको प्राप्त करता है और वह समस्त कामोंका आसक्तिसे सेवन करता है ॥ ३१ ॥

तमसा लोभयुक्तानि क्रोधजानि च सेवते ।
हिंसाविहाराभिरतस्तन्द्रीनिद्रासमन्वितः ॥ ३२ ॥

तथा तमोगुणके सहारे लोभयुक्त और क्रोधज कार्योंका सेवन किया करता है; वह हिंसाविहारमें सदा अनुरक्त, तन्द्रा और निद्रायुक्त रहता है ॥ ३२ ॥

सत्त्वस्थः सात्त्विकान्भावाञ्शुद्धान्पश्यति संश्रितः ।
स देही विमलः श्रीमाञ्शुद्धो विद्यासमन्वितः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ७२७२ ॥

सत्त्वगुणावलम्बी श्रद्धा और विद्यायुक्त पवित्र चित्तवाला श्रीमान् मनुष्य बुद्धिसे सात्विक भावको आलोचना किया करता है; इसलिये वैदिक कर्मोंमें काम, क्रोध आदिके हेतुभूत राजस और तामस भाव परित्याग है, और सात्विक भाव अवश्य सेवन करने योग्य हैं ॥३३॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ २०५ ॥ ७२७२ ॥

: २०६ :

गुरुरुवाच—

रजसा साध्यते मोहस्तमसा च नरर्षभ ।
क्रोधलोभौ भयं दर्प एतेषां सादनाच्छुचिः ॥ १ ॥

गुरु बोले— हे नरश्रेष्ठ ! रज और तमोगुणसे आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान स्वरूप मोह उत्पन्न होता है, मोहसे क्रोध, लोभ, भय और दर्प प्रकट होते हैं, इन सबको नष्ट करतेही मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होता है ॥ १ ॥

परमं परमात्मानं देवमक्षयमव्ययम् ।
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं विशन्ते देवसत्तमम् ॥ २ ॥

शुद्ध चित्तवाले पुरुषही उस अविनाशी, ह्रासहीन, सर्वाश्रय, देवसत्तम, पञ्चकोशातीत, अव्यक्त, विभु परमात्माको विष्णुको पाते हैं ॥ २ ॥

तस्य मायाविदग्धाङ्गा ज्ञानभ्रष्टा निराशिषः ।
मानवा ज्ञानसंमोहात्ततः कामं प्रयान्ति वै ॥ ३ ॥

उसही विष्णुकी मायासे आवृत्त होकर मनुष्य ज्ञानभ्रष्ट और विवेकहीन होते हैं; इसलिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होकर बुद्धिकी विपरीततासे कामासक्त होते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामात्क्रोधमवाप्याथ लोभमोहौ च मानवाः ।
मानदर्पादहंकारमहंकारात्ततः क्रियाः ॥ ४ ॥

कामसे क्रोध उत्पन्न होता है; क्रोधसे धीरे धीरे लोभ, मोह, अभिमान, उच्छृङ्खलता और अहंकारको प्राप्त होते हैं; अहंकारसे जननादि सब कार्य स्वीकार किये जाते हैं ॥ ४ ॥

क्रियाभिः स्नेहसंबन्धः स्नेहाच्छोकमनन्तरम् ।
सुखदुःखसमारम्भाज्जन्माजन्मकृतक्षणाः ॥ ५ ॥

जननादि क्रियाओंसे स्नेहसम्बन्ध उत्पन्न होता है, स्नेह होनेसे ही अन्तमें शोक उत्पन्न हुआ करता है, और सुख–दुःखयुक्त कार्यका आरम्भ होनेपर मनुष्यको जन्म–मृत्युके कष्ट भोगने पडते हैं ॥ ५ ॥

जन्मतो गर्भवासं तु शुक्रशोणितसंभवम् ।
पुरीषमूत्रविक्लेदशोणितप्रभवाविलम् ॥ ६ ॥

जन्मके कारण गर्भवास; रज और वीर्यके मीलनपर गर्भवास आता है; यहां मल, मूत्र युक्त रक्तपूरित मलिन स्थानमें रहना होता है ॥ ६ ॥

तृष्णाभिभूतस्तैर्बद्धस्तानेवाभिपरिप्लवन् ।
संसारतन्त्रवाहिन्यस्तत्र बुध्येत योषितः ॥ ७ ॥

उस समय जीव तृष्णामें फंसके और काम, क्रोध आदिसे बद्ध होकर उनका अनुसरण करता है; उससे पार होनेके लिये स्त्रियोंको संसार पटका कारण समझता है ॥ ७ ॥

प्रकृत्या क्षेत्रभूतास्ता नराः क्षेत्रज्ञलक्षणाः ।
तस्मादेता विशेषेण नरोऽतीयुर्विपश्चितः ॥ ८ ॥

स्त्रियां स्वाभाविक ही सन्तानोत्पत्तिके क्षेत्रभूत हैं, पुरुष क्षेत्रज्ञ स्वरूप हैं; इससे विद्वान् मनुष्य यत्नपूर्वक स्त्रीके संसर्गका परित्याग करे ॥ ८ ॥

कृत्या ह्येता घोररूपा मोहयन्त्यविचक्षणान् ।
रजस्यन्तर्हिता मूर्तिरिन्द्रियाणां सनातनी ॥ ९ ॥

शत्रुको मारनेके लिये मन्त्रमयी शक्तिकी तरह घोररूपिणी ये स्त्रियांही मूर्ख लोगोंको मोहित करती हैं; इन्द्रियोंके जरिये कल्पित यह सनातनी नारी मूर्ति सूक्ष्मरूपसे रजोगुणमें अन्तर्हित होरही है ॥ ९ ॥

तस्मात्तर्षात्मकाद्रागाद्बीजाज्जायन्ति जन्तवः ।
स्वदेहजानस्वसंज्ञान्यद्वदज्ञात्कृमींस्त्यजेत् ।
स्वसंज्ञानस्वजांस्तद्वत्सुतसंज्ञान्कृमींस्त्यजेत् ॥ १० ॥

इसलिये स्त्री सम्बन्धी प्रीतिके कारण पुरुषके वीर्यसे जीव उत्पन्न होते हैं; जैसे मनुष्य स्वदेहज, मनुष्य संज्ञारहित अनाप्त यूकजातीय कीटोंको, परित्याग किया करता है, वैसे ही मनुष्य नामधारी, अनाप्त, सुतसंज्ञक कीडोंको परित्याग करे ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शुक्रतो रसतश्चैव स्नेहाज्जायन्ति जन्तवः ।
स्वभावात्कर्मयोगाद्वा तानुपेक्षेत बुद्धिमान् ॥ ११ ॥

रेत और खेदरूप स्नेहहेतुसे स्वभाव वा कर्म योग निबन्धनसे जन्तुगण देहसे उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान् पुरुष उनकी उपेक्षा करें ॥ ११ ॥

रजस्तमसि पर्यस्तं सत्त्वं तमसि संस्थितम् ।
ज्ञानाधिष्ठानमज्ञानं बुद्ध्यहंकारलक्षणम् ॥ १२ ॥

प्रवृत्ति और प्रकाशात्मक रजोगुण और सत्वगुण अज्ञानात्मक तमोगुणमें लीन हुआ करते हैं, उसही अज्ञानका निवासस्थल ज्ञानमें अज्ञान अध्यस्त होकर बुद्धि और अहङ्कारका ज्ञापक होता है ॥ १२ ॥

तद्बीजं देहिनामाहुस्तद्बीजं जीवसंज्ञितम् ।
कर्मणा कालयुक्तेन संसारपरिवर्तकम् ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् लोग ज्ञानमें अध्यस्त उस अव्यक्तको ही देहधारियोंका बीज कहा करते हैं और उस बीजका ही नाम देही—जीव है । वह देही कालके अनुसार कर्मसे इस संसार चक्रमें सब प्रकारसे वर्त्तमान है ॥ १३ ॥

रमत्ययं यथा स्वप्ने मनसा देहवानिव ।
कर्मगर्भैर्गुणैर्देही गर्भे तदुपपद्यते ॥ १४ ॥

जैसे जीव सपनेमें देहधारीकी भांति मनही मन क्रीडा करता है, वैसे ही कर्म गर्भगुणके जरिये जननीके जठरमें उपलब्ध होता है ॥ १४ ॥

कर्मणा बीजभूतेन चोद्यते यद्यदिन्द्रियम् ।
जायते तदहंकाराद्रागयुक्तेन चेतसा ॥ १५ ॥

मांसपिण्डमय शरीरमें बीजभूत कर्मसे जीव प्रकट होके पूर्ववासनासे जिन जिन इन्द्रिय विषयोंको स्मरण करता है, रागयुक्त चित्तसे अहङ्कारके जरिये उनकी उन्हीं विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं ॥ १५ ॥

शब्दरागाच्छ्रोमत्रस्य जायते भावितात्मनः ।
रूपरागात्तथा चक्षुर्घ्राणं गन्धचिकीर्षया ॥ १६ ॥

आत्मरूपसे उत्पन्न हुए जीवके शब्दवासनाके कारण श्रवणेन्द्रिय, रूपवासनासे दर्शनेन्द्रिय, गन्ध ग्रहणकी इच्छासे घ्राणेन्द्रिय—नासिका प्रकट होती है ॥ १६ ॥

स्पर्शनेभ्यस्तथा वायुः प्राणापानव्यपाश्रयः ।
व्यानोदानौ समानश्च पञ्चधा देहयापना ॥ १७ ॥

और स्पर्शवासनासे त्वगिन्द्रिय और वायु उत्पन्न होती है, और जीवकी देहयात्रा निर्वाहके निमित्त प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान, ये पञ्चवायु शरीरको आश्रय करती हैं ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संजातैर्जायते गात्रैः कर्मजैर्ब्रह्मणा वृतः ।
दुःखाद्यन्तैर्दुःखमध्यैर्नरः शारीरमानसैः ॥ १८ ॥

मनुष्य कर्मजनित ब्रह्मयुक्त शरीर और मानस दुःखके आदि, मध्य और अन्तके सहित पूरी तरहसे निष्पन्न श्रोत्रादि युक्त शरीरसे पूरित होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥

दुःखं विद्यादुपादानादभिमानाच्च वर्धते ।
त्यागात्तेभ्यो निरोधः स्यान्निरोधज्ञो विमुच्यते ॥ १९ ॥

गर्भमें देह और इन्द्रिय आदिका अङ्गीकार तथा उत्पन्न होनेके अनन्तर अभिमानसे देहकी तरह दुःखकी वृद्धि होती है और अभिमानके त्यागसे दुःखोंका अन्त होता है; जो दुःखको रोकना जानता है, वह मुक्त होता है ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणां रजस्येव प्रभवप्रलयावुभौ ।
परीक्ष्य संचरेद्विद्वान्यथावच्छास्त्रचक्षुषा ॥ २० ॥

रजोगुणसे ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है अर्थात् रजोरूप प्रवृत्ति निरोधके जरिये इन्द्रिय निरोधके कारण दुःखकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुष शास्त्रदृष्टिसे विधिपूर्वक इसकी परीक्षा करके संसारमें विचरे ॥ २० ॥

ज्ञानेन्द्रियाणीन्द्रियार्थान्नोपसर्पन्त्यतर्षुलम् ।
ज्ञातैश्च कारणैर्देही न देहं पुनरर्हति ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥ ७२९३ ॥

ज्ञानेन्द्रिय सब इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त होनेपर भी तृष्णारहित पुरुषके निकट नहीं जा सकती। इन्द्रियोंके विषगासक्तिसे रहित होनेपर जीव फिर देह संसर्ग ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २१ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥ २०६ ॥ ७२९३ ॥

: २०७ :

गुरुरुवाच—

अत्रोपायं प्रवक्ष्यामि यथावच्छास्त्रचक्षुषा ।
तद्विज्ञानाचरन्प्राज्ञः प्राप्नुयात्परमां गतिम् ॥ १ ॥

गुरु बोले— हे राजन् ! मैं शास्त्र दर्शनके सहारे यथाक्रमसे इन्द्रियजय मोक्ष विषयका उपाय कहूंगा; उस शास्त्रको जानके प्राज्ञ मनुष्य दम आदिका अनुष्ठान करनेसे परम गतिको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वेषामेव भूतानां पुरुषः श्रेष्ठ उच्यते ।
पुरुषेभ्यो द्विजानाहुर्द्विजेभ्यो मन्त्रवादिनः ॥ २ ॥

सब जीवोंके बीच मनुष्यको श्रेष्ठ कहा जाता है; मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; द्विजोंके बीच मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणको श्रेष्ठ कहते हैं ॥ २ ॥

सर्वभूतविशिष्टास्ते सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ।
ब्राह्मणा वेदतत्त्वज्ञास्तत्त्वार्थगतिनिश्चयाः ॥ ३ ॥

वेद तत्त्वोंके जाननेवाले ब्राह्मण सर्व भूतोंके विशिष्ट, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं; वे यथार्थ वस्तुके निश्चयको जानते हैं, इसीसे वे सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

नेत्रहीनो यथा ह्येकः कृच्छ्राणि लभतेऽध्वनि ।
ज्ञानहीनस्तथा लोके तस्माज्ज्ञानविदोऽधिकाः ॥ ४ ॥

जैसे नेत्रहीन मनुष्य मार्गमें अकेला होनेपर अत्यन्त क्लेश पाता है, वैसेही ज्ञानहीन मनुष्य भी इस संसारमें अनेक दुःख भोगता है, इसलिये ब्रह्मवित् पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

तांस्तानुपासते धर्मान्धर्मकामा यथागमम् ।
न त्वेषामर्थसामान्यमन्तरेण गुणानिमान् ॥ ५ ॥

धर्मकी इच्छा करनेवाले मनुष्य शास्त्रके अनुसार इष्टापूर्त्त आदि धर्मोंकी उपासना किया करते हैं, परन्तु ये लोग इन सब धर्मोंके फलस्वरूप मोक्षाख्य निरतिशय धर्मके अतिरिक्त आगे कहे जानेवाले गुणोंके बिना पुरुषार्थकी प्राप्ति नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

वाग्देहमनसां शौचं क्षमा सत्यं धृतिः स्मृतिः ।
सर्वधर्मेषु धर्मज्ञा ज्ञापयन्ति गुणानिमान् ॥ ६ ॥

धर्मज्ञ लोग प्रवृत्ति-निवृत्ति स्वरूप सब धर्मोंमें ही वाणी, शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति,- इन सबको शुभ गुण कहा करते हैं ॥ ६ ॥

यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ।
परं तत्सर्वभूतेभ्यस्तेन यान्ति परां गतिम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्य जो कि ब्रह्मका स्वरूप कहके शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है, वही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्य उसके पालनसे परम गति पाते हैं ॥ ७ ॥

लिङ्गसंयोगहीनं यच्छरीरस्पर्शवर्जितम् ।
श्रोत्रेण श्रवणं चैव चक्षुषा चैव दर्शनम् ॥ ८ ॥

जो पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दसों इन्द्रिय इस तरह अवयवात्मक लिङ्गशरीरके संयोगसे रहित है, जो शब्द और स्पर्शहीन है, जो कानसे सुनता नहीं, और नेत्रसे देखता नहीं, वही शुद्ध अनुभव स्वरूप परब्रह्म है; निर्विकल्प अवस्थाके सहारे उस परब्रह्मको जान सकते हैं ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिह्वया रसनं यच्च तदेव परिवर्जितम् ।
बुद्ध्या च व्यवसायेन ब्रह्मचर्यमकल्मषम् ॥ ९ ॥

और जिह्वा तथा रसनासे रहित है, जो विषयेन्द्रियोंसे रहित होकर केवल मनमें निवास करता है, उस पापस्पर्शसे रहित सविकल्पक अवस्थाके सहारे जानने योग्य ब्रह्मको श्रवण मनन युक्त बुद्धिसे निश्चय करे; उसकी प्राप्तिके लिये निष्कलंक ब्रह्मचर्यका पालन करे ॥९॥

सम्यग्वृत्तिर्ब्रह्मलोकं प्राप्नुयान्मध्यमः सुरान् ।
द्विजाग्र्यो जायते विद्वान्कन्यसीं वृत्तिमास्थितः ॥ १० ॥

जो मनुष्य इस व्रतका योग्य रीतिसे पालन करता है, वह ब्रह्मलोक पाता है; मध्यम भावसे ब्रह्मचर्य करनेवाला मनुष्य देव–लोकमें गमन करता है और जो कनिष्ठ वृत्तिका अवलम्बन करता है, वह विद्वान् ब्राह्मण होता है ॥ १० ॥

सुदुष्करं ब्रह्मचर्यमुपायं तत्र मे शृणु ।
संप्रदीवृत्तमुदीर्णं च निगृह्णीयाद्द्विजो मनः ॥ ११ ॥

ब्रह्मचर्यका पालन अत्यन्त दुष्कर व्रत है, इसलिये उस विषयमें जो उपाय है, वह मेरे समीप सुनो । ब्रह्मचारी ब्राह्मण उत्पन्न और संवर्द्धित काम, क्रोध युक्त मनका निग्रह करे ॥ ११ ॥

योषितां न कथाः श्राव्या न निरीक्ष्या निरम्बराः ।
कदाचिद्दर्शनादासां दुर्बलानाविशेद्रजः ॥ १२ ॥

स्त्रियोंकी कथाको न सुने; वस्त्रहीन स्त्रियोंकी ओर न देखे; नग्न स्त्रियोंके तनिक भी दर्शनसे अतिथि होनेपर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके अन्तःकरणमें रजोगुण–राग उत्पन्न हुआ करता है ॥१२॥

रागोत्पत्तौ चरेत्कृच्छ्रमह्नस्त्रिः प्रविशेदपः ।
मग्नः स्वप्ने च मनसा त्रिर्जपेदघमर्षणम् ॥ १३ ॥

स्त्रियोंके विषयमें अनुराग उत्पन्न होनेपर कृच्छ्र व्रतका आचरण करे अर्थात् तीन दिन सबेरे, तीन दिन शामको और तीन दिन अयाचित भोजन करे; फिर तीन दिनतक अनाहारी रहे, तीन दिन जलके बीच प्रवेश करे । सपनेमें यदि वीर्य स्खलित हो, तो जलमें डूबके मनही मन तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे ॥ १३ ॥

पाप्मानं निर्दहेदेवमन्तर्भूतं रजोमयम् ।
ज्ञानयुक्तेन मनसा संततेन विचक्षणः ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसी प्रकार ज्ञानयुक्त तथा संयमशील श्रेष्ठ मनके जरिये अन्तर्भूत रजोमय पापमय कामको एकबारही जला दे ॥ १४ ॥

कुणपामेध्यसंयुक्तं यद्वदच्छिद्रबन्धनम् ।
तद्वद्देहगतं विद्यादात्मानं देहबन्धनम् ॥ १५ ॥

जैसे शरीरके भीतर मलवाहिनी नाडियां दृढरूपसे बन्धी हुई हैं, वैसेही शरीरके बीच आत्माको देहबन्धनसे दृढबद्ध जाने ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वातपित्तकफान्रक्तं त्वङ्मांसं स्नायुमस्थि च ।
मज्जां चैव सिराजालैस्तर्पयन्ति रसा नृणाम् ॥ १६ ॥

सब रस नाडियोंके जरिये मनुष्योंके वात, पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी और मज्जायुक्त देहकी तृप्ति करते हैं ॥ १६ ॥

दश विद्याद्धमन्योऽत्र पञ्चेन्द्रियगुणावहाः ।
याभिः सूक्ष्माः प्रतायन्ते धमन्योऽन्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥

इस शरीरमें पञ्च इन्द्रियोंके निज निज विषयोंको— शब्द आदि गुणोंको— ग्रहण करनेवाली दस नाडियां हैं, उनसे दूसरी सहस्रों सूक्ष्म नाडियोंका जो सारे शरीरमें फैली हैं— सम्बन्ध है ॥१७॥

एवमेताः सिरानद्यो रसोदा देहसागरम् ।
तर्पयन्ति यथाकालमापगा इव सागरम् ॥ १८ ॥

जैसे वर्षाकालमें नदियां अपने जलसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही ये सब रसरूपी जलसे युक्त नाडीरूपी नदियां देहसमुद्रको तृप्त किया करती हैं ॥ १८ ॥

मध्ये च हृदयस्यैका सिरा तत्र मनोवहा ।
शुक्रं संकल्पजं नृणां सर्वगात्रैर्विमुञ्चति ॥ १९ ॥

हृदयके बीच एक मनोवहा नामकी नाडी है, वह नाडी मनुष्योंके सर्व शरीरसे काम विषयक संकल्पजनित शुक्रको चलाकर उपस्थकी ओर लाकर बाहर निकाल देती है ॥ १९ ॥

सर्वगात्रप्रतायिन्यस्तस्या ह्यनुगताः सिराः ।
नेत्रयोः प्रतिपद्यन्ते वहन्त्यस्तैजसं गुणम् ॥ २० ॥

सब शरीरमें फैली हुई अन्य नाडियां उस मनोवहा नाडीके अनुगत होकर तैजस-गुणको ढोती हुई दोनों नेत्रोंके निटकवर्त्ती होती हैं ॥ २० ॥

पयस्यन्तर्हितं सर्पिर्यद्वन्निर्मथ्यते खजैः ।
शुक्रं निर्मथ्यते तद्वद्देहसंकल्पजैः खजैः ॥ २१ ॥

जैसे दूधके बीच स्थित मक्खन मथानीसे मथा जाकर अलग किया जाता है; वैसेही देहके संङ्कल्प और इन्द्रियजनित स्त्रियोंके दर्शन तथा स्पर्शनसे शुक्र मथित होकर बाहर आता है ॥ २१ ॥

स्वप्नेऽप्येवं यथाभ्येति मनःसंकल्पजं रजः ।
शुक्रमस्पर्शजं देहात्सृजन्त्यस्य मनोवहा ॥ २२ ॥

जैसे सपनेमें योषित—संग न रहने पर भी मन स्त्रीविषयक संकल्पसे अनुराग लाभ करता है, उसी प्रकार मनोवहा नाडीके जरिये देहसे संकल्पके कारण शुक्र झरने लगता है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महर्षिर्भगवानत्रिर्वेद तच्छुक्रसंभवम् ।
त्रिबीजमिन्द्रदैवत्यं तस्मादिन्द्रियमुच्यते ॥ २३ ॥

भगवान् महर्षि अत्रि उस शुक्रके उत्पत्ति विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अन्नरस, मनोवहा नाडी और संकल्प, ये तीनों शुक्रके कारण बीज हैं, और इन्द्र इस वीर्यका अधिष्ठाता है, इसही निमित्त इसे इन्द्रिय कहते हैं ॥ २३ ॥

ये वै शुक्रगतिं विद्युर्भूतसंकरकारिकाम् ।
विरागा दग्धदोषास्ते नाप्नुयुर्देहसंभवम् ॥ २४ ॥

जो लोग जीवोंके शुक्रके उद्रेकके कारण अनुलोम और प्रतिलोम गमनसे सङ्करकारिणी गतिका विषय विचार करते हैं, वे विचारपूर्वक विराग और वासनाहीन होकर अपने सब दोषोंको भस्म करते हैं; इसलिये वे पुनर्जन्म नहीं पाते ॥ २४ ॥

गुणानां साम्यमागम्य मनसैव मनोवहम् ।
देहकर्म नुदन्प्राणानन्तकाले विमुच्यते ॥ २५ ॥

जो शरीरके निर्वाहके लिये भोजन आदि कर्म किया करता है, वह मनके सहारेही मनोवहा नाडीको संयममें रखकर सुषुम्ना नाडीमार्गसे योगबलसे तीनों गुणोंकी समता लाभ करके अन्तकालमें जीवन परित्याग करके मुक्त होता है ॥ २५ ॥

भवितो मनसो ज्ञानं मन एव प्रतायते ।
ज्योतिष्मद्विरजो दिव्यमत्र सिद्धं महात्मनाम् ॥ २६ ॥

उन महात्माओंके मनमें तत्त्वज्ञानका उदय होता है; क्योंकि उनका शुद्ध हुआ मन प्रकाशमय, निर्मल और दिव्य हो जाता है ॥ २६ ॥

तस्मात्तदविघाताय कर्म कुर्यादकल्मषम् ।
रजस्तमश्च हित्वेह न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥ २७ ॥

इसलिये उस दूषित मनके विनाशके लिये पापरहित निवृत्तिलक्षण धर्मका अनुष्ठान करना उचित है । इस लोकमें रजोगुण और तमोगुणको परित्याग करनेसे मनुष्य तिर्यग् गति नहीं प्राप्त करता ॥ २७ ॥

तरुणाधिगतं ज्ञानं जरादुर्बलतां गतम् ।
परिपक्वबुद्धिः कालेन आदत्ते मानसं बलम् ॥ २८ ॥

तरुण अवस्थामें जो ज्ञान प्राप्त किया हुआ है, वह जरा अवस्थामें निर्बल–क्षीण हो जाता है; तथापि परिपक्व बुद्धिवाला मनुष्य कालक्रमसे मानसिक बल प्राप्त करता है, इस कारण उसका ज्ञान क्षीण नहीं होता ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुदुर्गमिव पन्थानमतीत्य गुणबन्धनम् ।
यदा पश्येत्तदा दोषानतीत्यामृतमश्नुते ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥ ७३२२ ॥

वह परिपक्व बुद्धिवाला मनुष्य दुर्गम मार्गकी भांति देहेन्द्रिय बन्धनको अतिक्रम करके दोष दर्शनके अनुसार उसे परित्याग कर अमृतमय परमात्मापदको भोग किया करता है ॥२९॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ २०७ ॥ ७३२२ ॥

: २०८ :

गुरुरुवाच—

दुरन्तेष्विन्द्रियार्थेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
ये त्वसक्ता महात्मानस्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १ ॥

गुरु बोले— दुःखदायक इन्द्रियविषयोंमें अनुरक्त मनुष्य अवसन्न हुआ करते हैं; और जो सब महात्मा उस विषयमें अनासक्त रहते हैं, वे परम गति पाते हैं ॥ १ ॥

जन्ममृत्युजरादुःखैर्व्याधिभिर्मनसः क्लमैः ।
दृष्ट्वेमं संततं लोकं घटेन्मोक्षाय बुद्धिमान् ॥ २ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य सब जगत्को जन्म, मृत्यु और जरावस्थाके दुःख, अनेक प्रकारके रोग तथा मानसिक चिन्ताओंसे युक्त देखकर मोक्षसाधनमें यत्नवान् होवे ॥ २ ॥

वाङ्मनोभ्यां शरीरेण शुचिः स्यादनहंकृतः ।
प्रशान्तो ज्ञानवान्भिक्षुर्निरपेक्षश्चरेत्सुखम् ॥ ३ ॥

ज्ञानवान् मनुष्य मन, वचन और शरीरसे पवित्र रहके अहंकाररहित, प्रशान्त और निरपेक्ष होकर भिक्षा वृत्तिसे निर्वाह करते हुए अनायासही विचरे ॥ ३ ॥

अथ वा मनसः सङ्गं पश्येद्भूतानुकम्पया ।
अत्राप्युपेक्षां कुर्वीत ज्ञात्वा कर्मफलं जगत् ॥ ४ ॥

जीवोंके ऊपर सदा करते रहनेसे उनके मनमें आसक्ति उत्पन्न होती है; यह देखकर और सब जगत् अपने कर्मोंका फल भोगता है यह समझकर, उनके प्रति उपेक्षा करे ॥ ४ ॥

यत्कृतं प्राक्शुभं कर्म पापं वा तदुपाश्नुते ।
तस्माच्छुभानि कर्माणि कुर्याद्बाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ ५ ॥

पहले जो कुछ पुण्य वा पापकर्म किया जाता है, उसकाही फलभोग करना पडता है; इसलिये मन, बुद्धि और कर्मसे सदा शुभ कर्मोंको सिद्ध करे ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
क्षमा चैवाप्रमादश्च यस्यैते स सुखी भवेत् ॥ ६ ॥

अहिंसा, सत्यवचन, सर्व भूतोंके विषयमें सरल व्यवहार, क्षमा और सावधानता, ये सब गुण जिसमें विद्यमान् हैं, वही सुखी होता है ॥ ६ ॥

यश्चैनं परमं धर्मं सर्वभूतसुखावहम् ।
दुःखान्निःसरणं वेद स तत्त्वज्ञः सुखी भवेत् ॥ ७ ॥

जो सब प्राणियोंके सुखदायक इस अहिंसा आदि परम धर्मको दुःखरहित जानता है, वही तत्त्वज्ञ पुरुष ही सुखी होता है ॥ ७ ॥

तस्मात्समाहितं बुद्धया मनो भूतेषु धारयेत् ।
नापध्यायेन्न स्पृहयेन्नाबद्धं चिन्तयेदसत् ॥ ८ ॥

इसलिये शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिके जरिये मनको स्थिर करके सर्वभूतोंमें धारणा करे; दूसरेके अनिष्टका विचार न करे, अपने अयोग्य वस्तुकी अभिलाषा न करे, नष्ट वा भावी स्त्रीपुत्रादिके लिये चिन्ता न करे ॥ ८ ॥

अवाग्योगप्रयोगेण मनोज्ञं संप्रवर्तते ।
विवक्षता वा सद्वाक्यं धर्मं सूक्ष्ममवेक्षता ।
सत्यां वाचमहिंस्रां च वदेदनपवादिनीम् ॥ ९ ॥

वेदान्त वाक्य सुनने और योगके सहारे वही मन उस समय आत्मस्वरूपके निकटवर्ती होगा, अर्थात् उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी । सत्य वचन कहनेकी अभिलाषा करनेवाला सूक्ष्म धर्मदर्शी पुरुष हिंसा तथा परनिंदारहित सत्य वचन कहे ॥ ९ ॥

कल्कापेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ।
ईदृगल्पं च वक्तव्यमविक्षिप्तेन चेतसा ॥ १० ॥

सावधान चित्तवाले पुरुषको शठता और निष्ठुरता त्यागके, अनृशंस वा पिशुनतारहित अल्प वचन कहना ही उचित है ॥ १० ॥

वाक्प्रबुद्धो हि संरागाद्विरागाद्व्याहरेद्यदि ।
बुद्धया ह्यनिगृहीतेन मनसा कर्म तामसम् ।
रजोभूतैर्हि करणैः कर्मणा प्रतिपद्यते ॥ ११ ॥

सब ऐहिक विषय वचनसे ही बद्ध हैं; प्रीतिके तथा वैराग्यके कारण यदि कुछ कहना पडे, तो प्रसन्न मन और बुद्धिके जरिये अपने हिंसा आदिक तामस कर्मोंको प्रकाश करे, क्योंकि पुण्य वा पाप निज मुखसे प्रकाशित करनेसे नष्ट हुआ करते हैं। राजस गुणसे युक्त इन्द्रियोंसे ही मनुष्य विषय भोगोंमें प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥

× CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स दुःखं प्राप्य लोकेऽस्मिन्नरकायोपपद्यते ।
तस्मान्मनोवाक्शरीरैराचरेद्धैर्यमात्मनः ॥ १२ ॥

इस कारण वह इस लोकमें महादुःख पाकर अन्त समय नरकमें गमन करता है; इसलिये मन, वचन और शरीरसे जिस प्रकार अपनेको धीरज प्राप्त हो वैसा ही आचरण करे ॥१२॥

प्रकीर्णमेषभारो हि यद्वद्धार्येत दस्युभिः ।
प्रतिलोमां दिशं बुद्ध्वा संसारमबुधास्तथा ॥ १३ ॥

जैसे चुराये हुए मांसभार ढोनेवाले चोर जानेके मार्गोंको राजपुरुषोंके जरिये रुकनेकी आशङ्कासे मांसके बोझेको त्यागके अपनी अभीष्ट प्रतिकूल दिशामें गमन करके बन्धनसे अपनी रक्षा करते हैं; वैसेही अज्ञानी मनुष्य सांसारिक कर्मभार ढोते हुए कामादिके सम्मुख होकर संसार भयसे कामादिको त्यागनेपर बन्धनसे छूटते हैं ॥ १३ ॥

तानेव च यथा दस्यून्क्षिप्त्वा गच्छेच्छिवां दिशम् ।
तथा रजस्तमःकर्माण्युत्सृज्य प्राप्नुयात्सुखम् ॥ १४ ॥

जैसे चोर चोरीकी वस्तुओंको परित्याग करके बाधारहित दिशामें गमन करता है, वैसे ही मनुष्य रजोगुण और तमोगुणके सब कार्योंको त्यागके सुखलाभ किया करता है ॥ १४ ॥

निःसंदिग्धमनीहो वै मुक्तः सर्वपरिग्रहैः ।
विविक्तचारी लघ्वाशी तपस्वी नियतेन्द्रियः ॥ १५ ॥

जो चेष्टारहित, सर्वसङ्गविमुक्त, निर्जन स्थानमें वास करनेवाला, थोडा भोजन करनेवाला, तपस्वी और संयतेन्द्रिय है ॥ १५ ॥

ज्ञानदग्धपरिक्लेशः प्रयोगरतिरात्मवान् ।
निष्प्रचारेण मनसा परं तदधिगच्छति ॥ १६ ॥

ज्ञानसे जिसके सब क्लेश भस्म होगये हैं, जो योगाङ्गोंके अनुष्ठान विषयमें अनुरक्त है, वही बुद्धिमान् मनुष्य चित्तवृत्तिनिरोधके जरिये अवश्यही परम पद पाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

धृतिमानात्मवान्बुद्धिं निगृह्णीयादसंशयम् ।
मनो बुद्ध्या निगृह्णीयाद्विषयान्मनसात्मनः ॥ १७ ॥

धैर्यशाली बुद्धिमान् मनुष्य "मैं ब्रह्म हूं" इस वचनके निमित्त बुद्धिवृत्तिको निःसन्देह रूपसे निग्रह करे; बुद्धिके जरिये संकल्पात्मक मन और मनसे मनरूपी शब्दादि विषयोंको निग्रह करनेमें यत्नवान् होवे ॥ १७ ॥

निगृहीतेन्द्रियस्यास्य कुर्वाणस्य मनो वशे ।
देवतास्ताः प्रकाशन्ते हृष्टा यान्ति तमीश्वरम् ॥ १८ ॥

और जो इन्द्रियोंको निगृहीत तथा मनको वशमें करता है, तब उसकी इन्द्रियोंके अधिष्ठित देवता उसके समीप प्रकाशित होने लगते हैं और आनन्दित होके उस योगीश्वरकी ओर प्रवृत्त होते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताभिः संसक्तमनसो ब्रह्मवत्संप्रकाशते ।
एतैश्चापगतैः सर्वैर्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १९ ॥

इन सब इन्द्रियोंके सङ्ग जिसका मन संयुक्त हुआ है, उसके समीप वह परब्रह्मके समान प्रकाशित होता है; और उन सब इन्द्रियोंके अपगत होनेपर सत्त्वमात्रमें स्थित आत्मा ब्रह्म-रूपसे कल्पित हुआ करता है ॥ १९ ॥

अथ वा न प्रवर्तेत योगतन्त्रैरुपक्रमेत् ।
येन तन्त्रमयं तन्त्रं वृत्तिः स्यात्तत्तदाचरेत् ॥ २० ॥

अथवा योगी यदि योगैश्वर्यसे आत्माको न जान सके, तो चित्तवृत्ति–निरोध आदि मुख्य योगतन्त्रोंके सहारे उसे जाननेका उपाय करे । योगका अनुष्ठान करते करते जिस प्रकार चित्तवृत्ति शुद्ध होवे, उसका ही आचरण करना उचित है ॥ २० ॥

कणपिण्याककुल्माषशाकयावकसक्तवः ।
तथा मूलफलं भैक्षं पर्यायेणोपयोजयेत् ॥ २१ ॥

योगी पुरुष केवल योगैश्वर्यको ही उपजीव्य न करके पर्यायक्रमसे भिक्षासे प्राप्त हुए चावलोंके किनके, तिलकल्क, पक्व माष, अनेक तरहके शाक, यवधानका चूर्ण, सत्तू और फलमूल आदि भोजन करके जीवन धारण करे ॥ २१ ॥

आहारं नियतं चैव देशे काले च सात्त्विकम् ।
तत्परीक्ष्यानुवर्तेत यत्प्रवृत्त्यनुवर्तकम् ॥ २२ ॥

देश और कालके अनुसार उसमें भी जैसे सात्त्विक आहार ग्रहण नियमकी प्रवृत्ति रखे; उस आहारकी परीक्षा करके उसमें जो योगसिद्धिके लिये अनुकूल हो तो उसका अनुवर्त्तन करना योग्य है ॥ २२ ॥

प्रवृत्तं नोपरुन्धेत शनैरग्निमिवेन्धयेत् ।
ज्ञानेन्धितं ततो ज्ञानकर्मवत्संप्रकाशते ॥ २३ ॥

प्रारब्ध कर्मको अन्तरायके जरिये उपरोध करना उचित नहीं; अग्निकी भांति धीरे धीरे ज्ञानको उद्दीपन करना चाहिये; तोही ज्ञानसे प्रदीप्त ज्ञानस्वरूप परब्रह्म सूर्यकी तरह प्रकाशित होता है ॥ २३ ॥

ज्ञानाधिष्ठानमज्ञानं त्रीँल्लोकानधितिष्ठति ।
विज्ञानानुगतं ज्ञानमज्ञानादपकृष्यते ॥ २४ ॥

अज्ञानका अधिष्ठान ज्ञान ही है; वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों लोकोंमें स्थित रहता है; और बुद्धिके अनुगत ज्ञान अज्ञानसे अर्थात् आत्मभिन्न आत्मरूप विपर्ययसे आवृत हुआ करता है,– उसका ऱ्हास होता है ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृथक्त्वात्संप्रयोगाच्च नासूयुर्वेद शाश्वतम् ।
स तयोरपवर्गज्ञो वीतरागो विमुच्यते ॥ २५ ॥

जीवात्मा और परमात्माकी पृथक्ता और एकताका प्रतिपादन करनेवाले वचन शास्त्रोंमें मिलते हैं; इस परस्पर विरोधसे दूषित न होकर सनातन ज्ञानको प्राप्त करे; जो इन दोनोंको समझकर मोक्षके तत्त्वको जानता है वह निस्पृह पुरुष मुक्त होता है ॥ २५ ॥

वयोतीतो जरामृत्यू जित्वा ब्रह्म सनातनम् ।
अमृतं तदवाप्नोति यत्तदक्षरमव्ययम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ७३४८ ॥

वह कालविजयी मनुष्य जरा—मृत्युको जीतके अव्यय, अविनाशी, अमृतस्वरूप सनातन ब्रह्मको जान सकता है ॥ २६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ २०८ ॥ ७३४८ ॥

: २०९ :

गुरुरुवाच—

निष्कल्मषं ब्रह्मचर्यमिच्छता चरितुं सदा ।
निद्रा सर्वात्मना त्याज्या स्वप्नदोषानवेक्षता ॥ १ ॥

गुरु बोले— जो निष्कलंक ब्रह्मचर्य आचरण करनेकी सदा अभिलाष किया करता है, उस स्वप्नदोषदर्शी योगीको सब प्रकारकी निद्रा परित्याग करना योग्य है ॥ १ ॥

स्वप्ने हि रजसा देही तमसा चाभिभूयते ।
देहान्तरमिवापन्नश्चरत्यपगतस्मृतिः ॥ २ ॥

स्वप्नकालमें जीव रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होता है, तथा कामनायुक्त तथा नष्ट स्मृति होकर देहान्तर प्राप्त होनेकी तरह आचरण किया करता है ॥ २ ॥

ज्ञानाभ्यासाज्जागरतो जिज्ञासार्थमनन्तरम् ।
विज्ञानाभिनिवेशात्तु जागरत्यनिशं सदा ॥ ३ ॥

ज्ञानाभ्यासनिबन्धन जाननेके लिये पहले वह जागता रहता है । अनन्तर विज्ञानमें अभिनिवेशके कारण योगी पुरुष सदा जागृत रहता है ॥ ३ ॥

अत्राह को न्वयं भावः स्वप्ने विषयवानिव ।
प्रलीनैरिन्द्रियैर्देही वर्तते देहवानिव ॥ ४ ॥

इस विषयमें कोई कोई यह वितर्क किया करते हैं, कि स्वप्नकालमें जीव यथार्थमें विषययुक्त न होकर भी जो विषयविशिष्टकी तरह दीखता है, और प्रलीन इन्द्रियोंके सहित देहवान्‌की भांति वर्त्तमान रहता है, इसका क्या भाव है ? ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्रोच्यते यथा ह्येतद्वेद योगेश्वरो हरिः ।
तथैतदुपपन्नार्थं वर्णयन्ति महर्षयः ॥ ५ ॥

इस विषयके सिद्धान्तपक्षमें प्राचीन लोग कहा करते हैं, योगेश्वर हरि ही स्वप्नके यथार्थ तत्वको जानते हैं, और वह जिस प्रकार जानते हैं, उसेही युक्तिसंगत मानके महर्षि लोग वर्णन किया करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणां श्रमात्स्वप्नमाहुः सर्वगतं बुधाः ।
मनसस्तु प्रलीनत्वात्तत्तदाहुर्निदर्शनम् ॥ ६ ॥

पण्डित लोग कहते हैं, जाग्रत अवस्थामें विषयोंके ग्रहण करते इन्द्रियोंके श्रमसे सर्वप्राणि प्रसिद्ध स्वप्न हुआ करता है; स्वप्नकालमें इन्द्रियोंको उपरति होनेपर भी संकल्पस्वभाव मनका विश्राम नहीं होता, इसलिये स्वप्न विषयमें वही प्रसिद्ध प्रमाण है, यह फिर प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

कार्यव्यासक्तमनसः संकल्पो जाग्रतो ह्यपि ।
यद्वन्मनोरथैश्वर्यं स्वप्ने तद्वन्मनोगतम् ॥ ७ ॥

जाग्रत् अवस्थामें कार्योंमें आसक्त चित्तवाले मनुष्योंका जैसा संकल्प होता है, वैसाही स्वप्नकालमें मनोगत मनोरथ ऐश्वर्य भोग हुआ करता है, इसलिये मनोरथवृत्तिकी तरह स्वप्नवृत्ति भी शरीरका संकल्पमात्र है, तब जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके जरिये विक्षेपके कारण पूर्ण रूपसे विषयज्ञान नहीं होता, स्वप्नमें उसके अभावविशेष रूपसे विषय ज्ञान हुआ करता है, इसमें इतनाही विशेष है ॥ ७ ॥

संसाराणामसंख्यानां कामात्मा तदवाप्नुयात् ।
मनस्यन्तर्हितं सर्वं वेद सोत्तमपूरुषः ॥ ८ ॥

पूर्वके अनन्त जन्मोंके संस्कारोंसे विषयासक्त चित्तवाला पुरुष उस स्वप्न आदि ऐश्वर्योंको भोग करता है और वह उत्तम पुरुष मनमें अन्तर्हित सब विषयोंको जानकर प्रकाशित किया करता है ॥ ८ ॥

गुणानामपि यद्यत्तत्कर्म जानात्युपस्थितम् ।
तत्तच्छंसन्ति भूतानि मनो यद्भावितं यथा ॥ ९ ॥

सत्व, रज और तमोगुणोंमें जो गुण पूर्व कर्मके जरिये उपस्थित होता है, वही गुण कर्मसे संस्कृत मनको योषिद्गणोंके आकार आदि स्वप्नमें नियुक्त करता है ॥ ९ ॥

ततस्तमुपवर्तन्ते गुणा राजसतामसाः ।
सात्त्विको वा यथायोगमानन्तर्यफलोदयः ॥ १० ॥

फिर रूप दर्शनके अनन्तरही जिस प्रकार सुख आदिके अनुभव होते हैं, उसहीके अनुसार राजस, तामस और समस्त सात्विकभाव उस पुरुषके निकट उपस्थित हुआ करते हैं ॥१०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः पश्यत्यसंबद्धान्वातपित्तकफोत्तरान् ।
रजस्तमोभवैर्भावैस्तदप्याहुर्दुरन्वयम् ॥ ११ ॥

अनन्तर पुरुष अज्ञानसे राजस और तामस भावके जरिये वात, पित्त और कफ-प्रधान शरीरोंका दर्शन करता है; पूर्व वासनाकी प्रबलताके कारण, वह देहदर्शन, पुरुषके विषयमें योगके अतिरिक्त अपरिहार्य है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं ॥ ११ ॥

प्रसन्नैरिन्द्रियैर्यद्यत्संकल्पयति मानसम् ।
तत्तत्स्वप्नेऽप्युपरते मनोदृष्टिर्निरीक्षते ॥ १२ ॥

जाग्रत अवस्थामें मनुष्यका मन प्रसन्न इन्द्रियोंके सहित जिन जिन विषयोंका सङ्कल्प करता है, स्वप्न समय उपस्थित होनेपर वह मनोदृष्टि होकर उन्हीं विषयोंको पूर्ण होता देखा करता है ॥ १२ ॥

व्यापकं सर्वभूतेषु वर्ततेऽप्रतिघं मनः ।
मनस्यन्तर्हितं द्वारं देहमास्थाय मानसम् ॥ १३ ॥

मन उपादानके कारण सर्वभूतोंमें व्यापक और प्रतिघातरहित होकर वर्त्तमान् है; स्वप्न दर्शनका द्वारभूत स्थूलदेह सुषुप्ति अवस्थामें मनमें अन्तर्हित होता है ॥ १३ ॥

यत्तत्सदसदव्यक्तं स्वपित्यस्मिन्निदर्शनम् ।
सर्वभूतात्मभूतस्थं तदध्यात्मगुणं विदुः ॥ १४ ॥

सदसदात्मक साक्षी स्वरूप मन उसही शरीरको अवलम्बन करके उसहीमें सोता है, और आत्मामें जाके प्रवेश करता है, सर्वभूतोंका आत्मभूत अहंकार आत्मामें प्रतिबिंब रूपसे निवास करता है, इसलिये पण्डित लोग आत्माको अहंकार गुणसे अस्पृष्ट समझते हैं; परन्तु सुषुप्ति-कालमें साक्षी चैतन्यके शुद्ध अवस्थामें निवास करनेसे अहंकार आदि सब लयको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

लिप्सेत मनसा यश्च संकल्पादैश्वरं गुणम् ।
आत्मप्रभावात्तं विद्यात्सर्वा ह्यात्मनि देवताः ॥ १५ ॥

मनके सहारे सङ्कल्पसे जो योगी ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि ऐहिक गुणोंके अन्यतमकी अभिलाषा करता है, वह चित्तप्रसादजनित शुद्ध मनको वैसाही जाने, मनमें ही आकाश आदि सब देवता निवास करते हैं ॥ १५ ॥

एवं हि तपसा युक्तमर्कवत्तमसः परम् ।
त्रैलोक्यप्रकृतिर्देही तमसा तं महेश्वरम् ॥ १६ ॥

इसही प्रकार विषय आदिकी आलोचनारूपी तपस्यायुक्त मन अज्ञान अन्धकारसे ऊपर उठकरके सूर्यकी तरह ज्ञानयुक्त प्रकाशसे प्रकाशित होता है; देहधारी जीव त्रैलोक्य प्रकृतिका कारण ब्रह्मरूप और वह जीव ही कारणीभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर महेश्वर अर्थात् शुद्ध ब्रह्म भूत है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda-Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपो ह्यधिष्ठितं देवैस्तपोघ्नमसुरैस्तमः ।
एतद्देवासुरैर्गुप्तं तदाहुर्ज्ञानलक्षणम् ॥ १७ ॥

देवता लोग अग्निहोत्र आदि तपस्याके अधिष्ठान और असुर लोग तपोघ्न अन्धकार अर्थात् दम्भ दर्प आदिके अवलम्बन हैं। रज और तमोमय देवासुरोंके निमित्त प्रजापतिने इस ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको गुप्त कर रखा है। तत्त्वज्ञ लोग इसे ज्ञानस्वरूप कहते हैं ॥ १७ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति देवासुरगुणान्विदुः ।
सत्त्वं देवगुणं विद्यादितरावासुरौ गुणौ ॥ १८ ॥

पण्डित लोग कहा करते हैं, सत्त्व, रज और तमोगुण देवता तथा असुरोमें विद्यमान हैं; उनमेंसे सत्वको देवगुण और रज–तमको असुरोंके गुण जानना चाहिये ॥ १८ ॥

ब्रह्म तत्परमं वेद्यममृतं ज्योतिरक्षरम् ।
ये विदुर्भावितात्मानस्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १९ ॥

जो सब पवित्र चित्तवाले मनुष्य सात्विक और असात्विक भावोंसे श्रेष्ठ, ज्ञानस्वरूप, अमृत-स्वरूप, स्वप्रकाश और सर्वव्यापी परब्रह्मको जानते हैं; वे परम गति पाते हैं ॥ १९ ॥

हेतुमच्छक्यमाख्यातुमेतावज्ज्ञानचक्षुषा ।
प्रत्याहारेण वा शक्यमव्यक्तं ब्रह्म वेदितुम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ७३६८ ॥

तत्वदर्शी पुरुष ईश्वर सगुण वा निर्गुण है, इसे ही युक्तियुक्त रूपसे कह सकते हैं और सब विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अक्षर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होते हैं ॥ २० ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ नवां अध्याय समाप्त ॥ २०९ ॥ ७३६८ ॥

: २१० :

गुरुरुवाच—

न स वेद परं धर्मं यो न वेद चतुष्टयम् ।
व्यक्ताव्यक्ते च यत्तत्त्वं संप्राप्तं परमर्षिणा ॥ १ ॥

गुरु बोले– परम ऋषि नारायणके जरिये व्यक्त और अव्यक्त भावसे जिसका तत्व वर्णित हुआ है, जो मनुष्य स्वप्न, सुषुप्ति और सगुण–निर्गुण ब्रह्मधर्मभावको नहीं जानता, वह उस परब्रह्मको नहीं जान सकता ॥ १ ॥

व्यक्तं मृत्युमुखं विद्यादव्यक्तममृतं पदम् ।
प्रवृत्तिलक्षणं धर्ममृषिर्नारायणोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

जन्म ग्रहण करके मृत्युके मुखमें पडनाही व्यक्त है और अमृतमोक्ष पदको अव्यक्त जानना चाहिये; परम ऋषि नारायणने यह कहा है, कि देहेन्द्रिय अहङ्कारादिका निवृत्तिलक्षण धर्म ही अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्रैवावस्थितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
निवृत्तिलक्षणं धर्ममव्यक्तं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ३ ॥

उस ब्रह्ममें स्थावरजङ्गमात्मक सब जगत् स्थित है, निवृत्तिरूप धर्म ही अव्यक्त सनातन ब्रह्म स्वरूप है ॥ ३ ॥

प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं प्रजापतिरथाब्रवीत् ।
प्रवृत्तिः पुनरावृत्तिर्निवृत्तिः परमा गतिः ॥ ४ ॥

प्रजापतिने प्रवृत्तिलक्षण धर्मका विषय कहा है, पुनरावृत्तिका नाम प्रवृत्ति और परम गतिको निवृत्ति कहते हैं ॥ ४ ॥

तां गतिं परमामेति निवृत्तिपरमो मुनिः ।
ज्ञानतत्त्वपरो नित्यं शुभाशुभनिदर्शकः ॥ ५ ॥

निवृत्तिपरायण मननशील मनुष्य उस ही परम गतिको पाता है; जो मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करता है, वह सदा आत्मतत्व विचारमें अनुरक्त होवे ॥५॥

तदेवमेतौ विज्ञेयावव्यक्तपुरुषावुभौ ।
अव्यक्तपुरुषाभ्यां तु यत्स्यादन्यन्महत्तरम् ॥ ६ ॥

वक्ष्यमाण रीतिसे अव्यक्त प्रकृति और पुरुष इन दोनोंका ज्ञान प्राप्त करे; फिर प्रकृति और पुरुषसे श्रेष्ठ अत्यंत महान् ईश्वर है ॥ ६ ॥

तं विशेषमवेक्षेत विशेषेण विचक्षणः ।
अनाद्यन्तावुभावेतावलिङ्गौ चाप्युभावपि ॥ ७ ॥

बुद्धिमान् पुरुष विशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखे, उसका ज्ञान प्राप्त करे, इस प्रकृति और पुरुषकी आदि और अन्त नहीं है; तथा इन दोनों ही अलिङ्ग निराकार हैं ॥ ७ ॥

उभौ नित्यौ सूक्ष्मतरौ महद्भ्यश्च महत्तरौ ।
सामान्यमेतदुभयोरेवं ह्यन्यद्विशेषणम् ॥ ८ ॥

ये दोनों ही नित्य, अत्यंत सूक्ष्म और महत्से भी महत् हैं; दोनोंके इस ही प्रकार समानरूप कहे गये; अब इनका वैधर्म्य—जो अन्तरका विषय है, वह कहता हूं ॥ ८ ॥

प्रकृत्या सर्गधर्मिण्या तथा त्रिविधसत्त्वया ।
विपरीतमतो विद्यात्क्षेत्रज्ञस्य च लक्षणम् ॥ ९ ॥

प्रकृति तीन प्रकारकी—त्रिगुणात्मिका है; ब्रह्मकी निकटतासे सृष्टि करना उसका धर्म है; परंतु क्षेत्रज्ञको प्रकृतिसे सदा विपरीत जानना चाहिये ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रकृतेश्च विकाराणां द्रष्टारमगुणान्वितम् ।
अग्राह्यौ पुरुषावेतावलिङ्गत्वादसंहितौ ॥ १० ॥

वह स्वयं निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि विकारोंके कार्योंको देखता है; पर स्वयं दृश्य नहीं है । ये दोनों प्रकृति और पुरुष इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं; दोनों अकार रहित और परस्पर विलक्षण हैं ॥ १० ॥

संयोगलक्षणोत्पत्तिः कर्मजा गृह्यते यया ।
करणैः कर्मनिर्वृत्तैः कर्ता यद्यद्विचेष्टते ॥
कीर्त्यते शब्दसंज्ञाभिः कोऽहमेषोऽप्यसाविति ॥ ११ ॥

प्रकृति और पुरुषके संयोगसे ही जगत्की उत्पत्ति होती है और वह कर्मसे ही जानी जाती है । जीव इन्द्रियोंद्वारा कर्म करता है; और वह जिन जिन कार्योंको करता है, उनका कर्ता कहलाता है; कौन, मैं, यह और वह– इन शब्दोंसे– संज्ञाओंसे उसका वर्णन होता है ॥११॥

उष्णीषवान्यथा वस्त्रैस्त्रिभिर्भवति संवृतः ।
संवृतोऽयं तथा देही सत्त्वराजसतामसैः ॥ १२ ॥

जैसे पगडी बांधनेवाला पुरुष तीनों– पगडी, ऊर्ध्ववस्त्र, अधोवस्त्र– वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही वह देही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है ॥१२॥

तस्माच्चतुष्टयं वेद्यमेतैर्हेतुभिराचितम् ।
यथासंज्ञो ह्ययं सम्यगन्तकाले न मुह्यति ॥ १३ ॥

इसलिये पहले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जडता, असंहतत्व और कर्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषके साधर्म्य, वैधर्म्य, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्य, वैधर्म्य, इन चारोंको जानना उचित है । जो इन्हें उत्तम रीतिसे जानता है वह मृत्युके समय मोहित नहीं होता है ॥ १३ ॥

श्रियं दिव्यामभिप्रेप्सुर्ब्रह्म वाङ्मनसा शुचिः ।
शारीरैर्नियमैरुग्रैश्चरेन्निष्कल्मषं तपः ॥ १४ ॥

जो हृदयाकाशमें स्थित दिव्य ब्राह्मी श्रीकी कामना करता है, वह अन्तर्बाह्यमें पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वरप्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम तप–योगका आचरण करे ॥ १४ ॥

त्रैलोक्यं तपसा व्याप्तमन्तर्भूतेन भास्वता ।
सूर्यश्च चन्द्रमाश्चैव भासतस्तपसा दिवि ॥ १५ ॥

प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं; योगबलके जरिये आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रतापस्तपसो ज्ञानं लोके संशब्दितं तपः ।
रजस्तमोघ्नं यत्कर्म तपसस्तत्स्वलक्षणम् ॥ १६ ॥

योग तपका विकासही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें विख्यात है; कि योगी लोग सनातन भगवान्‌का दर्शन करते हैं । जो कर्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही तपस्याका असाधारण लक्षण है ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।
वाङ्मनोनियमः साम्यं मानसं तप उच्यते ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्य और अहिंसाको शारीरिक तप कहा जाता है, और वचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है ॥ १७ ॥

विधिज्ञेभ्यो द्विजातिभ्यो ग्राह्यमन्नं विशिष्यते ।
आहारनियमेनास्य पाप्मा नश्यति राजसः ॥ १८ ॥

विधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके विषयमें श्रेष्ठ है; आहारनियमके अनुसार भोजन करनेसे रजोगुणसे निर्मित पाप शान्त हो जाता है ॥ १८ ॥

वैमनस्यं च विषये यान्त्यस्य करणानि च ।
तस्मात्तन्मात्रमाद्याद्यावदत्र प्रयोजनम् ॥ १९ ॥

युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रिया शब्द आदि विषयोंमें वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जीवन रक्षाके लिये जितना आहारका प्रयोजन हो, उतनाही अन्न ग्रहण करना चाहिये ॥ १९ ॥

अन्तकाले वयोत्कर्षाच्छनैः कुर्यादनातुरः ।
एवं युक्तेन मनसा ज्ञानं यदुपपद्यते ॥ २० ॥

इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान प्राप्त होता है, अन्तकालतक अत्यन्त यत्नके सहित उसही ज्ञानको सिद्ध करे; धैर्य नहीं छोडना चाहिये ॥ २० ॥

रजसा चाप्ययं देही देहवाञ्शब्दवच्चरेत् ।
कार्यैरव्याहतमतिर्वैराग्यात्प्रकृतौ स्थितः ।
आ देहादप्रमादाच्च देहान्ताद्विप्रमुच्यते ॥ २१ ॥

यह जीव रजोगुणसे युक्त होनेपर भी बाह्येन्द्रिय प्रवृत्तिसे रहित और समाधिसमयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोगसे भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

हेतुयुक्तः सदोत्सर्गो भूतानां प्रलयस्तथा ।
परप्रत्ययसर्गे तु नियतं नातिवर्तते ॥ २२ ॥

देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके सबब जीव तत्क्षणही मुक्त होता है; मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म–मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कारविषयमें धर्माधर्म अनुसरण नहीं करते ॥२२॥

भवान्तप्रभवप्रज्ञा आसते ये विपर्ययम् ।
धृत्या देहान्धारयन्तो बुद्धिसंक्षिप्तमानसाः ।
स्थानेभ्यो ध्वंसमानाश्च सूक्ष्मत्वात्तानुपासते ॥ २३ ॥

जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और उदयकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके स्खलनके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके जरिये मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रियगोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनकी आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं ॥ २३ ॥

यथागमं च तत्सर्वं बुद्ध्या तनैव बुद्ध्यते ।
देहान्तं कश्चिदन्वास्ते भाविनात्मा निराश्रयः ।
युक्तो धारणया कश्चित्सत्तां केचिदुपासते ॥ २४ ॥

योगशोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेदवचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके जरिये जानके शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे उसमें एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म कृष्ण, विष्णु, आदिके सहित तादाम्य–सम्बन्धसे अथवा सेव्यसेवकभावसे निबद्ध आत्माकी उपासना करते हैं ॥ २४ ॥

अभ्यस्यन्ति परं देवं विद्युत्संशब्दिताक्षरम् ।
अन्तकाले ह्युपासन्नास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ २५ ॥

दूसरे लोग उपनिषत्प्रसिद्ध बिजलीके प्रकाशकी तरह सकृत्प्रकाशित परिणामहीन निर्गुण परब्रह्मका बार बार अनुभव किया करते हैं। अविमुक्त उपासनासे जिनके पाप जल गये हैं, वे अन्तकालमें ब्रह्मत्व लाभ करते हैं ॥ २५ ॥

सर्व एते महात्मानो गच्छन्ति परमां गतिम् ।
सूक्ष्मं विशेषणं तेषामवेक्षेच्छास्त्रचक्षुषा ॥ २६ ॥

और वेही सब महानुभाव उपासक लोग परम गति पाते हैं। सोपाधिक ब्रह्मके व्यावर्तक विशेषणको शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

देहं तु परमं विद्याद्विमुक्तमपरिग्रहम् ।
अन्तरिक्षादन्यतरं धारणासक्तमानसम् ॥ २७ ॥

अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सर्व आसक्तिसे विमुक्त जाने । धारणासक्त मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे ॥ २७ ॥

मर्त्यलोकाद्विमुच्यन्ते विद्यासंयुक्तमानसाः ।
ब्रह्मभूता विरजसस्ततो यान्ति परां गतिम् ॥ २८ ॥

जिन लोगोंका चित्त परब्रह्म स्वरूपमें संयुक्त हुआ है, वे मर्त्य लोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं ॥ २८ ॥

कषायवर्जितं ज्ञानं येषामुत्पद्यतेऽचलम् ।
ते यान्ति परामाल्लँोकान्विशुध्यन्तो यथाबलम् ॥ २९ ॥

जिन्हें, रागादि दोषोंसे रहित अचल अर्थात् दृढ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं और वैराग्य बलके अनुसार मुक्त–शुद्ध होते हैं ॥ २९ ॥

भगवन्तमजं दिव्यं विष्णुमव्यक्तसंज्ञितम् ।
भावेन यान्ति शुद्धा ये ज्ञानतृप्ता निराशिषः ॥ ३० ॥

आशाहीन, ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्त-संज्ञक, दिव्यधाम–स्थित सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी शरण लेकर उसके निकटवर्ती हुआ करते हैं ॥ ३० ॥

ज्ञात्वात्मस्थं हरिं चैव निवर्तन्ते न तेऽव्ययाः ।
प्राप्य तत्परमं स्थानं मोदन्तेऽक्षरमव्ययम् ॥ ३१ ॥

वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार इस संसारमें नहीं आते; वे लोग उस अव्यय, अविकारी परमधामको पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते हैं ॥ ३१ ॥

एतावदेतद्विज्ञानमेतदस्ति च नास्ति च ।
तृष्णाबद्धं जगत्सर्वं चक्रवत्परिवर्तते ॥ ३२ ॥

रसरीमें सर्पभ्रमकी तरह यह जगत् है वा नहीं इत्यादि रूपसे अनिर्वचनीय जगत्का मिथ्यापन जानना उचित है; परन्तु समस्त जगत् तृष्णामें बद्ध होकर चक्रकी तरह परिवर्तित होता है ॥ ३२ ॥

बिसतन्तुर्यथैवायमन्तस्थः सर्वतो बिसे ।
तृष्णातन्तुरनाद्यन्तस्तथा देहगतः सदा ॥ ३३ ॥

जैसे मृणालसूत्र कमलके डांडीके बीच सर्वत्र वर्त्तमान रहता है, वैसेही आदि और अन्तरहित तृष्णाके तागे सदा देहमें विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सूच्या सूत्रं यथा वस्त्रे संसारयति वायकः ।
तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णासूच्या निबध्यते ॥ ३४ ॥

जैसे सीनेवाला सुईके सहारे वस्त्रोंमें तागा चलाता है, वैसेही तृष्णारूपी सुईसे संसारसूत्र निबद्ध होरहा है ॥ ३४ ॥

विकारं प्रकृतिं चैव पुरुषं च सनातनम् ।
यो यथावद्विजानाति स वितृष्णो विमुच्यते ॥ ३५ ॥

जो महदादि विकाररूप कार्यमें ही मूल कारण प्रकृति और कार्यनिर्लिप्त सनातन पुरुषको विधिपूर्वक जानता है, वही तृष्णारहित पुरुष मुक्त होता है ॥ ३५ ॥

प्रकाशं भगवानेतदृषिर्नारायणोऽमृतम् ।
भूतानामनुकम्पार्थं जगाद जगतो हितम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ ७४०४ ॥

जगत्की गति भगवान् नारायण ऋषिने जीवोंके ऊपर कृपा करके इस मोक्षसाधन अमृतमय विषयको स्पष्ट करके कहा है ॥ ३६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ २१० ॥ ७४०४ ॥

: २११ :

युधिष्ठिर उवाच—

केन वृत्तेन वृत्तज्ञो जनको मिथिलाधिपः ।
जगाम मोक्षं धर्मज्ञो भोगानुत्सृज्य मानुषान् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— व्यवहारदर्शिन मिथिलापति जनकवंशीय धर्मवित् जनक देवने किस प्रकारके व्यवहारोंके जरिये मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंको परित्याग करके मुक्तिलाभ की थी ? ॥१॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
येन वृत्तेन वृत्तज्ञः स जगाम महत्सुखम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले— व्यवहारदर्शी जनक देवने जिस प्रकार व्यवहारके सहारे महान् सुखमय मोक्ष लाभ की थी, उस विषयमें प्राचीन लोग यहां पुराना इतिहास कहा करते हैं ॥ २ ॥

जनको जनदेवस्तु मिथिलायां जनाधिपः ।
और्ध्वदेहिकधर्माणामासीद्युक्तो विचिन्तने ॥ ३ ॥

पहले मिथिलानगरीमें जनकवंशी प्रजानाथ जनदेव राज्य करते थे; वे शरीर त्यागनेके अनन्तर जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति होती है, उस ही प्रकार धर्म विषयोंकी चिन्तामें तत्पर थे ॥३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य स्म शतमाचार्या वसन्ति सततं गृहे ।
दर्शयन्तः पृथग्धर्मान्नानापाषण्डवादिनः ॥ ४ ॥

उनके स्थानमें अनेक प्रकारके उपासनामार्गप्रदर्शक और लोकायत पाखण्डियोंके तिरस्कार करनेवाले सौ आचार्य सदा निवास करते थे ॥ ४ ॥

स तेषां प्रेत्यभावे च प्रेत्यजातौ विनिश्चये ।
आगमस्थः स भूयिष्ठमात्मतत्त्वे न तुष्यति ॥ ५ ॥

उन सब पाखण्डिओंके बीच कोई कोई देहनाशनिबन्धनसे आत्माका नाश स्वीकार करते थे, कोई शरीरको ही अविनाशी कहके स्थिर करते थे, इसही प्रकार विविध विषयोंमें ऐक्यमत न रहने तथा परलोक, पुनर्जन्म और आत्मतत्व विषयमें विशेष निश्चय न होनेसे वह शास्त्रदर्शी राजा उन लोगोंके विषयोंमें विशेष रूपसे सन्तुष्ट नहीं था ॥ ५ ॥

तत्र पञ्चशिखो नाम कापिलेयो महामुनिः ।
परिधावन्महीं कृत्स्नां जगाम मिथिलामपि ॥ ६ ॥

अनन्तर कपिलापुत्र पञ्चशिख नामक महामुनि समस्त पृथ्वी पर्यटन कर एकत्र वास न करके उस मिथिला नगरीमें उपस्थित हुए ॥ ६ ॥

सर्वसंन्यासधर्माणां तत्त्वज्ञानविनिश्चये ।
सुपर्यवसितार्थश्च निर्द्वंद्वो नष्टसंशयः ॥ ७ ॥

वह समस्त संन्यासधर्मके तत्वज्ञाननिश्चय विषयके जो सब प्रयोजन हैं, उन्हें पूर्ण रीतिसे निर्णय कर सकते थे; उन्हें सुख, दुःख आदि कुछ न था और उनके सब संशय नष्ट हुए थे ॥ ७ ॥

ऋषीणामाहुरेकं यं कामादवसितं नृषु ।
शाश्वतं सुखमत्यन्तमन्विच्छन्स सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥

पण्डित लोग उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय कहते थे; वे कामनारहित थे; वे यदृच्छाक्रमसे मनुष्योंके बीच निवास करते और अत्यन्त दुर्लभ नित्यसुखकी खोजमें तत्पर रहते थे ॥ ८ ॥

यमाहुः कपिलं सांख्याः परमर्षिं प्रजापतिम् ।
स मन्ये तेन रूपेण विस्मापयति हि स्वयम् ॥ ९ ॥

सांख्य मतावलम्बी दार्शनिक पण्डित लोग उन्हें परम ऋषि प्रजापति कपिल ही कहा करते हैं; उन्हें देखकर सांख्यके प्रवर्तक भगवान् कपिल ही स्वयं आकर लोगोंको विस्मित कर रहे हैं, ऐसा जान पडता था ॥ ९ ॥

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम् ॥ १० ॥

प्राचीन लोग उन्हें आसुरी मुनिके प्रथम शिष्य और चिरंजीवी कहते हैं; उन्होंने हजार वर्ष सम्पाद्य मानस यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तं समासीनमागम्य मण्डलं कापिलं महत् ।
पुरुषावस्थमव्यक्तं परमार्थं निबोधयत् ॥ ११ ॥

उन्होंने आश्रममें स्थित आसुरी मुनिके निकट समासीन कपिल मातवलम्बी मुनिमण्डलीके समीप उपस्थित होकर, प्रत्येक पुरुषके अंदर स्थित, अव्यक्त और परमार्थ विषयमें कहनेको कहा ॥ ११ ॥

इष्टिसत्रेण संसिद्धो भूयश्च तपसा मुनिः ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्व्यक्तिं बुबुधे देवदर्शनः ॥ १२ ॥

आसुरी मुनिने ज्ञानयज्ञबलसे शरीर—क्षेत्र और जीव—क्षेत्रज्ञकी भेदकी स्पष्टता समझके दिव्य-दृष्टि लाभ की थी ॥ १२ ॥

यत्तदेकाक्षरं ब्रह्म नानारूपं प्रदृश्यते ।
आसुरिर्मण्डले तस्मिन्प्रतिपेदे तदव्ययम् ॥ १३ ॥

वेद और लोकमें प्रसिद्ध जो एकमात्र अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आसुरीने उस ही मुनिमण्डलीके बीच उस अव्यय पुरुषको जाना था ॥ १३ ॥

तस्य पञ्चशिखः शिष्यो मानुष्या पयसा भृतः ।
ब्राह्मणी कपिला नाम काचिदासीत्कुटुम्बिनी ॥ १४ ॥

पञ्चशिख उस ही आसुरीके शिष्य थे, वे मानवी स्त्रीका दूध पीकर वर्द्धित हुए थे। कपिला-नामी कोई कुटुम्बिनी ब्राह्मणी थी ॥ १४ ॥

तस्याः पुत्रत्वमागम्य स्त्रियाः स पिबति स्तनौ ।
ततः स कापिलेयत्वं लेभे बुद्धिं च नैष्ठिकीम् ॥ १५ ॥

वे उसहीका पुत्रत्व स्वीकार करके उसके स्तनोंका दूध पीते थे, उसहीसे उनका कापिलेय नाम हुआ और उन्होंने नैष्ठिकी बुद्धि लाभ की ॥ १५ ॥

एतन्मे भगवानाह कापिलेयाय संभवम् ।
तस्य तत्कापिलेयत्वं सर्ववित्त्वमनुत्तमम् ॥ १६ ॥

भगवान् मार्कण्डेयने इसही प्रकार मेरे समीप उनकी उत्पत्ति, कापिलेय नामका कारण और असाधारण सर्वज्ञत्वका उत्तम विषय कहा था ॥ १६ ॥

सामान्यं कपिलो ज्ञात्वा धर्मज्ञानामनुत्तमम् ।
उपेत्य शतमाचार्यान्मोहयामास हेतुभिः ॥ १७ ॥

धर्मज्ञ पञ्चशिखने परमश्रेष्ठ ज्ञानलाभ करके, मिथिलाधिपति जनकको सौ आचार्योंके प्रति सम बुद्धि जानके, युक्ति—युक्त वचनोंकी धाराकी वर्षाके सहारे उन सब आचार्योंको मोहित किया ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जनकस्त्वभिसंरक्तः कापिलेयानुदर्शनात् ।
उत्सृज्य शतमाचार्यान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ॥ १८ ॥

राजा कापिलेयको देखनेसे ही उनपर भक्तिके कारण अनुरक्त होकर अपने सौ आचार्योंको परित्याग करके उनहींके अनुगामी हुए ॥ १८ ॥

तस्मै परमकल्याय प्रणताय च धर्मतः ।
अब्रवीत्परमं मोक्षं यत्तत्सांख्यं विधीयते ॥ १९ ॥

महर्षि पञ्चशिख धर्मपूर्वक विनययुक्त और तत्वज्ञानके उपदेश धारण करनेमें अत्यन्त समर्थ उस मिथिलापतिसे सांख्यशास्त्रमें कहे हुए परम मोक्षका विषय कहने लगे ॥ १९ ॥

जातिनिर्वेदमुक्त्वा हि कर्मनिर्वेदमब्रीत् ।
कर्मनिर्वेदमुक्त्वा च सर्वनिर्वेदमब्रवीत् ॥ २० ॥

उन्होंने पहले उनके समीप जन्मविषयक सब दोषोंको प्रदर्शित करके, यागादि कर्मोंके दोष कहे और यागादि कर्मोंके दोष कहके ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोकोंके दोष वर्णन किये ॥२०॥

यदर्थं कर्मसंसर्गः कर्मणां च फलोदयः ।
तदनाश्वासिकं मोघं विनाशि चलमध्रुवम् ॥ २१ ॥

जिसके लिये कर्मकी सृष्टि– धर्मका आचरण और जो सब कर्मोंके फलका उदय होनेपर प्राप्त होता है, वह इहलोक या परलोकका भोग नश्वर है; वह अविश्वसनीय, व्यर्थ, विनाशी, अस्थिर और सत्व वा असत् रूपसे निश्चित नहीं है, यह भी कहा ॥ २१ ॥

दृश्यमाने विनाशे च प्रत्यक्षे लोकसाक्षिके ।
आगमात्परमस्तीति ब्रुवन्नपि पराजितः ॥ २२ ॥

लोकायत नास्तिकोंका यह मत है, कि सर्वलोकसाक्षी देहरूपी आत्माका नाश प्रत्यक्ष दीखनेपर भी, शास्त्रप्रमाणके कारण देहसे पृथक् आत्मा है, ऐसा जो वादी कहा करता है, वह पराजित होता है, क्यों कि उसका कहना लोकोंके अनुभवके विरुद्ध है ॥ २२ ॥

अनात्मा ह्यात्मनो मृत्युः क्लेशो मृत्युर्जरामयः ।
आत्मानं मन्यते मोहात्तदसम्यक्परं मतम् ॥ २३ ॥

आत्माका मृत्युस्वरूप नाश और दुःख, जरा, रोग आदिसे आंशिक नाश है; जैसे गृहके निर्बल अवयवोंके धीरे धीरे नष्ट होनेपर गृह नष्ट होता है, वैसेही इन्द्रिय आदिक विनाशके जरिये शरीरकाही नाश हुआ करता है। ऐसा होनेपर भी जो लोग मोहके वशमें होकर आत्माको देहसे पृथक् अन्य पदार्थ समझते हैं, उन लोगोंका मत समीचीन नहीं है ॥ २३ ॥

अथ चेदेवमप्यस्ति यल्लोके नोपपद्यते ।
अजरोऽयममृत्युश्च राजासौ मन्यते तथा ॥ २४ ॥

'लोकमें जो नहीं है' यह यदि शास्त्रके आधारसे शरीरसे पृथक् अजर अमर आत्मा है,–यह सिद्ध हो, तो वन्दीगण जो राजाको अजर–अमर कहके स्तुति किया करते हैं, वह भी सिद्ध हो सकता है ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अस्ति नास्तीति चाप्येतत्तस्मिन्नसति लक्षणे ।
किमधिष्ठाय तद्ब्रूयाल्लोकयात्राविनिश्चयम् ॥ २५ ॥

आत्मा पदार्थ है, वा नहीं, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर, अनुमानसे उसके अस्तित्वका साधन करनेपर कोई कारण जो दोषयुक्त नहीं है, नहीं मिलता; तो मनुष्य कौनसा कारण अवलम्बन करके लोकयात्राका निश्चय करेगा ? ॥ २५ ॥

प्रत्यक्षं ह्येतयोर्मूलं कृतान्तैतिह्ययोरपि ।
प्रत्यक्षे ह्यागमोऽभिन्नः कृतान्तो वा न किंचन ॥ २६ ॥

अनुमान और शास्त्रप्रमाणका मूल प्रत्यक्ष प्रमाण है; उस प्रत्यक्षके जरिये शास्त्र बाधित हुआ करता है और अनुमान तुच्छ प्रमाण है; देहसे पृथक् स्वतन्त्र आत्मा नहीं है; इस विषयकी चिन्ता करनी वृथा है ॥ २६ ॥

यत्र तत्रानुमानेऽस्ति कृतं भावयतेऽपि वा ।
अन्यो जीवः शरीरस्य नास्तिकानां मते स्मृतः ॥ २७ ॥

जहां ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्माकी सिद्धिके लिये अनुमान किया जाता है, वहां साध्य साधनके लिये भावना व्यर्थ है; नास्तिकोंके मतमें जीव शरीरसे स्वतन्त्र नहीं है, यह निश्चित हुआ ॥ २७ ॥

रेतो वटकणीकायां घृतपाकाधिवासनम् ।
जातिस्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम् ॥ २८ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन चारों भूतोंका संयोग होनेपर जैसे वट बीजके क्षुद्र भागके बीच पत्ते, फूल, फल, छाल, रूप और रस आदि अन्तर्हित रहते हैं, वैसेही रेत "वीर्य" के बीच मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, शरीरका रूप और गुण आदि अन्तर्हित रहके उत्पन्न होते हैं, अथवा जैसे एकमात्र गोभुक्त तृणोदकसे विभिन्न स्वभाव दूध और घी उत्पन्न होता है, अथवा अनेक वस्तुओंसे मिला हुआ कल्कके दो तीन रात्रि पकनेपर जैसे उसमेंसे मदशक्ति उत्पन्न हुआ करती है, वैसे ही पहले कहे हुए चारों तत्वोंके संयोगसे रेतसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे दो काष्ठोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही चारों भूतोंके संयोगसे उसका प्रकाशक चैतन्य जन्म ग्रहण किया करता है। जड पदार्थोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति असम्भव नहीं है, तार्किक मतसे आत्मा और मन जड होनेपर भी दोनोंके संयोगके कारण जैसे स्मरणादिरूप ज्ञान उत्पन्न होता है, इस विषयमें भी वही प्रमाण है। जैसे अयस्कान्तमणि लोहेको आकर्षण करती है, वैसे ही उक्त रूपसे उत्पन्न हुआ चैतन्य इन्द्रियोंको जलाया करता है। जैसे सूर्यकान्तके संयोगद्वारा सूर्यकिरणसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही भोक्तृत्व और अग्निका जलशोषकत्व संघातके जरिये ही सिद्ध होता है; इसलिये देहसे पृथक् जीव नहीं है, यह युक्तिसङ्गत है ॥ २८ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रेत्य भूतात्ययश्चैव देवताभ्युपयाचनम् ।
मृते कर्मनिवृत्तिश्च प्रमाणमिति निश्चयः ॥ २९ ॥

लोकायत नास्तिकोंका जो युक्तियुक्त मत वर्णित हुआ, वह अत्यन्त दूषित है, क्योंकि शरीरके मृत होनेपर भी आत्माका विनाश नहीं होता; देहसे अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें यही प्रमाण है, कि यदि देह चेतन हो, तो मृत शरीरमें भी चैतन्यकी प्राप्ति हो सकती है, जब कि ऐसा नहीं दीखता है, तब चैतन्य अवश्यही देहधर्म नहीं है । जिसके वर्त्तमान रहनेसे शरीर नष्ट नहीं होता और जिसके न रहनेपर देह नष्ट होता है, वह अवश्यही शरीरसे स्वतन्त्र है; और लोकायत नास्तिक लोग शीतज्वरकी निवृत्तिके लिये मन्त्रप्रतिपाद्य देवताके निकट प्रार्थना किया करते हैं, वह देवता यदि भूतमयी हो, तो घट पट आदिकी तरह दृष्टिगोचर होसके, परन्तु लोकान्तरगमन करने योग्य सूक्ष्म शरीरको स्वीकार न करनेसे उनके मतमें देवताकी सिद्धिही सम्भव नहीं है । इसके अतिरिक्त जिस समय जो शरीर भूतान्तरमें आविष्ट होता है, उस समय उस शरीरकी पीडासे देहका मुख्य अधिष्ठाता पीडित नहीं होता; परन्तु जो आविष्ट हुआ है, उसेही उस देहके अभिमाननिबन्धनसे पीडा हुआ करती है, आविष्टके अपगमसे मुख्य शरीरही बाधित होता है; इसलिये दृष्ट-विरोधके कारण देहको आत्मा नहीं कहा जाता; मृत होनेपर कर्मकी निवृत्ति होती है, इससे कृत कर्मोंका नाश और अकृत कर्मोंके आगमरूप दोषको विशिष्ट रूपसे स्वीकार करना होता है, अर्थात् जिस शरीरसे जो दोष करता है उस देहके नष्ट होनेपर उसके किये हुए कर्म भी नष्ट होते हैं, और नवीन शरीर उत्पन्न होनेपर अकृत कर्मोंका फल भोग हुआ करता है, इससे लोकायतिक मत अत्यन्तही युक्तिविगर्हित है ॥ २९ ॥

न त्वेते हेतवः सन्ति ये केचिन्मूर्तिसंस्थिताः ।
अमर्त्यस्य हि मर्त्येन सामान्यं नोपपद्यते ॥ ३० ॥

नास्तिकोंने जो दृष्टान्त दिये हैं, वे सब मूर्त पदार्थ हैं । मूर्त जड पदार्थसे मूर्त जड पदार्थकी उत्पत्ति होती है; मूर्त पदार्थसे अमूर्त ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर पृथ्वी आदि चारों भूतोंसे आकाशकी उत्पत्ति हो सकती है; इसलिये अमूर्त्तके सहित मूर्त्तकी सदृशता कभी सम्भव नहीं है ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अविद्याकर्मचेष्टानां केचिदाहुः पुनर्भवम् ।
कारणं लोभमोहौ तु दोषाणां च निषेवणम् ॥ ३१ ॥

सौगत–मतावलम्बी नास्तिक लोग अविद्या, कर्म, वासना, लोभ, मोह और दोषनिषेवणको पुनर्जन्मका कारण कहा करते हैं। वे लोग लोकायत नास्तिकोंके अभिमत चारों भूतोंके बाह्य सङ्घातसे आध्यात्मिक संघातरूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्काराख्य, पञ्चस्कन्धात्मक ऐहिक और पारलौकिक व्यवहारास्पद जीव स्वीकार करते हैं; इसलिये उनके मतमें देहके नाशसेही आत्म विनाशरूप दोषकी सम्भावना नहीं है। यद्यपि ये लोग दूसरेकी तरह स्थिर भोक्ता वा प्रशासिता चेतन स्वीकार नहीं करते हैं, तोभी अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षडायतन अर्थात् चित्तका आश्रय, शरीर, स्पर्श, पीडा, तृष्णा, उपादान, जन्म, जाति, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेवना, दुःख और मनस्ताप, इन अठारहों दोषोंको कभी कभी संक्षेपसे कभी विस्तारके सहित वर्णन किया करते हैं। ये लोग घटीयन्त्रकी भांति आवर्त्तमान होकर संघातको स्वाश्रयत्व रूपसे अधिक्षेप करते हैं; उसही संघातोत्पत्तिके कारण लोकयात्रानिर्वाह होनेसे स्थिर आत्माकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते ॥ ३१ ॥

अविद्यां क्षेत्रमाहुर्हि कर्म बीजं तथा कृतम् ।
तृष्णासंजननं स्नेह एष तेषां पुनर्भवः ॥ ३२ ॥

उनके मतमें पूर्वकृत कर्म और तृष्णाजननस्नेह, अविद्या क्षेत्र शरीरके बार बार उत्पत्तिका बीज और कारण रूपसे वर्णित हुआ है ॥ ३२ ॥

तस्मिन्व्यूढे च दग्धे च चित्ते मरणधर्मिणि ।
अन्योऽन्याज्जायते देहस्तमाहुः सत्त्वसंक्षयम् ॥ ३३ ॥

उस अविद्या आदि कलापके सुषुप्ति प्रलयके संस्कारस्वरूपमें निमित्तभूत होके स्थिति करने और एकमात्र मरणधर्मयुक्त देहके जलने वा नष्ट होनेपर अविद्या आदिसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है, सौगत लोग इसेही सत्वसंक्षय अर्थात् मोक्ष कहा करते हैं ॥ ३३ ॥

यदा स रूपतश्चान्यो जातितः श्रुतितोऽर्थतः ।
कथमस्मिन्स इत्येव संबन्धः स्यादसंहितः ॥ ३४ ॥

इस विषयमें यही आपत्ति है, कि मुक्ति होनेपर भी क्षणिक विज्ञान आदिके स्वरूप, जाति, पाप–पुण्य और बन्ध मोक्षसे जब कि पृथक्त्व होता है, तब किस प्रकार इस विज्ञानसे वह विज्ञान प्रत्यभिज्ञान होसकता है। एक पुरुष मुमुक्षु दूसरा साधनाविष्ट है और अन्य पुरुष मुक्त हुआ, यह अत्यन्त ही असंगत वचन है ॥ ३४ ॥

एवं सति च का प्रीतिर्दानविद्यातपोबलैः ।
यदन्याचरितं कर्म सर्वमन्यः प्रपद्यते ॥ ३५ ॥

ऐसा होनेसे दान, विद्या, तपस्या और बलके निमित्त लोगोंकी प्रवृत्ति न होती; क्योंकि एक पुरुषके दानादि कर्मोंके अनुष्ठान करनेपर फलभोगके समय उसके अभावमें दूसरे फल भोग करने लगे यह कभी सम्भव नहीं है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदा ह्ययमिहैवान्यैः प्राकृतैर्दुःखितो भवेत् ।
सुखितैर्दुःखितैर्वापि दृश्योऽप्यस्य विनिर्णयः ॥ ३६ ॥

यह सम्भव होनेसे एकके पुण्यसे दूसरे सुखी और दूसरेके पापसे अन्य पुरुष दुःखी हो सकते हैं; इसलिये ऐसे दृश्य विषयोंके जरिये अदृश्य विषयोंका निर्णय करना युक्तिसंगत नहीं होता है ॥ ३६ ॥

तथा हि मुसलैर्हन्युः शरीरं तत्पुनर्भवेत् ।
पृथग्ज्ञानं यदन्यच्च येनैतन्नोपलभ्यते ॥ ३७ ॥

एकका ज्ञान दूसरेके ज्ञानके समान नहीं होता; इसलिये जिसमें वैजात्यके जरिये ये सब दोष उत्पन्न न हों, उसके लिये यदि क्षणिकविज्ञानवादी नास्तिक लोग ज्ञानधाराकी स्वजातीयता कहनेकी इच्छा करें, तब उत्पाद्यमान सदृश ज्ञानका उपादान क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले ज्ञानको वे लोग सिद्धान्तपक्षमें निक्षेप करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्योंकि उन लोगोंके मनमें ज्ञानका क्षणिकत्व निबन्धन उत्तर ज्ञानके उत्पादन विषयमें समर्थ नहीं है। यदि उस ज्ञानकाही नाश हो, तो मुसलके जरिये नष्ट हुए शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होसके ॥ ३७ ॥

ऋतुः संवत्सरस्तिथ्यः शीतोष्णे च प्रियाप्रिये ।
यथातीतानि पश्यन्ति तादृशः सत्त्वसंक्षयः ॥ ३८ ॥

ऋतु, संवत्सर, तिथि, सर्दी, गर्मी, प्रिय और अप्रिय आदि जैसे अतीत होके फिर उत्पन्न होते देखे जाते हैं, वैसेही ज्ञानधाराकी अनन्तताके कारण ऋतु आदिकी भांति मोक्ष बार बार आगत और निवृत्त होती है, इसलिये क्षणिक विज्ञानवाद अनेक दोषोंसे ग्रस्त होनेसे युक्तिसंगत नहीं है ॥ ३८ ॥

जरया हि परीतस्य मृत्युना वा विनाशिना ।
दुर्बलं दुर्बलं पूर्वं गृहस्येव विनश्यति ॥ ३९ ॥

जरा और मृत्युके जरिये आक्रान्त अनित्य धर्माश्रय दुर्बल शरीर नष्ट होता है, जैसे गृहके दुर्बल अंग पहले नष्ट होकर, फिर सारा गृह गिर जाता है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो वायुः शोणितं मांसमस्थि च ।
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति स्वं धातुमुपयान्ति च ॥ ४० ॥

इन्द्रियां, मन, प्राण, रुधिर, मांस, हड्डी आदि सब क्रमशः नष्ट होकर, अपने कारणमें मिल जाते हैं ॥ ४० ॥

लोकयात्राविधानं च दानधर्मफलागमः ।
यदर्थं वेदशब्दाश्च व्यवहाराश्च लौकिकाः ॥ ४१ ॥

लोकयात्राका विधान और दानधर्मादि फलकी प्राप्तिके लिये ही और उसही कारणसे आत्माके सुखके लिये सब लौकिक और वैदिक व्यवहार भी किये जाते हैं ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इति सम्यङ्मनस्येते बहवः सन्ति हेतवः ।
एतदस्तीदमस्तीति न किंचित्प्रतिपद्यते ॥ ४२ ॥

मनमें अनेक प्रकारके तर्क उत्पन्न हुआ करते हैं; तर्क उत्पन्न होनेपर युक्तिके सहारे आत्माकी सत्ता या असत्ताका निर्धारण नहीं दिखायी देता ॥ ४२ ॥

तेषां विमृशतामेवं तत्तत्समभिधावताम् ।
क्वचिन्निविशते बुद्धिस्तत्र जीर्यति वृक्षवत् ॥ ४३ ॥

जो लोग अभिनिवेशपूर्वक विचार करते हुए भिन्न मतोंकी ओर दौडते रहते हैं, उनकी बुद्धि किसी अनिर्वचनीय वस्तुमें निविष्ट होती है, विनिष्ट होनेपर उसमें ही वृक्षकी तरह जीर्ण हुआ करती है ॥ ४३ ॥

एवमर्थैरनर्थैश्च दुःखिताः सर्वजन्तवः ।
आगमैरपकृष्यन्ते हस्तिपैर्हास्तिनो यथा ॥ ४४ ॥

इसही प्रकार इष्ट और अनिष्टके जरिये सब प्राणी ही दुःखित होरहे हैं। जैसे महावत हाथियोंको अंकुशोंसे काबूमें करते हैं, वैसे ही दुःखोपहत जीवसमूह शास्त्रके वचनके जरिये वशीभूत हुआ करते हैं ॥ ४४ ॥

अर्थांस्तथात्यन्तसुखावहांश्च लिप्सन्त एते बहवो विशुल्काः ।
महत्तरं दुःखमभिप्रपन्ना हित्वामिषं मृत्युवशं प्रयान्ति ॥ ४५ ॥

बहुतेरे मनुष्य अत्यन्त सुखयुक्त विषयोंकी अभिलाष करके शुष्क होते हैं; अन्तमें महत् दुःख भोगते हुए विषयपरित्याग करके मृत्युके वशमें हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥

विनाशिनो ह्यध्रुवजीवितस्य किं बन्धुभिर्मित्रपरिग्रहैश्च ।
विहाय यो गच्छति सर्वमेव क्षणेन गत्वा न निवर्तते च ॥ ४६ ॥

जिसका अवश्य ही विनाश होगा और जीवनका कुछ निश्चय नहीं है, उस अनित्य शरीरको पाकर बन्धु-बान्धव और विभिन्न मित्र समूहका क्या प्रयोजन है ? जो मनुष्य यह विचार करके क्षणभरमें सबका परित्याग करके गमन करता है, वह मृत्युके नंतर फिर यहां जन्म लेकर नहीं लौटता ॥ ४६ ॥

भूम्योमतोयानलवायवो हि सदा शरीरं परिपालयन्ति ।
इतीदमालक्ष्य कुतो रतिर्भवेद्विनाशिनो ह्यस्य न शर्म विद्यते ॥ ४७ ॥

पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु-ये पञ्चभूत सदा शरीरका प्रतिपालन करते हैं, इसलिये इस पञ्चभूतात्मक शरीरके तत्त्वको जाननेसे किसमें अनुराग होगा ? इस विनाशी शरीरमें तनिक भी सुख नहीं है ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इदमनुपधि वाक्यमच्छलं परमनिरामयमात्मसाक्षिकम् ।
नरपतिरभिवीक्ष्य विस्मितः पुनरनुयोक्तुमिदं प्रचक्रमे ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥ ७४५२ ॥

राजा जनदेवने यह भ्रम और वञ्चन- प्रमादसे रहित, निर्दोष तथा आत्मसाक्षी वचन सुनके अत्यंत विस्मययुक्त होकर, फिर पूर्वपक्ष करनेकी इच्छा की ॥ ४८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ २११ ॥ ७४५२ ॥

: २१२ :

भीष्म उवाच—

जनको जनदेवस्तु ज्ञापितः परमर्षिणा ।
पुनरेवानुपप्रच्छ सांपराये भवाभवौ ॥ १ ॥

भीष्म बोले- जनकवंशीय जनदेवने महर्षि पञ्चशिखाका उपदेशपर वचन सुनके मरनेके अनन्तर फिर जन्म और मोक्ष होती है वा नहीं इस विषयमें प्रश्न किया ॥ १ ॥

भगवन्यदिदं प्रेत्य संज्ञा भवति कस्यचित् ।
एवं सति किमज्ञानं ज्ञानं वा किं करिष्यति ॥ २ ॥

हे भगवन् ! यदि मरनेके बाद किसीको सुषुप्ति वा मूर्च्छावस्थाकी तरह कोई विशेष संज्ञा न रहे, तो ज्ञान वा अज्ञान क्या करेगा ? ॥ २ ॥

सर्वमुच्छेदनिष्ठं स्यात्पश्य चैतद्द्विजोत्तम ।
अप्रमत्तः प्रमत्तो वा किं विशेषं करिष्यति ॥ ३ ॥

हे द्विजोत्तम ! देखिये, यम और नियम आदि सभी आत्मनाशपर्यवसायी अर्थात् आत्मनाश होनेसे ही सब नियमादि नष्ट हुआ करते हैं, इसलिये चाहे मनुष्य प्रमत्त हो वा अप्रमत्त ही हो, उसमें विशेष लाभ क्या है ? ॥ ३ ॥

असंसर्गो हि भूतेषु संसर्गो वा विनाशिषु ।
कस्मै क्रियेत कल्पेन निश्चयः कोऽत्र तत्त्वतः ॥ ४ ॥

मोक्ष होनेसे यदि दिव्याङ्गना आदिका संसर्ग होनेपर भी वह स्वर्गादिकी तरह विनाशी हो, तब किस निमित्त कर्म करे और क्रियमाण कार्यकी घटना ही किस प्रकार होगी ? इस विषयमें यथार्थ रूपसे क्या निश्चय है ? ॥ ४ ॥

तमसा हि प्रतिच्छन्नं विभ्रान्तमिव चातुरम् ।
पुनः प्रशमयन्वाक्यैः कविः पञ्चशिखोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

अतिक्रान्तदर्शी महर्षि पञ्चशिख अज्ञानाच्छन्न विभ्रान्त आतुरकी भांति राजाको फिर वचनसे धीरज देके कहने लगे ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उच्छेदनिष्ठा नेहास्ति भावनिष्ठा न विद्यते ।
अयं ह्यपि समाहारः शरीरेन्द्रियचेतसाम् ।
वर्तते पृथगन्योन्यमप्यपाश्रित्य कर्मसु ॥ ६ ॥

इस संसारमें देहनाश होनेसे ही आत्माका पर्यवसान नहीं होता और देह विशेषके नाश होनेसे जो शेष हुआ, वह भी नहीं है; परन्तु अविद्याके सहारे आत्मामें आरोपित बुद्धि और इन्द्रिय आदि केवल रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह मालूम होती है, ऐसे अनर्थकी निवृत्ति और कण्ठमें पडे हुए विस्मृत कण्ठहारकी भांति स्वरूपानन्दकी प्राप्ति होनेसे ही कृतकृत्यता हुआ करती है । यह प्रत्यक्ष दृश्यमान देह, इन्द्रियों और चित्तके मिलनजनित संघातसे एक दूसरेका आश्रय करके कार्यमें वर्त्तमान रहता है ॥ ६ ॥

धातवः पञ्चशाखोऽयं खं वायुर्ज्योतिरम्बु भूः ।
ते स्वभावेन तिष्ठन्ति वियुज्यन्ते स्वभावतः ॥ ७ ॥

जिसमें सब कार्य लीन होते हैं, उसे उपादान कहते हैं, वह उपादान पांच प्रकारका है; जल आकाश, अग्नि, वायु और पृथ्वी; सांख्य मतके अनुसार ये पांचों उपादान स्वभावसे ही स्थिति करते हैं और स्वभावसे ही पृथक् हो जाते हैं ॥ ७ ॥

आकाशं वायुरूष्मा च स्नेहो यचापि पार्थिवम् ।
एष पञ्चसमाहारः शरीरमिति नैकधा
ज्ञानमूष्मा च वायुश्च त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ ८ ॥

ये आकाश आदि पांचों उपादान संयुक्त होकर शरीराकारसे परिणत हुआ करते हैं, अर्थात् शरीरके अन्तर्गत जो आकाशका भाग है वही आकाश है; जो प्राण है वही वायु है; जो ऊष्मा है वही अग्नि है, जो रक्तरस आदि स्नेहवत् पदार्थ हैं वही जल और जो अस्थि आदि कठिन पदार्थ हैं वही पार्थिव अंश हैं; यह शरीर जरायुज आदि भेदोंसे अनेक प्रकारका है । ज्ञान, जठराग्नि और प्राण ये त्रिविध पदार्थ सर्वकर्मसंग्राहक है ॥ ८ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मनः ।
प्राणापानौ विकारश्च धातवश्चात्र निःसृताः ॥ ९ ॥

इन्द्रिय और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषयप्रकाशक स्वरूप स्वभाव है; घटाकार वृत्ति चेतना, संकल्पादि रूप मन है, यही ज्ञानके कार्य हैं; वायुके कार्य प्राण आदि पञ्चवायु हैं, खाने और पीनेकी वस्तुओंको परिपाकके जरिये इन्द्रियादिका उपचय करना जठराग्निका कार्य है । इससे ज्ञान, अग्नि और वायुसे इन्द्रिय आदि प्रकट हुई हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रवणं स्पर्शनं जिह्वा दृष्टिर्नासा तथैव च ।
इन्द्रियाणीति पञ्चैते चित्तपूर्वगमा गुणाः ॥ १० ॥

कान, त्वचा, जीभ, नेत्र और नासिका, ये पांच ज्ञानेन्द्रियां चित्तगत शब्द आदि गुण लाभ किया करती हैं ॥ १० ॥

तत्र विज्ञानसंयुक्ता त्रिविधा वेदना ध्रुवा ।
सुखदुःखेति यामाहुरदुःखेत्यसुखेति च ॥ ११ ॥

सुख–दुःख, सुखाभाव स्वरूपी विज्ञानयुक्त चेतनावृत्ति विषयोंकी उपादेयत्व, हेयत्व और उपेक्षणीयत्व भेदसे तीन प्रकारकी है ॥ ११ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च सूर्त्यथ ।
एते ह्यामरणात्पञ्च षड्गुणा ज्ञानसिद्धये ॥ १२ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचों विषय मूर्त्तिके सहित संयुक्त होकर मृत्युकाल पर्यन्त ज्ञान सिद्धिके निमित्त षड्–विषय कहके प्रसिद्ध हुआ करते हैं ॥ १२ ॥

तेषु कर्मनिसर्गश्च सर्वतत्त्वार्थनिश्चयः ।
तमाहुः परमं शुक्रं बुद्धिरित्यव्ययं महत् ॥ १३ ॥

कान आदि इन्द्रियोंसे संन्यास निबन्धनसे जिन सब विषयोंमें अर्थनिश्चय होता है, सब तत्त्वोंके यथार्थ निश्चयरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसेही पण्डित लोग मोक्षका बीज– उत्तम ज्ञान और मोक्षप्रदत्व हेतु अव्यय महत् बुद्धि– ब्रह्मपद कहा करते हैं ॥ १३ ॥

इमं गुणसमाहारमात्मभावेन पश्यतः ।
असम्यग्दर्शनैर्दुःखमनन्तं नोपशाम्यति ॥ १४ ॥

इन आत्मातिरिक्त विषयोंको जो लोग आत्मभावसे देखते हैं, उनका असम्यक् दर्शनसे अनन्त दुःख शान्त नहीं होता ॥ १४ ॥

अनात्मेति च यद्दृष्टं तेनाहं न ममेत्यपि ।
वर्तते किमधिष्ठाना प्रसक्ता दुःखसंततिः ॥ १५ ॥

" यही " इत्यादि रूपसे जो दीखता है, वह आत्मा नहीं है, क्योंकि दृश्य वस्तु कभी द्रष्टाकी आत्मा नहीं होसकती । इस कारण 'मैं और मेरा' इत्यादि वचन भी सिद्ध नहीं होते; तब अहंकार देहेन्द्रिय आदि जो आत्मामें अभेद रूपसे मालूम होती हैं, वह सीपमें सैप्यबुद्धिके समान भ्रममात्र है । " यही मैं अन्धा हूं, मैं गौरवर्ण हूं " इत्यादि वचनमें जब आत्माका सम्बन्ध नहीं है, तुम " मेरे पुत्र, मेरी स्त्री, " ये सब वचन भी मिथ्या हैं; इसलिये जो दुःखसन्तति मालूम हो रही है, उसका अवलम्बन क्या है, क्योंकि आत्मा असङ्ग और अहंकार मिथ्या है, इससे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति निराधिष्ठान दुःखसन्तति भी अवश्यही अहङ्कारकी तरह सत्य नहीं है ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्र सम्यङ्मनो नाम त्यागशास्त्रमनुत्तमम् ।
शृणु यत्तव मोक्षाय भाष्यमाणं भविष्यति ॥ १६ ॥

अब जो वक्ष्यमाण त्यागप्रधान शास्त्र– जिसका नाम सम्यङ्मन है– तुम्हारे मुक्ति विषयमें निमित्त होगा, वह परमश्रेष्ठ सांख्यशास्त्रका वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १६ ॥

त्याग एव हि सर्वेषामुक्तानामपि कर्मणाम् ।
नित्यं मिथ्याविनीतानां क्लेशो दुःखावहो मतः ॥ १७ ॥

मुक्तिके लिये सदा उद्यत पुरुषोंको सब कर्मोंमें अहंता, ममता और विभव आदिको परित्याग करनाही नित्यकर्म है; और जो लोग त्यागको स्वीकार न करके शान्तिपरायण होना शक्य समझते हैं, उन्हें अविद्या आदि दुःखदायक क्लेश प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि ।
सुखत्यागे तपोयोगः सर्वत्यागे समापना ॥ १८ ॥

सुखकी सामग्रियोंको परित्याग करनेसे यज्ञ आदि सब कर्म सिद्ध होते हैं, भोग त्याग करनेसे व्रतकी सिद्धि हुआ करती है, सुख त्याग करनेसे तपस्या और योगोपदेश प्राप्त हो सकता है, और समस्त परित्याग करनेसे त्यागकी पराकाष्ठा हुई ॥ १८ ॥

तस्य मार्गोऽयमद्वैधः सर्वत्यागस्य दर्शितः ।
विप्रहाणाय दुःखस्य दुर्गतिर्ह्यन्यथा भवेत् ॥ १९ ॥

दुःखोंको नाश करनेके लिये उस सर्वस्वत्यागका एकमात्र मार्ग प्रदर्शित होता है; इसके विपरीत आचरण करनेसे– त्याग स्वीकार न करनेसे दुर्गति हुआ करती है ॥ १९ ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रियाण्युक्त्वा मनःषष्ठानि चेतसि ।
मनःषष्ठानि वक्ष्यामि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि तु ॥ २० ॥

बुद्धिमें विद्यमान मनके सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका विषय कहके, अब पञ्च कर्मेन्द्रियोंका विषय कहता हूं; इनके साथ मनकी शक्ति छठी कही गयी है ॥ २० ॥

हस्तौ कर्मेन्द्रियं ज्ञेयमथ पादौ गतीन्द्रियम् ।
प्रजनानन्दयोः शेफो विसर्गे पायुरिन्द्रियम् ॥ २१ ॥

दोनों हाथ कर्मेन्द्रिय, दोनों पाव गमनेन्द्रिय और शिश्न सन्तानोत्पादन तथा आनन्दजननेन्द्रिय, पायु पुरीष (मल) परित्याग आदिकी इन्द्रिय ॥ २१ ॥

वाक्तु शब्दविशेषार्थं गतिं पञ्चान्वितां विदुः ।
एवमेकादशैतानि बुद्ध्या त्ववसृजेन्मनः ॥ २२ ॥

और जिह्वा शब्दविशेषका उच्चारणकी इन्द्रिय है, मन इन पांचों कर्मेन्द्रियोंमें संयुक्त है । इस ही प्रकार मनके सहित कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां इन ग्यारहोंको बुद्धिके सहारे शीघ्रही परित्याग करे; मनको परित्याग कर सकनेसे ही विषययुक्त कर्मेन्द्रियां परित्यक्त होती हैं; और बुद्धिको परित्याग करनेसे ही मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंको परित्याग सिद्ध हुआ करता है ॥ २२ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्णौ शब्दश्च चित्तं च त्रयः श्रवणसंग्रहे ।
तथा स्पर्शो तथा रूपे तथैव रसगन्धयोः ॥ २३ ॥

शब्दक्रियाको सिद्ध करनेके लिये दोनों कान करण, शब्द विषय और चित्त कर्तृरूपसे संयोग कहा जाता है; स्पर्श, रूप, रस और गन्धका विषय भी इन्द्रिय, विषय और मनका संयोग इसही प्रकार है ॥ २३ ॥

एवं पञ्चत्रिका ह्येते गुणास्तदुपलब्धये ।
येन यस्त्रिविधो भावः पर्यायात्समुपस्थितः ॥ २४ ॥

इसी भांति ये तीन-तीनके पांच समुदाय हैं, ये गुण कहे गये हैं; इनसे शब्दादि विषयोंका ग्रहण होता है; और ये कर्ता, कर्म और करणरूपी तीन भाव उपस्थित होते हैं ॥ २४ ॥

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चैव ते त्रयः ।
त्रिविधा वेदना येषु प्रसूता सर्वसाधना ॥ २५ ॥

जो अनुभवकी अभिव्यक्तिके निमित्त सात्विक, राजसिक और तामसिक-तीन भेद- भाव पर्यायक्रमसे उपस्थित होते हैं, वह अनुभव ही प्रहर्ष आदि सब सात्विक प्रभृति कार्योंका साधन किया करता है ॥ २५ ॥

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः सुखं संशान्तचित्तता ।
अकुतश्चित्कुतश्चिद्वा चित्ततः सात्त्विको गुणः ॥ २६ ॥

प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त-चित्तता, ये सब सात्विक गुण वैराग्यके कारण वा स्वाभाविक ही चित्तसे उत्पन्न होते हैं ॥ २६ ॥

अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाक्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुतः ॥ २७ ॥

असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और क्षमाहीनता, ये सब रजोगुणके चिन्ह हैं; कभी कारणसे और कभी विना कारणसे ही दिखाई देते हैं ॥ २७ ॥

अविवेकस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतन्द्रिता ।
कथंचिदपि वर्तन्ते विविधास्तामसा गुणाः ॥ २८ ॥

अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य आदि विविध तामसगुण कारण वा विना कारणसे ही वर्त्तमान रहते हैं ॥ २८ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
वर्तते सात्त्विको भाव इत्यपेक्षेत तत्तथा ॥ २९ ॥

जो शरीर और मनमें प्रीतियुक्त होकर उदित हो, वह सात्त्विक भाव है और उसे ही सात्त्विक गुण समझना चाहिये ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्तु संतापसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
प्रवृत्तं रज इत्येव ततस्तदभिचिन्तयेत् ॥ ३० ॥

जो विषय आत्माके असन्तोष और अप्रीतिकर हैं, उन्हें ही रजोगुणसे उत्पन्न हुए समझना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ यन्मोहसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ३१ ॥

और शरीर वा मनमें जो मोहयुक्त होके मालूम होता है, उसे ही अवितर्क्य और अविज्ञेय, तमोगुणका कार्य निश्चय करे ॥ ३१ ॥

तद्धि श्रोत्राश्रयं भूतं शब्दः श्रोत्रं समाश्रितः ।
नोभयं शब्दविज्ञाने विज्ञानस्येतरस्य वा ॥ ३२ ॥

आकाशके आश्रित श्रोत्र आकाशसे भिन्न नहीं हैं और श्रोताश्रित शब्द भी परस्परके सम्बन्धसे आकाशसे स्वतन्त्र नहीं होसकता, जब ऐसा हुआ, तब शब्दज्ञान होनेपर आकाश और श्रोत्र ये दोनों ही विज्ञानके विषय नहीं होते, क्योंकि जिसे शब्दज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञानके समयमेंही श्रोत्र और आकाश विषयका ज्ञान समान नहीं होसकता, इससे ऐसा निश्चय नहीं है, कि श्रोत्र और आकाश अज्ञात ही रहे । एकका विज्ञान होनेसे दूसरेका ज्ञान नहीं होता, यह वचन कभी भी युक्तिसङ्गत नहीं है । श्रोत्र और आकाशसे शब्द कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता । इसलिये श्रोत्रादिके प्रविलापनसे शब्द और आकाश आदिका प्रविलापन युक्तियुक्त है; शब्द और आकाशादि स्मरणात्मक चित्त स्वरूप है; चित्त भी अव्यवसायात्मक मनसे भिन्न नहीं, इसलिये मनके लीन होनेसे सभी लीन होते हैं ॥ ३२ ॥

एवं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
स्पर्शो रूपे रसे गन्धे तानि चेतो मनश्च तत् ॥ ३३ ॥

इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धके आश्रय और अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं; ये सब अभिन्न होकर चित्त भी मनः-स्वरूप होता है; मनके लय होनेसे ये सब लीन होते हैं ॥ ३३ ॥

स्वकर्मयुगपद्भावो दशस्वेतेषु तिष्ठति ।
चित्तमेकादशं विद्धि बुद्धिर्द्वादशमी भवेत् ॥ ३४ ॥

इन्द्रियोंके विषय सुनना, छूना, देखना आदि कार्य एक समयमें ही सिद्ध होनेसे पंचज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय, इन दसोंके अनुगत मन ग्यारहवां होकर स्थिति करता है और बुद्धि ऊपर कही हुई दसों इन्द्रिय तथा ग्यारहवें मनकी अनुगत होकर बारहवें रूपमें निवास किया करती है ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेषामयुगपद्भावे उच्छेदो नास्ति तामसः ।
आस्थितो युगपद्भावे व्यवहारः स लौकिकः ॥ ३५ ॥

जो लोग यह अङ्गीकार करते हैं, कि एक समयमें अनेक ज्ञान नहीं होता, उनका अनुभव युक्तिविरुद्ध है; क्योंकि गङ्गाजलमें शरीरका अर्द्धभाग डूबनेपर आधे हिस्सेमें सूर्यकिरणकी गर्मी और आधे भागमें शीतता दोनों ही स्पष्ट मालूम होती हैं। प्रागुक्त पंचज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहोंको युगपत् भाव न होनेपर भी निद्रा रूप तमोमय सुषुप्ति-कालमें भी आत्माका नाश नहीं है, आत्माका अयौगपद्यही वास्तवत्व है, युगपद्भाव केवल सपनेकी भांति ज्ञानकृत है; इसलिये आत्माका जो युगपद्भाव है, वह लौकिक व्यवहार मात्र है। पारमार्थिक नहीं है ॥ ३५ ॥

इन्द्रियाण्यवसृज्यापि दृष्ट्वा पूर्वं श्रुतागमम् ।
चिन्तयन्नानुपर्येति त्रिभिरेवान्वितो गुणैः ॥ ३६ ॥

स्वप्नदर्शी पुरुष पूर्वानुभव वासनासे सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषय सङ्गतकी चिन्ता करता हुआ सत्व, रज और तमोगुणसे युक्त होकर कामनाके अनुसार निज शरीरमें विचरता है ॥ ३६ ॥

यत्तमोपहतं चित्तमाशु संचारमध्रुवम् ।
करोत्युपरमं काले तदाहुस्तामसं सुखम् ॥ ३७ ॥

जो तमोगुणसे अभिभूत और जो प्रवृत्ति तथा प्रकाशात्मक आत्माको शीघ्र ही संहार करके थोडी देरके लिये युगपद्भावको अनिश्चित नाश करता है और सुखकी प्रतीतिका अनुभव करता है, पण्डित लोग उसे ही तामस सुख कहा करते हैं ॥ ३७ ॥

यद्यदागमसंयुक्तं न कृत्स्नमुपशाम्यति ।
अथ तत्राप्युपादत्ते तमो व्यक्तमिवानृतम् ॥ ३८ ॥

वह अज्ञानप्रधान तामससुख इस शरीरमेंही सुषुप्तिकालमें मालूम हुआ करता है; जो सुख आनन्द स्वरूप परब्रह्म इत्यादि वेदबोधित रूपसे विख्यात है उसमें तनिक भी द्वैत सुख न दीख पडने और अव्यक्त अनृत तमोगुणकी सत्ता न रहनेपर भी उसका अस्तित्व उपपन्न होता है ॥ ३८ ॥

एवमेष प्रसंख्यातः स्वकर्मप्रत्ययो गुणः ।
कथंचिद्वर्तते सम्यक्केषांचिद्वा न वर्तते ॥ ३९ ॥

इन अहंकार आदिकोंकी घटपट पर्यन्त दृश्यमान भोग्य वस्तुओंके निज कर्मके कारण उत्पत्ति प्रख्यात हुआ करती है। कोई कोई अविद्यायुक्त पुरुषोंका अज्ञान वज्रपंजरकी तरह वर्द्धित होता है, और कोई कोई विद्वान् पुरुषोंके समीप वह अज्ञान तीनों कालोंमें भी आगमन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवमाहुः समाहारं क्षेत्रमध्यात्मचिन्तकाः ।
स्थितो मनसि यो भावः स वै क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ४० ॥

अध्यात्म विचारमें तत्पर पण्डित लोग इस शरीर और इन्द्रियोंके संघातको क्षेत्र कहते हैं और मनके बीच जो चेतन सत्ता है, उसे ही क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं ॥ ४० ॥

एवं सति क उच्छेदः शाश्वतो वा कथं भवेत्।
स्वभावाद्धूर्तमानेषु सर्वभूतेषु हेतुतः ॥ ४१ ॥

अनादि अविद्या कर्मसे सत्य और मिथ्याका आत्म और आत्मभिन्न एकत्रीकरण निबन्धन व्यवहारमें वर्त्तमान चतुर्विध भूतोंके बीच शाश्वत आत्मा किस प्रकार नाशयुक्त होसकता है? आत्मा सर्वव्यापी नित्य पदार्थ है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता; इसलिये पहिले जो आत्माके नाश विषयमें शंका हुई थी उसका कोई अवलम्बन नहीं है ॥ ४१ ॥

यथार्णवगता नद्यो व्यक्तीर्जहति नाम च ।
न च खतां नियच्छन्ति तादृशाः सत्त्वसंक्षयः ॥ ४२ ॥

जैसे नद और नदियां समुद्रमें मिलकर अपने नाम और रूपको त्यागके सागर जलमें लीन होती हैं, वैसेही महदादि घटपट पर्यन्त बाह्य वस्तुरूपी सब स्थूल पदार्थ उत्पत्तिकी विपरीततासे अनुसार सूक्ष्मभूतोंमें लयको प्राप्त हुआ करते हैं, और सूक्ष्मभूत विशुद्ध कारणस्वरूपमें लीन होते हैं, इसेही सत्वसंक्षय– मोक्ष कहा जाता है ॥ ४२ ॥

एवं सति कुतः संज्ञा प्रेत्यभावे पुनर्भवेत् ।
प्रतिसंमिश्रिते जीवे गृह्यमाणे च मध्यतः ॥ ४३ ॥

इसही प्रकार देहरूप उपाधियुक्त जीव सब तरहसे आइनेके मुखकी भांति गृह्यमाण होनेपर और उपाधिके नष्ट होनेपर उसका किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं होसकता, और ज्ञान न होनेपर भी जैसे दर्पणके अभावसे मुखका नाश नहीं होता, वैसे ही उपाधिके न रहनेपर भी आत्माके नाशकी शङ्का करनी किसी प्रकार भी सम्भावित नहीं है ॥ ४३ ॥

इमां तु यो वेद विमोक्षबुद्धिमात्मानमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
न लिप्यते कर्मफलैरनिष्टैः पत्रं बिसस्येव जलेन सिक्तम् ॥ ४४ ॥

जो अप्रमत्त होकर इसी प्रकार मुक्तिका उपाय अवलम्बन करके आत्मध्यानमें तत्पर होता है, वह जलसे भींगे हुए कमलपत्रके समान अनिष्टकारी कर्म फलोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥

दृढैश्च पाशैर्बहुभिर्विमुक्तः प्रजानिमित्तैरपि दैवतैश्च ।
यदा ह्यसौ सुखदुःखे जहाति मुक्तस्तदाग्र्यां गतिमेत्यलिङ्गः ।
श्रुतिप्रमाणागममङ्गलैश्च शेते जरामृत्युभयादतीतः ॥ ४५ ॥

जो अपत्यस्नेह और दैवीकर्म निमित्त अनेक प्रकारके दृढ पाशोंसे मुक्त हुआ है, वह जिस समय सुख–दुःखकी चिन्ताका परित्याग करता है, उस समय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दसों इन्द्रिय इन सतरह अवयवात्मक लिङ्गशरीरसे रहित होता तथा मुक्त होकर परम गति पाता है। मनुष्य श्रुति प्रमाण "तत्त्वमसि" वाक्य और वेद शास्त्रोंमें कहे हुए मङ्गल साधन शमदम आदिके सहारे जरा–मृत्युके भयसे रहित होकर निवास करता है ॥ ४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्षीणे च पुण्ये विगते च पापे ततोनिमित्ते च फले विनष्टे ।
अलेपमाकाशमलिङ्गमेवमास्थाय पश्यन्ति महद्व्यसक्ताः ॥ ४६ ॥

पुण्य और पाप तथा मोहका कारण सुख–दुःख नष्ट होनेपर आसक्तिरहित साधक लोग हृदयाकाशमें स्थित सगुण ब्रह्मको अवलम्बन करके अन्तमें निरवयव निर्लिप्त आत्माको अस्मिता-मात्र बुद्धि तत्वसे देखते हैं ॥ ४६ ॥

यथोर्णनाभिः परिवर्तमानस्तन्तुक्षये तिष्ठति पात्यमानः ।
तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं विध्वंसते लोष्ट इवाद्रिमर्च्छन् ॥ ४७ ॥

जैसे मकडी तुंतुमय जालमें वर्त्तमान रहके निवास करती है, और जालोंका नाश होनेपर एक स्थानपर स्थित होती है; वैसेही अविद्याके वशीभूत जीव कर्म तन्तुमय गृहमें वास किया करता है और उससे छूटनेपर दुःखसे रहित होता है; जैसे मिट्टीका ढेला वेगपूर्वक पत्थरपर गिरनेसे चूर होजाता है, उसही प्रकार जीव मुक्त होके दुःखोंको परित्याग किया करता है ॥ ४७ ॥

यथा रुरुः शृङ्गमथो पुराणं हित्वा त्वचं वाप्युरगो यथावत् ।
विहाय गच्छत्यनवेक्षमाणस्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम् ॥ ४८ ॥

जैसे रुरु नाम हरिणविशेष पुराने सींगोंको त्यागके और सर्प निज केंचुली परित्याग करके अलक्षित भावसे गमन करते हैं, वैसेही जीव ममता और अभिमानसे मुक्त होकर अपने दुःखोंको परित्याग किया करता है ॥ ४८ ॥

द्रुमं यथा वाप्युदके पतन्तमुत्सृज्य पक्षी प्रपतत्यसक्तः ।
तथा ह्यसौ सुखदुःखे विहाय मुक्तः पराद्धर्यां गतिमेत्यलिङ्गः ॥ ४९ ॥

जैसे जलमें गिरते हुए वृक्षको परित्याग करके पक्षी असक्त होके उड जाता है, वैसेही जीव सुख–दुःखको परित्याग करते हुए लिङ्गशरीरसे रहित और विमुक्त होकर परम गति लाभ किया करता है ॥ ४९ ॥

अपि च भवति मैथिलेन गीतं नगरमुपाहितमग्निनाभिवीक्ष्य ।
न खलु मम हि तुषोऽपि दह्यतेऽत्र स्वयमिदमाह किल स्म भूमिपालः ॥५०॥

मिथिलाधिपति जनकने एक बार सारे नगरको जलते हुए देखकर स्वयं कहा था, कि इस अग्निदाहसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है ॥ ५० ॥

इदममृतपदं विदेहराजः स्वयमिह पञ्चशिखेन भाष्यमाणः ।
निखिलमभिसमीक्ष्य निश्चितार्थं परमसुखी विजहार वीतशोकः ॥ ५१ ॥

राजा जनदेवने स्वयं पञ्चशिख आचार्यके कहे हुए अमृत समान वचनको सुनकर सबकी पर्यालोचना करके अर्थनिश्चय करते हुए परम सुखी और शोकरहित होकर विहार किया था॥५१॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इमं हि यः पठति विमोक्षनिश्चयं न हीयते सततमवेक्षते तथा ।
उपद्रवान्नानुभवत्यदुःखितः प्रमुच्यते कपिलमिवैत्य मैथिलः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१२ ॥ ७५०४ ॥

हे महाराज ! जो पुरुष इस मोक्षनिश्चय विषयका सदा पाठ और अर्थके अनुसार पर्यालोचना करता है, वह दुःखसे रहित होता और किसी उपद्रवको अनुभव नहीं करता और जैसे जनकवंशीय जनदेव कपिल मतके पञ्चशिख आचार्यके शरणागत होकर मुक्त हुए थे, इस मोक्षनिश्चय विषयको पर्यालोचना करनेवाला पुरुष भी उस ही प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ५२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ २१२ ॥ ७५०४ ॥

: २१३ :

युधिष्ठिर उवाच—

किं कुर्वन्सुखमाप्नोति किं कुर्वन्दुःखमाप्नुते ।
किं कुर्वन्निर्भयो लोके सिद्धश्चरति भारत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे भारत ! इस लोकमें मनुष्य किन कर्मोंके करनेसे सुखलाभ करता है ? किन कर्मोंको करनेसे दुःखभागी होता और किस प्रकारके कर्मोंको करते हुए सिद्ध पुरुषोंकी तरह निर्भय होकर विचरता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

दममेव प्रशंसन्ति वृद्धाः श्रुतिसमाधयः ।
सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २ ॥

भीष्म बोले— वेददर्शी वृद्ध लोग बाह्येन्द्रियनिग्रहरूपी दमगुणकी ही प्रशंसा किया करते हैं; सब वर्णोंमें विशेष करके ब्राह्मणके पक्षमें दम गुण ही परम श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

नादान्तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते ।
क्रिया तपश्च वेदाश्च दमे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥

जिसने दमका पालन नहीं किया है, उस पुरुषकी यथा रीतिसे क्रियासिद्धि पूर्ण नहीं होती । क्रिया, तपस्या और वेद ये सब ही दमगुणमें प्रतिष्ठित होरहे हैं ॥ ३ ॥

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उच्यते ।
विपाप्मा निर्भयो दान्तः पुरुषो विन्दते महत् ॥ ४ ॥

दमगुण तेजकी वृद्धि करता है, दमकोही पण्डित लोग पवित्र कहा करते हैं; पापरहित निर्भय दान्त पुरुष महत् पदको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं लोके विपर्येति मनश्चास्य प्रसीदति ॥ ५ ॥

दान्त पुरुष ही परम सुखसे सोता है, परम सुखसे जाग्रत हुआ करता है और अनायास ही सुखसे जनसमाजमें विचरता है; उसका मन भी सदा प्रसन्न रहता है ॥ ५ ॥

तेजो दमेन ध्रियते न तत्तीक्ष्णोऽधिगच्छति ।
अभित्रांश्च बहून्नित्यं पृथगात्मनि पश्यति ॥ ६ ॥

दमगुणके जरिये तेज धारण किया जाता है, रज-तामस प्रकृतिवाला पुरुष उसमें अधिकार नहीं कर सकता । वह पुरुष काम आदि अनेक शत्रुओंको शरीरमें सदा पृथक् देखता है ॥६॥

क्रव्याद्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम् ।
तेषां विप्रतिषेधार्थं राजा सृष्टः स्वयंभुवा ॥ ७ ॥

जैसे वाघ आदि हिंसक जन्तुओंसे जीवोंको सदा भय हुआ करता है, वैसेही अदान्त पुरुषोंसे मनुष्योंको सदा ही भय होता है । उन अदान्तोंको शासन करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥

आश्रमेषु च सर्वेषु दम एव विशिष्यते ।
यच्च तेषु फलं धर्मे भूयो दान्ते तदुच्यते ॥ ८ ॥

सब आश्रमोंके बीच दमगुण ही श्रेष्ठ है; सब आश्रमोंमें धर्मोपार्जनसे जो फल हुआ करता है, दान्त पुरुषको उससे भी अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं ॥ ८ ॥

तेषां लिङ्गानि वक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ।
अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः श्रद्दधानता ॥ ९ ॥

अब जिसे दम कहते हैं, उसके लक्षणोंका स्वरूप कहता हूं । कृपणताका अभाव, अहंकार शून्यता, सन्तोष, श्रद्धा, ॥ ९ ॥

अक्रोध आर्जवं नित्यं नातिवादो न मानिता ।
गुरुपूजानसूया च दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ १० ॥

अक्रोध, सदा सरलता, अधिक बकवक नहीं करना, अभिमानका त्याग, गुरुपूजा, अनसूया, सब भूतोंमें दया, चुगली न करना, ॥ १० ॥

जनवादमृषावादस्तुतिनिन्दाविवर्जनम् ।
साधुकामश्चास्पृहयन्नायाति प्रत्ययं नृषु ॥ ११ ॥

लोकापवाद, मिथ्या वचन तथा निन्दा– स्तुतिका परित्याग, सत्पुरुषोंके सङ्गकी इच्छा और भविष्यके सुखकी अभिलाषा तथा दुःखकी चिन्ता न करना–ही दमगुणके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अवैरकृत्सूपचारः समो निन्दाप्रशंसयोः ।
सुवृत्तः शीलसंपन्नः प्रसन्नात्मात्मवान्बुधः ।
प्राप्य लोके च सत्कारं स्वर्गं वै प्रेत्य गच्छति ॥ १२ ॥

जितेन्द्रिय पुरुष किसीके साथ वैर नहीं करता, सबके साथ आदरपूर्वक बर्ताव करता है; निन्दा और प्रशंसामें समभाव रखता है; वह सच्चरित्र, सदाचारयुक्त, प्रसन्नचित्त, बुद्धिमान् मनुष्य इस लोकमें सत्कार लाभ करके अन्तकालमें स्वर्गमें जाता है ॥ १२ ॥

सर्वभूतहिते युक्तो न स्मयाद्द्वेष्टि वै जनम् ।
महाह्रद इवाक्षोभ्य प्रज्ञातृप्तः प्रसीदति ॥ १३ ॥

जो सब भूतोंके हितकर विषयमें रत होकर किसीसे भी द्वेष नहीं करता, वह महान् सरोवरकी भांति अक्षोभ्य रहता है; वह प्रज्ञातृप्त मनुष्य प्रसन्न होता है ॥ १३ ॥

अभयं सर्व भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
नमस्यः सर्वभूतानां दान्तो भवति ज्ञानवान् ॥ १४ ॥

सब प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है और जिससे सब प्राणियोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती, वही बुद्धिमान्, दान्त पुरुष सब प्राणियोंके लिये नमस्य होता है ॥ १४ ॥

न हृष्यति महत्यर्थे व्यसने च न शोचति ।
स वै परिमितप्रज्ञः स दान्तो द्विज उच्यते ॥ १५ ॥

जो बहुतसे धन पानेपर भी हर्षित नहीं होता और विपद उपस्थित होनेपर भी शोक नहीं करता, उस परिमितप्रज्ञ और दान्त पुरुषको ब्राह्मण कहा जाता है ॥ १५ ॥

कर्मभिः श्रुतसंपन्नः सद्भिराचरितैः शुभैः ।
सदैव दमसंयुक्तस्तस्य भुङ्क्ते महत्फलम् ॥ १६ ॥

जो शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर भी कर्मानुष्ठान करता है, साधुओंके आचरित पथमें निवास करता हुआ पवित्र है, और सदाही बाह्येन्द्रियनिग्रहमें रत रहता है, उसे महत् फलका भोग प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अनसूया क्षमा शान्तिः संतोषः प्रियवादिता ।
सत्यं दानमनायासो नैष मार्गो दुरात्मनाम् ॥ १७ ॥

अनसूया, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और अनायास कर्म करना—यह दुरात्माओंका मार्ग नहीं है ॥ १७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कामक्रोधौ वशे कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
विक्रम्य घोरे तपसि ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
कालाकाङ्क्षी चरेल्लोकान्निरपाय इवात्मवान् ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१३ ॥ ७५२२ ॥

ब्रह्मचारी मनुष्य काम और क्रोधको वशमें करके जितेन्द्रिय होवे । संशितव्रती ब्राह्मण घोर तपस्याचरणरूपी विक्रम प्रकाश करके कालकी आकांक्षा करता हुआ अपायविरहित और सन्तोषयुक्त होकर सब लोकोंमें विचरण किया करे ॥ १८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ २१३ ॥ ७५२२ ॥

: २१४ :

युधिष्ठिर उवाच—

द्विजातयो व्रतोपेता यदिदं भुञ्जते हविः ।
अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! यज्ञदीक्षित और मन्त्रदीक्षित द्विज लोग देवताओंकी बलिसे बचे हुए हविष्यान्नका जो स्वर्ग वा पुत्रादिकी कामनासे भक्षण किया करते हैं, वह उचित है, वा नहीं ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अवेदोक्तव्रतोपेता भुञ्जानाः कार्यकारिणः ।
वेदोक्तेषु च भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिर ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे धर्मराज ! जो लोग वेदविहित व्रताचरण न करके हविष्यान्नका भोजन करते हैं, वे इस लोकमेंही पतित होते हैं; और जो लोग दीक्षा लेके फलानुरागी होकर उसे भक्षण करते हैं, वे भी उस व्रतके फलोंके प्रति लोलुप कहे जाते हैं ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः ।
एतत्तपो महाराज उताहो किं तपो भवेत् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह महाराज ! साधारण लोग जो देहपीडाकर उपवासको तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है, अथवा दूसरे प्रकारकी कोई तपस्या है ? ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच—

मासपक्षोपवासेन मन्यन्ते यत्तपो जनाः ।
आत्मतन्त्रोपघातः स न तपस्तत्सतां मतम् ।
त्यागश्च सन्नतिश्चैव शिष्यते तप उत्तमम् ॥ ४ ॥

भीष्म बोले— साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं, कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करनेसे तपस्या होती है, आत्मविद्याकी विघ्न स्वरूप वह तपस्या साधुसम्मत नहीं है; उनके मतमें त्याग और नम्रता ही उत्तम तप है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सदोपवासी च भवेद्ब्रह्मचारी सदैव च ।
मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो दैवतं च सदा भजेत् ॥ ५ ॥

जो मनुष्य इसी प्रकार तपस्या किया करता है, परिवार समूहके सहित सदा वर्त्तमान रहने पर भी उसे सदा उपवासी और ब्रह्मचारी कहा जाता है। हे भारत ! त्यागी और विनयी ब्राह्मण सदा मुनि तुल्य रहे और सदा देवताकी उपासना करे ॥ ५ ॥

कुटुम्बिको धर्मकामः सदास्वप्नश्च भारत ।
अमांसाशी सदा च स्यात्पवित्रं च सदा जपेत् ॥ ६ ॥

वह कुटुम्बयुक्त ब्राह्मण सदा धर्मपालनकी इच्छा रक्खे और निद्रा तथा तन्द्रा रहित रहे। मांस कभी न खाय और सदा पवित्र—शुद्ध रहे ॥ ६ ॥

अमृताशी सदा च स्यान्न च स्याद्विषभोजनः ।
विघसाशी सदा च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः ॥ ७ ॥

वैश्वदेव आदि यज्ञसे बचे अमृतमय अन्नका भोजन करे तथा दूषित अन्नका ग्रहण न करे; यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता सदा होवे और सदा अतिथियोंका सत्कार करनेवाला होवे ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी कथं भवेत् ।
विघसाशी कथं च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! मनुष्य किस प्रकार सदा उपवासी हो सकता है ? किस प्रकार ब्रह्मचारी हो सकता है ? किस प्रकार भोजन करनेसे वह सदा यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता होता है ? और वह सदा अतिथियोंका सत्कार कर सकता है ? ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच—

अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च ।
सदोपवासी च भवेद्यो न भुङ्क्ते कथंचन ॥ ९ ॥

भीष्म बोले— दिन और रात्रिकालमें भोजनके विहित समयमें भोजनसे भिन्न जो भोजन नहीं करता, वही सदा उपवासी होता है ॥ ९ ॥

भार्यां गच्छन्ब्रह्मचारी ऋतौ भवति ब्राह्मणः ।
ऋतवादी सदा च स्याज्ज्ञाननित्यश्च यो नरः ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण केवल ऋतुकालमें ही भार्यासङ्ग करता है, सदा सत्यवादी होता है और जो सदा ज्ञानमें रत रहता है, उसे ही ब्रह्मचारी कहा जाता है ॥ १० ॥

अभक्षयन्वृथामांसममांसाशी भवत्युत ।
दाननित्यः पवित्रश्च अस्वप्नश्च दिवास्वपन् ॥ ११ ॥

जो वृथा मांस भक्षण नहीं करता, उसे अमांसाशी कहा जाता है। जो सदा दानमें रत रहता, वही पवित्र होता है; जो दिनमें नहीं सोता, उसे सदा जागनेवाला कहा जाता है ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु सदा स ह ।
अमृतं सकलं भुङ्क्त इति विद्धि युधिष्ठिर ॥ १२ ॥

हे धर्मराज ! प्रतिदिन कुटुम्बीजनों, सेवकों और अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर जो भोजन करता है, उसे ही केवल अमृत भोजन करनेवाला जानो ॥ १२ ॥

अभुक्तवत्सु नाश्नानः सततं यस्तु वै द्विजः ।
अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥ १३ ॥

अतिथि आदिके भोजन न करनेपर सदा जो भूखा रहता है, उसका उसही अनशन व्रतके पुण्यसे स्वर्गलोक जय होता है ॥ १३ ॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च भृत्येभ्योऽतिथिभिः सह ।
अवशिष्टं तु योऽश्नाति तमाहुर्विघसाशिनम् ॥ १४ ॥

देवता, पितर, अतिथि और सेवकोंसे बचे हुए अन्नको जो भोजन करता है, उसेही पण्डित लोग विघसाशी कहा करते हैं ॥ १४ ॥

तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणा सह ।
उपस्थिताश्चाप्सरोभिः परियान्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥

इन सब ब्राह्मणोंके शुभ लोकोंकी सीमा नहीं है, इनके गृहमें ब्रह्मा और अप्सराओंके सहित देवता लोग उपस्थित हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

देवताभिश्च ये सार्धं पितृभिश्चोपभुञ्जते ।
रमन्ते पुत्रपौत्रैश्च तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥ ७५३८ ॥

जो देवताओं और पितरोंके सहित अन्नादि उपभोग करते हैं, वे इस लोकमें पुत्रपौत्रोंके सहित आनन्दित होते हैं और उन लोगोंकी सबसे श्रेष्ठ उत्तम गति हुआ करती है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ २१४ ॥ ७५३८ ॥

: २१५ :

युधिष्ठिर उवाच—

यदिदं कर्म लोकेऽस्मिञ्शुभं वा यदि वाशुभम् ।
पुरुषं योजयत्येव फलयोगेन भारत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे भरतसत्तम पितामह ! इस लोकमें शुभ वा अशुभ कर्म जो कि अवश्य ही पुरुषको फलभागी करते हैं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by-eGangotri

कर्ता स्वित्तस्य पुरुष उताहो नेति संशयः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन त्वत्तः श्रोतुं पितामह ॥ २ ॥

पुरुष उन शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता होता है, वा नहीं; उस विषयमें मुझे सन्देह है; इसलिये आपके समीप इस विषयको यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— हे धर्मराज ! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रह्लाद और इन्द्रके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ ३ ॥

असक्तं धूतपाप्मानं कुले जातं बहुश्रुतम् ।
अस्तम्भमनहंकारं सत्त्वस्थं समये रतम् ॥ ४ ॥

किसी समय किसी विषयके फलकी अभिलाषासे रहित, पापहीन, कुलीन, बहुशास्त्रदर्शी, निरालसी, निरहङ्कारी, सत्वगुणावलम्बी, निज योग्य शम दम आदि गुणोंमें अनुरक्त, ॥ ४ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिं दान्तं शून्यागारनिवेशनम् ।
चराचराणां भूतानां विदितप्रभवाप्ययम् ॥ ५ ॥

स्तुति निन्दामें तुल्यबुद्धि, दान्त, एकान्त स्थानमें बैठे हुए, जिन्होंने स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको जाना है, ॥ ५ ॥

अक्रुध्यन्तमहृष्यन्तमप्रियेषु प्रियेषु च ।
काञ्चने वाथ लोष्टे वा उभयोः समदर्शनम् ॥ ६ ॥

जो अप्रिय विषयसे क्रुद्ध और प्रिय विषयलाभमें हर्षित नहीं होते, सुवर्ण और मट्टीके ढेलेमें जिनकी समदृष्टि है, ॥ ६ ॥

आत्मनिःश्रेयसज्ञाने धीरं निश्चितनिश्चयम् ।
परावरज्ञं भूतानां सर्वज्ञं समदर्शनम् ॥ ७ ॥

जिन्होंने आनन्दरूप चिन्मात्र आत्मविषयका कुतर्कानभिभूत होकर निश्चय किया है और जीवोंके बीच श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ अपकृष्ट कीट आदि पर्यन्त जाना है, जो सर्वज्ञ, समदर्शी ॥ ७ ॥

शक्रः प्रह्लादमासीनमेकान्ते संयतेन्द्रियम् ।
बुभुत्समानस्तत्प्रज्ञामभिगम्येदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

और संयतेन्द्रिय हैं, उस एकान्तमें बैठे हुए प्रह्लादके समीप इन्द्र उपस्थित होके उनके बुद्धिकी परीक्षा करनेकी इच्छासे यह वचन बोले ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यैः कैश्चित्संमतो लोके गुणैः स्यात्पुरुषो नृषु ।
भवत्यनपगान्सर्वांस्तान्गुणाँल्लक्षयामहे ॥ ९ ॥

हे प्रह्लाद ! इस लोकमें जिन गुणोंको पाकर कोई भी पुरुष लोगोंके बीच सबसे ही सम्मत होता है, वे सब स्थिर गुण तुममें दीखते हैं ॥ ९ ॥

अथ ते लक्ष्यते बुद्धिः समा बालजनैरिह ।
आत्मानं मन्यमानः सञ्श्रेयः किमिह मन्यसे ॥ १० ॥

और तुम्हारी बुद्धि बालककी भांति राग-द्वेषसे रहित दीख पडती है । तुम आत्माको मनन करते हुए आत्मज्ञानका श्रेष्ठ साधन क्या समझते हो ? ॥ १० ॥

बद्धः पाशैश्च्युतः स्थानाद्द्विषतां वशमागतः ।
श्रिया विहीनः प्रह्लाद शोचितव्ये न शोचसि ॥ ११ ॥

हे प्रह्लाद ! तुम पाशबद्ध, स्थानच्युत, शत्रुओंके वशमें पडे हुए थे और श्रीहीन होनेपर भी शोचनीय विषयमें शोक नहीं करते हो ? ॥ ११ ॥

प्रज्ञालाभात्तु दैत्येय उताहो धृतिमत्तया ।
प्रह्लाद स्वस्थरूपोऽसि पश्यन्व्यसनमात्मनः ॥ १२ ॥

हे दैत्यवंशप्रसूत प्रह्लाद ! तुम आत्मज्ञान बुद्धिलाभ वा सन्तोषसेही अपनी विपद देखकर भी स्वस्थचित्त कैसे हो रहे हो ? ॥ १२ ॥

इति संचोदितस्तेन धीरो निश्चितनिश्चयः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा स्वां प्रज्ञामनुवर्णयन् ॥ १३ ॥

निश्चितबुद्धि धैर्यशाली प्रह्लाद देवराजका ऐसा वचन सुनके निज प्रज्ञा वर्णन करते हुए मनोहर वचनसे कहने लगे ॥ १३ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च भूतानां यो न बुध्यते ।
तस्य स्तम्भो भवेद्बाल्यान्नास्ति स्तम्भोऽनुपश्यतः ॥ १४ ॥

प्रह्लाद बोले– जो जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति गतिको नहीं जानता अर्थात् पुरुषके भोग और अपवर्ग साधनके निमित्त अनुलोम प्रतिलोम परिणामवती मूलप्रकृतिमें जिसे आत्मभिन्न ज्ञान नहीं है, आत्मामें बुद्धिधर्म कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि आरोपित करनेवाले उस पुरुषकी बुद्धि मूढताके कारण स्तम्भित होती है, और जिसे जीवब्रह्ममें ऐक्यज्ञान है । आत्माका साक्षात्कार हो गया है, उसकी बुद्धि मोहित नहीं होती ॥ १४ ॥

स्वभावात्संप्रवर्तन्ते निवर्तन्ते तथैव च ।
सर्वे भावास्तथाभावाः पुरुषार्थो न विद्यते ॥ १५ ॥

भाव और अभाव सब पदार्थोंमें स्वभावसेही प्रवृत्त और निवृत्त होता है अर्थात् जैसे बछडा उत्पन्न होनेके पहलेही गौवोंके रुधिरपूरित स्तनमें दूध उत्पन्न होता है, उस समय उसके प्रवर्त्तक वात्सल्य न रहनेपर भी जैसे स्वाभाविक क्षीरोत्पत्ति होती है, वैसे ही सब पदार्थ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रवर्त्तककी अपेक्षा नहीं है; इसलिये पुरुषार्थका भी प्रयोजन नहीं है ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुरुषार्थस्य चाभावे नास्ति कश्चित्स्वकारकः ।
स्वयं न कुर्वतस्तस्य जातु मानो भवेदिह ॥ १६ ॥

यदि पुरुषार्थ अथवा भोग और अपवर्ग न रहे, तब कोई जगत्कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं होती है; इसलिये आत्मा यदि अकर्त्ता हो तो इस शरीरमें "मैं" यह अभिमान अविद्यासे स्वयं उत्पन्न हो सकता है ॥ १६ ॥

यस्तु कर्तारमात्मानं मन्यते साध्वसाधुनोः ।
तस्य दोषवती प्रज्ञा स्वमूर्त्यज्ञेति मे मतिः ॥ १७ ॥

जो पुरुष साधु वा असाधु होते आत्माको कर्त्ता समझे, मुझे बोध होता है, उसकी दोषवती बुद्धि तत्त्वपथको नहीं जान सकती ॥ १७ ॥

यदि स्यात्पुरुषः कर्ता शक्रात्मश्रेयसे ध्रुवम् ।
आरम्भास्तस्य सिध्येरन्न च जातु पराभवेत् ॥ १८ ॥

हे देवेश ! यदि पुरुषही कर्त्ता हो, तो उसके आत्मकल्याणके निमित्त अवश्यही सब कार्य सिद्ध हों, और पुरुष कदापि पराभूत न होवे ॥ १८ ॥

अनिष्टस्य हि निर्वृत्तिरनिवृत्तिः प्रियस्य च ।
लक्ष्यते यतमानानां पुरुषार्थस्ततः कुतः ॥ १९ ॥

जब कि हितके वास्ते यत्नवान् मनुष्योंकी अनिष्ट सिद्धि और अर्थनिरोध दीखता है, तब किसलिये पुरुषार्थ स्वीकार किया जासकता है ? ॥ १९ ॥

अनिष्टस्याभिनिर्वृत्तिमिष्टसंवृत्तिमेव च ।
अप्रयत्नेन पश्यामः केषांचित्तत्स्वभावतः ॥ २० ॥

अदृष्टकी अनुकूलता न रहनेपर यदि कार्यमें व्याघात हो, तब आत्महितमें यत्नवान् मनुष्योंके अनिष्ट अदृष्टकी उत्पत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि भोक्तृत्व और कर्तृत्व निश्चयसे एकमें रहता है, ऐसा नियम नहीं है। ईश्वर और काल स्वभावकाही नामान्तर है, क्योंकि कोई कोई पुरुषके प्रयत्न न रहनेपर भी स्वाभाविक अनिष्टसिद्धि और इष्टतिरोधान होते दीख पडता है ॥ २० ॥

प्रतिरूपधराः केचिद्दृश्यन्ते बुद्धिसत्तमाः ।
विरूपेभ्योऽल्पबुद्धिभ्यो लिप्समाना धनागमम् ॥ २१ ॥

कोई कोई केवल सुंदर और कोई कोई अत्यन्त बुद्धियुक्त होकर भी कुरुप और अल्पबुद्धि लोगोंसे धनलाभकी इच्छा करते हुए दिखाई देते हैं ॥ २१ ॥

स्वभावप्रेरिताः सर्वे निविशन्ते गुणा यदा ।
शुभाशुभास्तदा तत्र तस्य किं मानकारणम् ॥ २२ ॥

जब कि सुख दुःख आदि सब शुभाशुभ गुण स्वभावप्रेरित होकर पुरुषोंमें निविष्ट होते हैं, तब मैं सुखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादि अभिमानके कारण कुछ भी नहीं हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वभावादेव तत्सर्वमिति मे निश्चिता मतिः ।
आत्मप्रतिष्ठिता प्रज्ञा मम नास्ति ततोऽन्यथा ॥ २३ ॥

सुख दुःख आदि सब विषय स्वाभाविक हुआ करता हैं, ऐसा मेरे मनमें निश्चय है और क्या कहूं, मेरे मतमें युक्ति और आत्मज्ञान स्वभावसे स्वतन्त्र नहीं है ॥ २३ ॥

कर्मजं त्विह मन्येऽहं फलयोगं शुभाशुभम् ।
कर्मणां विषयं कृत्स्नमहं वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ २४ ॥

इस लोकमें कर्मजनित शुभाशुभ फल भोग प्राप्त हुआ करता है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं; इसलिये अब मैं सब कर्मोंका विशेष विवरण कहता हूं, सुनो ॥ २४ ॥

यथा वेदयते कश्चिदोदनं वायसो वदन् ।
एवं सर्वाणि कर्माणि स्वभावस्यैव लक्षणम् ॥ २५ ॥

जैसे अन्नभक्षक कौआ उसे प्रकाश करना जानता है, वैसे ही सब कर्म स्वभावके ही असाधारण धर्म हैं, अर्थात् सब कर्म ही अपने स्वभावको प्रकाश करते हैं। जैसे तागे पटके कारण होनेसे तन्तुनिष्ठ शुक्लादि गुण पटगत विचित्रतामें कारण होते हैं, वैसेही स्वभावही जन्मादि मात्रका हेतु है ॥ २५ ॥

विकारानेव यो वेद न वेद प्रकृतिं पराम् ।
तस्य स्तम्भो भवेद्बाल्यान्नास्ति स्तम्भोऽनुपश्यतः ॥ २६ ॥

जो पुरुष धर्माधर्म आदि सब विकारोंको जानता है, और त्रिगुणमयी प्रकृतिसे श्रेष्ठ उपादान प्रकृति अर्थात् ब्रह्मको नहीं जानता, उस कर्म और प्रकृतिके भेददर्शी पुरुषमें मूढतासे जडता हुआ करती है, और जो दोनोंकी ऐक्यता अवलोकन करता है, उसमें जडता नहीं होती॥२६॥

स्वभावभाविनो भावान्सर्वानेवेह निश्चये ।
बुध्यमानस्य दर्पो वा मानो वा किं करिष्यति ॥ २७ ॥

स्वभावसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको—भावोंको जिसने निश्चय रूपसे जाना है, दर्प वा अभिमान उसका क्या कर सकता है ? ॥ २७ ॥

वेद धर्मविधिं कृत्स्नं भूतानां चाप्यनित्यताम् ।
तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत् ॥ २८ ॥

हे देवराज ! मैं सब धर्म, विधि और सब भूतोंकी अनित्यता विशेष रूपसे जानता हूं; सब वस्तु ही अनित्य हैं, इसही निमित्त शोक नहीं करता ॥ २८ ॥

निर्ममो निरहंकारो निरीहो मुक्तबन्धनः ।
स्वस्थोऽव्यपेतः पश्यामि भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ २९ ॥

मैं ममताहीन, निरहङ्कार, वासनारहित, बन्धनसे मुक्त, स्वरूप और देह आदिमें अनभिमानके कारण स्वरूपमें अप्रच्युत होकर जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परब्रह्मको अवलोकन करता हूं ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृतप्रज्ञस्य दान्तस्य वितृष्णस्य निराशिषः ।
नायासो विद्यते शक्र पश्यतो लोकविद्यया ॥ ३० ॥

हे शक्र ! मैं शुद्धबुद्धि, जितेन्द्रिय, परितृप्त और कामना-वासना रहित होकर आत्मविद्याके सहारे सब विषयोंको देखता हूं, इसलिये मुझे कभी कुछ क्लेश नहीं है ॥ ३० ॥

प्रकृतौ च विकारे च न मे प्रीतिर्न च द्विषे ।
द्वेष्टारं न च पश्यामि यो ममाद्य ममायते ॥ ३१ ॥

विश्वकर्त्री प्रकृति वा धर्माधर्मके फल सुख दुःखमें मुझे प्रीति वा द्वेष नहीं है; मैं इस समय किसी को भी द्वेष्टा नहीं देखता हूं और पुत्र, मित्र आदिकी भांति ममता करनेवाले किसी पुरुषको भी अवलोकन नहीं करता हूं ॥ ३१ ॥

नोर्ध्वं नावाङ्न तिर्यक्च न क्वचिच्छक्र कामये ।
न विज्ञाने न विज्ञेये नाज्ञाने शर्म विद्यते ॥ ३२ ॥

हे इन्द्र ! मैं कभी स्वर्ग, पाताल, अथवा मर्त्यलोककी कामना नहीं करता; ऐसा नहीं कह सकते, ज्ञानके विषय विज्ञान अर्थात् बुद्धितत्वमें और आत्मा स्वरूप चिदात्मामें कुछ सुख नहीं है, आत्मा धर्माधर्म और उसके फल सुख दुःखका आश्रय नहीं है, इसही लिये मैं कुछ कामना नहीं करता, केवल ज्ञानसे तृप्त होकर निवास करता हूं ॥ ३२ ॥

शक्र उवाच—

येनैषा लभ्यते प्रज्ञा येन शान्तिरवाप्यते ।
प्रब्रूहि तमुपायं मे सम्यक्प्रह्लाद पृच्छते ॥ ३३ ॥

इन्द्र बोले- हे प्रह्लाद ! मैं पूछता हूं, कि जिस उपायसे ऐसी बुद्धि और शान्ति लाभ होती है, उसे तुम यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३३ ॥

प्रह्लाद उवाच—

आर्जवेनाप्रमादेन प्रसादेनात्मवत्तया ।
वृद्धशुश्रूषया शक्र पुरुषो लभते महत् ॥ ३४ ॥

प्रह्लाद बोले- हे सुरराज ! सरलता, सावधानता, प्रसन्नता, जितेन्द्रियता और वृद्धोंकी सेवासे पुरुष मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ३४ ॥

स्वभावाल्लभते प्रज्ञां शान्तिमेति स्वभावतः ।
स्वभावादेन तत्सर्वं यत्किंचिदनुपश्यसि ॥ ३५ ॥

इन गुणोंको आत्मसात् करनेसे पुरुष स्वभावसेही ज्ञान लाभ करता है, और स्वभावसेही शान्ति प्राप्त होती है; आप जो कुछ देखते हैं, वे सब स्वाभाविकही सिद्ध होते हैं ॥ ३५ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

इत्युक्तो दैत्यपतिना शक्रो विस्मयमागमत् ।
प्रीतिमांश्च तदा राजंस्तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ३६ ॥

भीष्म बोले— हे महाराज ! दैत्यपति प्रह्लादने जब ऐसा कहा, तब देवराज विस्मययुक्त हुए और उस समय उन्होंने प्रसन्न होकर प्रह्लादके वचनोंका समादर किया ॥ ३६ ॥

स तदाभ्यर्च्य दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यपतिरीश्वरः ।
अनुरेन्द्रमुपामन्त्र्य जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ ७५७५ ॥

फिर त्रिलोकेश्वर इन्द्रने दैत्योंके राजा प्रह्लादका सत्कार—पूजन किया और आमन्त्रण करके निज स्थानपर चले गये ॥ ३७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ २१५ ॥ ७५७५ ॥

ः २१६ ः

युधिष्ठिर उवाच—

यथा बुद्ध्या महीपालो भ्रष्टश्रीर्विचरेन्महीम् ।
कालदण्डविनिष्पिष्टस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! जो राजा कालदण्डसे विपद्ग्रस्त और श्रीभ्रष्ट हो गया हो, वह किस बुद्धिसे इस महीमण्डलमें विचरे ? आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वासवस्य च संवादं बलेर्वैरोचनस्य च ॥ २ ॥

भीष्म बोले— प्राचीन लोग इस विषयमें विरोचनपुत्र बलि और देवराज इन्द्रके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं ॥ २ ॥

पितामहमुपागत्य प्रतिपत्य कृताञ्जलिः ।
सर्वानेवासुराञ्जित्वा बलिं पप्रच्छ वासवः ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्रने सब असुरोंको जीतके सर्वलोकपितामह ब्रह्माके पास जाके प्रणाम करनेके अनन्तर हाथ जोडके बलिका विषय पूछा ॥ ३ ॥

यस्य स्म ददतो वित्तं न कदाचन हीयते ।
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिम् ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! सदा धन दान करनेपर भी जिसका धन कभी नहीं घटता, मैं उस बलिको नहीं जानता हूं; इसलिये आप उस बलिका विषय वर्णन करिये ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एव ह्यस्तमयते स स्म विद्योतते दिशः ।
स वर्षति स्म वर्षाणि यथाकालमतन्द्रितः ।
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिम् ॥ ५ ॥

वह बलिही अस्तमय होता है, बलिही सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, बलिही अतन्द्रित होकर यथाकालमें जलकी वर्षा किया करता है। हे ब्रह्मन् ! मैं उस बलिको नहीं जानता, इसलिये आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये ॥ ५ ॥

स वायुर्वरुणश्चैव स रविः स च चन्द्रमाः ।
सोऽग्निस्तपति भूतानि पृथिवी च भवत्युत ।
तं बलिं नाधिगच्छामि ब्रह्मन्नाचक्ष्व मे बलिम् ॥ ६ ॥

वह बलिही वायु, बलिही वरुण, बलिही सूर्य, बलिही चन्द्रमा और बलिही अग्नि होकर सब जीवोंको ताप देता है, तथा वह बलिही पृथ्वी स्वरूप हुआ करता है, मैं उस बलिको नहीं जानता। हे ब्रह्मन् ! इसलिये आप मेरे समीप उस बलिका विषय वर्णन करिये ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच –

नैतत्ते साधु मघवन्यदेतदनुपृच्छसि ।
पृष्टस्तु नानृतं ब्रूयात्तस्माद्वक्ष्यामि ते बलिम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मा बोले– हे इन्द्र ! तुम जो बलिका विषय पूछते हो, वह तुम्हारे पक्षमें कल्याणकारी नहीं है; तब पूछनेपर झूठ न कहना चाहिये, इसही लिये मैं तुम्हारे निकट बलिका विषय वर्णन करता हूं ॥ ७ ॥

उष्ट्रेषु यदि वा गोषु खरेष्वश्वेषु वा पुनः ।
वरिष्ठो भविता जन्तुः शून्यागारे शचीपते ॥ ८ ॥

हे शचीश्वर ! ऊंट, गौ, गधे और घोडोंमेंसे कोई एक रूप धरके सूने स्थानमें जा वरिष्ठ होकर वास करे, वही बलि है ॥ ८ ॥

शक्र उवाच—

यदि स्म बलिना ब्रह्मञ्शून्यागारे समेयिवान् ।
हन्यामेनं न वा हन्यां तद्ब्रह्मन्ननुशाधि माम् ॥ ९ ॥

इन्द्र बोले– हे ब्रह्मन् ! यदि मैं सूने स्थानमें बलिके साथ मिलूं, तो उसे मारूंगा; वा नहीं ? उस विषयमें आप मुझे आज्ञा करिये ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच—

मा स्म शक्र बलिं हिंसीर्न बलिर्वधमर्हति ।
न्यायांस्तु शक्र प्रष्टव्यस्त्वया वासव काम्यया ॥ १० ॥

ब्रह्मा बोले– हे इन्द्र ! तुम बलिकी हिंसा न करना, बलि वध्य नहीं है। हे देवराज ! तुम इच्छानुसार बलिके निकट नीति विषयक प्रश्न पूछना ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Vedanta Kutir Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

एवमुक्तो भगवता महेन्द्रः पृथिवीं तदा ।
चचारैरावतस्कन्धमधिरुह्य श्रिया वृतः ॥ ११ ॥

भीष्म बोले— जब भगवान् ब्रह्माने महेन्द्रसे ऐसा कहा, तब वह उसही समय ऐरावतपर चढके राजलक्ष्मीसे शोभायुक्त होकर पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे ॥ ११ ॥

ततो ददर्श स बलिं खरवेषेण संवृतम् ।
यथाख्यातं भगवता शून्यागारकृतालयम् ॥ १२ ॥

अनन्तर भगवान् पितामहने जिस प्रकार कहा था, उसके अनुसार ही उन्होंने सून स्थानमें स्थिर खरवेषधारी बलिको अवलोकन किया ॥ १२ ॥

शक्र उवाच—

खरयोनिमनुप्राप्तस्तुषभक्षोऽसि दानव ।
इयं ते योनिरधमा शोचस्याहो न शोचसि ॥ १३ ॥

इन्द्र बोले— हे दानव ! तुम खरयोनिमें प्राप्त होकर तुष भक्षण कर रहे हो; इस अधम योनिमें प्राप्त होनेसे तुम्हें दुःख होता है, वा नहीं ? ॥ १३ ॥

अदृष्टं बत पश्यामि द्विषतां वशमागतम् ।
श्रिया विहीनं मित्रैश्च भ्रष्टवीर्यपराक्रमम् ॥ १४ ॥

मैं देखता हूं, तुम्हारा अदृष्ट शत्रुओंके वशीभूत, श्रीहीन, मित्ररहित, भ्रष्टवीर्य और नष्टपराक्रम हुआ है ॥ १४ ॥

यत्तद्यानसहस्रेण ज्ञातिभिः परिवारितः ।
लोकान्प्रतापयन्सर्वान्न्याय्यस्मानवितर्कयन् ॥ १५ ॥

पहले तुम स्वजनोंमें घिरकर सब लोगोंको परितापित करते हुए हम देवता लोगोंको अग्राह्य करके सहस्रों भांतिके यानोंके जरिये गमन करते थे, ॥ १५ ॥

त्वन्मुखाश्चैव दैतेया व्यतिष्ठंस्तव शासने ।
अकृष्टपच्या पृथिवी तवैश्वर्ये बभूव ह ।
इदं च तेऽद्य व्यसनं शोचस्याहो न शोचसि ॥ १६ ॥

दैत्यलोग तुम्हारा मुख देखते हुए तुम्हारे सुखापेक्षी होकर तुम्हारे ही शासनमें निवास करते थे; पृथ्वीमें तुम्हारे राज्यमें विना जोते-बोये ही शस्य उत्पन्न होते थे; आज तुम्हारे ऊपर यह संकट आया है, इससे तुम्हें जो दुःख होता है, उसके लिये तुम शोक करते हो, वा नहीं ? ॥१६॥

यदातिष्ठः समुद्रस्य पूर्वकूले विलेलिहन् ।
ज्ञातिभ्यो विभजन्वित्तं तदासीत्ते मनः कथम् ॥ १७ ॥

पहले तुम समुद्रके पूर्व किनारेपर भोगोंको आस्वाद लेते हुए वास करते थे और स्वजनोंको धन बांट देते थे; उस समय तुम्हारा मन कैसा हुआ था ? ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्ते सहस्रसमिता नर्तुर्देवयोषितः ।
बहूनि वर्षपूगानि विहारे दीप्यतः श्रिया ॥ १८ ॥

अनेक वर्ष पर्यन्त, श्रीयुक्त रहके जब तुम विहार करते थे, उस समय सहस्रों सुरकामिनी तुम्हारे समीप उपस्थित होकर नृत्य करती थीं ॥ १८ ॥

सर्वाः पुष्करमालिन्यः सर्वाः काञ्चनसप्रभाः ।
कथमद्य तदा चैव मनस्ते दानवेश्वर ॥ १९ ॥

वे सब सुवर्णके समान रूपवाली कमलोंकी मालाओंसे अलंकृत होती थीं; हे दानेश्वर ! तुम्हारा मन उस समयमें कैसा था और इस समयमें किस प्रकार है ? ॥ १९ ॥

छत्रं तवासीत्सुमहत्सौवर्णं मणिभूषितम् ।
नर्तुर्यत्र गन्धर्वाः षट्सहस्राणि सप्तधा ॥ २० ॥

पहले तुम्हारा महत् मणियोंसे भूषित सुवर्णमय विशाल छत्र था; उस समय तुम्हारे समीप छः हजार गन्धर्व सप्त स्वरोंमें गीत गाते हुए नृत्य करते थे ॥ २० ॥

यूपस्तवासीत्सुमहान्यजतः सर्वकाञ्चनः ।
यत्राददः सहस्राणामयुतानि गवां दश ॥ २१ ॥

तुमने जब यज्ञ किये थे उस समय तुम्हारे सब यज्ञयूप सुवर्णमय थे; जिस यज्ञमें तुमने पहिले सदा दस करोड गौओंका सहस्रोंवार दान किया था ॥ २१ ॥

यदा तु पृथिवीं सर्वां यजमानोऽनुपर्यया: ।
शम्याक्षेपेण विधिना तदासीत्किं नु ते हृदि ॥ २२ ॥

जब तुमने यज्ञ करनेमें रत होकर सब पृथ्वीमण्डलको यज्ञकार्यमें अपर्याप्त समझके उसे परित्याग करके परिक्रम किया था; उस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें कैसे भाव उदय हुए थे ? ॥ २२ ॥

न ते पश्यामि भृङ्गारं न छत्रं व्यजनं न च ।
ब्रह्मदत्तां च ते मालां न पश्याम्यसुराधिप ॥ २३ ॥

हे असुरेश्वर ! अब तुम्हारे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और दोनों चामर नहीं दीखते हैं, तथा ब्रह्माने तुम्हें जो दिव्य माला प्रदान की थी, उसे भी नहीं देखता हूं ॥ २३ ॥

बलिरुवाच—

न त्वं पश्यसि भृङ्गारं न छत्रं व्यजनं न च ।
ब्रह्मदत्तां च मे मालां न त्वं द्रक्ष्यसि वासव ॥ २४ ॥

बलि बोले— हे इन्द्र ! तुम मेरे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और चामर तथा ब्रह्माकी दी हुई मालाको भी नहीं देख सकोगे ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुहायां निहितानि त्वं मम रत्नानि पृच्छसि ।
यदा मे भविता कालस्तदा त्वं तानि द्रक्ष्यसि ॥ २५ ॥

मेरे सब रत्न जिनके विषयमें तुम पूछते हो, वे सब गुफामें छिपाये हैं; जब मेरा अच्छा समय होगा, तब तुम मेरे उक्त रत्नोंको देखोगे ॥ २५ ॥

न त्वेतदनुरूपं ते यशसो वा कुलस्य वा ।
समृद्धार्थोऽसमृद्धार्थं यन्मां कत्थितुमिच्छसि ॥ २६ ॥

इस समय तुम समृद्धियुक्त और मैं असमृद्ध हूं, इसलिये तुम जो मेरे समीप अपनी बडाई करते हो, वह तुम्हारी कीर्त्ति और कुलके अनुरूप नहीं है ॥ २६ ॥

न हि दुःखेषु शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति चर्द्धिषु ।
कृतप्रज्ञा ज्ञानतृप्ताः क्षान्ताः सन्तो मनीषिणः ॥ २७ ॥

बुद्धिमान्, ज्ञानतृप्त, क्षमाशील, साधु, मनीषी पुरुष दुःखके समय शोक नहीं करते और समृद्धिकालमें हर्षित भी नहीं होते हैं ॥ २७ ॥

त्वं तु प्राकृतया बुद्ध्या पुरंदर विकत्थसे ।
यदाहमिव भावी त्वं तदा नैवं वदिष्यसि ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ ७६०३ ॥

हे पुरन्दर ! तुम अपनी तुच्छ बुद्धिके कारण ऐसा आत्मप्रशंसात्मक वचन कहते हो । जब तुम मेरे समान होगे, तब ऐसा न कह सकोगे ॥ २८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ २१६ ॥ ७६०३ ॥

: २१७ :

भीष्म उवाच—

पुनरेव तु तं शक्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
निःश्वसन्तं यथा नागं प्रव्याहाराय भारत ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे भरतकुलप्रदीप ! सर्पकी तरह फुफकारते हुए बलिसे देवराज हंसके अपना ऐश्वर्य सूचित करनेके लिये फिर यह वचन बोले ॥ १ ॥

यत्तद्यानसहस्रेण ज्ञातिभिः परिवारितः ।
लोकान्प्रतापयन्सर्वान्न्यास्यस्मानवितर्कयन् ॥ २ ॥

हे बलिराज ! पहले तुम जो स्वजनोंके बीच घिरके सब लोगोंको परितापित और हम लोगोंकी अवज्ञा करते हुए सहस्र प्रकारके यानोंसे गमन करते थे, ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दृष्ट्वा सुकृपणां चेमामवस्थामात्मनो बले ।
ज्ञातिमित्रपरित्यक्तः शोचस्याहो न शोचसि ॥ ३ ॥

इस समय उन स्वजनोंसे और मित्रोंसे परित्यक्त होकर अपनी यह अत्यन्त दीनदशा देखकर शोक करते हो, वा नहीं ? ॥ ३ ॥

प्रीतिं प्राप्यातुलां पूर्वं लोकांश्चात्मवशे स्थितान् ।
विनिपातमिमं चाद्य शोचस्याहो न शोचसि ॥ ४ ॥

पहले अतुल प्रीति लाभ करके तथा सब लोकोंको अपने वशमें रखके, इस समय आज तुम्हारा घोर विनिपात हुआ है, यह देखकर तुम दुःखित होते हो, वा नहीं ? ॥ ४ ॥

बलिरुवाच—

अनित्यमुपलक्ष्येदं कालपर्यायमात्मनः ।
तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत् ॥ ५ ॥

बलि बोले— हे देवराज ! इस जगत्में कालक्रमसे सब वस्तु अनित्य होती हैं, उसे देखकर मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; क्यों कि जगत्में जो कुछ है, वह सभी विनश्वर है ॥ ५ ॥

अन्तवन्त इमे देहा भूतानामसुराधिप ।
तेन शक्र न शोचामि नापराधादिदं मम ॥ ६ ॥

हे सुरराज ! जीवोंके इन सब शरीरोंका अन्त होगा, इसहीसे मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; मैं यह नहीं कहता, कि मेरी यह दशा किसी मेरे अपराधसे ही हुइ है ॥ ६ ॥

जीवितं च शरीरं च प्रेत्य वै सह जायते ।
उभे सह विवर्धेते उभे सह विनश्यतः ॥ ७ ॥

जीवन, शरीर और मृत्यु एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं; दोनों एकत्र वर्धित होते हैं और एकत्र ही विनष्ट हुआ करते हैं ॥ ७ ॥

तदीदृशमिदं भावमवशः प्राप्य केवलम् ।
यद्येवमभिजानामि का व्यथा मे विजानतः ॥ ८ ॥

मैं ऐसा शरीर पाके केवल अवश हुआ हूं, सो मत समझो; मैं इस विषयके तत्वोंको— देहकी अनित्यता और आत्माकी असङ्गता— जानता हूं और जाननेसे ही मुझे किसी विषयमें क्लेश नहीं है ॥ ८ ॥

भूतानां निधनं निष्ठा स्रोतसामिव सागरः ।
नैतत्सम्यग्विजानन्तो नरा मुह्यन्ति वज्रभृत् ॥ ९ ॥

जैसे जलप्रवाह समुद्रमें जाके लीन होता है, वैसे ही जीवोंकी अन्तिम गति मृत्यु है । हे वज्रधर ! जो लोग इसे पूरी रीतिसे जानते हैं, वे सब मनुष्य शोक नहीं करते ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये त्वेवं नाभिजानन्ति रजोमोहपरायणाः ।
ते कृच्छ्रं प्राप्य सीदन्ति बुद्धिर्येषां प्रणश्यति ॥ १० ॥

और जो लोग रजोगुणसे ग्रस्त और मोहयुक्त होकर इस विषयको नहीं जानते हैं, और जिनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वेही संकटमें पडकर दुःखित हुआ करते हैं ॥ १० ॥

बुद्धिलाभे हि पुरुषः सर्वं नुदति किल्बिषम् ।
विपाप्मा लभते सत्त्वं सत्त्वस्थः संप्रसीदति ॥ ११ ॥

मनुष्य ज्ञानलाभसे ही सब पापोंको नष्ट कर देता है । पापरहित मनुष्य सत्वगुणका लाभ किया करता है; सत्वगुणमें स्थिर होकर मनुष्य पूर्ण रूपसे प्रसन्न होता है ॥ ११ ॥

ततस्तु ये निवर्तन्ते जायन्ते वा पुनः पुनः ।
कृपणाः परितप्यन्ते तेऽनर्थैः परिचोदिताः ॥ १२ ॥

जो लोग सत्वगुणसे भ्रष्ट होते हैं, वे बार बार जन्म ग्रहण किया करते हैं; और काम आदिके वशमें होकर जन्म, जरा प्रभृति विविध दुःखोंको भोगते हुए दीन भावसे परिताप करते हैं ॥ १२ ॥

अर्थसिद्धिमनर्थं च जीवितं मरणं तथा ।
सुखदुःखफलं चैव न द्वेष्मि न च कामये ॥ १३ ॥

मैं कामादि विषय सिद्धि, अर्थ, जीवन और सुखमय फलकी कामना नहीं करता और अनर्थ, मृत्यु और दुःखके फलमें द्वेष नहीं रखता हूं ॥ १३ ॥

हतं हन्ति हतो ह्येव यो नरो हन्ति कंचन ।
उभौ तौ न विजानीतो यश्च हन्ति हतश्च यः ॥ १४ ॥

निर्जीव शरीरकाही नाश होता है, जीवका कदापि नाश नहीं होता । जो मनुष्य जिस किसी जीवका वध करता है, वह अर्थात् "मैं हन्ता हूं," ऐसा अभिमानी पुरुष भी मरता है; जो मारता है, और जो मरता है, वे दोनों ही कौन कर्त्ता है, उसे नहीं जानते ॥ १४ ॥

हत्वा जित्वा च मघवन्यः कश्चित्पुरुषायते ।
अकर्ता ह्येव भवति कर्ता त्वेव करोति तत् ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! मारके वा जय करके जो कोई पुरुष पुरुषत्व प्रकाशित करता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है; जो जगत्का कर्त्ता है, जो परमात्मा है, वही उस कार्यको किया करता है ॥ १५ ॥

को हि लोकस्य कुरुते विनाशप्रभवावुभौ ।
कृतं हि तत्कृतेनैव कर्ता तस्यापि चापरः ॥ १६ ॥

इस जगत्की उत्पत्ति और नाशका कर्त्ता कौन है ? ऐसा संशय उपस्थित होनेपर उस समय यह बोध होता है, कि उत्पत्तियुक्त मनही उसे सिद्ध करता है; परन्तु मनका भी दूसरा (ईश्वर) ही कर्ता है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
एतद्योनीनि भूतानि तत्र का परिदेवना ॥ १७ ॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि—ये पांचों जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें कारण हैं; इसलिये उस विषयमें शोक करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ १७ ॥

महाविद्योऽल्पविद्यश्च बलवान्दुर्बलश्च यः ।
दर्शनीयो विरूपश्च सुभगो दुर्भगश्च यः ॥ १८ ॥

चाहे मनुष्य विविध विद्यासे युक्त हो, अथवा अविद्वान् ही हो; बलवान् हो वा निर्बल ही होवे; सुन्दर हो, वा कुरूपही हो; सुभग हो अथवा दुर्भगही होवे ॥ १८ ॥

सर्वं कालः समादत्ते गम्भीरः स्वेन तेजसा ।
तस्मिन्कालवशं प्राप्ते का व्यथा मे विजानतः ॥ १९ ॥

अत्यन्त गम्भीर काल निज तेजके सहारे सबको ही संग्रह कर रहा है; जब कि मैं जानता हूं, सब कालके वशीभूत होते हैं, और यह जगत् क्षणभंगुर है, तब मुझे किसी विषयमें दुःख हो सकता है ? ॥ १९ ॥

दग्धमेवानुदहति हतमेवानुहन्ति च ।
नश्यते नष्टमेवाग्रे लब्धव्यं लभते नरः ॥ २० ॥

जब कालस्वरूप ईश्वर पहले जलाता है, तब अग्नि पीछे उसे भस्म करती है; कालके जरिये मृत शरीरको मनुष्य पीछे नष्ट किया करता है। ईश्वर जिसे पहले ही नष्ट करता है, वही पीछे किसीसे नष्ट होता है; ईश्वर जो दान करता है, मनुष्य उस ही प्राप्त होनेवाले विषयको पाता है ॥ २० ॥

नास्य द्वीपः कुतः पारं नावारः संप्रदृश्यते ।
नान्तमस्य प्रपश्यामि विधेर्दिव्यस्य चिन्तयन् ॥ २१ ॥

इस पुण्य—पापसे रहित कालरूपी विधाताका पार नहीं है, इससे परम्पार भी दृष्टिगोचर नहीं होता; मैं चिन्तन करनेपर भी दिव्य विधाता कालका अन्त नहीं देखता हूं ॥ २१ ॥

यदि मे पश्यतः कालो भूतानि न विनाशयेत् ।
स्यान्मे हर्षश्च दर्पश्च क्रोधश्चैव शचीपते ॥ २२ ॥

हे शचीपति ! मेरे प्रत्यक्षमें यदि काल सब भूतोंका नाश न करता, तो अवश्यही मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध हो सकता ॥ २२ ॥

तुषभक्षं तु मां ज्ञात्वा प्रविविक्तजने गृहे ।
बिभ्रतं गार्दभं रूपमादिश्य परिगर्हसे ॥ २३ ॥

मैं गर्दभरूप धरके निर्जन स्थानमें तुषभक्षण करता हूं, उसे जानके तुम आके मेरी निन्दा करते हो; ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इच्छन्नहं विकुर्यां हि रूपाणि बहुधात्मनः ।
विभीषणानि यानीक्ष्य पलायेथास्त्वमेव मे ॥ २४ ॥

परन्तु जिन सब भयानक रूपोंको देखकर तुम भी भागनेका मार्ग देखने लगते हो, मैं इच्छा करनेसे अनायासही वैसे अनेक प्रकारके भयङ्कर रूप धारण कर सकता हूं ॥ २४ ॥

कालः सर्वं समादत्ते कालः सर्वं प्रयच्छति ।
कालेन विधृतं सर्वं मा कृथाः शक्र पौरुषम् ॥ २५ ॥

हे शक्र ! कालही सबका संहार करता है, कालही सब कुछ प्रदान करता है, सभी कालकाही विधान है; इसलिये तुम पौरुष प्रकाश मत करो ॥ २५ ॥

पुरा सर्वं प्रव्यथते मयि क्रुद्धे पुरंदर ।
अवैमि त्वस्य लोकस्य धर्मं शक्र सनातनम् ॥ २६ ॥

हे पुरन्दर ! जब मैं पहले क्रुद्ध हुआ था, उस समय सचराचर समस्त लोक व्यथित हुए थे; हे शक्र ! इससे मैंने इस जगत्की ह्रास, वृद्धि रूप सनातन धर्मको विशेष रूपसे जाना है ॥ २६ ॥

त्वमप्येवमपेक्षस्व मात्मना विस्मयं गमः ।
प्रभवश्च प्रभावश्च नात्मसंस्थः कदाचन ॥ २७ ॥

तुम इस जगत्को इसही दृष्टिसे देखो; अपने मनमें विस्मययुक्त न होओ; ऐश्वर्य और ऐश्वर्यका आविष्कार कदापि अपने अधीन नहीं हैं ॥ २७ ॥

कौमारमेव ते चित्तं तथैवाद्य यथा पुरा ।
समवेक्षस्व मघवन्बुद्धिं विन्दस्व नैष्ठिकीम् ॥ २८ ॥

हे मघवन् ! तुम्हारा चित्त अभी बालकके समान है; कौमार अवस्थामें तुम्हारा चित्त जैसा था, इस समय भी वैसा ही है; उसे देखकर तुम नैष्ठिक बुद्धिका लाभ करो ॥ २८ ॥

देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
आसन्सर्वे मम वशे तत्सर्वं वेत्थ वासव ॥ २९ ॥

हे वासव ! तुम सब कुछ जानतेही हो, कि देव, मनुष्य, पितर, गन्धर्व, नाग और राक्षस सर्प– ये सब मेरे वशमें थे ॥ २९ ॥

नमस्तस्यै दिशेऽप्यस्तु यस्यां वैरोचनो बलिः ।
इति मामभ्यपद्यन्त बुद्धिमात्सर्यमोहिताः ॥ ३० ॥

" वैरोचन बलि जिस दिशामें है, उस दिशाकोही नमस्कार है, " बुद्धि मत्सरतासे मोहित मनुष्य मेरी शरण लेकर मुझे ऐसाही समझते थे ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाहं तदनुशोचामि नात्मभ्रंशं शचीपते ।
एवं मे निश्चिता बुद्धिः शास्तुस्तिष्ठाम्यहं वशे ॥ ३१ ॥

हे शचीपति ! इस समय मैं अपने इस पतनके निमित्त शोक नहीं करता; मेरी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि मैं सबके शासक ईश्वरके वशमें निवास करता हूं ॥ ३१ ॥

दृश्यते हि कुले जातो दर्शनीयः प्रतापवान् ।
दुःखं जीवन्सहामात्यो भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ३२ ॥

हे शक्र ! जब देखा जाता है, कि सत्कुलमें उत्पन्न हुआ, सुन्दर रूपवाला, प्रतापवान् मनुष्य अपने मन्त्रियोंके साथ दुःखसे जीवन बिता रहा है, तब कहना पडेगा, कि उसका भवितव्य वैसाही था ॥ ३२ ॥

दौष्कुलेयस्तथा मूढो दुर्जातः शक्र दृश्यते ।
सुखं जीवन्सहामात्यो भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ३३ ॥

और नीच वंशमें उत्पन्न हुआ अत्यन्त मूढ अशुभजन्मा मनुष्य अपने मन्त्रियों सहित परम सुखसे जीवनयात्राका निर्वाह कर रहा है, उसकी भी भवितव्यता वैसी ही माननी चाहिये ॥३३॥

कल्याणी रूपसंपन्ना दुर्भगा शक्र दृश्यते ।
अलक्षणा विरूपा च सुभगा शक्र दृश्यते ॥ ३४ ॥

हे वासव ! देखा जाता है, उत्तम लक्षणवाली सुन्दरतायुक्त स्त्री दुर्भगा होती है और कुलक्षणसे युक्त कुरूपवाली स्त्री सुभगा होती है ॥ ३४ ॥

नैतदस्मत्कृतं शक्र नैतच्छक्र त्वया कृतम् ।
यत्त्वमेवंगतो वज्रिन्यद्वाप्येवंगता वयम् ॥ ३५ ॥

हे वज्रधारी शक्र ! तुम इस प्रकार समृद्धियुक्त होरहे हो और मैं ऐसी अवस्थामें पडा हूं, यह तुम्हारा भी किया हुआ नहीं है, और मेरा भी किया हुआ नहीं है ॥ ३५ ॥

न कर्म तव नान्येषां कुतो मम शतक्रतो ।
ऋद्धिर्वाप्यथ वा नर्द्धिः पर्यायकृतमेव तत् ॥ ३६ ॥

हे देवराज ! तुमने ऐसी समृद्धिके लिये कोई कर्म नहीं किया, दूसरोंने भी नहीं किया और मैंने भी ऐसी अवस्थाके निमित्त कोई कर्म नहीं किया है; समृद्धि वा असमृद्धि कालक्रमसे हुआ करती है ॥ ३५ ॥

पश्यामि त्वा विराजन्तं देवराजमवस्थितम् ।
श्रीमन्तं द्युतिमन्तं च गर्जन्तं च ममोपरि ॥ ३७ ॥

मैं देखता हूं तुम श्रीमान्, द्युतिमान् और देवराज होकर बिराजते हुए मेरे ऊपर गर्जना कर रहे हो ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतचैवं न चेत्कालो मामाक्रम्य स्थितो भवेत् ।
पातयेयमहं त्वाद्य सवज्रमपि मुष्टिना ॥ ३८ ॥

परन्तु काल मुझे यदि इस तरह आक्रमण न किये होता और मैं इस प्रकार गधेका रूप धारण न किये होता, तो इस ही समय मुष्टिप्रहारसे तुम्हें वज्रके सहित गिरा सकता ॥ ३८ ॥

न तु विक्रमकालोऽयं क्षमाकालोऽयमागतः ।
कालः स्थापयते सर्वं कालः पचति वै तथा ॥ ३९ ॥

जो हो, यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमा करनेका काल उपस्थित हुआ है; कालही सबको अनेक अवस्थाओंमें स्थापित करता है; कालही सबको पकाया (दुर्बल) करता है ॥ ३९ ॥

मां चेदभ्यागतः कालो दानवेश्वरमूर्जितम् ।
गर्जन्तं प्रतपन्तं च कमन्यं नागमिष्यति ॥ ४० ॥

मैंने दानवोंका राजा और पूजनीय होकर सबके विषयमें तर्जन गर्जन और प्रताप प्रकाश किया था; काल यदि मेरे निकट आया है, तो और किसके समीप न जायगा ? ॥ ४० ॥

द्वादशानां हि भवतामादित्यानां महात्मनाम् ।
तेजांस्येकेन सर्वेषां देवराज हृतानि मे ॥ ४१ ॥

हे देवराज ! मैंने अकेलेही तुम्हारे महानुभाव द्वादश आदित्योंके तेजको हरण किया था ॥ ४१ ॥

अहमेवोद्वहाम्यापो विसृजामि च वासव ।
तपामि चैव त्रैलोक्यं विद्योताम्यहमेव च ॥ ४२ ॥

वासव ! मैं ही सूर्य बनकर पृथ्वीका जल ऊपर उठाता था, मैं ही मेघरूप धरके जलकी वर्षा करता था; मैं ही तीनों लोकोंको सन्तापित करता और विद्युत बनकर सब प्रकाशित करता था ॥ ४२ ॥

संरक्षामि विलुम्पामि ददाम्यहमथाददे ।
संयच्छामि नियच्छामि लोकेषु प्रभुरीश्वरः ॥ ४३ ॥

मैं ही तीनों लोकोंकी रक्षा करता था, और इच्छा करनेसे ही नष्ट कर सकता था; मैंही सदा दान देता और प्रजासे कर लेता था, मैंही सबको स्थिर और नियमित करता था; तीनों लोकोंके बीच मैंही सबके निग्रहानुग्रहमें समर्थ शासनकर्त्ता था ॥ ४३ ॥

तदद्य विनिवृत्तं मे प्रभुत्वममराधिप ।
कालसैन्यावगाढस्य सर्वं न प्रतिभाति मे ॥ ४४ ॥

हे देवराज ! इस समय मेरा वह प्रभुत्व समाप्त हुआ है; मैं कालसैन्यसे आक्रान्त हुआ हूं, इसलिये वह सब मेरा ऐश्वर्य प्रकाशित नहीं होता है ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाहं कर्ता न चैव त्वं नान्यः कर्ता शचीपते ।
पर्यायेण हि भुज्यन्ते लोकाः शक्र यदृच्छया ॥ ४५ ॥

हे शचीपति ! मैं कर्त्ता नहीं हूं, और तुम भी कर्त्ता नहीं हो तथा दूसरा कोई भी कर्त्ता नहीं है । सब लोक स्वभावसे ही कालक्रमसे पालित और संहृत होरहे हैं ॥ ४५ ॥

मासार्धमासवेश्मानमहोरात्राभिसंवृतम् ।
ऋतुद्वारं वर्षमुखमाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ४६ ॥

मास और पक्षही कालके आवास हैं; दिन और रात उसके आवरण हैं; ऋतुएं द्वार हैं; वर्ष मुख है; वह काल आयुस्वरूप है, ऐसे वेदवेत्ता कहते हैं ॥ ४६ ॥

आहुः सर्वमिदं चिन्त्यं जनाः केचिन्मनीषया ।
अस्याः पञ्चैव चिन्तायाः पर्येष्यामि च पञ्चधा ॥ ४७ ॥

कोई कोई बुद्धिबल अवलम्बन करके इस समस्त कालात्मक जगत्को ब्रह्मरूपसे विचारनेको कहते हैं । इस चिन्तनके पांच विषय हैं; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश, ये प्रत्येक वाम वा दक्षिण पार्श्व, शिर, मध्यदेश और पश्चाद्भाग इन पञ्च-अवयवविशिष्ट हैं, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है- मैं इन पांच भेदोंसे युक्त कालको जानता हूं ॥ ४७ ॥

गम्भीरं गहनं ब्रह्म महत्तोयार्णवं यथा ।
अनादिनिधनं चाहुरक्षरं परमेव च ॥ ४८ ॥

पण्डित लोग कहा करते हैं, पारावाररहित अनन्त जलसे भरे हुए समुद्रके समान वह कालरूप ब्रह्म अत्यन्त गम्भीर और अगम अर्थात् तर्कसे अगम्य है, और शास्त्रके अनुसार मालूम होनेपर भी अत्यन्त दुःखसे उसमें प्रवेश किया जाता है । उसका न आदि है, न अन्त है; वह जीव-रूपसे अक्षर अर्थात् निर्विशेष वस्तु है, और जैसे शुक्ति स्वयं रजत: रूपसे जन्मनाशरहित हुआ करती है, वैसेही जन्मनाशसे रहित होके भी जगत् रूपसे क्षर अर्थात् विनश्वर हैं॥४८॥

सत्त्वेषु लिङ्गमावेश्य नलिङ्गमपि तत्स्वयम् ।
मन्यन्ते ध्रुवमेवैनं ये नरास्तत्त्वदर्शिनः ॥ ४९ ॥

वह स्वयं उपाधिरहित है, परन्तु बुद्धितत्वमें प्रवेश करके सोपाधिक होता है, तत्वदर्शी लोग उसे उपाधिधर्म स्पर्श रहित समझते हैं और चैतन्यरूपसे परिणत पञ्चमहाभूत सम्बन्धीय सत्, चित्, आनन्द और अनन्तके विपरीत धर्म, अनृत, जड, दुःख और परिच्छिन्नाख्य दुर्गमत्व भगवान् भी अविद्याके जरिये आत्मामें समझा करते हैं; परन्तु ये अविद्यासे प्रकाशित दुःख आदि आत्माके गम्य नहीं हैं ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भूतानां तु विपर्यासं मन्यते गतवानिति ।
न ह्येतावद्धवेद्वेद्यं न यस्मात्प्रकृतेः परः ॥ ५० ॥

गतिशील कालही सब प्राणियोंकी अवस्थामें उलट-पलट करता है, ऐसे माना जाता है; इसको कोई भी समझ नहीं सकता; ब्रह्मा, रुद्र अथवा विष्णु आदि अन्य कोई भी जिसका प्रभु नहीं है वही आत्माका स्वरूप है, इससे आत्मासे बढके दूसरा अधिपति कोई भी नहीं है ॥ ५० ॥

गतिं हि सर्वभूतानामगत्वा क्व गमिष्यसि ।
यो धावता न हातव्यस्तिष्ठन्नपि न हीयते ।
तमिन्द्रियाणि सर्वाणि नानुपश्यन्ति पञ्चधा ॥ ५१ ॥

हे इन्द्र ! सब भूतोंकी गति जो काल है, उसे प्राप्त न करके तुम कहां जाओगे ? मनुष्य भागनेपर भी उसे परित्याग नहीं कर सकता और स्थित रहनेपर भी वह छोडा नहीं जाता। सब इन्द्रियां इस कालको देखनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५१ ॥

आहुश्चैनं केचिदग्निं केचिदाहुः प्रजापतिम् ।
ऋतुमासार्धमासांश्च दिवसांस्तु क्षणांस्तथा ॥ ५२ ॥

कोई इसको अग्नि कहा करते हैं, कर्मपरायण मनुष्य इसको सर्वकर्मसमर्पणीय प्रजापति समझते हैं । दूसरे लोग उसे ऋतु, महीना, पक्ष, दिवस, क्षण, ॥ ५२ ॥

पूर्वाह्णमपराह्णं च मध्याह्नमपि चापरे ।
मुहूर्तमपि चैवाहुरेकं सन्तमनेकधा ।
तं कालमवजानीहि यस्य सर्वमिदं वशे ॥ ५३ ॥

पूर्वाह्ण, अपराह्ण, मध्यान्ह और मुहूर्त्तादि भेदसे एक होनेपर भी अनेक प्रकारका कहा करते हैं । हे देवराज ! यह स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् जिसके वशमें है, उसे ही कालरूपसे मालूम करो ॥ ५३ ॥

बहूनीन्द्रसहस्राणि समतीतानि वासव ।
बलवीर्योपपन्नानि यथैव त्वं शचीपते ॥ ५४ ॥

हे शचीपति ! तुम जैसे हो, वैसेही तुम्हारे समान बल और वीर्यसे युक्त कई हजार इन्द्र गुजर गये हैं ॥ ५४ ॥

त्वामप्यतिबलं शक्रं देवराजं बलोत्कटम् ।
प्राप्ते काले महावीर्यः कालः संशमयिष्यति ॥ ५५ ॥

तुम प्रबल बलदर्पित देवताओंके राजा हुए हो; परन्तु समय उपस्थित होनेपर महाबलवान् काल तुम्हें शान्तिके स्थानमें भेजेगा ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

य इदं सर्वमादत्ते तस्माच्छक्र स्थिरो भव ।
मया त्वया च पूर्वैश्च न स्म शक्योऽतिवर्तितुम् ॥ ५६ ॥

हे शक्र ! यह काल ही इन सबको अपने वशमें कर रहा है, तुम उसका भय करके स्थिर रहो; मैं अथवा तुम तथा पूर्व पुरुषोंमेंसे कोई भी कालकी आज्ञाका अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५६ ॥

यामेतां प्राप्य जानीषे राज्यश्रियमनुत्तमाम् ।
स्थिता मयीति तन्मिथ्या नैषा ह्येकत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥

यह जो तुम उत्तम राज्यश्री लाभ करके "राज्यश्री मुझमेंही है, मेरे पासही स्थिर रहेगी," ऐसा समझ रहे हो, वह मिथ्या है; क्योंकि यह राज्यलक्ष्मी एक स्थानमें निवास नहीं करती ॥ ५७ ॥

स्थिता ह्यीन्द्रसहस्रेषु त्वद्विशिष्टतमेष्वियम् ।
मां च लोला परित्यज्य त्वामगाद्विबुधाधिप ॥ ५८ ॥

हे देवराज ! यह चपला राज्यलक्ष्मी तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों पुरुषोंके निकट और मेरे समीप निवास करती थी; अब इसने मुझे छोडके तुम्हें अवलम्बन किया है ॥ ५८ ॥

मैवं शक्र पुनः कार्षीः शान्तो भवितुमर्हसि ।
त्वामप्येवंगतं त्यक्त्वा क्षिप्रमन्यं गमिष्यति ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ ७६६२ ॥

हे देवेश ! इससे तुम फिर ऐसा अहङ्कार मत करना; तुम्हें अवश्य शान्त होना चाहिये । चपला राज्यलक्ष्मी तुम्हें भी इसही प्रकार अहंकारी जानके शीघ्रही दूसरेके निकट गमन करेगी ॥ ५९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ २१७ ॥ ७६६२ ॥

: २१८ :

भीष्म उवाच—

शतक्रतुरथापश्यद्बलेर्दीप्तां महात्मनः ।
स्वरूपिणीं शरीराद्धि तदा निष्क्रामतीं श्रियम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले—अनन्तर देवराजने उस समय महात्मा बलिके शरीरसे परम रूपिणी और कान्तिमति साक्षात् लक्ष्मीको निकलती हुई देखा ॥ १ ॥

तां दीप्तां प्रभया दृष्ट्वा भगवान्पाकशासनः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनो बलिं पप्रच्छ वासवः ॥ २ ॥

भगवान् पाकशासन इन्द्र विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे उस प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हुई लक्ष्मीको देखकर बलिसे उसका विषय पूछने लगे ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बले केयमपक्रान्ता रोचमाना शिखण्डिनी ।
त्वत्तः स्थिता सकेयूरा दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३ ॥

हे दैत्यराज ! यह जो निज तेजसे प्रकाशमान केयूरवती दर्शनीय रूपवाली शिखण्डशालिनी स्त्री तुम्हारे देहसे निकली, वह कौन है ? ॥ ३ ॥

बलिरुवाच—

न हीमामासुरीं वेद्मि न दैवीं न च मानुषीम् ।
त्वमेवैनां पृच्छ मा वा यथेष्टं कुरु वासव ॥ ४ ॥

बलि बोले—हे इन्द्र ! मैं नहीं जानता, कि यह आसुरी, दैवी अथवा मानवी स्त्री है । तुम्हारी जाननेकी इच्छा हो, इससे पूछो, वा मत पूछो; जैसी तुम्हारी इच्छा है, वैसा करो ॥ ४ ॥

शक्र उवाच—

का त्वं बलेरपक्रान्ता रोचमाना शिखण्डिनी ।
अजानतो ममाचक्ष्व नामधेयं शुचिस्मिते ॥ ५ ॥

इन्द्र बोले—हे शुचिस्मिते ! तुम कौन हो, मनोहर रूप और केशपाश धारण करके बलिके शरीरसे क्यों निकली हो ? तुम्हारा नाम क्या है, उसे मैं नहीं जानता; इससे मेरे समीप नाम कहो ॥ ५ ॥

का त्वं तिष्ठसि मामेव दीप्यमाना स्वतेजसा ।
हित्वा दैत्येश्वरं सुभ्रु तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ६ ॥

हे सुभ्रु ! तुम कौन हो, दैत्येश्वर बलिको परित्याग करके निज तेजसे मुझे प्रकाशित करती हुई मायाकी भांति क्यों खडी हो रही हो ? मैं पूछता हूं, तुम मुझसे वही कहो ॥ ६ ॥

श्रीरुवाच—

न मा विरोचनो वेद न मा वैरोचनो बलिः ।
आहुर्मां दुःसहेत्येवं विधित्सेति च मां विदुः ॥ ७ ॥

लक्ष्मी बोली—हे वासव ! विरोचन मुझे नहीं जानते थे और यह विरोचनपुत्र बलि भी मुझे नहीं जानता है; लोग मुझे दुःसहा और विधित्सा नामसे जानते हैं ॥ ७ ॥

भूतिर्लक्ष्मीति मामाहुः श्रीरित्येवं च वासव ।
त्वं मां शक्र न जानीषे सर्वे देवा न मां विदुः ॥ ८ ॥

मुझे कोई भूति, कोई लक्ष्मी और कोई श्री भी कहा करते हैं । हे देवराज ! तुम मुझे नहीं जानते और सब देवता भी मुझे नहीं जानते हैं ॥ ८ ॥

शक्र उवाच—

किमिदं त्वं मम कृते उताहो बलिनः कृते ।
दुःसहे विजहास्येनं चिरसंवासिनी सती ॥ ९ ॥

इन्द्र बोले—हे दुःसहे ! बहुत समय तक बलिके शरीरमें वास करके अब मेरे निमित्त अथवा बलिके ही वास्ते इन्हें परित्याग करती हो, उसे कहो ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरुवाच—

न धाता न विधाता मां विदधाति कथंचन ।
कालस्तु शक्र पर्यायान्मैनं शक्रावमन्यथाः ॥ १० ॥

लक्ष्मी बोली—हे शक्र ! धाता वा विधाता मुझे किसी प्रकार किसी कार्यमें नियुक्त नहीं कर सकते, काल ही मुझे परिवर्तित करता है; हे देवराज ! इसलिये तुम कालकी अवज्ञा मत करो ॥ १० ॥

शक्र उवाच—

कथं त्वया बलिस्त्यक्तः किमर्थं वा शिखण्डिनि ।
कथं च मां न जह्यास्त्वं तन्मे ब्रूहि शुचिस्मिते ॥ ११ ॥

इन्द्र बोले—हे शिखण्डिनी शुचिस्मिते ! तुमने कैसे और किस कारणके लिये बलिका परित्याग किया है ? और मुझे किस लिये परित्याग नहीं करती हो, मेरे समीप उसे कहो ॥ ११ ॥

श्रीरुवाच—

सत्ये स्थितास्मि दाने च व्रते तपसि चैव हि ।
पराक्रमे च धर्मे च पराचीनस्ततो बलिः ॥ १२ ॥

लक्ष्मी बोली—हे देवराज ! मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्ममें निवास करती हूं; बलि इन सब विषयोंमें पराङ्मुख हुए हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्मण्योऽयं सदा भूत्वा सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
अभ्यसूयद्ब्राह्मणान्वै उच्छिष्टश्चास्पृशद्घृतम् ॥ १३ ॥

ये पहले ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर, अन्तमें ब्राह्मणोंकी असूया करते और जूठे रहके घृत छूते थे ॥ १३ ॥

यज्ञशीलः पुरा भूत्वा मामेव यजतेत्ययम् ।
प्रोवाच लोकान्मूढात्मा कालेनोपनिपीडितः ॥ १४ ॥

पहले ये सदा यज्ञशील थे; पीछे यह कालसे अत्यन्त पीडित और मोहित चित्त होकर सब लोगोंसे तुम सब मेरा ही यजन करो, ऐसे कहता था ॥ १४ ॥

अपाकृता ततः शक्र त्वयि वत्स्यामि वासव ।
अप्रमत्तेन धार्यास्मि तपसा विक्रमेण च ॥ १५ ॥

हे देवराज ! इस प्रकार इनसे तिरस्कृत होकर अब मैं इसे त्यागके तुममें ही वास करूंगी; तुम सावधान होकर तपस्या और विक्रमके सहारे मुझे धारण करो ॥ १५ ॥

शक्र उवाच—

अस्ति देवमनुष्येषु सर्वभूतेषु वा पुमान् ।
यस्त्वामेको विषहितुं शक्नुयात्कमलालये ॥ १६ ॥

इन्द्र बोले—हे कमलालये ! देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियोंके बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हें धारण करनेमें समर्थ हो ? ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रीरुवाच—
नैव देवो न गन्धर्वो नासुरो न च राक्षसः ।
यो मामेको विषहितुं शक्तः कश्चित्पुरंदर ॥ १७ ॥
लक्ष्मी बोली—हे पुरन्दर ! यह सत्य है, कि देवता, गन्धर्व, असुर वा राक्षसोंमें ऐसा कोई नहीं है, जो अकेला मुझे सहन कर सके ॥ १७ ॥

शक्र उवाच—
तिष्ठेथा मयि नित्यं त्वं यथा तद्ब्रूहि मे शुभे ।
तत्करिष्यामि ते वाक्यमृतं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥
इन्द्र बोले—हे शुभे ! तुम कहो, किस प्रकार मेरे समीप सदा निवास करोगी, मैं वैसाही करूंगा; यह सत्य वचन कहना तुम्हें उचित है ॥ १८ ॥

श्रीरुवाच—
स्थास्यामि नित्यं देवेन्द्र यथा त्वयि निबोध तत् ।
विधिना वेददृष्टेन चतुर्धा विभजस्व माम् ॥ १९ ॥
लक्ष्मी बोली—हे देवेन्द्र ! मैं तुम्हारे समीप सदा जिस प्रकार निवास करूंगी, उसे सुनो ! तुम वेदविहित विधिके अनुसार मुझे चार हिस्सेमें विभक्त करो ॥ १९ ॥

शक्र उवाच—
अहं वै त्वा निधास्यामि यथाशक्ति यथाबलम् ।
न तु मेऽतिक्रमः स्याद्वै सदा लक्ष्मि तवान्तिके ॥ २० ॥
इन्द्र बोले—हे लक्ष्मी ! मैं यथाशक्तिसे बलके अनुसार तुम्हें सदा धारण करूंगा, तुम्हारे निकट मेरा कुछ भी व्यतिक्रम न होगा ॥ २० ॥

भूमिरेव मनुष्येषु धारिणी भूतभाविनी ।
सा ते पादं तितिक्षेत समर्था हीति मे मतिः ॥ २१ ॥
मनुष्य लोकमें सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाली धरणी ही सबको धारण किया करती है; इससे वह धरणी तुम्हारा एक पदका भार धारण करे; मुझे बोध होता है, वह तुम्हारा एक चरण धारण करनेमें समर्थ होगी ॥ २१ ॥

श्रीरुवाच—
एष मे निहितः पादो योऽयं भूमौ प्रतिष्ठितः ।
द्वितीयं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु ॥ २२ ॥
लक्ष्मी बोली—यह मैंने भूमिमें एक चरण अर्पण किया, यह भूतलमें प्रतिष्ठित रहेगा । हे इन्द्र ! अब मेरे दूसरे चरणका स्थान वर्णन करो ॥ २२ ॥

शक्र उवाच—
आप एव मनुष्येषु द्रवन्त्यः परिचारिकाः ।
तास्ते पादं तितिक्षन्तामलमापस्तितिक्षितुम् ॥ २३ ॥
इन्द्र बोले—द्रवमय जल सब मनुष्योंकी परिचर्या किया करता है, इससे जल ही तुम्हारा दूसरा चरण धारण करे, क्योंकि जल तुम्हारे चरणको सहनेमें समर्थ होगा ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Vedic Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रीरुवाच—

एष मे निहितः पादो योऽयमप्सु प्रतिष्ठितः ।
तृतीयं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु ॥ २४ ॥

लक्ष्मी बोली—हे देवेन्द्र ! यह मैंने दूसरा चरण जलके बीच अर्पण किया, यह जलमें ही प्रतिष्ठित रहेगा; अब मेरे तीसरे चरणके स्थापित करनेका स्थान बतलाओ ॥ २४ ॥

शक्र उवाच—

यस्मिन्देवाश्च यज्ञाश्च यस्मिन्वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
तृतीयं पादमग्निस्ते सुधृतं धारयिष्यति ॥ २५ ॥

इन्द्र बोले—समस्त देवता, यज्ञ और वेद जिसमें प्रतिष्ठित हैं, वह अग्नि तुम्हारे तीसरे चरणको उत्तम रीतिसे धारण करेगी ॥ २५ ॥

श्रीरुवाच—

एष मे निहितः पादो योऽयमग्नौ प्रतिष्ठितः ।
चतुर्थं शक्र पादं मे तस्मात्सुनिहितं कुरु ॥ २६ ॥

लक्ष्मी बोली—हे इन्द्र ! यह जो तीसरा चरण मैंने अर्पण किया, वह अग्निके बीच प्रतिष्ठित हुआ; अब चौथे चरणके स्थापनका स्थान बतलाओ ॥ २६ ॥

शक्र उवाच—

ये वै सन्तो मनुष्येषु ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
ते ते पादं तितिक्षन्तामलं सन्तस्तितिक्षितुम् ॥ २७ ॥

इन्द्र बोले—मनुष्योंके बीच जो साधु पुरुष सत्यवादी और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वेही तुम्हारे चौथे चरणको धारण करेंगे, क्योंकि साधु लोग तुम्हारे चरणको धारण करनेमें समर्थ हैं ॥ २७ ॥

श्रीरुवाच—

एष मे निहितः पादो योऽयं सत्सु प्रतिष्ठितः ।
एवं विनिहितां शक्र भूतेषु परिधत्स्व माम् ॥ २८ ॥

लक्ष्मी बोली—हे देवराज ! यह जो चरण निक्षेप किया, वह साधुओंके बीच प्रतिष्ठित हुआ; भूतोंके बीच इसी प्रकार मेरे चारों चरण निहित रहे; तुम भी इसी भांति मुझे धारण करो ॥ २८ ॥

शक्र उवाच—

भूतानामिह वै यस्त्वा मया विनिहितां सतीम् ।
उपहन्यात्स मे द्विष्यात्तथा शृण्वन्तु मे वचः ॥ २९ ॥

इन्द्र बोले—मैंने सर्व भूतोंके ऊपर तुम्हें स्थापित किया; अर्थात् चित्त, तीर्थादि पुण्य, यज्ञ आदि धर्म और विद्या, ये तुम्हारे चारों चरण भूमि, अग्नि, जल और साधुओंमें प्रतिष्ठित हुए। मेरा यह वचन सब कोई सुने, जीवोंके बीच जो पुरुष स्तेय, काम, अशौच अथवा अशान्तिसे तुम्हें आहत करेगा, मैं उसे धर्षण करूंगा ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

ततस्त्यक्तः श्रिया राजा दैत्यानां बलिरब्रवीत् ।
यावत्पुरस्तात्प्रतपेत्तावद्वै दक्षिणां दिशम् ॥ ३० ॥

भीष्म बोले— अनन्तर लक्ष्मीसे परित्यक्त दैत्यराज बलि कहने लगे । सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिण करनेवाले सूर्य जैसे पूर्वदिशाको प्रकाशित करता है वैसेही उत्तर, पश्चिम और दक्षिण दिशाको भी प्रकाशित किया करता है ॥ ३० ॥

पश्चिमां तावदेवापि तथोदीचीं दिवाकरः ।
तथा मध्यंदिने सूर्यो अस्तमेति यदा तदा ।
पुनर्देवासुरं युद्धं भावि जेतास्मि वस्तदा ॥ ३१ ॥

परन्तु जिस समयक्रमसे सब दिशा नष्ट होगी और आदित्यमण्डल केवल सुमेरुपृष्ठके मध्यवर्त्ती ब्रह्मलोकको दिवसके मध्यभागमें प्रकाशित करेगा, तब वर्त्तमान वैवस्वत—मनुका अधिकार च्युत होनेपर सावर्णिक मनुके भावी—अधिकारके समय देवताओं और असुरोंमें युद्ध होगा; उस युद्धमें मैं तुमको फिर जीतूंगा ॥ ३१ ॥

सर्वाँल्लोकान्यदादित्य एकस्थस्तापयिष्यति ।
तदा देवासुरे युद्धे जेताहं त्वां शतक्रतो ॥ ३२ ॥

हे देवराज ! जब सूर्य केवल ब्रह्मलोकमें स्थिति करके सब लोकोंको सन्तापित करेगा, उस समय देवासुरसंग्राममें मैं तुम्हें जय करूंगा ॥ ३२ ॥

शक्र उवाच—

ब्रह्मणास्मि समादिष्टो न हन्तव्यो भवानिति ।
तेन तेऽहं बले वज्रं न विमुञ्चामि मूर्धनि ॥ ३३ ॥

इन्द्र बोले— हे दैत्यराज ! बले ! "तुम्हें मारना उचित नहीं है," ब्रह्माने मुझे ऐसीही आज्ञा दी है; इसहीसे मैंने तुम्हारे सिरपर अपना वज्र नहीं चलाया ॥ ३३ ॥

यथेष्टं गच्छ दैत्येन्द्र स्वस्ति तेऽस्तु महासुर ।
आदित्यो नावतपिता कदाचिन्मध्यतः स्थितः ॥ ३४ ॥

हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां जाओ; तुम्हारा कल्याण हो; सूर्य मध्यस्थलमें रहके कभी ताप प्रदान न करेगा ॥ ३४ ॥

स्थापितो ह्यस्य समयः पूर्वमेव स्वयंभुवा ।
अजस्रं परियात्येष सत्येनावतपन्प्रजाः ॥ ३५ ॥

स्वयम्भूने पहले ही इसका समय निरूपण किया है, यह सदा सत्य पथमें निवास करते और प्रजाको ताप दान करते हुए भ्रमण करता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अयनं तस्य षण्मासा उत्तरं दक्षिणं तथा ।
येन संयाति लोकेषु शीतोष्णे विसृजन्रविः ॥ ३६ ॥

छः महीनेके अनन्तर इसकी गति परिवर्त्तित होती है, उसेही अयन कहते हैं; अयन दो प्रकारके हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन । यह सब लोकोंमें उक्त दो प्रकारके अयनके सहारे सूर्य गर्मी और शीतकी वर्षा करते हुए भ्रमण कर रहा है ॥ ३६ ॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्तस्तु दैत्येन्द्रो बलिरिन्द्रेण भारत ।
जगाम दक्षिणामाशामुदीचीं तु पुरंदरः ॥ ३७ ॥

भीष्म बोले— हे भारत ! दैत्यराज बलि महेन्द्रका ऐसा वचन सुनके दक्षिण दिशाकी तरफ चले गये । इन्द्रने भी पूर्वदिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ ३७ ॥

इत्येतद्बलिना गीतमनहंकारसंज्ञितम् ।
वाक्यं श्रुत्वा सहस्राक्षः खमेवारुरुहे तदा ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ ७७०० ॥

सहस्रलोचन इन्द्र बलिके कहे हुए यह अहंकाररहित वचन सुनके आकाश मार्गसे स्वर्गमें गये ॥ ३८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ २१८ ॥ ७७०० ॥

: २१९ :

भीष्म उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शतक्रतोश्च संवादं नमुचेश्च युधिष्ठिर ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे धर्मराज ! इस विषयमें शतक्रतु इन्द्र और नमुचिके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका भी प्रमाण दिया जाता है ॥ १ ॥

श्रिया विहीनमासीनमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
भवाभवज्ञं भूतानामित्युवाच पुरंदरः ॥ २ ॥

एक समय इन्द्रने श्रीहीन होनेपर भी समुद्रकी भांति गम्भीरभावसे बैठे हुए, भूतोंकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाले नमुचिके समीप आके यह वचन कहा ॥ २ ॥

बद्धः पाशैश्च्युतः स्थानाद्द्विषतां वशमागतः ।
श्रिया विहीनो नमुचे शोचस्याहो न शोचसि ॥ ३ ॥

हे नमुचि ! तुम पाशबद्ध, पदच्युत, शत्रुओंके वशीभूत और श्रीहीन हुए हो, इसलिये ऐसी अवस्थामें पडके शोक करते हो, या नहीं ? ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नमुचिरुवाच—

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति नास्ति शोके सहायता ॥ ४ ॥

नमुचि बोला— हे देवराज ! अनिवार्य शोकसे शरीर सन्तापित होता है, शत्रु लोग सन्तुष्ट हुआ करते हैं, शोक कभी दुःखनाशका कारण नहीं होता ॥ ४ ॥

तस्माच्छक्र न शोचामि सर्वं ह्येवेदमन्तवत् ।
संतापाद्ध्रियते रूपं धर्मश्चैव सुरेश्वर ॥ ५ ॥

इसही लिये मैं शोक नहीं करता । जगत्में जो कुछ वस्तु हैं, सभी विनश्वर हैं । हे सुरेश्वर ! संताप करनेसे रूप नष्ट होता है और धर्म भी नष्ट हुआ करता है ॥ ५ ॥

विनीय खलु तद्दुःखमागतं वैमनस्यजम् ।
ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता ॥ ६ ॥

इसलिये ज्ञानवान् मनुष्यको उचित है, वैमनस्यके कारण उपस्थित दुःखको त्यागके मनहीमन हृदय स्थित कल्याणमय परमात्माका चिन्तन करे ॥ ६ ॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तदैवास्य प्रसीदन्ति सर्वार्था नात्र संशयः ॥ ७ ॥

मनुष्य जिस समय कल्याण स्वरूप परमात्माके चिन्तनमें मन लगाता है, तभी उसके सब प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता गर्भे शयानं पुरुषं शास्ति शास्ता ।
तेनानुशिष्टः प्रवणादिवोदकं यथा नियुक्तोऽस्मि तथा वहामि ॥ ८ ॥

जगत्का अन्तर्यामी रूपसे एकमात्र शासनकर्त्ता वर्त्तमान है, दूसरा कोई भी शास्ता नहीं है। वही गर्भशय्यामें सोये हुए जीवको शासित करता है; मैं उसहीके जरिये नियुक्त हुआ हूं, और जैसे जल नीचेकीही ओर जाता है, वैसी ही जिस भांति नियुक्त हुआ हूं, उसही प्रकार कार्यभार ढोता हूं ॥ ८ ॥

भावाभावावभिजानन्गरीयो जानामि श्रेयो न तु तत्करोमि ।
आशास्तु धर्म्याः सुहृदां सुकुर्वन्यथा नियुक्तोऽस्मि तथा वहामि ॥ ९ ॥

प्राणियोंकी उन्नति और पराभवको मैं जानता हूं; बंध और मोक्ष इन दोनोंमें तत्वज्ञानसे मोक्ष ही श्रेष्ठ और गरिष्ठ है, इसे जानकर भी मोक्ष और साधनके लिये शमदम आदि विषयोंमें यत्न नहीं कर सकता; धर्मयुक्त और अधर्मविहित आशामें वशीभूत होकर समय बिताते हुए शास्ताके जरिये जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूं, उसही भांति कार्यभार ढोया करता हूं ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा यथास्य प्राप्तव्यं प्राप्नोत्येव तथा तथा ।
भवितव्यं यथा यच्च भवत्येव तथा तथा ॥ १० ॥

मनुष्यको जो वस्तु जिस प्रकारसे प्राप्त होनेवाली है, वह उसही भांतिसे प्राप्त होती है; होनहार विषय जो जिस प्रकारसे होनेवाला होता है, वह उसही प्रकार हुआ करता है ॥१०॥

यत्र यत्रैव संयुङ्क्ते धाता गर्भे पुनः पुनः ।
तत्र तत्रैव वसति न यत्र स्वयमिच्छति ॥ ११ ॥

विधाता जिस जिस गर्भमें जीवको बार बार नियुक्त करता है, जीव उसमेंही निवास करता है; वह स्वयं जिसकी इच्छा करता है, वह सिद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

भावो योऽयमनुप्राप्तो भवितव्यमिदं मम ।
इति यस्य सदा भावो न स मुह्येत्कदाचन ॥ १२ ॥

"मेरा ऐसाही भवितव्य था, ऐसा ही होगा," जिसके अन्तःकरणमें ऐसा भाव सदा जागृत होता है, वह कभी मोहित नहीं होता ॥ १२ ॥

पर्यायैर्हन्यमानानामभियोक्ता न विद्यते ।
दुःखमेतत्तु यद्द्वेष्टा कर्ताहमिति मन्यते ॥ १३ ॥

कालक्रमसे उपस्थित दुःख-सुखके जरिये हन्यमान मनुष्योंका अभियोगकर्त्ता दूसरा कोई भी नहीं है। मनुष्य दुःखके विषयमें द्वेष करता हुआ "मैंही कर्त्ता हूं।" इस प्रकार जो अभिमान किया करता है, वही दुःख है ॥ १३ ॥

ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च ।
कान्नापदो नोपनमन्ति लोके परावरज्ञास्तु न संभ्रमन्ति ॥ १४ ॥

ऋषि, देवता, महान् असुर, तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और वनवासी मुनियोंके निकट भी सब आपदा उपस्थित होती हैं, जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको विशेष रूपसे जाना है, वेही भयभीत—मोहित नहीं होते हैं ॥ १४ ॥

न पण्डितः क्रुध्यति नापि सज्जते न चापि संसीदति न प्रहृष्यति ।
न चार्थकृच्छ्रव्यसनेषु शोचति स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥ १५ ॥

पण्डित पुरुष क्रुद्ध नहीं होता; विषयोंमें आसक्त नहीं होता; विपद्में दुःखी, सम्पत्में सन्तुष्ट और अर्थकृच्छ्रात् विपद उपस्थित होनेपर शोक नहीं करता; वह स्वभावसेही हिमाचलकी तरह अटलभावसे स्थित रहता है ॥ १५ ॥

यमर्थसिद्धिः परमा न हर्षयेत्तथैव काले व्यसनं न मोहयेत् ।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं निषेवते यः स धुरंधरो नरः ॥ १६ ॥

सब प्रयोजनोंकी सिद्धि जिसे हर्षित नहीं कर सकती, और समय पर उपस्थित हुई विपद् भी जिसे दुःखित नहीं कर सकती; जो सुख-दुःखका तथा दोनोंके बीचकी अवस्थाका समान भावसे सेवन करता है, उसी मनुष्यको धुरन्धर कहा जाता है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यां यामवस्थां पुरुषोऽधिगच्छेत्तस्यां रमेतापरितप्यमानः ।
एवं प्रवृद्धं प्रणुदेन्मनोजं संतापमायासकरं शरीरात् ॥ १७ ॥

पुरुषको जिस समय जो अवस्था प्राप्त होवे, शोक न करके उसमेंही सन्तुष्ट रहे और सन्ताप-कारी आयासकर प्रवृद्ध कामको शरीर और मनसे दूर करे ॥ १७ ॥

तत्सदः स परिषत्सभासदः प्राप्य यो न कुरुते सभाभयम् ।
धर्मतत्त्वमवगाह्य बुद्धिमान्योऽभ्युपैति स पुमान्धुरंधरः ॥ १८ ॥

श्रौत, स्मार्त्त, लौकिक न्याय—अन्यायको विचारनेवाला ऐसा कोई जनसमाज नहीं है, जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सदा भयभीत न हो; इससे जो बुद्धिमान् पुरुष धर्मतत्त्वमें स्नान करके उसे प्राप्त करे, उसेही सभ्य समाजके बीच धुरन्धर कहना चाहिये ॥ १८ ॥

प्राज्ञस्य कर्माणि दुरन्वयानि न वै प्राज्ञो मुह्यति मोहकाले ।
स्थानाच्च्युतश्चेन्न मुमोह गौतमस्तावत्कृच्छ्रामापदं प्राप्य वृद्धः ॥ १९ ॥

धर्मतत्त्व ही अत्यन्त दुरवगाह है, तब इसमें सन्देहही क्या है, कि ब्रह्मतत्व उससे भी दुष्प्रवेश्य है । बुद्धिमान् पुरुषके सब कार्य परिणाममें भी दुर्ज्ञेय हैं, जो बुद्धिमान् होता है, वह कभी मोहके समयमें मुग्ध नहीं होता । अहल्यापति वृद्ध गौतम कष्टकरी विषम विपद्में पड कर और पदच्युत होकर भी मोहित नहीं हुए ॥ १९ ॥

न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा ।
अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिदेवना ॥ २० ॥

मन्त्र, बल, वीर्य, बुद्धि अथवा पौरुषसे मनुष्य कभी अलभ्य वस्तु प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये उसके लिये शोकका क्या प्रयोजन है ? ॥ २० ॥

यदेवमनुजानन्ति धातारो विदधुः पुरा ।
तदेवानुभविष्यामि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ २१ ॥

विधाताने पहले मेरे सम्बन्धमें जो विधान किया है, मुझे वही भोग करना पडा है, और आगे भी मैं विधिकृत कार्यका अनुसरण करूंगा; फिर मृत्यु मेरा क्या करेगी ? ॥ २१ ॥

लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति ।
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥ २२ ॥

मनुष्य प्रारब्धके विधानसे प्राप्त होनेवाली वस्तुओंको ही पाता है, जाने योग्य स्थानमें ही जाता है और जो भी प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख हैं, उन्हें ही वह प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

एतद्विदित्वा कात्स्न्र्येन यो न मुह्यति मानवः ।
कुशलः सुखदुःखेषु स वै सर्वधनेश्वरः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि एकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥ ७७२३ ॥

जो मनुष्य इन सब विषयोंको पूर्ण रीतिसे जानके मोहित नहीं होता, वह सब दुःखदायक विषयोंमें भी सुखी और हर तरहसे धनवान् होता है ॥ २३ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१९ ॥ ७७२३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २२० :

युधिष्ठिर उवाच—

मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे किं श्रेयः पुरुषस्य हि ।
बन्धुनाशे महीपाल राज्यनाशेऽपि वा पुनः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे राजन् ! बन्धुनाश अथवा राजनाश रूप कष्टकरी घोर विपद्में पडे हुए पुरुषके पक्षमें कल्याणका क्या उपाय है ? ॥ १ ॥

त्वं हि नः परमो वक्ता लोकेऽस्मिन्भरतर्षभ ।
एतद्भवन्तं पृच्छामि तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ २ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! आपही इस लोकमें हम लोगोंके बीच परमवक्ता हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूं; आप विस्तारपूर्वक यहां वर्णन करिये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

पुत्रदारैः सुखैश्चैव वियुक्तस्य धनेन च ।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे धृतिः श्रेयस्करी नृप ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! स्त्री, पुत्र, सुख और वित्तहीन मनुष्यके कष्टकरी विपद्में पडनेसे धीरज ही उसके लिये कल्याणकारी होता है ॥ ३ ॥

धैर्येण युक्तस्य सतः शरीरं न विशीर्यते ।
आरोग्याच्च शरीरस्य स पुनर्विन्दते श्रियम् ॥ ४ ॥

सदा धैर्ययुक्त सत्पुरुषका शरीर चिन्ताके कारण नष्ट नहीं होता, शरीरका आरोग्य रहनेपर मनुष्य फिर धन प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ४ ॥

यस्य राज्ञो नरास्तात सात्त्विकीं वृत्तिमास्थिताः ।
तस्य स्थैर्यं च धैर्यं च व्यवसायश्च कर्मसु ॥ ५ ॥

हे तात ! जिस राजाकी प्रजा सदा सात्त्विक वृत्तिका अवलम्बन करती हैं, उसको ऐश्वर्य और धीरजकी प्राप्ति होती है, तथा उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ५ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
बलिवासवसंवादं पुनरेव युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

हे धर्मराज ! इस विषयमें फिर बलि और इन्द्रके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है ॥ ६ ॥

वृत्ते देवासुरे युद्धे दैत्यदानवसंक्षये ।
विष्णुक्रान्तेषु लोकेषु देवराजे शतक्रतौ ॥ ७ ॥

दैत्यदानवोंके नाशक देवासुरसंग्राम समाप्त होनेपर, सब लोक विष्णुसे आक्रान्त हो गये और शतक्रतु इन्द्र देवराज हुए ॥ ७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इज्यमानेषु देवेषु चातुर्वर्ण्ये व्यवस्थिते ।
समृध्यमाने त्रैलोक्ये प्रीतियुक्ते स्वयंभुवि ॥ ८ ॥

देवताओंकी आराधना होने लगी; चारों वर्ण अपने धर्ममें व्यवस्थापित हुए, तीनों लोक समृद्धिवान् हुए और स्वयम्भु ब्रह्मा सबको सुखी देखकर प्रीतियुक्त हुए ॥ ८ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यामपि चर्षिभिः ।
गन्धर्वैर्भुजगेन्द्रैश्च सिद्धैश्चान्यैर्वृतः प्रभुः ॥ ९ ॥

रुद्रगण, वसुवृन्द, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, ऋषि, गन्धर्व, भुजगेन्द्र, सिद्ध और दूसरे समूहोंसे घिरे हुए देवराजने ॥ ९ ॥

चतुर्दन्तं सुदान्तं च वारणेन्द्रं श्रिया वृतम् ।
आरुह्यैरावतं शक्रस्त्रैलोक्यमनुसंययौ ॥ १० ॥

चार सुन्दर दांतवाले, दिव्य शोभायुक्त ऐरावत गजराजपर चढके तीनों लोकोंमें घूमनेके लिये प्रस्थान किया ॥ १० ॥

स कदाचित्समुद्रान्ते कस्मिंश्चिद्गिरिगह्वरे ।
बलिं वैरोचनिं वज्री ददर्शोपससर्प च ॥ ११ ॥

घूमते हुए उन्होंने किसी समय समुद्रके किनारेपर किसी पहाडकी गुफामें विरोचनपुत्र बलिको देखा और देखते ही हाथमें वज्र लिये इन्द्र उसके निकट उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

तमैरावतमूर्धस्थं प्रेक्ष्य देवगणैर्वृतम् ।
सुरेन्द्रमिन्द्रं दैत्येन्द्रो न शुशोच न विव्यथे ॥ १२ ॥

राजा बलि सुरराज इन्द्रको ऐरावतपर चढे और देवताओंसे घिरे देखकर शोकार्त्त वा व्यथित नहीं हुए ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा तमविकारस्थं तिष्ठन्तं निर्भयं बलिम् ।
अधिरूढो द्विपश्रेष्ठमित्युवाच शतक्रतुः ॥ १३ ॥

इन्द्र ऐरावतपर चढे रहके अविकृत और अभीतभावसे स्थित बलिको देखकर यह वचन बोले ॥ १३ ॥

दैत्य न व्यथसे शौर्यादथ वा वृद्धसेवया ।
तपसा भावितत्वाद्वा सर्वथैतत्सुदुष्करम् ॥ १४ ॥

हे दैत्यराज ! तुम जो ऐसी अवस्थामें भी व्यथित नहीं होते हो, उसमें शूरता अथवा वृद्धसेवा तथा तपस्यासे प्राप्त हुआ तत्वज्ञान कारण हुआ है ? जो हो, साधारण पुरुषके लिये यह धैर्य सब तरहसे अत्यन्त दुष्कर कार्य है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शत्रुभिर्वशमानीतो हीनः स्थानादनुत्तमात् ।
वैरोचने किमाश्रित्य शोचितव्ये न शोचसि ॥ १५ ॥

हे विरोचनपुत्र ! तुम शत्रुओंके वशीभूत और परम श्रेष्ठ पदसे भ्रष्ट होकर, किस बलका सहारा करके शोचितव्य विषयोंमें शोक नहीं करते हो ? ॥ १५ ॥

श्रैष्ठ्यं प्राप्य स्वजातीनां भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
हृतस्वबालराज्यस्त्वं ब्रूहि कस्मान्न शोचसि ॥ १६ ॥

तुमने स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता और अत्यन्त उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त किया था; फिर शत्रुओंके जरिये तुम्हारे धन, रत्न और राज्य छीना गया है, तौभी तुम किसलिये शोक नहीं करते हो, उसे कहो ॥ १६ ॥

ईश्वरो हि पुरा भूत्वा पितृपैतामहे पदे ।
तत्त्वमद्य हृतं दृष्ट्वा सपत्नैः किं न शोचसि ॥ १७ ॥

पहले तुम पिता–पितामहोंके राज्यपर बैठकर ईश्वर हुए थे, अब शत्रुओंके जरिये उस पैतृक-पदके छीने जानेपर, क्यों नहीं शोक करते हो ? ॥ १७ ॥

बद्धश्च वारुणैः पाशैर्वज्रेण च समाहतः ।
हृतदारो हृतधनो ब्रूहि कस्मान्न शोचसि ॥ १८ ॥

तुम वरुण–पाशसे बद्ध, वज्रसे घायल, स्त्री और रत्न हरे जानेपर भी किस कारण शोकरहित होरहे हो, उसे कहो ॥ १८ ॥

भ्रष्टश्रीर्विभवभ्रष्टो यन्न शोचसि दुष्करम् ।
त्रैलोक्यराज्यनाशे हि कोऽन्यो जीवितुमुत्सहेत् ॥ १९ ॥

तुम राज्य श्रीहीन और विभवसे भ्रष्ट होके भी जो शोकरहित होरहे हो, यह दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है। क्योंकि तीनों लोकोंका राज्य नष्ट होनेपर तुम्हारे विना दूसरा कौन पुरुष जीवित रहनेका उत्साह करेगा ? ॥ १९ ॥

एतच्चान्यच्च परुषं ब्रुवन्तं परिभूय तम् ।
श्रुत्वा सुखमसंभ्रान्तो बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ॥ २० ॥

इन्द्र बलिको पराजित करके इसी प्रकार तथा दूसरी भांति कडुए वचन कह रहे थे; उस समय विरोचनपुत्र बलि ऊपर कहे हुए वचनको अनायास ही सुनके निर्भय होकर कहने लगे ॥ २० ॥

निगृहीते मयि भृशं शक्र किं कत्थितेन ते ।
वज्रमुद्यम्य तिष्ठन्तं पश्यामि त्वां पुरंदर ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! मैं जब शत्रुओं वा कालसे बन्दी हुआ हूं, तब तुम्हें अब विकत्थना करनेका क्या प्रयोजन है ? तुम वज्र उठाये खडे हो, उसे मैं देखता हूं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अशक्तः पूर्वमासीस्त्वं कथंचिच्छक्ततां गतः ।
कस्त्वदन्य इमा वाचः सुक्रूरा वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥

पहले तुम ऐसा करनेमें असमर्थ थे, इस समय किसी तरह कुछ समर्थ हुए हो; तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष इस प्रकार अत्यन्त निष्ठुर वचन कह सकता है ? ॥ २२ ॥

यस्तु शत्रोर्वशस्थस्य शक्तोऽपि कुरुते दयाम् ।
हस्तप्राप्तस्य वीरस्य तं चैव पुरुषं विदुः ॥ २३ ॥

जो पुरुष समर्थ होके भी शत्रुके वशमें पडे हुए करतलगत वीरके ऊपर दया करता है, बुद्धिमान् लोग उसे ही उत्तम पुरुष समझते हैं ॥ २३ ॥

अनिश्चयो हि युद्धेषु द्वयोर्विवदमानयोः ।
एकः प्राप्नोति विजयमेकश्चैव पराभवम् ॥ २४ ॥

युद्ध करनेमें तत्पर दोनोंके बीच किसकी जीत होगी इसका कोई निश्चय नहीं है, क्योंकि दोनोंके बीच एककी विजय और दूसरेकी पराजय हुआ करती है ॥ २४ ॥

मा च ते भूत्स्वभावोऽयं मया दैवतपुंगव ।
ईश्वरः सर्वभूतानां विक्रमेण जितो बलात् ॥ २५ ॥

हे सुरेश्वर ! "सर्वभूतोंके ईश्वर बलिको मैंने अपने बल और पराक्रमसे जय किया है,"—तुम्हें ऐसी घमंड न होवे ॥ २५ ॥

नैतदस्मत्कृतं शक्र नैतच्छक्र त्वया कृतम् ।
यत्त्वमेवंगतो वज्रिन्यद्वाप्येवंगता वयम् ॥ २६ ॥

हे वज्रधर ! तुम जो ऐसी राजवैभवसे संपन्न अवस्थायुक्त हुए हो, वह तुम्हारा किया हुआ नहीं है और हम जो ऐसी दीन अवस्थामें निवास करते हैं, यह भी हमारा किया हुआ नहीं है ॥ २६ ॥

अहमासं यथाद्य त्वं भविता त्वं यथा वयम् ।
मावमंस्था मया कर्म दुष्कृतं कृतमित्युत ॥ २७ ॥

इस समय तुम जैसी अवस्थामें हो, मैं पहले वैसाही था और इस समय मैं जिस प्रकार निवास करता हूं, भविष्यकालमें तुम उस ही प्रकार होगे ! मैंने बहुत दुष्कर पराक्रम किया है, ऐसा समझके तुम मेरी अवज्ञा मत करो ॥ २७ ॥

सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणाधिगच्छति ।
पर्यायेणासि शक्रत्वं प्राप्तः शक्र न कर्मणा ॥ २८ ॥

हे देवराज ! पुरुष कालक्रमसे सुख-दुःख भोग करता है; काल—क्रमसे ही तुमने इन्द्रत्व प्राप्त किया है; कर्मके जरिये तुम्हें इस इन्द्रत्व पदकी प्राप्ति नहीं हुई है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कालः काले नयति मां त्वां च कालो नयत्ययम् ।
तेनाहं त्वं यथा नाद्य त्वं चापि न यथा वयम् ॥ २९ ॥

कालही मुझे दुरवस्थाकी ओर ले जा रहा है; कालने मुझे वशीभूत किया है, इसहीसे मैं इस समय तुम्हारी भांति समृद्धिशाली नहीं हूं, तुम भी मेरे समान अवस्थामें नहीं पडे हो ॥२९॥

न मातृपितृशुश्रूषा न च दैवतपूजनम् ।
नान्यो गुणसमाचारः पुरुषस्य सुखावहः ॥ ३० ॥

मातापिताकी सेवा, देवताओंकी पूजा और दूसरे सद्गुण युक्त आचार पुरुषके विषयमें सुखदायक नहीं होते हैं ॥ ३० ॥

न विद्या न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः ।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥ ३१ ॥

विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बान्धव लोग कालसे पीडित पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३१ ॥

नागामिनमनर्थं हि प्रतिघातशतैरपि ।
शक्नुवन्ति प्रतिव्योढुमृते बुद्धिबलान्नराः ॥ ३२ ॥

मनुष्य लोग बुद्धिबलके अतिरिक्त उपायसे भी सैकडों आघात करके आनेवाली विपद्को निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ३२ ॥

पर्यायैर्हन्यमानानां परित्राता न विद्यते ।
इदं तु दुःखं यच्छक्र कर्ताहमिति मन्यते ॥ ३३ ॥

कालक्रमसे हन्यमान मनुष्योंको परित्राण करनेवाला कोई भी नहीं है । हे इन्द्र ! जो ऐसा अभिमान करते हैं, कि "मैं इस परिस्थितिका कर्त्ता हूं" यही दुःख है ॥ ३३ ॥

यदि कर्ता भवेत्कर्ता न क्रियेत कदाचन ।
यस्मात्तु क्रियते कर्ता तस्मात्कर्ताप्यनीश्वरः ॥ ३४ ॥

कार्य करनेवाला पुरुष यदि कर्त्ता होता, तो वह कभी किसीका कृत– उत्पन्न किया हुआ–न होसके; इसलिये कर्त्ता जब कृत होता है, तब ईश्वरके अतिरिक्त और कोई भी कर्त्ता नहीं है ॥ ३४ ॥

कालेन त्वाहमजयं कालेनाहं जितस्त्वया ।
गन्ता गतिमतां कालः कालः कलयति प्रजाः ॥ ३५ ॥

कालकी सहायतासे मैंने तुम्हें जीता था, और कालके अनुसार तुमने मुझे जय किया है । कालही सबकी गति है, और कालही सब प्रजाका संहार करता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इन्द्र प्राकृतया बुद्धया प्रलपन्नावबुध्यसे ।
केचित्त्वां बहु मन्यन्ते श्रैष्ठ्यं प्राप्तं स्वकर्मणा ॥ ३६ ॥

हे देवराज ! तुम साधारण बुद्धिके वशमें होकर प्रलाप करते हो, अटल विनाशके विषयको नहीं मालूम करते हो; तुमने निज पराक्रम—कर्मसे उत्कर्ष लाभ किया है, ऐसा माननेवाले कोई कोई तुम्हारा अत्यन्त आदर किया करते हैं ॥ ३६ ॥

कथमस्मद्विधो नाम जानल्लोकप्रवृत्तयः ।
कालेनाभ्याहतः शोचेन्मुह्येद्वाप्यर्थसंभ्रमे ॥ ३७ ॥

मेरे समान पुरुष जो लोकप्रवृत्तिको जानता है, प्रारब्ध ही कारण समझता है, वह तुम्हें क्या महत्त्व देगा ? कालपीडित होनेपर वह प्राणी शोकग्रस्त, मोहित वा भ्रमित होता है ॥ ३७ ॥

नित्यं कालपरीतस्य मम वा मद्विधस्य वा ।
बुद्धिर्व्यसनमासाद्य भिन्ना नौरिव सीदति ॥ ३८ ॥

मैं अथवा मेरे समान पुरुष यदि सदा ही कालसे पीडित हो जाता है, तो उसकी बुद्धि संकटमें पडकर फटी नौकाकी भांति अवसन्न हो सकती है ॥ ३८ ॥

अहं च त्वं च ये चान्ये भविष्यन्ति सुराधिपाः ।
ते सर्वे शक्र यास्यन्ति मार्गमिन्द्रशतैर्गतम् ॥ ३९ ॥

हे इन्द्र ! मैं, वा तुम अथवा दूसरे जो सुराधिपत्य लाभ करेंगे, पहलेके सैकडों इन्द्र जिस मार्गसे गये हैं, उन्हें भी वही मार्गका अवलम्बन करना पडेगा ॥ ३९ ॥

त्वामप्येवं सुदुर्धर्षं ज्वलन्तं परया श्रिया ।
काले परिणते कालः कालयिष्यति मामिव ॥ ४० ॥

तुम परम श्रीसम्पन्न होकर इस समय ऐसे दुर्द्धर्ष होरहे हो, परंतु समय उपस्थित होनेपर काल मेरी भांति तुम्हें भी वशीभूत करेगा ॥ ४० ॥

बहूनीन्द्रसहस्राणि दैतेयानां युगे युगे ।
अभ्यतीतानि कालेन कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ४१ ॥

युग युगमें दैत्योंके कई हजार इन्द्र हुए थे, वे भी कालके वशमें होकर समाप्त हो गये; इसलिये कालको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता । काल अत्यन्त दुरतिक्रम है ॥ ४१ ॥

इदं तु लब्ध्वा त्वं स्थानमात्मानं बहु मन्यसे ।
सर्वभूतभवं देवं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥ ४२ ॥

तुम यह शरीर सम्पत्ति पाके अपनेको सब भूतोंको जन्म देनेवाले सनातन ब्रह्माके समान बहुत बडा समझ रहे हो ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चेदमचलं स्थानमनन्तं वापि कस्यचित् ।
त्वं तु बालिशया बुद्ध्या ममेदमिति मन्यसे ॥ ४३ ॥

परन्तु यह इन्द्रत्व पद किसीके पक्षमें अचल और अनन्त नहीं है; तुम मूढतासे ही ऐसा समझते हो कि "यह मेरा है" ॥ ४३ ॥

अविश्वास्ये विश्वसिषि मन्यसे चाध्रुवं ध्रुवम् ।
ममेयमिति मोहात्त्वं राजश्रियमभीप्ससि ॥ ४४ ॥

तुम अविश्वस्त राज्यके विषयमें विश्वास करते हो, और अनित्य वस्तुको नित्य समझते हो। "यह राज्यश्री मेरी है" ऐसा समझके तुम मोहके वशमें होकर कामना करते हो ॥ ४४ ॥

नेयं तव न चास्माकं न चान्येषां स्थिरा मता ।
अतिक्रम्य बहूनन्यांस्त्वयि तावदियं स्थिता ॥ ४५ ॥

परन्तु यह श्री तुम्हारे वा हमारे अथवा किसीके भी निकट स्थिर नहीं रहती। हे वासव ! इस चञ्चला श्रीने बहुतेरे पुरुषोंको अतिक्रम करके इस समय तुम्हें अवलम्बन किया है ॥४५॥

कंचित्कालमियं स्थित्वा त्वयि वासव चञ्चला ।
गौर्निपानमिवोत्सृज्य पुनरन्यं गमिष्यति ॥ ४६ ॥

परन्तु कुछ समय तक तुम्हारे निकट रहके फिर इस प्रकार दूसरेके समीप चली जायगी, जैसे गऊ जल पीनेके एक स्थानको त्यागके निवासान्तरमें गमन करती है ॥ ४६ ॥

राजलोका ह्यतिक्रान्ता यान्न संख्यातुमुत्सहे ।
त्वत्तो बहुतराश्चान्ये भविष्यन्ति पुरंदर ॥ ४७ ॥

हे पुरन्दर ! अबतक इसने कितने राजाओंका परित्याग किया है; उनकी गिनती मैं नहीं कर सकता; तुम्हारे बाद बहुतेरे पुरुष भविष्यमें इन्द्रत्व लाभ करेंगे ॥ ४७ ॥

सवृक्षौषधिरत्नेयं ससरित्पर्वताकरा ।
तानिदानीं न पश्यामि यैर्भुक्तेयं पुरा मही ॥ ४८ ॥

वृक्ष, औषधी, रत्न, जीव जन्तु, वन और आकर (खान) युक्त इस पृथ्वीको पहले जिन्होंने भोग किया था, इस समय मैं उन्हें नहीं देखता हूं ॥ ४८ ॥

पृथुरैलो मयो भौमो नरकः शम्बरस्तथा ।
अश्वग्रीवः पुलोमा च स्वर्भानुरमितध्वजः ॥ ४९ ॥

पृथु, ऐल, मय, भौम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज ॥ ४९ ॥

प्रह्लादो नमुचिर्दक्षो विप्रचित्तिर्विरोचनः ।
हीनिषेधः सुहोत्रश्च भूरिहा पुष्पवान्वृषः ॥ ५० ॥

प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, हीनिषेध, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, ॥५०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्येषुर्ऋषभो राहुः कपिलाश्वो विरूपकः ।
बाणः कार्त्तस्वरो वह्निर्विश्वदंष्ट्रोऽथ नैर्ऋतः ॥ ५१ ॥

सत्येषु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैर्ऋत, ॥ ५१ ॥

रित्थाहुत्थौ वीरताम्रौ वराहाश्वो रुचिः प्रभुः ।
विश्वजित्प्रतिशौरिश्च वृषाण्डो विष्करो मधुः ॥ ५२ ॥

रित्थाहुत्थ, वीरताम्र, वराहाश्व, रुचि, प्रभु, विश्वजित्, प्रतिशौरि, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, ॥ ५२ ॥

हिरण्यकशिपुश्चैव कैटभश्चैव दानवः ।
दैत्याश्च कालखञ्जाश्च सर्वे ते नैर्ऋतैः सह ॥ ५३ ॥

हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि ये समस्त दानव, दैत्य और कालखञ्ज तथा नैर्ऋत सहित सब राक्षस लोग ॥ ५३ ॥

एते चान्ये च बहवः पूर्वे पूर्वतराश्च ये ।
दैत्येन्द्रा दानवेन्द्राश्च यांश्चान्याननुशुश्रुम ॥ ५४ ॥

तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुतेरे प्राचीन दैत्येन्द्र वा दानवेन्द्र जिनका कि नाममात्र हम सुना करते हैं ॥ ५४ ॥

बहवः पूर्वदैत्येन्द्राः संत्यज्य पृथिवीं गताः ।
कालेनाभ्याहताः सर्वे कालो हि बलवत्तरः ॥ ५५ ॥

वैसे बहुतेरे पहले समयके दैत्य दानवेन्द्र लोग कालसे पीडित होकर पृथ्वी त्यागके चले गये; इसलिये कालही बलवान् है ॥ ५५ ॥

सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं न त्वमेकः शतक्रतुः ।
सर्वे धर्मपराश्चासन्सर्वे सततसत्रिणः ॥ ५६ ॥

इन सबने ही सौ सौ यज्ञ किये थे; तुम्हीं केवल शतक्रतु नहीं हो; ये सभी धर्मपरायण थे, सभी सदा यज्ञ करते थे ॥ ५६ ॥

अन्तरिक्षचराः सर्वे सर्वेऽभिमुखयोधिनः ।
सर्वे संहननोपेताः सर्वे परिघबाहवः ॥ ५७ ॥

और वे सब कोई आकाशमें विचर सकते थे, वे सब कोई सम्मुख युद्धमें समर्थ थे, सभी सुदृढ शरीरसे युक्त और परिघके समान मोटी भुजावाले थे ॥ ५७ ॥

सर्वे मायाशतधराः सर्वे ते कामचारिणः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते पराजिताः ॥ ५८ ॥

वे सब सैकडों माया जाननेवाले और इच्छानुसार गमन करनेवाले थे; सुना जाता है, ये सब कोई युद्धमें उपस्थित होकर पराजित नहीं होते थे ॥ ५८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वे सत्यव्रतपराः सर्वे कामविहारिणः ।
सर्वे वेदव्रतपराः सर्वे चा सन्बहुश्रुताः ॥ ५९ ॥

सब ही सत्यव्रतसे युक्त, कामविहारी, वेदव्रतनिष्ठ और बहश्रुत विद्वान् थे; ॥ ५९ ॥

सर्वे संहतमैश्वर्यमीश्वराः प्रतिपेदिरे ।
न चैश्वर्यमदस्तेषां भूतपूर्वो महात्मनाम् ॥ ६० ॥

सबने ही राजेश्वर होकर संपूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त किया था; परन्तु उन महानुभावोंको पहले कभी ऐश्वर्यका मद नहीं हुआ था ॥ ६० ॥

सर्वे यथार्थदातारः सर्वे विगतमत्सराः ।
सर्वे सर्वेषु भूतेषु यथावत्प्रतिपेदिरे ॥ ६१ ॥

वे सब कोई यथायोग्य याचकोंको दान करते थे, सभी सब ईर्ष्या–द्वेषसे रहित थे । वे सब प्राणियोंके विषयमें यथोचित बर्ताव करते थे ॥ ६१ ॥

सर्वे दाक्षायणीपुत्राः प्राजापत्या महाबलाः ।
ज्वलन्तः प्रतपन्तश्च कालेन प्रतिसंहृताः ॥ ६२ ॥

वे सब कोई दाक्षायणी दिति और दनु तथा महाबलवान् प्रजापति कश्यपके पुत्र थे; वे लोग तेज और प्रतापयुक्त रहनेपर भी कालने उन सबका संहार किया है ॥ ६२ ॥

त्वं चैवेमां यदा भुक्त्वा पृथिवीं त्यक्ष्यसे पुनः ।
न शक्ष्यसि तदा शक्र नियन्तुं शोकमात्मनः ॥ ६३ ॥

हे देवराज ! तुम जब इस पृथ्वीको भोग करके फिर परित्याग करोगे, तब निज शोकको रोकनेमें समर्थ न होगे ॥ ६३ ॥

मुञ्चेच्छां कामभोगेषु मुञ्चेमं श्रीभवं मदम् ।
एवं स्वराज्यनाशे त्वं शोकं संप्रसहिष्यसि ॥ ६४ ॥

इसलिये अभीसे कामभोग विषयकी वासना त्याग दो; इस ऐश्वर्यका गर्व मत करो; ऐसा करनेसे तुम निज राज्यनाश होनेके समय शोकको सहनेमें समर्थ होगे ॥ ६४ ॥

शोककाले शुचो मा त्वं हर्षकाले च मा हृषः ।
अतीतानागते हित्वा प्रत्युत्पन्नेन वर्तय ॥ ६५ ॥

तुम शोकके समय शोक मत करो और हर्षके समय हर्षित न होना; अतीत और अनागत विषयोंको त्यागके प्रत्युत्पन्न विषयके सहारे जीवन बिताओ ॥ ६५ ॥

मां चेदभ्यागतः कालः सदायुक्तमतन्द्रितम् ।
क्षमस्व नचिरादिन्द्र त्वामप्युपगमिष्यति ॥ ६६ ॥

हे देवेन्द्र ! यदि काल मेरे सदा सावधान और आलस्यरहित रहनेपर भी हमारे निकट आया है, तो शीघ्रही थोडेही समयके बीच तुम्हारे समीप भी उपस्थित होगा; तुम समयकी प्रतीक्षा करो । इस सत्य बातके कहनेके लिये मुझे क्षमा करना ॥ ६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

त्रासयन्निव देवेन्द्र वाग्भिस्तक्षसि मामिह ।
संयते मयि नूनं त्वमात्मानं बहु मन्यसे ॥ ६७ ॥

हे देवेन्द्र ! इस समय तुम वचनव्यूहके जरिये मानो मुझे डराते हुए गर्ज रहे हो; मैं संयत हुआ हूं, इसहीसे तुम अपनी बडाई करते हो ॥ ६७ ॥

कालः प्रथममायान्मां पश्चात्त्वामनुधावति ।
तेन गर्जसि देवेन्द्र पूर्वं कालहते मयि ॥ ६८ ॥

कालने पहले मुझपर आक्रमण किया है, अब तुम्हारे पीछे चढाईके लिये दौड रहा है। हे देवराज ! मैं पहले कालसे पीडित हुआ हूं, इसही कारण तुम गर्ज रहे हो ॥ ६८ ॥

को हि स्थातुमलं लोके क्रुद्धस्य मम संयुगे ।
कालस्तु बलवान्प्राप्तस्तेन तिष्ठसि वासव ॥ ६९ ॥

हे वासव ! संग्राममें मेरे क्रुद्ध होनेपर कौन मेरे सम्मुख निवास करनेमें समर्थ होता ? बलवान् कालने मुझपर आक्रमण किया है, इसही कारणसे तुम मेरे सम्मुखमें खडे होरहे हो ॥ ६९ ॥

यत्तद्वर्षसहस्रान्तं पूर्णं भवितुमर्हति ।
यथा मे सर्वगात्राणि नस्वस्थानि हतौजसः ॥ ७० ॥

यह सहस्र वर्षका समय प्रायः पूर्ण हुआ है, पर मेरा सब शरीर तबतक अच्छी तरह सुस्थ नहीं हुआ । मैं कालके कारण निस्तेन हूं ॥ ७० ॥

अहमैन्द्राच्च्युतः स्थानात्त्वमिन्द्रः प्रकृतो दिवि ।
सुचित्रे जीवलोकेऽस्मिन्नुपास्यः कालपर्ययात् ॥ ७१ ॥

मैं इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ हूं, तुम सुरलोकमें नियोजित इन्द्र हुए हो, यही विचित्र है; जीवलोकके बीच कालक्रमसे तुम उपास्य होरहे हो ॥ ७१ ॥

किं हि कृत्वा त्वमिन्द्रोऽद्य किं हि कृत्वा च्युता वयम् ।
कालः कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम् ॥ ७२ ॥

तुम क्या कर्म करके इस समय इन्द्र हुए और मैं ही कौनसे कर्मके जरिये इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ ? कालही कर्ता और विकारकर्ता है, दूसरा कोई भी इसमें कारण नहीं है ॥ ७२ ॥

नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखदुःखे भवाभवौ ।
विद्वान्प्राप्यैवमत्यर्थं न प्रहृष्येन्न च व्यथेत् ॥ ७३ ॥

विद्वान् पुरुष नाश, विनाश, ऐश्वर्य, सुख, दुःख, उत्कर्ष वा पराभव पाकर अत्यन्त हर्षित और दुःखित नहीं होते ॥ ७३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वमेव हीन्द्र वेत्थास्मान्वेदाहं त्वां च वासव ।
विकत्थसे मां किं बद्धं कालेन निरपत्रप ॥ ७४ ॥

हे इन्द्र ! तुम मुझे जानते हो, मैंभी तुम्हें जानता हूं । हे निर्लज्ज ! इससे तुम कालक्रमसे बद्ध मेरे सामने क्यों व्यर्थ आत्मश्लाघा कर रहे हो ? ॥ ७४ ॥

त्वमेव हि पुरा वेत्थ यत्तदा पौरुषं मम ।
समरेषु च विक्रान्तं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७५ ॥

पहले समयमें मेरा जो पौरुष था वह तुमसे छिपा नहीं है; तुम अच्छी तरहसे जानते हो; मैं युद्धोंमें पर्याप्त परिमाणसे जो विक्रम प्रकाश करता था, वह तुमने देखा है, एकही दृष्टान्त पूरा है ॥ ७५ ॥

आदित्याश्चैव रुद्राश्च साध्याश्च वसुभिः सह ।
मया विनिर्जिताः सर्वे मरुतश्च शचीपते ॥ ७६ ॥

हे शचीपति ! पहले समयमें सब आदित्य, रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गणोंका मैंने पराजित किया था ॥ ७६ ॥

त्वमेव शक्र जानासि देवासुरसमागमे ।
समेता विबुधा भग्नास्तरसा समरे मया ॥ ७७ ॥

हे इन्द्र ! तुम तो जानतेही हो, कि देवासुर संग्राममें इकट्ठे हुए सब देवता लोग मेरे बल-विक्रमके प्रभावसे रणभूमि छोडके भागे थे ॥ ७७ ॥

पर्वताश्चासकृत्क्षिप्ताः सवनाः सवनौकसः ।
सटङ्कशिखरा घोराः समरे मूर्ध्नि ते मया ॥ ७८ ॥

मैंने ही वन और वनवासियोंके सहित सब पर्वतोंको बार बार उठाकर चलाया था और युद्धमें तुम्हारे सिरके ऊपर पत्थरके टूकडोंके सहित पहाडोंके शिखरोंको फेंका था ॥ ७८ ॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं यत्कालो दुरतिक्रमः ।
न हि त्वां नोत्सहे हन्तुं सवज्रमपि मुष्टिना ॥ ७९ ॥

इस समयमें क्या कर सकता हूं; काल अत्यन्त दुरतिक्रम है । मैं वज्रके सहित तुम्हें केवल मुष्टिप्रहारसे मार नहीं सकता, ऐसा नहीं है ॥ ७९ ॥

न तु विक्रमकालोऽयं क्षमाकालोऽयमागतः ।
तेन त्वा मर्षये शक्र दुर्मर्षणतरस्त्वया ॥ ८० ॥

परन्तु मेरे लिये यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमा करनेका समय उपस्थित हुआ है । हे देवराज ! इस ही कारण मैं तुम्हारे अपराध सह लेता हूं; अभीभी मैं तुम्हारे लिये अत्यन्त दुःसह हूं ॥ ८० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वं मा परिणते काले परीतं कालवह्निना ।
नियतं कालपाशेन बद्धं शक्र विकत्थसे ॥ ८१ ॥

हे इन्द्र ! काल परिणत होनेसे मैं कालानलसे घिरा और सदा कालपाशसे बद्ध होगया हूं, इस ही कारण तुम मेरे समीप बडाई करते हो ॥ ८१ ॥

अयं स पुरुषः श्यामो लोकस्य दुरतिक्रमः ।
बद्ध्वा तिष्ठति मां रौद्रः पशुं रशनया तथा ॥ ८२ ॥

यह वही सब लोकोंसे दुरतिक्रम श्यामवर्ण भयंकर काल पुरुष रसरीमें बन्धे हुए पशुकी भांति मुझे बान्धके निवास कर रहा है ॥ ८२ ॥

लाभालाभौ सुखं दुःखं कामक्रोधौ भवाभवौ ।
वधो बन्धः प्रमोक्षश्च सर्वं कालेन लभ्यते ॥ ८३ ॥

लाभ–हानि, सुख–दुःख, काम–क्रोध, उन्नति–अवनति, वध, बन्धन और मोक्ष आदि सब काल–वशसे ही प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ८३ ॥

नाहं कर्ता न कर्ता त्वं कर्ता यस्तु सदा प्रभुः ।
सोऽयं पचति कालो मां वृक्षे फलमिवागतम् ॥ ८४ ॥

मैं कर्ता नहीं हूं, तुम भी कर्ता नहीं हो; जो सदा निग्रह–अनिग्रहमें समर्थ है, वही कर्ता है, वही काल–रूपी कर्ता मुझे वृक्षस्थित फलकी भांति पका रहा है ॥ ८४ ॥

यान्येव पुरुषः कुर्वन्सुखैः कालेन युज्यते ।
पुनस्तान्येव कुर्वाणो दुःखैः कालेन युज्यते ॥ ८५ ॥

पुरुष जिन सब कर्मोंको करते हुए कालवशसे सुखयुक्त होता है, कालक्रमसे फिर उन्हीं कर्मोंको करके दुःखयुक्त हुआ करता है ॥ ८५ ॥

न च कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हति ।
तेन शक्र न शोचामि नास्ति शोके सहायता ॥ ८६ ॥

हे वासव ! जो कालके प्रभावको जानता है वह उससे आक्रमित होकर भी शोक नहीं करता; इस ही लिये मैं शोक नहीं करता, शोक कभी दुःख निवारणका सहाय्यक नहीं है ॥ ८६ ॥

यदा हि शोचतां शोको व्यसनं नापकर्षति ।
सामर्थ्यं शोचतो नास्ति नाद्य शोचाम्यहं ततः ॥ ८७ ॥

शोक करनेसे जब वह शोक दुःख–संकट दूर नहीं कर सकता, तब जो शोक करता है, उसकी शक्ति क्षीण होती है; इस ही निमित्त मैं इस समय– आज शोक नहीं करता हूं ॥ ८७ ॥

एवमुक्तः सहस्राक्षो भगवान्पाकशासनः ।
प्रतिसंहृत्य संरम्भमित्युवाच शतक्रतुः ॥ ८८ ॥

भगवान् सहस्रलोचन पाकशासन शतक्रतु इन्द्र बलिका ऐसा वचन सुनके अपने क्रोधको रोकके यह वचन बोले– ॥ ८८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सवज्रमुद्यतं बाहुं दृष्ट्वा पाशांश्च वारुणान् ।
कस्येह न व्यथेद्बुद्धिर्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ ८९ ॥

वज्रके सहित उद्यत बाहु और वरुणपाशको देखकर जिघांसु अन्तककी बुद्धि भी व्यथित हुआ करती है, तो दूसरा कौन है जिसकी बुद्धि व्यथित न हो ? ॥ ८९ ॥

सा ते न व्यथते बुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी ।
ध्रुवञ्च व्यथसे स त्वं वाक्यं सत्यपराक्रम ॥ ९० ॥

हे सत्यपराक्रमी ! तुम्हारी बुद्धि तत्त्वदर्शिनी और अचल है, इसलिये व्यथित नहीं होती; इससे निश्चय बोध होता है, कि तुम इस समय धैर्यके सहारे दुःखी नहीं होते हो ॥ ९० ॥

को हि विश्वासमर्थेषु शरीरे वा शरीरभृत् ।
कर्तुमुत्सहते लोके दृष्ट्वा संप्रस्थितं जगत् ॥ ९१ ॥

इस लोकमें कौन शरीरधारी पुरुष जगत्को विनाशकी ओर जाते देखकर विषय–भोग वा शरीरमें विश्वास करनेका उत्साह करेगा ? ॥ ९१ ॥

अहमप्येवमेवैनं लोकं जानाम्यशाश्वतम् ।
कालाग्नावाहितं घोरे गुह्ये सततगेऽक्षरे ॥ ९२ ॥

गुह्यतम सततगामी अक्षर और घोर कालाग्निमें पडे हुए जगत्को मैं भी इस ही प्रकार अनित्य समझता हूं ॥ ९२ ॥

न चात्र परिहारोऽस्ति कालस्पृष्टस्य कस्यचित् ।
सूक्ष्माणां महतां चैव भूतानां परिपच्यताम् ॥ ९३ ॥

जो कालके पंजेमें आया है, उस किसीको भी उससे छूटनेका उपाय नहीं है; इस संसारमें सूक्ष्म अथवा महत् परिपाक अवस्थामें पडे हुए भूतोंके बीच काल जिसे स्पर्श करता है, उसे नहीं छोडता ॥ ९५ ॥

अनीशस्याप्रमत्तस्य भूतानि पचतः सदा ।
अनिवृत्तस्य कालस्य क्षयं प्राप्तो न मुच्यते ॥ ९४ ॥

स्वयं समर्थ, सदा सावधान, सदा प्राणियोंको पकानेवाले, अनिवृत्त कालके वशमें पडा हुए प्राणी उससे नहीं छूटता ॥ ९४ ॥

अप्रमत्तः प्रमत्तेषु काले जागर्ति देहिषु ।
प्रयत्नेनाप्यतिक्रान्तो दृष्टपूर्वो न केनचित् ॥ ९५ ॥

अप्रमत्त काल अनवहित देहधारियोंके निकट जागृत रहता है; ऐसा कभी नहीं देखा गया, कि किसी पुरुषने विशेष यत्न करके भी कालको अतिक्रम किया है ॥ ९५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुराणः शाश्वतो धर्मः सर्वप्राणभृतां समः ।
कालो न परिहार्यश्च न चास्यास्ति व्यतिक्रमः ॥ ९६ ॥

पुरातन, शाश्वत, धर्मस्वरूप और सब प्राणियोंके प्रति समान दृष्टि रखनेवाला काल है; काल किसीको भी परिहार्य नहीं है, और इस कालका कभी व्यतिक्रम नहीं हो सकता है ॥९६॥

अहोरात्रांश्च मासांश्च क्षणान्काष्ठाः कला लवान् ।
संपिण्डयति नः कालो वृद्धिं वार्धुषिको यथा ॥ ९७ ॥

जैसे ऋण देनेवाला व्याज जोडकर ऋण लेनेवालोंको कष्ट देता है, वैसेही काल दिन, रात, महीना, क्षण, काष्ठा, कला और लव, इन सबकाही हिसाब करके प्राणियोंको पीडा देता है ॥ ९७ ॥

इदमद्य करिष्यामि श्वः कर्तास्मीति वादिनम् ।
कालो हरति संप्राप्तो नदीवेग इवोडुपम् ॥ ९८ ॥

जैसे नदीका वेग किनारेपर स्थित डोंगीको हरण करता है, वैसेही काल उपस्थित होकर "मैं आज वह करूंगा, कल इस प्रकार करूंगा," इस ही प्रकारकी आशामें फंसे हुए पुरुषको हरण किया करता है ॥ ९८ ॥

इदानीं तावदेवासौ मया दृष्टः कथं मृतः ।
इति कालेन ह्रियतां प्रलापः श्रूयते नृणाम् ॥ ९९ ॥

"मैंने अभी इसे देखा था, यह किस प्रकार मर गया ?" कालसे अपहृत होनेवालोंके लिये मनुष्योंका सदा इस ही प्रकार विलाप सुनाई देता है ॥ ९९ ॥

नश्यन्त्यर्थास्तथा भोगाः स्थानमैश्वर्यमेव च ।
अनित्यमध्रुवं सर्वं व्यवसायो हि दुष्करः ।
उच्छ्राया विनिपातान्ता भावोऽभावस्थ एव च ॥ १०० ॥

अर्थ, भोग, पद, शौर्य, ऐश्वर्य आदि सभी नष्ट हुआ करते हैं। उन्नतिका विनिपात ही समाप्ति है, जो है, वह अभाव-स्वरूप है; सब विषय अनित्य और अनिश्चित हैं, इनका निश्चय करना ही अत्यन्त दुष्कर है ॥ १०० ॥

सा ते न व्यथते बुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी ।
अहमासं पुरा चेति मनसापि न बुध्यते ॥ १०१ ॥

तुम्हारी वह बुद्धि तत्त्वदर्शिनी और अचल है, इसलिये ही व्यथित नहीं हुई; "मैं पहले ऐसा था" इस बातकी तुम मनमें भी आलोचना नहीं करते ॥ १०१ ॥

कालेनाक्रम्य लोकेऽस्मिन्पच्यमाने बलीयसा ।
अज्येष्ठमकनिष्ठं च क्षिप्यमाणो न बुध्यसे ॥ १०२ ॥

बलवान् काल इस लोकमें सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ सभीको आक्रमण करके पका रहा है। पर जो आक्रान्त होता है, वह उसे नहीं समझ सकता ॥ १०२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ईर्ष्याभिमानलोभेषु कामक्रोधभयेषु च ।
स्पृहामोहाभिमानेषु लोकः सक्तो विमुह्यति ॥ १०३ ॥

ईर्षा, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, स्पृहा, मोह, मान आदिमें फंसे हुए लोग ही मोहित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥

भवांस्तु भावतत्त्वज्ञो विद्वाञ्ज्ञानतपोन्वितः ।
कालं पश्यति सुव्यक्तं पाणावामलकं यथा ॥ १०४ ॥

तुम आत्मतत्त्वज्ञ, विद्वान्, ज्ञानवान् और तपोनिष्ठ होकर करतलस्थित आमलक फलकी भांति भली प्रकार कालको देखते हो ॥ १०४ ॥

कालचारित्रतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
वैरोचने कृतात्मासि स्पृहणीयो विजानताम् ॥ १०५ ॥

तुम सब शास्त्रोंके जाननेवाले होकर कालके चरित्र और तत्व जानते हो; हे विरोचन पुत्र ! तुम शुद्ध बुद्धि और ज्ञानियोंके स्पृहणीय हो ॥ १०५ ॥

सर्वलोको ह्ययं मन्ये बुद्ध्या परिगतस्त्वया ।
विहरन्सर्वतोमुक्तो न क्वचित्परिषज्जसे ॥ १०६ ॥

मैं समझता हूं, कि तुमने अपने ज्ञानबलसे इन सब लोकोंका तत्त्वज्ञान लिया है; तुम सर्वत्र विचरते हुए भी सर्वसङ्गसे मुक्त होकर समय बिताते हुए किसी विषयमें भी आसक्त नहीं हुए हो ॥ १०६ ॥

रजश्च हि तमश्च त्वा स्पृशतो न जितेन्द्रियम् ।
निष्प्रीतिं नष्टसंतापं त्वमात्मानमुपासते ॥ १०७ ॥

तुमने इन्द्रियोंको जीता है, इससे रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते । तुम प्रीतिरहित तथा दुःखहीन आत्माकी उपासना करते हो ॥ १०७ ॥

सुहृदं सर्वभूतानां निर्वैरं शान्तमानसम् ।
दृष्ट्वा त्वां मम संजाता त्वय्यनुक्रोशिनी मतिः ॥ १०८ ॥

तुम सब भूतोंके सुहृद, वैरहीन और शान्तचित्त हुए हो, तुम्हें देखकर मेरी बुद्धि तुम्हारे विषयमें दयायुक्त हुई है ॥ १०८ ॥

नाहमेतादृशं बुद्धं हन्तुमिच्छामि बन्धने ।
आनृशंस्यं परो धर्मो अनुक्रोशस्तथा त्वयि ॥ १०९ ॥

मैं ऐसे ज्ञानयुक्त पुरुषको बन्धनमें रखके मारनेकी अभिलाषा नहीं करता । किसीके प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव न करना ही परम धर्म है, तुम्हारे ऊपर मुझे ऐसी ही करुणा हुई है ॥ १०९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मोक्ष्यन्ते वारुणाः पाशास्तवेमे कालपर्ययात् ।
प्रजानामपचारेण स्वस्ति तेऽस्तु महासुर ॥ ११० ॥

इसलिये कालक्रमसे तुम इन सब वरुणपाशोंसे छूट जाओगे । हे महासुर ! प्रजासमूहके अत्याचारसे तुम्हारा मङ्गल होगा ॥ ११० ॥

यदा श्वश्रूं स्नुषा वृद्धां परिचारेण योक्ष्यते ।
पुत्रश्च पितरं मोहात्प्रेषयिष्यति कर्मसु ॥ १११ ॥

जब पुत्रवधू बूढी सासको अपनी सेवा करनेमें नियुक्त करेगी, पुत्र भी मोहवशसे पिताको कार्य करनेमें प्रेरणा करेगा ॥ १११ ॥

ब्राह्मणैः कारयिष्यन्ति वृषलाः पादधावनम् ।
शूद्राश्च ब्राह्मणीं भार्यामुपयास्यन्ति निर्भयाः ॥ ११२ ॥

चाण्डाल लोग ब्राह्मणोंसे पैर धुलावेंगे, शूद्र लोग निर्भय होकर ब्राह्मणी भार्यासे सङ्गत होंगे ॥ ११२ ॥

वियोनिषु च बीजानि मोक्ष्यन्ते पुरुषा यदा ।
संकरं कांस्यभाण्डैश्च बलिं चापि कुपात्रकैः ॥ ११३ ॥

जब पुरुष विरुद्ध योनिमें अपना वीर्य डालेंगे, जब कांसेके पात्रमें सब जाति एक साथ भोजन करेंगे तथा अपवित्र पात्रोंसे देवपूजाके लिये उपहार अर्पित होने लगेगा ॥ ११३ ॥

चातुर्वर्ण्यं यदा कृत्स्नमुन्मर्यादं भविष्यति ।
एकैकस्ते तदा पाशः क्रमशः प्रतिमोक्ष्यते ॥ ११४ ॥

चारों वर्णोंकी समस्त व्यवस्था जब मर्यादारहित होगी, उस समय क्रमसे तुम्हारे एक एक पाश छूटेंगे ॥ ११४ ॥

अस्मत्तस्ते भयं नास्ति समयं प्रतिपालय ।
सुखी भव निराबाधः स्वस्थचेता निरामयः ॥ ११५ ॥

मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम समयकी प्रतीक्षा करो; निरामय स्वस्थचित्त और दुःखरहित होके सुखी रहो ॥ ११५ ॥

तमेवमुक्त्वा भगवाञ्शतक्रतुः प्रतिप्रयातो गजराजवाहनः ।
विजित्य सर्वानसुरान्सुराधिपो ननन्द हर्षेण बभूव चैकराट् ॥ ११६ ॥

गजराजवाहन भगवान् पाकशासन शतक्रतुने बलिसे ऐसा कहके अपने स्थानको प्रस्थान किया; वह सब असुरोंको जीतके सुराधिप और अद्वितीय अधीश्वर होकर हर्षके सहित आनन्दित हुए ॥ ११६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महर्षयस्तुष्टुवुरञ्जसा च तं वृषाकपिं सर्वचराचरेश्वरम् ।
हिमापहो हव्यमुदावहंस्त्वरंस्तथामृतं चार्पितमीश्वराय ह ॥ ११७ ॥

महर्षि लोग सहसा उपस्थित होकर उस सब चराचरोंके ईश्वर इन्द्रकी स्तुति करने लगे। अग्निदेव यज्ञमण्डपमें देवताओंके लिये हविष्य वहन करने लगे और देवेश्वर इन्द्र अर्पित अमृत पीने लगे ॥ ११७ ॥

द्विजोत्तमैः सर्वगतैरभिष्टुतो विदीप्ततेजा गतमन्युरीश्वरः ।
प्रशान्तचेता मुदितः स्वमालयं त्रिविष्टपं प्राप्य मुमोद वासवः ॥ ११८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ ७८४१ ॥

सत्रस्थित द्विजोत्तमोंसे प्रशंसित दीप्ततेजस्वी सुरराज उस समय मन्युहीन, प्रशान्तचित्त और हर्षित होकर निज स्थान सुरलोकमें जाके आनन्दित हुए ॥ ११८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२० ॥ ७८४१ ॥

: २२१ :

युधिष्ठिर उवाच—

पूर्वरूपाणि मे राजन्पुरुषस्य भविष्यतः ।
पराभविष्यतश्चैव त्वं मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— पितामह राजन् ! भावी उन्नति और अवनतिशील पुरुषके पूर्वलक्षण क्या हैं ? आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव नभविष्यतः ॥ २ ॥

भीष्म बोले—हे राजन् ! तुम्हारा मङ्गल हो; मनही मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके लक्षणोंको प्रकाश किया करता है ॥ २ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
श्रिया शक्रस्य संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ३ ॥

हे युधिष्ठिर ! पुराने लोग इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, तुम उसे सुनो ॥ ३ ॥

महतस्तपसो व्युष्ट्या पश्यल्लोकौ परावरौ ।
सामान्यमृषिभिर्गत्वा ब्रह्मलोकनिवासिभिः ॥ ४ ॥
ब्रह्मैवामितदीप्तौजाः शान्तपाप्मा महातपाः ।
विचचार यथाकामं त्रिषु लोकेषु नारदः ॥ ५ ॥

ब्रह्माकी तरह अपरिमित और प्रदीप्त तेजस्वी शान्तपाप महातपस्वी नारदने महातप समृद्धिके प्रभावसे परावर दोनों लोगोंको देखते हुए ब्रह्मलोकनिवासी ऋषियोंके सङ्ग मिलकर इच्छानुसार तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया था ॥ ४–५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कदाचित्प्रातरुत्थाय पिस्पृक्षुः सलिलं शुचि ।
ध्रुवद्वारभवां गङ्गां जगामावततार च ॥ ६ ॥

किसी समय वह सवेरे ही उठके पवित्र जलको स्पर्श करनेकी इच्छा करके ध्रुवद्वारसे उत्पन्न गङ्गाके समीप जाके उसमें उतरे ॥ ६ ॥

सहस्रनयनश्चापि वज्री शम्बरपाकहा ।
तस्या देवर्षिजुष्टायास्तीरमभ्याजगाम ह ॥ ७ ॥

इस शम्बर और पाक दैत्यका वध करनेवाले वज्रधारी सहस्र नेत्रवाले पाकशासनने उस देवर्षियोंसे सेवित गंगाके तीरपर आगमन किया ॥ ७ ॥

तावाप्लुत्य यतात्मानौ कृतजप्यौ समासतुः ।
नद्याः पुलिनमासाद्य सूक्ष्मकाञ्चनवालुकम् ॥ ८ ॥

वे दोनों गंगामें स्नान करके स्थिर चित्तवाले होकर संक्षेपसे गायत्री जप समाप्त करते हुए सूक्ष्म सुवर्णमय वालुसे युक्त तीरपर पहुंचे ॥ ८ ॥

पुण्यकर्मभिराख्याता देवर्षिकथिताः कथाः ।
चक्रतुस्तौ कथाशीलौ शुचिसंहृष्टमानसौ ।
पूर्ववृत्तव्यपेतानि कथयन्तौ समाहितौ ॥ ९ ॥

वहां पहुंचके दोनों ही बैठकर पुण्यकर्म करनेवाले महर्षियों और देवर्षियोंकी कही हुई सब कथाएं अत्यंत पवित्र तथा प्रसन्न मनसे युक्त होकर सुननेके अभिलाषी हो सुनने लगे। दोनों समाहित चित्त होकर बीते हुए पूर्ववृत्तान्तोंको कहते थे ॥ ९ ॥

अथ भास्करमुद्यन्तं रश्मिजालपुरस्कृतम् ।
पूर्णमण्डलमालोक्य तावुत्थायोपतस्थतुः ॥ १० ॥

इतनेहीमें किरणोंसे युक्त पूर्णमण्डल सूर्यको उदय होते देखकर दोनोंने उठके उसकी उपासना की ॥ १० ॥

अभितस्तूदयन्तं तमर्कमर्कमिवापरम् ।
आकाशे ददृशे ज्योतिरुद्यतार्चिःसमप्रभम् ॥ ११ ॥

अनन्तर आकाशमें उदय होते हुए सूर्यके सम्मुख ही दूसरे सूर्यके समान एक प्रज्वलित अग्नि शिखाके समान प्रभायुक्त दिव्य ज्योति दीख पडी ॥ ११ ॥

तयोः समीपं संप्राप्तं प्रत्यदृश्यत भारत ।
तत्सुपर्णार्कचरितमास्थितं वैष्णवं पदम् ।
भाभिरप्रतिमं भाति त्रैलोक्यमवभासयत् ॥ १२ ॥

हे भारत ! वह ज्योति उन दोनोंके निकट आती दिखायी दी। सुपर्ण और सूर्यके स्वभावशाली उस भगवान् विष्णुके विमानने आकाश तलको अवलम्बन करके प्रभापुञ्जके सहारे अनुपम भावसे प्रकाशित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशयुक्त किया ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दिव्याभिरूपशोभाभिरप्सरोभिः पुरस्कृताम् ।
बृहतीमंशुमत्प्रख्यां बृहज्ज्वालोरिवार्चिषम् ॥ १३ ॥

उन्होंने उस विमानके बीच परम सुन्दर दिव्य अप्सराओंसे वेष्टित, अंशुमाली सूर्यके समान तेजस्विनी और प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशयुक्त ॥ १३ ॥

नक्षत्रकल्पाभरणां ताराभक्तिसमस्रजम् ।
श्रियं ददृशतुः पद्मां साक्षात्पद्मतलस्थिताम् ॥ १४ ॥

नक्षत्रोंके समान चमकनेवाले आभूषणोंसे युक्त, तारा सदृश मुक्ताहारसे युक्त साक्षात् कमला-लक्ष्मीको कमलदलके बीच बैठी हुई देखा ॥ १४ ॥

सावरुह्य विमानाग्रादङ्गनानामनुत्तमा ।
अभ्यागच्छत्त्रिलोकेशं शक्रं चर्षिं च नारदम् ॥ १५ ॥

अंगनाओंमें अग्रगण्य वह देवी विमानके अग्रभागसे उतरकर त्रिलोकनाथ इन्द्र और देवर्षि नारदके सम्मुख उपस्थित हुई ॥ १५ ॥

नारदानुगतः साक्षान्मघवांस्तामुपागमत् ।
कृताञ्जलिपुटो देवीं निवेद्यात्मानमात्मना ॥ १६ ॥

आगे देवर्षि नारद और पीछे साक्षात् इन्द्र हाथ जोडकर देवीके समीप जाके स्वयं आत्मसमर्पण करके ॥ १६ ॥

चक्रे चानुपमां पूजां तस्याश्चापि स सर्ववित् ।
देवराजः श्रियं राजन्वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १७ ॥

परम आदरके सहित उसकी पूजा की और राजन् ! पूजा करनेके अनन्तर वह सर्वज्ञ सुरराज देवीसे यह वचन कहने लगे ॥ १७ ॥

का त्वं केन च कार्येण संप्राप्ता चारुहासिनि ।
कुतश्चागम्यते सुभ्रु गन्तव्यं क्व च ते शुभे ॥ १८ ॥

हे चारुहासिनी ! तुम कौन हो ? किस कार्यके लिये इस स्थानमें आई हो ? हे सुभ्रु ! हे शुभे ! तुम कहांसे आई हो ? और कहां जाओगी ? ॥ १८ ॥

श्रीरुवाच—

पुण्येषु त्रिषु लोकेषु सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
ममात्मभावमिच्छन्तो यतन्ते परमात्मना ॥ १९ ॥

लक्ष्मी बोली— हे इन्द्र ! पवित्र तीनों लोकोंके बीचमें स्थावर जङ्गम सब जीव मेरे सहित आत्मीयताकी अभिलाष करते हुए परम आदरके सहित मुझे प्राप्त करनेके यत्न करते हैं ॥ १९ ॥

साहं वै पङ्कजे जाता सूर्यरश्मिविबोधिते ।
भूत्यर्थं सर्वभूतानां पद्मा श्रीः पद्ममालिनी ॥ २० ॥

मैं सब प्राणियोंके समृद्धिके निमित्त सूर्यकिरणके सहारे फूले हुए कमलपुष्पके बीच उत्पन्न हुई हूं । मुझे सब कोई पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहा करते हैं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Research Institute, Vedic Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नित्यं पर्वसु सुस्नाताः स्वनुलिप्ताः स्वलंकृताः ।
उपवासतपःशीलाः प्रतीता ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥

नियमित रीतिसे सदा पर्वके समय स्नान करते थे; उत्तम रीतिसे अपने अङ्गोंमें चन्दन लगाते और अलंकृत रहते थे; वे लोग उपवास और तपस्यामें रत, विश्वस्त तथा ब्रह्मवादी थे ॥ ३५ ॥

नैनानभ्युदियात्सूर्यो न चाप्यासन्प्रगेनिशाः ।
रात्रौ दधि च सक्तूंश्च नित्यमेव व्यवर्जयन् ॥ ३६ ॥

सूर्य इन लोगोंकी नींद भङ्ग होनेके पहले उदय नहीं होता था, ये लोग कोई भी सबेरेके समय शयन नहीं करते थे; रात्रिके समय दही और सत्तूका भोजन सदा परिवर्जित करते थे ॥ ३६ ॥

काल्यं घृतं चान्ववेक्षन्प्रयता ब्रह्मचारिणः ।
मङ्गलानपि चापश्यन्ब्राह्मणांश्चाप्यपूजयन् ॥ ३७ ॥

भोरमें घृत देखकर प्रणत होकर परब्रह्मके ध्यानमें रत रहते थे, वे संयतेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य-व्रतमें निष्ठा रखते थे; मङ्गलमय वस्तुओंको देखते, ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे ॥ ३७ ॥

सदा हि ददतां धर्मः सदा चाप्रतिगृह्णताम् ।
अर्धं च रात्र्याः स्वपतां दिवा चास्वपतां तथा ॥ ३८ ॥

वे लोग सदा धर्मवादी, अप्रतिग्राही, आधी रातमें सोनेवाले थे और दिनमें शयन नहीं करते थे ॥ ३८ ॥

कृपणानाथवृद्धानां दुर्बलातुरयोषिताम् ।
दायं च संविभागं च नित्यमेवानुमोदताम् ॥ ३९ ॥

दीन हीन, अनाथ, वृद्ध, निर्बल, आतुर और अबला स्त्रियोंपर दया करते और उनके लिये अन्न-वस्त्र देते थे; इस कार्यका वे सदा अनुमोदन करते थे ॥ ३९ ॥

विषण्णं त्रस्तमुद्विग्नं भयार्तं व्याधिपीडितम् ।
हृतस्वं व्यसनार्तं च नित्यमाश्वासयन्ति ते ॥ ४० ॥

दुःखित, त्रासित, व्याकुल, भयसे आर्त्त, व्याधिसे पीडित, हृतसर्वस्व और विपदमें पडे हुए मनुष्यको वे लोग सदा धीरज देते थे ॥ ४० ॥

धर्ममेवान्ववर्तन्त न हिंसन्ति परस्परम् ।
अनुकूलाश्च कार्येषु गुरुवृद्धोपसेविनः ॥ ४१ ॥

वे लोग धर्मकाही अनुसरण करके चलते थे, आपसमें कोई किसीकी हिंसा नहीं करते थे; सब कार्योंमें ही अनुकूल रहते थे; वृद्ध और गुरुजनोंकी सेवा करते थे ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhuji . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पितृदेवातिथींश्चैव यथावत्तेऽभ्यपूजयन् ।
अवशेषाणि चाश्नन्ति नित्यं सत्यतपोरताः ॥ ४२ ॥

तथा पितर, देवता और अतिथियोंकी यथा उचित पूजा करते थे, वे लोग सदा सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहके देवता, पितर और अतिथियोंसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेमें यत्नवान् रहते थे ॥ ४२ ॥

नैकेऽश्नन्ति सुसंपन्नं न गच्छन्ति परस्त्रियम् ।
सर्वभूतेष्ववर्तन्त याथात्म्यनि दयां प्रति ॥ ४३ ॥

वे लोग अकेले ही उत्तम सिद्ध अन्न भोजन नहीं करते थे, परस्त्रीके शरीरको छूनेमें पाप समझते थे, अपनी भांति सब जीवोंमें दया करते थे ॥ ४३ ॥

नैवाकाशे न पशुषु नायोनौ न च पर्वसु ।
इन्द्रियस्य विसर्गं तेऽरोचयन्त कदाचन ॥ ४४ ॥

अनावृत्त स्थानमें, पर्वदिनमें, पशुयोनि अथवा दूसरी कोई विरुद्ध योनिमें इन्द्रिय स्खलन करनेकी कभी इच्छा नहीं करते थे ॥ ४४ ॥

नित्यं दानं तथा दाक्ष्यमार्जवं चैव नित्यदा ।
उत्साहश्चानहंकारः परमं सौहृदं क्षमा ॥ ४५ ॥

हे सुरराज ! सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकारहीनता, परम सुहृदता, क्षमा, ॥४५॥

सत्यं दानं तपः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्रेषु चानभिद्रोहः सर्वं तेष्वभवत्प्रभो ॥ ४६ ॥

सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निष्ठुरतारहित वचन और मित्रोंके विषयमें अद्रोह आदि जो सब गुण हैं, उन लोगोंमें वे सभी थे ॥ ४६ ॥

निद्रा तन्द्रीरसंप्रीतिरसूया चानवेक्षिता ।
अरतिश्च विषादश्च न स्पृहा चाविशन्त तान् ॥ ४७ ॥

निद्रा, तन्द्रा, प्रसन्नता, असूया, अविवेक, अप्रीति, विषाद और स्पृहा आदि दोष उन लोगोंके निकट प्रवेश नहीं कर सकते थे ॥ ४७ ॥

साहमेवंगुणेष्वेव दानवेष्ववसं पुरा ।
प्रजासर्गमुपादाय नैकं युगविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

सृष्टि प्रारम्भ होनेपर अनेक युगोंमें ही मैं इसी प्रकार गुणयुक्त दानवोंके स्थानमें वास करती थी ॥ ४८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः कालविपर्यासे तेषां गुणविपर्ययात् ।
अपश्यं विर्गतं धर्मं कामक्रोधवशात्मनाम् ॥ ४९ ॥

अनन्तर कालक्रमसे उनके गुणोंमें विपरीतता आनेके कारण मैंने उन लोगोंको कामक्रोधके वशमें देखा, धर्मने उन लोगोंको परित्याग किया है ॥ ४९ ॥

सभासदां ते वृद्धानां सत्याः कथयतां कथाः ।
प्राहसन्नभ्यसूयंश्च सर्ववृद्धान्गुणावराः ॥ ५० ॥

वे लोग सभामें बैठे साधु वृद्धोंके सत्य वचनोंमें दोष निकालने लगे; और वे गुणहीन दानव उन सब वृद्ध जनोंका उपहास करने लगे ॥ ५० ॥

यूनः सहसमासीनान्वृद्धानभिगतान्सतः ।
नाभ्युत्थानाभिवादाभ्यां यथापूर्वमपूजयन् ॥ ५१ ॥

आसनपर बैठे हुए युवा पुरुषोंने पहलेकी भांति अभ्यागत साधु और वृद्धोंको देखकर उठके प्रणामसे उनका संमान–आदर सत्कार नहीं किया है ॥ ५१ ॥

वर्तयन्त्येव पितरि पुत्राः प्रभवताऽत्मनः ।
अमित्रभृत्यतां प्राप्य ख्यापयन्तोऽनपत्रपाः ॥ ५२ ॥

पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र प्रभुता करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; वे शत्रुओंके सेवक बनकर अपने उस कर्मको निर्लज्ज होकर दूसरोंके सामने कहते हैं ॥ ५२ ॥

तथा धर्मादपेतेन कर्मणा गर्हितेन ये ।
महतः प्राप्नुवन्त्यर्थांस्तेष्वेषामभवत्स्पृहा ॥ ५३ ॥

अधर्मपथसे निन्दित कर्मके जरिये बहुतसा धन पा रहे हैं; उनकी उस प्रकार धनोपार्जनमें अभिलाषा हो रही हैं ॥ ५३ ॥

उच्चैश्चाप्यवदन्रात्रौ नीचैस्तत्राग्निरज्वलत् ।
पुत्राः पितॄनभ्यवदन्भार्याश्चाभ्यवदन्पतीन् ॥ ५४ ॥

रात्रिके समय वे लोग ऊंचे स्वरसे कोलाहल करते हैं, और उनके यहां अग्निहोत्रकी आग मन्दभावसे जलने लगी हैं । पुत्रोंने पिताओंके ऊपर और स्त्रियोंने पतियोंके ऊपर अत्याचार करना आरम्भ किया है– अर्थात् सन्मान–आदर नहीं करते हैं ॥ ५४ ॥

मातरं पितरं वृद्धमाचार्यमतिथिं गुरुम् ।
गुरुवन्नाभ्यनन्दन्त कुमारान्नान्वपालयन् ॥ ५५ ॥

वे लोग माता–पिता, बूढे लोग, आचार्य, अतिथि और गुरुजनोंके गौरवके निमित्त उन्हें प्रणाम नहीं करते हैं और सन्तानोंका प्रतिपालन भी नहीं करते हैं ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भिक्षां बलिमदत्त्वा च स्वयमन्नानि भुञ्जते ।
अनिष्ट्वा संविभज्याथ पितृदेवातिथीन्गुरून् ॥ ५६ ॥

देवता, पितर, अतिथि और गुरुजनोंकी पूजा, उन्हें अन्नदान, तथा भिक्षा वा भूतोंको बलि न देकर स्वयं अन्न भोजन करने लगे हैं ॥ ५६ ॥

न शौचमनुरुध्यन्त तेषां सूदजनास्तथा ।
मनसा कर्मणा वाचा भक्तमासीदनावृतम् ॥ ५७ ॥

वे तथा उनके रसोइये मन, कर्म और वाणीसे पवित्रताका अनुरोध नहीं करते हैं । उन लोगोंका भोजन ढके विनाही रखा जाता है ॥ ५७ ॥

विप्रकीर्णानि धान्यानि काकमूषकभोजनम् ।
अपावृतं पयोऽतिष्ठदुच्छिष्टाश्चास्पृशन्घृतम् ॥ ५८ ॥

उन लोगोंके घरोंमें अनाजके दाने बिखरे रहते हैं और उन्हें कौवे और चूहे खाते हैं; दूधका कलश बिना ढांके ही छोडते हैं और वे लोग जूठे हाथोंसे घृत छूने लगे हैं ॥ ५८ ॥

कुद्दालपाटीपटकं प्रकीर्णं कांस्यभाजनम् ।
द्रव्योपकरणं सर्वं नान्ववैक्षत्कुटुम्बिनी ॥ ५९ ॥

कुदाल पात्र, पेटिका, कांसेके पात्र तथा अन्य सब द्रव्य और गृहकी सामग्रियोंके इधर उधर पडी रहनेपर भी दानवोंकी गृहिणियोंने उन्हें न देखा है ॥ ५९ ॥

प्राकारागारविध्वंसान्न स्म ते प्रतिकुर्वते ।
नाद्रियन्ते पशून्बद्ध्वा यवसेनोदकेन च ॥ ६० ॥

प्राकार और गृहोंके टूटनेपर भी दानव लोग उसकी मरम्मत करनेमें उद्यत नहीं होते हैं; पशुओंको बन्धे रखके तृण–जल आदिसे उनकी सेवा नहीं करते हैं ॥ ६० ॥

बालानां प्रेक्षमाणानां स्वयं भक्षानभक्षयन् ।
तथा भृत्यजनं सर्वं पर्यश्नन्ति च दानवाः ॥ ६१ ॥

बालकोंके आशासे देखते रहनेपर भी उनका अनादर करके स्वयं भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करते हैं; वे लोग सेवकोंको विना तृप्त किये ही भूखे रखकर स्वयं खाते हैं ॥ ६१ ॥

पायसं कृसरं मांसमपूपानथ शष्कुलीः ।
अपाचयन्नात्मनोऽर्थे वृथामांसान्यभक्षयन् ॥ ६२ ॥

अपने वास्ते ही पायस, खिचडी, मांस, अपूप और पूरी आदि भोजनकी वस्तुओंको पाक कराने लगे हैं और वृथा मांस भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ ६२ ॥

उत्सूर्यशायिनश्चासन्सर्वे चासन्प्रगेनिशाः ।
अवर्तन्कलहाश्चात्र दिवारात्रं गृहे गृहे ॥ ६३ ॥

सभी सूर्यके उदय होनेपर सबेरे सोते रहते हैं; प्रातःकालको रात ही मानते हैं; उन लोगोंके प्रति गृहमें रात दिन कलह होने लगा हैं ॥ ६३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनार्याश्चार्यमासीनं पर्युपासन्न तत्र ह ।
आश्रमस्थान्विकर्मस्थाः प्रद्विषन्ति परस्परम् ।
संकराश्चाप्यवर्तन्त न च शौचमवर्तत ॥ ६४ ॥

उनके यहां अनार्य पुरुष बैठे हुए आर्य पुरुषोंका सम्मान नहीं करते हैं; विधर्मी लोग आश्रमवासी लोगोंसे तथा आपसमें भी द्वेष करने लगे हैं; वर्णसंकरोंकी बढती हुई है; पवित्र आचार लुप्त हो गया है ॥ ६४ ॥

ये च वेदविदो विप्रा विस्पृष्टमनृचश्च ये ।
निरन्तरविशेषास्ते बहुमानावमानयोः ॥ ६५ ॥

जो सब ब्राह्मण वेदविद् और जो वेदके विषयमें सूर्ख हैं, उनके बहुमान और अवमानके विषयमें कुछ भी अन्तर या विशेषता नहीं रखते हैं ॥ ६५ ॥

हावमाभरणं वेषं गतिं स्थितिमवेक्षितुम् ।
असेवन्त भुजिष्या वै दुर्जनाचरितं विधिम् ॥ ६६ ॥

परिचारिका समूह—दासियां हार, आभूषण तथा मनोहर वेष धारण कर दुराचारिणी स्त्रियोंकी भांति चलती हैं, खडी रहती हैं और देखती हैं; उन्होंने दुर्जनोंके आचरित अनुष्ठानका अनुकरण किया है ॥ ६६ ॥

स्त्रियः पुरुषवेषेण पुंसः स्त्रीवेषधारिणः ।
क्रीडारतिविहारेषु परां मुदमवाप्नुवन् ॥ ६७ ॥

स्त्रियां पुरुषका वेष बनाकर और पुरुष स्त्रियोंका वेष धरके क्रीडा, रति तथा विहारके समय अत्यन्त आदन्दमें डूब गये हैं ॥ ६७ ॥

प्रभवद्भिः पुरा दायानर्हेभ्यः प्रतिपादितान् ।
नाभ्यवर्तन्त नास्तिक्याद्भर्तन्तः संभवेष्वपि ॥ ६८ ॥

पिता—पितामहोंसे पहले देने योग्य लोगोंको जो कुछ दानके रूपमें दे गया था, नास्तिकताके कारण भ्राता लोग उसे उनके पास रहने नहीं देते हैं; वे अन्य तरह अपना जीवन—निर्वाह कर सकते हैं, तोभी वह दान वापस लेते हैं ॥ ६८ ॥

मित्रेणाभ्यर्थितं मित्रमर्थे संशयिते क्वचित् ।
वालकोव्यग्रमात्रेण स्वार्थेनाघ्नत तद्वसु ॥ ६९ ॥

किसी तरह धनके विषयमें संशय उपस्थित होनेपर मित्र यदि अपने मित्रके निकट प्रार्थना करता है, तो केशके नोकके समान भी स्वार्थ रहनेपर भी मित्र मित्रके धनको नष्ट करनेमें प्रवृत्त होता है ॥ ६९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

परस्वादानरुचयो विपण्यव्यवहारिणः ।
अदृश्यन्तार्यवर्णेषु शूद्राश्चापि तपोधनाः ॥ ७० ॥

दानवोंके यहांके व्यापारी लोग परस्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा करते हैं; सभी विपरीत व्यवहार करते हुए दीख पडते हैं, उच्च वर्णोंमें मिलकर शूद्र लोग भी तपस्या करने लगे हैं ॥ ७० ॥

अधीयन्तेऽव्रताः केचिदवृथाव्रतमथापरे ।
अशुश्रूषुर्गुरोः शिष्यः काश्चिच्छिष्यसखो गुरुः ॥ ७१ ॥

व्रतहीन पुरुषोंने वेदोंका पढना आरम्भ किया हैं, दूसरे लोग वृथा व्रत करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, शिष्य गुरुकी सेवा करना नहीं चाहता; कोई गुरु शिष्योंको सखा बनाता है ॥ ७१ ॥

पिता चैव जनित्री च श्रान्तौ वृत्तोत्सवाविव ।
अप्रभुत्वे स्थितौ वृद्धावन्नं प्रार्थयतः सुतान् ॥ ७२ ॥

माता–पिता शान्त और उत्सवहीन होने लगे हैं; बूढे पिता–माताकी घरमें कोई प्रभुता नहीं रही; वे लोग पुत्रोंके समीप अन्नके निमित्त प्रार्थना करने लगे हैं ॥ ७२ ॥

तत्र वेदविदः प्राज्ञा गाम्भीर्ये सागरोपमाः ।
कृष्यादिष्वभवन्सक्ता मूर्खाः श्राद्धान्यभुञ्जत ॥ ७३ ॥

समुद्रके समान गम्भीरतासे युक्त वेद जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कृषिकार्य आदि जीवनके उपायमें आसक्त हुए हैं; मूर्ख लोग श्राद्धका अन्न भोजन करने लगे हैं ॥ ७३ ॥

प्रातः प्रातश्च सुप्रश्नं कल्पनं प्रेषणक्रियाः ।
शिष्यानुप्रहिणास्तस्मिन्नकुर्वन्गुरवश्च ह ॥ ७४ ॥

प्रतिदिन भोरके समय शिष्योंको गुरुके निकट स्वास्थ्य पूछनेके लिये दूत भेजना तो दूर रहे, गुरु लोग स्वयं ही शिष्योंके निकट स्वास्थ्य पूछनेके निमित्त जाने लगे हैं, वे शिष्योंके वस्त्र उनकी वेषभूषा ठीक करते हैं; और वे स्वयं ही उनके संदेशवाहक दूत आदिका कार्य करते हैं ॥ ७४ ॥

श्वश्रूश्वशुरयोरग्रे वधूः प्रेष्यानशासत ।
अन्वशासच्च भर्तारं समाहूयाभिजल्पती ॥ ७५ ॥

सास और ससुरके सम्मुखमें ही बहू दास–दासियोंको शासन करनेमें प्रवृत्त हुई है और पतिको आदेश देती है और आवाहन करके उससे बात करती है ॥ ७५ ॥

प्रयत्नेनापि चारक्षच्चित्तं पुत्रस्य वै पिता ।
व्यभजंश्चापि संरम्भाद्दःखवासं तथावसन् ॥ ७६ ॥

पिता यत्नपूर्वक पुत्रके मनकी रक्षा करने लगे हैं । वे पुत्र क्रुद्ध हो इसी भयसे सारा धन उन्हें देते हैं और स्वयं अत्यन्त कष्टमय जीवन बीताते हैं ॥ ७६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अग्निदाहेन चोरैर्वा राजभिर्वा हृतं धनम् ।
दृष्ट्वा द्वेषात्प्राहसन्त सुहृत्संभाविता ह्यपि ॥ ७७ ॥

अग्निदाह, चोर अथवा राजपुरुषोंके जरिये किसीका धन हरे जानेसे नष्ट हुआ देखते हैं, तो भी उसके मित्र लोग द्वेषके कारण उपहास करने लगें हैं ॥ ७७ ॥

कृतघ्ना नास्तिकाः पापा गुरुदाराभिमर्शिनः ।
अभक्ष्यभक्षणरता निर्मर्यादा हतत्विषः ॥ ७८ ॥

वे लोग सब कोई कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी, गुरुस्त्री हरनेवाले, अभक्ष्यके भक्षणमें अनुरक्त, मर्यादारहित और निस्तेज हुए हैं ॥ ७८ ॥

तेष्वेवमादीनाचारानाचरत्सु विपर्यये ।
नाहं देवेन्द्र वत्स्यामि दानवेष्विति मे मतिः ॥ ७९ ॥

हे देवेन्द्र ! कालक्रमसे दानव लोग इस ही प्रकार धर्मके विपरीत आचरण करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, तब मैं उनके निकट निवास न कर सकूंगी; यही मेरे मनमें निश्चय है ॥ ७९ ॥

तां मां स्वयमनुप्राप्तामभिनन्द शचीपते ।
त्वयार्चितां मां देवेश पुरोधास्यन्ति देवताः ॥ ८० ॥

हे शचीनाथ ! मैं स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं, तुम मुझे अभिनन्दित करो। हे सुरेश्वर ! तुमसे पूजित होनेपर अन्य देवता भी मुझे सम्मानित करनेके लिये अगाडी स्थापित करेंगे ॥ ८० ॥

यत्राहं तत्र मत्कान्ता मद्विशिष्टा मदर्पणाः ।
सप्त देव्यो मयाष्टम्यो वासं चेष्यन्ति मेऽष्टधा ॥ ८१ ॥

मैं जिस स्थानमें निवास करती हूं, वहां मेरी प्रिय, मुझसे भी विशिष्ट और मदवलंबना जया आदि आठों देवियां भी मेरे साथ निवास करनेकी अभिलाषा करेंगी ॥ ८१ ॥

आशा श्रद्धा धृतिः कान्तिर्विजितिः सन्नतिः क्षमा ।
अष्टमी वृत्तिरेतासां पुरोगा पाकशासन ॥ ८२ ॥

हे पाकशासन ! उन देवियोंके नाम हैं– आशा, श्रद्धा, धृति, कान्ति, विजिति, उन्नति, क्षमा और आठवीं वृत्ति– जया, ये आठवीं देवी उनकी अग्रगामिनी हैं ॥ ८२ ॥

ताश्चाहं चासुरांस्त्यक्त्वा युष्मद्विषयमागता ।
त्रिदशेषु निवत्स्यामो धर्मनिष्ठान्तरात्मसु ॥ ८३ ॥

इन सब देवियोंके सहित मैं असुरोंको परित्याग करके तुम्हारे राज्यमें आई हूं; अब धर्मनिष्ठ और पवित्र चित्तवाले देवताओंके निकट हम सब निवास करेंगी ॥ ८३ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तवचनां देवीमत्यर्थं तौ ननन्दतुः ।
नारदश्च त्रिलोकर्षिर्वृत्रहन्ता च वासवः ॥ ८४ ॥

भीष्म बोले– कमलमें वास करनेवाली लक्ष्मी देवीने जब ऐसा वचन कहा, तब तीनों लोकोंके ऋषि नारद और वृत्रासुरके नाशक इन्द्रने उनका अभिनन्दन किया ॥ ८४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽनलसखो वायुः प्रववौ देववेश्मसु ।
इष्टगन्धः सुखस्पर्शः सर्वेन्द्रियसुखावहः ॥ ८५ ॥

अनन्तर अग्निके मित्र सब इन्द्रियोंको सुखदायक स्पर्शसे युक्त, सुगन्धयुक्त वायु देवताओंके गृहोंमें बहने लगा ॥ ८५ ॥

शुचौ चाभ्यर्चिते देशे त्रिदशाः प्रायशः स्थिताः ।
लक्ष्म्या सहितमासीनं मघवन्तं दिदृक्षवः ॥ ८६ ॥

लक्ष्मीके सहित बैठे हुए भगवान् इन्द्रके दर्शन करनेकी अभिलाषा करनेके लिये प्रायः सभी देवता पवित्र और पूजित स्थानमें उपस्थित हो गये ॥ ८६ ॥

ततो दिवं प्राप्य सहस्रलोचनः श्रियोपपन्नः सुहृदा महर्षिणा ।
रथेन हर्यश्वयुजा सुरर्षभः सदः सुराणामभिसत्कृतो ययौ ॥ ८७ ॥

अनन्तर श्रीसंपन्न सहस्रनेत्रधारी सुरेश्वर इन्द्र प्रिय सुहृद् महर्षि नारदके सहित हरे रङ्गवाले घोडोंसे जुते हुए रथपर बैठ स्वर्ग लोकमें पहुंचके सत्कृत होकर सुरसमाजमें उपस्थित हुए ॥ ८७ ॥

अथेङ्गितं वज्रधरस्य नारदः श्रियाश्च देव्या मनसा विचारयन् ।
श्रियै शशंसामरदृष्टपौरुषः शिवेन तत्रागमनं महर्द्धिमत् ॥ ८८ ॥

फिर देवताओंके पौरुषको प्रत्यक्ष देखनेवाले नारदने महर्षियोंसे युक्त होकर वज्रधारी इन्द्र और लक्ष्मीके संकेतपर मनहीमन विचार करके वहां लक्ष्मी देवीके सुखपूर्वक आगमनकी प्रशंसा की और वह मंगलकारी कहा ॥ ८८ ॥

ततोऽमृतं द्यौः प्रववर्ष भास्वती पितामहस्यायतने स्वयंभुवः ।
अनाहता दुन्दुभयश्च नेदिरे तथा प्रसन्नाश्च दिशश्चकाशिरे ॥ ८९ ॥

अनन्तर दीप्तिमान् द्युलोक स्वयम्भू पितामहके स्थानमें अमृतकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ; विना बजाये ही नगाडे बजने लगे; सब दिशाएं प्रसन्न और प्रकाशित हुईं ॥ ८९ ॥

यथर्तु सस्येषु ववर्ष वासवो न धर्ममार्गाद्विचचाल कश्चन ।
अनेकरत्नाकरभूषणा च भूः सुघोषघोषा भुवनौकसां जये ॥ ९० ॥

देवराज ऋतुके अनुसार शस्योंके ऊपर जल बरसाने लगे; कोई भी पुरुष धर्ममार्गसे विचलित नहीं हुए; सुरलोक वासियोंकी विजय होनेपर अनेक रत्नाकरभूषित भूमि मङ्गलध्वनि करने लगी ॥ ९० ॥

क्रियाभिरामा मनुजा यशस्विनो बभुः शुभे पुण्यकृतां पथि स्थिताः ।
नरामराः किंनरयक्षराक्षसाः समृद्धिमन्तः सुखिनो यशस्विनः ॥ ९१ ॥

यज्ञादि कर्मोंसे रमणीय सुन्दर मनस्वी मनुष्य पुण्यवान् लोगोंके पवित्र मार्गमें निवास करते हुए सुशोभित हुए; मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षस लोग समृद्धियुक्त, सुखी तथा यशस्वी हुए ॥ ९१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न जात्वकाले कुसुमं कुतः फलं पपात वृक्षात्पवनेरितादपि ।
रसप्रदाः कामदुघाश्च धेनवो न दारुणा वाग्विचचार कस्यचित् ॥ ९२ ॥

अकाल मृत्यु नहीं हुई; फूलफल प्रचण्ड वायुके झकोरेसे भी टूटकर कभी वृक्षोंसे न गिरे; रसप्रद गौवें कामदुघ हुई। किसीके मुखसे दारुण वचन न निकला ॥ ९२ ॥

इमां सपर्यां सह सर्वकामदैः श्रियाश्च शक्रप्रमुखैश्च दैवतैः ।
पठन्ति ये विप्रसदः समागमे समृद्धकामाः श्रियमाप्नुवन्ति ते ॥ ९३ ॥

जो लोग विप्रसमाजमें उपस्थित होकर सर्व कामप्रद इन्द्र आदि देवताओंके सहारे भगवती लक्ष्मी देवीके इस सपर्याय विषयका पाठ करते हैं, वे लोग समृद्धियुक्त होकर सम्पत्ति लाभ करते हैं ॥ ९३ ॥

त्वया कुरूणां वर यत्प्रचोदितं भवाभवस्येह परं निदर्शनम् ।
तदद्य सर्वं परिकीर्तितं मया परीक्ष्य तत्त्वं परिगन्तुमर्हसि ॥ ९४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥ ७९३५ ॥

हे कुरुवर ! तुमने जो इस लोकमें उन्नति और अवनतिका विषय पूछा था, मैंने उसका परम निदर्शन वर्णन किया, अब तुम परीक्षा करके तत्त्वविषय अवलम्बन करो ॥ ९४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२१ ॥ ७९३५ ॥

: २२२ :

युधिष्ठिर उवाच—

किंशीलः किंसमाचारः किंविद्यः किंपरायणः ।
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! मनुष्य कैसे चरित्र, किस प्रकारके आचार, कौनसी विद्या और कैसे आश्रयसे युक्त होनेपर प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ अविनाशी ब्रह्मपदको प्राप्त करता है ? ॥१॥

भीष्म उवाच—

मोक्षधर्मेषु नियतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले— जो मनुष्य मोक्षधर्मोंके पालनमें सदा रत, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय है, वही प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ अविनाशी ब्रह्मधाम लाभ किया करता है ॥ २ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
जैगीषव्यस्य संवादमसितस्य च भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें असितदेवल और जैगीषव्यके इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जैगीषव्यं महाप्राज्ञं धर्माणामागतागमम् ।
अक्रुध्यन्तमहृष्यन्तमसितो देवलोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

असित-देवलने सब धर्मोंके जाननेवाले, महाप्राज्ञ, क्रोध और हर्षसे रहित जैगीषव्यसे इस प्रकार पूछा ॥ ४ ॥

न प्रीयसे वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कुप्यसि ।
का ते प्रज्ञा कुतश्चैषा किं चैतस्याः परायणम् ॥ ५ ॥

हे महर्षि ! तुम्हारी वन्दना करनेपर भी तुम प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेपर भी क्रोध नहीं करते, यह तुम्हारी किस प्रकारकी बुद्धि है ? ऐसी बुद्धि तुमने कहांसे पाई ? तुम्हारी इस बुद्धिका परम अवलम्बन क्या है ? ॥ ५ ॥

इति तेनानुयुक्तः स तमुवाच महातपाः ।
महद्वाक्यमसंदिग्धं पुष्कलार्थपदं शुचि ॥ ६ ॥

महातपस्वी जैगीषव्य देवलका ऐसा वचन सुनके सन्देहरहित प्रचुर अर्थ और पद संयुक्त पवित्र तथा उत्तम वचन कहने लगे ॥ ६ ॥

या गतिर्या परा निष्ठा या शान्ति पुण्यकर्मणाम् ।
तां तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि वै द्विज ॥ ७ ॥

हे ऋषिसत्तम ! पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्योंका जो परम अवलम्बन है, मैं उस अत्यन्त महती गति, श्रेष्ठ निष्ठा और शान्ति विषयको जो तुम पूछते हो, तुमसे कहता हूं, सुनो ॥ ७ ॥

निन्दत्सु च समो नित्यं प्रशंसत्सु च देवल ।
निह्नुवन्ति च ये तेषां समयं सुकृतं च ये ॥ ८ ॥

देवल ! मनीषि लोग स्तुतिनिन्दामें समान बुद्धि रखते हैं । जो कोई उनकी प्रशंसा वा निन्दा करे अथवा उनके सदाचार और पुण्य कर्मोंका गोपन करे, वे सबके प्रति सम बुद्धि ही रखते हैं ॥ ८ ॥

उक्ताश्च न विवक्षन्ति वक्तारमहिते रतम् ।
प्रतिहन्तुं न चेच्छन्ति हन्तारं वै मनीषिणः ॥ ९ ॥

वे मनीषी लोग अहितकारक विषयमें रत पुरुष जो उनसे कटु वचन कहता है, उसको बदलेमें कुछ नहीं कहते; और जो उनके ऊपर आघात करता है, वे उसे मारकर पल्टा लेनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाप्राप्तमनुशोचन्ति प्राप्तकालानि कुर्वते ।
न चातीतानि शोचन्ति न चैनान्प्रतिजानते ॥ १० ॥

वे लोग अप्राप्त विषयोंके लिये शोक न करके समयपर प्राप्त हुए विषयको भोग किया करते हैं; बीते हुए विषयोंके निमित्त शोक उथा उन्हें स्मरण नहीं करते ॥ १० ॥

संप्राप्तानां च पूज्यानां कामादर्थेषु देवल ।
यथोपपत्तिं कुर्वन्ति शक्तिमन्तः कृतव्रताः ॥ ११ ॥

हे देवल ! कोई कामना युक्त पूजनीय पुरुष किन्हीं प्रयोजनके विषयमें पूछनेके लिये उनके पास आवें तो वे उत्तम व्रत करनेवाले शक्तिशाली मनीषी यथाशक्ति उनके कार्य साधनकी चेष्टा करते हैं ॥ ११ ॥

पक्वविद्या महाप्राज्ञा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
मनसा कर्मणा वाचा नापराध्यन्ति कस्यचित् ॥ १२ ॥

जिन्होंने क्रोधको जीता तथा जिनका ज्ञान परिणत है, वे जितेन्द्रिय महाप्राज्ञ मनुष्य मन, वचन और कर्मसे किसीके निकट कुछ अपराध नहीं करते ॥ १२ ॥

अनीर्षवो न चान्योन्यं विहिंसन्ति कदाचन ।
न च जातूपतप्यन्ते धीराः परसमृद्धिभिः ॥ १३ ॥

वे ईर्षारहित होते हैं, इसीसे कभी आपसमें हिंसा करनेमें रत नहीं होते । धीर लोग दूसरेकी समृद्धि देखकर कभी डाह नहीं करते ॥ १३ ॥

निन्दाप्रशंसे चात्यर्थं न वदन्ति परस्य ये ।
न च निन्दाप्रशंसाभ्यां विक्रियन्ते कदाचन ॥ १४ ॥

वे लोग दूसरोंकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा नहीं करते; वे आत्मनिन्दा वा प्रशंसासे विकृत नहीं होते हैं ॥ १४ ॥

सर्वतश्च प्रशान्ता ये सर्वभूताहिते रताः ।
न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति नापराध्यन्ति कस्यचित् ।
विमुच्य हृदयग्रन्थींश्चङ्क्रम्यन्ते यथासुखम् ॥ १५ ॥

वे लोग सब तरहसे प्रशान्त और सब भूतोंके हितमें अनुरक्त रहते हैं, वे क्रोध हर्ष वा किसीके समीप अपराध नहीं करते । वे हृदयकी अज्ञानमयी गांठ छुडाके चारों ओर सुख-पूर्वक विचरते हैं ॥ १५ ॥

न येषां बान्धवाः सन्ति ये चान्येषां न बान्धवाः ।
अमित्राश्च न सन्त्येषां ये चामित्रा न कस्यचित् ॥ १६ ॥

इनके कोई बान्धव नहीं होते हैं और वे दूसरोंके बन्धु नहीं होते हैं; उनके कोई भी शत्रु नहीं होते हैं और वे भी किसीके शत्रु नहीं होते हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

य एवं कुर्वते मर्त्याः सुखं जीवन्ति सर्वदा ।
धर्ममेवानुवर्तन्ते धर्मज्ञा द्विजसत्तम ।
ये ह्यतो विच्युता मार्गात्ते हृष्यन्त्युद्विजन्ति च ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इस ही प्रकार व्यवहार करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बितानेमें समर्थ होते हैं। हे द्विजोत्तम ! जो सब लोग धर्ममार्गका अवलंबन करते हैं वह धर्मज्ञ होते हैं और जो लोग धर्ममार्गसे च्युत हुए हैं, वे हर्ष–उद्वेग लाभ किया करते हैं ॥ १७ ॥

आस्थितस्तमहं मार्गमसूयिष्यामि कं कथम् ।
निन्द्यमानः प्रशस्तो वा हृष्येयं केन हेतुना ॥ १८ ॥

मैंने उस ही धर्मपथका आसरा किया है, इससे किस लिये अपनी निन्दा सुनकर क्यों असूया करूंगा ? कोई मेरी प्रशंसा ही करे, तो भी मैं किस लिये हर्षित होऊंगा ? ॥ १८ ॥

यद्यदिच्छन्ति तन्मार्गमभिगच्छन्ति मानवाः ।
न मे निन्दाप्रशंसाभ्यां ह्रासवृद्धी भविष्यतः ॥ १९ ॥

मनुष्य लोग जिसकी अभिलाष करें, धर्मसे उसेही प्राप्त करनेमें समर्थ होवें; उस निन्दा वा प्रशंसासे मेरी ह्रास वा वृद्धि न होगी ॥ १९ ॥

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य तत्त्ववित् ।
विषस्येवोद्विजेन्नित्यं संमानस्य विचक्षणः ॥ २० ॥

तत्त्ववित् बुद्धिमान् मनुष्य अवमानको अमृतके समान समझके तृप्त हुआ करे और सम्मानको विषके तुल्य समझके उद्विग्न होवे ॥ २० ॥

अवज्ञातः सुखं शेते इह चामुत्र चोभयोः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो योऽवमन्ता स बध्यते ॥ २१ ॥

सब दोषोंसे विमुक्त महात्मा अवमानित होनेपर भी इस लोक और परलोकमें सुखसे सोता है और जो उसका अवमान करता है, वह पापमें पडता है ॥ २१ ॥

परां गतिं च ये केचित्प्रार्थयन्ति मनीषिणः ।
एतद्व्रतं समाश्रित्य सुखमेधन्ति ते जनाः ॥ २२ ॥

जो कोई मनीषि पुरुष परम गतिकी इच्छा करें, वे इस ही व्रतको संग्रह करके अनायासही वृद्धियुक्त होते हैं ॥ २२ ॥

सर्वतश्च समाहृत्य क्रतून्सर्वाञ्जितेन्द्रियः ।
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २३ ॥

जितेन्द्रिय पुरुष सब तरहसे समस्त सत्र समाप्त करके प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करता है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नास्य देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
पदमन्ववरोहन्ति प्राप्तस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ ७२५९ ॥

जो मनुष्य परम पदको पाता है, देवता, गन्धर्व, पिशाच और राक्षस लोग उसका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २४ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२२ ॥ ७२५२ ॥

: २२३ :

युधिष्ठिर उवाच—

प्रियः सर्वस्य लोकस्य सर्वसत्त्वाभिनन्दिता ।
गुणैः सर्वैरुपेतश्च को न्वस्ति भुवि मानवः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! भूलोकमें सब जीवोंको आनन्द देनेवाला, सब लोगोंका प्यारा और सब सद्गुणोंसे युक्त मनुष्य कौन है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि पृच्छतो भरतर्षभ ।
उग्रसेनस्य संवादं नारदे केशवस्य च ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार नारदके विषयमें उग्रसेन और श्रीकृष्णकी जो वार्तालाप हुई थी, इस समय उसे वर्णन करता हूं, सुनो ॥ २ ॥

उग्रसेन उवाच —

पश्य संकल्पते लोको नारदस्य प्रकीर्तने ।
मन्ये स गुणसंपन्नो ब्रूहि तन्मम पृच्छतः ॥ ३ ॥

उग्रसेन बोले— नारदका नाम लेनेमें लोग संकल्प किया करते हैं; वे अवश्यही उत्तम गुणयुक्त हैं; ऐसे मैं समझता हूं; इससे मैं पूछता हूं, उनमें जो सब गुण हैं, वह सब तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३ ॥

वासुदेव उवाच—

कुकुराधिप यान्मन्ये शृणु तान्मे विवक्षतः ।
नारदस्य गुणान्साधून्संक्षेपेण नराधिप ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण बोले— हे कुक्कुरवंशावतंस नरनाथ ! नारदके जो सब उत्तम गुण मुझे विदित हैं, उन्हें—संक्षेपमें कहनेकी इच्छा करता हूं, सुनिये ॥ ४ ॥

न चारित्रनिमित्तोऽस्याहंकारो देहपातनः ।
अभिन्नश्रुतचारित्रस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ५ ॥

अपने सत् चरित्रके निमित्त उन्हें शरीरको संतप्त करनेवाला अहंकार नहीं है; जैसा ज्ञान है, वैसा ही चरित्र है; इस ही लिये वे सब जगह पूजित होते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपस्वी नारदो बाढं वाचि नास्य व्यतिक्रमः ।
कामाद्वा यदि वा लोभात्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ६ ॥

निश्चय ही नारद अत्यन्त तपस्वी हैं; काम वा लोभके वशमें होकर उनका वचन व्यतिक्रम नहीं होता, इस ही निमित्त वे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ६ ॥

अध्यात्मविधितत्त्वज्ञः क्षान्तः शक्तो जितेन्द्रियः ।
ऋजुश्च सत्यवादी च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ७ ॥

वे अध्यात्म विधिके तत्त्वज्ञ, क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसहीसे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ७ ॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च ।
जन्मना तपसा वृद्धस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ८ ॥

तेज, यश, बुद्धि, नीति, विनय, जन्म और तपस्यामें वे सबसे श्रेष्ठ हैं; इस ही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ८ ॥

सुखशीलः सुसंभोगः सुभोज्यः खादरः शुचिः ।
सुवाक्यश्चाप्यनीर्ष्यश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ९ ॥

वे सुखशील, सुखसे भोग करनेवाले, सुभोजी, खादरयुक्त, पवित्र, उत्तम वचन कहनेवाले और ईर्षारहित हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

कल्याणं कुरुते बाढं पापमस्मिन्न विद्यते ।
न प्रीयते परानर्थैस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १० ॥

वे सबके विषयमें कल्याणकी इच्छा किया करते हैं, उनके मनमें तनिक भी पाप नहीं है, दूसरेके अनर्थसे वे प्रसन्न नहीं होते, इसहीसे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १० ॥

वेदश्रुतिभिराख्यानैरर्थानभिजिगीषते ।
तितिक्षुरनवज्ञश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ ११ ॥

वे वेद, श्रुति तथा पुराणोंकी कथाओंको—सब विषयोंको समझाने—सिद्ध करनेकी अभिलाष करते हैं; वे सहनशील हैं और किसीकी अवज्ञा नहीं करते, इस ही कारण वे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ११ ॥

समत्वाद्धि प्रियो नास्ति नाप्रियश्च कथंचन ।
मनोनुकूलवादी च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १२ ॥

समतानिबन्धनसे कोई उनका प्रिय अथवा किसी प्रकार कोई अप्रिय नहीं है। वे मनके अनुकूल वचन कहा करते हैं, इस ही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बहुश्रुतश्चित्रकथः पण्डितोऽनलसोऽशठः ।
अदीनोऽक्रोधनोऽलुब्धस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १३ ॥

वे अनेक शास्त्रोंके विद्वान् हैं और कथाओंको विचित्र ढंगसे कहते हैं; वे पण्डित, निरालसी, शठताहीन, अदीन, अक्रोधी और लोभरहित हैं, इसहीसे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १३ ॥

नार्थेन धर्मे कामे वा भूतपूर्वोऽस्य विग्रहः ।
दोषाश्चास्य समुच्छिन्नास्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १४ ॥

विषय, धन और कामके लिये पहले कभी उनका विग्रह नहीं हुआ; उनके सब दोष नष्ट हुए हैं, इस हीसे वे सब जगह पूजित होते हैं ॥ १४ ॥

दृढभक्तिरनिन्द्यात्मा श्रुतवानृशंसवान् ।
वीतसंमोहदोषश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १५ ॥

वे दृढ भक्त, अनिन्द्य स्वभाव, शास्त्रज्ञ, दयालु, संमोहहीन और दोषरहित हैं; इस ही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १५ ॥

असक्तः सर्वसङ्गेषु सक्तात्मेव च लक्ष्यते ।
अदीर्घसंशयो वाग्मी तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १६ ॥

वे सब प्राणियोंमें अनासक्त रहनेपर भी आसक्तकी भांति दीखते हैं, बहुत समय तक उनका संशय नहीं रहता और वे अत्यन्त ही उत्तम वक्ता हैं, इस ही निमित्त सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १६ ॥

समाधिर्नास्य मानार्थे नात्मानं स्तौति कर्हिचित् ।
अनीर्ष्युर्दृढसंभाषस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १७ ॥

कामभोगके लिये उन्हें कामना नहीं है, कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते, वे ईर्षारहित और कोमल वचन कहनेवाले हैं, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं ॥ १७ ॥

लोकस्य विविधं वृत्तं प्रकृतेश्चाप्यकुत्सयन् ।
संसर्गविद्याकुशलस्तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १८ ॥

वे सब लोगोंकी विविध वृत्तियोंको देखते हैं, तौभी किसीकी निन्दा नहीं करते और सृष्टि-विषयक ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं, इस ही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ १८ ॥

नासूयत्यागमं कंचित्स्वं तपो नोपजीवति ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ १९ ॥

वे किसी शास्त्रके विषयमें असूया नहीं करते, निज नीतिको उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं; समयको निष्फल नहीं करते और चित्तको वशीभूत कर रखा है, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Jhabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृतश्रमः कृतप्रज्ञो न च तृप्तः समाधितः ।
नियमस्थोऽप्रमत्तश्च तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ २० ॥

वे समाधि विषयमें श्रम किया करते हैं, उन्होंने बुद्धिको शुद्ध किया है; समाधि करके भी तृप्त नहीं होते; सदा नियमोंमें स्थित और अप्रमत्त रहते हैं, इसही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ २० ॥

सापत्रपश्च युक्तश्च सुनेयः श्रेयसे परैः ।
अभेत्ता परगुह्यानां तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ २१ ॥

द्वेषरहित, योगयुक्त, दूसरोंके परम कल्याणमें नियुक्त, नीतिमान् और दूसरेके गुप्त वचनको प्रकाश नहीं करते, इसहीसे सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ २१ ॥

न हृष्यत्यर्थलाभेषु नालाभेषु व्यथत्यपि ।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तस्मात्सर्वत्र पूजितः ॥ २२ ॥

वे अर्थ लाभ होनेपर हर्षित और अर्थहानिसे दुःखित नहीं होते; वे स्थिर-बुद्धि और अनासक्त चित्त हैं; इस ही लिये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ २२ ॥

तं सर्वगुणसंपन्नं दक्षं शुचिमकातरम् ।
कालज्ञं च नयज्ञं च कः प्रियं न करिष्यति ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ७९८२ ॥

उस सर्वगुणयुक्त, अत्यन्त निपुण, पवित्र, निर्भय, कालज्ञ और नीतिज्ञ महर्षिसे प्रीति करनेमें कौन पराङ्मुख होगा ? ॥ २३ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२३ ॥ ७९८२ ॥

: २२४ :

युधिष्ठिर उवाच—

आद्यन्तं सर्वभूतानां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।
ध्यानं कर्म च कालं च तथैवायुर्युगे युगे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे कौरव ! सब जीवोंकी उत्पत्ति वा लयका विषय और ध्यान, कर्मकाल तथा युगयुगमें किस प्रकार परमायु होती है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

लोकतत्त्वं च कात्स्न्र्येन भूतानामागतिं गतिम् ।
सर्गश्च निधनं चैव कुत एतत्प्रवर्तते ॥ २ ॥

समस्त लोकतत्त्व, जीवोंकी अगति और गति तथा यह सृष्टि और मृत्यु कहांसे हुआ करती है ? ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदि तेऽनुग्रहे बुद्धिरस्माखिह सतां वर ।
एतद्भवन्तं पृच्छामि तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३ ॥

हे साधुवर ! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा हो, तो यही विषय जो कि आपसे पूछता हूं, उसे हमारे निकट वर्णन करिये ॥ ३ ॥

पूर्वं हि कथितं श्रुत्वा भृगुभाषितमुत्तमम् ।
भरद्वाजस्य विप्रर्षेस्ततो मे बुद्धिरुत्तमा ॥ ४ ॥

पहले आपके कहे हुए अत्यन्त श्रेष्ठ भृगु और विप्रर्षि भरद्वाजकी कथा सुनके मेरी बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ हुई थी ॥ ४ ॥

जाता परमधर्मिष्ठा दिव्यसंस्थानसंस्थिता ।
ततो भूयस्तु पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ५ ॥

मेरी बुद्धि परम धर्मिष्ठ और दिव्य संस्थाननिष्ठ हुई है, इसलिये फिर आपके समीप पूछता हूं; आप उस ही विषयको वर्णन करिये ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
जगौ यद्भगवान्व्यासः पुत्राय परिपृच्छते ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— हे धर्मराज ! इस विषयमें भगवान् व्यासदेवने प्रश्न करनेवाले निज पुत्रसे जो कुछ कहा था, वह प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनो ॥ ६ ॥

अधीत्य वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदस्तथा ।
अन्विच्छन्नैष्ठिकं कर्म धर्मनैपुणदर्शनात् ॥ ७ ॥

निखिल वेद और साङ्ग उपनिषदोंको पढके धर्मकी निपुणता दर्शन निबन्धनसे नैष्ठिक कर्मकी कामना करते हुए ॥ ७ ॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं पुत्रो वैयासकिः शुकः ।
पप्रच्छ संदेहमिमं छिन्नधर्मार्थसंशयम् ॥ ८ ॥

व्यासपुत्र शुकदेवने धर्मात्माओंके संशयको दूर करनेवाले अपने पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन व्याससे यह सन्देह विषय पूछा। उन्हें विश्वास था कि पिताके उपदेशसे सारा संशय दूर होगा ॥८॥

भूतग्रामस्य कर्तारं कालज्ञाने च निश्चयम् ।
ब्राह्मणस्य च यत्कृत्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! सब भूतोंके कर्ता कौन है ? कालके ज्ञानके विषयमें आपका क्या निश्चय है ? और ब्राह्मणका कर्तव्य क्या है ? उसे आप वर्णन करिये ॥ ९ ॥

तस्मै प्रोवाच तत्सर्वं पिता पुत्राय पृच्छते ।
अतीतानागते विद्वान्सर्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ १० ॥

अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले ब्रह्मज्ञ तथा सर्व धर्मज्ञ विद्वान् पिता व्यासदेव उस प्रश्न करनेवाले पुत्रसे यह सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Varanasi. Digitized by eGangotri

अनाद्यन्तमजं दिव्यमजरं ध्रुवमव्ययम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ ११ ॥

व्यासदेव बोले– अनादि, अनन्त, जन्मरहित, दीप्तिमान्, अजर, अव्यय, नित्य, तर्कके अगोचर और अविज्ञेय ब्रह्म सृष्टिके पहले वर्त्तमान था ॥ ११ ॥

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत्कलां ताम् ।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तो भागः कलाया दशमश्च यः स्यात् ॥ १२ ॥

कलाकाष्ठा आदि व्यञ्जक सूर्य आदि जो कुछ व्यक्त पदार्थ हैं, वे सभी मनोमय हैं; इसलिये वक्ष्यमाण रूपसे प्रकट कालको ब्रह्म स्वरूपसे मालूम करना उचित है। पन्दरह निमेषकी एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाको एक कला कहते हैं, तीस कला और कलाके दसवें भाग तीन काष्ठाका एक मुहूर्त हुआ करता है ॥ १२ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तश्च भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता ।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत्संवत्सरो द्वादशमास उक्तः ।
संवत्सरं द्वे अयने वदन्ति संख्याविदो दक्षिणमुत्तरं च ॥ १३ ॥

तीस मुहूर्तकी एक दिन और रात्रि होती है; मुनि लोग इस ही प्रकार दिन और रात्रिके मुहूर्तोंकी गिनती किया करते हैं; तीस दिनरातका एक महीना और बारह महीनोंका एक वर्ष कहा जाता है। सांख्य जाननेवाले पुरुष कहते हैं, दो अयनका एक वर्ष होता है। अयन दो प्रकारके हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण ॥ १३ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ १४ ॥

सूर्यदेव मनुष्य लोक सम्बन्धीय रातदिनका विभाग करते हैं; जीवोंकी निद्राके लिये रात और कार्य करनेके वास्ते दिन हुआ करता है ॥ १४ ॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
कृष्णोऽहः कर्मचेष्टायां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ १५ ॥

मनुष्य लोकका एक महीना पितरोंका एक दिनरात है; उसके बीच यह विभाग है, कि कृष्ण पक्ष उन लोगोंके कर्मचेष्टाके निमित्त दिनरूपसे विहित है, और शुक्लपक्ष विश्रामके निमित्त रात्रिरूपसे कहा गया है ॥ १५ ॥

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ १६ ॥

मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिनरात है। इसका ऐसा विभाग है, कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिरूपसे निरूपित है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये ते रात्र्यहनी पूर्वे कीर्तिते दैवलौकिके ।
तयोः संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहःक्षये ॥ १७ ॥

देवता लोकके दिन रातका विषय जो वर्णन पहले किया है, उसकी संख्याके अनुसार अब मैं ब्रह्माके दिन रातका मान बताता हूं ॥ १७ ॥

तेषां संवत्सराग्राणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः
कृते त्रेतायुगे चैव द्वापरे च कलौ तथा ॥ १८ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारों युगोंकी वर्ष-संख्या भी बताता हूं ॥ १८ ॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ १९ ॥

देवपरिमाणसे चार हजार वर्ष सत्ययुगका परिमाण है और उसही परिमाणसे चार सौ वर्षोंकी सत्ययुगकी सन्ध्या होती है तथा चार सौ वर्षोंतक सन्ध्यांश काल है ॥ १९ ॥

इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन संयान्ति सहस्राणि शतानि च । ॥ २० ॥

इस ही प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित इतर युग सब एक एक चरणहीन हैं, अर्थात् त्रेतायुग देवपरिमाणसे तीन हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येकका परिमाण तीन सौ वर्षका है । द्वापर देवपरिमाणसे दो हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक दो सौ वर्षके हैं । कलियुग देवपरिमाणसे एक हजार वर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक एक सौ वर्षके निरूपित हुए हैं ॥ २० ॥

एतानि शाश्वतांल्लोकान्धारयन्ति सनातनान् ।
एतद्ब्रह्मविदां तात विदितं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २१ ॥

ये चारों युग शाश्वत सनातन लोकोंको धारण कर रहे हैं। तात! ब्रह्मवित् पुरुष इस कालको ही नित्य ब्रह्म कहके जानते हैं ॥ २१ ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चित्परस्तस्य प्रवर्तते ॥ २२ ॥

सत्ययुगमें सब धर्म और सत्य चारों चरणों सहित आचरित होता था; कोई भी धर्मशास्त्र अधर्मयुक्त नहीं होता; उसका पालन उत्तम होता था ॥ २२ ॥

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोप्यते ।
चौरिकानृतमायाभिरधर्मश्चोपचीयते ॥ २३ ॥

त्रेता आदि युगोंमें क्रमसे धर्म एक एक चरणहीन हुआ है; चोरी, झूठ और शठतासे अधर्मकी वृद्धि हुई है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिष्वेतेषां पादशो ह्रसते वयः ॥ २४ ॥

सत्ययुगमें सब मनुष्य ही चार सौ वर्षोंकी आयुसे युक्त और रोगरहित रहके सब मनोरथोंको सिद्ध करते थे । त्रेतायुगोंसे क्रमसे मनुष्योंकी आयु एक एक चरण घटती आती है । इसी प्रकार त्रेतायुगमें तीन सौ, द्वापरमें दो सौ और कलियुगमें सौ वर्षोंकी आयु होती है ॥२४॥

वेदवादाश्चानुयुगं ह्रसन्तीति च नः श्रुतम् ।
आयूंषि चाशिषश्चैव वेदस्यैव च यत्फलम् ॥ २५ ॥

ऐसा सुना गया है, कि प्रति युगमें वेदोंका अध्ययन और उसके फल, आशा–सिद्धि तथा आयु क्रमसे ह्रस्व होती जाती है ॥ २५ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे धर्मा यथाशक्तिकृता इव ॥ २६ ॥

सत्ययुगमें मनुष्योंके धर्म स्वतन्त्र थे, त्रेता और द्वापरमें भिन्न भिन्न धर्म हुए; युग ह्रासके अनुसार कलियुगमें भी मनुष्योंके धर्म यथाशक्ति पालन होनेवाले पृथक् रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं ॥ २६ ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम् ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥ २७ ॥

सत्ययुगमें तपस्या ही मनुष्योंका परम धर्म था, त्रेतामें ज्ञान ही श्रेष्ठ था, द्वापरमें यज्ञकर्म और कलियुगमें केवल दानही सबसे श्रेष्ठ धर्मरूपसे वर्णित हुआ है ॥ २७ ॥

एतां द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां कवयो विदुः ।
सहस्रं परिवृत्तं तद्ब्राह्मं दिवसमुच्यते ॥ २८ ॥

विद्वान् लोग इस देवपरिमित बारह हजार वर्षको युग कहा करते हैं; इस ही एक सहस्र वर्षके परिमाणसे एक ब्राह्म दिन होता है ॥ २८ ॥

रात्रिस्तावत्तिथी ब्राह्मी तदादौ विश्वमीश्वरः ।
प्रलयेऽध्यात्ममाविश्य सुप्त्वा सोऽन्ते विबुध्यते ॥ २९ ॥

ब्राह्मरात्रिका परिमाण भी इतना ही है । जगत्के ईश्वर ब्रह्मा दिनके आरम्भमें जगत्की सृष्टि करते हैं और रातमें जब प्रलयका समय होता है, तब सबको लीन करके अन्तमें योगनिद्रा अवलम्बन करके सोते हैं; फिर प्रलयका अन्त होने अर्थात् रात्रि बीतनेपर जागृत हुआ करते हैं ॥ २९ ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ३० ॥

जो लोग सहस्रयुगपर्यन्त ब्रह्माका एक दिन और सहस्रयुगके अन्तभागतक उनकी रात्रि जानते हैं, वेही अहोरात्रिके कालतत्त्वको जाननेवाले हैं ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रतिबुद्धो विकुरुते ब्रह्माक्षय्यं क्षपाक्षये ।
सृजते च महद्भूतं तस्माद्व्यक्तात्मकं मनः ॥ ३१ ॥

निद्राके अनन्तर सावधान होनेपर ब्रह्मा निर्विकार अक्षय स्वरूपको मायासे विकारयुक्त करते हैं, फिर महत् भूतोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होते हैं, उससे ही व्यक्तात्मक—स्थूल जगत्को धारण करनेवाला मन उत्पन्न होता है ॥ ३१ ॥

ब्रह्म तेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ।
एकस्य भूतं भूतस्य द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥ ३२ ॥

तेजोमय महत्तत्व स्वरूप ब्रह्म ही सब जगत्का बीज है, उससे ही यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है; द्रव्याभ्यन्तररहित उस एक मात्र भूतसे स्थावर—जङ्गम दोनों उत्पन्न होते हैं ॥३२॥

अहर्मुखे विबुद्धः सन्सृजते विद्यया जगत् ।
अग्र एव महाभूतमाशु व्यक्तात्मकं मनः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा दिनके प्रारंभमें जागृत होकर विद्याके सहारे जगत्की सृष्टि करते हैं, सृष्टिकी आदिमें महत्तत्त्व और फिर व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥

अभिभूयेह चार्चिष्मद्व्यसृजत्सप्त मानसान् ।
दूरगं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम् ॥ ३४ ॥

ईश्वर पूर्वसर्गके अन्तमें सात मानस पदार्थोंको लय करके उत्तर सर्गके प्रारम्भमें उसकी सृष्टि किया करता है । दूरग और बहुधागामी प्रार्थना तथा संशयात्मक मन चैतन्यसे संयुक्त होता है ॥ ३४ ॥

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दो गुणो मतः ॥ ३५ ॥

फिर सृष्टिकी इच्छासे प्रेरित होकर सृष्टिको अनेक रूपसे किया करता है। पण्डित लोग कहा करते करते हैं, कि मनसे आकाश उत्पन्न होता है, उसका गुण शब्द माना गया है ॥ ३५ ॥

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ।
बलवाञ्जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ ३६ ॥

विकारवश आकाशसे सर्वगन्धको ढोनेवाला पवित्र और बलवान् वायु उत्पन्न होता है, उसका गुण स्पर्श माना गया है ॥ ३६ ॥

वायोरपि विकुर्वाणाज्ज्योतिर्भूतं तमोनुदम् ।
रोचिष्णु जायते तत्र तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ३७ ॥

विकार युक्त वायुसे अंधकार नष्ट करनेवाली रोचिष्णु सफेद वर्णकी ज्योति उत्पन्न होती है, उसका गुण रूप है ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्योतिषोऽपि विकुर्वाणाद्भवन्त्यापो रसात्मिकाः ।
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिः पूर्वैषा सृष्टिरुच्यते ॥ ३८ ॥

अग्नि विकारसे युक्त होनेपर उससे रसात्मक जल उत्पन्न हुआ करता है; जलसे भूमि उत्पन्न होती है, उसका गुण गन्ध है; ये सब परम सृष्टि है ॥ ३८ ॥

गुणाः पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावत्तिथं यद्यत्तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

उत्तरोत्तर भूतोंमें पूर्वके सभी भूतोंके सब गुण प्राप्त होते हैं । इन सब भूतोंके बीच जो भूत जबतक जिस प्रकार वर्त्तमान रहता है, उसका गुण भी तबतक उस ही प्रकार उसमें निवास करता है ॥ ३९ ॥

उपलभ्याप्सु चेद्गन्धं केचिद्ब्रूयुरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तं विद्यादापो वायुं च संश्रितम् ॥ ४० ॥

कोई पुरुष जलके बीच गन्ध सूंघके मूढताके कारण यदि उसे जलका ही गन्ध कहके माने, तो वह यथार्थमें उसका नहीं है, गन्ध पृथ्वीका गुण है; वायु और जल आदिमें वह आगन्तुक द्रव्य-सम्पर्कसे मालूम हुआ करता है ॥ ४० ॥

एते तु सप्त पुरुषा नानावीर्याः पृथक्पृथक् ।
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य सर्वतः ॥ ४१ ॥

ये अनेक प्रकारके महावीर्यशाली सात प्रकारके व्यापक पदार्थ अर्थात् महत्तत्त्व, आकाश तत्त्व और आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके परस्पर न मिलनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें सब तरहसे समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४१ ॥

ते समेत्य महात्मानमन्योन्यमभिसंश्रिताः ।
शरीराश्रयणं प्राप्तास्ततः पुरुष उच्यते ॥ ४२ ॥

ये सातों महान् पदार्थ परस्परके सहारेसे मिलित होकर शरीर स्वरूप अवलम्बको प्राप्त होके पुरुष रूपसे कहे जाते हैं ॥ ४२ ॥

श्रयणाच्छरीरं भवति मूर्तिमत्षोडशात्मकम् ।
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मणा ॥ ४३ ॥

पञ्चभूत, मन और दसों इन्द्रिय– ये सोलह पदार्थ शरीरका आसरा करके एकत्रित और मूर्त्तिमान् हुआ करते हैं; महत्तत्त्व आदि सब भूत भोगनेसे शेष रहे हुए कर्मके सहित उस सूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥

सर्वभूतानि चादाय तपसश्चरणाय च ।
आदिकर्ता महाभूतं तमेवाहुः प्रजापतिम् ॥ ४४ ॥

भूतोंका आदि कर्त्ता निज उपाधिभूत मायाके एकादश भूत समस्त भूतोंको सङ्कलन करके तपस्याचरणके निमित्त उसमें ही प्रविष्ट हुआ करता है, पण्डित लोग उस ही आदि कर्त्ताको प्रजापति कहते हैं ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स वै सृजति भूतानि स एव पुरुषः वरः ।
अजो जनयते ब्रह्मा देवर्षिपितृमानवान् ॥ ४५ ॥

वही शरीरान्तर वर्त्ती प्रजापति स्थावर–जङ्गम जीवोंको उत्पन्न करता है । वही श्रेष्ठ पुरुष है; शरीरमें प्रवेश करनेके अनन्तर वे अजन्मा प्रजापति देवर्षि, पितर, मनुष्य और ॥ ४५ ॥

लोकान्नदीः समुद्रांश्च दिशः शैलान्वनस्पतीन् ।
नरार्किनररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४६ ॥

लोगोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होता है; क्रमक्रमसे नदी, समुद्र, दिशा, पहाड, वनस्पति, मनुष्य, किन्नर, निशाचर, पशु, पक्षी, हरिन, सर्प और आकाश आदि नित्य वस्तु तथा घट पट आदि अनित्य वस्तुओंसे युक्त स्थावर–जङ्गम पदार्थोंकी सृष्टि करता है ॥ ४६ ॥

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां पतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

वे सब पहिले सृष्टिके समयमें जिन सब कर्मोंको प्राप्त हुए थे, फिर वारबार उत्पन्न होके उन्हीं कर्मोंको प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।
अतो यन्मन्यते धाता तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ४८ ॥

मनुष्यने विधाताके जरिये प्रकट होके हिंसक–अहिंसक, कोमल–कठोर, धर्म–अधर्म, सत्य और मिथ्या आदि गुणों या दोषोंको अवलम्बन किया अर्थात् पहले सृष्टि समयमें जिसकी जिन विषयोंमें अभिलाषा थी, दूसरे जन्ममें भी उसकी उस ही विषयमें इच्छा होती है और वह वैसे ही कार्योंमें रुचि करता है ॥ ४८ ॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगं च भूतानां धातैव विदधात्युत ॥ ४९ ॥

जगदिन्द्रजाल फैलानेवाले विधाता ही वियदादि सब महाभूतों, रूप आदि विषय, इन्द्रियों और द्रव्याकृति मूर्त्तियों नानात्व अर्थात् शुक्ति रजतकी भांति प्रति पुरुषमें विभिन्नता, तथा जीवोंके विषय विशेषमें विनियोग अर्थात् भोक्तृभाव, सम्बन्ध बन्धन किया करता है ॥ ४९ ॥

केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्मविदो जनाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः ॥ ५० ॥

कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं, सब कर्मोंमें ही पुरुषकी सामर्थ्य है; इसलिये कर्म ही प्रधान है । दूसरे ब्राह्मण लोग कहा करते हैं सूर्य आदि सब ग्रह ही सत् असत् फलके देनेवाले हैं; इसलिये दैव ही प्रधान है । भूतचिन्तक स्वभाववादी पुरुष स्वभावको ही सबसे प्रधान कहा करते हैं ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः ।
त्रय एतेऽपृथग्भूता नविवेकं तु केचन ॥ ५१ ॥

दूसरे मतवाले मनुष्य कहते हैं, दैवकर्म स्वभावके अनुग्रहीत होके फल देनेमें प्रवृत्त हुआ करता है, पौरुष कर्म और दैव, ये पृथक् नहीं हैं। ये तीनों ही मिलके फल उत्पन्न करते हैं, इनमेंसे प्रत्येककी प्रधानता नहीं है। जीवोंके अनेकत्व विषयमें क्या कारण है; जो इसे आर्हत—मतावलम्बी नास्तिकोंने विशेष रूपसे वर्णन नहीं किया, इसे निर्वाचन करनेमें भी उन लोगोंकी सामर्थ्य नहीं है, यह विषय अनिर्वचनीय है, ऐसा भी नहीं कह सकते ॥५१॥

एवमेतच्च नैवं च यदूभूतं सृजते जगत् ।
कर्मस्था विषमं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ॥ ५२ ॥

कर्म और दैव इन दोनोंके बीच अन्यन्तरका कारणत्व सुवच वा दुर्वच हो, दोनों ही इकट्ठे होनेपर कारण होसकते हैं, ऐसी आशंका करके उक्त दोनोंको ही वे लोग कारण नहीं कहते और उन दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण है, वह भी नहीं कह सकते। तप्त शिलारोहणादि निर्झराख्य धर्मके जरिये मोक्ष हुआ करती है, वे लोग उसे ही सिद्ध करते हैं। परन्तु रजोगुण और तमोगुणसे रहित अन्तःकरणवाले सम्प्रज्ञात अवस्थामें स्थित योगीलोग ब्रह्मको ही कारण रूपसे देखते हैं; इस ही लिये वे लोग समदर्शी कहे जाते हैं ॥ ५२ ॥

तपो निःश्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं दमः शमः ।
तेन सर्वानवाप्नोति यान्कामान्मनसेच्छति ॥ ५३ ॥

जीवोंके पक्षमें तपस्या ही मोक्षका कारण है, मनोनिग्रह रूपी शम और बाह्येन्द्रिय निग्रहात्मक दम उस तपस्याके मूल हैं। मनुष्य मन ही मन जो सब कामना करता है, तपस्याके सहारे वह सब पाता है ॥ ५३ ॥

तपसा तदवाप्नोति यदूभूतं सृजते जगत् ।
स तदूभूतश्च सर्वेषां भूतानां भवति प्रभुः ॥ ५४ ॥

जिस परमात्माने जगत्को उत्पन्न किया है, तपस्याके सहारे जीव उसे पाता है; और उसहीका रूप होकर सब जीवोंके ऊपर प्रभुता करनेमें समर्थ हुआ करता है ॥ ५४ ॥

ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम् ।
अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ॥ ५५ ॥

ऋषि लोग तपोबलसे ही दिनरात वेद पढते हैं; वह अनादिनिधन विद्यारूपी वेदवाणी स्वयम्भूके जरिये शिष्य—प्रशिष्य सम्प्रदाय क्रमसे प्रवर्त्तित हुई है। सृष्टिके पहले वेदमयी दिव्यवाणी विद्यमान थी, उससे ही समस्त वृत्तान्त उत्पन्न हुए हैं ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः ।
शर्वर्यन्तेषु जातानां तान्येवैभ्यो ददाति सः ॥ ५६ ॥

ऋषियोंके नाम वेदानुरूप सृष्टिके बनाये हुए सब पदार्थोंके नाम सृष्टिके आरम्भके समय वे विधाता दूसरोंके लिये देते हैं ॥ ५६ ॥

नामभेदस्तपःकर्मयज्ञाख्या लोकसिद्धयः ।
आत्मसिद्धिस्तु वेदेषु प्रोच्यते दशभिः क्रमैः ॥ ५७ ॥

नामभेद, तपस्या, कर्म और यज्ञोंको लोकसिद्धि कहते हैं, और आत्मसिद्धिके विषय वेदोंमें दस प्रकारसे वर्णित हुए हैं ॥ ५७ ॥

यदुक्तं वेदवादेषु गहनं वेददृष्टिभिः ।
तदन्तेषु यथायुक्तं क्रमयोगेन लक्ष्यते ॥ ५८ ॥

वह ब्रह्म जो वेददर्शी ऋषियों द्वारा वर्णित हुआ है, वह वेद और वेदान्त वाक्योंके बीच अत्यन्त गहनभावसे विद्यमान है । पहले कहे हुए दस प्रकारके क्रम यही हैं, कि वेदाध्ययन, दारपरिग्रह करके गार्हस्थ्य अवलम्बन, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि वानप्रस्थाश्रम रूपी तपस्या, सर्वाश्रम साधारण सन्ध्योपासना आदि कर्म, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, कीर्त्तिकर तडाग और आराम आदि पूर्त्तकर्म, ध्यान आदि मानस धर्म, वैश्वानराख्यका कारण ब्रह्मदर्शन, दहरादि ग्रह उपासना और विशुद्धस्वरूपका ज्ञान, इन दसों प्रकारके क्रमके जरिये सांसारिक दुःखोंसे पार होकर परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है । इस ही लिये वेद और वेदान्त वाक्य उपनिषदोंके बीच ये दस प्रकारके क्रम आत्मसिद्धिके उपायरूपसे वर्णित हुए हैं ॥ ५८ ॥

कर्मजोऽयं पृथग्भावो द्वंद्वयुक्तो वियोगिनः ।
आत्मसिद्धिस्तु विज्ञाता जहाति प्रायशो बलम् ॥ ५९ ॥

देहाभिमानी जीव जो पृथक् पृथक् द्वैतभावका—दर्शन किया करता है, वह कर्मज है; मनुष्य आत्मज्ञानसे वह प्रायः त्याग देता है और ज्ञानके बलसे मोक्ष प्राप्त करता है । सुख, दुःख, सर्दी, गर्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वयुक्त द्वैतदर्शनको ही आत्मसिद्धि कहा जाता है । पुरुष विज्ञान बलके प्रभावसे ज्ञातृज्ञेय भाव रूप भेद परित्याग किया करता है ॥ ५९ ॥

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६० ॥

दो प्रकार ब्रह्मको जानना उचित है, पहला शब्दब्रह्मरूप प्रणव, दूसरा परब्रह्म; जो प्रणव उपासना विषयमें निपुण होता है, वही परब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है ॥ ६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आरम्भयज्ञाः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशस्तथा ।
परिचारयज्ञाः शूद्रास्तु तपोयज्ञा द्विजातयः ॥ ६१ ॥

क्षत्रियोंको पशुहिंसा, वैश्योंको धान्य आदिके यज्ञ करना, शूद्रोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना और ब्राह्मणोंको ब्रह्मकी उपासना ही यज्ञस्वरूप है ॥ ६१ ॥

त्रेतायुगे विधिस्त्वेषां यज्ञानां न कृते युगे ।
द्वापरे विप्लवं यान्ति यज्ञाः कलियुगे तथा ॥ ६२ ॥

त्रेतायुगमें यज्ञोंकी इस ही प्रकारसे विधि हुई थी; सत्ययुगमें किसी विधिका प्रयोजन नहीं था; क्योंकि उस समयमें ये सब प्रवृत्ति स्वतः सिद्ध थी। द्वापरमें लोग यज्ञकर्म आरम्भ करनेकी इच्छा करते थे, कलियुगमें सब कोई उस विषयसे विमुख हुए हैं ॥ ६२ ॥

अपृथग्धर्मिणो मर्त्या ऋक्सामानि यजूंषि च ।
काम्यां पुष्टिं पृथग्दृष्ट्वा तपोभिस्तप एव च ॥ ६३ ॥

सत्ययुगमें मनुष्य अद्वैतनिष्ठ थे, वे लोग ऋक्, यजु, सामवेद और स्वर्ग आदिके साधन काम्यकर्म यज्ञादिकोंको तपस्यासे पृथक् जानके वह सब परित्याग करके केवल तपस्याका अनुष्ठान करते थे ॥ ६३ ॥

त्रेतायां तु समस्तास्ते प्रादुरासन्महाबलाः ।
संयन्तारः स्थावराणां जङ्गमानां च सर्वशः ॥ ६४ ॥

त्रेतायुगमें धर्मविषयमें मनुष्योंकी स्वतः प्रवृत्तिके अभाव निबन्धनसे धर्मसंक्रान्त शासन कर्त्ता जो सब महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए थे, वे लोग स्थावर, जङ्गम आदि सब प्राणियोंको सब तरहसे धर्मविषयक शासन करते थे ॥ ६४ ॥

त्रेतायां संहता ह्येते यज्ञा वर्णास्तथैव च ।
संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे ॥ ६५ ॥

इसहीसे त्रेतायुगमें सब वेद, सब यज्ञ और वर्णाश्रमोंके यज्ञादिकोंके अनुष्ठान करानेमें तत्पर थे। द्वापरयुगमें परमायुका परिमाण घटनेसे लोगोंमें उनके पालनका उत्साह नहीं रहा— वे उनसे च्युत होने लगे ॥ ६५ ॥

दृश्यन्ते नापि दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते सयज्ञाश्च केवला धर्मसेतवः ॥ ६६ ॥

कलियुगमें सब निखिल वेद कहीं थोडेसे दीख पडते हैं, सर्वत्र नहीं दीखते; केवल धर्मके बन्धन नहीं रहनेसे यज्ञ और वेद नष्ट हो रहे हैं ॥ ६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृते युगे यस्तु धर्मो ब्राह्मणेषु प्रदृश्यते ।
आत्मवत्सु तपोवत्सु श्रुतवत्सु प्रतिष्ठितः ॥ ६७ ॥

सत्ययुगमें जो धर्म सब ब्राह्मण मात्रमें ही दीख पडता था, इस समय वह चित्तको जीतनेवाले, तपोनिष्ठ और वेदवेदान्तोंके विद्वान् तत्पर ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होरहा है ॥ ६७ ॥

अधर्मव्रतसंयोगं यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रियन्ते स्वधर्मस्था वेदवादा यथायुगम् ॥ ६८ ॥

त्रेतायुगमें अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण लोग आचार व्यवहारको अतिक्रम न करके वेदोक्त प्रमाणके अनुसार यज्ञ आदि धर्म, और उसके सहित एकादश उपवास आदि व्रत और तीर्थ दर्शनादि धर्मकर्म इच्छापूर्वक निवाहते थे; वैदिक द्विजाति भी स्वर्गकी कामना करके यज्ञ करती थी । द्वापरयुगमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण पुत्रकी कामनासे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते थे । कलियुगमें केवल शत्रुमारण आदिकी इच्छासे लोग यज्ञ किया करते हैं; युगयुगमें वेदवादी और स्वधर्मनिष्ठ पुरुष धर्मके ह्राससे विकार वश होते हैं और इस ही प्रकार धर्म अलग-अलग दीख पडता है ॥ ६८ ॥

यथा विश्वानि भूतानि वृष्ट्या भूयांसि प्रावृषि ।
सृज्यन्ते जङ्गमस्थानि तथा धर्मा युगे युगे ॥ ६९ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें अनेक प्रकारके स्थावर, जङ्गम, वृक्ष, लता, गुल्म आदि वर्षासे उत्पन्न होकर वृद्धि संपन्न होते हैं, और वर्षा समाप्त होनेपर उनका ह्रास होता है; वैसेही युगयुगमें धर्माधर्मकी बढती घटती हुआ करती है ॥ ६९ ॥

यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्माहरात्रिषु ॥ ७० ॥

जैसे ऋतुकालमें सर्दी–गर्मी आदि अनेक भांतिके ऋतुओंके चिन्ह पर्यायक्रमसे दीखते हैं, वैसेही ब्रह्मा और हर आदिमें सृष्टि संहार सामर्थ्यकी वृद्धि और ह्रास दीख पडते हैं ॥७०॥

विहितं कालनानात्वमनादिनिधनं तथा ।
कीर्तितं यत्पुरस्ताच्ते तत्सूते चात्ति च प्रजाः ॥ ७१ ॥

चतुर्युगात्मक कालपुरुषके कलाकाष्ठादि भेदसे नानात्व, धर्माधर्मकी ह्रास-वृद्धि भेदसे विभिन्नत्व और उसका अनादि निधनत्व पहिले तुम्हारे समीप वर्णन किया है । वह काल ही प्रजाओंको उत्पन्न करके संहार करता है ॥ ७१ ॥

दधाति प्रभवे स्थानं भूतानां संयमो यमः ।
स्वभावेनैव वर्तन्ते द्वंद्वयुक्तानि भूरिशः ॥ ७२ ॥

जो सब जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज प्राणी स्वाभाविक सुखदुःख आदि द्वंद्वोंसे युक्त होकर वर्त्तमान हैं, काल ही उनका अधिष्ठान है; वही उनको संयम और नियममें रखता है; इसलिये वह ही सब भूतोंको धारण कर रहा है, और प्रतिपालन करता है, काल ही स्वयं सर्वभूतस्वरूप है ॥ ७२ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्गः कालः क्रिया वेदाः कर्ता कार्यं क्रिया फलम् ।
प्रोक्तं ते पुत्र सर्वं वै यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ७३ ॥

हे तात ! काल केवल सर्वभूतस्वरूप ही नहीं है, वह सर्ग आदि आत्मस्वरूप है। तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसके अनुसार सृष्टि, काल, यज्ञ, श्राद्धादि कर्म, उनके प्रकाशक वेद, उनका अनुष्ठान करनेवाला देहादि परिग्रह कार्य और क्रियाफल स्वर्गादि विषयोंको वर्णन किया। ये सभी काल स्वरूप पुरुषमय हैं ॥ ७३ ॥

प्रत्याहारं तु वक्ष्यामि शर्वर्यादौ गतेऽहनि ।
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ॥ ७४ ॥

दिन बीतनेपर रात्रिके आरम्भमें ईश्वर—ब्रह्मा आत्मामें सूक्ष्म भावसे स्थित इस जगत्को जिस प्रकार परिणत करता है, उत्पत्तिक्रमसे विपरीत उस प्रलयका विषय कहता हूं, सुनो ॥ ७४ ॥

दिवि सूर्यास्तथा सप्त दहन्ति शिखिनोऽर्चिषा ।
सर्वमेतत्तदार्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते जगत् ॥ ७५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ ८०५७ ॥

आकाशमें द्वादश आदित्य और सङ्कर्षणके मुखसे उत्पन्न हुई अग्निकी सात ज्वालाएं इस दृश्यमान जगत्को जलानेमें प्रवृत्त होती हैं। उस समय सब जगत् सौरी और अग्नेयी ज्वालाओंसे परिपूरित होकर जाज्वल्यमान हुआ करता है ॥ ७५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२४ ॥ ८०५७ ॥

: २२५ :

व्यास उवाच—

पृथिव्यां यानि भूतानि जङ्गमानि ध्रुवाणि च ।
तान्येवाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ १ ॥

व्यास बोले— पृथ्वीमण्डलमें जो सब स्थावरजङ्गम जीव हैं, वेही पहले प्रलयको प्राप्त होते हैं और लय होनेपर भूमिके साथ मिल जाते हैं ॥ १ ॥

ततः प्रलीने सर्वस्मिन्स्थावरे जङ्गमे तथा ।
अकाष्ठा निस्तृणा भूमिर्दृश्यते कूर्मपृष्ठवत् ॥ २ ॥

स्थावर और जङ्गम जीवोंके लय होनेपर भूमि काष्ठहीन और तृणरहित होकर कछुएकी पीठके समान दीख पडती है ॥ २ ॥

भूमेरपि गुणं गन्धमाप आददते यदा ।
आत्तगन्धा तदा भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥ ३ ॥

जिस समय जल पृथ्वीकी कठोरताका हेतु गन्धगुण ग्रहण करता करता है, उस समय पृथ्वी घृतकी भांति कठोरता परित्याग करके जलमें लीन हो जाती है ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आपस्ततः प्रतिष्ठन्ति ऊर्मिमत्यो महास्वनाः ।
सर्वमेवेदमापूर्य तिष्ठन्ति च चरन्ति च ॥ ४ ॥

तब जल तरङ्गमाला और महाशब्दसे युक्त होकर इस दृश्यमान जगत्‌को अपने रूपमें लीन करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करके स्थिति तथा विचरण करता है ॥ ४ ॥

अपामपि गुणांस्तात ज्योतिरादत्ते यदा ।
आपस्तदा आत्तगुणा ज्योतिष्युपरमन्ति च ॥ ५ ॥

हे तात ! जब अग्नि जलके गुणको ग्रहण करती है, उस समय उसका रस अग्निसे सूखनेसे जल भी अग्निमें लीन होता है ॥ ५ ॥

यदादित्यं स्थितं मध्ये गृह्णन्ति शिखिनोऽर्चिषः ।
सर्वमेवेदमर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते नभः ॥ ६ ॥

जिस समय अग्निशिखाएं मध्यमें स्थित आदित्यमण्डलको परिपूरित करती हैं, उस समय यह समस्त आकाशमण्डल अग्निशिखाओंसे परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हुआ करता है ॥ ६ ॥

ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुराददते यदा ।
प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान् ॥ ७ ॥

वायु जब अग्निके गुण रूपको ग्रहण करता है, तब उस समय अग्नि विरूप होकर प्रशान्त होती है; अनन्तर अत्यन्त महान् वायु क्षुब्ध हुआ करता है ॥ ७ ॥

ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संभवमात्मनः ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ॥ ८ ॥

और अपने महान् शब्दको अवलम्बन करके नीचे, ऊपर, तिर्यक् प्रदेश तथा दसों दिशाओंको आक्रमण कर धावित होता है ॥ ८ ॥

वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते यदा ।
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठति नानदत् ॥ ९ ॥

शेषमें जब आकाश वायुके स्पर्शगुणको ग्रास करता है, तब वायु शान्त हो जाता है, और शब्दके पूर्वरूप वर्ण विभाग रहित नादकी भांति आकाशमें स्थित रहता है ॥ ९ ॥

आकाशस्य गुणं शब्दमभिव्यक्तात्मकं मनः ।
मनसो व्यक्तमव्यक्तं ब्राह्मः स प्रतिसंचरः ॥ १० ॥

अनन्तर आकाशका अभिव्यक्तात्मक शब्द गुण मनके जरिये लय होता है, मनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप ब्राह्म प्रलयमें लीन हो जाता है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदात्मगुणमाविश्य मनो ग्रसति चन्द्रमाः ।
मनस्युपरतेऽध्यात्मा चन्द्रमस्यवतिष्ठते ॥ ११ ॥

उस समय चन्द्रमा आत्मगुण अर्थात् निःसीम ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य धर्मरूप कर्ममें आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ सम्बन्धीय समष्टि मनको नष्ट करता है; मन शान्त होनेपर भी केवल चन्द्रमामें वर्तमान रहता है ॥ ११ ॥

तं तु कालेन महता संकल्पः कुरुते वशे ।
चित्तं ग्रसति संकल्पस्तच्च ज्ञानमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

योगी पुरुष चन्द्रमा नामक उपाधियुक्त सङ्कल्पमात्र शरीर मनको बहुत समयतक वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं; जब सङ्कल्प विचारात्मिका चित्तवृत्तिको ग्रास करता है, तब सङ्कल्पको रोकना अत्यन्त दुःसाध्य होता है । इस सङ्कल्पके वशीकरणका यही उपाय है कि " यह सब मैंही हूं, " इसही प्रकारका ज्ञान सबसे उत्तम है ॥ १२ ॥

कालो गिरति विज्ञानं कालं बलमिति श्रुतिः ।
बलं कालो ग्रसति तु तं विद्वान्कुरुते वशे ॥ १३ ॥

" मैं " इतना ही प्रत्यय स्वरूप काल सबका अनुभव करानेवाला विज्ञानको ग्रास करता है, और बल नामक शक्ति ही काल स्वरूप है, यह वेदमें प्रतिपन्न है ॥ १३ ॥

आकाशस्य तदा घोषं तं विद्वान्कुरुतेऽऽत्मनि ।
तदव्यक्तं परं ब्रह्म तच्छाश्वतमनुत्तमम् ।
एवं सर्वाणि भूतानि ब्रह्मैव प्रतिसंचरः ॥ १४ ॥

जैसे बल कालको कवलित करता है, काल भी उस ही प्रकार बलको ग्रास किया करता है । विदेह कैवल्यरूप शान्त बुद्धि पुनरुत्थानाभाव निबन्धनकालको वशमें कर रखती है । विदेह कैवल्यस्वरूपी शान्तबुद्धि जिस समय कालको वशीभूत करती है, उस समय विद्वान् योगी आकाशके गुणनाद अर्थात् अर्धमात्रा बिन्दुके अनुसार आत्माको परब्रह्ममें संयुक्त करता है ॥ १४ ॥

यथावत्कीर्तितं सम्यगेवमेतदसंशयम् ।
बोध्यं विद्यामयं दृष्ट्वा योगिभिः परमात्मभिः ॥ १५ ॥

वह परमात्माही नित्य निर्मुक्त सर्वोत्तम परब्रह्म है; वही इस प्रकार सब भूतोंकी प्रलय किया करता है, यह प्रलयका विषय कहा गया है । रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति सब भूतोंके लीन होनेपर केवल अकेला ब्रह्म ही शेष रहता है । परमात्मदर्शी योगियोंने शास्त्रमें कहे हुए विद्यामय इस बोधविषयको निःसंशयरूपसे देखकर यथावत् वर्णन किये हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं विस्तारसंक्षेपौ ब्रह्माव्यक्ते पुनः पुनः ।
युगसाहस्रयोरादावहो रात्र्यास्तथैव च ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥ ८०७३ ॥

ब्रह्मा इस ही प्रकार बार बार सृष्टि और प्रलय किया करता है। सहस्र युग पर्यन्त सृष्टिकाल ही उसका दिन और सहस्र युग पर्यन्त प्रलयका समय ही उसकी रात्रिरूपसे गिनी जाती है। यह पहलेही बताया गया है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२५ ॥ ८०७३ ॥

: २२६ :

व्यास उवाच—

भूतग्रामे नियुक्तं यत्तदेतत्कीर्तितं मया ।
ब्राह्मणस्य तु यत्कृत्यं तत्ते वक्ष्यामि पृच्छते ॥ १ ॥

वेदव्यास बोले– हे तात ! तुमने जो भूतसमुदायका विषय पूंछा था, मैंने उस विषयको वर्णन किया; अब ब्राह्मणोंके जो कुछ कर्तव्य हैं, उसका विवरण तुम्हारे पूंछनेपर करता हूं, सुनो ॥ १ ॥

जातकर्मप्रभृत्यस्य कर्मणां दक्षिणावताम् ।
क्रिया स्यादा समावृत्तेराचार्ये वेदपारगे ॥ २ ॥

द्विजातियोंके जातकर्म आदिसे समावर्तन पर्यन्त सब संस्कार वेद जाननेवाले आचार्यके निकट होने चाहिये और उनमें योग्य दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २ ॥

अधीत्य वेदानखिलान्गुरुशुश्रूषणे रतः ।
गुरूणामनृणो भूत्वा समावर्तेत यज्ञवित् ॥ ३ ॥

यज्ञवित् ब्राह्मण गुरुसेवामें रत रहके, अखिल वेदोंको पढकर, गुरुदक्षिणा देकर आचार्यसे अऋणी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन करे; ॥ ३ ॥

आचार्येणाभ्यनुज्ञातश्चतुर्णामेकमाश्रमम् ।
आ विमोक्षाच्छरीरस्य सोऽनुतिष्ठेद्यथाविधि ॥ ४ ॥

अथवा आचार्यसे अनुज्ञात होकर जबतक शरीर धारण करे, तबतक चारों आश्रमोंमेंसे किसी एक आश्रमको विधिपूर्वक अवलम्बन करे ॥ ४ ॥

प्रजासर्गेण दारैश्च ब्रह्मचर्येण वा पुनः ।
वने गुरुसकाशे वा यतिधर्मेण वा पुनः ॥ ५ ॥

अथवा दारपरिग्रह कर गृहस्थाश्रममें सन्तान उत्पन्न करे अथवा आजन्म ब्रह्मचारी रहे वा जङ्गलके बीच रहकर वानप्रस्थी होवे वा गुरुजनोंके निकट रहे वा यतिधर्मके जरिये निवास करे ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गृहस्थस्त्वेव सर्वेषां चतुर्णां मूलमुच्यते ।
तत्र पक्वकषायो हि दान्तः सर्वत्र सिध्यति ॥ ६ ॥

यह गृहस्थ आश्रम इन चार आश्रमोंका मूल कहा जाता है । गार्हस्थ आश्रममें पक्व कषाय अर्थात् लय और विक्षेपके अभावमें राग आदि वासनाके जरिये शुद्धता निबन्धनसे जिनका चित्त अखण्डवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ नहीं है, वैसे ही ब्राह्मण जितेन्द्रिय होनेपर सब आश्रमोंमें ही सिद्धिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

प्रजावाञ्श्रोत्रियो यज्वा मुक्तो दिव्यैस्त्रिभिरृणैः ।
अथान्यानाश्रमान्पश्चात्पूतो गच्छति कर्मभिः ॥ ७ ॥

गृहस्थ ब्राह्मण तीनों दिव्य ऋणोंसे—संतान निर्माण करके पितृऋणसे, वेदोंका स्वाध्याय करके ऋषि ऋणसे और यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवऋणसे विमुक्त होता है; अनन्तर वह कर्मोंसे पवित्र होकर आश्रमान्तरमें गमन करें ॥ ७ ॥

यत्पृथिव्यां पुण्यतमं विद्यास्थानं तदावसेत् ।
यतेत तस्मिन्प्रामाण्यं गन्तुं यशसि चोत्तमे ॥ ८ ॥

पृथ्वीके बीच ब्राह्मण जिस स्थानको अत्यंत पवित्र समझे, वहां पर वास करे और वहां श्रेष्ठ यश उपार्जनमें यत्नवान् होवे ॥ ८ ॥

तपसा वा सुमहता विद्यानां पारणेन वा ।
इज्यया वा प्रदानैर्वा विप्राणां वर्धते यशः ॥ ९ ॥

उत्तम महत् तपस्या, सब विद्याकी पारदर्शिता, यज्ञ और दानसे ब्राह्मणोंके यशकी वृद्धि होती है ॥ ९ ॥

यावदस्य भवत्यस्मिँल्लोके कीर्तिर्यशस्करी ।
तावत्पुण्यकृताँल्लोकाननन्तान्पुरुषोऽश्नुते ॥ १० ॥

इस लोकमें ब्राह्मणकी जितने परिमाणसे यशस्करी कीर्ति हुआ करती है, वह उतने ही परिमाणसे पुण्यवान् लोगोंके अनन्त लोकको उपभोग करता है ॥ १० ॥

अध्यापयेदधीयीत याजयेत यजेत च ।
न वृथा प्रतिगृह्णीयान्न च दद्यात्कथंचन ॥ ११ ॥

ब्राह्मण अध्ययन—अध्यापन, यजन और याजन करे, कभी वृथा प्रतिग्रह वा वृथा दान न करे ॥ ११ ॥

याज्यतः शिष्यतो वापि कन्यया वा धनं महत् ।
यद्यागच्छेद्यजेद्दद्यानैकोऽश्नीयात्कथंचन ॥ १२ ॥

यजमान, शिष्य और कन्यासे जो महत् धन प्राप्त हो, वह यज्ञकार्यमें व्यय और दान करे, किसी भांति अकेले उस धनका उपभोग न करे ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गृहमावसतो ह्यस्य नान्यत्तीर्थं प्रतिग्रहात् ।
देवर्षिपितृगुर्वर्थं वृद्धातुरबुभुक्षताम् ॥ १३ ॥

देवता, ऋषि, पितर, गुरु, वृद्ध, रोगी और भूखोंके लिये जो दान गृहस्थ ब्राह्मणको किया जाता है, वह उसका स्वीकार करे; गृहस्थके पक्षमें उससे बढके दूसरा तीर्थ और कुछ भी नहीं है ॥ १३ ॥

अन्तर्हिताभितप्तानां यथाशक्ति बुभूषताम् ।
द्रव्याणामतिशक्त्यापि देयमेषां कृतादपि ॥ १४ ॥

दारिद्र्यसे संतप्त और यथाशक्ति पारमार्थिक उन्नतिके लिये प्रयत्नशील भूदेव—ब्राह्मणोंको निज शक्तिको अतिक्रम करके भी प्राप्त धनमेंसे अधिक दान करना चाहिये ॥ १४ ॥

अर्हतामनुरूपाणां नादेयं ह्यस्ति किंचन ।
उच्चैःश्रवसमप्यश्वं प्रापणीयं सतां विदुः ॥ १५ ॥

अनुरूप और अर्हणीय ब्राह्मणोंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है; प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उच्चैःश्रवा घोडा भी साधुपुरुषोंको दिया जा सकता है ॥ १५ ॥

अनुनीय तथा काव्यः सत्यसंधो महाव्रतः ।
स्वैः प्राणैर्ब्राह्मणप्राणान्परित्राय दिवं गतः ॥ १६ ॥

महाव्रती राजा सत्यसन्धने अपने कल्याणके लिये विनती करके निज प्राण—दानसे ब्राह्मणका प्राण बचाके सुरपुरमें गमन किया था ॥ १६ ॥

रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने ।
अपः प्रदाय शीतोष्णा नाकपृष्ठे महीयते ॥ १७ ॥

सांकृतिपुत्र रन्तिदेव महात्मा वशिष्ठको न बहुत ठण्डा न बहुत गर्म जल दान करके अमरलोकमें सम्मान भाजन हुए हैं ॥ १७ ॥

आत्रेयश्चन्द्रदमयोरर्हतोर्विविधं धनम् ।
दत्त्वा लोकान्ययौ धीमाननन्तान्स महीपतिः ॥ १८ ॥

अत्रेय बुद्धिमान् इन्द्रदमन राजाने किसी पूजनीय ब्राह्मणको अनेक तरहका धन दान करके अनन्तलोकोंमें गमन किया है ॥ १८ ॥

शिबिरौशीनरोऽङ्गानि सुतं च प्रियमौरसम् ।
ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः ॥ १९ ॥

उशीनरपुत्र शिबिराजा अपने शरीरके सहित निज औरस पुत्र ब्राह्मणको दान करके इस लोकसे स्वर्ग लोकमें गये थे ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय नयने स्वके ।
ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ २० ॥

काशिराज प्रतर्दन ब्राह्मणको अपने दोनों नेत्र दान करके इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्तिभागी हुए ॥ २० ॥

दिव्यं मृष्टशलाकं तु सौवर्णं परमर्द्धिमत् ।
छत्रं देवावृधो दत्त्वा सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् । ॥ २१ ॥

देवावृध राजाने आठ शलाकाओंसे युक्त सुवर्णमय महामूल्यवान् छत्र दान करके राज्य-वासियोंके सहित स्वर्गलोकमें गमन किया ॥ २१ ॥

सांकृतिश्च तथात्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम् ।
उपदिश्य महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २२ ॥

अत्रिपुत्र महातेजस्वी सांकृतिने अपने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मविषयक उपदेश देकर परमश्रेष्ठ लोकोंको पाया है ॥ २२ ॥

अम्बरीषो गवां दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् ।
अर्बुदानि दशैकं च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् ॥ २३ ॥

प्रतापवान् अम्बरीष राजा ग्यारह अर्बुद गौएं ब्राह्मणोंको दान करके राज्यके देशवासियों-सहित सुरलोकमें गये ॥ २३ ॥

सावित्री कुण्डले दिव्ये शरीरं जनमेजयः ।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य जग्मतुर्लोकमुत्तमम् ॥ २४ ॥

सावित्रीने दोनों दिव्य कुण्डल और जनमेजयने ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर छोडके उत्तम लोक पाया है ॥ २४ ॥

सर्वरत्नं वृषादर्भो युवनाश्वः प्रियाः स्त्रियः ।
रम्यमावसथं चैव दत्त्वामुं लोकमास्थितः ॥ २५ ॥

वृषदर्भ पुत्र युवनाश्व समस्त रत्न, प्रिय स्त्रियां और रमणीय गृह दान करके स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ २५ ॥

निमी राष्ट्रं च वैदेहो जामदग्न्यो वसुंधराम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ चापि गयश्चोर्वीं सपत्तनाम् ॥ २६ ॥

विदेहवंशीय निमि राजाने ब्राह्मणोंको अपना राज्य दिया, जमदग्निपुत्रने पृथिवी दान की और गय राजाने नगरके सहित पृथ्वी ब्राह्मणोंको समर्पण की थी ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतानि चासकृत्।
वसिष्ठो जीवयामास प्रजापतिरिव प्रजाः ॥ २७ ॥

जैसे प्रजापति प्रजाकी रक्षा करते हैं, वैसे ही बार बार अनावृष्टिके समय भूतभावन वसिष्ठ-देवने सब जीवोंको जीवित रखा था ॥ २७ ॥

करंधमस्य पुत्रस्तु मरुत्तो नृपतिस्तथा।
कन्यामङ्गिरसे दत्त्वा दिवमाशु जगाम ह ॥ २८ ॥

करन्धमके पुत्र राजा मरुत महर्षि अङ्गिराको कन्या दान करनेसे शीघ्र ही स्वर्गमें गये ॥२८॥

ब्रह्मदत्तश्च पाञ्चाल्यो राजा बुद्धिमतां वरः।
निधिं शङ्खं द्विजाग्र्येभ्यो दत्त्वा लोकानवाप्तवान् ॥ २९ ॥

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पाञ्चालराज ब्रह्मदत्तने अग्रगण्य द्विजोंको निधि और शङ्ख दान करके भी शुभलोकोंको पाया है ॥ २९ ॥

राजा मित्रसहश्चापि वसिष्ठाय महात्मने।
मदयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवं गतः ॥ ३० ॥

मित्रसह राजा महानुभाव वसिष्ठ देवको प्रिय मदयन्ती दान करके उनके सहित सुरलोकमें गये; ॥ ३० ॥

सहस्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३१ ॥

महायशस्वी राजर्षि सहस्रजित्ने ब्राह्मणके निमित्त अपने प्रिय प्राण त्यागके सर्वोत्तम लोकोंको प्राप्त किया है ॥ ३१ ॥

सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयम्।
मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः ॥ ३२ ॥

राजा शतद्युम्न मुद्गल ऋषिको सर्वकाम सम्पूर्ण सुवर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गये ॥ ३२ ॥

नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजः प्रतापवान्।
दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३३ ॥

द्युतिमान् नाम प्रतापवान् शल्वराज ऋचीकको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गये हैं ॥ ३३ ॥

मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम्।
हिरण्यहस्ताय गतो लोकान्देवैरभिष्टुतान् ॥ ३४ ॥

राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्तको अपनी सुन्दरी कन्या दान करके देवताओंसे प्रशंसित लोकोंमें गमन किया है ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वकामैरयुज्यत ॥ ३५ ॥

राजऋषि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको अपनी शान्ता नामी कन्या दान करके सर्वकामसम्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

दत्त्वा शतसहस्रं तु गवां राजा प्रसेनजित् ।
सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३६ ॥

महातेजस्वी प्रसेनजित् राजाने एक लाख बछडे युक्त गऊ दान करके उत्तम लोक प्राप्त किये हैं ॥ ३६ ॥

एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा च ह ।
महात्मानो गताः स्वर्गं शिष्टात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ३७ ॥

ये सब लोग और इनके अतिरिक्त शिष्टस्वभाव जितेन्द्रिय बहुतेरे महात्मा लोग दान और तपस्यासे स्वर्गमें गये हैं ॥ ३७ ॥

तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत्स्थास्यति मेदिनी ।
दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमाप्नुवन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ८१११ ॥

जबतक यह पृथ्वी है, तबतक उन लोगोंकी कीर्ति प्रतिष्ठित रहेगी; क्योंकि इन लोगोंने दान, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करके अमर लोक प्राप्त किया है ॥ ३८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२६ ॥ ८१११ ॥

: २२७ :

व्यास उवाच—

त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तामथाङ्गतः ।
ऋक्सामवर्णाक्षरतो यजुषोऽथर्वणस्तथा ॥ १ ॥

वेदव्यास बोले— ब्राह्मण वेदमें कही हुई त्रयी विद्या तथा सब साङ्ग वेदविद्या पढे । ऋक्, साम, वर्ण, अक्षर, यजु और अथर्व, इन षट्कर्मोंमें पूर्ण रीतिसे वर्तमान रहे ॥ १ ॥

वेदवादेषु कुशला ह्यध्यात्मकुशलाश्च ये ।
सत्त्ववन्तो महाभागाः पश्यन्ति प्रभवाप्ययौ ॥ २ ॥

वेदवादको जाननेवाले, अध्यात्मविद्यामें निपुण, सत्त्ववन्त महाभाग ब्राह्मण लोग उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको देखते हैं ॥ २ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं धर्मेण वर्तेत क्रियाः शिष्टवदाचरेत् ।
असंरोधेन भूतानां वृत्तिं लिप्सेत वै द्विजः ॥ ३ ॥

ब्राह्मण इस ही प्रकार धर्मका अवलम्बन करते हुए जीवनका समय व्यतीत करे । शिष्टोंकी भांति कर्म करनेमें तत्पर होवे और सब भूतोंके अविरोध्य वृत्तिलाभकी अभिलाष करे ॥३॥

सद्भ्य आगतविज्ञानः शिष्टः शास्त्रविचक्षणः ।
स्वधर्मेण क्रिया लोके कुर्वाणः सत्यसंगरः ॥ ४ ॥

गृहमेधी साधुओंसे विज्ञान लाभ करके, शिष्ट और शास्त्रविचक्षण होकर इस लोकमें निज धर्मके अनुसार कर्म करे और सात्त्विक कर्मोंमें रत रहकर सत्ययुक्त व्यवहार करे ॥ ४ ॥

तिष्ठत्येतेषु गृहवान्षट्सु कर्मसु स द्विजः ।
पञ्चभिः सततं यज्ञैः श्रद्दधानो यजेत च ॥ ५ ॥

वह गृहस्थ ब्राह्मण प्रागुक्त षट् कर्मोंमें स्थित रहे इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा श्रद्धावान् होकर पञ्च यज्ञोंका विधान करे ॥ ५ ॥

धृतिमानप्रमत्तश्च दान्तो धर्मविदात्मवान् ।
वीतहर्षभयक्रोधो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६ ॥

धैर्यशाली, अप्रमत्त, दान्त, धर्मवित्, यत्नवान्, हर्षहीन, मदरहित और क्रोधवर्जित ब्राह्मण कभी दुःखित नहीं होता ॥ ६ ॥

दानमध्ययनं यज्ञस्तपो ह्रीरार्जवं दमः ।
एतैर्वर्धयते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥ ७ ॥

दान, वेदाध्ययन, यज्ञ, तपस्या, लज्जा, सरलता और इन्द्रिय दमन, ये सब विषय ब्राह्मणके तेजको बढाते और पापोंको दूर करते हैं ॥ ७ ॥

धूतपाप्मा तु मेधावी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ ८ ॥

पापपङ्कको धोनेवाला मेधावी ब्राह्मण लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर कामक्रोधको वशमें करते हुए ब्रह्मपद प्राप्तिके लिये कामना करे ॥ ८ ॥

अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेद्देवताः प्रणमेत च ।
वर्जयेद्रुषतीं वाचं हिंसां चाधर्मसंहिताम् ॥ ९ ॥

तीनों अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करे, देवताओंके निकट प्रणत होवे; कटु वाणी मुंहसे न निकाले; हिंसा जो अधर्म युक्त है, न करे; ॥ ९ ॥

एषा पूर्वतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
ज्ञानागमेन कर्माणि कुर्वन्कर्मसु सिध्यति ॥ १० ॥

यही ब्राह्मणके लिये पूर्वानुष्ठेय वृत्ति विहित हुई हैं । शेषमें ज्ञानागमके सहारे कर्म करनेसे उस विषयमें उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Saraswati Ji. Vedic Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पञ्चेन्द्रियजलां घोरां लोभकूलां सुदुस्तराम् ।
मन्युपङ्कामनाधृष्यां नदीं तरति बुद्धिमान् ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जलसेयुक्त, मन्युपङ्कसमन्वित, अभिभवनीय भयङ्करी, अत्यन्त दुस्तर लोभरूप किनारेसे युक्त महानदीसे अनायास ही पार होता है ॥ ११ ॥

काममन्युह्रदं यत्स्यान्नित्यमत्यन्तमोहितम् ।
महता विधिदृष्टेन बलेनाप्रतिघातिना ।
स्वभावस्रोतसा वृत्तमुह्यते सततं जगत् ॥ १२ ॥

यह देखता रहे, कि विधि दृष्ट महाबलसे युक्त प्रतिघातरहित अत्यन्त मोहमें डालनेवाला काल सदा ही उपस्थित हो रहा है। यह जगत् स्वभावरूप स्रोतमें पडके सदा ही बहता जा रहा है ॥ १२ ॥

कालोदकेन महता वर्षावर्तेन संततम् ।
मासोर्मिणर्तुवेगेन पक्षोलपतृणेन च ॥ १३ ॥

कालस्वरूप महान् उदक, वर्षस्वरूप भंवरें, मासमय तरङ्ग, ऋतुरूपी वेग, पक्षमय लतातृण ॥ १३ ॥

निमेषोन्मेषफेनेन अहोरात्रजवेन च ।
कामग्राहेण घोरेण वेदयज्ञप्लवेन च ॥ १४ ॥

निमेष-उन्मेष आदि फेन, दिनरात्रि वेग, घोर कामरूपी ग्राह, वेद और यज्ञरूपी नौका ॥१४॥

धर्मद्वीपेन भूतानां चार्थकामरवेण च ।
ऋतसोपानतीरेण विहिंसातरुवाहिना ॥ १५ ॥

जीवोंके धर्मस्वरूप आश्रयभूत द्वीप, अर्थ और कामरूपी नाद, सत्यवचनरूपी सीढीयुक्त तीर, हिंसा रूपी वृक्षोंको बहानेवाली ॥ १५ ॥

युगह्रदौघमध्येन ब्रह्मप्रायभवेन च ।
धात्रा सृष्टानि भूतानि कृष्यन्ते यमसादनम् ॥ १६ ॥

युग ह्रद और ब्रह्म उसको उत्पन्न करनेवाला पर्वत है; इसी प्रवाहके बीचमें स्थित संसार स्रोतके जरिये विधातृसृष्ट जीव निरन्तर यमलोककी ओर आकृष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

एतत्प्रज्ञामयैर्धीरा निस्तरन्ति मनीषिणः ।
प्लवैरप्लववन्तो हि किं करिष्यन्त्यचेतसः ॥ १७ ॥

स्थिरचित्तवाले मनीषि लोग प्रज्ञामय नौकाके सहारे इस संसार-स्रोतसे पार होते हैं। प्रज्ञामय नौकासे रहित अल्पबुद्धि मनुष्य इससे पार होनेका और उपाय क्या करेंगे ? ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उपपन्नं हि यत्प्राज्ञो निस्तरेन्नेतरो जनः ।
दूरतो गुणदोषौ हि प्राज्ञः सर्वत्र पश्यति ॥ १८ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य उपस्थित विपदसे निस्तार लाभ कर सकता है, अज्ञानी मनुष्य कभी विपदसे छूटनेमें समर्थ नहीं है । प्राज्ञ पुरुष दूर होनेपर भी सब स्थानोंके दोषगुणको देखता है ॥ १८ ॥

संशयात्मा स कामात्मा चलचित्तोऽल्पचेतनः ।
अप्राज्ञो न तरत्येव यो ह्यास्ते न स गच्छति ॥ १९ ॥

सत्त्वकामात्मा, डावांडोल चित्त, मन्दबुद्धि और अज्ञानी पुरुष संशययुक्त होनेके कारण पार नहीं होता; जो चेष्टाहीन है, वह भी पार नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

अप्लवो हि महादोषमुह्यमानोऽधिगच्छति ।
कामग्राहगृहीतस्य ज्ञानमप्यस्य न प्लवः ॥ २० ॥

ज्ञानमयी नौकारहित मनुष्य मोहित होकर महादोषयुक्त होता है; कामरूप ग्राहसे जो आक्रान्त हुआ है, उसका ज्ञान भी उत्तरणका कारण नहीं होता ॥ २० ॥

तस्मादुन्मज्जनस्यार्थे प्रयतेत विचक्षणः ।
एतदुन्मज्जनं तस्य यदयं ब्राह्मणो भवेत् । ॥ २१ ॥

इसलिये विचक्षण मनुष्य संसार सागरसे पार होनेके लिये प्रयत्न करे; जो ब्राह्मण होता है ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करता है वहीका पार हुआ करता है ॥ २१ ॥

व्यवदाते कुले जातस्त्रिसंदेहस्त्रिकर्मकृत् ।
तस्मादुन्मज्जनस्तिष्ठेन्निस्तरेत्प्रज्ञया यथा ॥ २२ ॥

जिसने शुद्ध वंशमें जन्म लिया है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंमें आत्म निश्चय विषयमें जिसे सन्देह है, जो यजन, अध्ययन और दान, इन तीनों कर्मोंका साधन किया करता है, वैसा ब्राह्मण बुद्धिबलके सहारे जिस प्रकार अपने उद्धारका लाभ कर सके, उस ही भांति कालनद पार होनेमें सावधान रहे ॥ २२ ॥

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य कृतात्मनः ।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिह लोके परत्र च ॥ २३ ॥

संस्कारयुक्त, नियमनिष्ठ, संयतात्मा, दमशील, प्राज्ञ पुरुषकी इस लोक और परलोकमें अव्यवहित सिद्धि हुआ करती है ॥ २३ ॥

वर्तते तेषु गृहवानक्रुध्यन्ननसूयकः ।
पञ्चभिः सततं यज्ञैर्विघसाशी यजेत च ॥ २४ ॥

गृहस्थ ब्राह्मण क्रोध और असूयारहित होकर पूर्वोक्त नियमोंके पालनमें रत रहे; और विघसाशी होकर सदा पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान करनेमें यत्नवान् रहे ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सतां वृत्तेन वर्तेत क्रियाः शिष्टवदाचरेत् ।
असंरोधेन धर्मस्य वृत्तिं लिप्सेदगर्हिताम् ॥ २५ ॥

साधुओंके आचरित आचारके जरिये जीवन बिताते हुए, शिष्टोंकी भांति कार्योंका अनुष्ठान करे; लोगोंके संग विरोध न करके अनिन्दित धर्मयुक्त वृत्तिलाभकी इच्छा करे ॥ २५ ॥

श्रुतिविज्ञानतत्त्वज्ञः शिष्टाचारो विचक्षणः ।
स्वधर्मेण क्रियावांश्च कर्मणा सोऽप्यसंकरः ॥ २६ ॥

ब्राह्मण शिष्टाचारसे युक्त और विचक्षण होकर वेदका विद्वान् तथा तत्त्वज्ञानी होवे और निज धर्मके अनुसार सब कर्मोंका निर्वाह करे; वह कर्मद्वारा संकटता निर्माण न करे ॥ २६ ॥

क्रियावाञ्श्रद्दधानश्च दाता प्राज्ञोऽनसूयकः ।
धर्माधर्मविशेषज्ञः सर्वं तरति दुस्तरम् ॥ २७ ॥

क्रियावान्, श्रद्धायुक्त, दाता, प्राज्ञ, अनसूयक और धर्माधर्मका विशेषज्ञ ब्राह्मण दुस्तर विषयोंके पार होता है, अर्थात् दुःखोंसे पार होता है ॥ २७ ॥

धृतिमानप्रमत्तश्च दान्तो धर्मविदात्मवान् ।
वीतहर्षभयक्रोधो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ २८ ॥

धृतिमान्, अप्रमत्त, दान्त, धर्मवित्, आत्मवान् और हर्ष, मद, क्रोधसे रहित ब्राह्मण उद्विग्न नहीं होता है ॥ २८ ॥

एषा पूर्णतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
ज्ञानवित्त्वेन कर्माणि कुर्वन्सर्वत्र सिध्यति ॥ २९ ॥

ब्राह्मणकी यही पुरानी वृत्ति विहित हुई । ज्ञानवत्तासे सब कर्मोंको सिद्ध करते हुए ब्राह्मण सब विषयोंमें ही सिद्धि लाभ कर सकता है ॥ २९ ॥

अधर्मं धर्मकामो हि करोतीहाविचक्षणः ।
धर्मं चाधर्मसंकाशं शोचन्निव करोति सः ॥ ३० ॥

मूर्ख मनुष्य धर्मकी इच्छा करके भी अधर्म किया करता है, अथवा मानो वह शोकयुक्त होकर अधर्मतुल्य धर्माचरण करता है ॥ ३० ॥

धर्मं करोमीति करोत्यधर्ममधर्मकामश्च करोति धर्मम् ।
उभे बालः कर्मणी न प्रजानन्स जायते म्रियते चापि देही ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥ ८१४२ ॥

" मैं धर्म करता हूं " समझके कोई अधर्म और कोई अधर्मकी इच्छा करके भी धर्म करता है । मूढ जीव उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंको न जानके बार बार जन्म लेके मृत्युके मुखमें पडता है ॥ ३१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२७ ॥ ८१४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २२८ :

व्यास उवाच—

अथ चेद्रोचयेदेतद्द्रुह्येत मनसा तथा ।
उन्मज्जंश्च निमज्जंश्च ज्ञानवान्प्लववान्भवेत् ॥ १ ॥

वेदव्यास बोले— जैसे जलके प्रवाहमें बहता हुआ मनुष्य कभी डूबता और कभी उतरके शेषमें नौकाका अवलम्बन करता है, वैसे ही संसारस्रोतमें भासमान पुरुषको यदि वक्ष्यमाण शान्ति नामक कैवल्यप्राप्तिमें अभिलाष हो, तो उसको ज्ञानरूपी नौकाका मनसे अवलम्बन करना पडेगा ॥ १ ॥

प्रज्ञया निर्मितैर्धीरास्तारयन्त्यबुधान्प्लवैः ।
नाबुधास्तारयन्त्यन्यानात्मानं वा कथंचन ॥ २ ॥

जिन सब धीर लोगोंने ध्यानजनित साक्षात्कारके जरिये आत्मनिश्चय किया है, वे लोग ज्ञानरूपी नौकाके सहारे मूर्ख लोगोंको पार किया करते हैं । अज्ञानी लोग जब अपनेको ही किसी प्रकार उत्तीर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब दूसरेको किस प्रकार पार करेंगे ? ॥ २ ॥

छिन्नदोषो मुनिर्योगान्युक्तो युञ्जीत द्वादश ।
दश कर्मसुखानर्थानुपायापायनिर्भयः ॥ ३ ॥

राग आदि दोषोंसे रहित मननशील मनुष्य पुत्रकलत्रादिकोंमें आसक्तिरहित होकर योगमें सहायता करनेवाले बारह योगोंका आश्रय ले और कर्म सुख, अर्थ, अनुपाय, अपाय, निर्भयता ॥ ३ ॥

चक्षुराचारवित्प्राज्ञो मनसा दर्शनेन च ।
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या य इच्छेज्ज्ञानमुत्तमम् ।
ज्ञानेन यच्छेदात्मानं य इच्छेच्छान्तिमात्मनः ॥ ४ ॥

नेत्र, आहार, संहार, मन और दर्शन इन दसोंका अनुसरण करे। जो श्रेष्ठ ज्ञानकी इच्छा करता है, उसे बुद्धिके सहारे मन और वचनको संयत करना होगा; और जो आत्माकी शान्तिकी अभिलाषा करता है; वह ज्ञानके सहारे बुद्धिका संयम करे ॥ ४ ॥

एतेषां चेदनुद्रष्टा पुरुषोऽपि सुदारुणः ।
यदि वा सर्ववेदज्ञो यदि वाप्यनृचोऽजपः ॥ ५ ॥

वाक्य—मनके अधिष्ठाता शान्त आत्माको जिसने जाना है, वह चाहे साधु हो, वा असाधु हो, सब वेदको जाननेवाला अथवा कुपाठक अवेदज्ञ हो ॥ ५ ॥

यदि वा धार्मिको यज्वा यदि वा पापकृत्तमः ।
यदि वा पुरुषव्याघ्रो यदि वा क्लैव्यधारिता ॥ ६ ॥

धार्मिक वा याज्ञिक वा अत्यन्तही पाप करनेवाला हो, पुरुष प्रवरशूरवीर वा नपुंसक ही होवे ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तरत्येव महादुर्गं जरामरणसागरम् ।
एवं ह्येतेन योगेन युञ्जानोऽप्येकमन्ततः ।
अपि जिज्ञासमानो हि शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ७ ॥

वह इस प्रकारके जरामरणसागरस्वरूप महादुर्गसे अवश्य ही उत्तीर्ण होता है। पहली कही हुई रीतिसे अनुष्ठान करना तो दूर रहे, जिसने केवल शान्त आत्माको जाननेकी इच्छा की है, वह कर्मकाण्ड अतिक्रम करके निवास करता है, निज कर्मोंको त्यागनेसे दोषग्रस्त नहीं होता ॥ ७ ॥

धर्मोपस्थो ह्रीवरूथ उपायापायकूबरः ।
अपानाक्षः प्राणयुगः प्रज्ञायुर्जीवबन्धनः ॥ ८ ॥

यह योग एक रथ है। यज्ञादि धर्म कर्म इसके ज्ञान सारथीका उपवेशन स्थान है; अकार्योंसे निवृत्तिरूपी लज्जा इसकी रथगुप्ति है; पूर्वोक्त उपाय और अपाय इसकी धुरीदण्ड है; अपान धरा—पहिये हैं, प्राण जूआ है, प्रज्ञा और आयु जीवबन्धन स्थान है ॥ ८ ॥

चेतनाबन्धुरश्चारुराचारग्रहनेमिवान् ।
दर्शनस्पर्शनघ्राणश्रवणवाहनः ॥ ९ ॥

सावधानता बन्धुर अर्थात् दोनों फलकोंका संश्लेषस्थल है, आचार स्वीकार इसकी नेमि है; दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण, ये चारों इसके अश्वादिरूपी वाहन हैं ॥ ९ ॥

प्रज्ञानाभिः सर्वतन्त्रप्रतोदो ज्ञानसारथिः ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितो धीरः श्रद्धादमपुरःसरः ॥ १० ॥

शम, दम आदि प्रबलता इसकी नाभि, सब शास्त्र ही इसके कोडे, शास्त्रार्थ निश्चय ज्ञान ही इसका सारथी, क्षेत्रज्ञ इसका अधिष्ठाता है; यह रथ धीरे चलनेवाला है; श्रद्धा और दम इसके आगे चलनेवालें रक्षक हैं ॥ १० ॥

त्यागवर्त्मानुगः क्षेम्यः शौचगो ध्यानगोचरः ।
जीवयुक्तो रथो दिव्यो ब्रह्मलोके विराजते ॥ ११ ॥

और त्याग इसका अनुचर है, यह पवित्र—मंगल आचारसे मालूम होनेवाला ध्यानगोचर धीर मुमुक्ष योजित दिव्य रथ ब्रह्मलोकमें विराजता है ॥ ११ ॥

अथ संत्वरमाणस्य रथमेतं युयुक्षतः ।
अक्षरं गन्तुमनसो विधिं वक्ष्यामि शीघ्रगम् ॥ १२ ॥

ऐसे रथपर चढनेमें शीघ्रतायुक्त होकर जो योगी अक्षर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसके पक्षमें शीघ्रगामी अन्तरङ्ग विधि कहता हूं, सुनो ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सप्त यो धारणाः कृत्स्ना वाग्यतः प्रतिपद्यते ।
पृष्ठतः पार्श्वतश्चान्या यावत्यस्ताः प्रधारणाः ॥ १३ ॥

यमनियमादिसे युक्त स्थिर वचनवाला जो सब धारण अर्थात् एक विषयमें चित्त लगानेका अभ्यास करता है, उसमेंसे विप्रकृष्टतर सूर्य, चन्द्र, ध्रुवमण्डल आदि धारणा है, और सन्निकृष्टतर नासाग्र, भ्रूमध्य, आदि विषयभेदसे विविध धारणा हैं। वह इन्हें सिद्ध करता है। उन्हें प्रशिष्य और प्रपौत्र आदि शब्दकी तरह प्रधारणा कहते हैं। ये सात प्रधारणाएं इनकी पार्श्वपर्तिनी और पृष्ठवर्तिनी हैं ॥ १३ ॥

क्रमशः पार्थिवं यच्च वायव्यं खं तथा पयः ।
ज्योतिषो यत्तदैश्वर्यमहंकारस्य बुद्धितः ॥ १४ ॥

योगी पुरुष उन्हीं सब धारणा युक्त बुद्धिके जरिये क्रमसे पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय और आकाशसम्बन्धीय ऐश्वर्य लाभ करता है, और क्रमक्रमसे अहङ्कार तथा अव्यक्तका ऐश्वर्य प्राप्त करता है; अर्थात् ब्रह्मादि कार्यरूपको निज निज कारणोंमें संहार करके विशुद्धचित्त होकर परमात्माका दर्शन करता है ॥ १४ ॥

अव्यक्तस्य तथैश्वर्यं क्रमशः प्रतिपद्यते ।
विक्रमाश्चापि यस्यैते तथा युङ्क्ते स योगतः ॥ १५ ॥

योगमें प्रवृत्त योगियोंके बीच जिस योगीका जैसा विक्रम है अर्थात् जिसका जैसा अनुभवक्रम होता है, वह और देहाभ्यन्तरमें परमात्मदर्शी योगियोंकी सिद्धि अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंके जय करनेका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १५ ॥

अथास्य योगयुक्तस्य सिद्धिमात्मनि पश्यतः ।
निर्मथ्यमानः सूक्ष्मत्वाद्रूपाणीमानि दर्शयेत् ॥ १६ ॥

प्रति शरीरमें समवस्थित आत्माका वक्ष्यमाण रूप परित्याग अर्थात् गुरुके जरिये उक्त युक्तिके जरिये स्थूल देहका अध्यास छोडके सूक्ष्म निबन्धन योगी लोग अन्तःकरणमें उसे देखता है ॥ १६ ॥

शैशिरस्तु यथा धूमः सूक्ष्मः संश्रयते नभः ।
तथा देहाद्विमुक्तस्य पूर्वरूपं भवत्युत ॥ १७ ॥

जैसे शिशिर सम्बन्धीय सूक्ष्म धुआं आकाशमण्डलको अवलम्बन करता है, वैसे ही देहसे मुक्त हुई आत्माका पूर्वरूप प्रकाशित होता है यह योगीके अनुभवका पहला रूप है ॥१७॥

अथ धूमस्य विरमे द्वितीयं रूपदर्शनम् ।
जलरूपमिवाकाशे तत्रैवात्मनि पश्यति ॥ १८ ॥

अनन्तर धुएंका ठहराव होनेपर दूसरा रूप दीख पडता है; वह आकाशस्थित जलरूपकी भांति देहके भीतर आत्माको भी जलरूप अनुभव करता है; ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपां व्यतिक्रमे चापि वह्निरूपं प्रकाशते ।
तस्मिन्नुपरते चास्य पीतवस्त्रवदिष्यते ।
ऊर्णारूपसवर्णं च तस्य रूपं प्रकाशते ॥ १९ ॥

जलका व्यतिक्रम होनेपर लोहितवर्ण अग्निरूप प्रकाशित होता है । और अग्निरूपके शान्त होनेपर वृक्षोंको फेंकनेवाला शाणितशस्त्र सुवर्ण वायुका रूप प्रकट हुआ करता है, उस समय ऊर्णातन्तुकी भांति अत्यन्त लघु और उसहीके समान वायु अवलम्बरहित आकाशमें दोधूयमान हुआ करता है ॥ १९ ॥

अथ श्वेतां गतिं गत्वा वायव्यं सूक्ष्ममप्यजः ।
अशुक्लं चेतसः सौक्ष्म्यमव्यक्तं ब्रह्मणोऽस्य वै ॥ २० ॥

अनन्तर वायुका सूक्ष्म स्वरूप मलिनतारहित प्रकाशमय स्वच्छ आकाशमें लीन होनेपर आकाश मात्र प्रकाशित होता है । ब्रह्मजिज्ञासु योगीके चित्तकी अत्यन्त शुभ्रता और सूक्ष्मताके विषयको शास्त्रकारोंने इस प्रकार कहा है, कि प्रागुक्त प्रकारसे भूमि, जल, अग्नि और आकाशके जयके जरिये भूतशुद्धिप्रकार शास्त्रकारके बीच प्रसिद्ध था; अब सम्प्रदाय समूहके अपरिज्ञान निबन्धनसे उसका यथोचित अनुष्ठान नहीं होता ॥ २० ॥

एतेष्वपि हि जातेषु फलजातानि मे शृणु ।
जातस्य पार्थिवैश्वर्ये सृष्टिरिष्टा विधीयते ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे पञ्चभूतोंको जय करनेसे, जो सब फलोदय होते हैं, वह मुझसे सुनो । योग-सिद्ध पुरुषको पार्थिव ऐश्वर्यके जरिये इस लोकमें सृष्टिकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है, ॥ २१ ॥

प्रजापतिरिवाक्षोभ्यः शरीरात्सृजति प्रजाः ।
अङ्गुल्यङ्गुष्ठमात्रेण हस्तपादेन वा तथा ॥ २२ ॥
पृथिवीं कम्पयत्येको गुणो वायोरिति स्मृतः ।
आकाशभूतश्चाकाशो सवर्णत्वात्प्रणश्यति ॥ २३ ॥

वह प्रजापतिकी भांति अक्षुब्ध होकर अपने शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है । श्रुतिमें प्रतिपन्न है, कि वायुको जय कर सकनेसे योगसिद्ध पुरुषका एकमात्र अंगुष्ठ अंगुलीके जरिये अथवा हाथ पांवके सहारे सारी पृथ्वीको कंपानेकी सामर्थ्य होती है । आकाश जय करनेपर वह आकाशके वर्ण समान होके आकाशकी भांति सर्वगत होके नष्ट होता है; ॥ २२–२३ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वर्णतो गृह्यते चापि कामात्पिबति चाशयान् ।
न चास्य तेजसा रूपं दृश्यते शाम्यते तथा ॥ २४ ॥

वर्णके अनुसार ज्ञेय होनेपर भी रूपहीनता निबन्धनसे अन्तर्द्धान शक्ति प्राप्त होती है । जल जय करनेका यही फल है, कि जलको जय कर सकनेसे इच्छानुसार अगस्त्यकी भांति वापी, कूप, तडाग आदि जलाशयोंको पी सकता है, आकाश जय करनेसे रूपही आकाश स्वरूपमें अन्तर्द्धान हुआ करता है । अग्नि जयसे आकृति सत्वसे भी अदृश्यत्व उत्पन्न होता है । अग्नि-तत्त्वको जय करनेसे वह अपने शरीरको तेजस्वी करता है, तो उसकी ओर कोई देख नहीं सकता और उसके तेजको बुझा भी नहीं सकता ॥ २४ ॥

अहंकारस्य विजितेः पञ्चैते स्युर्वशानुगाः ।
षण्णामात्मनि बुद्धौ च जितायां प्रभवत्यथ ॥ २५ ॥

अहंकारको विशेष रूपसे जय कर सकनेसे सिद्ध पुरुषके समीप पञ्चभूत ही वशीभूत हुआ करते हैं । पृथ्वी आदि पञ्चभूत और अहंकारकी आत्मभूता बुद्धिको जय कर सकनेसे सिद्ध योगी सब ऐश्वर्योंसे युक्त और सर्वज्ञ होता है; ॥ २५ ॥

निर्दोषा प्रतिभा ह्येनं कृत्स्ना समभिवर्तते ।
तथैव व्यक्तमात्मानमव्यक्तं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥

दोषरहित प्रतिभा अर्थात् संशय विपर्ययसे हीन समस्त ज्ञान उसके समीपवर्त्ती हुआ करते हैं । वह बुद्धादि रूपसे व्यक्त आत्माको अव्यक्त अर्थात् जगत्कारण ब्रह्मभावसे समझता है; ॥२६॥

यतो निःसरते लोको भवति व्यक्तसंज्ञकः ।
तत्राव्यक्तमयीं व्याख्यां शृणु त्वं विस्तरेण मे ।
तथा व्यक्तमयीं चैव संख्यां पूर्वं निबोध मे ॥ २७ ॥

जिस परमात्मासे सब लोग विनष्ट होते हैं; उसका ही नाम व्यक्त हुआ करता है, उसके बीच अव्यक्तमयी और व्यक्तमयी विद्या जो कि सांख्य शास्त्रमें विवृत्त हुई है, उसे तुम पहले मेरे समीप विस्तारके सहित सुनो ॥ २७ ॥

पञ्चविंशतितत्त्वानि तुल्यान्युभयतः समम् ।
योगे सांख्येऽपि च तथा विशेषांस्तत्र मे शृणु ॥ २८ ॥

मूल प्रकृति प्रभृति पचीस तत्व सांख्य और पातञ्जल शास्त्रमें तुल्यरूपसे जानी गई हैं, उनमें जो विशेष है, वह मेरे समीप सुनो ॥ २८ ॥

प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत् ।
जीर्यते म्रियते चैव चतुर्भिर्लक्षणैर्युतम् ॥ २९ ॥

जन्म, वृद्धि, जरा और मरण इन चार लक्षणोंसे युक्त पदार्थको– तत्त्वको व्यक्त कहा जाता है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विपरीतमतो यत्तु तदव्यक्तमुदाहृतम् ।
द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ ॥ ३० ॥

और जो इसके विपरीत अर्थात् जन्मादि रहित तत्त्व है, वही अव्यक्त रूपसे कहा जाता है। सांख्य मतवाले दार्शनिक पण्डित लोग चौबीस तत्वोंके अतिरिक्त एक मात्र जीवात्माको प्रति शरीरमें पृथक् समझते हैं। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त वाक्यमें जीव और ईश्वर उपाधि भेदसे दो आत्मा प्रमाणित हुए हैं; वैदिक कर्मकाण्डमें यजमान और यष्टव्य भेदसे ऐसा वर्णित है, कि जीव और ब्रह्म स्वतन्त्र है ॥ ३० ॥

चतुर्लक्षणजं त्वन्यं चतुर्वर्गं प्रचक्षते ।
व्यक्तमव्यक्तजं चैव तथा बुद्धमथेतरत् ।
सत्त्वं क्षेत्रज्ञ इत्येतद्द्वयमप्यनुदर्शितम् ॥ ३१ ॥

जन्म आदि विकारयुक्त महत् अहंकार पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्चभूतोंसे उत्पन्न अर्थात् कार्य उपाधि चतुर्वर्गार्थी जीवको व्यक्त रूपसे वर्णन किया जाता है और माया उपाधि ईश्वरको अव्यक्त कहा जाता है, ये दोनोंही बुद्धि और अचेतन अर्थात् चिदचिदात्मक हैं ॥३१॥

द्वावात्मानौ च वेदेषु विषयेषु च रज्यतः ।
विषयात्प्रतिसंहारः सांख्यानां सिद्धिलक्षणम् ॥ ३२ ॥

ऐसा वेदमें वर्णित है, कि जलचन्द्रन्यायके अनुसार जीव विश्व चैतन्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है। नष्टत्वबुद्धि और क्षेत्रज्ञ चिदात्मा दोनों ही विषयमें अनुरक्त होते हैं, यह वेदके वचि वर्णित है। घटादि विषयोंसे उत्पत्तिक्रमकी विपरीतताके अनुसार बुद्धि चैतन्यका प्रविलापन करना योग्य है, इसे ही सांख्य मतवाले बुद्धिमान् लोगोंका शास्त्र जानो ॥ ३२ ॥

निर्ममश्चानहंकारो निर्द्वंद्वश्छिन्नसंशयः ।
नैव क्रुध्यति न द्वेष्टि नानृता भाषते गिरः ॥ ३३ ॥

उस मतके जीवन्मुक्त पुरुषका यही लक्षण है, कि योगी पुरुष ममतारहित और अहंकारशून्य, सुख-दुःख आदि द्वन्द्ववर्जित और संशयहीन होवे। वह क्रोध वा द्वेष न करे, झूठ वचन न कहे ॥ ३३ ॥

आक्रुष्टस्ताडितश्चैव मैत्रेण ध्याति नाशुभम् ।
वाग्दण्डकर्ममनसां त्रयाणां च निवर्तकः ॥ ३४ ॥

आकृष्ट अथवा ताडित होनेपर भी सब भूतोंमें समदर्शिता निबन्धनसे किसीकी भी अशुभ-चिन्ता न करे; वचन, कर्म और मनसे पुरुषता परित्याग करे ॥ ३४ ॥

समः सर्वेषु भूतेषु ब्रह्माणमभिवर्तते ।
नैवेच्छति न चानिच्छो यात्रामात्रव्यवस्थितः ॥ ३५ ॥

इस ही प्रकार साधुगुणसे युक्त होकर जो सब भूतोंमें समान ज्ञान करता है वह ब्रह्माके निकटवर्त्ती होनेमें समर्थ होता है। ऐसा मनुष्य लोकयात्रानिर्वाहके लिये स्थित रहके किसी विषयकी अभिलाष नहीं करता और किसी विषयमें अत्यन्त निरिच्छुक भी नहीं होता ॥३५॥

CC-0.Swami Atmanand Giri (Prabhuji) , Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अलोलुपोऽव्यथो दान्तो न कृती न निराकृतिः ।
नास्येन्द्रियमनेकाग्रं नातिक्षिप्तमनोरथः ।
अहिंस्रः सर्वभूतानामीदृक्सांख्यो विमुच्यते ॥ ३६ ॥

जिसे लोभ और दुःख नहीं है जो इन्द्रिय निग्रहमें समर्थ और कार्यकुशल है; जिसे वेश-विन्यास आदि बाह्य आडम्बरमें तुच्छता ज्ञान है, जिसकी इन्द्रियां अनेकाङ्ग और मनोरथ विक्षिप्त नहीं है जो सत्यसङ्कल्प और सब भूतोंमें अहिंसस्वभाव है; ऐसा सांख्य योगी मुक्त होता है ॥ ३६ ॥

अथ योगाद्विमुच्यन्ते कारणैर्यैर्निबोध मे ।
योगैश्वर्यमतिक्रान्तो योऽतिक्रामति मुच्यते ॥ ३७ ॥

अब पातञ्जल मतसे योगी मनुष्य जिन जिन कारणोंके जरिये मुक्त होता है, उसे सुनो। परम वैराग्य बलसे जिसने अणिमा आदि योग ऐश्वर्यको अतिक्रम किया है, वही मुक्त होता है ॥ ३७ ॥

इत्येषा भावजा बुद्धिः कथिता ते न संशयः ।
एवं भवति निर्द्वंद्वो ब्रह्माणं चाधिगच्छति ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ ८१८० ॥

यही तुम्हारे निकट वक्तृ विवक्षा विशेष जनित ज्ञानका विषय कहा; इसी भांति जो लोग सुख-दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित होता है, वही परब्रह्मको जान सकता और उसे प्राप्त करता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२८ ॥ ८१८० ॥

: २२९ :

व्यास उवाच—

अथ ज्ञानप्लवं धीरो गृहीत्वा शान्तिमास्थितः ।
उन्मज्जंश्च निमज्जंश्च ज्ञानमेवाभिसंश्रयेत् ॥ १ ॥

वेदव्यास बोले— धीर पुरुष संसारसागरको तरनेवाले साधन शास्त्र और आचार्योंके उपदेशसे प्राप्त हुए परोक्ष ज्ञानरूपी शान्ति अवलम्बन करके संसारसागरमें सदा उन्मग्न और निमग्न होके भी केवल आत्ममोक्षके हेतुज्ञानको ही अवलम्बन करे ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शुक उवाच—

किं तज्ज्ञानमथो विद्या यया निस्तरति द्वयम् ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिरिति चैव हि ॥ २ ॥

शुकदेव बोले— आप जो ज्ञानको अवलम्बन करना कहते हैं वह अवलम्बनीय ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है । रज्जुसर्पकी भांति अज्ञान मात्रके विनाशसे प्रकृत पदार्थ ज्ञापिका बुद्धि वृत्तिको निवृत्तिलक्षण ज्ञान कहते हैं; अथवा ध्यानके जरिये भृंगीकीटकी भांति ध्येय सारूप्य रूपक धर्म, प्रवृत्तिलक्षण ज्ञानका विषय कहते हैं, उसे वर्णन करिये । जिस प्रकार जीव जन्ममरणसे निस्तार लाभ कर सके आप उसे ही कहिये ॥ २ ॥

व्यास उवाच—

यस्तु पश्येत्स्वभावेन विना भावमचेतनः ।
पुष्यते च पुनः सर्वान्प्रज्ञया मुक्तहेतुकः ॥ ३ ॥

व्यासदेव बोले— " मैं " इस अनुभव विषयमें जड और अहंकार कारण रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये मीमांसा मतवाले पण्डित लोग उक्त दोनोंको आत्मा कहा करते हैं । " अहं " पदका अर्थही आत्मा है उसका गुण प्रकाश है, वह भी तीन क्षणमात्र स्थिति करता है, यह तार्किक मत है । सांख्य मतवाले बुद्धिमान् लोग सिद्ध किया करते हैं, कि आत्मा ही नित्य प्रकाश स्वरूप है, अहं पदका अर्थ आत्मा नहीं है । उसके बीच बहुतेरे लोग आत्मा और अनात्मा दोनोंको ही नित्य कहा करते हैं । अनात्मा ही स्थिर है, देह नाश होनेपर चिदात्माका नाश होता है, यह लोकायतिक नास्तिकोंका मत है । आत्मा ही सत्य पदार्थ है, आत्मासे भिन्न सभी मिथ्या है, यह वेदान्त मतका सिद्धान्त है । शून्यवादी लोग यह कहा करते हैं, कि आत्मा अनात्मा कुछ भी नहीं है; इसलिये शून्यवादियोंके मतमें यदि आत्माका अभाव हुआ, तब ज्ञानका अनर्थकत्व सिद्ध होगा; इसलिये जो मनुष्य अधिष्ठान सत्ताके विना स्वभावके जरिये ही अहंकार आदि स्वरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझके निर धिष्ठान स्वाभाविकी जगद्भ्रान्ति अङ्गीकार करता है और युक्ति तथा बुद्धिहीन शिष्योंको उसही प्रकार बोधके सहारे अनुरक्त किया करता है, वह कुछ भी तत्त्व लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता; इससे अधिष्ठानके विना भ्रमकी सम्भावना न रहनेसे शून्यवाद नितान्त हेय है ॥ ३ ॥

येषां चैकान्तभावेन स्वभावः कारणं मतम् ।
पूत्वा तृणबूसीकां वै ते लभन्ते न किंचन ॥ ४ ॥

इसके अतिरिक्त जो सब वाद आत्मोच्छेदवादी लोकायतिक नास्तिक लोग एकान्तभावसे ईश्वर और अदृष्टकी सत्ता अस्वीकार करके स्वभावको ही देह आदिकी उत्पत्तिके विषयमें कारण कहा करते हैं; वे लोग ऋषिवाक्य सुनके भी कुछ तत्त्वलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते; अर्थात् वे लोग आचार्यकी उपासना न करके ही स्वयं इन सब मतोंकी कल्पना करते हैं ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तयन्त्यल्पचेतसः ।
स्वभावं कारणं ज्ञात्वा न श्रेयः प्राप्नुवन्ति ते ॥ ५ ॥

जो सब अल्पबुद्धि मनुष्य स्वाभाविक शून्य जगत् भ्रान्ति और स्वाभाविक शरीरादिकोंकी उत्पत्ति, इन दोनों पक्षोंको अवलम्बन करते हैं, वे लोग स्वभावको कारण जानके कुछ भी कल्याण लाभ नहीं करते ॥ ५ ॥

स्वभावो हि विनाशाय मोहकर्ममनोभवः ।
निरुक्तमेतयोरेतत्स्वभावपरभावयोः ॥ ६ ॥

मोहके कर्मरूप मनसे ही स्वभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् मूढ लोग मनके जरिये जो कुछ कल्पना करते हैं, उसे ही स्वभाव कहते हैं; यह मनुष्यको परमार्थसे विरक्त करके उसका नाश करनेके लिये ही किया गया है; स्वभावका वक्ष्यमाण लक्षण सुनो ॥ ६ ॥

कृष्यादीनि हि कर्माणि सस्यसंहरणानि च ।
प्रज्ञावद्भिः प्रकल्पानि यानासनगृहाणि च ॥ ७ ॥

यदि सब कार्य स्वाभाविक ही सिद्ध हों, तो कृषिकार्य आदि सब कर्मोंसे ही बुद्धि—कौशलकी अनर्थकता हो सकती है, वह कदापि सम्भावित नहीं है; क्योंकि कृषि आदि सब कार्य, शस्यसंग्रह, यान, आसन और गृह आदि बुद्धिमान् मनुष्योंके जरिये सम्पन्न हुआ करते हैं ॥ ७ ॥

आक्रीडानां गृहाणां च गदानामगदस्य च ।
प्रज्ञावन्तः प्रवक्तारो ज्ञानवद्भिरनुष्ठिताः ॥ ८ ॥

क्रीडागृह और रोगोंमें औषधी करनेके विषयमें बुद्धिमान् पुरुष ही प्रयोक्ता हैं । ज्ञानवान् मनुष्य ही उक्त सब कार्योंका अनुष्ठान किया करते हैं ॥ ८ ॥

प्रज्ञा संयोजयत्यर्थैः प्रज्ञा श्रेयोऽधिगच्छति ।
राजानो भुञ्जते राज्यं प्रज्ञया तुल्यलक्षणाः ॥ ९ ॥

बुद्धिकी अधिकता रहनेसे ऐश्वर्याधिक्य लाभ होता है । बुद्धिमान् ही कल्याणके मार्गको प्रदर्शित करता है । बुद्धिकी अधिकतासे ही अधिक ऐश्वर्यशाली राजा लोग बुद्धिबलके सहारे राज्य भोग किया करते हैं ॥ ९ ॥

पारावर्यं तु भूतानां ज्ञानेनैवोपलभ्यते ।
विद्यया तात सृष्टानां विद्यैव परमा गतिः ॥ १० ॥

जीवोंके परम श्रेष्ठ चिदात्मा और मायाको बुद्धिबलसे ही जाना जाता है । हे तात ! सब सृष्टि और परम गति विद्याही है; बुद्धि वृत्तिके सहारे परम गति तथा लयस्थानको भी प्राप्त कर सकते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भूतानां जन्म सर्वेषां विविधानां चतुर्विधम् ।
जराय्वण्डमथोद्भेदं स्वेदं चाप्युपलक्षयेत् ॥ ११ ॥

विविध प्राणियों—भूतोंका जन्म चार प्रकारसे है— उसके बीच मनुष्य, पशु, आदि जरायुज; पक्षी, सर्प, आदि अण्डज; तृण, वनस्पति, आदि उद्भिज और यूक, मच्छड आदिको स्वेदज कहके निश्चय करो ॥ ११ ॥

स्थावरेभ्यो विशिष्टानि जङ्गमान्युपलक्षयेत् ।
उपपन्नं हि यच्चेष्टा विशिष्येत विशेष्ययोः ॥ १२ ॥

इसके बीच स्थावरोंसे जङ्गमोंको विशिष्ट— श्रेष्ठ जानना चाहिये; विशेष—विशेषण करके जो विशेष हो, उसे ही श्रेष्ठ समझो । इस विशेषताके कारण जङ्गम प्राणियोंकी विशिष्टता स्वतः सिद्ध है ॥ १२ ॥

आहुर्द्विबहुपादानि जङ्गमानि द्व्यानि च ।
बहुपाभ्यो विशिष्टानि द्विपादानि बह्वन्यपि ॥ १३ ॥

प्राचीन लोग कहा करते हैं, अनेक चरणवाले जङ्गम जीव दो प्रकारके हैं, तिसके बीच पहले कही हुई रीतिसे अनुसार वृक्षादिके दर्शन आदि स्वत्व रहनेसे भी प्रत्यक्ष दर्शनवाले जङ्गम जीव ही श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥

द्विपदानि द्व्यान्याहुः पार्थिवानीतराणि च ।
पार्थिवानि विशिष्टानि तानि ह्यन्नानि भुञ्जते ॥ १४ ॥

अनेक चरणवालोंसे कई तरहके दो पांववाली जाति श्रेष्ठ हैं, दो पांववाली जाति भूचर मनुष्य आदि हैं और खेचर पक्षी आदि भेदसे दो प्रकारके हैं, उसमेंसे खेचरसे भूचर मनुष्य आदि श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे लोग अन्न भोजन किया करते हैं ॥ १४ ॥

पार्थिवानि द्व्यान्याहुर्मध्यमान्युत्तमानि च ।
मध्यमानि विशिष्टानि जातिधर्मोपधारणात् ॥ १५ ॥

मनुष्य जाति दो तरहकी है, मध्यम और उत्तम; इसके बीच जातीय धर्मके आचरण निबन्धनसे मध्यम ही श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

मध्यमानि द्व्यान्याहुर्धर्मज्ञानीतराणि च ।
धर्मज्ञानि विशिष्टानि कार्याकार्योपधारणात् ॥ १६ ॥

मध्यममें फिर दो भेद हैं, एक धर्मज्ञ, दूसरे इतर धर्मसे अनभिज्ञ; इसमेंसे कार्याकार्य कर्तव्यका निश्चय करनेसे धर्मज्ञ ही उत्तम है ॥ १६ ॥

धर्मज्ञानि द्व्यान्याहुर्वेदज्ञानीतराणि च ।
वेदज्ञानि विशिष्टानि वेदो ह्येषु प्रतिष्ठितः ॥ १७ ॥

धर्मज्ञ पुरुष दो प्रकारके हैं, वेदज्ञ और तदितर—अवेदज्ञ; उसमेंसे वेद जाननेवाले पुरुष ही उत्तम हैं, क्योंकि वेद इन सबसे ही प्रतिष्ठित होरहा है ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वेदज्ञानि द्वयान्याहुः प्रवक्तृणीतराणि च ।
प्रवक्तृणि विशिष्टानि सर्वधर्मोपधारणात् ॥ १८ ॥

वेदज्ञ पुरुष दो तरहके हैं, प्रवक्ता और तदितर– अप्रवक्ता; उसके बीच सब वेद धर्मोंके धारण निबन्धनसे प्रवक्ता ही उत्तम है ॥ १८ ॥

विज्ञायन्ते हि यैर्वेदाः सर्वधर्मक्रियाफलाः ।
सयज्ञाः सखिला वेदाः प्रवक्तृभ्यो विनिःसृताः ॥ १९ ॥

उन्हींसे धर्म और क्रियाफलके सहित सब वेदोंका ज्ञान दूसरोंको होता है और यज्ञके सहित सब वेद उनसे प्रकट हुए हैं ॥ १९ ॥

प्रवक्तृणि द्वयान्याहुरात्मज्ञानीतराणि च ।
आत्मज्ञानि विशिष्टानि जन्माजन्मोपधारणात् ॥ २० ॥

उन प्रवक्तागणको आत्मज्ञ और तदितर– अनात्मज्ञ भेदसे फिर दो प्रकार कहा जाता है; उसके बीच जन्म और मोक्ष ज्ञान निबन्धनसे आत्मज्ञपुरुष उत्तम हैं ॥ २० ॥

धर्मद्वयं हि यो वेद स सर्वः सर्वधर्मविद् ।
स त्यागी सत्यसंकल्पः स तु क्षान्तः स ईश्वरः ॥ २१ ॥

जो प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षणयुक्त दोनों प्रकारके धर्मको जानता है, वही सर्वज्ञ है, वही सर्व धर्मवित् है, वही त्यागशील, सत्यसंकल्प, क्षमाशील और सर्वकर्ममें समर्थ होता है ॥२१॥

धर्मज्ञानप्रतिष्ठं हि तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातं परे च कृतनिश्चयम् ॥ २२ ॥

धर्म–ब्रह्मज्ञान विषयमें जिसकी प्रतिष्ठा है, वेद शास्त्रोंमें जिसकी निष्ठा होरही है, और दूसरे शास्त्रोंमें जो कृतनिश्चय हुआ है, उसे देवता भी ब्राह्मण समझते हैं ॥ २२ ॥

अन्तःस्थं च बहिष्ठं च येऽऽधियज्ञाधिदैवतम् ।
जानन्ति तान्नमस्यामस्ते देवास्तात ते द्विजाः ॥ २३ ॥

हे तात ! जो सब ज्ञानवान् मनुष्य यज्ञादिदैवत आत्माको अन्तस्थ और बाह्यरूपसे देखते हैं, उन्ह नमस्कार करना चाहिये, क्योंकि वेही द्विज और वेही देवस्वरूप हैं, ॥ २३ ॥

तेषु विश्वमिदं भूतं साग्रं च जगदाहितम् ।
तेषां माहात्म्यभावस्य सदृशं नास्ति किंचन ॥ २४ ॥

ऐसे आत्मज्ञ पुरुषोंमें ही ये सब भूत और समस्त जगत् प्रतिष्ठित होरहा है; उन लोगोंके माहात्म्यके समान और कुछ भी नहीं है ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Indology) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आदिं ते निधनं चैव कर्म चातीत्य सर्वशः ।
चतुर्विधस्य भूतस्य सर्वस्येशाः स्वयंभुवः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥ ८२०५ ॥

वे आदि–अन्तसे रहित और सब तरहके कर्मोंको अतिक्रम करके स्थित, चारों प्रकारके भूतोंके स्वयम्भू और सब तरहसे ईश्वर हैं ॥ २५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २२९ ॥ ८२०५ ॥

---

२३० :

व्यास उवाच–

एषा पूर्वतरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
ज्ञानवानेव कर्माणि कुर्वन्सर्वत्र सिध्यति ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले– यह ब्राह्मणकी प्राचीन कालसे चली आयी नित्य वृत्ति शास्त्र विहित हुई है; ज्ञानवान् ब्राह्मणही कर्म करता हुआ सर्वत्र सिद्धि लाभ किया करता है ॥ १ ॥

तत्र चेन्न भवेदेवं संशयः कर्मनिश्चये ।
किं नु कर्म स्वभावोऽयं ज्ञानं कर्मेति वा पुनः ॥ २ ॥

कर्म निश्चयके विषयमें यदि संशय न हो, तो वह निःसंशयरूपसे किया गया कर्महीं सिद्धिका हेतु हुआ करता है; परन्तु कर्मका क्या लक्षण है, क्या यह कर्म स्वभाव सिद्ध है वा ज्ञान जनित ? ॥ २ ॥

तत्र चेह विवित्सा स्याज्ज्ञानं चेत्पुरुषं प्रति ।
उपपत्त्युपलब्धिभ्यां वर्णयिष्यामि तच्छृणु ॥ ३ ॥

ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर ज्ञान वा ज्ञानजनक कर्मको यदि कर्म कहा जावे, तब उसे वेद-विधि कहके अङ्गीकार करना होगा; अन्यथा स्वाभाविक है; इसलिये उत्पत्ति–युक्ति और उपलब्धि फलप्राप्तिके जरिये उभयत्र कर्मकी प्रधानता कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

पौरुषं कारणं केचिदाहुः कर्मसु मानवाः ।
दैवमेके प्रशंसन्ति स्वभावं चापरे जनाः ॥ ४ ॥

कोई कोई मनुष्य इस जन्म और जन्मान्तरमें किये हुए कर्मोंमें पुरुषार्थको कारण कहा करते हैं, दूसरे लोग दैवको ही कारण रूपसे वर्णन करते हैं; कितने ही लोग स्वभावकोही कारण कहते हैं ॥ ४ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः ।
त्रयमेतत्पृथग्भूतमविवेकं तु केचन ॥ ५ ॥

पौरुष और दैव कर्म स्वभावके अनुगत होकर फलदायक होते हैं; कोई कहते हैं, ये प्रत्येक पृथक् पृथक् कारण न होकर एकही प्रधान रूपसे कारण हुआ करते हैं; दूसरे लोग कहते हैं इनका समुच्चय ही कारण है ॥ ५ ॥

एवमेतन्न चाप्येवमुभे चापि न चाप्युभे ।
कर्मस्था विषयं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ॥ ६ ॥

आर्हत मतवाले घट पट आदि विषयोंकी अस्ति भी कहते हैं; और नास्ति भी मानते हैं; " अस्ति नास्ति " यह दोनों ही कहते हैं, और " अस्ति यह भी नहीं है, " " नास्ति यह भी नहीं है, " ऐसा ही कहा करते हैं, परन्तु योगी लोग परब्रह्मको ही सर्व कारण स्वरूपसे दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥

त्रेतायां द्वापरे चैव कलिजाश्च ससंशयाः ।
तपस्विनः प्रशान्ताश्च सत्त्वस्थाश्च कृते युगे ॥ ७ ॥

त्रेता, द्वापर और कलियुगमें जो सब पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें पापानुबन्धनसे श्रौतमतमें सदा ही संशय हुआ करता है; परन्तु सत्ययुगमें उत्पन्न हुए योगनिष्ठ तपस्वी लोग सदा ही संशयरहित होते हैं ॥ ७ ॥

अपृथग्दर्शिनः सर्वे ऋक्सामसु यजुःषु च ।
कामद्वेषौ पृथग्दृष्ट्वा तपः कृत उपासते ॥ ८ ॥

सत्ययुगमें सब कोई ऋक्, यजु, साम, इन तीनों वेदोंमें भेद न देखके काम और द्वेष आदिको दूर करके केवल ज्ञानकी ही—तपस्याकी उपासना करते थे ॥ ८ ॥

तपोधर्मेण संयुक्तस्तपोनित्यः सुसंशितः ।
तेन सर्वानवाप्नोति कामान्यान्मनसेच्छति ॥ ९ ॥

जो मनुष्य तपस्यारूपी धर्मसे युक्त तपमें रत और संशितव्रती होता है, वह मनही मन जैसी अभिलाष करता है, तपोबलसे वह सब पा सकता है ॥ ९ ॥

तपसा तदवाप्नोति यद्भूत्वा सृजते जगत् ।
तद्भूतश्च ततः सर्वो भूतानां भवति प्रभुः ॥ १० ॥

जीव तपोबलसे ब्रह्मस्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, तपस्याके सहारे उस ब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, और ब्रह्मस्वरूप होनेपर भूतोंके ऊपर प्रभुता करनेकी सामर्थ्य हुआ करती है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदुक्तं वेदवादेषु गहनं वेददर्शिभिः ।
वेदान्तेषु पुनर्व्यक्तं क्रमयोगेन लक्ष्यते ॥ ११ ॥

वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, वेदवाक्यके बीच यद्यपि ब्रह्मस्वरूप वर्णित हुआ है, तौभी वह अत्यन्त गहन है, ऐसा ही क्यों; वह वेदज्ञ पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है; वेदान्त दर्शनमें एकमात्र विद्याके सहारे ब्रह्मको जाना जाता है, यही केवल व्यक्त रूपसे वर्णित हुआ है; भावनात्मक कर्मयोगके जरिये ब्रह्मको लक्ष्य नहीं किया जाता ॥ ११ ॥

आरम्भयज्ञाः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशः स्मृताः ।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञा द्विजातयः ॥ १२ ॥

क्षत्रियोंको पशुहिंसा, वैश्योंको कृषिकर्म, शूद्रोंको तीनों वर्णोंकी सेवा और ब्राह्मणोंको ब्रह्मोपासनाही यज्ञ-स्वरूप है ॥ १२ ॥

परिनिष्ठितकार्यो हि स्वाध्यायेन द्विजो भवेत् ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १३ ॥

जिसने स्वशाखोक्त वेदाध्ययनके जरिये सब कार्योंको समाप्त किया है, वही द्विज होता है; जो सब भूतोंमें समदर्शी है, वह दूसरे कर्म करे वा न करे उसे ही ब्राह्मण कहा जाता है ॥१३॥

त्रेतादौ सकला वेदा यज्ञा वर्णाश्रमास्तथा ।
संरोधादायुषस्त्वेते व्यस्यन्ते द्वापरे युगे ॥ १४ ॥

सत्ययुग और त्रेतायुगमें सब वेद, यज्ञ और वर्णाश्रम धर्म विशुद्धतया पालित होते हैं, द्वापरयुगमें मनुष्योंकी अल्प आयु होनेसे सब वेद आदि लुप्त होते चले आते हैं ॥ १४ ॥

द्वापरे विप्लवं यान्ति वेदाः कलियुगे तथा ।
दृश्यन्ते नापि दृश्यन्ते कलेरन्ते पुनः पुनः ॥ १५ ॥

द्वापर और कलियुगमें सब वेद नष्टप्राय होते हैं; द्वापरमें सब वेद दीखते हैं, कलियुगके अन्तमें कभी कहीं दिखायी देते हैं और कभी दिखायी भी नहीं देते हैं ॥ १५ ॥

उत्सीदन्ति स्वधर्माश्च तत्राधर्मेण पीडिताः ।
गवां भूमेश्च ये चापामोषधीनां च ये रसाः ॥ १६ ॥

कलियुगमें अधर्मसे पीडित होकर सभी वर्णोंके धर्म और गऊ, भूमि, जल और औषधियोंका रस भी प्रायः नाश हो जाता है ॥ १६ ॥

अधर्मान्तर्हिता वेदा वेदधर्मास्तथाश्रमाः ।
विक्रियन्ते स्वधर्मस्थाः स्थावराणि चराणि च ॥ १७ ॥

सब वेद, वेदोक्त धर्म, स्वधर्मस्थ आश्रम और स्थावर तथा जङ्गम जीवन अधर्मके जरिये आच्छादित होकर विकृतभाव लाभ करता है ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा सर्वाणि भूतानि वृष्टिर्भौमानि वर्षति ।
सृजते सर्वतोऽङ्गानि तथा वेदा युगे युगे ॥ १८ ॥

जैसे वर्षा पार्थिव भूतोंकी पुष्टिसाधन करती है, वैसे ही वेद युगयुगमें वेद पढनेवालोंकी पुष्टिसाधन किया करता है ॥ १८ ॥

विसृतं कालनानात्वमनादिनिधनं च यत् ।
कीर्तितं तत्पुरस्तान्मे यतः संयान्ति यान्ति च । ॥ १९ ॥

जिस कालका अनेकत्व और अनादिनिधनत्व निश्चित है, और जो प्रजासमूहके प्रभव और प्रलयका कारण है, उसे मैंने पहले वर्णन किया है ॥ १९ ॥

धातेदं प्रभवस्थानं भूतानां संयमो यमः ।
स्वभावेन प्रवर्तन्ते द्वंद्वसृष्टानि भूरिशः ॥ २० ॥

जो काल, जीवोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान और अन्तर्यामी है; जिसमें सुख दुःख आदि द्वंद्वयुक्त बहुतसे जीव स्वभावसे ही निवास करते हैं, उस कालका विषय भी कहता हूं ॥२०॥

सर्गः कालो धृतिर्वेदाः कर्ता कार्यं क्रियाफलम् ।
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥ ८२२६ ॥

हे तात ! तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसही सृष्टि, काल, सन्तोष, सब वेद, कर्ता, कार्य और क्रियाके समस्त फलको वर्णन किये ॥ २१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३० ॥ ८२२६ ॥

: २३१ :

भीष्म उवाच—

इत्युक्तोऽभिप्रशस्यैतत्परमर्षेस्तु शासनम् ।
मोक्षधर्मार्थसंयुक्तमिदं प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १ ॥

भीष्म बोले— शुकदेवने महर्षि वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए, मोक्ष धर्मार्थयुक्त इस वक्ष्यमाण वचनको पूछनेकी इच्छा की ॥ १ ॥

शुक्र उवाच—

प्रजावाञ्श्रोत्रियो यज्वा वृद्धः प्रज्ञोऽनसूयकः ।
अनागतमनैतिह्यं कथं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २ ॥

शुकदेव बोले— प्रजावान्, वेदवेत्ता, विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाला, वृद्ध, प्रज्ञावान् और अनसूयक ब्राह्मण प्रत्यक्ष और अनुमानके जरिये अज्ञात तथा अनिर्देश्य ब्रह्मको किस प्रकार जान सकता है ? ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया ।
सांख्ये वा यदि वा योगे एतत्पृष्टोऽभिधत्स्व मे ॥ ३ ॥

तपस्या, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग अथवा धारणायुक्त बुद्धिके जरिये यदि उसे जाना जाय और उसका विषय सांख्य वा पातञ्जल शास्त्रमें निरूपित रहे, तो मैं उसे पूछता हूं, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ ३ ॥

मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं समवाप्यते ।
येनोपायेन पुरुषैस्तच्च व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥

मनुष्य जैसे उपायके जरिये मन और इन्द्रियोंकी जिस प्रकार एकाग्रता लाभ करे, आप उसकी ही व्याख्या करिये ॥ ४ ॥

व्यास उवाच—

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन ॥ ५ ॥

व्यासदेव बोले— विद्या, तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और सर्वसंन्यासके विना कोई भी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥

महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टिः स्वयंभुवः ।
भूयिष्ठं प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥ ६ ॥

सब महाभूत स्वयम्भू ईश्वरकी प्रथम सृष्टि है; प्राणिसमूहों तथा शरीराभिमानी मूढ जीवोंमें वह भूयिष्ठरूपसे निविष्ट है ॥ ६ ॥

भूमेर्देहो जलात्सारो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते ।
प्राणापानाश्रयो वायुः खेष्वाकाशं शरीरिणाम् ॥ ७ ॥

भूमिसे शरीरधारियोंके देह, जलसे स्नेह, अग्निसे दोनों नेत्र, वायुसे पञ्चप्राण और आकाशसे अवकाश भाग हुआ करता है ॥ ७ ॥

क्रान्ते विष्णुर्बले शक्रः कोष्ठेऽग्निर्भुक्तमर्छति ।
कर्णयोः प्रदिशः श्रोत्रे जिह्वायां वाक्सरस्वती ॥ ८ ॥

पातञ्जल मतसे आत्मा केवल सुख दुःखका भोक्ता है, कर्ता नहीं है। सांख्य मतसे आत्मा भोक्ता वा कर्त्ता कुछ भी नहीं है; इसलिये सांख्य मतके सिद्धान्तसे पातञ्जल मत इस प्रकार दूषित होता है, की पादेन्द्रियके देवता विष्णु, हाथके अधिष्ठाता इन्द्र हैं, अग्नि उदरके भीतर रहके भोजनकी इच्छा किया करती है। सब दिशाएं श्रवणेन्द्रियकी देवता हैं, और वागिन्द्रियकी अधिष्ठात्री सरस्वती है। जैसे सेना राजकीय रथ, शकट आदिको चलाया करती है और जैसे राजा अभिमानके वशमें होके अपनेमें सेनाकी ह्रास वृद्धि आदि आरोपित करता है, वैसे ही चिदात्मा इन्द्रिय और उसके अधिष्ठात्री देवतागत भोक्तृत्व खञ्जत्व आदिकी अविद्याके वशमें होकर आत्मामें आरोपित कराया करता है अर्थात् "मैं भोगवान् मैं खञ्ज हूं" इत्यादि वचन आरोपमात्र हैं। जैसे सेनाकी पराजय होनेसे राजाकी हार होती है, वैसे ही विष्णु आदि अधिष्ठात्री देवता लोग भी भोक्ता नहीं हैं, आत्मामें अविद्याके कारण भोक्तृत्व भान हुआ करता है, वास्तवमें आत्मा कर्ता वा भोक्ता नहीं है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Vedadhidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
दर्शनानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥ ९ ॥

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पांचो शब्द आदि ज्ञान साधनके निमित्त द्वाररूप हैं; दर्शनीय इन्द्रिय कहके वर्णित हुआ करते हैं ॥ ९ ॥

शब्दं स्पर्शं तथा रूपं रसं गन्धं च पञ्चमम् ।
इन्द्रियाणि पृथक्त्वर्थान्मनसो दर्शयन्त्युत ॥ १० ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचों इन्द्रिय विषयोंको सदा ही इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र जानना चाहिये और ये मनसे देखी जाती हैं ॥ १० ॥

इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते वश्यान्यन्तेव वाजिनः ।
मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रितः ॥ ११ ॥

जैसे सारथी घोडोंको वशमें करके इच्छानुरूप नियमित करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको सदा कार्योंमें नियुक्त किया करता है, और अन्तःकरण उपाधिक जीव सदा मनको नियमित करता है ॥ ११ ॥

इन्द्रियाणां तथैवेषां सर्वेषामीश्वरं मनः ।
नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मानसस्तथा ॥ १२ ॥

जैसे मन सब इन्द्रियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण प्रभु है, वैसेही हृदयमें स्थित जीव चैतन्य मनकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ है; ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मनः ।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम् ॥ १३ ॥

इन्द्रियां, इन्द्रियोंके रस रूपादि विषय, बाह्य वस्तुयें सर्दी, गर्मी आदि धर्मस्वरूप स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और चैतन्य– जीव– ये देहधारियोंके हृदयगुफाके बीच सदा ही वर्तमान हैं ॥ १३ ॥

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतना ।
सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वै कदाचन ॥ १४ ॥

प्रागुक्त देह बुद्धिका अवलम्ब है, ऐसा सम्भव नहीं होता; स्वप्नकालके शरीरकी भांति उक्त देहका केवल भानमात्र हुआ करता है; इसलिये सत्त्व, रज, तम यह त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृतिही बुद्धिका अवलम्ब है, चेतना बुद्धिका अवलम्ब वा स्वरूप नहीं है; क्योंकि बुद्धि ही वासनाको उत्पन्न करती है, गुणोंको उत्पन्न करनेके विषयमें बुद्धि कभी कारण नहीं है ॥१४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं सप्तदशं देहे वृतं षोडशभिर्गुणैः ।
मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १५ ॥

इस ही प्रकार चिदात्मा इन्द्रियादि षोडश गुणोंके– पांच इन्द्रिय, पांच विषय, स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और जीव जरिये पूरित होकर देहमें निवास करता है । मनको निग्रह करनेवाला ब्राह्मण मनके जरिये बुद्धिसे आत्माको देखता है ॥ १५ ॥

न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः ।
मनसा संप्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥ १६ ॥

इस आत्माको नेत्रसे नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियोंके सहारे भी उसे जाननेकी सामर्थ्य नहीं होती; महान् आत्मा मानस प्रदीपके जरिये बुद्धिमें प्रकाशमान होता है ॥ १६ ॥

अशब्दस्पर्शरूपं तदरसागन्धमव्ययम् ।
अशरीरं शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥ १७ ॥

वह न शब्द है, न स्पर्श है; न रूप है, न रस है और न गन्ध ही है; वह अव्यय और इन्द्रियोंसेरहित है; उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं हैं, तौभी शरीरके बीच ही इसका अनुसन्धान करना चाहिये ॥ १७ ॥

अव्यक्तं व्यक्तदेहेषु मर्त्येष्वमरमाश्रितम् ।
योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयसे ॥ १८ ॥

मरण धर्मयुक्त समस्त व्यक्त शरीरोंमें जो अव्यक्त, अमर रूपसे निवास करता है, उसे जो पुरुष गुरुवचन और वेदवाक्यके अनुसार अवलोकन करता है, शरीर त्यागनेके अनन्तर उसका ब्रह्मके सङ्ग निर्विशेष भाव लाभ होता है ॥ १८ ॥

विद्याभिजनसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १९ ॥

पण्डित लोग विद्वान् और सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण, गऊ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें समभावसे स्थित ब्रह्मका दर्शन किया करते हैं ॥ १९ ॥

स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च ।
वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥ २० ॥

जिसने यह सब जगत् बनाया और व्याप्त किया है, वह एक ही महान् आत्मा सब स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें स्थिति करता है ॥ २० ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २१ ॥

हृदयाश्रित जीव जब सब भूतोंमें आत्माको परिपूर्ण देखता है, और निष्कलङ्क आत्मामें सब भूतोंको लीन देखता है, उस समय उसे ब्रह्मत्व लाभ होता है ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि ।
य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ २२ ॥

वेदके आत्म शब्द स्वरूपसे जितने देश वा कालका प्रमाण होता है, जीवात्मा उतनेही देश-कालके अनुसारसे अधिष्ठानभूत स्व-स्वरूप परमात्मामें प्रतिष्ठित होता है । जो सदा इस ही प्रकार ज्ञान करता है, वह अमृतत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ २२ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ २३ ॥

जो सब प्राणियोंका आत्मा होकर सब भूतोंके हितमें रत, पदरहित योगीके पदके अभिलाषी होके उसके अन्वेषणमें देवता भी मोहित हुआ करते हैं ॥ २३ ॥

शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य वा ।
यथा गतिर्न दृश्यते तथैव सुमहात्मनः ॥ २४ ॥

जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें जलचरोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, ब्रह्मज्ञानी महान् आत्माओंकी गतिका भी वैसा ही किसीको पता नहीं चलता है ॥ २४ ॥

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवात्मनात्मनि ।
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तं न वेदेह कश्चन ॥ २५ ॥

काल स्वयं अपनेमें सब भूतोंका परिणाम करता है, परन्तु काल जिसमें परिणत होता है, जो कालका भी काल है, इस जगत्में उस परमात्माको यहां कोई नहीं जान सकता है ॥ २५ ॥

न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च नाधो न च तिरः पुनः ।
न मध्ये प्रतिगृह्णीते नैव कश्चित्कुतश्चन ॥ २६ ॥

मुक्त स्वरूप परब्रह्मको ऊपर, नीचे, तिर्यक् और मध्यदेशी भेदसे किसी स्थानमें भी किसी भांति नेत्र आदि इन्द्रियोंके विषय करनेमें किसीको सामर्थ्य नहीं है वह परमात्मा किसी एक स्थानसे दूसरे स्थानको नहीं जाता है ॥ २६ ॥

सर्वेऽन्तःस्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन ।
यः सहस्रं समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥ २७ ॥

ये समस्त लोक उस उक्त स्वरूपके अन्तर्गत हैं; इन सबका कुछ भी भाग उस परमात्मासे बाहर नहीं है । यदि कोई मनुष्य धनुषसे छूटे हुए सहस्र बाणकी भांति ॥ २७ ॥

नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः ।
तस्मात्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति स्थूलतरं ततः ॥ २८ ॥

अथवा मनके समान शीघ्रगामी होकर निरन्तर गमन करे, तौभी वह परम कारणका अन्त देखनेमें समर्थ नहीं होता । वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, और उससे स्थूल और कुछ भी नहीं है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २९ ॥

उस परम कारण परब्रह्मके हाथ, पांव सब दिशाओंमें ही विद्यमान हैं, उसके नेत्र, सिर, मुख और कान सब तरफ ही प्रकाशमान हैं, वह समस्त जगत्को परिपूरित करके निवास कर रहा है ॥ २९ ॥

तदेवाणोरणुतरं तन्महद्भ्यो महत्तरम् ।
तदन्तः सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥ ३० ॥

वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं, वह सदा निश्चल भावसे निवास करता है, तौ भी किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ ३० ॥

अक्षरं च क्षरं चैव द्वैधीभावोऽयमात्मनः ।
क्षरः सर्वेषु भूतेषु दिव्यं ह्यमृतमक्षरम् ॥ ३१ ॥

अक्षर और क्षर रूपसे आत्माका द्वैधीभाव है, वह जो स्थावर जंगम आदि भूतोंमें विनाशि जडरूपसे निवास करता है वही क्षर स्वरूप और दिव्य अमृत अविनाशी चैतन्य ही अक्षर-स्वरूप है ॥ ३१ ॥

नवद्वारं पुरं गत्वा हंसो हि नियतो वशी ।
ईशः सर्वस्य भूतस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ ३२ ॥

अचञ्चल उपाधि दोषके जरिये अनभिभूत स्थावर जङ्गम सब भूतोंके नियन्ता ईश्वर, महत् अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, अविद्या और कर्म, ये अहंकार धर्म कामके नवद्वारसे युक्त गृहमें गमन करते हैं, इसहीसे वह हंस नामसे वर्णित होता है ॥ ३२ ॥

हानिभङ्गविकल्पानां नवानां संश्रयेण च ।
शरीराणामजस्याहुर्हंसत्वं पारदर्शिनः ॥ ३३ ॥

तत्वदर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि जन्मरहित ईश्वरके शरीरमें भीतर गये हुए पहले कहे हुए महदादि सम्बन्धीय हानि, भङ्ग और त्रिविध कल्पनाके संग्रह निबन्धनसे हंसत्वकी सिद्धि होती है ॥ ३३ ॥

हंसोक्तं चाक्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम् ।
तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥ ८२६० ॥

'हंस' इस पदसे जो अक्षर ब्रह्म कहा जाता है, कूटस्थ चैतन्य भी वही अक्षर ब्रह्म है, इसमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये तत्वज्ञानी मनुष्य उस अक्षर ब्रह्मको जानके प्राण और जन्म परित्याग करते हैं, अर्थात् जन्मके कारण अविद्याके विनाश निबन्धनसे वह कैवल्य लाभ किया करते हैं ॥ ३४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३१ ॥ ८२६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २३२ :

व्यास उवाच—

पृच्छतस्तव सत्पुत्र यथावदिह तत्त्वतः ।
सांख्यन्यायेन संयुक्तं यदेतत्कीर्तितं मया ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— हे सत्पुत्र ! तुमने जो सांख्यज्ञान संयुक्त ज्ञानका विषय पूछा था, मैंने उसे प्रकृत रूपसे यथावत् वर्णन किया ॥ १ ॥

योगकृत्यं तु ते कृत्स्नं वर्तयिष्यामि तच्छृणु ।
एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ।
आत्मनो ध्यायिनस्तात ज्ञानमेतदनुत्तमम् ॥ २ ॥

अब योनियोंका जो कुछ कर्तव्य है, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे तात! बुद्धि, मन, इन्द्रिय और सर्वव्यापी आत्माका एकत्व ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ।
आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥ ३ ॥

चित्त जीतनेवाले, दान्त, अध्यात्म विषयोंके अनुशीलन युक्त, आत्माराम, यमनियममें निष्ठावान्, शास्त्रतत्वज्ञ पुरुषको आचार्यके मुखसे उक्त ज्ञानके विषयको जानना उचित है॥३॥

योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ।
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥ ४ ॥

काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न इन पांचोंको पण्डित लोग योगदोष कहा करते हैं; धीर पुरुष ऊपर कहे हुए पांचों दोषोंको नष्ट करे ॥ ४ ॥

क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥ ५ ॥

शम गुणके जरिये क्रोधको जीते, सङ्कल्पको त्यागके कामको विजय करनेमें समर्थ होवे और धीर पुरुष बुद्धिके अनुशीलनसे सत्त्व गुणका सेवन करके निद्राका नाश करनेके योग्य हुआ करता है ॥ ५ ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥ ६ ॥

धैर्यके जरिये व्यभिचार आदिसे शिश्न और उदरकी रक्षा करे; नेत्रोंसे कांटे आदिकोंसे हाथ-पांवकी रक्षा करनेमें सावधान रहे, मनके जरिये परस्त्रीदर्शन आदिसे नेत्र और कानकी सावधानता सम्पादन करे; यज्ञादि कर्मोंसे बुरी चिन्तासे मन और वचनकी रक्षा किया करे ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अप्रमादाद्भयं जह्याल्लोभं प्राज्ञोपसेवनात् ।
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः ॥ ७ ॥

अप्रमादसे भय और प्राज्ञ पुरुषोंकी सेवा निबन्धनसे लोभका परित्याग करे, योगी सदा अतन्द्रित होकर इस ही प्रकार पूर्वोक्त योग दोषोंको जय करे ॥ ७ ॥

अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेद्देवताः प्रणमेत च ।
वर्जयेद्दुषितां वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम् ॥ ८ ॥

अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करे, देवताओंके निकट प्रणत होवे; हिंसायुक्त मनको भङ्ग करनेवाले अमङ्गल वचन त्याग दे ॥ ८ ॥

ब्रह्म तेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं रसः ।
एकस्य भूतं भूतस्य द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥ ९ ॥

प्रधान, बीजभूत, प्रकाशात्मक, सत्त्वगुणप्रधान महत्तत्त्व ही ब्रह्मस्वरूप है । ये सब स्थावर, जङ्गम, जीव जिस बीचके सारस्वरूप हैं; वही समस्त जगत् निरीक्षण करता है ॥ ९ ॥

ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ।
शौचमाहारसंशुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः ॥ १० ॥

ध्यान, अध्ययन, दान, सत्यवचन, लज्जाशीलता, सरलता, क्षमा, शौच, शुद्ध आचार और इन्द्रियनिग्रह ॥ १० ॥

एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ।
सिध्यन्ति चास्य सर्वार्था विज्ञानं च प्रवर्तते ॥ ११ ॥

इन सबके जरिये सत्त्वोत्कर्ष होनेपर तेजकी बढती होती है और पापका नाश होता है । जो ऐसा आचरण करता है, उसकी सब कामनाएं सिद्ध होती हैं और उसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

समः सर्वेषु भूतेषु लब्धालब्धेन वर्तयन् ।
धुतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ १२ ॥

जो योगी सर्वभूतोंमें समदर्शी, यदृच्छालाभसे सन्तुष्ट, पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाला और जितेन्द्रिय होवे; वह काम, क्रोधको वशमें करके महत्तत्वके आस्पद लय स्थान प्रकृतिको वशमें करनेकी अभिलाष करे ॥ १२ ॥

मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ।
प्राग्रात्रापररात्रेषु धारयेन्मन आत्मना ॥ १३ ॥

समाहित होकर मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता सिद्ध करके पूर्वरात्रि और अपर रात्रिके अर्द्धभागमें बुद्धिमें मनकी धारणा अर्थात् सङ्कल्पात्मक मनका निरोध करे ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यदेकं छिद्रमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् ॥ १४ ॥

पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवका एक ही इन्द्रिय छिद्र यदि क्षरित हो, तो चर्ममय कोषके छिद्रसे जल निकलनेकी तरह उसकी शास्त्रजनित बुद्धि विषय प्रवणता निबन्धनसे क्षीण हुआ करती है ॥ १४ ॥

मनस्तु पूर्वमादद्यात्कुमीनानिव मत्स्यहा ।
ततः श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वां घ्राणं च योगवित् ॥ १५ ॥

जैसे मत्स्यजीवी मछुवाहा जाल दंशन करनेमें समर्थ मछलीको अगाडी बांधता है, वैसे ही योगवित् यती पहले अपने मनको निग्रह करे; अनन्तर कान, नेत्र, जीभ और नासिकाको संयमित करे ॥ १५ ॥

तत एतानि संयम्य मनसि स्थापयेद्यतिः ।
तथैवापोह्य संकल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत् ॥ १६ ॥

यत्नशील योगी इन पांचों इन्द्रियोंको मनके बीच स्थापित करनेमें यत्नवान् होवे, अन्तमें जब मन सब सङ्कल्पोंको परित्याग करे तब मनको बुद्धिमें धारण करे ॥ १६ ॥

पञ्च ज्ञानेन संधाय मनसि स्थापयेद्यतिः ।
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मनःषष्ठानि चात्मनि ।
प्रसीदन्ति च संस्थाय तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥ १७ ॥

योगी पुरुष पञ्च इन्द्रियोंको ध्येय वस्तुकी ओर ले जा करके मनमें स्थापन करनेमें यत्नवान् होवे । जब मनके सहित पञ्चइन्द्रिय बुद्धिके बीच स्थिति करके लयको प्राप्त होकर संकल्प-जनित कलुषता परित्याग करती हैं; तब उस निर्मल प्रसन्न अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाशमान होता है ॥ १७ ॥

विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे पश्यत्यात्मानमात्मना ।
सर्वं च तत्र सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते ॥ १८ ॥

धूमरहित अग्नि, प्रकाशमान सूर्य और आकाशमें स्थित बिजलीकी अग्निकी भांति उस समय प्रकाशमान् अपनेमें आत्मा बुद्धिके बीच दीख पडता है । उस समय उस महान् आत्मामें अहंकार आदि सब विकार दिखाई देते हैं, और वह भूतात्मा कारण रूपसे सर्वव्यापक होनेसे सर्वत्र दीखती है ॥ १८ ॥

तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
धृतिमन्तो महाप्राज्ञाः सर्वभूतहिते रताः ॥ १९ ॥

जो सब महानुभाव, मनीषी ब्राह्मण लोग धृतिमान्, महाप्राज्ञ और सब भूतोंके हितमें रत हैं, वेही उस आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं परिमितं कालमाचरन्संशितव्रतः ।
आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसात्म्यताम् ॥ २० ॥

योगयुक्त पुरुष पूर्ण रीतिसे तीक्ष्ण नियम अवलम्बन कर अकेले निर्जन स्थानमें बैठके ऐसा ही आचरण करनेसे मुक्त होकर शुद्ध आत्मस्वरूपकी समानता लाभ करता है ॥ २० ॥

प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणश्रवणदर्शने ।
अद्भुतानि रसस्पर्शौ शीतोष्णे मारुताकृतिः ॥ २१ ॥

तत्त्ववित् योगी साधनामें मोह, भ्रम और आवर्त आदि विघ्न, दिव्य सुगंध, श्रवण तथा रूपोंके दर्शन, अनेक अद्भुत रस और स्पर्शका अनुभव, सर्दी और गर्मी और शीघ्रगतिकी सामर्थ्य आती है ॥ २१ ॥

प्रतिभामुपसर्गांश्चाप्युपसंगृह्य योगतः ।
तांस्तत्त्वविदनादृत्य स्वात्मनैव निवर्तयेत् ॥ २२ ॥

तथा प्रतिभाकी वृद्धि समस्त शास्त्रार्थभान और दिव्य अङ्गना आदि अद्भुत विषयोंको योगबलसे प्राप्त करके अन्तमें उन सबका अनादर कर बुद्धिके बीच उन्हें संहार करे; क्योंकि बुद्धिकल्पित विषयोंका बुद्धिमें ही लय होना योग्य है ॥ २२ ॥

कुर्यात्परिचयं योगे त्रैकाल्यं नियतो मुनिः ।
गिरिशृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षाग्रेषु च योजयेत् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल, पूर्वरात्रि और अपर रात्रिमें नियमनिष्ठ योगी पहाडके शिखर पर बद्धमूल वृक्षके समीप या एकान्त मन्दिरमें अथवा वृक्षके पुरोभागमें योगाभ्यास करे ॥ २३ ॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं गोष्ठे भाण्डमना इव ।
एकाग्रश्चिन्तयेन्नित्यं योगान्नोद्वेजयेन्मनः ॥ २४ ॥

वह इन्द्रियोंको सब तरहसे नियमित करके इस प्रकार हृदयकमलमें स्थित एकाग्र भावसे नित्य आत्माका चिन्तन करे; जैसे धनकी प्राप्तिमें रत विषयलोभी मनुष्य धनकी चिन्ता करके द्रव्यको कोठेमें बांधता है; योगसे कभी मनको उद्विग्न न करे ॥ २४ ॥

येनोपायेन शक्येत संनियन्तुं चलं मनः ।
तं तं युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः ॥ २५ ॥

जिस योगयुक्त उपायसे चञ्चल चित्तको पूर्ण रीतिसे नियमित करनेमें समर्थ होवे, उस ही उपायको अवलम्बन करे, उससे कभी विचलित न होवे; ॥ २५ ॥

शून्या गिरिगुहाश्चैव देवतायतनानि च ।
शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत् ॥ २६ ॥

वह एकाग्र चित्त होकर जनशून्य गिरिगुफा, देवस्थान और सूने गृहमें वास करनेकी इच्छा करे ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाभिष्वजेत्परं वाचा कर्मणा मनसापि वा ।
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धे समो भवेत् ॥ २७ ॥

ऐसा योगी पत्नीपरिग्रह न करे, केवल मन, वचन और धर्मसे सब विषयोंमें उपेक्षा करते हुए, यताहारी होकर, प्राप्त और अप्राप्त विषयोंमें समदर्शी होवे ॥ २७ ॥

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमपवादयेत् ।
समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥ २८ ॥

जो पुरुष उसको अभिनन्दित करता है, अथवा जो पुरुष उसकी निन्दा करे, उन दोनोंमें समान भाव रक्खे; वह एककी भलाई या दूसरेकी बुराई न सोचे ॥ २८ ॥

न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् ।
समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः ॥ २९ ॥

योगी पुरुष लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट न होवे; वह वायुके समान धर्मात्मा होकर सब भूतोंको समभावसे देखे ॥ २९ ॥

एवं सर्वात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः ।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ३० ॥

इस ही भांति छः महीने तक नित्य योगयुक्त रहनेवाला, सर्वत्र समदर्शी, आत्मस्थित चित्त-वाला साधु पुरुष वेदोक्त परब्रह्मका साक्षात्कार करता है ॥ ३० ॥

वेदनार्ताः प्रजा दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
एतस्मिन्निरतो मार्गे विरमेन्न विमोहितः ॥ ३१ ॥

मृत्पिण्ड, पत्थरके टुकडे और सुवर्णमें समदर्शी योगी प्रजासमूहको पीडासे आर्त्त देखकर इस प्रकारके योगमार्गसे विरत और मोहित न होवे; बल्कि वित्त उपार्जन आदिसे विरत रहे ॥ ३१ ॥

अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी ।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम् ॥ ३२ ॥

नीच वर्ण शूद्र भी यदि इस मार्गमें पदार्पण करे और धर्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री भी यदि योगाभ्यासमें रत होवे, तो वे भी इस योग अवलम्बनके जरिये परम गति प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३२ ॥

अजं पुराणमजरं सनातनं यदिन्द्रियैरुपलभते नरोऽचलः ।
अणोरणीयो महतो महत्तरं तदात्मना पश्यति युक्त आत्मवान् ॥ ३३ ॥

साधु पुरुष मन और बुद्धियुक्त निश्चल इन्द्रियोंके जरिये जो जन्मरहित, प्राचीन जराविवर्जित सनातन पुरुषको लक्ष्य करता है । वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, चित्तजय करनेवाला योगी उस मुक्त स्वरूपको बुद्धिबलसे देखा करता है ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदं महर्षेर्वचनं महात्मनो यथावदुक्तं मनसानुदृश्य च ।
अवेक्ष्य चेयात्परमेष्ठिसात्म्यतां प्रयान्ति यां भूतगतिं मनीषिणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥ ८२९४ ॥

महानुभाव महर्षियोंके यथावत् वर्णित वह वाक्य गुरुवचनके समान शब्द और अर्थसे जानके उसे स्वयं युक्तिके जरिये परीक्षा करके शुद्धचित्तवाले मनीषि लोग भूतसंप्लव पर्यन्त चतुर्मुखकी समताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रलयकालतक ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके सहित समान भोगके भागी हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३२ ॥ ८२९४ ॥

: २३३ :

शुक उवाच —

यदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ।
कां दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥ १ ॥

शुकदेव बोले— वेदवाक्यके बीच "कर्म करो और कर्म परित्याग करो," यह जो विधि निषेध है, उसमेंसे विद्याके जरिये लोग किस ओर गमन करते हैं और कर्मके जरिये किस गतिकी प्राप्ति करते हैं ? ॥ १ ॥

एतद्वै श्रोतुमिच्छामि तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ।
एतत्त्वन्योन्यवैरूप्ये वर्तते प्रतिकूलतः ॥ २ ॥

इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये । परस्पर वैरूप्य-युक्त ये दोनों मार्ग प्रतिकूल भावसे वर्त्तमान हैं ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं पराशरसुतः सुतम् ।
कर्मविद्यामयावेतौ व्याख्यास्यामि क्षराक्षरौ ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— पराशरनन्दन वेदव्यासने पुत्रका ऐसा वचन सुनके उसे यह उत्तर दिया, हे तात ! कर्ममय और ज्ञानमय मार्ग, क्रमशः नश्वर और अविनश्वर है, मैं दोनों पथके विषयकी व्याख्या करता हूं ॥ ३ ॥

यां दिशं विद्यया यान्ति यां च गच्छन्ति कर्मणा ।
शृणुष्वैकमनाः पुत्र गह्वरं ह्येतदन्तरम् ॥ ४ ॥

पुत्र ! सब लोग विद्याके सहारे जिस ओर गमन करते हैं और कर्मसे उन्हें जो गति प्राप्त होती है, वह कहता हूं; तुम एकाग्रचित्त होकर उस विषयको सुनो; इन दोनोंका अन्तर आकाशकी भांति अत्यन्त गम्भीर है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अस्ति धर्म इति प्रोक्तं नास्तीत्यत्रैव यो वदेत् ।
तस्य पक्षस्य सदृशमिदं मम भवेदथ ॥ ५ ॥

आस्तिक लोग "धर्म है" ऐसा शास्त्र वचन कहते हैं, नास्तिक लोग "धर्म नहीं है" ऐसा कहा करते हैं। उसके बीच नास्तिक और आस्तिकके तारतम्य पूछनेसे आस्तिकके पक्षमें वह जिस प्रकार क्लेशयुक्त होजाता है, मेरे पक्षमें भी यह उस ही प्रकार होरहा है॥५॥

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तौ च सुभाषितः ॥ ६ ॥

सब वेद जिसमें प्रतिष्ठित होरहे हैं, वह मार्ग दो प्रकारका है; प्रवृत्तिलक्षण धर्म और निवृत्ति-लक्षण धर्म उत्तम रीतिसे वर्णित है ॥ ६ ॥

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥ ७ ॥

जीव कर्मके जरिये बद्ध होता और ज्ञान विद्यासे मुक्त हुआ करता है, इसलिये तत्वदर्शी योगी लोग कर्म करनेमें अनुरक्त नहीं होते ॥ ७ ॥

कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः ।
विद्यया जायते नित्यमव्ययो ह्यव्ययात्मकः ॥ ८ ॥

कर्मशील मनुष्य कर्मके जरिये मरनेके अनन्तर फिर सोलह तत्त्वोंके बने हुए शरीरको धारण करके जन्म लेता है और विद्वान् पुरुष ज्ञानके जरिये नित्य अव्यक्त, अव्ययस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

कर्म त्वेके प्रशंसन्ति स्वल्पबुद्धितरा नराः ।
तेन ते देहजालानि रमयन्त उपासते ॥ ९ ॥

कोई कोई अल्पबुद्धिमें रत मनुष्य सकाम कर्मकी प्रशंसा किया करते हैं, इसहीसे वे स्त्री, पुत्र आदि परिवारमें आसक्त होकर कर्मकी ही उपासना करनेमें रत होते हैं, ॥ ९ ॥

ये तु बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः ।
न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्यां पिबन्निव ॥ १० ॥

जो सब धर्ममें निपुण मनुष्योंने श्रेष्ठ बुद्धि लाभकी है, वे इस प्रकार कर्मकी प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीके जलको पीनेवाले मनुष्य कूएंका पानी पीकर उसकी प्रशंसा नहीं करते ॥१०॥

कर्मणः फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥ ११ ॥

कर्मशील मनुष्य कर्मके फल सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु पाते हैं, और ज्ञानी लोग विद्याके सहारे उस स्थानको पाते हैं, जहां पर जानेसे शोक नहीं करना पडता; ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhu Ji) Jodhpur Vidyapeeth Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्र गत्वा न म्रियते यत्र गत्वा न जायते ।
न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥ १२ ॥

वहां पर जानेसे जन्म और मृत्यु नहीं होती और फिर दूसरी बार जन्म नहीं लेना पडता । जहां जानेसे जीव क्षीण और वर्धित नहीं होता ॥ १२ ॥

यत्र तद्ब्रह्म परममव्यक्तमजरं ध्रुवम् ।
अव्याहतमनायासममृतं चावियोगि च ॥ १३ ॥

जिस स्थानमें विशेष विज्ञानभावसे जीव लयको प्राप्त होता है, जिस स्थानमें अव्यक्त, अचल, नित्य, अविस्पष्ट, अक्लेश, अमृत, अवियोगी परब्रह्म विराजमान है ॥ १३ ॥

द्वंद्वैर्यत्र न बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा ।
समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ १४ ॥

जिस स्थानमें सुख–दुःख और मानस कर्मोंसे कुछ बाधा नहीं होती; वहां सब भूतोंमें समदर्शी और सब प्राणियोंके हितमें रत महात्मा लोग निवास किया करते हैं ॥ १४ ॥

विद्यामयोऽन्यः पुरुषस्तात कर्ममयोऽपरः ।
विद्धि चन्द्रमसं दर्शे सूक्ष्मया कलया स्थितम् ॥ १५ ॥

हे तात ! विद्यामय पुरुष कुछ अन्यही है । और कर्ममय पुरुष उससे भिन्न है; कर्ममयके बीच संवत्सराख्य प्रजापति श्रेष्ठ हैं । प्रति महीनेमें घटती बढतीयुक्त और अमावास्या तिथिमें सूक्ष्म कलासे स्थित चन्द्रमाकी भांति कर्ममय पुरुषोंकी ह्रासवृद्धि हुआ करती है ॥ १५ ॥

तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुमीयते ।
नवजं शशिनं दृष्ट्वा वक्रं तन्तुमिवाम्बरे ॥ १६ ॥

बृहदारण्यकदर्शी याज्ञवल्क्यने आकाशमें एक टेढे और पतले सूत्रकी भांति स्थित नवीन चन्द्रमाको देखकर इस विषयमें बहुतसी युक्तिपूरित उक्ति प्रकाश की है, वह उनके वचनके जरिये अनुमित होती है ॥ १६ ॥

एकादशविकारात्मा कलासंभारसंभृतः ।
मूर्तिमानिति तं विद्धि तात कर्मगुणात्मकम् ॥ १७ ॥

हे तात ! कर्मजन्य कलाओंके सहित मनुष्य मन और दस इन्द्रिय– इन ग्यारह विकारोंसे युक्त हो जन्म ग्रहण कर मूर्तिमान् होता है; उसे कर्मगुणात्मक शरीरसे युक्त, चन्द्रमाके समान वृद्धि और ह्रासवाला समझो ॥ १७ ॥

देवो यः संश्रितस्तस्मिन्नब्बिन्दुरिव पुष्करे ।
क्षेत्रज्ञं तं विजानीयान्नित्यं त्यागजितात्मकम् ॥ १८ ॥

कमल पुष्पके बीच जलकी बूंद समान वह जीव उपाधियुक्त मनके बीच जो द्योतमान चित्प्रकाश संश्रित होरहा है, और उस योगनिरुद्ध चित्त जीवको क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये ॥१८॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान् ।
जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः ॥ १९ ॥

तम, रज और सत्व, इन तीनों गुणोंको विज्ञानमय किसी जीवका गुण जानना चाहिये। विज्ञानमयको आत्मगुण अर्थात् चिदाभास गुण चैतन्य उससे युक्त समझे; चिदाभास आत्माको परमात्माके गुण ज्ञान और ऐश्वर्य आदिसे संयुक्त जाने ॥ १९ ॥

सचेतनं जीवगुणं वदन्ति स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥ ८३१४ ॥

शरीर स्वयं अचेतन होनेपर भी जीवके गुण चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर हाथ पांव चलाते हुए जीवित होता है। जिन्होंने भूलोक, भुवर्लोक आदि सातों भुवनोंको बनाया है, पण्डित लोग उसे ही जीवसे परम श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३३ ॥ ८३१४ ॥

२३४

शुक उवाच—

क्षरात्प्रभृति यः सर्गः सगुणानीन्द्रियाणि च ।
बुद्धैश्वर्याभिसर्गार्थं यद्ध्यानं चात्मनः शुभम् ॥ १ ॥

शुकदेव बोले— प्रकृतिसे चौबीस तत्त्वात्मक जो साधारण सृष्टि है, उसे और विषययुक्त इन्द्रियों तथा बुद्धिकी सामर्थ्य, ध्यान आदि जो कुछ असाधारण उत्तम सृष्टि है, वह भी आत्माकी सृष्टि है, यह मैंने सुना ॥ १ ॥

भूय एव तु लोकेऽस्मिन्सद्वृत्तिं वृत्तिहैतुकीम् ।
यया सन्तः प्रवर्तन्ते तदिच्छाम्यनुवर्णितम् ॥ २ ॥

सम्प्रति इस लोकमें युगके अनुसार जो सब सद्व्यवहार प्रचलित हैं, जिसके जरिये साधु लोग उसके आचरणमें प्रवृत्त होते हैं, मैं फिर उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥

वेदे वचनमुक्तं तु कुरु कर्म त्यजेति च ।
कथमेतद्विजानीयां तच्च व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

वेदके बीच कर्म करने और कर्मपरित्यागका वचन वर्णित है; परन्तु इन दोनोंके अविरोध विषयविभागके जरिये विचार कर किस प्रकारसे मालूम करूं; आप इसहीकी व्याख्या करिये ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

लोकवृत्तान्ततत्त्वज्ञः पूतोऽहं गुरुशासनात् ।
कृत्वा बुद्धिं वियुक्तात्मा त्यक्ष्याम्यात्मानमव्ययः ॥ ४ ॥

मैं गुरुके उपदेशसे धर्माधर्ममूलक लौकिक रीतिको यथार्थ रीतिसे जानके, धर्मानुष्ठानके जरिये पवित्र होकर और बुद्धिका संस्कार करके देहका अभिमान छोडकर अव्यय परमात्माका दर्शन करूंगा ॥ ४ ॥

व्यास उवाच—

यैषा वै विहिता वृत्तिः पुरस्ताद्ब्रह्मणा स्वयम् ।
एषा पूर्वतरैः सद्भिराचीर्णा परमर्षिभिः ॥ ५ ॥

व्यासदेव बोले— कर्मके सहारे बुद्धिका संस्कार करनेसे आत्मदर्शन हुआ करता है, पहले प्रजापतिने स्वयं इस व्यवहारका विधान किया है, और पहलेके साधु महर्षि लोग भी वैसा ही आचरण कर गये हैं ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्येण वै लोकाञ्जयन्ति परमर्षयः ।
आत्मनश्च हृदि श्रेयस्त्वन्विच्छ मनसात्मनि ॥ ६ ॥

परमर्षि लोग ब्रह्मचर्यसे सब लोकोंको जय किया करते हैं । जो मनके जरिये बुद्धिसे अपने कल्याणकी इच्छा करे, वह पहले ब्रह्मचर्यका पालन करे ॥ ६ ॥

वने मूलफलाशी च तप्यन्सुविपुलं तपः ।
पुण्यायतनचारी च भूतानामविहिंसकः ॥ ७ ॥

वह वनवासी और फलमूलभोजी होकर, अत्यन्त तपस्याचरण करके, पवित्र तीर्थोंमें विचरते हुए, सब भूतोंमें दयायुक्त—अहिंसायुक्त होवे ॥ ७ ॥

विधूमे सन्नमुसले वानप्रस्थप्रतिश्रये ।
काले प्राप्ते चरन्भैक्षं कल्पते ब्रह्मभूयसे ॥ ८ ॥

फिर संन्यासी होकर भिक्षासे जीवन बितावे; अनन्तर धूमरहित, मूसल शब्द वर्जित वानप्रस्थीके आश्रममें यथासमय भिक्षा प्राप्त करे; इस जीवनसे वह ब्रह्मभावको प्राप्त होगा ॥८॥

निःस्तुतिर्निर्नमस्कारः परित्यज्य शुभाशुभे ।
अरण्ये विचरैकाकी येन केनचिदाशितः ॥ ९ ॥

तुम स्तुति और नमस्कारसे अलग रहनेवाले होके शुभाशुभ कर्मोंका परित्याग कर जिस किसी वस्तुसे होसके, उसहीसे तृप्ति लाभ करके वनके बीच अकेले ही विचरो ॥ ९ ॥

शुक उवाच—

यदिदं वेदवचनं लोकवादे विरुध्यते ।
प्रमाणे चाप्रमाणे च विरुद्धे शाश्वता कुतः ॥ १० ॥

शुकदेव बोले— " कर्म करो, और कर्म परित्याग करो, " ये वेदवचन जो लौकिक वचनसे विरुद्ध होरहे हैं, इन दोनोंके प्रमाण वा अप्रमाण विषयमें किस प्रकार शाश्वत्वकी सिद्धि हो सकती है ? ॥ १० ॥

CC0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि भगवान्प्रब्रवीतु मे ।
कर्मणामविरोधेन कथमेतत्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

इससे पूर्वोक्त तीनों वचनोंके प्रमाणकी सिद्धिके लिये व्यवस्था करनी उचित है । उन दोनों वाक्योंका ही किस प्रकार प्रमाण हो और सब कर्मोंके अविरोधसे किस प्रकार मोक्ष हुआ करती है, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ११ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गन्धवत्याः सुतः सुतम् ।
ऋषिस्तत्पूजयन्वाक्यं पुत्रस्यामिततेजसः । ॥ १२ ॥

भीष्म बोले—योजनगन्धापुत्र महर्षि वेदव्यासने कर्मके जरिये चित्त शुद्ध करके आत्माका दर्शन करूंगा," अपरिमित तेजसे युक्त निज पुत्रके इस वचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उसके पूर्व प्रश्नके अनुसार वक्ष्यमाण रीतिसे यह उत्तर दिया ॥ १२ ॥

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
यथोक्तकारिणः सर्वे गच्छन्ति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी—) ये सब निज आश्रम विहित शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १३ ॥

एको य आश्रमानेताननुतिष्ठेद्यथाविधि ।
अकामद्वेषसंयुक्तः स परत्र महीयते ॥ १४ ॥

अथवा जो कामद्वेषसे रहित होके अकेलाही इन चारों आश्रमोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्मविषयमें ज्ञानवान् होनेके योग्य हुआ करता है ॥ १४ ॥

चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता ।
एतामाश्रित्य निःश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते ॥ १५ ॥

ब्रह्ममें प्रतिष्ठित ये चारों आश्रम ब्रह्मपदको पहुंचानेवाली चार पैंडीवाली सीढीके समान माने जाते हैं; इसपर चढकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है ॥ १५ ॥

आयुषस्तु चतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः ।
गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद्धर्मार्थकोविदः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचारी असूयारहित और धर्मार्थवित् होकर परमायुके चौथे भागके पहले भागमें पच्चीस वर्षोंतक गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप उनकी सेवामें वास करे ॥ १६ ॥

कर्मातिरेकेण गुरोरध्येतव्यं बुभूषता ।
दक्षिणो नापवादी स्यादाहूतो गुरुमाश्रयेत् ॥ १७ ॥

सेवामें शेष कर्मोंको समाप्त करके ज्ञानकी उन्नतिकी इच्छा करनेवाला शिष्य गुरुके समीप पढे; उदार, सरल और अपवादरहित होवे; गुरुके आवाहन करनेसे उसका आश्रय ग्रहण करे ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जघन्यशायी पूर्वं स्यादुत्थायी गुरुवेश्मनि ।
यच्च शिष्येण कर्तव्यं कार्यं दासेन वा पुनः ॥ १८ ॥

गुरुके गृहमें नीचेकी शय्यापर शयन करते हुए उनके जागनेसे पहले उठके शिष्य अथवा सेवकका जो कुछ कार्य हो, वह सब स्वयं सम्पन्न करे ॥ १८ ॥

कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत पार्श्वतः ।
किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्मसु कोविदः ॥ १९ ॥

गुरुकी आज्ञा होनेपर 'इसे पूरा किया' कहकर कर्त्तव्य कर्मोंके सिद्ध होनेपर गुरुकी पीछे खडा रहे; सब कार्य जाननेवाला सेवक और सब कर्मोंका कुशल करनेवाला होवे ॥ १९ ॥

शुचिर्दक्षो गुणोपेतो ब्रूयादिषुरिवात्वरः ।
चक्षुषा गुरुमव्यग्रो निरीक्षेत जितेन्द्रियः ॥ २० ॥

पवित्र, कार्यमें निपुण और गुणयुक्त होकर बीच बीचमें गौरवयुक्त प्रियवचन कहे। जितेन्द्रिय और सावधान होकर स्निग्ध नेत्रसे गुरुको देखे ॥ २० ॥

नाश्नुक्तवति चाश्नीयादपीतवति नो पिबेत् ।
न तिष्ठति तथासीत नासुप्ते प्रस्वपेत च ॥ २१ ॥

जबतक गुरु भोजन कर न चुकें, तबतक भोजन न करे; उनके विना जल पीये; जल न पीवे; विना बैठे उपविष्ट न होवे और विना निद्रित हुए शयन न करे ॥ २१ ॥

उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां पादावस्य मृदु स्पृशेत् ।
दक्षिणं दक्षिणेनैव सव्यं सव्येन पीडयेत् ॥ २२ ॥

दोनों हाथोंको फैलाकर गुरुके दोनों पावोंको कोमलभावसे स्पर्श करे, दाहिने हाथसे दाहिना पांव और बायें हाथसे बायें चरणकी वन्दना करे ॥ २२ ॥

अभिवाद्य गुरुं ब्रूयादधीष्व भगवन्निति ।
इदं करिष्ये भगवन्निदं चापि कृतं मया ॥ २३ ॥

गुरुको प्रमाण करके कहे, हे भगवन् ! शिष्यको शिक्षादान करिये; मैं यह कार्य अभी करूंगा, इसे मैंने पूरा किया है ॥ २३ ॥

इति सर्वमनुज्ञाप्य निवेद्य गुरवे धनम् ।
कुर्यात्कृत्वा च तत्सर्वमाख्येयं गुरवे पुनः ॥ २४ ॥

इसी प्रकार सब विषयोंमें आज्ञा लेकर और विधिपूर्वक धन अर्पण करके सब कार्य करे; कार्य समाप्त करके फिर गुरुके समीप सब विषयोंका निवेदन करे ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यांस्तु गन्धान्रसान्वापि ब्रह्मचारी न सेवते ।
सेवेत तान्समावृत्त इति धर्मेषु निश्चयः ॥ २५ ॥

ब्रह्मचारी जिन सब गन्धरसोंका सेवन नहीं कर सकता है, उनका वह ब्रह्मचर्य कालमें त्याग करे, समावृत्त अर्थात् ब्रह्मचर्य कर्म समाप्त होनेपर समावर्त्तन संस्कारके जरिये संस्कारयुक्त होके उन सब विषयोंको सेवन करे, यह धर्मशास्त्रमें निश्चित है ॥ २५ ॥

ये केचिद्विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः ।
तान्सर्वाननुगृह्णीयाद्भवेच्चानपगो गुरोः ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारीके पक्षमें जो कुछ नियम शास्त्रोंमे विस्तारपूर्वक कहे गये हैं, ब्रह्मचारी सदा उन सबका ही आचरण करे और सदा गुरुकी सेवा करनेमें तत्पर रहे ॥ २६ ॥

स एवं गुरवे प्रीतिमुपहृत्य यथाबलम् ।
आश्रमेष्वाश्रमेष्वेवं शिष्यो वर्तेत कर्मणा ॥ २७ ॥

इस ही प्रकार गुरुको शक्तिके अनुसार सेवासे प्रसन्न करके शिष्य होकर कर्मके जरिये ब्रह्मचर्य आश्रमसे निकलकर दूसरे आश्रममें निवास करे वहां उन आश्रमोंके कर्तव्योंका पालन करे ॥ २७ ॥

वेदव्रतोपवासेन चतुर्थे चायुषो गते ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावर्तेद्यथाविधि ॥ २८ ॥

वेदाध्ययन, व्रत और उपवाससे आयुका प्रथम भाग बीतनेपर गुरुको दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावृत्त होके अर्थात् गुरुगृहसे लौटके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे ॥ २८ ॥

धर्मलब्धैर्युतो दारैरग्नीनुत्पाद्य धर्मतः ।
द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधिव्रती भवेत् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ ८३४३ ॥

फिर धर्मसे प्राप्त हुई पत्नीका परिग्रह करके यत्नके सहित तीनों अग्निको उत्पन्न करते हुए गृहमेधी और व्रती होकर परमायुका दूसरा भाग—पचास वर्षकी अवस्थातकका बितानेके लिये गृहमें वास करे ॥ २९ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३४ ॥ ८३४३ ॥

: २३५ :

व्यास उवाच—

द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी गृहे वसेत् ।
धर्मलब्धैर्युतो दारैरग्नीनुत्पाद्य सुव्रतः ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— गृहस्थ पुरुष धर्मपत्नीयुक्त और सुव्रती होके अग्नि लाकर आयुके दूसरे भागमें गृहमें निवास करे ॥ १ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गृहस्थवृत्तयश्चैव चतस्रः कविभिः स्मृताः ।
कुसूलधान्यः प्रथमः कुम्भीधान्यस्त्वनन्तरम् ॥ २ ॥

विद्वानोंने गृहस्थकी चार प्रकारकी वृत्तिका विधान किया है, उसमेंसे पहले कोठेभर धान्यका संग्रह करके रखे और जीविका निर्वाह करे; दूसरा कुम्भधान्य अर्थात् घडे परिमित धान्य सञ्चय करके वृत्ति स्थापित करे ॥ २ ॥

अश्वस्तनोऽथ कापोतीमाश्रितो वृत्तिमाहरेत् ।
तेषां परः परो ज्यायान्धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ३ ॥

तीसरा अ-श्वस्तन अर्थात् दूसरे दिनके लिये, सञ्चय न करे, यह तीसरी वृत्ति है । चौथा कापोती अर्थात् उञ्छवृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्वाह करे । इसमेंसे धर्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक श्रेष्ठ और लोक विजयी हैं ॥ ३ ॥

षट्कर्मा वर्तयत्येकस्त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रे व्यवस्थितः ।
गृहमेधिव्रतान्यत्र महान्तीह प्रचक्षते ॥ ४ ॥

गृहस्थ पुरुष पहिली श्रेणीके अनुसार जीविका चलाते हुए यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान-प्रतिग्रह, इन षट्कर्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे; दूसरी श्रेणीवाला अध्ययन, यजन और दान इन तीन कर्मोंमें रत रहे, तीसरी श्रेणीवाला दान और अध्ययन, इन दोनों कर्मोंका आसरा करके निवास करे और चौथी श्रेणीवाला केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहे; इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

नात्मार्थं पाचयेदन्नं न वृथा घातयेत्पशून् ।
प्राणी वा यदि वाप्राणी संस्कारं यजुषार्हति ॥ ५ ॥

गृहस्थ पुरुष केवल अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे । यज्ञमें यजमान और हविष्य आदि सबका ही यजुर्वेदीय मन्त्रसे संस्कार करना होगा ॥ ५ ॥

न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रयोः ।
न भुञ्जीतान्तराकाले नावृतावाह्वयेत्स्त्रियम् ॥ ६ ॥

गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करे; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्यासे सङ्ग न करे ॥ ६ ॥

नास्यानश्नन्वसेद्विप्रो गृहे कश्चिदपूजितः ।
तथास्यातिथयः पूज्या हव्यकव्यवहाः सदा ॥ ७ ॥

गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके वास न करे; इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है; अतिथि लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्य और कव्यसे पूजित होवें ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वेदविद्याव्रतस्नाताः श्रोत्रिया वेदपारगाः ।
स्वधर्मजीविनो दान्ताः क्रियावन्तस्तपस्विनः ।
तेषां हव्यं च कव्यं चाप्यर्हणार्थं विधीयते ॥ ८ ॥

वेदज्ञान पारंगत, व्रतस्नात, स्वधर्मजीवी, दान्त, क्रियावान्, तपस्वी, श्रोत्रियोंके सत्कारके निमित्त उनकी विधिवत् पूजा करके उन्हें हव्य और कव्य अर्पण करना सदा ही योग्य है, ऐसा विधान है ॥ ८ ॥

न खरैः संप्रयातस्य स्वधर्माज्ञानकस्य च ।
अपविद्धाग्निहोत्रस्य गुरोर्वालीककारिणः ॥ ९ ॥

धार्मिकताका दम्भ दिखानेके निमित्त नख-लोम धारण करनेवाला, स्वधर्मज्ञापक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाला और गुरुके साथ कष्ट करनेवाला मनुष्य भी ॥ ९ ॥

संविभागोऽत्र भूतानां सर्वेषामेव शिष्यते ।
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना ॥ १० ॥

गार्हस्थ धर्ममें अन्न पतिका अधिकारी है; सभी प्राणी यहां अन्नके भागी हैं; ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि जिन्हें स्वयंपाक करना निषेध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करे ॥१०॥

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ।
अमृतं यज्ञशेषं स्याद्भोजनं हविषा समम् ।
भृत्यशेषं तु योऽश्नाति तमाहुर्विघसाशिनम् ॥ ११ ॥

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृतभोजी होवे; यज्ञसे शेष बचा हुआ भोजन हविके समान और अमृत कहा जाता है और जो कुटुम्बीजनोंके तथा सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करता है, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं ॥ ११ ॥

स्वदारनिरतो दान्तो ह्यनसूयुर्जितेन्द्रियः ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ १२ ॥

गृहस्थ मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि आश्रित लोग, ॥ १२ ॥

वृद्धबालातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः ।
मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ॥ १३ ॥

वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, स्वजन, सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्रा स्त्रियां भ्राता, पुत्र, भार्या, ॥ १३ ॥

दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ।
एतान्विमुच्य संवादान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

कन्या और सेवकोंके सहित विवाद न करे । इन सब लोगोंके संग अंश आदिके निमित्त झगडा परित्याग करनेमें मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतैर्जितैस्तु जयति सर्वाँल्लोकान्न संशयः ।
आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य इन सब विवादोंके विषयोंको जय करता है, वह सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होता है। आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है और पिता प्रजापतिलोकका ईश्वर है ॥ १५ ॥

अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ।
जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवे तु ज्ञातयः ॥ १६ ॥

अतिथि इन्द्रलोकके और ऋत्विज देवलोकके स्वामी हैं; कुलकी स्त्रियां अप्सराओंके लोककी स्वामीनी हैं और स्वजन—जातिभाई विश्वेदेवलोकके प्रभु हैं ॥ १६ ॥

संबन्धिबान्धवा दिक्षु पृथिव्यां मातृमातुलौ ।
वृद्धबालातुरकृशास्त्वाकाशे प्रभविष्णवः ॥ १७ ॥

सम्बन्धी और बन्धु—बान्धव दिशाओंपर माता तथा मामा पृथ्वीपर; वृद्ध, बालक और रोगी आकाशपर प्रभुत्व रखते हैं; इनको प्रसन्न रखनेसे उन लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ।
छाया स्वा दासवर्गस्तु दुहिता कृपणं परम् ॥ १८ ॥

बडा भाई पिताके समान है, भार्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं, दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है ॥ १८ ॥

तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेन्नित्यमसंज्वरः ।
गृहधर्मरतो विद्वान्धर्मनित्यो जितक्रमः ॥ १९ ॥

इसलिये इन सबके जरिये निन्दित होनेपर भी गृहधर्मपरायण, विद्वान्, धर्मशील, पुरुष क्लेश और थकावटको जीतकर क्रोधरहित होकर सदा उसे सहे ॥ १९ ॥

न चार्थबद्धः कर्माणि धर्मं वा कंचिदाचरेत् ।
गृहस्थवृत्तयस्तिस्रस्तासां निःश्रेयसं परम् ॥ २० ॥

कोई भी धार्मिक मनुष्य धन लाभके लिये अग्निहोत्र आदि धर्म कर्म न करे; उंछ, शिल और कपोतव्रत भेदसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी आजीविकाकी वृत्तियां हैं; उनके बीच उत्तरोत्तर वृत्तिही कल्याणकारी है ॥ २० ॥

परस्परं तथैवाहुश्चातुराश्रम्यमेव तत् ।
ये चोक्ता नियमास्तेषां सर्वं कार्यं बुभूषता ॥ २१ ॥

इसी प्रकार ऋषि लोग ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमोंके उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं। आश्रमोंके सब कार्योंको प्राप्त करनेकी जो इच्छा करता है, वह उन यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करे ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कुम्भीधान्यैरुञ्छशिलैः कापोतीं चास्थितैस्तथा ।
यस्मिंश्चैते वसन्त्यर्हास्तद्राष्ट्रमभिवर्धते ॥ २२ ॥

कुम्भभर धान्यका संग्रह करके वा उंछशिल वृत्तिके जरिये कापोती वृत्ति अवलम्बन करे। ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यकी समृद्धि वर्द्धित हुआ करती है ॥ २२ ॥

दश पूर्वान्दश परान्पुनाति च पितामहान् ।
गृहस्थवृत्तयस्त्वेता वर्तयेद्यो गतव्यथः ॥ २३ ॥

जो गृहस्थवृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर इन वृत्तियोंसे जीवन व्यतीत करता है, ऐसा नियमशाली मनुष्य अपनी दस पीढीके पूर्वजोंको और दस पीढीतक आगेकी संतानोंका पवित्र करता है ॥ २३ ॥

स चक्रचरलोकानां सदृशीं प्राप्नुयाद्गतिम् ।
यतेन्द्रियाणामथ वा गतिरेषा विधीयते ॥ २४ ॥

वह चक्रधारी विष्णुके लोकके समान उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है वा वह जितेन्द्रिय पुरुषको मिलनेवाली उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

स्वर्गलोको गृहस्थानामुदारमनसां हितः ।
स्वर्गो विमानसंयुक्तो वेददृष्टः सुपुष्पितः ॥ २५ ॥

उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त हितकर स्वर्गलोक प्राप्त होता है; वेददृष्ट, विमानसे संयुक्त सुंदर फुलोंसे शोभित रमणीय स्वर्गलोक उनके लिये सुलभ है ॥ २५ ॥

स्वर्गलोके गृहस्थानां प्रतिष्ठा नियतात्मनाम् ।
ब्रह्मणा विहिता श्रेणिरेषा यस्मात्प्रमुच्यते ।
द्वितीयं क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥ २६ ॥

मन तथा इन्द्रियोंको नियत करनेवाले गृहस्थोंके लिये स्वर्गलोकही प्रतिष्ठित है। जब कि गार्हस्थ्य धर्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे द्वितीय आश्रम गार्हस्थ्य अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें वास करेगा ॥ २६ ॥

अतः परं परमुदारमाश्रमं तृतीयमाहुस्त्यजतां कलेवरम् ।
वनौकसां गृहपतिनामनुत्तमं शृणुष्वैतत्क्लिष्टशरीरकारिणाम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥ ८३७० ॥

इसके अनन्तर गार्हस्थ्यसे भी परम उदार आश्रमको तीसरा वानप्रस्थ आश्रम कहा जाता है; हड्डी, चर्म आदिके संश्लेषजनित शरीरको सुखानेवाले वनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो धर्म-फलप्राप्त होता है, उसे सुनो ॥ २७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३५ ॥ ८३७० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २३६ :

भीष्म उवाच—

प्रोक्ता गृहस्थवृत्तिस्ते विहिता या मनीषिणाम् ।
तदनन्तरमुक्तं यत्तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे युधिष्ठिर ! मनीषी पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थवृत्तिका विधान और आचरण किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है, उसे कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥

क्रमशस्त्ववधूयैनां तृतीयां वृत्तिमुत्तमाम् ।
संयोगव्रतखिन्नानां वानप्रस्थाश्रमौकसाम् ॥ २ ॥

गृहमेधी मनुष्य इस परम श्रेष्ठ तृतीय कापोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्मिणीके सहित किये जानेवाले व्रतसे खिन्न होकर वानप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें ॥ २ ॥

श्रूयतां पार्थ भद्रं ते सर्वलोकाश्रयात्मनाम् ।
प्रेक्षापूर्वं प्रवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ॥ ३ ॥

हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो। नियमपूर्वक प्रवृत्त, पुण्य देशोंमें निवास करनेवाले, सर्व लोकाश्रय स्वरूप वानप्रस्थ आश्रमवालोंका जो धर्म है उसे कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

व्यास उवाच—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदाश्रयेत् ॥ ४ ॥

व्यासदेव बोले— गृहस्थ पुरुष जिस समय अपने सिरके बाल सफेद दिखायी दें, निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रकी सन्तानको अवलोकन करे, तब वनवासी होवे ॥ ४ ॥

तृतीयमायुषो भागं वानप्रस्थाश्रमे वसेत् ।
तानेवाग्नीन्परिचरेद्यजमानो दिवौकसः ॥ ५ ॥

वह परमायुका तीसरा भाग वानप्रस्थाश्रममें व्यतीत करे; देवताओंकी पूजा करके पूर्वोक्त गृहस्थाश्रमको तीनों अग्नियोंकी परिचर्या करते हुए नियुक्त रहे ॥ ५ ॥

नियतो नियताहारः षष्ठभक्तोऽप्रमादवान् ।
तदग्निहोत्रं ता गावो यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ॥ ६ ॥

सदा नियमोंका पालन करते हुए नियताहारी और अप्रमात्त, शील होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें। गृहस्थाश्रमके समान अग्निहोत्र, गोसेवा यज्ञोंके सब अंगोंका संपादन करना इस वानप्रस्थमें भी आवश्यक है ॥ ६ ॥

अकृष्टं वै व्रीहियवं नीवारं विघसानि च ।
हवींषि संप्रयच्छेत मखेष्वत्रापि पञ्चसु ॥ ७ ॥

बिना जोती हुई भूमिसे पैदा हुआ धान, यव, नीवार और विघससे जीवन निर्वाह करे; इस आश्रममें भी पञ्चमहायज्ञोंमें हवि सम्प्रदान करे ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वानप्रस्थाश्रमेऽप्येताश्चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ।
सद्यःप्रक्षालकाः केचित्केचिन्मासिकसंचयाः ॥ ८ ॥

वानप्रस्थ, आश्रममें भी ये चार प्रकारकी वृत्तियां विहित हुई हैं । इस परमपवित्र आश्रममें अतिथिसत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, दूसरे दिनके लिये कुछ नहीं बचाते; कोई कोई मासिक सञ्चय करते हैं ॥ ८ ॥

वार्षिकं संचयं केचित्केचिद्द्वादशवार्षिकम् ।
कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थसिद्धये ॥ ९ ॥

कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादशवार्षिक अन्न–द्रव्य आदिका सञ्चय कर रखते हैं। इनका यह संग्रह अतिथि सत्कार–पूजा और यज्ञ कर्मके लिये ही होता है ॥ ९ ॥

अभ्रावकाशा वर्षासु हेमन्ते जलसंश्रयाः ।
ग्रीष्मे च पञ्चतपसः शश्वच्च मितभोजनाः ॥ १० ॥

इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट्कालमें अभ्राकाश देशमें निवास करते हैं, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते हैं, ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं ॥ १० ॥

भूमौ विपरिवर्तन्ते तिष्ठेद्वा प्रपदैरपि ।
स्थानासनैर्वर्तयन्ति सवनेष्वभिषिञ्चते ॥ ११ ॥

कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्ध्वपाद होकर निवास करते हैं, कोई पांवके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्वाह करते हैं, अन्य लोग तीनों काल स्नान और संध्या करते हैं ॥ ११ ॥

दन्तोलूखलिनः केचिदश्मकुट्टास्तथापरे ।
शुक्लपक्षे पिबन्त्येके यवागूं क्वथितां सकृत् ॥ १२ ॥

इस आश्रममें कोई कोई दन्तोलूखलिक अर्थात् दांतसे उखलका कार्य निबाहते हैं कच्चे अन्नको खाते हैं; दूसरे लोग अश्मकुट्ट अर्थात् पत्थरके जरिये धान्य आदि शस्योंको भूसीरहित किया करते हैं । कोई कोई शुक्लपक्षमें एकही बार क्वाथयुक्त यवागू पीते हैं ॥ १२ ॥

कृष्णपक्षे पिबन्त्येके भुञ्जते च यथाक्रमम् ।
मूलैरेके फलैरेके पुष्पैरेके दृढव्रताः ॥ १३ ॥

कोई कृष्ण पक्षमें उक्त क्वाथ पान करते हैं अथवा शास्त्रके अनुसार जो कुछ मिल जाय वही खाकर निर्वाह करते हैं; कोई कोई दृढव्रती मनुष्य मूलके जरिये, कोई फलके सहारे और फूलके जरिये जीवन धारण करते हैं ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhu@3 Vidya Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वर्तयन्ति यथान्यायं वैखानसमतं श्रिताः ।
एताश्चान्याश्च विविधा दीक्षास्तेषां मनीषिणाम् ॥ १४ ॥

इस तरह यथान्यायसे वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्वाह किया करते हैं। उन सब मनीषि पुरुषोंके लिये ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरी विविध दीक्षाएं हैं ॥ १४ ॥

चतुर्थश्चौपनिषदो धर्मः साधारणः स्मृतः ।
वानप्रस्थो गृहस्थश्च ततोऽन्यः संप्रवर्तते ॥ १५ ॥

चौथे संन्यास आश्रममें उपनिषद् प्रतिपादित जो धर्म है, वह सभी आश्रमोंके लिये साधारण माना गया है; परंतु वानप्रस्थ और गृहस्थ आश्रमसे भिन्न संन्यास आश्रमका विशेष है ॥१५॥

अस्मिन्नेव युगे तात विप्रैः सर्वार्थदर्शिभिः ।
अगस्त्यः सप्त ऋषयो मधुच्छन्दोऽघमर्षणः ॥ १६ ॥

हे तात ! इस युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंने इस वानप्रस्थ धर्मका पालन किया। अगस्त्य, सप्तऋषि, मधुच्छन्द, अघमर्षण, ॥ १६ ॥

सांकृतिः सुदिवा तण्डिर्यवान्नोऽथ कृतश्रमः ।
अहोवीर्यस्तथा काव्यस्ताण्ड्यो मेधातिथिर्बुधः ॥ १७ ॥

सांकृति, सुदिवा, तण्डि, यवान्न, कृतश्रम; अहोवीर्य, काव्य (शुक्राचार्य) ताण्ड्य, मेधातिथि बुध, ॥ १७ ॥

शालो वाकश्च निर्वाकः शून्यपालः कृतश्रमः ।
एवंधर्मसु विद्वांसस्ततः स्वर्गमुपागमन् ॥ १८ ॥

शालोवाके, निर्वाक, शून्यपाल और कृतश्रम इन सबने इस धर्मका विद्वत्तापूर्ण पालन किया और वे स्वर्गलोकका प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

तात प्रत्यक्षधर्माणस्तथा यायावरा गणाः ।
ऋषीणामुग्रतपसां धर्मनैपुणदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

तात ! जिन्होंने धर्मके फल सत्यसङ्कल्प आदिको प्रत्यक्ष किया है, वे उग्र तपस्या युक्त प्रत्यक्ष-धर्मवाले ऋषिलोग और यायावर समूहोंने इसही वानप्रस्थ धर्मका आचरण किया था ॥१९॥

अवाच्यापरिमेयाश्च ब्राह्मणा वनमाश्रिताः ।
वैखानसा वालखिल्याः सिकताश्च तथापरे ॥ २० ॥

धर्म नैपुण्यदर्शी बहुतेरे महर्षि लोग तथा उनके अतिरिक्त अनेक वनवासी ब्राह्मण, वालखिल्य और सिकत मुनियोंने भी वैखानस—वानप्रस्थ धर्मका पालन करनेवाले हैं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्मभिस्ते निरानन्दा धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ।
गताः प्रत्यक्षधर्माणस्ते सर्वे वनमाश्रिताः ।
अनक्षत्रा अनाधृष्या दृश्यन्ते ज्योतिषां गणाः ॥ २१ ॥

और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि परत्व निबन्धन कर्मके जरिये निरानन्द, धर्ममें रत और जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग तथा प्रत्यक्षधर्मा महर्षि लोग वानप्रस्थको अवलम्बन करके स्वर्गमें गये हैं; नक्षत्र, ग्रह तारोंसे भिन्न जो सब दुर्धर्ष निर्भय ज्योति समूह आकाशमें दीख पडते हैं, वेही पुण्यवान् मनुष्योंके अवलम्ब हैं ॥ २१ ॥

नरया च परिद्यूनो व्याधिना च प्रपीडितः ।
चतुर्थे चायुषः शेषे वानप्रस्थाश्रमं त्यजेत् ।
सद्यस्कारां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थमें रहकर मनुष्य जराके जरिये परिवृत्त और व्याधिसे प्रपीडित होकर अन्तमें परमायुके चौथे भागमें वानप्रस्थाश्रमका परित्याग करे । वह संन्यासका ग्रहण करते समय यज्ञ करके अपना सर्वस्व दक्षिणामें देवे ॥ २२ ॥

आत्मयाजी स्वोऽऽत्मरतिरात्मक्रीडात्मसंश्रयः ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहान् ॥ २३ ॥

वह सदा सम्पादन करने योग्य सर्वस्व दक्षिणासत्र समाप्त करके आत्मयाजी, आत्मरति, आत्मक्रीड और आत्मसंश्रय होकर, सब परिग्रह परित्याग कर आत्मामें तीनों अग्नि आरोपित करे ॥ २३ ॥

सद्यस्कांश्च यजेद्यज्ञानिष्टीश्चैवेह सर्वदा ।
संदैव याजिनां यज्ञादात्मनीज्या निवर्तते ॥ २४ ॥

और सदा सम्पादनीय ब्रह्मज्ञय आदि और दर्श पौर्णमास यज्ञका निर्वाह करनेमें रत रहे; जबतक याज्ञिक कर्ममय यज्ञसे हटकर आत्मयज्ञका अभ्यास पूर्ण न करे, तबतक ऐसा करे॥२४॥

त्रींश्चैवाग्नीन्यजेत्सम्यगात्मन्येवात्ममोक्षणात् ।
प्राणेभ्यो यजुषा पञ्च षट् प्राश्नीयादकुत्सयन् ॥ २५ ॥

जिस समय याज्ञिकोंकी यज्ञप्रवृत्ति निवृत्ति होके आत्मामें याग साधन करनेकी इच्छा होती है, उस समय देहत्याग पर्यन्त शरीरमें तीनों अग्नियोंको आरोपित करनी होगी । हृदय गार्हपत्य अग्नि, मन अन्वाहार्य–पचन अग्नि और मुख आवहनीय अग्नि है यह वैश्वानर विद्या-प्रोक्त प्रकरणके जरिये जानकर देहमें उक्त तीनों अग्निका याग करना होगा । आत्मयागी मनीषि भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रोंको उच्चारण करके पहले पञ्च प्राणोंको पांच ग्रास वा छः ग्रास अन्न प्रदान करे ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

केशलोमनखान्वाप्य वानप्रस्थो मुनिस्ततः ।
आश्रमादाश्रमं सद्यः पूतो गच्छति कर्मभिः ॥ २६ ॥

अनन्तर वानप्रस्थ मुनि केश, लोम और नखोंसे परित्यक्त और कर्मनिर्वाहसे पवित्र होकर उस वानप्रस्थ आश्रमसे पवित्र चौथे संन्यास आश्रममें प्रवेश करे ॥ २६ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्त्वा प्रव्रजेद्द्विजः ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ २७ ॥

जो ब्राह्मण सब भूतोंको अभयदान करके संन्यास–धर्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें ज्योतिर्मय लोकोंको प्राप्त करके अनन्त सुख भोग – मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥ २७ ॥

सुशीलवृत्तो व्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र च कर्तुमीहते ।
अरोषमोहो गतसंधिविग्रहो भवेदुदासीनवदात्मवित्तरः ॥ २८ ॥

सुशील, सद्वृत्तिवाला, पापरहित आत्मवित् पुरुष ऐहिक और पारलौकिक किसी कर्मके करनेकी अभिलाषा नहीं करता; वह क्रोध, मोहहीन और सन्धिविग्रहसे रहित होकर उदासीनकी भांति निवास करता है ॥ २८ ॥

यमेषु चैवात्मगतेषु न व्यथेत्स्वशास्त्रसूत्राहुतिमन्त्रविक्रमः ।
भवेद्यथेष्टा गतिरात्मयाजिनो न संशयो धर्मपरे जितेन्द्रिये ॥ २९ ॥

जो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–ये पांच यम और शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वरप्रणिधानाख्य नियमोंका पालन करनेमें कष्ट नहीं अनुभव करता, स्वशाखीय सूत्र और आहुतिमन्त्रोंके अनुसार अग्निमें सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये तैय्यार रहता है, उस आत्मवित् पुरुषको यथेष्ट गति अर्थात् सद्योमुक्ति वा क्रममुक्ति इच्छानुसार प्राप्त होती है; धर्मपरायण जितेन्द्रिय आत्मयाजी मनुष्यके मुक्तिके विषयमें कोई संशय नहीं रहता ॥ २९ ॥

ततः परं श्रेष्ठमतीव सद्गुणैरधिष्ठितं त्रीनधिवृत्तमुत्तमम् ।
चतुर्थमुक्तं परमाश्रमं शृणु प्रकीर्त्यमानं परमं परायणम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥ ८४०० ॥

वानप्रस्थ आश्रमके अनन्तर श्रेष्ठ गुणोंके जरिये ब्रह्मचर्य आदि तीनों आश्रमोंसे समधिक रूपसे विख्यात धर्मयुक्त चौथे आश्रमका विषय कहता हूं, सुनो ॥ ३० ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३६ ॥ ८४०० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २३७ :

शुक उवाच—

वर्तमानस्तथैवात्र वानप्रस्थाश्रमे यथा ।
योक्तव्योऽऽत्मा यथा शक्त्या परं वै काङ्क्षता पदम् ॥ १ ॥

शुकदेव बोले— वानप्रस्थाश्रममें यथायोग्य रीतिसे शास्त्रोक्त नियमोंका पालन करनेवाला पुरुष, परम वेद्यवस्तु ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करनेसे किस प्रकार यथाशक्तिके सहित आत्मयोगका अभ्यास करे ? ॥ १ ॥

व्यास उवाच—

प्राप्य संस्कारमेताभ्यामाश्रमाभ्यां ततः परम् ।
यत्कार्यं परमार्थार्थं तदिहैकमनाः शृणु ॥ २ ॥

व्यासदेव बोले— ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य आश्रमके धर्मोंके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेके अनन्तर परमार्थ विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ २ ॥

कषायं पाचयित्वा तु श्रेणिस्थानेषु च त्रिषु ।
प्रव्रजेच्च परं स्थानं परिव्रज्यामनुत्तमाम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ, इन तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषोंको नष्ट करके सबसे उत्तम संन्यास धर्मरूपी परमपदमें प्रवज्या करे; ॥ ३ ॥

तद्भवानेवमभ्यस्य वर्ततां श्रूयतां तथा ।
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥ ४ ॥

इसलिये तुम इसे सुनो और इस ही प्रकार योगानुष्ठान करो । संन्यासी पुरुष सिद्धि प्राप्त करनेके लिये सहायरहित होकर अकेलाही धर्माचरण करे ॥ ४ ॥

एकश्चरति यः पश्यन्न जहाति न हीयते ।
अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ ५ ॥

जो आत्मदर्शी मनुष्य अकेलाही धर्माचरण करता है, वह सर्वव्यापित्व निबन्धनसे किसी पदार्थको परित्याग नहीं करता और मोक्षसुखसे परित्यक्त नहीं होता । वह निरग्नि और निराश्रय होकर अन्नके निमित्त गांवमें जाता है ॥ ५ ॥

अश्वस्तनविधानः स्यान्मुनिर्भावसमन्वितः ।
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्ननिषेविता ॥ ६ ॥

चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करनेवाला पुरुष अ-श्वस्तनविधाता होवे, अर्थात् दूसरे दिनके लिये अन्न सञ्चय न करे; लघुभोजी और नियताहारी होकर दिनमें एक बार अन्न भोजन करे ॥ ६ ॥

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ।
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षुलक्षणम् ॥ ७ ॥

भिक्षापात्र तथा कमण्डलु और कषाय वस्त्र धारण, वृक्षमूलका आश्रय, असहायता और सब भूतोंके विषयमें उपेक्षा अर्थात् प्रीति-द्वेषहीनता— ये सब संन्यासीके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्मिन्वाचः प्रविशन्ति कूपे प्राप्ताः शिला इव ।
न वक्तारं पुनर्यान्ति स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ ८ ॥

कूएंमें जिस प्रकार शिला-पत्थर वास करते हैं, वैसे ही दूसरोंके निन्दात्मक वचन जिसमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, अर्थात् जो दूसरेके जरिये आक्रुश्यमान होके भी क्रोध नहीं करता और जो वक्ताके निकट फिर गमन करनेमें विरत रहता है, वही संन्यास आश्रममें वास करनेमें समर्थ होता है ॥ ८ ॥

नैव पश्येन्न शृणुयादवाच्यं जातु कस्यचित् ।
ब्राह्मणानां विशेषेण नैव ब्रूयात्कथंचन ॥ ९ ॥

चौथे आश्रमी भिक्षु बाह्यवस्तुओंकी ओर न देखे; कभी किसीकी निन्दा, विशेष करके ब्राह्मणकी निन्दा सुननी वा किसी भांतिसे कहनी योग्य नहीं है ॥ ९ ॥

यद्ब्राह्मणस्य कुशलं तदेव सततं वदेत् ।
तूष्णीमासीत निन्दायां कुर्वन्भेषजमात्मनः ॥ १० ॥

जिससे ब्राह्मणोंका कुशल हो, सदा वैसा ही वचन कहे; आत्मनिन्दाके समय चुप रहे; और मौनावलम्बन ही भवरोगसे छूटनेकी दवा समझकर उसका अवलम्ब करे ॥ १० ॥

येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा ।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ११ ॥

जो सदा अपने सर्व व्यापी स्वरूपसे अकेलेही सम्पूर्ण आकाशमें परिपूर्ण सा होता है और जो असंग होनेके कारण लोगोंसे पूरित स्थानको सूना समझता है, देवता लोग उसे ही ब्रह्मिष्ठ-ब्राह्मण समझते हैं ॥ ११ ॥

येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः ।
यत्रक्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ १२ ॥

जो जिस किसी भी वस्तुसे अपने शरीरको आच्छादित करता है, किसी भी अन्नसे भूख मिटाता है, और किसी भी स्थानमें शयन करता है, उसे ही देवता ब्रह्मज्ञानी समझते हैं ॥ १२ ॥

अहेरिव गणाद्भीतः सौहित्यान्नरकादिव ।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ १३ ॥

जो सांपसे डरनेकी भांति लोगोंसे भयभीत होता है, नरक भयके समान मिष्टान्नजनित तृप्तिसे विरत रहता है और मृतक शरीरके समान स्त्रियोंसे भय करता है, उसे देवता ब्रह्मिष्ठ समझते हैं ॥ १३ ॥

न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः ।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ १४ ॥

जो सम्मानित होनेसे हर्षित नहीं होता, असम्मानित होनेसे क्रोध नहीं करता और जो सब प्राणियोंको अभय दान करता है, देवता लोग उसे ही ब्रह्मिष्ठ जानते हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ॥ १५ ॥

संन्यासी मरनेका अभिनन्दन न करे और जीवनका भी अभिनन्दन करना उसे योग्य नहीं है; जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही वह कालके समयकी प्रतीक्षा करे ॥ १५ ॥

अनभ्याहतचित्तः स्यादनभ्याहतवाक्कथा ।
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयम् ॥ १६ ॥

सन्यासी मन और वचनको और राग-द्वेष, निन्दा आदि दोषोंसे रहित करके स्वयं सब पापोंसे मुक्त हो जाय; उस निरमित्र मनुष्यको भयका कौनसा विषय हो सकता है ? ॥ १६ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं यतः ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ १७ ॥

सब प्राणियोंसे जो अभय हुआ है और जिससे सब भूतोंको भय नहीं होता, उस देहसे छूटे हुए पुरुषको किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं हो सकती ॥ १७ ॥

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥ १८ ॥

जैसे हाथीके पद प्रक्षेपके बीच पैरोंद्वारा चलनेवाले मनुष्य और पशु आदियोंके पांवके चिन्ह लुप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपिधीयते ।
अमृतः स नित्यं वसति योऽहिंसां प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

इस ही प्रकार अहिंसामें सब धर्म और अर्थ अन्तर्भूत हुआ करते हैं; जो किसीकी हिंसा नहीं करता वह सदा अमृत उपभोग किया करता है ॥ १९ ॥

अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान्नियतेन्द्रियः ।
शरण्यः सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ २० ॥

जो अहिंसक, समदर्शी, सत्य बोलनेवाला, धृतिमान्, संयतेन्द्रिय और सब भूतोंका शरण्य है, वह अत्यन्त उत्तम गति पाता है ॥ २० ॥

एवं प्रज्ञानतृप्तस्य निर्भयस्य मनीषिणः ।
न मृत्युरतिगो भावः स मृत्युमधिगच्छति ॥ २१ ॥

अवश्यम्भावी मृत्यु इसही प्रकार आत्मानुभव स्वरूप प्रज्ञानसे तृप्त, निर्भय, आशारहित मनीषी पुरुषको अतिक्रम नहीं कर सकती, बल्कि वही मृत्युको अतिक्रम किया करता है ॥२१॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विमुक्तं सर्वसङ्गेभ्यो मुनिमाकाशवत्स्थितम् ।
अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २२ ॥

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें "मैं" इस अभिमान स्वरूप सर्वसङ्गसे जो मुक्त हुआ है, निर्विषयत्व निबन्धनसे आकाशकी भांति गौन भावसे जो निवास किया करता है, और जो किसीभी वस्तुको अपनी नहीं मानता, एकाकी विचरता और शान्तभावसे स्थिति करता है, देवता लोग उसे ब्रह्मवेत्ता समझते हैं ॥ २२ ॥

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मोऽप्यर्थमेव च ।
अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २३ ॥

जिसका जीवन केवल धर्मके निमित्त है, धर्माचरण भक्त जनोंकी शिक्षाके लिये है, समाधि और व्युत्थान सब लोगोंके शिक्षाके निमित्त है, जिसके दिन और रात धर्मपालनमें ही होते हैं, देवता लोग उसे ब्रह्मिष्ठ समझते हैं ॥ २३ ॥

निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २४ ॥

जिसे न आशा है, न आरम्भ है; जो नमस्कार वा स्तुतिसे दूर रहता है और जो सब कर्म-वासनाओंसे मुक्त हुआ है, देवता लोग उसे ब्रह्मज्ञानी समझते हैं ॥ २४ ॥

सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते सर्वाणि दुःखस्य भृशं त्रसन्ति ।
तेषां भयोत्पादनजातखेदः कुर्यान्न कर्माणि हि श्रद्दधानः ॥ २५ ॥

प्राणिमात्रही सुखमें रत हुआ करते हैं, और सबही दुःखसे अत्यन्तही डरते हैं; इसलिये जो प्राणियोंपर भय आता देखकर खिन्न होता है, वह श्रद्धावान् मनुष्य भयदायक कर्म करनेमें यत्नवान् न होवे; क्योंकि कर्ममात्र ही हिंसायुक्त है, इससे उन्हें साधुको त्याग करना योग्य है ॥ २५ ॥

दानं हि भूताभयदक्षिणायाः सर्वाणि दानान्यधितिष्ठतीह ।
तीक्ष्णां तनुं यः प्रथमं जहाति सोऽनन्तमाप्नोत्यभयं प्रजाभ्यः ॥ २६ ॥

सब जीवोंमें अभयदान ही सब दानोंसे उत्तम है, यह दान सब प्रकारके दानोंसे समधिक भावसे वर्त्तमान रहता है; जो पहलेसेही हिंसाका परित्याग करता है, वह प्रजासमूहसे अभय प्राप्ति स्वरूप अनन्त सुखयुक्त मोक्षपद लाभ किया करता है ॥ २६ ॥

उत्तान आस्येन हविर्जुहोति लोकस्य नाभिर्जगतः प्रतिष्ठा ।
तस्याङ्गमङ्गानि कृताकृतं च वैश्वानरः सर्वमेव प्रपेदे ॥ २७ ॥

जो आत्मयाजी, योगी, वानप्रस्थकी भांति उत्तान मुखसे "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि अनेक मन्त्रोंके जरिये पंच आहुति नहीं देता, वरन प्राणादि पञ्चक और इन्द्रिय वा मनको आत्मामें लीन किया करता है, वह चराचर जीवोंके नाभिस्वरूप और त्रैलोक्यात्मा वैश्वानरके आस्पद होता है, उसके मस्तक आदि सब अङ्ग वैश्वानरके अवयव होते, उसके कृत अकृत सब कर्म वैश्वानरके कार्यरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं; उस वैश्वानरने इस सब जगत्को व्याप्त किया है ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रादेशमात्रे हृदि निश्रितं यत्तस्मिन्प्राणानात्मयाजी जुहोति ।
तस्याग्निहोत्रं हुतमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ॥ २८ ॥

नाभिसे हृदय पर्यन्त प्रादेश-परिमित स्थानमें जो प्रकट होता है, आत्मयाजी योगी उस चिन्मात्र पुरुषमें प्राण उपलक्षित निखिल प्रपञ्चको लीन करता है; वह सर्वात्मा होनेसे उसके द्वारा देवताओं सहित सब लोकोंमें ही उसका आत्मसंस्थ अग्निहोत्र सम्पन्न होता है ॥ २८ ॥

दैवं त्रिधातुं त्रिवृतं सुपर्णं ये विद्युरग्र्यं परमार्थतां च ।
ते सर्वलोकेषु महीयमाना देवाः समर्थाः सुकृतं व्रजन्ति ॥ २९ ॥

जो लोग द्योतमान, सूक्ष्म तेजमय सूत्रात्माको जानते हैं, और तीनों गुणोंसे परिपूरित माया उपाधिक ईश्वरको तथा सूक्ष्म प्रत्यय स्वरूप उपाधिरहित आत्माको जान सकते हैं, वे सब लोकोंमें पूजित होते हैं, और मनुष्य तथा देवता लोग उनके सुकृतकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ २९ ॥

वेदांश्च वेद्यं तु विधिं च कृत्स्नमथो निरुक्तं परमार्थतां च ।
सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्मै स्म देवाः स्पृहयन्ति नित्यम् ॥ ३० ॥

निखिल वेद, वियदादि जानने योग्य वस्तुएं, कर्मकाण्डकी सब विधि, शब्दैकगम्य परलोक आदि निरुक्त और आत्माकी सत्यस्वभावतारूपी परमार्थता, ये सब शरीरात्मा प्रत्येय स्वरूपसे वर्त्तमान हैं। इसे जो जानता है, उस सर्वेश्वरकी सदा सेवा करनेके लिये देवता लोग भी अभिलाष किया करते हैं ॥ ३० ॥

भूमावसक्तं दिवि चाप्रमेयं हिरण्मयं योऽण्डजमण्डमध्ये ।
पतत्रिणं पक्षिणमन्तरिक्षे यो वेद भोग्यात्मनि दीप्तरश्मिः ॥ ३१ ॥

जो भूमण्डलमें असक्त रूपसे वर्त्तमान है, प्रत्यगात्मता निबन्धनसे द्युलोकमें भी जो अप्रमेय होकर विद्यमान है, जो ब्रह्माण्डके बीच प्रकट हो रहा है, जो किरणकी भांति प्रकाशमान नेत्र, कान आदिके जरिये प्रकाशित होकर जीव भावको प्राप्त हुआ है, जो अनेक पक्षि स्थानीय देवता रूपसे संयुक्त होरहा है, उस आसक्तिरहित चिन्मय आत्माको भोग्य शरीर और हृदयाकाश पुण्डरीकके बीच जो स्थित जानता है, देवता लोग भी उसकी सदा सेवा करनेके निमित्त अभिलाष किया करते हैं ॥ ३१ ॥

आवर्तमानमजरं विवर्तनं षण्णेमिकं द्वादशारं सुपर्व ।
यस्येदमास्ये परियाति विश्वं तत्कालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥ ३२ ॥

जो कालचक्र सदा परिवर्त्तनशील होके भी प्राणियोंकी आयु अजरभावसे व्यतीत कर रहा है, छहों ऋतु जिसकी नाभि और बारहों महीने जिसके अरस्वरूप हैं, दर्शसंक्रमण आदि जिसमें सुन्दर पर्वस्वरूप हुए हैं, यह दृश्यमान जगत् जिसके मुखमें लीन होरहा है, वही कालचक्र जिसकी बुद्धिमें वर्त्तमान है, देवता उसकी सेवा करनेके लिये सदा इच्छा किया करते हैं ॥३२॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यः संप्रसादं जगतः शरीरं सर्वान्स लोकानधिगच्छतीह ।
तस्मिन्हुतं तर्पयतीह देवांस्ते वै तृप्तास्तर्पयन्त्यास्यमस्य ॥ ३३ ॥

जो पूरी रीतिसे मनकी प्रसन्नताके आधार होनेसे जगत्के शरीरस्वरूप और स्थूल सूक्ष्म सब लोकोंमें ही सर्व कारण रूपसे स्थित होरहा है, वही परमात्मा सम्प्रदायाभिन्न स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरमें स्थित देवताओं और प्राण आदिकी तृप्तिसाधन करता है; प्राण आदि तृप्त होकर उसके मुखको ज्ञानसे तृप्त किया करते हैं ॥ ३३ ॥

तेजोमयो नित्यतनुः पुराणो लोकाननन्तानभयानुपैति ।
भूतानि यस्मान्न त्रसन्ते कदाचित्स भूतेभ्यो न त्रसते कदाचित् ॥ ३४ ॥

उस तेजमय नित्य स्वरूप पुराण पुरुषका जो आसरा करता है, वह अनन्त अभय लोकको प्राप्त करता है। जिससे सब प्राणी कभी भय नहीं करते, उसे सब प्राणियोंसे कभी भय नहीं होता है ॥ ३४ ॥

अगर्हणीयो न च गर्हतेऽन्यान्स वै विप्रः परमात्मानमीक्षेत् ।
विनीतमोहो व्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र च योऽर्थमृच्छति ॥ ३५ ॥

इस संसारमें अनिन्दित होकर जो दूसरेकी निन्दा नहीं करता, वही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है; अन्तमें जिसके मोह और पाप नष्ट होगये हैं, वह इस लोक और परलोकके भोगोंमें आसक्त नहीं होता ॥ ३५ ॥

अरोषमोहः समलोष्टकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसंधिविग्रहः ।
अपेतनिन्दास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥ ८४३६ ॥

जिसे न क्रोध है, न मोह है और सुवर्ण तथा लोष्टमें समज्ञान हुआ है, जो कोषरहित और सन्धि विग्रहसे हीन हुआ है, जिसने निन्दा, स्तुति परित्याग की है, जिसे प्रिय वा अप्रिय कुछ भी नहीं है, वह चौथे आश्रमी भिक्षुक उदासीनकी भांति सर्वत्र विचरता रहता है ॥३६॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३७ ॥ ८४३६ ॥

: २३८ :

व्यास उवाच—

प्रकृतेस्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञस्तैः परिश्रितः ।
ते चैनं न प्रजानन्ति स तु जानाति तानपि ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— देह, इन्द्रिय और मन आदिके बीच जो प्रकृतिके विकार हैं, उनपर क्षेत्रज्ञ स्थिति होरहा है अर्थात् अधिष्ठातृत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व भावको प्राप्त हुआ है; परन्तु नेत्र आदि इन्द्रिय जडत्व निबन्धनसे क्षेत्रज्ञ—आत्माको प्रकाशित नहीं कर सकतीं; क्षेत्रज्ञ—आत्मा चेतन है, इसहीसे उक्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैश्चैष कुरुते कार्यं मनःषष्ठैरिहेन्द्रियैः ।
सुदान्तैरिव संयन्ता दृढैः परमवाजिभिः ॥ २ ॥

जैसे सारथी दृढ, बलवान्, अत्यन्त दान्त उत्तम घोडोंके जरिये जाने योग्य स्थानमें गमन करता है, वैसे ही आत्मा वशमें किये हुए मनके सहित पांचों इन्द्रियोंके जरिये सब कार्य सिद्ध करता है ॥ २ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ ३ ॥

इन्द्रियोंसे रूप आदि उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे आत्मा महान् है, अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थ उत्कृष्ट है ॥ ३ ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम् ।
अमृतान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ४ ॥

महत्तत्त्वसे उपादान अव्यक्त नामक कारण श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे अमृत स्वरूप चिदात्मा परम श्रेष्ठ है; उस परमात्मासे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; वह उत्कर्षकी सीमा और परम गति है ॥४॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥

इस ही प्रकार आत्मा सब भूतोंके बीच कंचुकाक्रान्तकी भांति गूढ भावसे स्थिति करनेपर भी इन्द्रियोंके द्वारा प्रकाशित नहीं होता। तत्त्वदर्शी योगी लोग केवल सूक्ष्म श्रेष्ठ बुद्धिके सहारे उसका दर्शन किया करते हैं ॥ ५ ॥

अन्तरात्मनि संलीय मनःषष्ठानि मेधया ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च बहु चिन्त्यमचिन्तयन् ॥ ६ ॥

वह योगी धारणायुक्त बुद्धिके जरिये मनके सहित इन्द्रियों और इन्द्रियोंके गूढ विषयोंको अन्तरात्मामें पूर्ण रीतिसे लय करके नाना प्रकारके चिन्तनीय विषयका चिन्तन न करता हुआ ॥ ६ ॥

ध्यानोपरमणं कृत्वा विद्यासंपादितं मनः ।
अनीश्वरः प्रशान्तात्मा ततोऽर्छत्यमृतं पदम् ॥ ७ ॥

ध्येय, ध्यान और ध्यातृरूप इन तीनोंको ही विचारता है। "मैं ब्रह्म हूं" इस वचनके निमित्त बुद्धिवृत्तिरूपी विद्याके जरिये संस्कारयुक्त मनको ध्यानके सहारे स्थित करके ईशभाव प्रविलापनके अनन्तर प्रशान्त चित्तवाला योगी अमृतमय कैवल्य पद पाता है ॥ ७॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृतिः ।
आत्मनः संप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥ ८ ॥

और इन्द्रियोंने जिसके चित्तको हरण किया है, जिसकी स्मरणशक्ति विचलित हुई है, वैसा मनुष्य काम आदिको आत्मसमर्पण करके मृत्युके मुखमें पतित हुआ करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

हित्वा तु सर्वसंकल्पान्सत्त्वे चित्तं निवेशयेत् ।
सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालंजरो भवेत् ॥ ९ ॥

इसलिये सब प्रकारके सङ्कल्पोंको नष्ट करके सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्तको लीन करे; सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त निवेश करके शेषमें क्षण मुहूर्त्तादि कालका नाश करे; क्योंकि आत्मवित् पुरुषही कालका विनाश साधन किया करता है ॥ ९ ॥

चित्तप्रसादेन यतिर्जहाति हि शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते ॥ १० ॥

जो पुरुष इस लोकमें चितप्रसादके जरिये शुभाशुभ परित्याग करता है, वह प्रसन्नचित्त यति आत्मनिष्ठ होकर अत्यन्त ही सुखका सम्भोग किया करता है ॥ १० ॥

लक्षणं तु प्रसादस्य यथा तृप्तः सुखं स्वपेत् ।
निवाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥ ११ ॥

मनुष्य सुषुप्तिकालकी सुखकी निद्राका जैसे अनुभव करता है अथवा वायुरहित स्थलमें दीप्यमान निष्कम्प प्रदीपकी भांति मन कभी चञ्चल हो, यही उसके परम शुद्धिका—प्रसादका लक्षण है ॥ ११ ॥

एवं पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना ।
सत्त्वाहारविशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १२ ॥

इस ही प्रकार जो लघुभोजी शुद्ध चित्तवाला योगी रातके पूर्व और अपर कालमें परमात्मामें जीवात्माका योग करता है, वही अपने अन्तःकरणमें परमात्माको अवलोकन करता है ॥१२॥

रहस्यं सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम् ।
आत्मप्रत्ययिकं शास्त्रमिदं पुत्रानुशासनम् ॥ १३ ॥

हे पुत्र ! यह आत्मप्रत्यय सिद्ध अनुशासन शास्त्र— परमात्माका ज्ञान करानेवाला है और सब वेदोंका रहस्य है; यह केवल अनुमानसे या आगममात्रसे मालूम नही हो सकता; अनुभवसे ही समझा जाता है ॥१३॥

धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु ।
दशोदसृक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ॥ १४ ॥

यह सब धर्मों और सत्याख्यानका सारभाग रूप धन है; ऋग्वेदके दस हजार मन्त्रोंको मथके यह अमृत मय सार उद्धृत हुआ है ॥ १४ ॥

नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च ।
तथैव विदुषां ज्ञानं पुत्रहेतोः समुद्धृतम् ।
स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् ॥ १५ ॥

दहीसे नवनीत—घृत और काठसे अग्नि प्रकट होनेकी भांति पुत्रके निमित्त ज्ञानियोंको ज्ञान स्वरूप यह मोक्ष शास्त्र समुद्धृत हुआ है । हे पुत्र ! इस शास्त्रका व्रतधारी स्नातक ब्राह्मणोंके निकट ही तुम उपदेश करना ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्तायातपस्विने ।
नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च ॥ १६ ॥

अप्रशान्त, अदान्त और जो पुरुष तपस्वी नहीं है, उसके समीप इसे कहना योग्य नहीं है। तथा जो वेदका विद्वान् नहीं है, अनुगत भक्त नहीं है उसे भी ॥ १६ ॥

नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ।
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च ॥ १७ ॥

तथा असूयक, असरल, अनिर्दिष्टकारी, चुगुल, अपनी बडाई करनेवाला और जो पुरुष तर्कशास्त्रके जरिये जला हुआ है, उसके समीप भी इसका उपदेश करना योग्य नहीं है ॥१७॥

श्लाघते श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ।
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च ।
रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कथंचन ॥ १८ ॥

तत्त्वज्ञानकी इच्छा करनेवाला, स्पृहणीय गुणोंसे युक्त प्रशान्त, तपस्वी, प्रियपुत्र और अनुगत शिष्यसे यह रहस्य धर्म अवश्य कहना चाहिये; दूसरे लोगोंके निकट किसी प्रकारसे कहना उचित नहीं है ॥ १८ ॥

यद्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नरः ।
इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥ १९ ॥

कोई मनुष्य यदि रत्नपूरित पृथ्वीमण्डल दान करने लगे तो भी तत्वविद् पुरुष उससे भी इस धर्मको श्रेष्ठ जाने ॥ १९ ॥

अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम् ।
यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥ ८४५६ ॥

इससे भी गुप्त जो अतिमानुष अध्यात्म विषय है, महर्षियोंने जिसका दर्शन किया है, वेदान्तके बीच जो वर्णित हुआ करता है, और तुम मुझसे जिसका विषय पूछते हो, मैं उसे तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३८ ॥ ८४५६ ॥

॥ २३९ ॥

शुक उवाच—

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व मे ।
यदध्यात्मं यथा चेदं भगवन्नृषिसत्तम ॥ १ ॥

शुकदेव बोले— हे भगवन् ! फिर अध्यात्म विषय विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन करिये। हे ऋषिसत्तम ! अध्यात्म विषय किसे कहते हैं, और वह कैसा है ? ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

व्यास उवाच—

अध्यात्मं यदिदं तात पुरुषस्येह विद्यते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तस्य व्याख्यामिमां शृणु ॥ २ ॥

व्यासदेव बोले— तात ! पुरुषके सम्बन्धमें यह अध्यात्म विषय जो पठित होता है, उसे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम उसकी इस व्याख्याको सुनो ॥ २ ॥

भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च ।
महाभूतानि भूतानां सागरस्योर्मयो यथा ॥ ३ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश,— ये पञ्चमहाभूत समुद्रकी तरङ्गमालाकी भांति जरायुज आदि जीवोंके बीच प्रति जीवोंमें पृथक् पृथक् कल्पित हुए हैं ॥ ३ ॥

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः ।
तद्वन्महान्ति भूतानि यवीयःसु विकुर्वते ॥ ४ ॥

जैसे कछुआ निज अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, वैसे ही ये सब महाभूत क्षुद्र शरीराकारसे युक्त महाभूतोंमें स्थित रहके सृष्टि और प्रलय आदि विकारोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये शरीरके बीच ही सपनेकी तरह ब्रह्माण्डका उदय और प्रलय होता है ॥४॥

इति तन्मयमेवेदं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ।
सर्गे च प्रलये चैव तस्मान्निर्दिश्यते तथा ॥ ५ ॥

इस प्रकार यह स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् पञ्चभूतमय है और अल्पभूतमय उन शरीरान्तर महाभूतोंमें सृष्टि और प्रलय निर्दिष्ट हुआ करती है ॥ ५ ॥

महाभूतानि पञ्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ।
अकरोत्तात वैषम्यं यस्मिन्यदनुपश्यति ॥ ६ ॥

देवता, मनुष्य, तिर्यग् आदि सब प्राणियोंमें ही पञ्चमहाभूत वर्त्तमान हैं, तौ भी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति सृष्टि कालमें जिन कर्मोंके लिये जिसे उत्पन्न करते हैं, उनमें पञ्च-भूतोंका वैषम्यविधान किया करते हैं ॥ ६ ॥

शुक उवाच—

अकरोद्यच्छरीरेषु कथं तदुपलक्षयेत् ।
इन्द्रियाणि गुणाः केचित्कथं तानुपलक्षयेत् ॥ ७ ॥

शुकदेव बोले— विधाताने शरीरके अवयव, बुद्धि और इन्द्रिय आदिमें जो पञ्चभूतोंकी विषमता की है, वह किस प्रकार जानी जाती है ? इन्द्रिय वा शब्दादि गुणही कितने प्रकारके हैं, और वे किस प्रकार जाने जाते हैं ? ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

व्यास उवाच—

एतत्ते वर्तयिष्यामि यथावदिह दर्शनम् ।
शृणु तत्त्वमिहैकाग्रो यथातत्त्वं यथा च तत् ॥ ८ ॥

व्यासदेव बोले—हे पुत्र ! तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, उसे विस्तारके सहित यथावत् वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयका यथार्थ तत्त्व सुनो ॥ ८ ॥

शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशसंभवम् ।
प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रयः ॥ ९ ॥

शब्द, श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सब छिद्र —ये तीनों आकाशसे उत्पन्न हुए हैं; प्राण, चेष्टा और स्पर्शेन्द्रिय —ये तीनों वायुके गुण—विकार हैं ॥ ९ ॥

रूपं चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते ।
रसोऽथ रसनं स्नेहो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसाम् ॥ १० ॥

रूप, नेत्र और विपाक अर्थात् जठराग्नि रूपसे ज्योति त्रिविध भावसे विहित है; रस, रसकी इन्द्रियां और स्नेह, ये तीनों जलके गुण हैं ॥ १० ॥

घ्रेयं घ्राणं शरीरं च भूमेरेते गुणास्त्रयः ।
एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यातः पाञ्चभौतिकः ॥ ११ ॥

गन्ध, घ्राणेन्द्रिय—नासिका और शरीरके कठोर अंश— ये तीन भूमिके विकार हैं; ये सब इन सब इन्द्रियोंसे पञ्चभौतिक शरीर व्याख्यात हुआ है ॥ ११ ॥

वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्य ज्योतिषो रूपमुच्यते ।
आकाशप्रभवः शब्दो गन्धो भूमिगुणः स्मृतः ॥ १२ ॥

वायुका गुण स्पर्श, जलका गुण रस, अग्निका गुण रूप, आकाशका गुण शब्द और पृथ्वीका गुण गन्ध है; छूना, चखना, देखना, सुनना और सूंघना, इन्द्रियोंके जरिये मालूम हुआ करते हैं ॥ १२ ॥

मनो बुद्धिश्च भावश्च त्रय एतेऽऽत्मयोनिजाः ।
न गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्यः परमा मताः ॥ १३ ॥

सङ्कल्प—विकल्पात्मक मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, पूर्ववासना स्वभाव—ये तीनों स्वयोनिज हैं, अर्थात् आत्मयोनि भूतोंसे ये सब उत्पन्न हुए हैं; परन्तु सत्त्वादि गुणोंसे कार्य स्वरूप होके उन सत्त्वादि गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १३ ॥

इन्द्रियाणि नरे पञ्च षष्ठं तु मन उच्यते ।
सप्तमीं बुद्धिमेवाहुः क्षेत्रज्ञं पुनरष्टमम् ॥ १४ ॥

मनुष्यके शरीरमें पञ्चेन्द्रिय हैं; मन उनके बीच छठवां तत्त्व कहा जाता है; बुद्धिको सातवां तत्त्व कहते हैं, क्षेत्रज्ञ अष्टम रूपसे माना गया है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ १५ ॥

नेत्र आलोचना—देखनेका काम करता है; मन संशय करता है, बुद्धि निश्चय किया करती है; क्षेत्रज्ञ साक्षी स्वरूप कहा जाता है ॥ १५ ॥

रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तद्गुणेषुपलक्षयेत् ॥ १६ ॥

रज, तम और सत्त्वगुण, ये स्वयोनिज—कारणभूत मूल प्रकृतिसे प्रकट—होकर देवता, मनुष्य सब भूतोंमें समान रूपसे निवास करते हैं; कार्यसे इन सब गुणोंको जानना उचित है ॥ १६ ॥

यथा कूर्म इहाङ्गानि प्रसार्य विनियच्छति ।
एवमेवेन्द्रियग्रामं बुद्धिः सृष्ट्वा नियच्छति ॥ १७ ॥

जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको पसारके फिर नियमित करता है, वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर फैला करके उन्हें नियमित कर रखती है ॥ १७ ॥

यदूर्ध्वं पादतलयोरवाङ्मूर्ध्नश्च पश्यति ।
एतस्मिन्नेव कृत्स्ने वै वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥ १८ ॥

पांवके ऊपर और सिरके नीचे इन सारी शरीरके बीच जो कुछ करणीय देखा जाता है, उन सबमें ही उत्तम बुद्धि वर्त्तमान है, अर्थात् देहमें "मैं" इस अनुभवका विषय बुद्धि स्वरूप है ॥ १८ ॥

गुणान्नेनीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मनःषष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्यभावे कुतो गुणाः ॥ १९ ॥

बुद्धि शब्दादि गुणोंको प्रेरणा करती है, अर्थात् शब्दादि स्वरूपताको प्राप्त होते हैं। बुद्धि ही मनके सहित इन्द्रियोंको प्रेरणा किया करती है, बुद्धि न रहनेपर विषय और इन्द्रियां प्रथित नहीं होती, शब्द आदि विषयोंका अनुभव कैसे होगा ? ॥ १९ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव संशुद्धं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ २० ॥

उसमेंसे आत्मामें जो कुछ प्रीतिसंयुक्त मालूम होता है और जो प्रशान्तकी भांति पूरी रीतिसे शुद्ध है, उसे सत्त्वगुण समझे ॥ २० ॥

यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
रजः प्रवर्तकं तत्स्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २१ ॥

शरीर अथवा मनको जो भाव सन्तापयुक्त करता है, तब वहां देहधारिको दुःखी करनेवाला रजोगुण उत्पन्न हुआ है, यह समझे ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्तु संमोहसंयुक्तमव्यक्तविषयं भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधार्यताम् ॥ २२ ॥

और जो संपूर्ण संमोहसे संयुक्त है, तथा जिसका विषय अव्यक्त तर्कसे अगोचर वा अविज्ञेय है उसे तमोगुण कहके निश्चय करो ॥ २२ ॥

प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः साम्यं स्वस्थात्मचित्तता ।
अकस्माद्यदि वा कस्माद्वर्तते सात्त्विको गुणः ॥ २३ ॥

किसी कारण वा अकारणसे ही प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, समता, स्वस्थदेहता और स्वस्थचित्तता विकसित हो, तो समझे कि उसमेंही सत्त्वगुण वर्त्तमान है ॥ २३ ॥

अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथाक्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि वर्तन्ते हेत्वहेतुतः ॥ २४ ॥

अभिमान, असत्य भाषण, लोभ, मोह और असहनशीलता यदि कारण वा अकारणसे ये दोष उत्पन्न हो, तो उसे ही रजोगुणका लक्षण समझना चाहिये ॥ २४ ॥

तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्री निद्राप्रबोधिता ।
कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणाः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥ ८४८१ ॥

मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा और अज्ञान यदि किसी प्रकारसे वर्त्तमान हो, तो उसे ही तमोगुण जानना योग्य है ॥ २५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ उनतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २३९ ॥ ८४८१ ॥

: २४० :

व्यास उवाच—

मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी ।
हृदयं प्रियाप्रिये वेद त्रिविधा कर्मचोदना ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— निश्चयात्मिका बुद्धि मनरूपसे सङ्कल्प मात्रके जरिये विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, हृदयके प्रिय और अप्रिय सब विषय मालूम होते हैं; कर्म करनेमें तीन प्रकारकी प्रेरणा होती है ॥ १ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परो मतः ॥ २ ॥

इन्द्रियोंसे सङ्कल्पजनित निबन्धनसे सब विषय बलवान् है; उन विषयोंसे मन बलवान् है, मनसे बुद्धि बलवान् है, और बुद्धिसे आत्मा बलवान् है, यह महर्षियोंको अभिमत है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवात्मनोऽऽत्मिका ।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः ॥ ३ ॥

बुद्धि मनुष्योंकी व्यावहारिक आत्मा है, बुद्धि ही स्वयं आत्मस्वरूपसे स्थिति करती है; बुद्धि जिस समय विविध पदार्थोंको ग्रहण करनेके लिये विकृत हो नाना रूप धारण करती है, उस समय वही मनशब्दवाच्य होती है ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विक्रियते ह्यणु ।
शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥ ४ ॥

इन्द्रियोंके पृथक् भावके कारण उन्हींके लिये बुद्धि विकृत होकर नाना रूप धारण करती है; इस ही निमित्त जब बुद्धि सुनती है तब कान और जब स्पर्श करती है तब त्वचा कहलाती है ॥ ४ ॥

पश्यन्ती भवते दृष्टी रसती रसनं भवेत् ।
जिघ्रती भवति घ्राणं बुद्धिर्विक्रियते पृथक् ॥ ५ ॥

वही जब दर्शन करती है तब नेत्र, जब चखती है तब जीभ और जब सूंघती है तब घ्राणेन्द्रिय कहके वर्णित होती है; इस प्रकार बुद्धि ही पृथक् पृथक् रूपसे विकृत हुआ करती है ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणीति तान्याहुस्तेष्वदृश्याधितिष्ठति ।
तिष्ठती पुरुषे बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते ॥ ६ ॥

बुद्धिके इन सब विकारोंको इन्द्रियां कहते हैं; चिदात्मा अदृश्य भावसे उन सबमें अधिष्ठित है और बुद्धि उस जीवात्मामें ही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे वर्त्तमान है। पुरुषाधिष्ठिता बुद्धि उक्त तीनों भावोंमें निवास करती है ॥ ६ ॥

कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचते ।
न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह युज्यते ॥ ७ ॥

वह कभी सुख लाभ करती है; कभी शोकित होती है; कभी न सुखशाली होती है – अथवा दुरवगाह दुःखभागी भी नहीं होती, वह मोहित होती है ॥ ७ ॥

सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते ।
सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान् ॥ ८ ॥

जैसे तरङ्गमालायुक्त सरित्पति समुद्र कभी अपनी तट भूमिको लांघ जाता है, वैसे ही यह भावात्मिका बुद्धि सत्त्व, रज, तम, इन तीनों भावोंको लांघ जाती है ॥ ८ ॥

यदा प्रार्थयते किंचित्तदा भवति सा मनः ।
अधिष्ठानानि वै बुद्ध्या पृथगेतानि संस्मरेत् ।
इन्द्रियाण्येव मेध्यानि विजेतव्यानि कृत्स्नशः ॥ ९ ॥

जब मनुष्य किसी विषयकी अभिलाष करता है, तब उसकी बुद्धि मन हो जाती है। सब इन्द्रियगोलक बुद्धिमें अन्तर्भूत होकर पृथक् पृथक् निवास करते हैं। रूप आदि ज्ञान साधनमें तत्पर इन्द्रियोंको सब भांतिसे विजय करना उचित है ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वाण्येवानुपूर्व्येण यद्यन्नानुविधीयते ।
अविभागगता बुद्धिर्भावे मनसि वर्तते ।
प्रवर्तमानं तु रजः सत्त्वमप्यनुवर्तते ॥ १० ॥

जो इन्द्रिय जिस समय बुद्धिके अनुगत होती हैं, उस समय पहले बुद्धि पृथग्भूत न रहनेपर भी अन्तमें सङ्कल्पात्मक घटादि विषयोंमें वर्त्तमान हुआ करती है; अर्थात् बुद्धिसे अनुगृहीत होके इन्द्रियां सङ्कल्पजनित बाह्य विषयोंका ज्ञान करती है। इस ही प्रकार क्रमसे रूप आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है, सब विषयोंका ज्ञान युगपत् नहीं होता। रजभाव भी प्रवर्तित होनेपर सत्त्वको अनुसरण करता है ॥ १० ॥

ये चैव भावा वर्तन्ते सर्व एष्वेव ते त्रिषु ।
अन्वर्थाः संप्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव ॥ ११ ॥

जैसे अरोंका रथनेमिके बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही सात्विक, राजसिक और तामसिक भाव मन, बुद्धि तथा अहंकारमें विषयके अनुसार वर्त्तमान रहते हैं। सभी भाव सात्त्विक आदि गुणोंके अनुगामी हैं ॥ ११ ॥

प्रदीपार्थं नरः कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः ।
निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

बुद्धिस्थ विषय सिद्धि अर्थात् हृदयगुहामें स्थित परब्रह्म विषयक पारमार्थिक ज्ञान साधनके निमित्त मन किरणरूपी इन्द्रियोंके जरिये श्रेष्ठ परब्रह्मको छिपानेवाले अज्ञानका विनाश किया करता है। योगाचारियोंका यह योग जिस प्रकार सिद्ध होता है, उदासीन मनुष्योंका भी यदृच्छाक्रमसे उस ही प्रकार योग सिद्ध हुआ करता है ॥ १२ ॥

एवंस्वभावमेवेदमिति विद्वान्न मुह्यति ।
अशोचन्नप्रहृष्यंश्चिह नित्यं विगतमत्सरः ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इस दृश्यमान जगत्को इस ही स्वभावसे बुद्धिमात्रसे कल्पित जानके मोहित नहीं होता; वह किसी विषयमें हर्ष वा शोक प्रकाश नहीं करता, सदा मत्सरहीन होके निवास करता है ॥ १३ ॥

न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैः कामगोचरैः ।
प्रवर्तमानैरनये दुर्धरैरकृतात्मभिः ॥ १४ ॥

काम्यमान विषय गोचर इन्द्रियोंके निर्दोष होनेपर भी दुष्कृतिशाली मलिन चित्तवाले मनुष्य उसके सहारे आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति ।
तदा प्रकाशते ह्यात्मा घटे दीप इव ज्वलन् ।
सर्वेषामेव भूतानां तमस्यपगते यथा ॥ १५ ॥

जिस समय पुरुष मनके जरिये इन्द्रियरूपी घोडोंकी बागडोरको पकडकर उनके वेगको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस समय जलते हुए दीपकके प्रकाशके जरिये घटादि पदार्थोंकी आकृतिके समान उसके समीप आत्मा प्रकाशित होता है । जैसे अन्धकार दूर होनेपर सभी प्राणियोंके सामने प्रकाश होता है ॥ १५ ॥

यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् ।
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयांश्चरन् ।
असज्जमानः सर्वेषु न कथंचन लिप्यते ॥ १६ ॥

जैसे जलचारी पक्षी पानीमें विचरते हुए उसमें लिप्त नहीं होता, वैसे ही विमुक्त स्वभाववाले योगी लोग पूर्वकृत पुण्यपापसे अलिप्त हुआ करते हैं । इस ही प्रकार शुद्धचित्तवाला मनुष्य सम्बन्धियोंमें आसक्त न होनेके कारण विषयोंको सेवन करता हुआ भी सब प्रकार उनके दोषस्पर्शसे रहित हुआ करता है ॥ १६ ॥

त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदात्मनि ।
सर्वभूतात्मभूतस्य गुणमार्गेष्वसज्जतः ॥ १७ ॥

पूर्वकृत कर्मोंको परित्याग करके सत्यस्वरूप आत्मामें जिसका अनुराग होता है, उस सब भूतोंके आत्मभूत सब विषयोंमें असंसक्त पुरुषकी बुद्धि सत्त्वगुणमें विचरती है, कभी विषयोंमें प्रवेश नहीं करती ॥ १७ ॥

सत्त्वमात्मा प्रसवति गुणान्वापि कदाचन ।
न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥ १८ ॥

जीवात्मा कभी बुद्धिकी ओर और कभी गुणोंकी ओर झुकता है; गुण-इन्द्रियां आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सदा ही उन्हें जानता है ॥ १८ ॥

परिद्रष्टा गुणानां स स्रष्टा चैव यथातथम् ।
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः ॥ १९ ॥

क्योंकि वह इन्द्रियोंका परिदर्शक और यथायोग्य रीतिसे उनकी सृष्टि किया करता है; बुद्धि और क्षेत्रज्ञ दोनों सूक्ष्म हैं, परंतु उनमें यह प्रभेद मालूम करो कि इनमेंसे बुद्धि दृश्य है और आत्मा द्रष्टा है ॥ १९ ॥

सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥ २० ॥

बुद्धि गुणोंकी सृष्टि करती है और आत्मा गुणोंकी सृष्टि नहीं करता है; वे दोनों प्रकृतिके वशमें होके पृथक् रहनेपर भी सर्वदा सम्प्रयुक्त हैं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः सन्संप्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदुम्बरौ चापि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥ २१ ॥

जैसे मछली जलसे स्वतंत्र होनेपर भी दोनों ही सदा मिले रहते हैं, जैसे मशक और उदुम्बर पृथक् होनेपर भी एकत्रित रहते हैं, उसी प्रकार बुद्धि और क्षेत्रज्ञको मानना चाहिये ॥२१॥

इषीका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव च ।
तथैव सहितावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ ८५०३ ॥

जैसे सींक मूंजमें पृथक् रहके भी संयुक्त रहती है, वैसेही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ पृथक् होनेपर भी दोनों साथ और एक दूसरेके आश्रित रहते हैं ॥ २२ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४० ॥ ८५०३ ॥

: २४१ :

व्यास उवाच—

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वनुतिष्ठति ।
गुणान्विक्रियतः सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— सत्स्वरूप प्रकृति गुणोंको—विषयोंको उत्पन्न करती है, जीव—क्षेत्रज्ञ उसमें अधिष्ठित हुआ करता है । ईश्वर उदासीनकी भांति विकृतिको प्राप्त हुए विषयोंको देखता है ॥ १ ॥

स्वभावयुक्तं तत्सर्वं यदिमान्सृजते गुणान् ।
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तन्तुवद्गुणान् ॥ २ ॥

जैसे मकडी अभिन्न निमित्त उपादान स्वरूपसे अपने शरीरसे सूत्र निर्माण करती है, वैसेही ईश्वर त्रिगुणात्मक पदार्थोंको उत्पन्न करता है, वे सब विषय उसहीके स्वभावयुक्त होते हैं ॥२॥

प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिरिति चापरे ॥ ३ ॥

सत्वादि सब गुण तत्वज्ञानके जरिये अदर्शनयुक्त होनेपर भी निवृत्त अर्थात् घट आदि बाह्य पदार्थोंकी भांति नष्ट नहीं होते; परन्तु रज्जुसर्पकी भांति बाधकोही प्रध्वंसपदवाच्य कहना होगा । घट आदि नष्ट होनेपर भी जैसे कपालदर्शनके जरिये इस स्थानसे घट नष्ट हुआ है, इस ही भांति घटसत्वकी उपलब्धि होती है, सत्वादि गुणोंके प्रध्वंस होनेपर उस प्रकार उनके प्रवृत्ति की प्राप्ति नहीं होती; इसलिये सत्वादि गुणोंके नाशको निरवयव नाश कहा जाता है । तार्किक लोग कहा करते हैं, कि आत्यन्तिकी दुःखकी निवृत्ति होनेसें ही आत्म-गुणकी निवृत्ति होती है । सांख्यमतवाले दार्शनिक पण्डित लोग भी दृग्दृश्यसंयोगसे अनादि भावका भी नाश स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति ।
अनेनैव विधानेन भवेद्गर्भशयो महान् ॥ ४ ॥

इस ही प्रकार निवृत्ति और बाध इन दोनों पक्षोंको बुद्धिसे आलोचना करके यथामतिके अनुसार निश्चय करे; इस प्रकारके निश्चय-विधानके जरिये गर्भस्थित जीव महान् आत्माश्रय हुआ करता है ॥ ४ ॥

अनादिनिधनं नित्यमासाद्य विचरेन्नरः ।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥ ५ ॥

आत्माका आदि और अन्त नहीं है, वह नित्य है, इसे जानकर मनुष्य क्रोध-हर्षसे रहित और मत्सरहीन होकर सदा विचरण करे ॥ ५ ॥

इत्येवं हृदयग्रन्थिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ।
अतीत्य सुखमासीत अशोचंश्छिन्नसंशयः ॥ ६ ॥

इस ही प्रकार बुद्धिके धर्मचिन्ता आदि दृढ हृदयग्रन्थिको जिन्होंने अतिक्रम किया है, वह शोकरहित और संशयहीन होकर सुखसे परमात्मचिंतनमें समय व्यतीत किया करे ॥ ६ ॥

तप्येयुः प्रच्युताः पृथ्व्या यथा पूर्णां नदीं नराः ।
अवगाढा ह्यविद्वांसो विद्धि लोकमिमं तथा ॥ ७ ॥

किनारेकी भूमिपरसे भरी हुई नदीमें गिरे हुए मनुष्य गोते खाते हुए अत्यंत कष्ट अनुभव करते हैं, उसी तरह अज्ञानी मनुष्य इस संसारमें डूबकर दुःख भोगते हैं, ऐसा जानो ॥ ७ ॥

न तु ताम्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् ।
एवं यो विन्दतेऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः ॥ ८ ॥

तैरनेकी विद्यासे युक्त पुरुष उन्मज्जन निमज्जनके सहारे क्लेशित न होकर जलमें भी स्थलकी भांति विचरता है; इसी प्रकार जिसने अपने आत्माको शुद्ध चिन्मात्र अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप जाना है, वही आत्माका स्वरूप और लक्षण जानकर संसारसागरसे पार होता है ॥ ८ ॥

एवं बुद्ध्वा नरः सर्वां भूतानामागतिं गतिम् ।
समवेक्ष्य शनैः सम्यग्लभते शममुत्तमम् ॥ ९ ॥

इसही प्रकार मनुष्य सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके विषयको जानके और आकाश आदि भूतोंकी विषमता अवलोकन करके धीरे धीरे अत्यन्त उत्तम सुख शान्ति लाभ किया करता है ॥ ९ ॥

एतद्वै जन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
आत्मज्ञानं शमश्चैव पर्याप्तं तत्परायणम् ॥ १० ॥

मनुष्य जन्म ग्रहण करने विशेष करके ब्राह्मण होनेसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है, कि आत्मज्ञान और शान्ति अवलम्बनके जरिये मुक्ति लाभ हुआ करती है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतद्बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ।
विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥ ११ ॥

मनुष्य इस आत्मतत्त्व और शमको ही जानके ज्ञानी तथा पापरहित होता है; निष्पाप—ज्ञानी होनेका दूसरा लक्षण और क्या है ? मनीषी पुरुष इसे ही जानकर कृतकृत्य और मुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

न भवति विदुषां महद्भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् ।
न हि गतिरधिकास्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥ १२ ॥

अज्ञानियोंको अधःपतनसे जो अत्यन्त महान् भय प्राप्त होता है, ज्ञानियोंको उस भयकी सम्भावना नहीं है । ज्ञानियोंको जो उत्तम महती सनातन गति प्राप्त हुआ करती है, उससे बढके उत्तम गति और किसीकी भी नहीं होती ॥ १२ ॥

लोकमातुरमसूयते जनस्तत्तदेव च निरीक्ष्य शोचते ।
तत्र पश्य कुशलानशोचतो ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥ १३ ॥

कोई मनुष्य उपभोग्य वस्तु आदिको दुःख और रोगसे आक्रान्त समझके उन्हें दोषदृष्टिसे देखते हैं, कोई दूसरेका वैसे दोषाक्रान्त विषयमें अनुराग देखकर शोक किया करते हैं, परन्तु ज्ञानी और अज्ञानीके बीच महत् विलक्षणता है; इसे जानके जो लोग आरोपित वा अनारोपित शोक तथा शोकाभावका विषय जानते हैं, वे शोक नहीं करते; उन्हें ही तुम निश्चय ही कुशल समझो ॥ १३ ॥

यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं तच्च निर्णुदति यत्पुरा कृतम् ।
न प्रियं तदुभयं न चाप्रियं तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥ ८५१७ ॥

जो लोग अनभिसन्धिपूर्वक अर्थात् निष्काम होकर कर्म करते हैं, उनका वही निष्काम कर्म पहलेके किये हुए पापोंका खण्डन करता है; निष्काम कर्म करनेवाले मनुष्योंके इस जन्म और पूर्व जन्मके किये हुए सब कर्म प्रिय वा अप्रिय जनक नहीं होते; इसलिये तत्त्वविद्या अवश्य सिद्ध करनी उचित है ॥ १४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ एकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४१ ॥ ८५१७ ॥

: २४२ :

शुक उवाच—

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन ।
यो विशिष्टश्च धर्मेभ्यस्तं भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥

शुकदेव बोले— हे भगवन् ! इस लोकमें जिस धर्मसे बढके श्रेष्ठ धर्म और कुछ भी न हो और जो सब धर्मोंसे उत्तम है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhuji) - Varanasi. Digitized by eGangotri

व्यास उवाच –

धर्मं ते संप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम् ।
विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यस्तमिहैकमनाः शृणु ॥ २ ॥

व्यासदेव बोले– ऋषियोंने जिस पुराण धर्मको स्थापित किया है और जो सब धर्मोंसे उत्तम है, वह तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक कहता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य यत्नतः ।
सर्वतो निष्पतिष्णूनि पिता बालानिवात्मजान् ॥ ३ ॥

जैसे पिता आत्मज सन्तानोंको यत्नपूर्वक संयत करता है, वैसे ही सब भान्तिसे पतनशील और प्रमथनकारी इन्द्रियोंको बुद्धिके जरिये संयत करके उन्हें वशमें रखे ॥ ३ ॥

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः ।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥ ४ ॥

मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता साधन ही परम तपस्या है; वही सब धर्मोंसे उत्तम और वही परम धर्मरूपसे महर्षियोंके जरिये वर्णित हुआ करता है ॥ ४ ॥

तानि सर्वाणि संधाय मनःषष्ठानि मेधया ।
आत्मतृप्त इवासीत बहु चिन्त्यमचिन्तयन् ॥ ५ ॥

मनके सहित इन्द्रियोंको मेधाके सहारे सन्धान करके त्रिपुटी चिन्तनमें अनासक्त होकर आत्मतृप्तकी भांति निश्चल और निश्चल हो निवास करे ॥ ५ ॥

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि ।
तदा त्वमात्मनात्मानं परं द्रक्ष्यसि शाश्वतम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रियां बाह्य और आभ्यन्तरिक विषयोंसे निवृत्त होके सर्वाधिष्ठान परब्रह्ममें निवास करेंगी, तब तुम स्वयं ही शाश्वत परमात्माको देख सकोगे ॥ ६ ॥

सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम् ।
तं पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥ ७ ॥

जो सब महाभाग मनीषी पुरुष ब्रह्मवित् होते हैं, वे उस धूमरहित अग्निकी भांति देदीप्यमान उपाधिरहित सर्वमय महान् आत्माको देखते हैं ॥ ७ ॥

यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः ।
आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्पं क्व मे फलम् ॥ ८ ॥

जैसे फल–फूलोंसे युक्त अनेक शाखावाला बडा वृक्ष अपने फल–फूलोंको यह नहीं जानता कि वे कहां हैं ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवमात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतो न्वहम् ।
अन्यो ह्यत्रान्तरात्मास्ति यः सर्वमनुपश्यति ॥ ९ ॥

वैसे ही अचेतन बुद्धिवाला जीवात्मा "मैं कहां जाऊंगा, कहांसे आया हूं" इसे कुछ भी नहीं जान सकता; तब इस देहके बीच बुद्धि व्यतिरिक्त अन्तरात्मा रूपसे जो विराजता है, वही बुद्धि आदि सबका ही अभिज्ञ है और सबको ही देखता रहता है ॥ ९ ॥

ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना ।
दृष्ट्वा त्वमात्मनात्मानं निरात्मा भव सर्ववित् ॥ १० ॥

आत्मवित् पुरुष प्रकाशमान ज्ञानदीप स्वरूप आत्माके जरिये ही अपनेमें ही परम-आत्माको देखता है, इसलिये तुम आप ही परमात्माका दर्शन करके उपाधिरहित और सर्ववित् हो जाओ ॥ १० ॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगः ।
परां बुद्धिमवाप्येह विपाप्मा विगतज्वरः ॥ ११ ॥

तुम केंचुलीसे मुक्त सर्पकी भांति सब पापोंसे मुक्त होकर उत्तम बुद्धि प्राप्त करके इस जगतमें पाप और चिन्तासे मुक्त हो जाओ ॥ ११ ॥

सर्वतःस्रोतसं घोरां नदीं लोकप्रवाहिनीम् ।
पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मनःसंकल्परोधसम् ॥ १२ ॥

इस लोकमें परम ज्ञान प्राप्त कर सुखी होके अनेक प्रकारसे संपूर्ण दिशाओंकी ओर बहनेवाली संसाररूपी नदी भयंकर, लोकप्रवाहिनी, पञ्चेन्द्रियग्राहसे युक्त, मनके सङ्कल्प तटवाली, ॥१२॥

लोभमोहतृणच्छन्नां कामक्रोधसरीसृपाम् ।
सत्यतीर्थानृतक्षोभां क्रोधपङ्कां सरिद्वराम् ॥ १३ ॥

लोभ-मोहरूपी तृण-सेवारसे परिपूरित, काम-क्रोधरूपी सर्पसे युक्त, सत्य तीर्थवाली, मिथ्या-क्षोभवाली, क्रोधपङ्कसे संयुक्त, यह नदी दूसरी नदियोंसे श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

अव्यक्तप्रभवां शीघ्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
प्रतरस्व नदीं बुद्ध्या कामग्राहसमाकुलाम् ॥ १४ ॥

अव्यक्त प्रकृतिरूपी पर्वतसे युक्त शीघ्रगामिनी और अकृतात्म लोगोंसे दुस्तर और कामग्राहसे परिपूरित, नदीके समान संसारनदीको ज्ञानके सहारे तरना चाहिये ॥ १४ ॥

संसारसागरगमां योनिपातालदुस्तराम् ।
आत्मजन्मोद्भवां तात जिह्मावर्तां दुरासदाम् ॥ १५ ॥

हे तात ! इस संसारसागरगामिनी, वासनारूपी गहरे गड्ढोंके कारण दुस्तरा, आत्म जन्मोद्भव, जिह्मरूपी भंवर युक्त तथा दुरासद ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यां तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिणः ।
तां तीर्णः सर्वतोमुक्तो विपूतात्मात्मवित्शुचिः ॥ १६ ॥

कृतप्रज्ञ, धृतिमान् और मनीषी पुरुष जिस नदीको पार करते हैं, तुम भी उस ही नदीको तरके सर्वसङ्गरहित, पवित्र आत्मा, आत्मवित् और पवित्र हो जाओ ॥ १६ ॥

उत्तमां बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयं गमिष्यसि ।
संतीर्णः सर्वसंक्लेशान्प्रसन्नात्मा विकल्मषः ॥ १७ ॥

और समस्त संसारके क्लेशोंको पार करके प्रसन्नात्मा तथा पापरहित होकर परम श्रेष्ठ ज्ञान अवलम्बन करके ब्रह्मत्वलाभ करोगे ॥ १७ ॥

भूमिष्ठानीव भूतानि पर्वतस्थो निशामय ।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नानृशंसमतिस्तथा ।
ततो द्रक्ष्यसि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ॥ १८ ॥

जैसे पर्वतपर आरूढ पुरुष धरतीपरके प्राणियोंको देखता है, वैसेही तुम ज्ञानरूपी पर्वतपर चढके भूमिष्ठ प्राणियोंकी अवस्था देखो । तुम क्रोधरहित, हर्षहीन और अनृशंसबुद्धि होनेसे सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय देख सकोगे ॥ १८ ॥

एवं वै सर्वधर्मेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ।
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठो मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १९ ॥

धार्मिकप्रवर तत्वदर्शी विद्वान् महर्षिओंने योगके जरिये अज्ञान रूपी नदीके सन्तरणस्वरूप इस धर्मको सब धर्मोंसे श्रेष्ठ समझा है ॥ १९ ॥

आत्मनोऽव्ययिनो ज्ञात्वा इदं पुत्रानुशासनम् ।
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च ॥ २० ॥

हे तात ! सर्वव्यापी, अव्यय आत्माका ज्ञानस्वरूप यह उपदेश सदा संयमी हितकारी वा अनुगत पुत्र शिष्योंसे कहना चाहिये ॥ २० ॥

आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ।
अब्रुवं यदहं तात आत्मसाक्षिकमञ्जसा ॥ २१ ॥

हे तात ! यह आत्मसाक्षिक आत्मज्ञानका विषय इतना ही जो मैंने तुमसे कहा है, यह सबसे महान् और अत्यंत गुप्ततम है ॥ २१ ॥

नैव स्त्री न पुमानेतन्नैव चेदं नपुंसकम् ।
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम् ॥ २२ ॥

यह परब्रह्म न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक ही है; यह दुःख–सुखसे रहित तथा भूत, भविष्य और वर्त्तमानस्वरूप है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ।
अभवप्रतिपत्त्यर्थमेतद्धर्म्यं विधीयते ॥ २३ ॥

स्त्री वा पुरुष उसे जाननेसे फिर जन्म नहीं लेते; पुनर्जन्मकी प्राप्ति न होनेके ही निमित्त यह ब्रह्मज्ञानस्वरूप धर्म विहित हुआ है ॥ २३ ॥

यथा मतानि सर्वाणि न चैतानि यथा तथा ।
कथितानि मया पुत्र भवन्ति न भवन्ति च ॥ २४ ॥

हे तात ! मैंने जो किसी स्थलमें जैसे सब दर्शनोंके मतोंको कहा है, वैसे ही इस आत्मज्ञानके विषयको भी वर्णन किया है; परन्तु अधिकारी भेदसे वे सब वचन किसी स्थानमें फलित और किसी स्थानमें विफल होते हैं ॥ २४ ॥

तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन पुत्रेण सत्पुत्रगुणान्वितेन ।
पृष्टो हीदं प्रीतिमता हितार्थं ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥ ८५४२ ॥

हे सत्पुत्र ! इसलिये प्रीति, गुण और दमसे युक्त पुत्रके पूछनेपर पिता प्रसन्न होकर इस विषयको यथार्थ रीतिसे पुत्रके निकट इस प्रकार वर्णन करे, जैसे मैंने तुमसे कहा है ॥२५॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४२ ॥ ८५४२ ॥

: २४३ :

व्यास उवाच—

गन्धात्रसान्नानुरुन्ध्यात्सुखं वा नालंकारांश्चाप्नुयात्तस्य तस्य ।
मानं च कीर्तिं च यशश्च नेच्छेत्स वै प्रचारः पश्यतो ब्राह्मणस्य ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— गन्ध, रस और सुखका अनुसरण तथा गन्ध आदि समलंकृत आभूषणोंका अननुरोध और उक्त भोग्य वस्तुओंमें विद्वेष प्रकाश न करके उदासीन भावसे निवास, मान, कीर्ति, तथा यश लाभमें अभिलाषरहित होना और उन सबमें उदासीनता अवलम्बन करना ही विद्वान् ब्राह्मणका व्यवहार है ॥ १ ॥

सर्वान्वेदानधीयीत शुश्रूषुर्ब्रह्मचर्यवान् ।
ऋचो यजूंषि सामानि न तेन न स ब्राह्मणः ॥ २ ॥

गुरुसेवा करनेमें रत, ब्रह्मचर्य व्रत करनेवाला पुरुष यदि सब वेदोंको पढे, तथा ऋक्, यजु और साम वेदका पूरा ज्ञान प्राप्त करे; तौ ही उसे मुख्य ब्राह्मण कहा जाता है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्ञातिवत्सर्वभूतानां सर्ववित्सर्ववेदवित् ।
नाकामो म्रियते जातु न तेन न च ब्राह्मणः ॥ ३ ॥

जो सर्वज्ञ और सब वेदोंका जाननेवाला होकर सब प्राणियोंके विषयमें स्वजनवत् व्यवहार करता है, जो आत्मज्ञानसे तृप्त होता है और कामनासे रहित है, कभी उसकी मृत्यु नहीं होती, अर्थात् जन्म–मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये मुक्त होता है; उसके वैसे कर्मके सहारे भी उसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा नहीं, परंतु वही सच्चा ब्राह्मण है ॥ ३ ॥

इष्टीश्च विविधाः प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान् ।
नैव प्राप्नोति ब्राह्मण्यमभिध्यानात्कथंचन ॥ ४ ॥

विविध इष्टियों और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ करनेमात्रसे किसीको किसी तरह कदापि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ५ ॥

जब पुरुषको किसी प्राणीसे भय नहीं होता और उससे भी कोई नहीं डरते, जब वह किसी विषयकी कामना और किसी विषयमें विद्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ५ ॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ६ ॥

जब पुरुष मन, वचन और कर्मके जरिये किसी जीवके विषयमें अनिष्ट आचरण नहीं करता, तभी ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ६ ॥

कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम् ।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ७ ॥

इस लोकमें कामना ही एकमात्र बन्धन है, उससे बढके दूसरा कोई बन्धन नहीं है; जो उस काम–बन्धनसे छूट जाता है, वही ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ७ ॥

कामतो मुच्यमानस्तु धूम्राभ्रादिव चन्द्रमाः ।
विरजाः कालमाकाङ्क्षन्धीरो धैर्येण वर्तते ॥ ८ ॥

कामबन्धनसे मुक्त रजोगुणसे रहित धीर पुरुष धूमवर्ण बादलोंसे निकले हुए चन्द्रमाकी भांति निर्मल होकर समयकी प्रतीक्षा करता हुआ धीरज अवलम्बन करके निवास करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
स कामकान्तो न तु कामकामः स वै लोकात्स्वर्गमुपैति देही ॥ ९ ॥

अचलके समान स्थिर भाव, भली भांतिसे पूरित समुद्रमें दूसरे सब जल जिस प्रकारसे प्रविष्ट होते हैं; भोग उस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी कामना करते हैं; वह विद्वान् पुरुष सङ्कल्पमात्रके सहारे समुपस्थित सुखोंमें रममाण होता है; वही इच्छा करनेसे इस लोकसे स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ हुआ करता है; नहीं तो स्वर्गकी इच्छा करनेवाला मनुष्य इच्छामात्रसे ही स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ९ ॥

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः ।
दमस्योपनिषद्दानं दानस्योपनिषत्तपः ॥ १० ॥

वेदका रहस्य सत्य है, सत्यका रहस्य इन्द्रियोंका दमन है, दमका रहस्य दान है, दानका रहस्य तपस्या है ॥ १० ॥

तपसोपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत्सुखम् ।
सुखस्योपनिषत्स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः ॥ ११ ॥

तपस्याका रहस्य त्याग है, त्यागका रहस्य सुख है, सुखका रहस्य स्वर्ग है, और स्वर्गका रहस्य शान्ति है ॥ ११ ॥

क्लेदनं शोकमनसोः संतापं तृष्णया सह ।
सत्त्वमिच्छसि सन्तोषाच्छान्तिलक्षणमुत्तमम् ॥ १२ ॥

मनुष्य संतुष्ट रहकर शान्तिके उपाय सत्त्वगुणको अपनावे; सत्त्वगुण मनकी तृष्णा, शोक और संकल्पको, जैसे गरम जल चावलको गला देता है, वैसे नष्ट करता है ॥ १२ ॥

विशोको निर्ममः शान्तः प्रसन्नात्मात्मवित्तमः ।
षड्भिर्लक्षणवानेतैः समग्रः पुनरेष्यति ॥ १३ ॥

शोकरहित, ममताहीन, शान्त, प्रसन्नचित्त आत्मवित् और सन्तोषयुक्त होकर जो समस्त ज्ञानसे तृप्त हुआ है, वह इन छहों लक्षणोंसे सबका ही कामनीय हुआ करता है – मोक्ष प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

षड्भिः सत्त्वगुणोपेतैः प्राज्ञैरधिकमन्त्रिभिः ।
ये विदुः प्रेत्य चात्मानमिहस्थांस्तांस्तथा विदुः ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष सत्य, दम, दान, तपस्या, त्याग और शम नामक छहों सत्वगुणसे युक्त, श्रवण, मनन, निदिध्यासनके जरिये जिस आत्माको जान सकते हैं, जीवित देहमें उसही आत्माको जिन्होंने बुद्धि स्वरूपसे जाना है, वेही शान्तिरूप गुणलक्षणको प्राप्त हुए हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अकृत्रिममसंहार्यं प्राकृतं निरुपस्कृतम् ।
अध्यात्मं सुकृतप्रज्ञः सुखमव्ययमश्नुते ॥ १५ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष अकृत्रिम अर्थात् अजन्य है, इसीसे असंहार्य, स्वभावसिद्ध और गुणाधान मलापकर्षणात्मक संस्काररहित शरीरमें अधिष्ठित सुकृत आत्माको जानता है, वही अव्यय सुख उपभोग करता है ॥ १५ ॥

निष्प्रचारं मनः कृत्वा प्रतिष्ठाप्य च सर्वतः ।
यामयं लभते तुष्टिं सा न शक्यमतोऽन्यथा ॥ १६ ॥

मनको विषयोंसे रोककर आत्मविचारके प्रतिष्ठित करता हुआ योगी पुरुष आत्मासे जो तुष्टि-लाभ करता है, दूसरे किसी प्रकारसे भी वैसी तुष्टिलाभ नहीं होती ॥ १६ ॥

येन तृप्त्यत्यभुञ्जानो येन तृष्यत्यवित्तवान् ।
येनास्नेहो बलं धत्ते यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १७ ॥

भोजनके बिना भी मनुष्य जिसके जरिये तृप्त होता है, वृत्तिहीन पुरुष जिससे तृप्तिलाभ करता है, स्निग्ध पदार्थका सेवन किये बिना ही पुरुष जिसके सहारे बलवान् होता है, जो उस ब्रह्मको जानता है, वही वेदवित् है ॥ १७ ॥

संगोप्य ह्यात्मनो द्वाराण्यपिधाय विचिन्तयन् ।
यो ह्यास्ते ब्राह्मणः शिष्टः स आत्मरतिरुच्यते ॥ १८ ॥

जो शिष्ट ब्राह्मण अपनी इन्द्रियोंके सुरक्षित द्वारोंको पूर्ण रीतिसे बंद करके ब्रह्मका ध्यान अवलम्बन करके निवास करता है, उसे ही आत्मरति श्रेष्ठ ब्राह्मण कहते हैं ॥ १८ ॥

समाहितं परे तत्त्वे क्षीणकाममवस्थितम् ।
सर्वतः सुखमन्वेति वपुश्चान्द्रमसं यथा ॥ १९ ॥

जो परम तत्वमें तत्पर और वासनारहित होकर स्थित रहता है, शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भांति उसका सुख बढता रहता है ॥ १९ ॥

सविशेषाणि भूतानि गुणांश्चाभजतो मुनेः ।
सुखेनापोह्यते दुःखं भास्करेण तमो यथा ॥ २० ॥

जैसे सूर्यके जरिये अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो मननशील योगी पञ्चतन्मात्र, महत्तत्व और प्रकृतिको परित्याग करता है, वह सहजमें ही संसारके दुःखोंसे छूट जाता है ॥२०॥

तमतिक्रान्तकर्माणमतिक्रान्तगुणक्षयम् ।
ब्राह्मणं विषयाश्लिष्टं जरामृत्यू न विन्दतः ॥ २१ ॥

उस अतिक्रान्त कर्म करनेवाले अतिक्रान्त गुण, ऐश्वर्य और विषयोंसे असंश्लिष्ट ब्राह्मणको जरा तथा मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती ॥ २१ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स यदा सर्वतो मुक्तः समः पर्यवतिष्ठते ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च शरीरस्थोऽतिवर्तते ॥ २२ ॥

वह जब सब तरहसे विरक्त और रागद्वेषसे रहित होके समतामें निवास करता है, उस समय जीवित शरीरसे ही इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंको अतिक्रम किया करता है ॥ २२ ॥

कारणं परमं प्राप्य अतिक्रान्तस्य कार्यताम् ।
पुनरावर्तनं नास्ति संप्राप्तस्य परात्परम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ ८५६५ ॥

जिसने कार्यमयी प्रकृतिको परित्याग करके परम कारण स्वरूप परब्रह्मको जाना है, उस परम पद पानेवाले पुरुषको स्थिर संसारमें लौटकर नहीं आना पडता ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४३ ॥ ८५६५ ॥

: २४४ :

व्यास उवाच—

द्वंद्वानि मोक्षजिज्ञासुरर्थधर्मावनुष्ठितः ।
वक्त्रा गुणवता शिष्यः श्राव्यः पूर्वमिदं महत् ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— सुख—दुःख, मान—अपमान सहनेवाला मनुष्य अर्थ और धर्मका अनुष्ठान करके शेषमें यदि मोक्ष जिज्ञासु हो, तो गुणवान् वक्ता उस शिष्यको पहले यही महत् अध्यात्म विषय सुनावे ॥ १ ॥

आकाशं मारुतो ज्योतिरापः पृथ्वी च पञ्चमी ।
भावाभावौ च कालश्च सर्वभूतेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चभूत और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय और विशेष, ये कई एक भाव पदार्थ, इनके अतिरिक्त अभाव पदार्थ तथा काल (दिक्, आत्मा और मन) — ये सब पञ्चभूतात्मक जरायुज आदि जीव मात्रमें ही वर्त्तमान हैं ॥२॥

अन्तरात्मकमाकाशं तन्मयं श्रोत्रमिन्द्रियम् ।
तस्य शब्दं गुणं विद्यान्मूर्तिशास्त्रविधानवित् ॥ ३ ॥

इसके बीच आकाश अवकाश भाग है, श्रवणेन्द्रिय आकाशमय है; शारीरिक शास्त्र विधानवित् पुरुष आकाशको शब्दगुण कहा करता है ॥ ३ ॥

चरणं मारुतात्मेति प्राणापानौ च तन्मयौ ।
स्पर्शनं चेन्द्रियं विद्यात्तथा स्पर्शं च तन्मयम् ॥ ४ ॥

गमन आदि कार्य वायुसे उत्पन्न होते हैं, प्राण और अपान आदि वायुमय है, स्पर्शेन्द्रिय और स्पर्शगुणको भी वायुमय जानो ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः पाकः प्रकाशश्च ज्योतिश्चक्षुश्च तन्मयम् ।
तस्य रूपं गुणं विद्यात्तमोऽन्वयसितात्मकम् ॥ ५ ॥

ताप, पाक, प्रकाश, उष्णता और नेत्र, ये पांचों अग्निस्वरूप हैं; उसका गुण रूप लाल, श्वेत और असितात्मक है ॥ ५ ॥

प्रक्लेदः क्षुद्रता स्नेह इत्यापो ह्युपदिश्यते ।
रसनं चेन्द्रियं जिह्वा रसश्चापां गुणो मतः ॥ ६ ॥

क्लेद, संकोच और स्नेह ये तीनों जलके धर्म हैं; रसनेन्द्रिय, जिह्वा और रस ये जलके गुण कहे गये हैं ॥ ६ ॥

संघातः पार्थिवो धातुरस्थिदन्तनखानि च ।
श्मश्रु लोम च केशाश्च सिराः स्नायु च चर्म च ॥ ७ ॥

शरीरमें जो संघात या कडापन है, वह पृथ्वीका कार्य है; हड्डी, दांत, नख, रोम, श्मश्रु, केश, शिरा, स्नायु और चर्म, ये सब पृथ्वीमय हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रियं घ्राणसंज्ञानं नासिकेत्यभिधीयते ।
गन्धश्चैवेन्द्रियार्थोऽयं विज्ञेयः पृथिवीमयः ॥ ८ ॥

घ्राणेन्द्रियका नाम नासिका है, गन्ध ही इस इन्द्रियका विषय है । इस गन्ध विषयको भी पार्थिव गुण मानना चाहिये ॥ ८ ॥

उत्तरेषु गुणाः सन्ति सर्वे सर्वेषु चोत्तराः ।
पञ्चानां भूतसंघानां संततिं मुनयो विदुः ॥ ९ ॥

पूर्व पूर्व भूतोंके गुण उत्तरोत्तर भूतोंमें वर्त्तमान हैं; इसलिये आकाशमें केवल शब्दगुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श है, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप है; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस है और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये पांचो ही विद्यमान हैं; ये पांचो गुण प्राणिमात्रमें ही विद्यमान रहते हैं, मुनि लोग भावना, अज्ञान और कर्म इनको पञ्चभूत सन्तति और अविद्या, काम तथा धर्मको अष्टम गिना करते हैं ॥ ९ ॥

मनो नवममेषां तु बुद्धिस्तु दशमी स्मृता ।
एकादशोऽन्तरात्मा च सर्वतः पर उच्यते ॥ १० ॥

मनको इन सबके बीच नवां कहा करते हैं, बुद्धिको दसवीं कहते हैं, अनन्तर आत्मा ग्यारहवां है, वह सबसे श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है ॥ १० ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिर्मनोव्याकरणात्मकम् ।
कर्मानुमानाद्विज्ञेयः स जीवः क्षेत्रसंज्ञकः ॥ ११ ॥

बुद्धि निश्चय करनेवाली है और मन संशयात्मक है; वह अनन्त आत्मा कर्मानुमान निबन्धन अर्थात् सुख, दुःख लक्षणयुक्त कर्मोंके आश्रयत्वके कारण क्षेत्रसंज्ञक जीवरूपसे अनुमित होता है ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एभिः कालाष्टमैर्भावैर्यैः सर्वैः सर्वमन्वितम् ।
पश्यत्यकलुषं प्राज्ञः स मोहं नानुवर्तते ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥ ८५७७ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन कालसंज्ञक जीवोंसे युक्त समस्त प्राणिपुञ्जको जो स्वरूपसे पापरहित देखता है, वह मोहका अनुसरण नहीं करता ॥ १२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४४ ॥ ८५७७ ॥

ः २४५ ः

व्यास उवाच—

शरीराद्विप्रमुक्तं हि सूक्ष्मभूतं शरीरिणम् ।
कर्मभिः परिपश्यन्ति शास्त्रोक्तैः शास्त्रचेतसः ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— शास्त्रवेत्ता लोग स्थूल शरीरसे मुक्त, सूक्ष्मभूत और दुर्लक्ष्य, सूक्ष्म शरीरी आत्माको शास्त्रोक्त कर्म योगानुष्ठान आदिके जरिये दर्शन करते हैं अर्थात् योगी लोग समाधिके समय लिङ्गात्माका दर्शन किया करते हैं ॥ १ ॥

यथा मरीच्यः सहिताश्चरन्ति गच्छन्ति तिष्ठन्ति च दृश्यमानाः ।
देहैर्विमुक्ता विचरन्ति लोकांस्तथैव सत्त्वान्यतिमानुषाणि ॥ २ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें आकाशमण्डलमें निबिड भावसे परस्पर मिलकर विचरती जाती तथा स्थित हुई दीखती हैं, वैसेही अलौकिक जीवात्मा स्थूल देहसे निकलकर सब लोकोंमें जाते हैं ॥ २ ॥

प्रतिरूपं यथैवाप्सु तापः सूर्यस्य लक्ष्यते ।
सत्त्ववांस्तु तथा सत्त्वं प्रतिरूपं प्रपश्यति ॥ ३ ॥

जैसे सूर्यके किरणमण्डलका प्रतिविम्ब जलमें भी दीखता है, वैसेही योगी पुरुष सत्त्ववन्त पुरुष मात्रमें ही प्रतिरूपसे लिङ्ग शरीरको अवलोकन किया करता है ॥ ३ ॥

तानि सूक्ष्माणि सत्त्वस्था विमुक्तानि शरीरतः ।
स्वेन तत्त्वेन तत्त्वज्ञाः पश्यन्ति नियतेन्द्रियाः ॥ ४ ॥

संयतेन्द्रिय सत्त्वज्ञ योगी लोग स्थूल शरीरोंसे विमुक्त उन समस्त सूक्ष्म शरीरोंको निज लिङ्ग देह स्वरूपसे देखते हैं ॥ ४ ॥

स्वपतां जाग्रतां चैव सर्वेषामात्मचिन्तितम् ।
प्रधानाद्वैधयुक्तानां जहतां कर्मजं रजः ॥ ५ ॥

जिन योगयुक्त पुरुषोंने आत्मामें कल्पित कामादि व्यसनोंको परित्याग किया है और जो जगत्कारक प्रकृतिका अद्वैध अर्थात् प्रकृतिके तदात्म योग ऐश्वर्यसे भी विमुक्त हुए हैं, ॥५॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Research Inst. Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथाहनि तथा रात्रौ यथा रात्रौ तथाहनि ।
वशे तिष्ठति सत्त्वात्मा सततं योगयोगिनाम् ॥ ६ ॥

उन्हें क्या स्वप्नके समयमें क्या जाग्रत् अवस्थामें, जैसे दिन वैसे ही रात्रिके समयमें, जैसे रात्रि वैसेही दिनके समयमें अर्थात् सब अवस्था तथा सब समयमें ही लिङ्गदेह वशीभूत रहती है ॥ ६ ॥

तेषां नित्यं सदानित्यो भूतात्मा सततं गुणैः ।
सप्तभिस्त्वन्वितः सूक्ष्मैश्चरिष्णुरजरामरः ॥ ७ ॥

उन सब योगियोंका जीव महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे सदा संयुक्त रहके इन्द्रादि लोकोंमें सदा विचरते हुए तीनों कालोंमें भी मिथ्यात्व निबन्धनसे धावित होनेसे भी अजर और अमर हुआ करता है ॥ ७ ॥

मनोबुद्धिपराभूतः स्वदेहपरदेहवित् ।
स्वप्नेष्वपि भवत्येष विज्ञाता सुखदुःखयोः ॥ ८ ॥

स्वदेह और परदेहवित् योगी यदि मन तथा बुद्धिके जरिये पराभूत हो, तो वह थोडे समयमें भी सुख-दुःखका अनुभव किया करता है ॥ ८ ॥

तत्रापि लभते दुःखं तत्रापि लभते सुखम् ।
क्रोधलोभौ तु तत्रापि कृत्वा व्यसनमर्छति ॥ ९ ॥

वह जब सपनेमें भी कभी सुख लाभ करता, कभी दुःख भोग किया करता है; तब वह वहां भी क्रोध और लोभके वशमें होकर विपद्ग्रस्त होता है ॥ ९ ॥

प्रीणितश्चापि भवति महतोऽर्थानवाप्य च ।
करोति पुण्यं तत्रापि जाग्रन्निव च पश्यति ॥ १० ॥

वह स्वप्न समयमें बहुत सा धन प्राप्त करके प्रसन्न होता है, पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करता है और जैसे जाग्रत् अवस्थामें सब विषयोंका दर्शन किया जाता है, वैसे ही उस समयमें भी उसहीके अनुरूप सब वस्तुओंको देखा करता है ॥ १० ॥

तमेवमतितेजोंशं भूतात्मानं हृदि स्थितम् ।
तमोरजोभ्यामाविष्टा नानुपश्यन्ति मूर्तिषु ॥ ११ ॥

वह अत्यन्त तेजस्वी परमेश्वरके अंशभूत हृदयमें स्थित जीवात्माको, तमोगुण और रजोगुण युक्त पुरुष देहके बीच देखनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ११ ॥

शास्त्रयोगपरा भूत्वा स्वमात्मानं परीप्सवः ।
अनुच्छ्वासान्यमूर्तीनि यानि वज्रोपमान्यपि ॥ १२ ॥

जो लोग योगशास्त्रपरायण होके उस आत्माको प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वे अचेतन स्थूल शरीर, अमूर्त सूक्ष्म शरीर और वज्रकी भांति अर्थात् ब्रह्माके प्रलयमें भी अविनाशी कारण शरीरोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृथग्भूतेषु सृष्टेषु चतुर्ष्वाश्रमकर्मसु ।
समाधौ योगमेवैतच्छाण्डिल्यः शममब्रवीत् ॥ १३ ॥

विभिन्न रूपसे विहित संन्यास धर्मके बीच समाधिके समयमें मैंने जो यह योगका विषय कहा, शाण्डिल्य मुनिने इसे सन्यासियोंके शान्तिका हेतु कहा है ॥ १३ ॥

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम् ।
प्रधानविनियोगस्थः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥ ८५९१ ॥

इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, ये सातों सूक्ष्म विषय तथा सर्वज्ञता, तृप्ति अनादिका बोध स्वतन्त्रता, सदा अलुप्त दृष्टि और अनन्त शक्ति, इस षडङ्गयुक्त महेश्वरको जानके, यह जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विपरिणाम है, इसे जो जानता है, वह गुरु और वेदान्तवचनके अनुसार परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ होता है ॥ १४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४५ ॥ ८५९१ ॥

: २४६ :

व्यास उवाच—

हृदि कामद्रुमश्चित्रो मोहसंचयसंभवः ।
क्रोधमानमहास्कन्धो विवित्सापरिमोचनः ॥ १ ॥

व्यासदेव बोले— मनुष्यके हृदयक्षेत्रमें मोहमूलक एक विचित्र कामतरु विराजमान हुआ करता है; क्रोध और अभिमान उसके महास्कन्ध, विवित्सा उसके आलवाल ॥ १ ॥

तस्य चाज्ञानमाधारः प्रमादः परिषेचनम् ।
सोऽभ्यसूयापलाशो हि पुरादुष्कृतसारवान् ॥ २ ॥

अज्ञान उसका आधार है; प्रमाद उसे सिंचन करनेवाला जल, असूया उसका पत्ता और वह पूर्वकृत दुष्कृतोंके जरिये सारवान् हुआ करता है ॥ २ ॥

संमोहचिन्ताविटपः शोकशाखो भयंकरः ।
मोहनीभिः पिपासाभिर्लताभिः परिवेष्टितः ॥ ३ ॥

सम्मोह और चिन्ता उसकी डालियां, शोक उसकी शाखा और भय उसका अङ्कुर होता है; वह वृक्ष मोहमें डालनेवाली पिपासारूपी लताजालके जरिये परिपूरित हुआ करता है ॥ ३ ॥

उपासते महावृक्षं सुलुब्धास्तं फलेप्सवः ।
आयासैः संयतः पाशैः फलानि परिवेष्टयन् ॥ ४ ॥

अत्यन्त लोभी मनुष्य लोग लोहमय जंजीरोंके समान वासनाके बन्धनोंमें बंधकर उस महान् वृक्षके फललाभकी अभिलाष करके उसे घेरकर उसकी सेवा किया करते हैं ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri - Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्तान्पाशान्वशे कृत्वा तं वृक्षमपकर्षति ।
गतः स दुःखयोरन्तं यतमानस्तयोर्द्वयोः ॥ ५ ॥

जो उन सब वासनाओंके पाशोंको वशमें करके उक्त वृक्षको छेदन करता है, वही वैषयिक सुख दुःख त्यागनेकी वासना करनेपर सहजमेंही सुख-दुःखसे पार होनेमें समर्थ होता हैं ॥ ५ ॥

संरोहत्यकृतप्रज्ञः संतापेन हि पादपम् ।
स तमेव ततो हन्ति विषं ग्रस्तमिवातुरम् ॥ ६ ॥

अकृतबुद्धि मूर्ख जो फलके लोभसे उस वृक्षपर क्रुद्ध होकर चढता है, उसे वह वृक्ष विषग्रस्त रोगीकी भांति मार डालता है ॥ ६ ॥

तस्यानुशयमूलस्य मूलमुद्धियते बलात् ।
त्यागाप्रसादाकृतिना साम्येन परमासिना ॥ ७ ॥

विद्वान् पुरुष ज्ञान योगके प्रसादसे बलपूर्वक निर्विकल्पक समाधि स्वरूप उत्तम खड्गके जरिये उस महावृक्षकी जडें जो दूरतक फैली होती हैं, मूलसे उखाड दिया करता है ॥ ७ ॥

एवं यो वेद कामस्य केवलं परिकर्षणम् ।
वधं वै कामशास्त्रस्य स दुःखान्यतिवर्तते ॥ ८ ॥

इस ही प्रकार जो केवल कामका निवर्त्तन करना जानता है, वह कामशास्त्रके बन्धनको छुडाके सब दुःखोंको अतिक्रम करता है ॥ ८ ॥

शरीरं पुरमित्याहुः स्वामिनी बुद्धिरिष्यते ।
तत्र बुद्धेः शरीरस्थं मनो नामार्थचिन्तकम् ॥ ९ ॥

महर्षि लोग भोगायतन इस शरीरको पुर कहा करते हैं; भोगजनित सुख-दुःख आदिके अभिमानित्व निबन्धन बुद्धिको इसकी स्वामिनी कहते हैं। शरीरस्थ मन निश्चयात्मिका बुद्धिके अमात्यस्थानीय है; क्योंकि विचारपरायण मन बुद्धिको भोगके लिये इन्द्रिय विषयस्वरूप समस्त धनको अर्पण करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणि जनाः पौरास्तदर्थं तु परा कृतिः ।
तत्र द्वौ दारुणौ दोषौ तमो नाम रजस्तथा ॥ १० ॥

इन्द्रियां पुरवासी स्वरूप हैं, इन्द्रिय स्वरूप पौरजनोंको पालनेके लिये मनकी महती क्रिया-प्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ दान आदि रूपसे दृष्टादृष्ट फलोंको साधन करनेवाली कर्म-प्रवृत्ति हुआ करती है। राजस और तामस नाम दोनों दारुण दोष कर्मफलोंको अन्यथा करते हुए चित्त-अमात्यकी कलुषता सिद्ध करते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदर्थमुपजीवन्ति पौराः सहपुरेश्वराः ।
अद्वारेण तमेवार्थं द्वौ दोषावुपजीवतः ॥ ११ ॥

पुरेश्वर मन, बुद्धि और अहङ्कारके सहित इन्द्रिय स्वरूप पौर गण तथा दोषयुक्त चित्त अमात्यके जरिये निर्मित कर्मफल सुखदुःख आदिको उपजीव्य किया करता है । ऐसा होनेसे राजस और तामस दोनों दोष अविहित मार्ग आदि भोगके जरिये सुखादिरूपी अर्थको उपजीव्य समझा करते हैं ॥ ११ ॥

तत्र बुद्धिर्हि दुर्धर्षा मनः साधर्म्यमुच्यते ।
पौराश्चापि मनस्त्रस्तास्तेषामपि चला स्थितिः ॥ १२ ॥

शुद्ध सत्वमयत्व निबन्धन बुद्धि रजोगुण और सत्वगुणके वशमें न होनेपर भी मनकी प्रधानताके कारण दोषकलुषित मनके सहित उसकी समता होजाती है । इन्द्रियरूपी पौरगण मनसे डरके चञ्चल होजाते हैं अर्थात् मन दुष्ट होनेपर इन्द्रियां भी दोषस्पृष्ट होकर किसी स्थानमें भी स्थैर्य अवलम्बन नहीं करतीं ॥ १२ ॥

यदर्थं बुद्धिरध्यास्ते न सोऽर्थः परिषीदति ।
यदर्थं पृथगध्यास्ते मनस्तत्परिषीदति ॥ १३ ॥

दुष्टबुद्धि पुरुष जिस विषयको हितकर कहके निश्चय करता है, वह भी दुःखदायी अनर्थ होकर परिणाममें विनष्ट होता है । नष्ट अर्थ भी दुःखदायक हैं; क्योंकि बुद्धिके सहित मन अर्थहानि स्मरण करके भी अवसन्न होजाता है ॥ १३ ॥

पृथग्भूतं यदा बुद्ध्या मनो भवति केवलम् ।
तत्रैनं विवृतं शून्यं रजः पर्यवतिष्ठते ॥ १४ ॥

जब सङ्कल्परूपसे मन बुद्धिसे पृथक् होता है, तब उसे केवल मन कहा जाता है, यथार्थमें वही बुद्धि है; इसलिये उसके तापसे बुद्धि भी सन्तापित हुआ करती है । बुद्धिमें गया हुआ दुःखका फल देनेवाला रजोगुण उस बुद्धिके बीच विधृत अर्थात् प्रतिबिम्ब रूपसे स्थापित इस आत्माको आवरण करता है अर्थात् परिच्छेद परिताप आदि बुद्धिके धर्म-तदुपहित आत्मामें प्रकाशित होते हैं, इससे मन रजोगुणके संग मिलकर सख्यता करता है अर्थात् प्रवृत्ति विषयमें उन्मुख होता है ॥ १४ ॥

तन्मनः कुरुते सख्यं रजसा सह संगतम् ।
तं चादाय जनं पौरं रजसे संप्रयच्छति ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४६ ॥ ८६०६ ॥

संगत मन उसही आत्मा और पौरजन इन्द्रियोंको वशमें करके रजोगुणके फल दुःखके निकट अर्पण करता है, अर्थात् जैसे कोई दुष्ट मन्त्री राजा और नगरवासी प्रजाको अपने अधीनमें करके शत्रुके निकट समर्पण करता है, वैसेही राजसिक मनके जरिये आत्मा, बुद्धि और इन्द्रियां बद्ध होती हैं ॥ १५ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ छियालिसवां अध्याय समाप्त ॥ २४६ ॥ ८६०६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २४७ :

भीष्म उवाच—

भूतानां गुणसंख्यानं भूयः पुत्र निशामय ।
द्वैपायनमुखाद्भ्रष्टं श्लाघया परयानघ ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे तात युधिष्ठिर ! आकाश आदि पंचभूतोंका निर्द्धारण रूप जो शास्त्र द्वैपायन व्यास मुनिके मुखसे वर्णित हुआ है, हे पापरहित ! तुम अपनेको परम श्लाघायुक्त समझके उसे फिर मेरे समीप सुनो ॥ १ ॥

दीप्तानलनिभः प्राह भगवान्धूम्रवर्चसे ।
ततोऽहमपि वक्ष्यामि भूयः पुत्र निदर्शनम् ॥ २ ॥

प्रकाशमान अग्निके समान तेजस्वी भगवान् द्वैपायनने धूमाच्छादित अग्निके सदृश अपने पुत्रको जिसका वर्णन किया है, हे तात ! मैं उसही अज्ञानको नष्ट करनेवाले शास्त्रको फिर कहता हूं ॥ २ ॥

भूमेः स्थैर्यं पृथुत्वं च काठिन्यं प्रसवात्मता ।
गन्धो गुरुत्वं शक्तिश्च संघातः स्थापना धृतिः ॥ ३ ॥

स्थैर्य, गुरुआई, कठोरता, प्रसवार्थता अर्थात् धान्य आदिके उत्पत्तिकी निमित्तता, गन्ध, विशालता, सामर्थ्य, श्लिष्टावयत्व, स्थापन अर्थात् मनुष्य आदिके आश्रयत्व और पञ्चभौतिक मनमें जो धृतिके अंश हैं, ये सब भूमिके गुण हैं ॥ ३ ॥

अपां शैत्यं रसः क्लेदो द्रवत्वं स्नेहसौम्यता ।
जिह्वा विष्यन्दिनी चैव भौमाप्यास्रवणं तथा ॥ ४ ॥

शीतता, रस, क्लेद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, जिह्वा—रसनेन्द्रिय, प्रस्रवण और भूमिसे उत्पन्न हुए चावल प्रभृतिको पचानेकी शक्ति— ये सब जलके गुण हैं ॥ ४ ॥

अग्नेर्दुर्धषता तेजस्तापः पाकः प्रकाशनम् ।
शौचं रागो लघुस्तैक्ष्ण्यं दशमं चोर्ध्वभागिता ॥ ५ ॥

दुर्द्धर्षता, तेज, ताप, पाक, प्रकाश, शुद्धि, राग, लघुता, तीक्ष्णता और सदा उर्ध्वज्वलन,— ये अग्निके गुण हैं ॥ ५ ॥

वायोरनियमः स्पर्शो वादस्थानं स्वतन्त्रता ।
बलं शैघ्र्यं च मोहश्च चेष्टा कर्मकृता भवः ॥ ६ ॥

अनियमितता, स्पर्श, वागिन्द्रियगोलक, गमन आदि विषयोंमें स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रता, मोह, उत्क्षेपण आदि कर्म, श्वास—प्रश्वास आदि चेष्टा, प्राणरूपसे चिदुपाधिता और जन्म—मरण, ये सब वायुके गुण हैं ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आकाशस्य गुणः शब्दो व्यापित्वं छिद्रतापि च ।
अनाश्रयमनालम्बमव्यक्तमविकारिता ॥ ७ ॥

शब्द, व्यापकता, छिद्रता, आश्रयत्वाभाव, आश्रयान्तरशून्यता, रूपस्पर्शशून्यता निबन्धन, अव्यक्तता, अविकारिता, ॥ ७ ॥

अप्रतीघातता चैव भूतत्वं विकृतानि च ।
गुणाः पञ्चाशतं प्रोक्ताः पञ्चभूतात्मभाविताः ॥ ८ ॥

प्रतिघात शून्यता, श्रवणेन्द्रियकी उपादानता और देहान्तर्गत छिद्र स्वरूपता, ये कई एक आकाशके गुण हैं। पञ्चभूतोंके यही पचास गुण प्राचीन महर्षियोंके जरिये वर्णित हुए हैं ॥८॥

चलोपपत्तिर्व्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा ।
सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः ॥ ९ ॥

चञ्चलता, उपपत्ति अर्थात् ऊहापोहकौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना अर्थात् मनोरथवृत्ति, क्षमा, शुभ और अशुभ संकल्प और अस्थिरत्व, ये नौ मनके गुण हैं ॥ ९ ॥

इष्टानिष्टविकल्पश्च व्यवसायः समाधिता ।
संशयः प्रतिपत्तिश्च बुद्धौ पञ्चेह ये गुणाः ॥ १० ॥

इष्ट और अनिष्ट वृत्ति विशेषका विनाश, उत्साह, चित्तकी स्थिरता, संशय और प्रतिपत्ति अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणवृत्ति, इन पांचोंको पण्डित लोग बुद्धिके गुण समझते हैं ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच—

कथं पञ्चगुणा बुद्धिः कथं पञ्चेन्द्रिया गुणाः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूक्ष्मज्ञानं पितामह ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! बुद्धि किस कारणसे पञ्चगुणान्वित हुई और इन्द्रियां ही किस लिये गुणरूपसे वर्णित हुई ? आप इस सूक्ष्म ज्ञानका सब विषय मेरे समीप वर्णन करिये ॥११॥

भीष्म उवाच—

आहुः षष्टिं भूतगुणान्वै भूतविशिष्टा नित्यविषक्ताः ।
भूतविषक्ताश्चाक्षरसृष्टाः पुत्र न नित्यं तदिह वदन्ति ॥ १२ ॥

भीष्म बोले— हे तात ! साधारण रीतिसे बुद्धिके पांच गुण वर्णित होनेपर भी वेदवचनके अनुसार उसे साठ गुण युक्त कहा जाता है; क्योंकि पञ्च भूतोंके पहले कहे हुए पचास गुण और स्वयं पञ्चभूत भी बुद्धिके गुणस्वरूप कहे गये हैं, बुद्धि अपने पञ्च गुणोंके सहित पूर्वोक्त पचपनगुणोंसे मिलकर साठ गुणोंसे संयुक्त होती है। वे सब गुण नित्य चैतन्यके संग मिलनेसे सब वृत्तियोंके जड होनेपर भी चैतन्यसम्बन्धसे उनके ज्ञानरूपत्व व्यवहार हुआ करते हैं। सब भूतोंकी समस्त विभूति अक्षर परब्रह्मके जरिये उत्पन्न हुई है; परन्तु वह उत्पत्ति नित्य नहीं है, यह वेदमें वर्णित है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Haridwar) | Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्पुत्र चिन्ताकलितं यदुक्तमनागतं वै तव संप्रतीह ।
भूतार्थतत्त्वं तदवाप्य सर्वं भूतप्रभावाद्भव शान्तबुद्धिः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४७ ॥ ८६१९ ॥

हे पुत्र ! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके विषयमें दूसरे वादियोंने जो वेदविरुद्ध युक्ति कही है, वे विचारसे दूषित हैं; इससे तुम इस लोकमें मेरे कहे हुए नित्य सिद्ध परब्रह्मके तत्त्वको यथार्थ रीतिसे जानकर और ब्राह्म ऐश्वर्य प्राप्त करके शान्तबुद्धि होजाओ ॥ १३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४७ ॥ ८६१९ ॥

: २४८ :

युधिष्ठिर उवाच—

य इमे पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
पृतनामध्य एते हि गतसत्त्वा महाबलाः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– ये जो सब महाबलवान् राजा सेनाके बीच चेतनारहित होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, ॥ १ ॥

एकैकशो भीमबला नागायुतबलास्तथा ।
एते हि निहताः संख्ये तुल्यतेजोबलैर्नरैः ॥ २ ॥

इनके बीच एक एक पुरुष अत्यन्त बलवान् थे । कोई कोई दस हजार हाथियोंके समान बलशाली थे; ये सब युद्धभूमिमें समबल तथा तुल्य तेजवाले वीरोंके जरिये मारे गये हैं ॥२॥

नैषां पश्याम्यि हन्तारं प्राणिनां संयुगे पुरा ।
विक्रमेणोपसंपन्नास्तेजोबलसमन्विताः ॥ ३ ॥

युद्धभूमिमें इन सब महाप्राणियोंको संहार करे, ऐसा मैं किसीको भी नहीं देखता था । ये सब बहुत विक्रमसे युक्त और वीर्य तथा बलसे भरे थे ॥ ३ ॥

अथ चेमे महाप्राज्ञ शेरते हि गतासवः ।
मृता इति च शब्दोऽयं वर्तत्येषु गतासुषु ॥ ४ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तौ भी ये सब राज पुरुष प्राणरहित होके पृथ्वीपर सो गये हैं, और इन सब प्राणहीन मनुष्योंके विषयमें मृत शब्द व्यवहृत होरहा है ॥ ४ ॥

इमे मृता नृपतयः प्रायशो भीमविक्रमाः ।
तत्र मे संशयो जातः कुतः संज्ञा मृता इति ॥ ५ ॥

ये सब भयङ्कर विक्रमी राजा लोग प्रायः बहुतेरे ही मर गये हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हुआ है, कि इन्हें 'मृत' यह नाम कैसे दिया गया है ? ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः केन मृत्युरिह प्रजाः ।
हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६ ॥

हे देवतुल्य पितामह ! स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इन कई एकके बीच किसीकी मृत्यु होती है ? किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु किस लिये सब प्रजा समूहको हरण करती है ? आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच—

पुरा कृतयुगे तात राजासीदविकम्पकः ।
स शत्रुवशमापन्नः संग्रामे क्षीणवाहनः ॥ ७ ॥

भीष्म बोले— हे तात ! पहले समय सत्ययुगमें अविकम्पक नामका एक राजा था; वह युद्धमें वाहनरहित होकर शत्रुओंके वशमें हो गया ॥ ७ ॥

तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
स शत्रुभिर्हतः संख्ये सबलः सपदानुगः ॥ ८ ॥

बल विक्रममें भगवान् नारायणके समान उसके हरि नामक एक पुत्र था; वह युद्धमें शत्रुओंके जरिये सेना और सेवकोंके सहित मारा गया ॥ ८ ॥

स राजा शत्रुवशगः पुत्रशोकसमन्वितः ।
यदृच्छयाशान्तिपरो ददर्श भुवि नारदम् ॥ ९ ॥

शत्रुओंके वशीभूत और पुत्रशोकसे युक्त अशान्तचित्त राजा अविकम्पकने दैवसंयोगसे एक बार पृथ्वीमण्डलपर विचरते हुए महर्षि नारदका दर्शन किया ॥ ९ ॥

स तस्मै सर्वमाचष्ट यथा वृत्तं जनेश्वरः ।
शत्रुभिर्ग्रहणं संख्ये पुत्रस्य मरणं तथा ॥ १० ॥

उस राजाने पुत्रका मरना और शत्रुओंके जरिये जिस प्रकार बन्धन प्राप्त हुआ था, वह सब वृत्तान्त उनके निकट निवेदन किया ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदोऽथ तपोधनः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं तदा ॥ ११ ॥

अनन्तर तपोधन नारदमुनि उनका यह सब वचन सुनके उस समय पुत्रशोकको दूर करनेवाला यह आख्यान कहने लगे ॥ ११ ॥

राजञ्शृणु समाख्यानमद्येदं बहुविस्तरम् ।
यथा वृत्तं श्रुतं चैव मयापि वसुधाधिप ॥ १२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! महाराज ! यह बहुत बडा उपाख्यान जिस प्रकार कहा गया था, और मैंने जैसे सुना है, उसे इस समय तुम सुनो ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रजाः सृष्ट्वा महातेजाः प्रजासर्गे पितामहः ।
अतीव वृद्धा बहुला नाम्रृष्यत पुनः प्रजाः ॥ १३ ॥

महातेजस्वी पितामहने प्रजा उत्पन्न करनेके समय बहुतसी प्रजाकी सृष्टि की; उस समय वे सब प्रजा अत्यन्त बुद्धिमान् हुई, इतनी अधिक प्रजाका होना उनसे सहन नहीं हुआ ॥१३॥

न ह्यन्तरमभूत्किंचित्कचिज्जन्तुभिरच्युत ।
निरुच्छ्वासमिवोन्नद्धं त्रैलोक्यमभवन्नृप ॥ १४ ॥

हे अच्युत ! नृप ! कोई पुरुष मृत्युके वशीभूत न हुए । उस समय कोई भी स्थान प्राणियोंसे सूना नहीं था; मानो तीनों लोक प्रजासमूहसे भर गये थे; लोगोंका सांस लेना असंभवसा हुआ ॥ १४ ॥

तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति भूपते ।
चिन्तयन्नाध्यगच्छच्च संहारे हेतुकारणम् ॥ १५ ॥

हे राजन् ! इसलिये प्रजापतिके अन्तःकरणमें प्रजाके संहारकी चिन्ता उत्पन्न हुई; वे बहुत देरतक चिन्ता करते रहनेपर भी संहारके विषयमें कोई हेतुयुक्त कारण ध्यानमें नहीं ला सके ॥ १५ ॥

तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो राजन्ददाह स पितामहः ॥ १६ ॥

हे महाराज ! क्रोध वशसे उनके इन्द्रियछिद्रोंसे अग्नि उत्पन्न हुई । हे राजन् ! पितामह उस ही अग्निके जरिये सब दिशाओंको जलानेमें प्रवृत्त हुए ॥ १६ ॥

ततो दिवं भुवं खं च जगच्च सचराचरम् ।
ददाह पावको राजन्भगवत्कोपसंभवः ॥ १७ ॥

हे महाराज ! अनन्तर ब्रह्माके कोपसे उत्पन्न हुई अग्नि द्युलोक, पृथ्वी और आकाशमण्डलमें स्थित ग्रह, नक्षत्र तथा स्थावर जङ्गमके सहित समस्त जगत्को जलाने लगे ॥ १७ ॥

तत्रादह्यन्त भूतानि जङ्गमानि ध्रुवाणि च ।
महता कोपवेगेन कुपिते प्रपितामहे ॥ १८ ॥

प्रपितामहके महाक्रोधके वेगसे कुपित होनेपर उनकी क्रोधाग्निसे स्थावर जङ्गम सब जीव जलने लगे ॥ १८ ॥

ततो हरिजटः स्थाणुर्वेदाध्वरपतिः शिवः ।
जगाद शरणं देवो ब्रह्माणं परवीरहा ॥ १९ ॥

तब पिंगलवर्ण जटासे युक्त वेदपति और यज्ञपति परवीरहन्ता भगवान् महादेव पितामहकी शरणमें गये ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नभिगते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया ।
अब्रवीद्वरदो देवो ज्वलन्निव तदा शिवम् ॥ २० ॥

जब भगवान् महादेव प्रजासमूहके हितकी इच्छासे पितामहके निकट उपस्थित हुए; उस समय मानो परम देव ब्रह्म तेजसे प्रज्वलित होकर उनसे बोले ॥ २० ॥

करवाण्यद्य कं कामं वराहोंऽसि मतो मम ।
कर्ता ह्यस्मि प्रियं शंभो तव यद्धृति वर्तते ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥ ८६४० ॥

हे शम्भु ! आज मैं तुम्हें वर ग्रहण करनेके योग्य समझता हूं; इसलिये तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं ? तुम्हारे हृदयमें जो प्रिय विषय विद्यमान है, आज मैं उसे पूर्ण करूंगा ॥ २१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४८ ॥ ८६४० ॥

२४९

स्थाणुरुवाच—

प्रजासर्गनिमित्तं मे कार्यवत्तामिमां प्रभो ।
विद्धि सृष्टास्त्वया हीमा मा कुप्यासां पितामह ॥ १ ॥

महादेव बोले—हे प्रभु पितामह ! प्रजास र्गकी रक्षाके लिये ही मेरी यह प्रार्थना समझिये; आपने समस्त प्रजाकी सृष्टि की है; इसलिये इनके ऊपर कोप न करिये ॥ १ ॥

तव तेजोग्निना देव प्रजा दह्यन्ति सर्वशः ।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं मा कुप्यासां जगत्प्रभो ॥ २ ॥

हे देव जगत्प्रभु ! आपके तेजरूपी अग्निसे सारी प्रजा सब भांतिसे जली जाती है, उसे देखके मुझे करुणा हुई है, इसलिये आप इन लोगोंके ऊपर क्रोध न करिये ॥ २ ॥

प्रजापतिरुवाच—

न कुप्ये न च मे कामो न भवेरन्प्रजा इति ।
लाघवार्थं धरण्यास्तु ततः संहार इष्यते ॥ ३ ॥

प्रजापति ब्रह्मा बोले— मैंने प्रजापर क्रोध नहीं किया है और सब प्रजा न रहे, यह भी मेरी इच्छा नहीं है । केवल पृथ्वीके भारको हलका करनेके ही लिये इनके संहारकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचोदयत् ।
संहारार्थं महादेव भारेणाप्सु निमज्जति ॥ ४ ॥

हे महादेव ! इस भारसे दुःखित वसुन्धराने, बहुतसे बोझके कारण जलमें डूबती हुई सदा संहारके लिये मुझे उत्तेजित किया है ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदाहं नाधिगच्छामि बुद्ध्या बहु विचारयन् ।
संहारमासां वृद्धानां ततो मां क्रोध आविशत् ॥ ५ ॥

मैं इन वृद्धिको प्राप्त हुई प्रजासमूहके संहारके विषयमें जब बुद्धिसे बहुत विचार करके भी कोई उपाय न देख सका, तब मुझे क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

स्थाणुरुवाच—

संहारान्तं प्रसीदस्व मा क्रुधस्त्रिदशेश्वर ।
मा प्रजाः स्थावरं चैव जङ्गमं च विनीनशः ॥ ६ ॥

महादेव बोले— हे विबुधेश्वर ! आप प्रसन्न होइये, प्रजाके संहारके निमित्त क्रोध न करिये; स्थावर, जंगम जीव— चराचर प्राणी— विनष्ट न होवें ॥ ६ ॥

पल्वलानि च सर्वाणि सर्वं चैव तृणोलपम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ ७ ॥

समस्त जलाशय तथा सब घास—लता वा चार प्रकारके (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) उत्पन्न हुए जीव ॥ ७ ॥

तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत्सर्वमुपप्लुतम् ।
प्रसीद भगवन्साधो वर एष वृतो मया ॥ ८ ॥

ये सभी भस्मप्राय हुए हैं; इससे सब जगत् नष्ट हो रहा है । हे साधु ! हे भगवन् ! इसलिये आप प्रसन्न होइये, मैं आपसे यही वर मांगता हूं ॥ ८ ॥

नष्टा न पुनरेष्यन्ति प्रजा ह्येताः कथंचन ।
तस्मान्निवर्त्यतामेतत्तेजः स्वेनैव तेजसा ॥ ९ ॥

ये सब प्रजा जो कि नष्ट हो जायगी तो वे किसी प्रकार फिर यहां आगमन न कर सकेंगी; इससे आप निज तेजके जरिये ही इस क्रोधाग्निकी निवृत्ति कीजिये ॥ ९ ॥

उपायमन्यं संपश्य प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे जन्तवः सर्वे निवर्तेरन्परंतप ॥ १० ॥

हे पितामह ! ये सब जन्तु जिसमें एक साथ भस्म न हो जावें, आप सम्पूर्ण जीवोंकी हित-कामनासे वैसा दूसरा उपाय अवलोकन करिये ॥ १० ॥

अभावमभिगच्छेयुरुत्सिन्नप्रजनाः प्रजाः ।
अधिदैवनियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेष्विहेश्वर ॥ ११ ॥

ये लोकनाथेश्वर ! आपने मुझे अहङ्काराधिष्ठातृत्वमें—देवताओंके आधिपत्य पदमें—नियुक्त किया है; इससे प्रजासमूहका प्रजननके उच्छेद निबन्धनसे जिसमें अभाव न हो, आप वैसेही किसी उपायका विधान करिये ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वद्भवं हि जगन्नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसाद्य त्वां महादेव याचाम्यावृत्तिजाः प्रजाः ॥ १२ ॥

हे जगन्नाथ ! यह स्थावर-जङ्गम जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है । हे देवोंके देव ! इसलिये मैं आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करता हूं, कि सब जीव मरनेके अनन्तर बार बार जन्म ग्रहण किया करें ॥ १२ ॥

नारद उवाच—

श्रुत्वा तु वचनं देवः स्थाणोर्नियतवाङ्मनाः ।
तेजस्तत्स्वं निजग्राह पुनरेवान्तरात्मना ॥ १३ ॥

नारदमुनि बोले— नियत वाक्य और संयतचित्त देव प्रजापतिने महादेवके उक्त वचनको सुनकर अन्तरात्मामें उस तेजको समेट लिया ॥ १३ ॥

ततोऽग्निमुपसंगृह्य भगवाँल्लोकपूजितः ।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कल्पयामास वै प्रभुः ॥ १४ ॥

अनन्तर सर्वलोकपूजित भगवान् प्रभु पितामहने अग्निको उपसंहार करके जीवोंके जन्म और मरणकी व्यवस्था कर दी ॥ १४ ॥

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तदा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यः खेभ्यो नारी महात्मनः ॥ १५ ॥

महानुभाव प्रजापतिके क्रोधज अग्निको उपसंहार करनेके समय उनके निखिल इन्द्रियरन्ध्रोंसे एक स्त्री उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥

कृष्णा रक्ताम्बरधरा रक्तनेत्रतलान्तरा ।
दिव्यकुण्डलसंपन्ना दिव्याभरणभूषिता ॥ १६ ॥

वह नारी काले और लाल वस्त्र पहने हुए, दिव्य कुण्डलोंसे युक्त, दिव्य आभूषणोंसे भूषित और उसके दोनों नेत्र और करतल लाल थे; ॥ १६ ॥

सा विनिःसृत्य वै खेभ्यो दक्षिणामाश्रिता दिशम् ।
ददृशातेऽथ तौ कन्यां देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १७ ॥

वह ब्रह्माके इन्द्रियछिद्रोंसे निकलते ही दक्षिण दिशाकी ओर चल गई; विश्वेश्वर ब्रह्मा और रुद्र उन दोनोंने ही उस कन्याको देखा ॥ १७ ॥

तामाहूय तदा देवो लोकानामादिरीश्वरः ।
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ १८ ॥

हे महाराज ! उस समय सब लोकोंके ईश्वर आदिभूत ब्रह्मा उस कन्याको मृत्यु नामसे आवाहन करके बोले, तुम इन सब प्रजाओंका समयपर संहार करो ॥ १८ ॥

Swami Anandacharya Giri (Pandit) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वं हि संहारबुद्ध्या मे चिन्तिता रुषितेन च ।
तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ १९ ॥

मैंने रुष्ट होकर प्रजाका संहार करनेके लिये तेरा स्मरण किया था; इसलिये तू मूर्ख और पण्डित सहित सभी प्रजाओंका संहार कर ॥ १९ ॥

अविशेषेण चैव त्वं प्रजाः संहर भामिनि ।
मम त्वं हि नियोगेन श्रेयः परमवाप्स्यसि ॥ २० ॥

हे कामिनी ! तुम मेरी आज्ञाके अनुसार शीघ्र प्रजाका संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ; इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा ॥ २० ॥

एवमुक्ता तु सा देवी मृत्युः कमलमालिनी ।
प्रदध्यौ दुःखिता बाला साश्रुपातमतीव हि ॥ २१ ॥

जब कमलमालिनी मृत्यु देवीसे प्रजापतिने ऐसा कहा, तब वह कन्या अत्यन्त दुःखित होकर आंसू बहाती हुई चिन्ता करने लगी ॥ २१ ॥

पाणिभ्यां चैव जग्राह तान्यश्रूणि जनेश्वरः ।
मानवानां हितार्थाय ययाचे पुनरेव च ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥ ८६६२ ॥

मृत्युके आंसू गिरनेसे इकबारगी सब भूतोंका नाश न होजाय, इस ही आशङ्कासे प्रजापतिने अपने दोनों हाथकी अञ्जलीमें मानवोंके हितके लिये उसके आंसुओंको ग्रहण किये; फिर मृत्यूने उनके निकट प्रार्थना की ॥ २२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ २४९ ॥ ८६६२ ॥

---

२५० ॥

नारद उवाच—

विनीय दुःखमबला सा त्वतीवायतेक्षणा ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता तदा ॥ १ ॥

नारदमुनि बोले– वह विशालनयनी अबला स्वयं ही दुःख दूर करके उस समय झुकायी हुई लताकी भांति विनीतभावसे हाथ जोडके बोली ॥ १ ॥

त्वया सृष्टा कथं नारी मादृशी वदतां वर ।
रौद्रकर्माभिजायेत सर्वप्राणिभयंकरी ॥ २ ॥

हे वक्तृवर ! आपने मेरे समान स्त्री क्यों उत्पन्न की ? मेरे समान अबलाके जरिये सब प्राणियोंके लिये भयङ्कर रौद्रकर्म किस प्रकार साधित होवेगा ? ॥ २ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बिभेम्यहमधर्मस्य धर्म्यमादिश कर्म मे ।
त्वं मां भीतामवेक्षस्व शिवेनेश्वर चक्षुषा ॥ ३ ॥

मैं अधर्मसे अत्यन्त डरती हूं; इसलिये आप मेरे विषयमें धर्मविहित कर्म करनेकी आज्ञा करिये; आप मुझे भयार्त्त देख रहे हैं; इससे कल्याणकारी नेत्रसे अवलोकन करिये ॥ ३ ॥

बालान्वृद्धान्वयःस्थांश्च न हरेयमनागसः ।
प्राणिनः प्राणिनामीश नमस्तेऽभिप्रसीद मे ॥ ४ ॥

हे प्रजेश्वर ! मैं निरपराध बाल, बूढे वा युवा प्राणियोंके प्राण हरण न कर सकूंगी; मैं आपको नमस्कार करती हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ ४ ॥

प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातॄन्मातॄः पितॄनपि ।
अपध्यास्यन्ति यदेव मृतांस्तेषां बिभेम्यहम् ॥ ५ ॥

जिनके प्रिय पुत्र, सखा, भाई, माता और पिता आदिको मैं हरण करूंगी, वे यदि मुझे शाप देवें, उस ही निमित्त उन लोगोंसे मैं अत्यन्त भयभीत हुई हूं; ॥ ५ ॥

कृपणाश्रुपरिक्लेदो दहेन्मां शाश्वतीः समाः ।
तेभ्योऽहं बलवद्भीता शरणं त्वामुपागता ॥ ६ ॥

दीन–दुःखित प्राणियोंकी आंखोंके आंसू मुझे सदा जलावेंगे, इसलिये मैं वैसे प्राणियोंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपकी शरणागत हुई हूं ॥ ६ ॥

यमस्य भवने देव यात्यन्ते पापकर्मिणः ।
प्रसादये त्वा वरद प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७ ॥

हे देव ! पाप कर्म करनेवाले मनुष्य ही यम लोकमें गमन करते हैं; हे वरदायक ! इससे आपसे प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करती हूं, आप मुझपर कृपा करिये ॥ ७ ॥

एतमिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ।
इच्छेयं त्वत्प्रसादाच्च तपस्तप्तुं सुरेश्वर ॥ ८ ॥

हे लोकपितामह महेश्वर ! मैं आपके निकट यही प्रार्थना करती हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिये मुझे तपस्या करनेकी इच्छा है, आप इस विषयमें आज्ञा करिये ॥ ८ ॥

पितामह उवाच—

मृत्यो संकल्पिता मे त्वं प्रजासंहारहेतुना ।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा च विचारय ॥ ९ ॥

ब्रह्मा बोले– हे मृत्यु ! मैंने प्रजा संहार करनेके लिये ही तुम्हें संकल्पपूर्वक उत्पन्न किया है, इससे जाके सब प्रजाका संहार करो, इस विषयमें और वितर्क मत करो; ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतदेवमवश्यं हि भविता नैतदन्यथा ।
क्रियतामनवद्याङ्गि यथोक्तं मद्वचोऽनघे ॥ १० ॥

मैंने जैसा सङ्कल्प किया है, वह अवश्य वैसा ही होगा, उसमें कभी उलट फेर न होगा । हे पापरहित अनिन्दिते ! मैंने जो वचन कहा है, उसे प्रतिपालन करो ॥ १० ॥

नारद उवाच—

एवमुक्ता महाबाहो मृत्युः परपुरंजय ।
न व्याजहार तस्थौ च ब्रह्मा भगवदुन्मुखी ॥ ११ ॥

नारद बोले—हे पराये देशको जीतनेवाले महाबाहु महाराज ! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा वचन सुनके कुछ भी न बोली, केवल नम्रभावसे भगवान्‌के निकट सिर झुकाकर, स्थिति करने लगी; ॥११॥

पुनः पुनरथोक्ता सा गतसत्त्वेव भामिनी ।
तूष्णीमासीत्ततो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ॥ १२ ॥

उनके बार बार कहनेपर भी जब वह भामिनी चेतनारहितकी भांति चुपी साध गई; तब देवेश्वर ॥ १२ ॥

प्रससाद किल ब्रह्मा स्वयमेवात्मनात्मवान् ।
समयमानश्च लोकेशो लोकान्सर्वानवैक्षत ॥ १३ ॥

ब्रह्मा आपसे आप ही प्रसन्न हुए और उन लोकनाथने विस्मित होकर सब लोकोंको देखा ॥ १३ ॥

निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्यापजगामास्य समीपादिति नः श्रुतम् ॥ १४ ॥

अनन्तर उन पराजयरहित भगवान्‌का क्रोध निवृत्त होनेपर वह कन्या उनके निकटसे चली गई, ऐसा हमने सुना है ॥ १४ ॥

अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणेव राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्ययात् ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र ! मृत्यु उस समय प्रजाका संहार करनेके विषयमें कुछ निश्चितरूपसे निर्णय न लेकर वहांसे दूर गयी और शीघ्रताके सहित धेनुक तीर्थमें गई ॥ १५ ॥

सा तत्र परमं देवी तपोऽचरत दुश्चरम् ।
समा ह्येकपदे तस्थौ दश पद्मानि पञ्च च ॥ १६ ॥

वह देवी धेनुक तीर्थमें परम दुष्कर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई । वह पन्द्रह पद्म वर्षपरिमाणसे एक चरणसे खडी होके स्थिति करने लगी ॥ १६ ॥

तां तथा कुर्वतीं तत्र तपः परमदुश्चरम् ।
पुनरेव महातेजा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

जब मृत्यु उस स्थानमें इस प्रकार दुष्कर तपस्या कर रही थी, उस समय महातेजस्वी ब्रह्मा फिर जाकर उससे यह वचन बोले— ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कुरुष्व मे वचो मृत्यो तदनादृत्य सत्वरा ।
तथैवैकपदे तात पुनरन्यानि सप्त सा ॥ १८ ॥

हे मृत्यु ! मेरे वचनका परिपालन करो । मृत्यु उनके वचनका अनादर करके शीघ्रतापूर्वक फिर सात पद्म वर्ष परिमाण एक चरणसे खडी रही ॥ १८ ॥

तस्थौ पद्मानि षट्चैव पञ्च द्वे चैव मानद ।
भूयः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ॥ १९ ॥

हे मानद ! इसी प्रकार पर्याय क्रमसे उसने तेरह पद्म वर्ष व्यतीत किया । शेषमें वह फिर अयुतपद्म वर्ष पर्यन्त मृगसमूहोंके सहित घूमती रही ॥ १९ ॥

पुनर्गत्वा ततो राजन्मौनमातिष्ठदुत्तमम् ।
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च पार्थिव ॥ २० ॥

हे राजन् ! अनन्तर उसने अत्यन्त कठोर उत्तम मौनव्रत अवलम्बन किया; फिर आठ हजार वर्षोंतक जलमें निवास करके तपस्या की ॥ २० ॥

ततो जगाम सा कन्या कौशिकीं भरतर्षभ ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर उस कन्याने कौशिकी नदीके तटपर गमन किया; वहां वायु और जल पीके फिर नियमाचरण करने लगी ॥ २१ ॥

ततो ययौ महाभागा गङ्गां मेरुं च केवलम् ।
तस्थौ दार्विव निश्चेष्टा भूतानां हितकाम्यया ॥ २२ ॥

अन्तमें वह महाभागा गङ्गा नदी और केवल सुमेरु पर्वतपर गई । वहां प्रजासमूहके हितकामनाके लिये स्थाणुकी भांति केवल निश्चेष्ट होरही ॥ २२ ॥

ततो हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः समीजिरे ।
तत्राङ्गुष्ठेन राजेन्द्र निखर्वमपरं ततः ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास यत्नतः ॥ २३ ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर हिमालय पर्वतके शिखरपर जहां देवताओंने यज्ञ किया था; वहांपर वह एक निखर्व वर्ष पर्यन्त अंगूठेके बल स्थित रही और इस प्रकार परम यत्नसे उसने प्रजापतिको प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

ततस्तामब्रवीत्तत्र लोकानां प्रभवाप्ययः ।
किमिदं वर्तते पुत्रि क्रियतां तद्वचो मम ॥ २४ ॥

उस समय सब लोकोंकी सृष्टि और प्रलयके कारण प्रजापति उससे बोले—हे पुत्री ! यह क्या होरहा है ? मेरा पहला वचन परिपालन करो ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Ganga Tatpuri. Vedic Nidhi, Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ।
न हरेयं प्रजा देव पुनस्त्वाहं प्रसादये ॥ २५ ॥

पितामहका वचन सुनके मृत्युने उन भगवान्‌से फिर कहा, हे देव ! मैं प्रजासमूहका संहार नहीं करूंगी, मैं फिर आपको प्रसन्न करती हूं ॥ २५ ॥

तातधर्मभयत्रस्तां पुनरेव च याचतीम् ।
तदाब्रवीद्देवदेवो निगृह्येदं वचस्ततः ॥ २६ ॥

देवोंके देव पितामह उस कन्याको अधर्मके भयसे डरी हुई तथा फिर प्रार्थना करती हुई देख, निज वाक्यका निग्रह करके यह वचन बोले– ॥ २६ ॥

अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संयच्छेमाः प्रजाः शुभे ।
मया ह्युक्तं मृषा भद्रे भविता नेह किंचन ॥ २७ ॥

हे शुभे ! तुम इन सब प्रजाको संयत करो, इससे तुम्हें अधर्म न होगा । हे कल्याणि ! मैंने जो कुछ कहा है, वह यहां मिथ्या न होगा ॥ २७ ॥

धर्मः सनातनश्च त्वामिहैवानुप्रवेक्ष्यते ।
अहं च विबुधाश्चैव त्वद्धिते निरताः सदा ॥ २८ ॥

सनातन धर्म इस समय तुम्हें अवलम्बन करेगा; मैं तथा दूसरे देवता लोग सब कोई तुम्हारे हितमें रत रहेंगे ॥ २८ ॥

इममन्यं च ते कामं ददानि मनसेप्सितम् ।
न त्वा दोषेण यास्यन्ति व्याधिसंपीडिताः प्रजाः ॥ २९ ॥

तुम्हारी यह अभिलाषा तथा और जो कुछ तुम्हारे मनमें अभिलषित विषय है; उसे प्रदान करता हूं; व्याधिसे पीडित हुई प्रजा तुम्हें दोषी न करेंगी ! ॥ २९ ॥

पुरुषेषु च रूपेण पुरुषस्त्वं भविष्यसि ।
स्त्रीषु स्त्रीरूपिणी चैव तृतीयेषु नपुंसकम् ॥ ३० ॥

तुम प्रतिपुरुषमें निज स्वरूपसे पुरुषत्वको प्राप्त होगी; स्त्रियोंमें स्त्रीरूपी होगी और नपुंसकोंमें नपुंसकत्व लाभ करोगी ॥ ३० ॥

सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरुवाच ह ।
पुनरेव महात्मानं नेति देवेशमव्ययम् ॥ ३१ ॥

हे महाराज ! प्रजापतिका ऐसा वचन सुनके फिर मृत्यु उस अव्यय महात्मा देवेश्वरके समीप हाथ जोडके प्रजासंहारके विषयमें अनङ्गीकार वचन ही कहने लगी ॥ ३१ ॥

तामब्रवीत्तदा देवो मृत्यो संहर मानवान् ।
अधर्मस्ते न भविता तथा ध्यास्याम्यहं शुभे ॥ ३२ ॥

देव पितामह उस समय उससे बोले, हे मृत्यु ! तुम मनुष्योंका संहार करो । हे शुभे ! जिसमें तुम्हें अधर्म न हो, मैं उसही उपायको सोचूंगा; तुम्हारा शुभ–चिन्तन करूंगा ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Public Trust Vedic Nidhi, Varanasi. Digitized by eGangotri

यानश्रुबिन्दून्पतितानपश्यं ये पाणिभ्यां धारितास्ते पुरस्तात् ।
ते व्याधयो मानवान्घोररूपाः प्राप्ते काले पीडयिष्यन्ति मृत्यो ॥ ३३ ॥

हे मृत्यु ! तुम्हारे जिन सब आंसुओंकी बिन्दुओंको गिरते हुए देखके मैंने तुम्हारे सम्मुखमें ही अपने हाथोंमें धारण किया था, वेही भयङ्कर व्याधि होकर समय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको तुम्हारे वशीभूत करेंगे ॥ ३३ ॥

सर्वेषां त्वं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ सहितौ योजयथाः ।
एवं धर्मस्त्वामुपैष्यत्यमेयो न चाधर्मं लप्स्यसे तुल्यवृत्तिः ॥ ३४ ॥

तुम सब प्राणियोंके अन्तकालमें इकबारगी मरणके निदान काम और क्रोधको प्रेरणा करोगी; ऐसा होनेसे नित्य धर्म तुम्हें अवलम्बन करेगा अर्थात् काम क्रोधको प्रकट कर उसहीके जरिये जीवोंका संहार करके तुम रागद्वेषसे रहित होनेके कारण अधर्मभाजन न होगी ॥३४॥

एवं धर्मं पालयिष्यस्यथोक्तं न चात्मानं मज्जयिष्यस्यधर्मे ।
तस्मात्कामं रोचयाभ्यागतं त्वं संयोज्याथो संहरस्वेह जन्तून् ॥ ३५ ॥

तुम इस ही प्रकार धर्म पालन करोगी, किसी भांति आत्माको अधर्ममें निमग्न न करोगी; इसलिये तुम इच्छानुसार निज अधिकारकी अभिलाष करो और कामको प्रकट करके अब जीवोंके संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ ॥ ३५ ॥

सा वै तदा मृत्युसंज्ञापदेशाच्छापांद्भीता बाढमित्यब्रवीत्तम् ।
अथो प्राणान्प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ प्राप्य निर्मोह्य हन्ति ॥ ३६ ॥

मृत्यु नामी कामिनी उस समय शापभयसे डरके ब्रह्मासे बोली, " वैसा ही करूंगी " । अनन्तर वह प्राणियोंके अन्तकालमें काम–क्रोधको प्रेरणा कर और सबको मोहित करके प्राणियोंका नाश किया करती है ॥ ३६ ॥

मृत्योर्ये ते व्याधयश्चाश्रुपाता मनुष्याणां रुज्यते यैः शरीरम् ।
सर्वेषां वै प्राणिनां प्राणानान्ते तस्माच्छोकं मा कृथा बुध्य बुद्ध्या ॥ ३७ ॥

पहले मृत्युके जो सब आंसू गिरे थे, वेही ज्वर आदि रोग– व्याधि स्वरूप हुए हैं, उन्हीं व्याधियोंके जरिये मनुष्योंका शरीर रोगयुक्त हुआ करता है; मृत्यु सब प्राणियोंकी आयु समाप्त होनेपर उनके पास आती है; इससे प्राणियोंके जीवन नष्ट होनेपर शोक करना उचित नहीं है, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक मत करो । बुद्धिके जरिये यथार्थ विषय मालूम करो ॥ ३७ ॥

सर्वे देवाः प्राणिनां प्राणनान्ते गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव ।
एवं सर्वे मानवाः प्राणनान्ते गत्वावृत्ता देववद्राजसिंह ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! जैसे इन्द्रियां सुषुप्ति अवस्थामें सद्वस्तुके संग लीन होके जाग्रत् अवस्थामें फिर लौटती हैं, वैसेही मनुष्य लोग जीवन नाश होनेपर परलोकमें गमन करके देवताओंके तुल्य वा नरकगामी होते हैं और कर्मोंके क्षीण होनेपर इस जगत्में लौटकर जन्म ग्रहण करते हैं ॥३८॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वायुर्भीमो भीमनादो महौजाः सर्वेषां च प्राणिनां प्राणभूतः ।
नानावृत्तिर्देहिनां देहभेदे तस्माद्वायुर्देवदेवो विशिष्टः ॥ ३९ ॥

भयङ्कर शब्दसे युक्त महा तेजस्वी भयानक वायु सब प्राणियोंका प्राणभूत है; वह वायु देहधारियोंके देहका नाश होनेपर नाना वृत्ति अर्थात् अनेक शरीरगत हुआ करता है; इसलिये शरीरमें देवाधिदेव वायुही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टाः सर्वे मर्त्या देवसंज्ञाविशिष्टाः ।
तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह पुत्रः स्वर्गं प्राप्य ते मोदते ह ॥ ४० ॥

सब देवता लोग पुण्य क्षीण होनेपर मर्त्य मनुष्य होते हैं और मर्त्य मनुष्य पुण्यात्मा होनेसे देवत्व लाभ करते हैं । हे राजन् ! इसलिये पुत्रके निमित्त शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र स्वर्गलाभ करके आनन्दित होरहा है ॥ ४० ॥

एवं मृत्युर्दैवसृष्टा प्रजानां प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत् ।
तस्याश्चैव व्याधयस्तेऽश्रुपाताः प्राप्ते काले संहरन्तीह जन्तून् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥ ८७०३ ॥

इसही प्रकार देवसृष्ट मृत्यु समय उपस्थित होनेपर प्रजाका संहार करती है; उसके वेही सब आंसू व्याधि होकर समयके अनुसार जीवोंको हरण किया करता है ॥ ४१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ २५० ॥ ८७०३ ॥

२५१

युधिष्ठिर उवाच—

इमे वै मानवाः सर्वे धर्मं प्रति विशङ्किताः ।
कोऽयं धर्मः कुतो धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! ये सब मनुष्य आर्य, जैन, म्लेच्छ आदि शास्त्रीय धर्मके नानात्व निबन्धनसे उस विषयमें सन्देहयुक्त होते हैं; इससे धर्मका स्वरूप और लक्षण क्या है ? तथा कहांसे धर्मकी उत्पत्ति हुआ करती है ? आप मेरे समीप वह वर्णन करिये ॥ १ ॥

धर्मो न्वयमिहार्थः किममुत्रार्थोऽपि वा भवेत् ।
उभयार्थोऽपि वा धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

और धर्म इस लोकके लिये, वा परलोकके लिये अथवा दोनों लोकोंके निमित्त है ? यह भी आप मुझसे विशेष रीतिसे कहिये ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम् ।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन प्रकार धर्मके लक्षण हैं, और अर्थको भी पण्डित लोग चतुर्थ लक्षण कहा करते हैं ॥ ३ ॥

अपि ह्युक्तानि कर्माणि व्यवस्यन्त्युत्तरावरे ।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ।
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च । ॥ ४ ॥

महर्षि लोग धर्मके निमित्त हितकर कर्मोंको न्यूनाधिक भावसे निश्चय करते हैं, लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये धर्मका नियम निर्णीत हुआ है । इस लोक और परलोक दोनों ओर धर्मके फल दीख पडते हैं ॥ ४ ॥

अलब्ध्वा निपुणं धर्मं पापः पापे प्रसज्जति ।
न च पापकृतः पापान्मुच्यन्ते केचिदापदि ॥ ५ ॥

पापी मनुष्य निपुण भावसे धर्म प्राप्तिमें असमर्थ होकर पापयुक्त होता है । कोई कोई ऐसा कहा करते हैं, कि पाप करनेवाले पुरुष आपद कालमें कष्ट भोगकर भी पापोंसे नहीं छूटते ॥ ५ ॥

अपापवादी भवति यदा भवति धर्मवित् ।
धर्मस्य निष्ठा स्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे ॥ ६ ॥

धर्मवित् पुरुष आपत्तिकालमें भी अपापवादी हुआ करते हैं, पापका समर्थन नहीं करते हैं; आचार ही धर्मकी निष्ठा है; इसलिये तुम उस आचारका अवलम्बन करनेसे ही धर्मको जान सकोगे ॥ ६ ॥

यदाधर्मसमाविष्टो धनं गृह्णाति तस्करः ।
रमते निर्हरन्स्तेनः परवित्तमराजके ॥ ७ ॥

अधर्मसमाविष्ट तस्कर जब परधनको हरता ही है, अथवा अराजक समयमें पराये वित्तको अपना कर लेता है, उस समय वह परम सुखी होता हैं ॥ ७ ॥

यदास्य तद्धरन्त्यन्ये तदा राजनमिच्छति ।
तदा तेषां स्पृहयते ये वै तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥ ८ ॥

परन्तु जब उस तस्करके धनको भी दूसरे लोग हर लेते हैं, तब वह चोर भी प्रजाकी रक्षा करनेवाले और दण्ड देनेवाले राजाकी इच्छा करता है; तब जो लोग निज धनसे सन्तुष्ट हैं, वह उनकी स्पृहा किया करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhu) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अभीतः शुचिरभ्येति राजद्वारमशङ्कितः ।
न हि दुश्चरितं किंचिदन्तरात्मनि पश्यति ॥ ९ ॥

जो पवित्र है वह निर्भय और अशंकित होकर राजद्वारमें प्रवेश करता है; वह अपनी अन्तरात्मामें कुछ भी दुश्चरित्र नहीं देखता ॥ ९ ॥

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम् ।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । ॥ १० ॥

सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; सत्यसे सारा संसार धारण हुआ करता है, समस्त जगत् सत्यसे ही प्रतिष्ठित है ॥ १० ॥

अपि पापकृतो रौद्राः सत्यं कृत्वा पृथक्पृथक् ।
अद्रोहमविसंवादं प्रवर्तन्ते तदाश्रयाः ।
ते चेन्मिथोऽधृतिं कुर्युर्विनश्येयुरसंशयम् ॥ ११ ॥

रौद्र कर्म करनेवाले पापाचारी मनुष्य भी पृथक् पृथक् सत्यकी शपथ करके सत्यके आश्रयसे अद्रोह और अविसंवादमें स्थित रहते हैं; वे सत्यका आश्रय लेकर कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे लोग यदि परस्परकी प्रतिज्ञा भङ्ग करें, तो निश्चयही परस्पर लडकर निःसंशय विनष्ट होवें ॥ ११ ॥

न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः ।
मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः संप्रवर्तितम् ।
यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते ॥ १२ ॥

परधनका हरन करना उचित नहीं, यही सनातन धर्म है। बलवान् पुरुष धर्मको निर्बलोंके जरिये प्रवर्त्तित हुआ समझते हैं; परंतु जिस समय बलवानोंको दैवकी प्रतिकूलतासे निर्बलता प्राप्त होती है, तब उन लोगोंकी भी धर्ममें रुचि हुआ करती है ॥ १२ ॥

न ह्यत्यन्तं बलयुता भवन्ति सुखिनोऽपि वा ।
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न कार्या ते कथंचन ॥ १३ ॥

जगत्में कोई भी अत्यन्त बलवान् नहीं होते और सुखी भी नहीं होते; इसलिये तुम्हें अनार्जव अर्थात् कुटिल कार्योंमें कभी भी बुद्धि लगानी उचित नहीं है ॥ १३ ॥

असाधुभ्योऽस्य न भयं न चोरेभ्यो न राजतः ।
न किंचित्कस्यचित्कुर्वन्निर्भयः शुचिरावसेत् ॥ १४ ॥

सत्यवादी पुरुष असाधु, तस्कर और राजासे भयभीत नहीं होता, वह किसी पुरुषका कुछ अनिष्ट नहीं करता; इसहीसे निर्भय और पवित्र हृदयसे निवास किया करता है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वतः शङ्कते स्तेनो मृगो ग्राममिवेयिवान् ।
बहुधाचरितं पापमन्यत्रैवानुपश्यति ॥ १५ ॥

गांवमें आये हुए हरिनकी भांति तस्कर सब लोगोंसे डरता है; जैसे वह स्वयं दूसरोंके साथ बहुतसा पाप कार्य कर चुका है, दूसरोंको भी वैसाही समझता है ॥ १५ ॥

मुदितः शुचिरभ्येति सर्वतो निर्भयः सदा ।
न हि दुश्चरितं किंचिदात्मनोऽन्येषु पश्यति ॥ १६ ॥

जो शठ होता है, वह दूसरोंको भी शठ समझता है; और शुद्धहृदय तथा सदाशयवाला पुरुष सदा आनन्दित और निर्भय होकर सब ठौर विचरता है; अपने दुश्चरितके विषय आत्मासे पृथक् नहीं देखता ॥ १६ ॥

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः ।
तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः संप्रवर्तितम् ॥ १७ ॥

सब भूतोंके हितमें रत महर्षियोंने " दान करना चाहिये, " इसेही धर्म कहा है; धनवान् मनुष्य उसही धर्मको निर्द्धनोंसे प्रवर्त्तित हुआ समझते हैं ॥ १७ ॥

यदा नियतिकार्पण्यमथैषामेव रोचते ।
न ह्यत्यन्तं धनवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा ॥ १८ ॥

दैववशमे जब वे भी दीनदशासे युक्त होजाते हैं, उस समयमें उन्हें भी उसही धर्ममें रुचि उत्पन्न होती है; क्योंकि कोई भी अत्यन्त धनवान् पुरुष नहीं होते हैं और अत्यंत सुखी भी नहीं हुआ करते हैं ॥ १८ ॥

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः ।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥ १९ ॥

जब मनुष्य दूसरेके किये हुए कर्मको आत्मकृत् कर्म कहनेकी अभिलाषा नहीं करता, तब वह जिस कर्मको अपना अप्रिय समझता है, दूसरेके लिये उसे कभी न करे, यह वह जाने ॥१९॥

योऽन्यस्य स्यादुपपतिः स कं किं वक्तुमर्हति ।
यदन्यस्तस्य तत्कुर्यान्न मृष्येदिति मे मतिः ॥ २० ॥

जो पुरुष पराई स्त्रीका उपपति होता है, वह स्वयं दोषी है, इसलिये वह दूसरेको क्या कह सकेगा ? वह यदि दूसरे पुरुषको उक्त कार्य करते हुए देखे और उस कारण उसकी निन्दा करे, तो मुझे बोध होता है, वह पुरुष उसकी निन्दा नहीं सह सकेगा ॥ २० ॥

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि इच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥

जो पुरुष स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है, वह किस प्रकार दूसरेका वध कर सकेगा ? इसलिये अपने लिये जैसी अभिलाष करे, दूसरेके वास्ते भी वैसी ही इच्छा करनी उचित है ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अतिरिक्तैः संविभजेद्भोगैरन्यानकिंचनान् ।
एतस्मात्कारणाद्धात्रा कुसीदं संप्रवर्तितम् ॥ २२ ॥

स्वीकार आवश्यकके अतिरिक्त भोगसाधन धन आदिके जरिये दीनजनोंका भरणपोषण करे; इस ही निमित्त विधाताने कुसीद अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन-प्रयोग प्रवर्त्तित किया है; दीन-दरिद्रोंके पालने पोषनेके लिये ही धनकी वृद्धि करनी चाहिये, नहीं तो केवल धनकी वृद्धि हो, यह उद्देश्य अत्यन्त निकृष्ट है ॥ २२ ॥

यस्मिंस्तु देवाः समये संतिष्ठेरंस्तथा भवेत् ।
अथ चेल्लाभसमये स्थितिर्धर्मेऽपि शोभना ॥ २३ ॥

जिस सन्मार्गमें निवास करनेसे देवता लोग भी सम्मुखवर्त्ती हुआ करते हैं, वैसे सन्मार्गमें सदा विचरता रहे, अर्थात् सदा दम, दान और दयायुक्त होवे, अथवा लाभके समय यज्ञ, दान आदि धर्ममें अनुरक्त होना उत्तम कार्य है ॥ २३ ॥

सर्वं प्रियाभ्युपगतं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
पश्यैतं लक्षणोद्देशं धर्माधर्मे युधिष्ठिर ॥ २४ ॥

हे युधिष्ठिर ! प्रिय वाक्यसे जो कुछ प्राप्त होता है, मनीषी लोग उसेही धर्म कहा करते हैं; जो अपनेको प्रिय है, दूसरेके विषयमें वैसा ही करना चाहिये; जो अपनेको प्रिय नहीं है, दूसरेके सम्बन्धमें वैसा करना योग्य नहीं है । यह जो मैंने धर्म-अधर्मका लक्षण वर्णन किया है, तुम उसकी आलोचना करो ॥ २४ ॥

लोकसंग्रहसंयुक्तं विधात्रा विहितं पुरा ।
सूक्ष्मधर्मार्थनियतं सतां चरितमुत्तमम् ॥ २५ ॥

पहले समयमें विधाताने साधुओंके दयाप्रधान सत् चरित्रको ही सूक्ष्म धर्म जाननेका साधन है, ऐसा कहा था । वह कल्याणमय है और उससे धर्म और अर्थके सूक्ष्म तत्त्वका ज्ञान होता है ॥ २५ ॥

धर्मलक्षणमाख्यातमेतत्ते कुरुसत्तम ।
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न कार्या ते कथंचन ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥ ८७२९ ॥

हे कुरुसत्तम ! यही तुम्हारे निकट धर्मका लक्षण वर्णन किया गया; इसे सुनकर तुम किसी प्रकार अनार्जव कार्योंमें बुद्धि निवेश न करना ॥ २६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ २५१ ॥ ८७२९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

२५२

युधिष्ठिर उवाच—

सूक्ष्मं साधु समादिष्टं भवता धर्मलक्षणम् ।
प्रतिभा त्वस्ति मे काचित्तां ब्रूयामनुमानतः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! वेदैकगम्य साधुसमुदिष्ट धर्मका लक्षण अत्यंत सूक्ष्म है, यह आपने कहा; हमारी कोई प्रतिभा है, उसहीको अवलम्बन करके अनुमानके जरिये मैं यह सब प्रश्न करता हूं ॥ १ ॥

भूयांसो हृदये ये मे प्रश्नास्ते व्याहृतास्त्वया ।
इममन्यं प्रवक्ष्यामि न राजन्विग्रहादिव ॥ २ ॥

राजन् ! मेरे हृदयमें बहुतसे प्रश्न थे, उनमेंसे आपने अधिकांशके उत्तर दिये हैं, अब दूसरी प्रकारका एक प्रश्न करता हूं, उस विषयमें कुतर्क करनेका मुझे आग्रह नहीं है, पूंछना ही मुख्य प्रयोजन है ॥ २ ॥

इमानि हि प्रपद्यन्ति सृजन्त्युत्तारयन्ति च ।
न धर्मः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम् ॥ ३ ॥

हे भारत ! यह प्रसिद्ध ही है, कि ये समस्त शरीरयुक्त प्राणी स्वयं ही जीवन लाभ करते हैं, स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और स्वयं ही उत्तीर्ण अर्थात् देहाकारसे च्युत होते हैं; ऐसी जनश्रुति है, कि अन्नसे ये सब जीव जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म ग्रहण करके अन्नसे ही जीवित रहते हैं, और अन्त समय अन्नमें जाके प्रवेश किया करते हैं; आपने कहा है दूसरोंके सुख दुःख उत्पादनसे जो धर्माधर्म उत्पन्न होता है वह कालान्तरमें अपना सुख दुःखप्रद हुआ करता है, इसलिये केवल वेदाध्ययनसे ही धर्मका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि व्यवस्थाके अभावके कारण वैदिक धर्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है ॥ ३ ॥

अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः ।
आपदस्तु कथं शक्याः परिपाठेन वेदितुम् ॥ ४ ॥

सब सुस्थित पुरुषोंके धर्म स्वतन्त्र हैं और विषमस्थ लोगोंका स्वतन्त्र धर्म है; आपदका अन्त नहीं है; इसलिये धर्मको भी अनन्त कहना होगा । अनन्त होनेसे ही धर्म दुर्ज्ञेय हुआ; इसलिये अव्यवस्थित वैदिक धर्मका धर्मत्व किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा ? केवल वेदोंके पाठसे आपद्धर्मका ज्ञान कैसे होगा ? ॥ ४ ॥

सदाचारो मतो धर्मः सन्तस्त्वाचारलक्षणाः ।
साध्यासाध्यं कथं शक्यं सदाचारो ह्यलक्षणम् ॥ ५ ॥

और सदाचारको आपने धर्म कहा है, परन्तु धर्माचरणसे ही लोगोंमें सत् हुआ करता है; इसलिये लक्ष्य और लक्षणके अन्योन्याश्रय दोषसम्पर्कसे सदाचारको धर्मलक्षण रूपसे किस प्रकार स्वीकार किया जावे ? ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दृश्यते धर्मरूपेण अधर्मं प्राकृतश्चरन् ।
धर्मं चाधर्मरूपेण कश्चिदप्राकृतश्चरन् ॥ ६ ॥

यह दीख पडता है, कि कोई प्राकृत पुरुष धर्मरूपसे अधर्म करता है और कोई असाधारण मनुष्य अधर्मरूपसे धर्माचरण करता है । शूद्र जातिको वेद सुनना शास्त्रमें मना होनेपर भी प्राकृत शूद्र धर्मबुद्धिके कारण मुमुक्षु होकर वेदान्त सुना करते हैं और अगस्त्य आदि असाधारण महर्षियोंने बहुतसे हिंसायुक्त अधर्माचरण किये हैं; इसलिये भ्रष्ट लोगोंमें शिष्ट लक्षण दीख पडनेसे सदाचारका भी निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है; परन्तु धर्म जाननेवाले पुरुषोंने धर्मके यही प्रमाण निर्देश किये हैं ॥ ६ ॥

पुनरस्य प्रमाणं हि निर्दिष्टं शास्त्रकोविदैः ।
वेदवादाश्चानुयुगं ह्रसन्तीति ह नः श्रुतम् ॥ ७ ॥

शास्त्रवित् पुरुषोंने धर्ममें वेदोंको ही प्रमाण बताया है; हमने सुना है कि युग-युगमें वेदोंकी मर्यादा घटती हुई जाती है, इसलिये कालभेदसे जब कि वेदमें भी अन्यथा देखी जाती है, तब वह अनवस्थित वेदवाक्य भी अश्रद्धेय होसकता है ॥ ७ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे धर्मा यथाशक्तिकृता इव ॥ ८ ॥

सत्ययुगका धर्म स्वतन्त्र है; त्रेता और द्वापरके स्वतन्त्र धर्म हैं और कलियुगका धर्म उनसे पृथक् है; मानो यह लोगोंको शक्तिके अनुसार विहित हुआ है ॥ ८ ॥

आज्ञायवचनं सत्यमित्ययं लोकसंग्रहः ।
आज्ञायेभ्यः परं वेदाः प्रसृता विश्वतोमुखाः ॥ ९ ॥

"वेदोंके सब वचन सत्य हैं," यह कहना केवल लोकरञ्जनमात्र है; और वेदोंसे निकली हुई स्मृतियां सब विश्वमें प्रसृत हुई हैं; इसलिये किस प्रकार स्मृतिवाक्य प्रमाण किया जा सकता है ? ॥ ९ ॥

ते चेत्सर्वे प्रमाणं वै प्रमाणं तत्र विद्यते ।
प्रमाणे चाप्रमाणे च विरुद्धे शास्त्रता कुतः ॥ १० ॥

सबका प्रमाण वेदवाक्य सारी स्मृतियोंके प्रमाणको सिद्ध करता है, यदि यह अङ्गीकार किया जावे, तो वेदवाक्यका निरपेक्षत्व निबन्धन प्रमाण स्वीकार करना होगा और सब स्मृतियां श्रुति-संक्षेप कहके अप्रमाण रूपसे परिगणित हुआ करती हैं; परन्तु अप्रमाणरूपी स्मृतिके सङ्ग जब श्रुतिका विरोध दीख पडता है, तब मूलभूत वेदवाक्यका भी अप्रमाणत्व निबन्धन एकपक्षपातिनी युक्तिके विना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रुति तथा स्मृति दोनोंके ही अप्रमाणके कारण शास्त्रत्व सिद्धि किस प्रकार हो सकती है ? ॥ १० ॥

CC-0. Swami Kumarananda Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः।
या या विक्रियते संस्था ततः सापि प्रणश्यति ॥ ११ ॥

बलवान् दुरात्मा पुरुषोंके जरिये ह्रियमाण धर्मका जो जो विकृत स्वरूप होता है, उसके कारण धर्ममर्यादाका ही लोप होता है ॥ ११ ॥

विद्म चैवं न वा विद्म शक्यं वा वेदितुं न वा।
अणीयान्क्षुरधारायां गरीयान्पर्वतादपि ॥ १२ ॥

हम स्वयं इस धर्मको जानें वा न जानें, अथवा जान सकें, वा न जान सकें; तौ भी धर्म छुरेकी धारसे भी सूक्ष्म और पहाडसे भी गुरुतर है ॥ १२ ॥

गन्धर्वनगराकारः प्रथमं संप्रदृश्यते।
अन्वीक्ष्यमाणः कविभिः पुनर्गच्छत्यदर्शनम् ॥ १३ ॥

पहले धर्म गन्धर्वनगरकी भांति अद्भुतरूपसे दीख पडता है, अर्थात् धर्मकाण्डमें कहा है, कि "चातुर्मास्ययाजीको अक्षय सुकृत होता है। हम सोमपान करेंगे, अमर होंगे" इत्यादि श्रुतिका गन्धर्व नगरके समान अद्भुतत्व दीख पडता है। अनन्तर कवियोंके जरिये उपनिषत्के बीच ईक्ष्यमाण कर्म फिर अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थात् कार्यमात्र ही अनित्य हैं; कर्मसे जो लोक जय किया जाता है, उसका भी नाश होता है इत्यादि उपनिषत् वाक्यसे धर्म अत्यन्त तुच्छ बोध होता है ॥ १३ ॥

निपानानीव गोभ्याशे क्षेत्रे कुल्येव भारत।
स्मृतोऽपि शाश्वतो धर्मो विप्रहीणो न दृश्यते ॥ १४ ॥

हे भारत! जैसे गौओंके पीने योग्य क्षुद्र तालावके जलको क्षेत्रमें सींचनेपर सारा तालाव सूख जाता है, वैसेही सनातन वैदिक धर्म धीरे धीरे क्षीण होकर कलियुगके अन्तमें अदृश्य होगा ॥ १४ ॥

कामादन्ये क्षयादन्ये कारणैरपरैस्तथा।
असन्तो हि वृथाचारं भजन्ते बहवोऽपरे ॥ १५ ॥

इस ही प्रकार भविष्य विषयिणी स्मृति है, कि निज इच्छा वा पराई इच्छा तथा दूसर किसी कारणसे बहुतेरे मनुष्य धर्माचरण किया करते हैं; अनेक दूसरे असाधु पुरुष भी व्यर्थ धर्माचरण करते हैं ॥ १५ ॥

धर्मो भवति स क्षिप्रं विलीनस्त्वेव साधुषु।
अन्ये तानाहुरुन्मत्तानपि चावहसन्त्युत ॥ १६ ॥

साधुओंके आचरित कर्मही धर्म रूपसे मालूम होते हैं, परन्तु मूढ दृष्टिसे देखनेसे वही धर्म साधुओंमें विलीन रूपसे मालूम हुआ करता है। मूढ लोग साधुओंको उन्मत्त कहा करते हैं, और उनकी हंसी करते हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महाजना ह्युपावृत्ता राजधर्मं समाश्रिताः ।
न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रदृश्यते ॥ १७ ॥

द्रोणाचार्य आदि महाजनोंने ब्राह्मणोंके कर्त्तव्य कार्यका अनादर करके क्षत्रियधर्म अवलम्बन किया था; इसलिये सर्वहितकर कोई व्यवहार प्रवर्त्तित हुआ नहीं दिखाई देता ॥ १७ ॥

तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः ।
दृश्यते चैव स पुनस्तुल्यरूपो यदृच्छया ॥ १८ ॥

इसके अतिरिक्त आचारके जरिये निकृष्ट जाति भी उत्कृष्ट होती है, और उत्तम वर्ण भी निकृष्ट हुआ करते हैं । कभी कोई पुरुष दैवइच्छासे आचारके जरिये समान रूपसे ही रहते हैं; विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ आदि इस विषयमें विस्पष्ट दृष्टान्त स्थल हैं ॥ १८ ॥

येनैवान्यः प्रभवति सोऽपरानपि बाधते ।
आचाराणामनैकाग्र्यं सर्वेषामेव लक्षयेत् ॥ १९ ॥

जिस आचारके जरिये एक पुरुष उन्नत होता है, वही आचार दूसरेको अवनत करता है; इसकी पर्यालोचना करनेसे सब आचारोंमें ही अनैक्यता अर्थात् व्यभिचारित्व मालूम हुआ करता है ॥ १९ ॥

चिराभिपन्नः कविभिः पूर्वं धर्म उदाहृतः ।
तेनाचारेण पूर्वेण संस्था भवति शाश्वती ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥ ८७४९ ॥

प्राचीन पंडित लोग सदासे जिस धर्मको स्वीकार करते चले आते हैं, आपने वह विषय ही वर्णन किया; इसलिये उस प्राचीन आचारके जरिये शाश्वती मर्यादा स्थापित हुआ करती है; परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनादि अविद्या प्रवृत्त स्वभावसे ही सुख–दुःख कार्याकार्यकी व्यवस्था हुआ करती है । वेदप्रमाणक धर्मके जरिये सुख–दुःख आदि कार्याकार्यकी व्यवस्था नहीं होती ॥ २० ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ २५२ ॥ ८७४९ ॥

: २५३ :

भीष्म उवाच —

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
तुलाधारस्य वाक्यानि धर्मे जाजलिना सह ॥ १ ॥

भीष्म बोले– धर्म विषयमें जाजलिके सङ्ग तुलाधारकी जो सब वार्त्ता हुई थी, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वने वनचरः कश्चिज्जाजलिर्नाम वै द्विजः ।
सागरोद्देशमागम्य तपस्तेपे महातपाः ॥ २ ॥

जाजलि नाम कोई वनचारी ब्राह्मण जङ्गलमें वास करते और विचरते थे; उन महातपस्वी मुनिने समुद्रके किनारे पर जाकर बहुत तपस्या की थी ॥ २ ॥

नियतो नियताहारश्चीराजिनजटाधरः ।
मलपङ्कधरो धीमान्बहून्वर्षगणान्मुनिः ॥ ३ ॥

वह धीमान् मुनि संयत और नियताहारी होकर चीर, मृगछाला और जटा धारण करके अनेक वर्ष पर्यन्त शरीरपर कीचड जमनेके कारण मलिन हुए थे ॥ ३ ॥

स कदाचिन्महातेजा जलवासो महीपते ।
चचार लोकान्विप्रर्षिः प्रेक्षमाणो मनोजवः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! किसी समय वे महातेजस्वी विप्रर्षि समुद्रके जल युक्त प्रदेशमें वास करते हुए सब लोगोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर मनकी भांति तीव्र वेगसे विचरने लगे ॥ ४ ॥

स चिन्तयामास मुनिर्जलमध्ये कदाचन ।
विप्रेक्ष्य सागरान्तां वै महीं सवनकाननाम् ॥ ५ ॥

अनन्तर उन्होंने वन और काननों सहित समुद्र पर्यन्त पृथ्वीको देखकर जल प्रदेशमें निवास करते समय फिर विचार करने लगे ॥ ५ ॥

न मया सदृशोऽस्तीह लोके स्थावरजङ्गमे ।
अप्सु वैहायसं गच्छेन्मया योऽन्यः सहेति वै ॥ ६ ॥

स्थावर जङ्गमयुक्त संसारके बीच मेरे समान वा मेरे सहित जलके बीच तथा आकाशमण्डलके नक्षत्रादि लोकोंमें गमन कर सके, ऐसा कोई भी नहीं है ॥ ६ ॥

स दृश्यमानो रक्षोभिर्जलमध्येऽवदत्ततः ।
अब्रुवंश्च पिशाचास्तं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

वह जब जल युक्त प्रदेशके बीच रहनेवाले मुनि राक्षसोंसे दृश्यमान रहके ऐसा कह रहे थे, तब पिशाचोंने उनसे कहा, हे द्विजसत्तम ! तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ ७ ॥

तुलाधारो वणिग्धर्मा वाराणस्यां महायशाः ।
सोऽप्येवं नार्हते वक्तुं यथा त्वं द्विजसत्तम ॥ ८ ॥

वाराणसी (काशी) में तुलाधार नामक वणिक् व्यवसायी एक महायशस्वी मनुष्य हैं, तुम जैसा कहते हो, वह भी वैसा वचन नहीं कह सकते ॥ ८ ॥

इत्युक्तो जाजलिर्भूतैः प्रत्युवाच महातपाः ।
पश्येयं तमहं प्राज्ञं तुलाधारं यशस्विनम् ॥ ९ ॥

महातेजस्वी जाजलिने पिशाचोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें उत्तर दिया, बहुत अच्छा, मैं बुद्धिमान् यशस्वी तुलाधारका दर्शन करूंगा ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhuji . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इति ब्रुवाणं तमृषिं रक्षांस्युद्धृत्य सागरात् ।
अब्रुवन्गच्छ पन्थानमास्थायेमं द्विजोत्तम ॥ १० ॥

ऋषि जब ऐसा वचन बोले– तब पिशाचोंने उन्हें समुद्रसे उठाकर कहा, हे द्विजवर ! तुम इस ही मार्गको अवलम्बन करके गमन करो ॥ १० ॥

इत्युक्तो जाजलिर्भूतैर्जगाम विमनास्तदा ।
वाराणस्यां तुलाधारं समासाद्याब्रवीद्वचः ॥ ११ ॥

जाजलि मुनि भूतोंका ऐसा वचन सुनकर उदास मन होकर काशीमें तुलाधारके समीप पहुंचकर उससे वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

किं कृतं सुकृतं कर्म तात जाजलिना पुरा ।
येन सिद्धिं परां प्राप्तस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! जाजलि मुनिने पहले कौनसा दुष्कर कर्म किया था, जिससे कि उन्होंने परम सिद्धि पाई; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच—

अतीव तपसा युक्तो घोरेण स बभूव ह ।
नद्युपस्पर्शनरतः सायं प्रातर्महातपाः ॥ १३ ॥

भीष्म बोले– महातपस्वी जाजलि मुनि घोर तपस्यायुक्त हुए थे, वह सन्ध्या और सवेरेके समय स्नान और सन्ध्योपासनामें रत रहते थे ॥ १३ ॥

अग्नीन्परिचरन्सम्यक्स्वाध्यायपरमो द्विजः ।
वानप्रस्थविधानज्ञो जाजलिर्ज्वलितः श्रिया ॥ १४ ॥

वह वेदोंके स्वाध्यायमें रत द्विजश्रेष्ठ यथानियमसे अग्निकी परिचर्या करते थे, वानप्रस्थ विधान जानके वेदविद्यासे प्रदीप्त हुए थे ॥ १४ ॥

सत्ये तपसि तिष्ठन्स न च धर्ममवैक्षत ।
वर्षास्वाकाशशायी हेमन्ते जलसंश्रयः ॥ १५ ॥

वे वनमें तपस्या करते थे, परंतु धर्मकी अवहेलना नहीं करते थे; वह वर्षाकालमें आकाशशायी और हेमन्तमें जलसंश्रयी होते थे ॥ १५ ॥

वातातपसहो ग्रीष्मे न च धर्ममविन्दत ।
दुःखशय्याश्च विविधा भूमौ च परिवर्तनम् ॥ १६ ॥

ग्रीष्मकालमें वायु और धूप सहते थे, तौभी उनको धर्मका ज्ञान नहीं हुआ; वह भूमिपर ही अनेक दुःखकरी शय्यापर शयन करते थे ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः कदाचित्स मुनिर्वर्षास्वाकाशमास्थितः ।
अन्तरिक्षाज्जलं मूर्ध्ना प्रत्यगृह्णान्मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥

अनन्तर किसी वर्षाकालमें उन मुनिने आकाशको अवलम्बन करके अन्तरिक्षसे बार बार गिरते हुए जलको शिरपर धारण किया था ॥ १७ ॥

अथ तस्य जटाः क्लिन्ना बभूवुर्ग्रथिताः प्रभो ।
अरण्यगमनान्नित्यं मलिनो मलसंयुतः ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! उससे उनकी सब जटा क्लिन्न और ग्रथित हुई थी । वह सदा वनमें घूमनेसे उनका शरीर मलिन और मलयुक्त हुआ था ॥ १८ ॥

स कदाचिन्निराहारो वायुभक्षो महातपाः ।
तस्थौ काष्ठवदव्यग्रो न चचाल च कर्हिचित् ॥ १९ ॥

उस महातपस्वीने कभी कभी निराहारी और वायुभक्षी होकर काठकी भांति अव्यग्र भावसे निवास किया था, किसी प्रकार विचलित नहीं हुए थे ॥ १९ ॥

तस्य स्म स्थाणुभूतस्य निर्विचेष्टस्य भारत ।
कुलिङ्गशकुनौ राजन्नीडं शिरसि चक्रतुः ॥ २० ॥

हे भारत ! वे चेष्टा शून्य होनेके कारण शाखाहीन पेडके समान जान पडते थे; राजन् ! उस समय मुनिके शिरपर चटकपक्षी–दम्पतीने घोंसला बनाया ॥ २० ॥

स तौ दयावान्विप्रर्षिरुपप्रैक्षत दंपती ।
कुर्वाणं नीडकं तत्र जटासु तृणतन्तुभिः ॥ २१ ॥

जब पक्षीदम्पती उनकी जटाओंमें तृणोंसे घोसला बना रही थी, तब उन दयावान् महर्षिने उनकी उपेक्षा करके उनका निवारण नहीं किया ॥ २१ ॥

यदा स न चलत्येव स्थाणुभूतो महातपाः ।
ततस्तौ परिविश्वस्तौ सुखं तत्रोषतुस्तदा ॥ २२ ॥

वह स्थाणुस्वरूप महातपस्वी जब किसी प्रकार विचलित न हुए, तब वह विहंग-दम्पती विश्वस्त होकर सहजमें ही उन महर्षिके शिरपर वास करने लगी ॥ २२ ॥

अतीतास्वथ वर्षासु शरत्काल उपस्थिते ।
प्राजापत्येन विधिना विश्वासात्काममोहितौ ॥ २३ ॥

वर्षाकालके बीतने और शरत्कालके उपस्थित होनेपर काममोहित पक्षियोंने प्राकृतिक धर्मके अनुसार संतान प्राप्तिकी विधिसे समागम किया और विश्वासके वशमें होकर ॥ २३ ॥

तत्रापातयतां राजञ्शिरस्यण्डानि खेचरौ ।
तान्यबुध्यत तेजस्वी स विप्रः संशितव्रतः ॥ २४ ॥

उस मुनिके शिरपर अण्डप्रसव किया । उस संशितव्रती तेजस्वी विप्रने उसे जाना ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धा च स महातेजा न चचालैव जाजलिः ।
धर्मे धृतमना नित्यं नाधर्मं स त्वरोचयत् ॥ २५ ॥

और जानके भी वह महातेजस्वी जाजलि कुछ भी विचलित नहीं हुए; वह सदा धर्मनिष्ठ रहनेके कारण कभी अधर्ममें अभिलाष नहीं करते थे ॥ २५ ॥

अहन्यहनि चागम्य ततस्तौ तस्य मूर्धनि ।
आश्वासितौ वै वसतः संप्रहृष्टौ तदा विभो ॥ २६ ॥

प्रभो ! अनन्तर वे दोनों पक्षी प्रतिदिन चारा लानेके लिये जाते और फिर उनके शिरपर आके आश्वासित और हर्षित होकर वास करते थे ॥ २६ ॥

अण्डेभ्यस्त्वथ पुष्टेभ्यः प्राजायन्त शकुन्तकाः ।
व्यवर्धन्त च तत्रैव न चाकम्पत जाजलिः ॥ २७ ॥

कालक्रमसे अण्डोंके परिपुष्ट होनेपर उनमेंसे बच्चे उत्पन्न हुए और जन्म लेकर वहां क्रमसे बढने लगे; तौभी जाजलि विचलित नहीं हुए ॥ २७ ॥

स रक्षमाणस्त्वण्डानि कुलिङ्गानां यतव्रतः ।
तथैव तस्थौ धर्मात्मा निर्विचेष्टः समाहितः ॥ २८ ॥

वह चेष्टा रहित, समाधिनिष्ठ, यतव्रत, धर्मात्मा चटकपक्षीके बच्चोंकी रक्षा करते हुए उस ही प्रकार स्थिति करने लगे ॥ २७ ॥

ततस्तु कालसमये बभूवुस्तेऽथ पक्षिणः ।
बुबुधे तांश्च स मुनिर्जातपक्षाञ्शकुन्तकान् ॥ २९ ॥

समयके अनुसार चटकशावकोंके पङ्ख जमे, मुनिने यह जान लिया कि चिडियोंके इन बच्चोंके पंख निकल आये हैं ॥ २९ ॥

ततः कदाचित्तांस्तत्र पश्यन्पक्षीन्यतव्रतः ।
बभूव परमप्रीतस्तदा मतिमतां वरः ॥ ३० ॥

अनन्तर किसी समयमें बुद्धिमान् यतव्रती महर्षि उन पंखधारी बच्चोंको उडते देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥

तथा तानभिसंवृद्धान्दृष्ट्वा चाप्नुवतां मुदम् ।
शकुनौ निर्भयौ तत्र ऊषतुश्चात्मजैः सह ॥ ३१ ॥

पक्षी-दम्पती भी अपने बच्चोंको पूरी रीतिसे बढते देख हर्षित होकर निर्भयताके सहित उन बच्चोंके सहित मुनिके शिरपर वास करने लगी ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जातपक्षांश्च सोऽपश्यदुड्डीनान्पुरागतान् ।
सायं सायं द्विजान्विप्रो न चाकम्पत जाजलिः ॥ ३२ ॥

जब पक्षी शावकोंके पङ्ख जम गये, तब वह उडनेवाले होकर स्थानान्तरमें गमन करके फिर सन्ध्याके समय मुनिके शिरपर आके वास करते थे; विप्रवर जाजलि उन पक्षियोंको आते जाते देखकर भी विचलित न हुए ॥ ३२ ॥

कदाचित्पुनरभ्येत्य पुनर्गच्छन्ति संततम् ।
त्यक्ता मातृपितृभ्यां ते न चाकम्पत जाजलिः ॥ ३३ ॥

किसी समय वे बच्चे जनकजननीसे परित्यक्त होके भी मुनिके शिरपर आगमन करके फिर स्थानन्तरमें गमन करते थे । सदा उनके ऐसा आचरण करने पर भी जाजलि निज स्थानसे विचलित न हुए ॥ ३३ ॥

अथ ते दिवसं चारीं गत्वा सायं पुनर्नृप ।
उपावर्तन्त तत्रैव निवासार्थं शकुन्तकाः ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! इस ही प्रकार सारा दिन चरनेके लिये बिताकर पक्षीशावक सन्ध्याके समय निवासके लिये उस ही स्थानमें लौट आते थे ॥ ३४ ॥

कदाचिद्दिवसान्पञ्च समुत्पत्य विहंगमाः ।
षष्ठेऽहनि समाजग्मुर्न चाकम्पत जाजलिः ॥ ३५ ॥

किसी समय पक्षीवृन्द स्थानान्तरमें पांच दिन बिताकर छठवें दिन जाजलिके शिरपर आके उपस्थित होते थे, इससे भी मुनि विचलित न हुए ॥ ३५ ॥

क्रमेण च पुनः सर्वे दिवसानि बहून्यपि ।
नोपावर्तन्त शकुना जातप्राणाः स्म ते यदा ॥ ३६ ॥

क्रम क्रमसे वे बच्चे पुष्ट तथा बलवान् होनेसे स्थानन्तरमें कई दिन बिताके भी नहीं लौटते थे, बाहर जानेपर जल्दी वापस नहीं आते थे ॥ ३६ ॥

कदाचिन्मासमात्रेण समुत्पत्य विहंगमाः ।
नैवागच्छंस्ततो राजन्प्रातिष्ठत स जाजलिः ॥ ३७ ॥

राजन् ! कभी वे पक्षी एक महीनेके लिये उडके चले गये थे; तो फिर लौटकर नहीं आये; परन्तु जाजलि उस ही भांति निवास करते थे ॥ ३७ ॥

ततस्तेषु प्रलीनेषु जाजलिर्जातविस्मयः ।
सिद्धोऽस्मीति मतिं चक्रे ततस्तं मान आविशत् ॥ ३८ ॥

अनन्तर उन पक्षियोंके एक समय उडके चले जानेपर जाजलिने विस्मययुक्त होके मन ही मन समझा कि 'मैं' सिद्ध हुआ हूं । ऐसा ज्ञान होनेके अनन्तर उनके चित्तमें अभिमान उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स तथा निर्गतान्दृष्ट्वा शकुन्तान्नियतव्रतः ।
संभावितात्मा संभाव्य भृशं प्रीतस्तदाभवत् ॥ ३९ ॥

व्रतनिष्ठ पवित्र जाजलि उन पक्षियोंको एकबारही इस प्रकार गया हुआ देख अपनेको सत्कारके योग्य समझके अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए ॥ ३९ ॥

स नद्यां समुपस्पृश्य तर्पयित्वा हुताशनम् ।
उदयन्तमथादित्यमभ्यगच्छन्महातपाः ॥ ४० ॥

उस महातपस्वी मुनिने नदीमें स्नान करके संध्या-तर्पणके बाद अग्निमें आहुति देनेके अनन्तर सूर्यको उदय होते देखकर उनकी उपासना की ॥ ४० ॥

संभाव्य चटकान्मूर्ध्नि जाजलिर्जपतां वरः ।
आस्फोटयत्तदाकाशे धर्मः प्राप्तो मयेति वै ॥ ४१ ॥

जापकश्रेष्ठ जाजलिने शिरके बीच चटकशावकोंको पूरी रीतिसे वर्द्धित आदि बातें स्मरण करके स्वयंको धर्मात्मा समझा और आकाशमें ताल ठोंकते हुए उच्च स्वरसे बोले- मैंने धर्मको प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

अथान्तरिक्षे वागासीत्तां स शुश्राव जाजलिः ।
धर्मेण न समस्त्वं वै तुलाधारस्य जाजले ॥ ४२ ॥

अनन्तर यह आकाशवाणी हुई और उन्होंने वह सुनी- हे जाजलि ! तुम धर्मके विषयमें तुलाधारके समान नहीं हुए हो ॥ ४२ ॥

वाराणस्यां महाप्राज्ञस्तुलाधारः प्रतिष्ठितः ।
सोऽप्येवं नार्हते वक्तुं यथा त्वं भाषसे द्विज ॥ ४३ ॥

काशीपुरीमें महाज्ञानी तुलाधार नामक एक पुरुष रहता है । हे विप्र ! तुमने जैसा कहा वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता ॥ ४३ ॥

सोऽमर्षवशमापन्नस्तुलाधारदिदृक्षया ।
पृथिवीमचरद्राजन्यत्रसायंगृहो मुनिः ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! जाजलि मुनि उस आकाशवाणीको सुनके क्रोधवश होकर, तुलाधारका दर्शन करनेके लिये सारी पृथ्वीपर घूमने लगे और जहांपर सन्ध्याका समय उपस्थित था, वहांपर वे निवास करते थे ॥ ४४ ॥

कालेन महतागच्छत्स तु वाराणसीं पुरीम् ।
विक्रीणन्तं च पण्यानि तुलाधारं ददर्श सः ॥ ४५ ॥

बहुत समयके अनन्तर वह काशीपुरीमें पहुंचे; वहां उन्होंने पहुंचके तुलाधारको पण्य वस्तुओंको बेचते हुए देखा ॥ ४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽपि दृष्ट्वैव तं विप्रमायान्तं भाण्डजीवनः ।
समुत्थाय सुसंहृष्टः स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ ४६ ॥

मूलधनोपजीवी तुलाधार विप्रवर जाजलिको आते देखकर ही परम सन्तुष्ट होकर उठ खडे हुए और स्वागत प्रश्नसे उनका सत्कार किया ॥ ४६ ॥

तुलाधार उवाच—

आयानेवासि विदितो मम ब्रह्मन्न संशयः ।
ब्रवीमि यत्तु वचनं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥ ४७ ॥

तुलाधार बोले– हे ब्रह्मन् ! आप मेरे पास आ रहे हैं, इसे मैंने पहलेही निःसन्देह जाना है । हे द्विजवर ! अब मैं जो कहता हूं, उसे सुनो ॥ ४७ ॥

सागरानूपमाश्रित्य तपस्तप्तं त्वया महत् ।
न च धर्मस्य संज्ञां त्वं पुरा वेत्थ कथंचन ॥ ४८ ॥

आपने समुद्रके तटपर सजल स्थानमें रहकर महती तपस्या की है; पहले कभी धर्मका नाम भी आप नहीं जानते थे, अर्थात् " मैं धार्मिक हूं " आपको ऐसा ज्ञान नहीं था ॥ ४८ ॥

ततः सिद्धस्य तपसा तव विप्र शकुन्तकाः ।
क्षिप्रं शिरस्यजायन्त ते च संभावितास्त्वया ॥ ४९ ॥

हे विप्र ! अन्तमें जब आप तपस्यासे सिद्ध हुए, तब पक्षियोंके बच्चे शीघ्रही तुम्हारे शिरपर उत्पन्न हुए, आपने उनकी यथायोग्य रक्षा की– सत्कार किया ॥ ४९ ॥

जातपक्षा यदा ते च गताश्चारीमितस्ततः ।
मन्यमानस्ततो धर्मं चटकप्रभवं द्विज ।
खे वाचं त्वमथाश्रौषीर्मां प्रति द्विजसत्तम ॥ ५० ॥

हे द्विज ! जब बच्चे पङ्खवाले होकर आहारके लिये उडके चले गये, तब आपने मनमें यह निश्चय किया, कि " चटक पक्षियोंका पालन करनेसे धर्म हुआ है । " हे द्विजसत्तम ! अनन्तर मुझे उद्देश्य करके जो आकाशवाणी हुई, तुमने उसे सुना ॥ ५० ॥

अमर्षवशमापन्नस्ततः प्राप्तो भवानिह ।
करवाणि प्रियं किं ते तद्ब्रूहि द्विजसत्तम ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥ ८८०० ॥

और सुनतेही क्रोधके वशमें हुए और उसही निमित्त इस स्थानमें आये हो । हे द्विजवर ! इसलिये मैं आपका कौनसा प्रियकार्य सिद्ध करूं, उसे ही कहिये ॥ ५१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ २५३ ॥ ८८०० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Rishikesh) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

२५४

भीष्म उवाच—

इत्युक्तः स तदा तेन तुलाधारेण धीमता।
प्रोवाच वचनं धीमाञ्जाजलिर्जपतां वरः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— उस समय जब बुद्धिमान् तुलाधारने जापकप्रवर जाजलिसे ऐसा वचन कहा, तब उन्होंने वक्ष्यमाण वचनसे उसे उत्तर दिया ॥ १ ॥

विक्रीणानः सर्वरसान्सर्वगन्धांश्च वाणिज।
वनस्पतीनोषधीश्च तेषां मूलफलानि च ॥ २ ॥

हे वणिक्पुत्र ! तुम समस्त रस, गन्ध, वनस्पति, औषधी और फलफूलोंको बेचा करते हो ॥ २ ॥

अध्यगा नैष्ठिकीं बुद्धिं कुतस्त्वामिदमागतम्।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं निखिलेन महामते ॥ ३ ॥

तुमने यह नैष्ठिकी बुद्धि कहांसे पायी और किस प्रकार तुम्हें ऐसा ज्ञान हुआ ? हे महाप्राज्ञ ! तुम इस ही विषयको विस्तारपूर्वक मेरे समीप वर्णन करो ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्तुलाधारो ब्राह्मणेन यशस्विना।
उवाच धर्मसूक्ष्माणि वैश्यो धर्मार्थतत्त्ववित्।
जाजलिं कष्टतपसं ज्ञानतृप्तस्तदा नृप ॥ ४ ॥

हे राजन् ! यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा पूछनेपर धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाला तुलाधार वैश्य उस समय ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलिसे सब सूक्ष्म धर्म कहने लगा ॥ ४ ॥

वेदाहं जाजले धर्मं स रहस्यं सनातनम्।
सर्वभूतहितं मैत्रं पुराणं यं जना विदुः ॥ ५ ॥

हे जाजलि ! जो लोकमें सब भूतोंके हितकर, सबके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाला है, जिसे लोग पुराण—धर्मके रूपमें जानते हैं, मैं रहस्योंके सहित उस सनातन धर्मको जानता हूं; ॥ ५ ॥

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले ॥ ६ ॥

जीवोंसे द्रोह न करके अथवा आपद्कालमें अल्प द्रोह आचरण करके जो जिविका निबाही जाती है, वही परम धर्म है। हे जाजलि ! मैं वैसी ही वृत्ति अवलम्बन करके जीवन व्यतीत किया करता हूं ॥ ६ ॥

परिच्छिन्नैः काष्ठतृणैर्मयेदं शरणं कृतम्।
अलक्तं पद्मकं तुङ्गं गन्धांश्चोच्चावचांस्तथा ॥ ७ ॥

मैंने दूसरोंके द्वारा काटे गये तृणकाठोंसे यह गृह बनाया है। अलक्त, पद्मक, तुङ्गकाष्ठ और कस्तूरी आदि विविध सुगन्धित द्रव्य और अन्य वस्तु ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रसांश्च तांस्तान्विप्रर्षे मद्यवर्ज्यानहं बहून् ।
क्रीत्वा वै प्रतिविक्रीणे परहस्तादमायया ॥ ८ ॥

और नमक आदि रसकी वस्तुयें, मद्यके अतिरिक्त इन सब वस्तुओंको मैं दूसरेके हाथसे खरीदके कपटरहित होकर बेचा करता हूं ॥ ८ ॥

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ॥ ९ ॥

हे जाजलि ! जो सब प्राणियोंका सुहृत् तथा मन, वचन और कर्मसे सदा सब जीवोंके हितमें रत रहता है, वही धर्म जाननेवाला है ॥ ९ ॥

नाहं परेषां कर्मानि प्रशंसामि शपामि वा ।
आकाशस्येव विप्रर्षे पश्यल्लँोकस्य चित्रताम् ॥ १० ॥

हे विप्रवर ! मैं आकाशमण्डलमें स्थित विविध रूपवाले बादल समूहोंकी भांति असङ्ग रहकर जगत्की विचित्रता देखकर, दूसरेके किये हुए कार्योंकी प्रशंसा नहीं करता और निन्दा भी नहीं करता हूं ॥ १० ॥

नानुरुध्ये विरुध्ये वा न द्वेष्मि न च कामये ।
समोऽस्मि सर्वभूतेषु पश्य मे जाजले व्रतम् ॥ ११ ॥

हे जाजलि ! मैं किसीको किसी विषयमें अनुरोध नहीं करता, किसीके संग विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता और किसीके समीप किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता । मैं सब भूतोंमें समदर्शी हूं, इसलिये तुम मेरा व्रत अवलोकन करो ॥ ११ ॥

इष्टानिष्टविमुक्तस्य प्रीतिरागबहिष्कृतः ।
तुला मे सर्वभूतेषु समा तिष्ठति जाजले ॥ १२ ॥

हे जाजलि ! मैं इष्ट–अनिष्टसे विमुक्त तथा प्रीतिरागसे बहिष्कृत हूं; सब भूतोंमें मेरा तुलादण्ड समान भावसे खडा है ॥ १२ ॥

इति मां त्वं विजानीहि सर्व लोकस्य जाजले ।
समं मतिमतां श्रेष्ठ समलोष्टाश्मकाञ्चनम् ॥ १३ ॥

हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जाजलि ! इस ही भांति तुम मुझे सब भूतों और ढेले, पत्थर तथा सुवर्णमें समदर्शी समझो ॥ १३ ॥

यथान्धबधिरोन्मत्ता उच्छ्वासपरमाः सदा ।
देवैरपिहितद्वाराः सोपमा पश्यतो मम ॥ १४ ॥

जैसे अन्धे, बहरे और उन्मत्त आदि पुरुषोंके इन्द्रियगोलक उस ही इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके जरिये आच्छादित होनेपर भी वे लोग श्वास लेते हुए जीवन धारण किया करते हैं, मैं उसे देखकर अपनेमें वैसी ही उपमा दिया करता हूं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा वृद्धातुरकृशा निःस्पृहा विषयान्प्रति ।
तथार्थकामभोगेषु ममापि विगता स्पृहा ॥ १५ ॥

जैसे बूढे, रोगी और दुर्बल मनुष्य विषयभोगोंसे निस्पृह होते हैं, वैसे ही अर्थ और काम्य वस्तुके उपभोगके विषयमें मुझे भी स्पृहा नहीं है ॥ १५ ॥

यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि तदा सिध्यति वै द्विजः ॥ १६ ॥

जब यह जीव किसी प्राणीसे नहीं डरता और इससे भी दूसरे प्राणी भयभीत नहीं होते; जब जीव किसी विषयकी कामना नहीं करता और किसीसे भी द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व-लाभ किया करता है ॥ १६ ॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ १७ ॥

कर्म, मन और वाणीके जरिये जब प्राणिमात्रके विषयमें पापभाव धारण नहीं करता, तब ब्रह्मभावको पाता है ॥ १७ ॥

न भूतो न भविष्यश्च न च धर्मोऽस्ति कश्चन ।
योऽभयः सर्वभूतानां स प्राप्नोत्यभयं पदम् ॥ १८ ॥

जिसका भूत, भविष्यमें कोई कार्य नहीं है, जिसके लिये कोई धर्म करना शेष नहीं है, जो सब भूतोंका अभय स्थान है, वही अभयपद पाता है ॥ १८ ॥

यस्मादुद्विजते लोकः सर्वो मृत्युमुखादिव ।
वाक्क्रूराद्दण्डपारुष्यात्स प्राप्नोति महद्भयम् ॥ १९ ॥

मृत्युमुखके समान, क्रूर वचन कहनेवाला कठोर दण्डधारी जिस पुरुषसे सब लोग व्याकुल होते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

यथावद्वर्तमानानां वृद्धानां पुत्रपौत्रिणाम् ।
अनुवर्ताभवे वृत्तमहिंस्राणां महात्मनाम् ॥ २० ॥

मैं यथावत् वर्त्तमान पुत्र–पौत्रोंके सहित अहिंसामय महानुभाव बूढोंके चरित्रका अनुवर्त्तन किया करता हूं ॥ २० ॥

प्रनष्टः शाश्वतो धर्मः सदाचारेण मोहितः ।
तेन वैद्यस्तपस्वी वा बलवान्वा विमोह्यते ॥ २१ ॥

सनातन धर्म अनाचारसे मोहित होकर नष्ट होता है; इस ही निमित्त चाहे विद्यावान् हो, चाहे जितेंद्रिय ही हो, वा काम–क्रोध विजयी बलवान् ही क्यों न हो, वह पुरुष भी धर्म विषयमें मोहित होता है ! ॥ २१ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आचाराज्जाजले प्राज्ञः क्षिप्रं धर्ममवाप्नुयात् ।
एवं यः साधुभिर्दान्तश्चरेदद्रोहचेतसा ॥ २२ ॥

जो दान्त पुरुष द्रोहरहित अन्तःकरणसे साधुओंके आचरित सदाचरणका पालन करता है, हे जाजलि! वह बुद्धिमान् पुरुष आचारके जरिये शीघ्र ही धर्मलाभ करनेमें समर्थ होता है ॥२२॥

नद्यां यथा चेह काष्ठमुह्यमानं यदृच्छया ।
यदृच्छयैव काष्ठेन संधिं गच्छेत केनचित् ॥ २३ ॥

जैसे नदीके प्रवाहमें बहता हुआ काठ यदृच्छावशसे दूसरे काठके सङ्ग मिल जाता है ॥ २३ ॥

तत्रापराणि दारूणि संसृज्यन्ते ततस्ततः ।
तृणकाष्ठकरीषाणि कदाचिन्नसमीक्षया ।
एवमेवायमाचारः प्रादुर्भूतो यतस्ततः ॥ २४ ॥

और उस स्थानमें दूसरे काष्ठ परस्पर मिल जाते हैं; कभी तृण काठ करीष आदि नहीं दीख पडते, यह सब संयोग आकस्मिक ही होता है; मनुष्योंके कर्मप्रवाहके जरिये पुत्र स्त्री आदिका संयोग वियोग भी वैसा ही है; इस ही प्रकार जीवोंको अभयदानरूपी आचार जिसमें सब तरहके उपायसे उत्पन्न हो, उस विषयमें यत्न करना उचित है ॥ २४ ॥

यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किंचित्कथंचन ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः स प्राप्नोति सदा मुने ॥ २५ ॥

मुने ! जिससे कोई भी जीव किसी प्रकार व्याकुल नहीं होता, वही सब भूतोंसे सदा अभय लाभ करता है ॥ २५ ॥

यस्मादुद्विजते विद्वन्सर्वलोको वृकादिव ।
क्रोशतस्तीरमासाद्य यथा सर्वे जलेचराः ॥ २६ ॥

हे विद्वन् ! जैसे बाडवानलसे किनारेपर रहनेवाले सब जलचर और चीत्कार करनेवाले हिंसक भेडियेसे वनचर जीव डरते हैं, वैसे ही जिससे सब लोक उद्वेगयुक्त हुआ करते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

सहायवान्द्रव्यवान्यः सुभगोऽन्योऽपरस्तथा ।
ततस्तानेव कवयः शास्त्रेषु प्रवदन्त्युत ।
कीर्त्यर्थमल्पहृल्लेखाः पटवः कृत्स्ननिर्णयाः ॥ २७ ॥

जो सहायसम्पत्तिसे युक्त होता है, वह इस लोकमें ऐश्वर्यशाली और परलोकमें परम सुखी होता है । इसहीसे विद्वान् लोग सब शास्त्रोंमें अभयदाता पुरुषोंको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं । जिनके अन्तःकरणमें थोडासा बाह्यसुख लेखाकी भांति प्रतिष्ठित है, वे भी कीर्तिके लिये अभयदान करें और निपुण मनुष्य भी परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये अभयदानमें दीक्षित होवें ॥२७॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा ।
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत्फलमिहाश्नुते ॥ २८ ॥

तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धियुक्त वचनसे मनुष्य इस लोकमें जो सब फल भोग प्राप्त करता है, अभयदानके सहारे उसे वे सब फल प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ।
न भूतानामहिंसाया ज्यायान्धर्मोऽस्ति कश्चन ॥ २९ ॥

जगत्में जो सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा दान करता है, वह सब यज्ञयाजनके फल स्वरूप अभयदक्षिणा पाता है । सब प्राणियोंकी अहिंसासे बढके श्रेष्ठ धर्म और कुछ भी नहीं है ॥२९॥

यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किंचित्कथंचन ।
सोऽभयं सर्वभूतेभ्यः संप्राप्नोति महामुने ॥ ३० ॥

हे महामुनि ! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होता, उसे सब प्राणियोंसे अभय प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

यस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव ।
न स धर्ममवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥

और जिससे गृहगत सर्पकी भांति सब लोग भयभीत होते हैं, वह ऐहिक और पारलौकिक धर्मके फलको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ३१ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्य सम्यग्भूतानि पश्यतः ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ ३२ ॥

जो सब प्राणियोंके आत्मभूत और समान भावसे सब जीवोंको देखता है, देवता लोग भी ब्रह्मलोक आदिके अनभिलाषी, साधक पदके इच्छुक होकर उसके आचरित मार्गमें विचरण करते हुए मोहित होते हैं ॥ ३२ ॥

दानं भूताभयस्याहुः सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।
ब्रवीमि ते सत्यमिदं श्रद्दधस्व च जाजले ॥ ३३ ॥

हे जाजलि ! जीवोंको अभय दान देना सब दानोंसे उत्तम कहा गया है; यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं; इसलिये आप इस विषयमें श्रद्धा करिये ॥ ३३ ॥

स एव सुभगो भूत्वा पुनर्भवति दुर्भगः ।
व्यापत्तिं कर्मणां दृष्ट्वा जुगुप्सन्ति जनाः सदा ॥ ३४ ॥

सब कार्य कर्म स्वर्गफल साधनके हेतु कभी सुभग होते, कभी स्वर्गफल भोगान्तर पतन आदिके निमित्त दुर्भग हुआ करते हैं; इसलिये कार्य कर्मोंकी क्षयिष्णुता देखकर सज्जन लोग सदा उसकी निन्दा किया करते हैं ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अकारणो हि नेहास्ति धर्मः सूक्ष्मोऽपि जाजले ।
भूतभव्यार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ३५ ॥

हे जाजलि ! स्थूल धर्म यज्ञ आदिसे सूक्ष्म अभयदान धर्मका अनुष्ठान करनेसे फल हीन नहीं होता; ब्रह्मप्राप्ति और स्वर्गलाभके लिये वेदमें शम दम आदिके साधन और यज्ञ आदि धर्म विहित हुए हैं ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मत्वान्न स विज्ञातुं शक्यते बहुनिह्नवः ।
उपलभ्यान्तरा चान्यानाचारानवबुध्यते ॥ ३६ ॥

अभय दान धर्म अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह पूर्ण रीतिसे जाना नहीं जाता; वेदके बीच किसी स्थलमें वैधहिंसाकी विधि है, कहीं पर अहिंसाकी विधि बलवती हुई है; इससे वैदिक धर्म अत्यन्त ही अन्तर्गूढ है । सब आचार जाननेके लिये उद्यत होनेपर भी उसके बीच अनेक प्रकारके विभिन्न व्यवहार मालूम हुआ करते हैं । बीचमें भिन्न सत्पुरुषोंके आचार देखकरही मनुष्य योग्य धर्म जान सकता है ॥ ३६ ॥

ये च छिन्दन्ति वृषणान्ये च भिन्दन्ति नस्तकान् ।
वहन्ति महतो भारान्बध्नन्ति दमयन्ति च ॥ ३७ ॥

जिन सब बैलोंकी वृषण काटे जाते हैं, और नासिकामें छेद किया जाता है; वे बहुतसा बोझा ढोनेमें समर्थ हुआ करते हैं; मनुष्य उनका बन्धन और दमन किया करते हैं ॥ ३७ ॥

हत्वा सत्त्वानि खादन्ति तान्कथं न विगर्हसे ।
मानुषा मानुषानेव दासभोगेन भुञ्जते ॥ ३८ ॥

जो जीवोंको मारकर भक्षण करते हैं; मनुष्य लोग मनुष्योंको दासत्व शृखलामें बांध रखते हैं, और उनके परिश्रमका फल स्वयं भोगते हैं । उनकी निन्दा क्यों नहीं करते ? ॥ ३८ ॥

वधबन्धविरोधेन कारयन्ति दिवानिशम् ।
आत्मना चापि जानासि यद्दुःखं वधताडने ॥ ३९ ॥

दूसरी जातिकी बात तो दूर रहे, वे लोग स्वजातिके लोगोंको रात दिन वध, बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं; इसके अतिरिक्त अपने वध, बन्धनसे जो दुःख होता है, उस विषयमें भी वे लोग अनभिज्ञ नहीं हैं ॥ ३९ ॥

पञ्चेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम् ।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राणः ऋतुर्यमः ॥ ४० ॥

पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवोंमें सब देवता ही निवास करते हैं । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम ये सब देवता जिस जीवदेहमें निवास करते हैं ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तानि जीवानि विक्रीय का मृतेषु विचारणा ।
का तैले का घृते ब्रह्मन्मधुन्यप्स्वौषधेषु वा ॥ ४१ ॥

उन जीवोंके बेचनेमें जब कोई फल नहीं है, उसे उन्हें अधर्मकी प्राप्ति होती है, तब मृतजीवोंका विक्रय करनेवालोंके विषयमें विचारकी क्या आवश्यकता है? हे ब्रह्मन्! इसलिये तैल, घृत, मधु और औषधि बेचनेमें क्या हानि है? ॥ ४१ ॥

अदंशमशके देशे सुखं संवर्धितान्पशून् ।
तांश्च मातुः प्रियाञ्जानन्नाक्रम्य बहुधा नराः ।
बहुदंशकुलशान्देशान्नयन्ति बहुकर्दमान् ॥ ४२ ॥

मनुष्य लोग दंश और मच्छरोंसे रहित स्थानमें सहजमें ही सुखसे संवर्द्धित पशुओंको, उनकी माताओंके वे प्रिय हैं, यह जानके भी अनेक भांतिसे आक्रमण करके बहुतसे कीचडयुक्त देश तथा मशकोंसे परिपूरित स्थानमें ले जाया करते हैं ॥ ४२ ॥

वाहसंपीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिनापरे ।
न मन्ये भ्रूणहत्यापि विशिष्टा तेन कर्मणा ॥ ४३ ॥

दूसरे अनेक बोझ ढोनेवाले पशु भारी भारसे पीडित होकर लोगोंसे अनुचित बर्तावसे सताये जाते हैं; मुझे बोध होता है, ऐसे पशुपीडन कर्मकी अपेक्षा भ्रूणहत्या अधिक पापयुक्त नहीं है ॥ ४३ ॥

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा च वृत्तिः सुदारुणा ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ।
तथैवानडुहो युक्तान्समवेक्षस्व जाजले ॥ ४४ ॥

जो लोग कृषिकर्मको उत्तम समझते हैं, मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं करता; क्योंकि कृषिकर्म भी अत्यन्त दारुण है । हे जाजलि! लोहमुख हल भूमि और भूमिमें रहनेवाले प्राणियोंको भी नष्ट करता है, और हलमें जुते हुए वृषभोंकी ओर देखो, वे कितना क्लेश सहा करते हैं ॥४४॥

अघ्न्या इति गवां नाम क एनान्हन्तुमर्हति ।
महच्चकाराकुशलं पृषध्रो गालभन्निव ॥ ४५ ॥

गौ अवध्य है, इसहीसे उनका नाम अघ्न्या है; इसलिये कौन उन्हें मारनेमें समर्थ हुआ करता है? जो पुरुष वृषभ अथवा गायकी हिंसा करता है, वह बहुत ही पाप किया करता है ॥४५॥

ऋषयो यतयो ह्येतन्नहुषे प्रत्यवेदयन् ।
गां मातरं चाप्यवधीर्वृषभं च प्रजापतिम् ।
अकार्यं नहुषाकार्षीर्लप्स्यामस्त्वत्कृते भयम् ॥ ४६ ॥

जितेन्द्रिय ऋषियोंने राजा नहुषके समीप जाकर कहा था, गौ मातृस्वरूप और वृषभ प्रजापति स्वरूप है; तुमने उनका वध किया है । हे नहुष! इससे तुमने बहुत ही न करने योग्य पाप कार्य किया है, तुम्हारे निमित्त हम सब कोई भयभीत हुए हैं ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Research Institute, Digitized by eGangotri

शतं चैकं च रोगाणां सर्वभूतेष्वपातयन् ।
ऋषयस्ते महाभागाः प्रजास्वेव हि जाजले ।
भ्रूणहं नहुषं त्वाहुर्न ते होष्यामहे हविः ॥ ४७ ॥

हे जाजलि ! जैसे इन्द्रका ब्रह्महत्याका पाप स्त्रियोंमें रज रूपसे निक्षिप्त हुआ था, वैसेही उन महाभाग ऋषियोंने नहुषके किये हुए गो–वृषभ हत्याके पापको सब प्राणियोंके बीच एक सौ एक रोगोंके रूपसे निक्षेप किया । ब्रह्महत्या और गोहत्याका पाप समान है, इसीसे नहुषको भ्रूणहत्या करनेवाला कहा और फिर कहा कि हम लोग तुम्हारे यज्ञमें हविष्यकी आहुति नहीं देंगे ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा ते महात्मानः सर्वे तत्त्वार्थदर्शिनः ।
ऋषयो यतयः शान्तास्त्वरसा प्रत्यवेदयन् ॥ ४८ ॥

उन समस्त तत्वार्थदर्शी महानुभाव जितेन्द्रिय महर्षियोंने नहुषके विषयमें ऐसा कहकर तथा ध्यानपूर्वक उसे गोहत्या करनेमें प्रवृत्त न देखकर, निर्दोष मानकर वे सब यति और ऋषि त्वरित शान्त हो गये ॥ ४८ ॥

ईदृशानशिवान्घोरानाचारानिह जाजले ।
केवलाचरितत्वात्तु निपुणान्नावबुध्यसे ॥ ४९ ॥

हे जाजलि ! इस लोकमें ऐसा घोर और अकल्याणकर बहुत आचार प्रचलित रहनेके कारणही तुम उस आचारको करते हो, मनुष्यको उचित है कि वह तत्त्वदृष्टीसे विचार करे । परन्तु तुम निपुण होते हुए भी उसकी बुराई नहीं देखते ॥ ४९ ॥

कारणाद्धर्ममन्विच्छेन्न लोकचरितं चरेत् ।
यो हन्याच्चश्च मां स्तौति तत्रापि शृणु जाजले ॥ ५० ॥

कर्मका कारण या हेतु जानकर उसके अनुसार धर्माचरण करे; जिससे जीवोंको भय न हो; उसे ही धर्म जानो; गतानुगतिक होके लोकव्यवहार न करे । हे जाजलि ! सुनो, जो मुझपर प्रहार करे, अथवा जो मेरी प्रशंसा करे ॥ ५० ॥

समौ तावपि मे स्यातां न हि मे स्तः प्रियाप्रिये ।
एतदीदृशकं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ५१ ॥

वे दोनों ही मेरे पक्षमें समान हैं; मुझे हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं है; उनमें कोई भी मेरे लिये प्रिय वा अप्रिय नहीं है । मनीषी लोग इस ही धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ ५१ ॥

उपपत्त्या हि संपन्नो यतिभिश्चैव सेव्यते ।
सततं धर्मशीलैश्च नैपुण्येनोपलक्षितः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥ ८८५२ ॥

यति लोग भी युक्तिपूरित उक्त धर्मकी सेवा किया करते हैं, धर्मशील मनुष्य सदा निपुण नेत्रसे उक्त धर्मको अवलोकन करते हैं और इसी धर्मका अनुष्ठान करते हैं ॥ ५२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ २५४ ॥ ८८५२ ॥

: २५५ :

जाजलिरुवाच—

यथा प्रवर्तितो धर्मस्तुलां धारयता त्वया ।
स्वर्गद्वारं च वृत्तिं च भूतानामवरोत्स्यते ॥ १ ॥

जाजलि मुनि बोले— तुमने तुला धारण करके जो यह धर्मका उपदेश किया है, इससे जीवोंके स्वर्गद्वार और जीविकाका अवरोध होता है ॥ १ ॥

कृष्या ह्यन्नं प्रभवति ततस्त्वमपि जीवसि ।
पशुभिश्चौषधीभिश्च मर्त्या जीवन्ति वाणिज ॥ २ ॥

हे वैश्यपुत्र ! कृषिसे अन्न उत्पन्न होता है, तुम भी उसहीसे जीवन धारण किया करते हो; प्राणिमात्रही पशु और औषधियोंके जरियेही जीवन धारण करते हैं ॥ २ ॥

यतो यज्ञः प्रभवति नास्तिक्यमपि जल्पसि ।
न हि वर्तेदयं लोको वार्तामुत्सृज्य केवलम् ॥ ३ ॥

यज्ञ भी इनसे ही पूर्ण हुआ करता है । तुम्हारे वचनमें नास्तिकता दीखती है; क्योंकि तुम उसही यज्ञकी निन्दा करके नास्तिकता प्रकाशित करते हो । लोग प्रवृत्तिमूलक धर्मको परित्याग करके कदाचित् जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३ ॥

तुलाधार उवाच—

वक्ष्यामि जाजले वृत्तिं नास्मि ब्राह्मण नास्तिकः ।
न च यज्ञं विनिन्दामि यज्ञवित्तु सुदुर्लभः ॥ ४ ॥

तुलाधार बोला— हे द्विज जाजलि ! मैं निज वृत्तिका विषय कहता हूं, मैं नास्तिक नहीं हूं और मैंने यज्ञकी भी निन्दा नहीं की है; यज्ञवित्—यज्ञके यथार्थ तत्त्वको जाननेवाला पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४ ॥

नमो ब्राह्मणयज्ञाय ये च यज्ञविदो जनाः ।
स्वयज्ञं ब्राह्मणा हित्वा क्षात्रं यज्ञमिहास्थिताः ॥ ५ ॥

मैं ब्राह्मणोंके लिये विहित यज्ञको नमस्कार करता हूं । जो सब ब्राह्मण यज्ञ प्रकरण जानते हैं, उन्हें भी प्रणाम करता हूं; अब ब्राह्मणोंने अपने निजके यज्ञका परित्याग करके इस समय हिंसामय क्षत्रियोंके योग्य यज्ञोंका अवलम्बन किया है ॥ ५ ॥

लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन्नास्तिकैः संप्रवर्तितम् ।
वेदवादानविज्ञाय सत्याभासमिवानृतम् ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन् ! वित्तपरायण लोभी और नास्तिक लोगोंने वेदवाक्योंको न जानके सत्यकी भांति भासमान मिथ्या यज्ञोंका प्रचार किया है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इदं देयमिदं देयमिति नान्तं चिकीर्षति ।
अतः स्तैन्यं प्रभवति विकर्माणि च जाजले ।
तदेव सुकृतं हव्यं येन तुष्यन्ति देवताः ॥ ७ ॥

"इस यज्ञमें यह दक्षिणा दान करनी योग्य है, वह दक्षिणा देनी चाहिये" इस ही प्रकार यज्ञकी प्रशस्तता साधन की है । हे जाजलि ! इसही निमित्त यजमानके साध्य होनेपर भी यथायोग्य दक्षिणा दान न करनेसे चोरी और अकल्याणकर विपरीत कार्योंकी उत्पत्ति हुई है । शुभ कर्मसे प्राप्त हविष्यसे किये गये होमसे देवता संतुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

नमस्कारेण हविषा स्वाध्यायैरौषधैस्तथा ।
पूजा स्यादेवतानां हि यथा शास्त्रनिदर्शनम् ॥ ८ ॥

नमस्कार स्वरूप हवि, स्व-शाखोक्त वेदपाठ और औषध स्वरूप घी और अन्न इन सबसे शास्त्रके कथनानुसार देवताओंकी पूजा होती है ॥ ८ ॥

इष्टापूर्तादसाधूनां विषमा जायते प्रजा ।
लुब्धेभ्यो जायते लुब्धः समेभ्यो जायते समः ॥ ९ ॥

कामनावान् असाधु मनुष्योंके इष्टापूर्त्तसे गुणहीन सन्तानोंकी उत्पत्ति होती है । यजमानके लोभी होनेसे उसकी सन्तान भी लोभी होती है; यजमानके रागद्वेषसे रहित समदर्शी होनेसे उसकी सन्तान भी वैसीही समदर्शी हुआ करती है ॥ ९ ॥

यजमानो यथात्मानमृत्विजश्च तथा प्रजाः ।
यज्ञात्प्रजा प्रभवति नभसोऽभ्र इवामलम् ॥ १० ॥

यजमान और ऋत्विज स्वयं जैसे होते हैं, उनकी सन्तान भी वैसीही होती है। आकाशसे निर्मल जल बरसनेकी भांति शुद्ध भावसे किये यज्ञसे भी उत्तम प्रजाकी उत्पत्ति हुआ करती है ॥१०॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मन्नादित्यमुपतिष्ठति ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन् ! अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यमण्डलमें पहुंचती है; सूर्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न हुआ करता है, और अन्नसे ही प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है ॥ ११ ॥

तस्मात्स्वनुष्ठितात्पूर्वे सर्वान्कामांश्च लेभिरे ।
अकृष्टपच्या पृथिवी आशीर्भिर्वीरुधोऽभवन् ।
न ते यज्ञेष्वात्मसु वा फलं पश्यन्ति किंचन ॥ १२ ॥

पहले यज्ञनिष्ठ मनुष्योंने फलानुसन्धान न करके कर्तव्य मानकर श्रद्धापूर्वक किये यज्ञसे ही सब काम्य वस्तुएं पायी हैं । उस समय यज्ञके प्रभावसे पृथ्वीमें विना जोते ही शस्य उत्पन्न होते और उनके शुभ संकल्पसे वृक्षोंमें अनायास ही फल–फूल लगते थे; इसहीसे लोग कृषि-कार्यके निमित्त भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंकी हिंसासे लिप्त नहीं होते थे । इसके अनन्तर मनुष्य यज्ञ आदि कर्ममें अपने लिये फल आदि की ओर नहीं देखते थे ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Parbhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शङ्कमानाः फलं यज्ञे ये यजेरन्कथंचन ।
जायन्तेऽसाधवो धूर्ता लुब्धा वित्तप्रयोजनाः ॥ १३ ॥

जो लोग "यज्ञ करनेसे फल है, वा नहीं" इसही भांति सन्देहयुक्त होकर किसी प्रकारका यज्ञ करते हैं, वे लोग असाधु, दम्भी, धनलोलुप और लोभी कहके विख्यात होते हैं ॥१३॥

स स्व पापकृतां लोकान्गच्छेदशुभकर्मणा ।
प्रमाणमप्रमाणेन यः कुर्यादशुभं नरः ।
पापात्मा सोऽकृतप्रज्ञः सदैवेह द्विजोत्तम ॥ १४ ॥

हे द्विजवर ! जो पुरुष कुतर्कसे वेदोंको अप्रामाण्य सिद्ध करता है, वह उसही अशुभ कर्मसे पापाचारियोंके लोकमें गमन किया करता है, और उसेही इस लोकमें पापात्मा वा अत्यन्त अकृतप्रज्ञ कहा जाता है, वैसे पुरुषकी कभी मुक्ति नहीं होती ॥ १४ ॥

कर्तव्यमितिकर्तव्यं वेत्ति यो ब्राह्मणोभयम् ।
ब्रह्मैव वर्तते लोके नैति कर्तव्यतां पुनः ॥ १५ ॥

नित्य कर्मोंको अवश्य करना चाहिये, उनके करनेसे भय होता है, इसे जो लोग जानते हैं तथा सब कुछ ब्रह्म ही है और जो कर्ताका अभिमान नहीं रखता वेही ब्रह्मनिष्ठ हैं; इस लोकमें जो पुरुष अपनेमें वयोवर्णका अध्यास करके कर्तृत्व मालूम नहीं करते वेही ब्राह्मण हैं; अर्थात् कर्तृत्वाभिमान और फलाभिलाष परित्याग करके कर्माङ्गोंमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग अशन पान आदिकी भांति कर्म किया करते हैं उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है ॥ १५ ॥

विगुणं च पुनः कर्म ज्याय इत्यनुशुश्रुम ।
सर्वभूतोपघातश्च फलभावे च संयमः ॥ १६ ॥

ऐसे ब्राह्मणोंके कर्म गुणहीन वा त्रुटियुक्त होने और अपवित्र कुत्ते, सूकर आदि पशुओंके जरिये विघ्नित होनेपर भी वे निष्काम भावसे किये जाते हैं; इसलिये श्रेष्ठ रूपसे परिगणित हुआ करते हैं, यह श्रुतिमें वर्णित है; परन्तु मेरा यह कर्म इस विघ्नसे नष्ट हुआ है, ऐसा ज्ञान होनेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना होगा, यह भी वेदमें वर्णित है । प्रत्येक कर्ममें फलकी भावना या इच्छापर संयम रखना चाहिये ॥ १६ ॥

सत्ययज्ञा दमयज्ञा अलुब्धाश्चात्मतृप्तयः ।
उत्पन्नत्यागिनः सर्वे जना आसन्नमत्सराः ॥ १७ ॥

जो सब पुरुष सत्य कहते और इन्द्रिय संयमकोही यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ—मोक्ष प्राप्त करनेमें जिन्हें लोभ होरहा है; वित्त वा विषयोंसे मुक्त और जो आत्मसंतुष्ट है वेही प्राप्त वस्तुका त्याग करनेवाले और अमत्सरी हुआ करते हैं ॥ १७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्षेत्रक्षेत्रज्ञतत्त्वज्ञाः स्वयज्ञपरिनिष्ठिताः ।
ब्राह्मं वेदमधीयन्तस्तोषयन्त्यमरानपि ॥ १८ ॥

वे सब योगनिष्ठ पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्वको जानते और आत्मयज्ञ परायण थे तथा प्रणव अध्ययन करते थे; वे आत्म संतुष्ट होकर देवताओंको भी सन्तुष्ट किया करते थे ॥ १८ ॥

अखिलं दैवतं सर्वं ब्रह्म ब्राह्मणसंश्रितम् ।
तृप्यन्ति तृप्यतो देवास्तृप्तास्तृप्तस्य जाजले ॥ १९ ॥

सब देवता और समस्त वेदस्वरूप प्रणव ब्रह्मवित् पुरुषमें प्रतिष्ठित होरहे हैं । हे जाजलि ! उस ही ब्रह्मवित् पुरुषके तृप्त होनेसे आदित्य आदि देवता तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

यथा सर्वरसैस्तृप्तो नाभिनन्दति किंचन ।
तथा प्रज्ञानतृप्तस्य नित्यं तृप्तिः सुखोदया ॥ २० ॥

जो मनुष्य सब रसोंसे तृप्त हुआ है, वह जैसे कोई दूसरे रसान्तरका अभिनन्दन नहीं करता, वैसेही प्रज्ञानतृप्त पुरुषको अनायास ही अक्षय सुखाकारी नित्य तृप्ति हुआ करती है ॥ २० ॥

धर्मारामा धर्मसुखाः कृत्स्नव्यवसितास्तथा ।
अस्ति नस्तत्त्वतो भूय इति प्रज्ञागवेषिणः ॥ २१ ॥

धर्म ही जिनका एक मात्र अवलम्ब है, धर्मसे ही जो लोग सुखी हुआ करते हैं, जिन्होंने ही समस्त कार्याकार्योंके निश्चय किये हैं, और कर्मके जरिये जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ है, वह प्राज्ञ पुरुष हमारे स्वरूपसे बुद्धिके बीच चिदाभासमय पुरुषसे बढके और कोई भी नहीं है, इसे ही अवलोकन करता है ॥ २१ ॥

ज्ञानविज्ञानिनः केचित्परं पारं तितीर्षवः ।
अतीव तत्सदा पुण्यं पुण्याभिजनसंहितम् ॥ २२ ॥

जो सब ज्ञान–विज्ञानसे युक्त सात्त्विक पुरुष संसारके पार जानेकी अभिलाष करते हैं, वे लोग ही अत्यन्त पुण्यप्रद और पुण्यात्माओंसे सेवित सदा पवित्र ब्रह्मलोकको पाते हैं ॥ २२ ॥

यत्र गत्वा न शोचन्ति न च्यवन्ति व्यथन्ति च ।
ते तु तद्ब्रह्मणः स्थानं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ॥ २३ ॥

जिस स्थानमें जानेपर वे शोक नहीं करते, च्युत नहीं होते और मनमें व्यथित भी नहीं होते हैं; वे सात्त्विक लोग उस ब्रह्मधामको ही प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥

नैव ते स्वर्गमिच्छन्ति न यजन्ति यशोधनैः ।
सतां वर्त्मानुवर्तन्ते यथाबलमहिंसया ॥ २४ ॥

वे स्वर्गकी कामना नहीं करते, यश तथा धनके लिये यज्ञ करनेके अभिलाषी नहीं होते, केवल साधु पुरुषोंके मार्गपर चलते हुए अहिंसाके जरिये यथाशक्ति ईश्वरकी आराधना किया करते हैं ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वनस्पतीनोषधीश्च फलमूलं च ते विदुः ।
न चैतानृत्विजो लुब्धा याजयन्ति धनार्थिनः ॥ २५ ॥

वे लोग वनस्पति, ओषधी—अन्न और फलमूलोंको हवनीय रूपसे जानते हैं, धनार्थी ऋत्विक् वैसे निर्द्धन यजमानोंका याजन नहीं करते ॥ २५ ॥

स्वमेव चार्थं कुर्वाणा यज्ञं चक्रुः पुनर्द्विजाः ।
परिनिष्ठितकर्माणः प्रजानुग्रहकाम्यया ॥ २६ ॥

उक्त द्विजातियोंके सब कर्म समाप्त होनेपर भी वे लोग प्रजासमूहके विषयमें अनुग्रहकी अभिलाष करके अपनेको ही अर्थ कल्पना करते हुए मानसयज्ञ पूर्ण किया करते हैं ॥ २६ ॥

प्रापयेयुः प्रजाः स्वर्गं स्वधर्माचरणेन वै ।
इति मे वर्तते बुद्धिः समा सर्वत्र जाजले ॥ २७ ॥

लोभी ऋत्विक् जब वैसे निर्द्धन पुरुषोंका याजन नहीं करते, तब अवश्यही वे लोग मोक्षकी इच्छासे रहित पुरुषोंका ही याजन किया करते हैं । साधु लोग स्वधर्माचरणके जरिये ही प्रजाको स्वर्गमें पहुंचाते हैं । वे लोग समबुद्धिके कारण धर्मफलकी कामना नहीं करते । हे जाजलि ! इस ही लिये मैं सर्वत्र समबुद्धि होरहा हूं, अर्थात् सत् और असत् वृत्तिकी विभिन्नता निबन्धनसे मैं सदाचरणका ही अनुसरण किया करता हूं ॥ २७ ॥

प्रयुञ्जते यानि यज्ञे सदा प्राज्ञा द्विजर्षभ ।
तेन ते देवयानेन पथा यान्ति महामुने ॥ २८ ॥

हे महामुनि ! कर्मठ वा उपासक ब्राह्मण लोग इस लोकमें सदा जिन द्रव्योंको लेकर उनका यज्ञोंमें याजन करते हैं, वे उस ही देवयान पथके जरिये पितृलोक और देवलोकमें गमन किया करते हैं ॥ २८ ॥

आवृत्तिस्तत्र चैकस्य नास्त्यावृत्तिर्मनीषिणाम् ।
उभौ तौ देवयानेन गच्छतो जाजले पथा ॥ २९ ॥

हे जाजलि ! कामनासक्त मनुष्यकी इस जगत्में पुनरावृत्ति होती है; और मनको निग्रह करनेवाले ज्ञानी उपासकोंकी पुनरावृत्ति—फिर जन्म— नहीं होती; अर्थात् दिव्य पथसे गमन करनेपर भी दोनोंके सङ्कल्पभेद निबन्धनसे उनकी आवृत्ति और अनावृत्ति हुआ करती है, इसलिये कर्ममें रत कर्मठ ब्राह्मणों और मनको निरोध करनेवाले उपासक ब्राह्मणोंमें बहुत ही विलक्षणता है ॥ २९ ॥

स्वयं चैषामनड्वहो युज्यन्ति च वहन्ति च ।
स्वयमुस्राश्च दुह्यन्ते मनःसंकल्पसिद्धिभिः ॥ ३० ॥

सत्य सङ्कल्प उपासकोंकी मनकी सङ्कल्पसिद्धिके जरिये वृषभ स्वयं गाडीमें जुतके उनकी सवारी खींचते हैं और गौवें स्वयं सिद्धिरूप दूध दोहन किया करती हैं ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वयं यूपानुपादाय यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः ।
यस्तथाभावितात्मा स्यात्स गामालब्धुमर्हति ॥ ३१ ॥

उनके मानसिक सङ्कल्पसे ही यज्ञ सिद्ध होते हैं; वे लोक संकल्प सिद्ध होनेसे यूप—पर्याप्त दक्षिणा आदि यज्ञके द्रव्योंको मनसे ही उत्पन्न किया करते हैं । जिसने इसही प्रकार योगाभ्यासके जरिये चित्तशोधन किया है, वह मधुपर्कमें गवालंभ कर सकता है ॥ ३१ ॥

ओषधीभिस्तथा ब्रह्मन्यजेरंस्ते नताहशाः ।
बुद्धित्यागं पुरस्कृत्य तादृशं ब्रवीमि ते ॥ ३२ ॥

हे ब्रह्मन् ! योगसिद्ध पुरुष अन्न—ओषधियोंसे यज्ञ यज्ञ करते हैं; जो लोग उस प्रकार विशुद्ध चित्तवाले नहीं हैं, वे लोग पशुहिंसा करनेसे अवश्यही प्रत्यवायभागी होंगे, और योग्य यज्ञ नहीं कर सकेंगे । बुद्धियुक्त त्यागका ऐसा माहात्म्य होनेसे ही, मैंने त्यागका पुरस्कार करके तुम्हारे समीप ऐसा वचन कहा है ॥ ३२ ॥

निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३३ ॥

जिसे आशा और फलकी इच्छासे कर्मका आरम्भ नहीं है, जो नमस्कार वा प्रशंसा नहीं करता, जो क्षीण धर्म नहीं है, परन्तु जिसके सब कर्म क्षीण हुए है, देवता लोग उसे ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३३ ॥

नाश्रावयन्न च यजन्न ददद्ब्राह्मणेषु च ।
ग्राम्यां वृत्तिं लिप्समानः कां गतिं याति जाजले ।
इदं तु दैवतं कृत्वा यथा यज्ञमवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

जो पुरुष वेदश्रवण, देवयजन, ब्राह्मणोंको दान नहीं करता और ग्राम्य भोगोंके लाभकी इच्छा किया करता है, वह असुर स्वभाववाला मनुष्य कुत्सित गतिको प्राप्त होता है; आशा-हीनता आदि पूर्वोक्त धर्मको देवताकी भांति सेवनीय समझनेसे मनुष्य यथाविधि यज्ञके फलको प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

जाजलिरुवाच—

न वै मुनीनां शृणुमः क्व तत्त्वं पृच्छामि त्वा वाणिज कष्टमेतत् ।
पूर्वे पूर्वे चास्य नावेक्षमाणा नातः परं तमृषयः स्थापयन्ति ॥ ३५ ॥

जाजलि मुनि बोले— हे वणिक् ! मैंने आत्मयाजी योगियोंके समीप तुम्हारे तत्त्वको नहीं सुना है, इस ही निमित्त तुम्हारे निकट यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूं । पहलेके महर्षियोंने इस प्रकार योगधर्मकी आलोचना नहीं की है, इससे लोकके बीच यह रहस्य पूर्ण उत्तम धर्म उनसे प्रवर्त्तित नहीं हुआ है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अस्मिन्नैवात्मतीर्थे न पशवः प्राप्नुयुः सुखम् ।
अथ स्वकर्मणा केन वाणिज प्राप्नुयात्सुखम् ।
शंस मे तन्महाप्राज्ञ भृशं वै श्रद्दधामि ते ॥ ३६ ॥

हे महाप्राज्ञ वणिक् ! यद्यपि आत्मतीर्थ अर्थात् आत्मस्वरूप यज्ञभूमिमें पशुतुल्य मन्दबुद्धि मनुष्य मानसिक यज्ञजनित सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब वे लोग किस कर्मके जरिये सुखलाभके अधिकारी होंगे ? उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो । मैं तुमपर अत्यन्त श्रद्धा करता हूं ॥ ३६ ॥

तुलाधार उवाच—

उत यज्ञा उतायज्ञा मखं नार्हन्ति ते क्वचित् ।
आज्येन पयसा दध्ना पूर्णाहुत्या विशेषतः ।
वालैः शृङ्गेण पादेन संभवत्येव गौर्मखम् ॥ ३७ ॥

तुलाधार बोले— जिन सब दाम्भिकोंके यज्ञ श्रद्धाहीनताके कारण अयज्ञ रूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं, वे लोग आन्तरिक—मानसिक वा बाह्य—क्रियात्मक कोई यज्ञ करनेके योग्य नहीं हैं । श्रद्धावान् मनुष्योंको एक ही गऊके जरिये बाह्य क्रतु सिद्ध हुआ करता है; क्योंकि घृत, दूध, दही, विशेष करके पूर्णाहुतिमें असमर्थके विषयमें गोपूंछसे तर्पणके निमित्त पूंछके रोम, अभिषेक आदि निबन्धनमें गोशृङ्ग और खुररज, इन सात प्रकारकी वस्तुओंसे गोयज्ञके कार्य सिद्ध हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥

पत्नीं चानेन विधिना प्रकरोति नियोजयन् ।
पुरोडाशो हि सर्वेषां पशूनां मेध्य उच्यते ॥ ३८ ॥

इस पशुहिंसारहित घृतादिके बीच यज्ञविधिसे घृत आदि वस्तु देव उद्देश्यसे विनियोगके लिये मानसिक श्रद्धाको पत्नीरूपसे कल्पना करनी होती है; क्योंकि अपत्निक पुरुषका वैदिक यज्ञ सिद्ध नहीं होता; यज्ञविहित पशुओंके दुग्ध आदिसे निर्मित पुरोडाश ही पवित्ररूपसे वर्णित हुआ करता है ॥ ३८ ॥

सर्वा नद्यः सरस्वत्यः सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः ।
जाजले तीर्थमात्मैव मा स्म देशातिथिर्भव ॥ ३९ ॥

हे जाजलि ! सारी नदियां सरस्वती रूप हैं और सब पर्वत पुण्यमय हैं । जिससे आत्मसाधन होता है, वही यज्ञभूमि है, इसलिये मुख्य तीर्थ स्वरूप आत्माको न जानके अन्य तीर्थोंका अतिथि मत बनो ॥ ३९ ॥

एतानीदृशकान्धर्मानाचरन्निह जाजले ।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन्न लोकानाप्नुते शुभान् ॥ ४० ॥

हे जाजलि ! इस लोकमें जो इस ही भांति अहिंसामय धर्माचरण करता है और अर्थित्व वा समर्थित्व तारतम्यके अनुसार धर्मानुष्ठान किया करता है, वह शुभलोकोंको पाता है ॥४०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

एतानीदृशकान्धर्मांस्तुलाधारः प्रशंसति ।
उपपत्त्या हि संपन्नान्नित्यं सद्भिर्निषेवितान् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥ ८८९३ ॥

भीष्म बोले— तुलाधार इस ही प्रकार हिंसारहित, युक्तिसङ्गत और सदा साधुओंसे सेवित इस समस्त धर्मकी प्रशंसा किया करता है ॥ ४१ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ २५५ ॥ ८८९३ ॥

: २५६ :

तुलाधार उवाच—

सद्भिर्वा यदि वासद्भिरयं पन्थाः समाश्रितः ।
प्रत्यक्षं क्रियतां साधु ततो ज्ञास्यसि तद्यथा ॥ १ ॥

तुलाधार बोला— इस पथको साधु वा असाधु लोग अवलम्बित करते हैं या नहीं, इस बातको उत्तम रीतिसे प्रत्यक्ष मालूम करो; ऐसा होनेसे ही उसका जैसा फल है उसे जान सकोगे ॥ १ ॥

एते शकुन्ता बहवः समन्ताद्विचरन्ति हि ।
तवोत्तमाङ्गे संभूताः श्येनाश्चान्याश्च जातयः ॥ २ ॥

ये सब अनेक जातीय पक्षी चारों ओर विचर रहे हैं । तुम्हारे शिरपरसे जो पक्षी उत्पन्न हुए थे, वे सब और बाज तथा दूसरी जातिके पक्षी भी इनके बीच विद्यमान हैं ॥ २ ॥

आह्वयैनान्महाब्रह्मन्विशमानांस्ततस्ततः ।
पश्येमान्हस्तपादेषु श्लिष्टान्देहे च सर्वशः ॥ ३ ॥

इन सबोंने इधर उधर अपने घोसलोंमें प्रवेश करनेके निमित्त हस्तपादादि शरीरोंसे संकुचित किये हैं । हे ब्रह्मन् ! इसलिये इस समय तुम इन्हें आवाहन करके देखो ॥ ३ ॥

संभावयन्ति पितरं त्वया संभाविताः खगाः ।
असंशयं पिता च त्वं पुत्रानाह्वय जाजले ॥ ४ ॥

यह देखिये, पक्षीवृन्द तुमसे समादृत होके तुम्हारा संमान कर रहे हैं । हे जाजलि ! पुत्रोंको आह्वान करो, तुम इनके पिता हुए हो, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥

भीष्म उवाच—

ततो जाजलिना तेन समाहूताः पतत्रिणः ।
वाचमुच्चारयन्दिव्यां धर्मस्य वचनात्किल ॥ ५ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर उस जाजलि मुनिके बुलाने पर पक्षियोंने अहिंसामय धर्मयुक्त दिव्य वचनके अनुसार प्रत्युत्तर दिया ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अहिंसादिकृतं कर्म इव चैव परत्र च ।
स्पर्धां निहन्ति वै ब्रह्मन्सा हता हन्ति तं नरम् ॥ ६ ॥

अहिंसा, दया आदि भावोंसे युक्त होकर किया कर्म इहलोक और परलोकमें उत्तम फल देता है; हे ब्रह्मन् ! हिंसाके जरिये किया हुआ कर्म स्पर्धा नष्ट करता है, श्रद्धा नष्ट होनेपर श्रद्धाहीन मनुष्यको विनष्ट किया करता है ॥ ६ ॥

श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न यज्ञस्त्रातुमर्हति ।
अत्र गाथा ब्रह्मगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥ ७ ॥

श्रद्धाहीन पुरुषके कर्ममें त्रुटि रहे तो वचन और मन उस कर्मकी रक्षा नहीं कर सकते; पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें ब्रह्माने कही हुई यह गाथा कहा करते हैं ॥ ७ ॥

शुचेरश्रद्दधानस्य श्रद्दधानस्य चाशुचेः ।
देवाश्चित्तमसमन्यन्त सदृशं यज्ञकर्मणि ॥ ८ ॥

पहले पवित्र और अश्रद्धावान् तथा श्रद्धावान् और अपवित्र पुरुषके वित्तको देवता लोग यज्ञ कर्ममें समानही समझते थे ॥ ८ ॥

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ ९ ॥

श्रोत्रिय होके भी जो पुरुष कृपणताका व्यवहार करता है, और धान्य बेचके भी जो वदान्य होता है, देवताओंने विचार करके उन दोनोंके अन्नको समान भावसे निश्चय किया था ॥ ९ ॥

प्रजापतिस्तानुवाच विषमं कृतमित्युत ।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ।
भोज्यमन्नं वदान्यस्य कदर्यस्य न वार्धुषेः ॥ १० ॥

प्रजापतिने उनके इस बर्तावके लिये उनसे कहा था– हे देवतावृन्द ! तुमने जो कुछ किया है, वह अत्यन्त अनुचित हुआ है। उदार पुरुषके श्रद्धायुक्त अन्न पवित्र– भक्षणीय हैं, अश्रद्धासे सिद्ध हुए अन्न नष्टप्राय होनेसे भक्षणीय नहीं है; इसलिये उदारकाही अन्न भोजन करना चाहिये, कृपण तथा वृद्धिजीविका अन्न न खाना चाहिये ॥ १० ॥

अश्रद्दधान एवैको देवानां नार्हते हविः ।
तस्यैवान्नं न भोक्तव्यमिति धर्मविदो विदुः ॥ ११ ॥

केवल अश्रद्धावान् मनुष्यही देवताओंको हवि दान करनेके योग्य नहीं है, उसका अन्न भी अभक्षणीय है; ऐसा धर्म जाननेवाले पुरुष कहा करते हैं ॥ ११ ॥

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचनी ।
जहाति पापं श्रद्धावान्सर्पो जीर्णामिव त्वचम् ॥ १२ ॥

अश्रद्धा ही परम पाप स्वरूप है, और श्रद्धा ही पापको दूर किया करती है। जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली परित्याग करता है, श्रद्धावान् मनुष्य उस ही प्रकार पाप परित्याग किया करता है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्यायसी यापवित्राणां निवृत्तिः श्रद्धया सह ।
निवृत्तशीलदोषो यः श्रद्धावान्पूत एव सः ॥ १३ ॥

श्रद्धाके सहित निवृत्तिमार्गको अवलम्बन करना ही सब पवित्रताओंके बीच श्रेष्ठ है; राग आदि शीलसम्बन्धी दोषोंसे जो निवृत्त हुआ है, वही श्रद्धावान् सदा पवित्र है ॥ १३ ॥

किं तस्य तपसा कार्यं किं वृत्तेन किमात्मना ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ १४ ॥

उसे तपस्या, शील और धर्मके अभ्याससे क्या प्रयोजन है ? यह श्रद्धामय पुरुष सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धाके बीच जैसी श्रद्धासे युक्त होता है, तब वह उसही नामसे अर्थात् सात्विक, राजसिक और तामस नामसे प्रसिद्ध हुआ करता है ॥१४॥

इति धर्मः समाख्यातः सद्भिर्धर्मार्थदर्शिभिः ।
वयं जिज्ञासमानास्त्वा संप्राप्ता धर्मदर्शनात् ॥ १५ ॥

धर्मार्थदर्शी साधुओंने इस ही प्रकार धर्मका वर्णन किया है; धर्मदर्शन नामक मुनिसे पूछकर उससेही हम लोगोंने इस प्रकार धर्मका लक्षण जाना है ॥ १५ ॥

स्पर्धां जहि महाप्राज्ञ ततः प्राप्स्यसि यत्परम् ।
श्रद्धावाञ्श्रद्दधानश्च धर्मांश्चैवेह वाणिजः ।
स्ववर्त्मनि स्थितश्चैव गरीयानेष जाजले ॥ १६ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तुम स्पर्धाका त्याग करो; इससे तुम्हें परम गतिकी प्राप्ति होगी; वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और वेदार्थ अनुष्ठान करनेमें श्रद्धा रखनेवाला तुलाधार वणिक् ही यहां धर्मात्मा है। हे जाजलि ! जो श्रद्धासे कर्त्तव्यपूर्वक धर्ममार्गमें निवास करता है, वही गौरवयुक्त है ॥ १६ ॥

एवं बहुमतार्थं च तुलाधारेण भाषितम् ।
सम्यक्चैवमुपालब्धो धर्मश्चोक्तः सनातनः ॥ १७ ॥

तुलाधारने इसही प्रकार अनेक तरहके उत्तम विषय कहे थे; तुलाधारने पूर्णरीतिसे सनातन धर्म जाना था, और जाजलि मुनिके समीप कहा था ॥ १७ ॥

तस्य विख्यातवीर्यस्य श्रुत्वा वाक्यानि स द्विजः ।
तुलाधारस्य कौन्तेय शान्तिमेवान्वपद्यत ॥ १८ ॥

हे कौन्तेय ! द्विजश्रेष्ठ जाजलिने उस विख्यातवीर्य तुलाधारका सब वचन सुनके शान्तिमार्गका अवलम्बन किया था ॥ १८ ॥

ततोऽचिरेण कालेन तुलाधारः स एव च ।
दिवं गत्वा महाप्राज्ञौ विहरेतां यथासुखम् ।
स्वं स्वं स्थानमुपागम्य स्वकर्मफलनिर्जितम् ॥ १९ ॥

अनन्तर महाप्राज्ञ तुलाधार और जाजलि मुनि थोडे ही समयमें सुरलोकमें जाके निज कर्म धर्मके उपार्ज्जित फल स्वरूप अपने अपने स्थानको पाके सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

समानां श्रद्दधानानां संयतानां सुचेतसाम् ।
कुर्वतां यज्ञ इत्येव न यज्ञो जातु नेष्यते ॥ २० ॥

लाभ हानिमें समदर्शी, श्रद्धावान्, शान्त और दान्त पुरुष "यज्ञ करना योग्य है" ऐसे ही अभिसन्धि करके अर्थात् कर्तृत्वाभिमान अथवा फलाभिसन्धि न करके यदि यज्ञका अनुष्ठान करें, तो उनके अनुष्ठित यज्ञसे कदापि अनिष्ट फलकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २० ॥

श्रद्धा वै सात्त्विकी देवी सूर्यस्य दुहिता नृप ।
सावित्री प्रसवित्री च जीवविश्वासिनी तथा ॥ २१ ॥

हे राजन् ! ब्रह्मविषयिणी श्रद्धाको सूर्यकी पुत्री सात्त्विकी कहा जाता है; वह श्रद्धाका पालन करती है, इसहीसे सावित्री और शुद्ध जन्म प्रदान करती है, इसीसे प्रसवित्री रूपसे कही जाती है । तथा जीवोंको विश्वास देनेवाली– जीवविश्वासिनी है ॥ २१ ॥

वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च भारत ।
यथोपम्योपदेशेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥ ८९१५ ॥

हे भारत ! मन्त्र आदि उच्चारण करनेके समय स्वर–वर्ण विपर्यासके जरिये जो वाक्य नष्ट होता है, और व्यग्र चित्तसे जो देवताओंके ध्यान आदि विनष्ट होते हैं, श्रद्धा उसका समाधान करती है; तुलाधारने यथाविहित दृष्टान्तके जरिये मौनव्रती विप्रवर जाजालिके निकट इस ही प्रकार अनेक भांतिके विषय कहे थे; तुम अब फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो ॥ २२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ २५६ ॥ ८९१५ ॥

ः २५७ ः

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रजानामनुकम्पार्थं गीतं राज्ञा विचक्ष्नुना ॥ १ ॥

भीष्म बोले– पुरुष आदि पशुओंके विषयमें कृपा करनेके निमित्त महाराजा विचक्ष्नूने जो कुछ कहा था, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ १ ॥

छिन्नस्थूणं वृषं दृष्ट्वा विरावं च गवां भृशम् ।
गोग्रहे यज्ञवाटस्य प्रेक्षमाणः स पार्थिवः ॥ २ ॥

एक समय राजाने यज्ञशालामें वृषभकी गरदन कटी हुई है और अनेक गौएं अत्यन्त विलाप कर रही हैं, यह सब देखा और बोले– ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वस्ति गोभ्योऽस्तु लोकेषु ततो निर्वचनं कृतम् ।
हिंसायां हि प्रवृत्तायामाशीरेषानुकल्पिता ॥ ३ ॥

लोकके बीच गौवोंकी "स्वस्ति होवे" यही वाक्य निश्चय किया था। गोहिंसा आरम्भ होनेपर उक्त राजाके जरिये यही आशीर्वचन कल्पित हुआ था और उसका निषेध करते कहा— ॥ ३ ॥

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुकीर्तिता ॥ ४ ॥

जिनकी धर्मकी मर्यादा विचलित हुई है, जो विमूढ हैं, वा देहके अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मा है ऐसे संशययुक्त चित्तवाले नास्तिक पुरुषोंने यज्ञादिके जरिये बडाई पानेकी अभिलाष करते हुए पशुहिंसाकी प्रशंसा की है; ॥ ४ ॥

सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामरागाद्धिहिंसन्ति बर्हिर्वेद्यां पशून्नराः ॥ ५ ॥

परन्तु सब अर्थ और वेदोंके तत्त्वको जाननेवाले धर्मात्मा मनुने सब कर्मोंमें ही अहिंसाकी प्रशंसा की है। इच्छानुसारी मनुष्य यज्ञकी बाह्यवेदीपर पशुहिंसा किया करते हैं ॥ ५ ॥

तस्मात्प्रमाणतः कार्यो धर्मः सूक्ष्मो विजानता ।
अहिंसैव हि सर्वेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता ॥ ६ ॥

इसलिये प्रमाणके जरिये हिंसा और अहिंसा दोनोंके बलाबलको जान कर सूक्ष्म धर्मका अवलम्बन करें; सब प्राणिओंके विषयमें हिंसा न करना ही धर्माधर्मोंमें सबसे उत्तम है॥ ६॥

उपोष्य संशितो भूत्वा हित्वा वेदकृताः श्रुतीः ।
आचार इत्यनाचाराः कृपणाः फलहेतवः ॥ ७ ॥

गांवके समीप निवास करते हुए संक्षितव्रती होकर वेदविहित चातुर्मास्ययाजियोंको अक्षय पुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति परित्याग करके आचारबुद्धिके जरिये पुरुष गृहस्थाचाररहित होवे, संन्यास धर्म अवलम्बन करे, पुरुषोंके विषयमें यही कल्याणकारी है, ऐसा ही समझके निष्कर्म अवलम्बन करना चाहिये, और जो फलकी इच्छा करके कर्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य हैं ॥ ७ ॥

यदि यज्ञांश्च वृक्षांश्च यूपांश्चोद्दिश्य मानवाः ।
वृथा मांसानि खादन्ति नैष धर्मः प्रशस्यते ॥ ८ ॥

यदि मनुष्य यज्ञ, वृक्ष, यूपोंको उद्देश्य करके वृथा मांस भक्षण करें, तो वह कुछ भी प्रशंसनीय धर्म नहीं है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मांसं मधु सुरा मत्स्या आसवं कृसरौदनम् ।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥ ९ ॥

यज्ञ करनेवाले मनुष्य कभी वृथा मांस भक्षण नहीं करते; मांस, मधु, मद्य, मछली, आसव, कृसरौदन अर्थात् तिल मिले हुए चावलोंका भक्षण करना धूर्तोंके जरिये प्रवर्तित हुआ है, यह वेदके बीच वर्णित नहीं है ॥ ९ ॥

कामान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रवर्तितम् ।
विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः ।
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् ॥ १० ॥

काम, मोह और लोभके वशमें होकर मनुष्योंकी इन वस्तुओंके प्रति इच्छा हुआ करती है । ब्राह्मण लोग सब यज्ञोंमें सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका ही आदरभाव मानते हैं; दूध और फूलोंसे उनकी पूजा हुआ करती है ॥ १० ॥

यज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः ।
यच्चापि किंचित्कर्तव्यमन्यच्चोक्षैः सुसंस्कृतम् ।
महासत्त्वैः शुद्धभावैः सर्वं देवार्हमेव तत् ॥ ११ ॥

जो सब यज्ञीय वृक्ष वेदमें वर्णित हैं, और जो कुछ करने योग्य तथा जो कुछ शुद्ध आचारके सहारे संस्कारयुक्त हुआ करता है, महत् सत्त्व और शुद्ध अन्तःकरणके सहित वह सभी देवताओंके अर्पण करनेके योग्य रूपसे विहित हुआ है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

शरीरमापदश्चापि विवदन्त्यविहिंसतः ।
कथं यात्रा शरीरस्य निरारम्भस्य सेत्स्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले— शरीर और समस्त आपदा आपसमें विवाद किया करती हैं, अर्थात् आपदा शरीरको अवसन्न करती है, और शरीर भी आपदको नष्ट करनेकी इच्छा किया करता है; इससे अत्यन्त हिंसारहित पुरुषकी शरीरयात्राका निर्वाह किस प्रकार सिद्ध होसकता है ? ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच—

यथा शरीरं न ग्लायेन्नेयान्मृत्युवशं यथा ।
तथा कर्मसु वर्तेत समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥ ८९२८ ॥

भीष्म बोले— जिससे शरीर ग्लानियुक्त वा मृत्युके वशीभूत न हो, वैसे ही कार्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये; समर्थ होनेपर धर्माचरण करे, अर्थात् शरीरके अनुकूल धर्मकार्य करे, धर्मके अनुरोधसे शरीर नष्ट न करे ॥ १३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ २५७ ॥ ८९२८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २५८ :

युधिष्ठिर उवाच—

कथं कार्यं परीक्षेत शीघ्रं वाथ चिरेण वा ।
सर्वथा कार्यदुर्गेऽस्मिन्भवान्नः परमो गुरुः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! आप हमारे परम गुरु हैं, इससे हिंसामय कार्य दुष्कर होनेसे भी गुरुवचनके अनुसार यदि उसे अवश्य करना पडे, तो विलंब वा शीघ्रताके सहित किस प्रकारसे उसकी परीक्षा करनी होगी, उसे ही कहिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
चिरकारेस्तु यत्पूर्वं वृत्तमाङ्गिरसे कुले ॥ २ ॥

भीष्म बोले– पहिले समयमें अङ्गिरावंशमें चिरकारीके किये हुए कर्मके जरिये जो घटना हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ २ ॥

चिरकारिक भद्रं ते भद्रं ते चिरकारिक ।
चिरकारी हि मेधावी नापराध्यति कर्मसु ॥ ३ ॥

हे चिरकारी ! तुम्हारा ही मङ्गल हो ! हे चिरकारी ! तुम्हारा ही कल्याण हो ! मेधावी चिरकारी कभी किसी कर्मोंके पालनमें अपराध नहीं करता है ॥ ३ ॥

चिरकारी महाप्राज्ञो गौतमस्याभवत्सुतः ।
चिरं हि सर्वकार्याणि समेक्षावान्प्रपद्यते ॥ ४ ॥

महाप्राज्ञ चिरकारी गौतमके पुत्र थे, वह बहुत समयतक विचार करके सब कर्तव्यकार्य करते थे ॥ ४ ॥

चिरं संचिन्तयन्नर्थांश्चिरं जाग्रच्चिरं स्वपन् ।
चिरकार्याभिसंपत्तेश्चिरकारी तथोच्यते ॥ ५ ॥

वह बहुत समयतक सब विषयोंपर सोचते थे, बहुत देरतक जागते रहते थे और बहुत देर पर्यन्त सोते रहते थे, तथा विलम्ब करके कार्य पूर्ण करनेमें प्रवृत्त होते थे, इस निमित्त उन्हें चिरकारी कहा जाता था ॥ ५ ॥

अलसग्रहणं प्राप्तो दुर्मेधावी तथोच्यते ।
बुद्धिलाघवयुक्तेन जनेनादीर्घदर्शिना ॥ ६ ॥

थोडी बुद्धिवाले और अदूरदर्शी लोग उन्हें आलसी और मन्दबुद्धि कहते थे ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

व्यभिचारे तु कस्मिंश्चिद्व्यतिक्रम्यापरान्सुतान् ।
पित्रोक्तः कुपितेनाथ जहीमां जननीमिति ॥ ७ ॥

किसी समय गौतमने अपनी स्त्री अहल्याका कुछ व्यभिचार देखकर कोपित होके दूसरी सन्तानोंको न कहकर चिरकारीसे कहा, हे चिरकारी ! तुम अपनी इस पापिनी माताका वध करो ॥ ७ ॥

स तथेति चिरेणोक्त्वा स्वभावाच्चिरकारिकः ।
विसृज्य चिरकारित्वाच्चिन्तयामास वै चिरम् ॥ ८ ॥

चिरकारी स्वभावसे ही बहुत देरके अनन्तर "वही करूंगा" ऐसा वचन कहके, चिरकारित्वके सबब बहुत देरतक विचार करके सोचने लगा ॥ ८ ॥

पितुराज्ञां कथं कुर्यां न हन्यां मातरं कथम् ।
कथं धर्मच्छले नास्मिन्निमज्जेयमसाधुवत् ॥ ९ ॥

पिताकी आज्ञा किस प्रकार परिपालन करूं; और किस प्रकारसे मातृहत्या भी न करूं ? धर्मके बहाने यह महान् संकट उपस्थित हुआ है, और दुष्टोंकी भांति किस प्रकार इस धर्म सङ्कटमें निमग्न होऊं ? ॥ ९ ॥

पितुराज्ञा परो धर्मः स्वधर्मो मातृरक्षणम् ।
अस्वतन्त्रं च पुत्रत्वं किं नु मां नात्र पीडयेत् ॥ १० ॥

पिताकी आज्ञा माननी परम धर्म है, तथा माताकी रक्षा करना भी स्वधर्म है, और पुत्रत्व भी एकबारही स्वतन्त्र नहीं है; इन दोनोंके बीच मुझे कौन विषय धर्मकी हानिरूप पीडित नहीं करेगा ? ॥ १० ॥

स्त्रियं हत्वा मातरं च को हि जातु सुखी भवेत् ।
पितरं चाप्यवज्ञाय कः प्रतिष्ठामवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

स्त्रीहत्या विशेष करके माताका वध करनेसे कौन पुरुष सुखी होसकता है और पिताकी अवज्ञा करके किस पुरुषको प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ करती है ? ॥ ११ ॥

अनवज्ञा पितुर्युक्ता धारणं मातृरक्षणम् ।
युक्तक्षमावुभावेतौ नातिवर्तेतमां कथम् ॥ १२ ॥

पिताकी अवज्ञा न करनी ही उचित है और माताकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये, इन दोनों धर्मोंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी मुझे दोनों कार्यका अनुष्ठान करना उचित मालूम होता है, इसलिये मैं इन दोनों धर्मोंको किस प्रकार अतिक्रम न करूं ? ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पिता ह्यात्मानमाधत्ते जायायां जन्मियामिति ।
शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थं कुलस्य च ॥ १३ ॥

पिता अपने सद्वृत्त चरित्रके नाम और वंशकी रक्षाके लिये जायाके जरिये जन्म लेकर आत्माको धारण करता है ॥ १३ ॥

सोऽहमात्मा स्वयं पित्रा पुत्रत्वे प्रकृतः पुनः ।
विज्ञानं मे कथं न स्याद्बुबुधे चात्मसंभवम् ॥ १४ ॥

मैं माता और पिता दोनोंसे ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ हूं; दोनोंको ही अपनी उत्पत्तिका कारण जानता हूं; ऐसा ज्ञान मुझे क्यों न होगा ? ॥ १४ ॥

जातकर्मणि यत्प्राह पिता यच्चोपकर्मणि ।
पर्याप्तः स दृढीकारः पितुर्गौरवनिश्चये ॥ १५ ॥

जातकर्म संस्कारके समय पिता कहता है, कि 'प्रस्तर हो' अर्थात् पत्थरकी भांति अच्छेद्य हो 'तथा परशु हो' अर्थात् फरशेकी भांति मेरे शत्रुओंके नाशक बनो । उपनयनके अनन्तर गुरुगृहसे लौटनेपर पिता पुत्रका मस्तक छूके "आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ है," इत्यादि वचन कहा करता है, पिताके गौरव-निश्चयके विषयमें वही दृढ और पर्याप्त है ॥ १५ ॥

गुरुरग्न्यः परो धर्मः पोषणाध्ययनाद्धितः ।
पिता यदाह धर्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः ॥ १६ ॥

पिता प्रतिपालन और शिक्षा देनेसे पुत्रका परम गुरु तथा परम धर्मका स्वरूप है । पिता जैसी आज्ञा दे, वही धर्म है; यह वेदोंमें भली प्रकार निश्चित है ॥ १६ ॥

प्रीतिमात्रं पितुः पुत्रः सर्वं पुत्रस्य वै पिता ।
शरीरादीनि देयानि पिता त्वेकः प्रयच्छति ॥ १७ ॥

पुत्र ही पिताका प्रीतिपात्र है और पिता ही पुत्रका सर्वस्व है । शरीर आदि जो कुछ देय पदार्थ हैं, उन्हें केवल पिता ही पुत्रको प्रदान किया करता है ॥ १७ ॥

तस्मात्पितुर्वचः कार्यं न विचार्यं कथंचन ।
पातकान्न्यपि पूयन्ते पितुर्वचनकारिणः ॥ १८ ॥

इसलिये पिताकी आज्ञा अवश्य प्रतिपालन करनी चाहिये; कभी उसमें विचार न करना चाहिये; जो पिताकी आज्ञा पालन करता है, वह पापोंसे छूटके पवित्र हुआ करता है ॥ १८ ॥

भोगे भाग्ये प्रसवने सर्वलोकनिदर्शने ।
भर्त्रा चैव समायोगे सीमन्तोन्नयने तथा ॥ १९ ॥

वस्त्रादि भोग्यविषय, अन्न प्रभृति भोज्य-पदार्थ, वेदाध्ययन, लौकिक शिक्षाके विषय तथा गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन आदि सब संस्कारोंके करनेसे पिता ही प्रभु है ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता परमकं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीयन्ति देवताः ॥ २० ॥

पिता ही स्वर्गरूपी है, पिताही धर्मस्वरूप है और पिता ही परम तपस्या स्वरूप है; पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ २० ॥

आशिषस्ता भजन्त्येनं पुरुषं प्राह याः पिता ।
निष्कृतिः सर्वपापानां पिता यदभिनन्दति ॥ २१ ॥

पिता पुत्रसे जो कुछ कठोर बातें कहे तो वेही पुत्रके विषयमें आशीर्वाद वचन हैं; यदि पिता पुत्रका आदर करे, तो पुत्र सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २१ ॥

मुच्यते बन्धनात्पुष्पं फलं वृन्तात्प्रमुच्यते ।
क्लिश्यन्नपि सुतस्नेहैः पिता स्नेहं न मुञ्चति ॥ २२ ॥

किसलयोंसे फूल और वृक्षसे फल गिरता है, परन्तु पिता कितनेही दुःख-कष्ट पानेपर भी प्रीतिके वशमें होकर सन्तानको परित्याग नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

एतद्विचिन्तितं तावत्पुत्रस्थ पितृगौरवम् ।
पिता ह्यल्पतरं स्थानं चिन्तयिष्यामि मातरम् ॥ २३ ॥

पुत्रके विषयमें पिताका जैसा गौरव है, उसका मैंने विचार कर लिया; पिता साधारण– क्षुद्र आश्रय नहीं है; जो हो, अब माताके विषयका विचार अवश्य करूं ॥ २३ ॥

यो ह्ययं मयि संघातो मर्त्यत्वे पाञ्चभौतिकः ।
अस्य मे जननी हेतुः पावकस्य यथाराणिः ।
माता देहारणिः पुंसां सर्वस्यार्तस्य निर्वृतिः ॥ २४ ॥

मनुष्यशरीर धारण करनेसे मुझमें जो पाञ्चभौतिक समष्टि है, अग्निके प्रकट होनेके कारण अरणीकी भांति माता ही मेरे इस शरीरका हेतु है । माता ही मनुष्यशरीरके विषयमें अरणी-स्वरूप है, माता ही सब आर्त प्राणियोंके सुखोंका विधान करनेवाली है ॥ २४ ॥

न च शोचति नाप्येनं स्थाविर्यमपकर्षति ।
श्रिया हीनोऽपि यो गेहे अम्बेति प्रतिपद्यते । ॥ २५ ॥

पुरुष श्रीहीन होके भी यदि "मा" कहके गृहमें प्रवेश करे, तो उसे शोक करना न पडे वह मानो माता अन्नपूर्णके पास जाता है और मातृमान् पुरुषको स्थविरता आकर्षण नहीं कर सकती ॥ २५ ॥

पुत्रपौत्रसमाकीर्णो जननीं यः समाश्रितः ।
अपि वर्षशतस्यान्ते स द्विहायनवच्चरेत् ॥ २६ ॥

पुत्रपौत्रसे युक्त पुरुष भी यदि जननीका आश्रित होवे, तो वह सौ वर्षकी अवस्थाका होनेपर भी उसके पास दो वर्षवाले बालककी भांति आचरण करता है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

समर्थं वासमर्थं वा कृशं वाप्यकृशं तथा ।
रक्षत्येव सुतं माता नान्यः पोष्टा विधानतः ॥ २७ ॥

पुत्र समर्थ हो, वा असमर्थ होवे, दुबला हो वा हृष्टपुष्ट ही होवे, माताही उसे विधिपूर्वक पोषण किया करती है; उस प्रकार पालन करनेमें दूसरा कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥

तदा स वृद्धो भवति यदा भवति दुःखितः ।
तदा शून्यं जगत्तस्य यदा मात्रा वियुज्यते ॥ २८ ॥

जब मनुष्यको मातृवियोग होता है तभी वह वृद्ध होता है, तभी वह दुःखित होता है, और उस ही समय उसे सब जगत् सूना बोध होता है ॥ २८ ॥

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः ।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रपा ॥ २९ ॥

जननीके समान दुःख हरनेवाला– छत्र छाया कोई भी नहीं है; माताके समान आश्रयस्थान दूसरा कोई भी नहीं है; माताके समान रक्षण करनेवाला कोई नहीं है, माताके समान प्रिय-वादिनी और कोई नहीं है ॥ २९ ॥

कुक्षिसंधारणाद्धात्री जननाज्जननी स्मृता ।
अङ्गानां वर्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः ॥ ३० ॥

जननी सन्तानको कुक्षिमें धारण करती है, इसहीसे उसका नाम धात्री है; उससे जन्म होता है, इस ही कारण उसे जननी कहा जाता है; उससे अङ्गोंकी पुष्टि होती है, इसहीसे उसे अम्बा कहा जाता है, और वह वीर पुरुष प्रसव करती है, इसीसे उसे वीरसू कहते हैं ॥३०॥

शिशोः शुश्रूषणाच्छुश्रूर्माता देहमनन्तरम् ।
चेतनावान्नरो हन्याद्यस्य नासुषिरं शिरः ॥ ३१ ॥

माता शिशुकी सेवा करती है; इस ही लिये उसे शुश्रू कहा जाता है; माता ही अव्यवहित शरीर स्वरूप है, इसलिये जिसका मेद और मज्जारहित मस्तक सूखे हुए अलाबूकी भांति मार्गके बीच पतित नहीं हुआ है, वैसा सचेतन मनुष्य कभी मातृहत्या करनेमें प्रवृत्त नहीं होसकता ॥ ३१ ॥

दंपत्योः प्राणसंश्लेषे योऽभिसंधिः कृतः किल ।
तं माता वा पिता वेद भूतार्थो मातरि स्थितः ॥ ३२ ॥

दम्पतीके प्राणसंश्लेष समयमें अर्थात् मैथुनकालमें जो अभिसन्धि की जाती हैं, अर्थात् हमारा पुत्र गौरवर्ण तथा सम्पूर्ण परमायुयुक्त होवे; पितामाता दोनोंकी ऐसी अभिलाषा होनेपर भी माताकी ही वैसी अभिलाषमें यथार्थ कर्तृत्व है ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

माता जानाति यद्गोत्रं माता जानाति यस्य सः ।
मातुर्भरणमात्रेण प्रीतिः स्नेहः पितुः प्रजाः ॥ ३३ ॥

पुत्र जिस गोत्रमें जिसके औरससे उत्पन्न होता है, उसे माता ही जानती है । माता पुत्रको गर्भमें धारण करती है, इसहीसे उसके ऊपर उसकी प्रीति तथा स्नेह हुआ करता है; पिताका तो संतानपर प्रभुत्व होता है । इसलिये प्रत्युपकारके लिये माताके विषयमें भक्ति तथा स्नेह पुत्रको अवश्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥

पाणिबन्धं स्वयं कृत्वा सहधर्ममुपेत्य च ।
यदि याप्यन्ति पुरुषाः स्त्रियो नार्हन्ति याप्यताम् ॥ ३४ ॥

"धर्म, अर्थ और काम विषयमें व्यभिचार न करूंगा," स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा कर प्राणिग्रहण और सहधर्म आचरण करके यदि पुरुष परस्त्रीमें प्रवृत्त हो, तो वैसा पुरुष कभी आदरके योग्य नहीं है; इसके लिये स्त्रियोंको दोषी नहीं माना जा सकता ॥ ३४ ॥

भरणाद्धि स्त्रियो भर्ता पात्याच्चैव स्त्रियाः पतिः ।
गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पतिः पतिः ॥ ३५ ॥

पत्नीके भरण करनेसे पतिका नाम भर्त्ता है, और पालन करता है, इस ही निमित्त पति नाम हुआ है । जिसके भर्तृत्व और पतित्व धर्मकी निवृत्ति होती है, वह भर्त्ता नहीं है, और पति भी नहीं है ॥ ३५ ॥

एवं स्त्री नापराध्नोति नर एवापराध्यति ।
व्युच्चरंश्च महादोषं नर एवापराध्यति ॥ ३६ ॥

यदि पुरुष प्रार्थयिता न हो, तो स्त्री कभी व्यभिचारिणी नहीं हो सकती, इसलिये व्यभिचार दोषमें स्त्री अपराधिनी नहीं है; पुरुष ही अत्यन्त महान् व्यभिचार दोषका आचरण करनेसे अपराधी हुआ करता है ॥ ३६ ॥

स्त्रिया हि परमो भर्ता दैवतं परमं स्मृतम् ।
तस्यात्मना तु सदृशमात्मानं परमं ददौ ।
सर्वकार्यापराध्यत्वान्नापराध्यन्ति चाङ्गनाः ॥ ३७ ॥

भर्ता-पति ही स्त्रियोंके लिये परम श्रेष्ठ और परम देवता स्वरूप है; इसलिये उसहीके वेषधारी इन्द्रको अवलोकन करनेपर परपुरुष न मालूम होनेसे निज पति जानके ही मेरी माताने इन्द्रको अङ्गसमर्पण किया है; स्त्रियां अल्प-बलवाली होनेसे सब कार्योंमें ही पुरुषोंके अधीन हैं; इसलिये उनके कुछ अपराध नहीं हो सकते । पुरुष सब विषयोंमें अपराधी है, क्योंकि जबर्दस्ती किये हुए व्यभिचार विषयमें स्त्रियोंका अपराध नहीं है; पुरुष ही उस विषयमें सब प्रकारसे दोषी हैं ॥ ३७ ॥

× CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यश्चनोक्तो हि निर्देशः स्त्रिया मैथुनतृप्तये ।
तस्य स्मारयतो व्यक्तमधर्मो नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

स्त्रीसे मैथुनजनित सुखसे तृप्तिके लिये कोई संकेत न करनेपर भी उसके कामको उद्दीप्त करनेवाले पुरुषको ही अधर्मकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३८ ॥

यावन्नारीं मातरं च गौरवे चाधिके स्थिताम् ।
अवध्यां तु विजानीयुः पशवोऽप्यविचक्षणाः ॥ ३९ ॥

जो हो, एक तो स्त्री, उस पर भी पितासे समधिक गौरवशालिनी माता अवध्य है; इसे पशुके समान मूर्खपुरुष भी विशेष रूपसे जानते हैं; इसलिये मैं किस प्रकार माताका जीवन नष्ट करूंगा ? ॥ ३९ ॥

देवतानां समावायमेकस्थं पितरं विदुः ।
मर्त्यानां देवतानां च स्नेहादभ्येति मातरम् ॥ ४० ॥

पण्डित लोग पिताको देवताओंका समवाय कहा करते हैं अर्थात् पिताको सन्तुष्ट करनेसे स्वर्ग मिलता है; और मर्त्य तथा अमर्त्योंके समवाय स्नेहके कारण माताके निकटवर्त्ती हुआ करता है, अर्थात् माता इस लोकमें पालयित्री और अदृष्टके अनुसार परलोकमें परम सुख प्रदान किया करती है अर्थात् माता पितासे श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

एवं विमृशतस्तस्य चिरकारितया बहु ।
दीर्घः कालो व्यतिक्रान्तस्ततस्तस्यागमत्पिता ॥ ४१ ॥

चिरकारीके चिरकारित्व निबन्धनसे इस ही प्रकार बहुत विचार करते हुए बहुत समय बीत गया । इसके अनन्तर उसका पिता उसहीके संमुख आ पहुंचा ॥ ४१ ॥

मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थितः ।
विमृश्य तेन कालेन पत्न्याः संस्थाव्यतिक्रमम् ॥ ४२ ॥

महाबुद्धिमान् मेधातिथि गौतम तपस्यामें समय बिताते थे, उस समय वह निज पत्नीके वधको अनुचित समझ कर कर दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर ॥ ४२ ॥

सोऽब्रवीदुःखसंतप्तो भृशमश्रूणि वर्तयन् ।
श्रुतधैर्यप्रसादेन पश्चात्तापमुपागतः ॥ ४३ ॥

अत्यन्त आंसू बहाने लगे, वह शास्त्रके पढने और धीरजके प्रभावसे पश्चात्ताप करके बोले ॥ ४३ ॥

आश्रमं मम संप्राप्तस्त्रिलोकेशः पुरंदरः ।
अतिथिव्रतमास्थाय ब्राह्मणं रूपमास्थितः ॥ ४४ ॥

तीनों लोकके ईश्वर इन्द्र अतिथिव्रत अवलम्बन करके ब्राह्मणका रूप धारण करके मेरे आश्रमपर आये थे, मैंने अतिथि व्रतका आश्रय लेकर उन्हें स्वागत प्रश्नसे आदर करके ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Public Trust, Varanasi. Digitized by eGangotri

समया सान्त्वितो वाग्भिः स्वागतेनाभिपूजितः ।
अर्घ्यं पाद्यं च न्यायेन तयाभिप्रतिपादितः ॥ ४५ ॥

वचनसे प्रसन्न करके समयोचित वचनोंसे सान्त्वना दी और यथा रीतिसे पाद्य अर्घ्य प्रदान किया उसकी विधिवत् पूजा की ॥ ४५ ॥

परवत्यस्मि चाप्युक्तः प्रणयिष्ये नयेन च ।
अत्र चाकुशले जाते स्त्रियो नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ४६ ॥

मैंने विनय पूर्वक कहा— मैं आपका हूं; आज मेरे आश्रममें तुम्हारा आगमन होनेसे मैं सनाथ हुआ हूं । देवराज प्रसन्न होंगे, ऐसा समझके मैंने ये सब वचन कहे थे; इस विषयपर विचार करनेसे मालूम होता है, यह अमङ्गल उपस्थित हुआ है, अर्थात् इन्द्रकी चपलतासे मेरी स्त्रीमें दोषस्पर्श होनेसे अहल्याका उसमें कुछ अपराध नहीं हुआ है ॥ ४६ ॥

एवं न स्त्री न चैवाहं नाध्वगस्त्रिदशेश्वरः ।
अपराध्यति धर्मस्य प्रमादस्त्वपराध्यति ॥ ४७ ॥

इसलिये इस विषयमें अहल्या, मैं और पथिक ब्राह्मणके वंशमें आया हुआ इन्द्र, इन तीनोंके बीच कोई भी अपराधी नहीं है; मेरा धर्मसम्बन्धीय प्रमाद ही इस विषयमें अपराधी है ॥४७॥

ईर्ष्याजं व्यसनं प्राहुस्तेन चैवोर्ध्वरेतसः ।
ईर्ष्यया त्वहमाक्षिप्तो मग्नो दुष्कृतसागरे ॥ ४८ ॥

उर्द्धरेता मुनि लोग कहते हैं, प्रमादसे ईर्षाजनित विपद उपस्थित होती है; मैं ईर्षासे आकर्षित होकर पापसागरमें डूबा हूं; ॥ ४८ ॥

हत्वा साध्वीं च नारीं च व्यसनित्वाच्च शासिताम् ।
भर्तव्यत्वेन भार्यां च को नु मां तारयिष्यति ॥ ४९ ॥

सती सीमन्तिनी भरणीय भार्या मेरी पत्नी थी; उसीको मैंने प्रमादरूपी व्यसनके वशीभूत हो मारनेकी आज्ञा दी है, इस समय कौन मुझे उस पापसे परित्राण करेगा ? ॥ ४९ ॥

अन्तरेण मयाज्ञप्तश्चिरकारी ह्युदारधीः ।
यद्यद्य चिरकारी स्यात्स मां त्रायेत पातकात् ॥ ५० ॥

मैंने उदारबुद्धि चिरकारीको मातृहत्या करनेकी आज्ञा दी थी, आज यदि वह इस कार्यमें विलम्ब करके अपने चिरकारी नामको सार्थ करे, तो वही मुझे इस स्त्री हत्याके पापसे परित्राण करेगा ॥ ५० ॥

चिरकारिक भद्रं ते भद्रं ते चिरकारिक ।
यद्यद्य चिरकारी त्वं ततोऽसि चिरकारिकः ॥ ५१ ॥

हे चिरकारिन् ! तुम्हारा कल्याण होवे ! हे चिरकारी ! तुम्हारा मङ्गल हो ! आज यदि तुम चिरकारी सत्यही बने होगे, तभी तुमने यथार्थ चिरकारी नाम धारण किया है ॥ ५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्राहि मां मातरं चैव तपो यच्चार्जितं मया ।
आत्मानं पातकेभ्यश्च भवाद्य चिरकारिकः ॥ ५२ ॥

आज तुम मुझे और अपनी माताका परित्राण करो; मैंने जो तपस्या उपार्जन की है उसकी रक्षा करो और आत्माको पापपुञ्जसे परित्राण करके चिरकारी नामसे विख्यात होजाओ ॥५२॥

सहजं चिरकारित्वं चिरप्राज्ञतया तव ।
सफलं तत्त्वाद्यास्तु भवाद्य चिरकारिकः ॥ ५३ ॥

तुम्हारी असाधारण बुद्धिमत्तासे चिरकारित्व गुण स्वभावसिद्ध है, आज तुम्हारा वह गुण सफल होवे; आज तुम वास्तवमेंही चिरकारी होजाओ ॥ ५३ ॥

चिरमाशंसितो मात्रा चिरं गर्भेण धारितः ।
सफलं चिरकारित्वं कुरु त्वं चिरकारिक ॥ ५४ ॥

हे चिरकारी ! माताने तुम्हें प्राप्त करनेकी लालसासे बहुत समयतक आशा की थी; उसने बहुत समय तक तुझे गर्भमें धारण किया था; इसलिये अब तुम अपने चिरकारित्व गुणको सफल करो ॥ ५४ ॥

चिरायते च संतापाच्चिरं स्वपिति वारितः ।
आवयोश्चिरसंतापादवेक्ष्य चिरकारिक ॥ ५५ ॥

हे चिरकारी ! संताप प्राप्त होनेपर भी विलम्बसे कार्य करता है; मना करनेपर भी बहुत समय तक सोता है; हम लोगोंका चिरसन्ताप देखके तुम मेरी आज्ञाको पालन करनेमें प्रवृत्त होकर भी बोध होता है, विलम्ब कर रहे हो ॥ ५५ ॥

एवं स दुःखितो राजन्महर्षिर्गौतमस्तदा ।
चिरकारिं ददर्शाथ पुत्रं स्थितमथान्तिके ॥ ५६ ॥

हे राजन् ! महर्षि गौतमने उस समय इसही प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर निकट आये हुए चिरकारी पुत्रको देखा ॥ ५६ ॥

चिरकारी तु पितरं दृष्ट्वा परमदुःखितः ।
शस्त्रं त्यक्त्वा ततो मूर्ध्ना प्रसादायोपचक्रमे ॥ ५७ ॥

चिरकारी भी पतिको देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ और वह शस्त्र त्यागके सिर झुकाकर पिताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ५७ ॥

गौतमस्तु सुतं दृष्ट्वा शिरसा पतितं भुवि ।
पत्नीं चैव निराकारां परामभ्यगमन्मुदम् ॥ ५८ ॥

अनन्तर गौतम उसे सिर झुकाके पृथ्वीमें गिरते और पत्नीको लज्जासे प्रत्थरके समान निश्चल खडी देखकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ५८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हि सा तेन संभेदं पत्नी नीता महात्मना।
विजने चाश्रमस्थेन पुत्रश्चापि समाहितः ॥ ५९ ॥

परन्तु महात्मा गृहस्थ गौतमने निर्जन जङ्गलके बीच उस पत्नी और समाहित पुत्रके सहित उस समय पृथग्भाव अवलम्बन नहीं किया ॥ ५९ ॥

हन्यात्त्वनपवादेन शस्त्रपाणौ सुते स्थिते।
विनीतं प्रश्नयित्वा च व्यवस्येदात्मकर्मसु ॥ ६० ॥

उनके "वध करो" ऐसी आज्ञा देकर निज कर्म साधन करनेके लिये वनमें चले जानेपर, उनका पुत्र हाथमें शस्त्र लेकर खडा था, तो भी वह विनीतभावसे माताकी रक्षाके लिये विचार करता रहा था; इसलिये माताको मार डालनेके आदेशका पालन नहीं हुआ था ॥६०॥

बुद्धिश्चासीत्सुतं दृष्ट्वा पितुश्चरणयोर्नतम्।
शस्त्रग्रहणचापल्यं संवृणोति भयादिति ॥ ६१ ॥

अनन्तर उन्होंने आश्रममें आके अपने दोनों चरणोंपर गिरे हुए पुत्रको देखकर यही समझा, कि चिरकारी भयसे शस्त्र ग्रहण करनेकी चपलताको छिपा रहा है ॥ ६१ ॥

ततः पित्रा चिरं स्तुत्वा चिरं चाघ्राय मूर्धनि।
चिरं दोर्भ्यां परिष्वज्य चिरं जीवेत्युदाहृतः ॥ ६२ ॥

अनन्तर पिताने बहुत समयतक उसकी प्रशंसा करके देरतक उसका मस्तक सूंघकर, दोनों भुजा पसारके पुत्रको आलिङ्गन किया और "चिरजीवी हो" ऐसा वचन कहके उसे आशीर्वाद दिया ॥ ६२ ॥

एवं स गौतमः पुत्रं प्रीतिहर्षसमन्वितः।
अभिनन्द्य महाप्राज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥

हे महाबुद्धिमान्! प्रीति और हर्षसे युक्त होकर गौतम इस ही प्रकार पुत्रको अभिनन्दित करते हुए वक्ष्यमाण रीतिसे कहने लगे ॥ ६३ ॥

चिरकारिक भद्रं ते चिरकारी चिरं भव।
चिरायमाणे त्वयि च चिरमस्मि सुदुःखितः ॥ ६४ ॥

हे चिरकारी! तुम्हारा कल्याण होवे; तुम सदाके वास्ते चिरकारी बनो। हे सौम्य! सदाके वास्ते तुम्हारा चिरकारित्व हुआ, तो मैं कभी दुःखित न होऊंगा ॥ ६४ ॥

गाथाश्चाप्यब्रवीद्विद्वान्गौतमो मुनिसत्तमः।
चिरकारिषु धीरेषु गुणोद्देशसमाश्रयात् ॥ ६५ ॥

मुनिसत्तम विद्वान् गौतमने धीरबुद्धिवाले चिरकारी लोगोंके गुणोंको वर्णन करके यह सब गाथाएं कही थीं ॥ ६५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चिरेण मित्रं बध्नीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत् ।
चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति ॥ ६६ ॥

सदा विचार करके लोगोंके संग मित्रताबन्धन करे, बहुत समयतक विचार करके किये हुए मित्रको सहसा न छोडकर चिरकाल तक विचार करके ही छोडे; बहुत समयतक सोचके मित्रता करनेसे वह चिरस्थायी हुआ करती है ॥ ६६ ॥

रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते ॥ ६७ ॥

राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म, अप्रिय कार्य और कर्त्तव्यके अनुष्ठान विषयमें चिरकारी मनुष्य श्रेष्ठ होता है, उसकी प्रशंसा होती है ॥ ६७ ॥

बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च ।
अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

बन्धु, सुहृत्, सेवक और स्त्रियोंके अव्यक्त अपराधके विषयमें चिरकारी पुरुष ही उत्तम हुआ करता है ॥ ६८ ॥

एवं स गौतमस्तस्य प्रीतः पुत्रस्य भारत ।
कर्मणा तेन कौरव्य चिरकारितया तया ॥ ६९ ॥

हे कुरुवंशवर्द्धन भारत ! इस ही प्रकार गौतम पुत्रके चिरकारित्व निबन्धनसे वैसे कर्मके जरिये उस समय प्रसन्न हुए थे ॥ ६९ ॥

एवं सर्वेषु कार्येषु विमृश्य पुरुषस्ततः ।
चिरेण निश्चयं कृत्वा चिरं न परितप्यते ॥ ७० ॥

इसलिये पुरुषको कार्यमात्रमें ही इस ही प्रकार विचार करके निश्चय करनेसे कभी दीर्घकाल तक परितापग्रस्त नहीं होना पडता ॥ ७० ॥

चिरं धारयते रोषं चिरं कर्म नियच्छति ।
पश्चात्तापकरं कर्म न किंचिदुपपद्यते ॥ ७१ ॥

जो अपनेमें चिरकालतक सदा रोषको धारण किया करता है, चिरकाल ही कर्ममें नियमित रहता है, वह तनिक भी पश्चात्तापयुक्त कार्यमें लिप्त नहीं होता ॥ ७१ ॥

चिरं वृद्धानुपासीत चिरमन्वास्य पूजयेत् ।
चिरं धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम् ॥ ७२ ॥

सदा वृद्धोंकी उपासना करे, सदा उनका सङ्ग करके उनका सत्कार करे, सदा धर्मकी सेवामें नियुक्त रहे और सदा धर्मकी खोज करे ॥ ७२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चिरमन्वास्य विदुषश्चिरं शिष्टान्निषेव्य च ।
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम् ॥ ७३ ॥

सदा विद्वानोंका सङ्ग, शिष्ट पुरुषोंकी सेवा और आत्माको विनीत करनेसे सदाके लिये सम्मान प्राप्त हुआ करता है ॥ ७३ ॥

ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम् ।
चिरं पृच्छेचिरं ब्रूयाचिरं न परिभूयते ॥ ७४ ॥

दूसरेके बहुत समयतक पूछनेपर धर्मयुक्त वचन कहे, ऐसा होनेसे सदाके लिये दुःखित नहीं होना पडेगा, पश्चात्ताप करना नहीं पडेगा ॥ ७४ ॥

उपास्य बहुलास्तस्मिन्नाश्रमे सुमहातपाः ।
समाः स्वर्गं गतो विप्रः पुत्रेण सहितस्तदा ॥ ७५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥ ९००३ ॥

महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ गौतम उस आश्रममें कई वर्ष व्यतीत करके अन्तमें पुत्रके सहित स्वर्गमें गये ॥ ७५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ २५८ ॥ ९००३ ॥

: २५९ :

युधिष्ठिर उवाच—

कथं राजा प्रजा रक्षेन्न च किंचित्प्रतापयेत् ।
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे साधुप्रवर पितामह ! राजा किस प्रकार प्रजाकी रक्षा करे, किस भांतिसे ही दण्डविधान रहित करके प्राणिहिंसासे निवृत्त रहे; उसे ही आपसे पूछता हूं, आप ऊपर कहे हुए विषयको मेरे समीप वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
द्युमत्सेनस्य संवादं राज्ञा सत्यवता सह ॥ २ ॥

भीष्म बोले— राजा सत्यवान्‌के संग द्युमत्सेनके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं ॥ २ ॥

अव्याहृतं व्याजहार सत्यवानिति नः श्रुतम् ।
वधाय नीयमानेषु पितुरेवानुशासनात् ॥ ३ ॥

हमने सुना है कि, पिताकी आज्ञासे दण्डार्ह पुरुष वधके लिये लेजा रहे हैं, ऐसा सत्यवान्‌ने देखनेपर " दण्डनीय पुरुषोंके दण्ड न होनेका विषय पहले किसीने नहीं कहा है, " पिताको सत्यवानने ऐसा ही कहा था ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अधर्मतां याति धर्मो यात्यधर्मश्च धर्मताम् ।
वधो नाम भवेद्धर्मो नैतद्भवितुमर्हति ॥ ४ ॥

कभी अधर्म रूप कार्य धर्म होता है और धर्म भी कभी अधर्म हुआ करता है; परन्तु प्राणि-हिंसा करना भी धर्म है, यह कभी सम्भव नहीं होसकता ॥ ४ ॥

द्युमत्सेन उवाच—

अथ चेदवधो धर्मो धर्मः को जातुचिद्भवेत् ।
दस्यवश्चेन्न हन्येरन्सत्यवन्संकरो भवेत् ॥ ५ ॥

द्युमत्सेन बोले— हे सत्यवान् ! अहिंसा ही यदि धर्म हुआ, तो राजा डाकुओंके दमन करनेके लिये उनका वध न करनेसे वर्णसङ्कर आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जब कि हिंसा न करनेसे धर्मकी रक्षा नहीं होती, तब केवल अहिंसाको ही किस प्रकार धर्म कहा जासकता है ? ॥ ५ ॥

ममेदमिति नास्यैतत्प्रवर्तेत कलौ युगे ।
लोकयात्रा न चैव स्यादथ चेद्वेत्थ शंस नः ॥ ६ ॥

और अधर्मप्रधान कलियुगमें " यह वस्तु मेरी है, यह उसकी है " ऐसा निश्चय नहीं हो सकता; और डाकुओंको न मारनेसे तीर्थयात्रा तथा वाणिज्य व्यवहार आदिका निभना अत्यन्त कठिन है; इसलिये अहिंसाके जरिये जिसमें वर्णसङ्कर न हो, वह यदि तुम्हें विदित हो, तो उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो ॥ ६ ॥

सत्यवानुवाच—

सर्व एव त्रयो वर्णाः कार्या ब्राह्मणबन्धनाः ।
धर्मपाशनिबद्धानामल्पो व्यपचरिष्यति ॥ ७ ॥

सत्यवान् बोले— क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है; ऊपर कहे हुए तीनों वर्णोंके धर्मपाशमें बद्ध होनेपर दूसरे प्रतिलोम और अनुलोमजात सूत मागध आदि सङ्करजातीय पुरुष क्षत्रियादिकोंकी भांति धर्माचरण करेंगे ॥ ७ ॥

यो यस्तेषामपचरेत्तमाचक्षीत वै द्विजः ।
अयं मे न शृणोतीति तस्मिन्राजा प्रधारयेत् ॥ ८ ॥

उनके बीच जो पुरुष ब्राह्मणोंका वचन अतिक्रम करेगा, ब्राह्मण उसका विषय राजासे कहे कि यह पुरुष मेरा वचन नहीं सुनता; इससे राजा उसके लिये दण्डविधान करे ॥ ८ ॥

तत्त्वाभेदेन यच्छास्त्रं तत्कार्यं नान्यथा वधः ।
असमीक्ष्यैव कर्माणि नीतिशास्त्रं यथाविधि ॥ ९ ॥

नीतिशास्त्रकी विधिपूर्वक आलोचना तथा अपराधीके कार्यपर विचार न करके, शरीरके अविनाश—वध न करनेके विषयमें जो शास्त्र विहित हुआ है; उसमें अन्यथा करना उचित नहीं है ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दस्यून्हिनस्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः ।
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यते पुरुषे हते ।
परेणापकृते राजा तस्मात्सम्यक्प्रधारयेत् ॥ १० ॥

जब राजा डाकुओं वा दूसरे निरपराध मनुष्योंके मारनेमें प्रवृत्त होता है, तब उनके पिता, माता, भार्या और पुत्र आदि जीविकाका उपाय न रहनेके कारण निहत हुआ करते हैं; इसलिये दूसरेके अपकार करनेपर भी राजाको अवश्य पूरी रीतिसे विचार करना चाहिये ॥ १० ॥

असाधुश्चैव पुरुषो लभते शीलमेकदा ।
साधोश्चापि ह्यसाधुभ्यो जायतेऽशोभना प्रजा ॥ ११ ॥

दुष्ट पुरुष भी किसी समय सुधरकर साधु चरित्रवाला होता है, और असाधुओंसे भी साधु सन्तान उत्पन्न हुआ करती हैं ॥ ११ ॥

न मूलघातः कर्तव्यो नैष धर्मः सनातनः ।
अपि खल्ववधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १२ ॥

इसलिये मूलसहित संहार नहीं करना चाहिये; किसीकी जड उखाडना यह सनातन धर्म नहीं है; हिंसा न करनेसे भी दूसरे कार्योंके कारण प्रायश्चित विहित होता है, यह निश्चय वचन है ॥ १२ ॥

उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च ।
वधदण्डेन ते क्लेश्या न पुरोऽहितसंपदा ॥ १३ ॥

उद्वेजन अर्थात् सर्वस्व हरना, भय दिखाना, बांधना, विरूप करना और वधदण्डसे डाकुओंकी स्त्री आदि कुटुम्बियोंको अहित कारक कष्ट देना उचित नहीं है ॥ १३ ॥

यदा पुरोहितं वा ते पर्येयुः शरणैषिणः ।
करिष्यामः पुनर्ब्रह्मन्न पापमिति वादिनः ॥ १४ ॥

जब डाकू लोग पुरोहितके समीप शरणागत होके कहें, कि "हे ब्रह्मन् ! हम अब फिर ऐसा पाप कार्य नहीं करेंगे" ॥ १४ ॥

तदा विसर्गमर्हाः स्युरितीदं नृपशासनम् ।
बिभ्रद्दण्डाजिनं मुण्डो ब्राह्मणोऽर्हति वासनम् ॥ १५ ॥

तब उन्हें छोडना उचित है, यही राजाका शासन है । दण्ड और मृगछालधारी सिरमुंडे संन्यासी यदि निन्दित कर्म करे, तो उसे भी अवश्य शासन करना चाहिये ॥ १५ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गरीयांसो गरीयांसमपराधे पुनः पुनः ।
तथा विसर्गमर्हन्ति न यथा प्रथमे तथा ॥ १६ ॥

मनुष्य यदि शासनकर्त्ताके निकट बार बार अपराध करे तो उसे अधिक दण्ड प्रदान करना होगा; तब पहले अपराधके समान बिना दण्ड दिये छोडनेके योग्य नहीं हैं ॥ १६ ॥

द्युमत्सेन उवाच —

यत्र यत्रैव शक्येरन्संयन्तुं समये प्रजाः ।
स तावत्प्रोच्यते धर्मो यावन्न प्रतिलङ्घ्यते ॥ १७ ॥

द्युमत्सेन बोले— निज निज नियमोंसे प्रजापालन किया जा सकता है, वे सब नियम जबतक उलङ्घित न हों, तब वही धर्मरूपसे वर्णित हुआ करते हैं ॥ १७ ॥

अहन्यमानेषु पुनः सर्वमेव पराभवेत् ।
पूर्वे पूर्वतरे चैव सुशास्या अभवञ्जनाः ॥ १८ ॥

धर्मके उल्लंघन करनेपर भी डाकुओंको वधदण्ड न करनेपर प्रजाको कष्ट होगा; पहले पहले प्रजाओंपर शासन करना सहजही था ॥ १८ ॥

मृदवः सत्यभूयिष्ठा अल्पद्रोहाल्पमन्यवः ।
पुरा धिग्दण्ड एवासीद्वाग्दण्डस्तदनन्तरम् ॥ १९ ॥

वे सब मृदुस्वभाववाले, सत्यनिष्ठ, अल्प द्रोह और क्रोध करनेवाले थे; उनके अपराधी होनेपर पहले उन्हें धिक्कारके जरिये दण्ड देना विहित था । अनन्तर उन लोगोंको वाग्दण्डसे शासन करना व्यवहृत हुआ था ॥ १९ ॥

आसीदादानदण्डोऽपि वधदण्डोऽद्य वर्तते
वधेनापि न शक्यन्ते नियन्तुमपरे जनाः ॥ २० ॥

कुछ समयके अनन्तर उक्त अपराधियोंके विषयमें अर्थदण्ड सर्वस्व हरण रूपी दण्ड प्रचलित हुआ; अब कलियुगके प्रारम्भसे वधदण्ड व्यवहृत हुआ है दुष्टात्माओंको तो प्राणदण्डसे भी मर्यादामें रखना कष्टप्रद हैं ॥ २० ॥

नैव दस्युर्मनुष्याणां न देवानामिति श्रुतिः ।
न गन्धर्वापितॄणां च कः कस्येह न कश्चन ॥ २१ ॥

सुना है कि दस्यु पुरुष मनुष्य, देवता, गन्धर्व और पितरोंमेंसे किसीका भी आत्मीय नहीं है; इसलिये डाकुओंके वध करनेसे उनकी भार्या आदिका वध नहीं होता; क्योंकि उन लोगोंके सङ्ग किसीका भी इस जगतमें सम्बन्ध नहीं है ॥ २१ ॥

पद्मं श्मशानादादत्ते पिशाचाच्चापि दैवतम् ।
तेषु यः समयं कुर्यादज्ञेषु हतबुद्धिषु ॥ २२ ॥

वह श्मशानसे मुर्देका वस्त्र आदि और देवताओंके अलङ्कार भी लूटता है; जो नष्ट बुद्धि मूर्ख डाकुओंपर विश्वास करता है, वह मूर्ख है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Kabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्यवानुवाच—

तान्न शक्नोषि चेत्साधून्परित्रातुमहिंसया ।
कस्यचिद्भूतभव्यस्य लाभेनान्तं तथा कुरु ॥ २३ ॥

सत्यवान् बोले— अहिंसाके जरिये यदि साधुओंकी रक्षा करनेमें वा दुष्टोंको साधु बनानेमें आप असमर्थ हैं, तो भूत, भविष्य और वर्तमानमें उनकी उन्नतिके लिये किसी लाभकार्य आरम्भ करके उनका या दस्यु वृत्तिका नाश करना चाहिये ॥ २३ ॥

द्युमत्सेन उवाच—

राजानो लोकयात्रार्थं तप्यन्ते परमं तपः ।
अपत्रपन्ति ताहग्भ्यस्तथावृत्ता भवन्ति च ॥ २४ ॥

द्युमत्सेन बोले— राजा लोग लोकयात्रा निबाहनेके लिये परम तपस्या किया करते हैं, वे उत्तम चरित्रवाले होनेपर भी "हमारे राज्यमें डाकू हैं," ऐसा जाननेसे, वैसे डाकुओंसे लज्जित होते हैं । इस कारण ही प्रजाको पवित्र और सुखी करनेकी अभिलाषासे वे तप करते हैं ॥ २४ ॥

वित्रास्यमानाः सुकृतो न कामाद्घ्नन्ति दुष्कृतीन् ।
सुकृतेनैव राजानो भूयिष्ठं शासते प्रजाः ॥ २५ ॥

भय दिखानेसे ही प्रजा साधु होती है, राजा अपनी इच्छानुसार दुष्कृतशाली प्रजाको नहीं मारता । राजा सत्कर्मों और सदाचारसे बहुत समयतक प्रजाओंका शासन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रेयसः श्रेयसीमेवं वृत्तिं लोकोऽनुवर्तते ।
सदैव हि गुरोर्वृत्तमनुवर्तन्ति मानवाः ॥ २६ ॥

राजाके सदाचार करनेसे प्रजा उसहीके अनुसार सदाचार अवलम्बन करती है; श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण पुरुष भी स्वभावसे ही श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणके अनुसार चला करते हैं । लोग इस ही प्रकार क्रमसे कल्याण लाभ करते हैं, मनुष्य बडे लोगोंके अनुवर्त्तनसे सदा निरत हुआ करते हैं ॥ २६ ॥

आत्मानमसमाधाय समाधित्सति यः परान् ।
विषयेष्विन्द्रियवशं मानवाः प्रहसन्ति तम् ॥ २७ ॥

जो राजा अपने चित्तको सावधान न करके दूसरेको शासन करनेकी इच्छा करता है, उस विषयेन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले राजाकी प्रजा हंसी किया करती है ॥ २७ ॥

यो राज्ञो दम्भमोहेन किंचित्कुर्यादसांप्रतम् ।
सर्वोपायैर्नियम्यः स तथा पापान्निवर्तते ॥ २८ ॥

जो पुरुष दम्भ और मोहके वशमें होकर राजाके सङ्ग तनिक भी अनुचित व्यवहार करे, उसे जिस उपायसे होसके, शासन करना उचित है; ऐसा होनेसे वह पापसे निवृत्त होगा ॥२८॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मैवादौ नियन्तव्यो दुष्कृतं संनियच्छता ।
दण्डयेच्च महादण्डैरपि बन्धूननन्तरान् ॥ २९ ॥

जो पापकर्म करनेवाले पुरुषको पूर्ण रीतिसे शासन करनेकी इच्छा करे, पहले उसे आत्मनियमन करना योग्य है । अनन्तर पुत्र, सहोदर आदिको उनके अपराध करनेपर महत् दण्डके सहारे शासित करना उचित है ॥ २९ ॥

यत्र वै पापकृत्क्लेभ्यो न महद्दुःखमर्छति ।
वर्धन्ते तत्र पापानि धर्मो ह्रसति च ध्रुवम् ।
इति कारुण्यशीलस्तु विद्वान्वै ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥

जिस राज्यमें पाप करनेवाले नीच लोग अत्यन्त महत् दुःख नहीं पाते, अवश्य ही वहां पापकी बढती और धर्मकी घटती हुआ करती है; करुणाशील विद्वान् ब्राह्मणने मुझे ऐसाही उपदेश किया था ॥ ३० ॥

इति चैवानुशिष्टोऽस्मि पूर्वैस्तात पितामहैः ।
आश्वासयद्भिः सुभृशमनुक्रोशात्तथैव च ॥ ३१ ॥

हे तात ! अत्यन्त करुणाके सबब प्रजासमूहके विषयमें आश्वासन देनेवाले मेरे पूर्वज पितामहोंके जरिये मैं इस ही प्रकार अनुशिष्ट हुआ था ॥ ३१ ॥

एतत्प्रथमकल्पेन राजा कृतयुगेऽभजत् ।
पादोनेनापि धर्मेण गच्छेत्त्रेतायुगे तथा ।
द्वापरे तु द्विपादेन पादेन त्वपरे युगे ॥ ३२ ॥

चारों चरणोंसे युक्त सत्ययुगमें राजाओंने इस ही प्रथम कल्प शासन अर्थात् अहिंसामय दण्डसे ही पृथ्वीमण्डलको वशमें किया था । त्रेतायुगमें तीन पाद धर्मके सहारे प्रजा शासन होता था, द्वापरमें दोपाद धर्म और कलियुगमें एकपाद धर्म प्रवृत्त हुआ है ॥ ३२ ॥

तथा कलियुगे प्राप्ते राज्ञां दुश्चरितेन ह ।
भवेत्कालविशेषेण कला धर्मस्य षोडशी ॥ ३३ ॥

धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, आदानदण्ड और वधदण्ड युगके क्रमसे प्रजासमूहके विषयमें प्रवृत्त हुआ करते हैं । कलियुगके उपस्थित होनेपर समय विशेषमें राजाके दुश्चरित्रसे और कालविशेषके प्रभावसे धर्मके सोलह अंशोंका एक अंश मात्र, शेष रहेगा ॥ ३३ ॥

अथ प्रथमकल्पेन सत्यवन्संकरो भवेत् ।
आयुः शक्तिं च कालं च निर्दिश्य तप आदिशेत् ॥ ३४ ॥

हे सत्यवान् ! यदि अहिंसामय प्रथम कल्प दण्डविधानसे धर्मसङ्कर हो, तो परमायु, शक्ति और काल निर्देश करके राजा यथोचित दण्डकी आज्ञा करे ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्याय हि यथा नेह जह्याद्धर्मफलं महत् ।
भूतानामनुकम्पार्थं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥ ९०३८ ॥

सत्यके निमित्त अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके हेतु इस लोकमें अत्यन्त महत् धर्मफलको त्यागना न चाहिये । जीवोंके ऊपर कृपा करके स्वयम्भू मनुने धर्मका यह उपदेश कहा है ॥ ३५ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ २५९ ॥ ९०३८ ॥

: २६० :

युधिष्ठिर उवाच—

अविरोधेन भूतानां त्यागः षाड्गुण्यकारकः ।
यः स्याद्उभयभाग्धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! समस्त ऐश्वर्य, ध्यान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म, इन छहों गुणोंका हेतु जो योगधर्म जीवोंके विषयमें अविरोध भावसे जिस प्रकार उभयभागी अर्थात् गार्हस्थ्य और संन्यास, इन दोनोंमें उपयोगी होता है, त्याग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करता है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ १ ॥

गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य त्यागधर्मस्य चोभयोः ।
अदूरसंप्रस्थितयोः किं स्विच्छ्रेयः पितामह ॥ २ ॥

पितामह ! गार्हस्थ्यमें पञ्चसूना अनिवार्य है, योगधर्ममें समस्त विषयमें हिंसा परित्याज्य है, उक्त दोनों धर्म एक ही कार्यके लिये प्रवृत्त होनेपर अर्थात् न्यायसे प्राप्त हुए धनके जरिये जीविका निर्वाह करनेसे तत्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाले तथा सत्यवादी होनेसे मुक्त होंगे । और योगी पुरुष प्राणायामसे पापोंको जलाकर धारणासे किल्बिष नाश, प्रत्याहारके जरिये संग परिहार और ध्यानके सहारे जीवत्व आदि गुणोंको परित्याग करें; इसलिये उक्त दोनों धर्मोंके तुल्यार्थ होनेपर भी उनके बीच कौन कल्याणकारी है यह कहें ? ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

उभौ धर्मौ महाभागावुभौ परमदुश्चरौ ।
उभौ महाफलौ तात सद्भिराचरितावुभौ ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— हे तात ! गार्हस्थ्य और योगधर्म दोनों ही महा ऐश्वर्यसे युक्त तथा अत्यन्त दुश्चर हैं; दोनोंमें ही महत् फल हैं, और दोनों धर्म साधुओंके आचरित हैं ॥ ३ ॥

अत्र ते वर्तयिष्यामि प्रामाण्यमुभयोस्तयोः ।
शृणुष्वैकमनाः पार्थ छिन्नधर्मार्थसंशयम् ॥ ४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! इस समय मैं तुम्हारे समीप उक्त दोनों धर्मोंका प्रमाण वर्णन करता हूं; एकाग्रचित्त होकर सुननेसे धर्म और अर्थके विषयमें तुम्हारा संशय दूर होगा ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कपिलस्य गोश्च संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ५ ॥

हे युधिष्ठिर ! प्राचीन लोग इस विषयमें कपिल और गौके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं; तुम उसे सुनो ॥ ५ ॥

आम्नायमनुपश्यन्हि पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् ।
नहुषः पूर्वमालेभे त्वष्टुर्गामिति नः श्रुतम् ॥ ६ ॥

पहले समयमें राजा नहुष नित्य, निश्चल और पुरातन वेदविधि देखकर गृहमें आये हुए अतिथि त्वाष्टाके निमित्त गऊ मारनेमें प्रवृत्त हुए थे, ऐसा हमने सुना है ॥ ६ ॥

तां नियुक्तामदीनात्मा सत्त्वस्थः समये रतः ।
ज्ञानवान्नियताहारो ददर्श कपिलस्तदा ॥ ७ ॥

उदार स्वभाववाले, सत्वगुण अवलम्बी, संयममें रत, नियताहारी और ज्ञानवान् कपिलने त्वष्टाके लिये लाई गई उस गऊको देखा ॥ ७ ॥

स बुद्धिमुत्तमां प्राप्तो नैष्ठिकीमकुतोभयाम् ।
स्मरानि शिथिलं सत्यं वेदा इत्यब्रवीत्सकृत् ॥ ८ ॥

वह भयरहित सत्यसंश्रयी, अशिथिल और नैष्ठिकी बुद्धिसे युक्त थे। इस ही लिये उस गऊको देखकर एक बार 'हा वेद !' ऐसा वचन कहके आक्षेप प्रकाश किया ॥ ८ ॥

तां गामृषिः स्थूमरश्मिः प्रविश्य यतिमब्रवीत् ।
हंहो वेदा यदि मता धर्माः केनापरे मताः ॥ ९ ॥

उस समय स्थूमरश्मि ऋषि योगबलसे उस गऊके शरीरमें प्रवेश करके कपिल मुनिसे बोले—क्याही आश्चर्य है ? यदि सब वेद ही गर्हित रूपसे संमत हुए, तब दूसरा कौन हिंसारहित धर्म लोगोंको अभिमत होगा ? ॥ ९ ॥

तपस्विनो धृतिमतः श्रुतिविज्ञानचक्षुषः ।
सर्वमार्षं हि मन्यन्ते व्याहृतं विदितात्मनः ॥ १० ॥

सन्तोषयुक्त श्रुतिबलसे विज्ञानदर्शी, तपस्वी लोग ऋषियोंसे प्रकट हुए वेदवाक्योंको नित्य विज्ञानमय परमेश्वरका वाक्य कहके मान्य करते हैं, इसलिये वेदवाक्यके एक अक्षरको भी अप्रमाणित करनेमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है ॥ १० ॥

तस्यैवं गततृष्णस्य विज्वरस्य निराशिषः ।
का विवक्षास्ति वेदेषु निरारम्भस्य सर्वशः ॥ ११ ॥

जो फलकी आशासे रहित, दोषहीन, वीतराग और अवाप्तसमस्तकामत्व निबन्धनसे सब प्रकार निरारम्भ है, उस परमेश्वरके वचन वेदोंमें क्या किसी पुरुषको कुछ कहनेकी शक्ति है ? ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कपिल उवाच —

नाहं वेदान्विनिन्दामि न विवक्षामि कर्हिचित् ।
पृथगाश्रमिणां कर्माण्येकार्थानीति नः श्रुतम् ॥ १२ ॥

कपिल बोले— मैंने वेदोंकी निन्दा नहीं की है, और किसी विषयमें कुछ विषम वाक्य कहनेकी इच्छा भी नहीं करता; पृथक् पृथक् आश्रमवालोंके सब कर्म एक प्रयोजनके हैं, इसे हमने सुना है ॥ १२ ॥

गच्छत्येव परित्यागी वानप्रस्थश्च गच्छति ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च उभौ तावपि गच्छतः ॥ १३ ॥

क्या संन्यासी, क्या वानप्रस्थ क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, सबही परम पद लाभ किया कर सकते हैं ॥ १३ ॥

देवयाना हि पन्थानश्चत्वारः शाश्वता मताः ।
तेषां ज्यायःकनीयस्त्वं फलेषूक्तं बलाबलम् ॥ १४ ॥

चारों आश्रमोंसे ही आत्माको प्राप्त किया जाता है, इस ही लिये ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम देवयान पथ रूपसे प्रसिद्ध हैं; इन चारोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष तथा बलाबलके विषय वर्णित हुए हैं, कि संन्यासी मोक्षलाभ करते हैं, वानप्रस्थ ब्रह्मलोक पाते हैं, गृहस्थ पुरुष स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं, और ब्रह्मचारी ऋषिलोकमें वास करते हैं ॥ १४ ॥

एवं विदित्वा सर्वार्थानारभेदिति वैदिकम् ।
नारभेदिति चान्यत्र नैष्ठिकी श्रूयते श्रुतिः ॥ १५ ॥

ऐसा ही जानके स्वर्गादिप्रद यज्ञादि कर्म आरम्भ करे, यही वैदिक मत है और वेदके प्रकरणान्तरमें कर्म न करनेकी भी विधि है, इस ही प्रकार नैष्ठिकी श्रुति भी श्रवणगोचर हुआ करती है अर्थात् सन्यास ही सबके विषयमें परम मोक्षसाधन है। जो सब काम्य वस्तुओंको परित्याग करते हैं, वे परब्रह्मको जानके परमपद पाते हैं ॥ १५ ॥

अनारम्भे ह्यदोषः स्यादारम्भेऽदोष उत्तमः ।
एवं स्थितस्य शास्त्रस्य दुर्विज्ञेयं बलाबलम् ॥ १६ ॥

कर्म न करनेसे कोई दोष नहीं होता, परन्तु यज्ञ आदि कर्मोंके अनुष्ठान करनेसे हिंसा आदिसे बहुतेरे दोष हुआ करते हैं। जब शास्त्र इस प्रकार है, तब कर्मत्याग और कर्मानुष्ठानके बलाबल अत्यन्त ही दुर्विज्ञेय हैं, क्योंकि दोनोंमें ही निन्दा और प्रशंसाकी तुल्यता है ॥ १६ ॥

यद्यत्र किंचित्प्रत्यक्षमहिंसायाः परं मतम् ।
ऋते त्वागमशास्त्रेभ्यो ब्रूहि तद्यदि पश्यसि ॥ १७ ॥

आगमशास्त्रोंके अतिरिक्त जो कुछ हिंसाशास्त्र हैं, यदि वे प्रत्यक्ष हों, और तुमने उन्हें देखा हो, तो उसे ही कहो ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्थूमरश्मिरुवाच—

स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रूयते श्रुतिः
फलं प्रकल्प्य पूर्वं हि ततो यज्ञः प्रतायते ॥ १८ ॥

स्थूमरश्मि बोले— "स्वर्गकी इच्छा करनेवाला पुरुष यज्ञ करे" सदा ऐसी ही श्रुति सुनी जाती है। पहले फलकी कल्पना करके उसके अनन्तर यज्ञका अनुष्ठान हुआ करता है॥१८॥

अजश्चाश्वश्च मेषश्च गौश्च पक्षिगणाश्च ये।
ग्राम्यारण्या ओषधयः प्राणस्यान्नमिति श्रुतिः ॥ १९ ॥

बकरा, घोडा, मेढ, गऊ, पक्षी और गांव तथा जङ्गलकी सब औषधियां प्राणियोंके अन्न हैं; यह वेदमें प्रतिपादन हुआ है; इसलिये जो जिसका अन्न है, उसके खानेमें कोई दोष नहीं है ॥ १९ ॥

तथैवान्नं ह्यहरहः सायं प्रातर्निरुप्यते।
पशवश्चाथ धान्यं च यज्ञस्याङ्गमिति श्रुतिः ॥ २० ॥

प्रतिदिन सन्ध्या और भोरके समयमें प्राणके लिये अन्न निरूपित हुआ करता है; पशुसमूह और समस्त धान्य यज्ञके अङ्ग हैं, यह भी वेदके बीच विहित है ॥ २० ॥

एतानि सह यज्ञेन प्रजापतिरकल्पयत्।
तेन प्रजापतिर्देवान्यज्ञेनायजत प्रभुः ॥ २१ ॥

प्रजापतिने यज्ञके साथ उन सबको उत्पन्न किया है, और फिर उन प्रजापतिने उन्हींके जरिये देवताओंसे यज्ञका अनुष्ठान कराया था ॥ २१ ॥

ते स्वान्योन्यंचराः सर्वे प्राणिनः सप्त सप्त च।
यज्ञेषूपाकृतं विश्वं प्राहुरुत्तमसंज्ञितम् ॥ २२ ॥

ऊपर कहे हुए पशु, ग्राम्य और अरण्यभेदसे सात प्रकारके हैं, वे परस्पर श्रेष्ठ हैं। गऊ, बकरे, मनुज, घोडे, मेढे, खच्चर और गदहे, ये सातों ग्रामपशु हैं; और सिंह, बाघ, बराह, अश्व, भैंसे, भालू और बन्दर, ये सातों जंगली कहके वर्णित हुआ करते हैं। यज्ञमें विनियुक्त भूभागको महर्षि लोग उत्तमसंज्ञक कहा करते हैं ॥ २२ ॥

एतच्चैवाभ्यनुज्ञातं पूर्वैः पूर्वतरैस्तथा।
को जातु न विचिन्वीत विद्वान्स्वां शक्तिमात्मनः ॥ २३ ॥

और यह सब पहलेसे ही पण्डितोंके जरिये यज्ञके लिये अनुज्ञात हुआ है। कौन विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुमुक्तिके उपाय करनेमें अभिलाषी नहीं होता; सब कोई अपनी सामर्थ्यके अनुसार यज्ञ कार्य करें ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पशवश्च मनुष्याश्च द्रुमाश्चौषधिभिः सह ।
स्वर्गमेवाभिकाङ्क्षन्ते न च स्वर्गस्तृते मखम् ॥ २४ ॥

पशु, मनुष्य, वृक्ष और समस्त औषधियां स्वर्गकी कामना किया करती हैं, स्वर्गके अतिरिक्त सुख नहीं है । यज्ञके विना वह स्वर्ग नहीं मिल सकता ॥ २४ ॥

ओषध्यः पशवो वृक्षा वीरुदाज्यं पयो दधि ।
हविर्भूमिर्दिशः श्रद्धा कालश्चैतानि द्वादश ॥ २५ ॥

औषधि, पशु, वृक्ष, लता, घृत, दूध, दही, हवि, भूमि, दिशा, श्रद्धा और काल, ये बारह यज्ञके अङ्ग हैं ॥ २५ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि यजमानश्च षोडशः ।
अग्निर्ज्ञेयो गृहपतिः स सप्तदश उच्यते ।
अङ्गान्येतानि यज्ञस्य यज्ञो मूलमिति श्रुतिः ॥ २६ ॥

और ऋक्, यजु, साम तथा यजमानको मिलाके सोलह, और अग्निस्वरूप गृहपति सत्रहवां— इस प्रकार ये सत्रह यज्ञके अङ्ग कहे हैं । येही सत्रह यज्ञके अङ्ग हैं, यज्ञ ही जगत्की स्थितिका मूल कारण है, यह वेदमें प्रतिपादित है ॥ २६ ॥

आज्येन पयसा दध्ना शकृताभिक्षया त्वचा ।
वालैः शृङ्गेण पादेन संभवत्येव गौर्मखम् ।
एवं प्रत्येकशः सर्वं यद्यदस्य विधीयते ॥ २७ ॥

घृत, दूध, दही, गोबर, छाछ, चमडा, लोम, सींग और खुरके जरिये गौ यज्ञका कार्य सिद्ध हुआ करता है । सब वस्तुओंमेंसे यज्ञके लिये प्रत्येक जो जो विहित होता है, उसका संग्रह करे ॥ २७ ॥

यज्ञं वहन्ति संभूय सहार्त्विग्भिः सदक्षिणैः ।
संहत्यैतानि सर्वाणि यज्ञं निर्वर्तयन्त्युत ॥ २८ ॥

वह सब एकत्रित होकर दक्षिणायुक्त ऋत्विजोंके सहित यज्ञको पूर्ण करता है । ऊपर कही हुई सब सामग्रियोंका संग्रह करके यजमान यज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ २८ ॥

यज्ञार्थानि हि सृष्टानि यथा वै श्रूयते श्रुतिः ।
एवं पूर्वे पूर्वतराः प्रवृत्ताश्चैव मानवाः ॥ २९ ॥

यज्ञके लिये ही सब वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, यह यथार्थ श्रुति कानोंसे सुनी जाती है । प्राचीन मनुष्य इस ही भांति यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते थे ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हिनस्ति ह्यारभते नाभिद्रुह्यति किंचन ।
यज्ञो यष्टव्य इत्येव यो यजत्यफलेप्सया ॥ ३० ॥

"यज्ञ करना कर्त्तव्य है," ऐसा समझके फलकी इच्छा न करके जो लोग यज्ञ करते हैं, वे किसीकी हिंसा नहीं करते हैं, फलकी कामनासे कोई कर्म नहीं करते हैं, और किसीसे द्रोह नहीं करते हैं ॥ ३० ॥

यज्ञाङ्गान्यपि चैतानि यथोक्तानि नसंशयः ।
विधिना विधियुक्तानि तारयन्ति परस्परम् ॥ ३१ ॥

उनके यज्ञमें पहले कहे हुए सब यज्ञाङ्ग और यज्ञमें कहे हुए यूपकाष्ठ यथारीतिसे विधिपूर्वक निज कार्योंसे परस्परको धारण करते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥

आम्नायमार्षं पश्यामि यस्मिन्वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
तं विद्वांसोऽनुपश्यन्ति ब्राह्मणस्यानुदर्शनात् ॥ ३२ ॥

जिसमें सब वेद प्रतिष्ठित हो रहे हैं, मैं उस ऋषिप्रणीत आम्नाय–वाक्य धर्मशास्त्रका दर्शन करता हूं; कर्मप्रवर्त्तक ब्राह्मण वाक्यदर्शन निबन्धनसे विद्वान् लोग भी उस वेदवाक्यको प्रमाणभूत मानते हैं ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणप्रभवो यज्ञो ब्राह्मणार्पण एव च ।
अनु यज्ञं जगत्सर्वं यज्ञश्चानु जगत्सदा ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है और ब्राह्मणमें ही यज्ञ अर्पित हुआ करता है; सब जगत् यज्ञका आसरा किये हैं, और यज्ञ भी सदा जगत्को अवम्बन कर रहा है ॥ ३३ ॥

ओमिति ब्रह्मणो योनिर्नमः स्वाहा स्वधा वषट् ।
यस्यैतानि प्रयुज्यन्ते यथाशक्ति कृतान्यपि ॥ ३४ ॥

ओंकार ही वेदका मूल है, इसलिये प्रणवका उच्चारण करके यज्ञादि कार्योंको करना चाहिये। नमः, स्वाहा, स्वधा, वषट् इत्यादि मन्त्रोंके यथाशक्ति जिसके यज्ञमें प्रयोग होते हैं; उसीका यज्ञ सम्पन्न होता है ॥ ३४ ॥

न तस्य त्रिषु लोकेषु परलोकभयं विदुः ।
इति वेदा वदन्तीह सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ३५ ॥

त्रिभुवनके बीच उस मनुष्यको किसी प्राणीसे भय नहीं है; सब वेद और सिद्ध महर्षि लोग इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं ॥ ३५ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि स्तोभाश्च विधिचोदिताः ।
यस्मिन्नेतानि सर्वाणि बहिरेव स वै द्विजः ॥ ३६ ॥

ऋक्, यजु, साम और विधिविहित स्तोभ ये सब विधिपूर्वक प्रयुक्त होकर जिसमें निवास करते हैं, वही इस जगत्में द्विज होता है ॥ ३६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अग्न्याधेये यद्भवति यच्च सोमे सुते द्विज ।
यच्चेतरैर्महायज्ञैर्वेद तद्भगवान्स्वतः ॥ ३७ ॥

हे द्विज ! अग्न्याधान, सोमयाग और इतर महायज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसे तो आप स्वयं जानते हैं ॥ ३७ ॥

तस्माद्ब्रह्मन्यजेतैव याजयेचाविचारयन् ।
यजतः स्वर्गविधिना प्रेत्य स्वर्गफलं महत् ॥ १८ ॥

इसलिये हे ब्रह्मन् ! विचार न करके यजन और याजन करना उचित है। स्वर्गप्रद ज्योतिष्टोमादिके अनुष्ठानके जरिये जो यज्ञ करता है, परलोकमें उसे अत्यन्त महत् स्वर्ग फल प्राप्त हुआ करता है ॥ ३८ ॥

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञानां परश्चेति विनिश्चयः ।
वेदवादविदश्चैव प्रमाणमुभयं तदा ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥ ९०७७ ॥

जो यज्ञ नहीं करते, उनका यह लोक और परलोक नष्ट होता है। जो वेदगत अर्थवाद जानते हैं, उस अर्थवादके दोनों फल सामर्थ्य ही इस विषयमें प्रमाण है, यह भी उन्हें अविदित नहीं है ॥ ३९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ साठवां अध्याय समाप्त ॥ २६० ॥ ९०७७ ॥

: २६१ :

कपिल उवाच –

एतावदनुपश्यन्तो यतयो यान्ति मार्गगाः ।
नैषां सर्वेषु लोकेषु काश्चिदस्ति व्यतिक्रमः ॥ १ ॥

कपिल बोले– सविशेष अवस्थामें स्थित, यम नियम आदिसे युक्त, योगी लोग दृश्यत्व रूपसे परिच्छिन्न ब्रह्माण्ड पर्यन्त कर्म फल अवलोकन करते हुए परमात्माका दर्शन किया करते हैं; सब लोकोंके बीच इन लोगोंके सङ्कल्प कभी मिथ्या न होवे ॥ १ ॥

निर्द्वंद्वा निर्नमस्कारा निराशीर्बन्धना बुधाः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यश्चरन्ति शुचयोऽमलाः ॥ २ ॥

जो सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वसे उत्पन्न हुए हर्ष–विषादसे रहित हैं, जो किसीको नमस्कार नहीं करते वा आशीर्वाद नहीं देते, ज्ञानयुक्त होनेसे वासनाके हेतु सब पापोंसे जो लोग मुक्त हुए हैं, वे स्वभावसिद्ध पवित्र और आनेवाले दोषोंसे रहित योगी पुरुष परम सुखसे विचरते रहते हैं ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपवर्गेऽथ संत्यागे बुद्धौ च कृतनिश्चयाः ।
ब्रह्मिष्ठा ब्रह्मभूताश्च ब्रह्मण्येव कृतालयाः ॥ ३ ॥

अपवर्ग—मोक्षकी प्राप्ति और संन्यास विषयको बुद्धिसे जिन्होंने निश्चय किया है, वे ब्रह्माभिलाषी ब्रह्मभूत योगी लोग ब्रह्मको ही अवलम्बन किया करते हैं ॥ ३ ॥

विशोका नष्टरजसस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
तेषां गतिं परां प्राप्य गार्हस्थ्ये किं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

जिन्हें शोक नहीं है, और रजोगुण नष्ट हुआ है, उनके निमित्त नित्य सिद्ध सनातन लोक निर्मित है; परमपद पाके फिर उन्हें गृहस्थ धर्मकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ४ ॥

स्यूमरश्मिरुवाच—

यद्येषा परमा निष्ठा यद्येषा परमा गतिः ।
गृहस्थानव्यपाश्रित्य नाश्रमोऽन्यः प्रवर्तते ॥ ५ ॥

स्यूमरश्मि बोले— यदि यही परम उत्कर्ष और यही चरम—गति हुई, तो गृहस्थ धर्मका महत्त्व अधिक होता है; क्योंकि विना गृहस्थोंके आसरेसे दूसरे आश्रमोंके निर्वाह नहीं होसकते ॥ ५ ॥

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्त इतरेऽऽश्रमाः ॥ ६ ॥

जैसे जननीका आसरा करके सब प्राणी जीवन धारण करते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रमके अवलम्बसे सब आश्रमवाले वर्तमान रहते हैं ॥ ६ ॥

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते ॥ ७ ॥

गृहस्थ ही यज्ञ किया करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है; सुखकी इच्छा करके जो कुछ चेष्टा की जाती है, गार्हस्थ्य ही उसका मूल है ॥ ७ ॥

प्रजनाद्ध्यभिनिर्वृत्ताः सर्वे प्राणभृतो मुने ।
प्रजनं चाप्युतान्यत्र न कथंचन विद्यते ॥ ८ ॥

हे मुने ! प्राणिमात्र ही सन्तानके उत्पन्न होनेसे सब भांतिसे सुखी होते हैं, गृहस्थाश्रमके अतिरिक्त दूसरे किसी आश्रममें भी वह पुत्रोत्पत्ति सम्भव नहीं होती ॥ ८ ॥

यास्ताः स्युर्बाहिरोषध्यो बह्वरण्यास्तथा द्विज ।
ओषधिभ्यो बहिर्यस्मात्प्राणी कश्चिन्न विद्यते ।
कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या मोक्षो नास्ति गृहादिति ॥ ९ ॥

हे द्विज ! बाह्य ओषधि धान्य आदि और शैलज ओषधि सोमलता इत्यादि जो कुछ दीख पड़ती है, प्राण उन ओषधि स्वरूप है; उससे बाहर कोई नहीं है; क्योंकि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यके निकट उपस्थित होती है, सूर्यसे वर्षा उत्पन्न होती है, जल बरसनेसे अन्न उपजता है, और अन्नसे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसलिये ओषधिस्वरूप प्राणसे पृथक् जब दूसरा कोई पदार्थ नहीं दीखता, तब गृहस्थाश्रम ही जगत्की उत्पत्तिका कारण है; 'गृहस्थाश्रममें मोक्ष नहीं होती' किस पुरुषका यह वचन सत्य हो सकता है ? ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अश्रद्दधानैरप्राज्ञैः सूक्ष्मदर्शनवर्जितैः ।
निराशैरलसैः श्रान्तैस्तप्यमानैः स्वकर्मभिः ।
अक्षमस्योपरमो दृष्टः प्रव्रज्या नाम पण्डितैः ॥ १० ॥

श्रद्धारहित, बुद्धिहीन, सूक्ष्म दर्शन विवर्जित, प्रतिष्ठाहीन, आलसी, श्रान्त और निज कर्मसे सन्तापयुक्त, काणत्व आदि दोषोंसे गृहस्थधर्म प्रतिपालन करनेमें असमर्थ मूर्ख पुरुष ही प्रवज्या-धर्ममें शमगुणकी अधिकता दर्शन किया करते हैं ॥ १० ॥

त्रैलोक्यस्यैव हेतुर्हि मर्यादा शाश्वती ध्रुवा ।
ब्राह्मणो नाम भगवाञ्जन्मप्रभृति पूज्यते ॥ ११ ॥

तीनों लोकोंके हितके निमित्त यह वैदिक धर्मकी नित्य तथा निश्चल मर्यादा है, कि भगवान् वेदवित् ब्राह्मण जन्मसे ही पूजनीय और आदरणीय है ॥ ११ ॥

प्राग्गर्भाधानान्मन्त्रा हि प्रवर्तन्ते द्विजातिषु ।
अविश्रम्भेषु वर्तन्ते विश्रम्भेष्वप्यसंशयम् ॥ १२ ॥

प्रमाणान्तरोंसे अगम्य स्वर्गादि और ऐहिक कर्मफलसिद्धि विषयमें जो सब मन्त्र हैं, वह गर्भाधानके पहलेसे ही द्विजातियोंमें निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

दाहः पुनः संश्रयणे संस्थिते पात्रभोजनम् ।
दानं गवां पशूनां वा पिण्डानां चाप्सु मज्जनम् ॥ १३ ॥

मृत-देहको जलाना, फिर शरीर प्राप्ति, मरनेके अनन्तर श्राद्ध, तर्पण आदि वैतरणीके समयमें गऊदान, आद्य श्राद्धके समयमें वृषोत्सर्ग और सब पिण्डोंमें जलसिञ्चन, ये सब कार्य वेद-मन्त्रमूलक हैं ॥ १३ ॥

अर्चिष्मन्तो बर्हिषदः क्रव्यादाः पितरः स्मृताः ।
मृतस्याप्यनुमन्यन्ते मन्त्रा मन्त्राश्च कारणम् ॥ १४ ॥

ज्योतिर्मय, कुशोंपर सोनेवाले क्रव्यात् और पितर लोग मृतकके सम्बन्धमें ऊपर कहे हुए कार्योंको मन्त्रसंमत कहा करते हैं; मन्त्र ही सब धर्मोंके कारण हैं ॥ १४ ॥

एवं क्रोशत्सु वेदेषु कुतो मोक्षोऽस्ति कस्यचित् ।
ऋणवन्तो यदा मर्त्याः पितृदेवद्विजातिषु ॥ १५ ॥

वेद जब इन मन्त्रोंके कारणताकी घोषणा कर रहे हैं और मनुष्य लोग जब पितर, देवता तथा ऋषियोंके निकट ऋणी हैं, तब गृहस्थाश्रममें रहकर उन ऋणोंको चुकाये बिना किसी पुरुषको किस प्रकार मोक्ष हो सकती है ? ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रिया विहीनैरलसैः पण्डितैरपलापितम् ।
वेदावादापरिज्ञानं सत्याभासमिवानृतम् ॥ १६ ॥

श्रीहीन और आलसी पण्डितोंने कर्मोंके त्यागसे मोक्ष लाभ होता है, यह अपप्रचार किया है; यह सत्यकी भांति भक्तिमान पूर्ण मिथ्या धर्म है; इसमें किसीको वेदतत्त्वोंका ज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

न वै पापैर्हियते कृष्यते वा यो ब्राह्मणो यजते वेदशास्त्रैः ।
उर्ध्वं यज्ञः पशुभिः सार्धमेति संतर्पितस्तर्पयते च कामैः ॥ १७ ॥

जो वेदवित् ब्राह्मण वेदशास्त्रविहित यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करता है, वह पापोंसे आहत वा आकर्षित नहीं होता; बल्कि वह यज्ञ और यज्ञिय पशुओंके सहित पुण्यलोकमें गमन करता है; और वह स्वयं सर्वकामसे तृप्त होकर दूसरोंको तर्पित किया करता है; इसलिये अग्निहोत्र आदि कर्म समुचित उपासनारूपी ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, इससे वह गृहस्थाश्रममें ही सिद्ध हुआ करती है ॥ १७ ॥

न वेदानां परिभवान्न शाठ्येन न मायया ।
महत्प्राप्नोति पुरुषो ब्रह्म ब्रह्मणि विन्दति ॥ १८ ॥

वेदोक्त कर्ममें अनादर, शठता वा मायासे मनुष्य महत् ब्रह्मपद नहीं पाता है; वेद जाननेवाला ब्राह्मण ही वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानसे ब्रह्मपद प्राप्त किया करता है ॥ १८ ॥

कपिल उवाच—

दर्शं च पौर्णमासं च अग्निहोत्रं च धीमताम् ।
चातुर्मास्यानि चैवासंस्तेषु यज्ञः सनातनः ॥ १९ ॥

कपिलमुनि बोले— दर्श, पौर्णमास, अग्निहोत्र और चातुर्मास्य यज्ञ बुद्धिमान् मनुष्योंके चित्त-शुद्धिके कारण हुए हैं; इसलिये उक्त यज्ञादि कर्मोंमें सनातन धर्म विद्यमान है, हिंसायुक्त पशुवध आदि कार्योंमें कोई धर्म नहीं है ॥ १९ ॥

अनारम्भाः सुधृतयः शुचयो ब्रह्मसंश्रिताः ।
ब्रह्मणैव सम ते देवांस्तर्पयन्त्यमृतैषिणः ॥ २० ॥

जो यज्ञादिकोंका अनुष्ठान नहीं करते, वेही धैर्यशील हैं; इससे वेही राग आदि दोषोंसे रहित पवित्र और ब्रह्ममें आश्रित हैं । वेही अविनाशी ब्रह्मके अभिलाषी संन्यासी ब्रह्मदर्शनके जरिये देवताओंकी तृप्तिसाधन किया करते हैं ॥ २० ॥

सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ २१ ॥

जो सब भूतोंके आत्मभूत और सब प्राणियोंमें समदर्शी हैं, गुणाभिलाषी देवता लोग भी उस निर्गुण ज्ञानी पुरुषके पदलाभ करनेमें मुग्ध हुआ करते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Varanasi. Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्द्वारं पुरुषं चतुर्मुखं चतुर्धा चैनमुपयाति निन्दा ।
बाहुभ्यां वाच उदरादुपस्थात्तेषां द्वारं द्वारपालो बुभूषेत् ॥ २२ ॥

बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ, ये चारों द्वारकी भांति जिसे आवरण कर रखते हैं; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ये चारों जिसके भोगसाधन मुखस्वरूप हैं, मनुष्य गुरूपदेशसे इस शरीरके भीतर स्थित सर्वमय पुरुषको विराट्, सूत्रान्तर्यामी और शुद्ध—चैतन्य इन चारों भांतिसे जानता है । जो उसे जाननेकी इच्छा करे, वह दोनों भुजा, वचन, उदर और उपस्थकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें यत्नवान् होवे ॥ २२ ॥

नाक्षैर्दीव्येन्नाददीतान्यवित्तं न वायोनीयस्य श्रुतं प्रगृह्णेत् ।
क्रुद्धो न चैव प्रहरेत धीमांस्तथास्य तत्पाणिपादं सुगुप्तम् ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् पुरुष जुआ न खेले, दूसरेका वित्त न हरे, नीच पुरुषका बनाया हुआ अन्न न ग्रहण करे और क्रुद्ध होके किसीके ऊपर प्रहार न करे; जो इस ही प्रकार व्यवहार करता है, उसके हाथ पांव उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं ॥ २३ ॥

नाक्रोशमर्च्छेन्न मृषा वदेच्च न पैशुनं जनवादं च कुर्यात् ।
सत्यव्रतो मितभाषोऽप्रमत्तस्तथास्य वाग्द्वारमथो सुगुप्तम् ॥ २४ ॥

आक्रोश करनेकी इच्छा न करे, वृथा वचन न कहे, खलता और लोगोंके अपवादको परित्याग करे; जो सत्यव्रती, मितभाषी और प्रमादरहित—सावधान है, उसका वचनरूपी द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित हुआ करता है ॥ २४ ॥

नानाशनः स्यान्न महाशनः स्यादलोलुपः साधुभिरागतः स्यात् ।
यात्रार्थमाहारमिहाददीत तथास्य स्याज्जाठरी द्वारगुप्तिः ॥ २५ ॥

अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे और अधिक भोजन भी न करना चाहिये, अलोलुप होकर साधुओंमें मिलित होवे, इस लोकमें देहयात्रा निबाहनेके लिये थोडासा आहार करे; जो ऐसा आचरण करता है, उसके जठर द्वारकी उत्तम रीतिसे रक्षा हुआ करती है ॥ २५ ॥

न वीरपत्नीं विहरेत नारीं न चापि नारीमनृतावाह्वयीत ।
भार्याव्रतं ह्यात्मनि धारयीत तथास्योपस्थद्वारगुप्तिर्भवेत ॥ २६ ॥

यज्ञ सम्बन्धी पत्नीसे विभक्त न होवे, यथाविधि परिणीता पत्नीके रहते दूसरी पत्नीका पाणिग्रहण करके प्रथम परिणीता पत्नीको धर्म, अर्थ, काम विषयमें विभागवती न करे और ऋतुकालके अतिरिक्त दूसरे समयमें पत्नीको आह्वान न करे, स्वयं भार्याव्रत अर्थात् परस्त्री त्यागव्रत धारण करे; जो ऐसा आचरण करता है, उसके उपस्थ द्वारकी रक्षा हुआ करती है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

द्वाराणि यस्य सर्वाणि सुगुप्तानि मनीषिणः।
उपस्थमुदरं बाहू वाक्चतुर्थी स वै द्विजः ॥ २७ ॥

जिस मनीषी पुरुषके उपस्थ, उदर, बाहु और वचन—ये सभी चारों द्वार पूर्ण रीतिसे रक्षित हुए हैं, वही ब्रह्मपदवाच्य होता है ॥ २७ ॥

मोघान्यगुप्तद्वारस्य सर्वाण्येव भवन्त्युत।
किं तस्य तपसा कार्यं किं यज्ञेन किमात्मना ॥ २८ ॥

और जिसके पहले कहे हुए द्वार रक्षित नहीं होते, उसके सब कार्य ही निष्फल होते हैं; वैसे पुरुषको तपस्यासे क्या प्रयोजन है, यज्ञकी ही कौनसी आवश्यकता है, और आत्मचिन्तनका ही क्या प्रयोजन है ? ॥ २८ ॥

अनुत्तरीयवसनमनुपस्तीर्णशायिनम्।
बाहूपधानं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २९ ॥

जिसके पास उत्तरीय वस्त्र नहीं है, जो आस्तरणशून्य स्थानमें बाहुको तकिया रूपसे सिरसे नीचे रखके शयन किया करता है, उस दम गुणावलम्बी पुरुषको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं ॥ २९ ॥

द्वंद्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः।
परेषामनुध्यायंस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३० ॥

जो मननशील होकर एकबारही सुख वा दुःख आदि द्वन्द्वोंका अनुशीलन न करके सुख-दुःख आदि सब विषयोंमें रत रहता है और दूसरोंका चिन्तन नहीं करता, देवता लोग उसे ब्राह्मण समझते हैं ॥ ३० ॥

येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या।
गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३१ ॥

जो यह सब जगत् नश्वर है, यह जानता है, जो प्रकृति और विकृतिसे परिचित है, ब्रह्म, द्वैत और सब भूतोंका आश्रयस्थान जो जानता है, देवता लोग उसे ब्राह्मण समझते हैं ॥ ३१ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः।
सर्वभूतात्मभूतो यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३२ ॥

किसी प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है, और जिससे सब प्राणियोंको भय नहीं होता; जो सब भूतोंका आत्मभूत है, देवता लोग उसे ब्राह्मण समझते हैं ॥ ३२ ॥

नान्तरेणानुजानन्ति वेदानां यत्क्रियाफलम्।
अनुज्ञाय च तत्सर्वमन्यद्वोचयतेऽफलम् ॥ ३३ ॥

मूढ मनुष्य वेदोक्त दान और यज्ञकर्मको फलके सिवा योग आदिके फलकी अभिलाषा नहीं रखते; वे उन साधनोंके महत्त्वके न जाननेके कारण स्वर्ग आदि फलोंकी कामना करते हैं ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

फलवन्ति च कर्माणि व्युष्टिमन्ति ध्रुवाणि च ।
विगुणानि च पश्यन्ति तथानैकान्तिकानि च ॥ ३४ ॥

शास्त्रमें कथित कर्म श्रेष्ठ फलदायी हैं; उन्नति कारक और स्थायी हैं; तो भी प्रवृतिमार्गी मनुष्य उनको गुणरहित और अस्थिर मानते हैं ॥ ३४ ॥

गुणाश्चात्र सुदुर्ज्ञेया ज्ञाताश्चापि सुदुष्कराः ।
अनुष्ठिताश्चान्तवन्त इति त्वमनुपश्यसि ॥ ३५ ॥

इस लोकमें गुणोंके कार्यभूत यज्ञादि कार्योंके स्वरूप तथा विधि अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं; यद्यपि वे जाने जाते हैं, तौ भी उनका अनुष्ठान करना अत्यन्त दुष्कर है; यद्यपि उनका अनुष्ठान किया जाता है, तौभी उसका परिणाम क्षययुक्त हुआ करता है, इसे तो तुम देखते हो ॥ ३५ ॥

स्यूमरश्मिरुवाच—

यथा च वेदप्रामाण्यं त्यागश्च सफलो यथा ।
तौ पान्थानावुभौ व्यक्तौ भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ ३६ ॥

स्यूमरश्मि बोले– हे भगवन् ! कर्म करो और कर्म त्याग करो, इस ही प्रकार परस्पर विरुद्ध दोनों पक्षके उपदेश देनेवाले वेदवाक्यकी प्रमाणता जिस प्रकार सिद्ध होती है, और जिस प्रकार त्याग सफल हुआ करता है, ये दोनों पक्षही वेदमें वर्णित हैं; अतएव आप उनकी यथार्थता मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ३६ ॥

कपिल उवाच—

प्रत्यक्षमिह पश्यन्ति भवन्तः सत्पथे स्थिताः ।
प्रत्यक्षं तु किमत्रास्ति यद्भवन्त उपासते ॥ ३७ ॥

कपिल बोले– आप ब्रह्मप्राप्तिके उपायभूत योगमार्गमें स्थित होकर इस जीवदेहमें फलका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं; आप कर्मठ होकर जो अभिलाष किया करते हैं, इस लोकमें उस सुख आदिका अनुभव स्वरूप प्रत्यक्ष फल क्या है ? ॥ ३७ ॥

स्यूमरश्मिरुवाच –

स्यूमरश्मिरहं ब्रह्मञ्जिज्ञासार्थमिहागतः ।
श्रेयस्कामः प्रत्यवोचमार्जवान्न विवक्षया ।
इमं च संशयं घोरं भगवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३८ ॥

स्यूमरश्मि बोले– हे ब्रह्मन् ! मैं स्यूमरश्मि हूं, ज्ञान प्राप्तिकी इच्छासे यहां आया हूं; कल्याणकी इच्छा करके सरल भावसे प्रत्युत्तर देता हूं, और निज पक्षको समर्थन करनेके लिये वाद-विवादकी इच्छासे नहीं कहता हूं; मुझे यह घोर संशय है, आप उसे दूर करिये ॥ ३८ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रत्यक्षमिह पश्यन्तो भवन्तः सत्पथे स्थिताः ।
किमत्र प्रत्यक्षतमं भवन्तो यदुपासते ।
अन्यत्र तर्कशास्त्रेभ्य आगमाच्च यथागमम् ॥ ३९ ॥

आप सत्यमें निवास करते हुए इस शरीरमें प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, इससे आप जिस प्रकार उपासना किया करते हैं, उसमें यहां उसका प्रत्यक्ष फल क्या है ? तर्कप्रधान वेदविरोधी लोकायत, आर्हत, सौगत और कापालिक आदि सब शास्त्रोंको परित्याग करके यथावत् प्रतिपादन किजिये जिससे आगम शब्दका अर्थ मुझे विदित होगा ॥ ३९ ॥

आगमो वेदवादस्तु तर्कशास्त्राणि चागमः ।
यथागममुपासीत आगमस्तत्र सिध्यति ।
सिद्धिः प्रत्यक्षरूपा च दृश्यत्यागमनिश्चयात् ॥ ४० ॥

वेदवाक्य और वेदार्थनिर्णायक पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, पातञ्जल और तर्कशास्त्रोंको भी आगम कहा जाता है, इसलिये आश्रमधर्मोंको अतिक्रम न करके सब आगमशास्त्रोंकी उपासना करनेसे फलसिद्धि हुआ करती है । आगमोंके निश्चय निबन्धनसे गत्यागति, दिव्य भोगोंकी प्राप्ति आदि प्रत्यक्षरूपी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है ॥ ४० ॥

नौर्नावीव निबद्धा हि स्रोतसा सनिबन्धना ।
ह्रियमाणा कथं विप्र कुबुद्धींस्तारयिष्यति ।
एतद्ब्रवीतु भगवानुपपन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ ४१ ॥

जैसे एक नौकामें निबद्ध दूसरी नौका बन्धनके सहित नदीके प्रवाहमें ह्रियमाण होकर किसी पुरुषको दूसरे किनारे पर नहीं पहुंचा सकती, हे विप्र ! हम कुबुद्धि लोग उस ही प्रकार कर्म-नौकामें निबद्ध होकर पूर्वकर्मवासनाबन्धनसे जन्म, जरा, मृत्यु प्रवाहके पार होनेमें असमर्थ हैं । हे भगवन् ! इसलिये मैं आपका शरणागत शिष्य हुआ हूं, आप मुझे इस प्रत्यक्ष पदार्थ ज्ञानकी शिक्षा दीजिये ॥ ४१ ॥

नैव त्यागी न संतुष्टो नाशोको न निरामयः ।
न निर्विवित्सो नावृत्तो नापवृत्तोऽस्ति कश्चन ॥ ४२ ॥

इस संसारमें कोई पुरुष भी त्यागशील नहीं है, कोई सन्तुष्ट नहीं है, कोई पुरुष भी शोकहीन नहीं है, कोई मनुष्य रोगरहित नहीं है, कोई चिकीर्षाशून्य नहीं है, कोई पुरुष आसक्तिहीन नहीं है, और जिसमें पारिपाट्य न हो, ऐसा पुरुष ही नहीं है ॥ ४२ ॥

भवन्तोऽपि च हृष्यन्ति शोचन्ति च यथा वयम् ।
इन्द्रियार्थाश्च भवतां समानाः सर्वजन्तुषु ॥ ४३ ॥

आप भी मेरी भांति प्रसन्न होते और शोक किया करते हैं; और आप लोगोंमें भी समस्त इन्द्रियविषय सब प्राणियोंके समान ही रहते हैं ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां प्रवृत्तिषु ।
एकमालम्बमानानां निर्णये किं निरामयम् ॥ ४४ ॥

इसलिये चारों वर्णों और आश्रमोंके लोग सुखाभिलाषी होकर सब प्रवृत्तियोंमें सुखका ही आश्रय लेते हैं; अब यदि सुखका निर्णय करना हो, तो अक्षय सुख कौनसा है, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये ॥ ४४ ॥

कपिल उवाच—

यद्यदाचरते शास्त्रमथ सर्वप्रवृत्तिषु ।
यस्य यत्र ह्यनुष्ठानं तत्र तत्र निरामयम् ॥ ४५ ॥

कपिल मुनि बोले– सब वैदिक शास्त्र समस्त प्रवृत्तिके बीच जो मोक्ष विषयके अनुष्ठान करनेका उपदेश करते हैं, उस मोक्षका अनुष्ठान जिसमें हैं, वही अपचयरहित–अक्षय सुखका अवलम्ब है ॥ ४५ ॥

सर्वं पावयते ज्ञानं यो ज्ञानं ह्यनुवर्तते ।
ज्ञानादपेत्य या वृत्तिः सा विनाशयति प्रजाः ॥ ४६ ॥

जो पुरुष ज्ञानका अनुसरण करता है, उसके शम दम आदिके हेतुसे उत्पन्न हुआ ज्ञान समस्त संसार बन्धनका विनाश किया करता है। ज्ञानके विना जो वैदिक कर्ममें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, वह प्रवृत्ति ही जन्ममरणप्रवाहरूपी क्लेशसे प्रजासमूहको पीडित करती है ॥ ४६ ॥

भवन्तो ज्ञानिनो व्यक्तं सर्वतश्च निरागमाः ।
ऐकात्म्यं नाम कश्चिद्धि कदाचिदभिपद्यते ॥ ४७ ॥

आप ज्ञानी और सब तरहसे निरामय हैं यह स्पष्ट है; इसलिये आप लोगोंके बीच क्या किसीने कभी ऐकात्म्यज्ञान प्राप्त किया है ? ॥ ४७ ॥

शास्त्रं ह्यवुद्ध्वा तत्त्वेन केचिद्वादबला मनाः ।
कामद्वेषाभिभूतत्वादहंकारवशं गताः ॥ ४८ ॥

कोई वितण्डावादी शास्त्रके यथार्थ मर्मको न जानके काम और क्रोधमें फंसनेसे अहङ्कारके वशमें हुआ करते हैं ॥ ४८ ॥

याथातथ्यमविज्ञाय शास्त्राणां शास्त्रदस्यवः ।
ब्रह्मस्तेना निरारम्भा अपक्वमतयोऽशिवाः ॥ ४९ ॥

शास्त्रदस्यु पुरुष शास्त्रोंके अभिप्रायको न जानके स्वगत, स्वजातीय और विजातीय, इन तीनों परिच्छेदोंसे रहित ब्रह्मवस्तुका अपलाप करते हुए शम दम आदिके साधनमें उदासीनता अवलम्बन करके अपक्व मनके होकर दुर्दैवी हुए हैं ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वैगुण्यमेव पश्यन्ति न गुणाननुयुञ्जते ।
तेषां तमःशरीराणां तम एव परायणम् ॥ ५० ॥

वैसे मनुष्य केवल फलाभावको ही देखते हैं; ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंको आत्मसंवेद्य समझके दूसरेमें योजना नहीं करते; उन तमोगुणप्रधान देहधारियोंके लिये तम ही परम अवलम्ब है ॥५०॥

यो यथाप्रकृतिर्जन्तुः प्रकृतेः स्याद्वशानुगः ।
तस्य द्वेषश्च कामश्च क्रोधो दम्भोऽनृतं मदः ।
नित्यमेवाभिवर्तन्ते गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ ५१ ॥

जिस प्राणीकी जैसी प्रकृति है, वह वैसी ही प्रकृतिके वशवर्ती होता है; उसके काम, क्रोध, द्वेष, दम्भ, मिथ्या, मद आदि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणसमूह सदाही वर्द्धित हुआ करते हैं ॥ ५१ ॥

एतद्बुद्ध्यानुपश्यन्तः संत्यजेयुः शुभाशुभम् ।
परां गतिमभीप्सन्तो यतयः संयमे रताः ॥ ५२ ॥

जो सिद्धान्त वाक्यमें निरत यतिलोग परमगतिकी कामना किया करते हैं, वे बुद्धि—ध्यानपूर्वक यह सब आलोचना करके शुभाशुभ दोनोंका परित्याग कर देते हैं ॥ ५२ ॥

स्थूमरश्मिरुवाच—

सर्वमेतन्मया ब्रह्मञ्शास्त्रतः परिकीर्तितम् ।
न ह्यविज्ञाय शास्त्रार्थं प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः ॥ ५३ ॥

स्थूमरश्मि बोले—हे ब्रह्मन् ! मैंने शास्त्रके अनुसार कर्मकी प्रशस्तता और संन्यासधर्मकी अप्रशस्तता वर्णन की है, शास्त्रके अर्थको विना जाने वाक्यके विलाससे किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ५३ ॥

यः कश्चिन्न्याय्य आचारः सर्वं शास्त्रमिति श्रुतिः ।
यदन्याय्यमशास्त्रं तदित्येषा श्रूयते श्रुतिः ॥ ५४ ॥

न्यायके अनुगत जो कुछ व्यवहार है, वही शास्त्र है, ऐसा श्रुति कहती है; और जो अन्यायके अनुगत है, वही अशास्त्र है, ऐसी ही जनश्रुति श्रुतिगोचर हुआ करती है ॥ ५४ ॥

न प्रवृत्तिर्ऋते शास्त्रात्काचिदस्तीति निश्चयः ।
यदन्यद्वेदवादेभ्यस्तदशास्त्रमिति श्रुतिः ॥ ५५ ॥

यह निश्चय है, कि शास्त्रके अतिरिक्त कोई प्रवृत्ति सफल नहीं होती; वेदशास्त्रोंसे जो भिन्न है, वही अशास्त्र है, यह वेदमें प्रमाणित है ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शास्त्रादपेतं पश्यन्ति बहवो व्यक्तमानिनः ।
शास्त्रदोषान्न पश्यन्ति इह चामुत्र चापरे ।
अविज्ञानहतप्रज्ञा हीनप्रज्ञास्तमोवृताः ॥ ५६ ॥

अविज्ञानके वशमें होकर हतप्रज्ञ हीनबुद्धि तमसे आवृत्त बहुतेरे पुरुष जो प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थको ही मान्य किया करते हैं, वे लोग केवल इस लोकको ही देखते हैं, वे कृतहीन और अकृताभ्यागम आदि शास्त्रके दोषोंको नहीं देखते । हम लोग आत्माका अनुभव न कर सकनेसे स्वरूप निष्ठासे रहित, हीनविषयोंमें बुद्धियुक्त हैं, इस ही लिये तमोगुणसे-अज्ञानसे छिपे हुए हैं ॥ ५६ ॥

शक्यं त्वेकेन मुक्तेन कृतकृत्येन सर्वशः ।
पिण्डमात्रं व्यपाश्रित्य चरितुं सर्वतोदिशम् ।
वेदवादं व्यपाश्रित्य मोक्षोऽस्तीति प्रभाषितुम् ॥ ५७ ॥

एकाकी, योगयुक्त, सब तरहसे कृतकृत्य और चित्तविजयी पुरुष, शरीर मात्रके लिये स्वल्प आहारवाला ही सब दिशाओंमें विचरण करके धर्माचरण करने और वेदवाक्यको अवलम्बन करके "मोक्ष है," यह वचन कहनेमें समर्थ होता है, अर्थात् जो लोग सब तरहसे धर्माचरण कर सकते हैं उन्हें ही "मोक्ष है," इस वचनका उल्लेख करना उचित है ॥ ५७ ॥

इदं तु दुष्करं कर्म कुटुम्बमभिसंश्रितम् ।
दानमध्ययनं यज्ञः प्रजासंतानमार्जवम् ॥ ५८ ॥

गृहस्थाश्रमका यह कुटुम्बके रक्षणपोषणसे सम्बन्धि जो कार्य है और दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और सरल भावयुक्त समस्त व्यवहार; यह सब मनुष्यके लिये अत्यन्त दुष्कर है ॥ ५८ ॥

यद्येतदेवं कृत्वापि न विमोक्षोऽस्ति कस्यचित् ।
धिक्कर्तारं च कार्यं च श्रमश्चायं निरर्थकः ॥ ५९ ॥

यह सब दुष्कर कर्म करनेपर भी यदि किसीकी मोक्ष न प्राप्त हो, तब उस कर्त्ता और कार्यको धिक्कार है, और वैसा परिश्रम भी निरर्थक है ॥ ५९ ॥

नास्तिक्यमन्यथा च स्याद्वेदानां पृष्ठतःक्रिया ।
एतस्यानन्त्यमिच्छामि भगवञ्श्रोतुमञ्जसा ॥ ६० ॥

यदि वेदवाक्यको अमान्य करके कोई ऊपर कहे हुए कर्मोंको न करे, तो उसकी नास्तिकता प्रकाशित होती है । हे भगवन् ! इसलिये मैं आपके समीपसे एक मोक्षविषयका ही वृत्तान्त विस्तारके सहित शीघ्र सुननेकी अभिलाष करता हूं, आप उसे वर्णन करिये ॥ ६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथ्यं वदस्व मे ब्रह्मन्नुपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ।
यथा ते विदितो मोक्षस्तथेच्छाम्युपशिक्षितुम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥ ९१३८ ॥

मैं आपके निकट शिष्यभावसे आया हूं; आप मुझे शिक्षा दीजिये । हे ब्रह्मन् ! आप मोक्षके विषयको जिस प्रकार जानते हैं, मैं वैसी ही शिक्षाकी इच्छा करता हूं ॥ ६१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ एकसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६१ ॥ ९१३८ ॥

: २६२ :

कपिल उवाच—

वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतःकृताः ।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १ ॥

कपिल मुनि बोले– वेद ही सब लोगोंके धर्मशिक्षामें प्रमाण है; इसलिये वेदवाक्यका अमान्य करना किसीको भी उचित नहीं है। सब वेदवाक्य दो भागोंमें विभक्त हैं, पहला कर्मोपासना काण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड, अर्थात् ब्रह्मके दो रूप– शब्द ब्रह्म (वेद) और परब्रह्म इन दोनों काण्डोंको ही सबको जानना योग्य है। जो लोग कर्मोपासना काण्ड शब्द ब्रह्ममें निपुण हुआ है, वह परब्रह्मको जाननेका अधिकारी होता है ॥ १ ॥

शरीरमेतत्कुरुते यद्वेदे कुरुते तनुम् ।
कृतशुद्धशरीरो हि पात्रं भवति ब्राह्मणः ॥ २ ॥

गर्भाधान आदि वैदिक संस्कारोंसे जो शरीर शुद्ध होता है, वैसे पवित्र शरीरवाला ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य पात्र हुआ करता है ॥ २ ॥

आनन्त्यमनुयुङ्क्ते यः कर्मणा तद्ब्रवीमि ते ।
निरागममनैतिह्यं प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् ॥ ३ ॥

किस प्रकार अक्षय मोक्ष प्राप्त करानेमें कर्म कारण होते हैं, यह कहता हूं; यह फल अनुमान वा ऐहिक प्रमाणके जरिये नहीं जाना जाता; यह इस लोकमें साक्षिक प्रत्यक्ष फल है ॥ ३ ॥

धर्म इत्येव ये यज्ञान्वितन्वन्ति निराशिषः ।
उत्पन्नत्यागिनोऽलुब्धाः कृपासूयाविवर्जिताः ।
धनानामेष वै पन्थास्तीर्थेषु प्रतिपादनम् ॥ ४ ॥

धनसंग्रहसे रहित, लोभहीन और राग–द्वेष वर्जित निष्काम पुरुष ही अपना धर्म मानकर यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं । सत्पात्रको दान करनेसे ही धनकी सार्थकता होती है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनाश्रिताः पापकृत्याः कदाचित्कर्मयोनितः ।
मनःसंकल्पसंसिद्धा विशुद्धज्ञाननिश्चयाः ॥ ५ ॥

जिन लोगोंने कभी पापकर्मका सहारा नहीं लिया है, अग्निहोत्र आदि कर्मोंके अनुष्ठानमें सदा रत रहते हैं; जिनमें मनके संकल्प पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुए हैं और पवित्र ज्ञानस्वरूप परब्रह्ममें निश्चय हुआ है ॥ ५ ॥

अक्रुध्यन्तोऽनसूयन्तो निरहंकारमत्सराः ।
ज्ञाननिष्ठास्त्रिशुक्लाश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ ६ ॥

जिन लोगोंमें क्रोध, असूया, अहंकार और मत्सरता नहीं हैं; ज्ञानके उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें जिनकी निष्ठा है; जन्म कर्म और विद्या, ये तीनों ही जिनके पवित्र हैं, जो सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वेही सत्पात्र हैं; उन्हें ही दान करनेसे धनकी सार्थकता हुआ करती है ॥ ६ ॥

आसन्गृहस्था भूयिष्ठमव्युत्क्रान्ताः स्वकर्मसु ।
राजानश्च तथा युक्ता ब्राह्मणाश्च यथाविधि ॥ ७ ॥

पहिले समयमें जनक आदि राजा और याज्ञवल्क्य आदि बहुतेरे ब्राह्मण गृहस्थ होके भी निज कर्मोंका समादर करते हुए विधिपूर्वक योगके अनुष्ठानमें नियुक्त थे ॥ ७ ॥

समा ह्यार्जवसंपन्नाः संतुष्टा ज्ञाननिश्चयाः ।
प्रत्यक्षधर्माः शुचयः श्रद्दधानाः परावरे ॥ ८ ॥

वे सब भूतोंमें समदर्शी, सरलतायुक्त, सन्तुष्ट और ज्ञाननिष्ठ थे, धर्म और धर्मफल सत्य-संकल्पत्व आदि उन लोगोंको प्रत्यक्ष दीखते थे । वे लोग पवित्र और निरुपाधिक ब्रह्ममें श्रद्धावान् थे ॥ ८ ॥

पुरस्ताद्भावितात्मानो यथावच्चरितव्रताः ।
चरन्ति धर्मं कृच्छ्रेऽपि दुर्गे चैवाधिसंहताः ॥ ९ ॥

वे लोग पहले चित्तशुद्धि करके व्रताचरण करते थे । कठिन और दुर्गम स्थलमें भी सब कोई मिलके धर्मका अनुष्ठान तत्परतासे करते थे ॥ ९ ॥

संहत्य धर्मं चरतां पुरासीत्सुखमेव तत् ।
तेषां नासीद्विधातव्यं प्रायश्चित्तं कदाचन ॥ १० ॥

वही परस्पर मिलकर धर्मानुष्ठान करनेवाले उन लोगोंका परम सुख था । उन लोगोंको किसी प्रकार प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं पडती थी ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्यं हि धर्ममास्थाय दुराधर्षतमा मताः ।
न मात्रामनुरुध्यन्ते न धर्मच्छलमन्ततः ॥ ११ ॥

वे लोग सत्य धर्मको अवलम्बन करके अत्यन्त तेजस्वी हुए थे; विषय बोध करानेवाली बुद्धिसे अनुरुद्ध नहीं होते थे; प्राणान्तमें भी धर्म छल और वञ्चना आदि नहीं जानते थे ॥ ११ ॥

य एव प्रथमः कल्पस्तमेवाभ्याचरन्सह ।
अस्यां स्थितौ स्थितानां हि प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
दुर्बलात्मन उत्पन्नं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

वे सब कोई इकट्ठे होकर अहिंसामय धर्मका जो प्रथम श्रेणीका धर्म है– अनुष्ठान करते थे; वे कि जो लोग वैसी रीतिसे धर्मकी उत्तम श्रेणीमें निवास करते हैं, उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है; ऐसा सुननेमें आता है कि दुर्बल और असमर्थ पुरुषोंके ही लिये प्रायश्चित्त विहित हुआ है ॥ १२ ॥

यत एवंविधा विप्राः पुराणा यज्ञवाहनाः ।
त्रैविद्यवृद्धाः शुचयो वृत्तवन्तो यशस्विनः ।
यजन्तोऽहरहर्यज्ञैर्निराशीर्बन्धना बुधाः ॥ १३ ॥

इस ही भांति पहले संयमी ब्राह्मण अनेक प्रकारके यज्ञोंका संपादन करते थे; वे तीनों वेदोंके ज्ञानमें श्रेष्ठ, पवित्र, सदाचारी और यशस्वी थे; तथा वे ज्ञानी लोग नित्य यज्ञ करते हुए आशाबन्धनसे मुक्त हो यजन करते थे ॥ १३ ॥

तेषां यज्ञाश्च वेदाश्च कर्माणि च यथागमम् ।
आगमाश्च यथाकालं संकल्पाश्च यथाव्रतम् ॥ १४ ॥

उन ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ और वेदोक्त कर्म आगमके अनुसार निर्वाहित हुआ करते थे; उनके हृदयमें सब शास्त्र और समस्त सङ्कल्प तथा समय फलित होते थे ॥ १४ ॥

अपेतकामक्रोधानां प्रकृत्या संशितात्मनाम् ।
ऋजूनां शमनित्यानां स्थितानां स्वेषु कर्मसु ।
सर्वमानन्त्यमेवासीदिति नः शाश्वती श्रुतिः ॥ १५ ॥

उन्होंने काम और क्रोधको त्याग दिया था; और वे स्वभावसे ही पवित्र चित्तवाले थे; वे सरल, शमनिरत और स्वधर्ममें स्थित थे; उन योगियोंके सब कर्म अनन्त ब्रह्ममें अर्पित हुआ करते हैं, हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति इसे प्रतिपादन करती है ॥ १५ ॥

तेषामदीनसत्त्वानां दुश्चराचारकर्मणाम् ।
स्वकर्मभिः संवृतानां तपो घोरत्वमागतम् ॥ १६ ॥

वैसे उदार हृदयी स्वभाववाले और दुष्कर कर्मशील मनुष्य निज कर्मोंसे ही परिपूर्ण थे; उनकी तपस्या अविद्याको निवर्तन करनेमें समर्थ थी ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तं सदाचारमाश्चर्यं पुराणं शाश्वतं ध्रुवम् ।
अशक्नुवद्भिश्चरितुं किंचिद्धर्मेषु सूचितम् ॥ १७ ॥

वे अत्यंत आश्चर्य कारक सदाचारका पालन करनेके कारण पुरातन, शाश्वत और अविनाशी ब्रह्मका फल प्राप्त करते थे; धर्मोंमें जो किंचित् सूक्ष्मता है, उसका आचरण करनेमें कितने ही असमर्थ होते हैं ॥ १७ ॥

निरापद्धर्म आचारस्त्वप्रमादोऽपराभवः ।
सर्ववर्णेषु यत्तेषु नासीत्कश्चिद्व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥

साधुओंके वेदोक्त सदाचार और धर्म आपत्ति रहित है; वह सावधानतासे युक्त और काम-क्रोधके जरिये अनभिभूत है। पहले सब वर्णोंकी उत्पत्ति होनेपर आश्रममें कोई व्यतिक्रम नहीं था ॥ १८ ॥

धर्ममेकं चतुष्पादमाश्रितास्ते नरर्षभाः ।
तं सन्तो विधिवत्प्राप्य गच्छन्ति परमां गतिम् ॥ १९ ॥

वह एक ही सदाचार धर्म चार प्रकारके रूपसे विभक्त होकर चारों आश्रमोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ, और उसहीका उन नरश्रेष्ठोंने अवलम्ब किया। उन आश्रमोंके सदाचारयुक्त धर्मका विधिपूर्वक अवलम्बन करनेसे साधु-पुरुष परम गति प्राप्त किया करते हैं ॥ १९ ॥

गृहेभ्य एव निष्क्रम्य वनमन्ये समाश्रिताः ।
गृहमेवाभिसंश्रित्य ततोऽन्ये ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥

कोई कोई घरसे निकलके संन्यासी होते हैं, कोई वानप्रस्थका आश्रय लेते हैं, कोई गृहस्थाश्रम अवलम्बन करते हैं और कोई ब्रह्मचर्य आश्रमका स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

धर्ममेतं चतुष्पादमाश्रमं ब्राह्मणा विदुः ।
आनन्त्यं ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणा नाम निश्चयः ॥ २१ ॥

इस प्रकार यह धर्म चार प्रकारसे विभक्त होकर चार आश्रमोंके रूपमें परिणत हुआ, ऐसे ब्राह्मण मानते हैं; ब्रह्मका अनन्त तथा अविनाशी स्थान है, और उसेही ब्राह्मण निश्चय पूर्वक प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

अत एवंविधा विप्राः पुराणा धर्मचारिणः ।
त एते दिवि दृश्यन्ते ज्योतिर्भूता द्विजातयः ॥ २२ ॥

इस प्रकार पहलेके निज धर्मका पालन करनेवाले विप्र—ब्राह्मण थे; उक्त सदाचारसे युक्त द्विजाति लोग मुक्त होकर ज्योतिर्मय शरीर धारण करके आकाशमण्डलमें दीख पडते हैं ॥ २२ ॥

नक्षत्राणीव धिष्ण्येषु बहवस्तारकागणाः ।
आनन्त्यमुपसंप्राप्ताः संतोषादिति वैदिकम् ॥ २३ ॥

वे नक्षत्रोंकी भाति आकाशके विभिन्न स्थानोंमें अनेक तारागण हैं; इन ज्ञानी पुरुषोंने संतोषसे ही वेदविहित अनन्त ब्रह्मत्वका पद प्राप्त किया है, ऐसा वैदिक सिद्धान्त है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

यद्यागच्छन्ति संसारं पुनर्योनिषु तादृशाः ।
न लिप्यन्ते पापकृत्यैः कदाचित्कर्मयोनितः ॥ २४ ॥

वैसे पुरुषोंको यदि फिर संसारमें आना पडे तो वे प्रारब्धकर्मसे योनि–प्रवेशके निमित्त पाप-फल दुःखादिसे लिप्त नहीं होते हैं ॥ २४ ॥

एवं युक्तो ब्राह्मणः स्यादन्यो ब्राह्मणको भवेत् ।
कर्मैव पुरुषस्याह शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ २५ ॥

इस ही प्रकार योगयुक्त यथार्थ ब्राह्मण हो सकता है; उससे अतिरिक्त ब्राह्मण विप्रकी आकृति मात्र अर्थात् काठके हाथीकी भांति केवल नामधारी है; इस ही प्रकार शुभ वा अशुभ कर्मही पुरुषका नाम प्रकाशित करता है ॥ २५ ॥

एवं पक्वकषायाणामानन्त्येन श्रुतेन च ।
सर्वमानन्त्यमेवासीदेवं नः शाश्वती श्रुतिः ॥ २६ ॥

जिनके राग–द्वेष आदि कषाय नष्ट होकर जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध हुई है, वे त्वंपदार्थका दर्शन और तत्वमसि वाक्यके अर्थको जाननेसे सब वस्तुओंको ही अनन्त ईश्वरमय समझते हैं, यही हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति है ॥ २६ ॥

तेषामपेततृष्णानां निर्णिक्तानां शुभात्मनाम् ।
चतुर्थ औपनिषदो धर्मः साधारणः स्मृतः ॥ २७ ॥

वासनाहीन, शुद्धस्वभाववाले, मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्त्यभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञोक्त चौथी अर्थात् परमात्म विषयवाली जो उपनिषत् विद्या है, उस ही निमित्त धर्म, सब वर्ण और आश्रमोंके सम्बन्धमें साधारण हुआ करता है, अर्थात् शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधिस्वरूप धर्म वर्णाश्रम मात्रमें ही साधारण है, ऐसे माना जाता है ॥ २७ ॥

स सिद्धैः साध्यते नित्यं ब्राह्मणैर्नियतात्मभिः ।
संतोषमूलस्त्यागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते ॥ २८ ॥

शुद्ध निरुद्धचित्तवाले ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण तुरीय ब्रह्मको पाते हैं । सन्तोष मूल और त्यागशाली पुरुषको ज्ञानका अधिष्ठान कहा जाता है ॥ २८ ॥

अपवर्गगतिर्नित्यो यतिधर्मः सनातनः ।
साधारणः केवलो वा यथाबलमुपास्यते ॥ २९ ॥

जिसमें मोक्षदायिनी बुद्धि ब्रह्मसाक्षात्काररूपिणी वृत्ति नित्य वर्त्तमान है, वही सम्प्रदायपरम्परासे प्रचलित यतिधर्म है । उक्त धर्म आश्रमान्तर धर्मसे मिश्रित हो, अथवा न हो, वैराग्य बलके अनुसार आराध्य होता है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गच्छतो गच्छतः क्षेमं दुर्बलोऽत्रावसीदति ।
ब्रह्मणः पदमन्विच्छन्संसारान्मुच्यते शुचिः ॥ ३० ॥

जो इस मार्गसे जाता है, उसका परमकल्याण होता है; जो दुर्बल है, वही यहां दुःखी होता है । पवित्र पुरुष ब्रह्मपदकी कामना करके संसारसे मुक्त होता है ॥ ३० ॥

स्यूमरश्मिरुवाच—

ये भुञ्जते ये ददते यजन्तेऽधीयते च ये ।
मात्राभिर्धर्मलब्धाभिर्ये वा त्यागं समाश्रिताः ॥ ३१ ॥

स्यूमरश्मि बोले— हे ब्रह्मन् ! जो लोग प्राप्त धनसे विषयसम्भोग, दान, यज्ञ और अध्ययन करते हैं, तथा जो लोग संन्यासधर्म— त्यागको अवलम्बन करते हैं, ॥ ३१ ॥

एतेषां प्रेत्यभावे तु कतमः स्वर्गजित्तमः ।
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्यथा तथ्येन पृच्छतः ॥ ३२ ॥

उनके बीच कौन पुरुष मृत्युके पश्चात् स्वर्गविजयी होता है ? मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप इस ही विषयको यथावत् वर्णन करिये ॥ ३२ ॥

कपिल उवाच—

परिग्रहाः शुभाः सर्वे गुणतोऽभ्युदयाश्च ये ।
न तु त्यागसुखं प्राप्ता एतत्त्वमपि पश्यसि ॥ ३३ ॥

कपिल मुनि बोले— सब सात्त्विक गुणयुक्त परिग्रह शुभ हैं; परन्तु त्याग करनेसे जो सुख होता है, उसे इनमेंसे कोई भी अनुभव नहीं कर सकते । त्यागशील पुरुष अनेक दृष्ट सुख लाभ करते हैं, इसे तुम भी अनुभव करते हो ॥ ३३ ॥

स्यूमरश्मिरुवाच—

भवन्तो ज्ञाननिष्ठा वै गृहस्थाः कर्मनिश्चयाः ।
आश्रमाणां च सर्वेषां निष्ठायामैक्यमुच्यते ॥ ३४ ॥

स्यूमरश्मि बोले— आप ज्ञाननिष्ठ हैं, और गृहस्थ कर्मनिष्ठ होते हैं; परन्तु आश्रममात्रमें निष्पत्तिकालमें एकही मोक्ष फलका आप वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥

एकत्वे च पृथक्त्वे च विशेषो नान्य उच्यते ।
तद्यथावद्यथान्यायं भगवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३५ ॥

ज्ञान और कर्मकी तुल्य प्रधानता अथवा प्रधान और निकृष्ट भावसे कुछ विशेषता नहीं दीख पडती, इसलिये आप इस विषयको विधिपूर्वक मेरे निकट यथावत् वर्णन करिये ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कपिल उवाच—

शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः ।
पक्के कषाये वमनै रसज्ञाने न तिष्ठति ॥ ३६ ॥

कपिल मुनि बोले– कर्मसे स्थूल और सूक्ष्म शरीर शोधित हुआ करता है। ज्ञानही परम गतिरूप मोक्षका साधन है; चित्तके सब दोष दूर होनेपर भी ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रीति ज्ञानमें निवास नहीं करती ॥ ३६ ॥

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम् ।
अद्रोहो नाभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा ॥ ३७ ॥

सब प्राणियोंपर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य वचन, सरलता, अद्रोह, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा और कर्मसे उपरति, ॥ ३७ ॥

पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम् ।
तद्विद्वाननुबुध्येत मनसा कर्मनिश्चयम् ॥ ३८ ॥

येही ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हैं; ज्ञानी इस ही उपायोंके सहारे परमपद पाता है। विद्वान् पुरुष मन ही मन इसही प्रकार कर्म निश्चय मालूम करे ॥ ३८ ॥

यां विप्राः सर्वतः शान्ता विशुद्धा ज्ञाननिश्चयाः ।
गतिं गच्छन्ति संतुष्टास्तामाहुः परमां गतिम् ॥ ३९ ॥

सब भांतिसे शान्त स्वभाव, पवित्र चित्त, ज्ञाननिष्ठ और सन्तोषयुक्त ब्राह्मणोंको जो गति मिलती है, उसे ही परमगति कहा जाता है ॥ ३९ ॥

वेदांश्च वेदितव्यं च विदित्वा च यथास्थिति ।
एवं वेदविदित्याहुरतोऽन्यो वातरेटकः ॥ ४० ॥

जिसमें परम गतिका लक्षण निरूपित हुआ है, वही वेदोंसे जानने योग्य कर्म ब्रह्मस्वरूप है, कर्मके अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान लाभ करके भी जो लोग निरहंकाररूपसे दीखते हैं, पण्डित लोग उन्हें ही वेदज्ञ कहते हैं; उनके अतिरिक्त मनुष्य भाथी नामक चर्मकोष स्वरूप है, अर्थात् वे लोग केवल सांस लेते और छोडते हैं ॥ ४१ ॥

सर्वं विदुर्वेदविदो वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
वेदे हि निष्ठा सर्वस्य यद्यदस्ति च नास्ति च ॥ ४१ ॥

वेदवित् पुरुष जानने योग्य सब विषयोंको ही जानते हैं, वेदमेंही समस्त ज्ञेय विषय प्रतिष्ठित हैं; वर्त्तमान, अतीत और अनागत, सब विषयोंकी ही निष्पत्ति वेदमें विहित हुई है ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एषैव निष्ठा सर्वस्य यच्चदस्ति च नास्ति च ।
एतदन्तं च मध्यं च सच्चासच्च विजानतः ॥ ४२ ॥

यह दृश्यमान जगत् प्रतीति कालमें वर्त्तमान रहता है, और बाधकालमें इसका अभाव होता है, अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्योंके निकट प्रतीयमान् जगत् मायानगरकी भांति असत् है, और अज्ञानियोंके निकट यह यथार्थमें असत् होनेपर भी वज्र पिञ्जरेकी भांति दृढ हुआ करता है। तत्वज्ञ पुरुषोंके समीपमें यह परिदृश्यमान सब विषय ही सत्, असत् और निर्विशेष सविशेष लय स्थान सब शास्त्रोंमें ही यह निष्पत्ति निरूपित हुई है ॥ ४२ ॥

समस्तत्याग इत्येव शम इत्येव निष्ठितः ।
संतोष इत्यत्र शुभमपवर्गे प्रतिष्ठितम् ॥ ४३ ॥

क्षेत्र, आराम, गृह–पशु, पत्नी, गृह, पुत्र, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार पर्यन्त परित्यक्त होनेपर निर्विकल्प समाधि अवस्थामें पूर्णरीतिसे आत्मदर्शन हुआ करता है, यह वेदवाक्यसे निश्चित हुआ है। मनुष्योंके जो सौ आनन्द हैं, गन्धर्वोंका वह एक ही आनन्द है, इत्यादि क्रमसे सौगुणा वर्द्धमान ब्रह्मानन्दमें अकामहत श्रोत्रियको जो आनन्द होता है, वही आनन्द स्वरूप सन्तोष अपवर्गोंके अनुगत और प्रतिष्ठित होरहा है ॥ ४३ ॥

ऋतं सत्यं विदितं वेदितव्यं सर्वस्यात्मा जङ्गमं स्थावरं च ।
सर्वं सुखं यच्छिवमुत्तमं च ब्रह्माव्यक्तं प्रभवश्चाव्ययश्च ॥ ४४ ॥

जो अबाधित सत्य स्वरूप अधिष्ठानत्व निबन्धन है, जो मूर्तामूर्त प्रपञ्चात्मक है, जो सबके आत्मस्वरूपसे विदित और स्थावर जङ्गम शरीरोंमें तादाम्य–निबन्धनसे जानने योग्य है, जो दुःखरहित सुख स्वरूप है, जो सबसे श्रेष्ठ मङ्गलमय है, और जिससे अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, वही अपरिणामी परब्रह्म है ॥ ४४ ॥

तेजः क्षमा शान्तिरनामयं शुभं तथाविधं व्योम सनातनं ध्रुवम् ।
एतैः शब्दैर्गम्यते बुद्धिनेत्रैस्तस्मै नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणाय ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥ ९१८३ ॥

तेज अर्थात् इन्द्रिय विजयकी सामर्थ्य, क्षमा अर्थात् बुराई करनेवाले पुरुषके विषयमें भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् निष्कामत्व निबन्धन सब कार्योंसे उपरति, ये तीनों ही शुभ और अनामय हैं अर्थात् दुःखसे रहित सुख प्राप्तिके हेतु हैं, जो लोग बुद्धिके सहारे देखते हैं, वेही बुद्धि नेत्रवाले पुरुषोंके युक्त क्षमा तेज और शान्तिके जरिये अज्ञान दूर होनेपर आकाशकी भांति आसक्तिरहित अकृत्रिम जिस सनातन ब्रह्मको पाते हैं, ब्रह्मवित्से अभिन्न उस परब्रह्मको नमस्कार करता हूं ॥ ४५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ २६२ ॥ ९१८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ः २६३ ः

युधिष्ठिर उवाच—

धर्ममर्थं च कामं च वेदाः शंसन्ति भारत ।
कस्य लाभो विशिष्टोऽत्र तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे भारत पितामह ! वेदोंमें धर्म, अर्थ और काम, ये तीनों विषय वर्णित तथा प्रशंसित हैं; इनके बीच कौनसे विषयका लाभ होना उत्तम है, आप मेरे समीप उसे ही कहिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र त वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
कुण्डधारेण यत्प्रीत्या भक्तायोपकृतं पुरा ॥ २ ॥

भीष्म बोले— पहले समयमें कुण्डधारने प्रीतिपूर्वक भक्तके निमित्त जो उपकार किया था, इस विषयमें वही इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं ॥ २ ॥

अधनो ब्राह्मणः कश्चित्कामाद्धर्ममवैक्षत ।
यज्ञार्थं स ततोऽर्थार्थी तपोऽतप्यत दारुणम् ॥ ३ ॥

किसी निर्द्धन ब्राह्मणने फलकी कामनासे "धर्म करूंगा" इस ही प्रकार विचार किया; अनन्तर धर्म भी धनसाध्य है, ऐसा विचार करके यज्ञके लिये धनकी इच्छासे घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥

स निश्चयमथो कृत्वा पूजयामास देवताः ।
भक्त्या न चैवाध्यगच्छद्धनं संपूज्य देवताः ॥ ४ ॥

अन्तमें वह दृढनिश्चय करके भक्तिपूर्वक देवताओंकी पूजा करने लगा, परन्तु देवपूजा करके भी अभिलषित धन न पाया ॥ ४ ॥

ततश्चिन्तां पुनः प्राप्तः कतमद्दैवतं नु तत् ।
यन्मे द्रुतं प्रसीदेत मानुषैरजडीकृतम् ॥ ५ ॥

अनन्तर उसने सोचा, कि ऐसा भी कोई देवता है, जो मनुष्योंकी आराधनासे जडीकृत न हुआ हो और जो शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रसन्न हो सके ॥ ५ ॥

अथ सौम्येन वपुषा देवानुचरमन्तिके ।
प्रत्यपश्यज्जलधरं कुण्डधारमवस्थितम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मण चित्त स्थिर करके इस ही प्रकार चिन्ता कर रहा था, उसही समय देवताओंके अनुचर कुण्डधार नामक मेघको अपने समीपमें स्थित देखा ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दृष्ट्वैव तं महात्मानं तस्य भक्तिरजायत ।
अयं मे धास्यति श्रेयो वपुरेतद्धि तादृशम् ॥ ७ ॥

उस महात्मा कुण्डधारको देखते ही उसके मनमें भक्ति उत्पन्न हुई; और सोचा कि यही मेरे कल्याणका उपाय करेगा; क्योंकि इसका रूप कल्याणकारी बोध होता है ॥ ७ ॥

संनिकृष्टश्च देवस्य न चान्यैर्मानुषैर्वृतः ।
एष मे दास्यति धनं प्रभूतं शीघ्रमेव च ॥ ८ ॥

यह देवताका निकटवर्ती है और मनुष्योंने इसे घेरकर नहीं रखा है; यह मुझे शीघ्रही बहुतसा धन देगा ॥ ८ ॥

ततो धूपैश्च गन्धैश्च माल्यैरुच्चावचैरपि ।
बलिभिर्विविधैश्चापि पूजयामास तं द्विजः ॥ ९ ॥

अनन्तर ब्राह्मणने अनेक प्रकारके धूप, गन्ध और माला आदि बहुतसी पूजाकी सामग्रियोंसे जलधरकी पूजा की ॥ ९ ॥

ततः स्वल्पेन कालेन तुष्टो जलधरस्तदा ।
तस्योपकारे नियतामिमां वाचमुवाच ह ॥ १० ॥

थोडे ही समयके बीच जलधर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणके उपकारके विषयमें अत्यन्त तत्पर होकर यह वचन बोला ॥ १० ॥

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चोरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ११ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोर और भग्नव्रती पुरुषके लिये साधुओंके जरिये प्रायश्चित्त विहित हुआ है; परन्तु कृतघ्न पुरुषकी किसी प्रकार भी निष्कृति नहीं है ॥ ११ ॥

आशायास्तनयोऽधर्मः क्रोधोऽसूयासुतः स्मृतः ।
पुत्रो लोभो निकृत्यास्तु कृतघ्नो नार्हति प्रजाम् ॥ १२ ॥

आशाका पुत्र अधर्म, असूयाका पुत्र क्रोध और शठताका भी लोभ नामक पुत्र है; परन्तु कृतघ्न मनुष्य पुत्रलाभका अधिकारी नहीं होता ॥ १२ ॥

ततः स ब्राह्मणः स्वप्ने कुण्डधारस्य तेजसा ।
अपश्यत्सर्वभूतानि कुशेषु शयितस्तदा ॥ १३ ॥

अनन्तर उस ब्राह्मणने उस समय कुशकी शय्यापर सोनेसे कुण्डधारके तेजसे प्रभावित हो स्वप्नमें सब प्राणियोंको देखा ॥ १३ ॥

शमेन तपसा चैव भक्त्या च निरुपस्कृतः ।
शुद्धात्मा ब्राह्मणो रात्रौ निदर्शनमपश्यत ॥ १४ ॥

तपस्या, इन्द्रियविजय और भक्तिभावसे युक्त भोगवर्जित वह शुद्धचित्तवाला ब्राह्मण था; उसने रात्रिमें कुण्डधारके विषयमें अपनी भक्तिका निदर्शन देखा ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मणिभद्रं स तत्रस्थं देवतानां महाद्युतिम् ।
अपश्यत महात्मानं व्यादिशन्तं युधिष्ठिर ॥ १५ ॥

हे युधिष्ठिर ! उसने उस समय देखा कि महाभाग महातेजस्वी मणिभद्र वहांपर देवताओंकी आज्ञासे याचकोंको फल बांट रहे हैं ॥ १५ ॥

तत्र देवाः प्रयच्छन्ति राज्यानि च धनानि च ।
शुभैः कर्मभिरारब्धाः प्रच्छिदन्त्यशुभेषु च ॥ १६ ॥

उसने देखा, कि वेही देवता लोग शुभकर्म करनेवाले याचकोंको राज्य तथा धन आदि दान कर रहे हैं और अशुभ कर्म करनेवालोंसे पहलेके दिये हुए राज्य आदि प्रत्याहरण कर रहे हैं ॥ १६ ॥

पश्यतामथ यक्षाणां कुण्डधारो महाद्युतिः ।
निष्पत्य पतितो भूमौ देवानां भरतर्षभ ॥ १७ ॥

हे भरतकुलतिलक ! अनन्तर महातेजस्वी कुण्डधार यक्षोंके सम्मुख देवताओंके समीप पृथ्वीपर गिरे ॥ १७ ॥

ततस्तु देववचनान्मणिभद्रो महायशाः ।
उवाच पतितं भूमौ कुण्डधार किमिष्यते ॥ १८ ॥

देवताओंके वचनके अनुसार महात्मा मणिभद्र पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डधारसे बोले—हे कुण्डधार ! तुम क्या कामना करते हो ? ॥ १८ ॥

कुण्डधार उवाच—

यदि प्रसन्ना देवा मे भक्तोऽयं ब्राह्मणो मम ।
अस्यानुग्रहमिच्छामि कृतं किंचित्सुखोदयम् ॥ १९ ॥

कुण्डधार बोले—यह ब्राह्मण मेरे ऊपर अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ है, इसलिये देवता लोग यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो इसके ऊपर कुछ कृपा करे, मैं यही कामना करता हूं, और उसके सिद्ध होनेसे यह सुखी होगा ॥ १९ ॥

भीष्म उवाच—

ततस्तं मणिभद्रस्तु पुनर्वचनमब्रवीत् ।
देवानामेव वचनात्कुण्डधारं महाद्युतिम् ॥ २० ॥

भीष्म बोले—अनन्तर मणिभद्र देवताओंके वचनके अनुसार महातेजस्वी कुण्डधारसे फिर कहने लगे ॥ २० ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते कृतकार्यः सुखी भव ।
यावद्धनं प्रार्थयते ब्राह्मणोऽयं सखा तव ।
देवानां शासनात्तावदसंख्येयं ददाम्यहम् ॥ २१ ॥

हे कुण्डधार ! उठो, उठो तुम्हारा कल्याण हो; तुम कृतकृत्य और सुखी होवे; यह ब्राह्मण तुम्हारा सखा है, इससे यह जितना धन मांगे, वह असंख्य होनेपर भी देवताओंकी आज्ञासे मैं इसे वही दूंगा ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विचार्य कुण्डधारस्तु मानुष्यं चलमध्रुवम् ।
तपसे मतिमाधत्त ब्राह्मणस्य यशस्विनः ॥ २२ ॥

कुण्डधार मनुष्यजीवन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर है, ऐसा समझकर यशस्वी ब्राह्मणकी तपस्याके निमित्त मनोयोगी हुए ॥ २२ ॥

कुण्डधार उवाच—

नाहं धनानि याचामि ब्राह्मणाय धनप्रद ।
अन्यमेवाहमिच्छामि भक्तायानुग्रहं कृतम् ॥ २३ ॥

कुण्डधार बोले— हे धन देनेवाले देव ! मैंने ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं की है; मेरे अनुगत भक्तके ऊपर दूसरी प्रकारकी कुछ कृपा की जाय, ऐसी इच्छा करता हूं ॥ २३ ॥

पृथिवीं रत्नपूर्णां वा महद्वा धनसंचयम् ।
भक्ताय नाहमिच्छामि भवेदेष तु धार्मिकः ॥ २४ ॥

रत्नपूरित पृथ्वी अथवा बहुतसे रत्न सञ्चय की मैं भक्तके लिये इच्छा नहीं करता हूं; यह धार्मिक हो, यही मेरी अभिलाष है ॥ २४ ॥

धर्मेऽस्य रमतां बुद्धिर्धर्मं चैवोपजीवतु ।
धर्मप्रधानो भवतु ममैषोऽनुग्रहो मतः ॥ २५ ॥

इसकी बुद्धि धर्ममें रत हो, यह धर्मको उपजीव्य करके जीवनका समय बिताते और यह धर्मको ही प्रधान जानके धर्मात्मा हो, मेरा यह अनुग्रह सफल होवे ॥ २५ ॥

मणिभद्र उवाच—

यदा धर्मफलं राज्यं सुखानि विविधानि च ।
फलान्येवायमश्नातु कायक्लेशविवर्जितः ॥ २६ ॥

मणिभद्र बोले— राज्य और विविध सुख ही धर्मके फल हैं, इससे यह शारीरिक क्लेशसे रहित होके सदा उन सब फलोंको भोग करे ॥ २६ ॥

भीष्म उवाच—

ततस्तदेव बहुशः कुण्डधारो महायशाः ।
अभ्यासमकरोद्धर्मे ततस्तुष्टास्य देवताः ॥ २७ ॥

भीष्म बोले— महायशस्वी कुण्डधारने बार बार धर्महीके लिये प्रार्थना की, क्योंकि निष्काम धर्म ही काम और अर्थसे उत्तम है; अनन्तर देवता लोग उस कुण्डधारके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥

मणिभद्र उवाच—

प्रीतास्ते देवताः सर्वा द्विजस्यास्य तथैव च ।
भविष्यत्येष धर्मात्मा धर्मे चाधास्यते मतिः ॥ २८ ॥

मणिभद्र बोले— हे कुण्डधार ! सब देवता लोग तुम्हारे और इस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न हुए हैं, यह ब्राह्मण धर्मात्मा होगा और इसकी मति धर्ममें ही अविचलित भावसे स्थित रहेगी ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

×

भीष्म उवाच—

ततः प्रीतो जलधरः कृतकार्यो युधिष्ठिर ।
ईप्सितं मनसो लब्ध्वा वरमन्यैः सुदुर्लभम् ॥ २९ ॥

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर ! अनन्तर जलधर दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ इच्छानुसार वर पाके प्रसन्न और कृतकार्य हुआ ॥ २९ ॥

ततोऽपश्यत चीराणि सूक्ष्माणि द्विजसत्तमः ।
पार्श्वतोऽभ्यागतो न्यस्तान्यथ निर्वेदमागतः ॥ ३० ॥

अनन्तर द्विजसत्तम भी अपने समीपमें रक्खे हुए सूक्ष्म चीरवस्त्र देखकर अत्यंत दुःख युक्त हुए ॥ ३० ॥

ब्राह्मण उवाच—

अयं न सुकृतं वेत्ति को न्वन्यो वेत्स्यते कृतम् ।
गच्छामि वनमेवाहं वरं धर्मेण जीवितुम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण बोला—जब यह मेरे पुण्यमय तपका उद्देश्य नहीं समझ सका तब और कौन पुरुष जानेगा ? इसलिये मैं धर्मके जरिये जीवन व्यतीत करनेके लिये वनमें गमन करूं, वही मेरे विषयमें कल्याणकारी है ॥ ३१ ॥

भीष्म उवाच—

निर्वेदादेवतानां च प्रसादात्स द्विजोत्तमः ।
वनं प्रविश्य सुमहत्तप आरब्धवांस्तदा ॥ ३२ ॥

भीष्म बोले—हे महाराज ! वह द्विजवर निर्वेद होकर तथा देवताओंकी कृपासे उस समय वनमें जाके घोर तपस्या करने लगा; ॥ ३२ ॥

देवतातिथिशेषेण फलमूलाशनो द्विजः ।
धर्मे चापि महाराज रतिरस्याभ्यजायत ॥ ३३ ॥

पहले कई दिवस देवता और अतिथियोंको अर्पण करके बचे हुए फल मूलोंके जरिये वह जीविका निर्वाह करता था, जिससे धर्ममें उसकी दृढ श्रद्धा हुई ॥ ३३ ॥

त्यक्त्वा मूलफलं सर्वं पर्णाहारोऽभवद्द्विजः ।
पर्णं त्यक्त्वा जलाहारस्तदासीद्द्विजसत्तमः ॥ ३४ ॥

अनन्तर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कई दिवस सब फल-मूलका भोजन छोडके केवल पर्णोंको भक्षण करता था; फिर पत्तोंको भी त्यागके केवल जलपान करता था ॥ ३४ ॥

वायुभक्षस्ततः पश्चाद्बहून्वर्षगणानभूत् ।
न चास्य क्षीयते प्राणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३५ ॥

क्रमसे वायुभक्षी होकर उसने अनेक वर्ष बिताया; तौभी उसकी प्राणशक्ति क्षीण न होनेसे वह अद्भुतसा बोध हुआ ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्मे च श्रद्दधानस्य तपस्युग्रे च वर्ततः ।
कालेन महता तस्य दिव्या दृष्टिरजायत ॥ ३६ ॥

बहुत समयतक धर्ममें श्रद्धावान् और उग्र तपस्यामें वर्त्तमान रहनेसे उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥

तस्य बुद्धिः प्रादुरासीद्यदि दद्यां महद्धनम् ।
तुष्टः कस्मैचिदेवाहं न मिथ्या वाग्भवेन्मम ॥ ३७ ॥

ऐसी बुद्धि प्रकट होनेपर उसने विचार किया कि अब मैं प्रसन्न होकर यदि किसीको धन दान करूं, तो मेरा वचन मिथ्या न होगा ॥ ३७ ॥

ततः प्रहृष्टवदनो भूय आरब्धवांस्तपः ।
भूयश्चाचिन्तयत्सिद्धो यत्परं सोऽभ्यपद्यत ॥ ३८ ॥

अनन्तर वह प्रसन्नवदन होकर फिर तपस्या करने लगा । फिर सिद्धि प्राप्त होनेपर जो वह केवल अभिज्ञान किया करता था, वह सिद्ध होके बार बार उसहीके सामने आता था; फिर वह चिन्ता करने लगा ॥ ३८ ॥

यदि दद्यामहं राज्यं तुष्टो वै यस्य कस्यचित् ।
स भवेदचिराद्राजा न मिथ्या वाग्भवेन्मम ॥ ३९ ॥

मैं प्रसन्न होकर यदि किसी पुरुषको राज्य दान करूं, तो वह शीघ्रही राजा हो जायगा, मेरा वचन कदापि मिथ्या न होगा ॥ ३९ ॥

तस्य साक्षात्कुण्डधारो दर्शयामास भारत ।
ब्राह्मणस्य तपोयोगात्सौहृदेनाभिचोदितः ॥ ४० ॥

हे भारत ! उस ब्राह्मणकी तपस्याके योगसे और उसके प्रति सुहृदतासे आकर्षित होकर कुण्डधारने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ४० ॥

समागम्य स तेनाथ पूजां चक्रे यथाविधि ।
ब्राह्मणः कुण्डधारस्य विस्मितश्चाभवन्नृप ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! अनन्तर द्विजवरने सहसा कुण्डधारको समागत देखके विस्मित होकर उसकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ४१ ॥

ततोऽब्रवीत्कुण्डधारो दिव्यं ते चक्षुरुत्तमम् ।
पश्य राज्ञां गतिं विप्र लोकांश्चावेक्ष चक्षुषा ॥ ४२ ॥

उस समय कुण्डधार बोले– हे द्विजवर ! तुम्हें उत्तम दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है, इसलिये तुम अपने नेत्रोंसे राजाओंकी गति और उनके सब लोकोंको देखो ॥ ४२ ॥

ततो राज्ञां सहस्राणि मग्नानि निरये तदा ।
दूरादपश्यद्विप्रः स दिव्ययुक्तेन चक्षुषा ॥ ४३ ॥

तब उस ब्राह्मणने कुण्डधारके वचनके अनुसार दूरसेही अपने दिव्य नेत्रोंके सहारे सहस्रों राजाओंको नरकमें डूबते देखा ॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डधार उवाच—

मां पूजयित्वा भावेन यदि त्वं दुःखमाप्नुयाः ।
कृतं मया भवेत्किं ते कश्च तेऽनुग्रहो भवेत् ॥ ४४ ॥

कुण्डधार बोले—तुम इच्छानुसार अत्यंत भक्तिभावसे मेरी पूजा करके यदि दुःख ही पाते हो, तब मैंने तुम्हारा क्या उपकार किया ? तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा ही क्या हुई ? ॥ ४४ ॥

पश्य पश्य च भूयस्त्वं कामानिच्छेत्कथं नरः ।
स्वर्गद्वारं हि संरुद्धं मानुषेषु विशेषतः ॥ ४५ ॥

देखो देखो, तुम फिर विशेष रूपसे इनकी दशाको अवलोकन करो; यह देखकर मनुष्य किस लिये अभिलषित वस्तुकी कामना कर सकता है; स्वर्गका द्वार भोगोंमें आसक्त सबके ही लिये अवरुद्ध होरहा है, विशेष करके मनुष्यको वहां प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच—

ततोऽपश्यत्स कामं च क्रोधं लोभं भयं मदम् ।
निद्रां तन्द्रीं तथालस्यमावृत्य पुरुषान्स्थितान् ॥ ४६ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर उस ब्राह्मणने काम, क्रोध, लोभ, भय, मद, निद्रा, तन्द्रा और आलस आदि शत्रुओंसे घिरे हुए कितने ही पुरुषोंको स्थित देखा ॥ ४६ ॥

कुण्डधार उवाच—

एतैर्लोकाः सुसंरुद्धा देवानां मानुषाद्भयम् ।
तथैव देववचनाद्विघ्नं कुर्वन्ति सर्वशः ॥ ४७ ॥

कुण्डधार बोला— इन्हीं दोषोंसे सब लोग घिरे हुए हैं; क्योंकि मनुष्योंसे देवताओंको भय हुआ करता है। देवताओंके आदेशके अनुसार ये दोष मनुष्यके धर्म और तपस्यामें सब प्रकारसे विघ्न उत्पन्न करते हैं ॥ ४७ ॥

न देवैरननुज्ञातः कश्चिद्भवति धार्मिकः ।
एष शक्तोऽसि तपसा राज्यं दातुं धनानि च ॥ ४८ ॥

देवताओंकी अनुमति विना कोई पुरुष धार्मिक नहीं हो सकता; तुमने देवताओंका अनुग्रह प्राप्त किया है, इसलिये तुम तपस्याके सहारे दूसरोंको राज्य और धनदान करनेमें समर्थ हुए हो ॥ ४८ ॥

भीष्म उवाच—

ततः पपात शिरसा ब्राह्मणस्तोयधारिणे ।
उवाच चैनं धर्मात्मा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ ४९ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर वह धर्मात्मा ब्राह्मण सिर झुकाके कुण्डधारके चरणपर गिरा और उनसे कहा, आपने मेरे ऊपर बहुत ही अतुल कृपा की है ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कामलोभानुबन्धेन पुरा ते यदसूयितम् ।
मया स्नेहमविज्ञाय तत्र मे क्षन्तुमर्हसि ॥ ५० ॥

पहले मैंने काम और लोभके वशमें होकर आपके स्नेहको न जानके जो असूया की है, आप मेरे उस अपराधको क्षमा करिये ॥ ५० ॥

क्षान्तमेव मयेत्युक्त्वा कुण्डधारो द्विजर्षभम् ।
संपरिष्वज्य बाहुभ्यां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५१ ॥

कुण्डधारने उस द्विजवरसे "मैंने क्षमा किया," ऐसा कहके दोनों भुजाओंसे उसे आलिङ्गन करके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए ॥ ५१ ॥

ततः सर्वानिमाँल्लोकान्ब्राह्मणोऽनुचचार ह ।
कुण्डधारप्रसादेन तपसा योजितः पुरा ॥ ५२ ॥

ब्राह्मण भी उस समय कुण्डधारकी कृपासे तपस्याके जरिये पूर्व योजित सिद्धि प्राप्त करके सब लोकोंमें विचरने लगा ॥ ५२ ॥

विहायसा च गमनं तथा संकल्पितार्थता ।
धर्माच्छक्त्या तथा योगाद्या चैव परमा गतिः ॥ ५३ ॥

उसने आकाशमार्गमें गमन, सङ्कल्पित विषय सिद्धिको जान लिया और धर्म, शक्ति तथा योगसे जो परमगति मिलती है, वह सब प्राप्त की ॥ ५३ ॥

देवता ब्राह्मणाः सन्तो यक्षा मानुषचारणाः ।
धार्मिकान्पूजयन्तीह न धनाढ्यान्न कामिनः ॥ ५४ ॥

देवता, ब्राह्मण, साधु लोग, यक्ष, मनुष्य और चारण गण– ये सब इस लोकमें धार्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं । धनवाले तथा भोगाभिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता ॥ ५४ ॥

सुप्रसन्ना हि ते देवा यत्ते धर्मे रता मतिः ।
धर्मे सुखकला काचिद्धर्मे तु परमं सुखम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥ ९२३८ ॥

तुम्हारी बुद्धि जब धर्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं; धनमें सुखका लेशमात्र ही है, धर्म ही परम सुख हुआ करता है ॥ ५५ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ तिरसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६३ ॥ ९२३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २६४ :

युधिष्ठिर उवाच—

बहूनां यज्ञतपसामेकार्थानां पितामह ।
धर्मार्थं न सुखार्थार्थं कथं यज्ञः समाहितः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! अनेक प्रकारके यज्ञ और तप एकमात्र चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर-प्रीतिके लिये ही है; इसलिये केवल धर्मके लिये ही, सुख वा धनके लिये नहीं, उस यज्ञका याजन कैसे होता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि नारदेनानुकीर्तितम् ।
उञ्छवृत्तेः पुरावृत्तं यज्ञार्थे ब्राह्मणस्य ह ॥ २ ॥

भीष्म बोले—यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसे ही वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

राष्ट्रे धर्मोत्तरे श्रेष्ठे विदर्भेष्वभवद्द्विजः ।
उञ्छवृत्तिर्ऋषिः कश्चिद्यज्ञे यज्ञं समादधे ॥ ३ ॥

नारदमुनि बोले—धर्मप्रधान श्रेष्ठ विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्तिसे रहनेवाला कोई ब्राह्मण ऋषि था; वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ ॥ ३ ॥

श्यामाकमशनं तत्र सूर्यपत्नी सुवर्चला ।
तिक्तं च विरसं शाकं तपसा स्वादुतां गतम् ॥ ४ ॥

उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सूर्यपर्णी और सुवर्चला शाक, स्वाभाविक तिक्त और रसहीन शाक मिलते थे, तो भी उसके तपःप्रभावसे वे सब स्वादिष्ट हुए थे ॥ ४ ॥

उपगम्य वने पृथ्वीं सर्वभूताविहिंसया ।
अपि मूलफलैरिज्यो यज्ञः स्वर्ग्यः परंतप ॥ ५ ॥

हे शत्रुतापन ! उसने वनके बीच सिद्धिलाभ करके सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये फल-मूलके सहारे स्वर्ग साधन यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ ५ ॥

तस्य भार्या व्रतकृशा शुचिः पुष्करचारिणी ।
यज्ञपत्नीत्वमानीता सत्येनानुविधीयते ।
सा तु शापपरित्रस्ता न स्वभावानुवर्तिनी ॥ ६ ॥

पुष्करचारिणी नामकी उसकी एक साध्वी भार्या थी; वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृशित हुई थी; सत्य नाम पतिको हिंसामय यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी जाती थी । उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्तिनी होती थी ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मयूरजीर्णपर्णानां वस्त्रं तस्याश्च पर्णिनाम् ।
अकामायाः कृतं तत्र यज्ञे होत्रनुमार्गतः ॥ ७ ॥

स्वयं गलित मयूर पांखोंसे उसका वस्त्र विस्तारित था; यज्ञकामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था ॥ ७ ॥

शुक्रस्य पुनराजातिरपध्यानादधर्मवित् ।
तस्मिन्वने समीपस्थो मृगोऽभूत्सहचारिकः ।
वचोभिरब्रवीत्सत्यं त्वया दुष्कृतकं कृतम् ॥ ८ ॥

होताका कार्य शुक्राचार्यके वंशज एक अनाध्यायी, अधर्मीने किया । उस वनमें निकटमेंही एक सत्यवादी मृग रहता था । वह उस सत्य ब्राह्मणके निकट आके बोला—तुमने यह अत्यन्त दुष्कर्म किया है ॥ ८ ॥

यदि मन्त्राङ्गहीनोऽयं यज्ञो भवति वैकृतः ।
मां भोः प्रक्षिप होत्रे त्वं गच्छ स्वर्गमतन्द्रितः ॥ ९ ॥

यदि यह यज्ञ मन्त्र और अङ्गसे हीन हो, तो वह यजमानके लिये दुष्कर्म ही है; इसलिये हे ब्राह्मण ! तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ ॥ ९ ॥

ततस्तु यज्ञे सावित्री साक्षात्तं संन्यमन्त्रयत् ।
निमन्त्रयन्ती प्रत्युक्ता न हन्यां सहवासिनम् ॥ १० ॥

अनन्तर सवितृमण्डलकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त उस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा वचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका वध न कर सकूंगा" ॥ १० ॥

एवमुक्ता निवृत्ता सा प्रविष्टा यज्ञपावकम् ।
किं नु दुश्चरितं यज्ञे दिदृक्षुः सा रसातलम् ॥ ११ ॥

ब्राह्मणसे सावित्री देवी ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई । बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न—त्रुटि है, वा नहीं, उसे देखनेके लिये वे आयी थीं और फिर रसातलमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥

सा तु बद्धाञ्जलिं सत्यमयाचद्धरिणं पुनः ।
सत्येन संपरिष्वज्य संदिष्टो गम्यतामिति ॥ १२ ॥

तब मृगने फिर उस बद्धाञ्जलि उञ्छवृत्ति सत्य ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेकी प्रार्थना की । सत्यऋषिने हरिणको आलिङ्गन करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी ॥ १२ ॥

ततः स हरिणो गत्वा पदान्यष्टौ न्यवर्तत ।
साधु हिंसय मां सत्य हतो यास्यामि सद्गतिम् ॥ १३ ॥

हरिण उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग आगे जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य ! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम विधिपूर्वक मेरी हिंसा करो, मैं यज्ञमें मरके सद्गति पाऊंगा ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पश्य ह्यप्सरसो दिव्या मया दत्तेन चक्षुषा ।
विमानानि विचित्राणि गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥ १४ ॥

मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं । उससे तुम रमणीय अप्सराओंको और महानुभाव गन्धर्वोंको विचित्र विमानोंपर देखो ॥ १४ ॥

ततः सुरुचिरं दृष्ट्वा स्पृहालग्नेन चक्षुषा ।
मृगमालोक्य हिंसायां स्वर्गवासं समर्थयत् ॥ १५ ॥

अनन्तर सत्य संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो, इस ही प्रकार लोभवश नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक अनन्तर उसने स्वर्गाभिलाषी हरिणको देखके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया ॥ १५ ॥

स तु धर्मो मृगो भूत्वा बहुवर्षोषितो वने ।
तस्य निष्कृतिमाधत्त न ह्यसौ यज्ञसंविधिः ॥ १६ ॥

साक्षात् धर्मने किसी कारणसे अनेक वर्षोंतक हरिणका रूप धरके उस वनमें वास किया था। पशु हिंसा कभी यज्ञकी समीचीन विधि नहीं है । धर्मने उस ब्राह्मणका उद्धार करनेका विचार किया ॥ १६ ॥

तस्य तेन तु भावेन मृगहिंसात्मनस्तदा ।
तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्धिंसा न यज्ञिया ॥ १७ ॥

मैं पशुवध करके स्वर्ग लाभ करूंगा, यह सोचकर मृगकी हिंसाके लिये उद्यत उस ब्राह्मणकी महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई; इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हितकारिणी नहीं है ॥ १७॥

ततस्तं भगवान्धर्मो यज्ञं याजयत स्वयम् ।
समाधानं च भार्याया लेभे स तपसा परम् ॥ १८ ॥

अनन्तर भगवान् धर्मने स्वयं उस ऋषिको यज्ञ याजन कराया; ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिलाषिणी पुष्करचारिणी पत्नीके सहित परम समाधानको प्राप्त हुए ॥१८॥

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसा यज्ञेऽसमाहिता ।
सत्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि यो धर्मः सत्यवादिनाम् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥ ९२५७ ॥

अहिंसामय धर्म ही सब फलोंको देनेवाला है, परन्तु हिंसा अधर्म है और अहित करनेवाली भी है । सत्यवादी पुरुष जिस धर्मका आचरण करते हैं, मैं तुम्हारे निकट उस ही सत्य धर्मका विषय वर्णन करूंगा ॥ १९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६४ ॥ ९२५७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २६५ :

युधीष्ठिर उवाच—

कथं भवति पापात्मा कथं धर्मं करोति वा ।
केन निर्वेदमादत्ते मोक्षं वा केन गच्छति ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है ? किस भांति धर्माचरण करता है ? किससे निर्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

विदिताः सर्वधर्मास्ते स्थित्यर्थमनुपृच्छसि ।
शृणु मोक्षं सनिर्वेदं पापं धर्मं च मूलतः ॥ २ ॥

भीष्म बोले— राजन् ! सब धर्म ही तुम्हें विदित हैं; केवल मर्यादाके निमित्त तुम मुझसे प्रश्न करते हो; इसलिये वैराग्यके सहित मोक्ष, पाप और धर्मके विषयको सुनो ॥ २ ॥

विज्ञानार्थं हि पञ्चानामिच्छा पूर्वं प्रवर्तते ।
प्राप्य ताञ्जायते कामो द्वेषो वा भरतर्षभ ॥ ३ ॥

हे भरतकुलतिलक ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषय-पञ्चकको जाननेके लिये मनुष्य पहले इच्छानुसार उसमें प्रवृत्त होता है; उन पांच विषयोंमेंसे एकको प्राप्त करनेपर उसमें काम अथवा द्वेष उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

ततस्तदर्थं यतते कर्म चारभते पुनः ।
इष्टानां रूपगन्धानामभ्यासं च चिकीर्षति ॥ ४ ॥

अनन्तर मनुष्य उस विषयके निमित्त यत्नवान् होकर फिर कर्म आरम्भ करता है, और अभिलषित रूप और गन्धोंको बार बार सेवन करनेकी इच्छा किया करता है ॥ ४ ॥

ततो रागः प्रभवति द्वेषश्च तदनन्तरम् ।
ततो लोभः प्रभवति मोहश्च तदनन्तरम् ॥ ५ ॥

इस कारण उन विषयोंके प्रति क्रम क्रमसे उसमें राग, द्वेष, लोभ और मोहकी उत्पत्ति होती है ॥ ५ ॥

लोभमोहाभिभूतस्य रागद्वेषान्वितस्य च ।
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद्धर्मं करोति च ॥ ६ ॥

जो पुरुष लोभ—मोहमें अभिभूत और राग—द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवेश नहीं करती; वह छलपूर्वक धर्माचरण किया करता है ॥ ६ ॥

व्याजेन चरतो धर्ममर्थव्याजोऽपि रोचते ।
व्याजेन सिध्यमानेषु धनेषु कुरुनन्दन ॥ ७ ॥

वह कपटताचरण पूर्वक धर्मानुष्ठान करता है, और कपतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है । हे कुरुनन्दन ! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे ॥ ७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्रैव कुरुते बुद्धिं ततः पापं चिकीर्षति ।
सुहृद्भिर्वार्यमाणोऽपि पण्डितैश्चापि भारत ॥ ८ ॥

उसहीमें अपनी बुद्धि लगा देता है; फिर पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करनेपर भी पित्रादि द्रोहरूपी केवल पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; आहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोडके सुखी होता है ॥ ८ ॥

उत्तरं न्यायसंबद्धं ब्रवीति विधियोजितम् ।
अधर्मस्त्रिविधस्तस्य वर्धते रागमोहजः ॥ ९ ॥

इस ही प्रकार न्यायानुगत विधिबोधित उत्तर देनेमें प्रयुक्त होता है। हे भारत! वैसे मनुष्यके राग–मोह जनित कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म वर्द्धित हुआ करते हैं ॥ ९ ॥

पापं चिन्तयते चैव प्रब्रवीति करोति च ।
तस्याधर्मप्रवृत्तस्य दोषान्पश्यन्ति साधवः ॥ १० ॥

वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं ॥ १० ॥

एकशीलाश्च मित्रत्वं भजन्ते पापकर्मिणः ।
स नेह सुखमाप्नोति कुत एव परत्र वै ॥ ११ ॥

और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुताबन्धन–मित्रता स्थापित करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोकमेंही सुख लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है ? ॥ ११ ॥

एवं भवति पापात्मा धर्मात्मानं तु मे शृणु ।
यथा कुशलधर्मा स कुशलं प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥

यहांतक जो कुछ कहा, इस प्रकार मनुष्य पापात्मा होता है; अब धर्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो दूसरोंके हितकर कार्योंको धर्म समझ कर वैसा आचरण करता है, वह कल्याण लाभ करता है ॥ १२ ॥

य एतान्प्रज्ञया दोषान्पूर्वमेवानुपश्यति ।
कुशलः सुखदुःखानां साधूंश्चाप्युपसेवते ॥ १३ ॥

जो पहले ही बुद्धिसे रात्रादि दोषोंको अवलोकन करता है, वह सुख–दुःखके विचारमें चतुर होकर साधुओंकी सेवा किया करता है ॥ १३ ॥

तस्य साधुसमाचारादभ्यासाच्चैव वर्धते ।
प्रज्ञा धर्मे च रमते धर्मं चैवोपजीवति ॥ १४ ॥

उसे साधुओंके सदाचार और अभ्यासनिबन्धनसे ज्ञान, बुद्धि तथा धर्ममें रति होती है, और वह धर्मको ही उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करता है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽथ धर्मादवाप्तेषु धनेषु कुरुते मनः ।
तस्यैव सिञ्चते मूलं गुणान्पश्यति यत्र वै ॥ १५ ॥

अनन्तर वह धर्मसे धन प्राप्त करनेमें मन लगाता है और जिसमें सब गुण देखता है, उसहीका मूल सींचा करता है ॥ १५ ॥

धर्मात्मा भवति ह्येवं मित्रं च लभते शुभम् ।
स मित्रधनलाभात्तु प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

इसही प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य धर्मात्मा होता है और साधु मित्र लाभ करता है; वह मित्र और धन लाभ निबन्धनसे इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है ॥ १६ ॥

शब्दे स्पर्शे तथा रूपे रसे गन्धे च भारत ।
प्रभुत्वं लभते जन्तुर्धर्मस्यैतत्फलं विदुः ॥ १७ ॥

हे भारत ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयमें मनुष्य जो संकल्प सिद्धि लाभ करता है, उसे ही पण्डित लोग धर्मका फल कहा करते हैं ॥ १७ ॥

स धर्मस्य फलं लब्ध्वा न तृप्यति युधिष्ठिर ।
अतृप्यमाणो निर्वेदमादत्ते ज्ञानचक्षुषा ॥ १८ ॥

हे युधिष्ठिर ! वैसा मनुष्य धर्मका फल प्राप्त करके हर्षित नहीं होता; वह इससे तृप्त न होकर ज्ञाननेत्रके सहारे वैराग्य लाभ करता है ॥ १८ ॥

प्रज्ञाचक्षुर्यदा कामे दोषमेवानुपश्यति ।
विरज्यते तदा कामान्न च धर्मं विमुञ्चति ॥ १९ ॥

प्रज्ञाचक्षु मनुष्य जिस समय काममें दोष ही देखता है, उस समय उसका चित्त कामसे रहित होता है, परन्तु वह धर्मका परित्याग नहीं करता ॥ १९ ॥

सर्वत्यागे च यतते दृष्ट्वा लोकं क्षयात्मकम् ।
ततो मोक्षाय यतते नानुपायादुपायतः ॥ २० ॥

सब लोकोंको नाशवान् देखके वह सर्वस्वका त्याग करनेका यत्न करता है; अनन्तर वह अयोग्य उपायसे नहीं परंतु योग्य उपायके अनुसार मोक्षके लिये अनुष्ठान करता है ॥२०॥

शनैर्निर्वेदमादत्ते पापं कर्म जहाति च ।
धर्मात्मा चैव भवति मोक्षं च लभते परम् ॥ २१ ॥

धीरे धीरे इस प्रकार वैराग्य लाभ करके पापयुक्त कर्म परित्याग किया करता है । इसही प्रकार मनुष्य धर्मात्मा होता है और परम मोक्षको पाता है ॥ २१ ॥

एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
पापं धर्मं तथा मोक्षं निर्वेदं चैव भारत ॥ २२ ॥

हे तात भारत ! तुमने जो पाप, धर्म, मोक्ष और निर्वेदका विषय मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप कहा ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्माद्धर्मे प्रवर्तेथाः सर्वावस्थं युधिष्ठिर ।
धर्मे स्थितानां कौन्तेय सिद्धिर्भवति शाश्वती ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥ ९२८० ॥

हे युधिष्ठिर ! इसलिये तुम सब अवस्थाओंमें धर्ममें ही प्रवृत्त रहना। हे कौन्तेय ! जो लोग धर्म-पथमें निवास करते हैं, उन लोगोंको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६५ ॥ ९२८० ॥

॥ २६६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

मोक्षः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः ।
तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामि भारत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले- हे पितामह ! आपने कहा है कि उपायके अनुसार मोक्ष होती है, अनुपायके जरिये मोक्ष नहीं होती; परन्तु वह यथायोग्य कौनसा उपाय है ? उसे मैं विधिपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

त्वय्येवैतन्महाप्राज्ञ युक्तं निपुणदर्शनम् ।
यदुपायेन सर्वार्थान्नित्यं मृगयसेऽनघ ॥ २ ॥

भीष्म बोले- हे पापरहित महाप्राज्ञ ! तुम निपुण भावसे सदा जिस उपायके जरिये मोक्षकी खोज किया करते हो, तुममें ही उसका निदर्शन समुचित होता है, अर्थात् मोक्षके उपाय विषयमें निज बुद्धि ही साक्षी देती है ॥ २ ॥

करणे घटस्य या बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सानघ ।
एवं धर्माभ्युपायेषु नान्यद्धर्मेषु कारणम् ॥ ३ ॥

हे अनघ ! घट बनानेके समय जैसी बुद्धि होती है, घट उत्पन्न होने पर वह नहीं रहती अर्थात् साध्य विषयमें चिकीर्षाबुद्धि उत्पन्न होती है; परन्तु सिद्धवस्तु ब्रह्मविषयमें आवरणका अपगम होनेपर ज्ञानमात्र स्थित रहता है; इसलिये मोक्ष धर्म विषयमें प्रकाशकी भांति वस्तु-तत्वके अभिव्यञ्जक शम, दम आदि निवृत्ति धर्ममें दूसरे कोई प्रवृत्ति धर्म कारण नहीं होते। यज्ञ आदि कर्म निष्काम पुरुषोंकी चित्तशुद्धि करके निवृत्तिधर्मके हेतुमात्र हुआ करते हैं ॥३॥

पूर्वे समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम् ।
एकः पन्था हि मोक्षस्य तन्मे विस्तरतः शृणु ॥ ४ ॥

पूर्व-समुद्रगामी पथ कभी पश्चिम समुद्रमें गमन नहीं करता; इसलिये तुम एकमात्र मोक्षके ही मार्गको विस्तारपूर्वक मेरे समीप सुनो ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Public Library, Veda Nidhi, Varanasi. Digitized by eGangotri

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं संकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥ ५ ॥

मुमुक्षु पुरुष क्षमाके जरिये क्रोधको नष्ट करे, संकल्पवर्जित होके कामको त्यागे; और धीर आलस त्यागके सात्विक धर्म भगवद्ध्यान आदिसे निद्राको नष्ट करनेमें समर्थ होवे ॥ ५ ॥

अप्रमादाद्भयं रक्षेच्छ्वासं क्षेत्रज्ञशीलनात् ।
इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥ ६ ॥

सावधानताके जरिये लोकापवाद भयको दूर करे, 'त्वं' पदार्थके अनुशीलनसे चिंतनसे श्वास निरोध करे और धैर्यसे इच्छा, द्वेष और वनिताभिलाष—कामको निवृत्त रखे ॥ ६ ॥

भ्रमं प्रमोहमावर्तमभ्यासाद्विनिवर्तयेत् ।
निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित् ॥ ७ ॥

तत्त्ववित् पुरुष तत्त्वाभ्यासके जरिये भ्रम, संमोह और अनेक कोटिके संशयोंको परित्याग करे और ज्ञान अभ्यासके सहारे निद्रा और प्रतिभा अर्थात् अननुसन्धान और अन्यानुसन्धान परिवर्जित करे ॥ ७ ॥

उपद्रवांस्तथा रोगान्हितजीर्णमिताशनात् ।
लोभं मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् ॥ ८ ॥

दाह आदिसे अनुत्पादक हित, जीर्ण और परिमित भोजन आदिके जरिये श्लेष्म अजीर्ण प्रभृति उपद्रव तथा ज्वर वा अतीसार आदि रोगोंको जय करे; लोभ और मोहका संतोषसे और तत्त्वदर्शन अर्थात् सब विषयोंके अनर्थक रूप दर्शन निबन्धन विषयोंको जय करे ॥ ८ ॥

अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ।
आयत्या च जयेदाशामर्थं सङ्गविवर्जनात् ॥ ९ ॥

करुणासे अधर्म और क्षमा प्रतिपालनके जरिये धर्मको जय करे । उत्तरकालके जरिये भविष्यका विचार करके आशाको जीते और अभिलाष त्यागकर अर्थको जय करनेमें प्रवृत्त होवे ॥ ९ ॥

अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधं योगेन पण्डितः ।
कारुण्येनात्मनो मानं तृष्णां च परितोषतः ॥ १० ॥

विद्वान् पुरुष विषयोंकी अनित्यताके निमित्त स्नेह, वायु निग्रहके जरिये योगाभ्याससे क्षुधा, करुणासे निज अभिमानको और परितोषसे तृष्णाको जीत ॥ १० ॥

उत्थानेन जयेत्तन्द्रीं वितर्कं निश्चयाज्जयेत् ।
मौनेन बहुभाष्यं च शौर्येण च भयं जयेत् ॥ ११ ॥

उद्योगसे आलस्य और वेद—शास्त्रमें विश्वास करके विपरीत तर्कोंको जय करे । मौनावलम्बनसे बहुत बोलना और पराक्रमके जरिये भय परित्याग करे, ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ।
ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः ॥ १२ ॥

बुद्धिसे वचन और मनको स्थिर करे; ज्ञाननेत्र अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थके बोधसे उस बुद्धिको संयत करे। ज्ञान अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थको आत्मबोधके जरिये अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है ऐसे ज्ञानके जरिये संयत करे और बुद्धिवृत्तिको परम चैतन्य प्रकाशके जरिये आत्माकी शान्तिसे नियमित करे, अर्थात् इन्द्रियोंको मनमें, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको 'त्वं' पदार्थमें, त्वं पदार्थको ब्रह्माकार वृत्तिमें विलीन करे ॥ १२ ॥

तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ॥ १३ ॥

इस प्रकार पवित्रता युक्त होकर शान्त भावसे उस वृत्तिको विशुद्ध आत्मामें क्रमसे लीन करके निज रूपमें निवास करे। ऋषि लोग जो पञ्चयोगदोषोंको जानते हैं, उन्हें नष्ट करके प्रशान्त और पवित्र कर्मवाले मनुष्योंको इसे अवश्य जानना चाहिये ॥ १३ ॥

कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ।
परित्यज्य निषेवेत तथेमान्योगसाधनान् ॥ १४ ॥

योगसाधनके लिये यत-वाक्य होके काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, इन पांचों दोषोंको त्यागके योगसाधनोंका सेवन करे- परमात्माकी सेवा करे ॥ १४ ॥

ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ।
शौचमाहारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः ॥ १५ ॥

ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, आहारशुद्धि और इन्द्रिय-संयम- ये योगके साधन हैं ॥ १५ ॥

एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमपहन्ति च ।
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते ॥ १६ ॥

इन सबसे तेजकी वृद्धि तथा पापका नाश होता है। जो उक्त विधिके अनुसार आचरण करता है, उसके सब संकल्प सिद्ध होते हैं और विज्ञानमें प्रवृत्ति हुआ करती है ॥ १६ ॥

धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निनीषेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ १७ ॥

वह पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाला और जितेन्द्रिय मनुष्य काम क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये अभिलाष करे ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ।
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो व्यवस्थितिः ॥ १८ ॥
एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः ।
तथा वाक्कायमनसां नियमः कामतोऽन्यथा ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥ ९२९९ ॥

वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास निबन्धनसे अमूढत्व, वैराग्यसे असङ्गत्व, सन्तोष और क्षमाके जरिये दृढताजनित काम–क्रोधका त्याग, परिपूर्ण कामनाके हेतु अदीनता, दर्प और अहंकार-हीनता, निर्भयत्व निबन्धनसे अनुद्वेग और सदा किसी निर्दिष्ट स्थानमें अवस्थिति, येही मोक्षके मार्ग हैं; ये मार्ग प्रसन्न निर्मल और पवित्र हैं, और कामना वा अकामनासे शरीर, मन तथा वचनके नियमोंको भी मोक्षका मार्ग कहा जाता है । मोक्षसाधनमें प्रवृत्त पुरुषको निष्काम योग अवश्य करना चाहिये ॥ १९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छाछठवां अध्याय समाप्त ॥ २६६ ॥ ९२९९ ॥

: २६७ :

भीष्म उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं देवलस्यासितस्य च ॥ १ ॥

भीष्म बोले– असित देवल और नारदके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं ॥ १ ॥

आसीनं देवलं वृद्धं बुद्ध्वा बुद्धिमतां वरः ।
नारदः परिपप्रच्छ भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ २ ॥

बुद्धिमान् मनुष्योंमें मुख्य वृद्ध देवल मुनिको सुखसे बैठा हुआ जानकर नारद मुनिने जीवोंकी उत्पत्ति और लयका विषय पूछा ॥ २ ॥

कुतः सृष्टमिदं विश्वं ब्रह्मन्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! यह दृश्यमान स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयके समय किसमें जाके लीन होता है ? आप मेरे निकट उसे ही कहिये ॥ ३ ॥

असित उवाच—

येभ्यः सृजति भूतानि कालो भावप्रचोदितः ।
महाभूतानि पञ्चेति तान्याहुर्भूतचिन्तकाः ॥ ४ ॥

असित मुनि बोले– परमात्मा निखिल प्राणियोंकी बुद्धि वासनाओंसे प्रेरित होकर कर्मोद्भवके समय जो आकाश आदिकोंसे जरायुजादि जीवोंको उत्पन्न करता है, भूतचिन्तक मनीषी लोग उन्हें ही पञ्चभूत कहा करते हैं ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेभ्यः सृजति भूतानि काल आत्मप्रचोदितः ।
एतेभ्यो यः परं ब्रूयादसद्ब्रूयादसंशयम् ॥ ५ ॥

अधर्ममें रत, अधर्म त्यागनेकी इच्छा करनेवाले, धर्मारम्भी और धर्ममें रत, कलि, द्वापर, त्रेता तथा सत्य संज्ञक चतुर्युगात्मक काल बुद्धिसे प्रेरित होकर पञ्चमहाभूतोंसे सब जीवोंको उत्पन्न करता है। यह काल, बुद्धि और पञ्चमहाभूत, चैतन्यस्वरूप ईश्वर तथा अचेतन प्रकृति, इन सबसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु है, जो लोग ऐसा कहते हैं, उनके वचन अत्यन्त असत्य हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥

विद्धि नारद पञ्चैताञ्शाश्वतानचलान्ध्रुवान् ।
महतस्तेजसो राशीन्कालषष्ठान्स्वभावतः ॥ ६ ॥

हे नारद ! इन पञ्चमहाभूतोंको नित्य, निश्चल और स्थिर जानो, ये अत्यन्त महत् तेजराशि स्वरूप हैं; काल स्वाभाविक ही इनमें षष्ठरूपसे कहा जाता है ॥ ६ ॥

आपश्चैवान्तरिक्षं च पृथिवी वायुपावकौ ।
असिद्धिः परमेतेभ्यो भूतेभ्यो मुक्तसंशयम् ॥ ७ ॥

जल, आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्नि इन पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कोई पदार्थ नहीं था, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

नोपपत्त्या न वा युक्त्या त्वसद्ब्रूयादसंशयम् ।
वेत्थ तानभिनिर्वृत्तान्षडेते यस्य राशयः ॥ ८ ॥

उपर कहे हुए पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे कोई प्रमाण वा युक्ति अवलम्बन नहीं करते, यह निःसन्दिग्ध है। सब कार्योंके अनुगत उक्त पञ्चभूत और काल जिसके कार्य हैं, उस कारणको भी तुम जानते हो ॥ ८ ॥

पञ्चैव तानि कालश्च भावाभावौ च केवलौ ।
अष्टौ भूतानि भूतानां शाश्वतानि भवाप्ययौ ॥ ९ ॥

पञ्चमहाभूत, काल अर्थात् जीव, भावनापूर्वक संस्कार और अज्ञान ये अष्टभूत अनादि वा अखण्डरूपसे विद्यमान होरहे हैं; ये ही स्थावर जङ्गम सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान है ॥ ९ ॥

अभावाद्भावितेष्वेव तेभ्यश्च प्रभवन्त्यपि ।
विनष्टोऽपि च तान्येव जन्तुर्भवति पञ्चधा ॥ १० ॥

स्थावर जङ्गम सब जीव उक्त अष्टभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन होजाते हैं। उक्त भूतोंको अवलम्बन करके सब जन्तु पांच प्रकार अपने अपने कारणमें विनष्ट हुआ करते हैं ॥१०॥

तस्य भूमिमयो देहः श्रोत्रमाकाशसंभवम् ।
सूर्यश्चक्षुरसुर्वायुरग्न्यस्तु खलु शोणितम् ॥ ११ ॥

जीवोंका शरीर भूमिमय है, कान आकाशमय है, नेत्र अग्निमय है, प्राण वायुमय है और रुधिर जलमय हुआ करता है ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चक्षुषी नासिकाकर्णौ त्वग्जिह्वेति च पञ्चमी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थानां ज्ञानानि कवयो विदुः ॥ १२ ॥

नेत्र, नासिका, कान, त्वचा और पांचवीं जिह्वा ये पांचों इन्द्रियां इन्द्रिय विषय शब्द आदि ज्ञानके द्वारस्वरूप हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहा करते हैं ॥ १२ ॥

दर्शनं श्रवणं घ्राणं स्पर्शनं रसनं तथा ।
उपपत्त्या गुणान्विद्धि पञ्च पञ्चसु पञ्चधा ॥ १३ ॥

देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना, ये पांचों गुण पञ्च इन्द्रियोंमें युक्तिके अनुसार पांच प्रकारसे निवास करते हैं ॥ १३ ॥

रूपं गन्धो रसः स्पर्शः शब्दश्चैवाथ तद्गुणाः ।
इन्द्रियैरुपलभ्यन्ते पञ्चधा पञ्च पञ्चभिः ॥ १४ ॥

रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये पांचों गुण पञ्च इन्द्रियोंके द्वार हैं । पांच प्रकारसे इनकी प्राप्ति हुआ करती है ॥ १४ ॥

रूपं गन्धं रसं स्पर्शं शब्दं चैतांस्तु तद्गुणान् ।
इन्द्रियाणी च बुध्यन्ते क्षेत्रज्ञस्तैस्तु बुध्यते ॥ १५ ॥

इन्द्रियोंके सहारे रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये सब गुण मालूम नहीं होते; परन्तु क्षेत्रज्ञ अर्थात् विज्ञानात्मा इन्द्रियोंके जरिये इन सब गुणोंका ज्ञान किया करता है ॥ १५ ॥

चित्तमिन्द्रियसंघातात्परं तस्मात्परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिः क्षेत्रज्ञो बुद्धितः परः ॥ १६ ॥

शरीर और इन्द्रियोंके संघातसे चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि उत्तम है और बुद्धिसे क्षेत्रज्ञ परम श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

पूर्वं चेतयते जन्तुरिन्द्रियैर्विषयान्पृथक् ।
विचार्य मनसा पश्चादथ बुद्ध्या व्यवस्यति ।
इन्द्रियैरुपलब्धार्थान्सर्वान्यस्त्वध्यवस्यति ॥ १७ ॥

जीव पहले इन्द्रियोंके जरिये सामान्य रीतिसे पृथक् पृथक् विषयोंका ज्ञान करता है; फिर मनसे उन विषयोंका विचार करके बुद्धिसे निश्चय किया करता है। बुद्धियुक्त जीव इन्द्रियोंसे प्राप्त विषयोंका निश्चित अनुभव करता है ॥ १७ ॥

चित्तमिन्द्रियसंघातं मनो बुद्धिं तथाष्टमीम् ।
अष्टौ ज्ञानेन्द्रियाण्याहुरेतान्यध्यात्मचिन्तकाः ॥ १८ ॥

अध्यात्म तत्त्वोंका विचार करनेवाले महर्षि लोग चित्त, श्रोत्रादि पांचों इन्द्रिय, मन और आठवीं बुद्धि, इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं ॥ १८ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पाणिपादं च पायुश्च मेहनं पञ्चमं मुखम् ।
इति संशब्द्यमानानि शृणु कर्मेन्द्रियाण्यपि ॥ १९ ॥

हाथ, पैर, गुदा, मेहन और पांचवां मुख, इन पांचोंको कर्मेन्द्रिय कहा करते हैं, तुम इनका विवरण सुनो ॥ १९ ॥

जल्पनाभ्यवहारार्थं मुखमिन्द्रियमुच्यते ।
गमनेन्द्रियं तथा पादौ कर्मणः करणे करौ ॥ २० ॥

जल्पना और आहार साधनके निमित्त मुखको इन्द्रिय कहा जाता है, दोनों पांव गमनेन्द्रिय हैं, दोनों हाथ कार्य करनेकी इन्द्रियां हैं ॥ २० ॥

पायूपस्थौ विसर्गार्थमिन्द्रिये तुल्यकर्मणी ।
विसर्गे च पुरीषस्य विसर्गे चाभिकामिके ॥ २१ ॥

और गुदा तथा उपस्थ मल, मूत्र और कामिक उत्सर्गके हेतु इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुआ करती हैं । इन दोनोंके त्याग रूप कर्म समान हैं ॥ २१ ॥

बलं षष्ठं षडेतानि वाचा सम्यग्यथागमम् ।
ज्ञानचेष्टेन्द्रियगुणाः सर्वे संशब्दिता मया ॥ २२ ॥

पञ्च इन्द्रियोंके बीच बल षष्ठरूपसे माना जाता है; इस प्रकार ज्ञान, चेष्टा और इन्द्रियोंके सब गुणोंको शास्त्रके अनुसार मैंने अपनी वाणी द्वारा वर्णन किया ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणां स्वकर्मभ्यः श्रमादुपरमो यदा ।
भवतीन्द्रियसंन्यासादथ स्वपिति वै नरः ॥ २३ ॥

जब इन्द्रियां श्रमके कारण निज कर्मोंसे विरक्त होती हैं, उस समय इन्द्रियोंके सम्यक् रूपसे परित्याग निबन्धनसे मनुष्य निद्रित हुआ करता है ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणां व्युपरमे मनोऽनुपरतं यदि ।
सेवते विषयानेव तद्विद्यात्स्वप्नदर्शनम् ॥ २४ ॥

इन्द्रियोंके उपरत होनेपर भी यदि मन शान्त न होकर विषयोंको सेवन करे, तो जानना चाहिये, कि उसे ही स्वप्न दर्शन कहा जाता है ॥ २४ ॥

सात्त्विकाश्चैव ये भावास्तथा राजसतामसाः ।
कर्मयुक्तान्प्रशंसन्ति सात्त्विकानितरांस्तथा ॥ २५ ॥

जब सात्त्विक, राजस और तामस भाव भोगयुक्त कर्मोंसे संयुक्त होते हैं, तब उन सात्त्विक आदि भावोंकी लोग प्रशंसा करते हैं ॥ २५ ॥

आनन्दः कर्मणां सिद्धिः प्रतिपत्तिः परा गतिः ।
सात्त्विकस्य निमित्तानि भावान्संश्रयते स्मृतिः ॥ २६ ॥

आनन्द, ऐश्वर्य, ज्ञान और वैराग्य, ये सब सात्विकी वृत्ति हैं; सत्त्वगुण अवलम्बन करनेवाले पुरुषोंकी स्मृत वासना निमित्तीभूत उन आनन्द आदि भावोंको स्वप्न समयमें भी अवलम्बन करती है, अर्थात् सात्त्विक पुरुष जाग्रद्वासनाके हेतुभूत आनन्द आदिको स्वप्नकालमें भी स्मरण किया करता है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जन्तुष्वेकतमेष्वेवं भावा ये विधिमास्थिताः ।
भावयोरीप्सितं नित्यं प्रत्यक्षगमनं द्वयोः ॥ २७ ॥

कर्म गतिकी अनुसारिणी वासना सात्त्विक, राजसिक और तामसिक जीवोंके बीच जो कोई जीव जाग्रत् अवस्थामें जिस भावसे संश्रित रहते हैं, स्वप्नकालमें भी उस ही भावको स्मरण करा देती है, अर्थात् जाग्रत् अवस्थामें किये हुए कर्मोंके संस्कारजनित वासनाके प्रभावसे स्वप्नकालमें भी उक्त सब भाव आलोचित होते हैं; इसलिये जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थामें ही तुल्य भाव हैं परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें मनके अभावसे समस्त कल्पनाका अभाव होता है, इससे उस अपुनरावृत्ति स्वभावनित्य सुषुप्तिको ही मुक्ति कहा जाता है ॥ २७ ॥

इन्द्रियाणि च भावाश्च गुणाः सप्तदश स्मृताः ।
तेषामष्टादशो देही यः शरीरे स शाश्वतः ॥ २८ ॥

पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, बलात्मक प्राण, चित्त, मन, बुद्धि और सत्त्व, रज, तमोगुण, इन सत्रह गुणोंको अवलम्बन करके इनका अधिष्ठाता देही जो अठारहवां है– वह भोक्ता जीव शरीरमें निवास करता है; वह सनातन माना जाता है ॥ २८ ॥

अथ वा सशरीरास्ते गुणाः सर्वे शरीरिणाम् ।
संश्रितास्तद्वियोगे हि सशरीरा न सन्ति ते ॥ २९ ॥

अथवा शरीरधारियोंके ऊपर कहे हुए सब गुण शरीरके सहित संश्रित होते हैं; जीवका शरीरसे वियोग होनेपर वे शरीरयुक्त नहीं रहते; ॥ २९ ॥

अथ वा संनिपातोऽयं शरीरं पाञ्चभौतिकम् ।
एकश्च दश चाष्टौ च गुणाः सह शरीरिणाम् ।
ऊष्मणा सह विंशो वा संघातः पाञ्चभौतिकः ॥ ३० ॥

पक्षान्तरसे यह पाञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंकी समष्टिमात्र है; इसमें एकमात्र अनुभव और भोक्ता शरीरके सहित पूर्वोक्त अठारह गुण निवास करते हैं; जठरानलके सहित उक्त तत्त्वोंकी गणना करनेपर ये बीस होकर पाञ्चभौतिक शरीरके आश्रित रहते हैं ॥ ३० ॥

महान्संधारयत्येतच्छरीरं वायुना सह ।
तस्यास्य भावयुक्तस्य निमित्तं देहभेदने ॥ ३१ ॥

इन बीस गुणोंके अतिरिक्त इक्कीसवां कोई महान् पदार्थ तत्त्व प्राणके सहित इस शरीरको धारण करता है और इस उपकरण मात्र वायुके प्रभावसे शरीरका नाश हुआ करता है। जैसे घटनाशके विषयमें मुद्गर निमित्तमात्र है, पुरुष ही घटभेद किया करता है, वैसेही देह धारण वा देहनाशमें वायु निमित्तमात्र है, महान् पदार्थ ही उसका कर्तृपदवाच्य है ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथैवोत्पद्यते किंचित्पञ्चत्वं गच्छते तथा ।
पुण्यपापविनाशान्ते पुण्यपापसमीरितम् ।
देहं विशति कालेन ततोऽयं कर्मसंभवम् ॥ ३२ ॥

जैसे घट आदि बाह्य पदार्थ उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर विनष्ट होते हैं, वैसेही शरीर पुण्य-पापोंके निःशेष होनेपर पञ्चत्वको प्राप्त होता है । कालक्रमसे फिर सञ्चित पुण्य-पापके जरिये प्रेरित होकर जीव कर्मसम्भव दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है ॥ ३२ ॥

हित्वा हित्वा ह्ययं प्रैति देहादेहं कृताश्रयः ।
कालसंचोदितः क्षेत्री विशीर्णाद्वा गृहाद्गृहम् ॥ ३३ ॥

जैसे मनुष्य शीर्ण गृहसे गृहान्तरमें गमन करता है, वैसेही जीव काल प्रेरित होकर अविद्या, काम और कर्मके जरिये देहान्तर सिद्ध करता हुआ एक शरीरको छोडके दूसरा शरीर धारण किया करता है ॥ ३३ ॥

तत्र नैवानुतप्यन्ते प्राज्ञा निश्चितनिश्चयाः ।
कृपणास्त्वनुतप्यन्ते जनाः संबन्धिमानिनः ॥ ३४ ॥

कृतनिश्चय बुद्धिमान् लोग आत्मा शरीरसे भिन्न, असङ्ग और अविनाशी है यह जानकर देह-सम्बन्धी मरण आदिके विषयमें शोक नहीं करते; देह और पुत्रादिकोंके सहित आत्माका सम्बन्ध न रहनेपर भी भ्रमवशसे सम्बन्ध देखनेवाले मूर्ख लोग मरण आदिके कारण शोक किया करते हैं ॥ ३४ ॥

न ह्ययं कस्यचित्कश्चिन्नास्य कश्चन विद्यते ।
भवत्येको ह्ययं नित्यं शरीरे सुखदुःखभाक् ॥ ३५ ॥

यह जीव किसीका भी नहीं है, और इसका भी कोई नहीं है; जीव सदा शरीरमें सुख–दुःख भोगते हुए अकेला ही निवास करता है ॥ ३५ ॥

नैव संजायते जन्तुर्न च जातु विपद्यते ।
याति देहमयं भुक्त्वा कदाचित्परमां गतिम् ॥ ३६ ॥

जीवकी जन्म–मृत्यु नहीं होती; काल क्रमसे तत्वज्ञानके जरिये कर्म-फल नष्ट होनेपर देह परित्याग करनेसे मोक्षप्राप्ति हुआ करती है ॥ ३६ ॥

पुण्यपापमयं देहं क्षपयन्कर्मसंचयात् ।
क्षीणदेहः पुनर्देही ब्रह्मत्वमुपगच्छति ॥ ३७ ॥

जीव पुण्य पापमय शरीर व्यतीत करते हुए, इस शरीरको क्षीण करता है; कर्मक्षय होनेसे शरीर नष्ट होनेपर फिर वह मुक्त होकर ब्रह्मभाव लाभ करता है ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुण्यपापक्षयार्थं च सांख्यं ज्ञानं विधीयते ।
तत्क्षये ह्यस्य पश्यन्ति ब्रह्मभावे परां गतिम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥ ९३३७ ॥

पुण्यपाप नाशके निमित्त सांख्य ज्ञान विहित हुआ करता है; इसलिये पुण्य–पाप नष्ट होनेपर पण्डित लोग जीवकी ब्रह्मभावसे परमगति अवलोकन करते हैं ॥ ३८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सरसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६७ ॥ ९३७३ ॥

: २६८ :

युधिष्ठिर उवाच—

भ्रातरः पितरः पुत्रा ज्ञातयः सुहृदस्तथा ।
अर्थहेतोर्हताः क्रूरैरस्माभिः पापबुद्धिभिः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! हम अत्यन्त पापशील और निष्ठुर हैं; क्योंकि धनके लिये भ्राता, पिता, पुत्र, पौत्र, स्वजन और सुहृदोंका नाश किया है ॥ १ ॥

येयमर्थोद्भवा तृष्णा कथमेतां पितामह ।
निवर्तयेम पापं हि तृष्णया कारिता वयम् ॥ २ ॥

अर्थसे जो तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है, हमने उसके वशमें होकर पाप कार्य किया है; इस समय उस तृष्णाको किस प्रकार निवृत्त करें ? ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गीतं विदेहराजेन माण्डव्यायानुपृच्छते ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– प्राचीन लोग इस विषयमें जिज्ञासु माण्डव्यके निकट विदेहराजके कहे हुए इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ ३ ॥

सुसुखं बत जीवामि यस्य मे नास्ति किंचन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन ॥ ४ ॥

विदेहराजने कहा था, इस जगत्में मेरा कुछ भी नहीं है, इसीसे मैं परम सुखसे जीवन व्यतीत करता हूं; सारी मिथिला नगरीके भस्म होनेपर भी मेरा कुछ न जलेगा ॥ ४ ॥

अर्थाः खलु समृद्धा हि बाढं दुःखं विजानताम् ।
असमृद्धास्त्वपि सदा मोहयन्त्यविचक्षणान् ॥ ५ ॥

ब्रह्मलोक पर्यन्त सब समृद्ध विषय विवेकियोंको अत्यन्तही दुःख स्वरूप हैं, समृद्धिशून्यता सदा अज्ञानी पुरुषोंको मोहित किया करती है ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ६ ॥

इस लोकमें जो कुछ काम जनित सुख है, अथवा जो कुछ दिव्य महत् सुख देखा जाता है, वह तृष्णाक्षयजनित सुखके सोलहवे अंशका एक अंश भी नहीं है ॥ ६ ॥

यथैव शृङ्गं गोः काले वर्धमानस्य वर्धते ।
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते ॥ ७ ॥

कालक्रमसें वर्द्धित गऊकी सींग जैसे वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसेही बढते हुए वित्तके सहित तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है ॥ ७ ॥

किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम् ।
तदेव परितापाय नाशे संपद्यते पुनः ॥ ८ ॥

जिस समय जिस किसी वस्तुमें ममता उत्पन्न होती है, उसका नाश परितापका हेतु हुआ करता है ॥ ८ ॥

न कामाननुरुध्येत दुःखं कामेषु वै रतिः ।
प्राप्यार्थमुपयुञ्जीत धर्मे कामं विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

कामनाओंका अनुरोध नहीं करना चाहिये; काममें रति होनी ही दुःखकी मूल है; अर्थ प्राप्त होनेपर उसे धर्ममें उपयुक्त करना उचित है, और कामना उपस्थित होनेपर उसे परित्याग करना चाहिये ॥ ९ ॥

विद्वान्सर्वेषु भूतेषु व्याघ्रमांसोपमो भवेत् ।
कृतकृत्यो विशुद्धात्मा सर्वं त्यजति वै सह ॥ १० ॥

विद्वान् पुरुष सब भूतोंमें अपने सहित समान उपमा धारण करें और कृतकृत्य तथा शुद्धचित्त होकर व्याघ्रमांसके समान सर्वसङ्ग परित्याग करनेमें यत्नवान् हो ॥ १० ॥

उभे सत्यानृते त्यक्त्वा शोकानन्दौ प्रियाप्रिये ।
भयाभये च संत्यज्य संप्रशान्तो निरामयः ॥ ११ ॥

वह सत्य–मिथ्या, शोक–हर्ष, प्रिय–अप्रिय, भय–अभय आदिका परित्याग करके प्रशान्त तथा निरामय होवे ॥ ११ ॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ १२ ॥

दुर्मति पुरुषोंसे जो अत्यन्त दुस्त्यज है, पुरुषके जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती और जो प्राणियोंकी प्राणान्तिक रोगरूपी है, उस तृष्णाको जो परित्याग करता है, वही सुखभागी होता है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चारित्रमात्मनः पश्यंश्चन्द्रशुद्धमनामयम् ।
धर्मात्मा लभते कीर्तिं प्रेत्य चेह यथासुखम् ॥ १३ ॥

धर्मात्मा पुरुष निज चरित्रको कलंकरहित चन्द्रमाकी भांति निरामय, उज्ज्वल देखके इस लोक और परलोकमें परम सुखसे कीर्त्ति लाभ करता है ॥ १३ ॥

राज्ञस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतिमानभवद्द्विजः ।
पूजयित्वा च तद्वाक्यं माण्डव्यो मोक्षमाश्रितः ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥ ९३५१ ॥

द्विजश्रेष्ठ माण्डव्य विदेहराजके ऊपर कहे हुए वचनको सुनके प्रसन्न हुए और उनके वचनका सम्मान करके उन्होंने मोक्षपथ अवलम्बन किया ॥ १४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ २६८ ॥ ९३५१ ॥

: २६९ :

युधिष्ठिर उवाच—

किंशीलः किंसमाचारः किंविद्यः किंपरायणः ।
प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— मनुष्य किस प्रकारके सत्स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा ज्ञान और किस कर्मका अवलम्बन करनेसे प्रकृतिसे परे जो ब्रह्मका अविनाशी परमधाम है उसे प्राप्त कर सकता है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

मोक्षधर्मेषु निरतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्परं प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले— मोक्षधर्ममें रत, पथ्य, परिमित और पवित्र अन्नादि भोजन करनेवाला तथा जितेन्द्रिय मनुष्य निश्चल निर्विशेष परमधाम पाता है ॥ २ ॥

स्वगृहादभिनिःसृत्य लाभालाभे समो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ३ ॥

विवेकी पुरुष निज गृहसे निकलके लाभ-हानिमें राग-द्वेषसे रहित और मननशील होकर उपस्थित काम्य वस्तुओंमें निरपेक्ष होते हुए प्रव्रज्याश्रम अवलम्बन करे ॥ ३ ॥

न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेदपि ।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत्क्वचित् ॥ ४ ॥

नेत्र, मन और वचनसे किसीको भी दूषित न करे, तथा किसीके प्रत्यक्ष वा परोक्ष दोषोंको किसीसे न कहे ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतिश्चरेत् ।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ५ ॥

सब प्राणियोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करे; सबके प्रति मित्रभाव रखकर विचरे; यह मनुष्य जीवन पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे ॥ ५ ॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नाभिमन्येत्कथंचन ।
क्रोध्यमानः प्रियं ब्रूयादाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥ ६ ॥

लोकनिन्दाको सहन करे; किसीको उद्देश्य करके अहङ्कार प्रकाश न करे; लोग उसके विषयमें आक्रोश प्रकाश करें, तो वह उन लोगोंसे प्रिय वचन कहे और क्रोधित होनेपर भी अनुकूल वचन कहे ॥ ६ ॥

प्रदक्षिणं प्रसव्यं च ग्राममध्ये न चाचरेत् ।
भैक्षचर्यामनापन्नो न गच्छेत्पूर्वकेतितः ॥ ७ ॥

जनसमाजमें दायें–बायें न करे,– किसीके प्रति अनुकूल वा प्रतिकूल आचरण न करे; भिक्षा-वृत्तिको छोडकर पहलेसे निमन्त्रित होकर किसीके गृहपर भोजन ग्रहण न करे ॥ ७ ॥

अवकीर्णः सुगुप्तश्च न वाचा ह्यप्रियं वदेत् ।
मृदुः स्यादप्रतिक्रूरो विस्रब्धः स्यादरोषणः ॥ ८ ॥

मूढ पुरुषोंके धूलि फेंकने और धिक्कार देने पर भी वह चपलतारहित और निज धर्ममें निष्ठावान् होके उन्हें वचनमात्रसे भी अप्रिय वाक्य न कहे; वह दयावान् होवे और जिघांसु लोगोंके विषयमें क्रूरता न करे; निर्भय और आत्मश्लाघासे रहित हो अर्थात् 'मैं धन्य हूं' इस प्रकार अपनी बडाई न करे ॥ ८ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीते पात्रसंचारे भिक्षां लिप्सेत वै मुनिः ॥ ९ ॥

मौनव्रत अवलम्बी संन्यासी जब देखे कि गृहस्थोंके गृह धूंएसे रहित, मुसलशब्दवर्जित, अग्नि-शून्य हुए हैं, गृहस्थ लोग भोजन कर चुके हैं, और हाथमें परिवेषणपात्र ग्रहण करनेवाले पुरुषोंका आना जाना बन्द हुआ है, उस समय भिक्षा पानेकी अभिलाष करे ॥ ९ ॥

अनुयात्रिकमर्थस्य मात्रालाभेष्वनाहतः ।
अलाभे न विहन्येत लाभश्चैनं न हर्षयेत् ॥ १० ॥

उदरपूर्त्ति करके भोजन लाभमें अनादर प्रदर्शित कर प्राण धारणके लिये जो कुछ भोज्य वस्तु आवश्यक हों, वही भोजन करे; यदि भिक्षा न मिले तो उससे दुःखका अनुभव न करे और प्राप्त होनेपर भी हर्षित न होवे ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुञ्जीताभिपूजितः ।
अभिपूजितलाभं हि जुगुप्सेतैव तादृशः ॥ ११ ॥

सबके योग्य स्रक्, चन्दन आदि साधारण लाभके लिये उत्सुक न होवे और अत्यन्त पूजित होके भी वहां भोजन न करे; क्यों कि सम्मानके सहित अन्नादि लाभकी वैसे मुमुक्ष पुरुष निन्दा किया करते हैं ॥ ११ ॥

न चान्नदोषान्निन्देत न गुणानभिपूजयेत् ।
शय्यासने विविक्ते च नित्यमेवाभिपूजयेत् ॥ १२ ॥

भिक्षामें मिले अन्नके भूसी आदि दोषोंकी घोषणा करके उनकी निन्दा न करे और किसी गुणके रहनेपर भी उसकी प्रशंसा न करे; निर्जन स्थानमें सोने और बैठनेकी सदा अभिलाष करे; ॥ १२ ॥

शून्यागारं वृक्षमूलमरण्यमथ वा गुहाम् ।
अज्ञातचर्यां गत्वान्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत् ॥ १३ ॥

सूने स्थान, वृक्षके मूल, वन अथवा गुफा, अथवा अन्य गुप्त स्थान—इन सब स्थानोंके बीच दूसरेकी अजानकारीमें गमन करके परमात्मचिन्तन करे ॥ १३ ॥

अनुरोधविरोधाभ्यां समः स्यादचलो ध्रुवः ।
सुकृतं दुष्कृतं चोभे नानुरुध्येत कर्मणि ॥ १४ ॥

अचल अर्थात् उत्क्रान्ति गतिके जरिये गतिशून्य तथा कूटस्थ वा कूटकी भांति निर्विकार भावसे निवास करके योगके अनुरोध और सङ्ग त्याग विषयमें समदर्शी होवे; दया, द्वेष आदिके जरिये सुकृत वा दुष्कृत दोनोंमेंसे किसीकी भी कामना न करे ॥ १४ ॥

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विवित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान्वेगान्विनयेद्धीर तपस्वी निन्दा चास्य हृदयं नोपहन्यात् ॥ १५ ॥

संन्यासी तपस्वी होकर वचन, मन, क्रोध, जाननेकी इच्छा, उदर और उपस्थके वेग, इत्यादि इन सब वेगोंको और इन्हें वशमें रखे; लोकनिन्दा उसके हृदयको दुःखित नहीं कर सकती ॥१५॥

मध्यस्थ एव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः ।
एतत्पवित्रं परमं परिव्राजक आश्रमे ॥ १६ ॥

प्रशंसा और निन्दाके मध्यवर्त्ती वा समदर्शी होकर निवास करना परिव्राजक संन्यास आश्रमका परम पवित्र पथ है ॥ १६ ॥

महात्मा सुव्रतो दान्तः सर्वत्रैवानपाश्रितः ।
अपूर्वचारकः सौम्यो अनिकेतः समाहितः ॥ १७ ॥

महानुभाव परिव्राजक सब भांतिसे इन्द्रियोंको दमन कर और सबका सङ्ग परित्याग करके, पहले कहे आश्रमके निवासस्थानमें विचरे और आप्तोंके सहित वार्तालाप न करके सबके प्रियदर्शन होकर गृहवासको त्यागके ध्याननिष्ठ होवें ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित् ।
अज्ञातलिप्सां लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत् ॥ १८ ॥

वानप्रस्थ और गृहस्थोंके साथ कभी सम्बन्ध नहीं रखे; अपनी इच्छा न बताकर जो कुछ मिले, उससे तृप्त होवे; इस ही प्रकार अभीष्ट भिक्षा मिलनेपर कभी हर्षित न होवे ॥ १८ ॥

विजानतां मोक्ष एष श्रमः स्यादविजानताम् ।
मोक्षयानमिदं कृत्स्नं विदुषां हारितोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥

ज्ञानियोंके निमित्त यही मोक्षधर्म है और अज्ञानियोंका इस मार्गमें पदार्पण करना परिश्रममात्र है; हारित मुनिने विद्वानोंके लिये यह सब मोक्षसाधक धर्म विषयको विमान रूप कहा है ॥ १९ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यः प्रव्रजेद्गृहात् ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानन्त्याय कल्पते ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥ ९३७१ ॥

जो पुरुष सब भूतोंको अभय दान करता हुआ गृहसे निकलकर सन्यासधर्म ग्रहण करता है, वह तेजोमय लोकोंको और अनन्त परब्रह्मपदको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २६९ ॥ ९३७१ ॥

: २७० :

युधिष्ठिर उवाच—

धन्या धन्या इति जनाः सर्वेऽस्मान्प्रवदन्त्युत ।
न दुःखिततरः कश्चित्पुमानस्माभिरस्ति ह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! सब लोग हमें धन्य धन्य कहा करते हैं, परन्तु हमारे समान दुःखित पुरुष इस लोकमें कोई भी नहीं है ॥ १ ॥

लोकसंभावितैर्दुःखं यत्प्राप्तं कुरुसत्तम ।
प्राप्य जातिं मनुष्येषु देवैरपि पितामह ॥ २ ॥

हे कुरुसत्तम ! हम लोग धर्म आदि देवताओंसे मनुष्य जन्म पाके और लोकमें सम्मानित होके भी दुःखभागी हुए हैं ॥ २ ॥

कदा वयं करिष्यामः संन्यासं दुःखसंज्ञकम् ।
दुःखमेतच्छरीराणां धारणं कुरुसत्तम ॥ ३ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! उस दुःख संज्ञक संन्यासधर्मको हम कब ग्रहण करेंगे ? इस संसारमें शरीरोंका धारण करनाही हमें दुःखकर लगता है ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विमुक्ताः सप्तदशभिर्हेतुभूतैश्च पञ्चभिः ।
इन्द्रियार्थैर्गुणैश्चैव अष्टाभिः प्रपितामह ॥ ४ ॥

हे पितामह ! संशितव्रती मुनि लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियों—इन सत्रह तत्त्वोंसे विमुक्त हैं; मुक्तिविरोधी, संसारवर्द्धक काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न, इन पांचों योग दोषोंसे रहित और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रिय विषय तथा सत्व, रज और तम, इन तीन गुण और पांच भूतोंसहित अविद्या, अहंकार और कर्म इन आठ तत्वोंसे रहित होते हैं ॥ ४ ॥

न गच्छन्ति पुनर्भावं मुनयः संशितव्रताः ।
कदा वयं गमिष्यामो राज्यं हित्वा परंतप ॥ ५ ॥

इन सबसे मुक्त व्रतधारी मुनि पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करते । हे परन्तप ! वैसेही हम राज्य परित्याग करके कब संन्यासधर्म अवलम्बन करके दुःख मोचन करेंगे ? ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच—

नास्त्यनन्तं महाराज सर्वं संख्यानगोचरम् ।
पुनर्भावोऽपि संख्यातो नास्ति किंचिदिहाचलम् ॥ ६ ॥

भीष्म बोले—हे महाराज ! दुःख अनन्त नहीं है, दुःखोंकी नाशक मोक्ष अवश्य है; इस संसारमें सब विषयोंकाही परिच्छेद है, पुनर्जन्म भी विनाशी करके प्रसिद्ध है, जगत्में कुछ भी अचल नहीं है; इसलिये राज्य, ऐश्वर्य आदिका अवश्यही नाश होगा ॥ ६ ॥

न चापि गम्यते राजन्नैष दोषः प्रसङ्गतः ।
उद्योगादेव धर्मज्ञ कालेनैव गमिष्यथ ॥ ७ ॥

हे राजन् ! राज्य, ऐश्वर्य प्रभृतिको मोक्षका प्रतिबन्ध मत समझो । हे धर्मज्ञ ! इसलिये ऐश्वर्यादिमें आसक्त रहनेपर भी शमदम आदि साधनोंके जरिये कालक्रमसे मोक्ष लाभ करोगे ॥७॥

ईशोऽयं सततं देही नृपते पुण्यपापयोः ।
तत एव समुत्थेन तमसा रुध्यतेऽपि च ॥ ८ ॥

हे नरनाथ ! यह जीव सदा सुख-दुःखका ईश्वर नहीं है, क्योंकि उस सुख—दुःखसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषमय अज्ञानसेही जीव स्वयं आवृत हुआ करता है ॥ ८ ॥

यथाञ्जनमयो वायुः पुनर्मनःशिलं रजः ।
अनुप्रविश्य तद्वर्णो दृश्यते रञ्जयन्दिशः ॥ ९ ॥

जैसे अञ्जनमय वायु मनःशिला सम्बन्धीय लाल और पीले वर्णके रजमें प्रवेश करके उसके समान रूप धारण करके सब दिशाओंको रंजित करता हुआ लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथा कर्मफलैर्देही रञ्जितस्तमसावृतः ।
विवर्णो वर्णमाश्रित्य देहेषु परिवर्तते ॥ १० ॥

वैसेही अज्ञानसे छिपे हुए अर्थात् अविद्या उपाधियुक्त जीव स्वयं विवर्ण होके भी अर्थात् रागादिहीनतानिबन्धन दोषस्पर्शी न होके भी देह सम्बन्धके कारण देहधर्म गौरत्व, काणत्व, खञ्जत्व, सुखित्व और दुःखित्व आदि कर्मफलोंके जरिये रञ्जित है, इसहीसे वर्णवान् होकर देहसमूहमें भ्रमण किया करता है ॥ १० ॥

ज्ञानेन हि यदा जन्तुरज्ञानप्रभवं तमः ।
व्यपोहति तदा ब्रह्म प्रकाशेत सनातनम् ॥ ११ ॥

जब जीव अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको ज्ञानसे दूर करता है, उस समय सत्स्वरूप एकमात्र ब्रह्म प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥

अयत्नसाध्यं मुनयो वदन्ति ये चापि मुक्तास्त उपासितव्याः ।
त्वया च लोकेन च सामरेण तस्मान्न शाम्यन्ति महर्षिसंघाः ॥ १२ ॥

मुनि लोग उस परब्रह्मको अयत्नसाध्य अर्थात् कर्मसे प्राप्त होनेकी उपाय रहनेपर उसमें अनित्यत्व संघटित होता है; क्योंकि जो कर्मज है, वही उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य और विकार्य हुआ करता है । जिसमें विद्वानोंका अनुभव ही प्रमाण है, उसही परब्रह्मकी उपासना करनी देवताओंकी भांति तुम्हें अवश्य योग्य है; इसही लिये महर्षि लोग ब्रह्मोपासनासे विरत नहीं होते । उद्योगी पुरुषोंको अवश्य ही ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है, इससे तुम भी उद्योगी बनो ॥१२॥

अस्मिन्नर्थे पुरा गीतं शृणुष्वैकमना नृप ।
यथा दैत्येन वृत्रेण भ्रष्टैश्वर्येण चेष्टितम् ॥ १३ ॥

हे राजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास वर्णित है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो । पहले समयमें वृत्रासुर देवताओंसे पराजित होकर ऐश्वर्यभ्रष्ट हुआ था ॥ १३ ॥

निर्जितेनासहायेन हृतराज्येन भारत ।
अशोचता शत्रुमध्ये बुद्धिमास्थाय केवलाम् ॥ १४ ॥

वह सहायक रहित हुआ था; देवताओंने उसका राज्य हरण किया था; तो भी अकेलेही शत्रुव्यूहमें स्थितही नैष्ठिकी बुद्धि अवलम्बन करके शोकरहित अन्तःकरणसे उसने जिस प्रकार चेष्टा की थी, उसीका इसमें वर्णन है ॥ १४ ॥

भ्रष्टैश्वर्यं पुरा वृत्रमुशना वाक्यमब्रवीत् ।
कच्चित्पराजितस्याद्य न व्यथा तेऽस्ति दानव ॥ १५ ॥

हे भारत ! पहिले समयमें शुक्राचार्यने ऐश्वर्यभ्रष्ट होनेपर वृत्रासुरसे यह वचन कहा था कि, हे दानव ! तुम इस समय पराजित हुए हो, तौभी तुम्हारे अन्तःकरणमें कुछ दुःख नहीं है, इसका क्या कारण है ? ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वृत्र उवाच—

सत्येन तपसा चैव विदित्वा संक्षयं ह्यहम् ।
न शोचामि न हृष्यामि भूतानामागतिं गतिम् ॥ १६ ॥

वृत्रासुर बोला— मैं अबाधित सत्य वचन और ध्यान मननकी आलोचनासे जीवोंकी सांसारिक गति और मुक्तिके विषयको निःसंशयरूपसे जान कर शोक वा हर्षमें नहीं डूबता ॥ १६ ॥

कालसंचोदिता जीवा मज्जन्ति नरकेऽवशाः ।
परिदृष्टानि सर्वाणि दिव्यान्याहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

जीव पुण्य वा पापके धर्म लक्षण कालके जरिये प्रेरित होते हैं; कोई कोई अवश होके नरकमें डूबते हैं; कोई कोई स्वर्गमें गमन किया करते हैं; मनीषी लोग ऐसा कहा करते हैं, कि वे समस्त जीव इसी प्रकार देखे जाते हैं ॥ १७ ॥

क्षपयित्वा तु तं कालं गणितं कालचोदिताः ।
सावशेषेण कालेन संभवन्ति पुनः पुनः ॥ १८ ॥

वे कालप्रेरित जीव नरक वा स्वर्गमें परिमित समय बिताकर फिर भोगनेसे बचे हुए कर्मसहित इस संसारमें बार बार जन्म लेते हैं ॥ १८ ॥

तिर्यग्योनिसहस्राणि गत्वा नरकमेव च ।
निर्गच्छन्त्यवशा जीवाः कालबन्धनबन्धनाः ॥ १९ ॥

कालपाशमें बन्धे हुए जीवसमूह अवश होकर सहस्रों तिर्यक् योनि लाभ और नरकमें गमन करके बाहिर होते हैं ॥ १९ ॥

एवं संसरमाणानि जीवान्यहमदृष्टवान् ।
यथा कर्म तथा लाभ इति शास्त्रनिदर्शनम् ॥ २० ॥

मैं अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त होकर जीवोंकी इस ही प्रकार इस संसारमें गतागतिके विषयको जानता हूं, और जिसको जैसा कर्म है, उसे फल लाभ भी उसहीके अनुरूप हुआ करता है; इस शास्त्रनिदर्शनको भी मानता हूं ॥ २० ॥

तिर्यग्गच्छन्ति नरकं मानुष्यं दैवमेव च ।
सुखदुःखे प्रियद्वेष्ये चरित्वा पूर्वमेव च ॥ २१ ॥

जीव पहिले किये हुए प्रिय—अप्रिय, सुख और दुःखके आचरणसे कोई तिर्यग् योनी पाते हैं, कोई नरकमें गमन करते हैं, कोई मनुष्य जीवन प्राप्त किया करते हैं, कोई देव शरीर धारण करते हैं ॥ २१ ॥

कृतान्तविधिसंयुक्तं सर्वलोकः प्रपद्यते ।
गतं गच्छन्ति चाध्वानं सर्वभूतानि सर्वदा ॥ २२ ॥

सब लोक ही कालकृत् नियममें निबद्ध होकर पूर्वोक्त गतियोंको प्राप्त हुआ करते हैं, जीवसमूह सदा चले हुए जन्म और मृत्युके मार्गपर ही घूम रहे हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Kmarswami Vidyapeeth (Prayag) . Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

कालसंख्यानसंख्यातं सृष्टिस्थितिपरायणम् ।
तं भाषमाणं भगवानुशना प्रत्यभाषत ।
भीमान्दुष्टप्रलापांस्त्वं तात कस्मात्प्रभाषसे ॥ २३ ॥

भीष्म बोले— भगवान् शुक्रने इसही प्रकार काल संख्याके अनुसार गणित सृष्टि और स्थिति विषयके कहनेवाले उस वृत्रको असुर योनिमें जन्म लेने पर भी उसे इस प्रकार ज्ञानवान् समझके आश्चर्य किया और उसके बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये बोले, हे तात ! तुम शक्तिमान् हो, इसलिये किस निमित्त यह सब अनर्थक वचन कह रहे हो ? ॥ २३ ॥

वृत्र उवाच—

प्रत्यक्षमेतद्भवतस्तथान्येषां मनीषिणाम् ।
मया यज्जयलुब्धेन पुरा तप्तं महत्तपः ॥ २४ ॥

वृत्रासुर बोला— पहले मैंने जयलुब्ध होकर जो महत् तपस्या की थी वह आप तथा दूसरे मनीषी पुरुषोंको प्रत्यक्ष हुई थी ॥ २४ ॥

गन्धानादाय भूतानां रसांश्च विविधानपि ।
अवर्धं त्रीन्समाक्रम्य लोकान्वै स्वेन तेजसा ॥ २५ ॥

मैं निज वीर्यबलसे अनेक गन्ध और रसके आश्रयभूत सबको विमर्दन करते हुए तीनों लोकोंको आक्रमण करके वर्द्धित हुआ था ॥ २५ ॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तो वैहायसचरस्तथा ।
अजेयः सर्वभूतानामासं नित्यमपेतभीः ॥ २६ ॥

मैं ज्वालामालाओंसे परिपूरित आकाशचारी और सदा निर्भय रहके सब भूतोंसेही अजेय था ॥ २६ ॥

ऐश्वर्यं तपसा प्राप्तं भ्रष्टं तच्च स्वकर्मभिः ।
धृतिमास्थाय भगवन्न शोचामि ततस्त्वहम् ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! मेरी तपस्यासे मुझे ऐश्वर्यलाभ हुआ था और निज कर्मोंसे वह नष्ट हुआ है; इसलिये मैं धैर्य अवलम्बन करके उसके लिये शोक नहीं करता ॥ २७ ॥

युयुत्सता महेन्द्रेण पुरा सार्धं महात्मना ।
ततो मे भगवान्दृष्टो हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ २८ ॥

पहले जब मैंने महानुभाव पुरुषश्रेष्ठ इन्द्रके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषा की, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए, ऐश्वर्योंसे युक्त, सब जीवोंके लय स्थान, सर्वान्तर्यामी हरिको देखा था ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वैकुण्ठः पुरुषो विष्णुः शुक्लोऽनन्तः सनातनः ।
मुञ्जकेशो हरिश्मश्रुः सर्वभूतपितामहः ॥ २९ ॥

उस भूतोंके मेल करनेवाले पूर्ण पुरुष जो कि तीनों परिच्छेदोंसे रहित, अनन्त, शुद्ध, सर्व-व्यापी, सनातन, मुञ्जके समान पीले केश और पिङ्गल वर्ण श्मश्रुयुक्त है, तथा जो सब भूतोंका पितामह शुद्ध ब्रह्म है ॥ २९ ॥

नूनं तु तस्य तपसः सावशेषं ममास्ति वै ।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तं कर्मणः फलम् ॥ ३० ॥

प्रसङ्ग क्रमसे उस परब्रह्मके दर्शन स्वरूप तपस्याका शेष फल इस समय भी कुछ विद्यमान है। हे भगवन् ! उसही तपोबलको अवलम्बन करके मैं आपसे कर्मफलके विषयमें पूछनेकी इच्छा करता हूं ॥ ३० ॥

ऐश्वर्यं वै महद्ब्रह्मन्कस्मिन्वर्णे प्रतिष्ठितम् ।
निवर्तते चापि पुनः कथमैश्वर्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

महत् ऐश्वर्यस्वरूप परब्रह्म किस वर्णमें प्रतिष्ठित है और उस सर्वोत्तम ऐश्वर्यकी किस प्रकार निवृत्ति होती है ? ॥ ३१ ॥

कस्माद्भूतानि जीवन्ति प्रवर्तन्तेऽथ वा पुनः ।
किं वा फलं परं प्राप्य जीवस्तिष्ठति शाश्वतः ॥ ३२ ॥

किस कारणसे जीव जीवन धारण करते हैं और किस लिये कर्मकी चेष्टा किया करते हैं ? जीव किस प्रकार परम फल पाके अविनाशी ब्रह्मत्वका लाभ करता है ? ॥ ३२ ॥

केन वा कर्मणा शक्यमथ ज्ञानेन केन वा ।
ब्रह्मर्षे तत्फलं प्राप्तुं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३३ ॥

अथवा किस कर्म वा ज्ञानके जरिये वह फल पाया जाता है ? आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ ३३ ॥

इतीदमुक्तः स मुनिस्तदानीं प्रत्याह यत्तच्छृणु राजसिंह ।
मयोच्यमानं पुरुषर्षभ त्वमनन्यचित्तः सह सोदरीयैः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥ ९४०५ ॥

हे पुरुषप्रवर नरनाथ ! वृत्रासुरके ऐसा पूछनेपर उस समय शुक्राचार्यने जो उत्तर दिया था, मैं उसे कहता हूं, तुम सहोदर भाइयोंके सहित एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ३४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७० ॥ ९४०५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७१ :

उशनोवाच—

नमस्तस्मै भगवते देवाय प्रभविष्णवे ।
यस्य पृथ्वीतलं तात साकाशं बाहुगोचरम् ॥ १ ॥

शुक्र बोले— हे तात ! आकाशके सहित पृथ्वीतल जिसकी भुजाके बीच निवास करता है, उस सर्व ऐश्वर्य युक्त सर्व शक्तिमान् भगवान् विष्णुको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

मूर्धा यस्य त्वनन्तं च स्थानं दानवसत्तम ।
तस्याहं ते प्रवक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २ ॥

हे दानवसत्तम ! जिसका शिर और स्थान अनन्त है, उस सर्वव्यापी विष्णु देवका परम माहात्म्य तुम्हारे समीप कहता हूं ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

तयोः संवदतोरेवमाजगाम महामुनिः ।
सनत्कुमारो धर्मात्मा संशयच्छेदनाय वै ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— वृत्रासुर और शुक्र इस ही प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय विष्णुकी कृपासे धर्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उन लोगोंके सन्देहको दूर करनेके लिये वहां आके उपस्थित हुए ॥ ३ ॥

स पूजितोऽसुरेन्द्रेण मुनिनोशनसा तथा ।
निषसादासने राजन्महार्हे मुनिपुंगवः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! मुनिवर पहुंचते ही असुरेन्द्र वृत्र और शुक्रसे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठे ॥ ४ ॥

तमासीनं महाप्राज्ञमुशना वाक्यमब्रवीत् ।
ब्रूह्यस्मै दानवेन्द्राय विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

महाप्राज्ञ मुनिके बैठनेपर शुक्र उनसे बोले, आप इस दानवेन्द्रके समीप भगवान् विष्णुका उत्तम माहात्म्य कहिये ॥ ५ ॥

सनत्कुमारस्तु ततः श्रुत्वा प्राह वचोऽर्थवत् ।
विष्णोर्माहात्म्यसंयुक्तं दानवेन्द्राय धीमते ॥ ६ ॥

अनन्तर सनत्कुमार ऐसा वचन सुनके बुद्धिमान् दानवेन्द्रके निकट विष्णुके माहात्म्य संयुक्त महार्थ वाक्य कहने लगे ॥ ६ ॥

शृणु सर्वमिदं दैत्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
विष्णौ जगत्स्थितं सर्वमिति विद्धि परंतप ॥ ७ ॥

हे दैत्यराज ! विष्णुका यह सब उत्तम माहात्म्यका विषय सुनो । हे शत्रुतापन ! समस्त जगत् विष्णुके अवलम्बसे स्थित है, यह जानो ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सृजत्येष महाबाहो भूतग्रामं चराचरम् ।
एष चाक्षिपते काले काले विसृजते पुनः
अस्मिन्गच्छन्ति विलयमस्माच्च प्रभवन्त्युत । ॥ ८ ॥

हे महाबाहो ! ये विष्णु ही स्थावर–जङ्गम सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं; येही कालक्रमसे जीवोंका विनाश करते हैं, और कालक्रमसे फिर सृष्टि किया करते हैं ॥ ८ ॥

नैष दानवता शक्यस्तपसा नैव चेज्यया ।
संप्राप्तुमिन्द्रियाणां तु संयमेनैव शक्यते ॥ ९ ॥

सब कोई इन्हींमें लीन होते और इन्हींसे उत्पन्न हुआ करते हैं । मनुष्य दान, तपस्या वा यज्ञसे इन्हें प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं है, और इन्द्रियोंको संयम करनेसे ही इन्हें प्राप्त किया जाता है ॥ ९ ॥

बाह्ये चाभ्यन्तरे चैव कर्मणा मनसि स्थितः ।
निर्मलीकुरुते बुद्ध्या सोऽमुत्रानन्त्यमश्नुते ॥ १० ॥

जो बाह्य– यज्ञादि कर्मोंसे और आभ्यन्तर– शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर मनको स्थिर करके उसे बुद्धिसे निर्मल बनाता है, वह देहाभिमान छोडके आत्मलोक लाभ करके मोक्षफल उपभोग किया करता है ॥ १० ॥

यथा हिरण्यकर्ता वै रूप्यमग्नौ विशोधयेत् ।
बहुशोऽतिप्रयत्नेन महतात्मकृतेन ह ॥ ११ ॥

जैसे सोनार अपने महान् प्रयत्नके जरिये बार बार चांदीको अग्निमें डालके उसे शुद्ध करता है, ॥ ११ ॥

तद्वज्जातिशतैर्जीवः शुद्ध्यतेऽल्पेन कर्मणा ।
यत्नेन महता चैवाप्येकजातौ विशुध्यते ॥ १२ ॥

वैसेही जीव सैकडों जन्मोंमें अल्प कर्मोंसे अपने चित्तको शुद्ध किया करता है; कोई एकही जन्ममें अत्यन्त महत् प्रयत्नके सहित पूर्वोक्त कर्मोंके अनुष्ठानसे चित्तशुद्धि लाभ करता है ॥ १२ ॥

लीलयाल्पं यथा गात्रात्प्रमृज्यादात्मनो रजः ।
बहु यत्नेन महता दोषनिर्हरणं तथा ॥ १३ ॥

जैसे मनुष्य सहजमेंही निज शरीरमें लगी हुई धुलको झाडकर शुद्ध करता है, उसी तरह अनेक महान् प्रयत्नसे वह अपने रागद्वेष आदि दोषोंको दूर कर सकता है ॥ १३ ॥

यथा चाल्पेन माल्येन वासितं तिलसर्षपम् ।
न मुञ्चति स्वकं गन्धं तद्वत्सूक्ष्मस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥

जैसे थोडे फूलोंसे वासित किया तिल वा सरसोंका तेल निज गन्धको परित्याग नहीं करता, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन ब्रह्मका साक्षात्कार भी वैसाही है, अर्थात् थोडे प्रयत्नसे साक्षात्कार नहीं होता ॥ १४ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेव बहुभिर्माल्यैर्वास्यमानं पुनः पुनः ।
विमुञ्चति स्वकं गन्धं माल्यगन्धेऽवतिष्ठति ॥ १५ ॥

वही तिल और सरसोंका तेल बहुतसे फूलोंसे बार बार सुवासित होनेपर निज गन्ध त्यागके जैसे पुष्पगन्धमें मिलित होता है ॥ १५ ॥

एवं जातिशतैर्युक्तो गुणैरेव प्रसङ्गिषु ।
बुद्ध्या निवर्तते दोषो यत्नेनाभ्यासजेन वै ॥ १६ ॥

वैसेही सैकडों जन्मोंमें सत्त्वादि गुणोंसे युक्त पुत्र कलत्र आदि कुटुम्बके संसर्गजनित दोष योगाभ्यासके यत्न और बुद्धिसे निवर्त्तित हुआ करते हैं ॥ १६ ॥

कर्मणा स्वेन रक्तानि विरक्तानि च दानव ।
यथा कर्मविशेषांश्च प्राप्नुवन्ति तथा शृणु ॥ १७ ॥

हे दानव ! कर्मवशसे अनुरक्त अथवा विरक्त जीव जिस प्रकारसे राग-विराग युक्त विशेष कर्मोंको प्राप्त होते हैं, उसे सुनो ॥ १७ ॥

यथा च संप्रवर्तन्ते यस्मिंस्तिष्ठन्ति वा विभो ।
तत्तेऽनुपूर्व्या व्याख्यास्ये तदिहैकमनाः शृणु ॥ १८ ॥

हे प्रभु ! जीव जिस प्रकार कर्मकी चेष्टा करते और जिसमें स्थित रहते हैं, तथा निवृत्त होते हैं, वह मैं तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक क्रमशः कहता हूं; इस समय तुम चित्त एकाग्र करके सुनो ॥ १८ ॥

अनादिनिधनः श्रीमान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
स वै सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ १९ ॥

श्रीमान् भगवान् नारायण हरि आदि-अन्तसे रहित हैं; वह सब भूतोंमें क्षर और अक्षररूपसे-समभावसे निवास करता है; वही जीवोंका पाप हरता है, इसीसे उसे 'हरि' कहते हैं, वही उपाधिरहित स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी सृष्टि किया करता है ॥ १९ ॥

एष सर्वेषु भूतेषु क्षरश्चाक्षर एव च ।
एकादशविकारात्मा जगत्पिबति रश्मिभिः ॥ २० ॥

वही सब भूतोंमें सङ्घात और जीवरूपसे स्थित रहता है, और एकादश इन्द्रिय स्वरूप होकर इन्द्रियोंके जरिये समस्त जगत्का ज्ञान किया करता है; वही चैतन्यमयी किरणोंसे सब जगत्को व्याप्त करता है ॥ २० ॥

पादौ तस्य महीं विद्धि मूर्धानं दिवमेव च ।
बाहवस्तु दिशो दैत्य श्रोत्रमाकाशमेव च ॥ २१ ॥

हे दैत्यराज ! पृथ्वीमण्डल उसके दोनों चरण हैं, द्युलोक उसका शिर, चारों दिशाएं उसकी भुजाएं हैं, और आकाशको उसका श्रोत्र (कान) जानना चाहिये ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य तेजोमयः सूर्यो मनश्चन्द्रमसि स्थितम् ।
बुद्धिर्ज्ञानगता नित्यं रसस्त्वप्सु प्रवर्तते ॥ २२ ॥

तेजस्वी सूर्य उसके नेत्र हैं, उसका मन चन्द्रमामें स्थित है। उसकी बुद्धि सदा ज्ञानगत अर्थात् वृत्तिरूपी ज्ञान स्वरूपी हुई है, जल ही उसकी रसना है ॥ २२ ॥

भ्रुवोरनन्तरास्तस्य ग्रहा दानवसत्तम ।
नक्षत्रचक्रं नेत्राभ्यां पादयोर्भूश्च दानव ॥ २३ ॥

हे दानवसत्तम ! सब ग्रह उसके दोनों भौंके निकटवर्त्ती हो रहे हैं, नक्षत्रमण्डल उसके नेत्रोंसे प्रकट हुआ है। हे दानव ! भूमितल उसके दोनों चरणोंमें वर्त्तमान है ॥ २३ ॥

रजस्तमश्च सत्त्वं च विद्धि नारायणात्मकम् ।
सोऽऽश्रमाणां मुखं तात कर्मणस्तत्फलं विदुः ॥ २४ ॥

सत्व, रज और तम इन तीनों गुणोंको नारायण स्वरूप जानो। हे तात ! वही सब आश्रमोंका मुख और वही जप आदि कर्मोंका फल है, विद्वान् लोग ऐसा ही ज्ञान किया करते हैं ॥२४॥

अकर्मणः फलं चैव स एव परमव्ययः ।
छन्दांसि तस्य रोमाणि अक्षरं च सरस्वती ॥ २५ ॥

वह अव्यय परम पुरुष ही निष्कर्म संन्यासका फल मोक्षस्वरूप है। सब वेद मन्त्र उसके रोएं और प्रणव उसकी वाणी है ॥ २५ ॥

बह्वाश्रयो बहुमुखो धर्मो हृदि समाश्रितः ।
स ब्रह्मपरमो धर्मस्तपश्च सदसच्च सः ॥ २६ ॥

अनेक वर्ण और सब आश्रम उसका आश्रय है, उसे अनन्त मुख हैं, तथा वह हृदयमें स्थित धर्म स्वरूप है; वह परब्रह्म ही आत्मदर्शनरूपी परम धर्म और कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तपस्याका फल स्वरूप है, वही कार्य और कारणस्वरूप है ॥ २६ ॥

श्रुतिशास्त्रग्रहोपेतः षोडशर्त्विक्क्रतुश्च सः ।
पितामहश्च विष्णुश्च सोऽश्विनौ स पुरंदरः ॥ २७ ॥

वह परमात्मा ही श्रुति—वेद मन्त्र ब्राह्मण और शास्त्र—प्रवर्त्तना वाक्यसे उक्त है; होता, उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता आदि षोडश ऋत्विजोंके जरिये सम्पादनीय क्रतु स्वरूप है। वही ब्रह्मा, विष्णु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, ॥ २७ ॥

मित्रश्च वरुणश्चैव यमोऽथ धनदस्तथा ।
ते पृथग्दर्शनास्तस्य संविदन्ति तथैकताम् ।
एकस्य विद्धि देवस्य सर्वं जगदिदं वशे ॥ २८ ॥

मित्र, वरुण, यम और कुबेर स्वरूप है। उक्त ऋत्विक् गण पृथक् दर्शन होनेपर भी अर्थात् इन्द्रसे महेन्द्र विभिन्न और वैश्वानरसे अग्नि स्वतन्त्र है, इत्यादि रूपसे कर्मकी विभिन्नताके कारण पृथक् दर्शन करनेपर भी उस एक मात्र महान् आत्माके सहित पूर्वोक्त प्रजापति आदि देवताओंकी एकता अवलोकन किया करते हैं; इस समस्त जगत्को उसही एक मात्र देवके अधीन जानो ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नानाभूतस्य दैत्येन्द्र तस्यैकत्वं वदत्ययम् ।
जन्तुः पश्यति ज्ञानेन ततः सत्त्वं प्रकाशते ॥ २९ ॥

हे दैत्यराज ! धीर पुरुष कहते हैं, कि उसके नाना प्रकारके भूतरूपोंमें निवास करनेपर भी यह वेद उसे एक ही देखता है; अनन्तर जीव विज्ञानवशसे ही ब्रह्मको देखता है, फिर ब्रह्म-सत्त्व प्रकाशित होता है ॥ २९ ॥

संहारविक्षेपसहस्रकोटीस्तिष्ठन्ति जीवाः प्रचरन्ति चान्ये ।
प्रजाविसर्गस्य च पारिमाण्यं वापीसहस्राणि बहूनि दैत्य ॥ ३० ॥

हे दैत्येन्द्र ! जगत्के लय और उदयको कल्प कहते हैं, कोई कोई जीव उस सहस्र कोटि कल्प परिमाण पर्यन्त स्थित रहते हैं, कोई स्थावर हुआ करते हैं, कोई जङ्गम होके इधर-उधर विचरते हैं; प्रजासृष्टिका परिमाण वक्ष्यमाण विधिसे सहस्रों वापी सोखनेकी भांति अनन्त है ॥ ३० ॥

वाप्यः पुनर्योजनविस्तृतास्ताः क्रोशं च गम्भीरतयावगाढाः ।
आयामतः पञ्चशताश्च सर्वाः प्रत्येकशो योजनतः प्रवृद्धाः ॥ ३१ ॥

वे बावडियां पांच सौ योजन चौडी, पांच सौ योजन लंबी और एक कोष गहरी हैं; गहराही तो इतनी है कि कोई उनमें प्रवेश नहीं कर सकता; प्रत्येक बावडी अत्यंत चौडी लंबी और गहरी है ॥ ३१ ॥

वाप्या जलं क्षिप्यति वालकोट्या त्वह्ना सकृच्चाप्यथ न द्वितीयम् ।
तासां क्षये विद्धि कृतं विसर्गं संहारमेकं च तथा प्रजानाम् ॥ ३२ ॥

यदि प्रतिदिन केवल एकबार केशाग्रके जरिये उसमेंसे एक बूंद जल उठाया जावे और इसही नियमसे एक एक वापीके जल सोखनेके क्रमसे कोई सहस्र दीर्घिकाके नष्ट होनेकी सम्भावना हो, उतने ही कालमें प्राणियोंकी सृष्टि और संहारकी समाप्ति होगी- तो ज्ञानके विना संसारका उच्छेद होसके । एकही मुक्तिसे एककी सृष्टिनाश होनेपर भी अनेक जीव वर्त्तमान रहते हैं । इससे किसी प्रकारसे भी संसारके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है ॥ ३२ ॥

षड्जीववर्णाः परमं प्रमाणं कृष्णो धूम्रो नीलमथास्य मध्यम् ।
रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम् ॥ ३३ ॥

रज, सत्त्व और तमोगुण रंजकता, स्वच्छता और मलिनताके साम्यवशसे लाल, श्वेत और काले हुआ करते हैं । उक्त तीनों गुणोंके भाग भेदसे जीवका सफेद, लाल, काला, पीला, धूम और कृष्ण, ये छः प्रकारके वर्ण होते हैं, तीनों गुण परस्पर वियुक्त होनेपर स्थित नहीं रहते; उसके बीच जिसमें तमोगुणकी अधिकता, सत्वगुणकी न्यूनता और रजोगुणकी समता रहती है, उसका कृष्णवर्ण होता है, सत्व और रजोगुणकी विपरीतता अर्थात् सत्वगुणकी समता तथा रजोगुणकी न्यूनता होनेपर धूम्र वर्ण हुआ करता है, इस ही प्रकार रजोगुणकी अधिकता और सत्व तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समतासे नीलवर्ण हुआ करता है । सत्व और तमोगुणकी विपरीतता अर्थात् सत्वगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनतासे लोकोंके सह्यतर लालवर्ण उत्पन्न होता है, सत्वगुणकी अधिकता और रज तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समता होनेपर सब लोक सुखकर प्रीत वर्ण हुआ करता है । सत्वकी अधिकता रजोगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनता होनेसे अत्यन्त सुखकर श्वेत वर्ण हुआ करता है ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परं तु शुक्लं विमलं विशोकं गतक्लमं सिध्यति दानवेन्द्र ।
गत्वा तु योनिप्रभवानि दैत्य सहस्रशः सिद्धिमुपैति जीवः ॥ ३४ ॥

हे दानवेन्द्र ! स्थावर आदि सृष्टि क्रममें कृष्णवर्णसे कौमारसृष्टि पर्यन्त क्रमसे जो शुक्ल वर्ण होता है, वही राग-द्वेषहीनता निबन्धनसे निर्मल है, इससे शोकहीन और प्रवृत्ति नामक श्रमरहित वह वर्ण ही सिद्धिके उपयोगी हुआ करता है । हे दैत्य ! जीव सहस्रों बार जन्म ग्रहण करके अन्तमें मनुष्ययोनिमें आकर सिद्धिलाभ करता है ॥ ३४ ॥

गतिं च यां दर्शनमाह देवो गत्वा शुभं दर्शनमेव चाह ।
गतिः पुनर्वर्णकृता प्रजानां वर्णस्तथा कालकृतोऽसुरेन्द्र ॥ ३५ ॥

हे असुरेन्द्र ! सुरराज पुरन्दरने उत्तम शास्त्रज्ञान लाभ करके आत्मानुभवात्मिका जो शुभ गतिका विषय कहा था, अर्थात् "इस ब्रह्मका मैंने दर्शन किया" इत्यादि जो वचन प्रकाशित की थी, वही ब्रह्मज्ञान लाभकी प्रमाण स्वरूप है। सत्वादि गुणोंके तारतम्यके अनुसार प्रजासमूहकी वर्णविहित गति हुआ करती है, प्रजाके वर्ण भी कालकृत अर्थात् पहले कहे हुए चतुर्युगात्मक जीवकर्त्तृक विहित हैं, जीवोंके पूर्वजन्मके संस्कारसे जिस प्रकार सत्वादिकी उत्पत्ति होती है, वैसी ही गति हुआ करती है ॥ ३५ ॥

शतं सहस्राणि चतुर्दशेह परा गतिर्जीवगुणस्य दैत्य ।
आरोहणं तत्कृतमेव विद्धि स्थानं तथा निःसरणं च तेषाम् ॥ ३६ ॥

हे दैत्यराज ! सोपानारोहण क्रमसे इस लोकमें चौदह लाख बार जीवकी परागति बतायी जाती है; जो जीवकी ऊर्ध्व गति होती है, और उसहीके अनुसार विभिन्न स्थानोंमें स्थिति तथा उनसे अधोगति होती है, वह उन्हीं चौदह करणोंके कारण होता है; यह तुम समझो ॥ ३६ ॥

कृष्णस्य वर्णस्य गतिर्निकृष्टा स मज्जते नरके पच्यमानः ।
स्थानं तथा दुर्गतिभिस्तु तस्य प्रजाविसर्गान्सुबहून्वदन्ति ॥ ३७ ॥

स्थावरत्व-प्रापक कृष्णवर्णकी निकृष्ट गति होती है, क्योंकि वे जनिष्यमाण स्थावर पदार्थ नरकप्रद कर्ममें संसक्त हुआ करते हैं, इसहीसे वे नरकमें निमग्न होते हैं, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि अनेक कल्पोंतक उनकी दुर्गति लोकोंके सहित स्थित हुआ करती है ॥ ३७ ॥

शतं सहस्राणि ततश्चरित्वा प्राप्नोति वर्णं हरितं तु पश्चात् ।
स चैव तस्मिन्निवसत्यनीशो युगक्षये तमसा संवृतात्मा ॥ ३८ ॥

इस ही प्रकार जीव स्थावर शरीरसे समय बिताते हुए अन्तमें तिर्यग् योनि लाभ किया करता है । जीव उस तिर्यग् योनिको लाभ कर शीत वातादिसे पीडित होकर युगक्षयमें सब प्रकारसे मृत्युभय दर्शन करते हुए पूर्व पुण्योदयके विवेकसे व्याप्तचित्त होकर उक्त शरीरमें स्थिति करता है । कृष्ण और हरित वर्ण केवल भोगभूमि है, इसलिये इसमें भोगके जरिये जिसके पाप नष्ट होते हैं, दैवात् उसके पूर्व पुण्यके उदय होनेपर जीवका चित्त विवेकसे संवृत हुआ करता है ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स वै यदा सत्त्वगुणेन युक्तस्तमो व्यपोहन्घटते स्वबुद्ध्या ।
स लोहितं वर्णमुपैति नीलो मनुष्यलोके परिवर्तते च ॥ ३९ ॥

जब जीव सत्वगुणयुक्त होता है, उस समय निज बुद्धिसे तमोगुणकी प्रवृत्तिओंको दूर करते हुए कल्याणसाधन कर्ममें यत्नवान् हुआ करता है, तब सत्वगुणका उत्कर्ष होनेसे कामादिके अभिमानी देवभाव लाभ करता है, वह रक्तवर्णको प्राप्त होता है; और सत्वगुणके अपकर्ष होनेसे तिर्यग् योनिसे फिर तिर्यग् योनिको प्राप्त होता अथवा नीलवर्णको प्राप्त होकर मनुष्य जन्म ग्रहण करता है ॥ ३९ ॥

स तत्र संहारविसर्गमेव स्वकर्मजैर्बन्धनैः क्लिश्यमानः ।
ततः स हारिद्रमुपैति वर्णं संहारविक्षेपशते व्यतीते ॥ ४० ॥

तब जीव मनुष्य लोकमें कल्पपरिमित समय बिताके विधि निषेधरूपी निगडनिवहके जरिये क्लेशित होकर तपस्याका उपचय करते हुए सैकडों कल्प बीतनेपर हल्दीकी कान्तिवाले पीत-वर्णको– देवभावको लाभ किया करता है । वहां सैंकडों कल्प व्यतीत करनेपर वह फिर मनुष्य होता है ॥ ४० ॥

हारिद्रवर्णस्तु प्रजाविसर्गान्सहस्रशस्तिष्ठति संचरन्वै ।
अविप्रमुक्तो निरये च दैत्य ततः सहस्राणि दशापराणि ॥ ४१ ॥

हे दैत्यराज ! जीव देवत्व लाभ करके भी सहस्रों कल्पतक विचरते हुए निवास करता है; देवलोकमें भी जीव विषयरहित नहीं होके पूर्व पूर्वकल्पोंके किये हुए पुण्य पापोंका फल भोग नरकमें रहकर किया करता है ॥ ४१ ॥

गतीः सहस्राणि च पञ्च तस्य चत्वारि संवर्तकृतानि चैव ।
विमुक्तमेवं निरयाच्च विद्धि सर्वेषु चान्येषु च संभवेषु ॥ ४२ ॥

अनन्तर उन्नीस हजार जन्मके बीतनेपर मनुष्य भोगप्रद कर्म और अन्यान्य जन्मोंसे नरकसे मुक्ति लाभ करता है; इसलिये स्वर्गको भी क्षयशील समझना चाहिये । मनुष्य ही केवल मोक्ष प्राप्त कर सकता है; अन्य योनि नहीं, यह तुम समझ जाना ॥ ४२ ॥

स देवलोके विहरत्यभीक्ष्णं ततश्च्युतो मानुषतामुपैति ।
संहारविक्षेपशतानि चाष्टौ मर्त्येषु तिष्ठन्नमृतत्वमेति ॥ ४३ ॥

जीव देवलोकमें सदा विहार किया करता है, अनन्तर वहांसे पुण्य क्षयके पश्चात् च्युत होकर मनुष्य जीवन पाता है; मर्त्य लोकमें आठ सौ कल्पोंतक रहकर शुभ कर्मसे देवत्व प्राप्त करता है; देवता लोग मनुष्यत्व और मनुष्य भी देवत्व लाभ किया करते हैं। ऊपर कहे हुए कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, चित्त, मन और बुद्धि नामक आठों ज्ञानेन्द्रिय सैकडों कल्पतक मनुष्य शरीरमें निवास करती हुई अन्तमें देवत्वको प्राप्त होती हैं ॥ ४३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽस्मादथ भ्रश्यति कालयोगात्कृष्णे तले तिष्ठति सर्वकष्टे ।
यथा त्वयं सिध्यति जीवलोकस्तत्तेऽभिधास्याम्यसुरप्रवीर ॥ ४४ ॥

हे असुर वीर ! अनन्तर वही जीव कालक्रमसे संकल्पकृत लयोदय प्रवाहसे भ्रष्ट होकर सबसे अपकृष्ट वर्ण कृष्ण वर्ण अर्थात् तलभागकी भांति सबसे नीच स्थावर शरीरमें निवास करता है । यह जीव जिस प्रकार विमुक्त होता है, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं ॥ ४४ ॥

दैवानि स व्यूहशतानि सप्त रक्तो हरिद्रोऽथ तथैव शुक्लः ।
संश्रित्य संधावति शुक्लमेतमष्टापरानर्च्यतमान्स लोकान् ॥ ४५ ॥

एकके अनेकधा भावको व्यूह कहते हैं, मुमुक्षु जीव उन सतरह वेदव्यूहोंको अवलम्बन करके लाल, पीला और अन्तमें सफेद वर्ण होकर क्रमसे अर्चनीय अष्टलोकोंमें विचरता है । कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि रूपसे सप्तधाभूत बुद्धिकी उस ही उसी इन्द्रिय वृत्तिभेदसे सौ हजार व्यूह हुआ करता है; तिसके बीच शम दम आदि सात्विक भावोंसे युक्त दैव व्यूह अवलम्बन करके पहले जो रक्तवर्ण होता है, वही शम दमादिके अभिमानी देवता-स्वरूप है, इससे वह अत्यन्तही दशमदमादिसे युक्त हुआ करता है । अनन्तर पीत वर्ण देव-शरीर होकर अन्तमें श्वेतवर्ण कौमारमूर्त्ति हुआ करती है, यह मूर्त्ति बालककी भांति रागद्वेषसे रहित होती है । अनन्तर सगुणात्मस्वरूप सब लोक प्राप्त होते हैं, क्रमसे धूम्र आदि मार्ग-प्राप्तिपूर्वक अर्चनीय चन्द्रलोकसे भी पूजनीय अर्चिरादि मार्गप्राप्य ब्रह्मलोक लाभ होता है । अनन्तर योगफलभूत ज्ञानसे मिलने योग्य सब पूज्य लोक प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥

अष्टौ च षष्टिं च शतानि यानि मनोविरुद्धानि महाद्युतीनाम् ।
शुक्लस्य वर्णस्य परा गतिर्या त्रीण्येव रुद्धानि महानुभाव ॥ ४६ ॥

हे महानुभाव दैत्यराज ! पूर्ण प्रकाश युक्त आत्मज्ञ पुरुष उक्त अष्टलोक और अविद्या काम कर्म आदि भेदसे विभिन्न जो एक सौ साठ लोक हैं, उन सबको मनसे ही विशेष रूपसे रुद्ध कर रखते हैं, अर्थात् मूढदृष्टिसे सब लोकोंके भिन्नरूपसे दीखनेपर भी ज्ञानियोंके मनमें वे एक रूपसे ही मालूम हुआ करते हैं; जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसंज्ञक तीनों लोक यदि संक्षेपसे मनहीके जरिये रुद्ध हों, तो शुक्लवर्णकी वही परम गति है, अर्थात् ऐसी अवस्थामें वेदप्रतिपाद्य, भङ्गलमय द्वैतरहित ब्रह्मको जाना जाता है ॥ ४६ ॥

संहारविक्षेपमनिष्टमेकं चत्वारि चान्यानि वसत्यनीशः ।
षष्ठस्य वर्णस्य परा गतिर्या सिद्धा विशिष्टस्य गतक्लमस्य ॥ ४७ ॥

जीव एक मात्र भोगके स्थान शरीरको धारण करके सौ कल्पके परिमाणतक इस देहमें निवास किया करता है, योग ऐश्वर्यसे उपस्थापित दिव्य भोगोंको परित्याग करनेमें असमर्थ योगी योगबलके तारतम्यके अनुसार महः, जन, तपः और सत्यसंज्ञक ऐश्वर्यके तारतम्ययुक्त क्रम-मुक्ति स्थानोंमें निवास किया करते हैं । जो शुद्ध ब्रह्मके दर्शनके जरिये जीवन्मुक्त होनेमें समर्थ नहीं हैं और जिनके रागादि दोष नष्ट हुए हैं, वैसे पुरुष योगसिद्ध होके भी ब्रह्म और आत्मामें ऐक्यज्ञानके अभाव निबन्धनसे क्रममुक्तिभाजन हुआ करते हैं ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सप्तोत्तरं तेषु वसत्यनीशः संहारविक्षेपशतं सशेषम् ।
तस्मादुपावृत्य मनुष्यलोके ततो महान्मानुषतामुपैति ॥ ४८ ॥

और जो पुरुष पूर्णरीतिसे योगानुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं है, वह परोक्षत्व रूपसे निर्दिष्ट स्वर्गलोकमें सत्वगुणकी प्रबलतासे पूर्वोक्त श्रोत्र आदि पञ्चक और मन तथा बुद्धिके उत्कर्ष-साधक पुरुष एक सौ कल्प पर्यन्त तथा जबतक पूर्वकृत कर्मक्षय नहीं होते, तबतक निवास करता है । शुद्ध कर्मवाले साधु योगी यदि योगसिद्धिके पहिले विरक्त हो, तो भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें गमन करते हैं, अनन्तर वहांसे लौटकर मनुष्यजन्म पाके कुल, शील और विद्या-बुद्धिसे युक्त होकर सब लोगोंमें पूजनीय होते हैं ॥ ४८ ॥

तस्मादुपावृत्य ततः क्रमेण सोऽग्रे स्म संतिष्ठति भूतसर्गम् ।
स सप्तकृत्वश्च परैति लोकान्संहारविक्षेपकृतप्रवासः ॥ ४९ ॥

अन्तमें वही अपूर्ण योगी मनुष्य जन्मसे निकलके पूर्व अभ्यासके सहारे क्रमसे उत्तरोत्तर योग-भूमिकामें आरोहण करते हैं, वह समाधि और समाधिभङ्गके समयमें प्रभावयुक्त होके सातवार सब लोकोंमें पर्यटन किया करते हैं, अर्थात् प्रथम भूमिमें आरूढ योगी यदि मृत्युको प्राप्त हो, तो वह स्वर्गलाभ करके वहांसे च्युत होनेपर सार्वभौम्य पदवी लाभके जरिये उनका भूलोक विजय हुआ करता है । इस ही प्रकार उत्तरोत्तर योगकला वृद्धिके अनुसार क्रमसे सब लोक जय किया जाता है; अन्तमें ब्रह्मलोक लाभ करके भी जीव फिर संसारमें आगमन किया करता है, और यदि ध्येयवस्तुके सङ्ग आत्माकी अभेद प्रतीति उत्पन्न हो, तो प्रलय-कालमें ब्रह्माके सहित जीवकी मुक्ति हुआ करती है, अर्थात् कृतात्मा मनुष्य प्रजापतिके प्रलयकालमें उनके सहित परमपदमें प्रवेश करते हैं ॥ ४९ ॥

सप्तैव संहारमुपप्लवानि संभाव्य संतिष्ठति सिद्धलोके ।
ततोऽव्ययं स्थानमनन्तमेति देवस्य विष्णोरथ ब्रह्मणश्च ।
शेषस्य चैवाथ नरस्य चैव देवस्य विष्णोः परमस्य चैव ॥ ५० ॥

पक्षान्तरमें योगी पुरुष भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्य-लोक अथवा मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सातोंको ज्ञानसे बाधित करके जीव लोकमें शोक मोहसे रहित होकर निवास करते हैं । वे लोग पृथ्वी आदि सातों लोक अथवा बुद्धि आदि सातों इन्द्रियोंको दुःख स्वरूप निश्चय करके शरीर त्यागनेपर अपरिणामी, अनन्त अर्थात् परिच्छेद रहित शुद्ध ब्रह्मपद लाभ करते हैं । कोई कोई उस पदको महादेवका कैलास कहते हैं, कोई उसे विष्णुका वैकुण्ठ बतलाते हैं, कोई कोई सम्प्रदायवाले उसे ब्रह्माका ब्रह्म-लोक कहा करते हैं, कोई कोई भक्तजन उसे अनन्त देवके धामरूपसे वर्णन करते हैं, सांख्य मतवाले मनीषी पुरुष उसे जीवोंकी परम निवृत्ति स्थान कहा करते हैं, और उपनिषत् अर्थात् वेदान्त दर्शनवाले पण्डित लोग उसे द्योतमान चिन्मात्र सर्वव्यापी परब्रह्मके धामस्वरूप रूपसे निर्णय किया करते हैं ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संहारकाले परिदग्धकाया ब्रह्माणमायान्ति सदा प्रजा हि ।
चेष्टात्मनो देवगणाश्च सर्वे ये ब्रह्मलोकादमराः स्म तेऽपि ॥ ५१ ॥

संहारके समयमें जो लोग ज्ञानरूपी अग्निसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको सब भांतिसे जलाये हैं, वेही सब प्रजा सदा परब्रह्मको प्राप्त होती हैं और चेष्टात्मक इन्द्रियां तथा ब्रह्मस्वरूपसे अर्वाचीन प्रकृति आदि भी परिदग्ध शरीर होकर संहारकाल अर्थात् जीवके मोक्ष समयमें परब्रह्ममें लीन हुआ करती हैं ॥ ५१ ॥

प्रजाविसर्गं तु सशेषकालं स्थानानि स्वान्येव सरन्ति जीवाः ।
निःशेषाणां तत्पदं यान्ति चान्ते सर्वापदा ये सदृशा मनुष्याः ॥ ५२ ॥

प्रलयकालके आसन्न होनेपर जो लोग देवत्व लाभ करते हैं, उनके सब कर्मफल भोग न किये जानेसे पूर्व कल्पके अर्जित उनके सब कर्मफल सत्यासन्न हुआ करते हैं; क्योंकि प्रति कल्पमें ही पूर्व पूर्वकल्पोंकी सदृशता विद्यमान रहती है, और प्रलयकालमें जिसके कर्मफलोंके भोग निःशेषित होते हैं, उनका स्वर्गवास समाप्त होनेसे फिर मनुष्यत्व प्राप्त हुआ करता है; क्योंकि तत्वज्ञानके अतिरिक्त सौ कल्पमें भी किये हुए कर्मोंका नाश नहीं होता ॥ ५२ ॥

ये तु च्युताः सिद्धलोकात्क्रमेण तेषां गतिं यान्ति तथानुपूर्व्या ।
जीवाः परे तद्बलवेषरूपा विधिं स्वकं यान्ति विपर्ययेण ॥ ५३ ॥

जो लोग क्रमसे सिद्ध लोकमें प्रच्युत होनेकी सामर्थ्य धारण करते हैं, दूसरे जीव लोग उनके समान बलवाले होकर क्रमसे उनकी गतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हींकी भांति पाप-पुण्यके फलोंको भोग किया करते हैं । एक कल्पमें ही जब बार बार ऊर्ध्वगति और अधोगति हुआ करती है, तब संसारभीरु पुरुषोंको तत्वज्ञानका आसरा अवश्य करना चाहिये ॥ ५३ ॥

स यावदेवास्ति सशेषभुक्ते प्रजाश्च देव्यौ च तथैव शुक्ले ।
तावत्तदा तेषु विशुद्धभावः संयम्य पञ्चेन्द्रियरूपमेतत् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मवित् पुरुष जबतक प्रारब्ध कर्मोंको परित्याग न करके उसे भोग करते हैं, तबतक उनके अङ्गमें ब्रह्मस्वरूपसे प्रजासमूह और परा तथा अपरा विद्या विद्यमान रहती है । अनन्तर वह योगसंशोधितचित्त होनेपर अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि स्वरूप संयमका अनुष्ठान करनेसे इस आकाश आदि पञ्च महाभूतोंको पञ्च इन्द्रियोंकी भांति जानते हैं; ब्रह्मवित् पुरुषके सम्बन्धमें विशुद्ध कैवल्य पर्यन्त समस्त जगत् दूरवर्त्ती नहीं है ॥ ५४ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शुद्धां गतिं तां परमां परैति शुद्धेन नित्यं मनसा विचिन्वन् ।
ततोऽव्ययं स्थानमुपैति ब्रह्म दुष्प्रापमभ्येति स शाश्वतं वै ।
इत्येतदाख्यातमहीनसत्त्व नारायणस्येह बलं मया ते ॥ ५५ ॥

जो लोग शुद्धचित्तसे श्रवण मनन और ध्यानाभ्याससे शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको जाननेकी इच्छा करते हैं, वे द्वैतजालको दूर करके उस शुद्ध परम गतिको प्राप्त होते हैं, शेषमें ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर अक्षय मोक्षपद लाभ करते हैं। उस समय अविद्या आदि व्यवधानोंसे जो शाश्वत परब्रह्म दूसरोंको अत्यन्त अप्राप्य है, उसे वे गलेमें पडे हुए कण्ठभूषणकी भांति सहजमें ही प्राप्त होते हैं। हे महाबलवान् दैत्यराज ! यह मैंने तुम्हारे निकट नारायणका प्रभाववर्णन किया ॥ ५५ ॥

वृत्र उवाच—

एवं गते मे न विषादोऽस्ति कश्चित्सम्यक्च पश्यामि वचस्तवैतत् ।
श्रुत्वा च ते वाचमदीनसत्त्व विकल्मषोऽस्म्यद्य तथा विपाप्मा ॥ ५६ ॥

वृत्रासुर बोला—हे भगवन् आपने जो कहा, कि उसमें जगत् मनरूपसे स्थित है, तब अब मुझे कुछ भी विषाद नहीं है और आपके कहे हुए वाक्यार्थकी मैंने विशेष रूपसे आलोचना की है। हे महानुभाव ! मैं आपके वचनको सुनके इस समय दूषित दृष्टिरहित और शोकमोहसे हीन हुआ हूं ॥ ५६ ॥

प्रवृत्तमेतद्भगवन्महर्षे महाद्युतेश्चक्रमनन्तवीर्यम् ।
विष्णोरनन्तस्य सनातनं तत्स्थानं सर्गा यत्र सर्वे प्रवृत्ताः ।
स वै महात्मा पुरुषोत्तमो वै तस्मिञ्जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितम् ॥ ५७ ॥

हे महर्षि ! यह महातेजस्वी, अन्तरहित और सर्वव्यापी विष्णुके चक्रकी भांति यह संसारचक्र अनन्तवीर्य आकर्णित हुआ है; वही उसका सनातन स्थान है, जिससे समस्त सृष्टि हुआ करती है; वह महानुभाव विष्णु ही पुरुषोत्तम है, उसमें ही यह सब जगत् प्रतिष्ठित होरहा है ॥ ५७ ॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्त्वा स कौन्तेय वृत्रः प्राणानवासृजत् ।
योजयित्वा तथात्मानं परं स्थानमवाप्तवान् ॥ ५८ ॥

भीष्म बोले—हे कुन्तीपुत्र ! दैत्यराज वृत्रने ऐसा कहके प्राणत्याग किया, उसने निज आत्माको परमात्मामें संयुक्त करके परम स्थान प्राप्त किया था ॥ ५८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

अयं स भगवान्देवः पितामह जनार्दनः ।
सनत्कुमारो वृत्राय यत्तदाख्यातवान्पुरा ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! पहिले समयमें सनत्कुमार मुनिने वृत्रासुरके निकट जिसकी महिमा कही थी, ये भगवान् जनार्दन वही देवता हैं ॥ ५९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

मूलस्थायी स भगवान्स्वेनानन्तेन तेजसा।
तत्स्थः सृजति तान्भावान्नानारूपान्महातपाः ॥ ६१ ॥

भीष्म बोले—मूल अधिष्ठानकी भांति निर्विकार भावसे स्थित षड्विध ऐश्वर्यवान्, चिदात्मा निज अनन्त, तेजपुञ्जसे अधिष्ठित रहके सत्य संकल्प आदि गुणयुक्त मानसमें अनेक प्रकार कार्य कारण स्वरूप वृक्ष बीज प्रभृति उत्पन्न करता है ॥ ६० ॥

तुरीयार्धेन तस्येमं विद्धि केशवमच्युतम्।
तुरीयार्धेन लोकांस्त्रीन्भावयत्येष बुद्धिमान् ॥ ६१ ॥

यह निश्चय जानो, कि उस मूलाधिष्ठानमें स्थित चिन्मय पुरुषके चतुर्थ अंशसे ये मूर्त्तिमान् माधव सम्पन्न हुए हैं; यह बुद्धिमान् केशव चतुर्थ अपने उस चतुर्थ अंशके सहारे ही तीनों लोकोंकी सृष्टि किया करते हैं ॥ ६१ ॥

अर्वाक्स्थितस्तु यः स्थायी कल्पान्ते परिवर्तते।
स शेते भगवानप्सु योऽस्मावतिबलः प्रभुः।
तान्विधाता प्रसन्नात्मा लोकांश्चरति शाश्वतान् ॥ ६२ ॥

जो इनके परवर्त्ती होकर समष्टि—कार्य स्वरूपसे प्रतिपन्न होते हैं, वे हम लोगोंके शरीरकी अपेक्षा नित्य होके भी कल्पान्त कालमें लयको प्राप्त होते हैं, और जो अनन्त—ब्रह्माण्डके लय उदयका बीजभूत है, वही अन्तर्यामी भगवान् प्रलयकालमें जलके बीच शयन किया करता है, अर्थात् जल रूपसे निरूपित रस स्वरूप एकमात्र अखण्ड परब्रह्ममें लीन होता है। विधाता शुद्धचित्त अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारसे निर्मुक्त होनेसे उस शाश्वत समष्टिरूप परब्रह्ममें लयको प्राप्त हुआ करता है, इसलिये चतुर्मुख आदि चेतनामात्रका ही एकमात्र परब्रह्म ही लय स्थान है ॥ ६२ ॥

सर्वाण्यशून्यानि करोत्यनन्तः सनत्कुमारः संचरते च लोकान्।
स चानिरुद्धः सृजते महात्मा तत्स्थं जगत्सर्वमिदं विचित्रम् ॥ ६३ ॥

अन्तरहित परमात्माने कार्य कारण भूत सब पदार्थोंको निज सत्तास्फूर्त्ति प्रदान करके पूर्ण कर रखा है; वह सनातन अर्थात् सदा एक रूप होनेपर भी माया उपाधियुक्त इस दृश्यमान श्रीकृष्णरूपसे सब लोगोंमें विचर रहा है। वह देव ऐसा होके भी हम लोगोंकी भांति उपाधि कर्मके जरिये निरुद्ध नहीं है; इसीसे वह अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, और वही महात्मा सब वस्तुओंका आधार कहा जाता है। बीजमें वृक्ष और फलमें बीजोंके स्थित रहनेकी भांति यह विचित्र जगत् उस ही परमात्मामें निवास करता है ॥६३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

वृत्रेण परमार्थज्ञ दृष्टा मन्येऽऽत्मनो गतिः ।
शुभा तस्मात्स सुखितो न शोचति पितामह ॥ ६४ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे परमार्थज्ञ पितामह ! बोध होता है, वृत्रासुरने आत्माकी गति अवलोकन की थी, उसने उस ही आत्मगतिको देखकर शुभ निबन्धनसे सुखी होकर कभी शोक प्रकाश नहीं किया ॥ ६४ ॥

शुक्लः शुक्लाभिजातीयः साध्यो नावर्ततेऽनघ ।
तिर्यग्गतेश्च निर्मुक्तो निरयाच्च पितामह ॥ ६५ ॥

हे पापरहित पितामह ! स्वभावसे शुक्लवर्ण और शुद्ध वंशमें उत्पन्न साध्य संज्ञक वह फिर संसारमें नहीं लौटा; तथा तिर्यग् योनि और नरकसे निर्मुक्त हुआ था ॥ ६५ ॥

हारिद्रवर्णे रक्ते वा वर्तमानस्तु पार्थिव ।
तिर्यगेवानुपश्येत कर्मभिस्तामसैर्वृतः ॥ ६६ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पीतवर्णवाले देवसृष्टिमें अथवा रक्तवर्णवाले अनुग्रहमें वर्त्तमान मनुष्य तामस कर्मोंसे परिपूरित होकर तिर्यग् योनिका भी लाभ किया करता है ॥ ६६ ॥

वयं तु भृशमापन्ना रक्ताः कष्टसुखेऽसुखे ।
कां गतिं प्रतिपत्स्यामो नीलां कृष्णाधमामथ ॥ ६७ ॥

हम लोग पीतवर्णसे च्युत होकर केवल रजःप्रधान रक्त वर्णमें निवास करते हुए कभी सुखी, कभी दुःखी और कभी विना सुखके ही समय बिताकर नीलवर्ण मनुष्य योनि अथवा उससे भी निकृष्ट कृष्णवर्णकी तिर्यग् योनिके बीच कैसी गति पावेंगे, उसे नहीं कह सकते ॥ ६७ ॥

भीष्म उवाच—

शुद्धाभिजनसंपन्नाः पाण्डवाः संशितव्रताः ।
विहृत्य देवलोकेषु पुनर्मानुष्यमेष्यथ ॥ ६८ ॥

भीष्म बोले— तुम सब पाण्डव लोग शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुए हो और तुम सबने ही तीव्रव्रत धारण किया है, इसलिये इसके अनन्तर तुम लोग देव लोकोंमें विहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे ॥ ६८ ॥

प्रजाविसर्गं च सुखेन काले प्रत्येत्य देवेषु सुखानि भुक्त्वा ।
सुखेन संयास्यथ सिद्धसंख्यां मा वो भयं भूद्विमलाः स्थ सर्वे ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥ ९४७४ ॥

तुम लोग सुखपूर्वक प्रजोत्पादन करके देवलोकमें फिर अनायास ही सुख भोग करोगे; अन्तमें सिद्धोंके बीच तुम्हारी गिनती होगी; तुम जैसे निर्मल तथा निष्पाप लोगोंको भय नहीं है, इससे सब शंका त्यागके प्रसन्न रहो ॥ ६९ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७१ ॥ ९४७४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७२ :

युधिष्ठिर उवाच—

अहो धर्मिष्ठता तात वृत्रस्यामिततेजसः ।
यस्य विज्ञानमतुलं विष्णोर्भक्तिश्च तादृशी ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरकी धर्मिष्ठतासे आश्चर्य होता है। उसका जैसा अनन्य-साधारण विज्ञान था, भगवान् विष्णुके प्रति उसकी भक्ति भी वैसीही थी ॥१॥

दुर्विज्ञेयमिदं तात विष्णोरमिततेजसः ।
कथं वा राजशार्दूल पदं तज्ज्ञातवानसौ ॥ २ ॥

हे तात ! असीम तेजस्वी महिमासे युक्त भगवान् विष्णुके स्वरूपका ज्ञान अत्यन्त दुर्विज्ञेय है; उसे वह तत्त्व किस प्रकार मालूम हुआ ? ॥ २ ॥

भवता कथितं ह्येतच्छ्रद्दधे चाहमच्युत ।
भूयस्तु मे समुत्पन्ना बुद्धिरव्यक्तदर्शनात् ॥ ३ ॥

हे अच्युत ! आपने जो वृत्र विषयके अस्खलित वचन कहे, उसमें मेरी श्रद्धा हो रही है; क्योंकि आप सत्यही कहते हैं; इस अन्यतर कोटि निश्चायक विज्ञानके अभावसे फिर मुझे प्रश्न करनेकी इच्छा हुई है ॥ ३ ॥

कथं विनिहतो वृत्रः शक्रेण भरतर्षभ ।
धर्मिष्ठो विष्णुभक्तश्च तत्त्वज्ञश्च पदान्वये ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! वृत्रासुर धर्मिष्ठ, विष्णुभक्त और वेदान्त वाक्यके अर्थ विचार विषयमें तत्वज्ञ था; तब किस प्रकार वह इन्द्रके जरिये मारा गया ? ॥ ४ ॥

एतन्मे संशयं ब्रूहि पृच्छतो भरतर्षभ ।
वृत्रस्तु राजशार्दूल यथा शक्रेण निर्जितः ॥ ५ ॥

तब मुझे यही सन्देह होरहा है, इसलिये प्रश्न करता हूं, आप मेरे निकट यह विषय वर्णन करिये । हे भरतप्रवर पितामह ! वृत्रासुर जिस प्रकार इन्द्रसे हारा ॥ ५ ॥

यथा चैवाभवद्युद्धं तच्चाचक्ष्व पितामह ।
विस्तरेण महाबाहो परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥

तथा हे महाबाहु पितामह ! जिस भांतिसे उन दोनोंका युद्ध हुआ था, आप उसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये; इस विषयको सुननेकी मुझे बहुतही अभिलाषा है ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच—

रथेनेन्द्रः प्रयातो वै सार्धं देवगणैः पुरा ।
ददर्शाथाग्रतो वृत्रं विष्ठितं पर्वतोपमम् ॥ ७ ॥

भीष्म बोले— पहिले समयमें देवराजने देवताओंके सहित रथपर चढके गमन करते हुए, पुरमें द्वारपर स्थित पर्वतके समान वृत्र दैत्यको देखा ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

योजनानां शतान्यूर्ध्वं पञ्चोच्छ्रितमरिंदम ।
शतानि विस्तरेणाथ त्रीण्येवाभ्यधिकानि तु ॥ ८ ॥

हे शत्रुदमन ! उस समय वृत्र ऊर्ध्वमें पांचसौ योजन ऊंचा, और विस्तारमें तीनसौ योजन आयतरूप धारण किया था ॥ ८ ॥

तत्प्रेक्ष्य तादृशं रूपं त्रैलोक्येनापि दुर्जयम् ।
वृत्रस्य देवाः संत्रस्ता न शान्तिमुपलेभिरे ॥ ९ ॥

वृत्रका त्रैलोक्य–दुर्जय वैसा रूप देखके देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए और किसी भांति शान्ति लाभ न कर सके ॥ ९ ॥

शक्रस्य तु तदा राजन्नूरुस्तम्भो व्यजायत ।
भयाद्वृत्रस्य सहसा दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम् ॥ १० ॥

हे राजन् ! वृत्रके उस उत्तम रूपको देखकर भयसे उस समय सहसा इन्द्रकी दोनों जांघें अकड गयीं ॥ १० ॥

ततो नादः समभवद्वादित्राणां च निस्वनः ।
देवासुराणां सर्वेषां तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ॥ ११ ॥

अनन्तर सब देव और असुरोंका वह युद्ध उपस्थित होनेपर महान् सिंहनाद और युद्धके बाजोंके शब्द होने लगे ॥ ११ ॥

अथ वृत्रस्य कौरव्य दृष्ट्वा शक्रमुपस्थितम् ।
न संभ्रमो न भीः काचिदास्था वा समजायत ॥ १२ ॥

हे कुरुकुलधुरन्धर ! देवेन्द्रको उपस्थित देखके वृत्रासुरके अन्तःकरणमें सम्भ्रम, भय वा चिन्ता नहीं हुई, तथा इन्द्रके साथ युद्धकी चेष्टा भी नहीं हुई ॥ १२ ॥

ततः समभवद्युद्धं त्रैलोक्यस्य भयंकरम् ।
शक्रस्य च सुरेन्द्रस्य वृत्रस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥

अनन्तर सुरराज शक्र और महानुभाव वृत्रासुरका त्रिलोकभयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १३ ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
शिलाभिर्विविधाभिश्च कार्मुकैश्च महास्वनैः ॥ १४ ॥

तलवार, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, अनेक तरहकी शिला, महाशब्दयुक्त धनुष्य, ॥ १४ ॥

अस्त्रैश्च विविधैर्दिव्यैः पावकोल्काभिरेव च ।
देवासुरैस्ततः सैन्यैः सर्वमासीत्समाकुलम् ॥ १५ ॥

अनेक प्रकारके दिव्य शस्त्र–अस्त्र, अग्नि और उल्का समूहसे देवासुर सेनाके जरिये सब जगत् व्याप्त होने लगा ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पितामहपुरोगाश्च सर्वे देवगणास्तथा ।
ऋषयश्च महाभागास्तद्युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥ १६ ॥

प्रजापति आदि सब देवताओं और महानुभाव ऋषियोंने उस युद्ध देखनेके लिये आगमन किया ॥ १६ ॥

विमानाग्र्यैर्महाराज सिद्धाश्च भरतर्षभ ।
गन्धर्वाश्च विमानाग्र्यैरप्सरोभिः समागमन् ॥ १७ ॥

हे भरतप्रवर महाराज ! सिद्ध और गन्धर्व लोग अप्सराओंके सहित विमानोंमें चढके उस स्थानमें इकट्ठे हुए थे ॥ १७ ॥

ततोऽन्तरिक्षमावृत्य वृत्रो धर्मभृतां वरः ।
अश्मवर्षेण देवेन्द्रं पर्वतात्समवाकिरत् ॥ १८ ॥

अनन्तर धार्मिकप्रवर वृत्रासुरने पत्थरोंकी तथा पर्वतोंकी वर्षासे शीघ्र ही आकाशतलको परिपूरित करते हुए देवेन्द्रको छिपा दिया ॥ १८ ॥

ततो देवगणाः क्रुद्धाः सर्वतः शस्त्रवृष्टिभिः ।
अश्मवर्षमपोहन्त वृत्रप्रेरितमाहवे ॥ १९ ॥

तब देवता लोगोंने क्रुद्ध होकर सब प्रकारसे शस्त्रोंकी वर्षा करके युद्धमें वृत्रासुरकी पत्थरवर्षाको नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥

वृत्रश्च कुरुशार्दूल महामायो महाबलः ।
मोहयामास देवेन्द्रं मायायुद्धेन सर्वतः ॥ २० ॥

हे कुरुवर ! महामायावी महाबली वृत्रासुरने मायायुद्धसे देवेन्द्रको सब ओरसे मोहित किया ॥ २० ॥

तस्य वृत्रार्दितस्याथ मोह आसीच्छतक्रतोः ।
रथंतरेण तं तत्र वसिष्ठः समबोधयत् ॥ २१ ॥

जब इन्द्र वृत्रके जरिये अत्यन्त पीडित हुए, तब उन्हें मोह उत्पन्न हुआ; उस समय महर्षि वशिष्ठने रथन्तर साम उच्चारण करके उन्हें चैतन्य किया ॥ २१ ॥

वसिष्ठ उवाच—

देवश्रेष्ठोऽसि देवेन्द्र सुरारिविनिबर्हण ।
त्रैलोक्यबलसंयुक्तः कस्माच्छक्र विषीदसि ॥ २२ ॥

वसिष्ठ बोले— हे दैत्यदानवनिषूदन देवराज ! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ और तीनों लोकोंके बलसे युक्त हो, इसलिये किसलिये विषाद कर रहे हो ? ॥ २२ ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवश्चैव जगत्प्रभुः ।
सोमश्च भगवान्देवः सर्वे च परमर्षयः ॥ २३ ॥

ये जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भगवान् सोमदेव तथा सब महर्षि लोग विद्यमान हैं ॥२३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मा कार्षीः कश्मलं शक्र कश्चिदेवेतरो यथा ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि शत्रुं सुरेश्वर ॥ २४ ॥

हे सुराधिप शक्र ! इसलिये तुम्हें साधारण पुरुषोंकी भांति मुग्ध न होना चाहिये; युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका अवलम्बन करके शत्रुओंका संहार करो ॥ २४ ॥

एष लोकगुरुस्त्र्यक्षः सर्वलोकनमस्कृतः ।
निरीक्षते त्वां भगवांस्त्यज मोहं सुरेश्वर ॥ २५ ॥

हे सुरपति ! ये सब लोकोंके नमस्कृत भगवान् त्रिलोचन शिव तुम्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, इसलिये तुम मोह परित्याग करो ॥ २५ ॥

एते ब्रह्मर्षयश्चैव बृहस्पतिपुरोगमाः ।
स्तवेन शक्र दिव्येन स्तुवन्ति त्वां जयाय वै ॥ २६ ॥

हे शक्र ! ये सब बृहस्पति आदि ब्रह्मर्षि लोग जयके निमित्त दिव्य स्तवसे तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥

भीष्म उवाच—

एवं संबोध्यमानस्य वसिष्ठेन महात्मना ।
अतीव वासवस्यासीद्बलमुत्तमतेजसः ॥ २७ ॥

भीष्म बोले— महानुभाव वशिष्ठ मुनिने जब इस प्रकार इन्द्रको चैतन्य किया, तब प्रबल पराक्रमी सुरराजका पराक्रम अत्यन्त वर्द्धित हुआ ॥ २७ ॥

ततो बुद्धिमुपागम्य भगवान्पाकशासनः ।
योगेन महता युक्तस्तां मायां व्यपकर्षत ॥ २८ ॥

अनन्तर भगवान् पाकशासनने बुद्धि स्थिर करके महत् योगयुक्त होकर वृत्रासुरकी माया दूर की ॥ २८ ॥

ततोऽङ्गिरःसुतः श्रीमांस्ते चैव परमर्षयः ।
दृष्ट्वा वृत्रस्य विक्रान्तमुपगम्य महेश्वरम् ।
ऊचुर्वृत्रविनाशार्थं लोकानां हितकाम्यया ॥ २९ ॥

अङ्गिराके पुत्र श्रीमान् बृहस्पति और श्रेष्ठ महर्षियोंने वृत्रासुरका विक्रम देखकर, सब लोकोंकी हितकामनासे महादेवके निकट जाके उस वृत्रासुरके नाशके निमित्त प्रार्थना की ॥ २९ ॥

ततो भगवतस्तेजो ज्वरो भूत्वा जगत्पतेः ।
समाविशन्महारौद्रं वृत्रं दैत्यवरं तदा ॥ ३० ॥

अनन्तर जगत्पति भगवान् महादेवका तेज ज्वररूप धारण करके उसही समय महाभयंकर दैत्य श्रेष्ठ वृत्रके शरीरमें प्रविष्ट हुआ ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्णुश्च भगवान्देवः सर्वलोकाभिपूजितः ।
ऐन्द्रं समाविशद्वज्रं लोकसंरक्षणे रतः ॥ ३१ ॥

और लोकरक्षामें तत्पर सब लोकपूजित भगवान् विष्णुने देवराजके वज्रमें प्रवेश किया ॥३१॥

ततो बृहस्पतिर्धीमानुपागम्य शतक्रतुम् ।
वसिष्ठश्च महातेजाः सर्वे च परमर्षयः ॥ ३२ ॥
ते समासाद्य वरदं वासवं लोकपूजितम् ।
ऊचुरेकाग्रमनसो जहि वृत्रमिति प्रभो ॥ ३३ ॥

अनन्तर बुद्धि शक्तिसे युक्त बृहस्पति, महातेजस्वी वशिष्ठ और वे सब महर्षि लोग लोकपूजित वरदाता इन्द्रके निकट जाके एकाग्रचित्तसे यह वचन बोले कि, हे देवेश ! तुम अब वृत्रासुरका वध करो ॥ ३२-३३ ॥

महेश्वर उवाच—

एष वृत्रो महाञ्शक्र बलेन महता वृतः ।
विश्वात्मा सर्वगश्चैव बहुमायश्च विश्रुतः ॥ ३४ ॥

महेश्वर बोले— हे शक्र ! यह महान् वृत्रासुर स्वयं प्रबल है और महत् बलसमूहसे परिपूरित हुआ है; यह पुरुष विश्वव्यापी और सर्वत्रगामी तथा अनेक प्रकार मायाजाल फैला सकता है, इस ही कारण विख्यात है ॥ ३४ ॥

तदेनमसुरश्रेष्ठं त्रैलोक्येनापि दुर्जयम् ।
जहि त्वं योगमास्थाय मावमंस्थाः सुरेश्वर ॥ ३५ ॥

हे सुरेश्वर ! इसलिये तुम योग अवलम्बन करके इस त्रिलोकदुर्जय दानवश्रेष्ठका वध करो, अवज्ञा मत करो ॥ ३५ ॥

अनेन हि तपस्तप्तं बलार्थममराधिप ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि ब्रह्मा चास्मै वरं ददौ ॥ ३६ ॥

हे देवराज ! इस वृत्रासुरने बलके निमित्त साठ हजार वर्ष पर्यन्त तपस्या की थी; ब्रह्माने भी इसे मनोवाञ्छित वर दिया था ॥ ३६ ॥

महत्त्वं योगिनां चैव महामायत्वमेव च ।
महाबलत्वं च तथा तेजश्चाग्र्यं सुरेश्वर ॥ ३७ ॥

हे सुरेश्वर ! उन्होंने इसे योगियोंकी महत्ता, महामायत्व, महान बल और श्रेष्ठ तेजस्विता प्रदान किया है ॥ ३७ ॥

एतद्वै मामकं तेजः समाविशति वासव ।
वृत्रमेनं त्वमप्येवं जहि वज्रेण दानवम् ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! यह मेरा तेज शीघ्र तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है, तुम इस ही तेजसे तेजस्वी होकर वज्रसे इस ज्वरके कारण व्यग्र दानवका नाश करो ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

शक्र उवाच—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन दितिजं सुदुरासदम् ।
वज्रेण निहनिष्यामि पश्यतस्ते सुरर्षभ ॥ ३९ ॥

देवराज बोले—हे सुरश्रेष्ठ भगवन्! आपकी कृपासे मैं आपके सन्मुखमें ही इस दुरासद दानवको वज्रसे मारूंगा ॥ ३९ ॥

भीष्म उवाच—

आविश्यमाने दैत्ये तु ज्वरेणाथ महासुरे ।
देवतानामृषीणां च हर्षान्नादो महानभूत् ॥ ४० ॥

भीष्म बोले— महासुर वृत्रासुरके शरीरमें शैवज्वर प्रविष्ट होनेपर देवता और ऋषियोंमें महान् हर्षध्वनि उत्पन्न हुई ॥ ४० ॥

ततो दुन्दुभयश्चैव शङ्खाश्च सुमहास्वनाः ।
मुरजा डिण्डिमाश्चैव प्रावाद्यन्त सहस्रशः ॥ ४१ ॥

अनन्तर सहस्रों नगाडे, जोरसे बजनेवाले शंख, पखावज और डिण्डिम आदि बाजे बजने लगे ॥ ४१ ॥

असुराणां तु सर्वेषां स्मृतिलोपोऽभवन्महान् ।
प्रज्ञानाशश्च बलवान्क्षणेन समपद्यत ॥ ४२ ॥

सब असुरोंकी एकबारगी स्मृति लुप्त हो गई, क्षणभरके बीच उनकी प्रबल बुद्धिका नाश हुआ ॥ ४२ ॥

तमाविष्टमथो ज्ञात्वा ऋषयो देवतास्तथा ।
स्तुवन्तः शक्रमीशानं तथा प्राचोदयन्नपि ॥ ४३ ॥

इस प्रकार देवता और ऋषि लोग इन्द्रके शरीरमें शिवतेजको प्रविष्ट हुआ जानके प्रशंसा वाक्यसे उनका उत्साह बढाते हुए वृत्रवधके लिये प्रेरणा देने लगे ॥ ४३ ॥

रथस्थस्य हि शक्रस्य युद्धकाले महात्मनः ।
ऋषिभिः स्तूयमानस्य रूपमासीत्सुदुर्दृशम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥ ९५१८ ॥

युद्धके समय जब महानुभाव महेन्द्र रथमें चढके ऋषियोंसे स्तुतियुक्त हुए, उस समय उनका रूप देखनेके लिये भी अत्यन्त कठिन होगया ॥ ४४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७२ ॥ ९५१८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७३ :

भीष्म उवाच—

वृत्रस्य तु महाराज ज्वराविष्टस्य सर्वशः ।
अभवन्यानि लिङ्गानि शरीरे तानि मे शृणु ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे महाराज ! जब वृत्रासुर सब तरहसे ज्वरके वशमें हुआ तब उस समय उसके शरीरसे जो सब लक्षण प्रकाशित हुए थे, उसे सुनो ॥ १ ॥

ज्वलितास्योऽभवद्घोरो वैवर्ण्यं चागमत्परम् ।
गात्रकम्पश्च सुमहाञ्श्वासश्चाप्यभवन्महान् ।
रोमहर्षश्च तीव्रोऽभून्निःश्वासश्च महानृप ॥ २ ॥

उसका मुख अत्यन्त प्रज्वलित हो और भयंकर विवर्ण होगया, उसका शरीर अत्यन्त ही कांपने लगा, वेगसे श्वास बढने लगा, शरीरमें तीव्र रूपसे रोएं खडे होगये और लम्बी सांस चलनी आरम्भ हुई ॥ २ ॥

शिवा चाशिवसंकाशा तस्य वक्त्रात्सुदारुणा ।
निष्पपात महाघोरा स्मृतिः सा तस्य भारत ।
उल्काश्च ज्वलितास्तस्य दीप्ताः पार्श्वे प्रपेदिरे ॥ ३ ॥

उसके मुखसे अशिवरूप अत्यन्त दारुण महाघोर रूपवाली सियारी निकली, हे भारत ! वही उनकी स्मृति शक्ति थी । प्रज्वलित और प्रकाशमान उल्काएं उसके दोनों पार्श्व भागमें गिरने लगीं ॥ ३ ॥

गृध्रकङ्कवडाश्चैव वाचोऽमुञ्चन्सुदारुणाः ।
वृत्रस्योपरि संहृष्टाश्चक्रवत्परिबभ्रमुः ॥ ४ ॥

गृध्र, कङ्क और वड आदि भयंकर पक्षी संन्तुष्ट चित्तसे वृत्रासुरके ऊपर इकठे होकर चक्रकी भांति भ्रमण करते हुए दारुण शब्द करने लगे ॥ ४ ॥

ततस्तं रथमास्थाय देवाप्यायितमाहवे ।
वज्रोद्यतकरः शक्रस्तं दैत्यं प्रत्यवैक्षत ॥ ५ ॥

अनन्तर महादेवके तेजसे परिपुष्ट सुरराजने उस रथपर चढके हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरकी ओर देखा ॥ ५ ॥

अमानुषमथो नादं स मुमोच महासुरः ।
व्यजृम्भत च राजेन्द्र तीव्रज्वरसमन्वितः ।
अथास्य जृम्भतः शक्रस्ततो वज्रमवासृजत् ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! उस समय तीव्रज्वरसे संयुक्त होकर वह महासुर अमानुष शब्द करके जमुहाई लेने लगा । जब वृत्र जमुहाई ले रहा था उस ही समय इन्द्रने उसके ऊपर वज्र चलाया ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स वज्रः सुमहातेजाः कालाग्निसदृशोपमः ।
क्षिप्रमेव महाकायं वृत्रं दैत्यमपातयत् ॥ ७ ॥

उस कालाग्नि समान अत्यन्त महत् तेजसे युक्त वज्रने शीघ्रही महाकाय वृत्रासुरको मारके गिरा दिया ॥ ७ ॥

ततो नादः समभवत्पुनरेव समन्ततः ।
वृत्रं विनिहतं दृष्ट्वा देवानां भरतर्षभ ॥ ८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर वृत्रासुरको मारा हुआ देखके चारों ओरसे फिर देवताओंकी हर्षध्वनि उत्पन्न हुई ॥ ८ ॥

वृत्रं तु हत्वा भगवान्दानवारिर्महायशाः ।
वज्रेण विष्णुयुक्तेन दिवमेव समाविशत् ॥ ९ ॥

दानव शत्रु महायशस्वी भगवान् देवराजने विष्णुके तेजसे युक्त वज्रसे वृत्रासुरको मारके फिर स्वर्गलोकमें ही प्रवेश किया ॥ ९ ॥

अथ वृत्रस्य कौरव्य शरीरादमिनिःसृता ।
ब्रह्महत्या महाघोरा रौद्रा लोकभयावहा ॥ १० ॥

हे कुरुनन्दन ! अनन्तर वृत्रासुरके मृत शरीरसे लोकभयानक रौद्ररूपिणी क्रूर ब्रह्महत्या बाहर निकली ॥ १० ॥

करालदशना भीमा विकृता कृष्णपिङ्गला ।
प्रकीर्णमूर्धजा चैव घोरनेत्रा च भारत ॥ ११ ॥

हे भरतसत्तम ! उसके सब दांत अत्यन्त विकराल थे, उसका रूप भयंकर और विकृत था, रङ्ग काला और पीला था, उसके केश बिखरे हुए थे और घोररूपी दोनों नेत्र थे ॥ ११ ॥

कपालमालिनी चैव कृशा च भरतर्षभ ।
रुधिरार्द्रा च धर्मज्ञ चीरवस्त्रनिवासिनी ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! उसके गलेमें नरमुण्डोंकी माला थी, वह कृश थी, वह रुधिरसे भींगी हुई, और चीर वल्कल वस्त्र धारण करनेवाली थी ॥ १२ ॥

साभिनिष्क्रम्य राजेन्द्र तादृग्रूपा भयावहा ।
वज्रिणं मृगयामास तदा भरतसत्तम ॥ १३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजेन्द्र ! वैसी भयङ्कर रूपवाली वह स्त्री निकलते ही वज्रधारी इन्द्रको खोजने लगी ॥ १३ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य वृत्रहा कुरुनन्दन ।
स्वर्गायाभिमुखः प्रायाल्लोकानां हितकाम्यया ॥ १४ ॥

हे कुरुनन्दन ! कुछ कालके अनन्तर वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र सब लोकोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी ओर जारहे थे ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विसान्निःसरमाणं तु दृष्ट्वा शक्रं महौजसम् ।
कण्ठे जग्राह देवेन्द्रं सुलग्ना चाभवत्तदा ॥ १५ ॥

उस समय उस ब्रह्महत्याने महातेजस्वी शक्रको युद्धभूमिसे निकला हुआ देखकर उसने उन्हें कण्ठमें ग्रहण किया और उस ही समयसे उनके शरीरमें लग गई ॥ १५ ॥

स हि तस्मिन्समुत्पन्ने ब्रह्महत्याकृते भये ।
नलिन्यां विसमध्यस्थो बभूवाब्दगणान्बहून् ॥ १६ ॥

जब देवराजको ब्रह्महत्याका भय उत्पन्न हुआ, तो उससे छुडानेके लिये भागकर उन्होंने कमलकी मृणालके बीच छिपकर अनेक वर्षोंतक वास किया था ॥ १६ ॥

अनुसृत्य तु यत्नात्स तया वै ब्रह्महत्यया ।
तदा गृहीतः कौरव्य निश्चेष्टः समपद्यत ॥ १७ ॥

हे कौरव ! ब्रह्महत्याने भी उनका पीछा कर यत्नपूर्वक उन्हें वहां ग्रहण किया, तब वह अत्यन्त निस्तेज होगये ॥ १७ ॥

तस्या व्यपोहने शक्रः परं यत्नं चकार ह ।
न चाशकत्तां देवेन्द्रो ब्रह्महत्यां व्यपोहितुम् ॥ १८ ॥

देवेन्द्रने उससे छुटकारा पानेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी उस ब्रह्महत्यासे न छूट सके ॥ १८ ॥

गृहीत एव तु तया देवेन्द्रो भरतर्षभ ।
पितामहमुपागम्य शिरसा प्रत्यपूजयत् ॥ १९ ॥

हे भरतकुलशिरोमणि ! उसने देवेन्द्रको पकडकर ही रखा था; अनन्तर सुरराजने उस ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होकर पितामहके निकट जाके सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया ॥ १९ ॥

ज्ञात्वा गृहीतं शक्रं तु द्विजप्रवरहत्यया ।
ब्रह्मा संचिन्तयामास तदा भरतसत्तम ॥ २० ॥

हे भरतसत्तम ! ब्रह्मा उस समय सुरराजको एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके वधसे पैदा हुई ब्रह्महत्यासे आक्रान्त जानके विचार करने लगे ॥ २० ॥

तामुवाच महाबाहो ब्रह्महत्यां पितामहः ।
स्वरेण मधुरेणाथ सान्त्वयन्निव भारत ॥ २१ ॥

हे महाबाहु युधिष्ठिर ! उस समय पितामहने ब्रह्महत्याको मधुर वचनसे धीरज देकर कहा ॥ २१ ॥

मुच्यतां त्रिदशेन्द्रोऽयं मत्प्रियं कुरु भामिनि ।
ब्रूहि किं ते करोम्यद्य कामं कं त्वमिहेच्छसि ॥ २२ ॥

हे भाविनि ! तुम इस देवराजको छोडके हमारा प्रिय कार्य साधन करो । कहो, मैं तुम्हारी कौनसी कामना सिद्ध करूं, इस समय तुम क्या अभिलाष करती हो ? ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्रह्महत्योवाच—

त्रिलोकपूजिते देवे प्रीते त्रैलोक्यकर्तरि ।
कृतमेवेह मन्येऽहं निवासं तु विधत्स्व मे ॥ २३ ॥

ब्रह्महत्या बोली— आप त्रिलोकपूजित और तीनों लोकोंके कर्त्ता हैं, जब परमदेव आप प्रसन्न हुए हैं, तब मैं अपनी सब कामनाओंको पूर्ण हुआ ही समझती हूं। अब मैं कहां वास करूंगी, आप इस विषयमें कोई उपाय निश्चय करिये ॥ २३ ॥

त्वया कृतेयं मर्यादा लोकसंरक्षणार्थिना ।
स्थापना वै सुमहती त्वया देव प्रवर्तिता ॥ २४ ॥

आपने लोकरक्षाके लिये यह महती मर्यादा स्थापित की है। हे देव! आपने ही इस महत्त्वपूर्ण मर्यादाकी स्थापना करके इसे चलाया है ॥ २४ ॥

प्रीते तु त्वयि धर्मज्ञ सर्वलोकेश्वरे प्रभो ।
शक्रादपगमिष्यामि निवासं तु विधत्स्व मे ॥ २५ ॥

हे सर्वलोकेश्वर सर्वलोकनियामक धर्मज्ञ प्रभु! आप जब प्रसन्न हुए हैं, तब मैं अवश्य ही सुरराजके शरीरसे अन्तर्द्धान हूंगी; इससे अब मेरे वास करनेके लिये स्थान खोजिये ॥ २५ ॥

भीष्म उवाच—

तथेति तां प्राह तदा ब्रह्महत्यां पितामहः ।
उपायतः स शक्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहत ॥ २६ ॥

भीष्म बोले— प्रजापतिने उस समय ब्रह्महत्यासे कहा, कि "वैसाही होगा।" फिर उन्होंने यत्नके सहित उसे इन्द्रके शरीरसे पृथक् किया ॥ २६ ॥

ततः स्वयंभुवा ध्यातस्तत्र वह्निर्महात्मना ।
ब्रह्माणमुपसंगम्य ततो वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

अनन्तर महानुभाव स्वयम्भूने वहां अग्निको स्मरण किया; अग्निने स्मरण करते ही उनके समीप आके कहा ॥ २७ ॥

प्राप्तोऽस्मि भगवन्देव त्वत्सकाशमरिंदम ।
यत्कर्तव्यं मया देव तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २८ ॥

हे भगवन्! मैं आपके निकट उपस्थित हूं। हे शत्रुनाशन देव! अब मुझे जो कुछ करना हो, उसके लिये आप आज्ञा करिये ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच—

बहुधा विभजिष्यामि ब्रह्महत्यामिमामहम् ।
शक्रस्याद्य विमोक्षार्थं चतुर्भागं प्रतीच्छ मे ॥ २९ ॥

ब्रह्मा बोले— आज मैं इन्द्रके छुटकाराके निमित्त इस ब्रह्महत्याको कई भागोंमें विभक्त करूंगा, इसलिये तुम इसके चौथे भागका एक अंश ग्रहण करो ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अग्निरुवाच—

मम मोक्षस्य कोऽन्तो वै ब्रह्मन्ध्यायस्व वै प्रभो ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं तत्त्वतो लोकपूजित ॥ ३० ॥

अग्निदेव बोले– हे लोकपूजित प्रभु ब्रह्मन् ! इस ब्रह्महत्यासे मैं किस प्रकार मुक्त हूंगा, इसकी अन्तिम अवधि क्या होगी, उसका आप विचार करिये; मैं इसे ही यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच—

यस्त्वां ज्वलन्तमासाद्य स्वयं वै मानवः क्वचित् ।
बीजौषधिरसैर्वह्ने न यक्ष्यति तमोवृतः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मा बोले– हे हव्यवाह अग्नि ! जो मनुष्य तमोगुण–मोहवशसे तुम्हें जलती हुई देखके भी बीजाञ्जलि और सोम रससे तर्पित न करेगा ॥ ३१ ॥

तमेषा यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति ।
ब्रह्महत्या हव्यवाह व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ३२ ॥

यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करके उसमें ही निवास करेगी; इसलिये तुम अपनी मानसिक चिन्ता दूर करो ॥ ३२ ॥

भीष्म उवाच—

इत्युक्तः प्रतिजग्राह तद्वचो हव्यकव्यभुक् ।
पितामहस्य भगवांस्तथा च तदभूत्प्रभो ॥ ३३ ॥

भीष्म बोले– हव्यकव्यके भोक्ता भगवान् अग्निने ऐसा सुनके पितामहका यह वचन अङ्गीकार करके उस ही समय ब्रह्महत्याका एक चौथाई भागसे आक्रान्त हुए ॥ ३३ ॥

ततो वृक्षौषधितृणं समाहूय पितामहः ।
इममर्थं महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ३४ ॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर पितामहने वृक्ष, औषधी और तृणोंको आह्वान करके इस विषयको कहना आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

ततो वृक्षौषधितृणं तथैवोक्तं यथातथम् ।
व्यथितं वह्निवद्राजन्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! वृक्ष, औषधि और तृणसमूह ऊपर कहे हुए ब्रह्महत्याके विषयको सुनके अग्निकी भांति दुःखित होके ब्रह्मासे यह वचन बोले– ॥ ३५ ॥

अस्माकं ब्रह्महत्यातो कोऽन्तो लोकपितामह ।
स्वभावनिहतानस्मान्न पुनर्हन्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥

हे लोकपितामह ! हम ब्रह्महत्यासे कितने समयमें मुक्त होंगे ? हम लोग तो स्वभावसे पहलेसेही अभिहत होरहे हैं, इसलिये फिर हम लोगोंको निहत करना आपको उचित नहीं है ॥३६॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वयमग्निं तथा शीतं वर्षं च पवनेरितम् ।
सहामः सततं देव तथा छेदनभेदनम् ॥ ३७ ॥

हे देव ! हम अग्नि, सर्दी, वर्षा, वायुके वेग और छेद–भेदको सदा सहा करते हैं ॥ ३७ ॥

ब्रह्महत्यामिमामद्य भवतः शासनाद्वयम् ।
ग्रहीष्यामस्त्रिलोकेश मोक्षं चिन्तयतां भवान् ॥ ३८ ॥

हे त्रिलोकेश्वर ! अब आपकी आज्ञासे इस ब्रह्महत्याको ग्रहण करेंगे; परन्तु आप हम लोगोंको इससे छूटनेका उपाय तो सोचिये ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच—

पर्वकाले तु संप्राप्ते यो वै छेदनभेदनम् ।
करिष्यति नरो मोहात्तमेषानुगमिष्यति ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा बोले– संक्रान्ति, ग्रहण, पूर्णिमा, अमावास्या आदि पर्वकालमें जो मनुष्य मोहके वशमें होकर तुम लोगोंको छेदन करेगा वा काटेगा, यह ब्रह्महत्या उसहीकी अनुगत होगी ॥ ३९ ॥

भीष्म उवाच—

ततो वृक्षौषधितृणमेवमुक्तं महात्मना ।
ब्रह्माणमभिसंपूज्य जगामाशु यथागतम् ॥ ४० ॥

भीष्म बोले– अनन्तर वृक्ष, औषधि और तृणसमूह ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उनकी सब तरहसे पूजा करके शीघ्रही निज निज स्थानपर चले गये ॥ ४० ॥

आहूयाप्सरसो देवस्ततो लोकपितामहः ।
वाचा मधुरया प्राह सान्त्वयन्निव भारत ॥ ४१ ॥

हे भारत ! इसके अनन्तर लोकपितामह अप्सराओंको आह्वान करके उन्हें मधुर वचनसे धीरज देके बोले– ॥ ४१ ॥

इयमिन्द्रादनुप्राप्ता ब्रह्महत्या वराङ्गनाः ।
चतुर्थमस्या भागं हि मयोक्ताः संप्रतीच्छत ॥ ४२ ॥

हे वराङ्गना ! यह ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरसे निकली है, इसलिये मैं कहता हूं, कि तुम लोग इसका एक चतुर्थ अंश ग्रहण करो ॥ ४२ ॥

अप्सरस ऊचुः—

ग्रहणे कृतबुद्धीनां देवेश तव शासनात् ।
मोक्षं समयतोऽस्माकं चिन्तयस्व पितामह ॥ ४३ ॥

अप्सराएं बोलीं– हे देवेश पितामह ! आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसे ग्रहण करनेमें सम्मत हुई हैं, परन्तु इससे जिस प्रकार हमारी निष्कृति हो, आप वही उपाय करिये ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Vimalananda Puri (Prabhuji) . Veda Vidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्रह्मोवाच—

रजस्वलासु नारीषु यो वै मैथुनमाचरेत् ।
तमेषा यास्यति क्षिप्रं व्येतु वो मानसो ज्वरः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मा बोले– जो पुरुष रजस्वला स्त्रियोंके साथ मैथुन करेगा, यह ब्रह्महत्या उस ही समय उसपर आक्रमण करेगी; इसलिये तुम लोग अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो ॥ ४४ ॥

भीष्म उवाच—

तथेति हृष्टमनस उक्त्वाथाप्सरसां गणाः ।
स्वानि स्थानानि संप्राप्य रेमिरे भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भीष्म बोले– हे भरतप्रवर ! अप्सराएं "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके प्रसन्नचित्त होकर निज निज स्थानमें जाकर क्रीडा करने लगीं ॥ ४५ ॥

ततस्त्रिलोककृद्देवः पुनरेव महातपाः ।
अपः संचिन्तयामास ध्यातास्ताश्चाप्यथागमन् ॥ ४६ ॥

फिर महातपस्वी त्रिलोककर्त्ता प्रजापतिने जलका स्मरण किया; उनके स्मरण करते ही वह आके उपस्थित हुआ ॥ ४६ ॥

तास्तु सर्वाः समागम्य ब्रह्माणममितौजसम् ।
इदमूचुर्वचो राजन्प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ४७ ॥

हे राजन् ! वे सब अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माके निकट जाके उन्हें प्रणाम करके यह वचन बोले– ॥ ४७ ॥

इमाः स्म देव संप्राप्तास्त्वत्सकाशमरिंदम ।
शासनात्तव देवेश समाज्ञापय नो विभो ॥ ४८ ॥

हे देव अरिन्दम ! आपके शासनके अनुसार हम आपके निकट आये हैं, हे प्रभु लोकेश ! हमें क्या करना होगा, उसके लिये आज्ञा करिये ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच—

इयं वृत्रादनुप्राप्ता पुरुहूतं महाभया ।
ब्रह्महत्या चतुर्थांशमस्या यूयं प्रतीच्छत ॥ ४९ ॥

ब्रह्मा बोले– यह महाभयावहा ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे प्रकट होके इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, इस समय तुम इसका एक चौथाई अंश ग्रहण करो ॥ ४९ ॥

आप ऊचुः—

एवं भवतु लोकेश यथा वदसि नः प्रभो ।
मोक्षं समयतोऽस्माकं संचिन्तयितुमर्हसि ॥ ५० ॥

जल बोला– हे प्रभु लोकेश ! आपने मुझसे जो कहा है वही होगा, परन्तु समयके अनुसार मैं जिस प्रकार इससे छूटूं आपको वैसा ही उपाय सोचना उचित है ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वं हि देवेश सर्वस्य जगतः परमो गुरुः ।
कोऽन्यः प्रसादो हि भवेद्यः कृच्छ्रान्नः समुद्धरेत् ॥ ५१ ॥

हे देवेश ! आप ही सब जगत्के एक मात्र परम गुरु हैं; आपको छोडके दूसरे किसको प्रसन्न करें, जो हमें इस क्लेशसे उबारेगा ? आप इससे हमारा उद्धार करें, इससे दूसरी और कौनसी कृपा होगी ॥ ५१ ॥

ब्रह्मोवाच—

अल्पा इति मतिं कृत्वा यो नरो बुद्धिमोहितः ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि युष्मासु प्रतिमोक्ष्यति ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा बोले— जो मनुष्य मोहके वशमें होकर अल्प विचार करके तुम्हारे भीतर मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा परित्याग करेगा ॥ ५२ ॥

तमेषा यास्यति क्षिप्रं तत्रैव च निवत्स्यति ।
तथा वो भविता मोक्ष इति सत्यं ब्रवीमि वः ॥ ५३ ॥

यह ब्रह्महत्या शीघ्रही उसे अवलम्बन करेगी और उसमें ही वास करती रहेगी; इस ही प्रकार तुम्हारी इससे निष्कृति होगी, यह मैंने तुम्हारे समीप सत्य कहा है ॥ ५३ ॥

भीष्म उवाच—

ततो विमुच्य देवेन्द्रं ब्रह्महत्या युधिष्ठिर ।
यथानिसृष्टं तं देशमगच्छद्देवशासनात् ॥ ५४ ॥

भीष्म बोले— हे युधिष्ठिर ! अनन्तर ब्रह्माकी आज्ञासे ब्रह्महत्या देवराज इन्द्रको परित्याग करके ऊपर कहे हुए निवास स्थानोंमें गई ॥ ५४ ॥

एवं शक्रेण संप्राप्ता ब्रह्महत्या जनाधिप ।
पितामहमनुज्ञाप्य सोऽश्वमेधमकल्पयत् ॥ ५५ ॥

हे प्रजानाथ ! इस ही प्रकार ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, उन्होंने पितामहकी कृपासे उससे छूटकर अन्तमें उनकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ५५ ॥

श्रूयते हि महाराज संप्राप्ता वासवेन वै ।
ब्रह्महत्या ततः शुद्धिं हयमेधेन लब्धवान् ॥ ५६ ॥

हे महाराज ! हमने सुना है, कि देवराज ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होनेपर शेषमें अश्वमेध यज्ञ करके पवित्र हुए थे ॥ ५६ ॥

समवाप्य श्रियं देवो हत्वारींश्च सहस्रशः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे वासवः पृथिवीपते ॥ ५७ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! देवराज सहस्रों शत्रुओंका संहार करके श्रीसे युक्त होकर अतुल आनन्दित हुए थे ॥ ५७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वृत्रस्य रुधिराच्चैव खुखुण्डाः पार्थ जज्ञिरे ।
द्विजातिभिरभक्ष्यास्ते दीक्षितैश्च तपोधनैः ॥ ५८ ॥

हे पृथापुत्र ! वृत्रासुरके रुधिरसे जो शिखण्डनाम कुक्कुट उत्पन्न हुए थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और विशेष करके दीक्षित तपस्वियोंके लिये अभक्ष्य हैं ॥ ५८ ॥

सर्वावस्थं त्वमप्येषां द्विजातीनां प्रियं कुरु ।
इमे हि भूतले देवाः प्रथिताः कुरुनन्दन ॥ ५९ ॥

हे कुरुनन्दन ! तुम भी सब समयमें इन सब ब्राह्मणोंके प्रिय कार्यको सिद्ध करो; येही पृथ्वी-मण्डल पर देवता रूपसे विख्यात हैं ॥ ५९ ॥

एवं शक्रेण कौरव्य बुद्धिसौक्ष्म्यान्महासुरः ।
उपायपूर्वं निहतो वृत्रोऽथामिततेजसा ॥ ६० ॥

हे कुरुकुलधुरन्धर ! इस ही प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सुरपतिने सूक्ष्मबुद्धिके सहारे उपाय रचके महासुर वृत्रको मारा था ॥ ६० ॥

एवं त्वमपि कौरव्य पृथिव्यामपराजितः ।
भविष्यसि यथा देवः शतक्रतुरमित्रहा ॥ ६१ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! तुम भी शत्रुनाशन देवराज इन्द्रकी भांति अखण्ड पृथ्वीमण्डलपर अपराजित रहोगे ॥ ६१ ॥

ये तु शक्रकथां दिव्यामिमां पर्वसु पर्वसु ।
विप्रमध्ये पठिष्यन्ति न ते प्राप्स्यन्ति किल्बिषम् ॥ ६२ ॥

जो प्रति पर्वमें इस दिव्य देवेन्द्र कथाको विप्रोंके बीच कहेंगे, उन्हें कभी पाप स्पर्श न कर सकेगा ॥ ६२ ॥

इत्येतद्वृत्रमाश्रित्य शक्रस्यात्यद्भुतं महत् ।
कथितं कर्म ते तात किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥ ९५८१ ॥

हे तात ! तुम्हारे निकट यह सुरपति और वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत महत् कर्म वर्णन किया; अब क्या सुननेकी अभिलाषा करते हो ? ॥ ६३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७३ ॥ ९५८१ ॥

: २७४ :

युधिष्ठिर उवाच—

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
अस्ति वृत्रवधादेव विवक्षा मम जायते ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह ! वृत्रवध निबन्धनसे इस विषयमें मुझे यह पूछनेकी इच्छा है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्वरेण मोहितो वृत्रः कथितस्ते जनाधिप ।
निहतो वासवेनेह वज्रेणेति ममानघ ॥ २ ॥

हे निष्पाप जनाधिप ! आपने जो कहा है, कि वृत्रासुर ज्वरसे मोहित होकर इन्द्रके जरिये वज्रसे मारा गया ॥ २ ॥

कथमेष महाप्राज्ञ ज्वरः प्रादुरभूत्कुतः ।
ज्वरोत्पत्तिं निपुणतः श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ ३ ॥

हे महाप्राज्ञ ! वह ज्वर किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुआ था ? उस ज्वरकी उत्पत्तिके विषयको मैं यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच –

शृणु राजञ्ज्वरस्येह संभवं लोकविश्रुतम् ।
विस्तरं चास्य वक्ष्यामि यादृशं चैव भारत ॥ ४ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! इस लोक विख्यात ज्वरकी उत्पत्तिका जैसा विषय है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं, सुनो ॥ ४ ॥

पुरा मेरोर्महाराज शृङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
ज्योतिष्कं नाम सावित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ।
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकेषु भारत ॥ ५ ॥

हे महाराज ! पहले समयमें सुमेरु पर्वतपर त्रिलोकपूजित, सब रत्नोंसे विभूषित और सवितृ-मण्डलाधिष्ठित जोतिष्क नामसे प्रसिद्ध एक शृङ्ग था । हे भारत ! सब लोकोंके बीच वह शृंगही अप्रमेय और अधर्षणीय था ॥ ५ ॥

तत्र देवो गिरितटे हेमधातुविभूषिते ।
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो बभूव ह ॥ ६ ॥

देवोंके देव महादेव सुवर्णभूषित पर्यङ्ककी भांति उस सुवर्णमय धातुसे विभूषित पर्वत शिखरके तटपर बैठकर विराजते थे ॥ ६ ॥

शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वे स्थिता बभौ ।
तथा देवा महात्मानो वसवश्च महौजसः ॥ ७ ॥

शैलराजपुत्री सदा उनके पार्श्ववर्त्तिनी रहके शोभा पारही थीं; और महानुभाव देववृन्द, अत्यन्त तेजस्वी वसुगण, ॥ ७ ॥

तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ।
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैरभिसंवृतः ॥ ८ ॥

भिषग्वर महात्मा दोनों अश्विनीकुमार, गुह्यकोंसे घिरे हुए श्रीमान राजा कुबेर, ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri Tirabeni Nilvarnasi. Digitized by eGangotri

यक्षाणामधिपः श्रीमान्कैलासनिलयः प्रभुः ।
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे ॥ ९ ॥

जो कैलासके यक्षोंके राजा थे; अङ्गिरा आदि तथा अन्य देवऋषि, ॥ ९ ॥

विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ।
अप्सरोगणसंघाश्च समाजग्मुरनेकशः ॥ १० ॥

विश्वावसु गन्धर्व, महर्षि नारद और पर्वत तथा अप्सराओंके अनेक समुदाय वहांपर आराधनाके लिये आते थे ॥ १० ॥

ववौ शिवः सुखो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ।
सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तो महाद्रुमाः ॥ ११ ॥

उस समय विविध सुगन्धियुक्त, सुखस्पर्श, पवित्र और कल्याणकर वायु बहने लगती थी; बडे बडे वृक्ष सब ऋतुओंके पुष्पोंसे युक्त होकर फूलोंसे सुशोभित हुए ॥ ११ ॥

तथा विद्याधराश्चैव सिद्धाश्चैव तपोधनाः ।
महादेवं पशुपतिं पर्युपासन्त भारत ॥ १२ ॥

हे भारत ! विद्याधर, सिद्ध और तपस्वी लोग देवोंके देव पशुपतिकी सब प्रकारसे उपासना करने लगे ॥ १२ ॥

भूतानि च महाराज नानारूपधराण्यथ ।
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः ॥ १३ ॥

हे महाराज ! अनेक रूपवाले भूतवृन्द, महा रौद्र राक्षसगण, महाबलवान् पिशाच ॥ १३ ॥

बहुरूपधरा हृष्टा नानाप्रहरणोद्यताः ।
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थिरे चानलोपमाः ॥ १४ ॥

और महादेवके अनेक रूप तथा नाना शस्त्रोंको धारण करके प्रसन्न चित्तवाले सब सेवक वहां पर अग्निके समान तेजस्वी रूप धरके स्थित थे ॥ १४ ॥

नन्दी च भगवांस्तत्र देवस्यानुमते स्थितः ।
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १५ ॥

भगवान् नन्दी निज तेजसे प्रकाशित होकर प्रज्वलित शूल लेकर महादेवकी आज्ञानुसार वहां खडे थे ॥ १५ ॥

गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ।
पर्युपासत तं देवं रूपिणी कुरुनन्दन ॥ १६ ॥

हे कुरुनन्दन ! सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई सरिद्वरा गङ्गा मूर्त्तिमान् होकर उस देवकी उपासना कर रही थीं ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः ।
देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत ॥ १७ ॥

वह महातेजस्वी भगवान् महादेव इस ही प्रकार देवर्षि और अत्यंत महाभाग देवताओंसे सब प्रकार पूजित होकर वहां निवास करते थे ॥ १७ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत ॥ १८ ॥

कुछ समयके अनन्तर दक्ष नामक प्रजापतिने पूर्वोक्त शास्त्रीय विधानके अनुसार यज्ञ करनेका संकल्प करके उसकी तैयारी आरम्भ कर दी ॥ १८ ॥

ततस्तस्य मखं देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ॥ १९ ॥

इन्द्रादि सब देवता उस समय परस्पर सम्मत होके उनके यज्ञमें जानेके अभिलाषी हुए ॥ १९ ॥

ते विमानैर्महात्मानो ज्वलितैर्ज्वलनप्रभाः ।
देवस्यानुमतेऽगच्छन्गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः ॥ २० ॥

ऐसा सुना जाता है, कि महात्मा देवताओंने उन महादेवकी अनुमतिके अनुसार प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर गङ्गा द्वारमें गमन किया था ॥ २० ॥

प्रस्थिता देवता दृष्ट्वा शैलराजसुता तदा ।
उवाच वचनं साध्वी देवं पशुपतिं पतिम् ॥ २१ ॥

उस समय साध्वी शैलराजपुत्री देवताओंको जाते हुए देखकर निजपति देवोंके देव पशुपतिसे यह वचन बोली ॥ २१ ॥

भगवन्क्व नु यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥ २२ ॥

हे तत्वज्ञ भगवन् ! ये इन्द्र आदि देवता कहां जा रहे हैं ? उसे आप यथार्थ रीतिसे कहिये; मुझे अत्यन्त महान् सन्देह होरहा है ॥ २२ ॥

महेश्वर उवाच—

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः ।
हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥ २३ ॥

महादेव बोले– हे महाभागे ! दक्ष नामक श्रेष्ठ प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है, देवता लोग उसही यज्ञमें गये हैं ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उमा उवाच –

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं नाभिगच्छसि ।
केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ॥ २४ ॥

उमा बोली– आपने किस लिये उस यज्ञमें गमन नहीं किया और किस प्रतिषेधके अनुसार आपका वहां जाना नहीं होता है ? ॥ २४ ॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् ।
यज्ञेषु सर्वेषु मम न भाग उपकल्पितः ॥ २५ ॥

महादेव बोले– हे महाभागे ! पहले समयमें देवताओंने ही ऐसा निश्चय किया था; उन्होंने सभी यज्ञोंमें मेरा भाग कल्पित नहीं किया ॥ २५ ॥

पूर्वोपायोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि ।
न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥ २६ ॥

हे वरवर्णिनी ! पूर्व अनुष्ठानपद्धतिके क्रमसे देवता लोग धर्मके अनुसार मुझे यज्ञभाग प्रदान नहीं करते हैं ॥ २६ ॥

उमा उवाच—

भगवन्सर्वभूतेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः ।
अजेयश्चाप्रधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥ २७ ॥

उमा बोली– हे भगवन् ! आप गुणोंसे सब भूतोंके बीच अत्यन्त प्रभावसे युक्त हैं; तेज, यश और श्रीसम्पत्तिसे सबसे ही अजय और अधृष्य हैं ॥ २७ ॥

अनेन ते महाभाग प्रतिषेधेन भागतः ।
अतीव दुःखमुत्पन्नं वेपथुश्च ममानघ ॥ २८ ॥

हे अनघ महाभाग ! इसलिये आपके यज्ञभाग प्रतिषेधसे मुझे बहुत ही दुःख उत्पन्न हुआ है और अपमानसे मेरा सब शरीर कांप रहा है ॥ २८ ॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्त्वा तु सा देवी देवं पशुपतिं पतिम् ।
तूष्णींभूताभवद्राजन्दह्यमानेन चेतसा ॥ २९ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! देवीने अपने पति देवोंके देव पशुपतिसे ऐसा कहके शोकसे दह्यमान अन्तःकरणसे मौनावलम्बन किया ॥ २९ ॥

अथ देव्या मतं ज्ञात्वा हृद्गतं यच्चिकीर्षितम् ।
स समाज्ञापयामास तिष्ठ त्वमिति नन्दिनम् ॥ ३० ॥

अनन्तर भगवान्ने देवीके हृदयके चिकीर्षित विषयको जानके नन्दीको "तुम यहीं खडे रहो" इस ही प्रकार आज्ञा करी ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो योगबलं कृत्वा सर्वयोगेश्वरेश्वरः ।
तं यज्ञं सुमहातेजा भीमैरनुचरैस्तदा ।
सहसा घातयामास देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ३१ ॥

अन्तमें सर्वयोगेश्वरोंके ईश्वर महातेजस्वी पिनाकधारी महादेवने योगबल अवलम्बन करके भयङ्कर अनुचरोंके सहारे सहसा उस यज्ञका विध्वंस किया ॥ ३१ ॥

केचिन्नादानमुञ्चन्त केचिद्वास्त्रांश्च चक्रिरे ।
रुधिरेणापरे राजंस्तत्राग्निं समवाकिरन् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! भूतोंके बीच किसी किसीने अत्यन्त दारुण शब्द करना आरम्भ किया, कोई विकट रूपसे हंसने लगे, किसीने उस यज्ञस्थलमें रुधिरप्रवाहके जरिये हव्यवाहको पूरित कर दिया ॥ ३२ ॥

केचिद्यूपान्समुत्पाट्य बभ्रमुर्विकृताननाः ।
आस्यैरन्ये चाग्रसन्त तथैव परिचारकान् ॥ ३३ ॥

कोई कोई विकृतानन प्रथमगण यज्ञके यूपोंको उखाडके घूमने लगे, किसी किसीने मुखके जरिये परिचारकोंको ग्रास कर लिया ॥ ३३ ॥

ततः स यज्ञो नृपते वध्यमानः समन्ततः ।
आस्थाय मृगरूपं वै खमेवाभ्यपतत्तदा ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! अनन्तर उस यज्ञने सब प्रकारसे वध्यमान होकर हरिणका रूप धरके आकाशकी ओर गमन किया ॥ ३४ ॥

तं तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः ।
धनुरादाय बाणं च तदान्वसरत प्रभुः ॥ ३५ ॥

निग्रहानिग्रहमें समर्थ शूलपाणिने उस यज्ञको मृगरूप धरके जाते हुए जानके धनुष्य ग्रहण करके बाणसे उसका पीछा किया ॥ ३५ ॥

ततस्तस्य सुरेशस्य क्रोधादमिततेजसः ।
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदबिन्दुर्बभूव ह ॥ ३६ ॥

इसके अनन्तर क्रोधके कारण उस अत्यन्त तेजस्वी महादेवके ललाटसे महाघोर पसीनेकी बूंद प्रकट हुई ॥ ३६ ॥

तस्मिन्पतितमात्रे तु स्वेदबिन्दौ तथा भुवि ।
प्रादुर्बभूव सुमहानग्निः कालानलोपमः ॥ ३७ ॥

वह पसीनेकी बूंद पृथ्वीपर गिरते ही उस समय कालानल सदृश अत्यन्त महान् अग्नि प्रकट हुई ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्र चाजायत तदा पुरुषः पुरुषर्षभ ।
ह्रस्वोऽतिमात्ररक्ताक्षो हरिश्मश्रुर्विभीषणः ॥ ३८ ॥

हे पुरुषप्रवर ! तब उस अग्निसे एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ । वह अत्यन्त ह्रस्व शरीरवाला था; उसके दोनों नेत्र लाल और श्मश्रु पिङ्गलवर्णकी थी ॥ ३८ ॥

ऊर्ध्वकेशोऽतिलोमाङ्गः श्येनोलूकस्तथैव च ।
करालः कृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च ॥ ३९ ॥

केश ऊपरको बढे हुए थे और बाज तथा उलूककी भांति उसका सब शरीर रोमयुक्त था । वह लाल वस्त्र, काला वर्णवाला कराल पुरुष था ॥ ३९ ॥

तं यज्ञं स महासत्त्वोऽदहत्कक्षमिवानलः ।
देवाश्चाप्यद्रवन्सर्वे ततो भीता दिशो दश ॥ ४० ॥

उस महान् शक्तिशाली पुरुषने यज्ञको इस प्रकार जला दिया, जैसे अग्नि तृणसमूहको भस्म करती है । सब देवता लोग उससे डरके दशों दिशाओंमें भाग गये ॥ ४० ॥

तेन तस्मिन्विचरता पुरुषेण विशां पते ।
पृथिवी व्यचलद्राजन्नतीव भरतर्षभ ॥ ४१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उस समय उस पुरुषके भ्रमण करनेसे पृथिवी कंपित होकर अत्यन्त ही विचलित हुई ॥ ४१ ॥

हाहाभूते प्रवृत्ते तु नादे लोकभयंकरे ।
पितामहो महादेवं दर्शयन्प्रत्यभाषत ॥ ४२ ॥

लोकोंको भयभीत करनेवाला हाहाकार शब्द सब ओरसे होने लगा, उसे देखके प्रजापति पितामह महादेवके निकट उपस्थित होकर बोले ॥ ४२ ॥

भवतोऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ।
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया ॥ ४३ ॥

हे प्रभु सर्व देवेश्वर ! सब देवता तुम्हें यज्ञका भाग प्रदान करेंगे, इसलिये तुम अपना क्रोध परित्याग करो ॥ ४३ ॥

इमा हि देवताः सर्वा ऋषयश्च परंतप ।
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे ॥ ४४ ॥

हे परन्तप ! हे शत्रुओंको संताप देनेवाले महादेव ! ये सब देवता और ऋषि लोग तुम्हारे क्रोधसे किसी प्रकार शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४४ ॥

यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदात्ते विबुधोत्तम ।
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति ॥ ४५ ॥

हे देवश्रेष्ठ ! हे धर्मज्ञ ! जो पुरुष तुम्हारे स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ है, वह लोकके बीच ज्वर नामसे विख्यात होकर विचरण करेगा ॥ ४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेजसः प्रभो ।
समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम् ॥ ४६ ॥

हे प्रभु ! तुम्हारे एक भूत स्वरूपके तेजको धारण करनेमें सारी पृथ्वी भी समर्थ नहीं है, इसलिये इसे कई प्रकारसे विभक्त करो ॥ ४६ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा देवो भागे चापि प्रकल्पिते ।
भगवन्तं तथेत्याह ब्रह्माणममितौजसम् ॥ ४७ ॥

महादेवने प्रजापतिका वचन सुन और अपना यज्ञभाग प्रकल्पित हुआ जानके, अमित तेजस्वी सब ऐश्वर्यसे पूर्ण ब्रह्मासे शिवने कहा कि "ऐसा ही होगा ।" ॥ ४७ ॥

परां च प्रीतिमगमदुत्स्मयंश्च पिनाकधृक् ।
अवाप च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणा भवः ॥ ४८ ॥

तब पिनाकधारी महादेव प्रजापति ब्रह्माके दिये हुए यथा उचित यज्ञभागको पाकर परम प्रीतिके सहित मुस्कराकर उत्साहयुक्त हुए ॥ ४८ ॥

ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यसृजत्तदा ।
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणु तचापि पुत्रक ॥ ४९ ॥

और हे पुत्र ! सर्वधर्मज्ञ सदाशिवने सब प्राणियोंकी शान्तिके निमित्त प्रागुक्त ज्वरको अनेक प्रकारसे विभक्त किया; उन्होंने जिस जीवमें जिस प्रकार उस ज्वरको स्थापित किया उसे सुनो ॥ ४९ ॥

शीर्षाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतुः ।
अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोकं भुजगेषु च ॥ ५० ॥

हे धर्मज्ञ ! हाथियोंमें शिरस्ताप, पर्वतोंमें शिलाजीत, जलमें सिवार, सांपोंमें केंचुलि, ॥ ५० ॥

खोरकः सौरभेयाणामूषरं पृथिवीतले ।
पशूनामपि धर्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ॥ ५१ ॥

गाय, बैलोंके खुरोंमें खोरक रोग, पृथिवीमें ऊसरपन, पशुओंमें दृष्टिका अवरोध, ॥ ५१ ॥

रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ।
नेत्ररोगः कोकिलानां ज्वरः प्रोक्तो महात्मना ॥ ५२ ॥

घोडोंमें गल छिद्रके मांसखण्ड, मोरोंमें शिखोद्भेद और कोकिलोंमें नेत्ररोग, इन सबको महानुभाव शिवने ज्वर रूपसे वर्णन किया है ॥ ५२ ॥

अव्जानां पित्तभेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ।
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः ॥ ५३ ॥

और हमने ऐसा सुना है, कि मेषजातीय पशुमात्रमें पित्तभेद ज्वर रूपसे निर्णीत हुआ है । शुकोंमें हिक्किका ही ज्वर है ॥ ५३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शार्दूलेष्वथ धर्मज्ञ श्रमो ज्वर इहोच्यते ।
मानुषेषु तु धर्मज्ञ ज्वरो नामैष विश्रुतः ।
मरणे जन्मनि तथा मध्ये चाविशते नरम् ॥ ५४ ॥

और शार्दूलोंमें श्रम ज्वर रूपसे कहा । हे धर्मज्ञ ! मनुष्योंमें यह ज्वरके नामसेही प्रसिद्ध है। यह ज्वर मनुष्योंके जन्म, मरण और जन्म-मरणके मध्यकालमें सदा मनुष्यशरीरमें प्रवेश करता है ॥ ५४ ॥

एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः ।
नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ॥ ५५ ॥

भगवान् महादेवका यह तेज स्वरूप ज्वर अत्यन्त दारुण है; यह ज्वर सर्वनियन्ता सब प्राणियोंका नमस्य और माननीय है ॥ ५५ ॥

अनेन हि समाविष्टो वृत्रो धर्मभृतां वरः ।
व्यजृम्भत ततः शक्रस्तस्मै वज्रमवासृजत् ॥ ५६ ॥

धार्मिकप्रवर वृत्रासुर इस ही ज्वरसे आक्रान्त होके जमुहाई लेने लगा, तब देवराजने उसके ऊपर वज्र चलाया था ॥ ५६ ॥

प्रविश्य वज्रो वृत्रं तु दारयामास भारत ।
दारितश्च स वज्रेण महायोगी महासुरः ।
जगाम परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥ ५७ ॥

इन्द्रके चलाये हुए उस वज्रने वृत्रासुरके शरीरमें प्रविष्ट होके उसे विदारण किया था। महायोगी महासुर वृत्रने वज्रसे मरकर अत्यन्त तेजस्वी भगवान् विष्णुके परम धाममें गमन किया ॥५७॥

विष्णुभक्त्या हि तेनेदं जगद्व्याप्तमभूत्पुरा ।
तस्माच्च निहतो युद्धे विष्णोः स्थानमवाप्तवान् ॥ ५८ ॥

उस समय पहले उसकी विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्त हुआ था, इसलिये वृत्रासुरने युद्धमें मरके विष्णुका धाम प्राप्त किया ॥ ५८ ॥

इत्येष वृत्रमाश्रित्य ज्वरस्य महतो मया ।
विस्तरः कथितः पुत्र किमन्यत्प्रब्रवीमि ते ॥ ५९ ॥

हे पुत्र ! यह मैंने तुम्हारे निकट वृत्र संक्रान्त महत् ज्वरका विषय विस्तारके सहित कहा है, अब दूसरा कौनसा विषय वर्णन करूं ? ॥ ५९ ॥

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।
विमुक्तरोगः स सुखी मुदा युतो लभेत कामान्स यथामनीषितान् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥ ९६४१ ॥

जो निर्भयचित्त और सावधान होकर इस ज्वरकी उत्पत्तिका विषय सदा पाठ करता है, वह रोगरहित, अत्यन्त सुखी और आनन्दित होकर सब अभिलषित विषयोंको पाता है ॥ ६० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७४ ॥ ९६४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७५ :

युधिष्ठिर उवाच—

शोकाद्दुःखाच्च मृत्योश्च त्रस्यन्ति प्राणिनः सदा ।
उभयं मे यथा न स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! प्राणियोंको शोक, दुःख और मृत्युसे सदा भय हुआ करता है, इससे हम लोगोंको जिस प्रकार उक्त दोनोंका भय न हों, आप उसहीका उपाय वर्णन करिये ॥१॥

भीष्म उवाच—

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं समङ्गस्य च भारत ॥ २ ॥

भीष्म बोले—हे भारत ! प्राचीन विद्वान् लोग इस विषयमें नारद और समङ्गके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं ॥ २ ॥

नारद उवाच—

उरसेव प्रणमसे बाहुभ्यां तरसीव च ।
संप्रहृष्टमना नित्यं विशोक इव लक्ष्यसे ॥ ३ ॥

नारद बोले—हे समंग ! दूसरे लोग सिर झुकाके प्रणाम करते हैं, तुम वक्षस्थल पर्यन्त पृथ्वीसे मिलाकर प्रणाम करते हो और मानो दो भुजाओंसे संसारनदीको तर रहे हो; तुम सदा प्रसन्नचित्त और शोकरहित दीखते हो ॥ ३ ॥

उद्वेगं नेह ते किंचित्सुसूक्ष्ममपि लक्षये ।
नित्यतृप्त इव स्वस्थो बालवच्च विचेष्टसे ॥ ४ ॥

तुममें थोडीसी भी घबराहट मुझे नहीं दीख पडती है; तुम नित्यतृप्त और स्वस्थ रहके बालककी भांति क्रीडा करते हो ॥ ४ ॥

समङ्ग उवाच—

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं सत्त्वेषु मानद ।
तेषां तत्त्वानि जानामि ततो न विमना ह्यहम् ॥ ५ ॥

समङ्ग बोले—हे मानद नारद ! मैं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकालकी अविद्यमानता विशेष रूपसे जानता हूं; इस ही लिये दुःखित नहीं होता ॥ ५ ॥

उपक्रमानहं वेद पुनरेव फलोदयान् ।
लोके फलानि चित्राणि ततो न विमना ह्यहम् ॥ ६ ॥

मैंने लोकके बीच सब कार्योंकी गति, आरम्भ, कार्योंके फल और फलोंकी विचित्रताको विशेष रूपसे जाना है, इसहीसे शोक नहीं करता ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अगाधाश्चाप्रतिष्ठाश्च गतिमन्तश्च नारद ।
अन्धा जडाश्च जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः ॥ ७ ॥

हे नारद ! मूर्ख और अप्रतिष्ठत अर्थात् धन, स्त्री आदिसे हीन पुरुष भी विपद्ग्रस्त और धनवान् हुआ करते हैं, अन्धे और उन्मत्त मनुष्य भी जीवित रहते हैं, देखो, हम निरारम्भ होनेपर भी जीवित हैं ॥ ७ ॥

विहितेनैव जीवन्ति अरोगाङ्गा दिवौकसः ।
बलवन्तोऽबलाश्चैव तद्वदस्मान्सभाजय ॥ ८ ॥

नीरोग शरीरवाले देवता, बलवान् और निर्बल लोग भी पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंसे ही जीवित हैं; हम भी वैसे ही हैं; तब हम लोगोंका तुम सन्मान करो ॥ ८ ॥

सहस्रिणश्च जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
शाकेन चान्ये जीवन्ति पश्यास्मानपि जीवतः ॥ ९ ॥

सहस्रों परिवारयुक्त पुरुष भी जीवित रहते हैं और सैकडों परिवारविशिष्ट लोग भी जीवन धारण करते हैं; दूसरे लोग बहुतसा साग ग्रहण करके भी प्राण धारण किया करते हैं और देखो, उसी प्रकार हम भी जीवित हैं ॥ ९ ॥

यदा न शोचेमहि किं नु न स्याद्धर्मेण वा नारद कर्मणा वा ।
कृतान्तवश्यानि यदा सुखानि दुःखानि वा यन्न विधर्षयन्ति ॥ १० ॥

हे नारद ! शोकके मूल अज्ञानके अभावनिबन्धनसे जब हम शोकाकुल नहीं हैं, तब हमारे आत्मासे ब्राह्मणादिके अध्यास प्रभृति धर्म और लौकिक कार्योंका क्या प्रयोजन है ? जब कि सारे सुख–दुःख कालके अधीन होनेके कारण विनाशी हैं, तब वे अब हमें पराभूत नहीं कर सकते ॥ १० ॥

यस्मै प्रज्ञां कथयन्ते मनुष्याः प्रज्ञामूलो हीन्द्रियाणां प्रसादः ।
मुह्यन्ति शोचन्ति यदेन्द्रियाणि प्रज्ञालाभो नास्ति मूढेन्द्रियस्य ॥ ११ ॥

जिस कारणसे मनुष्य ज्ञानी हुआ करते हैं, उस ज्ञानका ही मूल इन्द्रियोंकी पवित्रता है; इन्द्रियोंके मोहादिहीनता रूपी प्रसन्नताही उसका मूल कारण है; ज्ञानके अभावमें ही इन्द्रियां मुग्ध और शोकाकुल हुआ करती हैं; इसलिये मूढेन्द्रिय मनुष्यको ज्ञानलाभ नहीं होता ॥ ११ ॥

मूढस्य दर्पः स पुनर्मोह एव मूढस्य नायं न परोऽस्ति लोकः ।
न ह्येव दुःखानि सदा भवन्ति सुखस्य वा नित्यशो लाभ एव ॥ १२ ॥

मूढ मनुष्य जो अहंकार किया करता है, वही उसका मोहस्वरूप है; मूढ मनुष्यके लिये यह लोक और परलोक भी सुखद नहीं है; किसीको सब दुःख सदा उपस्थित नहीं होते और सदा निरन्तर सुखलाभकी भी घटना नहीं होती ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भावात्मकं संपरिवर्तमानं न मादृशः संज्वरं जातु कुर्यात् ।
इष्टान्भोगान्नानुरुध्येत्सुखं वा न चिन्तयेद्दुःखमभ्यागतं वा ॥ १३ ॥

परन्तु मेरे समान देहाभिमानरहित मनुष्य कदाचित् सब भांतिसे विद्यमान संसाररूपी संज्वर स्वीकार नहीं करता, अभिलषित योग्य वस्तु और सुखके अनुरोधमें बाधित नहीं होता तथा अभ्यागत दुःखकी चिन्ता भी नहीं करता; इसलिये भोग्यविषय आदिकोंकी चिन्ता न करनी ही शोकहीनताका कारण है ॥ १३ ॥

समाहितो न स्पृहयेत्परेषां नानागतं नाभिनन्देत लाभम् ।
न चापि हृष्येद्विपुलेऽर्थलाभे तथार्थनाशे च न वै विषीदेत् ॥ १४ ॥

योगयुक्त सावधान मनुष्य सुखकी स्पृहा वा अनागत लाभका अभिनन्दन नहीं करता; वह बहुतसा धन पाके हर्षित नहीं होता और धननाश होनेपर भी शोक नहीं करता ॥ १४ ॥

न बान्धवा न च वित्तं न कौली न च श्रुतं न च मन्त्रा न वीर्यम् ।
दुःखात्त्रातुं सर्व एवोत्सहन्ते परत्र शीले न तु यान्ति शान्तिम् ॥ १५ ॥

बन्धुजन, वित्त, कुलीनता, शास्त्रदर्शन, मन्त्र अथवा पराक्रम, ये सब कोई भी मनुष्यको दुःखसे उबारनेमें समर्थ नहीं हैं; मनुष्य शमदम आदि सदाचारके सहारे ही परलोकमें शान्तिलाभ किया करते हैं ॥ १५ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नायोगाद्विद्यते सुखम् ।
धृतिश्च दुःखत्यागश्चाप्युभयं नः सुखोदयम् ॥ १६ ॥

अयोगयुक्त पुरुषमें विज्ञान नहीं होता और योगके विना किसीको भी सुख नहीं मिलता है। प्राण, मन और इन्द्रियोंके संयम करनेकी सामर्थ्य और दुःखका परित्याग ये दोनों ही हमारे सुख उत्पन्न होनेके कारण हैं ॥ १६ ॥

प्रियं हि हर्षजननं हर्ष उत्सेकवर्धनः ।
उत्सेको नरकायैव तस्मात्तं संत्यजाम्यहम् ॥ १७ ॥

प्रिय वस्तुओंसे हर्ष उत्पन्न हुआ करता है, हर्षसे दर्पकी वृद्धि होती है, और अभिमान ही नरकका हेतु हुआ करता है; इसलिये मैंने उसे परित्याग किया है ॥ १७ ॥

एताञ्शोकभयोत्सेकान्मोहनान्सुखदुःखयोः ।
पश्यामि साक्षिवल्लोके देहस्यास्य विचेष्टनात् ॥ १८ ॥

इसलोकमें जबतक शरीर नष्ट नहीं होता है, तबतक इन सब मोहकर शोक, भय और गर्व आदिको सुख-दुःखके साक्षी स्वरूपसे देखा करता हूं ॥ १८ ॥

अर्थकामौ परित्यज्य विशोको विगतज्वरः ।
तृष्णामोहौ तु संत्यज्य चरामि पृथिवीमिमाम् ॥ १९ ॥

मैं अर्थ और कामको परित्याग करके तथा तृष्णा और मोहको छोडके, शोकरहित वा आनन्दित होकर इस पृथ्वीमण्डलपर विचरता हूं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न मृत्युतो न चाधर्मान्न लोभान्न कुतश्चन ।
पीतामृतस्येवात्यन्तमिह चामुत्र वाभयम् ॥ २० ॥

मुझे मृत्यु, अधर्म अथवा लोभ आदि किसी विषयसे भी अमृत पीनेवाले पुरुषकी भांति इस लोक वा परलोकमें कुछ भय नहीं है ॥ २० ॥

एतद्ब्रह्मन्विजानामि महत्कृत्वा तपोऽव्ययम् ।
तेन नारद संप्राप्तो न मां शोकः प्रबाधते ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥ ९६६२ ॥

हे ब्रह्मन् नारद ! मैंने उत्तम महत् तपस्या करके इस ज्ञानको ही जाना है, इस ही निमित्त देह स्वभाव, वा सर्दी–गर्मीसे उत्पन्न हुए शोक मुझे दुःखित करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २१ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ पचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७५ ॥ ९६६२ ॥

२७६

युधिष्ठिर उवाच—

अतत्त्वज्ञस्य शास्त्राणां सततं संशयात्मनः ।
अकृतव्यवसायस्य श्रेयो ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! जो पुरुष तार्किक, पाशुपत, सांख्य, पातञ्जल आदि युक्तिप्रधान शास्त्रोंके यथार्थताको नहीं जानता है, जो सदा सन्देहयुक्तचित्त होकर आत्मदर्शनके निमित्त शम दम आदिका अनुष्ठान नहीं करता, उसके पक्षमें कल्याण क्या है ? आप इसे ही वर्णन करिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

गुरुपूजा च सततं वृद्धानां पर्युपासनम् ।
श्रवणं चैव विद्यानां कूटस्थं श्रेय उच्यते ॥ २ ॥

भीष्म बोले– ईश्वर परम गुरु है, इसलिये उसमें चित्तप्रणिधान, वृद्ध आचार्योंकी सदा उपासना और सब शास्त्रोंमें ही मोक्षका प्रतिपालन है, इसही निमित्त गुरुमुखसे उन सबको सुनना– ये तीनों ही सदा कल्याणरूपसे वर्णित हुए हैं ॥ २ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गालवस्य च संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ॥ ३ ॥

प्राचीन लोग इस विषयमें देवर्षि नारद और गालव मुनिके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वीतमोहक्लमं विप्रं ज्ञानतृप्तं जितेन्द्रियम् ।
श्रेयस्कामं जितात्मानं नारदं गालवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

गालव मुनि कल्याणकी इच्छा करनेवाले, मोह और क्लमरहित, ज्ञानतृप्त, जितेन्द्रिय, संयतचित्त विप्रवर नारदसे बोले ॥ ४ ॥

यैः कैश्चित्संमतो लोके गुणैस्तु पुरुषो नृषु ।
भवत्यनपगान्सर्वांस्तान्गुणाँल्लक्षयाम्यहम् ॥ ५ ॥

हे देवर्षि ! इस लोकमें पुरुष जिन सब गुणोंसे मनुष्योंमें सर्वसंमत हुआ करता है, आपमें वे सब गुण स्थिररूपसे मुझे दीख पडते हैं ॥ ५ ॥

भवानेवंविधोऽस्माकं संशयं छेत्तुमर्हति ।
अमूढश्चिरमूढानां लोकतत्त्वमजानताम् ॥ ६ ॥

इसलिये आप परम ज्ञानी हैं, हम लोग सदा लोक तत्त्वके ज्ञानसे रहित और विमूढ रहके आत्मपदार्थ कुछ भी नहीं जानते, इससे हमारे संशयोंको दूर करनेके उपयुक्त आप ही हैं ॥६॥

ज्ञाने ह्येवं प्रवृत्तिः स्यात्कार्याकार्ये विजानतः ।
यत्कार्यं न व्यवस्यामस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

जिस प्रकार अग्निहोत्रादि कार्योंके सहित शीघ्र ही ज्ञानसाधनमें प्रवृत्ति हो और हमारा जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे हम निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये उसे ही वर्णन करना आपको उचित है ॥ ७ ॥

भगवन्नाश्रमाः सर्वे पृथगाचारदर्शिनः ।
इदं श्रेय इदं श्रेय इति नानाप्रधाविताः ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! सब आश्रमोंवाले पृथक् पृथक् आचारका वर्णन–दर्शन किया करते हैं । वे सब अनेक रीतिसे "यही श्रेय है, यही कल्याणकारी है" ऐसे ही उपदेशसे मनुष्योंको प्रबोधित करते हैं ॥ ८ ॥

तांस्तु विप्रस्थितान्दृष्ट्वा शास्त्रैः शास्त्राभिनन्दिनः ।
स्वशास्त्रैः परितुष्टांश्च श्रेयो नोपलभामहे ॥ ९ ॥

वे प्रबोधित मनुष्य विविध मार्गसे चलते और जैसे हम लोग निज शास्त्रसे परितुष्ट हैं, वैसे ही वे लोग भी निज शास्त्रोंके जरिये परितुष्ट हैं । उन्हें देखनेसे सन्देहयुक्त होकर अधिक कल्याणकारी क्या है, उसे हम लोग निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ९ ॥

शास्त्रं यदि भवेदेकं व्यक्तं श्रेयो भवेत्तदा ।
शास्त्रैश्च बहुभिर्भूयः श्रेयो गुह्यं प्रवेशितम् ॥ १० ॥

यदि सब शास्त्रोंका मत एक हो, तो श्रेय मालूम होसके, परन्तु अनेक प्रकारके शास्त्रोंके अनेक मत होनेसे श्रेय अत्यन्त निगूढ भावसे प्रवेशित हुआ है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतस्मात्कारणाच्छ्रेयः कलिलं प्रतिभाति माम् ।
ब्रवीतु भगवांस्तन्मे उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः ॥ ११ ॥

इस ही निमित्त मुझे बोध होता है श्रेय बहुतसी शङ्कासे परिपूरित है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये; मैं आपका निकटवर्ती शिष्य हूं, और आपकी शरणमें आया हूं; आप मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ११ ॥

नारद उवाच —

आश्रमास्तात चत्वारो यथासंकल्पिताः पृथक् ।
तान्सर्वाननुपश्य त्वं समाश्रित्यैव गालव ॥ १२ ॥

नारदमुनि बोले— हे गालव ! आश्रम चार प्रकारके हैं, और शास्त्रोंमें उनकी पृथक् व्यवस्था है । इसमेंसे " धर्म नहीं है, " यह एक वेदसे बहिर्भूत शास्त्र है । दूसरा शाक्यासिंहका बनाया हुआ चैत्यवन्दनादि रूप धर्मशास्त्र है । तीसरा वेदोक्त धर्म ही सत्य धर्म है, दूसरा धर्म धर्म नहीं है । चौथा " धर्माधर्मसे अतीत वस्तु मात्र है, और कुछ भी नहीं है " ये सब शास्त्र संकल्पके अनुसार पृथक् पृथक् रूपसे कल्पित हुए हैं ! उनमेंसे जो जिसे कल्याणकारी समझता है; उसके पक्षमें वही उत्तम है। और तुम गुरुजनोंके निकटमें ज्ञानसे उनको यथार्थ रूपसे जानके आलोचना करो ॥ १२ ॥

तेषां तेषां तथा हि त्वमाश्रमाणां ततस्ततः ।
नानारूपगुणोद्देशं पश्य विप्रस्थितं पृथक् ।
नयन्ति चैव ते सम्यगभिप्रेतमसंशयम् ॥ १३ ॥

उन सब आश्रमोंमें अनेक भांतिके आत्मज्ञानके उपायभूत अनेक गुणयुक्त सब धर्मोंका वर्णन स्वतन्त्र स्वतन्त्र रूपसे देखोगे । शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखनेसे अभिप्रेत धर्म आत्मतत्व पूर्ण रीतिसे प्राप्त हो सकता है ॥ १३ ॥

ऋजु पश्यंस्तथा सम्यगाश्रमाणां परां गतिम् ।
यत्तु निःश्रेयसं सम्यक्तच्चैवासंशयात्मकम् ॥ १४ ॥

सूक्ष्मदर्शी धीर पुरुष सरलभावसे देखते हुए आश्रमोंके परम गतिको ठीक अवलोकन किया करते हैं । जो परम निश्रेयसस्वरूप साधन है, वह निःसंशयात्मक है ॥ १४ ॥

अनुग्रहं च मित्राणामभित्राणां च निग्रहम् ।
संग्रहं च त्रिवर्गस्य श्रेय आहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥

जो सब प्राणियोंके अभयदाताओंको अनुग्रह और हिंसक मनुष्योंको निग्रहस्वरूप है तथा जो धर्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंका संग्रह करनेवाला है, मनीषी लोग उसे ही कल्याणकारी कहा करते हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता ।
सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम् ॥ १६ ॥

पाप कर्मोंसे दूर रहना सदा पुण्यशीलता और साधुओंके सङ्ग सदाचारका पालन, यही निःसन्देह कल्याणकारी है ॥ १६ ॥

मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम् ।
वाक्चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम् ॥ १७ ॥

सब जीवोंके विषयमें मृदुव्यवहार, व्यवहार विषयमें सरलता और मधुर वचन बोलना– यही निःसन्देह कल्याणमय है ॥ १७ ॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च संविभागोऽतिथिष्वपि ।
असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम् ॥ १८ ॥

देवता, पितर और अतिथियोंको उनका भाग देना, अन्नदान और सेवकोंका परित्याग न करना–यही निश्चित कल्याणकारी है ॥ १८ ॥

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम् ।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १९ ॥

सत्य वचन ही उत्तम है, सत्यका यथार्थ ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है; जो प्राणियोंको अत्यन्त हितकर है, मैं उसे ही सत्यका विषय कहता हूं ॥ १९ ॥

अहंकारस्य च त्यागः प्रणयस्य च निग्रहः ।
संतोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते ॥ २० ॥

अहंकारका त्याग, इच्छा–अनुरागका निग्रह, सन्तोष और अकेले धर्माचरण करना सबसे उत्तम श्रेय कहके वर्णित हुआ करता है ॥ २० ॥

धर्मेण वेदाध्ययनं वेदाङ्गानां तथैव च ।
विद्यार्थानां च जिज्ञासा श्रेय एतदसंशयम् ॥ २१ ॥

धर्मके अनुसार वेद और वेदान्तशास्त्रको पढना और विद्याके निमित्त प्रश्न करना, येही निःसन्देह कल्याणस्वरूप हैं ॥ २१ ॥

शब्दरूपरसस्पर्शान्सह गन्धेन केवलान् ।
नात्यर्थमुपसेवेत श्रेयसोऽर्थी परंतप ॥ २२ ॥

हे परंतप ! कल्याणकी इच्छावाले मनुष्यको केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको कभी अधिक सेवन नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

नक्तंचर्यां दिवास्वप्नमालस्यं पैशुनं मदम् ।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत् ॥ २३ ॥

कल्याणकी अभिलाष करनेवाला मनुष्य रात्रिमें भ्रमण करना, दिनमें सोना, आलस, चुगुलखोरी, मद, अधिक भोजन और बहुत थोडा भोजन ये सब छोड दे ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Rajbhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया ।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात् ॥ २४ ॥

दूसरोंकी निन्दा करके अपने बडाईकी चेष्टा न करे, निज गुणोंके सहारे अपनेसे साधारण पुरुषोंसे बडाई पानेके लिये यत्नवान् होवे, नीचोंसे बडाईकी इच्छा कभी न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

निर्गुणास्त्वेव भूयिष्ठमात्मसंभाविनो नराः ।
दोषैरन्यान्गुणवतः क्षिपन्त्यात्मगुणक्षयात् ॥ २५ ॥

निर्गुण मनुष्य ही अपनेको अधिक सम्मानभाजन समझके अपने गुण और अपने ऐश्वर्यको बडाई करके दूसरे गुणवान् मनुष्योंके दोषोंको कहके उनकी निन्दा किया करते हैं ॥ २५ ॥

अनूच्यमानाश्च पुनस्ते मन्यन्ते महाजनात् ।
गुणवत्तरमात्मानं स्वेन मानेन दर्पिताः ॥ २६ ॥

यदि कुछ कहा जाय तो जिन्होंने कभी शिक्षा नहीं पाई, वे अपने अभिमानसे मतवारे होकर महाजनोंसे अपनेको अधिक गुणवान् समझते हैं ॥ २६ ॥

अब्रुवन्कस्यचिन्निन्दामात्मपूजामवर्णयन् ।
विपश्चिद्गुणसंपन्नः प्राप्नोत्येव महद्यशः ॥ २७ ॥

और गुणयुक्त विद्वान् पुरुष किसीकी भी निन्दा न करके और अपने उत्कर्षको वर्णन करनेमें विरत होके महत् यश लाभ किया करता है ॥ २७ ॥

अब्रुवन्वाति सुरभिर्गन्धः सुमनसां शुचिः ।
तथैवाव्याहरन्भाति विमलो भानुरम्बरे ॥ २८ ॥

पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध लानेवाला पवित्र वायु किसी प्रकारका वचन न कहके बहा करती है और निर्मल सूर्य कुछ भी न कहके आकाशमें प्रकाशित हुआ करता है ॥ २८ ॥

एवमादीनि चान्यानि परित्यक्तानि मेधया ।
ज्वलन्ति यशसा लोके यानि न व्याहरन्ति च ॥ २९ ॥

इस प्रकार जगत्में और भी अनेक बुद्धिसे रहित वस्तुएं हैं जो अपनी प्रशंसा नहीं करती हैं; परंतु अपने यशसे शोभित होती हैं ॥ २९ ॥

न लोके दीप्यते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया ।
अपि चापिहितः श्वभ्रे कृतविद्यः प्रकाशते ॥ ३० ॥

मूर्ख मनुष्य केवल अपनी प्रशंसासे लोकमें प्रकाशित नहीं हो सकता और कृतविद्य पुरुष गुहामें पडे रहनेपर भी प्रकाशित हुआ करता है ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

असन्नुच्चैरपि प्रोक्तः शब्दः समुपशाम्यति ।
दीप्यते त्वेव लोकेषु शनैरपि सुभाषितम् ॥ ३१ ॥

ऊंचे स्वरसे असारभावसे उच्चारण किया हुआ शब्द भी शान्त होजाता है, परन्तु सुभाषित शब्द मृदु भावसे उच्चारित होनेपर भी अवश्यही लोकमें प्रकाशित हुआ करता है ॥ ३१ ॥

मूढानामवलिप्तानामसारं भाषितं बहु ।
दर्शयत्यन्तरात्मानं दिवा रूपमिवांशुमान् ॥ ३२ ॥

जैसे विभाकर सूर्यकान्तमणिके संयोगसे अपना दाहक अग्निरूप प्रदर्शित करता है, वैसे गर्वित मूढ लोग भी असारमय बहुभाषणसे अन्तरात्माका क्षुद्रतमत्व प्रकट किया करते हैं ॥ ३२ ॥

एतस्मात्कारणात्प्रज्ञां मृगयन्ते पृथग्विधाम् ।
प्रज्ञालाभो हि भूतानामुत्तमः प्रतिभाति माम् ॥ ३३ ॥

इन्हीं सब कारणोंसे कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य नानाशास्त्रोंके ज्ञानजनित उत्तम बुद्धिकी अभिलाष किया करते हैं; प्राणियोंको चाहे कितना ही लाभ क्यों न होवे, मेरे विचारमें उनके लिये बुद्धिलाभ ही सबसे उत्तम है ॥ ३३ ॥

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
ज्ञानवानपि मेधावी जडवल्लोकमाचरेत् ॥ ३४ ॥

विना पूछे किसीसे कुछ वचन कहना उचित नहीं है और अन्यायपूर्वक पूछनेसे भी उत्तर देना अनुचित है; ज्ञानवान् मनुष्य मेधावी होनेपर भी जडकी भांति जगत्में व्यवहार करे ॥ ३४ ॥

ततो वासं परीक्षेत धर्मनित्येषु साधुषु ।
मनुष्येषु वदान्येषु स्वधर्मनिरतेषु च ॥ ३५ ॥

सदा स्वधर्ममें रत, उदार, धर्मनिष्ठ साधु लोगोंके समीप वास करनेकी इच्छा मनुष्य करे ॥३५॥

चतुर्णां यत्र वर्णानां धर्मव्यतिकरो भवेत् ।
न तत्र वासं कुर्वीत श्रेयोर्थी वै कथंचन ॥ ३६ ॥

जिस स्थानमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें सङ्कर हो; धर्मका उल्लंघन होता हो, कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वहां किसी प्रकार भी निवास न करे ॥ ३६ ॥

निरारम्भोऽप्ययमिह यथालब्धोपजीवनः ।
पुण्यं पुण्येषु विमलं पापं पापेषु चाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इस लोकमें कुछ कार्यका आरम्भ न करनेवाला और यथा प्राप्त वस्तुओंके जरिये सहजमें ही जीविका निभानेवाला मनुष्य यदि कोई पुण्यवानोंके संसर्गमें रहे तो वह विमल पुण्यका उपभोग करता है; और पापियोंके सङ्गमें रहनेसे पाप भोग किया करता है ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपामग्नेस्तथेन्दोश्च स्पर्शं वेदयते यथा।
तथा पश्यामहे स्पर्शान्सुभयोः पापपुण्ययोः ॥ ३८ ॥

जैसे जल, अग्नि और चन्द्रकिरणके स्पर्श होते ही मनुष्य क्रमशः सर्दी, गर्मी और सुखका अनुभव करता है, वैसे ही सत् और असत्के संसर्गसे भी पाप तथा पुण्यके स्पर्शका अनुभव करते हैं ॥ ३८ ॥

अपश्यन्तोऽन्नविषयं भुञ्जते विघसाशिनः।
भुञ्जानं चान्नविषयान्विषयं विद्धि कर्मणाम् ॥ ३९ ॥

जो भोजनकी वस्तुओंके रसका स्वाद न लेकर अर्थात् मीठे तीतेका केवल स्वाद न लेके पेट भरनेके निमित्त ही भोजन किया करते हैं, वही विघसाशी हैं, और जो भक्ष्यवस्तुओंकी परीक्षा करके रसका स्वाद लेते हैं, उन्हें ही कर्मपाशके वशीभूत जानो; इसलिये इन्द्रियपोषक मनुष्योंको कभी संसारसे पार होनेकी सम्भावना नहीं है ॥ ३९ ॥

यत्रागमयमानानामसत्कारेण पृच्छताम्।
ब्रूयाद्ब्राह्मणो धर्मं त्यजेत्तं देशमात्मवान् ॥ ४० ॥

जिस स्थानमें प्रमाणजनित ज्ञान पूछनेवाले पुरुषोंके असत्कारपूर्वक पूछनेपर भी ब्राह्मण उनके निकट धर्म वर्णन करते हैं, आत्मपरायण बुद्धिमान् मनुष्य उस स्थानका परित्याग करे ॥ ४० ॥

शिष्योपाध्यायिका वृत्तिर्यत्र स्यात्सुसमाहिता।
यथावच्छास्त्रसंपन्ना कस्तं देशं परित्यजेत् ॥ ४१ ॥

और जिस स्थानमें शिष्य और उपाध्यायके व्यवहार उत्तम सावधानी तथा यथावत् शास्त्रयुक्त हुआ करते हैं, कौन पुरुष उस स्थानको परित्याग कर सकता है ? ॥ ४१ ॥

आकाशस्था ध्रुवं यत्र दोषं ब्रूयुर्विपश्चिताम्।
आत्मपूजाभिकामा वै को वसेत्तत्र पण्डितः ॥ ४२ ॥

जिस देशमें अपने सम्मानकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विद्वानोंके आकाशकी वस्तुओंकी भांति निरवलम्बन अर्थात् अविद्यमानतामें दोष वर्णन करते हैं, वहां कौन पण्डित वास करनेकी इच्छा करेगा ? ॥ ४२ ॥

यत्र संलोडिता लुब्धैः प्रायशो धर्मसेतवः।
प्रदीप्तमिव शैलान्तं कस्तं देशं न संत्यजेत् ॥ ४३ ॥

जिस देशमें लोभी पुरुषोंके जरिये प्रायः सब धर्मबन्धन शिथिल होते हैं, जलते हुए चेलाञ्चलकी भांति उस देशको विना त्यागे कौन निश्चिन्त रह सकता है ? ॥ ४३ ॥

यत्र धर्ममनाशङ्काश्चरेयुर्वीतमत्सराः।
चरेत्तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु ॥ ४४ ॥

जिस देशमें मनुष्य मत्सरहीन और निःशङ्क होके धर्माचरण करते हैं, उस ही पुण्यशील साधुसेवित देशमें निवास करना उचित है ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्ममर्थनिमित्तं तु चरेयुर्यत्र मानवाः ।
न ताननुवसेज्जातु ते हि पापकृतो जनाः ॥ ४५ ॥

जिस देशमें मनुष्य धन अर्थके निमित्त ही धर्माचरण करते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य कदापि वहांपर निवास न करे, क्योंकि उस देशमें बसनेवाले सब मनुष्य ही पापकारी होते हैं ॥४५॥

कर्मणा यत्र पापेन वर्तन्ते जीवितेप्सवः ।
व्यवधावेत्ततस्तूर्णं ससर्पाच्छरणादिव ॥ ४६ ॥

जिस देशमें पापकर्मोंसे जीवित रहनेकी इच्छा करके लोग निवास किया करते हैं, सर्पयुक्त गृहके समान उस देशसे शीघ्र ही प्रस्थान करना उचित है ॥ ४६ ॥

येन खट्वां समारूढः कर्मणानुशयी भवेत् ।
आदितस्तन्न कर्तव्यमिच्छता भवमात्मनः ॥ ४७ ॥

अपनी उन्नति चाहनेवाला मनुष्य जिस पाप कर्मके जरिये पूर्व वासनाका सम्बन्ध होके मनुष्य खाटपर पडकर तीव्र दुःख भोगता है, पहलेसे ही उस कर्मका अनुष्ठान न करे ॥ ४७ ॥

यत्र राजा च राज्ञश्च पुरुषाः प्रत्यनन्तराः ।
कुटुम्बिनामग्रभुजस्त्यजेत्तद्राष्ट्रमात्मवान् ॥ ४८ ॥

जिस राज्यमें राजा और राजपुरुष लोग कुटुम्बी जनोंके पहले ही भोजन करते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य उस राज्यको त्याग दे ॥ ४८ ॥

श्रोत्रियास्त्वग्रभोक्तारो धर्मनित्याः सनातनाः ।
याजनाध्यापने युक्ता यत्र तद्राष्ट्रमावसेत् ॥ ४९ ॥

जिस राज्यमें याजन और अध्यापन कार्यमें नियुक्त, सनातन धर्ममें रत, श्रोत्रिय ब्राह्मण सबसे प्रथम भोजन करते हैं, उस राज्यमें वास करना उचित है ॥ ४९ ॥

स्वाहास्वधावषट्कारा यत्र सम्यगनुष्ठिताः ।
अजस्रं चैव वर्तन्ते वसेत्तत्राविचारयन् ॥ ५० ॥

जिस राज्यमें स्वाहा, स्वधा और वषट्कार मन्त्र पूर्ण रीतिसे अनुष्ठित होकर सदा वर्तमान रहते हैं, वहां किसी प्रकार विचार भी न करके निवास करे ॥ ५० ॥

अशुचीन्यत्र पश्येत ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान् ।
त्यजेत्तद्राष्ट्रमासन्नमुपसृष्टमिवामिषम् ॥ ५१ ॥

जीविकाके वशमें आकर्षित ब्राह्मणोंको जहां अपवित्र अवस्थामें रहते देखे, उस राज्यमें पहुंचनेपर भी उसे विष मिले हुए अन्नकी भांति परित्याग करे ॥ ५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रीयमाणा नरा यत्र प्रयच्छेयुरयाचिताः ।
स्वस्थचित्तो वसेत्तत्र कृतकृत्य इवात्मवान् ॥ ५२ ॥

जिस राज्यमें मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक विना मांगे ही दान करते हैं, चित्त जीतनेवाला पुरुष कृतकृत्य और स्वस्थचित्त होकर वहां वास करे ॥ ५२ ॥

दण्डो यत्राविनीतेषु सत्कारश्च कृतात्मसु ।
चरेत्तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु ॥ ५३ ॥

जिस देशमें अविनीत पुरुषोंके विषयमें दण्डविधान और कृतबुद्धि लोगोंका सत्कार हुआ करता है, उस पुण्यशील साधुसेवित स्थानमें विचरना और निवास करना उचित है ॥ ५३ ॥

उपस्पृष्टेष्वदान्तेषु दुराचारेष्वसाधुषु ।
अविनीतेषु लुब्धेषु सुमहद्दण्डधारणम् ॥ ५४ ॥

जो लोग जितेन्द्रिय पुरुषोंके ऊपर क्रोध किया करते हैं, और जो साधुओंके विषयमें दुष्ट व्यवहार करते हैं, उन अविनीत लोभी पुरुषोंके निमित्त महत् दण्ड धारण करना चाहिये ॥ ५४ ॥

यत्र राजा धर्मनित्यो राज्यं वै पर्युपासिता ।
अपास्य कामान्कामेशो वसेत्तत्राविचारयन् ॥ ५५ ॥

जिस देशमें राजा धर्ममें तत्पर होकर धर्मके अनुसार प्रजापालन करता है, और सब कामनाओंका प्रभु होकर भी विषयाभिलाषको त्याग देता है, वहांपर कुछ विचार न करके निवास करना उचित है ॥ ५५ ॥

तथाशीला हि राजानः सर्वान्विषयवासिनः ।
श्रेयसा योजयन्त्याशु श्रेयसि प्रत्युपस्थिते ॥ ५६ ॥

जैसे राजाके शील– स्वभाव होते हैं, वैसे ही प्रजाके भी होते हैं; वह निजदेशवासी प्रजाको कल्याणप्रद अवसर प्राप्त होनेपर शीघ्र ही उन्नतिशाली करता है ॥ ५६ ॥

पृच्छतस्ते मया तात श्रेय एतदुदाहृतम् ।
न हि शक्यं प्रधानेन श्रेयः संख्यातुमात्मनः ॥ ५७ ॥

तात ! तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप यह कल्याणका विषय वर्णन किया । आत्माके श्रेयकी प्रधानताको वर्णन करनेमें किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ५७ ॥

एवं प्रवर्तमानस्य वृत्तिं प्रणिहितात्मनः ।
तपसैवेह बहुलं श्रेयो व्यक्तं भविष्यति ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥ ९७२० ॥

इस ही प्रकार जीविकाके उद्देश्यसे जो सावधानचित्त होके अपनी उन्नति करता है, उसका स्वधर्मरूप तपस्याके सहारे ही इस लोकमें अत्यन्त कल्याण होगा ॥ ५८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७६ ॥ ९७२० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७७ :

युधिष्ठिर उवाच—

कथं नु मुक्तः पृथिवीं चरेदस्मद्विधो नृपः ।
नित्यं कैश्च गुणैर्युक्तः सङ्गपाशाद्विमुच्यते ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— मेरे समान मुक्त राजा पृथ्वीपालनमें नियुक्त होकर किस प्रकार मोक्ष धर्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ होगा और सदा कैसे गुणोंसे युक्त होनेसे आसक्ति पाशसे छूटेगा ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
अरिष्टनेमिना प्रोक्तं सगरायानुपृच्छते ॥ २ ॥

भीष्म बोले— इस विषयमें प्रश्न करनेवाले सगरके सङ्ग अरिष्टनेमिके कहे हुए प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो ॥ २ ॥

सगर उवाच—

किं श्रेयः परमं ब्रह्मन्कृत्वेह सुखमश्नुते ।
कथं न शोचेन्न क्षुभ्येदतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥

सगर बोले— हे ब्रह्मन् ! किस प्रकारके परम कल्याणमय कर्मका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोकमें सुख भोग करता है, और किस भांति शोकाकुल और क्षुब्ध नहीं होता ? मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच—

एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्यः सर्वशास्त्रविशारदः ।
विबुध्य संपदं चाग्र्यां सद्वाक्यमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

भीष्म बोले— सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डितोंमें अग्रगण्य अरिष्टनेमिने सगरकी बात सुनके उपदेशकी योग्यता विचार कर यह उत्तर दिया ॥ ४ ॥

सुखं मोक्षसुखं लोके न च लोकोऽवगच्छति ।
प्रसक्तः पुत्रपशुषु धनधान्यसमाकुलः ॥ ५ ॥

इस लोकमें मोक्ष सुख ही यथार्थ सुख है; धन धान्य और पुत्र वा पशुओंके पालनमें आसक्त मनुष्य उसे नहीं जान सकता ॥ ५ ॥

सक्तबुद्धिरशान्तात्मा न स शक्यश्चिकित्सितुम् ।
स्नेहपाशसितो मूढो न स मोक्षाय कल्पते ॥ ६ ॥

विषयासक्तचित्त और अशान्तमन उस मूर्खके अज्ञान रोगकी चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं है । जो मूढ मनुष्य स्नेहपाशसे बद्ध हुआ है, वह कदाचित् मोक्षपथका पथिक नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्नेहजानिह ते पाशान्वक्ष्यामि शृणु तान्मम ।
सकर्णकेन शिरसा शक्याश्छेत्तुं विजानता ॥ ७ ॥

अब स्नेहसे जो सब पाश उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहता हूं, तुम सावधान होकर मेरे समीप सुनो; सुननेमें विज्ञानवान् मनुष्य ही उसे सुननेमें समर्थ होता है ॥ ७ ॥

संभाव्य पुत्रान्कालेन यौवनस्थान्निवेश्य च ।
समर्थाञ्जीवने ज्ञात्वा मुक्तश्चर यथासुखम् ॥ ८ ॥

कालक्रमसे पुत्रोंके यौवन सीमामें पहुंचनेपर उनका विवाह करके जब उन्हें जीविका निर्वाहमें समर्थ जाने, तभी संसार बन्धनयुक्त स्नेहपाशसे मुक्त होकर यथासुखसे धर्माचरण करे ॥८॥

भार्यां पुत्रवतीं वृद्धां लालितां पुत्रवत्सलाम् ।
ज्ञात्वा प्रजहि काले त्वं परार्थमनुदृश्य च ॥ ९ ॥

प्रतिपालित पुत्रवत्सला भार्याको बूढी जानके यथासमयमें उसे परित्याग करो और परम पुरुषार्थ मोक्ष पदार्थके अन्वेषण करनेमें यत्नवान् होजाओ ॥ ९ ॥

सापत्यो निरपत्यो वा मुक्तश्चर यथासुखम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्त्वमनुभूय यथाविधि ॥ १० ॥

इन्द्रियोंसे इन्द्रियविषयोंको यथारीतिसे अनुभव करके सापत्य अथवा निरपत्य ही होके, संसारबन्धनसे छूटकर यथा सुखसे विचरो ॥ १० ॥

कृतकौतूहलस्तेषु मुक्तश्चर यथासुखम् ।
उपपत्त्योपलब्धेषु लाभेषु च समो भव ॥ ११ ॥

यदृच्छा प्राप्त विषयलाभमें रागद्वेषसे रहित होके विषयलाभ जनित उत्सुकता परित्याग करते हुए संसारसे मुक्त होकर यथासुखसे भ्रमण करो ॥ ११ ॥

एष तावत्समासेन तव संकीर्तितो मया ।
मोक्षार्थो विस्तरेणापि भूयो वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥

यह तुम्हारे समीप मैंने मोक्षका विषय संक्षेपमें वर्णन किया है, अब उसे ही विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो ॥ १२ ॥

मुक्ता वीतभया लोके चरन्ति सुखिनो नराः ।
सक्तभावा विनश्यन्ति नरास्तत्र न संशयः ॥ १३ ॥

इस लोकमें जिन सब मनुष्योंने स्नेह बन्धनको तोडा है, वेही सुखी होकर निर्भयतासे विचरते हैं; और जो सब मनुष्य चित्तके विषयोंमें आसक्त हैं, वेही निःसन्देह विनष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आहारसंचयाश्चैव तथा कीटपिपीलिकाः ।
असक्ताः सुखिनो लोके सक्ताश्चैव विनाशिनः ॥ १४ ॥

चींटी आदि कीडे भी आहारसंग्रह करते हैं, परन्तु वे भी नष्ट होते हैं; इसलिये इस लोकमें जो पुरुष विषयोंमें अनासक्त हैं, वेही सुखी और जो लोग विषयासक्त है, वेही नाशवान् हैं ॥१४॥

स्वजने न च ते चिन्ता कर्तव्या मोक्षबुद्धिना ।
इमे मया विनाभूता भविष्यन्ति कथं त्विति ॥ १५ ॥

तुम्हें यदि मोक्षकी इच्छा हुई हो, तो " ये मेरे विना किस प्रकार जीविका निर्वाह करेंगे " —स्वजनोंके विषयमें ऐसी चिन्ता करनी उचित नहीं है ॥ १५ ॥

स्वयमुत्पद्यते जन्तुः स्वयमेव विवर्धते ।
सुखदुःखे तथा मृत्युं स्वयमेवाधिगच्छति ॥ १६ ॥

प्राणी स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही वर्द्धित हुआ करता है और स्वयं ही सुख–दुःख भोग करता तथा मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होता है ॥ १६ ॥

भोजनाच्छादने चैव मात्रा पित्रा च संग्रहम् ।
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति लोके नास्त्यकृतं पुरा ॥ १७ ॥

मनुष्य पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही अन्न, वस्त्र और माता–पिताके संगृहित धन पाया करता है; इस लोकमें ऐसा विषय नहीं है, जो पूर्व जन्ममें न किया गया हो ॥ १७ ॥

धात्रा विहितभक्ष्याणि सर्वभूतानि मेदिनीम् ।
लोके विपरिधावन्ति रक्षितानि स्वकर्मभिः ॥ १८ ॥

प्राणीमात्र ही निज कर्मोंके जरिये रक्षित होकर पूर्व जन्मकृत कर्मफलोंके विभाग करनेवाले विधाताके जरिये विहित भक्ष्य लाभ करते हुए पृथ्वीपर सब ओर दौडते हैं ॥ १८ ॥

स्वयं मृत्पिण्डभूतस्य परतन्त्रस्य सर्वदा ।
को हेतुः स्वजनं पोष्टुं रक्षितुं वाऽदृढात्मनः ॥ १९ ॥

जब कि मनुष्य मट्टीके पुतलेकी भांति शरीरवाला तथा सदा परतन्त्र है, तब वह स्वयं अदृढ स्वरूप होकर किस प्रकार स्वजनोंके भरणपोषणका कारण होगा ? ॥ १९ ॥

स्वजनं हि यदा मृत्युर्हन्त्येव तव पश्यतः ।
कृतेऽपि यत्ने महति तत्र बोद्धव्यमात्मना ॥ २० ॥

जब तुम्हारे बहुत यत्न करनेपर भी तुम्हारे सम्मुखमें ही मृत्यु तुम्हारे स्वजनोंका नाश करती है, तब तुम्हें आत्माको जानना उचित है, कि मेरी शक्ति क्या है ? ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जीवन्तमपि चैवैनं भरणे रक्षणे तथा ।
असमाप्ते परित्यज्य पश्चादपि मरिष्यसि ॥ २१ ॥

स्वजनोंकी जीवदशामें तुम उनके भरण पोषणमें नियुक्त रहते हो; परन्तु उस भरण-पोषणके समाप्त न होते ही तुम स्वयं उन्हें परित्याग करके यमलोकके अतिथि बनोगे ॥ २१ ॥

यदा मृतश्च स्वजनं न ज्ञास्यसि कथंचन ।
सुखितं दुःखितं वापि ननु बोद्धव्यमात्मना ॥ २२ ॥

जब तुम मरके स्वजनोंको सुखी वा दुःखी कुछ भी न जान सकोगे; तब तुम्हें इस विषयमें स्वयं ही विवेचना करनी उचित है ॥ २२ ॥

मृते वा त्वयि जीवे वा यदि भोक्ष्यति वै जनः ।
स्वकृतं ननु बुद्ध्यैवं कर्तव्यं हितमात्मनः ॥ २३ ॥

तुम जीवित रहो या मर जाओ; तुम्हारा प्रत्येक आत्मीय जन अपने अपने कर्मका ही फल भोगेगा; इसे जानके तुम्हें आत्महितका अनुष्ठान करना उचित है ॥ २३ ॥

एवं विजानल्लँलोकेऽस्मिन्कः कस्येत्यभिनिश्चितः ।
मोक्षे निवेशय मनो भूयश्चाप्युषधारय ॥ २४ ॥

यह जानकर, इस लोकमें कौन किसके निमित्त निश्चित है, इसे विशेषरूपसे विचार करके मोक्ष विषयमें अपना मन लगाना चाहिये और फिर इसपर ध्यान रखना चाहिये ॥ २४ ॥

क्षुत्पिपासादयो भावा जिता यस्येह देहिनः ।
क्रोधो लोभस्तथा मोहः सत्त्ववान्मुक्त एव सः ॥ २५ ॥

जिस मनुष्यने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह आदि भावोंको जय किया है, वही सत्वगुणकी अधिकतायुक्त मुक्त पुरुष है ॥ २५ ॥

द्यूते पाने तथा स्त्रीषु मृगयायां च यो नरः ।
न प्रसाद्यति संमोहात्सततं मुक्त एव सः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य जुआ खेलने, मद्य पीने, स्त्री सेवन करने और मृगया विषयमें सदा प्रमत्त नहीं होता अर्थात् आत्मविस्मृतिपूर्वक उसमें आसक्त नहीं होता, वही सदा मुक्त पुरुष ही है ॥२६॥

दिवसे दिवसे नाम रात्रौ रात्रौ सदा सदा ।
भोक्तव्यमिति यः खिन्नो दोषबुद्धिः स उच्यते ॥ २७ ॥

प्रतिदिन और प्रतिरात्रिमें भोग भोगने या भोजन करनेकी चिन्तामें पडकर दुःखी होता है, उसे ही दोषबुद्धिसे युक्त कहा जाता है ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मभावं तथा स्त्रीषु मुक्तमेव पुनः पुनः ।
यः पश्यति सदा युक्तो यथावन्मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

जो सदा सावधान होकर योगयुक्त रहकर स्त्रियोंके विषयमें निवृत्त हुआ है, वही यथावत् मुक्त पुरुष है ॥ २८ ॥

संभवं च विनाशं च भूतानां चेष्टितं तथा ।
यस्तत्त्वतो विजानाति लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः ॥ २९ ॥

जो प्राणियोंके जन्म, मरण और जीवनके क्लेशको यथार्थ रूपसे जानता है, इस लोकमें वही मुक्त पुरुष है ॥ २९ ॥

प्रस्थं वाहसहस्रेषु यात्रार्थं चैव कोटिषु ।
प्रासादे मञ्चकस्थानं यः पश्यति स मुच्यते ॥ ३० ॥

जो सहस्रों तथा करोडों गाडी अन्नमें केवल एक प्रस्थ—पेट भरने लायक ही अपने जीवन निर्वाहके लिये अच्छा समझता है, तथा प्रासादमें एक बिछाने भरकी जगह अपने लिये पर्याप्त मानता है, वही मुक्त होता है ॥ ३० ॥

मृत्युनाभ्याहतं लोकं व्याधिभिश्चोपपीडितम् ।
अवृत्तिकर्शितं चैव यः पश्यति स मुच्यते ॥ ३१ ॥

जो इस जगत्को मृत्युसे आक्रान्त, रोगोंसे पीडित और जीविकाके अभावसे दुर्बल हुआ देखता है वह मुक्त होता है ॥ ३१ ॥

यः पश्यति सुखी तुष्टो नपश्यंश्च विहन्यते ।
यश्चाप्यल्पेन संतुष्टो लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः ॥ ३२ ॥

जो ऐसा देखता है वह सुखी और सन्तुष्ट होता है; जो ऐसा नहीं देखता वह नष्ट होता है; जो थोडे लाभसे भी संतुष्ट होता है, वह इस लोकमें मुक्त है ॥ ३२ ॥

अग्नीषोमाविदं सर्वमिति यश्चानुपश्यति ।
न च संस्पृश्यते भावैरद्भुतैर्मुक्त एव सः ॥ ३३ ॥

जठराग्नि भोक्ता और भोज्य अन्न ही सोम स्वरूप है, यह सब जगत् उन दोनोंसे युक्त है, परन्तु स्वयंको उन दोनोंसे पृथक् समझता है, जो इसे अवलोकन करता है, उसे सुख—दुःख आदि अद्भुत मायिक भाव संस्पृष्ट नहीं होते; वही मुक्त पुरुष है ॥ ३३ ॥

पर्यङ्कशय्या भूमिश्च समाने यस्य देहिनः ।
शालयश्च कदन्नं च यस्य स्यान्मुक्त एव सः ॥ ३४ ॥

पलंगकी शय्या और भूमितल जिसके पक्षमें समान हैं तथा चावल और कदन्न आदि जिसे एकसे ही हैं, वही मुक्त पुरुष है ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्षौमं च कुशचीरं च कौशेयं वल्कलानि च ।
आविकं चर्म च समं यस्य स्यान्मुक्त एव सः ॥ ३५ ॥

सनके वस्त्र और कुशके चीर, रेशमी वस्त्र और वल्कल तथा कम्बल और मृगचर्म ये सब जिसे समान है, वही मुक्त पुरुष है ॥ ३५ ॥

पञ्चभूतसमुद्भूतं लोकं यश्चानुपश्यति ।
तथा च वर्तते दृष्ट्वा लोकेऽस्मिन्मुक्त एव सः ॥ ३६ ॥

जो जगत्को पञ्चभूतोंसे उत्पन्न देखता है, और देखके वैसा ही व्यवहार किया करता है, इस लोकमें वही मुक्त पुरुष है ॥ ३६ ॥

सुखदुःखे समे यस्य लाभालाभौ जयाजयौ ।
इच्छाद्वेषौ भयोद्वेगौ सर्वथा मुक्त एव सः ॥ ३७ ॥

जिसे सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, इच्छा-द्वेष भय और उद्वेगमें समान ज्ञान रहता है, वही सब प्रकारसे मुक्त पुरुष है ॥ ३७ ॥

रक्तमूत्रपुरीषाणां दोषाणां संचयं तथा ।
शरीरं दोषबहुलं दृष्ट्वा चेदं विमुच्यते ॥ ३८ ॥

जो रक्त, मूत्र और मलके आधार इस शरीरमें बहुतसे दोषोंको देखता है, वही मुक्त होता है ॥ ३८ ॥

वलीपलितसंयोगं काश्यं वैवर्ण्यमेव च ।
कुब्जभावं च जरया यः पश्यति स मुच्यते ॥ ३९ ॥

जो बुढापाके कारण शरीर झुरियांयुक्त तथा सिरके बाल सफेद होते हैं, वह शरीर दुबला और कान्तिहीन होता है, और कमर झुक जानेके कारण कुबडासा होता है, इन सब बातोंको जानता है, वह मुक्त होता है ॥ ३९ ॥

पुंस्त्वोपघातं कालेन दर्शनोपरमं तथा ।
बाधिर्यं प्राणमन्दत्वं यः पश्यति स मुच्यते ॥ ४० ॥

जो कालक्रमसे निज शरीरमें पुरुषत्वकी हानि, दर्शनशक्तिकी उपरति, बधिरता और प्राण-शक्तिकी दुर्बलता देखता है, वही मुक्त होता है ॥ ४० ॥

गतानृषींस्तथा देवानसुरांश्च तथा गतान् ।
लोकादस्मात्परं लोकं यः पश्यति स मुच्यते ॥ ४१ ॥

कितने ही ऋषि, देवता और असुर इस लोकसे परलोक चले गये; जो यह देखता और इसपर विचार करता है, वह मुक्त होता है ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रभावैरन्वितास्तैस्तैः पार्थिवेन्द्राः सहस्रशः ।
ये गताः पृथिवीं त्यक्त्वा इति ज्ञात्वा विमुच्यते ॥ ४२ ॥

प्रसिद्ध और प्रभावयुक्त सहस्रों राजेन्द्र इस पृथ्वीको छोडके परलोकमें गये हैं, इसे जो विचारता है वही मुक्त होता है ॥ ४२ ॥

अर्थांश्च दुर्लभाँल्लोके क्लेशांश्च सुलभांस्तथा ।
दुःखं चैव कुटुम्बार्थे यः पश्यति स मुच्यते ॥ ४३ ॥

जो इस लोकमें सब अर्थ दुर्लभ, क्लेश कदम्ब ही सुलभ और कुटुम्बके पालन-पोषणके निमित्त बहुत दुःख दर्शन करता है, वह मुक्त होता है ॥ ४३ ॥

अपत्यानां च वैगुण्यं जनं विगुणमेव च ।
पश्यन्भूयिष्ठशो लोके को मोक्षं नाभिपूजयेत् ॥ ४४ ॥

इस लोकमें अपत्योंमें विगुणत्व और लोकके बीच अधिकांश गुणहीन ही मनुष्योंसे सम्बन्ध होता है, इसे देखके, कौन पुरुष मोक्षका अभिनन्दन नहीं करेगा ? ॥ ४४ ॥

शास्त्राल्लोकाच्च यो बुद्धः सर्वं पश्यति मानवः ।
असारमिव मानुष्यं सर्वथा मुक्त एव सः ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान प्राप्त करके मनुष्यजन्मको असार समझता है, वही सब प्रकारसे मुक्त होता है ॥ ४५ ॥

एतच्छ्रुत्वा मम वचो भवांश्चरतु मुक्तवत् ।
गार्हस्थ्ये यदि ते मोक्षे कृता बुद्धिरविक्लवा ॥ ४६ ॥

गार्हस्थ्य अथवा मोक्ष विषयमें यदि तुम्हारी बुद्धि विह्वल न हुई हो; तो मेरा यह वचन सुनके विमुक्तके समान व्यवहार करो ॥ ४६ ॥

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सम्यक्स पृथिवीपतिः ।
मोक्षजैश्च गुणैर्युक्तः पालयामास च प्रजाः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥ ९७६७ ॥

पृथ्वीपति सगरने अरिष्टनेमिके कहे हुए वचनको पूर्णरीतिसे सुनकर अद्वेष्टृत्व आदि ज्ञानज गुणोंसे युक्त होकर प्रजापालन किया ॥ ४७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७७ ॥ ९७६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २७८ :

युधिष्ठिर उवाच—

तिष्ठते मे सदा तात कौतूहलमिदं हृदि ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कुरुपितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे तात कुरुपितामह ! हमारे हृदयमें बहुत समयसे यह वक्ष्यमाण कौतूहल विद्यमान होरहा है, इसलिये आपके समीप मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १॥

कथं देवर्षिरुशना सदा काव्यो महामतिः ।
असुराणां प्रियकरः सुराणामप्रिये रतः ॥ २ ॥

महाबुद्धिमान् श्रेष्ठ देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्यमें रत होकर, किस कारण असुरोंके सदा प्रिय कार्योंमें रत रहते हैं ? ॥ २ ॥

वर्धयामास तेजश्च किमर्थममितौजसाम् ।
नित्यं वैरनिबद्धाश्च दानवाः सुरसत्तमैः ॥ ३ ॥

और किस कारण अत्यन्त तेजस्वी दानवोंका तेज बढाया था ? दानव लोग श्रेष्ठ देवताओंके संग सदा वैरयुक्त ही रहते थे ॥ ३ ॥

कथं चाप्युशना प्राप शुक्रत्वममरद्युतिः ।
ऋद्धिं च स कथं प्राप्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ४ ॥

अमरद्युति उशना किस लिये शुक्रत्वको प्राप्त हुए और वह किस प्रकार समृद्धियुक्त हुए थे ? आप मेरे समीप यह सब वर्णन करियं ॥ ४ ॥

न याति च स तेजस्वी मध्येन नभसः कथम् ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं निखिलेन पितामह ॥ ५ ॥

हे पितामह ! वह तेजस्वी शुक्र किस कारणसे आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन नहीं करते ? इन सब विषयोंको मैं विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच—

शृणु राजन्नवहितः सर्वमेतद्यथातथम् ।
यथामति यथा चैतच्छ्रुतपूर्वं मयानघ ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— हे पापरहित राजन् ! मैंने जिस प्रकार इसे पहले सुना है, वह तुम्हारे निकट निजबुद्धिके अनुसार यथार्थ रूपसे कहता हूं । तुम सावधान होकर यह सब विषय ज्यों का त्यों सुनो ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एष भार्गवदायादो मुनिः सत्यो दृढव्रतः ।
असुराणां प्रियकरो निमित्ते करुणात्मके ॥ ७ ॥

यह दृढव्रती, भृगुपुत्र, माननीय मुनि किसी कारणसे असुरोंके प्रियकारी हुए थे; इस विषयमें यह इतिहास है, कि दानव लोग देवताओंको पीडित करके भृगुपत्नीके आश्रममें प्रवेश कर आपदरहित होकर निवास करने लगे । देवता लोग वहां प्रवेश करनेमें समर्थ न होकर सर्वव्यापी भगवान् हृषीकेशके शरणमें गये । अनन्तर भगवान् विष्णुने सुदर्शन चक्रकी धारसे भृगुपत्नीका शिर काट डाला । तब अन्तमें मरनेसे बचे हुए असुरोंने उसके पुत्रका आसरा ग्रहण किया । शुक्र मातृवधसे दुःखित होकर असुरोंको अभयदान करके देवताओंके विषयमें अत्याचार करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ७ ॥

इन्द्रोऽथ धनदो राजा यक्षरक्षोधिपः स च ।
प्रभविष्णुश्च कोशस्य जगतश्च तथा प्रभुः ॥ ८ ॥

जगन्नियन्ता पाकशासन इन्द्र तीनों लोकोंके राजा थे और यक्ष और राक्षसोंके सदा स्वामी प्रभावशाली राजा कुबेर उनके धनाध्यक्ष थे ॥ ८ ॥

तस्यात्मानमथाविश्य योगसिद्धो महामुनिः ।
रुद्ध्वा धनपतिं देवं योगेन हृतवान्वसु ॥ ९ ॥

योगसिद्ध महामुनि शुक्रने धनाधिपति कुबेरके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कर उन्हें वश करके उनका सब धन हर लिया ॥ ९ ॥

हृते धने ततः शर्म न लेभे धनदस्तथा ।
आपन्नमन्युः संविग्नः सोऽभ्यगात्सुरसत्तमम् ॥ १० ॥

सब धन हरे जानेपर धनपति किसी प्रकार स्वस्थ न रह सके; वे क्रोधसे युक्त और व्याकुल होके सुरसत्तम शिवके निकट गये ॥ १० ॥

निवेदयामास तदा शिवायामिततेजसे ।
देवश्रेष्ठाय रुद्राय सौम्याय बहुरूपिणे ॥ ११ ॥

उन्होंने प्रियदर्शन, अनेक रूपवाले, अत्यन्त तेजस्वी, देवश्रेष्ठ कल्याणप्रद रुद्रदेवके निकटवर्त्ती होकर निवेदन किया ॥ ११ ॥

कुबेर उवाच—

योगात्मकेनोशनसा रुद्ध्वा मम हृतं वसु ।
योगेनात्मगतिं कृत्वा निःसृतश्च महातपाः ॥ १२ ॥

कुबेर बोले— योगात्मा भार्गवने योगबलसे मेरे शरीरमें प्रविष्ट होके मुझे रुद्ध करके मेरा समस्त धन हर लिया है । वह महातपस्वी उशना योगबलसे सब धन अपने अधिकारमें करके मेरे शरीरसे निकल गये हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

एतच्छ्रुत्वा ततः क्रुद्धो महायोगी महेश्वरः ।
संरक्तनयनो राजञ्शूलमादाय तस्थिवान् ॥ १३ ॥

भीष्म बोले— हे राजन्! महायोगी महेश्वर धनाधिपतिका ऐसा वचन सुनके क्रोधसे नेत्र लाल कर हाथमें त्रिशूल लेकर खडे हो गये ॥ १३ ॥

क्वासौ क्वासाविति प्राह गृहीत्वा परमायुधम् ।
उशना दूरतस्तस्य बभौ ज्ञात्वा चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥

वह उस परमास्त्रको ग्रहण करके "वह कहां है? वह कहां है?" वारंवार ऐसा ही कहने लगे; उशना उनका अभिप्राय जानके उनसे दूर हो गये ॥ १४ ॥

स महायोगिनो बुद्ध्वा तं रोषं वै महात्मनः ।
गतिमागमनं वेत्ति स्थानं वेत्ति ततः प्रभुः ॥ १५ ॥

योगसिद्ध शुक्र महायोगी महात्मा रुद्रदेवके रोषके विषयको जानके उनसे दूर हट गये; वे गमन, आगमन और स्थानको जानते थे; इसलिये वे विचार करने लगे, कि उनके निकट जाऊं अथवा इस स्थानसे प्रस्थान करूं, वा इस ही स्थानमें स्थित रहूं ॥ ॥ १५ ॥

संचिन्त्योग्रेण तपसा महात्मानं महेश्वरम् ।
उशना योगसिद्धात्मा शूलाग्रे प्रत्यदृश्यत ॥ १६ ॥

अनन्तर योगसिद्ध उशनाने उग्र तपस्याके सहारे महानुभाव महेश्वरके विषयमें चिन्तन करके यह निश्चय किया, कि "मैं शूलके ऊपर निवास करूं, तो महादेव मेरे ऊपर शूल न चला सकेंगे" ऐसा समझके वह शैव शूलके अग्रभागमें स्थित होकर दिखायी दिये ॥ १६ ॥

विज्ञातरूपः स तदा तपःसिद्धेन धन्विना ।
ज्ञात्वा शूलं च देवेशः पाणिना समनामयत् ॥ १७ ॥

तपःसिद्ध शुक्रको उस रूपमें पहचानकर, शूलस्थ जानके देवेश महादेवने अपने धनुषयुक्त हाथसे उस शूलको नमित किया ॥ १७ ॥

आनतेनाथ शूलेन पाणिनामिततेजसा ।
पिनाकमिति चोवाच शूलमुग्रायुधः प्रभुः ॥ १८ ॥

उग्रायुध महादेवने अपरिमित प्रभावयुक्त हाथसे शूलको शरासन रूपसे नमित किया था, इससे ही उस शूलका नाम पिनाक हुआ ॥ १८ ॥

पाणिमध्यगतं दृष्ट्वा भार्गवं तमुमापतिः ।
आस्यं विवृत्य ककुदी पार्णिं संप्राक्षिपच्छनैः ॥ १९ ॥

अनन्तर उमापति रुद्रदेवने शूलके मुडनेके कारण भार्गवको हाथके बीच आया देख कर उसे हाथसे ही उठाके मुख बाके उसहीमें डाल दिया ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स तु प्रविष्ट उशना कोष्ठं माहेश्वरं प्रभुः ।
व्यचरच्चापि तत्रासौ महात्मा भृगुनन्दनः ॥ २० ॥

महात्मा भृगुनन्दन उशना महादेवके उदरमें जाकर वहां सब ओर विचरने लगे, अन्न आदि की भांति जीर्ण न हुए ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच—

किमर्थं व्यचरद्राजन्नुशना तस्य धीमतः ।
जठरे देवदेवस्य किं चाकार्षीन्महाद्युतिः ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! महातेजस्वी भृगुनन्दनने महादेवके जठरके बीच किस निमित्त विचरण किया था और वहां किस प्रकार तपस्या की थी ? ॥ २१ ॥

भीष्म उवाच—

पुरा सोऽन्तर्जलगतः स्थाणुभूतो महाव्रतः ।
वर्षाणामभवद्राजन्प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २२ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! पहले समयमें महाव्रती महादेवने स्थाणुकी भांति जलके बीच निवास करके तपस्या की थी; उस तपस्यामें उनका दस हजार अर्बुद वर्ष बीत गया ॥२२॥

उदतिष्ठत्तपस्तप्त्वा दुश्चरं च महाह्रदात् ।
ततो देवातिदेवस्तं ब्रह्मा समुपसर्पत ॥ २३ ॥

अनन्तर वह दुश्चर तपस्या पूरी करके महाह्रदसे बाहर निकले, तब देवश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा उनके समीप उपस्थित हुए ॥ २३ ॥

तपोवृद्धिमपृच्छच्च कुशलं चैनमव्ययम् ।
तपः सुचीर्णमिति च प्रोवाच वृषभध्वजः ॥ २४ ॥

ब्रह्माने अविनाशी शिवके निकट जाके उनसे तपोवृद्धि और कुशलका विषय पूछा; वृषभध्वजने तपस्या उत्तम रीतिसे हुई है, ऐसा ही उत्तर दिया ॥ २४ ॥

तत्संयोगेन वृद्धिं चाप्यपश्यत्स तु शंकरः ।
महामतिरचिन्त्यात्मा सत्यधर्मरतः सदा ॥ २५ ॥

अनन्तर सदा सत्यधर्ममें रत, अचिन्त्यस्वभाव, महाबुद्धिमान् शङ्करने देखा कि, तपस्याके संयोगसे शुक्रने भी उत्कर्ष लाभ किया है ॥ २५ ॥

स तेनाढ्यो महायोगी तपसा च धनेन च ।
व्यराजत महाराज त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ २६ ॥

हे महाराज ! महायोगी उशना उस तप रूप धनसे युक्त और वीर्यवान् होकर त्रिभुवनमें विराजने लगे ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः पिनाकी योगात्मा ध्यानयोगं समाविशत् ।
उशना तु समुद्विग्नो निलिल्ये जठरे ततः ॥ २७ ॥

अनन्तर योगात्मा पिनाकपाणिने ध्यानयोगमें समाधि लगाई; उशना भी व्याकुल होके उनके उदरके बीच लीन हो रहे ॥ २७ ॥

तुष्टाव च महायोगी देवं तत्रस्थ एव च ।
निःसारं काङ्क्षमाणस्तु तेजसा प्रत्यहन्यत ॥ २८ ॥

महायोगी उशना महादेवके उदरसे निकलनेकी इच्छा करके उदरमें रहके ही उस देवदेवकी स्तुति करने लगे; परन्तु महादेव अपने तेजसे उनकी गतिको नष्ट करते थे ॥ २८ ॥

उशना तु तदोवाच जठरस्थो महामुनिः ।
प्रसादं मे कुरुष्वेति पुनः पुनररिंदम ॥ २९ ॥

हे शत्रुदमन राजन् ! अनन्तर जठरके मध्यवर्त्ती महामुनि उशना विनय वचनसे बार बार उनसे बोले– हे प्रभु ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ! ॥ २९ ॥

तमुवाच महादेवो गच्छ शिश्नेन मोक्षणम् ।
इति स्रोतांसि सर्वाणि रुद्ध्वा त्रिदशपुंगवः ॥ ३० ॥

तब महादेव उनसे बोले " तुम हमारे शिश्न लिङ्गके मार्गसे निकलो; " त्रिदशेश्वर महादेवने ऐसा वचन कहके सब इन्द्रियद्वारोंको रोक दिया ॥ ३० ॥

अपश्यमानः स द्वारं सर्वतःपिहितो मुनिः ।
पर्यक्रामदह्यमान इतश्चेतश्च तेजसा ॥ ३१ ॥

सब भांतिसे घिरे रहनेसे उशना उस द्वारको देख नहीं सकते थे; भगवान् महादेवके तेजसे दग्ध होते हुए वे इधर–उधर घूमने लगे ॥ ३१ ॥

स विनिष्क्रम्य शिश्नेन शुक्रत्वमभिपेदिवान् ।
कार्येण तेन नभसो नागच्छत च मध्यतः ॥ ३२ ॥

फिर वे लिङ्गद्वारसे सहसा बाहर हुए; उस द्वारसे निकलनेके कारण उनका शुक्र नाम हुआ; और लिङ्गसे निकलनेसे ही वह हम लोगोंकी भांति आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ३२ ॥

निष्क्रान्तमथ तं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव तेजसा ।
भवो रोषसमाविष्टः शूलोद्यतकरः स्थितः ॥ ३३ ॥

महादेव उस तेजपुञ्जसे प्रकाशमान शुक्रको निकला हुआ देखकर, क्रोधयुक्त होकर हाथमें त्रिशूल लेकर खडे हुए ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न्यवारयत तं देवी क्रुद्धं पशुपतिं पतिम् ।
पुत्रत्वमगमद्देव्या वारिते शंकरे च सः ॥ ३४ ॥

निजपति महादेवको क्रुद्ध हुआ देखकर देवीने उन्हें निवारण किया । महादेवके भवानीसे निवारित होनेपर शुक्रने देवीका पुत्रत्व लाभ किया ॥ ३४ ॥

देव्युवाच—

हिंसनीयस्त्वया नैष मम पुत्रत्वमागतः ।
न हि देवोदरात्कश्चिन्निःसृतो नाशमर्छति ॥ ३५ ॥

देवी बोली– हे देव ! जब शुक्र हमारा पुत्र हुआ, तब इसकी हिंसा करनी तुम्हें उचित नहीं है; तुम्हारे उदरसे निकलनेसे कोई भी कदापि विनष्ट नहीं होगा ॥ ३५ ॥

भीष्म उवाच –

ततः प्रीतोऽभवद्देव्याः प्रहसंश्चेदमब्रवीत् ।
गच्छत्वेष यथाकाममिति राजन्पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! अनन्तर भगवान् महादेव यह सुनकर भगवतीके ऊपर प्रसन्न होकर हंसते हुए बार बार यह वचन बोले, इस समय इसकी जहां इच्छा हो, उस स्थानमें गमन करे ॥ ३६ ॥

ततः प्रणम्य वरदं देवं देवीमुमां तथा ।
उशना प्राप तद्धीमान्गतिमिष्टां महामुनिः ॥ ३७ ॥

अन्तमें महामुनि बुद्धिमान् उशनाने वरदाता महादेव और जगन्माता उमादेवीको प्रणाम करके निज अभिलषित स्थानमें गमन किया ॥ ३७ ॥

एतत्ते कथितं तात भार्गवस्य महात्मनः ।
चरितं भरतश्रेष्ठ यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥ ९८०५ ॥

हे तात ! भरतश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जो पूछा, मैंने तुम्हारे निकट उस ही महानुभाव भार्गवका चरित्र वर्णन किया ॥ ३८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ २७८ ॥ ९८०५ ॥

: २७९ :

युधिष्ठिर उवाच—

अतः परं महाबाहो यच्छ्रेयस्तद्वदस्व मे ।
न तृप्याम्यमृतस्येव वचस्स्ते पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाबाहु पितामह ! इसके अनन्तर जो कल्याणकारी मार्ग है, आप उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये । आपके अमृत समान वचनको सुनके मुझे किसीसे भी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

किं कर्म पुरुषः कृत्वा शुभं पुरुषसत्तम ।
श्रेयः परमवाप्नोति प्रेत्य चेह च तद्वद ॥ २ ॥

हे पुरुषसत्तम ! मनुष्य कैसा शुभ कर्म करके इस लोक और परलोकमें परम कल्याण लाभ कर सकता है, आप उसे ही कहिये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच –

अत्र ते वर्तयिष्यामि यथा पूर्वं महायशाः ।
पराशरं महात्मानं पप्रच्छ जनको नृपः ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– इस विषयमें पहले समयमें महायशस्वी राजा जनकने महात्मा पराशरसे जो प्रश्न किया था, उसे ही मैं तुम्हारे समीप पूर्ववत् वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

किं श्रेयः सर्वभूतानामस्मिँल्लोके परत्र च ।
यद्भवेत्प्रतिपत्तव्यं तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

" इस लोक और परलोकमें जो सब भूतोंके लिये कल्याणकारी है और जो सबका ही ज्ञेय विषय है, आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये " ॥ ४ ॥

ततः स तपसा युक्तः सर्वधर्मविधानवित् ।
नृपायानुग्रहमना मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

राजर्षि जनकका ऐसा वचन सुनकर सब धर्मोंके विधानको जाननेवाले, तपोबलसे युक्त, मननशील पराशर मुनि राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा करते हुए वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ५ ॥

धर्म एव कृतः श्रेयानिहलोके परत्र च ।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥ ६ ॥

उपार्जित धर्मही इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है; मनीषी लोग जैसा कहते हैं, उससे बोध होता है, कि धर्मसे श्रेष्ठ वस्तु और कुछ भी नहीं है ॥ ६ ॥

प्रतिपद्य नरो धर्मं स्वर्गलोके महीयते ।
धर्मात्मकः कर्मविधिर्देहिनां नृपसत्तम ।
तस्मिन्नाश्रमिणः सन्तः स्वकर्माणीह कुर्वते ॥ ७ ॥

हे नृपसत्तम ! मनुष्य धर्माचरण करके, उसे जानके स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है; देह-धारियोंके याग यज्ञादि कर्मही धर्ममय हैं; गार्हस्थ्य आदि आश्रमोंमें निवास करनेवाले सज्जन लोग उसमेंही धर्मनिष्ठ होकर इस लोकमें निज निज कार्योंको किया करते हैं ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चतुर्विधा हि लोकस्य यात्रा तात विधीयते ।
मर्त्या यत्रावतिष्ठन्ते सा च कामात्प्रवर्तते ॥ ८ ॥

हे तात ! इस लोकमें जीवनयात्रा निभानेके उपाय चार प्रकारसे कहे गये हैं; ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह, क्षत्रियको कर ग्रहण करना, वैश्यके लिये कृषि वाणिज्य और शूद्रके निमित्त तीनों वर्णोंकी सेवा करना । मनुष्य जिस स्थानमें निवास करते हैं, जीविका भी यदृच्छाक्रमसे वहां उपस्थित होती है ॥ ८ ॥

सुकृतासुकृतं कर्म निषेव्य विविधैः क्रमैः ।
दशार्धप्रविभक्तानां भूतानां बहुधा गतिः ॥ ९ ॥

प्राणिसमूह अनेक प्रकारके पुण्य-पापका कार्य करके पञ्चभूतोंमें विभक्त अर्थात् पञ्चत्व प्राप्त होनेपर उनकी नाना भांतिकी गति हुआ करती है । पापियोंको तिर्यग् योनि, पुण्यात्माओंको स्वर्गवास, पाप-पुण्य समान रहनेपर मनुष्यजन्म और तत्वज्ञानके सहारे पाप पुण्यका नाश होनेपर मुक्ति हुआ करती है ॥ ९ ॥

सौवर्णं राजतं वापि यथा भाण्डं निषिच्यते ।
तथा निषिच्यते जन्तुः पूर्वकर्मवशानुगः ॥ १० ॥

जैसे ताम्रमय पात्र द्रवीभूत सुवर्ण वा रौप्यमें डाले जानेसे सोना तथा चांदीकी भांति दिखाई देता है, वैसे ही जीव पूर्वकर्मोंके वशमें होकर जन्म ग्रहण करता है ॥ १० ॥

नाबीजाज्जायते किंचिन्नाकृत्वा सुखमेधते ।
सुकृती विन्दति प्राप्य देहक्षयं नरः ॥ ११ ॥

विना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती; जो बीज ग्रीष्मकालमें धूलिसे ढके रहनेसे नहीं दीख पडता, वर्षाकालमें वही अंकुर निकलनेसे जाना जाता है । इस ही भांति दृष्टादृष्ट कारणके जरिये सुख आदि उत्पन्न होते हैं; इसलिये पूर्व जन्ममें कुछ सुकृत न करनेसे जीव इस जन्ममें सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता । इससे सुकृतसे ही देहाधिपत्य अथवा देहक्षय प्राप्त होनेपर मनुष्य सुखोंको भोग करता है ॥ ११ ॥

दैवं तात न पश्यामि नास्ति दैवस्य साधनम् ।
स्वभावतो हि संसिद्धा देवगन्धर्वदानवाः ॥ १२ ॥

हे तात ! देवताओंमें कुछ पुण्य वा पापका लक्षण नहीं दीखता, उस विषयमें अनुमान वा साधन नहीं है । देव, गन्धर्व और दानव लोग स्वभावसे ही जन्म ग्रहण किया करते हैं; उनमें कोई कारणान्तर नहीं है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रेत्य जातिकृतं कर्म न स्मरन्ति सदा जनाः ।
ते वै तस्य फलप्राप्तौ कर्म चापि चतुर्विधम् ॥ १३ ॥

मनुष्य परलोकमें जानेपर इस लोकके किये हुए सब कर्मोंको सदा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते; परन्तु उन कर्मोंके फल प्राप्त होनेपर पुण्य-पाप नीति वा अनीतिके जरिये प्रतिपादित चार प्रकारके कर्म स्मरण किया करते हैं ॥ १३ ॥

लोकयात्राश्रयश्चैव शब्दो वेदाश्रयः कृतः ।
शान्त्यर्थं मनसस्तात नैतद्बृद्धानुशासनम् ॥ १४ ॥

"पुण्यकर्मसे पवित्रता होती है" इत्यादि वेदाश्रय वचन लोकयात्रा निर्वाहके उपाय हुए हैं । हे तात ! मनकी शांतिके लिये लोकायतशास्त्र प्रणेता प्राचीन पुरुष बृहस्पति आदिकी ऐसी आज्ञा नहीं है ॥ १४ ॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ १५ ॥

नेत्र, मन, वचन और कर्मसे मनुष्य चार प्रकारके कर्मोंको जिस भावसे किया करता है, उस ही भावसे उसकी फलप्राप्ति होती है ॥ १५ ॥

निरन्तरं च मिश्रं च फलते कर्म पार्थिव ।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते ॥ १६ ॥

हे राजन् ! कदाचित् मनुष्य कर्मके फलरूपमें कभी केवल दुःख, कभी केवल सुख पाता है, कभी सुख-दुःख दोनों ही मिश्रित भावसे भोग किया करता है; कल्याणकारी कर्म हो, अथवा पाप कर्म ही होवे, उसके निमित्त पुण्यपापात्मक अपूर्वके भोगे विना कदापि विनाश नहीं होता ॥ १६ ॥

कदाचित्सुकृतं तात कूटस्थमिव तिष्ठति ।
मज्जमानस्य संसारे यावद्दुःखाद्विमुच्यते ॥ १७ ॥

हे तात ! संसारमें प्रायः डूबा मनुष्य दुःखोंसे छूटनेपर उसका सुकृत पक्षपातरहित होकर दुष्कृतके अविरोधमें निवास करता है ॥ १७॥

ततो दुःखक्षयं कृत्वा सुकृतं कर्म सेवते ।
सुकृतक्षयाद्दुष्कृतं च तद्विद्धि मनुजाधिप ॥ १८ ॥

हे जनाधिप ! पुरुष दुःखका भोग समाप्त करके सुकृत कर्मकी सेवा करता है, और सुकृतका भी नाश होनेके अनन्तर दुष्कृत कर्मोंका फल भोग किया करता है, ऐसा ही प्रणिधान करे ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दमः क्षमा धृतिस्तेजः संतोषः सत्यवादिता ।
ह्रीरहिंसाव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः ॥ १९ ॥

इंद्रियसंयम, क्षमा, धृति, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, व्यसनहीनता और दक्षता, ये सब सुखावह अर्थात् पुण्यपापके समुच्छेदजनित सुख देनेवाले हैं ॥ १९ ॥

दुष्कृते सुकृते वापि न जन्तुरयतो भवेत् ।
नित्यं मनःसमाधाने प्रयतेत विचक्षणः ॥ २० ॥

मनुष्य जीवन पर्यन्त पाप वा पुण्यमें आसक्त न होवे; बुद्धिमान् मनुष्य सदा ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधि करनेमें यत्नवान् होवे ॥ २० ॥

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं वापि सेवते ।
करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ २१ ॥

मनुष्य दूसरेके सुकृत वा दुष्कृतको भोग नहीं करता; स्वयं जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोग किया करता है ॥ २१ ॥

सुखदुःखे समाधाय पुमानन्येन गच्छति ।
अन्येनैव जनः सर्वः संगतो यश्च पार्थिव ॥ २२ ॥

सुख और दुःखके हेतु पुण्य और पापको तत्वज्ञानके जरिये आत्मामें लीन करके विवेकी पुरुष ज्ञानपथसे गमन करनेसे अभिलषित मोक्षको पाता है, और जो पुरुष पृथ्वीपर स्थिर होकर स्त्री, पुत्र, पशु, गृह, धन और आराम आदिमें आसक्त होता है, वह उससे दूसरे मार्गमें गमन करता है, वह जन्मता और मरता है ॥ २२ ॥

परेषां यदसूयेत न तत्कुर्यात्स्वयं नरः ।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति ॥ २३ ॥

दूसरेका जो कार्य देखके निन्दा करनी होती है, स्वयं उस निन्दनीय कर्मको न करे; जो पुरुष दोषदर्शी है, और स्वयं वही निन्द्य कर्म करता है, वह निन्दनीय होता है ॥ २३ ॥

भीरू राजन्यो ब्राह्मणः सर्वभक्षो वैश्योऽनीहावान्हीनवर्णोऽलसश्च ।
विद्वांश्चाशीलो वृत्तहीनः कुलीनः सत्यादिभ्रष्टो ब्राह्मणः स्त्री च दुष्टा ॥२४॥

हे राजन् ! क्षत्रिय होके भीरु ब्राह्मण होकर सर्वभक्षी, वैश्य होके कृषि–वाणिज्यके कार्योंमें चेष्टारहित, हीन वर्ण शूद्र होके आलसी, विद्वान् होके उत्तम गुणोंसे रहित, कुलीन होके सदाचारका पालन न करनेवाला, वेदज्ञ धार्मिक होके सत्यसे भ्रष्ट, दुश्चरित्रवाली स्त्री, ॥२४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रागी मुक्तः पचमानोऽऽत्महेतोर्मूर्खो वक्ता नृपहीनं च राष्ट्रम् ।
एते सर्वे शोच्यतां यान्ति राजन्यश्चायुक्तः स्नेहहीनः प्रजासु ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥ ९८३० ॥

योगी होके विषयानुरागी, आत्मनिमित्त पाचक, मूर्ख वक्ता, राजासे रहित राज्य, वेदविहित योगाभ्याससे रहित होके भी प्रजासमूहके विषयमें स्नेहहीन,– ये सभी निन्दनीय हुआ करते हैं ॥ २५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ उन्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ २७९ ॥ ९८३० ॥

२८०

पराशर उवाच—

मनोरथरथं प्राप्य इन्द्रियार्थहयं नरः ।
रश्मिभिर्ज्ञानसंभूतैर्यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले– जो मनुष्य मनोमय शरीररूपी रथको और इन्द्रिय विषय शब्द स्पर्श आदिको घोडे रूपी जानकर ज्ञानसे उत्पन्न हुई रश्मि अर्थात् चित्त–प्रतिभाके सहारे परिचालित करते हुए विषयोंको चिन्मय रूपसे अवलोकन करता है; वही बुद्धिमान् है ॥ १ ॥

सेवाश्रितेन मनसा वृत्तिहीनस्य शस्यते ।
द्विजातिहस्ताद्निर्वृत्ता न तु तुल्यात्परस्परम् ॥ २ ॥

जिसका मन किसी अवलम्बका सहारा न करके इन्द्रियोंकी बाह्य वृत्तिसे रहित होकर निवास करता है, उपासना करता है, उस वृत्तिहीन पुरुषका ईश्वर प्रणिधान सबसे श्रेष्ठ है, अर्थात् निर्विकल्पक समाधिके सहारे निवास करनाही सबसे उत्तम है । क्षीण कर्मवाले ब्रह्मवित् साधु पुरुष गुरुके प्रसादसे उस प्रणिधानको प्राप्त करके निवृत्त होते हैं, वैसा प्रणिधान परस्पर समान पुरुषोंमें नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

आयुर्नसुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद्विशां पते ।
उत्कर्षार्थं प्रयतते नरः पुण्येन कर्मणा ॥ ३ ॥

हे मनुजेश्वर ! मनुष्य शरीरकी दुर्लभ परमायु पाके विषय सेवनसे उसे नष्ट करना उचित नहीं है । पुण्य कर्मके सहारे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक प्राप्त होनेके लिये मनुष्यमात्रको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

वर्णेभ्योऽपि परिभ्रष्टः स वै संमानमर्हति ।
न तु यः सत्क्रियां प्राप्य राजसं कर्म सेवते ॥ ४ ॥

सत्व, रज और तमोगुणकी ह्रास वृद्धिके तारतम्यके अनुसार कल्पित कृष्ण, धूम्र, नील, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकारके वर्णोंसे जो पुरुष परिभ्रष्ट अर्थात् उच्च वर्णसे नीच वर्ण लाभ करता है, वह भी सम्मान पानेमें समर्थ होता है और जो मनुष्य सत्त्वगुणके द्वारा उच्च वर्ण लाभ करता, और फिर राजस कर्मोंको सेवन करता ही वह सम्मान भाजन नहीं होता है ॥४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा ।
दुर्लभं तमलब्ध्वा हि हन्यात्पापेन कर्मणा ॥ ५ ॥

इसलिये मनुष्य पुण्यकर्मसे ही श्रेष्ठ वर्णका लाभ किया करता है और पाप कर्मसे दुर्लभ वर्णकी उत्कर्षता न प्राप्त कर सकनेसे वह अपने आप ही नष्ट करता है ॥ ५ ॥

अज्ञानाद्धि कृतं पापं तपसैवाभिनिर्णुदेत् ।
पापं हि कर्म फलति पापमेव स्वयं कृतम् ।
तस्मात्पापं न सेवेत कर्म दुःखफलोदयम् ॥ ६ ॥

मनुष्य अज्ञानसे प्राप्त हुए पापको तपस्यासे दूर करे; जानके किया हुआ अपना पाप कर्म केवल पापरूप दुःखके फलको ही उत्पन्न किया करता है; इसलिये परिणाममें दुःख ही जिसके फलरूपसे उत्पन्न होता है, वैसे पापकर्मका अनुष्ठान करना कदापि उचित नहीं है; ॥ ६ ॥

पापानुबन्धं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम् ।
न तत्सेवेत मेधावी शुचिः कुसलिलं यथा ॥ ७ ॥

पापयुक्त कर्मसे यदि महान् फल उत्पन्न हो, तौ भी जैसे पवित्र पुरुष चाण्डालका स्पर्श नहीं करता, वैसे ही बुद्धिमान् मनुष्य उस पाप कर्मके अनुष्ठान करनेमें विरत रहे ॥ ७ ॥

किंकष्टमनुपश्यामि फलं पापस्य कर्मणः ।
प्रत्यापन्नस्य हि सतो नात्मा तावद्विरोचते ॥ ८ ॥

क्या पापकर्मका फल कुत्सित कष्ट—दुःख मात्र मुझे दीख पडता है ? मैं नहीं देखता, ऐसा मानकर पापके वशमें होकर विपरीत दृष्टिवाला मनुष्य देहादिको ही आत्मा जानता है, परमात्माका चिन्तन उचित नहीं मानता ॥ ८ ॥

प्रत्यापत्तिश्च यस्येह बालिशस्य न जायते ।
तस्यापि सुमहांस्तापः प्रस्थितस्योपजायते ॥ ९ ॥

इस लोकमें जिस मूढ मनुष्यके अन्तःकरणमें वैराग्यका सञ्चार नहीं होता, मरनेपर भी उसे अत्यन्त ही नरकयन्त्रणासे दुःख उत्पन्न हुआ करता है ॥ ९ ॥

विरक्तं शोध्यते वस्त्रं न तु कृष्णोपसंहितम् ।
प्रयत्नेन मनुष्येन्द्र पापमेवं निबोध मे ॥ १० ॥

जो वस्त्र स्वयं श्वेत है, वह यदि विपरीत रङ्गसे रङ्गा जावे, समय विशेषमें सफेद हो सकता है; परन्तु काले रंग भल्लातकादिसे रंगा हुआ वस्त्र कभी परिशुद्ध नहीं होता । हे मनुजेन्द्र ! इसलिये मेरा यही मत है, कि प्रयत्नके जरिये किस पापसे पवित्रता लाभ की जा सकती है, और किस पापसे पवित्रता नहीं प्राप्त हो सकती, तुम इसहीको विचारो ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वयं कृत्वा तु यः पापं शुभमेवानुतिष्ठति ।
प्रायश्चित्तं नरः कर्तुमुभयं सोऽश्नुते पृथक् ॥ ११ ॥

जो पुरुष जानके पापाचरण करके शेषमें शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पापपुण्य दोनोंके ही फलको पृथक् रूपसे भोग किया करता है; जानके किया हुआ पाप किसी भांति भी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥

अज्ञानात्तु कृतां हिंसामहिंसा व्यपकर्षति ।
ब्राह्मणाः शास्त्रनिर्देशादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ १२ ॥

यदि मनुष्य विना जाने हिंसा करे, तो अहिंसा व्रतके जरिये उसके पापकी शान्ति होती है; ब्रह्मवादी लोग वेदशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ऐसा कहा करते हैं ॥ १२ ॥

तथा कामकृतं चास्य विहिंसैवापकर्षति ।
इत्याहुर्धर्मशास्त्रज्ञा ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १३ ॥

इस ही प्रकार जानके किया हुआ पापकर्म अहिंसा व्रतके जरिये भी शान्त नहीं हो सकता; धर्मशास्त्र और वेद स्मृतियोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका ऐसा ही मत है ॥ १३ ॥

अहं तु तावत्पश्यामि कर्म यद्वर्तते कृतम् ।
गुणयुक्तं प्रकाशं च पापेनानुपसंहितम् ॥ १४ ॥

कामना वा अकामनासे किया हुआ कर्म चाहे थोडा हो चाहे अधिक वह विना भोगे नष्ट नहीं होता; परन्तु मैं देखता हूं कि जो किया हुआ कर्म विद्यमान रहता है, वह पुण्य कर्म हो या पापयुक्त प्रकट रूपसे किया गया हो या छिपाकर, वह अपना फल देताही है ॥१४॥

यथा सूक्ष्माणि कर्माणि फलन्तीह यथातथम् ।
बुद्धियुक्तानि तानीह कृतानि मनसा सह ॥ १५ ॥

इस लोकमें सब सूक्ष्मकर्म "इसे इस प्रकारसे करे" इस भांति परामर्श करके अथवा "इसे इस भांति करना चाहिये" ऐसा मनसे निश्चय करके स्थूल–सूक्ष्मके बुद्धियुक्त तारतम्यके अनुसार सुख–दुःख आदि फल उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

भवत्यल्पफलं कर्म सेवितं नित्यमुल्बणम् ।
अबुद्धिपूर्वं धर्मज्ञ कृतमुग्रेण कर्मणा ॥ १६ ॥

अव्यभिचारी नरका वह कर्मका फल थोडा भी होनेसे वह सेवन किया जाता है । हे धर्मज्ञ ! उग्रकर्मसे अज्ञानकृत कर्म सम्पादित हुआ करते हैं, जैसे जानकर किये हुए कर्मोंका अवश्य फल उत्पन्न होता है, अज्ञानकृत कर्म भी वैसे ही हैं । अन्तर जो कम–जादा इतनाही है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृतानि यानि कर्माणि दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
नाचरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वा चापि न कुत्सयेत् ॥ १७ ॥

देवता और मुनियोंसे जो सब अनुचित कर्म किये गये हो, धर्मात्मा मनुष्य उन कर्मोंका आचरण अथवा उसे सुनके उनकी निन्दा भी न करे, क्योंकि अलौकिक कर्म कदापि मनुष्योंके अनुष्ठेय नहीं हैं ॥ १७ ॥

संचिन्त्य मनसा राजन्विदित्वा शक्तिमात्मनः ।
करोति यः शुभं कर्म स वै भद्राणि पश्यति ॥ १८ ॥

हे राजन् ! मनुष्य जिस कर्मके करनेमें समर्थ हो, मन ही मन उसका अनुशीलन करके जो वह शुभ कर्म करता है, वही कल्याण लाभ किया करता है ॥ १८ ॥

नवे कपाले सलिलं संन्यस्तं हीयते यथा ।
नवेतरे तथाभावं प्राप्नोति सुखभाजितम् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जैसे नवीन घडेमें डाला हुआ जल नष्ट होता है और उस जलके सम्बन्धसे घडा भी गल जाता है और परिपक्व घडेमें डाला हुआ जल अनायास ही स्थित रहता है, वैसे ही इस लोकमें विशुद्ध बुद्धियुक्त किया शुभ कर्म सुखदायक निश्चल रहता है ॥ १९ ॥

सतोयेऽन्यत्तु यत्तोयं तस्मिन्नेव प्रसिच्यते ।
वृद्धे वृद्धिमवाप्नोति सलिले सलिलं यथा ॥ २० ॥

जैसे उसी जलयुक्त पके पात्रमें और जल डालनेसे पात्रमें रखा हुआ पहलेका जल तथा नया डाला हुआ जल– दोनों मिलकर पात्रके जलकी वृद्धि होती है ॥ २० ॥

एवं कर्माणि यानीह बुद्धियुक्तानि भूपते ।
नसमानीह हीनानि तानि पुण्यतमान्यपि ॥ २१ ॥

हे राजन् ! वैसे ही इस लोकमें बुद्धियुक्त किये हुए पुण्य कर्म जो संचित हैं, उन्हींके समान जो नये पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे दोनों मिलकर पात्रके अनुसार अधिक पवित्रतायुक्त तथा सुखदायक हुआ करते हैं; पाप-पुण्यमें जो उदासीन हैं वैसे तेजस्वी पुरुषके कर्म कदापि हिंसा नहीं कर सकते, निस्तेज मनुष्य ही पापसे पराभूत हुआ करते हैं ॥ २१ ॥

राज्ञा जेतव्याः सायुधाश्चोन्नताश्च सम्यक्कर्तव्यं पालनं च प्रजानाम् ।
अग्निश्चेयो बहुभिश्चापि यज्ञैरन्ते मध्ये वा वनमाश्रित्य स्थेयम् ॥ २२ ॥

शत्रुओंके सशस्त्र तथा उन्नत होनेपर भी उन्हें जय करना राजाका कर्त्तव्य कार्य है; प्रजासमूहको पूर्णरीतिसे अवश्य पालन करना चाहिये; अनेक भांतिके यज्ञोंसे अग्निचर्या अत्यन्त अनुष्ठेय है; अवस्थाके परिणाममें अथवा मध्य अवस्थामें संसारसे विरक्त होकर जङ्गलके अवलम्बसे निवास करना उचित है ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दमान्वितः पुरुषो धर्मशीलो भूतानि चात्मानमिवानुपश्येत् ।
गरीयसः पूजयेदात्मशक्त्या सत्येन शीलेन सुखं नरेन्द्र ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ ९८५३ ॥

हे नरेन्द्र ! दमयुक्त पुरुष धर्मशील होकर प्राणियोंको अपने समान देखे और वह अपनी शक्तिके अनुसार सत्य वा सदाचारके जरिये सहजमेंही बडे पुरुषोंके सम्मान करनेमें यत्नवान् होवे । सत्य और सदाचारसे ही सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ २८० ॥ ९८५३ ॥

: २८१ :

पराशर उवाच—

कः कस्य चोपकुरुते कश्च कस्मै प्रयच्छति ।
प्राणी करोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले— इस लोकमें कौन किसका उपकार करता है ? कौन किसे दान किया करता है ? यह प्राणि अपनी तृप्तिके लिये आप ही सब कर्मोंको करता है, दूसरेको प्रयोजन सिद्धिके लिये कोई भी किसी कर्मको नहीं करता ॥ १ ॥

गौरवेण परित्यक्तं निःस्नेहं परिवर्जयेत् ।
सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥ २ ॥

सहोदर भाई भी जब श्रेष्ठ स्वभाव हीन तथा स्नेहहीन होता है, तब उसे भी जब कि मनुष्य त्याग देते हैं, तब दूसरे सामान्य लोगोंकी बातही क्या है ? ॥ २ ॥

विशिष्टस्य विशिष्टाच्च तुल्यौ दानप्रतिग्रहौ ।
तयोः पुण्यतरं दानं तद्द्विजस्य प्रयच्छतः ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषका श्रेष्ठ पुरुषसे दान वा प्रतिग्रह— इन दोनोंका महत्त्व समान है, तो भी इनमेंसे ब्राह्मणके लिये प्रतिग्रह स्वीकारनेकी अपेक्षा दान देना अधिक पुण्यमय है ॥ ३ ॥

न्यायागतं धनं वर्णैर्न्यायेनैव विवर्धितम् ।
संरक्ष्यं यत्नमास्थाय धर्मार्थमिति निश्चयः ॥ ४ ॥

न्यायसे उपार्जित तथा न्यायानुसार बढाया हुआ धन यत्नपूर्वक धर्मके लिये ही बचाये रखना उचित है; यही धर्म शास्त्रका निश्चय है ॥ ४ ॥

न धर्मार्थी नृशंसेन कर्मणा धनमर्जयेत् ।
शक्तितः सर्वकार्याणि कुर्यान्नर्द्धिमनुस्मरेत् ॥ ५ ॥

धर्मार्थी मनुष्य नीच कर्मसे धनका उपार्जन न करे; अपनी शक्तिके अनुसार सब शुभ कार्योंको सिद्ध करे, धन-सम्पत्ति बढानेकी चिन्ता न करे ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपो हि प्रयतः शीतास्तापिता ज्वलनेन वा।
शक्तितोऽतिथये दत्त्वा क्षुधार्तायाश्नुते फलम् ॥ ६ ॥

मनुष्य सावधान होकर शक्तिके अनुसार यदि भूखे अतिथिको ठण्डा वा अग्निसे गर्म किया हुआ जल और अन्न प्रदान करे, तो वह अन्नदानका उत्तम फल भोग किया करता है ॥६॥

रन्तिदेवेन लोकेष्टा सिद्धिः प्राप्ता महात्मना।
फलपत्रैरथो मूलैर्मुनीनर्चितवानसौ ॥ ७ ॥

फल मूल और पत्तोंसे मुनियोंकी अर्चना करके महात्मा रन्तिदेवने इस लोकमें ही सब लोगोंकी अभिलषित सिद्धि लाभ की थी ॥ ७ ॥

तैरेव फलपत्रैश्च स माठरमतोषयत्।
तस्माल्लेभे परं स्थानं शैव्योऽपि पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥

पृथ्वीपति शैव्यने भी उस ही प्रकार फलपत्रके जरिये माठर मुनिको सन्तुष्ट करके उस ही फलसे परम स्थान पाया ॥ ८ ॥

देवतातिथिभृत्येभ्यः पितृभ्योऽथात्मनस्तथा।
ऋणवाञ्जायते मर्त्यस्तस्मादनृणतां व्रजेत् ॥ ९ ॥

मनुष्य देवता, अतिथि, कुटुम्बीजन, पितर, पुत्र और आत्माके निकट ऋणी होकर जन्म लेता है, इसलिये उनसे अऋणी होनेका यत्न करे ॥ ९ ॥

स्वाध्यायेन महर्षिभ्यो देवेभ्यो यज्ञकर्मणा।
पितृभ्यः श्राद्धदानेन नृणामभ्यर्चनेन च ॥ १० ॥

स्वशाखोक्त वेदाध्ययनसे महर्षियों, यज्ञसे देवताओं, श्राद्ध और दानसे पितरों और सत्कारसे अतिथियोंके ऋणसे मुक्त होता है ॥ १० ॥

वाचः शेषावहार्येण पालनेनात्मनोऽपि च।
यथावद्भृत्यवर्गस्य चिकीर्षेद्धर्ममादितः ॥ ११ ॥

तथा वेदशास्त्रमयी वाणीके पठन, श्रवण और मननसे, पञ्चयज्ञसे शेष बचे अन्नके भोजनसे तथा जीवोंपर दया करनेसे, आत्मा और जात कर्म आदि कार्योंको यथावत् निर्वाह करके कुटुम्बीजनोंसे अऋण होवे ॥ ११ ॥

प्रयत्नेन च संसिद्धा धनैरपि विवर्जिताः।
सम्यग्हुत्वा हुतवहं मुनयः सिद्धिमागताः ॥ १२ ॥

मुनि लोग निर्धन होके भी प्रयत्नके सहारे सिद्ध हुए हैं; उन लोगोंने पूर्ण विधियुक्त रीतिसे अग्निमें आहुति देकर सिद्धि लाभ की थी ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रस्य पुत्रत्वमृचीकतनयोऽगमत् ।
ऋग्भिः स्तुत्वा महाभागो देवान्वै यज्ञभागिनः ॥ १३ ॥

हे महाभाग ! ऋचीकपुत्रने ऋग्मन्त्रके जरिये यज्ञभागि देवताओंकी स्तुति करके विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया ॥ १३ ॥

गतः शुक्रत्वमुशना देवदेवप्रसादनात् ।
देवीं स्तुत्वा तु गगने मोदते तेजसा वृतः ॥ १४ ॥

उशनाने देवोंके देव महादेवको प्रसन्न करके शुक्रत्व लाभ किया; वह देवी भगवतीकी स्तुति करके यशस्वी होकर आकाशमण्डलमें ग्रहरूपसे विराजते हैं ॥ १४ ॥

असितो देवलश्चैव तथा नारदपर्वतौ ।
कक्षीवाञ्जामदग्न्यश्च रामस्ताण्डयस्तथांशुमान् ॥ १५ ॥

असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षीवान्, जमदग्निपुत्र राम, ताण्डय, अंशुमान्, ॥ १५ ॥

वसिष्ठो जमदग्निश्च विश्वामित्रोऽत्रिरेव च ।
भरद्वाजो हरिश्मश्रुः कुण्डधारः श्रुतश्रवाः ॥ १६ ॥

वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार और श्रुतश्रवा ॥ १६ ॥

एते महर्षयः स्तुत्वा विष्णुमृग्भिः समाहिताः ।
लेभिरे तपसा सिद्धिं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १७ ॥

इन सब महर्षियोंने एकाग्रचित्त हो वेदोंके मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उनकी कृपासे तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ की थी ॥ १७ ॥

अनर्हाश्चार्हतां प्राप्ताः सन्तः स्तुत्वा तमेव ह ।
न तु वृद्धिमिहान्विच्छेत्कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १८ ॥

भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपूज्य पुरुष भी पूज्य सन्त हुए हैं; इसलिये इस लोकमें निन्दनीय कर्म करके कोई भी अपनी उन्नतिकी कामना न करे ॥ १८ ॥

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान् ।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद्धनकाङ्क्षया ॥ १९ ॥

धर्मसे जो सब धन प्राप्त होता है, वही सत्य है और अधर्मसे जो उपार्जित किया जाता है, वही निन्दित है; इसलिये धनकी अभिलाषसे इस लोकमें कोई नित्य धर्मको न त्यागे ॥१९॥

आहिताग्निर्हि धर्मात्मा यः स पुण्यकृदुत्तमः ।
वेदा हि सर्वे राजेन्द्र स्थितास्त्रिष्वग्निषु प्रभो ॥ २० ॥

जो धर्मात्मा आहिताग्नि है, वही पुण्यात्माओंके बीच श्रेष्ठ है । हे प्रभु राजेन्द्र ! सब वेद दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय, इन तीन अग्नियोंमें निवास करते हैं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स चाप्यग्न्याहितो विप्रः क्रिया यस्य न हीयते ।
श्रेयो ह्यनाहिताग्नित्वमग्निहोत्रं न निष्क्रियम् ॥ २१ ॥

जिसकी क्रिया नष्ट नहीं होती, अर्थात् जिसका सदाचार और कर्म कभी नष्ट नहीं होता, वह ब्राह्मण भी आहिताग्नि होता है । सदाचारी रहकर अग्निहोत्र न हो तो भी ठीक है, परंतु सदाचारका त्याग करके अग्निहोत्र करना कदापि कल्याणकारी नहीं है ॥ २१ ॥

अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा ।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम् ॥ २२ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! अग्नि, आत्मा, माता, जन्मदाता पिता तथा गुरु इन सबकी यथारीति परिचर्या सेवा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

मानं त्यक्त्वा यो नरो वृद्धसेवी विद्वान्क्षीबः पश्यति प्रीतियोगात् ।
दाक्ष्येणाहीनो धर्मयुक्तो नदान्तो लोकेऽस्मिन्वै पूज्यते सद्भिरार्यः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥ ९८७६ ॥

जो अभिमान त्यागके वृद्धोंकी सेवा करता है, जो कामहीन बुद्धिमान् मनुष्य दयार्द्र दृष्टिसे सब जीवोंको देखा करता है, जो आलस्य रहित, धर्मपरायण और हिंसाहीन होता है, वह आर्य पुरुष ही इस लोकमें साधुओंके जरिये पूजित हुआ करता है ॥ २३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८१ ॥ ९८७६ ॥

: २८२ :

पराशर उवाच—

वृत्तिः सकाशाद्वर्णेभ्यस्त्रिभ्यो हीनस्य शोभना ।
प्रीत्योपनीता निर्दिष्टा धर्मिष्ठान्कुरुते सदा ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंसे हीनवर्ण शूद्रको इन तीनों वर्णोंकी सेवा करके जीवन निर्वाह करना ही उत्तम है; क्योंकि शूद्रके लिये निर्दिष्ट सेवा-वृत्तिका प्रीतिपूर्वक पालन ही सेवकोंको सदा धर्मिष्ठ किया करती है ॥ १ ॥

वृत्तिश्चेन्नास्ति शूद्रस्य पितृपैतामही ध्रुवा ।
न वृत्तिं परतो मार्गेच्छुश्रूषां तु प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

शूद्रकी यदि पितृपितामह आदि क्रमसे कोई निर्दिष्ट वृत्ति न रहे, तौभी वह त्रैवर्णिक सेवाके अतिरिक्त वृत्त्यन्तरकी खोज न करे, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करनेमें ही नियुक्त होवे ॥ २ ॥

सद्भिस्तु सह संसर्गः शोभते धर्मदर्शिभिः ।
नित्यं सर्वास्ववस्थासु नासद्भिरिति मे मतिः ॥ ३ ॥

सब अवस्थामें ही सदा धर्मदर्शी साधुओंका संसर्ग ही शोभा पाता है, असत्संसर्ग कभी किसी भी दशामें नहीं करना चाहिये, यही मेरी विवेचना होती है ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथोदयगिरौ द्रव्यं संनिकर्षेण दीप्यते ।
तथा सत्संनिकर्षेण हीनवर्णोऽपि दीप्यते ॥ ४ ॥

जैसे उदयाचल पर स्थित मणि सुवर्णादि सूर्यकी सन्निकर्षसे प्रकाशित होते हैं, वैसेही सत्संसर्गसे नीच वर्ण शूद्र भी ज्ञानलाभ करके प्रकाशित हुआ करता है ॥ ४ ॥

यादृशेन हि वर्णेन भाव्यते शुक्लमम्बरम् ।
तादृशं कुरुते रूपमेतदेवमवैहि मे ॥ ५ ॥

जैसे श्वेत वस्त्र जिस रङ्गसे रङ्गा जाता है, उसका रूप भी वैसा ही हुआ करता है, इसी प्रकार जैसा संग किया जाता है, वैसा ही रंग अपना होता है; इसे ही तुम मेरे समीप मालूम करो ॥ ५ ॥

तस्माद्गुणेषु रज्येथा मा दोषेषु कदाचन ।
अनित्यमिह मर्त्यानां जीवितं हि चलाचलम् ॥ ६ ॥

इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, दोषोंमें कदापि अनुराग न करे; इस लोकमें मनुष्योंका चञ्चल जीवन अत्यन्त अनित्य है ॥ ६ ॥

सुखे वा यदि वा दुःखे वर्तमानो विचक्षणः ।
यश्चिनोति शुभान्येव स भद्राणीह पश्यति ॥ ७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य चाहे सुख अथवा दुःखरूपी किसी अवस्थामें निवास क्यों न करें, यदि वह शुभ कार्यका ही अनुष्ठान करता है, तो अवश्यही इस लोकमें कल्याणभाजन होता है ॥ ७ ॥

धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम् ।
न तत्सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते ॥ ८ ॥

धर्मसे विपरीत कर्म यदि लौकिक दृष्टिसे महाफल प्रदान करे, तौभी बुद्धिमान् मनुष्य उसे सेवन न करे; क्योंकि इस लोकमें वैसा कर्म हितकर कहके वर्णित नहीं हुआ है ॥ ८ ॥

यो हृत्वा गोसहस्राणि नृपो दद्यादरक्षिता ।
स शब्दमात्रफलभाग्राजा भवति तस्करः ॥ ९ ॥

प्रजासमूहके पालन विषयमें उदासीनतायुक्त जो राजा दूसरोंकी सहस्रों गौएं हरके दान किया करता है, वह नाममात्रका ही दानी और राजा है, वह तो चोर ही है ॥ ९ ॥

स्वयंभूरसृजच्चाग्रे धातारं लोकपूजितम् ।
धातासृजत्पुत्रमेकं प्रजानां धारणे रतम् ॥ १० ॥

स्वयम्भू ईश्वरने पहले सर्व लोक पूजित ब्रह्माको उत्पन्न किया । ब्रह्माने सब लोकोंको धारण करनेमें रत पर्जन्यदेव नाम पुत्रको उत्पन्न किया है ॥ १० ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमर्चयित्वा वैश्यस्तु कुर्यादत्यर्थमृद्धिमत् ।
रक्षितव्यं तु राजन्यैरुपयोज्यं द्विजातिभिः ॥ ११ ॥

वैश्य उसकी पूजा करके जीविकाके लिये कृषि, वाणिज्य और पशुपालन आदिसे उसे अत्यन्त समृद्धशाली करे; क्षत्रिय राजा उसकी रक्षा करे। और ब्राह्मण लोग ॥ ११ ॥

अजिह्मैरशठक्रोधैर्हव्यकव्यप्रयोक्तृभिः ।
शूद्रैर्निर्मार्जनं कार्यमेवं धर्मो न नश्यति ॥ १२ ॥

कुटिलता, शठता तथा क्रोधकोहि त्यागकर हव्यकव्य प्रयोगमें निपुण होकर उसका सदुपयोग करे। शूद्र लोग निर्मार्जन अर्थात् भूमिशुद्धि आदि कार्य करें; इस ही भांति सब कोई स्वकर्म साधन करनेसे धर्म भ्रष्ट नहीं होता ॥ १२ ॥

अप्रनष्टे ततो धर्मे भवन्ति सुखिताः प्रजाः ।
सुखेन तासां राजेन्द्र मोदन्ते दिवि देवताः ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! धर्म नष्ट न होनेसे सब प्रजा सुखी रहती है; उन लोगोंके सुखके निमित्त सुर-लोकमें देवता लोग भी प्रसन्न होते हैं; ॥ १३ ॥

तस्माद्यो रक्षति नृपः स धर्मेणाभिपूज्यते ।
अधीते चापि यो विप्रो वैश्यो यश्चार्जने रतः ॥ १४ ॥
यश्च शुश्रूषते शूद्रः सततं नियतेन्द्रियः ।
अतोऽन्यथा मनुष्येन्द्र स्वधर्मात्परिहीयते ॥ १५ ॥

इससे जो राजा स्वकर्मके अनुसार प्रजापालन करता है, जो ब्राह्मण धर्मपूर्वक वेदाध्ययन करता है, जो वैश्य कृषि, वाणिज्य, पशुपालन आदिसे धन उपार्जनमें रत रहता है, और जो शूद्र सदा सावधान जितेन्द्रिय होकर तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहता है, वे सब कोई अपने धर्माचरणके कारण लोकसमाजमें सम्मानित होते हैं। हे मनुजेन्द्र ! इसमें अन्यथा करनेसे मनुष्य स्वधर्मसे च्युत होता है ॥ १४–१५ ॥

प्राणसंतापनिर्दिष्टाः काकिण्योऽपि महाफलाः ।
न्यायेनोपार्जिता दत्ताः किमुतान्याः सहस्रशः ॥ १६ ॥

प्राण सन्तापपूर्वक न्यायसे कमायी थोडी कोडियोंका भी दान करनेसे महाफल प्राप्त हुआ करता है, और जो दूसरी वस्तुएं हजारोंमें दी जाती हैं, उनकी तो बात ही क्या है ? ॥ १६ ॥

सत्कृत्य तु द्विजातिभ्यो यो ददाति नराधिप ।
यादृशं तादृशं नित्यमश्नाति फलमूर्जितम् ॥ १७ ॥

जो राजा ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें जिस प्रकार दान करता है, वह सदा वैसा ही उर्जस्वल फलभोग किया करता है ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अभिगम्य दत्तं तुष्ट्या यद्धन्यमाहुरभिष्टुतम् ।
याचितेन तु यद्दत्तं तदाहुर्मध्यमं बुधाः ॥ १८ ॥

जो दाता स्वयं पात्रके निकट जाके उसकी तुष्टिके निमित्त दान करता है, पण्डित लोग उस दानको अभिष्टुत अर्थात् सब प्रकारसे प्रशंसित कहते हैं; और मांगनेपर जो दान किया जाता है, उसे मध्यम श्रेणीका दान कहा करते हैं ॥ १८ ॥

अवज्ञया दीयते यत्तथैवाश्रद्धयापि च ।
तदाहुरधमं दानं मुनयः सत्यवादिनः ॥ १९ ॥

अनादर वा अश्रद्धासे जो दान किया जाता है, सत्यवादी मुनि लोग उसे ही अधम श्रेणीका दान कहते हैं ॥ १९ ॥

अतिक्रमे मज्जमानो विविधेन नरः सदा ।
तथा प्रयत्नं कुर्वीत यथा मुच्येत संशयात् ॥ २० ॥

संसारसमुद्रमें प्रायः डूबता हुआ मनुष्य विविध उपायके सहारे उससे पार होनेकी चेष्टा करता है, वैसे ही संसारजालसे जिस प्रकार छुटकारा मिल सके, मनुष्यमात्रको ही उस विषयमें चेष्टा करनी उचित है ॥ २० ॥

दमेन शोभते विप्रः क्षत्रियो विजयेन तु ।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु नित्यं दाक्ष्येण शोभते ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥ ९८९७ ॥

ब्राह्मण इन्द्रियोंके जीतने और क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे शोभित होता है। वैश्य न्यायोचित धन उपार्जन करने, और शूद्र सदा सेवा कार्योंमें निपुणता प्रकाशित करनेसे शोभा पाता है ॥ २१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बयासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८२ ॥ ९८९७ ॥

: २८३ :

पराशर उवाच—

प्रतिग्रहागता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिताः ।
वैश्ये न्यायार्जिताश्चैव शूद्रे शुश्रूषयार्जिताः ।
स्वल्पाप्यर्थाः प्रशस्यन्ते धर्मस्यार्थे महाफलाः ॥ १ ॥

पराशर मुनि बोले– ब्राह्मणोंको दानसे, क्षत्रियोंको युद्ध जीतने, वैश्योंको न्यायसे प्राप्त होने और शूद्रोंको सेवाके जरिये मिला हुआ धन अत्यन्त थोडा होनेपर भी प्रशंसित होता है, और धर्मार्थमें लगानेसे वह महाफलजनक हुआ करता है ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नित्यं त्रयाणां वर्णानां शूद्रः शुश्रूषुरुच्यते ।
क्षत्रधर्मा वैश्यधर्मा नावृत्तिः पतति द्विजः ।
शूद्रकर्मा यदा तु स्यात्तदा पतति वै द्विजः ॥ २ ॥

ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी नित्य सेवा करनेवाले पुरुषको ही शूद्र कहा जाता है । वृत्तिहीन ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य धर्मका आचरण जीवन-निर्वाहके लिये करनेसे पतित नहीं होता; परन्तु शूद्रका धर्म अवलम्बन करनेसे उस ही समय पतित होता है ॥ २ ॥

वाणिज्यं पाशुपाल्यं च तथा शिल्पोपजीवनम् ।
शूद्रस्यापि विधीयन्ते यदा वृत्तिर्न जायते ॥ ३ ॥

अपने धर्ममें रहके जीविका लाभमें असमर्थ शूद्रके लिये वाणिज्य, पशुपालन और चित्र खींचना आदि शिल्प कर्मके जरिये जीविका निर्वाह विहित है; क्योंकि उक्त कार्य सेवामें ही परिगणित हुआ करते हैं ॥ ३ ॥

रङ्गावतरणं चैव तथा रूपोपजीवनम् ।
मद्यमांसोपजीव्यं च विक्रयो लोहचर्मणोः ॥ ४ ॥

स्त्रीका वेश बनाके रङ्गभूमिमें जाना, रूप पलटना (बहुरूपी) अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र पहनके चर्ममय आकारके जरिये राजा और सेवकोंके आचरणको प्रदर्शित करना, मद्यमांस बेचके जीविका निभानी, लोहा और चमडेको बेचना ॥ ४ ॥

अपूर्विणा न कर्तव्यं कर्म लोके विगर्हितम् ।
कृतपूर्विणस्तु त्यजतो महान्धर्म इति श्रुतिः ॥ ५ ॥

इन सब निन्दित कर्मोंको जिनके पूर्व पुरुषोंने कभी नहीं किया, उन्हें किसी प्रकार भी उसे न करना चाहिये; और जिनके पूर्वपुरुषोंने उक्त निन्दित कर्मको किया है, अधस्तन (नीचेके) यदि कोई पुरुष उक्त कर्मको छोड दें, तो उन्हें बहुत ही धर्म हुआ करता है, ऐसी ही जनश्रुति है ॥ ५ ॥

संसिद्धः पुरुषो लोके यदाचरति पापकम् ।
मदेनाभिप्लुतमनास्तच्च नग्राह्यमुच्यते ॥ ६ ॥

इस लोकमें बहुतसे अन्न वस्त्र आदि पाके मदोन्मत्तचित्त होकर लोकमें जो प्रसिद्ध पुरुष पापाचरण करता है, वैसा निन्दित कार्य वृद्धोंके जरिये अनुष्ठित होनेपर भी मनुष्योंके सब भांतिसे अनङ्गीकार्य रूपसे वर्णित हुआ करता है ॥ ६ ॥

श्रूयन्ते हि पुराणे वै प्रजा धिग्दण्डशासनाः ।
दान्ता धर्मप्रधानाश्च न्यायधर्मानुवर्तकाः ॥ ७ ॥

पुराणप्रबन्धमें सुना जाता है, कि प्रजासमूहने धिग्दण्ड राजाके शासनके अनुसार जितेन्द्रिय, धर्मपरायण और न्याय धर्मानुयायी वृत्तिको अवलम्बन किया था ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्म एव सदा नृणामिह राजन्प्रशस्यते ।
धर्मवृद्धा गुणानेव सेवन्ते हि नरा भुवि ॥ ८ ॥

हे राजन् ! इस लोकमें मनुष्योंके लिये धर्म ही सब समयमें श्रेष्ठ है; पृथ्वीमण्डलपर धर्मवृद्ध मनुष्यही केवल गुणोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ८ ॥

तं धर्ममसुरास्तात नास्तृष्यन्त जनाधिप ।
विवर्धमानाः क्रमशस्तत्र तेऽन्वाविशन्प्रजाः ॥ ९ ॥

हे तात ! प्रजानाथ ! काम क्रोध आदि असुर-स्वभाव वैरीवृन्द उस धर्मकी अवमानना करते थे । उस समय उनके क्रमसे वर्णित होते रहनेपर प्रजा उनमें अनुप्रविष्ट हुई; ॥ ९ ॥

तेषां दर्पः समभवत्प्रजानां धर्मनाशनः ।
दर्पात्मनां ततः क्रोधः पुनस्तेषामजायत ॥ १० ॥

तब प्रजासमूहमें धर्मनाशक दर्प उत्पन्न होने लगा; प्रजाओंके मनमें उत्पन्न दर्पसे अभिमान और उसके अनन्तर उन लोगोंमें क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

ततः क्रोधाभिभूतानां वृत्तं लज्जासमन्वितम् ।
ह्रीश्चैवाप्यनशद्राजंस्ततो मोहो व्यजायत ॥ ११ ॥

धीरे धीरे क्रोधयुक्त प्रजावृन्दका चरित्र लज्जाकर होगया । हे राजन् ! अनन्तर उन लोगोंकी लज्जा नष्ट हुई, अन्तमें मोह उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥

ततो मोहपरीतास्ते नापश्यन्त यथा पुरा ।
परस्परावमर्देन वर्तयन्ति यथासुखम् ॥ १२ ॥

उस समय प्रजा मोहमें फंसकर अवमर्दनके जरिये यथा सुखसे वृद्धि लाभ करती हुई पहलेकी भांति आपसमें परस्परकी तत्वावधान करनेमें विरत हुई ॥ १२ ॥

तान्प्राप्य तु स धिग्दण्डो नकारणमतोऽभवत् ।
ततोऽभ्यगच्छन्देवांश्च ब्राह्मणांश्चावमन्य ह ॥ १३ ॥

धिग्दण्ड राजा उन सब समुद्धत प्रजाको शासन करनेमें असमर्थ हुआ । तब वे सब प्रजा ब्राह्मणोंकी अवमानना करके देवस्वभाव शम दम आदिके विपरीत आचरण करके मनमाने विषय भोगोंका सेवन करने लगी ॥ १३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवा देववरं शिवम् ।
अगच्छञ्शरणं वीरं बहुरूपं गणाधिपम् ॥ १४ ॥

उस समय सब देवता लोग मायावशसे बहुरूपधारी, नित्य ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणोंमें श्रेष्ठ वीरवर देवेश्वर शिवके शरणमें गये ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेन स्म ते गगनगाः सपुराः पातिताः क्षितौ ।
तिस्रोऽप्येकेन बाणेन देवाप्यायिततेजसा ॥ १५ ॥

अनन्तर शिवने देवताओंके द्वारा वर्द्धित तेजसे युक्त एक अत्यंत शक्तिशाली बाणसे तीन नगरों सहित आकाशमें विचरनेवाले उन असुरोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १५ ॥

तेषामधिपतिस्त्वासीद्भीमो भीमपराक्रमः ।
देवतानां भयकरः स हतः शूलपाणिना ॥ १६ ॥

उन दानवोंका जो भीम पराक्रमी और भयङ्कर आकारवाला अधिपति था, वह देवताओंको भयभीत करता था, वह भी शूलपाणि महादेवने मार डाला ॥ १६ ॥

तस्मिन्हतेऽथ स्वं भावं प्रत्यपद्यन्त मानवाः ।
प्रावर्तन्त च वेदा वै शास्त्राणि च यथा पुरा ॥ १७ ॥

उसके मारे जानेपर मनुष्योंने निज निज भाव लाभ किया और उन्हें पहलेकी भांति वेद और शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

ततोऽभ्यषिञ्चन्राज्येन देवानां दिवि वासवम् ।
सप्तर्षयश्चान्वयुञ्जन्नराणां दण्डधारणे ॥ १८ ॥

अनन्तर सप्तर्षियोंने इन्द्रको देवताओंके राज्यपर अभिषिक्त किया और वे मनुष्यके शासन कार्यमें नियुक्त हुए ॥ १८ ॥

सप्तर्षीणामथोर्ध्वं च विपृथुर्नाम पार्थिवः ।
राजानः क्षत्रियाश्चैव मण्डलेषु पृथक्पृथक् ॥ १९ ॥

सप्तर्षियोंके अनन्तर विपृथु नामक राजा पृथ्वीका अधिपति हुआ और दूसरे अनेक क्षत्रिय अलग अलग मण्डलोंके राजा हुए ॥ १९ ॥

महाकुलेषु ये जाता वृत्ताः पूर्वतराश्च ये ।
तेषामथासुरो भावो हृदयान्नापसर्पति ॥ २० ॥

जो सब पहलेके गुणोंमें श्रेष्ठ पुरुष महान् वंशमें उत्पन्न हुए थे, उनके हृदयमें भी आसुर भाव पूर्णतया दूर नहीं हुआ था ॥ २० ॥

तस्मात्तेनैव भावेन सानुषङ्गेन पार्थिवाः ।
आसुराण्येव कर्माणि न्यषेवन्भीमविक्रमाः ॥ २१ ॥

इससे भयङ्कर पराक्रमी राजा लोग उस आसुर भावसे युक्त होकर असुरोंके योग्य कार्योंको निबाहने लगे ॥ २१ ॥

प्रत्यतिष्ठंश्च तेष्वेव तान्येव स्थापयन्ति च ।
भजन्ते तानि चाद्यापि ये बालिशतमा नराः ॥ २२ ॥

जो सब मनुष्य अत्यन्त मूढ हैं, वे आज भी आसुर भावोंमें प्रतिष्ठित रहे हैं; सबने आसुर कार्योंको स्थापित किया है; और अबतक भी आसुर भावोंमें रत हैं; वे प्रकृत भावको प्राप्त न कर सके ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मादहं ब्रवीमि त्वां राजन्संचिन्त्य शास्त्रतः ।
संसिद्धाधिगमं कुर्यात्कर्म हिंसात्मकं त्यजेत् ॥ २३ ॥

हे राजन् ! इसलिये मैं शास्त्रका अनुशीलन करके तुमसे कहता हूं कि आसुर भावकी निवृत्तिके लिये आत्मज्ञानके सिद्ध करनेमें यत्नवान् होकर मनुष्यमात्रको ही हिंसात्मक कर्म अवश्य परित्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

न संकरणे द्रविणं विचिन्वीत विचक्षणः ।
धर्मार्थं न्यायमुत्सृज्य न तत्कल्याणमुच्यते ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य धर्म करनेके लिये न्याय मार्गको त्यागकर पापयुक्त मार्गसे धन संग्रह न करें; क्योंकि वह धन उसके लिये कल्याणकारी नहीं कहा जाता है ॥ २४ ॥

स त्वमेवंविधो दान्तः क्षत्रियः प्रियबान्धवः ।
प्रजा भृत्यांश्च पुत्रांश्च स्वधर्मेणानुपालय ॥ २५ ॥

तुम इस ही प्रकार सद्गुणोंसे युक्त, दान्त और बन्धुप्रिय क्षत्रिय होकर, प्रजा, सेवक और पुत्रोंका स्वधर्मके अनुसार प्रतिपालन करो ॥ २५ ॥

इष्टानिष्टसमायोगो वैरं सौहार्दमेव च ।
अथ जातिसहस्राणि बहूनि परिवर्तते ॥ २६ ॥

इष्ट और अनिष्टका संयोग, वैर और सुहृदता– इन सबका अनुभव करते जीवके कई सहस्र जन्म बीतते हैं ॥ २६ ॥

तस्माद्गुणेषु रज्येथा मा दोषेषु कदाचन ।
निर्गुणो यो हि दुर्बुद्धिरात्मनः सोऽरिरुच्यते ॥ २७ ॥

इसलिये तुम सब सद्गुणोंमें ही अनुरक्त होवो, किसी मतसे दोषोंमें अनुराग प्रकाशित न करो; क्योंकि गुणहीन नीचबुद्धि पुरुष भी जब कभी अपने किसी गुणकी कथा सुनता है, तब वह अत्यन्त ही सन्तुष्ट होता है ॥ २७ ॥

मानुषेषु महाराज धर्माधर्मौ प्रवर्ततः ।
न तथान्येषु भूतेषु मनुष्यरहितेष्विह ॥ २८ ॥

हे महाराज ! जैसे मनुष्योंमें धर्म और अधर्म विद्यमान रहते हैं, उसी तरह मनुष्येतर प्राणियोंमें नहीं रहते ॥ २८ ॥

धर्मशीलो नरो विद्वानीहकोऽनीहकोऽपि वा ।
आत्मभूतः सदा लोके चरेद्भूतान्यहिंसयन् ॥ २९ ॥

धर्मशील विद्वान् मनुष्य अन्नार्थी ही हो, अथवा अनीह ही होवे, सदा सब भूतोंमें आत्मवत् ज्ञान करके जीवोंकी अहिंसाके जरिये जनसमाजमें विचरे ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदा व्यपेतहृल्लेखं मनो भवति तस्य वै।
नानृतं चैव भवति तदा कल्याणमृच्छति ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥ ९९२७ ॥

जब मनुष्यका मन वासनाहीन, निरहंकार वा मिथ्याचारसे रहित होगा, तब वह कल्याणप्रद ब्रह्मानन्द लाभ करनेमें समर्थ होवेगा ॥ ३० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८३ ॥ ९९२७ ॥

: २८४ :

पराशर उवाच—

एष धर्मविधिस्तात गृहस्थस्य प्रकीर्तितः।
तपोविधिं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले—हे तात ! यह गृहस्थोंकी धर्मविधि कही गई, अब तपस्याकी विधि कहता हूं, उसे मेरे मुखसे सुनो ॥ १ ॥

प्रायेण हि गृहस्थस्य ममत्वं नाम जायते।
सङ्गागतं नरश्रेष्ठ भावैस्तामसराजसैः ॥ २ ॥

हे राजन् ! राजस और तामस भावके प्रसङ्गसे प्रायः गृहस्थमें ममत्व उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

गृहाण्याश्रित्य गावश्च क्षेत्राणि च धनानि च।
दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च भवन्तीह नरस्य वै ॥ ३ ॥

मनुष्य गार्हस्थ्य आश्रमको अवलम्बन करनेसे उसके गौ आदि पशु, खेती, धन, स्त्री, पुत्र, अन्य कुटुम्बीजन तथा सेवक प्रभृति हुआ करते हैं ॥ ३ ॥

एवं तस्य प्रवृत्तस्य नित्यमेवानुपश्यतः।
रागद्वेषौ विवर्धेते ह्यनित्यत्वमपश्यतः ॥ ४ ॥

इस ही भांति संसार आश्रममें प्रवृत्त मनुष्य प्रतिदिन निज सम्पत्तिकी उन्नति ही देखता है, और इनकी अनित्यताको नहीं देखता; इसलिये क्रमसे उसके मनमें राग-द्वेषकी विशेष रूपसे वृद्धि हुआ करती है ॥ ४ ॥

रागद्वेषाभिभूतं च नरं द्रव्यवशानुगम्।
मोहजाता रतिर्नाम समुपैति नराधिप ॥ ५ ॥

हे नरनाथ ! मनुष्यके राग-द्वेषके वशीभूत होनेपर जब वह द्रव्यमें आसक्त होता है, तब मोह-जनित रति उसे अवलम्बन करती है ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृतार्थो भोगतो भूत्वा स वै रतिपरायणः ।
लाभं ग्राम्यसुखादन्यं रतितो नानुपश्यति ॥ ६ ॥

रतिपरायण मनुष्यमात्र ही आत्माको भोगशील और कृतार्थ समझ कर अनुराग वशसे ग्राम्य-विषय सुखके अतिरिक्त दूसरे लाभको लाभ ही नहीं समझता ॥ ६ ॥

ततो लोभाभिभूतात्मा सङ्गाद्वर्धयते जनम् ।
पुष्ट्यर्थं चैव तस्येह जनस्यार्थं चिकीर्षति ॥ ७ ॥

अनन्तर मनुष्य विषयोंमें आसक्त होनेसे लोभमें फंसके कुटुम्ब और दासदासी आदिके परिमाणकी वृद्धि करता है; अन्तमें उन्हीं कुटुम्बीजनोंके प्रतिपालनके लिये सब तरहके व्यापारसे धन बढानेमें यत्नवान् होता है ॥ ७ ॥

स जानन्नपि चाकार्यमर्थार्थं सेवते नरः ।
बालस्नेहपरीतात्मा तत्क्षयाच्चानुतप्यते ॥ ८ ॥

मनुष्य सन्तान—सन्ततिमें स्नेहयुक्त होकर जिस कार्यको अकार्य समझा जाता है, धनके लिये वैसे कार्योंको भी करनेमें कुण्ठित नहीं होता; परन्तु उस अर्थके नष्ट होनेपर परिताप किया करता है ॥ ८ ॥

ततो मानेन संपन्नो रक्षन्नात्मपराजयम् ।
करोति येन भोगी स्यामिति तस्माद्विनश्यति ॥ ९ ॥

अनन्तर लोकमें धनसे सम्मान बढता है यह देखकर अभिमानयुक्त होके जिस भांति अपनी पराजय न हो, उस विषयमें सदा सावधान मनुष्य किस प्रकारसे "मैं सुख भोग करूंगा" ऐसी ही चिन्तामें निमग्न होता है, अन्तमें भोगाभिलाषमें आसक्त होकर मृत्युके मुखमें पडता है ॥ ९ ॥

तपो हि बुद्धियुक्तानां शाश्वतं ब्रह्मदर्शनम् ।
अन्विच्छतां शुभं कर्म नराणां त्यजतां सुखम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं स्त्री आदि परिवारोंसे भोगवान् हूंगा, वह उन परिजनोंसे ही विनष्ट होता है । जो सब प्रत्याशारहित शाश्वत ब्रह्मवादी मनुष्य लोक निषिद्ध काम्य कर्म परित्याग करके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही सुखदायी सनातन ब्रह्मपद प्राप्त हुआ करता है ॥ १० ॥

स्नेहायतननाशाच्च धननाशाच्च पार्थिव ।
आधिव्याधिप्रतापाच्च निर्वेदमुपगच्छति ॥ ११ ॥

हे राजन् ! मनुष्य प्रीतियुक्त स्त्री-पुत्रोंके नाश, धननाश और आधिव्याधिके प्रभावसे दुःख पाता है, तभी उसे वैराग्य होता है ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाच्छास्त्रदर्शनम् ।
शास्त्रार्थदर्शनाद्राजंस्तप एवानुपश्यति ॥ १२ ॥

हे महाराज ! उस ही निर्वेद निबन्धनसे आत्मबोध होता है, आत्मबोधसे शास्त्र दर्शन हुआ करता है, शास्त्रार्थ दर्शनसे मनुष्य तपस्याको ही कल्याणकारी समझता है ॥ १२ ॥

दुर्लभो हि मनुष्येन्द्र नरः प्रत्यवमर्शवान् ।
यो वै प्रियसुखे क्षीणे तपः कर्तुं व्यवस्यति ॥ १३ ॥

हे मनुजेन्द्र ! सार—असारमय विवेकयुक्त मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ है; पत्नी-पुत्र आदिसे जो सुख उत्पन्न होता है, वह न रहनेपर जो मनुष्य क्लेश पाके उसमें दोष देखता है, वही तपस्या करनेमें समर्थ होता है ॥ १३ ॥

तपः सर्वगतं तात हीनस्यापि विधीयते ।
जितेन्द्रियस्य दान्तस्य स्वर्गमार्गप्रदेशकम् ॥ १४ ॥

हे तात ! तपस्यामें सभीका अधिकार है; जितेन्द्रिय और दान्तहीन वर्णके लिये भी तपका विधान है; तप ही स्वर्गका मार्ग दिखानेवाला है ॥ १४ ॥

प्रजापतिः प्रजाः पूर्वमसृजत्तपसा विभुः ।
क्वचित्क्वचिद्व्रतपरो व्रतान्यास्थाय पार्थिव ॥ १५ ॥

हे राजन् ! पहिले समयमें यजमान अवस्थामें सर्व शक्तिमान् प्रजापतिने किसी किसी स्थानमें व्रत अवलम्बन करके तपस्याके सहारे प्रजासमूहको उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

आदित्या वसवो रुद्रास्तथैवाग्न्यश्विमारुताः ।
विश्वेदेवास्तथा साध्याः पितरोऽथ मरुद्गणाः ॥ १६ ॥

हे तात ! आदित्यगण, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, मरुत्, विश्वेदेव, साध्य, पितर, मरुद्गण, ॥ १६ ॥

यक्षराक्षसगन्धर्वाः सिद्धाश्चान्ये दिवौकसः ।
संसिद्धास्तपसा तात ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥ १७ ॥

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध तथा इनके अतिरिक्त दूसरे स्वर्गवासी देवताओंने भी तपस्याके जरिये सिद्धि लाभ की है । आदित्य प्रभृति सबने ही यजमान होकर निज निज पदप्रापक कर्मोंको करके उसहीने उस ही पदको पाया है ॥ १७ ॥

ये चादौ ब्रह्मणा सृष्टा ब्राह्मणास्तपसा पुरा ।
ते भावयन्तः पृथिवीं विचरन्ति दिवं तथा ॥ १८ ॥

पहले समयमें सृष्टिके आरम्भमें प्रजापति ब्रह्माने जिन सब ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे तपके प्रभावसेही भूलोक और सुरलोक दोनों ही स्थानोंको पवित्र करते हुए विचरते रहते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मर्त्यलोके च राजानो ये चान्ये गृहमेधिनः ।
महाकुलेषु दृश्यन्ते तत्सर्वं तपसः फलम् ॥ १९ ॥

मर्त्य लोकमें जिन राजाओं और गृहमेधी पुरुषोंने महान् वंशमें जन्म ग्रहण किया है, उनका वैसे सद्वंशमें जन्म होना तपस्याके फलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ॥ १९ ॥

कौशिकानि च वस्त्राणि शुभान्याभरणानि च ।
वाहनासनयानानि सर्वं तत्तपसः फलम् ॥ २० ॥

रेशमी वस्त्र, मनोहर आभूषण, वाहन, आसन और खान-पान, ये सभी तपस्याके फल हैं ॥ २० ॥

मनोनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः सहस्रशः ।
वासः प्रासादपृष्ठे च तत्सर्वं तपसः फलम् ॥ २१ ॥

मनके अनुकूल सहस्रों रूपवती प्रमदा और महलोंका निवास, ये सब तपस्याके ही फल हैं ॥ २१ ॥

शयनानि च मुख्यानि भोज्यानि विविधानि च ।
अभिप्रेतानि सर्वाणि भवन्ति कृतकर्मणाम् ॥ २२ ॥

उत्तम शय्या, अनेक प्रकारके उपादेय, भोज्य और अभिप्रेत विषयोंकी सिद्धि शुभ कर्म करनेवाले कृतकृत्य मनुष्योंको ही प्राप्त हुआ करती है ॥ २२ ॥

नाप्राप्यं तपसः किंचित्त्रैलोक्येऽस्मिन्परंतप ।
उपभोगपरित्यागः फलान्यकृतकर्मणाम् ॥ २३ ॥

हे शत्रुतापन ! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तपस्याके जरिये प्राप्त न होसके; कृतकृत्यता- हीन मनुष्योंके लिये उपभोगका परित्याग अर्थात् वैराग्य ही तपस्याके फल रूपसे निर्दिष्ट हुआ करता है ॥ २३ ॥

सुखितो दुःखितो वापि नरो लोभं परित्यजेत् ।
अवेक्ष्य मनसा शास्त्रं बुद्ध्या च नृपसत्तम ॥ २४ ॥

हे नृपसत्तम ! चाहे मनुष्य सुखी हो, वा दुःखी हो, मन तथा बुद्धिके सहारे शास्त्रके तत्त्वको देखके लोभका त्याग करे ॥ २४ ॥

असंतोषोऽसुखायैव लोभादिन्द्रियविभ्रमः ।
ततोऽस्य नश्यति प्रज्ञा विद्येवाभ्यासवर्जिता ॥ २५ ॥

असन्तोष केवल दुःखका ही हेतु है, लोभसे इन्द्रियोंमें पूर्ण रीतिसे भ्रम उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियभ्रमसे लोभी पुरुषोंकी प्रज्ञा अभ्यासरहित विद्याकी भांति नष्ट हो जाती है ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नष्टप्रज्ञो यदा भवति तदा न्यायं न पश्यति ।
तस्मात्सुखक्षये प्राप्ते पुमानुग्रं तपश्चरेत् ॥ २६ ॥

जब मनुष्य नष्टबुद्धि होता है, तब उसकी न्यायदृष्टि नहीं रहती अर्थात् उस समयमें वह कर्त्तव्य–अकर्त्तव्यके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होता । इसलिये सुखकी समाप्ति होनेपर पुरुष उग्र तपस्या करे ॥ २६ ॥

यदिष्टं तत्सुखं प्राहुर्द्वेष्यं दुःखमिहोच्यते ।
कृताकृतस्य तपसः फलं पश्यस्व याद्दशम् ॥ २७ ॥

प्राचीन लोग कहा करते हैं, जो इष्ट है, वही सुख है; और जो द्वेषयुक्त है, उसहीका नाम दुःख कहा जाता है । तपस्या करनेसे सुख, न करनेसे दुःख होता है; इसलिये कृताकृत तपस्याका जिस प्रकार फल हुआ करता है, उसे जानो– देखो ॥ २७ ॥

नित्यं भद्राणि पश्यन्ति विषयांश्चोपभुञ्जते ।
प्राकाश्यं चैव गच्छन्ति कृत्वा निष्कल्मषं तपः ॥ २८ ॥

मनुष्य शुद्धतासे तपस्या करके सदा शुभदर्शन वा सब विषयोंको उपभोग करता तथा जन-समाजमें विख्यात होता है; ॥ २८ ॥

अप्रियाण्यवमानांश्च दुःखं बहुविधात्मकम् ।
फलार्थी सत्पथत्यक्तः प्राप्नोति विषयात्मकम् ॥ २९ ॥

और फलकी इच्छावाला मनुष्य सकाम कर्म करके अप्रिय, अपमानना तथा अनेक प्रकार दुःख लाभ करता है; परंतु सत्पथका त्याग करनेवाला फलार्थी विषमय फल पाता है ॥ २९ ॥

धर्मे तपसि दाने च विचिकित्सास्य जायते ।
स कृत्वा पापकान्येव निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३० ॥

धर्म, तपस्या और दान विषयमें यथासमय कर्त्तव्यता होनेपर भी स्थिर कार्योंमें चिकीर्षा उत्पन्न होती है, नित्य कर्त्तव्य कार्यके समय जो पुरुष स्वेच्छापूर्वक प्रवृत्त होकर अन्य कर्म करता है, वह वैसा पापाचरण करके नरकमें डूबता है ॥ ३० ॥

सुखे तु वर्तमानो वै दुःखे वापि नरोत्तम ।
स्ववृत्ताद्यो न चलति शास्त्रचक्षुः स मानवः ॥ ३१ ॥

हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य सुख अथवा दुःखके समय भी निज धर्मसे विचलित नहीं होता, उसे ही शास्त्रदर्शी कहा जाता है ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इषुप्रपातमात्रं हि स्पर्शयोगे रतिः स्मृता ।
रसने दर्शने घ्राणे श्रवणे च विशां पते ॥ ३२ ॥

हे नरनाथ ! जितने समयके बीच धनुषसे छुटा हुआ बाण पृथ्वीपर गिरता है, उतनेही समयमें देखना, चखना, सूंघना, सुनना और स्पर्शेन्द्रियके विषयसम्बन्ध निबन्धनसे अनुराग हुआ करता है, अर्थात् विषयोंका सुख क्षणिक है ॥ ३२ ॥

ततोऽस्य जायते तीव्रा वेदना तत्क्षयात्पुनः ।
बुधा येन प्रशंसन्ति मोक्षं सुखमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥

अनन्तर इन्द्रियजनित सुखकी समाप्ति होनेपर तीव्र दुःख उत्पन्न होता है; इसलिये मूढ लोग अनुत्तम मोक्षसुखकी प्रशंसा नहीं करते, तब उस विषयमें यत्न क्यों करेंगे ? ॥ ३३ ॥

ततः फलार्थं चरति भवन्ति ज्यायसो गुणाः ।
धर्मवृत्त्या च सततं कामार्थाभ्यां न हीयते ॥ ३४ ॥

विषयके आकर तीव्र पीडाके हेतु विवेक मात्रमें ही मोक्ष फलके लिये शम दम आदि साधनोंमें प्रवृत्ति हुआ करती है । विवेकी मनुष्यके धर्मानुसार निवास करनेपर काम और अर्थ उसें अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होते, वह उनसे वञ्चित नहीं रहता ॥ ३४ ॥

अप्रयत्नागताः सेव्या गृहस्थैर्विषयाः सदा ।
प्रयत्नेनोपगम्यश्च स्वधर्म इति मे मतिः ॥ ३५ ॥

गृहस्थ पुरुष प्रारब्ध कर्मके अनुसार सम्प्राप्त अयत्नसिद्ध विषयोंका ही सेवन करे; क्योंकि उससे फल विसंवाद दर्शनके जरिये पुरुषके प्रयत्नकी दुर्बलता देखी जाती है । धर्मविषयमें पुरुषार्थकी प्रबलता दीखती है; इसलिये यत्नके अनुसार प्राप्त विषयोंका सम्भोग ही निज धर्म है, मेरी ऐसी ही विवेचना होती है ॥ ३५ ॥

मानिनां कुलजातानां नित्यं शास्त्रार्थचक्षुषाम् ।
धर्मक्रियाविमुक्तानामशक्त्या संवृतात्मनाम् ॥ ३६ ॥

माननीय, सत्कुलमें उत्पन्न, सदा शास्त्र देखनेवाले मनुष्य जिन कार्योंको करते हैं, धर्मरहित मूढचित्तवाले मनुष्य उसे कदापि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३६ ॥

क्रियमाणं यदा कर्म नाशं गच्छति मानुषम् ।
तेषां नान्यदृते लोके तपसः कर्म विद्यते ॥ ३७ ॥

जब कि मनुष्योंके क्रियमाण लौकिक कर्म विनष्ट हुआ करते हैं, तब उन्हें तपस्याके अतिरिक्त दूसरा कर्त्तव्य कर्म और कुछ भी नहीं है ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वात्मना तु कुर्वीत गृहस्थः कर्मनिश्चयम् ।
दाक्ष्येण हव्यकव्यार्थं स्वधर्मं विचरेन्नृप ॥ ३८ ॥

हे महाराज ! इसलिये गृहस्थ मनुष्य यज्ञादि कर्म करनेके लिये निपुणताके सहित निजधर्ममें स्थित होकर स्थित बुद्धिवाला होवे ॥ ३८ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥ ९९६६ ॥

जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाके निवास करती हैं, वैसे ही सब आश्रमोंके मनुष्य गृहस्थके अवलम्बसे निवास किया करते हैं ॥ ३९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८४ ॥ ९९६६ ॥

२८५

जनक उवाच—

वर्णो विशेषवर्णानां महर्षे केन जायते ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ १ ॥

जनक बोले— हे महर्षि ! कृष्ण, धूम्र, नीला, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकारके वर्णोंके बीच किस प्रकार स्वाभाविक वर्णोंसे किन किन वर्णोंमें अधिकता उत्पन्न होती है,— ब्राह्मण आदि विशेष वर्णोंका जो वर्ण है, वह कैसे उत्पन्न होता है— इसे ही मैं जाननेकी इच्छा करता हूं । हे वक्तृवर ! इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये ॥ १ ॥

यदेतज्जायतेऽपत्यं स एवायमिति श्रुतिः ।
कथं ब्राह्मणतो जातो विशेषग्रहणं गतः ॥ २ ॥

सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मणोंका अपत्य सत्वगुणनिष्ठ ही हुआ करता है । ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्य पुत्ररूपसे स्वयं उत्पन्न होता है; परन्तु क्या कारण है, कि पहले ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे सबका जन्म हुआ हैं, तब उनकी सन्तान क्षत्रिय आदि जाति विशेषके धर्मको कैसे ग्रहण करती है ॥ २ ॥

पराशर उवाच—

एवमेतन्महाराज येन जातः स एव सः ।
तपसस्त्वपकर्षेण जातिग्रहणतां गतः ॥ ३ ॥

पराशर मुनि बोले— आपने जो कहा वह यथार्थ है, जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसहीके समानरूप हुआ करता है, परन्तु तपस्याके अपकर्षसे जाति विशेषके धर्मको ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुक्षेत्राच्च सुबीजाच्च पुण्यो भवति संभवः ।
अतोऽन्यतरतो हीनादवरो नाम जायते ॥ ४ ॥

पवित्र वीर्य और पवित्र क्षेत्रसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह अवश्यही पवित्र होता है। क्षेत्र और बीजमेंसे एककी हीनता होनेसे सम्भव है, उससे उत्पन्न हुए मनुष्य अपकृष्ट रूपसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

वक्त्राद्भुजाभ्यामूरुभ्यां पद्भ्यां चैवाथ जज्ञिरे ।
सृजतः प्रजापतेर्लोकानिति धर्मविदो विदुः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! धर्म जाननेवाले पुरुष ऐसाही जानते हैं, कि मानवकी सृष्टि करते समय लोकश्रेष्ठ प्रजापतिके मुख, बाहु, ऊरु और दोनों चरणसे मनुष्य उत्पन्न हुए है ॥ ५ ॥

मुखजा ब्राह्मणास्तात बाहुजाः क्षत्रबन्धवः ।
ऊरुजा धनिनो राजन्पादजाः परिचारकाः ॥ ६ ॥

हे तात ! उसमेंसे ब्राह्मण लोग प्रजापतिके मुखसे, क्षत्रिय बाहु, वैश्य ऊरु और परिचारक शूद्र लोग पांवसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

चतुर्णामेव वर्णानामागमः पुरुषर्षभ ।
अतोऽन्ये त्वतिरिक्ता ये ते वै संकरजाः स्मृताः ॥ ७ ॥

हे पुरुषप्रवर ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंकी ही उत्पत्तिका विषय निर्णीत है; इनसे अतिरिक्त जो सब दूसरी जाति हैं, वे इन्हीं चार वर्णोंके सम्मिश्रणसे उत्पन्न होनेके कारण वर्णसंकर हैं ॥ ७ ॥

क्षत्रजातिरथाम्बष्ठा उग्रा वैदेहकास्तथा ।
श्वपाकाः पुल्कसाः स्तेना निषादाः सूतमागधाः ॥ ८ ॥

हे नरनाथ ! क्षत्रिय, अतिरथ, अम्बष्ठ, उग्र, वैदेहक, श्वपाक, पुल्कस, स्तेन, निषाद, सूत, मागध ॥ ८ ॥

आयोगाः करणा व्रात्याश्चण्डालाश्च नराधिप ।
एते चतुर्भ्यो वर्णेभ्यो जायन्ते वै परस्परम् ॥ ९ ॥

आयोग, करण, व्रात्य और चाण्डाल जाति–ये ब्राह्मण आदि चार वर्णोंसे अनुलोम और विलोम वर्णकी स्त्रियोंके संयोग होनेसे उत्पन्न होती हैं ॥ ९ ॥

जनक उवाच—

ब्रह्मणैकेन जातानां नानात्वं गोत्रतः कथम् ।
बहूनीह हि लोके वै गोत्राणि मुनिसत्तम ॥ १० ॥

जनक बोले– हे मुनिसत्तम ! एकमात्र प्रजापतिसे उत्पन्न हुए मनुष्योंके किस प्रकार अनेक गोत्र हुए ? इस लोकमें अनेक भांतिके गोत्र दीखते हैं, इसका क्या कारण है ? ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्र तत्र कथं जाताः स्वयोनिं मुनयो गताः ।
शूद्रयोनौ समुत्पन्ना विद्योनौ च तथापरे ॥ ११ ॥

मुनिलोग स्वयोनिसे जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, परन्तु जिस किसी योनिमें जिन सब सन्तानोंको उत्पन्न किया है, उन लोगोंका ब्राह्मणत्व किस प्रकारसे हुआ; जो लोग शुद्ध योनिसे उत्पन्न होते हैं, वेही पवित्र हैं, और जो लोग विरुद्ध योनिसे जन्मे हैं, वेही निकृष्ट हैं । काक्षीवान्के जरिये शूद्रागर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रोंने किस प्रकार ब्राह्मणत्वका लाभ किया था ? ॥ ११ ॥

पराशर उवाच—

राजन्नैतद्धवेद्ग्राह्यमपकृष्टेन जन्मना ।
महात्मनां समुत्पत्तिस्तपसा भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥

पराशरमुनि बोले—हे राजन् ! तपस्याके सहारे जो आत्माका ध्यान किया करते हैं, उन महात्माओंकी निकृष्ट जन्मके जरिये जो उत्पत्ति होती है, वह क्षेत्रकी दृष्टिसे निकृष्ट होनेपर भी उसे उत्कृष्ट ही मानना चाहिये ॥ १२ ॥

उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र ह ।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! मुनियोंने जिस किसी योनिसेही कितनेही पुत्रोंको उत्पन्न करके निज तपोबलसे उनका ऋषित्व विधान किया है ॥ १३ ॥

पितामहश्च मे पूर्वमृष्यशृङ्गश्च काश्यपः ।
वटस्ताण्ड्यः कृपश्चैव कक्षीवान्कमठादयः ॥ १४ ॥

हे विदेहराज ! पहले मेरे पितामह वसिष्ठ, कश्यप गोत्रमें उत्पन्न ऋष्यशृङ्ग, वेद, ताण्डय, कृप, कक्षीवान्, कमठ आदि मुनि लोग ॥ १४ ॥

यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः ।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्च द्रुमदो मत्स्य एव च ॥ १५ ॥

यवक्रीत, वक्तृवर द्रोण, आयु मतंग, दत्त, द्रुपद और मत्स्य आदि सब ॥ १५

एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽऽश्रयात् ।
प्रतिष्ठिता वेदविदो दमे तपसि चैव हि ॥ १६ ॥

तपस्याके अवलम्बसे निज प्रकृतिको प्राप्त हुए थे । ये सब वेदवित् पुरुष इन्द्रियविजय और तपस्याके जरिये धर्ममर्यादा रक्षक कहके प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च ॥ १७ ॥

हे राजन् ! पहले चार ही मूल गोत्र उत्पन्न हुए थे, अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु, येही उक्त चारों मूल गोत्रोंके प्रवर्त्तक हैं ॥ १७ ॥

कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहणं सताम् ॥ १८ ॥

इसके अतिरिक्त दूसरे सब गोत्र कर्मसे उत्पन्न अर्थात् परमात्मासे कर्मके निमित्त ही वर्णाश्रम गोत्रकी कल्पना हुई है । तपस्याके जरिये उन सब गोत्रोंके जो सब नामधेय कल्पित होते हैं ऋषि लोग उसे ही ग्रहण किया करते हैं, अर्थात् ऋषियोंसे समुद्दिष्ट विवाह आदि श्रौत स्मार्त्त व्यवहार अवलम्बन करके पृथक् गोत्रोंके नामसे वर्णित हुए हैं ॥ १८ ॥

जनक उवाच—

विशेषधर्मान्वर्णानां प्रब्रूहि भगवन्मम ।
तथा सामान्यधर्मांश्च सर्वत्र कुशलो ह्यसि ॥ १९ ॥

जनक बोले– हे भगवन् ! आप पहले मेरे समीप सब वर्णोंके विशेष धर्म वर्णन करिये, शेषमें सामान्य धर्मोंका भी विवरण कहियेगा; आप सब विषयोंको ही वर्णन करनेमें विशेष पारदर्शी हैं ॥ १९ ॥

पराशर उवाच—

प्रतिग्रहो याजनं च तथैवाध्यापनं नृप ।
विशेषधर्मो विप्राणां रक्षा क्षत्रस्य शोभना ॥ २० ॥

पराशर मुनि बोले– हे नरपाल ! प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन,– ये ब्राह्मणोंके विशेष धर्म हैं; क्षत्रियके लिये प्रजापालन ही उत्तम धर्म है ॥ २० ॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च वाणिज्यं च विशामपि ।
द्विजानां परिचर्या च शूद्रकर्म नराधिप ॥ २१ ॥

हे नराधिप ! कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य वैश्योंके मुख्य धर्म हैं और द्विजातियोंकी सेवा ही शूद्रका धर्म है ॥ २१ ॥

विशेषधर्मा नृपते वर्णानां परिकीर्तिताः ।
धर्मान्साधारणांस्तात विस्तरेण शृणुष्व मे ॥ २२ ॥

हे तात नरनाथ ! ये सब वर्णोंके विशेष धर्म कहे गये हैं; अब मेरे मुखसे विस्तारपूर्वक उनके साधारण धर्मोंको सुनिये ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आनृशंस्यमहिंसा चाप्रमादः संविभागिता ।
श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च ॥ २३ ॥

हे राजन् ! अनृशंसता (दया), अहिंसा, अप्रमाद, संविभाग– देवता– पितरोंको उनका भाग अर्पित करना, श्राद्धकर्म, अतिथिसत्कार, सत्य, क्रोधहीनता, ॥ २३ ॥

स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं नित्यानसूयता ।
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्माः साधारणा नृप ॥ २४ ॥

अपनी ही पत्नीमें संतुष्ट रहना, पवित्रता, सदा अनसूयता, आत्मज्ञान और सहनशीलता ये धर्म सब वर्णों और आश्रमोंमें साधारण हैं ॥ २४ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
अत्र तेषामधीकारो धर्मेषु द्विपदां वर ॥ २५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य– ये तीनों वर्णही द्विजाति कहे जाते हैं । हे राजन् ! इसलिये ऊपर कहे हुए धर्मोंमें उन लोगोंका समान अधिकार है ॥ २५ ॥

विकर्मावस्थिता वर्णाः पतन्ति नृपते त्रयः ।
उन्नमन्ति यथासन्तमाश्रित्येह स्वकर्मसु ॥ २६ ॥

ये तीन वर्ण विपरीत कर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर पतित होते हैं; जैसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वकर्ममें रत होकर साधु पुरुषोंका आसरा ग्रहण करनेसे उन्नत होते हैं, वैसे ही निषिद्ध कर्मोंके अनुष्ठानसे पतित हुआ करते हैं ॥ २६ ॥

न चापि शूद्रः पततीति निश्चयो न चापि संस्कारमिहार्हतीति वा ।
श्रुतिप्रवृत्तं न च धर्ममाप्नुते न चास्य धर्मे प्रतिषेधनं कृतम् ॥ २७ ॥

शूद्र निषिद्ध कर्मोंके अनुष्ठानसे पतित नहीं होता है और वह कोई संस्कारका अधिकारी नहीं है । वेदविहित कर्मोंमें उसका अधिकार नहीं है; तथापि पहले कहे हुए सामान्य धर्म पालनके लिये शूद्रके विषयमें निषेध विधि कुछ भी विहित नहीं है ॥ २७ ॥

वैदहकं शूद्रमुदाहरन्ति द्विजा महाराज श्रुतोपपन्नाः ।
अहं हि पश्यामि नरेन्द्र देवं विश्वस्य विष्णुं जगतः प्रधानम् ॥ २८ ॥

हे महाराज विदेह ! वेदज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग शूद्रको प्रजापति ब्रह्माके समान कहा करते हैं, परन्तु मैं शूद्रको जगत्में प्रधान क्षत्रिय स्वरूप विष्णुरूपसे देखा करता हूं । पहिले कहा गया है, प्रजापति ब्राह्मण और विष्णु क्षत्रिय वर्ण हैं; इसलिये शूद्र वैश्य और क्षत्रिय जन्मके अनन्तर ब्राह्मणत्व लाभ करके विदेह कैवल्य लाभ करता है, यह वैदिक मत है; और मेरे मतमें शूद्र क्षत्रियजन्मके अनन्तर ही ब्राह्मणत्व लाभ करके मोक्षपद पाता है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सतां वृत्तमनुष्ठाय निहीना उज्जिहीर्षवः ।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीः क्रियाः ॥ २९ ॥

शूद्र लोग यदि साधुओंके आचरित दम, दान, दया आदिका अनुष्ठान करते हुए, काम क्रोध आदि दोषोंको नष्ट करनेके अभिलाषी होकर, मन्त्रपाठ छोडके आत्माको उन्नत करनेवाली क्रियाओंका अनुष्ठान करें, तो उसके लिये वे दूषित नहीं होते हैं ॥ २९ ॥

यथा यथा हि सद्वृत्तमालम्बन्तीतरे जनाः ।
तथा तथा सुखं प्राप्य प्रेत्य चेह च शेरते ॥ ३० ॥

इतर जातीय साधारण लोगोंमें जो जिस प्रकार सदाचार अवलम्बन करते हैं, वे उस ही भांति सुख लाभ करके इस लोक और परलोकमें आनन्दित होते हैं ॥ ३० ॥

जनक उवाच—

किं कर्म दूषयत्येनमथ जातिर्महामुने ।
संदेहो मे समुत्पन्नस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३१ ॥

जनक बोले— हे महामुनि ! मनुष्यको उसके कर्म दूषित करते हैं, या जाति ? इस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है; इसलिये मेरे समीप आपको उस विषयकी व्याख्या करनी उचित है ॥ ३१ ॥

पराशर उवाच—

असंशयं महाराज उभयं दोषकारकम् ।
कर्म चैव हि जातिश्च विशेषं तु निशामय ॥ ३२ ॥

पराशरमुनि बोले— हे महाराज ! कर्म और जाति दोनों ही दोषकारक हैं, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिये उस विषयका विशेष वृत्तान्त सुनो ॥ ३२ ॥

जात्या च कर्मणा चैव दुष्टं कर्म निषेवते ।
जात्या दुष्टश्च यः पापं न करोति स पूरुषः ॥ ३३ ॥

जो जाति और कर्म— इन दोनोंसे श्रेष्ठ तथा पापकर्म नहीं करता, और जातिसे दूषित होकर भी जो पापकर्म नहीं करता है, वही पुरुष कहलाने योग्य है ॥ ३३ ॥

जात्या प्रधानं पुरुषं कुर्वाणं कर्म धिक्कृतम् ।
कर्म तद्दूषयत्येनं तस्मात्कर्म नशोभनम् ॥ ३४ ॥

जातिके अनुसार प्रधान पुरुष यदि निन्दित कर्म करे, तो वह कर्म ही उसे दूषित करता है; इसलिये वैसा बुरा कर्म करना कदापि उत्तम नहीं है ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जनक उवाच—

कानि कर्माणि धर्म्याणि लोकेऽस्मिन्द्विजसत्तम ।
न हिंसन्तीह भूतानि क्रियमाणानि सर्वदा ॥ ३५ ॥

जनक बोले– हे द्विजसत्तम ! इस लोकमें कौन कर्म धर्मयुक्त हैं, जिसे सदा अनुष्ठान करनेसे भी सब भूतोंकी हिंसा नहीं होती ? ॥ ३५ ॥

पराशर उवाच –

शृणु मेऽत्र महाराज यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यानि कर्माण्यहिंस्राणि नरं त्रायन्ति सर्वदा ॥ ३६ ॥

पराशरमुनि बोले– हे महाराज ! जो सब अहिंस्र कर्म मनुष्योंकी सर्वदा रक्षा करते हैं, उस विषयमें तुम मुझसे जो कुछ प्रश्न करते हो, अब उसका उत्तर सुनो ॥ ३६ ॥

संन्यस्याग्नीनुपासीनाः पश्यन्ति विगतज्वराः ।
नैःश्रेयसं धर्मपथं समारुह्य यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥

परिव्राजक धर्म अवलम्बन कर अग्नि स्पर्श करके जो लोग ध्यान युक्त हुए हैं, वे शोकरहित होकर यथाक्रमसे वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामक योगभूमिमें आरोहण करके निःश्रेयस कर्मपथ अवलोकन करते हैं ॥ ३७ ॥

प्रश्रिता विनयोपेता दमनित्याः सुसांशताः ।
प्रयान्ति स्थानमजरं सर्वकर्मविवर्जिताः ॥ ३८ ॥

वे सब श्रद्धावान् नम्र, विनययुक्त, दमपरायण, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त मनुष्य लोग सब कर्मोंसे रहित होकर अविनाशी स्थानमें गमन किया करते हैं; ॥ ३८ ॥

सर्वे वर्णा धर्मकार्याणि सम्यक्कृत्वा राजन्सत्यवाक्यानि चोक्त्वा ।
त्यक्त्वाधर्मं दारुणं जीवलोके यान्ति स्वर्गं नात्र कार्यो विचारः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥ १००० ॥

हे राजन् ! ब्राह्मण आदि सब वर्ण इस जीवलोकमें पूर्णरीतिसे कर्म कार्योंको सिद्ध करने, सत्य वचन कहने और दारुण अधर्मके त्यागनेसे स्वर्गमें जाते हैं; इस विषयमें कुछ भी अन्यथा विचार करना उचित नहीं है ॥ ३९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ पचासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८५ ॥ १००० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

२८६

पराशर उवाच—

पिता सखायो गुरवः स्त्रियश्च न निर्गुणा नाम भवन्ति लोके ।
अनन्यभक्ताः प्रियवादिनश्च हिताश्च वश्याश्च तथैव राजन् ॥ १ ॥

पराशरमुनि बोले— हे राजन् ! गुणहीन पुरुषको पिता, सखा, गुरुजन और स्त्रियां आदि कोई भी उसके नहीं होते हैं; जो प्रभुके अनन्य भक्त होके प्रिय वचन कहनेवाले, हितैषी और इंद्रियसंयमी हैं, वे ही उसके होते हैं ॥ १ ॥

पिता परं दैवतं मानवानां मातुर्विशिष्टं पितरं वदन्ति ।
ज्ञानस्य लाभं परमं वदन्ति जितेन्द्रियार्थाः परमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

मनुष्योंके लिये पिता ही परम देवता है; पण्डित लोग पिताको मातासे भी अधिक गौरवशाली कहा करते हैं; और विद्वान् लोग ज्ञानके लाभको ही परम श्रेष्ठ कहते हैं; मनुष्य ज्ञान लाभसे ही इन्द्रिय विषयोंको जीतकर परमपद पाते हैं ॥ २ ॥

रणाजिरे यत्र शराग्निसंस्तरे नृपात्मजो घातमवाप्य दह्यते ।
प्रयाति लोकानमरैः सुदुर्लभान्निषेवते स्वर्गफलं यथासुखम् ॥ ३ ॥

जो राजपुत्र रणभूमिमें घायल होके शराग्निशय्यापर शयन करके दग्ध होता है, वह देवताओंके भी अत्यन्त दुर्लभ लोकोंको पाके अनायास ही स्वर्गसुख भोग किया करता है ॥ ३ ॥

श्रान्तं भीतं भ्रष्टशस्त्रं रुदन्तं पराङ्मुखं परिवर्हैश्च हीनम् ।
अनुद्यतं रोगिणं याचमानं न वै हिंस्याद्बालवृद्धौ च राजन् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! संग्राममें श्रान्त, भीत, शस्त्रहीन रोदनपरायण, जो भाग रहा हो, युद्ध विषयक रथ, घोडे, कवच आदिसे रहित, अनुद्योगी, रोगी, याचमान, बालक और वृद्धकी किसी प्रकार भी हिंसा करनी उचित नहीं है ॥ ४ ॥

परिबर्हैः सुसंपन्नमुद्यतं तुल्यतां गतम् ।
अतिक्रमेत नृपतिः संग्रामे क्षत्रियात्मजम् ॥ ५ ॥

जो क्षत्रिय पुत्र युद्धमें रथ, घोडे कवच आदिसे संयुक्त, उद्योगी तथा अपने समान हो, राजा उसे ही आक्रमण करे ॥ ५ ॥

तुल्यादिह वधः श्रेयान्विशिष्टाच्चेति निश्चयः ।
निहीनात्कातराच्चैव नृपाणां गर्हितो वधः ॥ ६ ॥

ऐसा निश्चय है, कि अपने समान वा विशिष्टके जरिये मरनाही कल्याणकारी है; अपनेसे अत्यन्त हीन, कादर और कृपणसे मारा जाना बहुत ही निन्दित है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पापात्पापसमाचारान्निहीनाच्च नराधिप ।
पाप एव वधः प्रोक्तो नरकायेति निश्चयः ॥ ६ ॥

हे नरनाथ ! पापात्मा, पापाचारी और अत्यन्त हीन पुरुषसे जो वध होता है, वही पापयुक्त और नरकका निमित्त कहके निश्चित हुआ है ॥ ७ ॥

न कश्चित्त्राति वै राजन्दिष्टान्तवशमागतम् ।
सावशेषायुषं चापि कश्चिदेवापकर्षति ॥ ८ ॥

हे राजन् ! मृत्युके मुखमें पडे हुएको कोई बचा नहीं सकता, और जिसकी परमायु शेष है उसे कोई भी मारनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ८ ॥

स्त्रिगधैश्च क्रियमाणानि कर्माणीह निवर्तयेत् ।
हिंसात्मकानि कर्माणि नायुरिच्छेत्परायुषा ॥ ९ ॥

मातृगणोंके जरिये क्रियमाण अभ्यङ्ग कर्म और हिंसामय समस्त कर्मोंसे निवृत्त होना उचित है, दूसरेकी परमायुसे अपनी आयु दूषित करनेकी कोई इच्छा न करे ॥ ९ ॥

गृहस्थानां तु सर्वेषां विनाशमभिकाङ्क्षताम् ।
निधनं शोभनं तात पुलिनेषु क्रियावताम् ॥ १० ॥

हे तात ! मृत्युकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ लोग यदि किसी तीर्थमें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए जीवन परित्याग करें, तो वह मृत्यु परम उत्तम है ॥ १० ॥

आयुषि क्षयमापन्ने पञ्चत्वमुपगच्छति ।
नाकारणात्तद्भवति कारणैरुपपादितम् ॥ ११ ॥

परमायु क्षय होनेसे ही मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है, यदृच्छामरणसे किसीकी आचरण मृत्यु होती है । किसीकी अज्ञानमात्रके दूर होनेसे स्वतःसिद्ध मोक्ष फल तीर्थ मरण आदि कारणसे सिद्ध हुआ करती है ॥ ११ ॥

तथा शरीरं भवति देहाद्येनोपपादितम् ।
अध्वानं गतकश्चायं प्राप्तश्चायं गृहाद्गृहम् ॥ १२ ॥

जो पुरुष देहलाभ करके जल प्रवेशादिके जरिये उस शरीरका पञ्चत्व साधन करता है, वह देहत्यागी मनुष्य फिर एक घरसे दूसरे घरमें जानेवाले मनुष्यके समान दुःख भोगनेके निमित्त वैसा ही शरीर पाता है ॥ १२ ॥

द्वितीयं कारणं तत्र नान्यत्किंचन विद्यते ।
तद्देहं देहिनां युक्तं मोक्षभूतेषु वर्तते ॥ १३ ॥

उनकी उस अवस्थाके प्राप्त होनेमें आत्महत्याके विना दूसरा कारण और कुछ भी नहीं है । उनको पञ्चभूतमय शरीर मिलना ही योग्य है ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सिरास्नाय्वस्थिसंघातं बीभत्सामेध्यसंकुलम् ।
भूतानामिन्द्रियाणां च गुणानां च समागमम् ॥ १४ ॥

यह शरीर शिरा, स्नायु और हड्डी आदिसे युक्त, समूह बिभत्स तथा मलमूत्रसे परिपूरित, पञ्चभूत, दसों इन्द्रिय और वासनामय विषयोंका स्थान है ॥ १४ ॥

त्वगन्तं देहमित्याहुर्विद्वांसोऽध्यात्मचिन्तकाः ।
गुणैरपि परिक्षीणं शरीरं मर्त्यतां गतम् ॥ १५ ॥

अध्यात्मका विचार करनेवाले ज्ञानी पुरुष इस शरीरके बाह्य भागमें त्वचाही है, ऐसा कहते हैं; यह शरीर सुन्दरता आदि गुणोंसे हीन है; इसकी मृत्यु अनिवार्य है ॥ १५ ॥

शरीरिणा परित्यक्तं निश्चेष्टं गतचेतनम् ।
भूतैः प्रकृतिमापन्नैस्ततो भूमौ निमज्जति ॥ १६ ॥

यातना शरीर सबसे आरम्भकभूतोंके प्रकृतिको प्राप्त होनेपर जीवके परित्याग किये जानेसे चेतनारहित होजाता है, तथा निश्चेष्ट होके पृथ्वीपर गिर पडकर उसमें निमग्न होता है ॥१६॥

भावितं कर्मयोगेन जायते तत्र तत्र ह ।
इदं शरीरं वैदेह म्रियते यत्र तत्र ह ।
तत्स्वभावोऽपरो दृष्टो विसर्गः कर्मणस्तथा ॥ १७ ॥

हे विदेहराज ! यह शरीर जिस किसी स्थानमें मृत होता है, फिर कर्मसंयोगसे उसही स्थानमें जन्म ग्रहण करता है; परन्तु जो शरीर पहले परित्यक्त होता है, कर्मफल भोगनेके निमित्त पुनर्वार उत्पन्न हुआ शरीर तत्सजातीयरूपसे नहीं दीखता ॥ १७ ॥

न जायते तु नृपते कंचित्कालमयं पुनः ।
परिभ्रमति भूतात्मा व्योमिवाम्बुधरो महान् ॥ १८ ॥

हे राजन् ! जबतक पाप नष्ट नहीं होता, भूतात्माके रूपमें तबतक निज स्वरूपसे प्रकट नहीं होता । महान् अम्बुधरकी भांति आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है ॥ १८ ॥

स पुनर्जायते राजन्प्राप्येहायतनं नृप ।
मनसः परमो ह्यात्मा इन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥ १९ ॥

राजन् ! अन्तमें उपाधिजनित कलुषता छूटनेपर वही कोई स्थान पाके फिर जन्मता है । मनसे आत्मा श्रेष्ठ है और इन्द्रियोंसे मन उत्तम है ॥ १९ ॥

द्विविधानां च भूतानां जङ्गमाः परमा नृप ।
जङ्गमानामपि तथा द्विपदाः परमा मताः ।
द्विपदानामपि तथा द्विजा वै परमाः स्मृताः ॥ २० ॥

हे राजन् ! जो सब द्विविध प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं, और जङ्गम जीवोंके बीच दो पांववाले मनुष्य ही परम श्रेष्ठ हैं, दो पांववालोंमें-मनुष्योंमें द्विज लोग ही उत्तम हैं ॥२०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhūji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

द्विजानामपि राजेन्द्र प्रज्ञावन्तः परा मताः ।
प्राज्ञानामात्मसंबुद्धाः संबुद्धानाममानिनः ॥ २१ ॥

हे राजेन्द्र ! द्विजोंके बीच बुद्धिमान् पुरुष ही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियोंमें योगी पुरुष और योगियोंके बीच योगके ऐश्वर्यके दर्पसे रहित मनुष्य गरिष्ठ होते हैं ॥ २१ ॥

जातमन्वेति मरणं नृणामिति विनिश्चयः ।
अन्तवन्ति हि कर्माणि सेवन्ते गुणतः प्रजाः ॥ २२ ॥

यह निश्चय है, कि मनुष्योंका मरना जन्मका ही अनुसरण किया करता है, सब लोग सत्त्व आदि गुणोंके अनुसार क्षयशील कर्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं ॥ २२ ॥

आपन्ने तूत्तरां काष्ठां सूर्ये यो निधनं व्रजेत् ।
नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन्स पुण्यकृत ॥ २३ ॥

हे राजन् ! सूर्यके उत्तरायण गमन करनेपर पवित्र नक्षत्र और पवित्र मुहूर्त्तमें जिसकी मृत्यु होती है, वह पुण्यात्मा है ॥ २३ ॥

अयोजयित्वा क्लेशेन जनं ध्यात्व च दुष्कृतम् ।
मृत्युनाप्राकृतेनेह कर्म कृत्वात्मशक्तितः ॥ २४ ॥

वह किसीको भी क्लेश न देकर अपने पापोंको धोके आत्मशक्तिके अनुसार कर्म करता हुआ कालकृत मृत्युके जरिये इस लोकको परित्याग करता है ॥ २४ ॥

विषमुद्बन्धनं दाहो दस्युहस्तात्तथा वधः ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च प्राकृतो वध उच्यते ॥ २५ ॥

विषभक्षण, उद्बन्धन, दाह, दस्युओंके हाथसे मारा जाना और दंष्ट्री पशुओंके जरिये जो मृत्यु होती है, वह अधम श्रेणीकी मृत्यु कही जाती है ॥ २५ ॥

न चैभिः पुण्यकर्माणो युज्यन्ते नाभिसंधिजैः ।
एवंविधैश्च बहुभिरपरैः प्राकृतैरपि ॥ २६ ॥

पुण्यशील मनुष्य आधिव्याधियोंसे पीडित होके भी ऐसे ही अनेक प्रकारके तथा अन्यान्य दुर्मरणकी कामना नहीं करते ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वं हित्वा प्रतिष्ठन्ते प्राणाः पुण्यकृतां नृप ।
मध्यतो मध्यपुण्यानामधो दुष्कृतकर्मणाम् ॥ २७ ॥

हे नृपति ! पुण्यवान् मनुष्योंके प्राण सूर्यमण्डलका भेद कर-ब्रह्मरन्ध्रको भेद कर—निकलते हैं; मध्यम पुण्यशाली मनुष्योंके प्राण मध्यद्वार— मुख, नेत्र आदिसे जाते हैं; और पापी लोगोंके प्राण अधोलोकसे— नीचेके छिद्र—गुदा या शिश्न—से गमन करते हैं ॥ २७ ॥

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन् ।
येनावृतः कुरुते संप्रयुक्तो घोराणि कर्माणि सुदारुणानि ॥ २८ ॥

हे राजन् ! जो मनुष्य अज्ञानसे आवृत वा प्रेरित होकर अत्यन्त दारुण घोर कर्मोंको किया करता है, उस पुरुषको अज्ञानके समान कोई भी शत्रु नहीं है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रबोधनार्थं श्रुतिधर्मयुक्तं वृद्धानुपास्यं च भवेत यस्य ।
प्रयत्नसाध्यो हि स राजपुत्र प्रज्ञाशरेणोन्मथितः परैति ॥ २९ ॥

हे राजपुत्र ! जिसके प्रबोधनके लिये जो वेद और धर्मसम्पन्न वृद्धोंकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होता है, वह अज्ञानरूप शत्रु यत्नसाध्य प्रज्ञाशरके जरिये उन्मथित होनेसे ही नष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥

अधीत्य वेदांस्तपसा ब्रह्मचारी यज्ञाञ्शक्त्या संनिसृज्येह पञ्च ।
वनं गच्छेत्पुरुषो धर्मकामः श्रेयश्चित्वा स्थापयित्वा स्ववंशम् ॥ ३० ॥

द्विज मनुष्य पहले ब्रह्मचर्य आश्रमका अवलम्बन करके तपस्यापूर्वक वेदाध्ययन करे; फिर गृहस्थाश्रम स्वीकारकर यथाशक्ति इन्द्रियोंका निग्रह करके पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे; फिर निज पुत्रको गृहादिकी रक्षामें स्थापित करते हुए मोक्षार्थी होकर केवल धर्मपालनकी इच्छा रखकर वनमें गमन करे ॥ ३० ॥

उपभोगैरपि त्यक्तं नात्मानमवसादयेत् ।
चण्डालत्वेऽपि मानुष्यं सर्वथा तात दुर्लभम् ॥ ३१ ॥

हे तात ! मनुष्य उपभोगहीन स्वयंको कदापि दुःखी न करे; चाण्डालके घरमें जन्म होनेपर भी मनुष्यजीवनको सब प्रकारसे उत्तम तथा दुर्लभ समझे ॥ ३१ ॥

इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते ।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः ॥ ३२ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आत्मा जिसे पाके शुभ लक्षणयुक्त कर्मोंके जरिये अपना परित्राण करनेमें समर्थ होता है, वह मनुष्यजीवन ही अद्वितीय योनि है ॥ ३२ ॥

कथं न विप्रणश्येम योनितोऽस्या इति प्रभो ।
कुर्वन्ति धर्मं मनुजाः श्रुतिप्रामाण्यदर्शनात् ॥ ३३ ॥

प्रभो ! मनुष्य लोग श्रुतिप्रामाण्य दर्शन निबन्धनसे " किस प्रकार इस मनुष्य योनिसे च्युत न होऊं " इसे ही सोचके सदा धर्मका अनुष्ठान करते ह ॥ ३३ ॥

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यमिह वै नरः ।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत्स खलु वञ्च्यते ॥ ३४ ॥

इस लोकमें जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मानव–जीवन पाके दूसरेसे द्वेष करता है, वह धर्मावमन्ता कामात्मा पुरुष महान् लाभसे वञ्चित हुआ करता है ॥ ३४ ॥

यस्तु प्रीतिपुरोगेण चक्षुषा तात पश्यति ।
दीपोपमानि भूतानि यावदिर्चिर्न नश्यति ॥ ३५ ॥

हे तात ! जो पुरुष विरक्त होकर विषयोंकी ओर न देखकर प्रीतियुक्त नेत्रसे स्नेह संवर्धनीय दीपककी भांति सब जीवोंको देखता है ॥ ३५ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सान्त्वेनानुप्रदानेन प्रियवादेन चाप्युत ।
समदुःखसुखो भूत्वा स परत्र महीयते ॥ ३६ ॥

और धैर्यवचन, अन्नदान तथा प्रिय वाक्यसे सबका सत्कार करता है, वह सबके दुःख-सुखमें समभावसे मिलित होता है, वह परलोकमें पूजित हुआ करता है ॥ ३६ ॥

दानं त्यागः शोभना मूर्तिरद्भ्यो भूयः प्लाव्यं तपसा वै शरीरम् ।
सरस्वतीनैमिषपुष्करेषु ये चाप्यन्ये पुण्यदेशाः पृथिव्याम् ॥ ३७ ॥

हे भूपति ! सरस्वती, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर अथवा पृथ्वीके बीच कुरुक्षेत्र आदि जो सब पवित्र क्षेत्र हैं, वहांपर दान, विषयासक्तिका परित्याग, शान्तमूर्त्ति धारण, तथा जल वा तपस्याके जरिये शरीरको पवित्र करना उचित है ॥ ३७ ॥

गृहेषु येषामसवः पतन्ति तेषामथो निर्हरणं प्रशस्तम् ।
यानेन वै प्रापणं च श्मशाने शौचेन नूनं विधिना चैव दाहः ॥ ३८ ॥

घरोंमें जिनके प्राण निकल रहे हैं, उन्हें शीघ्र ही घरसे बाहर लेजाना उत्तम है; इसलिये मृत शरीरको यानके जरिये श्मशानमें लेजाकर पवित्रतायुक्त शास्त्र विधिसे उनका दाह संस्कार करना ही योग्य है ॥ ३८ ॥

इष्टिः पुष्टिर्यजनं याजनं च दानं पुण्यानां कर्मणां च प्रयोगः ।
शक्त्या पित्र्यं यच्च किंचित्प्रशस्तं सर्वाण्यात्मार्थे मानवो यः करोति ॥ ३९ ॥

इष्टि, पुष्टि, यजन, याजन, दान और पुण्य कर्मोंके अनुष्ठान तथा शक्तिके अनुसार पितृलोकके उद्देश्यसे श्राद्ध आदि जो कुछ विहित उत्तम कार्य करता है, मनुष्य अपने ही लिये वह सब किया करता है ॥ ३९ ॥

धर्मशास्त्राणि वेदाश्च षडङ्गानि नराधिप ।
श्रेयसोऽर्थे विधीयन्ते नरस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४० ॥

हे नरनाथ ! अक्लिष्टकर्मा मनुष्यके कल्याणके निमित्त ही धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये षडङ्ग और सब वेद विहित हुए हैं ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच—

एतद्वै सर्वमाख्यातं मुनिना सुमहात्मना ।
विदेहराजाय पुरा श्रेयसोऽर्थे नराधिप ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥ १००४६ ॥

भीष्म बोले— हे महाराज ! महानुभाव पराशर मुनिने पहले समयमें कल्याणके निमित्त विदेहराजके निकट इन सब विषयोंको कहा था ॥ ४१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छियासिवां अध्याय समाप्त ॥ २८६ ॥ १००४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २८७ :

भीष्म उवाच –

पुनरेव तु पप्रच्छ जनको मिथिलाधिपः ।
पराशरं महात्मानं धर्मे परमनिश्चयम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– मिथिलाधिपति जनकने धर्म विषयमें उत्तम निश्चय रखनेवाले महात्मा पराशर मुनिसे फिर प्रश्न किया ॥ १ ॥

किं श्रेयः का गतिर्ब्रह्मन्किं कृतं न विनश्यति ।
क्व गतो न निवर्तेत तन्मे ब्रूहि महामुने ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन् ! कल्याणका साधन क्या है ? उत्तम गति किसे कहते हैं ? कौन कर्म करनेसे वह नष्ट नहीं होता और कहां जानेसे मनुष्यको संसारमें फिर नहीं आना पडता ? हे महाबुद्धिमान् ! आप मुझसे वही कहिये ॥ २ ॥

पराशर उवाच –

असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं ज्ञानगतिः परा ।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद्वापः क्षेत्रे न नश्यति ॥ ३ ॥

पराशर मुनि बोले– जो कुछ कल्याणके साधन हैं, आसक्तिहीनता ही उसका मूल है; ज्ञान ही परम गति है; स्वयं किया हुआ तप और सत्पात्रको दिया हुआ दान– ये कदापि विनष्ट नहीं होते ॥ ३ ॥

छित्त्वाधर्ममयं पाशं यदा धर्मेऽभिरज्यते ।
दत्त्वाभयकृतं दानं तदा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

जब मनुष्य अधर्ममय पाशको काटके धर्म कार्यमें अनुरक्त होता है, और सब भूतोंको अभय दान करता है, उसे उसी समय सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

यो ददाति सहस्राणि गवामश्वशतानि च ।
अभयं सर्वभूतेभ्यस्तद्दानमतिवर्तते ॥ ५ ॥

जो एक सहस्र गऊ और एकसौ घोडे दान करता है तथा जो सब भूतोंको अभय दान करता है, वह सदा गो और अश्वदान करनेवालेसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

वसन्विषयमध्येऽपि न वसत्येव बुद्धिमान् ।
संवसत्येव दुर्बुद्धिरसत्सु विषयेष्वपि ॥ ६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य विषयोंके बीच निवास करके भी उसमें लिप्त नहीं होता और दुर्बुद्धि पुरुष असत् विषयोंके निकट न होनेपर भी सदा उन्हींमें आसक्त हुआ करता है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Haridwar). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाधर्मः श्लिष्यते प्राज्ञमापः पुष्करपर्णवत् ।
अप्राज्ञमधिकं पापं श्लिष्यते जतु काष्ठवत् ॥ ७ ॥

जैसे जल पुष्करपत्रमें संश्लिष्ट नहीं होता, वैसे ही अधर्म कभी बुद्धिमान् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता। समस्त पाप अज्ञानी पुरुषको ही काठमें लाह चिपकनेकी भांति आलिङ्गन किया करता है ॥ ७ ॥

नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति ।
कर्ता खलु यथाकालं तत्सर्वमभिपद्यते ।
न भिद्यन्ते कृतात्मान आत्मप्रत्ययदर्शिनः ॥ ८ ॥

अधर्म फल दानात्मिका क्रियापेक्षी होकर कर्त्ताको कभी परित्याग नहीं करता; कर्तृत्वाभिमानी मनुष्य यथा समयमें उस सब अधर्मका फल पाता है। आत्मप्रत्ययदर्शी कृतात्मा मनुष्य कदापि कर्मफलके जरिये विचलित नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां हि प्रमत्तो यो न बुध्यते ।
शुभाशुभेषु सक्तात्मा प्राप्नोति सुमहद्भयम् ॥ ९ ॥

बुद्धि, कर्म और इन्द्रिय सम्बन्धसे प्रमत्त होकर जो पुरुष अपनी बुरी चेष्टाओंको नहीं समझ सकता, वह शुभाशुभ विषयोंमें आसक्तचित्त होकर महत् भय पाता है ॥ ९ ॥

वीतरागो जितक्रोधः सम्यग्भवति यः सदा ।
विषये वर्तमानोऽपि न स पापेन युज्यते ॥ १० ॥

जो सदा पूर्ण रूपसे रागरहित होके क्रोधको जीतता है, और सदाचारका पालन करता है, वह विषयोंमें लिप्त रहके भी पापयुक्त नहीं होता ॥ १० ॥

मर्यादायां धर्मसेतुर्निबद्धो नैव सीदति ।
पुष्टस्रोत इवायत्तः स्फीतो भवति संचयः ॥ ११ ॥

जैसे नदीमें बंधा हुआ मजबूत बांध टूटता नहीं है और उसके कारण वहां जलका स्रोत बढता है, उसी प्रकार मर्यादापर बंधा हुआ धर्मरूपी बांध नष्ट नहीं होता है और उससे प्रतिदिन विहित तपकी वृद्धि होती है ॥ ११ ॥

यथा भानुगतं तेजो मणिः शुद्धः समाधिना ।
आदत्ते राजशार्दूल तथा योगः प्रवर्तते ॥ १२ ॥

हे राजश्रेष्ठ ! जैसे विशुद्ध सूर्यकान्त मणि नियमके अनुसार सूर्यके तेजको ग्रहण करती है, वैसे ही जीव योगके सहारे ब्रह्मभाव लाभ किया करता है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा तिलानामिह पुष्पसंश्रयात्पृथक्पृथग्याति गुणोऽतिसौम्यताम् ।
तथा नराणां भुवि भावितात्मनां यथाश्रयं सत्त्वगुणः प्रवर्तते ॥ १३ ॥

जैसे तिलोंका तेल पृथक् पृथक् सुगन्धित पुष्पसंश्रयसे अत्यन्त रमणीय होता है, वैसे ही पृथ्वी-पर आत्मध्यानपरायण मनुष्योंमें बार बार सत्पुरुषोंके संग निबन्धनसे सत्त्वगुण उत्पन्न हुआ करता है ॥ १३ ॥

जहाति दारानिहते न संपदः सदश्वयानं विविधाश्च याः क्रियाः ।
त्रिविष्टपे जातमतिर्यदा नरस्तदास्य बुद्धिर्विषयेषु भिद्यते ॥ १४ ॥

जब मनुष्य सुरपुरमें वास करनेकी–सर्वोत्तम पद पानेकी अभिलाष करता है, तब वह पत्नी, पुत्र आदि परिवार, अतुल सम्पत्ति, घोडोंसहित वाहन और अनेक प्रकारकी सत्क्रिया तथा निज पद परित्याग किया करता है; उस समय उसकी बुद्धि शब्द, स्पर्श आदि विषयोंसे पृथक् होती है ॥ १४ ॥

प्रसक्तबुद्धिर्विषयेषु यो नरो यो बुध्यते ह्यात्महितं कदाचन ।
स सर्वभावानुगतेन चेतसा नृपामिषेणेव झषो विकृष्यते ॥ १५ ॥

हे राजन् ! जिस मनुष्यकी बुद्धि विषयोंमें लिप्त होती है, वह कदापि आत्महित समझनेमें समर्थ नहीं होता । जैसे मछली कांटेमें मांस देखकर आकृष्ट होकर उसमें फंस जाती है, वैसे ही मनुष्य भी सर्वभाव अनुगत मानसके जरिये विषयोंकी ओर आकृष्ट हुआ करता है, और दुःख भोगता है ॥ १५ ॥

संघातवान्मर्त्यलोकः परस्परमपाश्रितः ।
कदलीगर्भनिःसारो नौरिवाप्सु निमज्जति ॥ १६ ॥

देह इंद्रिय आदि संघातकी भांति स्त्री पुत्र, पशु आदि परस्पर उपकारक होके भी कदली-गर्भवत् निःसार हैं; जैसे नौका जलमें डूबती है, वैसे ही ये भी विनष्ट हुआ करते हैं ॥१६॥

न धर्मकालः पुरुषस्य निश्चितो न चापि मृत्युः पुरुषं प्रतीक्षते ।
क्रिया हि धर्मस्य सदैव शोभना यदा नरो मृत्युमुखेऽभिवर्तते ॥ १७ ॥

पुरुषके पक्षमें धर्मके समयका कुछ भी निश्चय नहीं है और "मनुष्यने धर्म नहीं किया है" इसके लिये मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती । जब कि मनुष्य मृत्युमुखमें ही पडा हुआ है, तब उसे सदा धर्माचरण करना ही शोभा देता है ॥ १७ ॥

यथान्धः स्वगृहे युक्तो ह्यभ्यासादेव गच्छति ।
तथा युक्तेन मनसा प्राज्ञो गच्छति तां गतिम् ॥ १८ ॥

जैसे अन्धा अभ्यासके सहारे निज गृहमें गमन करता है, वैसे ही प्राज्ञ पुरुष अभ्यास और गुरूक्त युक्तिके जरिये अगोचर पथमें गमन किया करता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मरणं जन्मनि प्रोक्तं जन्म वै मरणाश्रितम् ।
अविद्वान्मोक्षधर्मेषु बद्धो भ्रमति चक्रवत् ॥ १९ ॥

जन्मका निमित्त मरण है और मरणका अवलम्ब जन्म वर्णित हुआ है; मोक्ष धर्ममें अविद्वान् मनुष्य संसारमें बद्ध होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें भ्रमण किया करता है ॥ १९ ॥

यथा मृणालोऽनुगतमाशु मुञ्चति कर्दमम् ।
तथात्मा पुरुषस्येह मनसा परिमुच्यते ।
मनः प्रणयतेऽऽत्मानं स एनमभियुञ्जति ॥ २० ॥

जैसे मृणाल– कमल नाल निज शरीरमें लगे हुए कीचडको शीघ्र परित्याग करता है, पुरुषका आत्मा भी उसही प्रकार मनके जरिये शीघ्र ही संसारबन्धनसे मुक्त होता है। मन आत्माको योगविषयमें उत्सुक करता है, अनन्तर वह आत्मा योगी होकर मनको परम पदमें लीन करता है ॥ २० ॥

परार्थे वर्तमानस्तु स्वकार्यं योऽभिमन्यते ।
इन्द्रियार्थेषु सक्तः सन्स्वकार्यात्परिहीयते ॥ २१ ॥

जो पुरुष दूसरेके निमित्त प्रवर्त्तमान होकर उसके कार्यको अपना कार्य समझकर अभिमान करता है, वह इन्द्रियविषयोंमें आसक्त मनुष्य योगरूपी स्वकार्यसे सब भांतिसे भ्रष्ट हुआ करता है ॥ २१ ॥

अधस्तिर्यग्गतिं चैव स्वर्गं चैव परां गतिम् ।
प्राप्नोति स्वकृतैरात्मा प्राज्ञस्येहेतरस्य च ॥ २२ ॥

इस लोकमें मनुष्य बुद्धिमान् हो या मूढ, उसकी आत्मा अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार, नरकको, पशु–पक्षी आदि योनियोंको, स्वर्गको और परम गतिको प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

मृन्मये भाजने पक्के यथा वै न्यस्यते द्रवः ।
तथा शरीरं तपसा तप्तं विषयमश्नुते ॥ २३ ॥

जैसे पके हुए मट्टीके पात्रमें द्रववस्तु जल आदि नहीं गिरते, वैसे ही जिस शरीरके जरिये सदा तपस्याकी आलोचना की जाती है, वह लिङ्गशरीर ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोकोंमें व्याप्त हुआ करता है, किसी स्थानसे च्युत नहीं होता ॥ २३ ॥

विषयानश्नुते यस्तु न स भोक्ष्यत्यसंशयम् ।
यस्तु भोगांस्त्यजेदात्मा स वै भोक्तुं व्यवस्यति ॥ २४ ॥

जो मनुष्य प्रकाशकी भांति सब विषयोंमें आसक्त हुआ करता है, वह निःसन्देह ब्रह्मानन्दके अनुभवसे वञ्चित रहेगा; और जो विषयोंका त्याग करता है, वह ब्रह्मानन्दके अनुभवमें समर्थ होता है ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नीहारेण हि संवीतः शिश्नोदरपरायणः ।
जात्यन्ध इव पन्थानमावृतात्मा न बुध्यते ॥ २५ ॥

जन्मान्ध मनुष्य जैसे अन्धकारसे परिपूरित होकर मार्गको नहीं देख सकता, वैसे ही शिश्नोदर परायण तथा अज्ञानसे आवृतात्मा जीव मायारूप कुहासासे आवृत होनेके कारण मोक्षमार्गको नहीं जान सकता ॥ २५ ॥

वणिग्यथा समुद्राद्वै यथार्थं लभते धनम् ।
तथा मर्त्यार्णवे जन्तोः कर्मविज्ञानतो गतिः ॥ २६ ॥

जैसे वणिक् समुद्रयात्राके सहारे मूल धनके अनुसार धनलाभ करता है, वैसेही इस संसार-सागरमें कर्म और विज्ञानके अनुसार जीवकी गति हुआ करती है ॥ २६ ॥

अहोरात्रमये लोके जरारूपेण संचरन् ।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ॥ २७ ॥

जैसे सांप वायुको पीया करता है, वैसे ही इस दिन और रात्रिमय संसार—लोकमें मृत्यु जरा रूपसे तरती हुई जीवोंको ग्रास किया करती है ॥ २७ ॥

स्वयं कृतानि कर्माणि जातो जन्तुः प्रपद्यते ।
नाकृतं लभते कश्चित्किंचिदत्र प्रियाप्रियम् ॥ २८ ॥

जीव जन्म लेके अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोग किया करता है; जो कुछ प्रिय और अप्रिय पूर्व जन्ममें कोई विना कर्मके उन्हें नहीं पा सकता ॥ २८ ॥

शयानं यान्तमासीनं प्रवृत्तं विषयेषु च ।
शुभाशुभानि कर्माणि प्रपद्यन्ते नरं सदा ॥ २९ ॥

मनुष्य सोया हो, अथवा चलता हो, बैठा हो, वा विषयोंमें प्रवृत्त ही रहे, शुभाशुभ कर्म सदा ही उसके निकटवर्त्ती होते हैं ॥ २९ ॥

न ह्यन्यत्तीरमासाद्य पुनस्तर्तुं व्यवस्यति ।
दुर्लभो दृश्यते ह्यस्य विनिपातो महार्णवे ॥ ३० ॥

किसी प्रकार समुद्रके दूसरे किनारे पहुंचके फिर कोई वहांसे लौटनेका विचार नहीं करता; उसी तरह संसार सागरसे पार हुए मनुष्यका फिर उसमें पडना दुर्लभ दिखायी देता है ॥३०॥

यथा भारावसक्ता हि नौर्महाम्भसि तन्तुना ।
तथा मनोऽभियोगाद्वै शरीरं प्रतिकर्षति ॥ ३१ ॥

महासागरमें तैरनेवालेके अभिप्रायके अनुसार जैसे तन्तुके सहारे नौका चलती है, वैसे ही मनके भावनाभिनिवेशके जरिये शरीर चालित हुआ करता है ॥ ३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा समुद्रमभितः संस्यूताः सरितोऽपराः ।
तथाद्या प्रकृतिर्योगादभिसंस्यूयते सदा ॥ ३२ ॥

जैसे सब ओरसे नदियां आकर समुद्रमें मिलती हैं; वैसे ही योगके सहारे वशमें किया हुआ मन सदा आद्याप्रकृतिका अवलम्बन करता है ॥ ३२ ॥

स्नेहपाशैर्बहुविधैरासक्तमनसो नराः ।
प्रकृतिस्था विषीदन्ति जले सैकतवेश्मवत् ॥ ३३ ॥

जैसे वालूके गृह जलसे नष्ट होजाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार स्नेहपाशके जरिये अज्ञान वशसे संसक्त चित्तवाले मनुष्य विषण्ण हुआ करते हैं ॥ ३३ ॥

शरीरगृहसंस्थस्य शौचतीर्थस्य देहिनः ।
बुद्धिमार्गप्रयातस्य सुखं त्विह परत्र च ॥ ३४ ॥

देहनिष्ठ नाम और रूपको आत्म धर्मरूपसे माननेवाला देहधारी यदि कल्याणमय ज्ञानपथसे गमन करे, तो उसे इस लोक और परलोकमें परम सुख प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

विस्तराः क्लेशसंयुक्ताः संक्षेपास्तु सुखावहाः ।
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः ॥ ३५ ॥

अग्निहोत्र आदि सब कर्मोंका विस्तार केवल क्लेश देनेवाला होता है, संक्षेप ही अत्यन्त सुख-दायक है; यज्ञ आदि कर्मोंसे आत्माका कुछ उपकार नहीं होता, इसलिये वे सब केवल परार्थ रूप अर्थात् मन तथा इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये ही हैं; पण्डित लोगको ही आत्महितकर जानते हैं ॥ ३५ ॥

संकल्पजो मित्रवर्गो ज्ञातयः कारणात्मकाः ।
भार्या दासाश्च पुत्राश्च स्वमर्थमनुयुञ्जते ॥ ३६ ॥

संकल्पजनित मित्रवर्ग, कारणात्मक स्वजनसमूह, भार्या, दास-दासी और पुत्र सब कोई केवल निज स्वार्थका ही अनुसरण करते हैं ॥ ३६ ॥

न माता न पिता किंचित्कस्यचित्प्रतिपद्यते ।
दानपथ्योदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते ॥ ३७ ॥

माता वा पिता भी किसीका पारलौकिक हित नहीं कर सकते । अपना किया हुआ दान ही स्वर्ग मार्गमें जानेकी सीढी है; प्रत्येक जीव निज कर्मफलोंको भोग किया करता है ॥ ३७ ॥

माता पुत्रः पिता भ्राता भार्या मित्रजनस्तथा ।
अष्टापदपदस्थाने त्वक्षमुद्रेव न्यस्यते ॥ ३८ ॥

माता, पुत्र, पिता, भाई, भार्या और मित्रलोग ये सब सुवर्णके सिक्कोंके स्थानपर रखी हुई लाखकी मुद्राके समान हैं ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वाणि कर्माणि पुरा कृतानि शुभाशुभान्यात्मनो यान्ति जन्तोः ।
उपस्थितं कर्मफलं विदित्वा बुद्धिं तथा चोदयतेऽन्तरात्मा ॥ ३९ ॥

जीव पूर्वजन्मकृत अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल जानकर प्राप्त करनेसे अंतर्मुख अन्तरात्मा कर्म-फल दान करनेके निमित्त बुद्धिको शुभ कर्मकी प्रेरणा करता है ॥ ३९ ॥

व्यवसायं समाश्रित्य सहायान्योऽधिगच्छति ।
न तस्य कश्चिदारम्भः कदाचिदवसीदति ॥ ४० ॥

जो दृढनिश्चय तथा उद्योगका अवलम्बन करके सब सहायकोंका संग्रह करता है; उसका कोई कार्य कभी भी व्यर्थ नहीं होता ॥ ४० ॥

अद्वैधमनसं युक्तं शूरं धीरं विपश्चितम् ।
न श्रीः संत्यजते नित्यमादित्यमिव रश्मयः ॥ ४१ ॥

जैसे किरण सूर्यको कभी परित्याग नहीं करती, वैसे ही एकाग्रचित्त, योगयुक्त, शूर, धीर और विद्वान् पुरुषको श्री कदापि नहीं त्यागती ॥ ४१ ॥

आस्तिक्यव्यवसायाभ्यामुपायाद्विस्मयाद्धिया ।
यमारभत्यनिन्द्यात्मा न सोऽर्थः परिसीदति ॥ ४२ ॥

अनिन्दनीय स्वभावसे युक्त मनुष्य आस्तिक्य और व्यवसाय वशसे उपाय वा गर्वहीनताके कारण बुद्धिके सहारे जिस कार्यको आरम्भ करता है, वह कदापि निष्फल नहीं होता ॥४२॥

सर्वः स्वानि शुभाशुभानि नियतं कर्माणि जन्तुः स्वयं ।
गर्भात्संप्रतिपद्यते तदुभयं यत्तेन पूर्वं कृतम् ।
मृत्युश्चापरिहार्यवान्समगतिः कालेन विच्छेदिता ।
दारोहच्चूर्णमिवाश्मसारविहितं कर्मान्तिकं प्रापयेत् ॥ ४३ ॥

जीव पूर्वजन्ममें यत्नपूर्वक निज शुभाशुभ कर्मोंको करता है, जननीजठरमें प्रविष्ट होनेके समयसे ही अपने किये हुए वेही सब शुभाशुभ कर्मोंको प्राप्त हुआ करते हैं; और जैसे वायु करपत्र विदारित समस्त चूर्णको स्थानान्तरित करती है, वैसे ही अपरिहार्य मृत्यु भी काल-क्रमसे जीवोंको विनाश मुखमें डालती है, इसलिये यदृच्छाप्राप्त अन्न आदिके जरिये जीवन धारण करते हुए सबका ही मोक्षके निमित्त यत्न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

स्वरूपतामात्मकृतं च विस्तरं कुलान्वयं द्रव्यसमृद्धिसंचयम् ।
नरो हि सर्वो लभते यथाकृतं शुभाशुभेनात्मकृतेन कर्मणा ॥ ४४ ॥

मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके जरिये पूर्वजन्मके कर्मोंसे प्राप्त हुए निज कुलके अनुसार सुन्दरताई और परिग्रह सन्तान आदि सद्वंशसंभूति तथा द्रव्यसमृद्धि सञ्चय लाभ किया करता है ॥ ४४ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

इत्युक्तो जनको राजन्यथातथ्यं मनीषिणा ।
श्रुत्वा धर्मविदां श्रेष्ठः परां मुदमवाप ह ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥ १००९१ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! पण्डितप्रवर पराशर मुनिने धर्म जाननेवालोंमें अग्रगण्य राजा जनकसे जब ऐसी कथा कही, तब उसे सुनके वह परम आनन्दित हुए ॥ ४५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८७ ॥ १००९१ ॥

: २८८ :

युधिष्ठिर उवाच—

सत्यं क्षमां दमं प्रज्ञां प्रशंसन्ति पितामह ।
विद्वांसो मनुजा लोके कथमेतन्मतं तव ॥ १ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम, क्षमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विषयमें आपका क्या मत है ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
साध्यानामिह संवादं हंसस्य च युधिष्ठिर ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप, हंस और साध्य लोगोंके संवाद-युक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं ॥ २ ॥

हंसो भूत्वाथ सौवर्णस्त्वजो नित्यः प्रजापतिः ।
स वै पर्येति लोकांस्त्रीनथ साध्यानुपागमत् ॥ ३ ॥

जन्मरहित शाश्वत प्रजापति सुवर्णमय हंस होकर तीनों लोकमें भ्रमण करने लगे; अनन्तर उन्होंने सध्योंके निकट गमन किया ॥ ३ ॥

साध्या ऊचुः—

शकुने वयं स्म देवा वै साध्यास्त्वामनुयुञ्महे ।
पृच्छामस्त्वां मोक्षधर्मं भवांश्च किल मोक्षवित् ॥ ४ ॥

सध्योंने कहा— हे हंस ! हम लोग देवताओंके अन्तर्गत साध्यगण तुमसे प्रश्न करते हैं; तुम मोक्षके ज्ञाता हो, इसलिये मोक्ष धर्म क्या है ? उसे ही तुम हमसे कहो ॥ ४३ ॥

श्रुतोऽसि न पण्डितो धीरवादी साधुशब्दः पतते ते पतत्रिन् ।
किं मन्यसे श्रेष्ठतमं द्विज त्वं कस्मिन्मनस्ते रमते महात्मन् ॥ ५ ॥

हे महात्मन् पतत्रिन् ! हमने सुना है, कि तुम धीरवाही पण्डित हो; तुम्हारी उत्तम वाणी सर्वत्र सुनाई देती है; इससे तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हारा मन किस विषयमें रत है ? ॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन्नः कार्यं पक्षिवर प्रशाधि यत्कार्याणां मन्यसे श्रेष्ठमेकम् ।
यत्कृत्वा वै पुरुषः सर्वबन्धैर्विमुच्यते विहगेन्द्रेह शीघ्रम् ॥ ६ ॥

हे विहङ्गवर ! कार्योंके बीच जिस किसी एक कार्यको तुम श्रेष्ठ समझते हों वही हम लोगोंके समीप उपदेश करो । हे विहगेन्द्र ! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे सब बन्धनोंसे शीघ्रही छुटकारा होता है, हमको वही करना उचित है ॥ ६ ॥

हंस उवाच—

इदं कार्यमसृताशाः शृणोमि तपो दमः सत्यमात्माभिगुप्तिः ।
ग्रन्थीन्विमुच्य हृदयस्य सर्वान्प्रियाप्रिये स्वं वशमानयीत ॥ ७ ॥

हंस बोला— हे अमृत पीनेवाले देवगण ! मैंने यही सुना है, कि स्वधर्माचरण, बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, यथार्थ वचन और चित्तको जीतना योग्य है; हृदयकी ग्रन्थि, राग आदिको मोचन करके हर्ष और विषादको वशीभूत करना उचित है ॥ ७ ॥

नारुंतुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ॥ ८ ॥

किसीके मर्म छेदक वा निष्ठुरभाषी होना उचित नहीं । किसी नीच पुरुषसे शास्त्रका ग्रहण करना अयोग्य है, लोकमें जिस वचनसे दूसरे लोग व्याकुल हों, उस अकल्याणकर नरक-विधायक वचनको न कहना चाहिये ॥ ८ ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ९ ॥

जो वाक्यरूपी सब बाण वदनसे बाहर होते हैं; उससे मनुष्य घायल होके रातदिन शोकार्त्त हुआ करता है; वे सब वाक्यबाण दूसरोंके मर्मस्थलके अतिरिक्त अन्य स्थानमें नहीं लगते; इसलिये विद्वान् पुरुषको उचित है, कि वैसे वाक्यबाणोंको दूसरे मनुष्यके ऊपर प्रयोग न करे ॥ ९ ॥

परश्चेदेनमतिवादबाणैर्भृशं विध्येच्छम एवेह कार्यः ।
संरोध्यमाणः प्रतिसृष्यते यः स आदत्ते सुकृतं वै परस्य ॥ १० ॥

दूसरा कोई भी यदि इस धीर पुरुषको कटुवचनरूपी बाणोंके जरिये अत्यन्त विद्ध करे, तो उसे शान्तिरस अवलम्बन करना उचित है ॥ १० ॥

क्षेपाभिमानादभिषङ्गव्यलीकं निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम् ।
अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयुः स आदत्ते सुकृतं वै परेषाम् ॥ ११ ॥

जो दूसरेसे क्रुद्ध होनेपर भी उसपर रोष प्रकाश नहीं करता, बल्कि हर्षित होता है, वह दूसरोंके सुकृतको ग्रहण किया करता है; जो अधिक्षेपकारी पुरुष अभिनिवेशके कारण अप्रिय प्रज्वलित क्रोधको निग्रह करता है, वह दुष्टतारहित, असूयाहीन प्रसन्न चित्तवाला मनुष्य दूसरोंसे सुकृत ग्रहण किया करता है ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आक्रुश्यमानो न वदामि किंचित्क्षमाम्यहं ताड्यमानश्च नित्यम् ।
श्रेष्ठं ह्येतत्क्षममप्याहुरार्याः सत्यं तथैवार्जवमानृशंस्यम् ॥ १२ ॥

कोई मेरे विषयमें आक्रोश प्रकाश करे, तो मैं कुछ भी नहीं कहता और मेरे ऊपर प्रहार करे, तौ भी मैं सदा उसे क्षमा किया करता हूं; ऐसा आचरण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि आर्यलोग सत्य, सरलता, अनृशंसता और क्षमाकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ १२ ॥

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः ।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम् ॥ १३ ॥

वेदाधिगमका फल सत्य है, सत्यका फल दम अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह है, और दमका फल मोक्ष है, यह सब शास्त्रोंका उपदेश है ॥ १३ ॥

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विवित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान्वेगान्यो विषहत्युदीर्णांस्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥ १४ ॥

जो वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, उदर और उपस्थ इन सब इन्द्रियोंके प्रबल वेगको सहनेमें समर्थ होता है, मैं उसीको ही ब्रह्मनिष्ठ तथा मुनि समझता हूं ॥ १४ ॥

अक्रोधनः क्रुध्यतां वै विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषान्मानुषो वै विशिष्टस्तथाज्ञानाज्ज्ञानवान्वै प्रधानः ॥ १५ ॥

क्रोधी पुरुषोंसे क्रोध न करनेवाला, क्षमाहीनोंसे क्षमावान् पुरुष, मनुष्येतर प्राणियोंसे सदाचारयुक्त मनुष्य और मूर्खोंसे ज्ञानी ही प्रशंसनीय तथा श्रेष्ठ हुआ करता है ॥ १५ ॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ १६ ॥

पुरुष यदि दूसरेसे क्रोधित होनेपर भी रोष प्रकाश न करके उसे क्षमा करे, तो उस तितिक्षु पुरुषकी क्षमा आक्रोशकारी पुरुषको जला देती है और तितिक्षु पुरुष आक्रोश करनेवालेके सुकृतको ग्रहण करता है ॥ १६ ॥

यो नात्युक्तः प्राह रूक्षं प्रियं वा यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात् ।
पापं च यो नेच्छति तस्य हन्तुस्तस्मै देवाः स्पृहयन्ते सदैव ॥ १७ ॥

यदि कोई दूसरेके जरिये अत्यन्त निन्दित होनेपर भी धैर्य अवलम्बन करके उसके विषयमें प्रिय वा अप्रिय वचन प्रयोग न करे, अथवा घायल होके भी मारनेवालेके ऊपर प्रहार न करे, और " उस मारनेवालेको पाप हो " ऐसी इच्छा भी न करे, तो वह इस लोकमें सदा देवताओंके स्पृहणीय हुआ करता है ॥ १७ ॥

पापीयसः क्षमेतैव श्रेयसः सदृशस्य च ।
विमानितो हतोऽऽक्रुष्ट एवं सिद्धिं गमिष्यति ॥ १८ ॥

कोई पुरुष अपने समान वा अपनेसे उत्कृष्ट वा निकृष्ट लोगोंके निकट अवमानित होनेपर उनपर क्रोध न करके क्षमा करे, तो उसे परम सिद्धि लाभ हुआ करती है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सदाहमार्थाभिभृतोऽप्युपासे न मे विवित्सा न च मेऽस्ति रोषः ।
न चाप्यहं लिप्समानः परैमि न चैव किंचिद्विषमेण याचे ॥ १९ ॥

मैं अध्ययनकी समाप्ति होनेपर भी सदा श्रेष्ठ पुरुषोंकी उपासना किया करता हूं; किसी विषयमें मेरी तृष्णा वा रोष वर्द्धित नहीं होता । मैं लोभित होकर अधर्म पथमें गमन नहीं करता और अनिष्ट परिस्थितिमें देवताओंके निकट कुछ प्रार्थना भी नहीं करता ॥ १९ ॥

नाहं शप्तः प्रतिशपामि किंचिदमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि ।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित् ॥ २० ॥

कोई मुझे शाप दे, तो उसे प्रतिशाप न देकर शान्ति अवलम्बन किया करता हूं; क्योंकि इस लोकमें दमही मुक्तिका द्वार है, मैंने ऐसा ही निश्चय किया है । हे साध्यगण ! मैंने तुम्हारे समीप इस गुप्त विषयको वर्णन किया, अब तुम लोग विचार करके देखो, मनुष्यजन्मसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है ॥ २० ॥

विमुच्यमानः पापेभ्यो घनेभ्य इव चन्द्रमाः ।
विरजाः कालमाकाङ्क्षन्धीरो धैर्येण सिध्यति ॥ २१ ॥

बुद्धिमान् पुरुष पापहीन होकर धीरज धरके समयकी प्रतीक्षा करता हुआ बादलसे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भांति सिद्धि लाभ करता है ॥ २१ ॥

यः सर्वेषां भवति ह्यर्चनीय उत्सेचने स्तम्भ इवाभिजातः ।
यस्मै वाचं सुप्रशस्तां वदन्ति स वै देवान्गच्छति संयतात्मा ॥ २२ ॥

जो संयमी विद्वान् पुरुष ऊंचे उठानेवाले स्तम्भकी भांति उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ सबका आदरणीय है, और सब लोग जिससे उत्तम मधुर वचन कहते हैं, वह देवत्व प्राप्त करता है ॥२२॥

न तथा वक्तुमिच्छन्ति कल्याणान्पुरुषे गुणान् ।
यथैषां वक्तुमिच्छन्ति नैर्गुण्यमनुयुञ्जकाः ॥ २३ ॥

स्पर्द्धावान् पुरुष जिस प्रकार मनुष्यके दोषोंको प्रकाश करनेके अभिलाषी होते हैं, उस प्रकार उसके कल्याणकर गुणोंको प्रकाशित करनेकी अभिलाष नहीं करते ॥ २३ ॥

यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक्प्रणिहिते सदा ।
वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

जिसका वचन और मन सब प्रकारही असत् मार्गसे निवृत्त और सदा सावधान है, वह वेद, तपस्या और त्याग, यह सब प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

आक्रोशनावमानाभ्यामबुधाद्धर्षते बुधः ।
तस्मान्न वर्धयेदन्यं न चात्मानं विहिंसयेत् ॥ २५ ॥

विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे आक्रुष्ट वा अवमानित होनेपर उन्हें मूर्ख जानके उनकी निन्दा न करे; अनुरोधसे उसके सामने अप्रशंसित पुरुषकी प्रशंसा न करे और उसपर आक्षेप करके उससे अपनी हिंसा न कराये ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य वै द्विजः ।
सुखं ह्यवमतः शेते योऽवमन्ता स नश्यति ॥ २६ ॥

द्विज पुरुष दूसरेके जरिये अपनी अवमाननासे अमृत पानकी भांति सन्तुष्ट होकर सुखकी नींद सोता है; परन्तु अवमानना करनेवाला असन्तुष्ट होकर शीघ्र विनष्ट होता है ॥ २६ ॥

यत्क्रोधनो यजते यद्ददाति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।
वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्वं मोघः श्रमो भवति क्रोधनस्य ॥ २७ ॥

क्रोधी पुरुष यज्ञ, दान, तपस्या और होम आदि जो कुछ कर्म करता है, यमराज उसके सब कर्मोंको हरण किया करता है; इससे क्रोधीके सब परिश्रम निष्फल होजाते हैं ॥ २७ ॥

चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः ।
उपस्थमुदरं हस्तौ वाक्चतुर्थी स धर्मवित् ॥ २८ ॥

हे सुरसत्तमगण ! जिस पुरुषके उपस्थ, उदर, हाथ और वाणी ये चारों द्वार उत्तम रीतिसे सुरक्षित होते हैं, वही धार्मिक है ॥ २८ ॥

सत्यं दमं ह्यार्जवमानृशंस्यं धृतिं तितिक्षामभिसेवमानः ।
स्वाध्यायनित्योऽस्पृहयन्परेषामेकान्तशील्यूर्ध्वगतिर्भवेत्सः ॥ २९ ॥

जो यत्नपूर्वक सत्य, दम, सरलता, दया, धृति और तितिक्षा, इन सबकी सेवा करता है, तथा जो पराये वित्तकी वासना न करके निर्जनमें वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होता है, वही ऊर्ध्व-गतिका लाभ किया करता है ॥ २९ ॥

सर्वां नेताननुचरन्वत्सवच्चतुरः स्तनान् ।
न पावनतमं किंचित्सत्यादध्यगमं क्वचित् ॥ ३० ॥

जैसे गऊका बछडा चारों मातृस्तनोंका पान करता है, वैसेही मनुष्यको सत्य आदि सद्गुणोंका सेवन करना चाहिये; क्यों कि कहींपर सत्यसे अत्यन्त पवित्र और कुछ भी नहीं है, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है ॥ ३० ॥

आचक्षेऽहं मनुष्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिसंचरन् ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ३१ ॥

मैं सर्वत्र भ्रमण करके मनुष्य और देवताओंसे यही कहा करता हूं, कि समुद्रसेतु नौकाकी भांति सत्य ही स्वर्गका सोपान है ॥ ३१ ॥

यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥ ३२ ॥

पुरुष जैसे लोगोंके सहवासमें रहता है, जैसे लोगोंकी उपासना करता है और जैसा होनेकी अभिलाष करता है, वैसा ही हुआ करता है ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदि सन्तं सेवते यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ ३३ ॥

जो जिस प्रकारके पुरुषकी सेवा करता है, वह उसहीके वशीभूत होता है । जैसे वस्त्र जिस रंगमें रंगा जाय, वैसा ही होता है, वैसेही कोई साधु, तपस्वीकी सेवा करनेसे उस तपस्वीके वशवर्त्ती होता है और असत् तस्करकी सेवा करनेसे उस तस्करके अधीन होता है ॥ ३३ ॥

सदा देवाः साधुभिः संवदन्ते न मानुषं विषयं यान्ति द्रष्टुम् ।
नेन्दुः समः स्यादसमो हि वायुरुच्चावचं विषयं यः स वेद ॥ ३४ ॥

देवता लोग साधुओंके सङ्ग ही सर्वदा सम्भाषण किया करते हैं, मनुष्य भोगको विनाशी जानके देखनेकी भी इच्छा नहीं करते; क्योंकि चन्द्रमा वा वायुका समभाव सदा सम्भव नहीं रहता, भोगवशसे उनकी भी उपचय और अपचय हुआ करती है, इसलिये जो सब विषयोंके उच्चावच मालूम करते हैं, वेही सब जान सकते हैं ॥ ३४ ॥

अदुष्टं वर्तमाने तु हृदयान्तरपूरुषे ।
तेनैव देवाः प्रीयन्ते सतां मार्गस्थितेन वै ॥ ३५ ॥

हृदयमें रहनेवाला अन्तर्यामी आत्मा जब राग द्वेषसे रहित होकर निवास करनेपर सन्मार्गमें स्थित उस अन्तर्यामी पुरुषके जरिये ही देवता लोग प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥

शिश्नोदरे येऽभिरताः सदैव स्तेना नरा वाक्परुषाश्च नित्यम् ।
अपेतदोषानिति तान्विदित्वा दूराद्देवाः संपरिवर्जयन्ति ॥ ३६ ॥

जो लोग सदा शिश्न और उदरके भोग भोगनेके कार्यमें रत रहते हैं, जो सदा चोरीवृत्ति करते हैं, तथा जो सर्वदा कठोर वचन कहते हैं, उनके प्रायश्चित्त आदिसे निष्पाप होनेपर देवता लोग उन्हें पापरहित समझके भी दूरसे ही परित्याग करते हैं ॥ ३६ ॥

न वै देवा हीनसत्त्वेन तोष्याः सर्वाशिना दुष्कृतकर्मणा वा ।
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा धर्मे रतास्तैः सह संभजन्ते ॥ ३७ ॥

नीचबुद्धि, सर्वभक्षी और पाप कर्म करनेवाले नरकगामीसे देवता लोग कदापि परितुष्ट नहीं होते । परन्तु जो लोग सत्यव्रती, कृतज्ञ और धार्मिक हैं, देवता लोग उनके सहित समभावसे सुखसेवन किया करते हैं ॥ ३७ ॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
धर्मं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं प्रियं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ ३८ ॥

पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मिथ्या न कहके चुप रहना ही कल्याणकारी है, यह प्रथम कल्प है; द्वितीय कल्प यदि कहना पडे, तो सत्य ही कहे । तीसरे कल्पमें धर्मवाक्य कहना उचित है । चौथे कल्पमें प्रिय वचन कहना सर्वांशमें कल्याणकारी है ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

साध्या ऊचुः—

केनायमावृतो लोकः केन वा न प्रकाशते ।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति ॥ ३९ ॥

साध्य लोग बोले— यह लोक किसके जरिये आवृत हुआ करता है ? किस कारण उसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है ? किस निमित्त मनुष्य मित्रोंका त्याग करता है और उसे स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता ? ॥ ३९ ॥

हंस उवाच—

अज्ञानेनावृतो लोको मात्सर्यान्न प्रकाशते ।
लोभात्त्यजति मित्राणि सङ्गात्स्वर्गं न गच्छति ॥ ४० ॥

हंस बोला— यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है; मत्सरतासे इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता; लोभसे मित्रता छूटती है, और संसर्ग निबन्धनसे मनुष्य स्वर्गमें गमन नहीं करता ॥४०॥

साध्या ऊचुः—

कः स्विदेको रमते ब्राह्मणानां कः स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते ।
कः स्विदेको बलवान्दुर्बलोऽपि कः स्विदेषां कलहं नान्ववैति ॥ ४१ ॥

साध्य लोग बोले— ब्राह्मणोंके बीच कौन एकमात्र सुखका अनुभव करता है ? कौन अकेला पुरुष बहुतोंके सङ्ग रहकर आनन्द अनुभव किया करता है ? इस लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्बल होके भी बलवान् और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है ? ॥ ४१ ॥

हंस उवाच—

प्राज्ञ एको रमते ब्राह्मणानां प्राज्ञ एको बहुभिर्जोषमास्ते ।
प्राज्ञ एको बलवान्दुर्बलोऽपि प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति ॥ ४२ ॥

हंस बोला— ब्राह्मणोंके बीच जो ज्ञानी है, वह अकेले ही रमण किया करता है; ज्ञानी पुरुष अकेला ही लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो ज्ञानी है वह दुर्बल होनेपर भी बलवान् तथा जो प्राज्ञ है-वही कलहानभिज्ञ है ॥ ४२ ॥

साध्या ऊचुः—

किं ब्राह्मणानां देवत्वं किं च साधुत्वमुच्यते ।
असाधुत्वं च किं तेषां किमेषां मानुषं मतम् ॥ ४३ ॥

साध्य लोग बोले— ब्राह्मणोंमें देवत्व क्या है ? साधुता किसे कहते हैं ? इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है ? ॥ ४३ ॥

हंस उवाच—

स्वाध्याय एषां देवत्वं व्रतं साधुत्वमुच्यते ।
असाधुत्वं परीवादो मृत्युर्मानुषमुच्यते ॥ ४४ ॥

हंस बोला— वेदोंका स्वाध्याय ही ब्राह्मणोंका देवत्व है, उत्तम व्रतोंका पालन साधुता कहते हैं, दूसरोंकी निन्दा करना असाधुता है और मरना मनुष्यत्व कहा जाता है ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

संवाद इत्ययं श्रेष्ठः साध्यानां परिकीर्तितः ।
क्षेत्रं वै कर्मणां योनिः सद्भावः सत्यमुच्यते ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ १०१३६ ॥

भीष्म बोले— साध्योंका यह संवाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है; स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं ॥ ४५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८८ ॥ १०१३६ ॥

२८९

युधिष्ठिर उवाच—

सांख्ये योगे च मे तात विशेषं वक्तुमर्हसि ।
तव सर्वज्ञ सर्वं हि विदितं कुरुसत्तम ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे तात सर्वज्ञ पितामह ! सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम ! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है ? आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति योगा योगं द्विजातयः ।
वदन्ति कारणैः श्रेष्ठ्यं स्वपक्षोद्भावनाय वै ॥ २ ॥

भीष्म बोले— सांख्यमतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि योगशास्त्रकी प्रशंसा करते हैं; दोनों निज पक्षकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिये उत्तम युक्तियोंका प्रतिपादन करते हैं ॥ २ ॥

अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं शत्रुकर्शन ।
वदन्ति कारणैः श्रैष्ठ्यं योगाः सम्यङ्मनीषिणः ॥ ३ ॥

हे शत्रुकर्षण ! योगके मनीषी विद्वान् ईश्वरका अस्तित्व माने विना किस प्रकार मुक्ति होगी, ऐसा कहके अपने मनकी श्रेष्ठता बताते हैं ? ॥ ३ ॥

वदन्ति कारणं चेदं सांख्याः सम्यग्द्विजातयः ।
विज्ञायेह गतीः सर्वा विरक्तो विषयेषु यः ॥ ४ ॥

सांख्य मतवाले ज्ञानी द्विजाति भी मोक्षका ऐसा कारण दिखाते हैं कि जो इस लोकमें सब गतियोंको जानके विषयभोगोंसे विरत होता है ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा ।
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ॥ ५ ॥

वह निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करता है, दूसरे किसी उपायसे मोक्ष नहीं मिलता है; इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम् ।
शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं त्वद्विधैः शिष्टसंमतैः ॥ ६ ॥

हे युधिष्ठिर ! दोनों पथमें बलवान् युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपने पक्षमें निज निज अनुयायी वचन हितकर होता है; क्योंकि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षहेतवो योगाः सांख्याः शास्त्रविनिश्चयाः ।
उभे चैते मते तत्त्वे मम तात युधिष्ठिर ॥ ७ ॥

हे तात युधिष्ठिर ! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं ॥ ७ ॥

उभे चैते मते ज्ञाने नृपते शिष्टसंमते ।
अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम् ॥ ८ ॥

हे राजन् ! साधुसम्मत ये दोनों मतोंको जानकर उनका शास्त्ररीतिसे आचरण होनेपर परम गति प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

तुल्यं शौचं तपोर्युक्तं दया भूतेषु चानघ ।
व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं न समं तयोः ॥ ९ ॥

हे पापरहित ! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन अर्थात् पद्धति समान नहीं है ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र पितामह ।
तुल्यं न दर्शनं कस्मात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १० ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! व्रत, पवित्रता, दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं; तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त पृथक् हुए ? उसे मेरे समीप विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १० ॥

भीष्म उवाच—

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं क्रोधं च केवलम् ।
योगाच्छित्त्वादितो दोषान्पश्चैतान्प्राप्नुवन्ति तत् ॥ ११ ॥

भीष्म बोले— मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम और क्रोध इन पांचों दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करते हैं ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा चानिमिषाः स्थूला जालं छित्त्वा पुनर्जलम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा योगास्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥ १२ ॥

जैसे बडी–छोटी मछलियां जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती हैं, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं ॥ १२ ॥

तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः ।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥ १३ ॥

जैसे बलवान् मृग जालका छेदन करके सब बन्धनोंसे मुक्त होकर निज निर्विघ्न स्थानपर चले जाते हैं ॥ १३ ॥

लोभजानि तथा राजन्बन्धनानि बलान्विताः ।
छित्त्वा योगाः परं मार्गं गच्छन्ति विमलाः शिवम् ॥ १४ ॥

वैसे ही योगी लोग सब बान्धवोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं । हे राजन् ! बलवान् योगी पुरुष भी लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं ॥ १४ ॥

अबलाश्च मृगा राजन्वागुरासु तथापरे ।
विनश्यन्ति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते ॥ १५ ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे निर्बल हरिन तथा दूसरे पशु जालमें बान्धकर विनष्ट होते हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्बल योगी भी विना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

बलहीनाश्च कौन्तेय यथा जालगता झषाः ।
अन्तं गच्छन्ति राजेन्द्र तथा योगाः सुदुर्बलाः ॥ १६ ॥

हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र ! जैसे बलहीन मछलियां जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पडती हैं, वही दशा योगबलसे रहित मनुष्योंकी होती है ॥ १६ ॥

यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिंदम ।
तत्र सक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥ १७ ॥

हे शत्रुनाशन ! जैसे निर्बल पक्षी सूक्ष्म जालमें फंसके बन्धनको प्राप्त हो विपद्ग्रस्त होते हैं, परन्तु बलवान् पक्षी जाल तोडकर छूटकारा पाते है ॥ १७ ॥

कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगाः परंतप ।
अबला वै विनश्यन्ति मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥ १८ ॥

वैसे ही निर्बल योगी कर्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और हे परन्तप ! बलवान् योगी लोग सहजमें ही उससे मुक्ति लाभ किया करते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अल्पकश्च यथा राजन्वह्निः शाम्यति दुर्बलः ।
आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगोऽबलः प्रभो ॥ १९ ॥

हे राजन् ! जैसे अत्यन्त निर्बल थोडी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही हे प्रभो ! निर्बल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करता है ॥ १९ ॥

स एव च यदा राजन्वह्निर्जातबलः पुनः ।
समीरणयुतः कृत्स्नां देहत्क्षिप्रं महीमपि ॥ २० ॥

राजन् ! और जब वह थोडीसी निर्बल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वही अग्नि सारी पृथ्वीको भी भस्म करती है ॥ २० ॥

तद्वज्जातबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः ।
अन्तकाल इवादित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत् ॥ २१ ॥

इस ही भांति अभ्याससे उत्पन्न हुए योगबलके सहारे तेजस्वी और महाबलवान् योगी भी प्रलयकालका सूर्य जैसे सब जगत्को सुखा डालता है, वैसे ही सब दोषोंको नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

दुर्बलाश्च यथा राजन्स्रोतसा ह्रियते नरः ।
बलहीनस्तथा योगो विषयैर्ह्रियतेऽवशः ॥ २२ ॥

हे राजन् ! जैसे बलहीन पुरुष स्रोतके वेगसे बह जाता है, वैसे ही निर्बल योगी भी अवश होकर विषयोंके जरिये हृत हुआ करता है ॥ २२ ॥

तदेव च यथा स्रोतो विष्टम्भयति वारणः ।
तद्वद्योगबलं लब्ध्वा व्यूहते विषयान्बहून् ॥ २३ ॥

और जैसे बलवान् हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही रुद्ध करनेमें समर्थ होता है, उसमें बह नहीं जाता, वैसे ही योगी भी योगका महान् बल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करता है ॥ २३ ॥

विशन्ति चावशाः पार्थ योगा योगबलान्विताः ।
प्रजापतीन्ऋषीन्देवान्महाभूतानि चेश्वराः ॥ २४ ॥

हे पार्थ ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं ॥ २४ ॥

न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः ।
ईशते नृपते सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥ २५ ॥

हे राजन् ! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु ये सब क्रुद्ध होकर भी अमित तेजस्वी योगीपर शासन चला नहीं सकते ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ।
योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥ २६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरके कई हजार रूप बना करके उन सबके सहित पृथ्वीपर पर्यटन किया करता है ॥ २६ ॥

प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव पुनश्चोग्रं तपश्चरेत् ।
संक्षिपेच्च पुनः पार्थ सूर्यस्तेजोगुणानिव ॥ २७ ॥

तात ! वह उन शरीरोंसे विषयभोगमें लिप्त होकर पुनर्वार उग्र तपस्याचरणमें भी प्रवृत्त होता है। अनन्तर निज तेज संक्षेपकारी सूर्यकी भांति सभी रूपोंको समेट लेता है ॥ २७ ॥

बलस्थस्य हि योगस्य बन्धनेशस्य पार्थिव ।
विमोक्षप्रभविष्णुत्वमुपपन्नमसंशयम् ॥ २८ ॥

हे राजन् ! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान् योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥

बलानि योगे प्रोक्तानि मयैतानि विशां पते ।
निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनस्तव ॥ २९ ॥

हे भारत ! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा ॥ २९ ॥

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति चाभिभो ।
निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणु मे भरतर्षभ ॥ ३० ॥

हे प्रभु ! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो ॥ ३० ॥

अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः ।
युक्तः सम्यक्तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३१ ॥

जैसे अप्रमत्त सावधान धनुर्धारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात् योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्तिका लाभ करता है ॥ ३१ ॥

स्नेहपूर्णे यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम् ।
पुरुषो यत्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥ ३२ ॥

जैसे प्रशान्त चित्तवाला कर्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित तेलसे भरे पात्रमें मन लगाकर एकाग्रचित्त हो सीढीपर चढता है, ॥ ३२ ॥

युक्त्वा तथायमात्मानं योगः पार्थिव निश्चलम् ।
करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शनम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! वैसे ही योगी भी योगयुक्त होकर जब स्वयंको स्थिर करता है, तब उसका आत्मा निश्चल वा सूर्यकी भांति निर्मल होता है ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा च नावं कौन्तेय कर्णधारः समाहितः ।
महार्णवगतां शीघ्रं नयेत्पार्थिव पत्तनम् ॥ ३४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज गृहपर लौटा लाता है, ॥ ३४ ॥

तद्वदात्मसमाधानं युक्त्वा योगेन तत्त्ववित् ।
दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं नृप ॥ ३५ ॥

वैसे ही तत्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए मनको परमात्मामें लगाकर इस शरीरको छोडकर दुर्गम स्थान पाता है ॥ ३५ ॥

सारथिश्च यथा युक्त्वा सदश्वान्सुसमाहितः ।
देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभ ॥ ३६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जैसे सारथी अत्यन्त सावधान होकर उत्तम घोडोंके जरिये धनुर्द्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, ॥ ३६ ॥

तथैव नृपते योगी धारणासु समाहितः ।
प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्षं मुक्त इवाशुगः ॥ ३७ ॥

और जैसे बाण धनुष्यसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है, वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाता है ॥ ३७ ॥

आवेश्यात्मनि चात्मानं योगी तिष्ठति योऽचलः ।
पापं हन्तेव मीनानां पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥ ३८ ॥

जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रविष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह अपने सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है ॥ ३८ ॥

नाभ्यां कण्ठे च शीर्षे च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः ।
दर्शने स्पर्शने चापि घ्राणे चामितविक्रम ॥ ३९ ॥

अत्यन्त पराक्रमसे युक्त मनुजेन्द्र ! जो योगी पुरुष योगके महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षःस्थल, कोख, नेत्र, स्पर्श और नासिका आदि ॥ ३९ ॥

स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः ।
आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्विशां पते ॥ ४० ॥

इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे सूक्ष्म जीवात्माका परमात्माके साथ दृढ संयोग करता है, ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स शीघ्रममलप्रज्ञः कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् ।
उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥ ४१ ॥

वह अपनी निर्मल बुद्धिसे शुभाशुभ कर्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करता हुआ इच्छानुसार मुक्त होता है ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च भारत ।
योगी बलमवाप्नोति तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे भारत ! योगी किस प्रकारके आहार और कौन कौनसे विषयोंका जय करके ऐसा बल प्राप्त करता है, आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है ॥ ४२ ॥

भीष्म उवाच—

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भक्षणे ।
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥

भीष्म बोले—हे भारत ! जो योगी धानके टुकडे और तिलकी खली खाता है तथा घी-तेल आदि स्नेह वस्तुको त्यागता है, उसको योगबलकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥

भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालमरिंदम ।
एकारामो विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

हे शत्रुदमन राजन् ! जो रूखा जौ भक्षण करता हुआ बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करता है, वह शुद्धचित्तवाला योगिवर योग बल लाभ करता है ॥ ४४ ॥

पक्षान्मासानृतूंश्चित्रान्संचरंश्च गुहास्तथा ।
अपः पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा संवत् भर दूध मिले हुए जलको पीके रहता है और गुफाओंमें विचरता है, वह योग बल लाभ करता है ॥ ४५ ॥

अखण्डमपि वा मासं सततं मनुजेश्वर ।
उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

हे मनुजेश्वर ! जो योगी नित्य एक महिना वा अखण्ड जीवनभर उपवास करता है, वह उत्तम व्रतका पालन करके शुद्धचित्त होकर योग बलका लाभ किया करता है ॥ ४६ ॥

कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णे वर्षमेव च ।
भयं निद्रां तथा श्वासं पौरुषं विषयांस्तथा ॥ ४७ ॥

हे नृपसत्तम ! काम, क्रोध, सर्दी, गर्मी, वर्षा, भय, निद्रा, श्वास, पौरुष, विषय, ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अरतिं दुर्जयां चैव घोरां तृष्णां च पार्थिव ।
स्पर्शान्सर्वांस्तथा तन्द्रीं दुर्जयां नृपसत्तम ॥ ४८ ॥

दुर्जय असंतोष, घोर तृष्णा, सब प्रकारके स्पर्श और दुर्जय आलस्यका परित्याग करके ॥४८॥

दीपयन्ति महात्मानः सूक्ष्ममात्मानमात्मना ।
वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसंपदा ॥ ४९ ॥

वीतराग, महान् ज्ञानवान् योगी अर्थात् ध्येयाकारप्रत्ययप्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे सूक्ष्म जीवात्माका साक्षात्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

दुर्गस्त्वेष मतः पन्था ब्राह्मणानां विपश्चिताम् ।
नः कश्चिद्व्रजति ह्यस्मिन्क्षेमेण भरतर्षभ ॥ ५० ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! विद्वान् ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम माना गया है । कोई कचित् ही इस मार्गका कुशलतापूर्वक अनुसरण कर सकता है ॥ ५० ॥

यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसर्पसरीसृपम् ।
श्वभ्रवत्तोयहीनं च दुर्गमं बहुकण्टकम् ॥ ५१ ॥

जैसे सांप वा सरीसृप समूहसे परिपूरित, जलरहित बिल सम, दुर्गम, अनेक कांटोंसे युक्त, ॥५१॥

अभक्तमटवीप्रायं दावदग्धमहीरुहम् ।
पन्थानं तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेद्युवा ॥ ५२ ॥

भक्ष्यवस्तुओंसे रहित, जंगलमय, दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीचके मार्गको कोई बिरला युवा पुरुष ही कुशलतासे पार कर सकता है ॥ ५२ ॥

योगमार्गं तथासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विजः ।
क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषो हि स स्मृतः ॥ ५३ ॥

वैसे ही योगमार्गका आश्रय लेकर कोई बिरला ही द्विज उसपर कुशलपूर्वक चल सकता है; क्योंकि वह अनेक कठिनाइयोंसे भरा हुआ कहा गया है ॥ ५३ ॥

सुस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु महीपते ।
धारणासु तु योगस्य दुःस्थेयमकृतात्मभिः ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! कृतात्मा पुरुष ही चोखे क्षुरधाराकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होता है; परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता ॥५४॥

विपन्ना धारणास्तात नयन्ति नशुभां गतिम् ।
नेतृहीना यथा नावः पुरुषानर्णवे नृप ॥ ५५ ॥

हे तात ! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं हो सकते, वैसे ही योगकी धारणाएं नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्तु तिष्ठति कौन्तेय धारणासु यथाविधि ।
मरणं जन्म दुःखं च सुखं च स विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! जो योगकी धारणाओंमें पूर्ण रीतिसे यथाविधि निवास कर सकता है, वही जन्म, मरण, सुख और दुःखके बन्धनोंसे मुक्त होता है ॥ ५६ ॥

नानाशास्त्रेषु निष्पन्नं योगेष्विदमुदाहृतम् ।
परं योगं तु यत्कृत्स्नं निश्चितं तद्द्विजातिषु ॥ ५७ ॥

यह योगविषयक अनेक शास्त्रोंका सिद्धान्त मैंने तुम्हें कहा; परन्तु योगका जो कृत्य है, वह द्विजातीयोंके लिये ही निश्चित रूपसे विद्यमान है ॥ ५७ ॥

परं हि तद्ब्रह्म महन्महात्मन्ब्रह्माणमीशं वरदं च विष्णुम् ।
भवं च धर्मं च षडाननं च षड्ब्रह्मपुत्रांश्च महानुभावान् ॥ ५८ ॥

हे महात्मन् ! यह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है । महात्मा योगी उसही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, वरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्माके छः पुत्रगण, ॥ ५८ ॥

तमश्च कष्टं सुमहद्रजश्च सत्त्वं च शुद्धं प्रकृतिं परां च ।
सिद्धिं च देवीं वरुणस्य पत्नीं तेजश्च कृत्स्नं सुमहच्च धैर्यम् ॥ ५९ ॥

और कष्टदायक तमोगुण, महान् रजोगुण, शुद्ध सत्वगुण, परम प्रकृति, वरुणपत्नी सिद्धिदेवी, सम्पूर्ण तेज और महान् धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकता है । अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होता है ॥ ५९ ॥

नराधिपं वै विमलं सतारं विश्वांश्च देवानुरगान्पितॄंश्च ।
शैलांश्च कृत्स्नानुदधींश्च घोरान्नदीश्च सर्वाः सवनान्घनांश्च ॥ ६० ॥

और नराधिप, ताराओंसे घिरे हुए निर्मल ताराधिप चन्द्रमा, विश्वेदेव, सर्प, पितर, सब पर्वत, भयंकर समुद्र, सब नदियां, वन, बादल, ॥ ६० ॥

नागान्नगान्यक्षगणान्दिशश्च गन्धर्वसंघान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
परस्परं प्राप्य महान्महात्मा विशेत योगी नचिराद्विमुक्तः ॥ ६१ ॥

नाग, वृक्ष, यक्ष, और गन्धर्व, स्त्री, दिशा, पुरुष इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय ही रूपको धारण कर सकता है और शीघ्र ही मुक्त होता है ॥ ६१ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कथा च येयं नृपते प्रसक्ता देवे महावीर्यमतौ शुभेयम् ।
योगान्स सर्वानभिभूय मर्त्यान्नारायणात्मा कुरुते महात्मा ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥ १०१९८ ॥

हे राजन् ! महान् वीर्य और बुद्धि सम्पन्न परमात्माकी जगत् कर्त्तृत्वादि निरूपण रूपी कल्याणमयी सब कथा मैंने तुम्हें कही; ईश्वरपरायण योगी परमात्मविषयक प्रसङ्ग करता हुआ सर्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्त्य लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होता है ॥ ६२ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ नवासीवां अध्याय समाप्त ॥ २८९ ॥ १०१९८ ॥

: २९० :

युधिष्ठिर उवाच—

सम्यक्त्वयायं नृपते वर्णितः शिष्टसंमतः ।
योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितैषिणा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे नरपाल ! आपने मुझ शिष्यके पूछनेपर शिष्यहितैषी होकर शिष्टसम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्यायपूर्वक वर्णन किया ॥ १ ॥

सांख्ये त्विदानीं कात्स्न्र्येन विधिं प्रब्रूहि पृच्छते ।
त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विदितं हि ते ॥ २ ॥

अब मैं सांख्य शास्त्रकी सम्पूर्ण विधि पूछता हूं, उसे मेरे समीप विस्तार पूर्वक कहिये । तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट हैं, उन सबको आप जानते हैं ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

शृणु मे त्वमिदं शुद्धं सांख्यानां विदितात्मनाम् ।
विहितं यतिभिर्बुद्धैः कपिलादिभिरीश्वरैः ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— आत्मवित् सांख्यमतवाले विद्वानोंका वह सूक्ष्म तत्वज्ञान तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो । कपिल आदि यतीन्द्रोंने इसे प्रकाशित किया है ॥ ३ ॥

यस्मिन्न विभ्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मनुजर्षभ ।
गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥ ४ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! इसमें किसी भांतिका भ्रम नहीं दीखता, इसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और दोषोंका संपूर्णतया अभाव है ॥ ४ ॥

ज्ञानेन परिसंख्याय सदोषान्विषयान्नृप ।
मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा ॥ ५ ॥

हे राजन् ! मोक्षके उपयोगी सात्विक भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और विज्ञान-युक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राक्षसान्विषयाञ्ज्ञात्वा यक्षाणां विषयांस्तथा ।
विषयानौरगाञ्ज्ञात्वा गान्धर्वविषयांस्तथा ॥ ६ ॥

राक्षस, यक्ष, सर्प, गन्धर्व ॥ ६ ॥

पितॄणां विषयाञ्ज्ञात्वा तिर्यक्षु चरतां नृप ।
सुपर्णविषयाञ्ज्ञात्वा मरुतां विषयांस्तथा ॥ ७ ॥

पितर, तिर्यगयोनि, गरुड, मरुद्गण, ॥ ७ ॥

राजर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा ब्रह्मर्षिविषयांस्तथा ।
आसुरान्विषयाञ्ज्ञात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च ॥ ८ ॥

राजर्षि, ब्रह्मर्षि, असुर, विश्वेदेव, ॥ ८ ॥

देवर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा योगानामपि चेश्वरान् ।
विषयांश्च प्रजेशानां ब्रह्मणो विषयांस्तथा ॥ ९ ॥

देवर्षि, योगी, प्रजाओंके ईश्वर और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व-दोषयुक्त सब दुर्जय विषय, ॥ ९ ॥

आयुषश्च परं कालं लोके विज्ञाय तत्त्वतः ।
सुखस्य च परं तत्त्वं विज्ञाय वदतां वर ॥ १० ॥

इस लोकमें आयुका समय तथा सुखका परम तत्व जानते हैं; ॥ १० ॥

प्राप्ते काले च यद्दुःखं पततां विषयैषिणाम् ।
तिर्यक्त्वं पततां दुःखं पततां नरके च यत् ॥ ११ ॥

सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्यगगामी और नरक गामी लोगोंके क्लेश, ॥ १० ॥

स्वर्गस्य च गुणान्कृत्स्नान्दोषान्सर्वांश्च भारत ।
वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः ॥ १२ ॥

स्वर्गके सम्पूर्ण दोष तथा गुण, वैदिक तथा वेदकी फल-श्रुतियोंके सब गुण-दोषोंको जानते है ॥ १२ ॥

ज्ञानयोगे च ये दोषा गुणा योगे च ये नृप ।
सांख्यज्ञाने च ये दोषास्तथैव च गुणा नृप ॥ १३ ॥

ज्ञानयोग, सांख्यज्ञान और योगमार्ग इन सबके दोष-गुणोंको ज्ञानके सहारे जान लेते हैं ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा ।
तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा ॥ १४ ॥

और आनन्द, प्रीति, उद्वेग, प्राकाश्य, पुण्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानत्व, आर्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य इन दस गुणोंसे युक्त सत्व; अनशन, कृपणताहीनता, सुख–दुःख, सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज; तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम; महत्, अहंकार शब्द, तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि ॥ १४ ॥

षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा मनः पञ्चगुणं तथा ।
बुद्धिं चतुर्गुणां ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत् ॥ १५ ॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्ठरूप मन; आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश; संशय, निश्चय, गर्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि; अप्रतिपत्ति, विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक महत् तम; ॥ १५ ॥

द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वमेकगुणं पुनः ।
मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन प्रलये प्रेक्षणं तथा ॥ १६ ॥

प्रवृत्ति तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुण सत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग ॥ १६ ॥

ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणैर्भावितैः शुभैः ।
प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥ १७ ॥

यथार्थ रीतिसे जानके वे ज्ञान–विज्ञानसे सम्पन्न तथा मोक्षके उपयोगी साधनोंके अनुष्ठानसे निर्मल चित्त होकर कल्याणमय सांख्ययोगी आकाशगामी सूर्यकिरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं ॥ १७ ॥

रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च ।
शब्दे सक्तं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेषु च ॥ १८ ॥

और रूप–गुणसे युक्त चक्षुरिंद्रिय, गंधसे युक्त नासिका, शब्दसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, ॥ १८ ॥

तनुं स्पर्शे तथा सक्तां वायुं नभसि चाश्रितम् ।
मोहं तमसि संसक्तं लोभमर्थेषु संश्रितम् ॥ १९ ॥

स्पर्शगुणयुक्त त्वगिन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, नभोगुणयुक्त मोह, अर्थ–इन्द्रियोंके विषय आश्रित लोभ है ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विष्णुं क्रान्ते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथानलम् ।
अप्सु देवीं तथा सक्तामपस्तेजासि चाश्रिताः ॥ २० ॥

विष्णु विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त, बल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त सिद्ध देवी हैं, तेजसामाश्रित जल, ॥ २० ॥

तेजो वायौ तु संसक्तं वायुं नभसि चाश्रितम् ।
नभो महति संयुक्तं महद्बुद्धौ च संश्रितम् ॥ २१ ॥

वाय्वाश्रित तेज, आकाशाश्रित वायु, महत्तत्वसे संयुक्त आकाश, बुद्धिसमाश्रित महत् है, ॥२१॥

बुद्धिं तमसि संसक्तां तमो रजसि चाश्रितम् ।
रजः सत्त्वे तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथात्मनि ॥ २२ ॥

बुद्धि तम संयुक्त रजके आश्रित तम, सत्वाश्रित रज, आत्मा अर्थात् जीविताश्रित सत्व है ॥ २२ ॥

सक्तमात्मानमीशे च देवे नारायणे तथा ।
देवं मोक्षे च संसक्तं मोक्षं सक्तं तु न क्वचित् ॥ २३ ॥

ईश्वर नारायण देवमें आसक्त आत्मा है; मोक्षमें समासक्त नारायण देव, और स्वमहिमामें प्रतिष्ठित मोक्ष हैं; मोक्षका आश्रय कोई भी नहीं है ॥ २३ ॥

ज्ञात्वा सत्त्वयुतं देहं वृतं षोडशभिर्गुणैः ।
स्वभावं चेतनां चैव ज्ञात्वा वै देहमाश्रिते ॥ २४ ॥

इन बातोंको जानकर तथा सत्त्वगुणको, सोलह गुणोंसे युक्त लिङ्ग शरीरको, लिङ्ग देहके आश्रित स्वभाव अर्थात् पूर्वकर्म वा चेतना अर्थात् बुद्धिवृत्तिको जाने ॥ २४ ॥

मध्यस्थमेकमात्मानं पापं यस्मिन्न विद्यते ।
द्वितीयं कर्म विज्ञाय नृपते विषयैषिणाम् ॥ २५ ॥

शरीरमें रहनेवाले निष्पाप, उदासीन, एकमात्र आत्माको जाने; विषय वासनावान् पुरुषोंका जो कर्म है, वह शरीरमें आत्माके अतिरिक्त दूसरा तत्त्व है, यह भी जाने ॥ २५ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च सर्वानात्मनि संश्रितान् ।
प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः ॥ २६ ॥

आत्माश्रित इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ ये सब शरीरमेंही स्थित हैं; प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान– ये पञ्चप्राण वायु हैं ॥ २६ ॥

अवाक्चैवानिलं ज्ञात्वा प्रवहं चानिलं पुनः ।
सप्त वातांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः ॥ २७ ॥

तथा अधः और प्रवह इस ही प्रकारसे सब वायु हैं; इनमेंसे प्रत्येकके सात और भेद होते हैं ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रजापतीन्नृषींश्चैव मार्गांश्च सुबहून्वरान् ।
सप्तर्षींश्च बहून्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परंतप ॥ २८ ॥

प्रजापति, ऋषि तथा अनेक भांतिके उत्कृष्ट धर्ममार्ग हैं; सप्तर्षि और अनेक राजर्षि भी हैं, इन सबका ज्ञान प्राप्त करें ॥ २८ ॥

सुरर्षीन्महतश्चान्यान्महर्षीन्सूर्यसंनिभान् ।
ऐश्वर्याच्च्यावितान्ज्ञात्वा कालेन महता नृप ॥ २९ ॥

हे राजन् ! देवर्षि, अन्य महापुरुष और सूर्यके समान तेजस्वी ब्रह्मर्षियोंका भी ज्ञान प्राप्त करे। महान् कालसे मनुष्य ऐश्वर्यसे पतित किये जाते हैं ॥ २९ ॥

महतां भूतसंघानां श्रुत्वा नाशं च पार्थिव ।
गतिं चाप्यशुभां ज्ञात्वा नृपते पापकर्मणाम् ॥ ३० ॥

महाभूतोंका होनेवाला नाश सुनकर पापाचारियोंको प्राप्त होनेवाली अशुभ गति जानकर ॥३०॥

वैतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये ।
योनीषु च विचित्रासु संसारानशुभांस्तथा ॥ ३१ ॥

यमलोकगामी लोगोंके वैतरणी पार होनेका दुःख, जीवोंका विचित्र योनियोंमें भ्रमण, अशुभ संसार, ॥ ३१ ॥

जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तीव्रगन्धसमन्विते ॥ ३२ ॥

रुधिर और मूत्रके पात्ररूप अशुभकर गर्भाशयके बीच वास, जो कफ, मूत्र, पुरीषसे परिपूरित, तीव्र दुर्गन्धसे युक्त, ॥ ३२ ॥

शुक्रशोणितसंघाते मज्जास्नायुपरिग्रहे ।
सिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽशुचौ ॥ ३३ ॥

जो बहुतसे शुक्रशोणित संयुक्त मज्जा और स्नायुसे परिवृत, सैकडों नस–नाडियोंसे परिपूरित अपवित्र नवद्वार युक्त पुरीके बीच– शरीरमें– जीवको निवास करना पडता है ॥ ३३ ॥

विज्ञायाहितमात्मानं योगांश्च विविधान्नृप ।
तामसानां च जन्तूनां रमणीयावृतात्मनाम् ॥ ३४ ॥

इन सब बातोंको जानकर अपने कल्याणमय आत्माको और उसकी प्राप्तिके अनेक प्रकारके योगोंकी जानकारी करे; तामस प्राणियोंके रमणीय वस्तुमें आसक्त होकर ॥ ३४ ॥

सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं भरतर्षभ ।
गर्हितं महतामर्थे सांख्यानां विदितात्मनाम् ॥ ३५ ॥

भरतर्षभ ! और सात्विक प्राणियोंके जो आत्मतत्ववित् सांख्यवादियोंसे निन्दित जो कर्म हैं, उनको भी जानें ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Anmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उपप्लवांस्तथा घोराञ्शशिनस्तेजसस्तथा ।
तारणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ॥ ३६ ॥
घोर उत्पात, चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण, ताराओंका गिरना, नक्षत्रोंका विपर्यय, ॥ ३६ ॥

द्वंद्वानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं नृप ।
अन्योन्यभक्षणं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥ ३७ ॥
दम्पतियोंका दुःखदायक विरह, प्राणियोंके परस्पर अशुभ भक्षण, ॥ ३७ ॥

बाल्ये मोहं च विज्ञाय क्षयं देहस्य चाशुभम् ।
रागे मोहे च संप्राप्ते क्वचित्सत्त्वं समाश्रितम् ॥ ३८ ॥
बाल्यकालमें मोह और वृद्धावस्थामें देहका अशुभ पतन, राग और मोह उपस्थित होनेपर दोषोंका उत्पन्न होना, इन सबको जानकर किसी पुरुषमेंही सत्वगुण देखा जाता है ॥ ३८ ॥

सहस्रेषु नरः कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रितः ।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥
सहस्रों लोगोंके बीच कोई विरला पुरुष मोक्षबुद्धिका अवलम्बन करता है, वेदवाक्योंके अनुसार मोक्षका दुर्लभत्व जानकर, ॥ ३९ ॥

बहुमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थतां पुनः ।
विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय नृपते पुनः ॥ ४० ॥
अप्राप्त वस्तुमें बहुमान, प्राप्तवस्तुमें उदासीनता, इन्द्रिय स्पर्श आदि विषय दुःखरूप हैं, यह जाने ॥ ४० ॥

गतासूनां च कौन्तेय देहान्दृष्ट्वा तथाशुभान् ।
वासं कुलेषु जन्तूनां दुःखं विज्ञाय भारत ॥ ४१ ॥
हे कुन्तीपुत्र ! मृतकोंके अशुभ– कुरूप शरीर, जन्तुओंका गृहवासरूपी दुःख, ॥ ४१ ॥

ब्रह्मघ्नानां गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम् ।
सुरापाने च सक्तानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम् ।
गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम् ॥ ४२ ॥
ब्रह्मघ्न तथा पतित पुरुषोंकी दारुण दुर्गति, मद्य पीनेमें आसक्त दुरात्मा ब्राह्मणोंकी और गुरुस्त्रीमें रत मनुष्योंकी जो अशुभ गति होती है, उसका भी विचार करे ॥ ४२ ॥

जननीषु च वर्तन्ते ये न सम्यग्युधिष्ठिर ।
सदेवकेषु लोकेषु ये न वर्तन्ति मानवाः ॥ ४३ ॥
युधिष्ठिर ! जो मनुष्य माताओं, देवताओं तथा लोकोंके प्रति उत्तम बर्ताव नहीं करते हैं, ॥४३॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम् ।
तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय गतयः पृथक् ॥ ४४ ॥

उनकी दुर्गतिका ज्ञान जिससे होता है, उससे उन अशुभ कर्म करनेवाले मनुष्योंकी गतिका ज्ञान प्राप्त करे और तिर्यग् योनिगत सब प्राणियोंकी पृथक् पृथक् गतियां होती हैं, उनको भी जाने ॥ ४४ ॥

वेदवादांस्तथा चित्रानृतूनां पर्ययांस्तथा ।
क्षयं संवत्सराणां च मासानां प्रक्षयं तथा ॥ ४५ ॥

वेदोंके अनेक प्रकारके वचन, ऋतुओंका बदलना; संवत्सर, महीना, ॥ ४५ ॥

पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसानां च संक्षयम् ।
क्षयं वृद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥ ४६ ॥

पक्ष और दिवसका क्षय, और चन्द्रमाकी प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाली ह्रास और वृद्धि ॥४६॥

वृद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः ।
क्षयं धनानां च तथा पुनर्वृद्धिं तथैव च ॥ ४७ ॥

समुद्रोंका ज्वार भाटा, धनका नाश और फिर वृद्धि– ये सब प्रत्यक्ष दीखते हैं; यह देखकर कर्तव्यका निश्चय करे ॥ ४७ ॥

संयोगानां क्षयं दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः ।
क्षयं च दृष्ट्वा शैलानां क्षयं च सरितां तथा ॥ ४८ ॥

संयोग, युग, पहाड और नदियोंका जो क्षय होता है, उसपर दृष्टि डाले ॥ ४८ ॥

वर्णानां च क्षयं दृष्ट्वा क्षयान्तं च पुनः पुनः ।
जरामृत्युं तथा जन्म दृष्ट्वा दुःखानि चैव ह ॥ ४९ ॥

वर्णोंका क्षय और क्षयका भी अन्त भी बार बार देखे; जन्म, जरा और मृत्युके दुःखोंको देखे ॥ ४९ ॥

देहदोषांस्तथा ज्ञात्वा तेषां दुःखं च तत्त्वतः ।
देहविक्लवतां चैव सम्यग्विज्ञाय भारत ॥ ५० ॥

भारत ! देहके दोषोंको जानकर उनसे प्राप्त दुःखका यथार्थ ज्ञान करे; शरीरकी व्याकुलताको भी ठीक जाने ॥ ५० ॥

आत्मदोषांश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि संश्रितान् ।
स्वदेहादुत्थितान्गन्धांस्तथा विज्ञाय चाशुभान् ॥ ५१ ॥

अपने शरीरमें स्थित अपने दोषोंको जानकर, अपने शरीरसे उत्पन्न अशुभ गन्ध,– इन सबको यथार्थ रीतिसे जाननेका प्रयत्न करे ॥ ५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच—

कान्स्वगात्रोद्भवान्दोषान्पश्यस्यमितविक्रम ।
एतन्मे संशयं कृत्स्नं वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ ५२ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे अमितविक्रम ! आप निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष अशुभरूपसे देखते हैं ? मेरे इस सन्देहके विषयको यथावत् वर्णन करना आपको उचित है ॥ ५२ ॥

भीष्म उवाच—

पञ्च दोषान्प्रभो देहे प्रवदन्ति मनीषिणः ।
मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणु तानरिसूदन ॥ ५३ ॥

भीष्म बोले— हे शत्रुनाशन ! मोक्षमार्गवित् कपिल प्रणीत सांख्यमतावलम्बी मनीषि लोग देहके बीच स्थित जिन पांच दोषोंको कहा करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो ॥ ५३ ॥

कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते ।
एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥ ५४ ॥

काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, ये पांच दोष सब देहधारियोंके शरीरोंमें दीख पडते हैं, ॥ ५४ ॥

छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंशीलनान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ।
छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासं लघ्वाहारतया नृप ॥ ५५ ॥

हे राजन् ! मनीषि लोग क्षमासे क्रोध, संकल्पके त्यागसे काम, सत्त्वसेवाके जरिये निद्रा, अप्रमादसे भय और अल्प आहारसे पांचवें श्वासको नाश किया करते हैं ॥ ५५ ॥

गुणान्गुणशतैर्ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि ।
हेतून्हेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः ॥ ५६ ॥

हे नरपाल ! महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले विद्वान् पुरुष सांख्यसंमत महान् व्यापक ज्ञान—योगसे सैकडों गुणोंके जरिये सब गुणों, सैकडों दोषोंके सहारे सब दोषों और विविध हेतुशतके जरिये अनेक प्रकारके हेतुओंको यथार्थ रूपसें जानकर, ॥ ५६ ॥

अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैर्वृतम् ।
चित्तभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम् ॥ ५७ ॥

जगत्को जलके फेन समान, विष्णुकी सैंकडों मायासे आवृत, दीवारपर बने हुए चित्रके समान, नलतृणकी भांति अन्तःसाररहित, ॥ ५७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमः श्वभ्रनिभं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसंनिभम् ।
नाशप्रायं सुखाद्धीनं नाशोत्तरमभावगम् ।
रजस्तमसि संमग्नं पङ्के द्विपमिवावशम् ॥ ५८ ॥

अन्धकारसे परिपूरित बिल-सदृश, वर्षाके बुलबुलेके समान क्षणिक, सुखहीन, नष्टप्राय, अभाव-युक्त तथा कीचडमें फंसे अवश हाथीकी भांति रज और तमोगुणमें निमग्न मानते हैं ॥ ५८ ॥

सांख्या राजन्महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा देहं प्रजाकृतम् ।
ज्ञानज्ञेयेन सांख्येन व्यापिना महता नृप ॥ ५९ ॥
राजसानशुभान्गन्धांस्तामसांश्च तथाविधान् ।
पुण्यांश्च सात्त्विकान्गन्धान्स्पर्शजान्देहसंश्रितान् ।
छित्त्वाशु ज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन भारत ॥ ६० ॥

इसलिये वे प्रजाकृत स्नेहको त्यागके, देहस्थित रज तथा तमोगुणसे उत्पन्न वैसे अशुभ गन्ध और सत्वगुणसे उत्पन्न सब स्पर्शज पुण्यगन्धोंको तपोरूपी दंडसे ज्ञानरूपी शास्त्रसे शीघ्र ही काट डालते हैं ॥ ५९-६० ॥

ततो दुःखोदकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्रदम् ।
व्याधिमृत्युमहाग्राहं महाभयमहोरगम् ॥ ६१ ॥

अनन्तर वे सिद्ध योगी संसाररूपी घोर सागर- जिसमें दुःखरूपी जल, चिन्ता तथा शोकरूपी भयङ्कर सरोवर, व्याधि और मृत्युरूपी महाग्राह, महाभयरूपी महासर्प, ॥ ६१ ॥

तमःकूर्मं रजोमीनं प्रज्ञया संतरन्त्युत ।
स्नेहपङ्कं जरादुर्गं स्पर्शद्वीपमरिंदम ॥ ६२ ॥

तमोगुणरूपी कूर्म, रजोगुणरूपी मीन, बुद्धिरूपी नौका, स्नेहरूपी कीचड, बुढापारूपी कठीनाइयां, ज्ञानरूपी दीपक, ॥ ६२ ॥

कर्मौघं सत्यतीरं स्थिनव्रतमिदं नृप ।
हिंसाशीघ्रमहावेगं नानारसमहाकरम् ॥ ६३ ॥

अनेक प्रकारके कर्मोंसे गहरा बना, सत्यरूपी तीर, नियम-व्रत आदि स्थिरता, हिंसारूपी प्रबल वेग, अनेक रसोंका भाण्डार, ॥ ६३ ॥

नानाप्रीतिमहारत्नं दुःखज्वरसमीरणम् ।
शोकतृष्णामहावर्तं तीक्ष्णव्याधिमहागजम् ॥ ६४ ॥

नाना प्रीतियांरूपी महारत्न, दुःख और ज्वररूपी वायु, शोक और तृष्णारूपी महान् भंवरें, तीक्ष्ण व्याधिरूपी महाहस्ती, ॥ ६४ ॥

अस्थिसंघातसंघाटं श्लेष्मफेनमरिंदम ।
दानमुक्ताकरं भीमं शोणितह्रदविद्रुमम् ॥ ६५ ॥

हड्डीरूपी घाट, कफ रूपी फेन, दानरूप मुक्ताकी खान सीप, रुधिरह्रदरूपी प्रवाल, ॥ ६५ ॥

CC-0. Swami Anmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized

हसितोत्कुष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुस्तरम् ।
रोदनाश्रुमलक्षारं सङ्गत्यागपरायणम् ॥ ६६ ॥

हंसी और रोदनरूपी निर्घोष, अनेक भांतिके अज्ञानके सहारे दुस्तर, रोदनके आंसू और मलरूप जिसका क्षार तथा सङ्गत्यागरूप जिसका परम आश्रय है, ॥ ६६ ॥

पुनराजन्मलोकौघं पुत्रबान्धवपत्तनम् ।
अहिंसासत्यमर्यादं प्राणत्यागमहोर्मिणम् ॥ ६७ ॥

पुनर्जन्म जलौकासमूह, बान्धव और मित्र रूपी नगर, अहिंसा और सत्यरूपी सीमा, प्राण-त्यागरूपी महान् तरङ्ग, ॥ ६७ ॥

वेदान्तगमनद्वीपं सर्वभूतदयोदधिम् ।
मोक्षदुष्प्रापविषयं वडवामुखसागरम् ॥ ६८ ॥

वेदांत गमनरूपी द्वीप और सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव जलराशि, जिसमें मोक्ष विषय अत्यन्त दुर्लभ है, वैसे वाडवानलसे युक्त समुद्रको ॥ ६८ ॥

तरन्ति सुनयः सिद्धा ज्ञानयोगेन भारत ।
तीर्त्वा च दुस्तरं जन्म विशन्ति विमलं नभः ॥ ६९ ॥

ज्ञानयानके जरिये पार हुआ करते हैं और आकाशस्वरूप निर्मल दुस्तर परब्रह्ममें प्रवेश करते हैं ॥ ६९ ॥

ततस्तान्सुकृतीन्सांख्यान्सूर्यो वहति रश्मिभिः ।
पद्मतन्तुवदाविश्य प्रवहन्विषयान्नृप ॥ ७० ॥

राजन् ! जिस भांति सुखसंयोगसे अन्तश्छिद्र मृणालदण्डके जरिये आकर्षित जल भीतरमें प्रवेश करता है, वैसे ही चौदह भुवन विहारी सूर्य अपनी किरणोंसे आत्मामें प्रणिहित मनके जरिये उन सुकृतवान् सांख्यमतवालोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर उन लोगोंको उस ब्रह्मलोकमें ले जानेके लिये ऊपरके लोकोंमें वहन करता है ॥ ७० ॥

तत्र तान्प्रवहो वायुः प्रतिगृह्णाति भारत ।
वीतरागान्यतीन्सिद्धान्वीर्ययुक्तांस्तपोधनान् ॥ ७१ ॥

हे भारत ! वहां प्रवह नामक वायु उन रागरहित वीर्यवान् तपोधन यती सिद्ध सांख्य लोगोंको ग्रहण करता है ॥ ७१ ॥

सूक्ष्मः शीतः सुगन्धी च सुखस्पर्शश्च भारत ।
सप्तानां मरुतां श्रेष्ठो लोकान्गच्छति यः शुभान् ।
स तान्वहति कौन्तेय नभसः परमां गतिम् ॥ ७२ ॥

हे भारत ! कुन्तीपुत्र ! अनन्तर शुभलोकगामी, सूक्ष्म, शीतलतायुक्त सुगन्धि, सुखस्पर्श सातों वायुमें श्रेष्ठ वह प्रवहमान वायु उन्हें आकाशकी चरम गति अर्थात् हृदयरूपी आकाशमें ले जाता है ॥ ७२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नभो वहति लोकेश रजसः परमां गतिम् ।
रजो वहति राजेन्द्र सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥ ७३ ॥

हे लोकेश ! इस ही प्रकार धीरे धीरे वह आकाशसे रजोगुणकी परमगतिमें वहन करता है; राजेन्द्र ! रजोगुण सत्वकी परमगति तक वहन करता है ॥ ७३ ॥

सत्त्वं वहति शुद्धात्मन्परं नारायणं प्रभुम् ।
प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥ ७४ ॥

और सत्वसे परमात्मा प्रभु नारायणके पास पहुंचाता है; फिर वे भगवान् नारायण स्वयं पवित्र परमात्मा परब्रह्ममें उनको प्रविष्ट करते हैं ॥ ७४ ॥

परमात्मानमासाद्य तद्भूतायतनामलाः ।
अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति चाभिभो ।
परमा सा गतिः पार्थ निर्द्वन्द्वानां महात्मनाम् ॥ ७५ ॥

परमात्माको पाकर तद्रूप हुए वे निर्मल योगी अमृतकल्प सम्पन्न होते हैं, इसलिये उन लोगोंकी फिर पुनरावृत्ति नहीं होती । हे पार्थ ! द्वन्द्व भेद ज्ञानसे रहित महात्माओंकी वही परमगति है ॥ ७५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः ।
आजन्ममरणं वा ते स्मरन्त्युत न वानघ ॥ ७६ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पापरहित ! स्थिरव्रतवाले सांख्योंके षड्गुण ऐश्वर्ययुक्त योगी भगवान् नारायणको तथा परमात्मस्वरूप मोक्षधामको प्राप्त करनेपर जन्म—मरण आदि और मोक्ष विषयका विशेष स्मरण करते हैं वा नहीं ॥ ७६ ॥

यदत्र तथ्यं तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
त्वदृते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हामि कौरव ॥ ७७ ॥

इस विषयमें जो सत्य है, वह आप यथार्थरूपसे कहनेकी कृपा करें; हे कुरुनन्दन ! आपके सिवा दूसरे किसी मनुष्यको मैं ऐसे पूछ नहीं सकता ॥ ७७ ॥

मोक्षदोषो महानेष प्राप्य सिद्धिं गतान्मुनीन् ।
यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥ ७८ ॥

सिद्धि प्राप्त ऋषियोंके लिये मोक्षमें एक बडा दोष प्रतीत होता है, वह यह कि मोक्ष प्राप्त होनेपर भी वे योगी पहलेकी स्मृतियोंमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्यामि परमं नृप ।
मग्नस्य हि परे ज्ञाने किं नु दुःखतरं भवेत् ॥ ७९ ॥

तो मुझे भी वही प्रवृत्तिरूप धर्म प्रधान जंचता है; परन्तु यह भी युक्ति सङ्गत है, कि मोक्ष-मार्गमें प्रविष्ट पुरुषोंका ज्ञान श्रेष्ठ है । तो भी उसमें मग्न होनेपर विशेष जानकारीका अभाव होता है, इससे बढकर दुःख और क्या होगा ? ॥ ७९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhu) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

यथान्यायं त्वया तात प्रश्नः पृष्टः सुसंकटः ।
बुद्धानामपि संमोहः प्रश्नेऽस्मिन्भरतर्षभ ।
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणु सम्यङ्मयेरितम् ॥ ८० ॥

भीष्म बोले— हे तात भरतश्रेष्ठ ! तुमने जो युक्तिसङ्गत प्रश्न किया, वह अत्यन्त कठिन है; इस प्रश्नपर विचार करते समय पण्डितोंको भी मोह उपस्थित होता है; इस विषयमें जो परम तत्त्व है उसे ही तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो ॥ ८० ॥

बुद्धिश्च परमा यत्र कापिलानां महात्मनाम् ।
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेहं देहिनो नृप ।
कारणान्यात्मनस्तानि सूक्ष्मः पश्यति तैस्तु सः ॥ ८१ ॥

यहां कपिलोक्त सांख्य मतावलम्बी महात्मा लोग जिस परम तत्वको जानते है, वही प्रस्तुत किया जाता है । हे राजन् ! प्राणियोंकी निज देहमें स्थित इंद्रियोंके जरिये ही आत्माको जाना जा सकता है, इसलिये वे इन्द्रियां आत्मज्ञानकी हेतुभूत बोध होती हैं; क्योंकि सूक्ष्म चिदात्मा उन इन्द्रियोंके सहित ही आन्तर और बाह्य सब विषयोंका दर्शन या प्रकाशन किया करता है ॥ ८१ ॥

आत्मना विप्रहीणानि काष्ठकुड्यसमानि तु ।
विनश्यन्ति न संदेहः फेना इव महार्णवे ॥ ८२ ॥

परन्तु इन्द्रियां आत्मासे रहित होनेपर काष्ठ और कुड्यप्राय होकर महार्णवमें स्थित जल रहित फेनकी भांति विनष्ट होती हैं ॥ ८२ ॥

इन्द्रियैः सह सुप्तस्य देहिनः शत्रुतापन ।
सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरणः ॥ ८३ ॥

हे शत्रुतापन ! देहाभिमानी जीव इन्द्रियोंके सहित शयन करनेपर स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म अन्तरात्मा आकाशमण्डलवर्त्ती वायुकी भांति सर्वत्र विचरण किया करता है ॥ ८३ ॥

स पश्यति यथान्यायं स्पर्शान्स्पृशति चाभिभो ।
बुध्यमानो यथापूर्वमखिलेनेह भारत ॥ ८४ ॥

हे भारत ! जाग्रत् अवस्थाकी भांति स्वप्नमें भी वह सूक्ष्म अन्तरात्मा यथाक्रमसे रूप और स्पर्श विषयोंको दर्शन और स्पर्शन किया करता है ॥ ८४ ॥

इन्द्रियाणीह सर्वाणि स्वे स्वे स्थाने यथाविधि ।
अनीशत्वात्प्रलीयन्ते सर्पा हतविषा इव ॥ ८५ ॥

इस स्वप्नावस्थामें निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियां अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर विषरहित सर्पकी भांति अपने स्थानमें लीन होती हैं ॥ ८५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सर्वशः ।
आक्रम्य गतयः सूक्ष्माश्चरत्यात्मा न संशयः ॥ ८६ ॥

स्वप्नावस्थामें अपने स्थानोंमें स्थित सब इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण गतियोंको आक्रान्त करके जीवात्मा सूक्ष्म विषयोंमें विचरण करता है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ८६ ॥

सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नान्रजसश्च गुणान्पुनः ।
गुणांश्च तमसः सर्वान्गुणान्बुद्धेश्च भारत ॥ ८७ ॥

हे भारत ! उक्त अवस्थामें अन्तरात्मा निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियोंकी सब वृत्ति और धर्म आदि सत्वगुण, प्रवृत्ति आदि रजोगुण, अप्रवृत्ति आदि तमोगुण, अध्यवसाय आदि बुद्धिके गुण ॥ ८७ ॥

गुणांश्च मनसस्तद्वन्नभसश्च गुणांस्तथा ।
गुणान्वायोश्च धर्मात्मंस्तेजसश्च गुणान्पुनः ॥ ८८ ॥

और संकल्प आदि मनके गुण, श्रोत्र आदि आकाशके गुण, स्पर्श आदि वायुके गुण, स्नेहज आदि अग्निके गुण, ॥ ८८ ॥

अपां गुणांस्तथा पार्थ पार्थिवांश्च गुणानपि ।
सर्वात्मना गुणैर्व्याप्य क्षेत्रज्ञः स युधिष्ठिर ॥ ८९ ॥

रस आदि जलके गुण और गन्ध आदि पृथ्वीके गुणोंको अपने गुणोंसे व्याप्त करके वह क्षेत्रज्ञ सर्वत्र विचरण करता है ॥ ८९ ॥

आत्मा च याति क्षेत्रज्ञं कर्मणी च शुभाशुभे ।
शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च तं प्रभो ॥ ९० ॥

हे प्रभो ! जैसे शिष्य अपने गुरुका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार मन, इन्द्रियां और शुभाशुभ कर्म भी क्षेत्रज्ञ– जीवात्माके पीछे जाते हैं ॥ ९० ॥

प्रकृतिं चाप्यतिक्रम्य गच्छत्यात्मानमव्ययम् ।
परं नारायणात्मानं निर्द्वन्द्वं प्रकृतेः परम् ॥ ९१ ॥

अनन्तर क्षेत्रज्ञ जीव कार्योपाधि इन्द्रिय और कारणोपाधि प्रकृतिको अतिक्रम करके अव्यय नारायणस्वरूप, द्वन्द्वरहित और मायातीत परमात्माको पाता है ॥ ९१ ॥

विमुक्तः पुण्यपापेभ्यः प्रविष्टस्तमनामयम् ।
परमात्मानमगुणं न निवर्तति भारत ॥ ९२ ॥

हे भारत ! पाप–पुण्यसे रहित हुआ योगी मुक्त होकर मायातीत अनामय एकमात्र निर्गुण परमात्मा नारायणमें प्रविष्ट होनेपर उसकी फिर पुनरावृत्ति नहीं होती, वह फिर इस संसारमें नहीं लौटता है ॥ ९२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शिष्टं त्वत्र मनस्तात इन्द्रियाणि च भारत ।
आगच्छन्ति यथाकालं गुरोः संदेशकारिणः ॥ ९३ ॥

हे तात ! समाधि भङ्ग होनेपर आत्मामें लीन हुए मन और इन्द्रियां प्रारब्ध कर्मके अनुसार शरीर रहनेके कारण जो शेष रहते हैं, वे गुरुकी आज्ञा पालन करनेवाले शिष्योंके समान यथासमय फिर यहां आगमन किया करते हैं ॥ ९३ ॥

शक्यं चाल्पेन कालेन शान्तिं प्राप्तुं गुणार्थिना ।
एवं युक्तेन कौन्तेय युक्तज्ञानेन मोक्षिणा ॥ ९४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! अनन्तर थोडे समयमें ही वर्त्तमान देहका पतन होनेपर गुणार्थी, मोक्षकी इच्छावाला ज्ञानयुक्त योगी विदेह मुक्ति—परम शान्ति लाभ करता है ॥ ९४ ॥

सांख्या राजन्महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम् ।
ज्ञानेनानेन कौन्तेय तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥ ९५ ॥

हे राजन् ! महाप्राज्ञ सांख्य लोग इस ही ज्ञानके सहारे परम गति पाते हैं, इसलिये कोई ज्ञान भी इस ज्ञानके समान नहीं है ॥ ९५ ॥

अत्र ते संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् ।
अक्षरं ध्रुवमव्यक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥ ९६ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! मेरी समझमें यह सांख्य ज्ञानही अत्यन्त उत्कृष्ट और अक्षर, अचञ्चल सनातन पूर्णब्रह्म स्वरूप है; इसलिये इसमें तुम्हें और सन्देह न करना चाहिये ॥ ९६ ॥

अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तृ शाश्वतम् ।
कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥ ९७ ॥

मनीषि लोग जिसे उत्पत्ति, स्थिति और नाशसे रहित, अद्वैत, नित्य, अखण्ड, जगत्कर्त्ता, कूटस्थ ब्रह्म कहा करते हैं ॥ ९७ ॥

यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ।
यच्च शंसन्ति शास्त्रेषु वदन्ति परमर्षयः ॥ ९८ ॥

उसीसे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूपी सब क्रियाएं उत्पन्न होती हैं; ऋषि लोग सब शास्त्रोंमें इसकी प्रशंसा किया करते हैं ॥ ९८ ॥

सर्वे विप्राश्च देवाश्च तथागमविदो जनाः ।
ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परतोऽच्युतम् ॥ ९९ ॥

सब भूतोंमें समज्ञान करनेवाले साधु ब्राह्मण, देवता और वेदोंके ज्ञाता लोग ब्राह्मणोंके परम हितकारी उस अच्युत अनन्त परम देवकी प्रार्थना किया करते हैं ॥ ९९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा वदन्ति गुणबुद्धयः ।
सम्यग्युक्तास्तथा योगाः सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥ १०० ॥

विषयज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग मायिक गुणोंके सहारे उसकी महिमाकी स्तुति करते हैं; अमितदर्शन सांख्य और योगसिद्ध योगी लोग उसे जगत्का कारण कहके अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं; ॥ १०० ॥

अमूर्तेस्तस्य कौन्तेय सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः ।
अभिज्ञानानि तस्याहुर्मतं हि भरतर्षभ ॥ १०१ ॥

और यह वेदमें प्रसिद्ध है, कि यह सांख्य शास्त्रही उस अमूर्त्त शुद्ध चिन्मात्र परब्रह्मकी मूर्त्ति है तथा घटादिविषयक सब विषयोंका ज्ञानही उसका महाज्ञान स्वरूप है ॥ १०१ ॥

द्विविधानीह भूतानि पृथिव्यां पृथिवीपते ।
जङ्गमागमसंज्ञानि जङ्गमं तु विशिष्यते ॥ १०२ ॥

हे राजन् ! इस पृथ्वीपर जो स्थावर और जङ्गमात्मक दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें जङ्गम ही श्रेष्ठ हैं ॥ १०२ ॥

ज्ञानं महच्चद्धि महत्सु राजन्वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे ।
यच्चापि दृष्टं विविधं पुराणं सांख्यागतं तन्निखिलं नरेन्द्र ॥ १०३ ॥

हे राजन् ! महात्मा पुरुष, वेद, सांख्य, योग और पुराणोंमें जो सब विविध भांतिके उत्तम ज्ञान दीख पडते हैं, वे सब इसी सांख्यज्ञानके अन्तर्गत हैं ॥ १०३ ॥

यच्चेतिहासेषु महत्सु दृष्टं यच्चार्थशास्त्रे नृप शिष्टजुष्टे ।
ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किंचित्सांख्यागतं तच्च महन्महात्मन् ॥ १०४ ॥

हे महात्मन् ! बडे बडे इतिहास, शिष्टजनसेवित अर्थशास्त्र और इस लोकमें जो कुछ महान् ज्ञान देखा जाता है, वह सब सांख्यसे ही प्राप्त हुआ है ॥ १०४ ॥

शमश्च दृष्टः परमं बलं च ज्ञानं च सूक्ष्मं च यथावदुक्तम् ।
तपांसि सूक्ष्माणि सुखानि चैव सांख्ये यथावद्विहितानि राजन् ॥ १०५ ॥

हे राजन् ! मन और इंद्रियोंका संयम, बल, सूक्ष्म ज्ञान, तपस्या और सूक्ष्म सुख, ये सब सांख्यज्ञानके बीच यथावत् विहित हुए हैं ॥ १०५ ॥

विपर्यये तस्य हि पार्थ देवान्गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन ।
तांश्चानुसंचार्य ततः कृतार्थाः पतन्ति विप्रेषु यतेषु भूयः ॥ १०६ ॥

हे पार्थ ! किञ्चित् विकलता वशसे उस सांख्यज्ञानका उदय न होनेपर भी सांख्य लोग देवलोकमें आके, वहां सदा सुखसे वास करके देवताओंके ऊपर आधिपत्य करते हुए कृतार्थ होकर, पुण्यके भोगकी समाप्ति होनेपर यत्नशील विप्रकुलमें फिर पतित होते हैं ॥ १०६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं दिवौकसो द्यामिव पार्थ सांख्याः ।
ततोऽधिकं तेऽभिरता महार्हे सांख्ये द्विजाः पार्थिव शिष्टजुष्टे ॥ १०७ ॥

सांख्य लोग देह छोडके देवलोकवासी देवताओंकी भांति देवलोकमें प्रवेश करके, क्रमसे महापूज्य शिष्टोंसे सेवित सांख्य ज्ञानमें अधिक अनुरक्त हुआ करते हैं ॥ १०७ ॥

तेषां न तिर्यग्गमनं हि दृष्टं नावाग्गतिः पापकृतं निवासः ।
न चाबुधानामपि ते द्विजातयो ये ज्ञानमेतन्नृपतेऽनुरक्ताः ॥ १०८ ॥

हे राजन् ! कभी वे तिर्यग्गति, अधोगति वा पापात्माओंके अधिवासको प्राप्त नहीं होते; क्योंकि जो द्विजाति एकमात्र ज्ञानमें अनुरक्त रहती हैं, वेही प्रधानता लाभ करती हैं ॥१०८॥

सांख्यं विशालं परमं पुराणं महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
कृत्स्नं च सांख्यं नृपते महात्मा नारायणो धारयतेऽप्रमेयम् ॥ १०९ ॥

सांख्य ज्ञान विशाल, पुरातन, महासागरकी भांति अगाध, सुन्दर, परम पवित्र और उदार-भावोंसे परिपूर्ण है; भगवान् परमात्मा नारायण इस सब अप्रमेय सांख्य-ज्ञानको पूर्णतया धारण करते हैं ॥ १०९ ॥

एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं नारायणो विश्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च तदत्ति भूयः ॥ ११० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥ १०३०८ ॥

हे नरदेव ! मैंने तुम्हारे निकट यथावत् सांख्यका तत्त्व वर्णन किया; वह जगदन्तर्यामी नारायण सृष्टिकालमें यही पुरातन विश्व उत्पन्न करता है, और प्रलयके समय फिर इस जगत्का संहार करता है ॥ ११० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ २९० ॥ १०३०८ ॥

२९१

युधिष्ठिर उवाच—

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नावर्तते पुनः ।
किं च तत्क्षरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुनः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे शत्रुनाशन पितामह ! जिससे जीवोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती, जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है और जो अक्षर तथा क्षररूपसे वर्णित हुआ है, वह कौन है ? ॥ १ ॥

अक्षरक्षरयोर्व्यक्तिमिच्छाम्यरिनिषूदन ।
उपलब्धुं महाबाहो तत्त्वेन कुरुनन्दन ॥ २ ॥

हे महाबाहो कुरुनन्दन ! उस अक्षर और क्षर दोनोंके प्रभेदको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये आपसे प्रश्न करता हूं ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वं हि ज्ञाननिधिर्विप्रैरुच्यसे वेदपारगैः ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥ ३ ॥

क्योंकि वेदपारग ब्राह्मण, महाभाग ऋषि और महात्मा योगी लोग भी आपको ज्ञाननिधि कहा करते हैं ॥ ३ ॥

शेषमल्पं दिनानां ते दक्षिणायनभास्करे ।
आवृत्ते भगवत्यर्के गन्तासि परमां गतिम् ॥ ४ ॥

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! अब सूर्यके दक्षिणायनमें रहनेके दिन बहुत ही कम बाकी हैं; क्योंकि भगवान् सूर्यके उत्तरायणमें पदार्पण करतेही आपको परमगति प्राप्त होगी ॥ ४ ॥

त्वयि प्रतिगते श्रेयः कुतः श्रोष्यामहे वयम् ।
कुरुवंशप्रदीपस्त्वं ज्ञानद्रव्येण दीप्यसे ॥ ५ ॥

आप कुरुवंशके दीपक हैं, तथा ज्ञानदीपसे सदा प्रकाशित हैं, इसलिये आपके परमधाममें गमन करनेपर हम लोग किसके समीप इस कल्याणकर वचनको सुनेंगे ? ॥ ५ ॥

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तः कुरुकुलोद्वह ।
न तृप्यामीह राजेन्द्र शृण्वन्नमृतमीदृशम् ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र ! इस ही निमित्त आपके समीप इन सब विषयोंको सुननेकी इच्छा करता हूं, इस लोकमें ऐसे अमृतमय वचनको सुनकर मैं परितृप्त नहीं होता हूं ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥ ७ ॥

भीष्म बोले– इस विषयमें करालजनक और वशिष्ठके संवादयुक्त प्राचीन इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो ॥ ७ ॥

वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषीणां भास्करद्युतिम् ।
पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैःश्रेयसं परम् ॥ ८ ॥

पहिले समयमें कराल नाम महाराज जनकने सूर्यके समान तेजस्वी ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको आश्रममें बैठे हुए देख उन्हें परम कल्याणकारी ज्ञानके विषयमें पूछा ॥ ८ ॥

परमध्यात्मकुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम् ।
मैत्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥

मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठ अध्यात्म विद्याके जाननेवाले, अध्यात्मिक अनुभव और निश्चययुक्त थे; उन्हें आसनपर विराजमान देख उनके पास जा हाथ जोडकर प्रणाम करके ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वक्षरं प्रश्रितं वाक्यं मधुरं चाप्यलुल्वणम् ।
पप्रच्छर्षिवरं राजा करालजनकः पुरा ॥ १० ॥

पहले समयमें कराल नामक राजा जनकने सुन्दर अक्षरोंसे युक्त, विनीत, कुतर्करहित, मधुर वचनसे इस प्रकार पूंछा ॥ १० ॥

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् ।
यस्मान्न पुनरावृत्तिमाप्नुवन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! जहांसे मनीषी मनुष्योंकी इस जगत्में पुनरावृत्ति निवारित होती है, उस सनातन परब्रह्मके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, ॥ ११ ॥

यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत् ।
यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेम्यमनामयम् ॥ १२ ॥

जिसमें यह जगत् लीन होनेसे क्षर रूप कहा गया है, और जिसे अक्षर कहते हैं, उस संसार मोचक आनन्द स्वरूप निर्विकार अधिष्ठानका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं, ॥ १२ ॥

वसिष्ठ उवाच--

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत् ।
यन्न क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यथ ॥ १३ ॥

वसिष्ठ बोले– हे पृथ्वीपाल ! यह जगत् जिस प्रकार नष्ट होता और किसी समयमें भी जो विनष्ट नहीं होता है, उस ही क्षर और अक्षरको विशेष रीतिसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये ॥ १३ ॥

युगं द्वादशसाहस्रं कल्पं विद्धि चतुर्गुणम् ।
दशकल्पशतावृत्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते ।
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते ॥ १४ ॥

देव परिमाणसे बारह हजार वर्षोंका एक युग होता है, चार युगोंका एक कल्प होता है और ऐसे हजार कल्पोंका ब्रह्माका एक दिन समझा जाता है; और इस ही परिमाणसे ब्रह्मारात्रि हुआ करती है । हे राजन् ! इसके अन्तमें वे जागते हैं ॥ १४ ॥

सृजत्यनन्तकर्माणं महान्तं भूतमग्रजम् ।
मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शम्भुः स्वयम्भुवः ।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानं ज्योतिरव्ययम् ॥ १५ ॥

अमूर्त्तात्मा शम्भु, परमेश्वर अनन्तकर्मा महाभूत मूर्त्तिमान् विश्वरूप अग्रज हिरण्यगर्भको –ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, उसहीमें स्वयम्भु ब्रह्माके नित्य स्वतःसिद्ध अणिमा आदि सब ऐश्वर्य विद्यमान हैं; परमात्मा सर्वनियन्ता ज्योतिर्मय, और अविनाशी हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६ ॥

सर्वत्रगामी, सर्वग्राही, सर्वदर्शी, सर्वशिरा, सर्वानन, सर्वश्रोता वह हिरण्यगर्भ लोकमें सब वस्तुओंको आवरण करके स्थिति कर रहे हैं ॥ १६ ॥

हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः ।
महानिति च योगेषु विरिञ्च इति चाप्युत ॥ १७ ॥

यह सब ऐश्वर्योंसे युक्त हिरण्यगर्भ वेदशास्त्रोंमें सूत्रात्मा और बुद्धि समदृष्टि कहके निर्दिष्ट हुआ है । योगशास्त्रमें इसे सृष्टिका प्रथम कार्य महान्, विरञ्चि और अज कहते हैं ॥ १७ ॥

सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ।
विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः ॥ १८ ॥

सांख्यशास्त्रमें यह अनेक नामसे विख्यात है । अनेक शरीरधारी, बहुरूपी, विश्वात्मा, एकमात्र अक्षररूप कहा गया है ॥ १८ ॥

वृतं नैकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ।
तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ॥ १९ ॥

वही अक्षर स्वयं अनेकरूपवाले तीनों लोकोंको उत्पन्न करके उन्हें आवरण कर रहा है; इसलिये रूप बहुत्व निबन्धनसे लोग उसे विश्वरूप कहा करते हैं ॥ १९ ॥

एष वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ।
अहंकारं महातेजाः प्रजापतिमहंकृतम् ॥ २० ॥

यही महातेजस्वी विश्वरूप सूत्रात्मा विकृतभावसे युक्त होकर स्वयं ही अपनेको उत्पन्न करके अहङ्कार और अहङ्काराभिमानी प्रजापति विराट्की सृष्टि करता है ॥ २० ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् ।
महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्गमेव च ॥ २१ ॥

पण्डित लोग अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्तभावापन्न उस विश्वरूपको विद्यासृष्टि कहा करते हैं और महान् तत्त्व तथा अहङ्कारको अविद्या सृष्टि कहते हैं ॥ २१ ॥

अविधिश्च विधिश्चैव समुत्पन्नौ तथैकतः ।
विद्याविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रार्थचिन्तकैः ॥ २२ ॥

एकमात्र ईश्वरविषयकी उपासना वा ज्ञानसम्बन्धमें जो विधि और अविधि दोनों उत्पन्न हुई हैं; वेद-शास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले विद्वान् उन दोनोंको विद्या और अविद्या कहके व्याख्या करते हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भूतसर्गमहंकाराच्तृतीयं विद्धि पार्थिव ।
अहंकारेषु भूतेषु चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥ २३ ॥

हे पार्थ ! अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंकी जो सृष्टि होती है, वह तीसरी सृष्टि है और सात्विक, राजस तथा तामस आदि अहङ्कारसमूहके विकारको चौथी वैकृत सृष्टि समझिये ॥ २३ ॥

वायुर्ज्योतिरथाकाशमापोऽथ पृथिवी तथा ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ २४ ॥

हे राजन् ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी– ये पांच महाभूत और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध,– ये पांच विषय ॥ २४ ॥

एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् ।
पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमर्थवत् ॥ २५ ॥

ये दसवर्ग एकही साथ उत्पन्न हुए हैं; इसमें संशय नहीं है । इसलिये इस सार्थक भौतिक सृष्टिको पांचवा जानो ॥ २५ ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् ।
वाक्च हस्तौ च पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च ॥ २६ ॥
बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥ २७ ॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका– ये पांच ज्ञानेन्द्रिय और वाणी, हाथ, पांव, लिङ्ग और गुदा, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं; हे राजन् ! मनके सहित इन सबकी उत्पत्ति एक साथही हुई है ॥ २६–२७ ॥

एषा तत्त्वचतुर्विंशा सर्वाकृतिषु वर्तते ।
यां ज्ञात्वा नाभिशोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥ २८ ॥

ये चौवीस तत्त्व सब प्राणियोंके शरीरोंमें ही विद्यमान हैं; तत्त्वदर्शी ब्राह्मण लोग इसे यथार्थ-रूपसे जानके शरीरके विषयमें शोक नहीं करते ॥ २८ ॥

एतद्देहं समाख्यातं त्रैलोक्ये सर्वदेहिषु ।
वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सदेवनरदानवे ॥ २९ ॥

हे नरेन्द्र ! यह निश्चय जानो, कि तीनों लोकोंके बीच सब जीवोंमेंही ये चौवीस तत्व देह-रूपसे वर्णित हुए हैं । देव, मनुष्य, दानव, ॥ २९ ॥

सयक्षभूतगन्धर्वे सकिंनरमहोरगे ।
सचारणपिशाचे वै सदेवर्षिनिशाचरे ॥ ३० ॥

यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, महोरग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सदंशकीटमशके सपूतिकृमिमूषके ।
शुनि श्वपाके वैणेये सचाण्डाले सपुल्कसे ॥ ३१ ॥

दंश, कीट, मशक, भनगे, कीडे, चूहे, कुत्ते, श्वपाक, व्याध, चाण्डाल, पुल्कस, ॥ ३१ ॥

हस्त्यश्वखरशार्दूले सवृक्षे गवि चैव ह ।
यच्च मूर्तिमयं किंचित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम् ॥ ३२ ॥

हाथी, घोडे, गधे, सिंह, गऊ और वृक्ष आदि सब मूर्त्तिमान् प्राणिमात्रमें ही इसके दृष्टान्त दीख पडते हैं ॥ ३२ ॥

जले भुवि तथाकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः ।
स्थानं देहवतामस्ति इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ३३ ॥

और प्राणियोंका निवास जल, भूमि और आकाशके अतिरिक्त अन्य कई स्थानमें नहीं है, यह विद्वानोंका निश्चय है; इस ही भांति स्थिर सिद्धान्त भी सुना जाता है ॥ ३३ ॥

कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते व्यक्तसंज्ञकम् ।
अहन्यहनि भूतात्मा ततः क्षर इति स्मृतः ॥ ३४ ॥

हे तात ! हिरण्यगर्भ आदि व्यक्तात्मक सब वस्तु ही सदा विनष्ट होती हैं, इस ही लिये भूतात्मा पाञ्चभौतिक शरीर क्षररूपसे कहा गया है ॥ ३४ ॥

एतदक्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत् ।
जगन्मोहात्मकं प्राहुरव्यक्तं व्यक्तसंज्ञकम् ॥ ३५ ॥

पण्डित लोग शुद्ध, चिन्मय, प्रत्यगात्माको अक्षर कहते हैं और व्यक्त वा अव्यक्ताख्य मोहात्मक जगत्को क्षर कहा करते हैं ॥ ३५ ॥

महांश्चैवाग्रजो नित्यमेतत्क्षरनिदर्शनम् ।
कथितं ते महाराज यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ ३६ ॥

हे महाराज ! आप जो मुझसे पूछते हैं, उसे मैंने तुमसे प्रथम ही क्षरके दृष्टान्तभूत नित्य, महान् और अग्रज हिरण्यगर्भका विवरण कहा है, जिससे फिर आवर्तन नहीं होता है ॥ ३६ ॥

पञ्चविंशतिमो विष्णुर्निस्तत्त्वस्तत्त्वसंज्ञकः ।
तत्त्वसंश्रयणादेतत्तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥ ३७ ॥

भगवान् विष्णु इन चौबीस तत्त्वोंसे परे होनेके कारण पचीसवां तत्व कहे गये हैं; और वह सब तत्वोंके अवलम्ब हैं, उस ही लिये मनीषी लोग इन्हें तत्त्व कहते हैं ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदमूर्त्यसृजद्व्यक्तं तत्तन्मूर्त्यधितिष्ठति ।
चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तः पञ्चविंशकः ॥ ३८ ॥

महत्तत्त्व आदि व्यक्त पदार्थ जिन नश्वर पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं, वे किसी भी मूर्तिका आश्रय लेकर स्थित होते हैं; चौबीसवां तत्त्व अव्यक्त प्रकृति है और निराकार परमात्मा पचीसवां है ॥ ३८ ॥

स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्वातिष्ठतेऽऽत्मवान् ।
चेतयंश्चेतनो नित्यः सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥ ३९ ॥

जो अद्वितीय, चेतन, नित्य, सर्वस्वरूप, निराकार और सबका आत्मा है, वह परम पुरुष परमात्मा ही चित्तशक्तिसे युक्त होकर सब शरीरोंके भीतर हृदयदेशमें निवास करता है ॥३९॥

सर्गप्रलयधर्मिण्या असर्गप्रलयात्मकः ।
गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणो गुणसंज्ञकः ॥ ४० ॥

और सर्ग वा प्रलयधर्मिणी उस प्रकृतिके सहित वह नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभावसे मूर्त्तिहीन होके भी सर्ग और प्रलयरूपसे सबको दीख पडता है। इंद्रियोंका विषय न होनेपर भी इंद्रिय-गोचर तथा निर्गुण होनेपर भी गुणवान् सा जान पडता है ॥ ४० ॥

एवमेष महानात्मा सर्गप्रलयकोविदः ।
विकुर्वाणः प्रकृतिमानभिमन्यत्यबुद्धिमान् ॥ ४१ ॥

इस ही भांति सर्ग और प्रलयवित् वह महान् आत्मा हिरण्यगर्भ प्रकृतिके संयोगसे विकृत और मूढ होकर प्राकृतबुद्धिसे रहित होनेपर भी " मैं " इस ही प्रकार शरीरमें अभिमान करता है ॥ ४१ ॥

तमःसत्त्वरजोयुक्तस्तासु तास्विह योनिषु ।
लीयतेऽप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥ ४२ ॥

प्रकृतिके संसर्गवश वह तम, रज और सत्वगुणसे युक्त होकर इस लोकमें मूर्खोंकी सेवा तथा मूर्खताके कारण अपनेको शरीरस्थ समझकर सब योनियोंमें जन्मता है ॥ ४२ ॥

सहवासो निवासात्मा नान्योऽहमिति मन्यते ।
योऽहं सोहऽमिति ह्युक्त्वा गुणाननु निवर्तते ॥ ४३ ॥

और सहवास निबन्धनसे विनाशी होकर " मैं दूसरा नहीं हूं " इस ही भांति " मैं अमुकका पुत्र, अमुक जातीय हूं " ऐसा कहके सत्त्वादि गुणोंके अनुवर्त्ती होता है ॥ ४३ ॥

तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते ।
रजसा राजसांश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंश्रयात् ॥ ४४ ॥

तमोगुणके जरियें मोहक्रोधादि तामसभाव, रजोगुणसे प्रवृत्यादि राजसभाव और सत्वगुणके सहारे प्रकाशादि सात्विक भावको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि त्रीणि तु ।
सर्वाण्येतानि रूपाणि जानीहि प्राकृतानि वै ॥ ४५ ॥

स्वच्छता, रक्तता और मलिनता निबन्धनसे पहले कहे हुए सत्व, रज और तमोगुणसे क्रमशः श्वेत, लाल और नीला, ये तीन प्रकारके रूप तथा इस लोकमें जो सब रूप विद्यमान हैं, वे सभी प्रकृतिके जरिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ४५ ॥

तामसा निरयं यान्ति राजसा मानुषांस्तथा ।
सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिनः ॥ ४६ ॥

तामसिक लोग नरकमें गमन करते हैं, राजस लोग मनुष्यलोकमें गमन करते हैं और सात्विक लोग सुखभागी होकर देवलोकमें गमन किया करते हैं ॥ ४६ ॥

निष्कैवल्येन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात् ।
पुण्यपापेन मानुष्यं पुण्येनैकेन देवताः ॥ ४७ ॥

जो लोग केवल पापकर्म करते हैं वे तिर्यग् योनिको प्राप्त होते हैं; जो पाप और पुण्य दोनों कर्म करते हैं, वे मनुष्य योनि पाते हैं और जो लोग केवल पुण्य कर्म ही करते हैं वे देव योनिको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ४७ ॥

एवमव्यक्तविषयं क्षरमाहुर्मनीषिणः ।
पञ्चविंशतिमो योऽयं ज्ञानादेव प्रवर्तते ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥ १०३५६ ॥

यह पचीसवां अक्षर पुरुष अज्ञानसे इस ही भांति अव्यक्त प्रकृतिके वशीभूत होकर मनीषी पुरुषोंके जरिये क्षररूपसे कहा जाता है और वही ज्ञानके सहारे सदा अक्षर रूपसे प्रकाशित होता है ॥ ४८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९१ ॥ १०३५६ ॥

: २९२ :

वसिष्ठ उवाच—

एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते ।
देहादेहसहस्राणि तथा समभिपद्यते ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले— इस ही प्रकार वह अक्षर पुरुष प्रकृति संयोगवशसे— बोध हीनताके कारण— अज्ञानका अनुवर्त्ती होकर एक शरीरसे सहस्रों शरीरोंको धारण करता है ॥ १ ॥

तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि ।
उपपद्यति संयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात् ॥ २ ॥

और सत्वादि गुणोंकी सामर्थ्यसे वह सत्वादि गुणोंके सहित कभी तिर्यग् योनि कभी देव-योनिमें उत्पन्न हुआ करता है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मानुषत्वाद्दिवं याति देवो मानुष्यमेव च ।
मानुष्यान्निरयस्थानमानन्त्यं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥

और मनुष्य लोकसे देवलोक, देवलोकसे मनुष्यलोक, वहांसे अनन्त नरकलोक पाता है ॥३॥

कोशकारो यथात्मानं कीटः समनुरुन्धति ।
सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथायमगुणो गुणैः ॥ ४ ॥

जैसे रेशमका कीडा अत्यन्त सूक्ष्म सूत्ररूपी तन्तुओंके जरिये आपही बद्ध होता है, वैसे ही यह निर्गुण अक्षर पुरुष इस लोकमें अपने प्राकृत गुणोंसे बंध जाता है ॥ ४ ॥

द्वंद्वमेति च निर्द्वंद्वस्तासु तास्विह योनिषु ।
शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥ ५ ॥

वह स्वयं द्वन्द्वोंसे रहित होनेपर भी भिन्न भिन्न योनियोंमें जन्म धारण करके सुख-दुःखको भोगता है; उसे सिरके रोग, नेत्ररोग, दन्तशूल और गलग्रह होता है ॥ ५ ॥

जलोदरेऽर्शसां रोगे ज्वरगण्डविषूचिके ।
श्वित्रे कुष्ठेऽग्निदाहे च सिध्मापस्मारयोरपि ॥ ६ ॥

और जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्ड, विषूचिका, श्वित्रकुष्ठ, अग्निदाह, श्वास, खांसी और मिरगी आदि सब रोगोंसे दुःख भोग करता है ॥ ६ ॥

यानि चान्यानि द्वंद्वानि प्राकृतानि शरीरिषु ।
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येषोऽप्यभिमन्यते ।
अभिमन्यत्यभीमानात्तथैव सुकृतान्यपि ॥ ७ ॥

और शरीरमें जो सब दूसरे अनेक प्रकारके प्राकृत सुखदुःखरूपी द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, यह उन सब गुणोंको स्वयं ही ग्रहण करके " मैं दुःखी हूं, मैं रोगी हूं " इस ही भांति अनुभव किया करता है । अभिमानके कारण उस ही योनिसे उत्पन्न हुए सब सुकृत अनुभव करता है ॥ ७ ॥

एकवासाश्च दुर्वासाः शायी नित्यमधस्तथा ।
मण्डूकशायी च तथा वीरासनगतस्तथा ॥ ८ ॥

और मूर्खताके सबब अभिमानी होकर एकही वस्त्र परिधान, दुर्वस्त्रधारण, सदा नीचे स्थानमें शयन, मंडूककी भांति शयन करना; वीरासनसे बैठना, ॥ ८ ॥

चीरधारणमाकाशे शयनं स्थानमेव च ।
इष्टकाप्रस्तरे चैव कण्टकप्रस्तरे तथा ॥ ९ ॥

चीर और वल्कल धारण, सूने स्थानमें शयन और निवास, इष्टकाप्रस्तर, कण्टकप्रस्तर, ॥९॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ।
वीरस्थानाम्बुपङ्के च शयनं फलकेषु च ॥ १० ॥

भस्मप्रस्तर, भूमि शय्यातल, वीरस्थान युद्धभूमि, जल, कीचड और फलक आदि विविध शय्यापर शयन करना; ॥ १० ॥

विविधासु च शय्यासु फलगृद्ध्यान्वितोऽफलः ।
मुञ्जमेखलनग्नत्वं क्षौमकृष्णाजिनानि च ॥ ११ ॥

फलकी वासनासे कभी अनेक प्रकारकी शय्याओंपर सोता है; मूंजकी करधनी पहननी और वस्त्रोंको त्याग करना, नग्न रहना, कभी रेशमी वस्त्र और कभी काला मृगचर्म पहनता है ॥ ११ ॥

शाणीवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ।
सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च ॥ १२ ॥

कभी सन या ऊनके वस्त्र धारण करना, कभी व्याघ्र वा सिंहके चमडोंसे अंग ढकना तथा कभी रेशमी वस्त्र पहनता है ॥ १२ ॥

कीटकावसनश्चैव चीरवासास्तथैव च ।
वस्त्राणि चान्यानि बहून्यभिमन्यत्यबुद्धिमान् ॥ १३ ॥

कीडोंसे निकले हुए रेशमके वस्त्र, जीर्णवस्त्र पहनता है और वह अज्ञानी प्राणी दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्रोंको पहनता है ॥ १३ ॥

भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च ।
एकवस्त्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ॥ १४ ॥

अनेक प्रकारके भोजन लेता है; विचित्र रत्न धारण करता है; एक रात्रिके अनन्तर भोजन, एककालिक भोजन करता है ॥ १४ ॥

चतुर्थाष्टमकालश्च षष्ठकालिक एव च ।
षड्रात्रभोजनश्चैव तथैवाष्टाहभोजनः ॥ १५ ॥

दिनके चौथे, छठवें और आठवे समयमें भोजन करता है; कभी छः रात बिताकर वा आठ दिनोंके बाद भोजन करता है ॥ १५ ॥

सप्तरात्रदशाहारो द्वादशाहार एव च ।
मासोपवासी मूलाशी फलाहारस्तथैव च ॥ १६ ॥

कभी सप्ताह, दशाह और द्वादशाहके अनन्तर भोजन करता है; कभी एक मास उपवास; कभी फल, मूलका आहार करता है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वायुभक्षोऽम्बुपिण्याकगोमयादन एव च ।
गोमूत्रभोजनश्चैव शाकपुष्पाद एव च ॥ १७ ॥

कभी वायु, जल, तिलकल्क, गोमय, गोमूत्र, शाक, फूल आदि खाकर रहता है ॥ १७ ॥

शैवालभोजनश्चैव तथाचामेन वर्तयन् ।
वर्तयञ्शीर्णपर्णैश्च प्रकीर्णफलभोजनः ॥ १८ ॥

कभी शैवाल, सूखे पत्ते और गिरे हुए फलोंका भक्षण करता है ॥ १८ ॥

विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सुखकाङ्क्षया ।
चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च ॥ १९ ॥

कभी जलका आचमन मात्र, कभी सुखकी कामनासे वह विविध प्रकारके कठोर व्रतोंका सेवन करता है; अनेक प्रकारके चिन्ह धारण करता है और विधिपूर्वक चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करता है ॥ १९ ॥

चातुराश्रम्यपन्थानमाश्रयत्याश्रमानपि ।
उपासीनश्च पाषण्डान्गुहाः शैलांस्तथैव च ॥ २० ॥

कभी चारों आश्रमोंके विहित मार्ग और कभी विपरीत मार्गका अनुसरण करता है; कभी पाखण्ड, गुहा और पर्वतोंका आश्रय लेता है ॥ २० ॥

विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रस्रवणानि च ।
विविधानि च जप्यानि विविधानि व्रतानि च ॥ २१ ॥

कभी एकान्तमें शिलाखण्डोंकी छायामें और कभी झरनोंके पास वास करता है; उन स्थानोंमें विविध जप, व्रत, ॥ २१ ॥

नियमान्सुविचित्रांश्च विविधानि तपांसि च ।
यज्ञांश्च विविधाकारान्विधींश्च विविधांस्तथा ॥ २२ ॥

अनेक प्रकारके नियम, तपस्या, अनेक तरहके यज्ञ और अनेक प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करता है ॥ २२ ॥

वणिक्पथं द्विजक्षत्रं वैश्यशूद्रं तथैव च ।
दानं च विविधाकारं दीनान्धकृपणेष्वपि ॥ २३ ॥

कभी वाणिज्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंके व्यवसायका अवलम्बन तथा दीन, अन्धे और कृपण पुरुषोंको अनेक प्रकारके धनदान आदि सब कार्योंको किया करता है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अभिमन्यत्यसंबोधात्तथैव त्रिविधान्गुणान् ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च ।
प्रकृत्यात्मानमेवात्मा एवं विभजत्युत ॥ २४ ॥

वह अपनी मूर्खताके कारण सत्व, रज और तम, इन तीनों गुण तथा धर्म, अर्थ और काम, ये त्रिवर्ग "मुझमें विद्यमान हैं" ऐसा समझते अभिमान करता है; इस प्रकार आत्मा प्रकृतिके संयोगसे अपने स्वरूपके अनेक विभाग करता है ॥ २४ ॥

स्वधाकारवषट्कारौ स्वाहाकारनमस्क्रियाः ।
याजनाध्यापनं दानं तथैवाहुः प्रतिग्रहम् ।
यजनाध्यपने चैव यच्चान्यदपि किंचन ॥ २५ ॥

हे राजन् ! वह कभी स्वधाकार, वषट्कार, स्वाहाकार, नमस्कार, याजन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, यजन और अध्ययन इसी प्रकार अन्य कार्य भी किया करता है ॥ २५ ॥

जन्ममृत्युविवादे च तथा विग्रसनेऽपि च ।
शुभाशुभमयं सर्वमेतदाहुः क्रियापथम् ॥ २६ ॥

कभी जन्म, मृत्यु और विवाद तथा युद्धमें प्रवृत्त रहता है; इन सबको ही पण्डित लोग शुभाशुभ क्रियापथ कहा करते हैं ॥ २६ ॥

प्रकृतिः कुरुते देवी महाप्रलयमेव च ।
दिवसान्ते गुणानेतानभ्यैत्येकोवतिष्ठति ॥ २७ ॥

प्रकृति देवी ही जगत्की सृष्टि और महाप्रलय करती है, आदि पुरुष आत्मा—ब्रह्मा सृष्टिके समयमें सत्वादि गुणोंका विस्तार करके प्रलयकालमें उन्हें अपनेमें लीनकर अकेलाही निवास किया करता है ॥ २७ ॥

रश्मिजालमिवादित्यस्तत्कालेन नियच्छति ।
एवमेषोऽसकृत्सर्वं क्रीडार्थमभिमन्यते ॥ २८ ॥

जैसे सूर्य दिनके प्रारम्भमें अपनी किरणोंको फैलाकर दिनके शेषमें उन्हें समेटकर अकेला ही निवास करता है; इस प्रकार प्रकृतिसे संयुक्त हुआ पुरुष क्रीडाके लिये यह बार बार करता और उन्हें अपना कर्तव्य मानता है ॥ २८ ॥

आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्हृदयप्रियान् ।
एवमेव विकुर्वाणः सर्गप्रलयकर्मणी ॥ २९ ॥

यह त्रिगुणाधिपति आत्मा इस ही भांति बार बार कल्पित अवस्था, वर्ण, कार्य और सत्वादि अनेक प्रकारके हृदयप्रिय ऐसे गुणोंको क्रीडार्थ जानता है और कर्ममार्गमें अनुरक्त होकर सर्ग तथा प्रलयधर्मिणी इस प्रकृतिको विकृत करते हुए त्रिगुणात्मक कार्योंको सिद्ध किया करता है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्रियाक्रियापथे रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणातिगः ।
क्रियाक्रियापथोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥ ३० ॥

वह तीनों गुणोंका अधिपति आत्मा कर्म कर्ता मार्गमें रत और प्रवृत्त होकर प्रकृतिके द्वारा होनेवाले त्रिगुणात्मक कार्यको अपनाही मानता है ॥ ३० ॥

एवं द्वंद्वान्यथैतानि वर्तन्ते मम नित्यशः ।
ममैवैतानि जायन्ते बाधन्ते तानि मामिति ॥ ३१ ॥

इस ही निमित्त प्रकृतिकी प्रेरणासे सुखदुःखरूपी वे सब द्वन्द्व सदा आवर्त्तित हुआ करते हैं; इन द्वन्द्वोंको जीवात्मा अज्ञानतासे अपनाही समझनेसे मुझेही बाधित करते हैं ॥ ३१ ॥

निस्तर्तव्यान्यथैतानि सर्वाणीति नराधिप ।
मन्यतेऽयं ह्यबुद्धित्वात्तथैव सुकृतान्यपि ॥ ३२ ॥

इसलिये मुझे इन द्वन्द्वोंसे निस्तार पानेका उपाय सब प्रकारसे करना उचित है, ऐसा मानता है; क्योंकि मूर्खतासे आत्मा ऐसा समझता है, कि मेरे सब पुण्योंका फल भी ॥ ३२ ॥

भोक्तव्यानि मयैतानि देवलोकगतेन वै ।
इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम् ॥ ३३ ॥

मैं देवलोकगामी होकर भोग करूंगा और इस लोकमें भी शुभाशुभ कर्मोंको भोगूंगा ॥३३॥

सुखमेव च कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम ।
यावदन्तं च मे सौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥ ३४ ॥

इस लोकमें मुझे सदा सुखका उपाय सुकृत कर्मोंको करना चाहिये, क्योंकि इसे एक बार कर सकनेसे मुझे आजीवन सुखे मिलेगा और भविष्यमें अनेक जन्मोंके जीवन पर्यन्त मुझे सुख होगा ॥ ३४ ॥

भविष्यति च मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम् ।
महद्दुःखं हि मानुष्यं हि निरये चापि मज्जनम् ॥ ३५ ॥

और यदि मैं इस लोकमें दुष्कृत कर्म करूंगा तो मुझे यहां अनन्त दुःख भोग करना होगा । मनुष्य जन्म महादुःखका कारण है; पापके कारण मनुष्य ही नरकमें डूबता है ॥ ३५ ॥

निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनैष्याम्यहं पुनः ।
मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः ।
मनुष्यत्वाच्च निरयं पर्यायेणोपगच्छति ॥ ३६ ॥

और कालक्रमसे नरकसे छुटकारा मिलनेपर मुझे मनुष्य जन्म प्राप्त होगा; इसी तरह मनुष्यत्वसे देवत्व, देवत्वसे फिर मनुष्यत्व और मनुष्यत्वसे पर्यायक्रमसे नरकमें जाना पडता है ॥ ३६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

य एवं वेत्ति वै नित्यं निरात्मात्मगुणैर्वृतः ।
तेन देवमनुष्येषु निरये चोपपद्यते ॥ ३७ ॥

जो निरात्मा अथवा चेतनत्व आदि आत्मगुणोंसे परिवृत होकर सदा ऐसा ही मानता है कि 'यह मैं हूं' वही देव, मनुष्य और नरलोकमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ३७ ॥

ममत्वेनावृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ।
सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु ॥ ३८ ॥

सदा ममतासे बंधा हुआ पुरुष सहस्रों कोटि सृष्टिकालमें उस ममतायुक्त नश्वर शरीरोंमें भ्रमण किया करता है ॥ ३८ ॥

य एवं कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ।
स एव फलमश्नाति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान् ॥ ३९ ॥

जो इस प्रकार शुभाशुभ फलात्मक ऐसा कर्म करता है, वही तीनों लोकोंमें शरीर धारण करके इस ही भांति फल पाता है ॥ ३९ ॥

प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ।
प्रकृतिश्च तदश्नाति त्रिषु लोकेषु कामगा ॥ ४० ॥

प्रकृतिही शुभाशुभ फलजनक कर्म करती है और तीनों लोकोंमें इच्छानुसार गमन करनेवाली वहही उन सब कर्मोंका फल भोगती है ॥ ४० ॥

तिर्यग्योनौ मनुष्यत्वे देवलोके तथैव च ।
त्रीणि स्थानानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह ॥ ४१ ॥

इसलिये तिर्यग् योनि, मनुष्ययोनि और देवयोनि इन कर्म फल भोगके तीनों स्थानोंको प्राकृत जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

अलिङ्गां प्रकृतिं त्वाहुर्लिङ्गैरनुमिमीमहे ।
तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि पश्यति ॥ ४२ ॥

सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति अलिङ्ग अर्थात् अनुमेय है; जैसे महदादि कार्योंसे प्रकृतिका अनुमान होता है, वैसेही आभास चैतन्यके जरिये पौरुष लिङ्ग अर्थात् पुरुषका अनुमापक देहादिके अनुगत चैतन्यका अनुमान हुआ करता है ॥ ४२ ॥

स लिङ्गान्तरमास्राद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम् ।
व्रणद्वाराण्यधिष्ठाय कर्माण्यात्मनि मन्यते ॥ ४३ ॥

निर्विकार प्रकृतिसाधक वह पुरुष कर्मके अनुसार लिङ्गान्तर अर्थात् पुर्यष्टक गर्भ लाभ करके व्रणद्वार इन्द्रियवर्गोंमें अधिष्ठान करते हुए इस स्थूल शरीरका अभिमान करता है ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।
वागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्वेव गुणैः सह ।
अहमेतानि वै कुर्वन्ममैतानीन्द्रियाणि च ॥ ४४ ॥

और इस स्थूल शरीरमें श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् आदि सब कर्मेन्द्रिय निज निज गुणोंके सहित गुणोंमें प्रवृत्त हुआ करती हैं । पुरुष " मैं इन कार्योंको किया करता हूं; ये इन्द्रियां मेरी हैं " ऐसा ही ज्ञान किया करता है ॥ ४४ ॥

निरिन्द्रियोऽभिमन्येत व्रणवानस्मि निर्व्रणः ।
अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालः कालमात्मनः ॥ ४५ ॥

वास्तवमें वह इन्द्रियोंसे रहित है; इसी प्रकार वह व्रण—छिद्र रहित होकर भी अपनेको व्रणवान् मानता है; वह मूढता निबन्धनसे अलिङ्ग होनेपर भी लिंग अर्थात् पुर्यष्टक, अमर होनेपर भी आत्माको मरणधर्मी समझता है ॥ ४५ ॥

असत्त्वं सत्त्वमात्मानमतत्त्वं तत्त्वमात्मनः ।
अमृत्युर्मृत्युमात्मानमचरश्चरमात्मनः ॥ ४६ ॥

सत्त्वसे पृथक् होके भी आत्माको सत्त्वरूप, महाभूतादि सत्त्वसे रहित होकर तत्त्वस्वरूप, मृत्युसे रहित होकर भी मृत्युग्रस्त और अचर होकर भी चलने—फिरनेवाला मानता है ॥ ४६ ॥

अक्षेत्रः क्षेत्रमात्मानमसर्गः सर्गमात्मनः ।
अतपास्तप आत्मानमगतिर्गतिमात्मनः ॥ ४७ ॥

अक्षेत्र होके आत्माको क्षेत्र, असर्ग होके आत्माको सर्ग, तप नहीं करता तोभी आत्माको तपस्वी और अगति अर्थात् गतागतिसे रहित होके भी आत्माको आने जानेवाला समझता है ॥ ४७ ॥

अभवो भवमात्मानमभयो भयमात्मनः ।
अक्षरः क्षरमात्मानमबुद्धिस्त्वभिमन्यते ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥ १०४०४ ॥

संसाररहित होके आत्माको संसारी, अभय होके आत्माको भययुक्त, अक्षर होके आत्माको क्षर और बुद्धिसे परे होनेपर भी बुद्धिका अभिमान करता है ॥ ४८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ बानबेवां अध्याय समाप्त ॥ २९२ ॥ १०४०४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: २९३ :

वसिष्ठ उवाच—

एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ।
सर्गकोटिसहस्राणि पतनान्तानि गच्छति ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले— हे राजन् ! पुरुष इस ही भांति प्रकृतिसंसर्गके वशमें निज मूर्खता और मूर्खोंके सेवाकी समाप्तिमें पतनशील होकर सहस्र कोटि बार जन्म लेता है ॥ १ ॥

धाम्ना धामसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ।
तिर्यग्योनौ मनुष्यत्वे देवलोके तथैव च ॥ २ ॥

और चित्कलाके संयोगसे देव, मनुष्य, तिर्यग्योनिमें और एक स्थानसे सहस्रों स्थानोंमें भी बार बार मरकर जन्म लेता है ॥ २ ॥

चन्द्रमा इव कोशानां पुनस्तत्र सहस्रशः ।
लीयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेष ह्यबुद्धिमान् ॥ ३ ॥

इस ही भांति अज्ञानी पुरुष प्रकृतिके संयोगसे मूढ होकर चन्द्रमाकी भांति फिर उन सहस्र भूतयोनियोंको प्राप्त किया करता है ॥ ३ ॥

कलाः पञ्चदशा योनिस्तद्धाम इति पठ्यते ।
नित्यमेतद्विजानीहि सोमः षोडशमी कला ॥ ४ ॥

चिदाभासके सहित मूल प्रकृति, दसों इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय ये पन्द्रह कलायोनि हैं, सोम अर्थात् चिदात्मा षोडश कला है; यह निश्चय जाने कि वे ही योनिभूत पञ्चदश कला और सोमरूप चिदात्मा षोडश कलाकी प्रभा नित्य प्रकाशित हुआ करती है ॥ ४ ॥

कलायां जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान् ।
धाम तस्योपयुञ्जन्ति भूय एव तु जायते ॥ ५ ॥

अविद्याबलसे पुरुष बुद्धिहीन होकर योनिभूत उन पन्दरहों कलाओंमें बार बार निरन्तर जन्म ग्रहण करता है । वेही कलाएं जीवके आश्रय हैं और जीवका उन्हींसे जन्म होता है ॥ ५ ॥

षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ।
न तूपयुज्यते देवैर्देवानुपयुनक्ति सा ॥ ६ ॥

अनन्तर दूसरे समस्त भूत उन जायमान पुरुषके धाम अर्थात् आनन्दरूप षोडश कलाको अवलम्बन करके फिर जन्म किया करते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म उस षोडश कलाको सोम अर्थात् चिदात्मरूपसे जानना चाहिये, चिदात्मा इन्द्रियोंसे रक्षित नहीं है, परन्तु वही सत्ता और स्फूर्ति प्रदान करके इन्द्रियोंको पालन किया करता है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं तां क्षपयित्वा हि जायते नृपसत्तम ।
सा ह्यस्य प्रकृतिर्दृष्टा तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते ॥ ७ ॥

हे नृपसत्तम ! षोडश कला प्राणियोंकी उत्पत्तिका कारण है, उसके विना प्राणिसमूह किसी प्रकार भी जन्म ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते; क्योंकि वह सोलहवी कला ही प्राणियोंके सृष्टिकार्यकी प्रकृति रूप वर्णित हुई है। इस ही लिये पण्डित लोग कहते हैं, कि कार्यरूपी प्रकृतिके नष्ट होनेसे ही मुक्ति हुआ करती है ॥ ७ ॥

तदेवं षोडशकलं देहमव्यक्तसंज्ञकम् ।
ममायमिति मन्वानस्तत्रैव परिवर्तते ॥ ८ ॥

जो उस सोलह कलाओंसे युक्त अर्थात् अव्यक्तसंज्ञक प्राकृत देहमें ममता करता है, वह अज्ञानी जीव यह मेरा है, ऐसा माननेके कारण उसीमें भटकता है ॥ ८ ॥

पञ्चविंशस्तथैवात्मा तस्यैवा प्रतिबोधनात् ।
विमलस्य विशुद्धस्य शुद्धानिलनिषेवणात् ॥ ९ ॥

उस पचीसवें महात्मा पुरुष विमल, विशुद्ध, चिन्मय परब्रह्म स्वरूपको न जाननेके कारण और शुद्ध अशुद्ध वस्तुओंके सेवनसे ॥ ९ ॥

अशुद्ध एव शुद्धात्मा तादृग्भवति पार्थिव ।
अबुद्धसेवनाच्चापि बुद्धोऽप्यबुधतां व्रजेत् ॥ १० ॥

वह निर्मल, संगरहित आत्मा भी शुद्ध और अशुद्धके समान होता है; क्रमसे वह मूर्खके संगसे ज्ञानी भी बुद्धिहीन होता है ॥ १० ॥

तथैवाप्रतिबुद्धोऽपि ज्ञेयो नृपतिसत्तम ।
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु सेवनात्प्राकृतो भवेत् ॥ ११ ॥

हे राजश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मूर्ख भी ज्ञातीका संग करनेसे विवेकशील होता है, ऐसा समझना चाहिये; त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी परिचर्याके अनुसार निर्गुण आत्मा भी त्रिगुणान्वित हुआ करता है ॥ ११ ॥

करालजनक उवाच—

अक्षरक्षरयोरेष द्वयोः संबन्ध इष्यते ।
स्त्रीपुंसोर्वापि भगवन्संबन्धस्तद्वदुच्यते ॥ १२ ॥

करालजनक बोले— हे भगवन् ! जैसे लोकसमाजमें स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध इष्ट है, शास्त्रमें क्षर और अक्षर अर्थात् प्रकृति और पुरुषका सम्बन्ध भी उस ही भांति कहा गया ॥ १२ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ऋते न पुरुषेणेह स्त्री गर्भं धारयत्युत ।
ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तयेत्तथा ॥ १३ ॥

और जैसे इस लोकमें विना पुरुषके स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती, वैसे ही पुरुष भी स्त्रीके विना किसी शरीरको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १३ ॥

अन्योन्यस्याभिसंबन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात् ।
रूपं निर्वर्तयत्येतदेवं सर्वासु योनिषु ॥ १४ ॥

इसलिये सब योनियोंमें ही परस्परके सम्बन्धसे परस्परके गुणोंका आश्रय लेकर ही किसी शरीरकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥

रत्यर्थमभिसंरोधादन्योन्यगुणसंश्रयात् ।
ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥ १५ ॥

परन्तु रतिके निमित्त ऋतुकालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके सम्बन्ध और गुणसंश्रयसे जैसा रूप उत्पन्न होता है, उसका दृष्टान्त कहता हूं ॥ १५ ॥

ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातृगुणास्तथा ।
अस्थि स्नायु च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज ॥ १६ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! पिता–मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं, वे सभी विभाग क्रमसे सन्तानमें उत्पन्न हुआ करते हैं । अस्थि, स्नायु और मज्जा, इन गुणोंको मैं पितासे प्राप्त हुए समझता हूं ॥ १६ ॥

त्वङ्मांसं शोणितं चैव मातृजान्यपि शुश्रुम ।
एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते ॥ १७ ॥

और त्वचा, मांस और रक्त– इन तीनों गुणोंको मातासे उत्पन्न होते हैं, ऐसा मैंने सुना है; हे द्विजश्रेष्ठ ! यही बात वेद और शास्त्रमें पढी जाती है ॥ १७ ॥

प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते ।
वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम् ॥ १८ ॥

और इसलिये इसे अवश्य ही प्रमाणिक समझना होगा । क्योंकि वेद और शास्त्रोंमें जो प्रमाणरूपसे पठित होता है, वह और वेद और शास्त्र ये दोनों ही सनातन प्रमाण हैं ॥१८॥

एवमेवाभिसंबद्धौ नित्यं प्रकृतिपूरुषौ ।
पश्यामि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो न विद्यते ॥ १९ ॥

इस ही भांति प्रकृति और पुरुष परस्पर नित्य मिलित हुए हैं । हे भगवन् ! इसलिये मैं देखता हूं, कि इसमें मोक्षधर्म किसी प्रकार भी विद्यमान नहीं रह सकता ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ वानन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वथा ॥ २० ॥

यद्यपि दूसरा कोई मोक्षविषयक निदर्शन हो, तो उसे यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये; आप सदा ही प्रत्यक्षदर्शी हैं; आपको कुछ भी अविदित नहीं है ॥ २० ॥

मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम् ।
अदेहमजरं दिव्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥ २१ ॥

हम भी मोक्षगामी हैं, इससे जो अनामय, अदेह, अजर, दिव्य, अतीन्द्रिय ईश्वरसे भी अतिरिक्त और नित्य है, हम उसहीकी आकांक्षा करते हैं ॥ २१ ॥

वसिष्ठ उवाच—

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम् ।
एवमेतद्यथा चैतन्न गृह्णाति तथा भवान् ॥ २२ ॥

वसिष्ठ बोले— हे राजन् ! आपने जो यह वेद और शास्त्रके प्रमाण कहे और मन ही मन जैसी धारणा की है, वह ठीक ऐसी ही है; ॥ २२ ॥

धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः ।
न तु ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथावत्त्वं नरेश्वर ॥ २३ ॥

हे नरराज ! आपने वेद और शास्त्र दोनों ग्रन्थोंमें अभ्यास किया है, परन्तु उसमेंसे यथार्थ तत्त्व अर्थका तुम्हें ठीक ज्ञान नहीं है ॥ २३ ॥

यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः ।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा ॥ २४ ॥

जो वेद और शास्त्रोंके अभ्यासमें अनुरक्त होकर उनके मर्मको यथावत् ग्रहण नहीं कर सकता उसका ग्रंथ—अभ्यास निष्फल है ॥ २४ ॥

भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः ।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥ २५ ॥

जो ग्रन्थके अर्थको नहीं जान सकता, वह केवल ग्रन्थका बोझ ढोया करता है; जो उनके अर्थको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, उसका अभ्यास निष्फल नहीं होता ॥ २५ ॥

ग्रन्थस्यार्थं च पृष्टः संस्तादृशो वक्तुमर्हति ।
यथा तत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति ॥ २६ ॥

वैसे अर्थवित् पुरुषसे यदि कोई ग्रन्थका अर्थ पूछे, तो जिस प्रकार वह ग्रन्थके अर्थको समझता है, वैसा ही दूसरोंको उपदेश दे सकता है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्तु संसत्सु कथयेद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् ।
स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात् ॥ २७ ॥

जो स्थूल तथा मन्द बुद्धि पण्डितोंकी सभामें ग्रन्थका अर्थ नहीं कह सकता, वह मन्दबुद्धि किस प्रकार निश्चय करके ग्रन्थकी व्याख्या करेगा ? ॥ २७ ॥

निर्णयं चापि छिद्रात्मा न तं वक्ष्यति तत्त्वतः ।
सोपहासात्मतामेति यस्माच्चैवात्मवानपि ॥ २८ ॥

शास्त्र ज्ञान रहित मनुष्य ग्रन्थके यथार्थ तत्त्वको निर्णयात्मक व्याख्या नहीं कर सकता; यदि वह कुछ कहे तो आत्मज्ञानी होनेपर भी लोगोंके उपहासको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

तस्मात्त्वं शृणु राजेन्द्र यथैतदनुदृश्यते ।
याथातथ्येन साङ्ख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र ! इसलिये सांख्य और योगके ज्ञाता महात्माओंके मतमें जिस प्रकार मोक्षका स्वरूप देखा जाता है, उसे मैं यथार्थरूपसे कहता हूं, सुनो ॥ २९ ॥

यदेव योगाः पश्यन्ति सांख्यैस्तदनुगम्यते ।
एवं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स बुद्धिमान् ॥ ३० ॥

योगी लोग जिस तत्त्वका अनुभव करते हैं, सांख्य लोग उसहीका अनुगमन किया करते हैं; इसलिये जो योग और सांख्य दोनोंको ही एक जानता है, वही बुद्धिमान् है ॥ ३० ॥

त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जास्थि स्नायु च ।
एतदैन्द्रियकं तात यद्भवानिदमाह वै ॥ ३१ ॥

हे तात ! त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रियां स्त्री–पुरुषके सम्बन्धसे शरीरमें उत्पन्न होती हैं, यह तुमने कहा है ॥ ३१ ॥

द्रव्याद्द्रव्यस्य निष्पत्तिरिन्द्रियादिन्द्रियं तथा ।
देहाद्देहमवाप्नोति बीजाद्बीजं तथैव च ॥ ३२ ॥

द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय, देहसे देह और बीजसे बीज उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ३२ ॥

निरिन्द्रियस्याबीजस्य निर्द्रव्यस्यास्य देहिनः ।
कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मनः ॥ ३३ ॥

निरिन्द्रिय, बीजशक्तिशून्य, निर्द्रव्य, अदेही और निर्गुण परमात्मामें किस प्रकार गुण हो सकते हैं ? ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव निविशन्ति च ।
एवं गुणाः प्रकृतितो जायन्ते च न सन्ति च ॥ ३४ ॥

समस्त आकाश आदि गुण सत्त्व आदि गुणोंसे ही उत्पन्न होते हैं, और उनहींमें निविष्ट हुआ करते हैं, इस प्रकार सत्त्व, रज, तम ये गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होके उसहींमें लीन होते हैं ॥ ३४ ॥

त्वङ्मांसं रुधिरं मेदः पित्तं मज्जास्थि स्नायु च ।
अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि प्राकृतानि वै ॥ ३५ ॥

त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और स्नायु, ये आठों शुक्रके जरिये प्रकृतिसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सबको प्राकृतिक जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

पुमांश्चैवापुमांश्चैव त्रैलिङ्ग्यं प्राकृतं स्मृतम् ।
नैव पुमान्पुमांश्चैव स लिङ्गीत्यभिधीयते ॥ ३६ ॥

पुमान् जीव, अपुमान् पञ्च वियदादि और प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता ये लिङ्गत्रय प्राकृत हैं। विशुद्ध चिन्मात्रा लिङ्गी प्राकृत पुमान् वा अपुमान् कुछ भी नहीं है ॥ ३६ ॥

अलिङ्गा प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यति सात्मजैः ।
यथा पुष्पफलैर्नित्यमृतवो मूर्तयस्तथा ॥ ३७ ॥

जैसे सब ऋतु फल और पुष्पके जरिये सदा मूर्तिमान् रूपसे मालूम होती हैं, वैसे ही प्रकृति अलिङ्ग पुरुषको प्राप्त होकर आत्मज लिङ्ग महदादि कार्योंके जरिये अनुभूत हुआ करती है ॥ ३७ ॥

एवमप्यनुमानेन ह्यलिङ्गमुपलभ्यते ।
पञ्चविंशतिमस्तात लिङ्गेष्वनियतात्मकः ॥ ३८ ॥

इस ही भांति अलिङ्ग पुरुष—शुद्ध चेतनरूप आत्मा—भी अनुमानसे अनुभूत होता है। हे तात! वही पचीसवां तत्त्व सभी लिङ्गोंमें अप्रतिहतरूपसे व्याप्त है ॥ ३८ ॥

अनादिनिधनोऽनन्तः सर्वदर्शी निरामयः ।
केवलं त्वभिमानित्वाद्गुणेष्वगुण उच्यते ॥ ३९ ॥

आत्मा उत्पत्तिविनाशसे रहित, अनन्त, सर्वदर्शी और निरामय है; वह केवल देहादि गुणोंके अध्यासके कारण निर्गुणरूपसे वर्णित हुआ है ॥ ३९ ॥

गुणा गुणवतः सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणाः ।
तस्मादेवं विजानन्ति ये जना गुणदर्शिनः ॥ ४० ॥

जो गुणवान् हैं, उन्हींमें संयोग आदि गुण विद्यमान रहते हैं; निर्गुण आत्मामें किस प्रकार उक्त गुण विद्यमान रह सकते हैं? इसलिये गुणदर्शी लोग ही उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदा त्वेष गुणान्सर्वान्प्राकृतानभिमन्यते ।
तदा स गुणवानेव परमेणानुपश्यति ॥ ४१ ॥

जब जीवात्मा प्राकृतकाल आदि गुणोंका अभिमान त्यागकर जय करे, तब वह देहादिमें आत्मभावरूप भ्रम परित्याग करके परम पुरुषका दर्शन करनेमें समर्थ होता है ॥ ४१ ॥

यत्तद्बुद्धेः परं प्राहुः सांख्या योगाश्च सर्वशः ।
बुध्यमानं महाप्राज्ञमबुद्धपरिवर्जनात् ॥ ४२ ॥

सांख्य और योगी लोग जिसे बुद्धिसे अतिरिक्त, अबुद्ध जड अहङ्कार आदिके परित्यागसे बुध्यमान, महाप्राज्ञ, ॥ ४२ ॥

अप्रबुद्धमथाव्यक्तं सगुणं प्राहुरीश्वरम् ।
निर्गुणं चेश्वरं नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥ ४३ ॥

अप्रबुद्ध अर्थात् अज्ञात, अव्यक्त, सगुण ईश्वर, निर्गुण ईश्वर, नित्य और सर्वकार्योंके नियन्ता कहा गया है ॥ ४३ ॥

प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधाः ।
सांख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमैषिणः ॥ ४४ ॥

वह परमात्मा ही प्रकृति और उसके गुणोंकी अपेक्षा पचीसवां तत्त्व है, ऐसा सांख्य और योगमार्गमें कुशल और परमतत्त्वकी इच्छा करनेवाले विद्वान् समझते हैं ॥ ४४ ॥

यदा प्रबुद्धास्त्वव्यक्तमवस्थाजन्मभीरवः ।
बुध्यमानं प्रबुध्यन्ति गमयन्ति समं तदा ॥ ४५ ॥

बाल्य आदि अवस्था और जन्मभयसे भीरु ज्ञानवान् पुरुष जब अव्यक्त परमात्माको यथार्थ-रूपसे जान सकते है, तब उन्हें परब्रह्म परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥

एतन्निदर्शनं सम्यगसम्यगनुदर्शनम् ।
बुध्यमानाप्रबुद्धाभ्यां पृथक्पृथगरिंदम ॥ ४६ ॥

हे अरिदमन ! ज्ञानवान् पुरुष जीव और ईश्वरके अभेदज्ञानको शास्त्रसम्मत सम्यक् वा पृथक् कहा करते हैं, वह उत्तम है; और अज्ञानी लोग जीव–ईश्वरके अभेद ज्ञानको अशास्त्र असम्यक् तथा पृथक् कहा करते हैं, वह ठीक नहीं है; ॥ ४६ ॥

परस्परेणैतदुक्तं क्षराक्षरनिदर्शनम् ।
एकत्वमक्षरं प्राहुर्नानात्वं क्षरमुच्यते ॥ ४७ ॥

क्षर और अक्षर अर्थात् जीव ब्रह्मका निदर्शन परस्पर इस ही भांति कहा गया है, परन्तु पण्डित लोग एक मात्र अविनाशी पुरुषको अक्षर और अनेक रूप विनाशीको क्षर कहा करते हैं ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं यदासम्यक्प्रवर्तते ।
एकत्वं दर्शनं चास्य नानात्वं चाप्यदर्शनम् ॥ ४८ ॥

जब पुरुष रज्जुसर्पकी भांति भ्रमात्मक पचीसवें तत्त्वकी सब भांतिसे आलोचना करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह परम आत्माका दर्शन करते हुए आत्माके एकत्वका बोध ज्ञान और नानात्वका बोध अज्ञान है, इसे विशेष रूपसे जानता है ॥ ४८ ॥

तत्त्वनिस्तत्त्वयोरेतत्पृथगेव निदर्शनम् ।
पञ्चविंशतिसर्गं तु तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥ ४९ ॥

तत्त्वजनित और निस्तत्त्व अजन्य दोनोंका निदर्शन पृथक् है, परन्तु मनीषी लोग पञ्चविंशति सर्गको तत्व कहके निर्देश करते हैं ॥ ४९ ॥

निस्तत्त्वं पञ्चविंशस्य परमाहुर्निदर्शनम् ।
वर्गस्य वर्गमाचारं तत्त्वं तत्त्वात्सनातनम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥ १०४५४ ॥

दूसरे विद्वान् चौबीस जड तत्त्वोंको तत्त्व कहते हैं और पचीसवें चेतन परमात्माको निस्तत्त्व कहते हैं; यह चैतन्य ही परमात्माका लक्षण है । महत्तत्व आदि विकार क्षरतत्त्व हैं और परम पुरुष परमात्मा क्षर तत्त्वोंसे भिन्न उनका सनातन आधार है ॥ ५० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९३ ॥ १०४५४ ॥

: २९४ :

करालजनक उवाच—

नानात्वैकत्वमित्युक्तं त्वयैतदृषिसत्तम ।
पश्यामि चाभिसंदिग्धमेतयोर्वै निदर्शनम् ॥ १ ॥

करालजनक बोले— हे ऋषिसत्तम ! आपने अनित्य क्षर और नित्य अक्षरके अनेकत्व और एकत्वरूप दो दृष्टान्त प्रदर्शित किये, उनमेंसे एकत्वमें बन्ध और मोक्ष विषयक व्यवस्थाकी अनुपपत्ति तथा अनेकत्वमें आत्मनाशका प्रसङ्ग; इस प्रकारके संशयमें दोनों पक्षके अवलोकन करता हूं ॥ १ ॥

तथाप्रबुद्धबुद्धाभ्यां बुध्यमानस्य चानघ ।
स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमेतन्न संशयः ॥ २ ॥

हे अनघ ! अज्ञानी और ज्ञानवान् पुरुषोंसे बुध्यमान जीवात्माका तत्व मैं स्थूल बुद्धिके कारण निश्चय रूपसे नहीं जान सकता हूं; मेरे इस कथनमें संशय नहीं है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अक्षरक्षरयोरुक्तं त्वया यदपि कारणम् ।
तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रनष्टमिव मेऽनघ ॥ ३ ॥

और आपने जो क्षर तथा अक्षरको समझनेके लिये अनेकत्व एकत्वरूप कारण निर्देश किये हैं, बुद्धिकी अस्थिरता निबन्धनसे उसे भी मैं निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता हूं ॥ ३ ॥

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्वैकत्वदर्शनम् ।
बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! इसलिये पहले कहे हुए नानात्व और एकत्व रूप दर्शन, बुद्ध, अप्रतिबुद्ध और बुध्यमान क्या है, यह ठीक सुनना चाहता हूं ॥ ४ ॥

विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च ।
सांख्यं योगं च कात्स्न्र्येन पृथक्चैवापृथक्च ह ॥ ५ ॥

विद्या, अविद्या, नित्य अक्षर, अनित्य क्षर, वस्तुतत्त्वविवेक सांख्य, चित्तवृत्तिनिरोधयोग, पृथक् भेद और अपृथक् अभेद, इन सबको फिर यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

वसिष्ठ उवाच—

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि ।
योगकृत्यं महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥ ६ ॥

वसिष्ठ बोले— हे महाराज ! आपने जिन विषयोंको पूछा है, मैं उनका यथार्थ वृत्तान्त तुमसे विशेष करके कहूंगा; अब आप मेरे समीप पृथक् रूपसे योगकृत्यका वर्णन सुनिये ॥ ६ ॥

योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम् ।
तच्चापि द्विविधं ध्यानमाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ७ ॥

योगियोंको योग अवश्य करना योग्य है, योगरूप ध्यान ही उनका परमबल है; वेदवित् पुरुष उस ध्यानको दो प्रकारका कहा करते हैं ॥ ७ ॥

एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च ।
प्राणायामस्तु सगुणो निर्गुणो मनसस्तथा ॥ ८ ॥

एक चित्तकी एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम; उनमेंसे प्राणायाम सगुण विषयमें और चित्तकी एकाग्रता निर्गुण विषयमें कही गई है ॥ ८ ॥

मूत्रोत्सर्गे पुरीषे च भोजने च नराधिप ।
त्रिकालं नाभियुञ्जीत शेषं युञ्जीत तत्परः ॥ ९ ॥

हे नरनाथ ! मूत्रत्याग, मलत्याग और भोजन, इन तीनों कालके अतिरिक्त पुरुष आलस्य-रहित होके सब समयमें ही योगका अनुष्ठान करे ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः ।
दशाद्वादशभिर्वापि चतुर्विंशात्परं ततः ॥ १० ॥
तं चोदनाभिर्मतिमानात्मानं चोदयेदथ ।
तिष्ठन्तमजरं तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभिः ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् मुनि शब्द आदि विषयोंसे अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंको निवृत्त करते हुए पवित्र मन होकर परमात्मतत्त्व जाननेके निमित्त नासिकापुटमें वायुको आकर्षण करके अंगूठेसे सिर-पर्यन्त सब शरीर वायुके जरिये परिपूर्ण करके धीरे धीरे ब्रह्मरन्ध्रसे मस्तकमें, मस्तकसे भौंके बीच, भ्रूमध्यसे नेत्रमें; नेत्रसे नासामूलमें, नासामूलसे जिह्वामें, जिह्वासे कण्ठकूपमें, कण्ठकूपसे हृदयमें, हृदयसे नाभिस्थलमें, नाभिस्थलसे पीठ, पीठसे फिर हृदय, हृदयसे गुह्य, गुह्यसे ऊरुमूल, ऊरुमूलसे दोनों जानु, जानुसे चितिमूलमें, चितिमूलसे जङ्घामें, जङ्घासे गुल्फ और गुल्फसे पैरके अंगूठेमें वायुका आकर्षण तथा ध्यान, धारणा, समाधि और प्रकृति पुरुषका भेद ज्ञान, इन बाईस प्रकारके प्राणायामके जरिये मनीषी लोग जिसको सर्व शरीरमें स्थित और अजर कहा करते हैं, उस चौवीस तत्त्वोंके समुदायरूप प्रकृतिसे परे परम पुरुष परमात्माकी ओर प्रेरण करे ॥ १०–११ ॥

तैश्चात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम ।
द्रव्यं ह्यहीनमनसो नान्यथेति विनिश्चयः ॥ १२ ॥

हे राजन् ! हमने ऐसा सुना है, कि जो इस प्रकार प्राणायाम करते हैं वे ही सदा परमात्माको जान सकते हैं; और यह निश्चय है, कि जिसका चित्त काम आदिके जरिये कभी आहत नहीं हुआ है, और जो सदा ध्यानमें मग्न है, उसे ही यह योगरूप व्रत अनुष्ठेय है; ऐसे लोगोंके अतिरिक्त बहिर्मुख चित्तवाले पुरुषके लिये अनुष्ठेय नहीं है ॥ १२ ॥

विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पूर्वरात्रे परे चैव धारयेत मनोऽऽत्मनि ॥ १३ ॥

योगाचारी पुरुष अल्पाहारी, जितेन्द्रय और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर रात्रिके प्रथम और शेष भागमें आत्मामें मन संयुक्त करे ॥ १३ ॥

स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा मिथिलेश्वर ।
मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पाषाण इव निश्चलः ॥ १४ ॥

हे मिथिलेश्वर ! जो मनके जरिये इन्द्रियवर्गोंको स्थिरीकृत करके बुद्धिके सहारे चित्त स्थिर करता हुआ पत्थरकी भांति निश्चल ॥ १४ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्थाणुवच्चाप्यकम्पः स्याद्गिरिवच्चापि निश्चलः ।
बुधा विधिविधानज्ञास्तदा युक्तं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

स्थाणु—प्राय अकम्प और पहाडकी भांति अविचल होसके, विधि वा विधानवित् पण्डित लोग अपने अनुभवसे उसे ही योगी कहा करते हैं ॥ १५ ॥

न शृणोति न चाघ्राति न रस्यति न पश्यति ।
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः ॥ १६ ॥

और जो समाधि—समयमें सुनना, सूंघना, चखना, देखना और छूना आदि विषय ज्ञानका अनुभव नहीं करता तथा अन्य विषयका मनन नहीं करता, ॥ १६ ॥

न चाभिमन्यते किंचिन्न च बुध्यति काष्ठवत् ।
तदा प्रकृतिमापन्ने युक्तमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

वा काष्ठके समान स्थित होकर किसी विषयका अभिमान या बोध नहीं करता, मनीषी लोग उसे विशुद्ध स्वभावसे युक्त योगी कहा करते हैं ॥ १७ ॥

निवाते च यथा दीप्यन्दीपस्तद्वत्स दृश्यते ।
निरिङ्गश्चोचलश्चोर्ध्वं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

जैसे निर्वात स्थानमें जलता हुआ दीपक अविचलित रूपसे प्रकाशित होता हुआ दीखता है, वैसेही समाधिस्थ पुरुष समाधिसमयमें बुद्धि आदि अन्तःकरणधर्मसे रहित निश्चल होकर—ऊर्ध्व, अध और तिर्यग् गतिसे रहित होकर— निश्चल भावसे प्रकाशित होता है ॥ १८ ॥

तदा तमनुपश्येत यस्मिन्दृष्टे तु कथ्यते ।
हृदयस्थोऽन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधैः ॥ १९ ॥

हे तात ! जिस परमात्माके साक्षात्कार होनेसे हृदयस्थ अन्तरात्माका ' अहं ब्रह्म ' यह ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों मेरे समान पुरुषोंके जरिये अभिहित नहीं होते, समाधि समयमें समाधिस्थ पुरुष उस परमात्माको देख सकता है; ॥ १९ ॥

विधूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथात्मनि ॥ २० ॥

उस समयमें धूमरहित अग्नि, रश्मिवान् सूर्य और आकाशस्थ वैद्युत अग्निकी भांति आत्माका योगीके हृदयमें दर्शन होता है ॥ २० ॥

यं पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः ।
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ह्ययोनिममृतात्मकम् ॥ २१ ॥

महात्मा, धृतिमान्, मनीषी, और ब्रह्मशास्त्रोंमें निष्ठा रखनेवाले ब्राह्मण लोग उस अयोनि तथा अमृतस्वरूप परब्रह्मका दर्शन करते हैं ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेवाहुरणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् ।
तदन्तः सर्वभूतेषु ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥ २२ ॥

वह ब्रह्म अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् करके वर्णित है; वह सर्व भूतोंमें स्थिर रूपसे विद्यमान है तथापि सबके अगोचर है ॥ २२ ॥

बुद्धिद्रव्येण दृश्येत मनोदीपेन लोककृत् ।
महतस्तमसस्तात पारे तिष्ठन्नतामसः ॥ २३ ॥

हे तात ! ज्ञानरूप द्रविणयुक्त मनुष्य मनोमय दीपकके जरिये महान् तमोगुणके पारमें स्थित ईश्वरातिरिक्त भूरादि भुवनके कर्ता उस परमात्माका दर्शन करते हैं ॥ २३ ॥

स तमोनुद इत्युक्तस्तत्त्वज्ञैर्वेदपारगैः ।
विमलो वितमस्कश्च निर्लिङ्गोऽलिङ्गसंज्ञितः ॥ २४ ॥

सर्वज्ञ वेदपारग ब्राह्मण लोग इस ही कारण उसे तमोनुद कहा करते हैं; वह निर्मल, तमसे रहित, लिङ्ग हीन और अलिङ्ग नामसे प्रख्यात है ॥ २४ ॥

योगमेतद्धि योगानां मन्ये योगस्य लक्षणम् ।
एवं पश्यं प्रपश्यन्ति आत्मानमजरं परम् ॥ २५ ॥

हे राजन् ! यही योगियोंका योग मैं यही योगका लक्षण मानता हूं; इस योगबलसे ही महात्मा योगी लोग सर्वदर्शी अजर–अमर परमात्माका दर्शन किया करते हैं ॥ २५ ॥

योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया ।
सांख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसंख्यानिदर्शनम् ॥ २६ ॥

हे तात ! मैंने तुम्हारे समीप यहां पर्यन्त योग–ज्ञानको यथावत् वर्णन किया; परन्तु जिसके जरिये सब भ्रम दूर होके परमात्मदर्शन होता है, उस सांख्य ज्ञानको फिर तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो ॥ २६ ॥

अव्यक्तमाहुः प्रकृतिं परां प्रकृतिवादिनः ।
तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥ २७ ॥

हे राजसत्तम ! प्रकृतिवादी आत्मदर्शी सांख्य लोग पहली–मूल प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और उसहीसे दूसरा तत्त्व महत्तत्त्व प्रकट हुआ ॥ २७ ॥

अहंकारस्तु महतस्तृतीयमिति नः श्रुतम् ।
पञ्च भूतान्यहंकारादाहुः सांख्यानुदर्शिनः ॥ २८ ॥

महत् तत्त्वसे तृतीय तत्त्व अहङ्कार प्रकट हुआ ऐसा हमने सुना है; और अहङ्कारसे पांच सूक्ष्म तन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है, ऐसा ही सांख्य आत्मदर्शी कहा करते हैं ॥२८॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्चापि षोडश ।
पञ्च चैव विशेषा वै तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ २९ ॥

अव्यक्तसे पञ्चतन्मात्र पर्यन्त इन आठोंको प्रकृति और अन्तःकरणके सहित एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च स्थूल भूत, इन सोलहोंको विकार कहते हैं । इनमेंसे वियदादि पञ्चभूत विशेष रूपसे और शेष ग्यारहों निज निज विषयोंके प्रकाशक होनेसे इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुए हैं ॥ २९ ॥

एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः ।
सांख्ये विधिविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे रताः ॥ ३० ॥

सदा सांख्य मार्गमें रत मनीषी विधिविधानवित् पण्डितोंने सांख्यके बीच चौबीस तत्त्वोंको-अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्च तन्मात्रा—इन आठ प्रकृतियोंसहित सोलह विकार यहांतक ही विचार किया है ॥ ३० ॥

यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते ।
लीयन्ते प्रतिलोमानि सृज्यन्ते चान्तरात्मना ॥ ३१ ॥

जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, वह उसहीमें लीन हुआ करता है । सृष्टिकालमें सब प्राणि अन्तरात्मासे अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर प्रतिलोममें लीन होते हैं ॥ ३१ ॥

अनुलोमेन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः ।
गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार सब गुण समुद्रसे उत्पन्न हुई लहरकी भांति सदा अनुलोमक्रमसे ही उत्पन्न होके विलोमक्रमसे अपने कारणभूत गुणोंमें लीन हुआ करते हैं ॥ ३२ ॥

सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम ।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च यदासृजत् ।
एवमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञेयचिन्तकैः ॥ ३३ ॥

हे राजेन्द्र ! इतना प्रकृतिके सर्ग और प्रलयका विषय है; सर्ग और प्रलय केवल एक ही नहीं है, प्रकृति आदिकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है । प्रलयकालमें पुरुषका एकत्व और सृष्टिकालमें उसका अनेकत्व होता है; ज्ञानवान् पण्डित लोगोंको ऐसा ही प्रकृतिका एकत्व और नानात्व जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ।
एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतरनु तत्त्ववान् ।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ॥ ३४ ॥

अव्यक्त प्रकृति ही इस अधिष्ठाता पुरुषको सृष्टिकालमें नानात्वकी ओर ले जाती है; यही पुरुषके एकत्वका निदर्शन है । अर्थतत्त्वके ज्ञाताको प्रलय कालमें प्रकृतिमें एकता और सृष्टि कालमें अनेकता होती है, यह जानना चाहिये; इसही प्रकार पुरुषभी प्रलयकालमें एक ही है, परंतु सृष्टिकालमें प्रकृतिका प्रेरक होनेसे उसमें नानात्वका आरोप होता है ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बहुधात्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम् ।
तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति ॥ ३५ ॥

चिदात्मा प्रसवात्मिका प्रकृतिको अनेक प्रकार विभक्त किया करता है । वह प्रकृतिही क्षेत्र-रूपसे वर्णित हुई है, महात्मा पञ्चविंशतितम पुरुष उस क्षेत्रमें ही अधिष्ठान करता है ॥३५॥

अधिष्ठातेति राजेन्द्र प्रोच्यते यतिसत्तमैः ।
अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति नः श्रुतम् ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! इसीसे यतिश्रेष्ठ उसे अधिष्ठाता कहा करते हैं। हमने ऐसा सुना है कि क्षेत्रोंके अधिष्ठान निबन्धनसे पुरुष क्षेत्रोंका अधिष्ठाता होता है ॥ ३६ ॥

क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते ।
अव्यक्तिके पुरे शेते पुरुषश्चेति कथ्यते ॥ ३७ ॥

और वह अव्यक्त प्रकृतिको अपना क्षेत्र जानता है, इस ही सबबसे वह अधिष्ठाता आत्मा क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित हुआ करता है; प्राकृत शरीररूपी पुरमें अन्तर्यामीरूपसे शयन करनेसे उसे पुरुष कहते हैं ॥ ३७ ॥

अन्यदेव च क्षेत्रं स्यादन्यः क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
क्षेत्रमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञाता वै पञ्चविंशकः ॥ ३८ ॥

जब पुरुष प्रकृतिके पुर्यष्टक क्षेत्रमें प्रविष्ट होता है, तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ये दोनों पृथक् रूपसे कहे जाते हैं । क्षेत्र अव्यक्त कहा गया है, पञ्चविंशतितम पुरुष उसका ज्ञाता है; ॥ ३८ ॥

अन्यदेव च ज्ञानं स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते ।
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशकः ॥ ३९ ॥

इसलिये ज्ञान और ज्ञेय परस्पर पृथक् कहे हैं । इनमेंसे अव्यक्त ज्ञान और पचीसवां पुरुष ज्ञेयरूपसे वर्णित हुआ है ॥ ३९ ॥

अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तथेश्वरम् ।
अनीश्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम् ॥ ४० ॥

अव्यक्तको क्षेत्र, सत्त्व, अर्थात् बुद्धि वा ईश्वर और ईश्वर–शासक आदि सब आरोपित हैं, ऐसा कहा करता है। पचीसवां तत्त्व परम पुरुष जडतत्त्व और ईश्वरसे रहित पृथक् है ॥४०॥

सांख्यदर्शनमेतावत्परिसंख्यानुदर्शनम् ।
सांख्यं प्रकुरुते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

सांख्य दर्शन इतना ही है । इस दर्शनके अनुसार सांख्य लोग स्थूल सूक्ष्म क्रमसे चिदात्मामें जो जगत्प्रपञ्च लीन होता है, उसे देखते हैं और प्रकृतिको जगत्का कारण कहते हैं । इसलिये इस दर्शनका नाम सांख्य दर्शन है ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वानि च चतुर्विंशत्परिसंख्याय तत्त्वतः ।
सांख्याः सह प्रकृत्या तु निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः ॥ ४२ ॥

तथा वे सांख्यवेत्ता लोग प्रकृतिके सहित चौवीसों तत्त्वोंकी यथावत् गिनती करके पच्चीसवें पुरुषको निस्तत्त्व कहा करते हैं ॥ ४२ ॥

पञ्चविंशोऽप्रबुद्धात्मा बुध्यमान इति स्मृतः ।
यदा तु बुध्यतेऽऽत्मानं तदा भवति केवलः ॥ ४३ ॥

पच्चीसवां बुध्यमान जीव अप्रबुद्ध प्रकृतिको परित्याग करके आत्मदर्शन कर सकनेसे वह केवल शुद्ध चैतन्यरूपसे निवास करता है ॥ ४३ ॥

सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषितं तव तत्त्वतः ।
एवमेतद्विजानन्तः साम्यतां प्रतियान्त्युत ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! मैंने तुम्हारे समीप यह सम्यक्दर्शन—सांख्यका यथावत् वर्णन किया है, लोग इसे विशेषरूपसे जाननेसेही अवश्य ब्रह्मत्व लाभ करते हैं ॥ ४४ ॥

सम्यङ्निदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा ।
गुणतत्त्वान्यथैतानि निर्गुणोऽन्यस्तथा भवेत् ॥ ४५ ॥

प्रकृति पुरुषके साक्षात्कारको ही सम्यक् दर्शन कहते हैं; इसहीमें सर्पकी भांति अब्रह्मदर्शन है, वह सम्यक् दर्शन नहीं है; जैसे निर्गुण पुरुषसे विभिन्न महदादि व्यावहारिक प्रथाके अनुसार दृश्यत्व निबन्धन प्रत्यक्षरूपसे गिना जाता है, वैसे ही निर्गुण पुरुषका भी दर्शन हुआ करता है ॥ ४५ ॥

न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्विद्यते पुनः ।
विद्यतेऽक्षरभावत्वादपरस्परमव्ययम् ॥ ४६ ॥

इस ही भांति आत्मदर्शी विदेहमुक्त पुरुषोंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है और सदेहमुक्त पुरुषके अक्षरत्व निबन्धनसे सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प आदि ऐश्वर्य समाधिकालका निरुपाधिक सुख और अव्यय भाव हुआ करता है ॥ ४६ ॥

पश्येरन्नेकमतयो न सम्यक्तेषु दर्शनम् ।
तेऽव्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिंदम ॥ ४७ ॥

हे अरिदमन ! जो लोग एकमात्र परमात्मदर्शनके अतिरिक्त अनेक वस्तुओंका दर्शन करते हैं, वे पूर्णदर्शी नहीं हो सकते; वल्कि वे बार बार जन्म लेके इस लोकमें शरीर धारण किया करते हैं ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वमेतद्विजानन्तो न सर्वस्य प्रबोधनात् ।
व्यक्तीभूता भविष्यन्ति व्यक्तस्य वशवर्तिनः ॥ ४८ ॥

और जो लोग अर्थके सहित इस प्रपञ्चको विशेष रूपसे जानते हैं, वे लोग इससे भिन्न परमात्माके तत्त्वको न जाननेके कारण शरीरके और काम-क्रोध आदि दोषोंके वशवर्ती होंगे ॥ ४८ ॥

सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वः पञ्चविंशकः ।
य एनमभिजानन्ति न भयं तेषु विद्यते ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ १०५०३ ॥

हे राजन् ! अव्यक्त सर्व और पच्चीसवां पुरुष असर्वरूपसे कहा गया है, इसलिये जो लोग इस असर्व पच्चीसवें पुरुषको सब भांतिसे जान सकते हैं, उन्हें फिर संसारके दुःखोंको नहीं भोगना पडता ॥ ४९ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९४ ॥ १०५०३ ॥

: २९५ :

वसिष्ठ उवाच—

सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम ।
विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले— हे नृपसत्तम ! मैंने आपके समीप यहांतक ही सांख्यदर्शन वर्णन किया, अब फिर विद्या और अविद्याके विषयको विस्तारपूर्वक क्रमसे कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥

अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्वप्रलयधर्मि वै ।
सर्गप्रलयनिर्मुक्तं विद्यां वै पञ्चविंशकम् ॥ २ ॥

पण्डित लोग सर्ग और प्रलय धर्मयुक्त अव्यक्तको अविद्या तथा सर्ग वा प्रलयधर्मरहित चौवीस तत्त्वोंसे परे पच्चीसवें तत्त्व परम पुरुषको विद्या कहा करते हैं ॥ २ ॥

परस्परमविद्यां वै तन्निबोधानुपूर्वशः ।
यथोक्तमृषिभिस्तात सांख्यस्यास्य निदर्शनम् ॥ ३ ॥

हे तात ! ऋषियोंने सांख्यशास्त्रकी सम्यक् निदर्शनस्वरूप परस्परकी विद्या जिस प्रकार वर्णन की है, उसे तुम्हारे समीप विस्तारके सहित क्रमसे कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥

कर्मेन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम् ।
बुद्धीन्द्रियाणां च तथा विशेषा इति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥

सब कर्मेन्द्रियोंकी विद्या ज्ञानेन्द्रियां मानी हैं; कर्मेन्द्रियोंसे ज्ञानेन्द्रियां श्रेष्ठ हैं और ज्ञानेन्द्रियोंकी विद्या पञ्चमहाभूत हैं, ऐसा हमने सुना है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विशेषाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः ।
मनसः पञ्चभूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥ ५ ॥

मनीषी कहते हैं कि स्थूल पञ्चभूतोंकी विद्या मन है और मनकी विद्या पञ्चमहाभूत है ॥ ५ ॥

अहंकारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः ।
अहंकारस्य च तथा बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! पञ्चभूतोंकी विद्या अहंकार है, और इसमें संशय नहीं है; अहंकारकी विद्या बुद्धि अर्थात् महत्तत्व है ॥ ६ ॥

बुद्धेः प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वानां परमेश्वरम् ।
विद्या ज्ञेया नरश्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ॥ ७ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! महदादि सब तत्त्वोंकी विद्या अव्यक्त परमेश्वरी प्रकृति है; यह विद्या सब पुरुषोंकी ज्ञेय है; इसीको ज्ञानकी परम विधि कहते हैं ॥ ७ ॥

अव्यक्तस्य परं प्राहुर्विद्यां वै पञ्चविंशकम् ।
सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयं ज्ञानस्य पार्थिव ॥ ८ ॥

हे राजन् ! परम परमात्माका पचीसवें तत्त्वके रूपमें वर्णन किया गया है, उसीको अव्यक्त प्रकृतिकी परम विद्या कहा है; वही सम्पूर्ण ज्ञानका सर्वरूप ज्ञेय है ॥ ८ ॥

ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविंशकम् ।
तथैव ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविंशकः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! सर्व ज्ञानका ज्ञेय सर्व अव्यक्त कहा गया है और अव्यक्त ज्ञान, पचीसवां पुरुष ज्ञेय तथा अव्यक्त ज्ञान पञ्चविंशतितम पुरुष ज्ञाता है, यह पहले कहा गया है ॥ ९ ॥

विद्याविद्यार्थतत्त्वेन मयोक्तं ते विशेषतः ।
अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥ १० ॥

हे राजन् ! मैंने विद्या और अविद्याको यथार्थ रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया; परन्तु पहले जो क्षर और अक्षर कहके वर्णित हुआ है, उसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो ॥ १० ॥

उभावेतौ क्षरावुक्तावुभावेतौ च नक्षरौ ।
कारणं तु प्रवक्ष्यामि यथा ख्यातौ तु तत्त्वतः ॥ ११ ॥

अनादित्वनिबन्धनसे प्रकृति और जीव दोनों ही अक्षर रूपसे कहे गये हैं, और भूतोंके सहित विज्ञानघन आत्माका भी नाश होता है, इस श्रुतिके सबब प्रकृति तथा जीव दोनोंही क्षर रूपसे वर्णित हुए हैं । परन्तु मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार मैं इनका कारण यथार्थ रूपसे कहता हूं ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनादिनिधनावेतावुभावेवेश्वरौ मतौ ।
तत्त्वसंज्ञावुभावेतौ प्रोच्येते ज्ञानचिन्तकैः ॥ १२ ॥

ये प्रकृति और जीव दोनों ही अनादि, अनन्त और ईश्वर माने गये हैं और सांख्यज्ञानके ज्ञाता इन दोनोंको तत्व कहके व्याख्या करते हैं ॥ १२ ॥

सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्तं प्राहुरक्षरम् ।
तदेतद्गुणसर्गाय विकुर्वाणं पुनः पुनः ॥ १३ ॥

प्रकृति सृष्टि और प्रलय धर्मके कारण उसको अक्षर कहते हैं; वही प्रकृति महदादि गुणोंकी उत्पत्तिके लिये बार बार विकारको प्राप्त होती है, इसलिये उसे क्षर भी कहते हैं ॥ १३ ॥

गुणानां महदादीनामुत्पद्यति परस्परम् ।
अधिष्ठानात्क्षेत्रमाहुरेतत्तत्पञ्चविंशकम् ॥ १४ ॥

परस्पर अधिष्ठानके हेतु पचीसवां चिदाभास जीव वा महदादि गुणोंकी उत्पत्तिस्थान कहके इसे क्षेत्र कहा करते हैं, इसलिये जीवको भी अक्षर कहते हैं ॥ १४ ॥

यदा तु गुणजालं तदव्यक्तात्मनि संक्षिपेत् ।
तदा सह गुणैस्तैस्तु पञ्चविंशो विलीयते ॥ १५ ॥

हे तात ! जब योगी अव्यक्त आत्मा अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप परब्रह्ममें गुणोंको लीन करता है, तब उन गुणोंके सहित पचीसवां तत्त्व पुरुष भी परमात्मामें लीन होनेपर उसे भी क्षर कह सकते हैं ॥ १५ ॥

गुणा गुणेषु लीयन्ते तदैका प्रकृतिर्भवेत् ।
क्षेत्रज्ञोऽपि यदा तात तत्क्षेत्रे संप्रलीयते ॥ १६ ॥

उस समय जैसे केवल एकमात्र प्रकृति ही विद्यमान रहती है, वैसे ही पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष भी निज उत्पत्तिस्थान परब्रह्ममें लीन होनेपर उस समय एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान रहता है ॥ १६ ॥

तदाक्षरत्वं प्रकृतिर्गच्छते गुणसंज्ञिता ।
निर्गुणत्वं च वैदेह गुणेषु प्रतिवर्तनात् ॥ १७ ॥

हे विदेहराज ! जब पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त होता है, तब महदादि गुणोंसे युक्त अव्यक्त प्रकृति और देहाश्रित प्रत्येक श्रोत्र आदि गुणोंमें अविद्यमानताके कारण क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है; इस ही भांति क्षेत्रज्ञ भी क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है ॥ १७ ॥

एवमेव च क्षेत्रज्ञः क्षेत्रज्ञानपरिक्षये ।
प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८ ॥

परन्तु हमने ऐसा सुना है, कि यह क्षेत्रज्ञ पुरुष क्षेत्रज्ञान अर्थात् प्रकृति ज्ञानसे रहित होनेसे ही स्वाभाविक निर्गुण होता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

क्षरो भवत्येष यदा तदा गुणवतीमथ ।
प्रकृतिं त्वभिजानाति निर्गुणत्वं तथात्मनः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! यह क्षेत्रज्ञ स्वभावसे क्षर होनेपर भी निर्विकल्प समाधिके समयमें जब गुणवती प्रकृतिको अपनेसे पृथक् बोध करता है, तब अपना निर्गुणत्व जान सकता है ॥ १९ ॥

तदा विशुद्धो भवति प्रकृतेः परिवर्जनात् ।
अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान् ॥ २० ॥

और जब क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान् होकर " मैं अन्य हूं, प्रकृति मुझसे भिन्न है " ऐसा समझता है, तब प्रकृति परित्याग करनेसे वह केवल शुद्ध रूपसे स्थिति करता है ॥ २० ॥

तदैषोऽन्यत्वतामेति न च मिश्रत्वमाव्रजेत् ।
प्रकृत्या चैव राजेन्द्र नमिश्रोऽन्यश्च दृश्यते ॥ २१ ॥

हे राजेन्द्र ! प्रकृति परित्यक्त होनेसे ही यह क्षेत्रज्ञ पञ्चविंशतितम रूप संज्ञा वा मिश्रभाव परित्याग करता है, क्योंकि क्षेत्रज्ञ प्रकृतिके सहित मिश्रित और पृथक् भी दिखायी देता है ॥ २१ ॥

यदा तु गुणजालं तत्प्राकृतं विजुगुप्सते ।
पश्यते चापरं पश्यं तदा पश्यन्न संज्वरेत् ॥ २२ ॥

परन्तु जब क्षेत्रज्ञ प्राकृत गुणोंको घृणास्पद बोध करता है और उससे विरत हो जाता है, तब वह परब्रह्मका दर्शन करके फिर उसे परित्याग करना नहीं चाहता ॥ २२ ॥

किं मया कृतमेतावद्योऽहं कालमिमं जनम् ।
मत्स्यो जालं ह्यविज्ञानादनुवर्तितवांस्तथा ॥ २३ ॥

बल्कि उस समय उसके अन्तःकरणमें इस प्रकार ज्ञान उदय होता है, कि मैंने यह क्या किया ? जैसे मछली अज्ञानके कारण जालकी अनुवर्त्ती होती है, वैसे ही मैं इस लोकमें इस कालरूप प्राकृत शरीरका अनुवर्त्ती होता रहा हूं ॥ २३ ॥

अहमेव हि संमोहादन्यमन्यं जनाज्जनम् ।
मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानिह ॥ २४ ॥

जैसे मछली जलको अपना जीवन समझके एक तालावसे दूसरे तालावमें जाती है, वैसे ही मैं भी मोहवशसे एक देह छोडके देहान्तरका अनुवर्त्ती होता रहा हूं ॥ २४ ॥

मत्स्योऽन्यत्वं यथाज्ञानादुदकान्नाभिमन्यते ।
आत्मानं तद्वदज्ञानादन्यत्वं चैव वेद्म्यहम् ॥ २५ ॥

और जैसे मछली मूर्खताके कारण अपनेको जलसे अलग नहीं समझती, वैसे ही मैं भी अज्ञानके वशमें होकर इस प्राकृत शरीरको आत्मासे पृथक् नहीं समझता हूं ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ममास्तु धिगबुद्धस्य योऽहं मग्नमिमं पुनः ।
अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम् ॥ २६ ॥

इसलिये मैं अज्ञ हूं, मुझे धिकार है । क्योंकि मैं मोहके सबब इस विपद्ग्रस्त शरीरका बार बार अनुवर्त्ती होता हूं ॥ २६ ॥

अयमत्र भवेद्बन्धुरनेन सह मोक्षणम् ।
साम्यमेकत्वमायातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥ २७ ॥

मैं चाहे कोई क्यों न हूं, इस संसारमें यही परमात्माही मेरा सखा है; इसके सङ्ग हमारी योग्यता है, इसके सङ्ग मैंने समता और एकता लाभ की है, जैसा वह है वैसा मैंही हूं ॥२७॥

तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै ।
अयं हि विमलो व्यक्तमहमीदृशकस्तथा ॥ २८ ॥

और इसके साथ मैं अपनी समानता देखता हूं, मैं निश्चयही इसकेही सदृश हूं; ये निष्कपट-निर्मल हैं, मैं भी इस प्रकारही हूं ॥ २८ ॥

योऽहमज्ञानसंमोहादज्ञया संप्रवृत्तवान् ।
ससङ्गयाहं निःसङ्गः स्थितः कालमिमं त्वहम् ॥ २९ ॥

मैं आसक्तिसे सर्वथा रहित होके भी अज्ञान और मोहसे इतने समयतक इस आसक्तिपूर्ण जड प्रकृतिके साथ रहा हूं ॥ २९ ॥

अनयाहं वशीभूतः कालमेतं न बुद्धवान् ।
उच्चमध्यमनीचानां तामहं कथमावसे ॥ ३० ॥

इस प्रकृतिके वशमें होके मुझे आजतकके समयका पता भी न चला; उत्तम देवता, मध्यम मनुष्य और अधम तिर्यग् रूपसे विकृत प्रकृतिमें मैं किस प्रकार निवास करूं ? ॥ ३० ॥

समानयानया चेह सहवासमहं कथम् ।
गच्छाम्यबुद्धभावत्वादेषेदानीं स्थिरो भवे ॥ ३१ ॥

यह इसी प्रकार है, यह मेरे साथ रहकर मेरी समानता कर रही है; अब इसके साथ मैं अज्ञानतावश सहवास कैसे कर सकता हूं ? देखो, अब मैं स्थिर हो रहा हूं ॥ ३१ ॥

सहवासं न यास्यामि कालमेतद्धि वञ्चनात् ।
वञ्चितोऽस्म्यनया यद्धि निर्विकारो विकारया ॥ ३२ ॥

मैं निर्विकार होके भी इस विकार स्वरूप प्रकृतिसे वञ्चित हुआ हूं, इतने समयतक इसने मेरे साथ वञ्चना की है, इसलिये अब इसके साथ नहीं रहूंगा ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चायमपराधोऽस्या अपराधो ह्ययं मम ।
योऽहमत्राभवं सक्तः पराङ्मुखमुपस्थितः ॥ ३३ ॥

उसमें उसका कुछ अपराध नहीं है, अपना ही सारा अपराध स्वीकार करना होगा । जब मैं मूर्खताके सबब बाह्य विषयोंको भोग करनेकी अभिलाषासे परमात्मासे विमुख होकर इस प्रकृतिमें आसक्त हुआ हूं, ॥ ३३ ॥

ततोऽस्मि बहुरूपासु स्थितो मूर्तिष्वमूर्तिमान् ।
अमूर्तश्चापि मूर्तात्मा ममत्वेन प्रधर्षितः ॥ ३४ ॥

तब अमूर्त होनेपर भी मैं प्रकृतिकी अनेक रूपवाली योनियोंमें वर्त्तमान रहनेसे मेरा चित्त ममतासे आकृष्ट होकर देहधारी बनकर रहा ॥ ३४ ॥

प्रकृतेरनयत्वेन तासु तास्विह योनिषु ।
निर्ममस्य ममत्वेन किं कृतं तासु तासु च ।
योनीषु वर्तमानेन नष्टसंज्ञेन चेतसा ॥ ३५ ॥

पहले मैंने इसके प्रति ममता की थी, उसके कारण अनेक योनियोंमें मुझे भटकना पडा; मैं ममतारहित हूं, तोभी इस प्रकृति जनित ममताने अनेक योनियोंमें मुझे डालकर मेरी दुर्दशा की; इसके साथ नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकनेके कारण मेरी चेतना नष्ट हुई थी ॥ ३५ ॥

न ममात्रानया कार्यमहंकारकृतात्मया ।
आत्मानं बहुधा कृत्वा येयं भूयो युनक्ति माम् ।
इदानीमेष बुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहंकृतः ॥ ३६ ॥

जो हो, अब इस अहंकारमयी प्रकृतिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है; क्योंकि यह प्रकृति अहंकारके जरिये आत्माके सर्वज्ञत्व आदि सब गुणोंको आवरण करती हुई अनेक शरीरमें विभक्त करके बार बार मुझे संसारमें नियुक्त करती है । जो ममता सदा अहंकारके जरिये हमारे बुद्ध्यादि धर्मोंका आवरण करती है, वह इसी प्रकृतिमें ही विद्यमान रहे, मैं जो ममता-रहित और अहंकारशून्य हूं, उसे इस समय मैंने जान लिया है ॥ ३६ ॥

ममत्वमनया नित्यमहंकारकृतात्मकम् ।
अपेत्याहमिमां हित्वा संश्रयिष्ये निरामयम् ॥ ३७ ॥

इसलिये मैं प्रकृतिको और इसकी अहंकार स्वरूपिणी ममताको परित्याग करके निरामय, निर्द्वन्द्व परमात्माका आश्रय करूंगा ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनेन साम्यं यास्यामि नानयाहमचेतसा ।
क्षेमं मम सहानेन नैकत्वमनया सह ।
एवं परमसंबोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धवान् ॥ ३८ ॥

परमात्माके सङ्ग समता लाभ करूंगा। जड प्रकृति समानता नहीं धारण करूंगा; इस परमात्माका आसरा करनेसे अवश्य ही मेरा मङ्गल होगा; कदापि जडस्वभाववाली प्रकृतिके सङ्ग संगर्ग न करूंगा; पचीसवां पुरुष इस ही प्रकार उत्तम विवेकसे अपने शुद्ध स्वरूप अनामय परमात्माको समझ सकेगा; ॥ ३८ ॥

अक्षरत्वं नियच्छेत त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ।
अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा ।
निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग्भवति मैथिल ॥ ३९ ॥

फिर वह परमात्मबोधके सबब क्षरको परित्याग करके अक्षरत्व लाभ करेगा। हे मैथिल ! अव्यक्त और व्यक्त, धर्मयुक्त सगुण तथा निर्गुण है, उसमेंसे जो अव्यक्तका भी आदिभूत निर्गुण परब्रह्ममें दर्शन कर सकता है, वही स्वयं ब्रह्मत्व लाभ करता है ॥ ३९ ॥

अक्षराक्षरयोरेतदुक्तं तव निदर्शनम् ।
मयेह ज्ञानसंपन्नं यथाश्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४० ॥

हे राजन् ! क्षर और अक्षरके वेदविहित और अनुभवयुक्त ज्ञानसे पूरित, निदर्शनको तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया है ॥ ४० ॥

निःसंदिग्धं च सूक्ष्मं च विबुद्धं विमलं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम् । ॥ ४१ ॥

फिर श्रुतिके अनुसार सन्देरहित, सूक्ष्म और निर्दोष ज्ञानका वही विषय तुमसे कहता हूं, सुनो ॥ ४१ ॥

सांख्ययोगौ मया प्रोक्तौ शास्त्रद्वयनिदर्शनात् ।
यदेव शास्त्रं सांख्योक्तं योगदर्शनमेव तत् ॥ ४२ ॥

दोनों शास्त्रोंके अनुभवके अनुसार सांख्य और योग दोनों ही पृथक् पृथक् मेरे जरिये कहे गये हैं; परन्तु जो शास्त्र सांख्योक्त है, उसे ही निश्चय योगदर्शन जानो ॥ ४२ ॥

प्रबोधनकरं ज्ञानं सांख्यानामवनीपते ।
विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया ॥ ४३ ॥

हे पृथ्वीपाल ! मैंने शिष्योंके हितकामनासे उनके लिये प्रबोधक सांख्यज्ञानको विशिष्ट रूपसे तुम्हारे समीप प्रकाशित किया है ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बृहच्चैव हि तच्छास्त्रमित्याहुः कुशला जनाः ।
अस्मिंश्च शास्त्रे योगानां पुनर्दधि पुनः शरः ॥ ४४ ॥

बुद्धिमान् कुशल पण्डित लोग इस सांख्य शास्त्रको बृहत् और शीघ्र फल देनेवाला कहते हैं; इसलिये योगी लोग इस शास्त्रका और योग शास्त्रका अत्यन्त ही समादर करते हैं ॥ ४४ ॥

पञ्चविंशात्परं तत्त्वं न पश्यति नराधिप ।
सांख्यानां तु परं तत्र यथावदनुवर्णितम् ॥ ४५ ॥

हे नरनाथ ! सांख्य लोगोंने सांख्य शास्त्रमें पञ्चविंशति तत्वके अतिरिक्त तत्व स्वीकार नहीं किया है; उन लोगोंका जो परम तत्व है, उसे ही मैंने यथावत् वर्णन किया है ॥ ४५ ॥

बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ।
बुध्यमानं च बुद्धं च प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शातिपर्वणि पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥ १०५४९ ॥

सांख्य लोग कहते हैं, कि लोग मूर्खतासे नित्य प्रबुद्ध परमात्मा और जीवके एकत्व स्वरूपको न जानकर दोनों भेद कल्पना किया करते हैं; परन्तु यथार्थमें योगसे जीवब्रह्मकी एकता मालूम हुआ करती है ॥ ४६ ॥

महाभारतके शातिपर्वमें दो सौ पञ्चानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९५ ॥ १०५४९ ॥

: २९६ :

वसिष्ठ उवाच—

अप्रबुद्धमथाव्यक्तमिमं गुणविधिं शृणु ।
गुणान्धारयते ह्येषा सृजत्याक्षिपते तथा ॥ १ ॥

वसिष्ठ बोले– हे राजन् ! अनन्तर अप्रबुद्ध और अव्यक्त परमात्मा तथा सत्व आदि गुणोंकी सृष्टिका वर्णन सुनो; वह गुणोंको धारण करता है; इसलिये कर्तृत्वका अभिमान लकर सृष्टि और संहार किया करता है ॥ १ ॥

अजस्रं त्विह क्रीडार्थं विकुर्वन्ति नराधिप ।
आत्मानं बहुधा कृत्वा तान्येव च विचक्षते ॥ २ ॥

हे प्रजानाथ ! जीवात्मा इस लोकमें क्रीडाके निमित्त वारंवार विकृत हुआ करता है; परमात्मा मायाके सहारे अपनेको विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट, सूत्रात्मा और अन्तर्यामी रूपसे अनेक भागमें विभक्त करके उन सब रूपोंको यथार्थ कहके बोध करता है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतदेवं विकुर्वाणां बुध्यमानो न बुध्यते ।
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्यपि ॥ ३ ॥

उस समय बुध्यमान जीव "मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता हूं" इस ही प्रकार अभिमानके अनुसार सत्वादि गुणोंको धारण करते हुए सृष्ट्यादिके कर्त्तृत्वरूपसे विकृत होकर बुद्ध परब्रह्मको यथार्थरूपसे नहीं जान सकता और कार्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता, इस ही भांति अविद्या कार्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है; इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहके निर्देश करते हैं ॥ ३ ॥

न त्वेव बुध्यतेऽव्यक्तं सगुणं वाथ निर्गुणम् ।
कदाचित्त्वेव खल्वेतदाहुरप्रतिबुद्धकम् ॥ ४ ॥

परमात्मा सगुण हो या निर्गुण, उसे प्रकृति जड होनेके कारण कभी नहीं जानती; इसलिये सांख्य शास्त्रके विद्वान् इस प्रकृतिको अप्रतिबुद्ध कहते हैं ॥ ४ ॥

बुध्यते यदि वाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ।
बुध्यमानो भवत्येष सङ्गात्मक इति श्रुतिः ॥ ५ ॥

यदि प्रकृति जानती है, तो यह केवल पचीसवें तत्त्व पुरुषकोही उससे संयुक्त होकरही जान सकती है; प्रकृतिके साथ संयुक्त होनेके कारणही जीव सङ्गात्मक होता है, ऐसा श्रुती कहती है ॥ ५ ॥

अनेनाप्रतिबुद्धेति वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ।
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमानं वदन्त्युत ॥ ६ ॥

पुरुषके अव्यक्त और अविकारी होनेपर भी ससङ्गत्व निबन्धनसे लोग उसे मूढ कहा करते हैं; और महात्मा पचीसवां पुरुष कार्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता इस ही प्रकार अविद्याकार्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहा करते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चविंशं महात्मानं न चासावपि बुध्यते ।
षड्विंशं विमलं बुद्धमप्रमेयं सनातनम् ॥ ७ ॥

उस ही निमित्त पचीसवें महान् परमात्माको भी नहीं जान सकता, परन्तु केवल चैतन्य-स्वरूप निर्मल बुद्ध अप्रमेय सनातन छब्बीसवां परमात्माको भी नहीं जानता है ॥ ७ ॥

सततं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च बुध्यते ।
दृश्यादृश्ये ह्यनुगतमुभावेव महाद्युती ॥ ८ ॥

परंतु वह परमात्मा सदा चतुर्विंश अव्यक्त प्रकृतिको और पचीसवें पुरुषको जाननेमें समर्थ है । वह तेजस्वी आत्मा दृश्य और अदृश्य अर्थात् कार्य तथा कारण रूप स्थूल सूक्ष्म समस्त पदार्थोंमें सदा स्वरूपसे अनुगत रहता है ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अव्यक्तं न तु तद्ब्रह्म बुध्यते तात केवलम् ।
केवलं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं न पश्यति ॥ ९ ॥

हे तात ! वह अव्यक्त प्रकृति केवल ब्रह्मको ही नहीं जान सकते है; चौबीसवीं अव्यक्त प्रकृति अद्वितीय ब्रह्मको और पचीसवें जीवात्माको नहीं देख सकती है ॥ ९ ॥

बुध्यमानो यदात्मानमन्योऽहमिति मन्यते ।
तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचनः ॥ १० ॥

जब बुध्यमान जीव अव्यक्त ब्रह्मकी ओर दृष्टि रखकर अपनेको "मैं प्रकृतिसे अन्य हूं" ऐसा मानता है, तब यह प्रकृतिका अधिपति होता है ॥ १० ॥

बुध्यते च परां बुद्धिं विशुद्धामनलां यदा ।
षड्विंशो राजशार्दूल तथा बुद्धत्वमाव्रजेत् ॥ ११ ॥

जब यह विशुद्ध निर्मल और अनन्त विषयिणी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करता है, तब वह छब्बीसवें तत्त्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार कर तद्रूप होता है ॥ ११ ॥

ततस्त्यजति सोऽव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणम् ।
निर्गुणः प्रकृतिं वेद गुणयुक्तामचेतनाम् ॥ १२ ॥

हे राजशार्दूल ! उस ब्रह्मविषयक विद्याका उदय होनेपर षड्विंश धर्म बुद्धत्व लाभ करके सर्ग और प्रलयधर्मवाली प्रकृतिको परित्याग किया करता है। वह निर्गुण होके त्रिगुणमयी अचेतन प्रकृतिको जान लेता है ॥ १२ ॥

ततः केवलधर्मासौ भवत्यव्यक्तदर्शनात् ।
केवलेन समागम्य विमुक्तोऽऽत्मानमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

इसलिये अव्यक्त प्रकृतिका साक्षात्कार होनेसे अर्थात् प्रकृतिको अपनेसे अभिन्न देखनेसे ही जीव कैवल्यको प्राप्त करता है। जीव तीनों उपाधिसे मुक्त होकर ब्रह्मके साथ मिलकर अपने परमार्थ स्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥

एतत्तत्त्वमित्याहुर्निस्तत्त्वमजरामरम् ।
तत्त्वसंश्रयणादेतत्तत्त्ववन्न च मानद ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १४ ॥

इसीको परमार्थ तत्त्व कहते हैं; यह अजर, अमर, अनारोपित, नित्य और अपरोक्ष परमात्मा है । हे मानद ! षड्विंश परमात्मा प्रत्यक्ष परिदृश्यमान शरीर आदि तत्वोंका आश्रय होनेपर भी तत्वरूपसे न माना जायगा; वह तत्वोंसे भिन्न है; मनीषी लोग पञ्चविंशपर्यन्त ही तत्व कहा करते हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चैष तत्त्ववांस्तात निस्तत्त्वस्त्वेष बुद्धिमान् ।
एष मुञ्चति तत्त्वं हि क्षिप्रं बुद्धस्य लक्षणम् ॥ १५ ॥

हे तात ! कार्य और कारण रूप उपाधि रहित ज्ञानस्वरूप परब्रह्म कार्यभूत महदादि तत्वोंमें कदापि विद्यमान नहीं रह सकता; क्योंकि यह निज तत्व बुद्धत्व लक्षण " मैं ब्रह्म हूं " ऐसी वृत्तिका उदय होनेपर प्राकृत तत्वोंका परित्याग किया करता है और उसमें शुद्ध ब्रह्मके लक्षण प्रकट होते हैं ॥ १५ ॥

षड्विंशोऽहमिति प्राज्ञो गृह्यमाणोऽजरामरः ।
केवलेन बलेनैव समतां यात्यसंशयम् ॥ १६ ॥

जीवके अन्तःकरणकी वृत्ति सदा षड्विंश आकारमें परिणत होनेपर वह अजर और अमर होकर विवेकपूर्ण बलसे निश्चयही षड्विंशके सङ्ग समता लाभ करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १६ ॥

षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान् ।
एतज्ज्ञानात्वमित्युक्तं सांख्यश्रुतिनिदर्शनात् ॥ १७ ॥

जीव प्रबोध स्वरूप षड्विंश परब्रह्मके जरिये प्रबोधित होके भी अज्ञान वशसे उस परब्रह्मको न जान सकनेसे उस ही अज्ञानके अनुसार अनेकत्व अर्थात् प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है, यह सांख्य और वेदमें वर्णित हुआ है ॥ १७ ॥

चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य च ।
एकत्वं वै भवत्यस्य यदा बुद्ध्या न बुध्यते ॥ १८ ॥

और जब जीव बुद्धिसे जडको अपना नहीं समझता तब चैतन्ययुक्त होकर अपनेको " अहं " इस रूपसे नहीं बोध करता, उस ही समय उसका परमात्मासे एकत्व हुआ करता है ॥१८॥

बुध्यमानोऽप्रबुद्धेन समतां याति मैथिल ।
सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा नराधिप ॥ १९ ॥

हे मिथिलाधिपति नरेन्द्र ! सुखादिसंगी, अहंकाराभिमानी जीव जब जडवर्गको अपना समझता है तब वह उस जडवर्गकी समता लाभ करता है; वह असङ्ग होते हुए भी प्रकृतिके सम्पर्कसे आसक्तिरूप होता है ॥ १९ ॥

निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंशकमजं विदुः ।
विमुञ्चत्यजति चाव्यक्तं यदा त्वेतद्विबुध्यते ।
चतुर्विंशमगाधं च षड्विंशस्य प्रबोधनात् ॥ २० ॥

परन्तु जब जीव अज, निःसङ्ग, सर्वव्यापी षड्विंशको प्राप्त होकर विशेष रूपसे उसे जान सकता है, तभी वह अव्यक्त प्रकृतिको परित्याग किया करता है । इस ही प्रकार जब षड्विंशका बोध होता है तब उसे चौवीस तत्वोंसे युक्त प्रकृति असार मालूम होती है ॥२०॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानश्च तेऽनघ ।
प्रोक्तो बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात् ।
नानात्वैकत्वमेतावद्द्रष्टव्यं शास्त्रदृष्टिभिः ॥ २१ ॥

हे पापरहित ! वेदविहित अनुभवके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप अप्रतिबुद्ध, (क्षर), बुध्यमान—अक्षर जीवात्मा और बुद्ध (ज्ञानस्वरूप परमात्मा)— इन तीनों विषयोंका यथावत् वर्णन किया; परन्तु इस ही भांति शास्त्रके अनुसार अनेकत्व और एकत्वका विवरण अनुभव करो ॥ २१ ॥

मशकोदुम्बरे यद्वदन्यत्वं तद्वदेतयोः ।
मत्स्योऽम्भसि यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते ॥ २२ ॥

जैसे उदुम्बरके सहित मशक और जलके सङ्ग मछलीकी परस्पर विभिन्नता मालूम होती है, वैसेही प्रकृतिके संग पुरुषका पार्थक्य, अनेकत्व और एकत्व मालूम करो ॥ २२ ॥

एवमेवावगन्तव्यं नानात्वैकत्वमेतयोः ।
एतद्विमोक्ष इत्युक्तमव्यक्तज्ञानसंहितम् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषकी एकता और अनेकता समझनी चाहिये; परन्तु सांख्यशास्त्रमें ऐसा कहा है, कि अव्यक्त प्रकृतिको अपनेसे पृथक् जाननेसे ही उसकी मुक्ति होती है; इसीको मोक्ष कहा है ॥ २३ ॥

पञ्चविंशतिकस्यास्य योऽयं देहेषु वर्तते ।
एष मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात् ॥ २४ ॥

विद्वान् लोग कहते हैं, कि इस शरीरमें जो पञ्चविंश तत्त्व परब्रह्म विद्यमान है, अव्यक्त ज्ञान और अज्ञानके विषय महदादिकोंसे उसे विमुक्त करना होगा ॥ २४ ॥

सोऽयमेवं विमुच्येत नान्यथेति विनिश्चयः ।
परेण परधर्मा च भवत्येष समेत्य वै ॥ २५ ॥

और ऐसा निश्चय है, कि अज्ञान नष्ट होनेसे ही यह जीवात्मा मुक्त होता है, नहीं तो उसके मुक्तिलाभकी सम्भावना नहीं है । यह चिदात्मा जीव इस लोकमें दूसरेके सहित एकीभूत होकर उसीका समान धर्मा होता है ॥ २५ ॥

विशुद्धधर्मा शुद्धेन बुद्धेन च स बुद्धिमान् ।
विमुक्तधर्मा मुक्तेन समेत्य पुरुषर्षभ ॥ २६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! और शुद्ध बुद्ध पुरुषके सहित मिलित होनेसे विशुद्धधर्मा होता है; किसी बुद्धिमानके साथ रहनेसे बुद्धिमान् होता है; मुक्तके सङ्ग संयुक्त होनेसे विमुक्त धर्मा होता है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वियोगधर्मिणा चैव नियोगात्मा भवत्यपि ।
विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत् ॥ २७ ॥

वियोगधर्माके सहित मिलनेसे विमुक्तात्मा, विमोक्षिके संसर्गसे जीवको मोक्ष प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितदीप्तिमान् ।
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना ॥ २८ ॥

शुचिकर्माके सहवाससे शुचि, विमलात्माके सहित एकचित्त होनेसे विमल आत्मा होता है ॥ २८ ॥

केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ।
स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्नुते ॥ २९ ॥

केवलसे—अद्वितीय परमात्मासे—संवलित होकर केवलात्मा और स्वतन्त्र संयोगसे स्वतन्त्र होके स्वतन्त्रता लाभ किया करता है ॥ २९ ॥

एतावदेतत्कथितं मया ते तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम् ।
अमत्सरत्वं परिगृह्य चार्थं सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम् ॥ ३० ॥

हे महाराज ! मैंने मत्सरतारहित होके तुम्हारे समीप इस यथार्थ तत्वको यथावत् वर्णन किया है; इस विशुद्ध, आद्य, सनातन, सत्य स्वरूप परब्रह्मका इसमें वर्णन किया है ॥ ३० ॥

न वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत् ।
विवित्समानाय विबोधकारकं प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम् ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! इस वेदमार्गमें श्रद्धाहीन मनुष्यको इस उत्तम ज्ञानका उपदेश कभी नहीं करना; बोध तत्वरत प्यासा हो और जो जिज्ञासुभावसे शरणमें आया हो, उसे आप ज्ञानका कारण परम तत्व प्रदान करिये ॥ ३१ ॥

न देयमेतच्च तथानृतात्मने शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये ।
न पण्डितज्ञानपरोपतापिने देयं त्वयेदं विनिबोध यादृशे ॥ ३२ ॥

परन्तु अनृतात्मा, शठ, कायर, कुटिलबुद्धि, पाण्डित्याभिमानी और दूसरे पीडित करनेवाले पुरुषको यह कदापि प्रदान न करिये । परन्तु जैसे पुरुषको इस ज्ञानका उपदेश देना चाहिये, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो ॥ ३२ ॥

श्रद्धान्वितायाथ गुणान्विताय परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
निशुद्धयोगाय बुधाय चैव क्रियावतेऽथ क्षमिणे हिताय ॥ ३३ ॥

हे नरेन्द्र ! जो श्रद्धावान्, गुणवान्, सदा परापवादसे विरत, विशुद्ध, योगरत, पण्डित, शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले, क्षमाशाली, लोकहितैषी, ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय विवादहीनाय बहुश्रुताय ।
विजानते चैव न चाहितक्षमे दमे च शक्ताय शमे च देहिनाम् ॥ ३४ ॥

पुण्यशील, शास्त्र विधिप्रिय, विवादरहित, बहु विज्ञ, किसीका अहित न करनेवाले, शम और दम गुणमें आसक्त पुरुषको ही यह शुद्ध परम तत्व प्रदान करो ॥ ३४ ॥

एतैर्गुणैर्हीनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः ।
न श्रेयसा योक्ष्यति तादृशो कृतं धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात् ॥ ३५ ॥

जो ऐसे सद्गुणोंसे हीन हों, उसे यह तत्व दान न करे; क्यों कि पण्डित लोग कहा करते हैं यह ज्ञान विशुद्ध परब्रह्मस्वरूप है; इसलिये जो निर्गुण अपात्रको यह परम तत्त्व दान करता है, वह कभी भी कल्याण लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ३५ ॥

पृथ्वीमिमां यद्यपि रत्नपूर्णां दद्यान्नदेयं त्विदमव्रताय ।
जितेन्द्रियायैतदसंशयं ते भवेत्प्रदेयं परमं नरेन्द्र ॥ ३६ ॥

हे राजेन्द्र ! इसलिये यदि कोई व्रतहीन मनुष्य आपको यह रत्नपूरित पृथ्वी प्रदान करे, तोभी उसे यह दान न करना, जितेन्द्रिय पुरुषको ही निःसंदेह इस परम उत्तम ज्ञानका दान करना उचित है ॥ ३६ ॥

कराल मा ते भयमस्तु किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाद्य ।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं निःशोकमत्यन्तमनादिमध्यम् ॥ ३७ ॥

हे महाराज कराल ! आज जो तुमने मेरे समीप इस उत्पत्ति, स्थिति और अन्तसे रहित, शोकशून्य, परम पवित्र, अक्षर परब्रह्मका विषय सुना है, उसमें तुम्हें और कुछ भी भय नहीं है ॥ ३७ ॥

अगाधजन्मामरणं च राजन्निरामयं वीतभयं शिवं च ।
समीक्ष्य मोहं त्यज चाद्य सर्वं ज्ञानस्य तत्त्वार्थमिदं विदित्वा ॥ ३८ ॥

आप इस सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानको विशेष रूपसे जानके जन्म–मरणसे रहित, निरामय, भयहीन, कल्याणकर, अपरिसीम उस परब्रह्मका दर्शन करके मोह और विषयको परित्याग करिये ॥ ३८ ॥

अवाप्तमेतद्धि मया सनातनाद्धिरण्यगर्भाद्भवतो नराधिप ।
प्रसाद्य यत्नेन तमुग्रतेजसं सनातनं ब्रह्म यथाद्य वै त्वया ॥ ३९ ॥

हे नराधिप ! जैसे आज तुमने मुझे परितुष्ट करके मेरे निकट यह सतातन ब्रह्मका ज्ञान लाभ किया है, वैसे ही मैंने अत्यन्त यत्नके सहित उस उग्रचेता हिरण्यगर्भ सनातन ब्रह्माको प्रसन्न करके उनके समीप यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृष्टस्त्वया चास्मि यथा नरेन्द्र यथा मयेदं त्वयि चोक्तमद्य ।
तथावासं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र महाज्ज्ञानं मोक्षविदां पुराणम् ॥ ४० ॥

हे राजेन्द्र ! जैसे आज आपने मोक्षवित् पुरुषोंके परमपद इस महत् ज्ञानके विषयमें प्रश्न करके मुझसे जाना है, उस ही भांति मैंने उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे इसे पूंछके उनके समीप इसे पाया है। यह मोक्ष ज्ञानियोंका परम आश्रय है ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच—

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः ।
पञ्चविंशो महाराज परमर्षिनिदर्शनात् ॥ ४१ ॥

भीष्म बोले— हे पाण्डुपुत्र महाराज ! पञ्चविंश जीवकी जिससे पुनरावृत्ति निवारित होती है, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिके वचन अनुसार मैंने तुम्हारे समीप उस परब्रह्म विषयको वर्णन किया ॥ ४१ ॥

पुनरावृत्तिमाप्नोति परं ज्ञानमवाप्य च ।
नावबुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरः ॥ ४२ ॥

हे राजन् ! जो इस उत्तम ज्ञानको पाकर भी नहीं समझता वह पुनरावृत्तिको प्राप्त होता है; बुध्यमान जीव अजर अमर अक्षर परब्रह्मके तत्त्वको यथावत् जानकर परमज्ञान प्राप्त कर सकनेसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करता ॥ ४२ ॥

एतन्निःश्रेयसकरं ज्ञानानां ते परं मया ।
कथितं तत्त्वतस्तात श्रुत्वा देवर्षितो नृप ॥ ४३ ॥

हे तात ! देवऋषि नारदके समीप मैंने इस निःश्रेयस परम ज्ञानको जिस प्रकार सुना था, उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे निकट कहा ॥ ४३ ॥

हिरण्यगर्भादृषिणा वसिष्ठेन महात्मना ।
वसिष्ठादृषिशार्दूलान्नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥ ४४ ॥

महात्मा वसिष्ठने पहले यह सनातन ब्रह्मज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे पाया; उसके अनन्तर ऋषि-श्रेष्ठ वसिष्ठसे देवर्षि नारदको यह उपलब्ध हुआ ॥ ४४ ॥

नारदाद्विदितं मह्यमेतद्ब्रह्म सनातनम् ।
मा शुचः कौरवेन्द्र त्वं श्रुत्वैतत्परमं पदम् ॥ ४५ ॥

और नारदसे मैंने यह सनातन ब्रह्माका उपदेश पाके तुमसे कहा। हे कौरवेन्द्र ! तुम इस परमपद ज्ञानको सुनकर अब शोक मत करो ॥ ४५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

येन क्षराक्षरे वित्ते न भयं तस्य विद्यते ।
विद्यते तु भयं तस्य यो नैतद्वेत्ति पार्थिव ॥ ४६ ॥

हे राजन् ! जो क्षय और अक्षरके तत्त्वको यथार्थ रूपसे जान सकता है, उसे कहीं भी किसी प्रकारका भय नहीं रहता और जो इसे प्रकृत रूपसे नहीं जान सकता, उसे सर्वत्र ही भय उपस्थित हुआ करता है ॥ ४६ ॥

अविज्ञानाच्च मूढात्मा पुनः पुनरुपद्रवन् ।
प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्नुते ॥ ४७ ॥

हे भारत ! मूढ जीव अज्ञाननिबन्धनसे वारंवार संसारमें आता है और जन्ममरणशील सहस्रों योनियोंमें दुःखका भोग किया करता है ॥ ४७ ॥

देवलोकं तथा तिर्यङ्मनुष्यमपि चाश्नुते ।
यदि शुध्यति कालेन तस्मादज्ञानसागरात् ॥ ४८ ॥

यद्यपि कालक्रमसे शुद्ध होकर उस अज्ञानसागरसे पार होसके, तो धीरे धीरे तिर्यग्से मनुष्य और मनुष्यसे सुरलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ होवे ॥ ४८ ॥

अज्ञानसागरो घोरो ह्यव्यक्तोऽगाध उच्यते ।
अहन्यहनि मज्जन्ति यत्र भूतानि भारत ॥ ४९ ॥

हे भारत ! अज्ञानरूपी सागर भयंकर, अव्यक्त और अगाध कहा जाता है; प्राणि लोग प्रतिदिन इसमें डूबते रहते हैं ॥ ४९ ॥

यस्मादगाधादव्यक्तादुत्तीर्णस्त्वं सनातनात् ।
तस्मात्त्वं विरजाश्चैव वितमस्कश्च पार्थिव ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥ १०५९९ ॥

तुम मेरे उपदेशसे इस अगाध और सनातन भव सागरसे उत्तीर्ण हो गये हो; इस लिये तुम रजोगुण और तमोगुणसे भी रहित हो गये हो ॥ ५० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ छानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९६ ॥ १०५९९ ॥

: २९७ :

भीष्म उवाच—

मृगयां विचरन्कश्चिद्विजने जनकात्मजः ।
वने ददर्श विप्रेन्द्रमृषिं वंशधरं भृगोः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— एक समय किसी एक जनक वंशी राजपुत्रने मृगयाके निमित्त निर्जन वनमें घूमते घूमते ब्राह्मणोंमें मुख्य भृगुपुत्र ऋषिको देखा ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमासीनमुपासीनः प्रणम्य शिरसा मुनिम् ।
पश्चादनुमतस्तेन पप्रच्छ वसुमानिदम् ॥ २ ॥

अनन्तर उस राजपुत्र वसुमान्‌ने बैठे हुए मुनिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और वहां उनकी आज्ञासे उनके समीपमें बैठके उनसे यह प्रश्न किया ॥ २ ॥

भगवन्किमिदं श्रेयः प्रेत्य वापीह वा भवेत् ।
पुरुषस्याध्रुवे देहे कामस्य वशवर्तिनः । ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! इस अनित्य देहमें वासनाविशिष्ट होकर रहनेवाले पुरुषको इस लोक वा परलोकमें कौन कार्य कल्याणकारी है, वह मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३ ॥

सत्कृत्य परिपृष्टः सन्सुमहात्मा महातपाः ।
निजगाद ततस्तस्मै श्रेयस्करमिदं वचः ॥ ४ ॥

वह महात्मा, महातपस्वी भृगुनन्दन जनकपुत्र वसुमानसे इस प्रकार सत्कृत और जिज्ञासित होकर उससे कल्याणदायक यह वचन कहने लगे ॥ ४ ॥

मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वाञ्छसि ।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः ॥ ५ ॥

हे जनकपुत्र ! तुम इस लोक और परलोकमें मनके अनुकूल कार्योंको पाना चाहते हो तो जितेन्द्रिय होके सब प्राणियोंके विरोधी कार्योंसे निवृत्त रहो ॥ ५ ॥

धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम् ।
धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः ॥ ६ ॥

हे तात ! धर्मही साधु पुरुषोंका हितकारी है, धर्म ही उनका अवलम्ब है; और धर्मसे ही चराचर तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

स्वादुकामुक कामानां वैतृष्ण्यं किं न गच्छसि ।
मधु पश्यसि दुर्बुद्धे प्रपातं नानुपश्यसि ॥ ७ ॥

हे मधुर रसके अभिलाषी ! तुम पिपासासे तृप्त क्यों नहीं होते हो ? हे दुष्टबुद्धि ! तू केवल मधु देखता है, मधुके पतनका पीछा करके नहीं देखता है ॥ ७ ॥

यथा ज्ञाने परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना ।
तथा धर्मे परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना ॥ ८ ॥

ज्ञानफलार्थी मनुष्यको जैसे ज्ञानका परिचय करना आवश्यक है, उसी तरह धर्मफलकी इच्छा करनेवाले पुरुषका भी धर्मका परिचय प्राप्त करना चाहिये ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

असता धर्मकामेन विशुद्धं कर्म दुष्करम् ।
सता तु धर्मकामेन सुकरं कर्म दुष्करम् ॥ ९ ॥

धर्मकाम दुष्ट पुरुषसे पवित्र कर्मका होना अत्यन्त कठिन है; परन्तु धर्मकाम साधु पुरुषके लिये दुष्कर कर्म भी सुकर हुआ करता है ॥ ९ ॥

वने ग्राम्यसुखाचारो यथा ग्राम्यस्तथैव सः ।
ग्रामे वनसुखाचारो यथा वनचरस्तथा ॥ १० ॥

वनमें रहके भी ग्रामीण लोगोंकी भांति जो ग्रामसुखोंका भोग करनेमें आसक्त है, वह ग्रामीण ही है; और गांवमें रहके भी जो वनवासियोंकी भांति उनकेसे बर्तावमें सुख मानता है, वह वनवासी ही है ॥ १० ॥

मनोवाक्कर्मके धर्मे कुरु श्रद्धां समाहितः ।
निवृत्तौ वा प्रवृत्तौ वा संप्रधार्य गुणागुणान् ॥ ११ ॥

हे जनकपुत्र ! तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके दोष और गुणको विचारके, स्थिर होकर, शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक धर्ममें श्रद्धा करो ॥ ११ ॥

नित्यं च बहु दातव्यं साधुभ्यश्चानसूयता ।
पार्थितं व्रतशौचाभ्यां सत्कृतं देशकालयोः ॥ १२ ॥

हे राजन् ! तुम देश कालके अनुसार व्रत तथा पवित्रताके सहारे सत्पुरुषोंको प्रार्थना और सत्कारपूर्वक बहुतसा दान करना और उनकी निन्दा न करना ॥ १२ ॥

शुभेन विधिना लब्धमर्हाय प्रतिपादयेत् ।
क्रोधमुत्सृज्य दत्त्वा च नानुतप्येन्न कीर्तयेत् ॥ १३ ॥

शुभ विधिकर्मोंसे जो कुछ प्राप्त होता है, वही सत्पात्रको अर्पण करना चाहिये; तुम क्रोध-रहित होके पात्रविशेषको दान करना, दान करके कदापि पछतावा अथवा उनकी प्रशंसा न करना ॥ १३ ॥

अनृशंसः शुचिर्दान्तः सत्यवागार्जवे स्थितः ।
योनिकर्मविशुद्धश्च पात्रं स्याद्वेदविद्द्विजः ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण वेदज्ञ, अनृशंस, पवित्र, दान्त, सत्यवादी, सरलतापूर्ण बर्ताव करनेवाला, शुद्ध-योनिमें उत्पन्न हुआ और पवित्र कर्म करनेवाला है, वही दान पानेका पात्र है ॥ १४ ॥

सत्कृता चैकपत्नी च जात्या योनिरिहेष्यते ।
ऋग्यजुःसामगो विद्वान्षट्कर्मा पात्रमुच्यते ॥ १५ ॥

सत्कृत अनन्यपूर्वा पत्नी ही पुत्रोत्पत्तिकी उत्तम स्थान है, इसलिये वही इस स्थलमें योनि कहके अभिहित हुई है; ऐसी मातासे उत्पन्न—शुद्ध और ऋक्, यजु तथा साम, इन तीनों वेदोंके जाननेवाला षट्कर्मशाली ब्राह्मण ही कर्मसे शुद्ध तथा उत्तम पात्ररूपसे वर्णित हुआ है ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स एव धर्मः सोऽधर्मस्तं तं प्रतिनरं भवेत् ।
पात्रकर्मविशेषेण देशकालाववेक्ष्य च ॥ १६ ॥

देशकालके अनुसार पात्र और कर्मविशेष पर विचार करनेसे एकही कर्म भिन्न मनुष्यके विषयमें धर्म तथा अधर्म हुआ करता है ॥ १६ ॥

लीलयाल्पं यथा गात्रात्प्रमृज्यादूरजस्कः पुमान् ।
बहुयत्नेन महता पापनिर्हरणं तथा ॥ १७ ॥

जैसे पुरुष खेल समाप्त होनेपर धीरे धीरे शरीरसे प्रयत्नपूर्वक सब धूलि धोता है, वैसे ही थोडा पाप थोडेसे प्रयत्नसे और महान् पाप महान् प्रयत्नसे प्रायश्चित्तसे दूर होता है ॥१७॥

विरिक्तस्य यथा सम्यग्घृतं भवति भेषजम् ।
तथा निर्हृतदोषस्य प्रेत्यधर्मः सुखावहः ॥ १८ ॥

जैसे पुरुषके विरेचनके अनन्तर घृतका पीना औषधकी तरह हितकारी होता है, वैसे ही दान आदिके जरिये निष्पाप पुरुषका धर्म परलोकमें सुखकर हुआ करता है ॥ १८ ॥

मानसं सर्वभूतेषु वर्तते वै शुभाशुभे ।
अशुभेभ्यः समाक्षिप्य शुभेष्वेवावतारयेत् ॥ १९ ॥

चित्त शुभ और अशुभरूपसे सब प्राणियोंमें ही विद्यमान रहता है; पुरुष सदा पापसे चित्तको हटा करके शुभकार्यमें ही संयोजित करे ॥ १९ ॥

सर्वं सर्वेण सर्वत्र क्रियमाणं च पूजय ।
स्वधर्मे यत्र रागस्ते कामं धर्मो विधीयताम् ॥ २० ॥

सबके द्वारा सर्वत्र किये जानेवाले सब कर्मोंका आदर करो; इसलिये जिस प्रकार तुम्हारा धर्ममें अनुराग रहे, सदा प्राणपणसे उसकी ही इच्छानुसार चेष्टा करना ॥ २० ॥

अधृतात्मन्धृतौ तिष्ठ दुर्बुद्धे बुद्धिमान्भव ।
अप्रशान्त प्रशाम्य त्वमप्राज्ञ प्राज्ञवच्चर ॥ २१ ॥

हे अस्थिर चित्त ! तुम धीरज धारण करो । हे दुर्बुद्धे ! तुम बुद्धिमान् बनो; तुम बहुत ही अशान्त और अज्ञ हो; इसलिये प्रशान्त होकर ज्ञानीकी भांति आचरण करो ॥ २१ ॥

तेजसा शक्यते प्राप्तुमुपायसहचारिणा ।
इह च प्रेत्य च श्रेयस्तस्य मूलं धृतिः परा ॥ २२ ॥

सत्पुरुषोंके सङ्गसे, उन्हींके तेज या प्रतापसे इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाला उपाय प्राप्त होता है; परम धैर्यही उस मङ्गलका मूल है ॥ २२ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजर्षिरधृतिः स्वर्गात्पतितो हि महाभिषः ।
ययातिः क्षीणपुण्यश्च धृत्या लोकानवाप्तवान् । ॥ २३ ॥

राजर्षि महाभिष उस धैर्यसे रहित होनेसे स्वर्गसे पतित हुए थे और ययातिने क्षीणपुण्य होके भी धैर्यके ही बलसे उत्तमलोकोंको पाया ॥ २३ ॥

तपस्विनां धर्मवतां विदुषां चोपसेवनात् ।
प्राप्स्यसे विपुलां बुद्धिं तथा श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ ॥ २४ ॥

हे राजन् ! इसलिये तुम धीरज अवलम्बन करके तपस्वी, धर्मशील और विद्वानोंकी सेवा करनेसे अवश्य ही विपुल बुद्धि और अभिलषित कल्याण लाभ करोगे ॥ २४ ॥

स तु स्वभावसंपन्नस्तच्छ्रुत्वा मुनिभाषितम् ।
विनिवर्त्य मनः कामाद्धर्मे बुद्धिं चकार ह ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥ १०६२४ ॥

हे राजन् ! सुस्वभावयुक्त जनकपुत्र वसुमान्ने उस भृगुपुत्र मुनिका ऐसा वचन सुनके अन्तःकरणकी वृत्तियोंको काम आदिसे निवृत्त करते हुए धर्ममार्गमें बुद्धि प्रवृत्तित की थी ॥२५॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें दो सौ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९७ ॥ १०६२४ ॥

: २९८ :

युधिष्ठिर उवाच—

धर्माधर्मविमुक्तं यद्विमुक्तं सर्वसंश्रयात् ।
जन्ममृत्युविमुक्तं च विमुक्तं पुण्यपापयोः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— जो धर्म और अधर्मके बन्धनसे मुक्त, सब तरहके आश्रयोंसे रहित, जन्म, मृत्यु, पुण्य और पापसे विमुक्त ॥ १ ॥

यच्छिवं नित्यमभयं नित्यं चाक्षरमव्ययम् ।
शुचि नित्यमनायासं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २ ॥

और मङ्गल स्वरूप सर्वदा भयरहित, अविनाशी, अजर, अव्यय, स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयासरहित है, उसे ही आपको वर्णन करना उचित है ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— इस विषयमें मैं जनक और याज्ञवल्क्यका संवाद युक्त एक प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः ।
पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदां वरः ॥ ४ ॥

एक समय देवरातके पुत्र महायशस्वी महाराज जनकने प्रश्नका रहस्य समझनेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषि याज्ञवल्क्यसे पूछा था ॥ ४ ॥

कतीन्द्रियाणि विप्रर्षे कति प्रकृतयः स्मृताः ।
किमव्यक्तं परं ब्रह्म तस्माच्च परतस्तु किम् ॥ ५ ॥

हे विप्रर्षि ! इन्द्रियोंकी संख्या कितनी है ? प्रकृतिके कितने प्रकार माने गये हैं ? और अव्यक्त क्या है ? अव्यक्तसे पृथक् निर्गुण परब्रह्म क्या है ? ॥ ५ ॥

प्रभवं चाप्ययं चैव कालसंख्यां तथैव च ।
वक्तुमर्हसि विप्रेन्द्र त्वदनुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ६ ॥

इन सबकी उत्पत्ति, नाश और कालकी संख्या कहिये । हे विप्रेन्द्र ! मैं आपके अनुग्रहका अत्यन्त अभिलाषी हूं ॥ ६ ॥

अज्ञानात्परिपृच्छामि त्वं हि ज्ञानमयो निधिः ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि सर्वमेतदसंशयम् ॥ ७ ॥

मैं अज्ञ हूं, आप ज्ञानमय रत्नस्वरूप हैं; इसलिये मैं आपके निकट इन सब विषयोंको निःसंशय रूपसे सुननेके निमित्त प्रश्न करता हूं ॥ ७ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच—

श्रूयतामवनीपाल यदेतदनुपृच्छसि ।
योगानां परमं ज्ञानं सांख्यानां च विशेषतः ॥ ८ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे पृथ्वीपाल ! तुम जो कुछ मुझसे पूछते हैं, वह विशेष करके सांख्य और योगमें सब ज्ञान विहित हैं, उस परमज्ञानको कहता हूं, सुनो ॥ ८ ॥

न तवाविदितं किंचिन्मां तु जिज्ञासते भवान् ।
पृष्टेन चापि वक्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥

उनमेंसे कुछ भी विषय आपको अविदित नहीं है, तो भी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब इस विषयको तुमसे मैं अवश्य कहूंगा; क्यों कि जब कोई किसीसे कुछ पूछे, तब उससे वह विषय यथार्थ रीतिसे कहना चाहिये, यह ऋषियोंका सनातन धर्म है; इसलिये आपने जो पूछा है, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो ॥ ९ ॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चापि षोडश ।
अथ सप्त तु व्यक्तानि प्राहुरध्यात्मचिन्तकाः ॥ १० ॥

प्रकृतियां आठ कही गयी हैं और उनके विकार सोलह बनाये हैं; और अध्यात्मक चिन्तन करनेवाले विद्वान् महत् आदि सात पदार्थको व्यक्त स्वरूप कहते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अव्यक्तं च महांश्चैव तथाहंकार एव च ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ ११ ॥

इनके नाम ये हैं– अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ॥ ११ ॥

एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकारानपि मे शृणु ।
श्रोत्रं त्वक्चैव चक्षुश्च जिह्वा घ्राणं च पञ्चमम् ॥ १२ ॥

ये आठ प्रकृतियां कहीं; अब मुझसे विकारोंका वर्णन सुनो– कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, पांचवी नासिका, ॥ १२ ॥

शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
वाक्च हस्तौ च पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च ॥ १३ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्, हाथ, पांव, गुदा और मेढ्र इन– सबको विकार कहते हैं ॥ १३ ॥

एते विशेषा राजेन्द्र महाभूतेषु पञ्चसु ।
बुद्धीन्द्रियाण्यथैतानि सविशेषाणि मैथिल ॥ १४ ॥

मैथिल राजेन्द्र ! उनमें पांच कर्मेन्द्रियों और शब्द आदि पांच विषयोंकी 'विशेष' संज्ञा है और ये पांच ज्ञानेन्द्रियां 'सविशेष' कही जाती हैं । ये विशेष और सविशेष तत्त्व पञ्च-महाभूतोंमें स्थित हैं ॥ १४ ॥

मनः षोडशकं प्राहुरध्यात्मगतिचिन्तकाः ।
त्वं चैवान्ये च विद्वांसस्तत्त्वबुद्धिविशारदाः ॥ १५ ॥

तुम और अध्यात्म गतिके विचार करनेवाले तत्त्वज्ञान विशारद दूसरे पण्डित लोग मनको षोडश विकार कहा करते हैं ॥ १५ ॥

अव्यक्ताच्च महानात्मा समुत्पद्यति पार्थिव ।
प्रथमं सर्गमित्येतदाहुः प्राधानिकं बुधाः ॥ १६ ॥

हे राजन् ! भूतचिन्तक सांख्य लोग अव्यक्तसे उत्पन्न हुए महान् आत्माको प्रथम सर्ग और प्रधान कहते हैं ॥ १६ ॥

महतश्चाप्यहंकार उत्पद्यति नराधिप ।
द्वितीयं सर्गमित्याहुरेतद्बुद्ध्यात्मकं स्मृतम् ॥ १७ ॥

तथा हे नरेश्वर ! महत्से उत्पन्न हुए अहंकारको बुध्यात्मक द्वितीय सर्ग माना गया है ॥ १७ ॥

अहंकाराच्च संभूतं मनो भूतगुणात्मकम् ।
तृतीयः सर्ग इत्येष आहंकारिक उच्यते ॥ १८ ॥

अहंकारसे सत्पन्न भूतगुणात्मक मनको आहंकारिक तृतीय सर्ग कहा जाता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मनसस्तु समुद्भूता महाभूता नराधिप ।
चतुर्थं सर्गमित्येतन्मानसं परिचक्षते ॥ १९ ॥

हे राजन् ! मनसे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई है; यह मानसिक चतुर्थ सर्ग माना जाता है ॥ १९ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
पञ्चमं सर्गमित्याहुर्भौतिकं भूतचिन्तकाः ॥ २० ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध– ये पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुए हैं; यह पांचवीं सृष्टि है; भूतचिन्तक विद्वान् इसे भौतिक कहते हैं ॥ २० ॥

श्रोत्रं त्वक्चैव चक्षुश्च जिह्वा घ्राणं च पञ्चमम् ।
सर्गं तु षष्ठमित्याहुर्बहुचिन्तात्मकं स्मृतम् ॥ २१ ॥

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और पांचवीं नासिका– इन पांच इन्द्रियोंको बहुचिन्तात्मक मानसिक छठा सर्ग माना गया है ॥ २१ ॥

अधः श्रोत्रेन्द्रियग्राम उत्पद्यति नराधिप ।
सप्तमं सर्गमित्याहुरेतदैन्द्रियकं स्मृतम् ॥ २२ ॥

राजन् ! श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके बाद कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है; इसे ऐन्द्रियक सातवां सर्ग कहते हैं ॥ २२ ॥

ऊर्ध्वस्रोतस्तथा तिर्यगुत्पद्यति नराधिप ।
अष्टमं सर्गमित्याहुरेतदार्जवकं बुधाः ॥ २३ ॥

अनन्तर सरल वृत्ति ऊर्ध्वप्रवाहयुक्त प्राण और तिर्यग् प्रवाह सम्पन्न समान, उदान, व्यान ये उत्पन्न हुए; इसीको विद्वान् आर्जवक आठवां सर्ग कहते हैं ॥ २३ ॥

तिर्यक्स्रोतस्त्वधःस्रोत उत्पद्यति नराधिप ।
नवमं सर्गमित्याहुरेतदार्जवकं बुधाः ॥ २४ ॥

राजन् ! फिर तिरछा प्रवाहयुक्त व्यान और उदान अपान वायुके साथ निम्न भागमें प्रकट हुए; इसे भी विद्वान् लोग आर्जवक नवम सर्ग कहते हैं ॥ २४ ॥

एतानि नव सर्गाणि तत्त्वानि च नराधिप ।
चतुर्विंशतिरुक्तानि यथाश्रुति निदर्शनात् ॥ २५ ॥

हे महाराज ! वेदविहित प्रमाणके अनुसार मैंने आपके समीप इन नौ प्रकारके सर्गों और चौबीस तत्वोंका यथावत् वर्णन किया ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत ऊर्ध्वं महाराज गुणस्यैतस्य तत्त्वतः ।
महात्मभिरनुप्रोक्तां कालसंख्यां निबोध मे ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ १०६५० ॥

महाराज ! इसके अनन्तर महात्माओंने इन गुण सर्गोंकी जिस प्रकार कालसंख्या निरूपण की है, वह यथावत् रूपसे मेरे समीप सुनो ॥ २६ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९८ ॥ १०६५० ॥

: २९९ :

याज्ञवल्क्य उवाच—

अव्यक्तस्य नरश्रेष्ठ कालसंख्यां निबोध मे ।
पञ्च कल्पसहस्राणि द्विगुणान्यहरुच्यते ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य बोले— हे नरश्रेष्ठ ! मैं अव्यक्त प्रकृतिकी कालसंख्या कहता हूं, उसे आप मेरे समीप सुनिये । दस हजार कल्पोंका इस अव्यक्तका एक दिन कहा जाता है ॥ १ ॥

रात्रिरेतावती चास्य प्रतिबुद्धो नराधिप ।
सृजत्योषधिमेवाग्रे जीवनं सर्वदेहिनाम् ॥ २ ॥

हे नरनाथ ! इस ही परिमाणसे उसकी रात्रि होती है, यह शास्त्रमें वर्णित है । प्रतिबुद्ध—ज्ञान स्वरूप—परमात्मा सबसे पहले सब प्राणियोंके जीवन निर्वाहके लिये अन्न उत्पन्न करता है ॥२॥

ततो ब्रह्माणमसृजद्धैरण्याण्डसमुद्भवम् ।
सा मूर्तिः सर्वभूतानामित्येवमनुशुश्रुम ॥ ३ ॥

फिर सुवर्णके अण्डसे समुद्भूत ब्रह्माको उत्पन्न किया करता है । वह ब्रह्मा ही सब भूतोंके उगमस्थान है, हमने ऐसा ही सुना है ॥ ३ ॥

संवत्सरमुषित्वाण्डे निष्क्रम्य च महामुनिः ।
संदधेऽर्धं महीं कृत्स्नां दिवमर्धं प्रजापतिः ॥ ४ ॥

अनन्तर वह महामुनि प्रजापति ब्रह्मा एक वर्षतक अण्डके बीच वास करके उससे बाहर निकल आये; फिर वे पृथ्वी, स्वर्ग और ऊर्ध्व इन सबकी सृष्टिविषयक चिन्ता करने लगे ॥ ४ ॥

द्यावापृथिव्योरित्येष राजन्वेदेषु पठ्यते ।
तयोः शकलयोर्मध्यमाकाशमकरोत्प्रभुः ॥ ५ ॥

फिर उस ब्रह्माने उस अण्डके दोनों टुकडोंके अर्थात् पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें आकाशकी सृष्टि की । हे राजन् ! वेदमें पृथ्वी और स्वर्गका विषय इस ही प्रकार कहा गया है ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतस्यापि च संख्यानं वेदवेदाङ्गपारगैः ।
दश कल्पसहस्राणि पादोनान्यहरुच्यते ।
रात्रिमेतावतीं चास्य पाहुरध्यात्मचिन्तकाः ॥ ६ ॥

अध्यात्मचिन्तक वेद–वेदाङ्ग जाननेवाले विद्वान् लोगोंने दस हजार कल्पोंमेंसे एक चौथाई कम कर देनेपर जितना शेष रहता है, उतना अर्थात् साढेसात हजार कल्पोंका ब्रह्माका दिन कहा और उन्हीं अध्यात्मतत्त्वोंका चिन्तन करनेवालोंने इस ही परिणामसे रात्रि संख्या निरूपण की है ॥ ६ ॥

सृजत्यहंकारमृषिर्भूतं दिव्यात्मकं तथा ।
चतुरश्चापरान्पुत्रान्देहात्पूर्वं महानृषिः ।
ते वै पितृभ्यः पितरः श्रूयन्ते राजसत्तम ॥ ७ ॥

हे राजसत्तम ! महान् ऋषि ब्रह्माने महद्भूतोंके उपादान कारण देवतात्मक अहंकारकी सृष्टि करके, भौतिक देहके सहित उत्पत्तिसमयमें बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार नाम, इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया; ये पितृ लोग महाभूतोंके पिता हैं, ऐसा ही सुना जाता है ॥ ७ ॥

देवाः पितृणां च सुता देवैर्लोकाः समावृताः ।
चराचरा नरश्रेष्ठ इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ८ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! इसके अतिरिक्त हमने इस भांति सुना है, कि अन्तःकरणचतुष्टयके सहित इन्द्रियां पितृलोक महाभूतोंके पुत्र रूपसे कल्पित हुए और चराचर सब लोक उन्हीं महाभूतोंके सहारे परिपूरित हो रहे हैं ॥ ८ ॥

परमेष्ठी त्वहंकारोऽसृजद्भूतानि पञ्चधा ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! स्रष्टाके उत्तम पदपर प्रतिष्ठित हुआ अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि- इन पांच प्रकारके भूतोंको उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥

एतस्यापि निशामाहुस्तृतीयमिह कुर्वतः ।
पञ्च कल्पसहस्राणि तावदेवाहरुच्यते ॥ १० ॥

इस तृतीय भौतिक सर्गकी सृष्टि करनेवाले अहंकारकी भी पांच हजार कल्प पर्यन्त रात्रिकी संख्या है और इस ही परिणामसे दिनकी संख्या वर्णित हुई है ॥ १० ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
एते विशेषा राजेन्द्र महाभूतेषु पञ्चसु ।
यैराविष्टानि भूतानि अहन्यहनि पार्थिव ॥ ११ ॥

हे राजेन्द्र ! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांच गुणोंके नाम विशेष करके वर्णित हुए हैं; ये शब्द आदि सब विषय सदा प्राणियोंको आविष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्योन्यं स्पृहयन्त्येते अन्योन्यस्य हिते रताः ।
अन्योन्यमभिमन्यन्ते अन्योन्यस्पर्धिनस्तथा ॥ १२ ॥

ये परस्पर आपसमें हितैषी होकर परस्परकी स्पृहा करते हैं; कभी आपसमें स्पर्द्धावान् होकर एक दूसरेको अतिक्रम करते हैं ॥ १२ ॥

ते वध्यमाना अन्योन्यं गुणैर्हारिभिरव्ययाः ।
इहैव परिवर्तन्ते तिर्यग्योनिप्रवेशिनः ॥ १३ ॥

और रूप आदि गुणोंसे परस्पर वध्यमान होकर, तिर्यग् योनिमें प्रवेश करके इस लोकमें ही घूमा करते हैं ॥ १३ ॥

त्रीणि कल्पसहस्राणि एतेषामहरुच्यते ।
रात्रिरेतावती चैव मनसश्च नराधिप ॥ १४ ॥

शास्त्रमें इन शब्दादि विषयोंकी तीन हजार कल्पतक दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या निरूपित हुई है । हे नरनाथ ! मनका भी तीन हजार कल्प तक दिनका परिमाण है और तीन हजार कल्पतक रात्रिका परिमाण कहा गया है ॥ १४ ॥

मनश्चरति राजेन्द्र चरितं सर्वमिन्द्रियैः ।
न चेन्द्रियाणि पश्यन्ति मन एवात्र पश्यति ॥ १५ ॥

हे राजन् ! मन ही इन्द्रियोंके जरिये प्रेरित होकर विषयोंको प्रत्यक्ष करता है; इन्द्रियां उन विषयोंको नहीं देखती, मनही उन्हें यहां सदा देखता है ॥ १५ ॥

चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा तु न चक्षुषा ।
मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति ।
तथेन्द्रियाणि सर्वाणि पश्यन्तीत्यभिचक्षते ॥ १६ ॥

देखो, नेत्र मनके सहयोगसे ही रूपको देखता है, मनका सहयोग न रहनेसे कदापि अपनी शक्तिसे नहीं देखता; क्योंकि मन व्याकुल होनेसे रूप आदि विषय नेत्रके सम्मुख होनेपर भी वह उसे ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता; जो लोग ऐसा कहा कहते हैं कि इन्द्रियां ही निज निज विषयोंका दर्शन करती हैं, वह वचन अमूलक है ॥ १६ ॥

मनस्युपरते राजन्निन्द्रियोपरमो भवेत् ।
न चेन्द्रियव्युपरमे मनस्युपरमो भवेत् ।
एवं मनःप्रधानानि इन्द्रियाणि विभावयेत् ॥ १७ ॥

हे राजन् ! मनके विरक्त होनेसे इन्द्रियां भी उपरत होती हैं; इन्द्रियोंके उपरत होनेपर मनमें उपरति नहीं होती; और मन ही इन्द्रियोंकी प्रधानता वा प्रभावको वर्द्धित किया करता है ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणां हि सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते ।
एतद्विशन्ति भूतानि सर्वाणीह महायशाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥ १०६६८ ॥

इसहीसे ऐसा कहा गया है, कि मन ही इन्द्रियोंका ईश्वर—स्वामी है। इस लोकमें महायशस्वी सब प्राणी इस मनकाही आश्रय लेते हैं ॥ १८ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें दो सौ निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ २९९ ॥ १०६६८ ॥

: ३०० :

याज्ञवल्क्य उवाच—

तत्त्वानां सर्वसंख्या च कालसंख्या तथैव च ।
मया प्रोक्तानुपूर्व्येण संहारमपि मे शृणु ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे राजन् ! अब मेरे द्वारा क्रमशः बतायी हुई तत्त्वोंकी सम्पूर्ण संख्या, काल संख्या और तत्त्वोंके संहारकी बात सुनो ॥ १ ॥

यथा संहरते जन्तून्ससर्ज च पुनः पुनः ।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च ॥ २ ॥

अनादिनिधन, नित्य, अक्षर ब्रह्मा जिस प्रकार सब जीवोंको बार बार उत्पन्न करके संहार करता है उसे विस्तारके सहित कहता हूं, सुनो ॥ २ ॥

अहःक्षयमथो बुद्ध्वा निशि स्वप्तमनास्तथा ।
चोदयामास भगवानव्यक्तोऽहंकृतं नरम् ॥ ३ ॥

हे महीपाल ! भगवान् अव्यक्त ब्रह्मा उनके दिनका क्षयकाल उपस्थित हुआ जानके, रातको शयन करनेकी इच्छा करके वे संहारके लिये अहंकाराभिमानी महारुद्रको प्रेरण करते हैं ॥३॥

ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तेनाभिचोदितः ।
कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यो ज्वलदग्निवत् ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर वह महारुद्र देव अव्यक्त ब्रह्माके जरिये प्रेरित होकर प्रज्वलित अग्निके समान द्युतिशाली सौ हजार किरणवाले सूर्यकी मूर्ति धारण कर निज शरीरको बारह हिस्सेमें विभक्त करते हैं ॥ ४ ॥

चतुर्विधं प्रजाजालं निर्दहत्याशु तेजसा ।
जरायण्डस्वेदजातमुद्भिज्जं च नराधिप ॥ ५ ॥

हे महीपाल राजन् ! फिर वे अपने तेजसे उसही समय जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको शीघ्रही जलाया करते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतदुन्मेषमात्रेण विनष्टं स्थाणुजङ्गमम् ।
कूर्मपृष्ठसमा भूमिर्भवत्यथ समन्ततः ॥ ६ ॥

क्षणमात्रमें ही सब चराचर जगत्का नाश होजाता है और यह भूमि सब ओरसे कुछुवेकी पीठकी तरह प्रतीत होती है ॥ ६ ॥

जगद्दग्ध्वामितबलः केवलं जगतीं ततः ।
अम्भसा बलिना क्षिप्रमापूर्यत समन्ततः ॥ ७ ॥

वह अमितबलशाली रुद्र सारे जगत्को जलाकर बलवत्तर अधिक जलसे उस भस्मीभूत सारी पृथ्वीको सब ओरसे शीघ्रही परिपूरित करता है ॥ ७ ॥

ततः कालाग्निमासाद्य तदम्भो याति संक्षयम् ।
विनष्टेऽम्भसि राजेन्द्र जाज्वलीत्यनलो महान् ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! फिर कालाग्निकी लपटमें पडकर जल—सुख जाता है; जलके नष्ट होनेपर अग्नि प्रज्वलित होकर भयानक रूप धारण करती है ॥ ८ ॥

तमप्रमेयोऽतिबलं ज्वलमानं विभावसुम् ।
ऊष्माणं सर्वभूतानां सप्तार्चिषमथाञ्जसा ॥ ९ ॥

सब प्राणियोंको गर्मी पहुंचानेवाली अत्यंत बलशाली जलती हुई उस सात ज्वालाओंसे युक्त अग्निको ॥ ९ ॥

भक्षयामास बलवान्वायुरष्टात्मको बली ।
विचरन्नमितप्राणस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ १० ॥

अत्यन्त बलवान् वायु अपने आठ रूपोंमें होकर ग्रास करते हैं और ऊपर—नीचे तथा बीचमें सब ओर प्रवाहित होते हैं ॥ १० ॥

तमप्रतिबलं भीममाकाशं ग्रासतेऽऽत्मना ।
आकाशमप्यतिनदन्मनो ग्रसति चारिकम् ॥ ११ ॥

फिर अत्यंत बलवान् और भयंकर वायुको स्वयं आकाश और भीषण गर्जन करनेवाले आकाशको उससे भी अधिक शक्तिमान् मन ग्रस लेता है ॥ ११ ॥

मनो ग्रसति सर्वात्मा सोऽहंकारः प्रजापतिः ।
अहंकारं महानात्मा भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १२ ॥

फिर मनको सर्वात्मा प्रजापति अहङ्कार और वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यका ज्ञाता महत्तत्त्व अहङ्कारका ग्रास करता है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमप्यनुपमात्मानं विश्वं शंभुः प्रजापतिः ।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ १३ ॥
सर्वतःपाणिपादान्तः सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १४ ॥
हृदयं सर्वभूतानां पर्वणोऽङ्गुष्ठमात्रकः ।
अनुग्रसत्यनन्तं हि महात्मा विश्वमीश्वरः ॥ १५ ॥

अनन्तर अणिमा, लघिमा और प्राप्ति आदि ऐश्वर्य जिसके अधीन हैं, जो सबका स्वामी, ज्योति स्वरूप, अव्यय है, जिसके सब ओर हाथपैर हैं, सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं, सब ओर कान हैं, जो जगत्में सबको व्याप्त करके स्थित है, जो सब भूतोंके अंतःकरणमें अंगुष्ठपर्वके समान आकार धारण करके निवास करता है, वह परब्रह्म कल्याणमय महात्मा परमात्मा उस अनुपम विश्वरूप अनन्त बुद्धितत्त्वको अपनेमें लीन कर देता है ॥ १२–१५ ॥

ततः समभवत्सर्वमक्षयाव्ययमव्रणम् ।
भूतभव्यमनुष्याणां स्रष्टारमनघं तथा ॥ १६ ॥

फिर ह्रास तथा वृद्धिसे रहित, अविनाशी और निर्विकार सर्व स्वरूप परब्रह्म ही शेष रहता है; उसीने भूत, भविष्य और वर्तमानके तथा मनुष्योंके सृष्टिकर्ता निष्पाप ब्रह्माकी उत्पत्ति की है ॥ १६ ॥

एषोऽप्ययस्ते राजेन्द्र यथावत्परिभाषितः ।
अध्यात्ममधिभूतं च अधिदैवं च श्रूयताम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥ १०६८५ ॥

हे राजन् ! मैंने तुम्हारे समीप यह संहारका विषय यथावत् वर्णन किया; अब अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौवां अध्याय समाप्त ॥ ३०० ॥ १०६८५ ॥

: ३०१ :

याज्ञवल्क्य उवाच—

पादावध्यात्ममित्याहुर्ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ।
गन्तव्यमधिभूतं च विष्णुस्तत्राधिदैवतम् ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले– हे राजन् ! तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग दो पादको अध्यात्म, गन्तव्यको अधिभूत और उसमें विष्णुको अधिदैवत कहा करते हैं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पायुरध्यात्ममित्याहुर्यथातत्त्वार्थदर्शिनः ।
विसर्गमधिभूतं च मित्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ २ ॥

तत्त्वार्थदर्शी पुरुष गुदाको अध्यात्म, विसर्गको अधिभूत और मित्रको अधिदैवत कहते हैं ॥ २ ॥

उपस्थोऽध्यात्ममित्याहुर्यथायोगनिदर्शनम् ।
अधिभूतं तथानन्दो दैवतं च प्रजापतिः ॥ ३ ॥

योगदर्शी लोग उपस्थको अध्यात्म, आनन्दको अधिभूत और प्रजापतिको अधिदैवत कहते है ॥ ३ ॥

हस्तावध्यात्ममित्याहुर्थासंख्यनिदर्शनम्
कर्तव्यमधिभूतं तु इन्द्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ ४ ॥

सांख्यदर्शी लोग दोनों हाथोंको अध्यात्म, कर्त्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें इन्द्रको अधिदैवत कहते हैं ॥ ४ ॥

वागध्यात्ममिति प्राहुर्यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।
वक्तव्यमधिभूतं तु वह्निस्तत्राधिदैवतम् ॥ ५ ॥

वेदार्थ जाननेवाले विद्वान् वाक्को अध्यात्म, वक्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें अग्निको अधिदैवत कहते हैं ॥ ५ ॥

चक्षुरध्यात्ममित्याहुर्यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।
रूपमत्राधिभूतं तु सूर्यस्तत्राधिदैवतम् ॥ ६ ॥

श्रुतिनिदर्शी पण्डित लोग नेत्रको अध्यात्म, रूपको अधिभूत और सूर्यको अधिदैवत कहा करते हैं ॥ ६ ॥

श्रोत्रमध्यात्ममित्याहुर्यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।
शब्दस्तत्राधिभूतं तु दिशस्तत्राधिदैवतम् ॥ ७ ॥

वेदविहित अनुभवशाली विद्वान् श्रोत्रको अध्यात्म, शब्दको अधिभूत और दिशाओंको अधिदैवत कहा करते हैं ॥ ७ ॥

जिह्वामध्यात्ममित्याहुर्यथातत्त्वनिदर्शनम् ।
रस एवाधिभूतं तु आपस्तत्राधिदैवतम् ॥ ८ ॥

तत्त्वविहित निदर्शनशाली मनीषि लोग जिह्वाको अध्यात्म, रसको अधिभूत और उसमें जलको अधिदैवत कहा करते हैं ॥ ८ ॥

घ्राणमध्यात्ममित्याहुर्यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।
गन्ध एवाधिभूतं तु पृथिवी चाधिदैवतम् ॥ ९ ॥

श्रुतिविहित निदर्शनशाली पण्डित लोग नासिकाको अध्यात्म, गन्धको अधिभूत और पृथ्वीको अधिदैवत कहते हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्वगध्यात्ममिति प्राहुस्तत्त्वबुद्धिविशारदाः ।
स्पर्श एवाधिभूतं तु पवनश्चाधिदैवतम् ॥ १० ॥

तत्त्वबुद्धिवाले विद्वान् लोग त्वचाको अध्यात्म, स्पर्शको अधिभूत और पवनको अधिदैवत कहते हैं ॥ १० ॥

मनोऽध्यात्ममिति प्राहुर्यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।
मन्तव्यमधिभूतं तु चन्द्रमाश्चाधिदैवतम् ॥ ११ ॥

शास्त्र जाननेवाले विद्वान् मनको अध्यात्म, मन्तव्यको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैवत कहते हैं ॥ ११ ॥

अहंकारिकमध्यात्ममाहुस्तत्त्वनिदर्शनम् ।
अभिमानोऽधिभूतं तु भवस्तत्राधिदैवतम् ॥ १२ ॥

तत्त्वनिदर्शनशाली विद्वान् लोग अहङ्कारको अध्यात्म, अभिमानको अधिभूत और इसमें भवको अधिदैवत कहते हैं ॥ १२ ॥

बुद्धिरध्यात्ममित्याहुर्यथावेदनिदर्शनम् ।
बोद्धव्यमधिभूतं तु क्षेत्रज्ञोऽत्राधिदैवतम् ॥ १३ ॥

यथार्थदर्शी पण्डित लोग बुद्धिको अध्यात्म, बोद्धव्यको अधिभूत और क्षेत्रज्ञ जीवको अधिदैवत कहा करते हैं ॥ १३ ॥

एषा ते व्यक्ततो राजन्विभूतिरनुवर्णिता ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥ १४ ॥

हे तत्त्ववित् महाराज ! सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कालमें ही भूत प्रपञ्चके अनुसार उस एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी विभूतिको मैंने तुम्हारे निकट यथार्थ रीतिसे कहा ॥ १४ ॥

प्रकृतिर्गुणान्विकुरुते स्वच्छन्देनात्मकाम्यया ।
क्रीडार्थं तु महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! प्रकृति इच्छानुसार क्रीडाके अनुसार निमित्त आत्मकामनाके सैकडों तथा हजारों तरहसे सब गुणोंको विकृत कर रखती है ॥ १५ ॥

यथा दीपसहस्राणि दीपान्मर्त्याः प्रकुर्वते ।
प्रकृतिस्तथा विकुरुते पुरुषस्य गुणान्बहून् ॥ १६ ॥

जैसे मर्त्यलोकवासी मनुष्य एक दीपकसे सहस्रों दीपक जलाते हैं, वैसे ही प्रकृति पुरुषके सत्व, रज और तम, इन तीनों गुणोंको अनेक हिस्सोंमें विकृत किया करती है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्त्वमानन्द उद्रेकः प्रीतिः प्राकाश्यमेव च ।
सुखं शुद्धित्वमारोग्यं सन्तोषः श्रद्दधानता ॥ १७ ॥

धैर्य, आनन्द, ऐश्वर्य, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धता, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धानता, ॥१७॥

अकार्पण्यमसंरम्भः क्षमा धृधिरहिंसता ।
समता सत्यमानृण्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ १८ ॥

कृपणताहीनता, असंरंभ (क्रोधरहितता), क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, आनृण्य, मार्दव, लज्जा, चपलताहीनता, ॥ १८ ॥

शौचमार्जवमाचारमलौल्यं ह्यसंभ्रमः ।
इष्टानिष्टवियोगानां कृतानामविकत्थनम् ॥ १९ ॥

पवित्रता, विनीतता, सदाचार, अलोलुपता, असम्भ्रम, इष्ट और अनिष्टके वियोगका बखान न करना, ॥ १९ ॥

दानेन चानुग्रहणमस्पृहार्थे परार्थता ।
सर्वभूतदया चैव सत्त्वस्यैते गुणाः स्मृताः ॥ २० ॥

दानके सहारे आत्मग्रहण, अस्पृहता, परोपकारिता और सब प्राणियोंमें दया, ये सत्त्वके गुण कहके वर्णित हुए हैं ॥ २० ॥

रजोगुणानां संघातो रूपमैश्वर्यविग्रहे ।
अत्याशित्वमकारुण्यं सुखदुःखोपसेवनम् ॥ २१ ॥

रूप, ऐश्वर्य, विग्रह, त्यागका अभाव, करुणाहीनता, सुखदुःखका सेवन; ॥ २१ ॥

परापवादेषु रतिर्विवादानां च सेवनम् ।
अहंकारस्त्वसत्कारश्चिन्ता वैरोपसेवनम् ॥ २२ ॥

परापवादमें रति, विवाद सेवन, अहंकार, सत्कार न करना, चिन्ता, वैरभाव रखना, ॥२२॥

परितापोऽपहरणं ह्रीनाशोऽनार्जवं तथा ।
भेदः परुषता चैव कामक्रोधौ मदस्तथा ।
दर्पो द्वेषोऽतिवादश्च एते प्रोक्ता रजोगुणाः ॥ २३ ॥

परिताप, पराया धन हरना, लज्जानाश, कुटिलता, भेद बुद्धि, कठोरता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और अतिवाद, ये सब रजोगुणके समूह कहके वर्णित हुए हैं ॥ २३ ॥

तामसानां तु संघातं प्रवक्ष्याम्युपधार्यताम् ।
मोहोऽप्रकाशस्तामिस्रमन्धतामिस्रसंज्ञितम् ॥ २४ ॥

अब मैं तामस भावोंके समूह कहता हूं, सावधान होकर सुनो । मोह, अप्रकाश (अज्ञान), तामिस्र और अन्धतामिस्र, ये तमोगुणके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मरणं चान्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते ।
तमसो लक्षणानीह भक्षणाभिरोचनम् ॥ २५ ॥

इनमें अन्धतामिस्र मरणका और तामिस्र क्रोधका बोधक है। भक्षण आदिमें अभिरुचि, ॥२५॥

भोजनानामपर्याप्तिस्तथा पेयेष्वतृप्तता ।
गन्धवासो विहारेषु शयनेष्वासनेषु च ॥ २६ ॥

भोजनमें तृप्तिका अभाव, पीनेकी वस्तुमें अतृप्ति, दुर्गन्ध युक्त वस्त्र, अनुचित विहार, मलिन शय्या और आसनोंका सेवन—दिनमें सोना, ॥ २६ ॥

दिवास्वप्ने विवादे च प्रमादेषु च वै रतिः ।
नृत्यवादित्रगीतानामज्ञानाच्छ्रद्दधानता ।
द्वेषो धर्मविशेषणामेते वै तामसा गुणाः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥ १०७१२ ॥

अतिवाद तथा प्रमादमें रति, अज्ञानसे नृत्यगीत और बाजोंमें श्रद्धानता अथवा धर्मविशेषमें द्वेषप्रकाश, ये सब तामसगुणके लक्षण करके निर्दिष्ट हुए हैं ॥ २७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ एकवां अध्याय समाप्त ॥ ३०१ ॥ १०७१२ ॥

: ३०२ :

याज्ञवल्क्य उवाच—

एते प्रधानस्य गुणास्त्रयः पुरुषसत्तम ।
कृत्स्नस्य चैव जगतस्तिष्ठन्त्यनपगाः सदा । ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे पुरुषोत्तम ! सत्व, रज और तम ये तीनों प्रकृतिके प्रधान गुण हैं; ये गुण सदा समस्त जगत्के निमित्तकारण रूपसे निवास करते हैं । कभी उससे अलग नहीं होते हैं ॥ १ ॥

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ।
कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ॥ २ ॥

षडैश्वर्य शक्ति युक्त अव्यक्त रूप प्रधान, इन तीन प्रकारके गुणोंसे प्रत्यगात्म परमात्माको सैकडों, हजारों, लाखों और करोडों प्रकारसे विभक्त कर रखता है ॥ २ ॥

सात्त्विकस्योत्तमं स्थानं राजसस्येह मध्यमम् ।
तामसस्याधमं स्थानं प्राहुरध्यात्मचिन्तकाः ॥ ३ ॥

अध्यात्म शास्त्रका विचार करनेवाले पण्डित लोग कहते हैं, कि इस लोकमें सत्वगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य लोग ही उत्तम स्थान, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यम स्थान और तमोगुणावलम्बी पुरुष अधम स्थान प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

केवलेनेह पुण्येन गतिमूर्ध्वामवाप्नुयात् ।
पुण्यपापेन मनुष्यमधर्मेणाप्यधोगतिम् ॥ ४ ॥

इस लोकमें जो केवल पुण्य करता है वह उर्ध्व गति और पुण्यपाप दोनों करता वह मनुष्यता लाभ करता है । इस लोकमें जो केवल अधर्म रूप पापकार्य करता है वह अधोगति लाभ किया करता है ॥ ४ ॥

द्वंद्वमेषां त्रयाणां तु संनिपातं च तत्त्वतः ।
सत्त्वस्य रजसश्चैव तमसश्च शृणुष्व मे ॥ ५ ॥

हे नराधिप ! सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणोंके परस्पर मिलन तथा द्वन्द्वको मेरे समीप यथार्थरूपसे सुनिये ॥ ५ ॥

सत्त्वस्य तु रजो दृष्टं रजसश्च तमस्तथा ।
तमसश्च तथा सत्त्वं सत्त्वस्याव्यक्तमेव च ॥ ६ ॥

सत्वगुणमें रज, रजोगुणमें तम तमोगुणमें सत्व और सत्वगुणमें अव्यक्त—समता दीख पडती है ॥ ६ ॥

अव्यक्त सत्त्वसंयुक्तो देवलोकमवाप्नुयात् ।
रजःसत्त्वसमायुक्तो मनुष्यत्वमुपपद्यते ॥ ७ ॥

अव्यक्त ब्रह्म—जीवात्मा सत्त्वसे संयुक्त होकर देवलोक प्राप्त करता है, रज और तमसे संयुक्त होकर मनुष्यलोकमें जाता है ॥ ७ ॥

रजस्तमोभ्यां संयुक्तस्तिर्यग्योनिषु जायते ।
रजस्तामससत्त्वैश्च युक्तो मानुष्यमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

रज और तमसे युक्त होके तिर्यग्योनिमें जन्मता है; तथा सत्त्व, रज और तम गुण युक्त होके मनुष्यलोक लाभ करता है ॥ ८ ॥

पुण्यपापवियुक्तानां स्थानमाहुर्मनीषिणाम्
शाश्वतं चाव्ययं चैव अक्षरं चाभयं च यत् ॥ ९ ॥

और मनीषि, पुण्य तथा पापरहित महात्मा लोग शाश्वत, अव्यय, अक्षर अभय युक्त परमधाम पाते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञानिनां संभवं श्रेष्ठं स्थानमव्रणमच्युतम् ।
अतीन्द्रियमबीजं च जन्ममृत्युतमोनुदम् ॥ १० ॥

ज्ञानियोंका जन्म श्रेष्ठ और उनका स्थान अक्षय है; अच्युत, अतीन्द्रिय, निरवयव और जन्म, मृत्यु तथा अन्धकारसे रहित है ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अव्यक्तस्थं परं यत्तत्पृष्टस्तेऽहं नराधिप ।
स एष प्रकृतिस्थो हि तिस्थुरित्यभिधीयते ॥ ११ ॥

हे नरनाथ ! आपने मुझसे जो अव्यक्त प्रकृतिमें स्थित परम धामका विषय पूछा था, वह स्थान अव्यक्त ब्रह्ममें विद्यमान रहता है, मनुष्य लोग उस अव्यक्त ब्रह्मको जाननेसे ही उस स्थानको सहजमें प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु उस ब्रह्मका प्रकृतिसंसर्ग होनेसे ही लोग उसे प्रकृतिस्थ पुरुष कहा करते हैं ॥ ११ ॥

अचेतनश्चैष मतः प्रकृतिस्थश्च पार्थिव ।
एतेनाधिष्ठितश्चैव सृजते संहरत्यपि ॥ १२ ॥

हे राजन् ! प्रकृति अचेतन है, परन्तु उस ब्रह्मके अधिष्ठानसे ही वह सृष्टि और संहार किया करती है ॥ १२ ॥

जनक उवाच—

अनादिनिधनावेतावुभावेव महामुने ।
अमूर्तिमन्तावचलावप्रकम्प्यौ च निर्व्रणौ ॥ १३ ॥

जनक बोले— हे महामुनि ! प्रकृति और पुरुष दोनोंही अनादिनिधन हैं; अमूर्त्त, अचल, स्थिर और अप्रत्यक्ष हैं ॥ १३ ॥

अग्राह्यावृषिशार्दूल कथमेको ह्यचेतनः ।
चेतनावांस्तथा चैकः क्षेत्रज्ञ इति भाषितः ॥ १४ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठ ! ये दोनोंही बुद्धि—अगोचर हैं; परन्तु इनमेंसे किस लिये प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन क्षेत्रज्ञ कहके वर्णित हुआ ? ॥ १४ ॥

त्वं हि विप्रेन्द्र कात्स्न्र्येन मोक्षधर्ममुपाससे ।
साकल्यं मोक्षधर्मस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १५ ॥

हे विप्रेन्द्र ! आपने समस्त मोक्षधर्मकी उपासना की है; इसलिये आपके समीप सम्पूर्ण मोक्षधर्म यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १५ ॥

अस्तित्वं केवलत्वं च विनाभावं तथैव च ।
तथैवोत्क्रमणस्थानं देहिनोऽपि वियुज्यतः ॥ १६ ॥

हे ऋषिसत्तम ! इसलिये आप पुरुषके अस्तित्व, केवलत्व और भावरहितत्वका स्पष्टीकरण कीजिये; मरनेवाले जीवके उत्क्रमण स्थानकाही वर्णन करिये ॥ १६ ॥

कालेन यद्धि प्राप्नोति स्थानं तद्ब्रूहि मे द्विज ।
सांख्यज्ञानं च तत्त्वेन पृथग्योगं तथैव च ॥ १७ ॥

तथा कालक्रमसे वह जिस स्थानको लाभ करता है, वह स्थान, पृथक् सांख्य और योगके ज्ञानका भी वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अरिष्टानि च तत्त्वेन वक्तुमर्हसि सत्तम ।
विदितं सर्वमेतत्ते पाणावामलकं यथा ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥ १०७३० ॥

और मृत्युसूचक तत्त्व यह सब विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये क्योंकि हाथमें स्थित आमलककी भांति यह सब विषय आपको विदित है ॥ १८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ दोवां अध्याय समाप्त ॥ ३०२ ॥ १०७३० ॥

३०३

याज्ञवल्क्य उवाच—

न शक्यो निर्गुणस्तात गुणीकर्तुं विशां पते ।
गुणवांश्चाप्यगुणवान्यथातत्त्वं निबोध मे ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे तात ! पृथ्वीपति ! निर्गुणको सगुण और सगुणको निर्गुण करना जो महाकठिन दुःसाध्य है, उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप सुनो ॥ १ ॥

गुणैर्हि गुणवानेव निर्गुणश्चागुणस्तथा ।
प्राहुरेवं महात्मानो मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ २ ॥

तत्वदर्शी महात्मा मुनि लोग ऐसा कहते हैं, जिसमें गुणका संसर्ग है वह वस्तु ही गुणवान् है; जिसमें गुणका संसर्ग नहीं वह वस्तु गुणवान् नहीं है, निर्गुण है ॥ २ ॥

गुणस्वभावस्त्वव्यक्तो गुणानेवाभिवर्तते ।
उपयुङ्क्ते च तानेव स चैवाज्ञः स्वभावतः ॥ ३ ॥

अव्यक्त प्रधान प्रकृति स्वभावसे ही गुणवती होनेसे सब गुणोंको त्यागनेमें असमर्थ होती है, और स्वाभाविक अज्ञ होनेसे सदा वही उन गुणोंको भोग किया करती है ॥ ३ ॥

अव्यक्तस्तु न जानीते पुरुषो ज्ञः स्वभावतः ।
न मत्तः परमस्तीति नित्यमेवाभिमन्यते ॥ ४ ॥

अव्यक्तमें वस्तुज्ञान न होनेसे वह अज्ञ रूपसे गिनी जाती है, परन्तु पुरुष स्वाभाविक ही ज्ञानवान् है; क्योंकि " मुझसे और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है " वह सदा ऐसा ही ज्ञान किया करता है ॥ ४ ॥

अनेन कारणेनैतदव्यक्तं स्यादचेतनम् ।
नित्यत्वादक्षरत्वाच्च क्षरणात् तत्त्वतोऽन्यथा ॥ ५ ॥

हे राजन् ! इसही कारणसे अव्यक्त प्रकृतिको अचेतन माना गया है; परन्तु नित्य और अक्षर—अविनाशी होनेके कारण पुरुष चेतन है; क्षरसे तत्त्वतः विपरीत है ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदाज्ञानेन कुर्वीत गुणसर्गं पुनः पुनः ।
यदात्मानं न जानीते तदाव्यक्तमिहोच्यते ॥ ६ ॥

वह अज्ञानसे बार बार आत्माको गुणयुक्त किया करता है, इसलिये उसे अपने असंग स्वरूपका आत्मज्ञान नहीं होता, तब यहां वह अव्यक्त कहा जाता है ॥ ६ ॥

कर्तृत्वाच्चापि तत्त्वानां तत्त्वधर्मी तथोच्यते ।
कर्तृत्वाच्चैव योनीनां योनिधर्मा तथोच्यते ॥ ७ ॥

और आत्मा प्रकृत महदादि तत्वोंके कर्तृत्वनिबन्धनसे मुक्त न हो सकनेसे तत्त्वधर्मा कहा जाता है । इस ही प्रकार वह सब योनिओंके कर्तृत्व हेतुसे योनिधर्म कहा जाता है ॥ ७ ॥

कर्तृत्वात्प्रकृतीनां तु तथा प्रकृतिधर्मिता ।
कर्तृत्वाच्चापि बीजानां बीजधर्मी तथोच्यते ॥ ८ ॥

प्रकृति अर्थात् प्रजापुञ्जके कर्तृत्वनिबन्धनसे प्रकृति धर्मवाला होता है; बीजके कर्तृत्व हेतुसे उसे बीजधर्मा कहते हैं ॥ ८ ॥

गुणानां प्रसवत्वाच्च तथा प्रसवधर्मवान् ।
कर्तृत्वात्प्रलयानां च तथा प्रलयधर्मिता ॥ ९ ॥

और शम, दम आदि गुणोंकी सृष्टि करनेसे प्रसवधर्मवाला तथा प्रलय कर्तृत्व हेतुसे वह प्रलय धर्मवाला कहके वर्णित होता है ॥ ९ ॥

बीजत्वात्प्रकृतित्वाच्च प्रलयत्वात्तथैव च ।
उपेक्षकत्वादनन्यत्वादभिमानाच्च केवलम् ॥ १० ॥

उसे बीज, प्रकृति और प्रलय कर्तृत्व निबन्धनसे तथा वह साक्षी और अद्वितीय होनेसे और मिथ्या अभिमानवशसे सुख-दुःखका भोग करनेसे वह केवलही (प्रकृतिके सङ्गसे रहित) माना जाता है ॥ १० ॥

मन्यन्ते यतयः शुद्धा अध्यात्मविगतज्वराः ।
अनित्यं नित्यमव्यक्तमेवमेतद्धि शुश्रुम ॥ ११ ॥

हमने ऐसा सुना है, कि अध्यात्मज्ञ, पवित्र अंतःकरणवाले चिन्ता रहित सिद्ध यति लोग आत्माको केवल अनित्य, नित्य, अव्यक्त तथा व्यक्त जानते हैं ॥ ११ ॥

अव्यक्तैकत्वमित्याहुर्नानात्वं पुरुषस्तथा ।
सर्वभूतदयावन्तः केवलं ज्ञानमास्थिताः ॥ १२ ॥

सब प्राणियोंपर दया करनेवाले और केवल ज्ञानमें रत निरीश्वरवादी सांख्य लोग अव्यक्तको एकत्व और पुरुषको नानात्व कहा करते हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्यः स पुरुषोऽव्यक्तस्त्वध्रुवो ध्रुवसंज्ञकः ।
यथा मुञ्ज इषीकायास्तथैवैतद्धि जायते ॥ १३ ॥

और वे लोग बहुतसे दृष्टान्त दिखाके पुरुष तथा प्रकृतिमें इस प्रकार भेद कहते हैं, कि जैसे मूंजके भीतरकी सींक मूंजसे पृथक् है, उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुषसे भिन्न है ॥ १३ ॥

अन्यं च मशकं विद्यादन्यच्चोदुम्बरं तथा ।
न चोदुम्बरसंयोगैर्मशकस्तत्र लिप्यते ॥ १४ ॥

जैसे गूलर फलके भीतर रहनेवाले मशक गूलरसे अलग हैं, गूलरके संयोगसे कीडे उससे लिप्त नहीं होते ॥ १४ ॥

अन्य एव तथा मत्स्यस्तथान्यदुदकं स्मृतम् ।
न चोदकस्य स्पर्शेन मत्स्यो लिप्यति सर्वशः ॥ १५ ॥

जैसे मत्स्य दूसरी वस्तु है और जल दूसरीही है; पानीके स्पर्शसे कभी मत्स्य लिप्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

अन्यो ह्यग्निरुखाप्यन्या नित्यमेवमवैहि भोः ।
न चोपलिप्यते सोऽग्निरुखासंस्पर्शनेन वै ॥ १६ ॥

जैसे अग्नि दूसरी वस्तु है और मिट्टीकी हंडिया दूसरी वस्तु है; इन दोनोंके भेदको नित्य समझो; उस हंडियेके स्पर्शसे अग्नि लिप्त नहीं होती है ॥ १६ ॥

पुष्करं त्वन्यदेवात्र तथा न्यदुदकं स्मृतम् ।
न चोदकस्य स्पर्शेन लिप्यते तत्र पुष्करम् ॥ १७ ॥

जैसे कमल दूसरी वस्तु है और पानी दूसरी वस्तु है; पानीके स्पर्शसे कमल लिप्त नहीं होता है; वैसेही प्रकृतिमें निवास करनेवालेही पुरुषको भी प्रकृतिसे पृथक् और असंग जानो ॥१७॥

एतेषां सह संवासं विवासं चैव नित्यशः ।
यथा तथैनं पश्यन्ति न नित्यं प्राकृता जनाः ॥ १८ ॥

हे राजन् ! साधारण पुरुष इनके सहवास और नित्य निवासको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते । जो इन दोनोंके स्वरूपको उलटा समझते हैं, ॥ १८ ॥

ये त्वन्यथैव पश्यन्ति न सम्यक्तेषु दर्शनम् ।
ते व्यक्तं निरयं घोरं प्रविशन्ति पुनः पुनः ॥ १९ ॥

प्रकृति और पुरुषको एक दूसरेसे भिन्न नहीं समझते हैं, वे सम्यक्दर्शी होनेमें समर्थ नहीं होते; वरन वे लोग स्पष्ट ही बार बार घोर नरकमें डूबा करते हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सांख्यदर्शनमेतत्ते परिसंख्यातमुत्तमम् ।
एवं हि परिसंख्याय सांख्याः केवलतां गताः ॥ २० ॥

हे राजन् ! मैंने जो यह परिसंख्या करके अनुत्तम सांख्य दर्शन तुमसे कहा है, सांख्य लोग इस ही प्रकार परिसंख्या करके कैवल्यका लाभ किया करते हैं ॥ २० ॥

ये त्वन्ये तत्त्वकुशलास्तेषामेतन्निदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योगानामपि दर्शनम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥ २०७५१ ॥

दूसरे भी जो लोग तत्त्वविचार कुशल विद्वान हैं, उनका भी ऐसा ही मत है; इसके अनन्तर योगानुदर्शन ज्योंका त्यों कहता हूं ॥ २१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तीनवां अध्याय समाप्त ॥ ३०३ ॥ १०७५१ ॥

: ३०४ :

याज्ञवल्क्य उवाच—

सांख्यज्ञानं मया प्रोक्तं योगज्ञानं निबोध मे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं तत्त्वेन नृपसत्तम ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले– हे नृपसत्तम ! मैंने आपसे सांख्य सम्बन्धी ज्ञानको ज्योंका त्यों कहा; अनन्तर यथाश्रुत और यथादृष्ट योगज्ञानको यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम् ।
तावुभावेकचर्यौ तु उभावनिधनौ स्मृतौ ॥ २ ॥

सांख्य ज्ञानके समान कोई ज्ञान और योगबलके समान कोई दूसरा बल नहीं है; तथा सांख्य वा योग दोनोंका ही अनुष्ठान एक ही है और दोनों ही मृत्युका निवारण करनेवाले कहके वर्णित हुए हैं ॥ २ ॥

पृथक्पृथक्तु पश्यन्ति येऽप्यबुद्धिरता नराः ।
वयं तु राजन्पश्याम एकमेव तु निश्चयात् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! जो मनुष्य मूढ हैं, वेही सांख्य और योगको पृथक् पृथक् समझते हैं, परन्तु विचारपूर्ण निश्चय हेतुसे मैं दोनोंको एक ही समझता हूं ॥ ३ ॥

यदेव योगाः पश्यन्ति तत्सांख्यैरपि दृश्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥ ४ ॥

योगी लोग योगके सहारे जिस तत्त्वका दर्शन करते हैं, सांख्य लोग भी ज्ञानके जरिये उसका दर्शन किया करते हैं; इसलिये जो सांख्य और योग दोनोंको ही एकरूप जानता है, वही तत्त्ववित् है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रुद्रप्रधानानपरान्विद्धि योगान्परंतप ।
तेनैव चाथ देहेन विचरन्ति दिशो दश ॥ ५ ॥

हे अरिदमन ! तुम निश्चय जानो, कि जितने प्रकारके योग हैं; उन सबमें ही प्राण ही प्रधान और सर्वश्रेष्ठ है; योगी इस ही प्रकार योगका अनुष्ठान करके– प्राणको अपने वशमें करके– उसी योगयुक्त देहसे सर्वत्र विचरण किया करते हैं ॥ ५ ॥

यावद्धि प्रलयस्तात सूक्ष्मेणाष्टगुणेन वै ।
योगेन लोकान्विचरन्सुखं संन्यस्य चानघ ॥ ६ ॥

हे तात ! अनघ ! योगी जब तक मृत्यु न हो जाय, तभी ही योगबलसे स्थूल शरीरको यहीं छोडकर अष्टविध ऐश्वर्यसे युक्त सूक्ष्म शरीरसे लोकोंमें विचरण करता है ॥ ६ ॥

वेदेषु चाष्टगुणितं योगमाहुर्मनीषिणः ।
सूक्ष्ममष्टगुणं प्राहुर्नेतरं नृपसत्तम ॥ ७ ॥

हे नृपसत्तम ! मनीषी लोगोंने वेदमें स्थूल और सूक्ष्म योगोंका वर्णन है, ऐसा कहा है; उनमें स्थूल योग अणिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धि करनेवाला है और सूक्ष्म योग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि– इन आठ गुणोंसे युक्त है; दूसरा नहीं है ॥ ७ ॥

द्विगुणं योगकृत्यं तु योगानां प्राहुरुत्तमम् ।
सगुणं निर्गुणं चैव यथाशास्त्रनिदर्शनम् ॥ ८ ॥

परन्तु योगियोंने सब प्रकारसे योगके बीच शास्त्रसम्मत सगुण और निर्गुण, इन दोनों प्रकारके योगोंको ही उत्तम कहके वर्णन किया है ॥ ८ ॥

धारणा चैव मनसा प्राणायामश्च पार्थिव ।
प्राणायामो हि सगुणो निर्गुणं धारणं मनः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! प्राणवायुको निग्रह, मनको धारण और चित्तको एकाग्र करनेसे जो प्राणायामरूप दो योग वर्णित हुए हैं, उसमेंसे प्राणायामको सगुण और धारणाको निर्गुण जानो ॥ ९ ॥

यत्र हृद्येत मुञ्चन्वै प्राणान्मैथिलसत्तम ।
वाताधिक्यं भवत्येव तस्माद्धि न समाचरेत् ॥ १० ॥

हे मैथिल श्रेष्ठ ! वायुके मोचनस्थान अवश्य होने पर यदि उस समय प्राणवायु मुक्त हो, तो वायुकी प्रबलता होजाती है; इसलिये उस समय ध्यान रहित वायु रेचन न करे ॥ १० ॥

निशायाः प्रथमे यामे चोदना द्वादश स्मृताः ।
मध्ये सुप्त्वा परे यामे द्वादशैव तु चोदनाः ॥ ११ ॥

रातके पहले पहरमें वायुको धारण करनेकी बारह प्रेरणाएं कही गयी हैं; मध्य रात्रिके बीचके दो पहरोंमें सोना चाहिये और फिर शेष पहरमें बारह प्रेरणाओंका अभ्यास करे ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेवमुपशान्तेन दान्तेनैकान्तशीलिना ।
आत्मारामेण बुद्धेन योक्तव्योऽऽत्मा न संशयः ॥ १२ ॥

इस प्रकार प्राणायामसे मनको शान्त करके और जितेन्द्रिय हो एकान्तवासमें आत्माराम ज्ञानी मनको परमात्म चिन्तनमें लगावे, इसमें संशय नहीं है ॥ १२ ॥

पञ्चानामिन्द्रियाणां तु दोषानाक्षिप्य पञ्चधा ।
शब्दं स्पर्शं तथा रूपं रसं गन्धं तथैव च ॥ १३ ॥
प्रतिभामपवर्गं च प्रतिसंहृत्य मैथिल ।
इन्द्रियग्राममखिलं मनस्यभिनिवेश्य ह ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध– इन दोषोंको निरास करते हुए, विक्षेप तथा लयको शान्त कर सब इन्द्रियोंको मनमें निवेश करें ॥ १३–१४ ॥

मनस्तथैवाहंकारे प्रतिष्ठाप्य नराधिप ।
अहंकारं तथा बुद्धौ बुद्धिं च प्रकृतावपि ॥ १५ ॥

हे नराधिप ! अनन्तर मनको अहंकारमें, अहंकारको बुद्धिमें और बुद्धिको प्रकृतिमें स्थापित करें ॥ १५ ॥

एवं हि परिसंख्याय ततो ध्यायेत केवलम् ।
विरजस्कमलं नित्यमनन्तं शुद्धमव्रणम् ॥ १६ ॥

हे राजन् ! योगी लोग इस ही प्रकार क्रमसे अन्तःकरण आदिको परस्परमें लीन करके अन्तमें केवल– परमात्माका जो रजोगुणसे रहित शुद्ध, चैतन्य स्वरूप, नित्य, अनन्त, निर्मल, छिद्ररहित ॥ १६ ॥

तस्थुषं पुरुषं सत्त्वमभेद्यमजरामरम् ।
शाश्वतं चाव्ययं चैव ईशानं ब्रह्म चाव्ययम् ॥ १७ ॥

कूटस्थ, अन्तर्यामी, अभेद्य, अजर, अमर, शाश्वत, अव्यय और ईशान ब्रह्मका सदा ध्यान किया करते हैं ॥ १७ ॥

युक्तस्य तु महाराज लक्षणान्युपधारयेत् ।
लक्षणं तु प्रसादस्य यथा तृप्तः सुखं स्वपेत् ॥ १८ ॥

हे महाराज ! समाधिस्थ पुरुषके लक्षण कहता हूं, सुनो । जैसे मन्दिरके चिन्हसे प्रसन्न पुरुष तृप्त होकर सुखसे शयन किया करता है, वैसेही योगयुक्त पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निर्वाते तु यथा दीपो ज्वलेत्स्नेहसमन्वितः ।
निश्चलोर्ध्वशिखस्तद्वद्युक्तमाहुर्मनीषिणः ॥ १९ ॥

मनीषियोंने समाधिस्थ पुरुषका इस प्रकार लक्षण वर्णन किया है, कि जैसे निर्वात स्थलमें तेलसे भरा हुआ दीपक निश्चल और ऊर्ध्वशिख होकर जलता रहता है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष समाधिसमयमें निश्चल भावसे निवास करता है ॥ १९ ॥

पाषाण इव मेघोत्थैर्यथा बिन्दुभिराहतः ।
नालं चालयितुं शक्यस्तथा युक्तस्य लक्षणम् ॥ २० ॥

जैसे बादलकी बरसायी जलकी बूंदोंसे पत्थर आहत होके तनिक भी विचलित नहीं होता, वैसे ही समाधियुक्त पुरुषको भी अनेक प्रकारके विक्षेपके जरिये कोई समाधिसे अणुमात्र भी सञ्चालित करनेमें समर्थ नहीं होता, यही योगीका लक्षण है ॥ २० ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्विविधैर्गीतवादितैः ।
क्रियमाणैर्न कम्पेत मुक्तस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २१ ॥

ऐसा ही क्यों, पुरुषके समाधियुक्त होने पर शंख, नगारे आदि विविध बाजे और संगीत शब्दसे भी उसकी समाधि भंग नहीं होती; समाधियुक्त पुरुषका ऐसा ही निदर्शन निर्दिष्ट है ॥ २१ ॥

तैलपात्रं यथा पूर्णं कराभ्यां गृह्य पूरुषः ।
सोपानमारुहेद्गीतस्तर्ज्यमानोऽसिपाणिभिः ॥ २२ ॥

जैसे कोई पुरुष तेलसे भरे पात्रको दोनों हाथोंसे ग्रहण करके सोपान पर चढते हुए तलवार धारण करनेवाले पुरुषोंके जरिये डराया—धमकाया जाय, ॥ २२ ॥

संयतात्मा भयात्तेषां न पात्राद्बिन्दुमुत्सृजेत् ।
तथैवोत्तरमाणस्य एकाग्रमनसस्तथा ॥ २३ ॥

तथा उनके भयसे भीत होने पर भी संयतचित्त होकर पात्रसे एक बूंदभर भी तेल नहीं गिरने देता, वैसे ही योगकी ऊंची स्थिति प्राप्त किया हुआ एकाग्रचित्त योगी ॥ २३ ॥

स्थिरत्वादिन्द्रियाणां तु निश्चलत्वात्तथैव च ।
एवं युक्तस्य तु मुनेर्लक्षणान्युपधारयेत् ॥ २४ ॥

किसीके जरिये तर्जित वा भय प्रदर्शित होनेपर भी इन्द्रियोंकी स्थिरता और मनकी अविचलताके कारण समाधि परित्याग नहीं करता। जो मुनि इन्द्रियोंके बहिर्मुखाकार वृत्तिको रोकके अन्तःकरणको अचल करके समाधि अवलम्बन करता है, उसहीमें इस प्रकार सब योगलक्षण दीखते हैं ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स युक्तः पश्यति ब्रह्म यत्तत्परममव्ययम् ।
महतस्तमसो मध्ये स्थितं ज्वलनसंनिभम् ॥ २५ ॥

हे राजन् ! ऐसे लक्षणोंसे युक्त मनुष्य ही समाधियुक्त होके अत्यंत अंधकारमें प्रकाशित होनेवाली प्रज्वलित अग्निके समान महत्तत्त्व अव्यय परब्रह्मका दर्शन करता है ॥ २५ ॥

एतेन केवलं याति त्यक्त्वा देहमसाक्षिकम् ।
कालेन महता राजन्श्रुतिरेषा सनातनी ॥ २६ ॥

राजन् ! इस साधनासे मनुष्य बहुत समयके अनन्तर अचेतन देहको त्याग कर कैवल्य–परब्रह्म लाभ किया करता है, ऐसी सनातन श्रुति निरूपित है ॥ २६ ॥

एतद्धि योगं योगानां किमन्यद्योगलक्षणम् ।
विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥ १०७७८ ॥

हे राजन् ! और दूसरा योगका क्या लक्षण कहूंगा ? मैंने जो कहा सब प्रकार योगके बीच यह अत्यन्त उत्तम योग है, मनीषि लोग इस योगको विशेषरूपसे जानकर अपनेको कृतकृत्य समझते हैं ॥ २७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चारवां अध्याय समाप्त ॥ ३०४ ॥ १०७७८ ॥

ः ३०५ ः

याज्ञवल्क्य उवाच—

तथैवोत्क्रममाणं तु शृणुष्वावहितो नृप ।
पद्भ्यामुत्क्रममाणस्य वैष्णवं स्थानमुच्यते ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले– हे राजन् ! हठयोगाचारी योगी लोग अन्तकालमें जिन जिन स्थानोंसे प्राणवायु बाहर करके जैसा फल पाते हैं, वह सब आपके समीप वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये । मैंने ऐसा सुना है, कि योगी पांवके जरिये प्राणवायु परित्याग करनेसे विष्णुके परमधामको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

जङ्घाभ्यां तु वसून्देवानाप्नुयादिति नः श्रुतम् ।
जानुभ्यां च महाभागान्देवान्साध्यानवाप्नुयात् ॥ २ ॥

दोनों पिण्डलियोंके जरिये प्राण बाहर निकलनेपर देवताओंके वसु लोकमें जाता है; जानुके जरिये प्राणत्याग करनेसे महाभाग साध्य देवताओंके लोकको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

× CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पायुनोत्क्रममाणस्तु मैत्रं स्थानमवाप्नुयात् ।
पृथिवीं जघनेनाथ ऊरुभ्यां च प्रजापतिम् ॥ ३ ॥

गुदाके जरिये प्राण त्यागनेसे मैत्रलोक, जघनके सहारे प्राण छोडनेसे पृथ्वीलोक और ऊरुके जरिये प्राण त्याग करनेसे प्रजापतिलोककी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

पार्श्वाभ्यां मरुतो देवान्नासाभ्यामिन्दुमेव च ।
बाहुभ्यामिन्द्रमित्याहुरुरसा रुद्रमेव च ॥ ४ ॥

दोनों पसलियोंसे प्राण छोडनेपर मरुत्देवताओंकी, नासिकासे प्राण त्याग करनेसे चन्द्रलोक, दोनों भुजाओंसे प्राण त्यागनेपर इन्द्रलोक और वक्षःस्थलसे त्यागनेपर रुद्रलोककी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

ग्रीवयास्तमृषिश्रेष्ठं नरमाप्नोत्यनुत्तमम् ।
विश्वेदेवान्मुखेनाथ दिशः श्रोत्रेण चाप्नुयात् ॥ ५ ॥

ग्रीवाके जरिये प्राणोंका परित्याग करनेसे मनुष्य ऋषियोंमें श्रेष्ठ उत्तम नरका सांनिध्य प्राप्त करता है; मुखसे प्राण त्यागने पर विश्वेदेवोंके लोकको और कानसे प्राण त्यागनेपर दसदिग्लोककी प्राप्ति करता है ॥ ५ ॥

घ्राणेन गन्धवहनं नेत्राभ्यां सूर्यमेव च ।
भ्रूभ्यां चैवाश्विनौ देवौ ललाटेन पितनथ ॥ ६ ॥

घ्राणके सहारे प्राण त्यागनेसे गन्धवह वायुलोक नेत्रोंसे प्राण त्यागनेपर अग्निलोक, दोनों भौहोंसे प्राण त्यागनेपर अश्विदेवलोक और ललाटसे प्राण त्यागनेपर पितृलोकको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

ब्रह्माणमाप्नोति विभुं मूर्ध्ना देवाग्रजं तथा ।
एतान्युत्क्रमणस्थानान्युक्तानि मिथिलेश्वर ॥ ७ ॥

और सिरके सहारे प्राण त्यागनेसे मनुष्य देवताओंके अग्रज भगवान् ब्रह्माके लोकको जाता है; हे मिथिलेश्वर ! मैंने क्रमसे इन सब उत्क्रमण स्थानोंको तुम्हारे समीप वर्णन किया है ॥ ७ ॥

अरिष्टानि तु वक्ष्यामि विहितानि मनीषिभिः ।
संवत्सरवियोगस्य संभवेयुः शरीरिणः ॥ ८ ॥

अनन्तर संवत्सरके बीच मरणशील देहधारियोंके जो मनीषियोंके जरिये विहित अरिष्ट हैं, उसे कहता हूं, सुनो ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

योऽरुन्धतीं न पश्येत दृष्टपूर्वां कदाचन ।
तथैव ध्रुवमित्याहुः पूर्णेन्दुं दीपमेव च
खण्डाभासं दक्षिणतस्तेऽपि संवत्सरायुषः ॥ ९ ॥

हे पार्थिव ! जो पुरुष दृष्टपूर्वा अरुन्धती और ध्रुवनक्षत्रको न देखे तथा पूर्णचन्द्र और दीपकको दहिने भागमें खण्डाभासरूपसे दर्शन करे, वह संवत्सर भर जीवित रहता है ॥ ९ ॥

परचक्षुषि चात्मानं ये न पश्यन्ति पार्थिव ।
आत्मच्छायाकृतीभूतं तेऽपि संवत्सरायुषः ॥ १० ॥

हे राजन् ! जो पुरुष दूसरेके नेत्र पुतरीके बीच अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते, उनकी आयु भी एक वर्षतक शेष समझनी चाहिये ॥ १० ॥

अतिद्युतिरतिप्रज्ञा अप्रज्ञा चाद्युतिस्तथा ।
प्रकृतेर्विक्रियापत्तिः षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ॥ ११ ॥

अत्यन्त तेजस्वी पुरुषकी निस्तेजकता, अत्यन्त बुद्धिमानकी बुद्धिहीनता और स्वभावका उलटफेर हो जाय तो ये सब उसके छः महीनेके भीतर होनेवाली मृत्युके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

दैवतान्यवजानाति ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ।
कृष्णश्यावच्छविच्छायः षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ॥ १२ ॥

जो देवताओंकी अवज्ञा करे, ब्राह्मणोंसे विरोध करता रहे और जिसकी कान्ति काले तथा कपिश वर्णकी हो जाती है, छः महीनेभरमें उसकी मृत्यु हुआ करती है ॥ १२ ॥

शीर्णनाभि यथा चक्रं छिद्रं सोमं प्रपश्यति ।
तथैव च सहस्रांशुं सप्तरात्रेण मृत्युभाक् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमण्डलको उर्णनाभ—चक्रकी भांति छेदयुक्त अवलोकन करता है सात रात्रिके बीचही उसकी मृत्यु होती है ॥ १३ ॥

शवगन्धमुपाघ्राति सुरभिं प्राप्य यो नरः ।
देवतायतनस्थस्तु षड्रात्रेण मृत्युभाक् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य देवमंदिरमें रहके वहांकी सुगन्धको मुर्देकी गन्धकी भांति आघ्राण करता है, सात रात्रिके बीच वह मृत्युभागी होता है ॥ १४ ॥

कर्णनासावनमनं दन्तदृष्टिविरागिता ।
संज्ञालोपो निरूष्मत्वं सद्योमृत्युनिदर्शनम् ॥ १५ ॥

कान और नासिका टेढे हो जाय, दांत और आखोंका रंग बिगड जाय, संज्ञालोप होने लगे और शरीर ठंडा पड जाय— ये तत्काल होनेवाली मृत्युके निदर्शन हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अकस्माच्च स्रवेद्यस्य वामम्क्षि नराधिप ।
मूर्धतश्चोत्पतेद्धूमः सद्योमृत्युनिदर्शनम् ॥ १६ ॥

हे नरनाथ ! जिसके बाये नेत्रसे अकस्मात आंसू बहे अथवा सिरसे धुआं उठने लगे, उसकी तत्काल मृत्यु हुआ करती है ॥ १६ ॥

एतावन्ति त्वरिष्टानि विदित्वा मानवोऽऽत्मवान् ।
निशि चाहनि चात्मानं योजयेत्परमात्मनि ॥ १७ ॥

मनको संयत करनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य इन मृत्युसूचक अरिष्टोंको मालूम करके दिन-रात आत्माको परमात्मामें संयुक्त करे ॥ १७ ॥

प्रतीक्षमाणस्तत्कालं यत्कालं प्रति तद्भवेत् ।
अथास्य नेष्टं मरणं स्यातुमिच्छेदिमां क्रियाम् ॥ १८ ॥

जिस समयमें मृत्यु होनेवाली होगी, उस समयकी प्रतीक्षा करते हुए, यदि योगीका मरना इष्ट न हो, अभी इस जगत्में रहना चाहे तो यही क्रिया करे ॥ १८ ॥

सर्वगन्धान्रसांश्चैव धारयेत समाहितः ।
तथा हि मृत्युं जयति तत्परेणान्तरात्मना ॥ १९ ॥

हे नरनाथ ! मनुष्य एकाग्रचित्त होकर पञ्चभूतविषयक धारणा करके समस्त गन्ध और सब रसोंको धारण करे; अन्तरात्माके आत्मनिष्ठ होनेपर मनुष्य मृत्युको जय करनेमें समर्थ होता है ॥ १९ ॥

ससांख्यधारणं चैव विदित्वा मनुजर्षभ ।
जयेच्च मृत्युं योगेन तत्परेणान्तरात्मना ॥ २० ॥

हे नरवर ! अन्तःकरण आत्मनिष्ठ होनेपर योगी उसहीके जरिये सांख्य और योगसे मृत्युको जय करनेमें समर्थ हुआ करता है ॥ २० ॥

गच्छेत्प्राप्याक्षयं कृत्स्नमजन्म शिवमव्ययम् ।
शाश्वतं स्थानमचलं दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥ १०७९९ ॥

जो इस ही प्रकार अनुष्ठान करता है, वह अकृतबुद्धि पुरुषसे दुष्प्राप्य, अक्षय, पुनरावृत्तिसे रहित, कल्याणकर, नित्य, अचल लोक पाके वहां ही जाता है ॥ २१ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ पांचवां अध्याय समाप्त ॥ ३०५ ॥ १०७९९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३०६ :

याज्ञवल्क्य उवाच—

अव्यक्तस्थं परं यत्तत्पृष्टस्तेऽहं नराधिप ।
परं गुह्यमिमं प्रश्नं शृणुष्वावहितो नृप ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे नरनाथ ! तुमने जो अव्यक्तघटित परम ब्रह्मका विषय मुझसे पूछा है, अब उस परम गुह्य प्रश्नका उत्तर कहता हूं; सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥

यथार्षेणेह विधिना चरतावमतेन ह ।
मयादित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥ २ ॥

हे मिथिलापति ! मैंने शास्त्रोक्त आर्षविधिके अनुसार आचरण करते हुए नतमस्तक होकर जिस प्रकार भगवान् आदित्यसे समस्त शुक्ल यजुर्वेदको पाया है, उसे सुनो ॥ २ ॥

महता तपसा देवस्तापिष्ठः सेवितो मया ।
प्रीतेन चाहं विभुना सूर्येणोक्तस्तदानघ ॥ ३ ॥

हे अनघ ! मैंने उत्तम महत् तपस्याके जरिये तपनेवाले सूर्यदेवकी उपासना की, अनन्तर वह भगवान् सूर्य मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले— ॥ ३ ॥

वरं वृणीष्व विप्रर्षे यदिष्टं ते सुदुर्लभम् ।
तत्ते दास्यामि प्रीतात्मा मत्प्रसादो हि दुर्लभः ॥ ४ ॥

हे विप्रर्षि ! तुम्हें जिस अभिलषित दुर्लभ वरकी इच्छा हो, वह मांगो; मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्नचित्त हुआ हूं; तुम्हें वही वर दान करूंगा; मेरी प्रसन्नता दूसरेके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४ ॥

ततः प्रणम्य शिरसा मयोक्तस्तपतां वरः ।
यजुंषि नोपयुक्तानि क्षिप्रमिच्छामि वेदितुम् ॥ ५ ॥

अनन्तर मैंने सिर झुकाकर प्रणाम करके तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यदेवसे कहा— हे भगवन् ! मैं शीघ्रही अस्मदादिके अनुपयुक्त समस्त यजुर्वेद जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

ततो मां भगवानाह वितरिष्यामि ते द्विज ।
सरस्वतीह वाग्भूता शरीरं ते प्रवेक्ष्यति ॥ ६ ॥

अनन्तर भगवान् भास्कर मुझसे बोले— हे द्विज ! मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूंगा; तब वाग्देवी सरस्वती तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेगी ॥ ६ ॥

ततो मामाह भगवानास्यं स्वं विवृतं कुरु ।
विवृतं च ततो मेऽऽस्यं प्रविष्टा च सरस्वती ॥ ७ ॥

अनन्तर भगवान् सूर्यदेव मुझसे बोले, तुम अपना मुंह पसारो; मैंने जब उनकी आज्ञानुसार मुंह फैलाया, तब सरस्वती देवी उसमें प्रविष्ट हुई ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो विदह्यमानोऽहं प्रविष्टोऽम्भस्तदानघ ।
अविज्ञानादमर्षाच्च भास्करस्य महात्मनः ॥ ८ ॥

हे अनघ ! अनन्तर मैं विशेष रूपसे दह्यमान होकर जलके बीच प्रविष्ट हुआ । महात्मा भास्करकी महिमाको न जानने तथा अपनेमें सहनशक्ति न होनेसे मुझे कष्ट हुआ ॥ ८ ॥

ततो विदह्यमानं मामुवाच भगवान्रविः ।
मुहूर्तं सह्यतां दाहस्ततः शीतीभविष्यति ॥ ९ ॥

अनन्तर भगवान् सूर्य मुझे दह्यमान देखके बोले, " तुम मुहूर्त्तभर इस दाहको सहो, फिर तुम शीतल होगे " ॥ ९ ॥

शीतीभूतं च मां दृष्ट्वा भगवानाह भास्करः ।
प्रतिष्ठास्यति ते वेदः सोत्तरः सखिलो द्विज ॥ १० ॥

अनन्तर भगवान् सूर्य मुझे शीतल होते देखके बोले, हे द्विज ! खिल और उपनिषदों सहित आद्यन्त वेद तुममें प्रतिष्ठित होंगे ॥ १० ॥

कृत्स्नं शतपथं चैव प्रणेष्यसि द्विजर्षभ ।
तस्यान्ते चापुनर्भावे बुद्धिस्तव भविष्यति ॥ ११ ॥

हे द्विजवर ! तुम समस्त शतपथ ब्राह्मणका भी प्रणयन—सम्पादन करोगे; उनके प्रणयनकी समाप्ति होनेपर तुम्हारी बुद्धिशक्ति मोक्षपथकी अनुवर्त्तिनी होगी ॥ ११ ॥

प्राप्स्यसे च यदिष्टं तत्सांख्ययोगैरप्सितं पदम् ।
एतावदुक्त्वा भगवानस्तमेवाभ्यवर्तत ॥ १२ ॥

सांख्य और योगिओंको अभीष्ट पदको तुम भी उस प्रार्थनीय पदको प्राप्त करोगे; भगवान् सूर्य इतना कहके वहीं अदृश्य हुए ॥ १२ ॥

ततोऽनुव्याहृतं श्रुत्वा गते देवे विभावसौ ।
गृहमागत्य संहृष्टोऽचिन्तयं वै सरस्वतीम् ॥ १३ ॥

सूर्य देवका वचन सुन उनके चले जानेपर मैंने घर आके हर्षपूर्वक सरस्वती देवीका ध्यान किया ॥ १३ ॥

ततः प्रवृत्तातिशुभा स्वरव्यञ्जनभूषिता ।
ॐकारमादितः कृत्वा मम देवी सरस्वती ॥ १४ ॥

अनन्तर स्वर और व्यञ्जन वर्णोंसे भूषित, अत्यन्त शुभङ्करी सरस्वती देवी ओंकारको आगे करके मेरे सम्मुख प्रकट हुई ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽहमर्घ्यं विधिवत्सरस्वत्यै न्यवेदयम् ।
तपतां च वरिष्ठाय निषण्णस्तत्परायणः ॥ १५ ॥

अनन्तर मैंने सरस्वतीदेवी तथा तपनदेव भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ प्रदान किया और उनका चिन्तन करता हुआ बैठ गया ॥ १५ ॥

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम् ।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ॥ १६ ॥

अनन्तर परमहर्षसे मैंने रहस्य, संग्रह और परिशिष्टके सहित समस्त शतपथ ब्राह्मणका संकलन किया ॥ १६ ॥

कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम् ।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

हे महाराज ! अनन्तर मैंने उत्तम शिष्योंको शतपथ पढाया; फिर शिष्यसहित अपने महात्मा मामाका अप्रिय करनेके लिये ॥ १७ ॥

ततः सशिष्येण मया सूर्येणेव गभस्तिभिः ।
व्याप्तो यज्ञो महाराज पितुस्तव महात्मनः ॥ १८ ॥

गभस्तिगणके सहित सूर्यकी भांति सब शिष्योंके सहित तुम्हारे महानुभाव पिताके यज्ञकार्यका अनुष्ठान कराया ॥ १८ ॥

मिषतो देवलस्यापि ततोऽर्धं हृतवानहम् ।
स्ववेददक्षिणायाथ विमर्दे मातुलेन ह ॥ १९ ॥

अतन्तर महर्षि देवलके सम्मुखमें मेरे मातुलके वेद दक्षिणाके लिये महान् विमर्द उपस्थित हुआ । मैंने दोनोंको सम्मत करके दक्षिणका आधा हिस्सा लेना अङ्गीकार किया ॥ १९ ॥

सुमन्तुनाथ पैलेन तथा जैमिनिना च वै ।
पित्रा ते मुनिभिश्चैव ततोऽहमनुमानितः ॥ २० ॥

अनन्तर सुमन्त, पैल, जैमिनी, तुम्हारे पिता और अन्यान्य मुनियोंने मेरा सम्मान किया ॥ २० ॥

दश पञ्च च प्राप्तानि यजूंष्यर्कान्मयानघ ।
तथैव लोमहर्षाच्च पुराणमवधारितम् ॥ २१ ॥

हे अनघ ! मैंने आदित्यसे शुक्लयजुर्वेदकी पन्द्रह शाखाएं प्राप्त की; और लोमहर्षणके जरिये सारे पुराणोंका अध्ययन किया था ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बीजमेतत्पुरस्कृत्य देवीं चैव सरस्वतीम् ।
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥ २२ ॥
कर्तुं शतपथं वेदमपूर्वं कारितं च मे ।
यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् ॥ २३ ॥

हे नरनाथ ! फिर बीज रूप प्रणव और सरस्वती देवीको पुरस्कृत करके भगवान् सूर्यदेवके कृपा प्रभावसे इस अपूर्व शतपथकी रचना करनेमें प्रवृत्त हुआ, और उनके प्रभावसे इसे सम्पन्न किया है । जो मोक्षका पथ मुझे अभिलषित था, वह पूर्णरूपसे तैयार हुआ है ॥ २२–२३ ॥

शिष्याणामखिलं कृत्स्नमनुज्ञातं ससंग्रहम् ।
सर्वे च शिष्याः शुचयो गताः परमहर्षिताः ॥ २४ ॥

फिर शिष्योंको रहस्य और संग्रहके सहित समस्त शतपथका अध्ययन कराया है, सब शिष्य पवित्र और परम हर्षित हुए हैं और अपने घरको चले गये ॥ २४ ॥

शाखाः पञ्चदशेमास्तु विद्या भास्करदर्शिताः ।
प्रतिष्ठाप्य यथाकामं वेद्यं तदनुचिन्तयम् ॥ २५ ॥

इन पन्दरह शाखाओंसे युक्त सूर्यदेवकी उपदिष्ट यजुर्वेद विद्याकी प्रतिष्ठा करके मैं स्वेच्छापूर्वक उस वेद्य पुरुषका ध्यान किया करता हूं ॥ २५ ॥

किमत्र ब्रह्मण्यमृतं किं च वेद्यमनुत्तमम् ।
चिन्तये तत्र चागत्य गन्धर्वो मामपृच्छत ॥ २६ ॥
विश्वावसुस्ततो राजन्वेदान्तज्ञानकोविदः ।
चतुर्विंशतिकान्प्रश्नान्पृष्ट्वा वेदस्य पार्थिव ।
पञ्चविंशतिमं प्रश्नं पप्रच्छान्वीक्षिकीं तथा ॥ २७ ॥

हे राजन् ! वेदान्तज्ञानकोविद विश्वावसु नामके गन्धर्वने उस शास्त्रमें ब्राह्मण जातिका हितकर सत्य क्या है, और इसमें अनुत्तम वेद्यवस्तुही कौनसी है ? ऐसी चिन्ता करके मेरे समीप आकर उस विषयमें प्रश्न किया । हे राजन् ! अनन्तर उन्होंने मेरे निकट वेदके सम्बन्धमें चौवीस प्रश्न किये और शेषमें आन्वीक्षिकी विद्या अर्थात् युक्तिके जरिये आलोचना शास्त्रसम्बन्धीय पचीसवां प्रश्न उपस्थित किया ॥ २६–२७ ॥

विश्वाविश्वं तथाश्वाश्वं मित्रं वरुणमेव च ।
ज्ञानं ज्ञेयं तथाज्ञोऽज्ञः कस्तपा अतपास्तथा ।
सूर्यादः सूर्य इति च विद्याविद्ये तथैव च ॥ २८ ॥

हे राजन् ! वे प्रश्न ये हैं,– विश्व, अविश्व, अश्वा, अश्व, मित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, क, तपा, अतपा, सूर्याद, सूर्य, विद्या, अविद्या, ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Hubli) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वेद्यावेद्यं तथा राजन्नचलं चलमेव च ।
अपूर्वमक्षयं क्षय्यमेतत्प्रश्नमनुत्तमम् ॥ २९ ॥

वेद्य, अवेद्य, चल, अचल, अपूर्व, अक्षय तथा क्षयशील वस्तु कौनसी है ? येही सर्वोत्तम प्रश्न हैं ॥ २९ ॥

अथोक्तश्च मया राजन्राजा गन्धर्वसत्तमः ।
पृष्टवानानुपूर्वेण प्रश्नमुत्तममर्थवत् ॥ ३० ॥

हे महाराज ! अनंतर मैंने इन प्रश्नोंको सुनकर गन्धर्वसत्तम राजा विश्वावसुसे कहा, हे गन्धर्वराज ! तुमने यथाक्रमसे अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त प्रश्न किये हैं ॥ ३० ॥

मुहूर्तं मृष्यतां तावद्यावदेनं विचिन्तये ।
बाढमित्येव कृत्वा च तूष्णीं गन्धर्व आस्थितः ॥ ३१ ॥

अब मुहूर्त्त भर निवास करो, मैं इनपर विचार करता हूं । तब गन्धर्वराज मेरा वचन सुन मौनावलम्बन करके स्थित हुए ॥ ३१ ॥

ततोऽन्वचिन्तयमहं भूयो देवीं सरस्वतीम् ।
मनसा स च मे प्रश्नो दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ॥ ३२ ॥

अनन्तर मैंने फिर मन ही मन सरस्वती देवीका ध्यान किया । हे महाराज ! ध्यान करतेही दहीसे घृत निकलनेकी भांति उन प्रश्नोंका उत्तर मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥

तत्रोपनिषदं चैव परिशेषं च पार्थिव ।
मथ्नामि मनसा तात दृष्ट्वा चान्वीक्षिकीं पराम् ॥ ३३ ॥

हे तात ! मैंने परमश्रेष्ठ आन्वीक्षिकी शास्त्र निरीक्षण करके उपनिषत् और परिशिष्ट शास्त्रोंको मन ही मन मथा ॥ ३३ ॥

चतुर्थी राजशार्दूल विद्यैषा सांपरायिकी ।
उदीरिता मया तुभ्यं पञ्चविंशोऽधि धिष्ठिता ॥ ३४ ॥

हे राजशार्दूल ! वार्त्ता, शास्त्र, और दण्डनीति इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी आन्वीक्षिकी विद्या मोक्षकी निमित्त हितकरी विद्या है; पचीसवें तत्त्वरूप पुरुषसे अधिष्ठित उस विद्याका मैंने तुम्हारे समीप इसके पहले वर्णन किया है ॥ ३४ ॥

अथोक्तस्तु मया राजन्राजा विश्वावसुस्तदा ।
श्रूयतां यद्ध्वानस्मान्प्रश्नं संपृष्टवानिह ॥ ३५ ॥

उसे भी विश्वावसुके समीप कहा था । हे राजन् ! उस समय मैंने गन्धर्वराज विश्वावसुसे कहा— तुमने मेरे समीप जो प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर कहता हूं, सुनो ॥ ३५ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विश्वाविश्वेति यदिदं गन्धर्वेन्द्रानुपृच्छसि ।
विश्वाव्यक्तं परं विद्याद्भूतभव्यभयंकरम् ॥ ३६ ॥

हे गन्धर्वेन्द्र ! तुमने जो विश्वाविश्व इत्यादि कहके प्रश्न किया है, उसके बीच विश्वा अव्यक्त प्रकृति है; वह संसार बन्धनमें डालनेवाली होके भूत, भविष्य, और वर्तमान कालमें भयंकर है, यह जानो ॥ ३६ ॥

त्रिगुणं गुणकर्तृत्वादविश्वे निष्कलस्तथा ।
अश्वस्तथैव मिथुनमेवमेवानुदृश्यते ॥ ३७ ॥

और गुण कर्तृत्व निबन्धन त्रिगुणात्मक निष्कल पुरुषको अविश्व समझो, अर्थात् जो पुत्र और वित्तसे भी प्रिय है, दूसरी सब वस्तुओंसे अन्तरतर है और जो आत्मरूपसे सबके भीतर है, वही अविश्व शब्द प्रतिपाद्य है और उसके अतिरिक्त वस्तुमात्रको ही विश्व कहा जाता है। अश्वाश्व पदके वाच्य मिथुन अर्थात् प्रकृति पुरुष ही विदित हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥

अव्यक्तं प्रकृतिं प्राहुः पुरुषेति च निर्गुणम् ।
तथैव मित्रं पुरुषं वरुणं प्रकृतिं तथा ॥ ३८ ॥

स्त्रीरूपी प्रकृतिको अव्यक्त और जिसके प्रतिबिम्बसे प्रकृति सब कार्योंका निर्वाह करती है, उस निर्गुणको पुरुष कहते हैं, इस ही प्रकार प्राचीन विपश्चिद्गण प्रकाशात्मक पुरुषको मित्र, जलको इस समस्त जगत्के उत्पन्न करनेका कारणहेतु प्रकृतिको वारुण अर्थात् वरुण देवता रूपी निर्देश किया है ॥ ३८ ॥

ज्ञानं तु प्रकृतिं प्राहुर्ज्ञेयं निष्कलमेव च ।
अज्ञश्च ज्ञश्च पुरुषस्तस्मान्निष्कल उच्यते ॥ ३९ ॥

और प्रकाशमात्रसे ही जगज्जन्म आदिका कारण होना सम्भव नहीं होता, इससे जगज्जन्म आदिके उपयोगी जो जान है, वह मायावृत्ति है; इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको ही ज्ञान रूपसे वर्णन किया करते हैं, और ज्ञेय स्वरूप जो ज्ञान है, वही निष्कल अर्थात् सत्य ज्ञान है, वही ब्रह्म कहके विहित है। ज्ञ और अज्ञ शब्दके प्रतिपाद्य ईश्वर तथा जीव है, क्यों कि कार्य उपाधिको जीव और कारण उपाधिको ईश्वर कहा जाता है। कार्यकारण उपाधि योगसे ब्रह्मको जीव तथा ईश्वर कहा जाता है, उस उपाधिसे रहित होनेसे ही वह निष्कल शब्दसे पुकारा जाता है ॥ ३९ ॥

कस्तपा अतपाः प्रोक्तः कोऽसौ पुरुष उच्यते ।
तपाः प्रकृतिरित्याहुरतपा निष्कलः स्मृतः ॥ ४० ॥

क, तपा और अतपाके विषयमें जो तुमने पूछा है, वह विषय कहता हूं, सुनो। क शब्दसे पुरुष—आनन्द, तपासे प्रकृति और अतपासे निष्कल ब्रह्म स्मृत होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथैवावेद्यमव्यक्तं वेद्यः पुरुष उच्यते ।
चलाचलमिति प्रोक्तं त्वया तदपि मे शृणु ॥ ४१ ॥

इसी तरह अज्ञान पुरुषार्थको प्रतिबन्ध करता है, वही अव्यक्त प्रकृति अवेद्य है और आत्माही वेद्यरूपसे वर्णित हुआ है। तुमने जो चल और अचलका उल्लेख करके प्रश्न किया है, वह भी मेरे समीप सुनो ॥ ४१ ॥

चलां तु प्रकृतिं प्राहुः कारणं क्षेपसर्गयोः ।
अक्षेपसर्गयोःकर्ता निश्चलः पुरुषः स्मृतः ॥ ४२ ॥

लय और सृष्टिके कारण प्रकृतिको पण्डित लोग चला कहते हैं; जगत्का लय और सृष्टि कर्ता पुरुष ही निश्चल शब्दसे स्मृत होता है ॥ ४२ ॥

अजावुभावप्रजौ अक्षयौ चाप्युभावपि ।
अजौ नित्यावुभौ प्राहुरध्यात्मगतिनिश्चयाः ॥ ४३ ॥

अनादि और अक्षय परिणामी नित्यताके कारण व्यवहारसे प्रकृति नित्य तथा पुरुष स्वतःसिद्ध नित्य पदार्थ है; अध्यात्मतत्त्वका निश्चयात्मक ज्ञान रखनेवाले विद्वान् प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अज, अप्रज, अक्षय और नित्य कहा करते हैं ॥ ४३ ॥

अक्षयत्वात्प्रजनने अजमत्राहुरव्ययम् ।
अक्षयं पुरुषं प्राहुः क्षयो ह्यस्य न विद्यते ॥ ४४ ॥

जन्म ग्रहण करनेपर भी नित्य सृष्टि विषयमें अक्षयत्वके कारण पण्डित लोग पुरुषको जन्म-रहित, अव्यय कहते हैं और इस अव्यय पुरुषको वे लोग अविनाशी, अक्षय भी कहा करते हैं, क्यों कि उत्पन्न हुए घट पट आदि पदार्थोंकी भांति यह नष्ट नहीं होता ॥ ४४ ॥

गुणक्षयत्वात्प्रकृतिः कर्तृत्वादक्षयं बुधाः ।
एषा तेऽऽन्वीक्षिकी विद्या चतुर्थी सांपरायिकी ॥ ४५ ॥

सत्त्व, रज और तमोगुणके क्षयवत्ता हेतु अर्थात् अप्राकृत लोगोंमें सत्त्वादि गुणोंकी सत्त्व-सन्दिग्धता निबन्धन और आद्य प्रलयकालमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें गुण कार्योंका अवश्य नाश होता है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको क्षयशील कहके, उसका प्रेरक पुरुषको अक्षय कहा करते हैं। मैंने तुम्हारे समीप यह मोक्षसाधनके उपायभूत चौथी आन्वीक्षिकी विद्याका वर्णन किया ॥ ४५ ॥

विद्योपेतं धनं कृत्वा कर्मणा नित्यकर्मणि ।
एकान्तदर्शना वेदाः सर्वे विश्वावसो स्मृताः ॥ ४६ ॥

हे विश्वावसु ! ऋक्, यजु, साम आन्वीक्षिकी विद्यासहित वेदका विद्यारूपी धन युक्तिके सहित उपार्जन नित्यकर्म विषयको विशेष रूपसे जानना चाहिये; सब वेद एकान्ततः स्वाध्याय, मनन करने चाहिये ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Kailuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जायन्ते च म्रियन्ते च यस्मिन्नेते यतश्च्युताः ।
वेदार्थं ये न जानन्ति वेद्यं गन्धर्वसत्तम ॥ ४७ ॥

हे गन्धर्वसत्तम ! ये आकाश आदि भूत जिस अधिष्ठानसे उत्पन्न होकर जिसमें लीन होते हैं, उस वेदार्थ प्रतिपाद्य वेद्य आत्माको जो लोग नहीं जानते हैं, वे भ्रष्ट होकर जन्मते और मरते हैं ॥ ४७ ॥

साङ्गोपाङ्गानपि यदि पञ्च वेदानधीयते ।
वेदवेद्यं न जानीते वेदभारवहो हि सः ॥ ४८ ॥

और यदि कोई साङ्गोपाङ्ग पांच वेदोंको पढके वेदोंसे जानने योग्य उस आत्माको नहीं जानता, तो वह वेदके बोझ मात्रको ढोनेवाला है ॥ ४८ ॥

यो घृतार्थी खरीक्षीरं मथेद्गन्धर्वसत्तम ।
विष्ठां तत्रानुपश्येत न मण्डं नापि वा घृतम् ॥ ४९ ॥

हे गन्धर्वसत्तम ! जो घृतकी इच्छा करके गधीके दूधको मंथता है, वह उसमें केवल विष्ठा ही देखा करता है; उसे वहां शुद्ध घृत वा पवित्र मक्खन नहीं मिलता ॥ ४९ ॥

तथा वेद्यमवेद्यं च वेदविद्यो न विन्दति ।
स केवलं मूढमतिर्ज्ञानभारवहः स्मृतः ॥ ५० ॥

वैसे ही जो वेद जाननेवाला पुरुष अवेद्य प्रकृति और वेद्य पुरुषका दर्शन नहीं करता, वह मूढबुद्धि मनुष्य केवल ज्ञानका भार ढोनेवाला कहा जाता है ॥ ५० ॥

द्रष्टव्यौ नित्यमेवैतौ तत्परेणान्तरात्मना ।
यथास्य जन्मनिधने न भवेतां पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

जिस दर्शनके जरिये जीवका बार बार जन्म और मृत्यु न होसके, प्रकृति और परमात्माको सावधान होकर अन्तरात्माके सहारे उस ही भावसे सदा दर्शन करना उचित है ॥ ५१ ॥

अजस्रं जन्मनिधनं चिन्तयित्वा त्रयीमिमाम् ।
परित्यज्य क्षयमिह अक्षयं धर्ममास्थितः ॥ ५२ ॥

इस लोकमें निरन्तर चलनेवाली जन्म-मृत्युकी परम्पराका विचार करके कर्मकाण्डमें कहे हुए कर्मोंको क्षयशील मानके उनका परित्याग करके मनुष्यको यहां अक्षय योगधर्मका अवलम्बन करना उचित है ॥ ५२ ॥

यदा तु पश्यतेऽत्यन्तमहन्यहनि काश्यप ।
तदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ॥ ५३ ॥

हे काश्यप ! त्वं पदार्थके प्रतिपाद्य पुरुष प्रतिदिन यदि आत्माको अवलोकन करे, तब वह वाक्यज नित्य ज्ञानके जरिये केवलीभूत और अविद्या विमुक्त होकर उस पदार्थके प्रतिपाद्य छब्बीसवें तत्त्वरूप परमात्माको वश करनेमें समर्थ होगा ॥ ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यश्च शाश्वदव्यक्तस्तथान्यः पञ्चविंशकः ।
तस्य द्वावनुपश्येत तमेकमिति साधवः ॥ ५४ ॥

शाश्वत अव्यक्त ईश्वर स्वतन्त्र है और पचीसवां जीव स्वतन्त्र है, मूढ लोग ऐसी द्वैतभावसे युक्त धारणा किया करते हैं, परन्तु वेदान्तनिष्ठ साधु लोग उन दोनोंको अभिन्न रूपसे देखते हैं ॥ ५४ ॥

तेनैतन्नाभिजानन्ति पञ्चविंशकमच्युतम् ।
जन्ममृत्युभयाद्योगाः सांख्याश्च परमैषिणः ॥ ५५ ॥

यह मत समझो कि सांख्य और पातञ्जल मतावलम्बी मनुष्य जीव और ईश्वरके अभेद दर्शनको अभिनन्दन नहीं करते, जन्म मृत्यु भयके उद्वेगसे युक्त परम तत्वको खोजनेवाले सांख्य मतावलम्बी पुरुष स्पष्टरूपसे जीव और ईश्वरका अभेद कहते हैं और योगाचारी पण्डित लोग मोक्ष समयमें जब जीव सब क्लेशोंसे रहित होता है, उस समय निर्विशेष चिन्मात्रमें लीन हुआ करता है, इस ही भांति दोनोंका अभेद स्वीकार किया करते हैं ॥५५॥

विश्वावसुरुवाच—

पञ्चविंशं यदेतत्ते प्रोक्तं ब्राह्मणसत्तम ।
तथा तन्न तथा वेति तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ५६ ॥

विश्वावसु बोले— हे ब्राह्मणसत्तम ! आपने जो जीव तत्त्वके विषय कहे अर्थात् जीव अच्युत और परमात्मासे अभिन्न है, यह सत्य है, परन्तु जीवका ईश्वरत्व अत्यन्त दुर्वच है । यद्यपि इस विषयको मैंने बहुतोंके मुखसे सुना है, तौभी मुझे आपपर अधिक विश्वास रहनेसे आपको विस्तारके सहित इस विषयको वर्णन करनेका अनुरोध करता हूं । आप ही इस विषयको वर्णन करनेके सुयोग्य पात्र हैं ॥ ५६ ॥

जैगीषव्यस्यासितस्य देवलस्य च मे श्रुतम् ।
पराशरस्य विप्रर्षेर्वार्षगण्यस्य धीमतः ॥ ५७ ॥

जैगीषव्य, असित, देवल, विप्रर्षि पराशर, बुद्धिमान् वार्षगण्य, ॥ ५७ ॥

भिक्षोः पञ्चशिखस्याथ कपिलस्य शुकस्य च ।
गौतमस्यार्ष्टिषेणस्य गर्गस्य च महात्मनः ॥ ५८ ॥

भिक्षु, पञ्चशिख, कपिल, शुकदेव, गौतम, आर्ष्टिषेण, महात्मा गर्ग, ॥ ५८ ॥

नारदस्यासुरेश्चैव पुलस्त्यस्य च धीमतः ।
सनत्कुमारस्य ततः शुक्रस्य च महात्मनः ॥ ५९ ॥

नारद, आसुरि, धीमान् पुलस्त्य, सनत्कुमार, महानुभाव शुक्र, ॥ ५९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कश्यपश्च पितुश्चैव पूर्वमेव मया श्रुतम् ।
तदनन्तरं च रुद्रस्य विश्वरूपस्य धीमतः ॥ ६० ॥

और अपने पिता काश्यपके मुखसे पहले मैंने इस विषयको सुना था । इसके अनन्तर रुद्र, धीमान् विश्वरूप ॥ ६० ॥

दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च दैत्यभ्यश्च ततस्ततः ।
प्राप्तमेतन्मया कृत्स्नं वेद्यं नित्यं वदन्त्युत ॥ ६१ ॥

देवताओं, पितरों और दैत्योंके समीप इधर-उधरसे मैंने इस नित्य वेद्य विषयको जाना है; इसे ही सब कोई नित्य वस्तु कहा करते हैं ॥ ६१ ॥

तस्मात्तद्वै भवद्बुद्धया श्रोतुमिच्छामि ब्राह्मण ।
भगवान्प्रवरः शास्त्राणां प्रगल्भश्चातिबुद्धिमान् ॥ ६२ ॥

हे ब्रह्मन् ! इसलिये मैं आपकी बुद्धिके जरिये स्थिरीकृत इस तत्व विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं; आप शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, प्रगल्भ और अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, ॥ ६२ ॥

न तवाविदितं किञ्चिद्ब्रवान्श्रुतिनिधिः स्मृतः ।
कथ्यते देवलोके च पितृलोके च ब्राह्मण ॥ ६३ ॥

आपसे कुछ भी विषय अविदित नहीं है, आप सब वेदोंके अवलम्ब रूपसे स्मृत हुए हैं । हे ब्राह्मण ! देव लोक और पितृलोकमें भी आप विख्यात हैं ॥ ६३ ॥

ब्रह्मलोकगताश्चैव कथयन्ति महर्षयः ।
पतिश्च तपतां शश्वदादित्यस्तव भाषते ॥ ६४ ॥

ब्रह्मलोकमें गये हुए महर्षि लोग भी आपकी महिमाका वर्णन करते हैं । तापदाताओंके पति सनातन भगवान् आदित्य आपके उपदेष्टा हैं ॥ ६४ ॥

सांख्यज्ञानं त्वया ब्रह्मन्नवाप्तं कृत्स्नमेव च ।
तथैव योगज्ञानं च याज्ञवल्क्य विशेषतः ॥ ६५ ॥

हे याज्ञवल्क्य ब्रह्मन् ! आपने समस्त सांख्यज्ञान लाभ किया है, विशेष करके योगशास्त्रका भी ज्ञान आपने प्राप्त किया है ॥ ६५ ॥

निःसन्दिग्धं प्रबुद्धस्त्वं बुध्यमानश्चराचरम् ।
श्रोतुमिच्छामि तज्ज्ञानं घृतं मण्डमयं यथा ॥ ६६ ॥

और आप चराचर ज्ञान गोचर करके निःसन्दिग्ध रूपसे प्रबुद्ध हुए हैं । इसलिये मैं आपके निकट माखनमय घृतकी भांति अत्यन्त स्वादमय तत्वज्ञानका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

याज्ञवल्क्य उवाच—

कृत्स्नधारिणमेव त्वां मन्ये गन्धर्वसत्तम ।
जिज्ञासिस च मां राजंस्तन्निबोध यथाश्रुतम् ॥ ६७ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि बोले— हे गन्धर्वसत्तम ! मैं विवेचना करता हूं, तुमने सब शास्त्रोंको जाना है; इस समय मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस विषयको मैंने जिस प्रकार सुना है, वैसे ही कहता हूं, सुनो ॥ ६७ ॥

अबुध्यमानां प्रकृतिं बुध्यते पञ्चविंशकः ।
न तु बुध्यति गन्धर्व प्रकृतिः पञ्चविंशकम् ॥ ६८ ॥

हे गन्धर्वराज ! पचीसवां तत्त्व पुरुष अबुध्यमान अर्थात् जड प्रकृतिको प्रकाश करता है, परन्तु प्रकृति पुरुषको प्रकाश नहीं कर सकती ॥ ६८ ॥

अनेनाप्रतिबोधेन प्रधानं प्रवदन्ति तम् ।
सांख्ययोगाश्च तत्त्वज्ञा यथाश्रुतिनिदर्शनात् ॥ ६९ ॥

सांख्य और योगमतावलम्बी तत्वज्ञ लोग श्रुतिदर्शनके अनुसार इस पुरुषके प्रतिरोधनिबन्धन अर्थात् प्रकृतिमें चित्प्रतिबिम्बके कारण उस प्रकृतिको प्रधान कहा करते हैं । भूतात्मा एक होके भी सब भूतोंमें निवास कर रहा है, वह एक होके भी जलमें चन्द्रमण्डलके प्रतिबिम्बकी भांति अनेक दीखता है, चित्प्रतिबिम्बिता बुद्धि ही 'मैं'— इस प्रत्ययका विषय है ॥ ६९ ॥

पश्यंस्तथैवापश्यंश्च पश्यत्यन्यस्तथानघ ।
षड्विंशः पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च पश्यति ।
न तु पश्यति पश्यंस्तु यश्चैनमनुपश्यति ॥ ७० ॥

हे अनघ ! चिदाभाससे स्वतन्त्र साक्षी जाग्रत् आदि अवस्थान अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकके समयमें विकारयुक्त अव्यक्त और आत्माको अवलोकन करती है, सुषुप्ति अवस्थान अथवा निर्विकल्प समाधि समयमें परमात्मदर्शन लाभ किया करती है, इसलिये जबतक साक्षी साक्ष्यके सहित सम्बन्धविशिष्ट रहता है, उस समय जीव और साक्ष्य वियुक्त होनेसे ही आत्म रूपसे प्रकाशित होता है । जो पुरुष आत्माको अवलोकन करते हुए इसके सहित परमात्माका दर्शन करते हैं, वे कुछ भी दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ७० ॥

पञ्चविंशोऽभिमन्येत नान्योऽस्ति परमो मम ।
न चतुर्विंशकोऽग्राह्यो मनुजैर्ज्ञानदर्शिभिः ॥ ७१ ॥

आत्मा यह अभिमान करता है, कि मुझसे श्रेष्ठ और दूसरा कोई भी नहीं है; तो जो परमात्मा उसे निरन्तर देखता है, उसे वह समझता ही नहीं। ज्ञानदर्शी मनुष्य प्रकृतिको आत्मभावसे ग्रहण नहीं करते ॥ ७१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मत्स्येवोदकमन्वेति प्रवर्तति प्रवर्तनात् ।
यथैव बुध्यते मत्स्यस्तथैषोऽप्यनुबुध्यते ।
सस्नेहः सहवासाच्च साभिमानश्च नित्यशः ॥ ७२ ॥

मछली जलकी ही अनुगत हुआ करती है, वह वैसी प्रवृत्तिके कारण उसहीमें प्रवृत्त होती है; जैसे मछली जलमें रहके प्रकाशित होती है, आत्मा भी अव्यक्तसे आवृत रहके, उस ही भांति प्रकाशित हुआ करता है । सदा सहवास और साभिमानसे जीव स्नेहयुक्त होता है ॥ ७२ ॥

स निमज्जति कालस्य यदैकत्वं न बुध्यते ।
उन्मज्जति हि कालस्य ममत्वेनाभिसंवृतः ॥ ७३ ॥

जबतक जीव परमात्माके सङ्ग एकताका अनुभव नहीं करता है, तबतक वह संसारमें निमग्न और उन्मग्न हुआ करता है; जब वह एकताकी बुद्धिसे युक्त होकर। अपनी और परमात्माकी एकताको समझता है, तब उसका उद्धार होता है ॥ ७३ ॥

यदा तु मन्यतेऽन्योऽहमन्य एष इति द्विजः ।
तदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ॥ ७४ ॥

जब द्विज मैं चिदात्मा अन्य हूं और यह प्राकृत शरीर मुझसे सर्वथा अन्य हैं, ऐसा समझता है, तब वह केवलीभूत होकर छब्बीसवें तत्त्व परमात्माका दर्शन करता है ॥ ७४ ॥

अन्यश्च राजन्नवरस्तथान्यः पञ्चविंशकः ।
तत्स्थत्वादनुपश्यन्ति एक एवेति साधवः ॥ ७५ ॥

हे राजन् ! जीव पृथक् है और परमात्मा स्वतन्त्र है; परमात्मा जीवात्माका आश्रय है; परन्तु परमात्माका जीवमें अधिष्ठान रहनेके कारण साधु लोग दोनोंको एक भावसे अनुभव किया करते हैं ॥ ७५ ॥

तेनैतन्नाभिनन्दन्ति पञ्चविंशकमच्युतम् ।
जन्ममृत्युभयाद्भीता योगाः सांख्याश्च काश्यप ।
षड्विंशमनुपश्यन्ति शुचयस्तत्परायणाः ॥ ७६ ॥

हे महामुनि कश्यप ! जन्म-मृत्युके भयसे भीत योग और सांख्य मतावलंबी मनीषी पुरुष पवित्र तथा आत्मपरायण होके छब्बीसवे तत्त्व-परमात्माका दर्शन करते हैं तथा जीवात्मा और परमात्माको एक समझकर, इस अभेद दर्शनका अभिनन्दन करते हैं ॥ ७६ ॥

यदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति ।
तदा स सर्वविद्विद्वान्न पुनर्जन्म विन्दति ॥ ७७ ॥

जीवात्मा जब विशुद्ध होनेपर परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है, उस समय वह सर्ववित् और ज्ञानसंपन्न होकर फिर यहां जन्म नहीं लेता ॥ ७७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवमप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानश्च तेऽनघ ।
बुद्धश्चोक्तो यथातत्त्वं मया श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ७८ ॥

हे अनघ ! यह मैंने वेद प्रमाणके अनुसार अप्रतिबुद्ध प्रकृति, बुध्यमान जीव और बुद्ध ब्रह्मतत्त्वका यथावत् वर्णन किया ॥ ७८ ॥

पश्यापश्यं योऽनुपश्येत्क्षेमं तत्त्वं च काश्यप ।
केवलाकेवलं चाद्यं पञ्चविंशात्परं च यत् ॥ ७९ ॥

हे काश्यप ! जो पुरुष द्रष्टा और उससे इतर पदार्थोंको नहीं देखता, मोक्षविषयमें हितकर तथा दृग्दृश्यके अत्यन्त निर्विकल्प भावको नहीं देखता, वह मोक्षनिर्मुक्त और साक्षीरूप चिदाभास जगत् कारण तथा महदादि कार्योंको देखनेमें समर्थ होता है ॥ ७९ ॥

विश्वावसुरुवाच—

तथ्यं शुभं चैतदुक्तं त्वया भोः सम्यक्क्षेम्यं देवताद्यं यथावत् ।
स्वस्त्यक्षयं भवतश्चास्तु नित्यं बुद्ध्या सदा बुद्धियुक्तं नमस्ते ॥ ८० ॥

विश्वावसु बोले– हे विप्रु ! आपने सत्य, शुभकर और मोक्षसाधनके उपायभूत पूर्ण ब्रह्मतत्त्वको यथावत् वर्णन किया है, इसलिये आपका सदा अक्षय मङ्गल होवे तथा आपका मन सदा बुद्धियुक्त रहे । आपको विनीत प्रणाम है ॥ ८० ॥

याज्ञवल्क्य उवाच—

एवमुक्त्वा संप्रयातो दिवं स विभ्राजन्वै श्रीमता दर्शनेन ।
तुष्टश्च तुष्ट्या परयाभिनन्द्य प्रदक्षिणं मम कृत्वा महात्मा ॥ ८१ ॥

याज्ञवल्क्य बोले– उस महात्माके ऐसा कहनेपर मैंने उसे परम परितोषके सहित देखा, तब वह महात्मा गन्धर्वराज मेरी प्रदक्षिणा और अभिनन्दन करके सौन्दर्ययुक्त शरीर धारण करके स्वर्गलोकमें गये ॥ ८१ ॥

ब्रह्मादीनां खेचराणां क्षितौ च ये चाधस्तात्संवसन्ते नरेन्द्र ।
तत्रैव तद्दर्शनं दर्शयन्वै सम्यक्क्षेम्यं ये पथं संश्रिता वै ॥ ८२ ॥

हे नरेन्द्र ! ब्रह्मलोकमें खेचरोंके निकट, भूमण्डल और रसातलमें जो लोग मोक्षपथको अवलम्बन करके वास करते हैं, उन्होंने उन सब लोगोंके निकट इस मोक्षसाधन शास्त्रको प्रदर्शित किया ॥ ८२ ॥

सांख्याः सर्वे सांख्यधर्मे रताश्च तद्वद्योगा योगधर्मे रताश्च ।
ये चाप्यन्ये मोक्षकामा मनुष्यास्तेषामेतद्दर्शनं ज्ञानदृष्टम् ॥ ८३ ॥

सांख्य मतावलम्बी सांख्यधर्ममें रत मनुष्य, योगधर्ममें अनुरक्त पातञ्जल मतवाले मनुष्य और इनके अतिरिक्त जो सब मनुष्य मोक्षकी कामना किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें इस शास्त्रके फल प्रत्यक्ष सिद्ध हैं ॥ ८३ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ज्ञानान्मोक्षो जायते पूरुषाणां नास्त्यज्ञानादेवमाहुर्नरेन्द्र ।
तस्माज्ज्ञानं तत्त्वतोऽन्वेषितव्यं येनात्मानं मोक्षयेज्जन्ममृत्योः ॥ ८४ ॥

हे राजश्रेष्ठ नरेन्द्र ! पुरुषोंका ज्ञानसे ही मोक्ष हुआ करता है, अज्ञानसे मोक्ष नहीं होता, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; इसलिये जिस ज्ञानके सहारे आत्माको जन्म-मृत्युसे मुक्त किया जा सकता है, यथार्थ रीतिसे उस ज्ञानकी खोज करनी उचित है ॥ ८४ ॥

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात्क्षत्रियाद्वा वैश्याच्छूद्रादपि नीचादभीक्ष्णम् ।
श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं न श्रद्धिनं जन्ममृत्यू विशेताम् ॥ ८५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा नीच जातिमें उत्पन्न पुरुषसे भी ज्ञान लाभ करके, श्रद्धावान् पुरुषको उस विषयमें सदा श्रद्धा करनी योग्य है; क्योंकि श्रद्धावान् पुरुषके निकट जन्म-मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती ॥ ८५ ॥

सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यं व्याहरन्ते च ब्रह्म ।
तत्त्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि सर्वं विश्वं ब्रह्म चैतत्समस्तम् ॥ ८६ ॥

सब वर्ण ही ब्राह्मण हैं, क्योंकि वे ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं; सभी सदा "ब्रह्म" ऐसा ही वचन कहा करते हैं; इसलिये मैंने ब्रह्मबुद्धिसे तत्वशास्त्रकी व्याख्या की है- सब संसार ही ब्रह्ममय है, इससे यह दृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है ॥ ८६ ॥

ब्रह्मास्यतो ब्राह्मणाः संप्रसूता बाहुभ्यां वै क्षत्रियाः संप्रसूताः ।
नाभ्यां वैश्याः पादतश्चापि शूद्राः सर्वे वर्णा नान्यथा वेदितव्याः ॥ ८७ ॥

ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य और दोनों चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये सभी वर्णके लोग ब्रह्मरूप हैं और किसी भी वर्णको ब्रह्मसे भिन्न समझना उचित नहीं है ॥ ८७ ॥

अज्ञानतः कर्मयोनिं भजन्ते तां तां राजंस्ते यथा यान्त्यभावम् ।
तथा वर्णा ज्ञानहीनाः पतन्ते घोरादज्ञानात्प्राकृतं योनिजालम् ॥ ८८ ॥

हे राजन् ! मनुष्य अज्ञानके कारण कर्मके अनुसार भिन्न भिन्न योनियोंमें जन्मते और मरते हैं; और ये लोग ज्ञानहीन होकर घोर अज्ञानसे प्राकृत योनिजालमें पतित होते हैं ॥ ८८ ॥

तस्माज्ज्ञानं सर्वतो मार्गितव्यं सर्वत्रस्थं चैतदुक्तं मया ते ।
तस्थौ ब्रह्मा तस्थिवांश्चापरो यस्तस्मै नित्यं मोक्षमाहुर्द्विजेन्द्राः ॥ ८९ ॥

इसलिये सब वर्णके ज्ञानकी सब भांतिसे खोज करनी योग्य है, यही मैंने तुमसे कहा है। हे नरेन्द्र ! जो ज्ञाननिष्ठ हैं, वेही ब्राह्मण हैं; इसलिये सब अपने आश्रममें रहकर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; जिस ब्राह्मण वा दूसरे वर्णके मनुष्यने ज्ञान अवलम्बन किया है, उसहीके लिये यह मोक्षशास्त्र नित्य सिद्ध है, ऐसा ही प्राचीन पण्डित लोग कहा करते हैं ॥ ८९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्ते पृष्टं तन्मया चोपदिष्टं याथातथ्यं तद्विशोको भवस्व ।
राजन्गच्छस्वैतदर्थस्य पारं सम्यक्प्रोक्तं स्वस्ति तेऽस्त्वत्र नित्यम् ॥ ९० ॥

हे राजन् ! तुमने जो पूछा था, मैंने यथार्थ रूपसे उस ही विषयका उपदेश दिया है; इसलिये अब शोकरहित होकर ज्ञान आलोचनाके पारदर्शी बनो; तुमने उत्तम प्रश्न किया था मैंने भी तुम्हें ज्ञानका उत्तम उपदेश दिया है; इससे तुम्हारी यहां सदा स्वस्ति होवे ॥ ९० ॥

भीष्म उवाच—

स एवमनुशास्तस्तु याज्ञवल्क्येन धीमता ।
प्रीतिमानभवद्राजा मिथिलाधिपतिस्तदा ॥ ९१ ॥

भीष्म बोले— मिथिलेश राजा जनक उस धीमान् याज्ञवल्क्यका ऐसा उपदेश सुनके उस समय अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ९१ ॥

गते मुनिवरे तस्मिन्कृते चापि प्रदक्षिणे ।
दैवरातिर्नरपतिरासीनस्तत्र मोक्षवित् ॥ ९२ ॥

सत्कारपूर्वक प्रदक्षिणके अनन्तर जब मुनिवर चले गये, तब देवरातपुत्र मोक्षवित् राजा जनकने वहीं बैठे बैठे ॥ ९२ ॥

गोकोटिं स्पर्शयामास हिरण्यस्य तथैव च ।
रत्नाञ्जलिमथैकं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा ॥ ९३ ॥

उस समय एक करोड गौएं छूकर ब्राह्मणोंको दान कीं; तथा प्रत्येक ब्राह्मणको सुवर्ण और अञ्जलिपूर्ण रत्न दान किये ॥ ९३ ॥

विदेहराज्यं च तथा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै ।
यतिधर्मसुपासंश्चाप्यवसन्मिथिलाधिपः ॥ ९४ ॥

अनन्तर मिथिलाधिपति विदेह देशका राज्य अपने पुत्रको देकर, यतिधर्म अवलम्बन करके निवास करने लगे ॥ ९४ ॥

सांख्यज्ञानमधीयानो योगशास्त्रं च कृत्स्नशः ।
धर्माधर्मौ च राजेन्द्र प्राकृतं परिगर्हयन् ॥ ९५ ॥

हे राजेन्द्र ! वह प्राकृत धर्माधर्मको सब प्रकारसे त्याज्य मानकर सांख्य ज्ञान और समस्त योगशास्त्रका अध्ययन करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ९५ ॥

अनन्तमिति कृत्वा स नित्यं केवलमेव च ।
धर्माधर्मौ पुण्यपापे सत्यासत्ये तथैव च ॥ ९६ ॥

मैं अनन्त अर्थात् तीनों परिच्छेदोंसे रहित हूं, ऐसा मनमें निश्चय करके सदा एकमात्र परमात्मतत्त्वको विचार करने लगे और ऐसा निश्चय किया, कि धर्माधर्म, पुण्य–पाप, सत्या–सत्य ॥ ९६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जन्ममृत्यू च राजेन्द्र प्राकृतं तदचिन्तयत् ।
ब्रह्माव्यक्तस्य कर्मेदमिति नित्यं नराधिप ॥ ९७ ॥

जन्ममृत्यु, ये सभी मिथ्या हैं। हे नरनाथ! सांख्य और योग मतालवम्बी मनुष्य निज निज शास्त्रके कहे हुए लक्षणके अनुसार इन धर्मादिको व्यक्त और बुद्धि आदिको अव्यक्त भावसे सदा अवलोकन करते हैं ॥ ९७ ॥

पश्यन्ति योगाः सांख्याश्च स्वशास्त्रकृतलक्षणाः ।
इष्टानिष्टवियुक्तं हि तस्थौ ब्रह्म परात्परम् ।
नित्यं तमाहुर्विद्वांसः शुचिस्तस्माच्छुचिर्भव ॥ ९८ ॥

सांख्य और योग शास्त्रके विद्वान् अपने शास्त्रोंमें वर्णित लक्षणोंके अनुसार ऐसा देखते और मानते हैं कि इष्टानिष्टसे विमुक्त, परात्पर ब्रह्म स्थाणुकी भांति सदा अचल भावसे निवास करता है; विद्वान् लोग उस ब्रह्मको नित्य और शुद्ध कहते हैं, इसलिये तुम भी उसे जानके पवित्र होजाओ ॥ ९८ ॥

दीयते यच्च लभते दत्तं यच्चानुमन्यते ।
ददाति च नरश्रेष्ठ प्रतिगृह्णाति यच्च ह ।
ददात्यव्यक्तमेवैतत्प्रतिगृह्णाति तच्च वै ॥ ९९ ॥

हे महाराज! जो दान किया जाता है, जो प्राप्त किया जाता है, जो दान करनेमें अनुमति देता है, जो दान करता और जो परिग्रह करता है, वह दीयमान सब वस्तु अव्यक्त परमात्मा ही है; परमात्माही सब कुछ देता और लेता है ॥ ९९ ॥

आत्मा ह्येवात्मनो ह्येकः कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिको भवेत् ।
एवं मन्यस्व सततमन्यथा मा विचिन्तय ॥ १०० ॥

एकमात्र परमात्माही अपना है; उस एकमात्र परमात्मासे भिन्न और बढकर दूसरा कौन हो सकता है, तुम सदा ऐसा ही जानो, विपरीत चिन्तन मत करो ॥ १०० ॥

यस्याव्यक्तं न विदितं सगुणं निर्गुणं पुनः ।
तेन तीर्थानि यज्ञाश्च सेवितव्याविपश्चिता ॥ १०१ ॥

जो पुरुष सगुण वा निर्गुण परमात्मा और अव्यक्त प्रकृतिको जाननेमें समर्थ नहीं है, उस विद्वान् मनुष्यको तीर्थसेवा और यज्ञानुष्ठान करना उचित है ॥ १०१ ॥

न स्वाध्यायैस्तपोभिर्वा यज्ञैर्वा कुरुनन्दन ।
लभतेऽव्यक्तसंस्थानं ज्ञात्वाव्यक्तं महीपते ॥ १०२ ॥

हे कुरुनंदन! स्वशाखोक्त वेदाध्ययन, तपस्या वा यज्ञ आदिके जरिये मोक्ष—ब्रह्मपद नहीं मिलता; मनुष्य परब्रह्मको जाननेसे ही सब लोगोंमें पूजनीय होता है ॥ १०२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथैव महतः स्थानमाहंकारिकमेव च ।
अहंकारात्परं चापि स्थानानि समवाप्नुयात् ॥ १०३ ॥

महत्तत्त्वकी उपासना करनेवाले महत्तत्त्वको और अहंकारके उपासक अहंकारको प्राप्त होते हैं; महत्तत्त्व और अहंकारसे भी परतर स्थानोंको प्राप्त करना आवश्यक है ॥ १०३ ॥

ये त्वव्यक्तात्परं नित्यं जानते शास्त्रतत्पराः ।
जन्ममृत्युवियुक्तं च वियुक्तं सदसच्च यत् ॥ १०४ ॥

जो सब शास्त्रोंके स्वाध्यायमें रत होते हैं, वे अव्यक्त प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ, जन्ममृत्युसे रहित, कार्यकारण भावसे सदसत् स्वरूप, नित्य शुद्ध मुक्त परमात्माको जान सकते हैं, वे परम पद पानेमें समर्थ होते हैं ॥ १०४ ॥

एतन्मयाप्तं जनकात्पुरस्तात्तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात् ।
ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥ १०५ ॥

हे राजन् ! पहले मैंने राजर्षि जनकके समीप और उसने याज्ञवल्क्यके समीप यह ज्ञान लाभ किया था; ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ साधन है, यज्ञ श्रेष्ठ नहीं हैं । ज्ञानके सहारे जीव जन्म-मरण स्वरूप दुर्गम संसार सागरसे पार होता है, यज्ञोंके जरिये उससे कदापि पार नहीं हो सकता ॥ १०५ ॥

दुर्गं जन्म निधनं चापि राजन्न भूतिकं ज्ञानविदो वदन्ति ।
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्व्रतैश्च दिवं समासाद्य पतन्ति भूमौ ॥ १०६ ॥

हे राजन् ! ज्ञानवित् मनुष्य भौतिक जन्म-मरणको पार करना ही दुर्गम कहते हैं; उसके अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दुर्गम नहीं है । मनुष्य यज्ञ, तपस्या, नियम और व्रतोंके जरिये स्वर्ग लाभ करके फिर पुण्य क्षीण होनेपर पृथ्वीपर पतित होते हैं ॥ १०६ ॥

तस्मादुपास्स्व परं महच्छुचि शिवं विमोक्षं विमलं पवित्रम् ।
क्षेत्रज्ञवित्पार्थिव ज्ञानयज्ञमुपास्य वै तत्त्वमृषिर्भविष्यसि ॥ १०७ ॥

इसलिये पवित्र होके परात्पर, महत्, विमल, कल्याणमय, शुद्ध, पवित्र मोक्ष स्वरूप परब्रह्मकी उपासना करो । हे राजन् ! क्षेत्रका यथार्थ ज्ञान और ज्ञान यज्ञकी उपासना करनेसे तुम तत्त्व ज्ञानी ऋषि होगे ॥ १०७ ॥

उपनिषदमुपाकरोत्तदा वै जनकनृपस्य पुरा हि याज्ञवल्क्यः ।
यदुपगणितशाश्वताव्ययं तच्छुभममृतत्वमशोकमृच्छतीति ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥ १०९०७ ॥

पहले समयमें याज्ञवल्क्य मुनिने राजा जनकको जो उपनिषद्का ज्ञान दिया था, उसका चिंतन करनेसे मनुष्य शाश्वत, अव्यय, शुभ, अमृत और शोकरहित परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है ॥ १०८ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ छठा अध्याय समाप्त ॥ ३०६ ॥ १०९०७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३०७ :

युधिष्ठिर उवाच—

ऐश्वर्यं वा महत्प्राप्य धनं वा भरतर्षभ ।
दीर्घमायुरवाप्याथ कथं मृत्युमतिक्रमेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे भरतश्रेष्ठ ! मनुष्य महत् ऐश्वर्य, विपुल वित्त अथवा दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको अतिक्रम कर सकता है ? ॥ १ ॥

तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा ।
रसायनप्रयोगैर्वा कैनोंपैति जरान्तकौ ॥ २ ॥

महत् तपस्या, महान् कर्म अथवा वेद-शास्त्र ज्ञान वा रसायन प्रयोग, इनके बीच क्या करनेसे मनुष्य जरामृत्युको प्राप्त नहीं होता ? ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भिक्षोः पञ्चशिखस्येह संवादं जनकस्य च ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चशिख नामक किसी संन्यासीके सहित राजा जनककी जो वार्त्ता हुई थी, उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ ३ ॥

वैदेहो जनको राजा महर्षिं वेदवित्तमम् ।
पर्यपृच्छत्पञ्चशिखं छिन्नधर्मार्थसंशयम् ॥ ४ ॥

विदेहवंशीय राजा जनकने धर्मार्थ विषयक संशय नष्ट हो गये थे ऐसे वेदवित्तम महर्षि पञ्चशिखसे पूछा ॥ ४ ॥

केन वृत्तेन भगवन्नतिक्रामेज्जरान्तकौ ।
तपसा वाथ बुद्ध्या वा कर्मणा वा श्रुतेन वा ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! तपस्या, बुद्धि, कर्म वा शास्त्रज्ञान, इन सबके बीच किस आचारके जरिये मनुष्य जन्म और मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है ? ॥ ५ ॥

एवमुक्तः स वैदेहं प्रत्युवाच परोक्षवित् ।
निवृत्तिर्नैतयोरस्ति नानिवृत्तिः कथंचन ॥ ६ ॥

अपरोक्ष ज्ञानसे सम्पन्न महर्षिने विदेहराजके ऐसा पूछनेपर यह उत्तर दिया,— जन्म और मरणकी निवृत्ति नहीं है और किसी प्रकार उनकी निवृत्ति नहीं हो सकती, वह भी नहीं है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः क्षपाः ।
सोऽयं प्रपद्यतेऽध्वानं चिराय ध्रुवमध्रुवः ॥ ७ ॥

दिन, रात और महीनोंकी निवृत्ति नहीं होती, जो अनित्य होके भी सदाके लिये नित्यपथ अवलम्बन करते हैं, अर्थात् स्वधर्माचरणपूर्वक निवृत्ति मार्ग– मोक्षमार्ग–में निष्ठावान् होते हैं, वेही जरामृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥

सर्वभूतसमुच्छेदः स्रोतसेवोह्यते सदा ।
उह्यमानं निमज्जन्तमप्लवे कालसागरे ।
जरामृत्युमहाग्राहे न कश्चिदभिपद्यते ॥ ८ ॥

काल सब प्राणियोंका उच्छेद करता है; जैसे जलका प्रवाह किसी वस्तुको बहाये लिये जाता है, वैसेही काल सदा प्राणियोंको अपने वेगसे बहाता है । यह नौकारहित समुद्रकी तरह लहरा रहा है; जरा और मृत्यु इसमें महा ग्राहके रूपमें बैठे हैं; इस कालसागरमें डूबते और बहते जीवको कोई भी बचा नहीं सकता ॥ ८ ॥

नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् ।
पथि संगतमेवेदं दारैरन्यैश्च बन्धुभिः ।
नायमत्यन्तसंवासो लब्धपूर्वो हि केनचित् ॥ ९ ॥

यहां मनुष्यका कोई भी आत्मीय नहीं है और वह भी किसीका आत्मीय नहीं है; पत्नी और दूसरे बान्धवोंके साथ मिलना पथिकोंके मिलनेकी भांति अचिर कालतक स्थायी मात्र है । यहां पहले किसीने किसीके साथ चिरकालतक सहवासका लाभ नहीं किया है ॥ ९ ॥

क्षिप्यन्ते तेन तेनैव निष्टनन्तः पुनः पुनः ।
कालेन जाता जाता हि वायुनेवाभ्रसंचयाः ॥ १० ॥

जैसे वायु वेगसे बादलोंको बार बार छितरा देती है, वैसे ही काल यहां जन्म लेनेवाले प्राणियोंको विनाशकी ओर ले जाता है ॥ १० ॥

जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव ।
बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि ॥ ११ ॥

जरा और मृत्यु भेडियेकी भांति प्राणियोंको भक्षण करती है । क्या बलवान्, क्या निर्बल, क्या छोटे वा बडे किसीको भी जरा–मृत्युके समीपसे छुटकारा नहीं है ॥ ११ ॥

एवंभूतेषु भूतेषु नित्यभूताध्रुवेषु च ।
कथं हृष्येत जातेषु मृतेषु च कथं ज्वरेत् ॥ १२ ॥

ऐसे अनित्य प्राणियोंके बीच नित्य स्वरूप भूतात्मा स्थित है, इसलिये प्राणियोंके लिये जन्म लेनेपर किस लिये हर्षित होवे और मरनेपर क्यों दुःख किया करे ? ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कुतोऽहमागतः कोऽस्मि क्व गमिष्यामि कस्य वा ।
कस्मिन्स्थितः क्व भविता कस्मात्किमनुशोचसि ॥ १३ ॥

मैं कहांसे आया हूं, मैं कौन हूं, कहां जाऊंगा, मैं किसका हूं, कहां हूं, किस लिये किस स्थानमें जन्म ग्रहण करूंगा; इन बातोंकी आलोचना करके तुम किस लिये क्या शोक करते हो ? ॥ १३ ॥

द्रष्टा स्वर्गस्य न ह्यस्ति तथैव नरकस्य च ।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य दद्याच्चैव यजेत च ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥ १०९२१ ॥

शुभ और अशुभ करनेवालेके सिवा स्वर्ग वा नरकका द्रष्टा दूसरा कौन है ? इसलिये सब शास्त्रोंको अतिक्रम न करके दान और यजन करना उचित है ॥ १४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ ३०७ ॥ १०९२१ ॥

: ३०८ :

युधिष्ठिर उवाच—

अपरित्यज्य गार्हस्थ्यं कुरुराजर्षिसत्तम ।
कः प्राप्तो विनयं बुद्ध्या मोक्षतत्त्वं वदस्व मे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे कुरुराजर्षिसत्तम ! किस पुरुषने गार्हस्थ्यधर्म परित्याग न करके बुद्धिके विलयास्पद मोक्षतत्वको पाया है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये ॥ १ ॥

संन्यस्यते यथात्मायं संन्यस्तात्मा यथा च यः ।
परं मोक्षस्य यच्चापि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

हे पितामह ! यह आत्मा स्थूल शरीर तथा लिङ्गशरीर कैसे परित्यक्त करता है, स्थूल और सूक्ष्म—दोनों शरीरोंके अभिमानसे रहित होता है और मोक्षका परम तत्व क्या है, आप मुझसे वही कहिये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
जनकस्य च संवादं सुलभायाश्च भारत ॥ ३ ॥

भीष्म बोले— हे भारत ! इस विषयमें सुलभा और जनकके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका पुराने लोग यह दृष्टान्त दिया करते हैं ॥ ३ ॥

संन्यासफलिकः कश्चिद्बभूव नृपतिः पुरा ।
मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः ॥ ४ ॥

पहिले समयमें मिथिलादेशमें संन्यासफलदर्शी जनक नामक कोई श्रेष्ठ राजा थे, वह धर्मध्वज कहके विख्यात थे ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स वेदे मोक्षशास्त्रे च स्वे च शास्त्रे कृतागमः ।
इन्द्रियाणि समाधाय शशास वसुधामिमाम् ॥ ५ ॥

उन्होंने मोक्षशास्त्र, वेद और निज दण्डनीति शास्त्रमें विशेष श्रम किया था, तथा इन्द्रियोंको समाधान करके इस पृथ्वीका शासन करते थे ॥ ५ ॥

तस्य वेदविदः प्राज्ञाः श्रुत्वा तां साधुवृत्तताम् ।
लोकेषु स्पृहयन्त्यन्ये पुरुषाः पुरुषेश्वर ॥ ६ ॥

हे नरनाथ ! वेदोंके ज्ञाता बुद्धिमान् पुरुषोंने उस भूपतिकी उत्तम साधुवृत्ति सुनके सब कोई उसके चरित्रके अनुरक्त हुए थे ॥ ६ ॥

अथ धर्मयुगे तस्मिन्योगधर्ममनुष्ठिता ।
महीमनुचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी ॥ ७ ॥

उस सत्ययुगमें योगधर्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नामी भिक्षुकी संन्यासिनी अकेली ही इस पृथ्वीमण्डलपर विचरती थी ॥ ७ ॥

तया जगदिदं सर्वमटन्त्या मिथिलेश्वरः ।
तत्र तत्र श्रुतो मोक्षे कथ्यमानस्त्रिदण्डिभिः ॥ ८ ॥

वह इस सारे जगत्में घूमती हुई जिस जिस स्थानमें उपस्थित होती थी, उस ही उस स्थानमें त्रिदण्डी संन्यासियोंके मुखसे सुनती, कि पृथ्वीमण्डलके बीच मिथिलेश्वर ही मोक्षधर्ममें अत्यन्त निष्ठावान् हैं ॥ ८ ॥

सा सुसूक्ष्मां कथां श्रुत्वा तथ्यं नेति ससंशया ।
दर्शने जातसंकल्पा जनकस्य बभूव ह ॥ ९ ॥

उसने अत्यन्त सूक्ष्म परब्रह्मविषयक बातोंको दूसरोंके मुखसे सुनके यह सत्य है वा नहीं, ऐसा सन्देह करके राजा जनकका दर्शन करनेके लिये सङ्कल्प किया ॥ ९ ॥

ततः सा विप्रहायाथ पूर्वरूपं हि योगतः ।
अबिभ्रदनवद्याङ्गी रूपमन्यदनुत्तमम् ॥ १० ॥

उस समय उस अनिन्दिताङ्गीने योगबलसे पूर्वरूपको परित्याग कर एक दूसरा उत्तम रूप धारण किया ॥ १० ॥

चक्षुर्निमेषमात्रेण लघ्वस्त्रगतिगामिनी ।
विदेहानां पुरीं सुभ्रूर्जगाम कमलेक्षणा ॥ ११ ॥

वह कमलनयनी सुभ्रू शीघ्रगामी अस्त्रकी भांति गति अवलम्बन करके पलभरमें विदेहकी राजधानीमें गई ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सा प्राप्य मिथिलां रम्यां समृद्धजनसंकुलाम् ।
भैक्षचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम् ॥ १२ ॥

अनेक समृद्ध लोगोंसे परिपूरित रमणीय मिथिलानगरीमें पहुंचके संन्यासिनीने भिक्षा लेनेके बहाने मिथिलेश्वरको देखा ॥ १२ ॥

राजा तस्याः परं दृष्ट्वा सौकुमार्यं वपुस्तथा ।
केयं कस्य कुतो वेति बभूवागतविस्मयः ॥ १३ ॥

राजा उसके अत्यन्त सुकुमारतायुक्त शरीर और सौन्दर्यको देखकर मनही मन " यह कौन है, किसकी कन्या है, कहांसे आई है ? " ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए ॥ १३ ॥

ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम् ।
पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ १४ ॥

अनन्तर राजाने उसके स्वागत प्रश्न कर, उत्तम आसन अर्पित किया; फिर उसके चरण धुलाकर उचित पूजन करके उत्तम अन्न दान कर उसे तृप्त किया ॥ १४ ॥

अथ भुक्तवती प्रीता राजानं मन्त्रिभिर्वृतम् ।
सर्वभाष्यविदां मध्ये चोदयामास भिक्षुकी ॥ १५ ॥

भिक्षुकी सुलभा भोजन करके प्रसन्न हुई और समस्त भाष्यवित् अर्थात् सूत्रार्थ जाननेवाले ऋषियोंके बीज मन्त्रिमण्डलीमें घिरे हुए राजासे मोक्षधर्मका विषय पूछनेमें प्रवृत्त हुई ॥ १५ ॥

सुलभा त्वस्य धर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया ।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपते ॥ १६ ॥

" मिथिलापति मुक्त है, वा नहीं " इस विषयमें सन्देह कर योग शक्तियोंको जाननेवाली सुलभाने मोक्षधर्मके विषयको पूछनेकी इच्छा करके अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे राजाकी बुद्धिमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन्संयोज्य रश्मिभिः ।
सा स्म संचोदयिष्यन्तं योगबन्धैर्बबन्ध ह ॥ १७ ॥

पहले निज नेत्ररश्मियोंसे राजाके नेत्रोंकी किरणोंको संयत करके योगबलसे उनके चित्रको बांधकर उन्हें वशीभूत किया ॥ १७ ॥

जनकोऽप्युत्स्मयन्राजा भावमस्या विशेषयन् ।
प्रतिजग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तमः ॥ १८ ॥

नृपश्रेष्ठ राजा जनकने भी अपने अजेयत्व अभिमानसे गर्व करके सुलभाके आशयको अभिभव करनेकी इच्छासे उसका अभिप्राय निज अभिप्रायके जरिये ग्रहण किया, अर्थात् उसके सहित समभावसे एक ही शरीरमें वास करने लगे ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदेकस्मिन्नधिष्ठाने संवादः श्रूयतामयम् ।
छत्त्रादिषु विमुक्तस्य मुक्तायाश्च त्रिदण्डके ॥ १९ ॥

राजा राजचिन्ह छत्र आदि और सुलभा भी यतिचिन्ह त्रिदण्ड प्रभृति परित्याग करने अर्थात् दोनोंके स्थूल देहके सब चिन्ह परित्याग करनेपर उस एकमात्र अधिष्ठानमें जो वार्त्ता हुई थी उसे सुनो ॥ १९ ॥

भगवत्याः क चर्येयं कृता क च गमिष्यसि ।
कस्य च त्वं कुतो वेति पप्रच्छैनां महीपतिः ॥ २० ॥

हे भगवति ! तुम्हें यह संन्यासकी दीक्षा कहांसे प्राप्त हुई, तुम किसकी कन्या हो, किस स्थानसे आई हो, इस समय कहां जाओगी ? पृथ्वीपति जनकने सुलभासे ये सब प्रश्न किये ॥ २० ॥

श्रुते वयसि जातौ च सद्भावो नाधिगम्यते ।
एष्वर्थेषूत्तरं तस्मात्प्रवेद्यं सत्समागमे ॥ २१ ॥

और कहने लगे, अवस्थाके अनुसार शास्त्रका ज्ञान अथवा जातिसे सद्भाव नहीं होता, इसलिये जब मेरे निकट समागम हुआ है, तब इन विषयोंका यथार्थ उत्तर जानना उचित है ॥२१॥

छत्त्रादिषु विशेषेषु मुक्तं मां विद्धि सर्वशः ।
स त्वां संमन्तुमिच्छामि मानार्हासि मता हि मे ॥ २२ ॥

मैंने राजा होके भी छत्रादि राजचिन्होंको परित्याग किया है, इसे यथार्थ रूपसे मालूम करो । मैं तुम्हें विशेष रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं, तुम मेरे निकट मानके योग्य हुई हो ॥ २२ ॥

यस्माच्चैतन्मया प्राप्तं ज्ञानं वैशेषिकं पुरा ।
यस्य नान्यः प्रवक्तास्ति मोक्षे तमपि मे शृणु ॥ २३ ॥

पहले मैंने जिनसे यह वैशेषिक ज्ञान लाभ किया है और उनको छोडके दूसरा कोई भी जिसका वक्ता नहीं है, उस ज्ञान और ज्ञानदाता गुरुका भी परिचय आप मुझसे सुनो ॥२३॥

पाराशर्यसगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः ।
भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमसंमतः ॥ २४ ॥

पराशरके सगोत्र महात्मा वृद्ध भिक्षु पञ्चशिख मेरे गुरु हैं; उनका मैं परम प्रिय शिष्य हूं ॥ २४ ॥

सांख्यज्ञाने तथा योगे महीपालविधौ तथा ।
त्रिविधे मोक्षधर्मेऽस्मिन्गताध्वा छिन्नसंशयः ॥ २५ ॥

सांख्यज्ञान, योगविद्या और राजधर्म विधि, इन तीन प्रकारके मोक्षधर्मके पथका उपदेश मुझे उनसे प्राप्त हुआ है; इन विषयोंके सब मेरे संशय नष्ट हो गये हैं ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri Jijnasu Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri

स यथाशास्त्रदृष्टेन मार्गेणेह परिव्रजन् ।
वार्षिकांश्चतुरो मासान्पुरा मयि सुखोषितः ॥ २६ ॥

पहले वह पञ्चशिख आचार्य शास्त्रदृष्ट मार्गसे विचरते हुए यहां आकर चार महीनेतक परम सुखसे मेरे निकट रहे ॥ २६ ॥

तेनाहं सांख्यमुख्येन सुदृष्टार्थेन तत्त्वतः ।
श्रावितस्त्रिविधं मोक्षं न च राज्याद्विचालितः ॥ २७ ॥

उन सांख्यज्ञानी सुदृष्टार्थ गुरुके मुखसे मैंने त्रिविध मोक्षधर्मका हेतु सुना है, किन्तु राज्यसे विचलित होनेकी उन्होंने आज्ञा नहीं दी है ॥ २७ ॥

सोऽहं तामखिलां वृत्तिं त्रिविधां मोक्षसंहिताम् ।
मुक्तरागश्चराम्येकः पदे परमके स्थितः ॥ २८ ॥

मैं उस ही गुरुके उपदेशको ग्रहणकर रागरहित होके अकेला ही परम पदमें निवास करते हुए, निखिल वृत्तिसे युक्त तीनों प्रकारकी मोक्षसंहिताका आचरण किया करता हूं ॥ २८ ॥

वैराग्यं पुनरेतस्य मोक्षस्य परमो विधिः ।
ज्ञानादेव च वैराग्यं जायते येन मुच्यते ॥ २९ ॥

वैराग्य ही इस मोक्षसाधनका मुख्य उपाय है, ज्ञान हेतुसे ही वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे पुरुष मुक्त होता है ॥ २९ ॥

ज्ञानेन कुरुते यत्नं यत्नेन प्राप्यते महत् ।
महद्द्वंद्वप्रमोक्षाय सा सिद्धिर्या वयोतिगा ॥ ३० ॥

ज्ञानके जरिये मनुष्य मुक्तिके लिये प्रयत्न करता है; उस यत्नके जरिये आत्मज्ञान प्राप्त होता है । आत्मज्ञान ही जीवके सुखदुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त होनेका मोक्षका हेतु है और जिसके जरिये मृत्युको जय किया जा सकता है, उसे ही सिद्धि कहते हैं, ॥ ३० ॥

सेयं परमिका बुद्धिः प्राप्ता निर्द्वंद्वता मया ।
इहैव गतमोहेन चरता मुक्तसङ्गिना ॥ ३१ ॥

मैंने आसक्तिहीन तथा मोहरहित होकर इस गृहस्थधर्ममें रहते हुए ही सुखदुःखसे वर्जित निर्द्वन्द्व यह परम बुद्धि पायी है ॥ ३१ ॥

यथा क्षेत्रं मृदूभूतमद्भिराप्लावितं तथा ।
जनयत्यङ्कुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवम् ॥ ३२ ॥

जैसे जोतकर मुलायम बनाया हुआ खेत जल भरनेसे नरम मिट्टी युक्त होकर बीजमें अङ्कुर उत्पन्न करता है, वैसे ही मनुष्योंका कर्म भी बीज स्थानीय होकर पुनर्जन्मका कारण हुआ करता है ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा चोत्तापितं बीजं कपाले यत्र तत्र वा ।
प्राप्याप्यङ्कुरहेतुत्वमबीजत्वान्न जायते ॥ ३३ ॥

जैसे कपालमें भूना हुआ बीज अंकुरोत्पत्तिके हेतु होनेपर भी अंकुरोत्पतिके असामर्थ्य निबन्धनसे उत्पन्न नहीं होता ॥ ३३ ॥

तद्वद्भगवता तेन शिखाप्रोक्तेन भिक्षुणा ।
ज्ञानं कृतमबीजं मे विषयेषु न जायते ॥ ३४ ॥

वैसे ही भगवान् भिक्षु पञ्चशिख आचार्यने मेरी बुद्धिको वासना बीजसे रहित किया है, इसीसे वह विषयमें प्रवृत्त नहीं होती ॥ ३४ ॥

नाभिषज्जति कस्मिंश्चिन्नानर्थे न परिग्रहे ।
नाभिरज्यति चैतेषु व्यर्थत्वाद्रागदोषयोः ॥ ३५ ॥

मेरी बुद्धि किसी शत्रुवध आदि अनर्थमें वा वनितासक्ति आदि भोगोंके विषयमें अनुराग प्रकाश नहीं करती, क्योंकि मैं रोष और राग आदि दोषोंकी व्यर्थताके कारण किसी भी विषयमें अनुरक्त नहीं होता हूं ॥ ३५ ॥

यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समुक्षयेत् ।
सव्यं वास्या च यस्तक्षेत्समावेतावुभौ मम ॥ ३६ ॥

यदि कोई पुरुष मेरी दाहिनी भुजाको चन्दनसे तर करे और कोई पुरुष बसुलेसे मेरी बायीं भुजाको काटे, तो वे दोनों ही पुरुष मेरे निकट समान हैं ॥ ३६ ॥

सुखी सोऽहमवाप्तार्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
मुक्तसङ्गः स्थितो राज्ये विशिष्टोऽन्यैस्त्रिदण्डिभिः ॥ ३७ ॥

उस ही समयसे मैं सुखी, सिद्धार्थ, लोष्ट–पत्थर–सुवर्णमें समदर्शी और आसक्तिरहित होकर राजपद प्रतिष्ठित हूं, दूसरे त्रिदण्डियोंसे मेरा स्थान विशिष्ट है ॥ ३७ ॥

मोक्षे हि त्रिविधा निष्ठा दृष्टा पूर्वैर्महर्षिभिः ।
ज्ञानं लोकोत्तरं यच्च सर्वत्यागश्च कर्मणाम् ॥ ३८ ॥

पहलेके महर्षियोंने मोक्ष विषयमें त्रिविध निष्ठा देखी हैं; लोकोत्तर ज्ञान, अलौकिक परित्याग और कर्मोंका अलौकिक अनुष्ठान– इन तीन प्रकारकी निष्ठाओंको मोक्षका उपाय देखा है ॥ ३८ ॥

ज्ञाननिष्ठां वदन्त्येके मोक्षशास्त्रविदो जनाः ।
कर्मनिष्ठां तथैवान्ये यतयः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ३९ ॥

कोई कोई मोक्षशास्त्रके जाननेवाले पण्डित ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका साधन कहते हैं, और कोई कोई सूक्ष्मदर्शी यति लोग कर्मनिष्ठाको ही मोक्षका उपाय कहके विश्वास करते हैं ॥३९॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Publishing Trust Haridwar. Digitized by eGangotri

प्रहायोभयमप्येतज्ज्ञानं कर्म च केवलम् ।
तृतीयेयं समाख्याता निष्ठा तेन महात्मना ॥ ४० ॥

परन्तु महानुभाव पञ्चशिखने केवल ज्ञान और कर्म—इन दोनोंको ही परित्याग करके कर्मकृत उपकारके निरपेक्ष केवल ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है, इसलिये यह तीसरी निष्ठा कहके विख्यात हुई है ॥ ४० ॥

यमे च नियमे चैव द्वेषे कामे परिग्रहे ।
माने दम्भे तथा स्नेहे सदृशास्ते कुटुम्बिभिः ॥ ४१ ॥

यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ और स्नेह, इन सबके बीच यदि गृहस्थ पुरुषोंमें यम नियम आदि रहे, तो वह सन्यासियोंके समान हैं अर्थात् गृहस्थ भी मोक्ष लाभ कर सकते हैं; और यदि संन्यासी काम—द्वेषसे दम्भी हो, तो वह गृहस्थके सदृश है अर्थात् वह मुक्तिसे रहित होता है ॥ ४१ ॥

त्रिदण्डादिषु यद्यस्ति मोक्षो ज्ञानेन केनचित् ।
छत्त्रादिषु कथं न स्यात्तुल्यहेतौ परिग्रहे ॥ ४२ ॥

यदि ज्ञानसे ही मोक्ष हो तो त्रिदण्ड आदि धारण करनेकी क्या आवश्यकता है । परिग्रहकी यदि तुल्य कारणता हो तो छत्र आदि धारण मोक्षके प्रतिबन्धक नहीं हैं, अर्थात् ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, जब ऐसा सिद्ध हुआ तो त्रिदण्ड धारण और छत्र धारण दोनों ही समान् हैं ॥ ४२ ॥

येन येन हि यस्यार्थः कारणेनेह कस्यचित् ।
तत्तदालम्बते द्रव्यं सर्वः स्वे स्वे परिग्रहे ॥ ४३ ॥

इस जगत्में जिस जिस कारणसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, स्वार्थपरिग्रह विषयमें सब कोई उस ही कारणको अवलम्बन किया करते हैं, प्रयोजनकी अल्पता वा अधिकता बन्धमोक्षका कारण नहीं होती, परन्तु उसमें आसक्ति और अनासक्ति ही बन्धमोक्षकी कारण हुआ करती है ॥ ४३ ॥

दोषदर्शी तु गार्हस्थ्ये यो व्रजत्याश्रमान्तरम् ।
उत्सृजन्परिगृह्णंश्च सोऽपि सङ्गान्न मुच्यते ॥ ४४ ॥

जो पुरुष गृहस्थाश्रममें दोष देकर दूसरे आश्रममें गमन करता है, वह भी कुछ छोडता है और कुछ ग्रहण करता है; वह तो एक आश्रमको त्यागके दूसरे आश्रममें जानेसे आसक्तिसे नहीं छूटता ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आधिपत्ये तथा तुल्ये निग्रहानुग्रहात्मनि ।
राजर्षिभिक्षुकाचार्या मुच्यन्ते केन हेतुना ॥ ४५ ॥

जब कि निग्रह और अनुग्रह स्वरूप आधिपत्य समान होरहा है, तब राजाओंके सहित भिक्षुकको समान जानना होगा; इसलिये भिक्षुक जब राजाओंके तुल्य ही हुए, तब किस कारणसे वेही केवल मुक्त होते हैं, ऐसा मानना होगा ? ॥ ४५ ॥

अथ सत्याधिपत्येऽपि ज्ञानेनैवेह केवलम् ।
मुच्यन्ते किं न मुच्यन्ते पदे परमके स्थिताः ॥ ४६ ॥

केवल ज्ञानके जरिये यदि सत्यमें ही आधिपत्य रखकर मुक्त हो सकते हैं, तो श्रेष्ठ परमपदमें स्थित मनुष्य क्यों नहीं मुक्त हो सकते ? ॥ ४६ ॥

काषायधारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धः कमण्डलुः ।
लिङ्गान्यत्यर्थमेतानि न मोक्षायेति मे मतिः ॥ ४७ ॥

गेरुआ वस्त्र पहनना, सिर मुंडाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण आदि संन्यास आश्रमके परिचय देनेवाले जो सब चिन्ह हैं, मेरे विचारमें वे सब उत्पथ स्वरूपमात्र हैं, मोक्षके कारण नहीं हैं ॥ ४७ ॥

यदि सत्यपि लिङ्गेऽस्मिञ्ज्ञानमेवात्र कारणम् ।
निर्मोक्षायेह दुःखस्य लिङ्गमात्रं निरर्थकम् ॥ ४८ ॥

आश्रम परिचायक चिन्होंके रहनेपर भी यदि केवल ज्ञान ही यहां दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिमें कारण होता है, तब दण्डकमण्डलु आदि चिन्होंको धारण करना निरर्थक है ॥ ४८ ॥

अथ वा दुःखशैथिल्यं वीक्ष्य लिङ्गे कृता मतिः ।
किं तदेवार्थसामान्यं छत्त्रादिषु न लक्ष्यते ॥ ४९ ॥

अथवा दुःखकी शिथिलता देखके यदि आश्रम परिचायक चिन्ह धारण करनेमें प्रवृत्त हो, तो समान प्रयोजन–निबन्धनसे छत्र आदि धारण करनेमें प्रवृत्ति क्यों न होगी ? ॥ ४९ ॥

आकिंचन्ये न मोक्षोऽस्ति कैंचन्ये नास्ति बन्धनम् ।
कैंचन्ये चेतरे चैव जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते ॥ ५० ॥

अकिञ्चनता रहनेसे ही मोक्ष नहीं होता, और किञ्चनता हेतुसे बन्ध नहीं होता; चाहे जीव अकिञ्चन हो, चाहे किंचन ही होवे, ज्ञानके सहारे ही जीव मुक्त हुआ करता है ॥५०॥

तस्माद्धर्मार्थकामेषु तथा राज्यपरिग्रहे ।
बन्धनायतनेष्वेषु विद्ध्यबन्धे पदे स्थितम् ॥ ५१ ॥

इसलिये बन्धनके स्थान धर्म, अर्थ, काम और राज्यपरिग्रहमें लगे रहनेपर भी मुझे बन्धन-रहित मोक्ष पदमें स्थित जानो ॥ ५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राज्यैश्वर्यमयः पाशः स्नेहायतनबन्धनः ।
मोक्षाश्मनिशितेनेह छिन्नस्त्यागासिना मया ॥ ५२ ॥

मैंने इस जगत्में मोक्षरूपी पत्थरसे शाणित त्यागरूपी तलवारके जरिये स्नेहायतन बन्धन-स्वरूप राज्यैश्वर्यमय पाशको काटा है; इसलिये आसक्तियुक्त पुरुष बद्ध होता है, और त्यागशील मनुष्य मुक्त हुआ करता है ॥ ५२ ॥

सोऽहमेवंगतो मुक्तो जातास्थस्त्वयि भिक्षुकि ।
अयथार्थो हि ते वर्णो वक्ष्यामि शृणु तन्मम ॥ ५३ ॥

हे भिक्षुकी ! मैं प्रागुक्त प्रकारसे मुक्त हुआ हूं । इस समय तुम्हारे प्रति आस्था और आदर-बुद्धि हुई है; तुम्हारा रूप योगानुष्ठानके योग्य नहीं है, उसे कहता हूं, मेरे समीप सुनो ॥ ५३ ॥

सौकुमार्यं तथा रूपं वपुरग्र्यं तथा वयः ।
तवैतानि समस्तानि नियमश्चेति संशयः ॥ ५४ ॥

तुम्हारी सुकुमारता, सुन्दरताई, उत्तम श्री, शरीर और यौवनका समय, यह सभी है, और आपमें योगप्रभाव और नियम भी है । सुकुमारता आदि और योगानुष्ठान, ये परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु इस विरुद्ध धर्मोंने तुम्हें अवलम्बन किया है; इस ही लिये मुझे संशय होता है ॥५४॥

यच्चाप्यननुरूपं ते लिङ्गस्यास्य विचेष्टितम् ।
मुक्तोऽयं स्यान्न वेत्यस्माद्धर्षितो मत्परिग्रहः ॥ ५५ ॥

तुम्हारी दण्ड ग्रहणकी चेष्टा अत्यन्त ही असदृश है; क्योंकि उसमें शरीर सुखाना प्रभृति आवश्यकता है, परन्तु तुममें वह नहीं है । " यह पुरुष मुक्त है, वा नहीं " ऐसा संशय करके तुम रूप आदिसे मुझे मोहित करनेका उद्योग कर रही हो; तुमने मेरे शरीरको अभिभूत करके उसपर बलात्कारसे अधिकार जमाया है ॥ ५५ ॥

न च कामसमायुक्ते मुक्तेऽप्यस्ति त्रिदण्डकम् ।
न रक्ष्यते त्वया चेदं न मुक्तस्यास्ति गोपना ॥ ५६ ॥

परन्तु कामयुक्त योषियोंको त्रिदण्ड धारण करना विहित नहीं है; तुम भी इस आश्रम-परिचायक चिन्हकी रक्षा नहीं करती हो और मुक्त पुरुषको कोई विषय गोपन करना भी उचित नहीं है ॥ ५६ ॥

मत्पक्षसंश्रयाच्चायं शृणु यस्ते व्यतिक्रमः ।
आश्रयन्त्याः स्वभावेन मम पूर्वपरिग्रहम् ॥ ५७ ॥

मेरे शरीरमें प्रवेश करने अर्थात् स्वभावसे मेरे पूर्व शरीरको अवलम्बन करनेसे तुममें जो व्यतिक्रम अर्थात् व्यभिचार हुआ, उसे सुनो ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवेशस्ते कृतः केन मम राष्ट्रे पुरे तथा ।
कस्य वा संनिसर्गात्त्वं प्रविष्टा हृदयं मम ॥ ५८ ॥

मेरे राज्य वा राजधानीके बीच तुमने किसकी सहायतासे प्रवेश किया और किसके निकटसे आके मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुई हैं ? ॥ ५८ ॥

वर्णप्रवरमुख्यासि ब्राह्मणी क्षत्रियो ह्यहम् ।
नावयोरेकयोगोऽस्ति मा कृथा वर्णसंकरम् ॥ ५९ ॥

तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो, मैं क्षत्रिय हूं; हम लोगोंका एकत्र योग नहीं हो सकता, इसलिये तुम वर्णसङ्कर मत करो ॥ ५९ ॥

वर्तसे मोक्षधर्मेषु गार्हस्थ्ये त्वहमाश्रमे ।
अयं चापि सुकष्टस्ते द्वितीयोऽऽश्रमसंकरः ॥ ६० ॥

दूसरे तुम मोक्ष धर्ममें निवास करती हो, मैं गृहस्थआश्रममें वसता हूं । इसलिये आश्रमको सङ्कर करना भी तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त कष्टकर होता है ॥ ६० ॥

सगोत्रां वासगोत्रां वा न वेद त्वां न वेत्थ माम् ।
सगोत्रमाविशन्त्यास्ते तृतीयो गोत्रसंकरः ॥ ६१ ॥

तुम मेरी सगोत्रा हो, वा असमान गोत्रा हो, उसे मैं नहीं जानता; तुम भी मेरे विषयमें कुछ नहीं जानतीं । यदि तुमने सगोत्रके शरीरमें प्रवेश किया है, तो तुममें तीसरा गोत्रसङ्कर दोष हुआ है ॥ ६१ ॥

अथ जीवति ते भर्ता प्रोषितोऽप्यथ वा क्वचित् ।
अगम्या परभार्येति चतुर्थो धर्मसंकरः ॥ ६२ ॥

यदि तुम्हारा पति जीवित हो, वा जीवित रहके किसी स्थानमें वास करता हो, तो तुम परायी स्त्री होनेसे मेरे लिये अगम्या है, इससे तुममें धर्मसङ्कर नामक चौथा दोष उपस्थित होता है ॥ ६२ ॥

सा त्वमेतान्यकार्याणि कार्यापेक्षा व्यवस्यसि ।
अविज्ञानेन वा युक्ता मिथ्याज्ञानेन वा पुनः ॥ ६३ ॥

और यदि तुम कार्यापेक्षिणी होकर अविज्ञान अथवा मिथ्याज्ञानसे पहले ही इन सब अकार्योंको करती हो, तो यह अत्यन्त अविहित है ॥ ६३ ॥

अथ वापि स्वतन्त्रासि स्वदोषेणेह केनचित् ।
यदि किंचिच्छ्रुतं तेऽस्ति सर्वं कृतमनर्थकम् ॥ ६४ ॥

यदि तुम निज दोषसे किसी दूसरे पुरुषपर स्वाधीनता प्रकाशित करो, तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता शास्त्रमें निषिद्ध है, इसलिये तुम्हें जो कुछ शास्त्रज्ञान है, वह भी निरर्थक हो रहा है ॥ ६४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इदमन्यत्तृतीयं ते भावस्पर्शविघातकम् ।
दुष्टाया लक्ष्यते लिङ्गं प्रवक्तव्यं प्रकाशितम् ॥ ६५ ॥

यदि तुम प्रकाश्यमें बाहर हुई हो, तो इससे भी तुम्हारा महान् प्रीति-विघातक दुष्टताका चौथा लक्षण बोध होता है ॥ ६५ ॥

न मय्येवाभिसंधिस्ते जयैषिण्या जये कृतः ।
येयं मत्परिषत्कृत्स्ना जेतुमिच्छसि तामपि ॥ ६६ ॥

तुमने जयकी अभिलाषिणी होकर केवल मुझे ही जीतनेकी इच्छा नहीं की है, मेरे इस सभासम्बन्धीय सब पण्डितोंको भी जीतनेकी तुम्हारी अभिलाषा है ॥ ६६ ॥

तथा ह्येवं पुनश्च त्वं दृष्टिं स्वां प्रतिमुञ्चसि ।
मत्पक्षप्रतिघाताय स्वपक्षोद्भावनाय च ॥ ६७ ॥

मेरे पक्षके प्रतिघात और निज पक्षको सिद्ध करनेके लिये तुम इस पूज्य पुरुषोंकी ओर देख रही हो ॥ ६७ ॥

सा स्वेनामर्षजेन त्वमृद्धिमोहेन मोहिता ।
भूयः सृजसि योगास्त्रं विषामृतमिवैकधा ॥ ६८ ॥

तुम दूसरेके उत्कर्षको असहिष्णुता रूपी अमर्षजनित योगसमृद्धि मोहसे मोहित होकर विष और अमृतकी एकताकी भांति फिर योग अर्थात् परम बुद्धिके सहित निज बुद्धिका सम्बन्ध-विधान करती हो ॥ ६८ ॥

इच्छतोर्हि द्वयोर्लाभः स्त्रीपुंसोरमृतोपमः ।
अलाभश्चाप्यरक्तस्य सोऽत्र दोषो विषोपमः ॥ ६९ ॥

यदि स्त्री पुरुष परस्पर अनुरक्त होके दोनों मिलित हों, तब उनका मिलना अमृत समान हुआ करता है और अनुरक्त दम्पतिका जो अमीलन है, वह विषके समान दोषरूपसे परिणत होता है ॥ ६९ ॥

मा स्प्राक्षीः साधु जानीष्व स्वशास्त्रमनुपालय ।
कृतेयं हि विजिज्ञासा मुक्तो नेति त्वया मम ।
एतत्सर्वं प्रतिच्छन्नं मयि नार्हसि गूहितुम् ॥ ७० ॥

इसलिये तुम मुझे स्पर्श मत करो । साधु ज्ञानसे संन्यासि शास्त्रका पालन करो । मैं मुक्त हूं, वा नहीं, इसे जाननेके लिये तुमने इच्छा की है, यह सारा भाव तुम्हारे हृदयमें प्रच्छन्न भावसे स्थित है; परन्तु मेरे समीप यह सब अभिप्राय छिपाना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ७० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सा यदि त्वं स्वकार्येण यद्यन्यस्य महीपतेः ।
तत्त्वं सत्रप्रतिच्छन्ना मयि नार्हसि गूहितुम् ॥ ७१ ॥

यदि तुमने निज कार्य अथवा दूसरे किसी महीपतिके कार्यके लिये ऐसा किया हो, तो दूसरा वेष धरके मेरे निकट सत्यको छिपाना तुम्हें अत्यन्त अनुचित है ॥ ७१ ॥

न राजानं मृषा गच्छेन्न द्विजार्तिं कथंचन ।
न स्त्रियं स्त्रीगुणोपेतां हन्युर्ह्येते मृषागताः ॥ ७२ ॥

राजाके समीप मिथ्यावेषसे न जावे, ब्राह्मणके निकट कपटवेषसे उपस्थित न होवे और स्त्रीजनोचित पातिव्रत्य गुणसे युक्त स्त्रीके समीप कपटाचारसे न जाना चाहिये; जो लोग इनके निकट मिथ्या व्यवहार करते हैं, उनका नाश होता है ॥ ७२ ॥

राज्ञां हि बलमैश्वर्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
रूपयौवनसौभाग्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥ ७३ ॥

राजाओंका बल ऐश्वर्य है, वेदवित् ब्राह्मणोंका बल वेद है और स्त्रियोंको रूप, यौवन और सौभाग्य ही उत्तम बल स्वरूप है ॥ ७३ ॥

अत एतैर्बलैरेते बलिनः स्वार्थमिच्छता ।
आर्जवेनाभिगन्तव्या विनाशाय ह्यनार्जवम् ॥ ७४ ॥

ये लोग इन्हीं बलोंके सहारे बलवान् होते हैं; तब जो पुरुष अभीष्टकी इच्छा करे, उसे सरल-भावसे इनके निकट जाना उचित है; इनके समीप कपटता करनेसे कपटीका विनाश हुआ करता है ॥ ७४ ॥

सा त्वं जातिं श्रुतं वृत्तं भावं प्रकृतिमात्मनः ।
कृत्यमागमने चैव वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ ७५ ॥

जब तुम कपट आचारवाली हुई हो, तब तुम्हें अपनी जाति, शास्त्रज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आनेका प्रयोजन यथार्थरूपसे कहना उचित है ॥ ७५ ॥

इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः ।
प्रत्यादिष्टा नरेन्द्रेण सुलभा न व्यकम्पत ॥ ७६ ॥

सुलभा नरेन्द्रके जरिये यह सब रूखे, अयुक्त और असमञ्जस वचनसे तिरस्कृत कर पूछी जानेपर तनिक भी विचलित नहीं हुई ॥ ७६ ॥

उक्तवाक्ये तु नृपतौ सुलभा चारुदर्शना ।
ततश्चारुतरं वाक्यं प्रचक्रामाथ भाषितुम् ॥ ७७ ॥

और राजाका वचन समाप्त होनेपर वह सुन्दरी उत्तम वचन कहने लगी ॥ ७७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नवभिर्नवभिश्चैव दोषैर्वाग्बुद्धिदूषणैः ।
अपेतमुपपन्नार्थमष्टादशगुणान्वितम् ॥ ७८ ॥

हे राजन् ! गुरुतर अक्षर संयुक्तत्व आदि वक्ष्यमाण नौ प्रकारके वाक्य दोष और वक्ष्यमाण काम आदि नौ प्रकारके बुद्धिदोषसे रहित तथा अठारह गुणोंसे युक्त सङ्गतार्थ ॥ ७८ ॥

सौक्ष्म्यं सांख्यक्रमौ चोभौ निर्णयः सप्रयोजनः ।
पञ्चैतान्यर्थजातानि वाक्यमित्युच्यते नृप ॥ ७९ ॥

सूक्ष्म वाक्य, पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त पक्षके गुणदोषोंकी संख्या तथा गुणदोषोंके बलाबलका विचार, विनिर्णय अर्थात् सिद्धान्त और अनुष्ठान, इन पांचों विषयोंसे संयुक्त होनेसे वाक्य अर्थात् शब्दाख्यप्रमाण रूपसे अभिहित होता है ॥ ७९ ॥

एषामेकैकशोऽर्थानां सौक्ष्म्यादीनां सुलक्षणम् ।
शृणु संसार्यमाणानां पदार्थैः पदवाक्यतः ॥ ८० ॥

पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ– इस चार प्रकारके भेदके अनुसार पहले कहे हुए सूक्ष्मादिके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो ॥ ८० ॥

ज्ञानं ज्ञेयेषु भिन्नेषु यथाभेदेन वर्तते ।
तत्रातिशयिनी बुद्धिस्तत्सौक्ष्म्यमिति वर्तते ॥ ८१ ॥

जब ज्ञेय पदार्थोंके भिन्न भिन्न होनेसे ज्ञान विभिन्न होता है, और जिसमें बुद्धि अनेक तरहसे संशय करती है तथा यथार्थ निर्णय करती है, उसीका नाम सौक्ष्म्य है ॥ ८१ ॥

दोषाणां च गुणानां च प्रमाणं प्रविभागशः ।
कंचिदर्थमभिप्रेत्य सा संख्येत्युपधार्यताम् ॥ ८२ ॥

किसी विषयका अभिप्राय करके उसके दोष और गुणोंकी विभागपूर्वक गणना की जाती है, उस अर्थको संख्या कहके निश्चय करो ॥ ८२ ॥

इदं पूर्वमिदं पश्चाद्वक्तव्यं यद्विवक्षितम् ।
क्रमयोगं तमप्याहुर्वाक्यं वाक्यविदो जनाः ॥ ८३ ॥

और संख्यात गुणदोषोंके बीच यह प्रथम वक्तव्य है, उसे पश्चात् कहना चाहिये; इस प्रकार जो पूर्वापरके क्रमका विचार होता है उसका नाम क्रम है और वाक्यवित् पुरुष इस वाक्यको क्रमयोग कहा करते हैं ॥ ८३ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रतिज्ञाय विशेषतः ।
इदं तदिति वाक्यान्ते प्रोच्यते स विनिर्णयः ॥ ८४ ॥

धर्म, काम, अर्थ और मोक्षके विषयमें विशेष रूपसे प्रतिज्ञा करके वाक्यार्थ विचारकी समाप्ति होनेपर "यही वह सत्य वाक्य है" इस प्रकारके निश्चयको निर्णय कहते हैं ॥८४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इच्छाद्वेषभवैर्दुःखैः प्रकर्षो यत्र जायते ।
तत्र या नृपते वृत्तिस्तत्प्रयोजनमिष्यते ॥ ८५ ॥

हे राजन् ! इच्छा द्वेषसे उत्पन्न हुए दुःखके जरिये जो उद्वेग उत्पन्न होता है अर्थात् 'इसे अवश्य करना चाहिये और यह अवश्य त्याज्य है,' इस कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता विषयमें जो प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है, उसका ही नाम प्रयोजन है ॥ ८५ ॥

तान्येतानि यथोक्तानि सौक्ष्म्यादीनि जनाधिप ।
एकार्थसमवेतानि वाक्यं मम निशामय ॥ ८६ ॥

हे प्रजानाथ ! यथाक्रमसे कहे हुए ये सूक्ष्मादि एक अर्थसे पर्यवसित होकर पञ्च अङ्गयुक्त वाक्य होता है, इसलिये मेरे वैसेही वचनको आप सुनिये ॥ ८६ ॥

उपेतार्थमभिन्नार्थं नापवृत्तं न चाधिकम् ।
नाश्लक्ष्णं न च संदिग्धं वक्ष्यामि परमं तव ॥ ८७ ॥

मैं प्राञ्जल और प्रसिद्ध अर्थसम्पन्न, अर्थ भेदरहित, न्याययुक्त, जिसमें आवश्यकतासे अधिक, कर्णकटु और संदेह जनक पद नहीं हैं, ऐसाही परम उत्तम वचन कहूंगी ॥ ८७ ॥

न गुर्वक्षरसंबद्धं पराङ्मुखसुखं न च ।
नानृतं न त्रिवर्गेण विरुद्धं नाप्यसंस्कृतम् ॥ ८८ ॥

जो सब वाक्य कहूंगी, उसमें बहुत गुरु और कठोर अक्षर नहीं हैं; अश्लील, अमङ्गल और घृणाकर शब्द नहीं है, वह अनृत, असंस्कृत अथवा धर्म, काम और अर्थ, इन त्रिवर्गोंसे विरुद्ध नहीं है ॥ ८८ ॥

न न्यूनं कष्टशब्दं वा व्युत्क्रमाभिहितं न च ।
न क्लेषं नानुकल्पेन निष्कारणमहेतुकम् ॥ ८९ ॥

उसमें अमङ्गल पद नहीं हैं, छन्द वा व्याकरण दोष युक्त शब्द नहीं हैं, क्लिष्ट शब्द अर्थात् बहुत कष्टसे जिसका अर्थबोध होता है, वैसा पद नहीं है, और वह निष्प्रयोजन वा युक्तिहीन भी नहीं है ॥ ८९ ॥

कामात्क्रोधाद्भयाल्लोभाद्दैन्यादानार्यकात्तथा ।
ह्रीतोऽनुक्रोशतो मानान्न वक्ष्यामि कथंचन ॥ ९० ॥

मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, दर्प, दया, लज्जा और अभिमानके वशमें होकर कुछ वचन न कहूंगी ॥ ९० ॥

वक्ता श्रोता च वाक्यं च यदा त्वविकलं नृप ।
सममेति विवक्षायां तदा सोऽर्थः प्रकाशते ॥ ९१ ॥

हे राजन् ! वक्ता, श्रोता और वाक्य जब विवक्षा समयमें अव्यग्रभावसे समान होते हैं, तब वक्ताका विवक्षित अर्थ प्रकाशित हुआ करता है ॥ ९१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Vidya Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्यते ।
स्वार्थमाह परार्थं वा तदा वाक्यं न रोहति ॥ ९२ ॥

कहनेके समय यदि वक्ता श्रोताकी अवज्ञा करे और निज प्रयोजनीय विषयको पराये प्रयोजन रूपसे प्रकाश करे, तो वह वचन श्रोताके हृदयमें अंकुरित नहीं होता है ॥ ९२ ॥

अथ यः स्वार्थमुत्सृज्य परार्थं प्राह मानवः ।
विशङ्का जायते तस्मिन्वाक्यं तदपि दोषवत् ॥ ९३ ॥

जो मनुष्य स्वार्थ त्यागके दूसरेके लिये कुछ कहता है, उसमें श्रोताके मनमें शङ्का उत्पन्न होती है, इसलिये वैसा वचन भी दोषयुक्त होता है ॥ ९३ ॥

यस्तु वक्ता द्वयोरर्थमविरुद्धं प्रभाषते ।
श्रोतुश्चैवात्मनश्चैव स वक्ता नेतरो नृप ॥ ९४ ॥

हे राजन् ! जो वक्ता अपने और श्रोताके अनुकूल वचन ही बोलता है, वह साधारण नहीं है; वही वक्ता है, दूसरा नहीं ॥ ९४ ॥

तदर्थवदिदं वाक्यमुतेपं वाक्यसंपदा ।
अविक्षिप्तमना राजन्नेकाग्रः श्रोतुमर्हसि ॥ ९५ ॥

इसलिये राजन् ! अविक्षिप्तचित्त और एकाग्र होकर वाक्य सम्पत्तिसे युक्त अर्थसम्पन्न यह वचन तुम्हें सुनना उचित है ॥ ९५ ॥

कासि कस्य कुतो वेति त्वयाहमभिचोदिता ।
तत्रोत्तरमिदं वाक्यं राजन्नेकमनाः शृणु ॥ ९६ ॥

हे महाराज ! तुमने जो मुझसे " तुम कौन हो, तुम किसकी कन्या हो, कहांसे आई हो " ऐसा पूछा है, उसका उत्तर एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ९६ ॥

यथा जतु च काष्ठं च पांसवश्चोदबिन्दुभिः ।
सुश्लिष्टानि तथा राजन्प्राणिनामिह संभवः ॥ ९७ ॥

हे राजन् ! जैसे जतु–लाह और काष्ठ, धूल तथा जलकी बूंद परस्पर मिलकर एक होती हैं, इस लोकमें प्राणियोंका सम्भव भी वैसाही है ॥ ९७ ॥

शब्दः स्पर्शो रसो रूपं गन्धः पञ्चेन्द्रियाणि च ।
पृथगात्मा दशात्मानः संश्लिष्टा जतुकाष्ठवत् ॥ ९८ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांच ज्ञानेन्द्रियां– ये आत्मासे भिन्न होनेपर भी जतुकाष्ठकी भांति आत्मामें संश्लिष्ट होती हैं ॥ ९८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न चैषां चोदना काचिदस्तीत्येष विनिश्चयः ।
एकैकस्येह विज्ञानं नास्त्यात्मनि तथा परे ॥ ९९ ॥

शब्द आदि विषय और कान आदि इन्द्रियां चाहे भिन्न हों, वा संहत ही होवें, उन्हें "तुम कौन हो ?" ऐसी बात नहीं पूछी जाती, अर्थात् इनमें स्वतंत्र कोई प्रेरणाशक्ति नहीं है, यह विद्वानोंका निश्चय है और वे परस्पर अपने तथा परायेको नहीं जानतीं, उनको वह ज्ञान नहीं है ॥ ९९ ॥

न वेद चक्षुश्चक्षुष्टं श्रोत्रं नात्मनि वर्तते ।
तथैव व्यभिचारेण न वर्तन्ते परस्परम् ।
संश्लिष्टा नाभिजायन्ते यथाप इह पांसवः ॥ १०० ॥

नेत्र निजरूपको देखनेमें समर्थ नहीं है, कान आप ही अपनेको नहीं जान सकता; ये इन्द्रियां और विषय परस्पर मिलकर भी नहीं जान सकते और परस्पर संश्लिष्ट होके भी जैसे जल और धूल एक दूसरेको नहीं जान सकते ॥ १०० ॥

बाह्यानन्यानपेक्षन्ते गुणांस्तानपि मे शृणु ।
रूपं चक्षुः प्रकाशश्च दर्शने हेतवस्त्रयः ।
यथैवात्र तथान्येषु ज्ञानज्ञेयेषु हेतवः ॥ १०१ ॥

अर्थात् जैसे सूर्य घट पट आदि बाह्य वस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही आंख, कान आदि इन्द्रियां देहाश्रित होके भी अपने वा दूसरेको प्रकाश नहीं कर सकतीं । ये विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करते समय दूसरे बाह्य गुण अर्थात् प्रकाश आदिकी अपेक्षा किया करती हैं; उन गुणोंको मुझसे सुनो । रूप, नेत्र और प्रकाश, ये तीनों दर्शनज्ञानके सहकारी कारण हुआ करते हैं; जैसे प्रत्यक्ष दर्शनमें ये तीन हेतु हैं, उसी प्रकार अन्य ज्ञान और ज्ञेयमें भी तीन हेतु जानने चाहिये ॥ १०१ ॥

ज्ञानज्ञेयान्तरे तस्मिन्मनो नामापरो गुणः ।
विचारयति येनायं निश्चये साध्वसाधुनी ॥ १०२ ॥

ज्ञान और ज्ञेय पदार्थके बीच ज्ञानेन्द्रियके अतिरिक्त मन एक दूसरा विशेष गुण है, जिसके सहारे जीव सदसत्का विचार करता है, उसे ही मन कहते हैं ॥ १०२ ॥

द्वादशस्त्वपरस्तत्र बुद्धिर्नाम गुणः स्मृतः ।
येन संशयपूर्वेषु बोद्धव्येषु व्यवस्यति ॥ १०३ ॥

पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन ग्यारहोंके अतिरिक्त बुद्धिको बारहवां गुण कहा जाता है; संशयात्मक बोद्धव्य विषयमें जीव जिसके सहारे निश्चय करता है, उसे ही बुद्धि कहते हैं ॥ १०२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ द्वादशके तस्मिन्सत्त्वं नामापरो गुणः ।
महासत्त्वोऽल्पसत्त्वो वा जन्तुर्येनानुमीयते ॥ १०४ ॥

उस बुद्धिके बीच सत्त्वनामक और एक गुण है, उसे बुद्धिका उपादान कहा जाता है । रज और तमोगुणके अत्यन्त अभिभव होनेपर सत्वगुणकी मध्य वा और किञ्चित् अभिभव होनेसे महत्त्व होता है । जन्तु महासत्त्व अथवा अल्पसत्त्व हैं, जिसके जरिये यह अनुमान किया जाता है, उसे ही सत्त्व कहते हैं ॥ १०४ ॥

क्षेत्रज्ञ इति चाप्यन्यो गुणस्तत्र चतुर्दशः ।
ममायमिति येनायं मन्यते न च मन्यते ॥ १०५ ॥

"यह पुरुष मेरा है और यह मेरा नहीं है" जिस सत्त्वके जरिये जीव ऐसा ज्ञान करता है, वह क्षेत्रज्ञ नामक चौदहवां गुण कहा जाता है ॥ १०५ ॥

अथ पञ्चदशो राजन्गुणस्तत्रापरः स्मृतः ।
पृथक्कलासमूहस्य सामग्र्यं तदिहोच्यते ॥ १०६ ॥

हे राजन् ! अहङ्कारका और एक पन्दरहवां गुण स्मृत हुआ करता है, अर्थात् पञ्चप्राण, आकाश आदि पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन सोलहों कलाओंकी समग्रता जोकि वासनात्मक जगत् रूप अहङ्कारमें निवास करती है, उसे ही पंद्रहवां गुण कहा जाता है ॥१०६॥

गुणस्त्वेवापरस्तत्र संघात इति षोडशः ।
आकृतिर्व्यक्तिरित्येतौ गुणौ यस्मिन्समाश्रितौ ॥ १०७ ॥

उस वासनामें उसके उपादान स्वरूप त्रिगुणात्मक संघातकी भांति जगत्की अंकुर बीजभूत अविद्या संज्ञक सोलहवां गुण वर्त्तमान हैं, माया और उसका प्रकाश, ये दोनों गुण उसके आश्रित होरहे हैं, इसलिये माया सत्तरहवीं और उसके प्रकाशको अट्ठारहवें गुण रूपसे गिनना होगा ॥ १०७ ॥

सुखदुःखे जरामृत्यू लाभालाभौ प्रियाप्रिये ।
इति चैकोनविंशोऽयं द्वंद्वयोग इति स्मृतः ॥ १०८ ॥

सुख-दुःख, जरा-मृत्यु, लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रिय इत्यादि द्वन्द्वोंका जो योग है, यह उन्नीसवां गुण माना गया है ॥ १०८ ॥

ऊर्ध्वमेकोनविंशात्याः कालो नामापरो गुणः ।
इतीमं विद्धि विंशत्या भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ १०९ ॥

इस उन्नीसवें गुणके ऊपर दूसरा एक काल नामक गुण है, इसहीमें सब भूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है, इसे बीसवें गुणके जरिये संख्यात जानो ॥ १०९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विंशकश्चैष संघातो महाभूतानि पञ्च च ।
सदसद्भावयोगौ च गुणावन्यौ प्रकाशकौ ॥ ११० ॥

इन बीस गुणोंका समुदाय और देहारम्भक अंशके अतिरिक्त पञ्चमहाभूत, उसके अतिरिक्त सत् और असत् भावके सम्बन्धयुक्त प्रकाशक दो गुण– ये सब मिलकर सत्ताईस हैं ॥ ११० ॥

इत्येवं विंशतिश्चैव गुणाः सप्त च ये स्मृताः ।
विधिः शुक्रं बलं चेति त्रय एते गुणाः परे ॥ १११ ॥

ये जो बीस और सात गुण कहे हैं, इनके अतिरिक्त और तीन गुण हैं– विधि अर्थात् वासना-बीजभूत धर्माधर्म, शुक्र अर्थात् वासनाका उद्बोधक संस्कार और बल अर्थात् वासना विषय प्राप्तिका यत्न ॥ १११ ॥

एकविंशश्च दश च कलाः संख्यानतः स्मृताः ।
समग्रा यत्र वर्तन्ते तच्छरीरमिति स्मृतम् ॥ ११२ ॥

इस प्रकार इक्कीस और दस कलाएं होती हैं; ये सब कला जिसमें वर्त्तमान रहती हैं, उसे शरीर कहा जाता है ॥ ११२ ॥

अव्यक्तं प्रकृतिं त्वासां कलानां कश्चिदिच्छति ।
व्यक्तं चासां तथैवान्यः स्थूलदर्शी प्रपश्यति ॥ ११३ ॥

निरीश्वरवादी सांख्य मतवाले पण्डित लोग अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिको इन कलाओंको उपादान कारण रूपसे देखते हैं और दूसरे स्थूलदर्शी कणाद आदि व्यक्त अर्थात् परमाणु आदिको उपादान रूपसे देखते हैं ॥ ११३ ॥

अव्यक्तं यदि वा व्यक्तं द्वयीमथ चतुष्टयीम् ।
प्रकृतिं सर्वभूतानां पश्यन्त्यध्यात्मचिन्तकाः ॥ ११४ ॥

अव्यक्त ही हो, अथवा व्यक्त परमाणु प्रभृति होवे, दोनों हों किंवा चारों ब्रह्म, माया, जीव और अविद्या ही कारण हों, अध्यात्मचिन्तक विद्वान् पुरुष प्रकृतिको ही सब भूतोंके उपादान कारण रूपसे देखते हैं ॥ ११४ ॥

सेयं प्रकृतिरव्यक्ता कलाभिर्व्यक्ततां गता ।
अहं च त्वं च राजेन्द्र ये चाप्यन्ये शरीरिणः ॥ ११५ ॥

इस अपरिस्फुटा प्रकृतिनेही प्रागुक्त कलाओंके रूपमें दृश्यत्व लाभ किया है । हे राजेन्द्र ! मैं, तुम और दूसरे जो सब शरीरधारी जीव हैं, उन सबके शरीरोंकी उत्पत्ति प्रकृतिसेही हुई है ॥ ११५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बिन्दुन्यासादयोऽवस्थाः शुक्रशोणितसंभवाः ।
यासामेव निपातेन कललं नाम जायते ॥ ११६ ॥

बिन्दुन्यास आदि अवस्थाएं अर्थात् रेतःसेक आदि शुक्रशोणितके संयोगसे हुआ करती हैं; जिनके मिलनेसे कलल अर्थात् शुक्रशोणितका परस्पर संघटन उत्पन्न होता है ॥ ११६ ॥

कललादर्बुदोत्पत्तिः पेशी चाप्यर्बुदोद्भवा ।
पेश्यास्त्वङ्गाभिनिर्वृत्तिर्नखरोमाणि चाङ्गतः ॥ ११७ ॥

उस कललसे बुद्बुदकी उत्पत्ति होती है, बुद्बुदेसे मांसपेशी उत्पन्न होती है, पेशीसे विभिन्न अङ्ग उत्पन्न होते हैं और अङ्गोंसे नख तथा रोम निकला करते हैं ॥ ११७ ॥

संपूर्णे नवमे मासे जन्तोर्जातस्य मैथिल ।
जायते नामरूपत्वं स्त्री पुमान्वेति लिङ्गतः ॥ ११८ ॥

हे मिथिलाराज ! गर्भमें नौ महिने पूर्ण होने पर जठरस्थ जीवका जन्म होता है, और उसे स्त्री वा पुरुषके विशेष चिन्हके अनुसार नामरूप और प्राप्त होता है ॥ ११८ ॥

जातमात्रं तु तद्रूपं दृष्ट्वा ताम्रनखाङ्गुलि ।
कौमाररूपमापन्नं रूपतो नोपलभ्यते ॥ ११९ ॥

उत्पन्न होते ही उस बालकके नख और अंगुलियां तांबेके समान लाल होती हैं; यह बाल अवस्थाका रूप दिखाई देता है; फिर कुमार अवस्थामें उसका पहलेका वह रूप उपलब्ध नहीं होता है ॥ ११९ ॥

कौमाराद्यौवनं चापि स्थाविर्यं चापि यौवनात् ।
अनेन क्रमयोगेन पूर्वं पूर्वं न लभ्यते ॥ १२० ॥

कौमार रूपसे जवानी और जवानीके अनन्तर बुढापा प्रकाशित हुआ करता है; इत्यादि क्रमसे जो सब रूप उत्पन्न होते हैं, वे पहलेकी अवस्थाके रूप नहीं देखनेमें आते हैं ॥१२०॥

कलानां पृथगर्थानां प्रतिभेदः क्षणे क्षणे ।
वर्तते सर्वभूतेषु सौक्ष्म्यात्तु न विभाव्यते ॥ १२१ ॥

सब भूतोंके बीच रूप आदिको प्रकाश करनेवाली परिणामवती कलाओंसे प्रतिक्षणमें ही रूपका विपर्यय होरहा है, परन्तु सूक्ष्मताके सबबसे वह मालूम नहीं होता ॥ १२१ ॥

न चैषामप्ययो राजल्लँक्ष्यते प्रभवो न च ।
अवस्थायामवस्थायां दीपस्येवार्चिषो गतिः ॥ १२२ ॥

हे राजन् ! दीपशिखाकी गति जिस प्रकार क्षणमें मिटती और उत्पन्न होती रहती है, परंतु दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार प्रत्येक अवस्थामें रूपका उदय और लय होरहा है; परन्तु वह मालूम नहीं होता ॥ १२२ ॥

CC-0. Swami Anandanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्याप्येवंप्रभावस्य सदश्वस्येव धावतः ।
अजस्रं सर्वलोकस्य कः कुतो वा न वा कुतः ॥ १२३ ॥

जैसे उत्तम घोडा सदा अत्यंत तीव्र वेगसे दौडता है, उस ही भांति जब कि यह प्रभावयुक्त लोक नित्य एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें धावित हो रहा है, तब कौन कहांसे आया है, वा आता नहीं है ॥ १२३ ॥

कस्येदं कस्य वा नेदं कुतो वेदं न वा कुतः ।
संबन्धः कोऽस्ति भूतानां स्वैरप्यवयवैरिह ॥ १२४ ॥

यह किसका है वा किसका नहीं है, कहांसे उत्पन्न होता है अथवा जन्म नहीं लेता, इसका क्या निश्चय है; इस लोकमें जीवका निज अवयवोंके सङ्ग क्या सम्बन्ध है ? जब कि अपने अवयवोंके सङ्ग ही अपना सम्बन्ध नहीं है, तब तुमने जो मुझसे " तुम कौन हो, कहांसे आई हो ? " इत्यादि प्रश्न किये हैं, वह अत्यन्त ही अयुक्त हैं ॥ १२४ ॥

यथादित्यान्मणेश्चैव वीरुद्भ्यश्चैव पावकः ।
भवत्येवं समुदयात्कलानामपि जन्तवः ॥ १२५ ॥

जैसे सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे सूर्यकान्त मणिसे और परस्पर घिसनेसे काठसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही कलाओंके समुदायसे जीव जन्म लिया करते हैं ॥ १२५ ॥

आत्मन्येवात्मनात्मानं यथा त्वमनुपश्यसि ।
एवमेवात्मनात्मानमन्यस्मिन्किं न पश्यसि ।
यद्यात्मनि परस्मिंश्च समतामध्यवस्यसि ॥ १२६ ॥

जैसे तुम अपने शरीरमें आप ही निष्कल आत्माको देखते हो, वैसे ही तुम स्वयं दूसरे शरीरोंमें उस ही आत्माको क्यों नहीं देखते ? यदि अपनेमें और दूसरोंमें समता निश्चय करते हो ॥ १२६ ॥

अथ मां कासि कस्येति किमर्थमनुपृच्छसि ।
इदं मे स्यादिदं नेति द्वंद्वैर्मुक्तस्य मैथिल ।
कासि कस्य कुतो वेति वचने किं प्रयोजनम् ॥ १२७ ॥

तो मुझसे " तुम कौन और किसकी हो " इत्यादि प्रश्न किस लिये पूछते हो ? हे मिथिलानाथ ! " यह मुझे प्राप्त होवे, और यह न हो " जो पुरुष इन द्वन्द्वोंसे मुक्त है, वैसे पुरुषको ' तुम कौन, किसकी हो वा कहांसे आयी हो ' इत्यादि प्रश्न पूछनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १२७ ॥

रिपौ मित्रेऽथ मध्यस्थे विजये संधिविग्रहे ।
कृतवान्यो महीपाल किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम् ॥ १२८ ॥

जो राजा शत्रु, मित्र, मध्यस्थ, विजय, सन्धि और विग्रहमें विहित कार्योंको किया करता है, उसमें मुक्तका लक्षण कौनसा है ? ॥ १२८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिवर्गे सप्तधा व्यक्तं यो न वेदेह कर्मसु ।
सङ्गवान्यस्त्रिवर्गे च किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम् ॥ १२९ ॥

धर्म, काम तथा अर्थ, ये त्रिवर्ग असंकीर्ण भावसे तीन और धर्मार्थ, धर्मकाम वा कामार्थ ऐसे संकीर्णभावसे दोनों परस्पर मिलित होके तीन, धर्मार्थकाम ये तीनों परस्पर संकीर्ण-भावसे एक; इस ही भांति सब कर्मोंमे सात प्रकारसे व्यक्त त्रिवर्गको नहीं जानता और जो त्रिवर्गोंमें आसक्त हो रहा है, उसमें मुक्तका लक्षण क्या है ? ॥ १२९ ॥

प्रिये चैवाप्रिये चैव दुर्बले बलवत्यपि ।
यस्य नास्ति समं चक्षुः किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम् ॥ १३० ॥

प्रिय, अप्रिय, निर्बल और बलवान् पुरुषमें जिसकी समदृष्टि नहीं है, उसमें कौनसा मुक्तलक्षण है ? ॥ १३० ॥

तदमुक्तस्य ते मोक्षे योऽभिमानो भवेन्नृप ।
सुहृद्भिः स निवार्यस्ते विचित्तस्येव भेषजैः ॥ १३१ ॥

हे राजन् ! अपथ्यसेवी रोगीके औषध सेवनकी भांती तुम योगयुक्त न होके भी जो मोक्ष विषयका अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रोंको उचित है कि, वे उस आपके अभिमानको छुडावें ॥ १३१ ॥

तानि तान्यनुसंदृश्य सङ्गस्थानान्यरिंदम ।
आत्मनात्मनि संपश्येत्किं तस्मिन्मुक्तलक्षणम् ॥ १३२ ॥

हे अरिन्दम ! सङ्ग स्थान पत्नी आदिका विचार करके उन सबको आसक्तिके स्थान समझकर आप ही अपनेमें देखे, इससे भिन्न दूसरा मुक्तका लक्षण और क्या हो सकता है ॥ १३२ ॥

इमान्यन्यानि सूक्ष्माणि मोक्षमाश्रित्य कानिचित् ।
चतुरङ्गप्रवृत्तानि सङ्गस्थानानि मे शृणु ॥ १३३ ॥

मोक्षको अवलम्बन करके जो मनुष्य निवास करता है, उसके विषयमें ये सब तथा दूसरे जो सूक्ष्म सङ्गस्थान हैं, तथा शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र, इन चारों अङ्गोंसे युक्त जो सब सङ्गस्थान विद्यमान हैं, वह मुझसे सुनो ॥ १३३ ॥

य इमां पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्त्रां प्रशास्ति ह ।
एकमेव स वै राजा पुरमध्यावसत्युत ॥ १३४ ॥

जो इस अखण्ड पृथ्वीमण्डलको एकछत्र करके शासन करता है, वही एकमात्र सार्वभौम राजा है और वही एकमात्र पुरके बीच ही वास किया करता है ॥ १३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्पुरे चैकमेवास्य गृहं यदधितिष्ठति ।
गृहे शयनमप्येकं निशायां यत्र लीयते ॥ १३५ ॥

उस नगर जिसमें कि वह निवास करता है, वैसा उसमें उसका एक ही महल रहता है; रात्रिके समय राजा जिसमें शयन करता है, उस महलमें भी वैसी उसके लिये एक ही शय्या रहती है ॥ १३५ ॥

शय्यार्धं तस्य चाप्यत्र स्त्रीपूर्वमधितिष्ठति ।
तदनेन प्रसङ्गेन फलेनैवेह युज्यते ॥ १३६ ॥

उस शय्याका आधा हिसा उसके पत्नीके अधिकारमें रहता है; इसही प्रकार प्रसङ्गसे राजा बहुत अल्प कर्मका फलभागी होता है ॥ १३६ ॥

एवमेवोपभोगेषु भोजनाच्छादनेषु च ।
गुणेषु परिमेयेषु निग्रहानुग्रहौ प्रति ॥ १३७ ॥

ऐसे ही वह राजा उपभोगे, भोजन, आच्छादन, अन्य परिमित विषयोंके सेवन और निग्रह तथा अनुग्रह विषयोंमें ॥ १३७ ॥

परतन्त्रः सदा राजा स्वल्पे सोऽपि प्रसज्जते ।
संधिविग्रहयोगे च कुतो राज्ञः स्वतन्त्रता ॥ १३८ ॥

सदा परतन्त्र है, उसे स्वल्पविषयमें भी पूर्ण रीतिसे स्वतन्त्रता नहीं है, तोभी वह उसमें आसक्त रहता है; सन्धि और विग्रहके सम्बन्धमें भी राजाको स्वतन्त्रता कहां प्राप्त है ? ॥ १३८ ॥

स्त्रीषु क्रीडाविहारेषु नित्यमस्यास्वतन्त्रता ।
मन्त्रे चामात्यसमितौ कुत एव स्वतन्त्रता ॥ १३९ ॥

स्त्री–सहवास, क्रीडा और विहारकालमें भी राजाकी सदा ही परतन्त्रता रहती है; विचारकार्य और मन्त्रिसमाजमें उसकी स्वतन्त्रता कहां है ? ॥ १३९ ॥

यदा त्वाज्ञापयत्यन्यांस्तदास्योक्ता स्वतन्त्रता ।
अवशः कार्यते तत्र तस्मिंस्तस्मिन्गुणे स्थितः ॥ १४० ॥

जिस समय वह सबके ऊपर आज्ञा प्रचार करता है, तब उसको स्वाधीनता होती है; परन्तु उस समयमें भी अनेक बातोंमें सलाह देनेवाले मन्त्रि राजसिंहासन पर बैठे हुए राजाको अवश कर देते हैं ॥ १४० ॥

स्वप्तुकामो न लभते स्वप्तुं कार्यार्थिभिर्जनैः ।
शयने चाप्यनुज्ञातः सुप्त उत्थाप्यतेऽवशः ॥ १४१ ॥

राजाके शयन करनेकी इच्छा करने पर कार्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते; सोनेमें अनुज्ञात अथवा सोते हुए भी कार्यवशसे उसे उठना पडता है, इसलिये वह उस विषयमें भी स्वाधीन नहीं है ॥ १४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्नाह्यालभ पिब प्राश जुहुध्यग्नीन्यजेति च ।
वदस्व शृणु चापीति विवशाः कार्यते परैः ॥ १४२ ॥

स्नान करिये, लीजिये, खाइये, अग्निमें होम करिये, पूजा करिये, आज्ञा दीजिये, सुनिये, इत्यादि वचनोंसे दूसरे लोग राजाको वैसा करनेके लिये विवश करते हैं ॥ १४२ ॥

अभिगम्याभिगम्यैनं याचन्ते सततं नराः ।
न चाप्युत्सहते दातुं वित्तरक्षी महाजनात् ॥ १४३ ॥

याचक मनुष्य सदा राजाके निकट आके धन मांगते हैं; राजा वित्तरक्षक होके महाजनोंको दान करनेमें उत्साहवान् नहीं होता, वह अपने धनको लोगोंसे सुरक्षित रखना चाहता है ॥ १४३ ॥

दाने कोशक्षयो ह्यस्य वैरं चास्य प्रयच्छतः ।
क्षणेनास्योपवर्तन्ते दोषा वैराग्यकारकाः ॥ १४४ ॥

दान करनेसे उसका खजीना खाली होता है, न करनेसे लोग उसके शत्रु हो जाते हैं; उसके सामने क्षण भरमें राज–काजसे वैराग्यकारक दोष उपस्थित होते हैं ॥ १४४ ॥

प्राज्ञाञ्शूरांस्तथैवाढ्यानेकस्थानेऽपि शङ्कते ।
भयमप्यभये राज्ञो यैश्च नित्यमुपास्यते ॥ १४५ ॥

बुद्धिमान्, शूर और वित्तसम्पन्न लोगोंके एक स्थानमें रहनेसे राजा लोगोंकी शंका करता है । जहां भयका कोई कारण नहीं है, वहां भी राजाको भय होता है; जो लोग सदा राजाकी उपासना किया करते हैं, उनसे भयकी सम्भावना न रहने पर भी राजाको भीत होना पडता है ॥ १४५ ॥

यदा चैते प्रदुष्यन्ति राजन्त राजन्ये कीर्तिता मया ।
तदैवास्य भयं तेभ्यो जायते पश्य यादृशम् ॥ १४६ ॥

हे राजन् ! मैंने जिनका विषय कहा है, वे लोग राजाकी अपने प्रति आशंका देखकर उसके प्रति दुर्भाव रखने लगते हैं; कारण आश्रित लोगोंसे राजाको जैसा भय उपस्थित होता है, उसे तुम स्वयं देखो ॥ १४६ ॥

सर्वः स्वे स्वे गृहे राजा सर्वः स्वे स्वे गृहे गृही ।
निग्रहानुग्रहौ कुर्वंस्तुल्यो जनक राजभिः ॥ १४७ ॥

हे जनकराज ! अपने अपने घरोंमें सभी राजा हैं, सभी अपने घरके मालिक हैं; सभी अपने घरोंमें निग्रहानुग्रह करते हुए, राजाओंके समान ही हुआ करते हैं ॥ १४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुत्रा दारास्तथैवात्मा कोशो मित्राणि संचयः ।
परैः साधारणा ह्येते तैस्तैरेवास्य हेतुभिः ॥ १४८ ॥

राजाको स्त्री, पुत्र, शरीर, खजीना, मित्र और धनसञ्चय, आदिमें, दूसरोंको स्त्री–पुत्र आदि वस्तुओंमें जैसी ममता रहती है, उसे भी उनके सम्बधमें वैसी ही प्रीति हुआ करती है। इसलिये दूसरे लोग भी उसके समान ही हैं ॥ १४८ ॥

हतो देशः पुरं दग्धं प्रधानः कुञ्जरो मृतः ।
लोकसाधारणेष्वेषु मिथ्याज्ञानेन तप्यते ॥ १४९ ॥

देश नष्ट होने, नगरके जलने, प्रधान हाथीके मरने, इत्यादि लोकके साधारण विषयोंमें राजा मिथ्याज्ञानसे केवल अपनी ही हानि समझकर तापित होता है ॥ १४९ ॥

अमुक्तो मानसैर्दुःखैरिच्छाद्वेषप्रियोद्भवैः ।
शिरोरोगादिभी रोगैस्तथैव विनिपातिभिः ॥ १५० ॥

इच्छा, द्वेष और भयसे उत्पन्न हुए मानसिक दुःख तथा सिरके रोग आदि शारीरिक पीडाओंसे साधारण पुरुषोंकी भांति राजा भी कदाचित् मुक्त नहीं होता ॥ १५० ॥

द्वंद्वैस्तैस्तैरुपहतः सर्वतः परिशङ्कितः ।
बहुप्रत्यर्थिकं राज्यमुपास्ते गणयन्निशाः ॥ १५१ ॥

सुख–दुःख आदि नाना प्रकारके द्वन्द्वोंसे उपहत और सब तरहसे शङ्कित होकर रात्रि बिताते हुए वह अनेक विघ्नोंसे युक्त राज्यभोग किया करता है ॥ १५१ ॥

तदल्पसुखमत्यर्थं बहुदुःखमसारवत् ।
को राज्यमभिपद्येत प्राप्य चोपशमं लभेत् ॥ १५२ ॥

इसलिये कौन पुरुष अल्प सुखकर, अत्यन्त दुःखजनक और सारहीन राज्यको ग्रहण करेगा ? और पाके शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है ? ॥ १५२ ॥

ममेदमिति यच्चेदं पुरं राष्ट्रं च मन्यसे ।
बलं कोशममात्यांश्च कस्यैतानि न वा नृप ॥ १५३ ॥

हे राजन् ! " यह मेरा नगर है, मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा खजीना है, हमारा ही सब है " तुम ऐसा ही ज्ञान किया करते हो, परन्तु ये सब विषय किसके है और किसके नहीं हैं ? ॥ १५३ ॥

मित्रामात्यं पुरं राष्ट्रं दण्डः कोशो महीपतिः ।
सप्ताङ्गश्चक्रसंघातो राज्यमित्युच्यते नृप ॥ १५४ ॥

हे नरेश ! मित्र, मंत्री, पुर, राज्य, दण्ड, कोष और राजा– इन सब सात अङ्गोंसे युक्त समुदायको राज्य कहा जाता है ॥ १५४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सप्ताङ्गस्यास्य राज्यस्य त्रिदण्डस्येव तिष्ठतः ।
अन्योन्यगुणयुक्तस्य कः केन गुणतोऽधिकः ॥ १५५ ॥

आपके हाथमें स्थित यह सप्ताङ्गयुक्त राज्य, मेरे हाथमें स्थित त्रिदण्डके समान है। दोनों परस्पर उत्तम गुणोंसे युक्त हैं; फिर इनमेंसे कौन किससे अधिक गुणवान् हो सकता है ? ॥ १५५ ॥

तेषु तेषु हि कालेषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।
येन यत्सिध्यते कार्यं तत्प्राधान्याय कल्पते ॥ १५६ ॥

राज्यके जो सात अङ्ग हैं, उनमें सभी समयपर अपना वैशिष्ट्य दिखाते हैं; उसके उस समय उस ही उस अङ्गको उत्कृष्ट होते देखा जाता है, जिसके सहारे जो कार्य सिद्ध होता है, उसहीमें उसकी प्रधानता हुआ करती है ॥ १५६ ॥

सप्ताङ्गश्चापि संघातस्त्रयश्चान्ये नृपोत्तम ।
संभूय दशवर्गोऽयं भुङ्क्ते राज्यं हि राजवत् ॥ १५७ ॥

हे नृपोत्तम ! सात अङ्गोंका समुदाय और तीन अन्य शक्तियां मिलकर राज्यके दस वर्ग हैं; ये दसों वर्ग मिलके राजाकी भांति राज्यका भोग करते हैं ॥ १५७ ॥

यश्च राजा महोत्साहः क्षत्रधर्मरतो भवेत् ।
स तुष्येदंशभागेन ततस्त्वन्यो दशावरैः ॥ १५८ ॥

जो राजा महान् उत्साह युक्त है, और क्षात्रधर्ममें अनुरक्त रहता है, वह प्रजाकी आयका करके रूपमें दसवां भाग लाभ होनेसे प्रसन्न होता है; दूसरे राजा दसवें भागसे कम लेकर भी सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥ १५८ ॥

नास्त्यसाधारणो राजा नास्ति राज्यमराजकम् ।
राज्येऽसति कुतो धर्मो धर्मेऽसति कुतः परम् ॥ १५९ ॥

असाधारण राजा कोई भी नहीं है, और अराजक राज्य भी नहीं है; राज्य न रहनेसे धर्म कैसे रह सकता है और विना धर्मके मोक्षसुख कैसे मिल सकता है ? ॥ १५९ ॥

योऽप्यत्र परमो धर्मः पवित्रं राजराज्ययोः ।
पृथिवी दक्षिणा यस्य सोऽश्वमेधो न विद्यते ॥ १६० ॥

जो कुछ पवित्र और परम धर्म है, वह राजा तथा राज्यका ही धर्म है; जो दक्षिणामें पृथ्वीका दान करता है, वह राजा अश्वमेध यज्ञके फलका भागी होता है ॥ १६० ॥

साहमेतानि कर्माणि राजदुःखानि मैथिल ।
समर्था शतशो वक्तुमथ वापि सहस्रशः ॥ १६१ ॥

हे मिथिलाराज ! मैं राजाके इन सैकडों और हजारों सब दुःखकर कर्मोंको कह सकती हूं ! ॥ १६१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वदेहे नाभिषङ्गो मे कुतः परपरिग्रहे ।
न मामेवंविधां मुक्तामीदृशं वक्तुमर्हसि ॥ १६२ ॥

जब कि मेरी निज देहमें भी आसक्ति नहीं है, तब पराया परिग्रह किस प्रकारसे सम्भव होगा ? जब कि मैं इस प्रकार योगिनी हुई हूं, तब मुझे तुम्हारे शरीर सङ्गके कारण ऐसा वचन कहना उचित नहीं हुआ है ॥ १६२ ॥

ननु नाम त्वया मोक्षः कृत्स्नः पञ्चशिखाच्छ्रुतः ।
सोपायः सोपनिषदः सोपासङ्गः सनिश्चयः ॥ १६३ ॥

हे राजन् ! तुमने पञ्चशिखके मुखसे समस्त मोक्षधर्म सुना है– निदिध्यासन, श्रवण, मनन, यम, नियमादि योगाङ्ग ओर परब्रह्ममें एकाग्र भावको जाना है, ॥ १६३ ॥

तस्य ते मुक्तसङ्गस्य पाशानाक्रम्य तिष्ठतः ।
छत्त्रादिषु विशेषेषु कथं सङ्गः पुनर्नृप ॥ १६४ ॥

इससे जब तुम काम–क्रोध आदिको पराजय करके मुक्तसङ्ग हो रहे हो, तब तुम्हें, छत्र चंवर आदि राजचिन्ह धारण करनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १६४ ॥

श्रुतं ते न श्रुतं मन्ये मिथ्या वापि श्रुतं श्रुतम् ।
अथ वा श्रुतसंकाशं श्रुतमन्यच्छ्रुतं त्वया ॥ १६५ ॥

मुझे बोध होता है, तुमने पञ्चशिखाचार्यसे शास्त्र सुनके भी सुना नहीं है, वा सुनकर भी उसे मिथ्या कर दिया है; किंवा शास्त्रसदृश शास्त्राभास सुना होगा ॥ १६५ ॥

अथापीमासु संज्ञासु लौकिकीषु प्रतिष्ठसि ।
अभिषङ्गावरोधाभ्यां बद्धस्त्वं प्राकृतो यथा ॥ १६६ ॥

यदि तुम नाममात्र इस लौकिक नामोंमें वा सम्पत्ति लाभमें प्रतिष्ठित हुआ करते हो, तो प्राकृत पुरुषोंकी भांति तुम भी सर्वसङ्ग अवरोधके जरिये बद्ध हुए हो ॥ १६६ ॥

सत्त्वेनानुप्रवेशो हि योऽयं त्वयि कृतो मया ।
किं तवापकृतं तत्र यदि मुक्तोऽसि सर्वतः ॥ १६७ ॥

मैंने जो बुद्धिबलके जरिये तुममें प्रवेश किया, यदि तुम सब भांतिसे मुक्त हुए हो, तो मैंने उस प्रकारसे प्रवेश करके तुम्हारी क्या बुराई की है ? ॥ १६७ ॥

नियमो ह्येष धर्मेषु यतीनां शून्यवासिता ।
शून्यमावासयन्त्या च मया किं कस्य दूषितम् ॥ १६८ ॥

इन सभी धर्मोंमें यह नियम है कि, यतियोंको सूने स्थानमें ही निवास करना चाहिये । इसलिये मैं तुम्हारे बोधशून्य बुद्धिसत्वमें प्रवेश करनेसे किसके समीप दोषी हुई हूं ? ॥१६८॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न पाणिभ्यां न बाहुभ्यां पादोरुभ्यां न चानघ ।
न गात्रावयवैरन्यैः स्पृशापि त्वा नराधिप ॥ १६९ ॥

हे पापरहित नरनाथ ! मैंने तुम्हें दोनों हाथ, चरण, ऊरु अथवा दूसरे किसी अवयवके जरिये स्पर्श नहीं किया है ॥ १६९ ॥

कुले महति जातेन ह्रीमता दीर्घदर्शिना ।
नैतत्सदसि वक्तव्यं सद्वासद्वा मिथः कृतम् ॥ १७० ॥

तुम महान् कुलमें उत्पन्न हुए, लज्जाशील और दीर्घदर्शी हो, इसलिये हम लोगोंने परस्पर जो कुछ सदसत् व्यवहार किया है, उसे इस सभाके बीच तुम्हें कहना उचित नहीं है ॥१७०॥

ब्राह्मणा गुरवश्चेमे तथामात्या गुरूत्तमाः ।
त्वं चाथ गुरुरप्येषामेवमन्योन्यगौरवम् ॥ १७१ ॥

यहां ये सब ब्राह्मण लोग गुरु और माननीय हैं, अत्यंत श्रेष्ठ अमात्य भी विद्यमान हैं; तुम भी सबके माननीय हो, इसलिये परस्परके विषयमें परस्परका इस प्रकार गौरव है ॥ १७१ ॥

तदेवमनुसंदृश्य वाच्यावाच्यं परीक्षता ।
स्त्रीपुंसोः समवायोऽयं त्वया वाच्यो न संसदि ॥ १७२ ॥

इसलिये वक्तव्य वा अवक्तव्य विषयका विशेष रीतिसे विचार करना आवश्यक है; स्त्री-पुरुषके सहवास विषयकी सभामें चर्चा करनी नहीं चाहिये ॥ १७२ ॥

यथा पुष्करपर्णस्थं जलं तत्पर्णसंस्थितम् ।
तिष्ठत्यस्पृशती तद्वत्त्वयि वत्स्यामि मैथिल ॥ १७३ ॥

हे मिथिलाराज ! जैसे कमलके पत्रमें स्थित जल उसे स्पर्श नहीं करके स्थित रहता है, वैसे ही मैं भी तुम्हें स्पर्श न करके तुममें निवास करूंगी ॥ १७३ ॥

यदि चाप्यस्पृशन्त्या मे स्पर्शं जानासि कंचन ।
ज्ञानं कृतमबीजं ते कथं तेनेह भिक्षुणा ॥ १७४ ॥

मेरे स्पर्श न करनेपर भी यदि तुम स्पर्शज्ञान किया करते हो, तो इन भिक्षुओंके जरिये तुम्हारा बीजहीन ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? ॥ १७४ ॥

स गार्हस्थ्याच्च्युतश्च त्वं मोक्षं नावाप्य दुर्विदम् ।
उभयोरन्तराले च वर्तसे मोक्षवातिकः ॥ १७५ ॥

तुम गार्हस्थ्य धर्मसे च्युत होगये और दुर्ज्ञेय मोक्ष धर्मको भी नहीं पासके; दोनोंके बीचमें पडके मोक्षकी वार्त्तामात्रके अभिज्ञ होरहे हो, वास्तवमें मुक्त नहीं हो ॥ १७५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हि मुक्तस्य मुक्तेन ज्ञस्यैकत्वपृथक्त्वयोः ।
भावाभावसमायोगे जायते वर्णसंकरः ॥ १७६ ॥

मुक्त पुरुषका मुक्त ज्ञानीके सहित, एकत्वका पृथक्त्वके साथ और चिदात्माका प्रकृतिके साथ संयोग होनेपर अर्थात् आत्मा और प्रकृतिके संयोगसे वर्णसङ्कर नहीं होता ॥ १७६ ॥

वर्णाश्रमपृथक्त्वे च दृष्टार्थस्यापृथक्त्विनः ।
नान्यदन्यदिति ज्ञात्वा नान्यदन्यत्प्रवर्तते ॥ १७७ ॥

वर्ण और आश्रमोंसे पृथक् रूपसे निर्दिष्ट होनेपर जो पुरुष उसको अपृथक् भावसे देखता है, उसके पक्षमें शरीर भिन्न है, और आत्मा पृथक् है; जब मैं इसे प्रत्यक्ष देखती हूं, तब मेरे बुद्धिसत्वके अन्यत्र वर्त्तमान रहनेकी क्या सम्भावना है ॥ १७७ ॥

पाणौ कुण्डं तथा कुण्डे पयः पयसि मक्षिकाः ।
आश्रिताश्रययोगेन पृथक्त्वेनाश्रया वयम् ॥ १७८ ॥

करतलके एक स्थलमें यदि कोई पात्र हो, उस पात्रमें दूध और दूधमें मक्खी रहे, तो ये तीनों परस्पर पृथक् होते हुए भी आश्रित–आश्रयके भाव संयोगसे परस्पर आश्रित हो एक हुए हैं; वैसेही हम हैं ॥ १७८ ॥

न तु कुण्डे पयोभावः पयश्चापि न मक्षिकाः ।
स्वयमेवाश्रयन्त्येते भावा न तु पराश्रयम् ॥ १७९ ॥

परन्तु पात्रमें दुग्धभाव नहीं रहता, दूध भी मक्खी नहीं है; इसलिये ये सारे आश्रित पदार्थ स्वयं ही अपनेसे भिन्न आधारको प्राप्त होते हैं ॥ १७९ ॥

पृथक्त्वादाश्रमाणां च वर्णान्यत्वे तथैव च ।
परस्परपृथक्त्वाच्च कथं ते वर्णसंकरः ॥ १८० ॥

आश्रमोंकी विभिन्नता और वर्णोंकी स्वतन्त्रताके हेतु तथा परस्पर पृथक्त्वके सबबसे तुम्हारा कहा हुआ वर्णसङ्कर किस प्रकार होसकता है ? ॥ १८० ॥

नास्मि वर्णोत्तमा जात्या न वैश्या नावरा तथा ।
तव राजन्सवर्णास्मि शुद्धयोनिरविप्लुता ॥ १८१ ॥

मैं जातिके अनुसार ब्राह्मणी नहीं हूं, और वैश्या अथवा शूद्रा भी नहीं हूं। हे राजन् ! मैं तुम्हारी सवर्णा क्षत्रिया हूं, शुद्ध योनिमें जन्म ग्रहण किया है, और अपने चरित्रको अपवित्र नहीं किया है ॥ १८१ ॥

प्रधानो नाम राजर्षिर्ज्यक्तं ते श्रोत्रमागतः ।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम् ॥ १८२ ॥

बोध होता है, प्रधान नामक राजर्षिका नाम तुमने सुना होगा; मैं उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है ॥ १८२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

द्रोणश्च शतशृङ्गश्च वक्रद्वारश्च पर्वतः ।
मम सत्रेषु पूर्वेषां चिता मघवता सह ॥ १८३ ॥

मेरे पूर्व पुरुषोंके यज्ञके समयमें द्रोण, शतशृङ्ग और वक्रद्वार नामक तीनों पर्वत देवराजके जरिये इष्टका स्थानमें निवेशित हुए थे ॥ १८३ ॥

साहं तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे ।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम् ॥ १८४ ॥

मैंने वैसे महावंशमें जन्म लेकर अपने समान पति न पाया, तब मोक्ष धर्मकी शिक्षा लेके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अवलम्बन करती हुई संन्यास धर्म अवलम्बन करके अकेली विचरती हूं ॥ १८४ ॥

नास्मि सत्रप्रतिच्छन्ना न परस्वाभिमानिनी ।
न धर्मसंकरकरी स्वधर्मेऽस्मि धृतव्रता ॥ १८५ ॥
नास्थिरा स्वप्रतिज्ञायां नासमीक्ष्यप्रवादिनी ।
नासमीक्ष्यागता चाहं त्वंत्सकाशं जनाधिप ॥ १८६ ॥

मैं कपटसंन्यासिनी, परस्व हरनेवाली, अभिमानिनी अथवा धर्मका संकर करनेवाली नहीं हूं; मैंने केवल निज धर्ममें रहके ब्रह्मचर्य व्रतका दृढतापूर्वक धारण किया है । हे प्रजानाथ ! मैं अपनी प्रतिज्ञा विषयमें अस्थिर नहीं हूं, विना विचारे कोई बात नहीं कहती हूं और विवेचना न करके भी तुम्हारे निकट नहीं आई हूं ॥ १८५-१८६ ॥

मोक्षे ते भावितां बुद्धिं श्रुत्वाहं कुशलैषिणी ।
तव मोक्षस्य चाप्यस्य जिज्ञासार्थमिहागता ॥ १८७ ॥

मैंने तुम्हारे कुशलकी अभिलाषिणी होकर और यह सुनके कि मोक्षधर्ममें तुम्हारी बुद्धि विनिविष्ट हुई है, तुम्हारे मोक्षधर्मका मर्म जाननेके लिये इस स्थानमें आई हूं ॥ १८७ ॥

न वर्गस्था ब्रवीम्येतत्स्वपक्षपरपक्षयोः ।
मुक्तो न मुच्यते यश्च शान्तो यश्च न शाम्यति ॥ १८८ ॥

मैं स्वपक्ष वा परपक्षके बीच निज पक्ष अवलम्बन करके यह वचन नहीं कहती हूं, वरन तुम्हारे ही हितके निमित्त कहती हूं । जो पुरुष मल्लकी भांति अपनी जयके लिये वादश्रम नहीं करता अथवा जो शान्तिस्वरूप परब्रह्ममें उपशान्त होता है, वही मुक्त पुरुष है, नहीं तो मुक्त नहीं होता है ॥ १८८ ॥

यथा शून्ये पुरागारे भिक्षुरेकां निशां वसेत् ।
तथा हि त्वच्छरीरेऽस्मिन्निमां वत्स्यामि शर्वरीम् ॥ १८९ ॥

संन्यासी जैसे नरसे सूने स्थानमें एक रात्रि निवास करता है, वैसे ही मैं तुम्हारे इस शरीरमें एक रात्रि वास करूंगी ॥ १८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहमासनदानेन वागातिथ्येन चार्चिता ।
सुप्ता सुशरणा प्रीता श्वो गमिष्यामि मैथिल ॥ १९० ॥

हे मिथिलाराज ! तुमने मुझे आसन दिया; मानदायक वचन और आतिथ्यके जरिये मेरी पूजा की है, इसलिये मैं तुम्हारे शरीररूपी सुन्दर गृहमें शयन कर प्रसन्न होके कल चली जाऊंगी ॥ १९० ॥

इत्येतानि स वाक्यानि हेतुमन्त्यर्थवन्ति च ।
श्रुत्वा नाधिजगौ राजा किंचिदन्यदतः परम् ॥ १९१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥ १११।२ ॥

राजा जनक यह सब युक्तियुक्त और प्रयोजन सम्पन्न वचन सुनके उत्तर देनेमें असमर्थ हुए अर्थात् गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करनेकी युक्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है, संन्यासधर्म ही कल्याणकारी है, इसलिये सुलभाके मतको ही सिद्धान्त वाक्य जाना ॥ १९१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ ३०८ ॥ १११।२ ॥

: ३०९ :

युधिष्ठिर उवाच—

कथं निर्वेदमापन्नः शुको वैयासकिः पुरा ।
एतदिच्छामि कौरव्य श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे कुरुकुल–धुरन्धर पितामह ! पहले समयमें व्यासपुत्र शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य लाभ किया था ? इसे सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयको सुननेके लिये मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

प्राकृतेन सुवृत्तेन चरन्तमकुतोभयम् ।
अध्याप्य कृत्स्नं स्वाध्यायमन्वशाद्वै पिता सुतम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले– पिता वेदव्यासने निजपुत्र शुकदेवको प्राकृत चरित्रसे निर्भयचित्त होकर विचरते हुए देखकर उसे समस्त स्वाध्याय अर्थात् पितृ पितामह परम्परासे परिगृहीत वेदमार्ग अध्ययन कराके उपदेश दिया था ॥ २ ॥

धर्मं पुत्र निषेवस्व सुतीक्ष्णौ हि हिमातपौ ।
क्षुत्पिपासे च वायुं च जय नित्यं जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥

हे पुत्र ! तुम धर्मकी सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर प्रचण्ड सर्दी, गर्मी, भूख–प्यासको सहन करते हुए प्राण वायुपर सदा जय प्राप्त करो ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Samanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सत्यमार्जवमक्रोधमनसूयां दमं तपः ।
अहिंसां चानृशंस्यं च विधिवत्परिपालय ॥ ४ ॥

सत्य, सरलता, क्रोधहीनता, अनसूया, दम, तपस्या, अहिंसा और दयाका विधिपूर्वक परिपालन करो ॥ ४ ॥

सत्ये तिष्ठ रतो धर्मे हित्वा सर्वमनार्जवम् ।
देवतातिथिशेषेण यात्रां प्राणस्य संश्रय ॥ ५ ॥

अनार्जव विषयोंको त्यागके सत्यधर्ममें रत रहो और देवताओं तथा अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके सहारे जीवनयात्रा निबाहो, भोजनके समयमें स्वादिष्ट वा अस्वादु वस्तुकी विवेचना मत करो ॥ ५ ॥

फेनमात्रोपमे देहे जीवे शकुनिवत्स्थिते ।
अनित्ये प्रियसंवासे कथं स्वपिषि पुत्रक ॥ ६ ॥

हे तात ! जब कि शरीर फेनके समान क्षणभंगुर है और जीव पक्षीके समान इसमें निवास किया करता है, जब कि प्रिय जनोंका सहवास अनित्य होता है, तब तुम क्यों सोते रहे हो ? पुरुषार्थको साधनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते ? ॥ ६ ॥

अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु ।
अन्तरं लिप्समानेषु बालस्त्वं नावबुध्यसे ॥ ७ ॥

काम आदि शत्रु सदा सावधान, जागृत और नित्य उद्योगयुक्त होके छिद्र खोज रहे हैं; तुम बालक हो, इसलिये उसे नहीं समझ सकते हो ॥ ७ ॥

गण्यमानेषु वर्षेषु क्षीयमाणे तथायुषि ।
जीविते शिष्यमाणे च किमुत्थाय न धावसि ॥ ८ ॥

सब वर्ष गिने जाते हैं, परमायु क्षीण और जीवनकालको बीतते देखकर तुम क्यों नहीं दाडते हो ? अर्थात् देवता और गुरुके शरणागत होते हो ? ॥ ८ ॥

ऐहलौकिकमीहन्ते मांसशोणितवर्धनम् ।
पारलौकिककार्येषु प्रसुप्ता भृशनास्तिकाः ॥ ९ ॥

अत्यन्त नास्तिक लोग इस लोकमें मांस और रुधिरकी वृद्धिकी कामना करते हैं, परन्तु वे पारलौकिक कार्योंमें प्रसुप्त हुआ करते हैं ॥ ९ ॥

धर्माय येऽभ्यसूयन्ति बुद्धिमोहान्विता नराः ।
अपथा गच्छतां तेषामनुयातापि पीडयते ॥ १० ॥

जो सब मुढबुद्धि मनुष्य धर्मकी असूया करते हैं, उन कुपथगामी लोगोंका जो लोग अनुसरण किया करते हैं, वे भी पीडित होते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये तु तुष्टाः सनियताः सत्यागमपरायणाः ।
धर्म्यं पन्थानमारूढास्तानुपास्स्व च पृच्छ च ॥ ११ ॥

और जिन सब महाभाग महाप्राण सदा सन्तुष्ट श्रुतिपरायण मनुष्योंने धर्मपथमें आरोहण किया है, उन्हींकी उपासना करो और उन्हींसे धर्मजिज्ञासा करो ॥ ११ ॥

उपधार्य मतं तेषां वृद्धानां धर्मदर्शिनाम् ।
नियच्छ परया बुद्ध्या चित्तमुत्पथगामि वै ॥ १२ ॥

उन धर्मदर्शी मनीषियोंके मतको निश्चय करके उत्पथगामी चित्तको परम बुद्धिके जरिये नियमित करो ॥ १२ ॥

अद्यकालिकया बुद्ध्या दूरे श्व इति निर्भयाः ।
सर्वभक्षा न पश्यन्ति कर्मभूमिं विचेतसः ॥ १३ ॥

चैतन्यरहित सर्वभक्षी लोग इस समय दूसरा दिन दूर है, ऐसा समझके निर्भय होकर कर्मभूमिके महत्त्वको अवलोकन नहीं करते हैं ॥ १३ ॥

धर्मनिःश्रेणिमास्थाय किंचित्किंचित्समारुह ।
कोशकारवदात्मानं वेष्टयन्नावबुध्यसे ॥ १४ ॥

तुम धर्मस्वरूप सोपानका अवलम्बन करके धीरे धीरे उसपर आरूढ होते जाओ; रेशमके किडेकी भांति तुम आत्माको वासनाओंमें बांधके कुछ भी नहीं जान रहे हो ॥ १४ ॥

नास्तिकं भिन्नमर्यादं कूलपातमिवास्थिरम् ।
वामतः कुरु विस्रब्धो नरं वेणुमिवोद्धतम् ॥ १५ ॥

नदीके तटको तोडनेवाले प्रवाहकी भांति धर्मकी मर्यादा तोडनेवाले नास्तिकको उखाडे हुए बांसकी तरह विना किसी हिचकके त्याग दो ॥ १५ ॥

कामं क्रोधं च मृत्युं च पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर ॥ १६ ॥

धैर्यमयी नौकाको अवलम्बन करके काम, क्रोध, मृत्यु और पञ्च इन्द्रिय जलसे युक्त विषयासक्तिरूपी नदीको पार करो और जन्म–मृत्यु रूपी दुर्गम संकटसे उत्तीर्ण हो जाओ ॥ १६ ॥

मृत्युनाभ्याहते लोके जरया परिपीडिते ।
अमोघासु पतन्तीषु धर्मयानेन संतर ॥ १७ ॥

जब कि संसार जराके जरिये आहत और मृत्युसें परिपीडित होरहा है, जब परमायुको हरती हुई रातें सफल होके बीती जाती हैं, तब धर्मस्वरूप नौकासे भवसागरसे पार हो जाओ ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तिष्ठन्तं च शयानं च मृत्युरन्वेषते यदा ।
निर्वृतिं लभते कस्मादकस्मान्मृत्युनाशितः ॥ १८ ॥

जब मृत्यु सुखसे खडे या सोये हुए मनुष्यको खोज रही है, तब अकस्मात् मृत्युग्रस्त होकर मनुष्य किस प्रकार निवृत्तिलाभ कर सकता है ? ॥ १८ ॥

संचिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ १९ ॥

मनुष्यको अर्थसञ्चय करके काम भोगसे परितृप्त न होते होते, मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है, जैसे वाघिन भेडको ग्रहण करके चल देती है ॥ १९ ॥

क्रमशः संचितशिखो धर्मबुद्धिमयो महान् ।
अन्धकारे प्रवेष्टव्ये दीपो यत्नेन धार्यताम् ॥ २० ॥

तुम्हें संसाररूपी अन्धकारमें प्रवेश करना होगा, इसलिये धर्मबुद्धिमय महान् दीपशिखाको क्रमसे उज्वल करके यत्नपूर्वक उसे धारण करो ॥ २० ॥

संपतन्देहजालानि कदाचिदिह मानुषे ।
ब्राह्मण्यं लभते जन्तुस्तत्पुत्र परिपालय ॥ २१ ॥

हे पुत्र ! अनेक शरीर धारण करके तब इस मनुष्यशरीरमें जीव कदाचित् ब्राह्मणत्व लाभका तन पाता है; तुमने वह ब्राह्मणत्व लाभ किया है, इसलिये उसे परिपालन करो ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं न कामार्थाय जायते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्य त्वनुपमं सुखम् ॥ २२ ॥

यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान ब्राह्मण शरीर कामभोगके निमित्त नहीं उत्पन्न होता, यह इस लोकमें तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और परलोकमें परम श्रेष्ठ सुखसम्भोग करनेके निमित्त उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥

ब्राह्मण्यं बहुभिरवाप्यते तपोभिस्तल्लब्ध्वा न परिपणेन हेडितव्यम् ।
स्वाध्याये तपसि दमे च नित्ययुक्तः क्षेमार्थी कुशलपरः सदा यतस्व ॥ २३ ॥

बहुत तपस्यासे ब्राह्मणजन्म मिलता है, इसलिये उसे प्राप्त कर रति-परायण होके अवहेलना करना उचित नहीं है । पितर-पितामह परम्परासे प्रचलित वेदपाठ, तपस्या और सदा इन्द्रिय-निग्रहमें नियुक्त रहके मोक्षार्थी और कुशलपरायण होके तुम्हें उक्त विषयोंमें सर्वदा यत्नवान् होना चाहिये ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अव्यक्तप्रकृतिरयं कलाशरीरः सूक्ष्मात्मा क्षणत्रुटिशो निमेषरोमा ।
ऋत्वास्यः समबलशुक्लकृष्णनेत्रो मांसाङ्गो द्रवति वयोहयो नराणाम् ॥२४॥

मनुष्योंके यह अवस्थारूपी घोडे, अव्यक्त प्रकृति—स्वभाव, पूर्वोक्त कलासमूहरूप शरीर युक्त, सूक्ष्म स्वभावसम्पन्न, क्षण, त्रुटि और निमेषरूपी रोम, ऋतुरूपी मुख, समान बलवाले कृष्ण तथा शुक्ल पक्षरूपी दो नेत्र संयुक्त और मासरूपी अङ्गविशिष्ट होकर निरन्तर दौड रहे हैं ॥ २४ ॥

तं दृष्ट्वा प्रसृतमजस्रमुग्रवेगं गच्छन्तं सततमिहाव्यपेक्षमाणम् ।
चक्षुस्ते यदि न परप्रणेतृनेयं धर्मे ते भवतु मनः परं निशम्य ॥ २५ ॥

इन अवस्थारूपी घोडोंको सदा प्रचण्ड वेगसे अदृश्यभावसे दौडते हुए देखकर, यदि तुम्हारी दृष्टि अन्धेके समान दूसरेके द्वारा चलानेपर चलनेवाली न हों तो तुम्हारा मन धर्म विषयमें रत होना चाहिये; तुम दूसरे धर्मात्माओंपर भी दृष्टि डालो ॥ २५ ॥

येऽमी तु प्रचलितधर्मकामवृत्ताः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगाः ।
क्लिश्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमधर्मवासनाभिः ॥ २६ ॥

इस लोकमें जो लोग प्रचलित धर्मके विषयमें स्वेच्छाचार करते हैं और सदा डाह प्रकाश करते हुए अनिष्ट—प्रयोग किया करते हैं, वे लोग यमलोकमें यातना शरीर धारण करके बहुतसी अधर्मक्रियाके जरिये क्लेश भोग करते हैं ॥ २६ ॥

राजा धर्मपरः सदा शुभगोप्ता समीक्ष्य सुकृतिनां दधाति लोकान् ।
बहुविधमपि चरतः प्रदिशति सुखमनुपगतं निरवद्यम् ॥ २७ ॥

राजा सदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधम पालक होके सुकृति लोगोंके पाने योग्य लोगोंको पाता है; वह अनेक प्रकारके शुभ कर्म करके अनेक योनियोंमें अनुगत निरवद्य मोक्षसुख लाभ किया करता है ॥ २७ ॥

श्वानो भीषणायोमुखानि वयांसि वडगृध्रकुलपक्षिणां च संघाः ।
नरां कदने रुधिरपा गुरुवचनानुदमुपरतं विशसन्ति ॥ २८ ॥

जो इस लोकमें माता, पिता और गुरुजनोंके वचनका उल्लंघन करते हैं, उनके शरीर छूटनेपर नरकमें भयङ्कर शरीरवाले कुत्ते, लोह—मुखवाले कौवे, महाबली गिद्ध, तथा दूसरे बहुतेरे पक्षी और रक्त पीनेवाले कीटसमूह उनके शरीरपर आक्रमण करके भक्षण करते हैं ॥ २८ ॥

मर्यादा नियताः स्वयंभुवा य इहेमाः प्रभिनत्ति दशगुणा मनोनुगत्वात् ।
निवसति भृशमसुखं पितृविषयविपिनमवगाह्य स पापः ॥ २९ ॥

स्वयम्भूके जरिये शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर—प्रणिधान, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, व्रताचरण और अपरिग्रह, यह दस प्रकारकी मर्यादा निर्दिष्ट हुई है, जो पापात्मा पुरुष स्वेच्छापूर्वक उस मर्यादाको अतिक्रम करता है, वह यमभवनरूपी वनमें अवगाहन करता हुआ अत्यन्त दुःखसे निवास किया करता है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

×

यो लुब्धः सुभृशं प्रियानृतश्च मनुष्यः सततनिकृतिवञ्चनारतिः स्यात् ।
उपनिधिभिरसुखकृत्स परमनिरयगो भृशमसुखमनुभवति दुष्कृतकर्मा ॥३०॥

जो मनुष्य अत्यंत लोभसे युक्त, असत्यसे प्रेम करनेवाला और मिथ्या वचन कहनेवाला है, और छलसे ठगहारी, चोरी आदि नीच कार्योंमें रत होता है, जो अनेक प्रकारोंसे दूसरोंको दुःख देता है, वह नीच कर्म करनेवाला पापात्मा घोर नरकमें गमन करके बहुत दुःख अनुभव करता है ॥ ३० ॥

उष्णां वैतरणीं महानदीमवगाढोऽसिपत्रवनभिन्नगात्रः ।
परशुवनशयो निपतितो वसति च महानिरये भृशार्तः ॥ ३१ ॥

वह दुष्टात्मा गर्मजलवाली वैतरणी नामी महानदीमें स्नान करते हुए तलवारके पत्तोंसे युक्त वनमें विदीर्ण शरीर होकर, परशुवनमें सुलाया जाता है, फिर अत्यन्त आर्त्त होकर महा नरकमें पडके उसमें वास करता है ॥ ३१ ॥

महापदानि कत्थसे न चाप्यवेक्षसे परम् ।
चिरस्य मृत्युकारिकामनागतां न बुध्यसे ॥ ३२ ॥

" तुम ब्रह्मा आदिके स्थानोंको देखकर मैं धन्य हुआ " इत्यादि बडाई किया करते हो, परन्तु परम पदको नहीं देखते; शीघ्र ही मृत्युकी परिचारिका जरा आवेगी, उसे नहीं समझ सकते हो ॥ ३२ ॥

प्रयास्यतां किमास्यते समुत्थितं महद्भयम् ।
अतिप्रमाथि दारुणं सुखस्य संविधीयताम् ॥ ३३ ॥

इसलिये निश्चिन्त चित्तसे क्यों बैठे हो ? मोक्षमार्गमें प्रस्थान करो, हृदयको मथनेवाला अत्यन्त दारुण महान् भय उत्पन्न हो खडा है, इसलिये सुखमय मोक्षधनके विषयमें यत्न करो ॥ ३३ ॥

पुरा मृतः प्रणीयसे यमस्य मृत्युशासनात् ।
तदन्तिकाय दारुणैः प्रयत्नमार्जवे कुरु ॥ ३४ ॥

मरने पर यमराजके शासन वशसे उनके समीप उपस्थित होगे; इससे अगाडीके दुःखके लिये दारुण कृच्छ्र व्रतके जरिये सरलतासाधनमें प्रयत्न करो ॥ ३४ ॥

पुरा समूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यदुःखवित् ।
तवेह जीवितं यमो न चास्ति तस्य वारकः ॥ ३५ ॥

दुःखोंके न जाननेवाले, निग्रहानुग्रहमें समर्थ यमराज मूल और बान्धवोंके सहित तुम्हारा जीवन हरेगा; कोई उसे निवारण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुरा विवाति मारुतो यमस्य यः पुरःसरः ।
पुरैक एव नीयसे कुरुष्व सांपरायिकम् ॥ ३६ ॥

यमके अगाडी वायु प्रबल वेगसे बहेगा और वह वायु अकेले ही तुम्हें उसके निकट पहुंचावेगा, इसलिये जिससे पारलौकिक हित हो, उसहीका अनुष्ठान करो ॥ ३६ ॥

पुरा सहिक्क एव ते प्रवाति मारुतोऽन्तकः ।
पुरा च विभ्रमन्ति ते दिशो महाभयागमे ॥ ३७ ॥

तुम्हारे प्राणको नष्ट करनेवाली वायु जो पहले बहती थी, इस समय वह कहां है ? और तुम्हें महाभय उपस्थित होनेपर जो सब दिशाएं विभ्रान्त होंगी, वे भी इस समय कहां हैं ? इसलिये पहलेसेही सावधान हो जाओ ॥ ३७ ॥

स्मृतिश्च संनिरुध्यते पुरा तवेह पुत्रक ।
समाकुलस्य गच्छतः समाधिमुत्तमं कुरु ॥ ३८ ॥

हे पुत्र ! जब तुम समाकुल होके गमन करोगे, उस समय तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय निरुद्ध होगी, इसलिये तुम परम उत्कृष्ट समाधिका अवलम्बन करो ॥ ३८ ॥

कृताकृते शुभाशुभे प्रमादकर्मविप्लुते ।
स्मरन्पुरा न तप्यसे निधत्स्व केवलं निधिम् ॥ ३९ ॥

प्रमादसे लिप्त पहलेके कृताकृत, शुभाशुभ कर्मोंको स्मरण करके तुम उनके फलभोगसे संतप्त होनेके पहले ही केवल आश्रयणीय समाधिका अवलम्बन करो ॥ ३९ ॥

पुरा जरा कलेवरं विजर्जरीकरोति ते ।
बलाङ्गरूपहारिणी निधत्स्व केवलं निधिम् ॥ ४० ॥

बल, अङ्ग और रूप इनका नाश करनेवाली जरा प्रथम शरीरको जर्जर करती है । अतः समाधिका अवलंबन करो ॥ ४० ॥

पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसायकैः ।
प्रसह्य जीवितक्षये तपो महत्समाचर ॥ ४१ ॥

रोग जिसके बाग है, वह मृत्यु बलपूर्वक जीवन क्षय होनेके समय तुम्हारे शरीरको भेद करेगी, इसलिये पहलेही तुम महत् तपस्याका अनुष्ठान करो ॥ ४१ ॥

पुरा वृका भयंकरा मनुष्यदेहगोचराः ।
अभिद्रवन्ति सर्वतो यतस्व पुण्यशीलने ॥ ४२ ॥

मनुष्य देह-गोचर भयङ्कर कामादिरूपी भेडिये सब भांतिसे दौडकर आक्रमण कर रहे हैं, इसलिये पुण्यशीलताके लिये यत्न करो ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुरान्धकारमेककोऽनुपश्यसि त्वरस्व वै ।
पुरा हिरण्मयान्नगान्निरीक्षसेऽद्रिमूर्धनि ॥ ४३ ॥

मरनेके समय पहले घोर अन्धकार अवलोकन करोगे और फिर पहाड की शिखरपर हिरण्यमय वृक्षोंको देखोगे, इसलिये पुण्य करनेमें शीघ्रता करो ॥ ४३ ॥

पुरा कुसंगतानि ते सुहृन्मुखाश्च शत्रवः ।
विचालयन्ति दर्शनाद्धटस्व पुत्र यत्परम् ॥ ४४ ॥

कुसङ्ग तथा सुहृत् समान मालूम होनेवाले शत्रुओंके देखनेसे तुम्हारी बुद्धि कर्तव्य मार्गसे विचलित न हो, इसलिये जो परम वस्तु है उसहीकी खोजमें नियुक्त रहो ॥ ४४ ॥

धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चौरतः ।
मृतं च यन्न मुञ्चति समर्जयस्व तद्धनम् ॥ ४५ ॥

जिस धनकी रक्षा करनेमें राजभय नहीं है और चोरोंसे जिसमें भय उपस्थित नहीं होता; जो धन मरे हुए मनुष्यको भी परित्याग नहीं करता, उस ही धर्मरूपी धनका उपार्जन करो ॥ ४५ ॥

न तत्र संविभज्यते स्वकर्मभिः परस्परम् ।
यदेव यस्य यौतकं तदेव तत्र सोऽश्नुते ॥ ४६ ॥

निज कर्मोंके जरिये प्राप्त हुआ जो धन परलोकमें परस्परके निकट विभक्त नहीं होता; जिसका जो यौतक धन है, परलोकमें उसेही वह भोग करता है ॥ ४६ ॥

परत्र येन जीव्यते तदेव पुत्र दीयताम् ।
धनं यदक्षयं ध्रुवं समर्जयस्व तत्स्वयम् ॥ ४७ ॥

हे पुत्र ! परलोकमें जो धन उपजीव्य होता है, वही धन दान करो । जिस धनका नाश नहीं है, और जो सदा रहता है, तुम स्वयं उस ही धनका उपार्जन करो ॥ ४७ ॥

न यावदेव पच्यते महाजनस्य यावकम् ।
अपक्व एव यावके पुरा प्रणीयसे त्वर ॥ ४८ ॥

महाजनभुक्त यवपिष्टविकार जबतक परिपाक नहीं होता, उतनेही समयके बीच तुम शीघ्र ही लयको प्राप्त होगे; इसलिये तुम ज्ञानरूपी धनके उपार्जनमें शीघ्रता करो ॥ ४८ ॥

न मातृपितृबान्धवा न संस्तुतः प्रियो जनः ।
अनुव्रजन्ति संकटे व्रजन्तमेकपातिनम् ॥ ४९ ॥

जब मनुष्य सङ्कटमें पडके अकेले ही परलोकमें जाता है, उस समय माता, पुत्र, बान्धव और परिचित प्रिय लोग कोई भी उसका अनुगमन नहीं करते है ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदेव कर्म केवलं स्वयं कृतं शुभाशुभम् ।
तदेव तस्य यौतकं भवत्यमुत्र गच्छतः ॥ ५० ॥

हे पुत्र ! जो कुछ स्वयंका पहलेका शुभाशुभ कर्म रहता है, परलोकमें जानेवाले मनुष्यके साथ केवल वही गमन करता है ॥ ५० ॥

हिरण्यरत्नसंचयाः शुभाशुभेन संचिताः ।
न तस्य देहसंक्षये भवन्ति कार्यसाधकाः ॥ ५१ ॥

शुभाशुभ कर्मोंके जरिये मनुष्यके जो कुछ सञ्चित सुवर्ण और रत्न हैं, देह नष्ट होनेके समय वे किसी कार्यके साधक नहीं होते ॥ ५१ ॥

परत्रगामिकस्य ते कृताकृतस्य कर्मणः ।
न साक्षिरात्मना समो नृणामिहास्ति कश्चन ॥ ५२ ॥

मनुष्यके परलोक गमन करनेके समय कृत और अकृत कर्मके साक्षी आत्माके समान मनुष्योंमें और दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ५२ ॥

मनुष्यदेहशून्यकं भवत्यमुत्र गच्छतः ।
प्रविश्य बुद्धिचक्षुषा प्रदृश्यते हि सर्वशः ॥ ५३ ॥

साक्षी चैतन्यके परलोकमें जानेपर मनुष्य देहशून्य होता है, ज्ञाननेत्रसे हृदयाकाशमें प्रवेश कर सकनेसे ही समस्त स्पष्टरूपसे दीख पडता है ॥ ५३ ॥

इहाग्निसूर्यवायवः शरीरमाश्रिताश्रयः ।
त एव तस्य साक्षिणो भवन्ति धर्मदर्शिनः ॥ ५४ ॥

अग्नि, सूर्य और वायु इस लोकमें इस शरीरको अवलम्बन किये हुए हैं, परलोकमें येही धर्मदर्शी साक्षी होते हैं ॥ ५४ ॥

यथानिशेषु सर्वतःस्पृशत्सु सर्वदारिषु ।
प्रकाशगूढवृत्तिषु स्वधर्ममेव पालय ॥ ५५ ॥

काम, क्रोध आदि शत्रु प्रकाश्य और गूढभावसे जब रातदिन स्पर्श कर रहे हैं, तब तुम केवल स्वधर्मकाही पालन करो ॥ ५५ ॥

अनेकपारिपन्थिके विरूपरौद्ररक्षिते ।
स्वमेव कर्म रक्ष्यतां स्वकर्म तत्र गच्छति ॥ ५६ ॥

परलोकके पथमें बहुतेरे परिपन्थी अर्थात् लोहतुण्ड तथा विकराल और भयंकर भेडिये आदि विपक्षमें विद्यमान हैं, इसलिये निज कर्मकी रक्षामें यत्न करो; सुकृत कर्म परलोकमें गमन किया करता है ॥ ५६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न तत्र संविभज्यते स्वकर्मणा परस्परम् ।
यथाकृतं स्वकर्मजं तदेव भुज्यते फलम् ॥ ५७ ॥

इस लोकमें जो सब कर्म किये जाते हैं, वहां उनका किसीके साथ बंटवारा नहीं होता; परलोकमें वेही कर्मजनित फल भोग हुआ करते हैं ॥ ५७ ॥

यथाप्सरोगणाः फलं सुखं महर्षिभिः सह ।
तथाप्नुवन्ति कर्मतो विमानकामगामिनः ॥ ५८ ॥

महर्षियोंके साथ अप्सरावृन्द होते हैं, और वे पुण्यके फलस्वरूप सुख भोग करते हैं, वैसे ही सुकृतशाली मनुष्य विमानोंपर चढकर कामगामी होकर स्वकर्मजनित फल भोग किया करते हैं ॥ ५८ ॥

यथेह यत्कृतं शुभं विपाप्मभिः कृतात्मभिः ।
तदाप्नुवन्ति मानवास्तथा विशुद्धयोनयः ॥ ५९ ॥

पापरहित और कृतबुद्धि मनुष्य इस लोकमें जिन शुभकर्मोंको करते हैं, जन्मान्तरमें शुद्ध योनिमें उत्पन्न होकर उसका वैसाही फल पाते हैं ॥ ५९ ॥

प्रजापतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः ।
व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थधर्मसेतुभिः ॥ ६० ॥

उनमेंसे गृहस्थधर्म–सेतुके जरिये कोई कोई ब्रह्मलोक, कोई बृहस्पति लोक और कोई इन्द्र लोकमें गमन करके परम गति पाते हैं ॥ ६० ॥

सहस्रशोऽप्यनेकशः प्रवक्तुमुत्सहामहे ।
अबुद्धिमोहनं पुनः प्रभुर्विना न पावकम् ॥ ६१ ॥

मैं तुम्हें इसी भांति सहस्रोंसे भी अधिक उपदेश प्रदान कर सकता हूं; सर्वशक्तिमान् और पवित्र धर्म अमोहित बुद्धिवाले मनुष्यको पुण्य लोकमें पहुंचाता है ॥ ६१ ॥

गता द्विरष्टवर्षता ध्रुवोऽसि पञ्चविंशकः ।
कुरुष्व धर्मसंचयं वयो हि तेऽतिवर्तते ॥ ६२ ॥

तुम्हारी चौवीस वर्षकी अवस्था बीती है, अब पचीसवां वर्ष प्रवृत्त हुआ है; तुम्हारी अवस्था बीती जारही है, इसलिये धर्मका सञ्चय करो ॥ ६२ ॥

पुरा करोति सोऽन्तकः प्रमादगोमुखं दमम् ।
यथागृहीतमुत्थितं त्वरस्व धर्मपालने ॥ ६३ ॥

प्रमाद गृहवासी अन्तक जब तक इन्द्रिय निग्रहको स्व–स्वविषयमें भोग हीन नहीं करता है, इनके असमर्थ हो जानेके पहले ही देहमात्रके जरिये उद्योगी होकर धर्मपालनमें शीघ्रता करो ॥ ६३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा त्वमेव पृष्ठतस्त्वमग्रतो गमिष्यसि ।
तथा गतिं गमिष्यतः किमात्मना परेण वा ॥ ६४ ॥

जब तुम शरीर छोडकर परलोककी राहपर चलोगे, तब तुम ही पश्चात् गमन करोगे, तुम्हीं आगे जाओगे, तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं होगा; इसलिये अपने या पराये व्यक्तिकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ६४ ॥

यदेकपातिनां सतां भवत्यमुत्र गच्छताम् ।
भयेषु सांपरायिकं निधत्स्व तं महानिधिम् ॥ ६५ ॥

जब कि भय उपस्थित होनेसे अकेलेही परलोकमें जाना होता है, तब परलोकके हितकर केवल धर्म ज्ञानको ही महानिधिकी भांति गोपन करके अवलम्बन करो ॥ ६५ ॥

सकूलमूलबान्धवं प्रभुर्हरत्यसङ्गवान् ।
न सन्ति यस्य वारकाः कुरुष्व धर्मसंनिधिम् ॥ ६६ ॥

जब कि वह असङ्गवान् मृत्यु बालक, युवा और वृद्धोंके सहित कूल और मूल सहित मनुष्योंको अवश्य ही हरण करती है, उसको रोकनेवाला कोई नहीं है, तब धर्मका सहारा अवलम्बन करो ॥ ६६ ॥

इदं निदर्शनं मया तवेह पुत्र संमतम् ।
स्वदर्शनानुमानतः प्रवर्णितं कुरुष्व तत् ॥ ६७ ॥

हे पुत्र ! मैंने निज दर्शन– शास्त्रज्ञान और अनुमानके अनुसार तुम्हारे योग्य यह निदर्शन कहा है, इसलिये मैंने जो कुछ वर्णन किया, तुम वैसाही आचरण करो ॥ ६७ ॥

दधाति यः स्वकर्मणा धनानि यस्य कस्यचित् ।
अबुद्धिमोहजैर्गुणैः शतैक एव युज्यते ॥ ६८ ॥

जो निज सत्कर्मके जरिये देहकी पुष्टिके लिये धर्मका साधन करता है और जो किसी द्रव्योंका दान करता है, वही एकमात्र मोहरहित बुद्धिसे प्राप्त गुणोंसे संयुक्त हुआ करता है ॥ ६८ ॥

श्रुतं समर्थमस्तु ते प्रकुर्वतः शुभाः क्रियाः ।
तदेव तत्र दर्शनं कृतज्ञमर्थसंहितम् ॥ ६९ ॥

जो शुभ कार्योंको सिद्ध करता है, उसका तत्त्वमसि वाक्यजनित ज्ञान अखण्ड ब्रह्माण्डमय व्याप्त और समर्थ होता है, अर्थात् वह सर्वज्ञ होता है; सर्वज्ञता ही मोक्षके निमित्त परम पुरुषार्थ प्रदर्शित करती है, इसलिये कृतज्ञ पुरुषको जो उपदेश किया जाता है, वही सार्थक होता है ॥ ६९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैनां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ ७० ॥

ग्रामके बीच स्त्री-पुत्र आदि परिवारसे घिरकर निवास करनेकी जो अभिलाषा है, वही बन्धन-रूपी रसरी है; सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रज्जुको काटके उत्तम लोकोंमें गमन करते हैं और पापकर्म करनेवाले मनुष्य उसे काटनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ७० ॥

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि
आत्मनमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे ॥ ७१ ॥

हे पुत्र ! तुम परलोकमें गमन करोगे, तब तुम्हें धन, सम्पत्ति, बन्धु, बान्धव और पुत्र-पौत्रादिसे क्या प्रयोजन है ? हृदयाकाशके बीच छिपे हुए आत्माका आन्वेषण करो; तुम्हारे पितामह प्रपितामह कहां गये हैं यह तो सोचो ॥ ७१ ॥

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
को हि तद्वेद कस्याद्य मृत्युसेना निवेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

जो काम कल करना होगा, उसे आज ही पूरा करो और दो पहर बादमें जो करना हो, उसे पहले पहरमें सिद्ध करो; किसपर मृत्युकी सेना आज धावा करेगी, यह कौन जान सकता है ? ॥ ७२ ॥

अनुगम्य स्मशानान्तं निवर्तन्तीह बान्धवाः ।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा ॥ ७३ ॥

मनुष्यशरीर नष्ट होने पर स्वजन, सुहृत् और बान्धव लोग उस मृत शरीरका अनुगमन करके उसे अग्निमें डालकर निवृत्त होते हैं ॥ ७३ ॥

नास्तिकान्निरनुक्रोशान्नरान्पापमतौ स्थितान् ।
वामतः कुरु विश्रब्धं परं प्रेप्सुरतन्द्रितः ॥ ७४ ॥

इसलिये तुम आलस्यहीन और विश्वस्त रूपसे परमपद पानेके अभिलाषी होकर पापबुद्धि, निर्दयी, नास्तिकोंको विश्वस्त होकर पीछे करो ॥ ७४ ॥

एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते ।
सुमहद्धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु ॥ ७५ ॥

जब कि सब जगत् कालके जरिये इस प्रकारसे पीडित और सब भांतिसे नष्ट हो रहा है, तब तुम महत् धैर्य अवलम्बन करके सब प्रयत्नसे धर्माचरण करो ॥ ७५ ॥

अथेमं दर्शनोपायं सम्यग्यो वेत्ति मानवः ।
सम्यक्स धर्मं कृत्वेह परत्र सुखमेधते ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य इस ही भांति मोक्षपथ देखनेके उपायको पूर्णरीतिसे जानता है, वह इस लोकमें सब भांतिसे स्वधर्माचरण करके परलोकमें सुखभोग करता है ॥ ७६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न देहभेदे मरणं विजानतां न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि ।
धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो य एव धर्माच्च्यवते स मुह्यति ॥ ७७ ॥

देहनाश होनेसे मरण नहीं होता, इसे जानके जो लोग शिष्टजनोंके समादृत पथमें वर्त्तमान रहते हैं, उनका विनाश नहीं है । जो धर्मकी वृद्धि करते हैं, वेही पण्डित हैं और जो पुरुष धर्मसे च्युत होता है, वह मोहग्रस्त हुआ करता है ॥ ७७ ॥

प्रयुक्तयोः कर्मपथि स्वकर्मणोः फलं प्रयोक्ता लभते यथाविधि ।
निहीनकर्मा निरयं प्रपद्यते त्रिविष्टपं गच्छति धर्मपारगः ॥ ७८ ॥

प्रयोक्ता जैसा कर्म करता है, कर्मपथमें प्रयुक्त निज शुभाशुभ कर्मोंका फल उस ही भांतिसे यथाविधि पाता है । हीनकर्म करनेवाला मनुष्य निरयगामी होता है और धर्माचरण करनेवाला मनुष्य सुरपुरमें जाता है ॥ ७८ ॥

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथात्मानं समादध्याद्धृश्येत न पुनर्यथा ॥ ७९ ॥

और स्वर्गके सोपान स्वरूप दुर्लभ मनुष्यजन्म पाके आत्माको उस ही भांतिसे समाहित करे; जिससे कि फिर भ्रष्ट होना न पडे ॥ ७९ ॥

यस्य नोत्क्रामति मतिः स्वर्गमार्गानुसारिणी ।
तमाहुः पुण्यकर्माणमशोच्यं पुत्रबान्धवैः ॥ ८० ॥

जिसकी बुद्धि स्वर्गमार्गकी अनुसारिणी होकर धर्मको अतिक्रम नहीं करती, उस पुत्रपौत्र प्रभृतिके अशोचनीय मनुष्यको लोग पुण्यकर्मा कहा करते हैं ॥ ८० ॥

यस्य नोपहता बुद्धिर्निश्चयेष्ववलम्बते ।
स्वर्गे कृतावकाशस्य तस्य नास्ति महद्भयम् ॥ ८१ ॥

जिसकी बुद्धि अबाधित होकर दृढ निश्चयका अवलम्बन करती है, स्वर्गमें उसे स्थानाभाव नहीं होता और उसे महत् भय भी नहीं होता ॥ ८१ ॥

तपोवनेषु ये जातास्तत्रैव निधनं गताः ।
तेषामल्पतरो धर्मः कामभोगमजानताम् ॥ ८२ ॥

जिन्होंने तपोवनमें जन्म लेकर उसही स्थानमें प्राणत्याग किया हैं, उन कामभोगसे अनभिज्ञ तपस्वियोंको अत्यन्त अल्प धर्मकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

यस्तु भोगान्परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत् ।
न तेन किंचिन्नप्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम् ॥ ८३ ॥

और जो भोगविषयोंको त्यागके शारीरिक क्लेश आदिके जरिये तपस्याचरण करता है, उसे कुछ भी अप्राप्य नहीं है; वही फल मुझे अधिक सम्मत है ॥ ८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ ८४ ॥

सहस्रों माता, पिता और सैकडों स्त्री–पुत्र पहले जन्मोंमें अनागत और अतीत होते हैं, वे किसके हैं, और हम लोग ही किसके हैं ? ॥ ८४ ॥

न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि ।
स्वकृतैस्तानि जातानि भवांश्चैव गमिष्यति ॥ ८५ ॥

तुम्हारे जरिये उनका कोई कार्य नहीं है और न उनके जरिये तुम्हारा ही कुछ कार्य है; उन्होंने अपने किये हुए कर्मोंके जरिये जन्म ग्रहण किया है, तुम भी निज कर्मोंके सहारे गमन करोगे ॥ ८५ ॥

इह लोके हि धनिनः परोऽपि स्वजनायते ।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामेन नश्यति ॥ ८६ ॥

इस लोकमें जो धनवान् पुरुष हैं, वे दूसरोंके साथ भी स्वजनोचित बर्ताव करते हैं; और दरिद्रोंके जीवित रहते ही उनके सब स्वजन उन्हें छोडकर दूर होते हैं ॥ ८६ ॥

संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः ।
ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च ॥ ८७ ॥

मनुष्य अपनी प्यारी स्त्रीके अनुरोधसे अशुभ कर्म सञ्चय करता है, उसहीसे इस लोक और परलोकमें क्लेश मिलता है ॥ ८७ ॥

पश्य त्वं छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा ।
तत्कुरुष्व तथा पुत्र कृत्स्नं यत्समुदाहृतम् ॥ ८८ ॥

हे पुत्र ! जब जीवोंको अपने कर्मोंके जरिये विच्छिन्न देखते हो, तब मैंने जो सब कथा कही है, तुम उसहीके अनुसार आचरण करो ॥ ८८ ॥

तदेतत्संप्रधार्यैव कर्मभूमिं प्रविश्य ताम् ।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता ॥ ८९ ॥

यह सब आलोचना करके जो इह लोकको कर्मभूमि मानकर इसमें प्रवेश करता है और जिसे परलोकमें सद्गति मिलनेकी बहुत अभिलाषा रहती है, उसे शुभ आचरण करना चाहिये ॥८९॥

मासर्तुसंज्ञापरिवर्तकेन सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
स्वकर्मनिष्ठाफलसाक्षिकेण भूतानि कालः पचति प्रसह्य ॥ ९० ॥

मास और ऋतुओंकी संज्ञा परिवर्तन करनेवाला, स्वकर्म निष्पत्ति फलके साक्षी सूर्यस्वरूप अग्नि और दिनरातरूपी काठके जरिये काल सब भूतोंको बलपूर्वक पका रहा है ॥ ९० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते बलेन किं येन रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥ ९१ ॥

जो धन किसीको दान नहीं किया जाता और न भोग ही किया जाता है, उस धनसे क्या प्रयोजन है ? जिसके जरिये शत्रुओंको बाधित नहीं किया जाता वैसे बलका क्या प्रयोजन है ? जिस शास्त्रज्ञानके जरिये धर्मका आचरण नहीं करता, वैसे शास्त्रज्ञानका क्या प्रयोजन है ? और जिसके जरिये जितेन्द्रिय और वशीभूत न होसके, वैसी आत्मासे ही क्या आवश्यकता है ? ॥ ९१ ॥

इदं द्वैपायनवचो हितमुक्तं निशम्य तु ।
शुको गतः परित्यज्य पितरं मोक्षदेशिकम् ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥ ११२०४ ॥

द्वैपायन व्यासके कहे हुए ऐसे हितवाक्यको सुनके शुकदेव अपने पिताको परित्याग कर मोक्षोपदेशकके निकट गये ॥ ९२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ नवां अध्याय समाप्त ॥ ३०९ ॥ ११२०४ ॥

३१०

युधिष्ठिर उवाच—

कथं व्यासस्य धर्मात्मा शुको जज्ञे महातपाः ।
सिद्धिं च परमां प्राप्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! महातपस्वी शुकदेव किस प्रकार वेदव्याससे उत्पन्न हुए थे और किस प्रकार परम सिद्धि लाभ की थी ? आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये ॥ १ ॥

कस्यां चोत्पादयामास शुकं व्यासस्तपोधनः ।
न ह्यस्य जननीं विद्म जन्म चाग्र्यं महात्मनः ॥ २ ॥

तपस्वी वेदव्यासने कौनसी स्त्रीके जरिये शुकदेवको उत्पन्न किया था ? शुकदेवकी माता कौन है और किस प्रकार उस महात्माका उत्तम जन्म हुआ था, मैं उसे नहीं जानता ॥ २ ॥

कथं च बालस्य सतः सूक्ष्मज्ञाने गता मतिः ।
यथा नान्यस्य लोकेऽस्मिन्द्वितीयस्येह कस्यचित् ॥ ३ ॥

और बालक होनेपर भी इस लोकमें जो अन्य किसी दूसरे पुरुषसे सम्भव नहीं होता, वैसे सूक्ष्म ज्ञानमें किस प्रकार उनकी बुद्धि तत्पर हुई थी ? ॥ ३ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ।
न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतोऽमृतमुत्तमम् ॥ ४ ॥

हे महाबुद्धिमान् ! इसे मैं विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं; इस अत्यन्त उत्तम अमृत समान विषयको सुनके मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Shivanand Giri (Prabhuji) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

माहात्म्यमात्मयोगं च विज्ञानं न शुकस्य ह ।
यथावदानुपूर्व्येण तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५ ॥

पितामह ! इसलिये महानुभाव शुकदेवका माहात्म्य, आत्मयोग और विज्ञानके विषयको आप मेरे समीप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच—

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— हे पाण्डुनन्दन ! कोई अवस्थासूचक अधिक वर्षोंसे, जरा आदिसे केश कदम्बकी परिपक्वता, वित्त अथवा बन्धुजनोंके सहारे धर्मोपार्जन नहीं करता । हम लोगोंके बीच जो वेदोंका प्रवचन कर सकेगा, वही महान् है, ऐसा ऋषियोंने नियम किया है ॥ ६ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि पाण्डव ।
तदिन्द्रियाणि संयम्य तपो भवति नान्यथा ॥ ७ ॥

तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उन सबकाही मूल तपस्या है; इन्द्रियोंको संयम करनेसे ही वह तपस्या होती है, अन्यथा किसी प्रकारसे भी उसकी सम्भावना नहीं होती ॥ ७ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥

मनुष्य इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे दोषभागी होता है, और उन इन्द्रियोंको संयम कर सकनेसे ही सिद्धि लाभ किया करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम् ॥ ९ ॥

हे तात ! सहस्रों अश्वमेध और सैकडों वाजपेय यज्ञोंका फल इद्रियसंयम स्वरूप योगके एक अंशके समान भी नहीं है ॥ ९ ॥

अत्र ते वर्तयिष्यामि जन्मयोगफलं यथा ।
शुकस्याग्र्यां गतिं चैव दुर्विदामकृतात्मभिः ॥ १० ॥

अब मैं अकृतात्मा पुरुषोंसे दुर्ज्ञेय शुकदेवके जन्म, योगफल और श्रेष्ठ गतिके विषय तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १० ॥

मेरुशृङ्गे किल पुरा कर्णिकारवनायुते ।
विजहार महादेवो भीमैर्भूतगणैर्वृतः ॥ ११ ॥

पहले समयमें कर्णिकारके वनसे परिपूरित सुमेरु पर्वतकी शिखरपर भगवान् भूतनाथ महादेव भयङ्कर भूतोंसे घिर कर विहार करते थे ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शैलराजसुता चैव देवी तत्राभवत्पुरा ।
तत्र दिव्यं तपस्तेपे कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ॥ १२ ॥

शैलराजपुत्री भवानी भी वहां पर निवास करती थी। उस समय कृष्णद्वैपायनने वहां पर दिव्य तपस्या की थी ॥ १२ ॥

योगेनात्मानमाविश्य योगधर्मपरायणः ।
धारयन्स तपस्तेपे पुत्रार्थं कुरुसत्तम ॥ १३ ॥

हे कुरुसत्तम ! योग–धर्म परायण व्यासने योगबलसे आत्मामें आवेश करके पुत्रके ही निमित्त वह तपस्या की थी ॥ १३ ॥

अग्नेर्भूमेरपां वायोरन्तरिक्षस्य चाभिभो ।
वीर्येण संमितः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह ॥ १४ ॥

अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके समान मेरा पुत्र वीर्यशाली हो, उनका ऐसाही अभिप्राय था ॥ १४ ॥

संकल्पेनाथ सोऽनेन दुष्प्रापेणाकृतात्मभिः ।
वरयामास देवेशमास्थितस्तप उत्तमम् ॥ १५ ॥

उन्होंने अत्यन्त बृहत् तपस्या अवलम्बन करके इस ही भांति सङ्कल्प और योगके जरिये अकृतात्म मनुष्योंसे दुष्प्राप्य देवेश्वरके निकट वह वर मांगा था ॥ १५ ॥

अतिष्ठन्मारुताहारः शतं किल समाः प्रभुः ।
आराधयन्महादेवं बहुरूपमुमापतिम् ॥ १६ ॥

वे अनेक रूपसे युक्त उमापति महादेवकी आराधना करते हुए सौ वर्षोंतक केवल वायु पीके रहे थे ॥ १६ ॥

तत्र ब्रह्मर्षयश्चैव सर्वे देवर्षयस्तथा ।
लोकपालाश्च लोकेशं साध्याश्च वसुभिः सह ॥ १७ ॥

उस स्थानमें समस्त ब्रह्मर्षि, सभी राजर्षि, लोकपाल, वसुओंके सहित साध्य, ॥ १७ ॥

आदित्याश्चैव रुद्राश्च दिवाकरनिशाकरौ ।
मरुतो मारुतश्चैव सागराः सरितस्तथा ॥ १८ ॥

आदित्य, रुद्रगण, सूर्य, चन्द्रमा, वसुगण तथा वायुगण, समुद्र और समस्त नदियां, ॥१८॥

अश्विनौ देवगन्धर्वास्तथा नारदपर्वतौ ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ १९ ॥

दोनों अश्विनीकुमार, सब देवता, गन्धर्व, नारद और पर्वत मुनि, गन्धर्वराज विश्वावसु, सिद्ध और अप्सरावृन्द उस महादेवकी उपासना करती थीं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्र रुद्रो महादेवः कर्णिकारमयीं शुभाम् ।
धारयाणः स्रजं भाति ज्योत्स्नामिव निशाकरः ॥ २० ॥

जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके जरिये शोभायमान होता है, उस स्थानमें रुद्रदेव कर्णिकारकी कुसुममयी मनोहारिणी माला पहरके उस ही भांति शोभायुक्त हुए थे ॥ २० ॥

तस्मिन्दिव्ये वने रम्ये देवदेवर्षिसंकुले ।
आस्थितः परमं योगमृषिः पुत्रार्थमुद्यतः ॥ २१ ॥

अमरधर्मा महर्षि कृष्णद्वैपायनने उस देव और देवर्षियोंसे परिपूरित दिव्य रमणीय वनमें पुत्रप्राप्तिके निमित्त परम योग अवलम्बन किया था ॥ २१ ॥

न चास्य हीयते प्राणो न ग्लानिरुपजायते ।
त्रयाणामपि लोकानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २२ ॥

उस समय उनकी प्राणवायु निर्बल न हुई और किसी प्रकारकी ग्लानि भी उत्पन्न नहीं हुई। उनका वैसा भाव स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकोंमें अत्यन्त अद्भुत मालूम हुआ था ॥ २२ ॥

जटाश्च तेजसा तस्य वैश्वानरशिखोपमाः ।
प्रज्वलन्त्यः स्म दृश्यन्ते युक्तस्यामिततेजसः ॥ २३ ॥

उस योगयुक्त, अत्यन्त तेजस्वी, द्वैपायनका जटामण्डल तेजस्वी अग्निशिखासदृश प्रज्वलित होते दीख पडा था ॥ २३ ॥

मार्कण्डेयो हि भगवानेतदाख्यातवान्मम ।
स देवचरितानीह कथयामास मे सदा ॥ २४ ॥

भगवान् मार्कण्डेयने इस विषयको मेरे समीप कहा था । वे सदा मेरे समीप देवताओंके सब चरित्र कहते थे ॥ २४ ॥

ता एताद्यापि कृष्णस्य तपसा तेन दीपिताः ।
अग्निवर्णा जटास्तात प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २५ ॥

हे तात ! अबतक भी महात्मा कृष्णद्वैपायनकी तपस्याके जरिये प्रदीप्त जटाएं अग्निवर्ण रूपसे प्रकाशित हो रही हैं ॥ २५ ॥

एवंविधेन तपसा तस्य भक्त्या च भारत ।
महेश्वरः प्रसन्नात्मा चकार मनसा मतिम् ॥ २६ ॥

हे भारत ! उनकी ऐसी भक्ति और तपस्यासे महेश्वर प्रसन्न होके, उन्होंने मनमें उन्हें अभीष्ट वर देनेका विचार किया ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उवाच चैनं भगवांस्त्र्यम्बकः प्रहसन्निव ।
एवंविधस्ते तनयो द्वैपायन भविष्यति ॥ २७ ॥

भगवान् त्रिलोचन उस समय व्यासके सामने आये और हंसके बोले, हे द्वैपायन ! तुम जैसे पुत्रकी कामना करते हो, तुम्हारे वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा ॥ २७ ॥

यथा ह्यग्निर्यथा वायुर्यथा भूमिर्यथा जलम् ।
यथा च खं तथा शुद्धो भविष्यति सुतो महान् ॥ २८ ॥

जैसे अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश स्वतः शुद्ध हैं, तुम्हारा सुन्दर पुत्र भी उस ही प्रकार शुद्ध और महान् होगा ॥ २८ ॥

तद्भावभावी तद्बुद्धिस्तदात्मा तदपाश्रयः ।
तेजसावृत्य लोकांस्त्रीन्यशः प्राप्स्यति केवलम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ ११२३३ ॥

तुम्हारा पुत्र तद्भावभावी अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसे ही आशयविशिष्ट होगा और केवल ब्रह्म भावनामात्र ही न करके तद्बुद्धि अर्थात् परब्रह्ममें ही निश्चयबुद्धि निवेश करेगा, तदात्मा अर्थात् उसहीमें चित्त समर्पण करेगा, तदपाश्रय अर्थात् उसहीमें स्थिर रहेगा तथा निज तेजके सहारे तीनों लोकोंको परिपूरित करके यश लाभ करेगा ॥ २९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ दसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१० ॥ ११२३३ ॥

: ३११ :

भीष्म उवाच -

स लब्ध्वा परमं देवाद्वरं सत्यवतीसुतः ।
अरणीं त्वथ संगृह्य ममन्थाग्निचिकीर्षया ॥ १ ॥

भीष्म बोले– सत्यवती पुत्र व्यास महादेवसे वह उत्तम वर पाके, अग्नि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे दो अरणी काष्ठ ग्रहण करके मथने लगे ॥ १ ॥

अथ रूपं परं राजन्बिभ्रतीं स्वेन तेजसा ।
घृताचीं नामाप्सरसमपश्यद्भगवानृषिः ॥ २ ॥

हे राजन् ! अनन्तर भगवान् ऋषिने निज तेजप्रभावसे परम रूपवती घृताची नामक अप्सराको देखा ॥ २ ॥

ऋषिरप्सरसं दृष्ट्वा सहसा काममोहितः ।
अभवद्भगवान्व्यासो वने तस्मिन्युधिष्ठिर ॥ ३ ॥

हे युधिष्ठिर ! उस वनके बीच भगवान् व्यासदेव अप्सराको देखके सहसा कामसे मोहित हुए ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सा च कृत्वा तदा व्यासं कामसंविग्नमानसम् ।
शुकी भूत्वा महाराज घृताची समुपागमत् ॥ ४ ॥

हे महाराज ! वह घृताची भी उस समय व्यासदेवको कामाकुलचित्त करके शुकी होके उनके निकट उपस्थित हुई ॥ ४ ॥

स तामप्सरसं दृष्ट्वा रूपेणान्येन संवृताम् ।
शरीरजेनानुगतः सर्वगात्रातिगेन ह ॥ ५ ॥

वह उस अप्सराको रूपान्तरके जरिये छिपी हुई देखके सर्वावयवव्यापी शरीरज कामके अनुगत हुए ॥ ५ ॥

स तु धैर्येण महता निगृह्णन्हृच्छयं मुनिः ।
न शशाक नियन्तुं तद्व्यासः प्रविसृतं मनः ।
भावित्वाच्चैव भावस्य घृताच्या वपुषा हृतः ॥ ६ ॥

महामुनि वेदव्यास महान् धैर्यके जरिये हृदयस्थित कामवेगको निग्रह करनेके लिये यत्न करने लगे; परंतु अप्सराकी ओर गये हुए विकृत मनको नियमित करनेमें समर्थ न हुए; उनके अतःकरणमें कामभावका उद्रेक होनेपर घृताचीकी सुन्दरताईने उसे हरण किया था ॥ ६ ॥

यत्नान्नियच्छतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ।
अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमवापतत् ॥ ७ ॥

अग्नि उत्पन्न करनेमें मन लगाके अत्यन्त प्रयत्नसे कामवेग शान्त करनेमें उद्यत हुए, तौभी सहसा अरणीके बीच उनका वीर्य स्खलित हुआ ॥ ७ ॥

सोऽविशङ्केन मनसा तथैव द्विजसत्तमः ।
अरणीं ममन्थ ब्रह्मर्षिस्तस्यां जज्ञे शुको नृप ॥ ८ ॥

द्विजसत्तम ब्रह्मर्षि वेदव्यास अविशङ्कित चित्तसे पहलेकी भांति अरणी मथने लगे । हे महाराज ! उस अरणीके बीच शुकदेवने जन्म लिया ॥ ८ ॥

शुक्रे निर्मथ्यमाने तु शुको जज्ञे महातपाः ।
परमर्षिर्महायोगी अरणीगर्भसंभवः ॥ ९ ॥

अरणीके साथ शुक्रका भी मन्थन होनेसे वह महातपस्वी, महायोगी परमर्षि शुकदेव अरणी-गर्भसे उत्पन्न होगये ॥ ९ ॥

यथाध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्यमुपात्तवान् ।
तथारूपः शुको जज्ञे प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ १० ॥

जैसे यज्ञमें संसिद्ध अग्नि हव्य ढोती हुई सुशोभित होती है, वैसे ही शुकदेव अपने तेजसे प्रज्वलित होके उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बिभ्रत्पितुश्च कौरव्य रूपवर्णमनुत्तमम् ।
बभौ तदा भावितात्मा विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ११ ॥

हे कुरुकुलधुरन्धर ! वह पिताके परम उत्कृष्ट रूप और वर्ण धारण करके, उस समय धूमरहित अग्निकी भांति वे पवित्रात्मा शुकदेव अपने तेजसे प्रकाशित हुए ॥ ११ ॥

तं गङ्गा सरितां श्रेष्ठा मेरुपृष्ठे जनेश्वर ।
स्वरूपिणी तदाभ्येत्य स्नापयामास वारिणा ॥ १२ ॥

हे जननाथ ! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाने मूर्तिमती होकर सुमेरु पर्वतके ऊपर आगमन कर निज जलसे उन्हें स्नान कराया ॥ १२ ॥

अन्तरिक्षाच्च कौरव्य दण्डः कृष्णाजिनं च ह ।
पपात भुवि राजेन्द्र शुकस्यार्थे महात्मनः ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र ! महानुभाव शुकके निमित्त आकाशसे पृथ्वीपर दण्ड और कृष्णमृगचर्म गिरा ॥ १३ ॥

जेगीयन्ते स्म गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त महास्वनाः ॥ १४ ॥

गन्धर्व लोग बार बार गाने और अप्सराएं नाचनेमें प्रवृत्त हुईं तथा देवताओंके महाशब्दसे युक्त नगाडे बजने लगे ॥ १४ ॥

विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा तुम्बुरुनारदौ ।
हाहाहूहू च गन्धर्वौ तुष्टुवुः शुकसंभवम् ॥ १५ ॥

गन्धर्वराज विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद और हाहा, हूहू नाम दोनों गन्धर्व—उस शुकदेवकी स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥

तत्र शक्रपुरोगाश्च लोकपालाः समागताः ।
देवा देवर्षयश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपि च ॥ १६ ॥

इन्द्र आदि सब लोकपाल, देवतावृन्द, देवर्षि और महर्षि लोग वहां उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

दिव्यानि सर्वपुष्पाणि प्रववर्षात्र मारुतः ।
जङ्गमं स्थावरं चैव प्रहृष्टमभवज्जगत् ॥ १७ ॥

वायु सब प्रकारके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगी । स्थावर और जङ्गम समस्त जगत् आनन्दित हुआ ॥ १७ ॥

तं महात्मा स्वयं प्रीत्या देव्या सह महाद्युतिः ।
जातमात्रं मुनेः पुत्रं विधिनोपानयत्तदा ॥ १८ ॥

फिर महानुभाव महातेजस्वी महादेवने देवीके सहित स्वयं प्रीतिपूर्वक आकर मुनिके नवजात पुत्रका उपनयन संस्कार किया ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य देवेश्वरः शक्रो दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
ददौ कमण्डलुं प्रीत्या देववासांसि चाभिभो ॥ १९ ॥

हे राजन् ! देवराज इन्द्रने प्रीतिपूर्वक उन्हें दिव्य और अद्भुतदर्शन कमण्डलु तथा देववसन आदि प्रदान किये ॥ १९ ॥

हंसाश्च शतपत्राश्च सारसाश्च सहस्रशः ।
प्रदक्षिणमवर्तन्त शुकाश्चाषाश्च भारत ॥ २० ॥

हे भरतकुलतिलक ! हंस, शतपत्र अर्थात् दार्वाघाट नाम पक्षी विशेष, सारस, शुक और स्वर्णचातक आदि सहस्रों पक्षी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २० ॥

आरणेयस्तथा दिव्यं प्राप्य जन्म महाद्युतिः ।
तत्रैवोवास मेधावी व्रतचारी समाहितः ॥ २१ ॥

अनन्तर महातेजस्वी, अरणीसे उत्पन्न हुए, मेधावी शुकदेव दिव्य जन्म पाके उस ही स्थानमें व्रतचारी और सावधान होकर निवास करने लगे ॥ २१ ॥

उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः ।
उपतस्थुर्महाराज यथास्य पितरं तथा ॥ २२ ॥

हे महाराज ! रहस्य और संग्रहके सहित समस्त वेद जैसे उनके पिताके निकट प्रकाशित हुए थे, वैसे ही शुकदेवके उत्पन्न होते ही सब वेद उनके समीप उपस्थित हुए ॥ २२ ॥

बृहस्पतिं तु वव्रे स वेदवेदाङ्गभाष्यवित् ।
उपाध्यायं महाराज धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ २३ ॥

वेद और वेदाङ्गोंके भाष्यको जाननेवाले शुकदेवने धर्मका विचार करके बृहस्पतिको गुरु रूपसे वरण किया ॥ २३ ॥

सोऽधीत्य वेदानखिलान्सरहस्यान्ससंग्रहान् ।
इतिहासं च कात्स्न्र्येन राजशास्त्राणि चाभिभो ॥ २४ ॥

प्रभो ! उनसे निखिल रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद, सारे इतिहास और राजशास्त्रोंको पढके ॥ २४ ॥

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो महामुनिः ।
उग्रं तपः समारेभे ब्रह्मचारी समाहितः ॥ २५ ॥

महामुनि शुक गुरुदक्षिणा दान कर गुरुकुलसे प्रतिनिवृत्त हुए । उस महामुनिने ब्रह्मचारी और समाहित होकर उग्र तपस्या आरम्भ की ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

देवतानामृषीणां च बाल्येऽपि स महातपाः ।
संमन्त्रणीयो मान्यश्च ज्ञानेन तपसा तथा ॥ २६ ॥

महातपस्वी शुकदेव बालक अवस्थामें ही ज्ञान और तपस्याके कारण देवता तथा ऋषियोंके मन्त्रणीय वा माननीय हुए थे ॥ २६ ॥

न त्वस्य रमते बुद्धिराश्रमेषु नराधिप ।
त्रिषु गार्हस्थ्यमूलेषु मोक्षधर्मानुदर्शिनः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥ ११२६० ॥

हे नरनाथ ! मोक्षधर्मदर्शी उस शुकदेवकी बुद्धि किसी प्रकारसे भी गार्हस्थ्य मूलक तीनों आश्रमोंमें अनुरक्त नहीं हुई ॥ २७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ३११ ॥ ११२६० ॥

: ३१२ :

भीष्म उवाच—

स मोक्षमनुचिन्त्यैव शुकः पितरमभ्यगात् ।
प्राहाभिवाद्य च गुरुं श्रेयोर्थी विनयान्वितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– शुकदेव मोक्षधर्मकी उपादेयता जानके अपने पिता तथा गुरुके निकट गये; उस कल्याणप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मुनिने विनययुक्त हो पिताको प्रणाम करके कहा ॥ ॥ १ ॥

मोक्षधर्मेषु कुशलो भगवान्प्रब्रवीतु मे ।
यथा मे मनसः शान्तिः परमा संभवेत्प्रभो ॥ २ ॥

हे भगवान् ! आप मोक्षधर्म वर्णन करनेमें अत्यन्त विज्ञ हैं । हे प्रभु ! इसलिये जिस प्रकार मेरे मनमें शान्तिका सम्बन्ध हो, आप उसका उपाय वर्णन करिये ॥ २ ॥

श्रुत्वा पुत्रस्य वचनं परमर्षिरुवाच तम् ।
अधीष्व पुत्र मोक्षं वै धर्मांश्च विविधानपि ॥ ३ ॥

महर्षि वेदव्यास पुत्रका वचन सुनके उससे बोले– हे पुत्र ! तुम मेरे समीप मोक्षशास्त्र और विविध धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करो ॥ ३ ॥

पितुर्नियोगाज्जग्राह शुको ब्रह्मविदां वरः ।
योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैव भारत ॥ ४ ॥

हे भारत ! ब्रह्मवेत्ताओंमें प्रवर शुकदेवने पिताकी आज्ञानुसार निखिल योगशास्त्र और कपिलप्रोक्त सब सांख्य शास्त्र सीखे ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स तं ब्राह्मया श्रिया युक्तं ब्रह्मतुल्यपराक्रमम् ।
मेने पुत्रं यदा व्यासो मोक्षविद्याविशारदम् ॥ ५ ॥

जब वेदव्यासने पुत्रको ब्रह्मतुल्य पराक्रमयुक्त, मोक्षविद्याविशारद और ब्राह्मी श्रीसे संयुक्त जाना ॥ ५ ॥

उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम् ।
स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलेन विशेषतः ॥ ६ ॥

तब वे उससे बोले– " तुम मिथिलाराज जनकके समीप जाओ; वह तुमसे निखिल मोक्ष-शास्त्रका विशेष अर्थ कहेंगे । " ॥ ६ ॥

पितुर्नियोगदागमन्मैथिलं जनकं नृपम् ।
प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! शुकदेवने पिताकी आज्ञा पाके मिथिलाधिपति राजा जनकके निकट धर्मकी निष्ठा और मोक्षका परम आश्रय निष्ठा पूछनेके लिये गये ॥ ७ ॥

उक्तश्च मानुषेण त्वं पथा गच्छेत्यविस्मितः ।
न प्रभावेण गन्तव्यमन्तरिक्षचरेण वै ॥ ८ ॥

जानेके समय पिताने विस्मययुक्त न होकर पुत्रसे यह वचन कहा, कि तुम साधारण मनुष्यगम्य मार्गसे गमन करो । अन्तरिक्षचर प्रभावके जरिये मत जाओ ॥ ८ ॥

आर्जवेनैव गन्तव्यं न सुखान्वेषिणा पथा ।
नान्वेष्टव्या विशेषास्तु विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ९ ॥

तुम रास्तेमें सुखकी खोज न करके सरल भावसे गमन करना, किसी विषयका विशेष अनुसन्धान न करना, क्योंकि जो लोग विशेष खोज करनेवाले हैं, वेही विषयोंमें आसक्त होते हैं ॥ ९ ॥

अहंकारो न कर्तव्यो याज्ये तस्मिन्नराधिपे ।
स्थातव्यं च वशे तस्य स ते छेत्स्यति संशयम् ॥ १० ॥

उस मेरे यजमान नरनाथके निकट तुम अहंकार न प्रकट करना, तुम उनके वशीभूत होके रहना; तब वह तुम्हारे सब सन्देहोंको दूर करेंगे ॥ १० ॥

स धर्मकुशलो राजा मोक्षशास्त्रविशारदः ।
याज्यो मम स यद्ब्रूयात्तत्कार्यमविशङ्कया ॥ ११ ॥

वह मोक्षशास्त्रविशारद, धर्मज्ञ राजा मेरे यजमान हैं; इसलिये वह जैसा कहेंगे, तुम निःशंक चित्तसे वैसा ही करना ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः ।
पद्भ्यां शक्तोऽन्तरिक्षेण क्रान्तुं भुमिं ससागराम् ॥ १२ ॥

धर्मात्मा मुनि पिताका ऐसा वचन सुन मिथिला–नगरमें गये । वे आकाशमार्गसे समुद्रके सहित सारी पृथ्वी लांघ जानेमें समर्थ होनेपर भी पैदल ही चले ॥ १२ ॥

स गिरींश्चाप्यतिक्रम्य नदीस्तीर्त्वा सरांसि च ।
बहुव्यालमृगाकीर्णा विविधाश्चाटवीस्तथा ॥ १३ ॥

मार्गमें उन्हें अनेक पहाड, नदी, तीर्थ, सरोवर, अनेक सर्पों और वन्य पशुओंसे परिपूरित अनेक जंगलोंको पार करना पडा ॥ १३ ॥

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं तथा ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥ १४ ॥

धीरे धीरे इलावृतवर्ष, हरिवर्ष और हैमवत वर्षको पार करके वे भारत वर्षमें उपस्थित हुए ॥ १४ ॥

स देशान्विविधान्पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ।
आर्यावर्तमिमं देशमाजगाम महामुनिः ॥ १५ ॥

वह महामुनि चीन, हूण आदि विशेष जातिके जरिये सेवित विविध देशोंको देखते हुए इस आर्यावर्त देशमें आये ॥ १५ ॥

पितुर्वचनमाज्ञाय तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
अध्वानं सोऽतिचक्राम खेऽचरः खे चरन्निव ॥ १६ ॥

जैसे आकाशगामी पक्षी अन्तरिक्षमें विचरता है, वैसे ही वह पिताके वचनके अनुसार उस ही ज्ञातव्य विषयका चिन्तन करते हुए अविश्रान्त चित्तसे गमन करने लगे ॥ १६ ॥

पत्तनानि च रम्याणि स्फीतानि नगराणि च ।
रत्नानि च विचित्राणि शुकः पश्यन्न पश्यति ॥ १७ ॥

रास्तेमें विविध सुंदर और समृद्धिशाली गांव, नगर और विचित्र रत्न दिखायी पडे; परंतु उन्होंने उन्हें तुच्छ समझके देखकर भी उस ओर ध्यान न दिया ॥ १७ ॥

उद्यानानि च रम्याणि तथैवायतनानि च ।
पुण्यानि चैव तीर्थानि सोऽतिक्रम्य तथाध्वनः ॥ १८ ॥

मार्गमें चलते चलते रमणीय बगीचा, देवालय और पवित्र तीर्थोंको देखकर भी उनकी उपेक्षा करके अपने मार्गका अतिक्रम किया ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽचिरणैव कालेन विदेहानाससाद ह ।
रक्षितान्धर्मराजेन जनकेन महात्मना ॥ १९ ॥

वह थोडे ही समयमें महानुभाव धर्मराज जनकके रक्षित विदेह राज्यमें उपस्थित हुए ॥१९॥

तत्र ग्रामान्बहून्पश्यन्बह्वन्नरसभोजनान् ।
पल्लीघोषान्समृद्धांश्च बहुगोकुलसंकुलान् ॥ २० ॥

वहां अनेक अन्न, रस आदि भोजनकी सामग्रियोंसे पूरित सब गांव, समृद्ध तथा अनेक गौवोंसे युक्त गोशालाएं और कुटियोंको देखते हुए ॥ २० ॥

स्फीतांश्च शालियवसैर्हंससारससेवितान् ।
पद्मिनीभिश्च शतशः श्रीमतीभिरलंकृतान् ॥ २१ ॥

शालि धान्य और तृणसे युक्त, हंससारससेवित, सैकडों शोभाशालिनी कमलिनियोंसे अलंकृत, ॥ २१ ॥

स विदेहानतिक्रम्य समृद्धजनसेवितान् ।
मिथिलोपवनं रम्यमाससाद महर्द्धिमत् ॥ २२ ॥

समृद्धिवान् लोगोंसे युक्त विदेह देशको लांघके वे रमणीय और समृद्धिवान् मिथिलाके उपवनमें उपस्थित हुए ॥ २२ ॥

हस्त्यश्वरथसंकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ।
पश्यन्नपश्यन्निव तत्समतिक्रामदच्युतः ॥ २३ ॥

मिथिला नगर हाथी, घोडों और नर नारियोंसे परिपूरित होनेपर भी इंद्रियविजयी शुकदेव उसे अनादरके सहित देखते हुए गमन करने लगे ॥ २३ ॥

मनसा तं वहन्भारं तमेवार्थं विचिन्तयन् ।
आत्मारामः प्रसन्नात्मा मिथिलामाससाद ह ॥ २४ ॥

पिताने उन्हें जो उपदेश दिया था, मन ही मन उस ही प्रश्नभारको ढोते और मोक्षविषयकी चिन्ता करते हुए वह प्रसन्नचित्त आत्माराम मिथिला राजधानीमें पहुंचे, ॥ २४ ॥

तस्या द्वारं समासाद्य द्वारपालैर्निवारितः ।
स्थितो ध्यानपरो मुक्तो विदितः प्रविवेश ह ॥ २५ ॥

वह राजधानीके द्वारपर आके द्वारपालोंसे पूछे जानेपर कुछ देरतक ध्यानपरायण और योग अवलम्बन करके खडे रहे; फिर उन लोगोंको विदित होके राजपुरमें प्रवेश किया ॥ २५ ॥

स राजमार्गमासाद्य समृद्धजनसंकुलम् ।
पार्थिवक्षयमासाद्य निःशङ्कः प्रविवेश ह ॥ २६ ॥

समृद्धिवान् लोगोंसे युक्त राजपथमें पहुंचके धीरे धीरे राजस्थानके निकटवर्ती होकर उसमें निःशंक मनसे प्रवेश किया ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्रापि द्वारपालास्तमुग्रवाचो न्यषेधयन् ।
तथैव च शुकस्तत्र निर्मन्युः समतिष्ठत ॥ २७ ॥

राजभवनमें प्रवेश करते ही द्वारपालोंने कठोर वाक्यसे उन्हें भीतर जानेके लिये निषेध किया। शुकदेव उस समय क्रोधरहित होकर वहांही खडे रहे ॥ २७ ॥

न चातपाध्वसंतप्तः क्षुत्पिपासाश्रमान्वितः ।
प्रताम्यति ग्लायति वा नापैति च तथातपात् ॥ २८ ॥

धूपके क्लेश, मार्गकी थकावट और भूख प्यासके श्रमसे वह दुःखी वा ग्लानियुक्त न हुए; वे उस धूपसे संतप्त नहीं हुए, और धूपकी गर्मीसे भी हटके छायामें भी निवास न किया ॥ २८ ॥

तेषां तु द्वारपालानामेकः शोकसमन्वितः ।
मध्यंगतमिवादित्यं दृष्ट्वा शुकमवस्थितम् ॥ २९ ॥

द्वारपालोंके बीच एक पुरुष शुकदेवको मध्याह्नकालके तेजस्वी सूर्यकी भांति स्थित देखकर अत्यंत दुःखी हुआ ॥ २९ ॥

पूजयित्वा यथान्यायमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां द्वितीयां राजवेश्मनः ॥ ३० ॥

अनन्तर उस द्वारपालने हाथ जोडके विधिपूर्वक पूजा-संमान करके उन्हें प्रणाम कर राजभवनकी दूसरी कक्षामें लेगया ॥ ३० ॥

तत्रासीनः शुकस्तात मोक्षमेवानुचिन्तयन् ।
छायायामातपे चैव समदर्शी महाद्युतिः ॥ ३१ ॥

हे तात ! छाया और धूपको समान जाननेवाले महातेजस्वी शुकदेव उस कक्षामें एक जगह बैठके मोक्षका चिंतन करने लगे ॥ ३१ ॥

तं मुहूर्तादिवागम्य राज्ञो मन्त्री कृताञ्जलिः ।
प्रावेशयत्ततः कक्ष्यां तृतीयां राजवेश्मनः ॥ ३२ ॥

मुहूर्तभरके बीच राजमन्त्री हाथ जोडे हुए वहां आके उन्हें तीसरी कक्षामें ले गये ॥ ३२ ॥

तत्रान्तःपुरसंबद्धं महचैत्ररथोपमम् ।
सुविभक्तजलाक्रीडं रम्यं पुष्पितपादपम् ॥ ३३ ॥

वहां अन्तःपुरके समीप एक रमणीय बगीचा था, जो चैत्ररथके समान सुन्दर, पृथक् पृथक् जलक्रीडाके तालाबोंसे युक्त और फूले हुए वृक्षोंसे शोभित था ॥ ३३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तदर्शयित्वा स शुकं मन्त्री काननमुत्तमम् ।
अर्हमासनमादिश्य निश्चक्राम ततः पुनः ॥ ३४ ॥

वह मन्त्री शुकदेवको वह उत्तम वन बताकर, उन्हें उत्तम आसन बताकर फिर उस वनसे बाहर निकल आये ॥ ३४ ॥

तं चारुवेषाः सुश्रोण्यस्तरुण्यः प्रियदर्शनाः ।
सूक्ष्मरक्ताम्बरधरास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ॥ ३५ ॥

अनन्तर उत्तम वेषवाली, ऊंचे नितम्बयुक्त, देखनेमें प्रिय, सूक्ष्म लाल वस्त्र पहरनेवाली, तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त, ॥ ३५ ॥

संलापोल्लापकुशला नृत्तगीतविशारदाः ।
स्मितपूर्वाभिभाषिण्यो रूपेणाप्सरसां समाः ॥ ३६ ॥

बोलनेमें प्रवीण, नृत्यगीतिमें निपुण, मन्द मुसकानके साथ बातें करनेवाली अप्सराओंकी भांति रूपशालिनी, ॥ ३६ ॥

कामोपचारकुशला भावज्ञाः सर्वकोविदाः ।
परं पञ्चाशतो नार्यो वारमुख्याः समाद्रवन् ॥ ३७ ॥

कामकलामें निपुण, दूसरोंके मनका भाव समझनेवाली और सब कला-विषयोंको पूर्णरीतिसे जाननेवाली पचास प्रमुख तरुणी वारवनिताएं उनके निकट दौडी उपस्थित हुईं ॥ ३७ ॥

पाद्यादीनि प्रतिग्राह्य पूजया परयार्घ्य च ।
देशकालोपपन्नेन स्वाध्वन्नेनाप्यतर्पयन् ॥ ३८ ॥

उन स्त्रियोंने उन्हें पाद्य और अर्घ्य देकर परम संमानके सहित उनकी पूजा की और यथा देश समयपर उत्तम स्वादयुक्त अन्नदान करके उन्हें तृप्त किया ॥ ३८ ॥

तस्य भुक्तवतस्तात तदन्तःपुरकाननम् ।
सुरम्यं दर्शयामासुरेकैकश्येन भारत ॥ ३९ ॥

हे तात ! भारत ! उनके भोजन कर चुकनेपर उन वनिताओंने एक एक करके उन्हें बार बार अन्तःपुरके उस मनोहर प्रमदावनको दिखाया ॥ ३९ ॥

क्रीडन्त्यश्च हसन्त्यश्च गायन्त्यश्चैव ताः शुकम् ।
उदारसत्त्वं सत्त्वज्ञाः स्त्रियः पर्यचरंस्तदा ॥ ४० ॥

वे सब हंसती, खेलती और गाती हुई मनके भावको समझनेवाली वे स्त्रियां उस उदार प्रकृतिवाले शुकदेवकी सेवा करने लगीं ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आरणेयस्तु शुद्धात्मा त्रिसंदेहस्त्रिकर्मकृत् ।
वश्येन्द्रियो जितक्रोधो न हृष्यति न कुप्यति ॥ ४१ ॥

शुद्धबुद्धि, तीन शंकाओंसे रहित, तीन– श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन– कर्मोंके कर्ता, इद्रियोंको वशमें करनेवाले, क्रोध जीतनेवाले, अरणीसे उत्पन्न शुकदेव उससे हर्षित वा कुपित न हुए ॥ ४१ ॥

तस्मै शय्यासनं दिव्यं वरार्हं रत्नभूषितम् ।
स्पर्ध्यास्तरणसंस्तीर्णं ददुस्ताः परमस्त्रियः ॥ ४२ ॥

उन वाखनिताओंने उन्हें देवयोग्य, रत्नभूषित, बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त, दिव्य शय्या और आसन प्रदान किया ॥ ४२ ॥

पादशौचं तु कृत्वैव शुकः संध्यामुपास्य च ।
निषसादासने पुण्ये तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥ ४३ ॥

शुकदेव मुनि हाथ-पैर धोकर संध्योपासना समाप्त करके, पवित्र आसनपर बैठकर मोक्ष-विषयकाही चिन्तन करने लगे ॥ ४३ ॥

पूर्वरात्रे तु तत्रासौ भूत्वा ध्यानपरायणः ।
मध्यरात्रे यथान्यायं निद्रामाहारयत्प्रभुः ॥ ४४ ॥

उन्होंने पूर्व रात्रिमें ध्यानपरायण रहके, मध्यरात्रि यथान्यायसे निद्रामें बितायी ॥ ४४ ॥

ततो मुहूर्तादुत्थाय कृत्वा शौचमनन्तरम् ।
स्त्रीभिः परिवृतो धीमान्ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ ४५ ॥

फिर मुहूर्तकालके अनन्तर उठके शौच–स्नान कार्य समाप्त कर बुद्धिमान् शुकदेव फिर स्त्रियोंके बीच घिरकर ध्यान करने लगे ॥ ४५ ॥

अनेन विधिना कार्ष्णिस्तदहःशेषमच्युतः ।
तां च रात्रिं नृपकुले वर्तयामास भारत ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥ ११३०६ ॥

हे भारत ! कृष्णद्वैपायननन्दन धैर्यसे च्युत न हुए, शुकदेव इस ही भांति विधिपूर्वक उस राजभवनमें दिन और रात्रि व्यतीत करने लगे ॥ ४६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१२ ॥ ११३०६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३१३ :

भीष्म उवाच—

ततः स राजा जनको मन्त्रिभिः सह भारत ।
पुरः पुरोहितं कृत्वा सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे भारत ! अनन्तर राजा जनक मन्त्रियोंके सहित पुरोहित और सब अन्तः-पुरवासी स्त्रियोंको आगे करके ॥ १ ॥

आसनं च पुरस्कृत्य रत्नानि विविधानि च ।
शिरसा चार्घ्यमादाय गुरुपुत्रं समभ्यगात् ॥ २ ॥

विविध रत्न और आसनोंके साथ सिरपर अर्घ्य ग्रहण करके गुरुपुत्रके निकट उपस्थित हुए ॥ २ ॥

स तदासनमादाय बहुरत्नविभूषितम् ।
स्पर्ध्यास्तरणसंस्तीर्णं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ ३ ॥

उन्होंने पुरोहितके जरिये गृहीत, परम पूजित, अनेक रत्नोंसे भूषित, बहुगूल्य वस्त्रसे युक्त, समृद्धिसे सम्पन्न सर्वतोभद्र आसनको ॥ ३ ॥

पुरोधसा संगृहीतं हस्तेनालभ्य पार्थिवः ।
प्रददौ गुरुपुत्राय शुकाय परमार्चितम् ॥ ४ ॥

पुरोहितके हाथसे अपने हाथमें ग्रहण करके राजा जनकने वह गुरुपुत्र शुकदेवको दिया ॥४॥

तत्रोपविष्टं तं कार्ष्णिं शास्त्रतः प्रत्यपूजयत् ।
पाद्यं निवेद्य प्रथममर्घ्यं गां च न्यवेदयत् ।
स च तां मन्त्रवत्पूजां प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ ५ ॥

पृथ्वीपति जनकने उस आसनपर बैठे हुए शुकदेवकी शास्त्रके अनुसार पूजा की; पहले पाद्य, फिर अर्घ्य देकर एक गऊ दान किया। शुकदेवने भी यथाविधिसे मन्त्रके अनुसार प्राप्त हुई पूजा प्रतिग्रह की ॥ ५ ॥

प्रतिगृह्य च तां पूजां जनकाद्द्विजसत्तमः ।
गां चैव समनुज्ञाय राजानमनुमान्य च ॥ ६ ॥

द्विजसत्तम शुकदेवने राजा जनकसे पूजापतिग्रह और गोदान ग्रहण कर राजाका सम्मान करके ॥ ६ ॥

पर्यपृच्छन्महातेजा राज्ञः कुशलमव्ययम् ।
अनामयं च राजेन्द्रः शुकः सानुचरस्य ह ॥ ७ ॥

फिर महातेजस्वी शुकदेवने उनका अव्यय कुशल पूछा। हे राजेन्द्र ! शुकदेवने सेवकोंके सहित राजाके आरोग्यका समाचार भी पूछा ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अनुज्ञातः स तेनाथं निषसाद सहानुगः ।
उदारसत्त्वाभिजनो भूमौ राजा कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

उदारप्रकृति राजा हाथ जोडके खडे रहे और उनकी आज्ञा पाके अनुचरोंके सहित पृथ्वीपर बैठ गये ॥ ८ ॥

कुशलं चाव्ययं चैव पृष्ट्वा वैयासकिं नृपः ।
किमागमनमित्येव पर्यपृच्छत पार्थिवः ॥ ९ ॥

फिर राजाने व्यास पुत्रसे कुशल और अनामय प्रश्न करके, किस निमित्तसे यहां आपका आगमन हुआ है, यह पूछा ॥ ९ ॥

शुक उवाच—

पित्राहमुक्तो भद्रं ते मोक्षधर्मार्थकोविदः ।
विदेहराजो याज्यो मे जनको नाम विश्रुतः ॥ १० ॥

शुकदेव बोले– हे महाराज ! आपका मङ्गल हो। मेरे पिताने मुझसे कहा है, कि " विख्यात विदेहराज जनक मेरे यजमान हैं " वह मोक्षधर्मविषयके विशेषज्ञ हैं ॥ १० ॥

तत्र गच्छस्व वै तूर्णं यदि ते हृदि संशयः ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा स ते छेत्स्यति संशयम् ॥ ११ ॥

यदि तुम्हारे अन्तःकरणमें मोक्षविषयमें कुछ संशय हो, तो शीघ्र ही उनके निकट जाओ। प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयमें तुम्हें जो कुछ सन्देह है, वह उसे छुडा देगें ॥ ११ ॥

सोऽहं पितुर्नियोगात्त्वामुपप्रष्टुमिहागतः ।
तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

हे धार्मिकप्रवर ! इसही कारण मैं पिताकी आज्ञानुसार मोक्षकी वार्त्ता पूछनेके लिये आपके निकट आया हूं; इसलिये मेरे समीप उक्त विषयको आप यथावत् वर्णन करिये ॥ १२ ॥

किं कार्यं ब्राह्मणेनेह मोक्षार्थश्च किमात्मकः ।
कथं च मोक्षः कर्तव्यो ज्ञानेन तपसापि वा ॥ १३ ॥

इस लोकमें ब्राह्मणको क्या करना चाहिये ? मोक्षके विषय कैसे हैं, और ज्ञान अथवा तपस्याके जरिये किस प्रकार मोक्षको प्राप्त किया जा सकता है ? ॥ १३ ॥

जनक उवाच—

यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह जन्मप्रभृति तच्छृणु ।
कृतोपनयनस्तात भवेद्वेदपरायणः ॥ १४ ॥

जनक बोले– हे तात ! इस लोकमें जन्म प्रभृति ब्राह्मणके जो कर्त्तव्य हैं, उसे सुनो। उपनयनके अनन्तर ब्राह्मण वेदपरायण होवे ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण चाभिभो ।
देवतानां पितॄणां चाप्यनृणश्चानसूयकः ॥ १५ ॥

प्रभो ! तपस्या, गुरुसेवा और ब्रह्मचर्यके जरिये असूयारहित होके देवता और पितरोंसे अऋणी होवे ॥ १५ ॥

वेदानधीत्य नियतो दक्षिणामपवर्ज्य च ।
अभ्यनुज्ञामथ प्राप्य समावर्तेत वै द्विजः ॥ १६ ॥

संयमपूर्वक रहके सदा वेदाध्ययन समाप्त करके गुरुदक्षिणा देकर, उनकी आज्ञासे गृहपर लौट आवे ॥ १६ ॥

समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये स्वदारो नियतो वसेत् ।
अनसूयुर्यथान्यायमाहिताग्निस्तथैव च ॥ १७ ॥

घर लौटनेपर विवाह करके गार्हस्थ्यधर्मका अवलम्बन करके निज स्त्रीमें रत होकर वास करे; किसीकी असूया न करे और यथान्यायसे अग्निमें आहुति दे ॥ १७ ॥

उत्पाद्य पुत्रपौत्रं तु वन्याश्रमपदे वसेत् ।
तान्येवाग्नीन्यथाशास्त्रमर्चयन्नतिथिप्रियः ॥ १८ ॥

फिर पुत्र और पौत्र उत्पन्न करनेके अनन्तर वनमें जाकर वानप्रस्थाश्रममें रहे; वहां भी शास्त्र-विधिके अनुसार अग्नियोंकी पूजा करके अतिथियोंका प्रीतिपूर्वक आदर सत्कार करे ॥ १८॥

स वनेऽग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित् ।
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा ब्रह्माश्रमपदे वसेत् ॥ १९ ॥

वह धर्म जाननेवाला ब्राह्मण वनके बीच विधिपूर्वक आत्माको अग्निस्वरूप जानके सुखदुःखसे रहित विरागी होकर संन्यास आश्रममें निवास करे ॥ १९ ॥

शुक उवाच—

उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने प्रत्यक्षे हृदि शाश्वते ।
किमवश्यं निवस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु च ॥ २० ॥

शुकदेव बोले— हे प्रजानाथ ! सुख—दुःख रहित अन्तःकरणमें यदि शाश्वत ज्ञान और विज्ञान अर्थात् शास्त्रज बुद्धि तथा अनुभव उत्पन्न हो, तो क्या गार्हस्थ्य आदि आश्रमोंमें तथा वनमें अवश्यही वास करना होगा ? ॥ २० ॥

एतद्ब्रवन्तं पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
यथावेदार्थतत्त्वेन ब्रूहि मे त्वं जनाधिप ॥ २१ ॥

राजन् ! इसे ही मैं पूछता हूं; आप मेरे निकट इस ही विषयको वेदार्थके अनुसार कहिये ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जनक उवाच—

न विना ज्ञानविज्ञानं मोक्षस्याधिगमो भवेत् ।
न विना गुरुसंबन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ॥ २२ ॥

जनक बोले— ज्ञान तथा विज्ञानके विना मोक्षलाभ नहीं होता और गुरूपदेशके विना ज्ञान प्राप्त होना संभव नहीं है ॥ २२ ॥

आचार्यः प्लाविता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते ।
विज्ञान कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत् ॥ २३ ॥

गुरु ज्ञानरूपी नौकाके जरिये शिष्यको संसारके पार उतारता है, इस ही लिये गुरुको प्लावयिता और ज्ञानको प्लव कहा जाता है। ज्ञानसे कृतकृत्य और उत्तीर्ण होकर उन दोनोंको परित्याग करे ॥ २३ ॥

अनुच्छेदाय लोकानामनुच्छेदाय कर्मणाम् ।
पूर्वैराचरितो धर्मश्चातुराश्रम्यसंकथः ॥ २४ ॥

लोक मर्यादा और कर्म परम्परा नष्ट न हों इस ही लिये पहलेके आचार्य चारों आश्रमोंका वर्णधर्मोंके सहित अनुष्ठान करते थे ॥ २४ ॥

अनेन क्रमयोगेन बहुजातिषु कर्मणा ।
कृत्वा शुभाशुभं कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते ॥ २५ ॥

इसी प्रकार क्रमशः अनेक प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे यहां मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥

भावितैः कारणैश्चायं बहुसंसारयोनिषु ।
आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं वै प्रथमाश्रमे ॥ २६ ॥

यह जीव संसारमें बहुत बार जन्म लेकर शोधित—पवित्र बुद्धिके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेसे प्रथम आश्रममें अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रममें ही मोक्षभाजन हो सकता है ॥ २६ ॥

तमासाद्य तु मुक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चितः ।
त्रिष्वाश्रमेषु को न्वर्थो भवेत्परमभीप्सतः ॥ २७ ॥

ब्रह्मचर्य आश्रममें ही जिसकी चित्तशुद्धि होती है, उस कृतकृत्य विपश्चित् पुरुषको अन्य तीनों आश्रमोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २७ ॥

राजसांस्तामसांश्चैव नित्यं दोषान्विवर्जयेत् ।
सात्त्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना ॥ २८ ॥

राजस और तामस दोनों दोषोंको सदाही परित्याग करे और सात्विक पथका सहारा करके बुद्धिके द्वारा आपही अपनेको अवलोकन करे ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
संपश्यन्नोपलिप्येत जले वारिचरो यथा ॥ २९ ॥

सब भूतोंमें अनुगत आत्माको और आत्मामें अनुगत सब भूतोंको देखते हुए, जलके बीच हंस आदिकी भांति संसारमें निर्लिप्त रहे ॥ २९ ॥

पक्षीव भुवनादूर्ध्वमसुत्रानन्त्यमश्नुते ।
विहाय देहं निर्मुक्तो निर्द्वन्द्वः प्रशमं गतः ॥ ३० ॥

जैसे पक्षी घोंसलेको छोडकर ऊपर उड जाता है, उसी तरह वह मुक्त पुरुष देहसे पृथक् हो, निर्द्वंद्व और शान्त होकर परलोकमें मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अत्र गाथाः पुरा गीताः शृणु राज्ञा ययातिना ।
धार्यन्ते या द्विजैस्तात मोक्षशास्त्रविशारदैः ॥ ३१ ॥

हे तात ! इस विषयमें पहले समयके ययाति राजाकी कही हुई गाथाओंको मोक्षशास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मण लोग धारण किया करते हैं, उसेही कहता हूं, सुनो ॥ ३१ ॥

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र रतं तत्रैव चैव तत् ।
स्वयं च शक्यं तद्द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥ ३२ ॥

चिन्मात्र ज्योति केवल हृदयाधिष्ठानमें निवास करती है, अन्यत्र उसका सहारा नहीं है और वह वहीं रत रहती है; जिसका चित्त स्थिर हुआ है, वह स्वयं ही उसे देखता है ॥ ३२ ॥

न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः ।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३३ ॥

जिससे दूसरा कोई प्राणी भीत नहीं होता और जो दूसरेसे नहीं डरता, तथा जिसे इच्छा वा द्वेष नहीं है, वही ब्रह्मभाव लाभ करता है ॥ ३३ ॥

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पातकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३४ ॥

जब मनुष्य मन, वचन और कर्मके जरिये सब प्राणियोंके विषयमें पापकी इच्छा नहीं करता, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ३४ ॥

संयोज्य तपसात्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम् ।
त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते ॥ ३५ ॥

मोहिनी ईर्ष्या, कामना और लोभका त्याग करके अपने तपोबलसे मनको आत्मामें संयुक्त करनेसे वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाप्ययम् ।
समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३६ ॥

जब यह जीव सब भूतोंमें तथा सुनने और देखने योग्य विषयोंमें समता ज्ञान करके सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो जाता है, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करता है ॥ ३६ ॥

यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेनैव पश्यति ।
काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च ॥ ३७ ॥

जब यह स्तुति और निन्दाको समान भावसे समझता है, सुवर्ण और लोहा, सुख-दुःख, ॥३७॥

शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम् ।
जीवितं मरणं चैव ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३८ ॥

सर्दी–गर्मी, अर्थ–अनर्थ, प्रिय–अप्रिय, जीने और मरनेको समभावसे देखता है, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है ॥ ३८ ॥

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः ।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा ॥ ३९ ॥

जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको पसारके फिर उसे समेट लेता है, वैसेही संन्यासीको मनके जरिये इन्द्रियोंको संयम करना उचित है ॥ ३९ ॥

तमःपरिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते ।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम् ॥ ४० ॥

जैसे अन्धकारसे छिपा हुआ गृह दियेके जरिये दीखता है, वैसे ही बुद्धि–ज्ञान रूपी दीपके जरिये अज्ञानान्धकारसे आवृत्त आत्माको देखनेमें समर्थ हो सकता है ॥ ४० ॥

एतत्सर्वं च पश्यामि त्वयि बुद्धिमतां वर ।
यच्चान्यदपि वेत्तव्यं तत्त्वतो वेद तद्भवान् ॥ ४१ ॥

हे बुद्धिमत्प्रवर ! तुममें इन सब भावोंको मैं देखता हूं; मैंने जो कहा, उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ जानना होता है, उसे तुम यथार्थरीतिसे जानते हो ॥ ४१ ॥

ब्रह्मर्षे विदितश्चासि विषयान्तमुपागतः ।
गुरोस्तव प्रसादेन तव चैवोपशिक्षया ॥ ४२ ॥

हे ब्रह्मर्षि ! तुमने पिताकी कृपा तथा पिताके समीप शिक्षा पाके विषयाभिलाष परित्याग की है, यह मुझे मालूम है ॥ ४२ ॥

तस्यैव च प्रसादेन प्रादुर्भूतं महामुने ।
ज्ञानं दिव्यं ममापीदं तेनासि विदितो मम ॥ ४३ ॥

हे महामुनि ! उन्हींकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसहीसे मैं तुम्हारे तत्त्वको जानता हूं ॥ ४३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अधिकं तव विज्ञानमधिका च गतिस्तव ।
अधिकं च तवैश्वर्यं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ ४४ ॥

मुझसे बढके तुम्हें अधिक विज्ञान, श्रेष्ठ गति और परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, परन्तु तुम उसे समझ नहीं सकते हो ॥ ४४ ॥

बाल्याद्वा संशयाद्वापि भयाद्वाप्यविमोक्षजात् ।
उत्पन्ने चापि विज्ञाने नाधिगच्छति तां गतिम् ॥ ४५ ॥

मनुष्यको विज्ञान उत्पन्न होनेपर भी बाल स्वभावके कारण, संशय अथवा अविमोक्षजनित भयसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४५ ॥

व्यवसायेन शुद्धेन मद्विधैरिछन्नसंशयः ।
विमुच्य हृदयग्रन्थीनासादयति तां गतिम् ॥ ४६ ॥

मेरे समान पुरुषोंके जरिये सन्देह दूर होनेपर वह विशुद्ध व्यवहारके सहारे हृदयकी ग्रन्थियोंको छुडाके उस परमगतिको प्राप्त कर सकता है ॥ ४६ ॥

भवांश्चोत्पन्नविज्ञानः स्थिरबुद्धिरलोलुपः ।
व्यवसायादृते ब्रह्मन्नासादयति तत्परम् ॥ ४७ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुममें विज्ञान उत्पन्न हुआ है, तुम्हारी बुद्धि भी स्थिर हुई है, तुमने विषयवासनाको परित्याग किया है, किन्तु विशुद्ध निश्चयके विना कोई उस परम पदको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

नास्ति ते सुखदुःखेषु विशेषो नासि लोलुपा ।
नौत्सुक्यं नृत्यगीतेषु न राग उपाजायते ॥ ४८ ॥

सुख–दुःखमें तुम्हें विशेष नहीं है, तुम्हारी बुद्धि विषयोंमें लोलुप नहीं है, नृत्यगीत आदि देखने, सुननेमें उत्सुक नहीं है और उसे देखनेपर भी तुम्हें अनुराग नहीं उत्पन्न होता है; ॥ ४८ ॥

न बन्धुषु निबन्धस्ते न भयेष्वस्ति ते भयम् ।
पश्यामि त्वां महाभाग तुल्यलोष्टाश्मकाञ्चनम् ॥ ४९ ॥

बन्धुजनोंके प्रति तुम्हारी कुछ आसक्ति नहीं है, भयजनक विषयोंमें भी तुम्हें भय नहीं है। हे महाभाग ! मैं तुम्हें मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समदर्शी देखता हूं ॥ ४९ ॥

अहं च त्वानुपश्यामि ये चाप्यन्ये मनीषिणः ।
आस्थितं परमं मार्गमक्षयं तमनामयम् ॥ ५० ॥

मैं तथा दूसरे जो सब मनीषी पुरुष हैं, सब कोई तुम्हें उस अक्षय और अनामय परम पथमें आरोहण करके निवास करते हुए देख रहे हैं ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) : Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्फलं ब्राह्मणस्येह मोक्षार्थश्च यदात्मकः ।
तस्मिन्वै वर्तसे विप्र किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥ ११३५७ ॥

हे ब्रह्मन् ! इस लोकमें ब्राह्मणको जो प्रयोजन है और मोक्षका जैसा स्वरूप है, उसहीमें तुम विद्यमान हो, दूसरा और क्या पूछना चाहते है ? ॥ ५१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१३ ॥ ११३५७ ॥

: ३१४ :

भीष्म उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं कृतात्मा कृतनिश्चयः ।
आत्मनात्मानमास्थाय दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ॥ १ ॥

भीष्म बोले— शुद्धबुद्धि शुकदेवने राजर्षि जनकसे ऐसे वचन सुनके आत्मनिश्चय करके आप ही अपनेको अवलम्बन और स्वयं ही अपना दर्शन करते हुए ॥ १ ॥

कृतकार्यः सुखी शान्तस्तूष्णीं प्रायादुदङ्मुखः ।
शैशिरं गिरिमुद्दिश्य सधर्मा मातरिश्वनः ॥ २ ॥

कृतकृत्य, सुखी, शान्त और मौनावलम्बी होकर हिमालय पहाडके ऊपर जानेकी इच्छासे उत्तरकी ओर वायुकी भांति गमन किया ॥ २ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवर्षिर्नारदस्तदा ।
हिमवन्तमियाद्द्रष्टुं सिद्धचारणसेवितम् ॥ ३ ॥

इतने ही समयमें देवर्षि नारद सिद्ध और चारणोंसे सेवित हिमशैलको देखनेके निमित्त वहां पर उतरे ॥ ३ ॥

तमप्सरोगणाकीर्णं गीतस्वननिनादितम् ।
किंनराणां समूहैश्च भृङ्गराजैस्तथैव च ॥ ४ ॥

हिमालय पर्वत अप्सराओंसे परिपूरित, किन्नरोंके समूहोंके गीतोंके मधुर स्वरोंसे निनादित था, भृङ्गराज वृक्षोंपर सुशोभित थे; ॥ ४ ॥

मदगुभिः खञ्जरीटैश्च विचित्रैर्जीवजीवकैः ।
चित्रवर्णैर्मयूरैश्च केकाशतविराजितैः ।
राजहंससमूहैश्च हृष्टैः परभृतैस्तथा ॥ ५ ॥

कारण्डव, खञ्जरीट, विचित्र चकोर, सैकडों कुहुक ध्वनिसे युक्त चित्र वर्णके मोर, राजहंसोंके समुदाय और परम हर्षयुक्त कोकिलोंसे परिपूर्ण था ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पक्षिराजो गरुत्मांश्च यं नित्यमधिगच्छति ।
चत्वारो लोकपालाश्च देवाः सर्षिगणास्तथा ।
यत्र नित्यं समायान्ति लोकस्य हितकाम्यया ॥ ६ ॥

पक्षिराज गरुड जिसपर सदा निवास करते हैं, इन्द्र आदि चारों लोकपाल और ऋषियोंके सहित देवता लोग लोककी हितकामनासे वहां सदा इकट्ठे हुआ करते हैं ॥ ६ ॥

विष्णुना यत्र पुत्रार्थे तपस्तप्तं महात्मना ।
यत्रैव च कुमारेण बाल्ये क्षिप्ता दिवौकसः ॥ ७ ॥

महानुभाव विष्णुने जिस स्थानमें पुत्रके निमित्त तपस्या की थी, उस ही स्थानमें बाल्यावस्थामें पार्वतीपुत्र कुमारकार्तिकेयने देवताओंपर आक्षेप किया था ॥ ७ ॥

शक्तिर्न्यस्ता क्षितितले त्रैलोक्यमवमन्य वै ।
यत्रोवाच जगत्स्कन्दः क्षिपन्वाक्यमिदं तदा ॥ ८ ॥

और एक शक्ति छोडी थी, वह शक्ति तीनों लोकोंकी अवज्ञा करके पृथ्वीपर गिरी थी। उस समय कार्तिकेयने उस ही स्थानमें सब जगत्पर आक्षेप करके यह वचन कहा ॥ ८ ॥

योऽन्योऽस्ति मत्तोऽभ्यधिको विप्रा यस्याधिकं प्रियाः ।
यो ब्रह्मण्यो द्वितीयोऽस्ति त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥ ९ ॥

जो कोई भी दुसरा पुरुष मुझसे अधिक बलवान् हो, जिसे ब्राह्मण लोग अधिक प्रिय हों और जो दुसरा व्यक्ति मुझसे भी आज्ञा पालन करनेके विषयमें तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय वीर्यवान् हो, ॥ ९ ॥

सोऽभ्युद्धरत्विमां शक्तिमथ वा कम्पयत्विति ।
तच्छ्रुत्वा व्यथिता लोकाः कः इमामुद्धरेदिति ॥ १० ॥

वह इस शक्तिको उठावे अथवा चलावे। कार्तिकेयका ऐसा वचन सुनके "इस शक्तिको कौन उठावेगा" ऐसा सोचकर सब लोग व्यथित हुए ॥ १० ॥

अथ देवगणं सर्वं संभ्रान्तेन्द्रियमानसम् ।
अपश्यद्भगवान्विष्णुः क्षिप्तं सासुरराक्षसम् ।
किं न्वत्र सुकृतं कार्यं भवेदिति विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

अनन्तर भगवान् विष्णुने देखा कि सब देवता चञ्चलेन्द्रिय तथा सम्भ्रान्तचित्त होकर व्याकुल हुए हैं और असुर तथा राक्षसोंसहित सब जगत्पर आक्षेप किया गया है, फिर उस विषयमें क्या करना चाहिये, ऐसी चिन्ता करने लगे ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स नामृष्यत तं क्षेपमवैक्षत च पावकिम् ।
स प्रहस्य विशुद्धात्मा शक्तिं प्रज्वलितां तदा ।
कम्पयामास सव्येन पाणिना पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

उस आक्षेपको सहन न करके विशुद्धात्मा विष्णुने उस अग्निपुत्र स्कन्धकी ओर देखा । फिर उन पुरुषोत्तमने उस समय हंसकर उस प्रज्वलित शक्तिको बायें हाथसे उठाकर हिला दिया ॥ १२ ॥

शक्त्यां तु कम्पमानायां विष्णुना बलिना तदा ।
मेदिनी कम्पिता सर्वा सशैलवनकानना ॥ १३ ॥

बलशाली भगवान् विष्णुके जरिये उस शक्तिके कम्पित किये जानेपर पहाड, बन और महारण्योंके सहित सारी पृथ्वी कांपने लगी ॥ १३ ॥

शक्तेनापि समुद्धर्तुं कम्पिता सा न तूद्धृता ।
रक्षता स्कन्दराजस्य धर्षणां प्रभविष्णुना ॥ १४ ॥

प्रभावशाली भगवान् विष्णु उस शक्तिको उखाडकर फेंकनेमें समर्थ होनेपर भी उस समय उन्होंने कुमारका तिरस्कार नहीं किया; उन्हें अपमानसे बचाया ॥ १४ ॥

तां कम्पयित्वा भगवान्प्रहादमिदमब्रवीत् ।
पश्य वीर्यं कुमारस्य नैतदन्यः करिष्यति ॥ १५ ॥

भगवान् उस शक्तिको हिलाकर प्रह्लादसे बोले– कुमारका बल देखो; दूसरा कोई इस कार्यको करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १५ ॥

सोऽमृष्यमाणस्तद्वाक्यं समुद्धरणनिश्चितः ।
जग्राह तां तस्य शक्तिं न चैनामप्यकम्पयत् ॥ १६ ॥

हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादने भगवान्के वचनको सहन न कर, स्वयं ही उस शक्तिको उठानेका निश्चय करके उस ही समय उसे ग्रहण किया; परन्तु वह उसे विचलित न कर सका ॥ १६ ॥

नादं महान्तं मुक्त्वा स मूर्छितो गिरिमूर्धनि ।
विह्वलः प्रापतद्भूमौ हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ १७ ॥

हिरण्यकशिपुपुत्र प्रल्हाद उस समय बहुत जोरसे चिल्लाके पहाडके शिखरपर मूर्छित और विह्वल होके गिर पडा ॥ १७ ॥

यत्रोत्तरां दिशं गत्वा शैलराजस्य पार्श्वतः ।
तपोऽतप्यत दुर्धर्षस्तात नित्यं वृषध्वजः ॥ १८ ॥

तात ! उसही स्थानमें शैलराजके पार्श्वभागमें उत्तर दिशाकी ओर जाके वृषभध्वज महादेव नित्य अति कठोर तपस्या करते थे ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पावकेन परिक्षिप्तो दीप्यता तस्य चाश्रमः ।
आदित्यबन्धनं नाम दुर्धर्षमकृतात्मभिः ॥ १९ ॥

भगवान् शंकरके उस आश्रमको प्रकाशमान अग्निने चारों ओरसे घेर रक्खा है; उसका नाम आदित्य बन्धन है, पुण्यहीन पुरुष कदापि उस पर चढ नहीं सकते हैं ॥ १९ ॥

न तत्र शक्यते गन्तुं यक्षराक्षसदानवैः ।
दशयोजनविस्तारमग्निज्वालासमावृतम् ॥ २० ॥

यक्ष, राक्षस और दानव लोग वहां जानेमें समर्थ नहीं हैं, उसकी दस योजनकी लम्बाई है और वह अग्निज्वालाओंसे परिपूरित है ॥ २० ॥

भगवान्पावकस्तत्र स्वयं तिष्ठति वीर्यवान् ।
सर्वविघ्नान्प्रशमयन्महादेवस्य धीमतः ॥ २१ ॥
दिव्यं वर्षसहस्रं हि पादेनैकेन तिष्ठतः ।
देवान्संतापयंस्तत्र महादेवो धृतव्रतः ॥ २२ ॥

धीमान् महादेवके दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्षोंतक वहांपर एक पैरसे खडे रहनेपर वीर्यशाली भगवान् अग्नि उनकी तपस्याके सब विघ्नोंको नाश करते हुए वहां स्वयं स्थित रहते थे। महान् व्रतोंका पालन करनेवाले महादेवने देवताओंको सन्ताप देते हुए वहांपर अत्यन्त महत् तपस्या की थी ॥ २१-२२ ॥

ऐन्द्रीं तु दिशमास्थाय शैलराजस्य धीमतः ।
विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः ।
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान्महातपाः ॥ २३ ॥

पराशरपुत्र महातपस्वी व्यासदेव उस ही शैलराजकी पूर्वदिशाको अवलम्बन करके एकान्त स्थलमें पर्वतके शिष्योंको वेद पढाते थे ॥ २३ ॥

सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च ।
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥ २४ ॥

सुमन्तु, महाभाग वैशम्पायन, महाप्राज्ञ जैमिनि और तपस्वीप्रवर पैल-इन चार शिष्योंको वेद पढाते थे ॥ २४ ॥

एभिः शिष्यैः परिवृतो व्यास आस्ते महातपाः ।
तत्राश्रमपदं पुण्यं ददर्श पितुरुत्तमम् ।
आरणेयो विशुद्धात्मा नभसीव दिवाकरः ॥ २५ ॥

इन शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी वेदव्यास जिस स्थानमें निवास करते थे, आकाशमण्डल-स्थित सूर्यके समान विशुद्धात्मा अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके उस ही रमणीय पुण्यमय आश्रमस्थानको देखा ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ व्यासः परिक्षिप्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
ददृशे सुतमायान्तं दिवाकरसमप्रभम् ॥ २६ ॥

अनन्तर व्यासदेवने जलती हुई तथा सूर्यके समान तेजस्वी अपनी प्रभासे शोभित हुए अपने पुत्रको आते देखा ॥ २६ ॥

असज्जमानं वृक्षेषु शैलेषु विषयेषु च ।
योगयुक्तं महात्मानं यथा बाणं गुणच्युतम् ॥ २७ ॥

वृक्ष, पहाड और विषयोंमें अनासक्त योगयुक्त महानुभाव शुकदेव धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणकी भांति तीव्र गतिसे आते थे; ॥ २७ ॥

सोऽभिगम्य पितुः पादावगृह्णादरणीसुतः ।
यथोपजोषं तैश्चापि समागच्छन्महामुनिः ॥ २८ ॥

अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके समीप पहुंचके उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया और वह महामुनि पिताके अन्य शिष्योंसे शान्त भावसे यथा उचित मिले ॥ २८ ॥

ततो निवेदयामास पित्रे सर्वमशेषतः ।
शुको जनकराजेन संवादं प्रीतमानसः ॥ २९ ॥

अनन्तर जनकराजके सङ्ग उनकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे प्रसन्न चित्तसे पिताके समीप आदिसे अन्ततक वर्णन किया ॥ २९ ॥

एवमध्यापयञ्शिष्यान्व्यासः पुत्रं च वीर्यवान् ।
उवास हिमवत्पृष्ठे पाराशर्यो महामुनिः ॥ ३० ॥

वीर्यवान् पराशरपुत्र महामुनि वेदव्यास हिमालयके ऊपर शिष्यगण और पुत्रको पढाते हुए इस ही भांति निवास करते थे ॥ ३० ॥

ततः कदाचिच्छिष्यास्तं परिवार्यावतस्थिरे ।
वेदाध्ययनसंपन्नाः शान्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ ३१ ॥

अनन्तर किसी समय वेदाध्ययनसम्पन्न, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय शिष्यवृन्द उन्हें घेरके स्थित थे, ॥ ३१ ॥

वेदेषु निष्ठां संप्राप्य साङ्गेष्वतितपस्विनः ।
अथोचुस्ते तदा व्यासं शिष्याः प्राञ्जलयो गुरुम् ॥ ३२ ॥

वे शिष्य लोग साङ्ग वेदाध्ययनमें पारङ्गत और तपस्वी थे; उस समय उन शिष्योंने हाथ जोडके गुरु व्यासदेवके निकट प्रार्थना की ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महता श्रेयसा युक्ता यशसा च स्म वर्धिताः ।
एकं त्विदानीमिच्छामो गुरुणानुग्रहं कृतम् ॥ ३३ ॥

आपने जो हमपर कृपा की है, उसहीसे हम महातेजस्वी और यशस्वी हुए हैं; इस समय हमें एक ही विषयकी अभिलाष है, आपको उसके निमित्त अनुग्रह करना होगा ॥ ३३ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मर्षिस्तानुवाच ह ।
उच्यतामिति तद्वत्सा यद्वः कार्यं प्रियं मया ॥ ३४ ॥

ब्रह्मर्षि व्यासदेव उन लोगोंका ऐसा वचन सुनके बोले, हे तात ! मुझे तुम लोगोंका जो कुछ प्रियकार्य करना होगा, उसे कहो ॥ ३४ ॥

एतद्वाक्यं गुरोः श्रुत्वा शिष्यास्ते हृष्टमानसाः ।
पुनः प्राञ्जलयो भूत्वा प्रणम्य शिरसा गुरुम् ॥ ३५ ॥

हे राजन् ! शिष्योंने गुरुका ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्तसे फिर हाथ जोड शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर ॥ ३५ ॥

ऊचुस्ते सहिता राजन्निदं वचनमुत्तमम् ।
यदि प्रीत उपाध्यायो धन्याः स्मो मुनिसत्तम ॥ ३६ ॥

सबने मिलके यह उत्तम वचन कहा । हे मुनिसत्तम ! उपाध्यायके प्रसन्न होनेसे हम लोग धन्य हुए ॥ ३६ ॥

काङ्क्षामस्तु वयं सर्वे वरं दातुं महर्षिणा ।
षष्ठः शिष्यो न ते ख्यातिं गच्छेदत्र प्रसीद नः ॥ ३७ ॥

आप हम लोगोंको यह वर दीजिये, कि इस लोकमें अब आपका छठवां शिष्य कीर्ति लाभ न कर सके; आप इस ही प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न होइये; हम सब ब्रह्मर्षिसे इस ही वरकी अभिलाषा करते हैं ॥ ३७ ॥

चत्वारस्ते वयं शिष्या गुरुपुत्रश्च पञ्चमः ।
इह वेदाः प्रतिष्ठेरन्नेष नः काङ्क्षितो वरः ॥ ३८ ॥

हम चार आपके शिष्य हैं और गुरुपुत्र पांचवां शिष्य है; हम पांच पुरुषोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित रहे, यही हमारा अभिलषित वर है ॥ ३८ ॥

शिष्याणां वचनं श्रुत्वा व्यासो वेदार्थतत्त्ववित् ।
पराशरात्मजो धीमान्परलोकार्थचिन्तकः ।
उवाच शिष्यान्धर्मात्मा धर्म्यं नैःश्रेयसं वचः ॥ ३९ ॥

वेदार्थके तत्वज्ञ, परलोकार्थ चिन्तक, पराशरपुत्र, बुद्धिमान्, धर्मात्मा व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके उनसे धर्मयुक्त कल्याणदायक वचन बोले ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणाय सदा देयं ब्रह्म शुश्रूषवे भवेत्
ब्रह्मलोके निवासं यो ध्रुवं समभिकाङ्क्षति ॥ ४० ॥

जो ब्रह्मलोकमें सदा वास करनेकी आकांक्षा करता है, वह वेद पढनेकी इच्छासे आये हुए ब्राह्मणको वेदाध्ययन करावे ॥ ४० ॥

भवन्तो बहुलाः सन्तु वेदो विस्तार्यतामयम् ।
नाशिष्ये संप्रदातव्यो नाव्रते नाकृतात्मनि ॥ ४१ ॥

तुम लोग बहुसंख्यक हो आओ और तुम लोग इस वेदका विस्तार करो । जो पुरुष शिष्य नहीं है, व्रत नहीं करता और जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है, उसे वेद न पढाना ॥ ४१ ॥

एते शिष्यगुणाः सर्वे विज्ञातव्या यथार्थतः ।
नापरीक्षितचारित्रे विद्या देया कथंचन ॥ ४२ ॥

इन सब शिष्यके गुणोंको यथार्थ रूपसे जानना चाहिये । जिसके सद्चरित्रकी परीक्षा नहीं हुई है, उस पुरुषको विद्या दान न करे ॥ ४२ ॥

यथा हि कनकं शुद्धं तापच्छेदनिघर्षणैः ।
परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत्कुलगुणादिभिः ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार तपाने, काटने और घिसनेसे शुद्ध-सुवर्णकी परीक्षा होती है, वैसे ही कुल, शील और गुणोंको देखकर शिष्योंकी परीक्षा करे ॥ ४३ ॥

न नियोज्याश्च वः शिष्या अनियोगे महाभये ।
यथामति यथापाठं तथा विद्या फलिष्यति ॥ ४४ ॥

तुम लोग शिष्योंको नियोगानर्ह महाभयजनक विषयोंमें नियुक्त न करना; तुम्हारे पढानेपर भी उसकी बुद्धि और पाठके अनुसार उसकी विद्या फलदायी होगी ॥ ४४ ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ४५ ॥

सभी लोग दुर्गम संकटसागरसे पार हों, और सभी अपना कल्याणका देखें । ब्राह्मणको अगाडी करके चारों वर्णोंको ही वेद सुनावे ॥ ४५ ॥

वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत्स्मृतम् ।
स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदाः सृष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४६ ॥

वेदोंका अध्ययन अत्यन्त महान् कार्य कहा गया है; देवताओंकी स्तुतिके निमित्त स्वयम्भू ब्रह्माने वेदोंको बनाया है ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यो निर्वदेत संमोहाद्ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
सोऽपध्यानाद्ब्राह्मणस्य पराभूयादसंशयम् ॥ ४७ ॥

जो पुरुष मोहवशसे वेद जाननेवाले ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह उसके अभीष्ट-चिन्तनके कारण निःसंदेह पराभूत होता है ॥ ४७ ॥

यश्चाधर्मेण विब्रूयाद्यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥ ४८ ॥

जो पुरुष अधर्मके अनुसार पूछता है और जो अधर्मपूर्वक उत्तर देता है, उनके बीच एक दूसरेका विद्वेषभाजन होता है अथवा परलोकमें गमन करता है ॥ ४८ ॥

एतद्वः सर्वमाख्यातं स्वाध्यायस्य विधिं प्रति ।
उपक्रुर्याच्च शिष्याणामेतच्च हृदि वो भवेत् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥ ११४०६ ॥

यह सब तुम्हारे समीप वेदपाठकी विधि कही गई; शिष्योंका उपकार करना होगा, तुम्हारे हृदयमें सदा ऐसी धारणा बनी रहे ॥ ४९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१४ ॥ ११४०६ ॥

: ३१५ :

भीष्म उवाच—

एतच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यं व्यासशिष्या महौजसः ।
अन्योऽन्यं हृष्टमनसः परिष्वजिरे तदा ॥ १ ॥

भीष्म बोले— महातेजस्वी व्यासशिष्योंने गुरुका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न चित्तसे परस्पर आलिङ्गन किया और कहने लगे ॥ १ ॥

उक्ताः स्मो यद्भगवता तदात्वायतिसंहितम् ।
तन्नो मनसि संरूढं करिष्यामस्तथा च तत् ॥ २ ॥

हे भगवन् ! हमें आपने जो आज्ञा दी है, वह वर्त्तमान और भविष्यकालमें अत्यन्त हितकर है, वह हमारे अतःकरणमें स्थित हुई; हम इसही आज्ञाके अनुसार आचरण करेंगे ॥ २ ॥

अन्योन्यं च सभाज्यैवं सुप्रीतमनसः पुनः ।
विज्ञापयन्ति स्म गुरुं पुनर्वाक्यविशारदाः ॥ ३ ॥

उन वाक्यविशारद शिष्योंने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे परस्पर इस ही प्रकार वार्तालाप करके फिर गुरुसे निवेदन किया ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शैलादस्मान्महीं गन्तुं काङ्क्षितं नो महामुने ।
वेदाननेकधा कर्तुं यदि ते रुचितं प्रभो ॥ ४ ॥

हे महामुनि ! प्रभो ! यदि आपकी संमति हो, तो वेदोंके अनेक विभाग करके उनका प्रचार करनेके लिये हम लोग इस पर्वतसे पृथ्वीतल पर गमन करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

शिष्याणां वचनं श्रुत्वा पराशरसुतः प्रभुः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ॥ ५ ॥

निग्रहानुग्रहमें समर्थ पराशरपुत्र व्यास देवने शिष्योंका वचन सुनके धर्मार्थसे युक्त हितकर वचनसे उत्तर दिया ॥ ५ ॥

क्षितिं वा देवलोकं वा गम्यतां यदि रोचते ।
अप्रमादश्च वः कार्यो ब्रह्म हि प्रचुरच्छलम् ॥ ६ ॥

हे शिष्यवृन्द ! यदि तुम लोगोंको ऐसी अभिलाष हुई हो, तो मनुष्य लोक अथवा देवलोक जहांपर तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ; तुम लोग सावधान रहना, वेदमें बहुत युक्तियां हैं, प्रमत्त होकर उसे भूल मत जाना ॥ ६ ॥

तेऽनुज्ञातास्ततः सर्वे गुरुणा सत्यवादिना ।
जग्मुः प्रदक्षिणं कृत्वा व्यासं मूर्ध्नाभिवाद्य च ॥ ७ ॥

अनन्तर उन लोगोंने सत्यवादी गुरुकी आज्ञा पाके उनकी प्रदक्षिणा की और शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके वहांसे चले ॥ ७ ॥

अवतीर्य महीं तेऽथ चातुर्होत्रमकल्पयन् ।
संयाजयन्तो विप्रांश्च राजन्यांश्च विशस्तथा ॥ ८ ॥

उन्होंने पृथ्वीमण्डलपर पहुंचके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके याजन कर्म करते हुए चातुर्होत्र अर्थात् अध्यात्म और अधियज्ञ कर्ममें अभेद दिखानेके लिये अग्निहोत्र आदि मन्त्रोंको प्रवर्तित किया ॥ ८ ॥

पूज्यमाना द्विजैर्नित्यं मोदमाना गृहे रताः ।
याजनाध्यापनरताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः ॥ ९ ॥

वे लोग गार्हस्थ्य धर्म अवलम्बन करके ब्राह्मणोंसे सदा पूजित होकर परम हर्षके सहित समय बिताने लगे; याजन और अध्यापन कार्य करते हुए वे श्रीसम्पन्न और लोकके बीच विख्यात हुए ॥ ९ ॥

अवतीर्णेषु शिष्येषु व्यासः पुत्रसहायवान् ।
तूष्णीं ध्यानपरो धीमानेकान्ते समुपाविशत् ॥ १० ॥

शिष्योंके हिमालय पर्वतसे पृथ्वीपर उतरनेके अनन्तर धीमान् द्वैपायन केवल पुत्रके सहित ध्यानपरायण और मौनी होकर एकान्तमें बैठे रहे ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तं ददर्शाश्रमपदे नारदः सुमहातपाः ।
अथैनमब्रवीत्काले मधुराक्षरया गिरा ॥ ११ ॥

उस समय महातपस्वी नारदने उन्हें उस आश्रममें देखा और मधुर वचनसे उनसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ११ ॥

भो भो महर्षे वासिष्ठ ब्रह्मघोषो न वर्तते ।
एको ध्यानपरस्तूष्णीं किमास्से चिन्तयन्निव ॥ १२ ॥

हे वशिष्ठवंशमें उत्पन्न हुए ब्रह्मर्षि ! अब वेदध्वनि नहीं सुन पडती, तुम अकेले ही क्या सोचते हुए ध्यानपरायण हो मौनावलम्बन करके बैठे हो ? ॥ १२ ॥

ब्रह्मघोषैर्विरहितः पर्वतोऽयं न शोभते ।
रजसा तमसा चैव सोमः सोमप्लवो यथा ॥ १३ ॥

यह पर्वत वेदध्वनिसे रहित हुआ है, इसीसे रज और तमोगुणसे परिपूरित होनेसे राहुग्रस्त चन्द्रमाकी भांति शोभित नहीं होता ॥ १३ ॥

न भ्राजते यथापूर्वं निषादानामिवालयः ।
देवर्षिगणजुष्टोऽपि वेदध्वनिनिराकृतः ॥ १४ ॥

जैसे पहले इसकी शोभा थी, इस समय वैसी नहीं है; यह देवर्षियोंसे सेवित होनेपर भी वेदध्वनिसे रहित होके निषादोंके स्थानके समान हुआ है ॥ १४ ॥

ऋषयश्च हि देवाश्च गन्धर्वाश्च महौजसः ।
विमुक्ता ब्रह्मघोषेण न भ्राजन्ते यथा पुरा ॥ १५ ॥

महातेजस्वी ऋषिवृन्द, देवता और गन्धर्व लोग वेदध्वनिसे हीन होकर पहलेकी भांति शोभा-युक्त हो प्रकाशित नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
महर्षे यत्त्वया प्रोक्तं वेदवादविचक्षण ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिने नारदका वचन सुनके कहा– हे वेदवादविचक्षण महर्षि ! तुमने जो कुछ कहा, ॥ १६ ॥

एतन्मनोनुकूलं मे भवानर्हति भाषितुम् ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वत्र च कुतूहली ॥ १७ ॥

वही मेरे मनके अनुकूल है; तुम्हीं इस विषयको कह सकते हो; तुम सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्वत्र कुतूहली हो; ॥ १७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्रिषु लोकेषु यद्वृत्तं सर्वं तव मते स्थितम् ।
तदाज्ञापय विप्रर्षे ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १८ ॥

तीनों लोकोंके बीच जो कुछ हुआ है, वह सब तुम्हारे मनमें विद्यमान है । हे विप्रर्षि ! अब मुझे क्या आज्ञा है, मैं तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं ? ॥ १८ ॥

यन्मया समनुष्ठेयं ब्रह्मर्षे तदुदाहर ।
वियुक्तस्येह शिष्यैर्मे नातिहृष्टमिदं मनः ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मर्षि ! मुझे जिस विषयका अनुष्ठान करना होगा, उसे कहो । शिष्योंसे पृथक् होनेसे मेरा मन अधिक प्रसन्न नहीं है ॥ १९ ॥

नारद उवाच—

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या वाहीकाः स्त्रीणां कौतूहलं मलम् ॥ २० ॥

नारद मुनि बोले— वेदोंकी अनावृत्ति—वेद पढकर उसका अभ्यास न करना— ही मल अर्थात् दोष है, ब्राह्मणको व्रत न करना ही दूषण है, वाहीक देशके लोग पृथ्वीके दूषण हैं, और स्त्रियोंको कौतूहल ही मल है ॥ २० ॥

अधीयतां भवान्वेदान्सार्धं पुत्रेण धीमता ।
विधुन्वन्ब्रह्मघोषेण रक्षोभयकृतं तमः ॥ २१ ॥

इसलिये तुम वेदध्वनिके जरिये राक्षस भय जनित अन्धकारको दूर करते हुए बुद्धिमान् पुत्रके सहित वेद पाठ करो ॥ २१ ॥

भीष्म उवाच—

नारदस्य वचः श्रुत्वा व्यासः परमधर्मवित् ।
तथेत्युवाच संहृष्टो वेदाभ्यासे दृढव्रतः ॥ २२ ॥

भीष्म बोले— परम धर्मज्ञ व्यासदेवने नारद मुनि वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित और वेदाभ्यासमें दृढव्रती होकर ' वही होगा ' ऐसा वचन कहा ॥ २२ ॥

शुकेन सह पुत्रेण वेदाभ्यासमथाकरोत् ।
स्वरेणोच्चैः स शैक्षेण लोकानापूरयन्निव ॥ २३ ॥

अनन्तर वह शिक्षाके नियमों सहित ऊंचे स्वरसे मानो सब लोकोंको पूरित करते हुए निज पुत्र शुकदेवके सहित वेदपाठ करने लगे ॥ २३ ॥

तयोरभ्यसतोरेवं नानाधर्मप्रवादिनोः ।
वातोऽतिमात्रं प्रववौ समुद्रानिलवेजितः ॥ २४ ॥

अनेक प्रकारके धर्मोंका प्रतिपादन करनेवाले उन पिता—पुत्रके इस प्रकार वेदाभ्यास करते रहने पर समुद्रानिलके जरिये सञ्चालित वायु अत्यन्त प्रबल वेगसे बहने लगा ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽनध्याय इति तं व्यासः पुत्रमवारयत् ।
शुको वारितमात्रस्तु कौतूहलसमन्वितः ॥ २५ ॥

अनन्तर इस समय अनध्याय है, इसलिये वेद पाठसे निवृत्त होजाओ, ऐसा वचन कहके वेदव्यासने पुत्रको निवारण किया । शुकदेवने निवारित होते ही इसका कारण जाननेके लिये कौतूहलयुक्त होकर ॥ २५ ॥

अपृच्छत्पितरं ब्रह्मन्कुतो वायुरभूदयम् ।
आख्यातुमर्हति भवान्वायोः सर्वं विचेष्टितम् ॥ २६ ॥

अपने पितासे पूछा, हे ब्रह्मन् ! यह वायु कहांसे प्रकट हुआ, आप इसका समस्त वृत्तान्त कहिये ॥ २६ ॥

शुकस्यैतद्वचः श्रुत्वा व्यासः परमविस्मितः ।
अनध्यायनिमित्तेऽस्मिन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

व्यासदेवने शुकदेवका वचन सुनके अत्यन्त विस्मययुक्त होकर वायु अनध्यायका निमित्त क्यों हुआ, उस विषयमें यह वचन कहा ॥ २७ ॥

दिव्यं ते चक्षुरुत्पन्नं स्वयं ते निर्मलं मनः ।
तमसा रजसा चापि त्यक्तः सत्त्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥

हे पुत्र ! तुम्हें दिव्य नेत्र व्यवहित पदार्थ दर्शन निबन्धन योगसंस्कृत भावसे उत्पन्न हुआ है, मन भी स्वयं निर्मल है; तुम तमोगुण और रजोगुणसे परित्यक्त होकर सर्वज्ञत्वादिके हेतुभूत शुद्ध सत्व गुणमें निवास करते हो ॥ २८ ॥

आदर्शे स्वामिव छायां पश्यस्यात्मानमात्मना ।
न्यस्यात्मनि स्वयं वेदान्बुद्ध्या समनुचिन्तय ॥ २९ ॥

जैसे दर्पणमें निज परछाई देखी जाती है, वैसे ही तुम आप ही अपनेको देखते हो; इसलिये अपनेमें वेदोंको विभावित करके निश्चयात्मिका अन्तःकरण वृत्तिको विचारो; अर्थात् वायु कहांसे उत्पन्न हुआ उसका विचार करो ॥ २९ ॥

देवयानचरो विष्णोः पितृयानश्च तामसः ।
द्वावेतौ प्रेत्य पन्थानौ दिवं चाधश्च गच्छतः ॥ ३० ॥

सर्वव्यापी परमात्माके निकटवर्ती होनेके लिये देवयान और पितृयान नाम दो मार्ग हैं; सात्विक उपासक लोग पुनरावृत्तिरहित जिस मार्गसे गमन करते हैं, उसका नाम देवयान है, और धूपादिपथके जरिये जिस पुनरावृत्तिप्रद स्थानमें गमन किया जाता है, उसे तामस पितृयान कहते हैं । परलोकमें गमन करनेके लिये ये दोही मार्ग हैं, इनके जरिये द्युलोक और भूलोकमें जीवोंका गमनागमन हुआ करता है ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथिव्यामन्तरिक्षे च यत्र संवान्ति वायवः ।
सप्तैते वायुमार्गा वै तान्निबोधानुपूर्वशः ॥ ३१ ॥

पृथ्वी और आकाशमण्डलमें जिस स्थान पर वायु गमन करता है, वह वायुके सञ्चारका स्थान सात प्रकारका है, इसलिये उन सात स्थानोंके विषयको विस्तारपूर्वक सुनो ॥ ३१ ॥

तत्र देवगणाः साध्याः समभूवन्महाबलाः ।
तेषामप्यभवत्पुत्रः समानो नाम दुर्जयः ॥ ३२ ॥

पृथ्वी और आकाशमें जो महाबलवान् साध्य नामक देवगण अदृश्य स्वरूपसे रहते हैं, उनके दुर्जय पुत्रका नाम समान है ॥ ३२ ॥

उदानस्तस्य पुत्रोऽभूद्व्यानस्तस्याभवत्सुतः ।
अपानश्च ततो ज्ञेयः प्राणश्चापि ततः परम् ॥ ३३ ॥

समानसे उदान, उदानसे व्यान, व्यानसे अपान और अपानसे श्रेष्ठ प्राण उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥

अनपत्योऽभवत्प्राणो दुर्धर्षः शत्रुतापनः ।
पृथक्कर्माणि तेषां तु प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥ ३४ ॥

दुर्द्धर्ष और शत्रुतापन प्राण अनपत्य है, अर्थात् प्राणका कार्यान्तर नहीं है; उन सबके पृथक् पृथक् कर्मोंको ज्योंका त्यों कहता हूं ॥ ३४ ॥

प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टा वर्तयते पृथक् ।
प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते ॥ ३५ ॥

वायु प्राणियोंकी पृथक् पृथक् चेष्टाओंको सब भांतिसे निर्वाह करता है, और सब प्राणियोंके प्राणका कारण होनेसे प्राण नामसे अभिहित होता है ॥ ३५ ॥

प्रेरयत्यभ्रसंघातान्धूमजांश्चोष्मजांश्च यः ।
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम सोऽनिलः ॥ ३६ ॥

तथा जो वायु धूमज और ऊष्मज अभ्रोंको प्रथम मार्गमें चालित करता है, उसे प्रवाह वायु कहा जाता है ॥ ३६ ॥

अम्बरे स्नेहमभ्रेभ्यस्तडिद्भ्यश्चोत्तमद्युतिः ।
आवहो नाम संवाति द्वितीयः श्वसनो नदन् ॥ ३७ ॥

आकाशमें स्नेहगुणयुक्त जल बरसनेके समय जो वायु स्नेहक्रमसे विद्युत्त्वको प्राप्त होके अत्यन्त द्युतिशाली होता है, वह शब्दकारी श्वसन आवह नामक द्वितीय वायु स्थानीय होकर बहता है ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उदयं ज्योतिषां शश्वत्सोमादीनां करोति यः ।
अन्तर्देहेषु चोदानं ये वदन्ति महर्षयः ॥ ३८ ॥

और जो वायु सोम आदि प्रकाशमान पदार्थोंका सदा उदयकार्य निर्वाह करता है, महर्षि लोग जिसे शरीरस्थित उदान वायु कहा करते हैं ॥ ३८ ॥

यश्चतुर्भ्यः समुद्रेभ्यो वायुर्धारयते जलम् ।
उद्धृत्याददते चापो जीमूतेभ्योऽम्बरेऽनिलः ॥ ३९ ॥

जो वायु चारों समुद्रोंके जलको धारण कर रहा है, जो वायु समस्त जल उठाके आकाशमें जीमूत नामक मेघोंको देनेके निमित्त लाता है ॥ ३९ ॥

योऽद्भिः संयोज्य जीमूतान्पर्जन्याय प्रयच्छति ।
उद्वहो नाम वर्षिष्ठस्तृतीयः स सदागतिः ॥ ४० ॥

और जलके सहित जीमूतोंको संयोजित करके बादलोंको प्रदान करता है, उस श्रेष्ठ वायुका नाम उद्वह है, यह तीसरे मार्गपर चलनेके कारण तीसरा कहा गया है ॥ ४० ॥

समुह्यमाना बहुधा येन नीताः पृथग्घनाः ।
वर्षमोक्षकृतारम्भास्ते भवन्ति घनाघनाः ॥ ४१ ॥

और जो वायु बादलोंको ढोकर अनेक प्रकारसे विभिन्न करता है, तथा जल वर्षा आरम्भ किया करता है, उस वारिपूर्ण और वारिहीन वायुको घनाघन कहा जाता है ॥ ४१ ॥

संहता येन चाविद्धा भवन्ति नदतां नदाः ।
रक्षणार्थाय संभूता मेघत्वमुपयान्ति च ॥ ४२ ॥

इकट्ठे होनेपर भी सब बादल जिसके जरिये पृथक् पृथक् होजाते हैं, वाद्यमान वेणुकी भांति शब्दायमान वह वायु नद नामसे प्रसिद्ध हुआ करती है । उक्त प्रजापालनके निमित्त संहत और गोस्तनवत् रिक्त होके भी मेघत्व अर्थात् सेचनकारित्वको प्राप्त होती है, जलकी भांति नष्ट नहीं होता ॥ ४२ ॥

योऽसौ वहति भूतानां विमानानि विहायसा ।
चतुर्थः संवहो नाम वायुः स गिरिमर्दनः ॥ ४३ ॥

जो वायु आकाशमार्गमें व्योमयानोंको चलाती है, वह पर्वतको मर्दन करनेमें समर्थ संवहसंज्ञक वायु चतुर्थ रूपसे गिना जाता है ॥ ४३ ॥

येन वेगवता रुग्णा रूक्षेणारुजता रसान् ।
वायुना विहता मेघा न भवन्ति बलाहकाः ॥ ४४ ॥

इकट्ठे हुए समस्त बादल वेगवान्, रूक्ष और रसोंको प्रभञ्जन करनेवाले वायुसे नष्ट होते हैं, वे बलाहक नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Harsand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दारुणोत्पातसंचारो नभसः स्तनयित्नुमान् ।
पञ्चमः स महावेगो विवहो नाम मारुतः ॥ ४५ ॥

तथा जिससे दारुण उत्पात धूमकेतु और संवर्त्त मेघका सञ्चार हुआ करता है, जो आकाश मण्डलमें गर्जते हुए बादल विशिष्ट होकर निवास करता है, वह विवह नाम महाबलवान् वायु पञ्चम रूपसे निर्दिष्ट है ॥ ४५ ॥

यस्मिन्पारिप्लवे दिव्या वहन्त्यापो विहायसा ।
पुण्यं चाकाशगङ्गायास्तोयं विष्टभ्य तिष्ठति ॥ ४६ ॥

जिसके वेगबलसे समस्त दिव्य जल नीचे न गिरके आकाशमार्गके ऊपरके हिस्सेमें निवास करता है और आकाशगङ्गाका पवित्र जल जिससे विष्टब्ध हुआ करता है, ॥ ४६ ॥

दूरात्प्रतिहतो यस्मिन्नेकरश्मिर्दिवाकरः ।
योनिरंशुसहस्रस्य येन भाति वसुंधरा ॥ ४७ ॥

सूर्य सहस्र किरणधारी होनेपर भी दूरसे जिसके प्रतिघातके कारण एक किरणकी भांति मालूम होके पृथ्वीको प्रकाशित करता है, ॥ ४७ ॥

यस्मादाप्यायते सोमो निधिर्दिव्योऽमृतस्य च ।
षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जवतां वरः ॥ ४८ ॥

जिससे अमृतकी दिव्य निधि चन्द्रमाका भी पोषण होता है, जापकप्रवर वह परिवह नामक वायु षष्ठरूपसे गिना जाता है ॥ ४८ ॥

सर्वप्राणभृतां प्राणान्योऽन्तकाले निरस्यति ।
यस्य वर्त्मानुवर्तेते मृत्युवैवस्वतावुभौ ॥ ४९ ॥

जो वायु अन्तकालमें सब प्राणियोंके प्राणोंको शरीरसे निकालता है, मृत्यु तथा वैवस्वत अर्थात् चौदह यमके अन्तर्गत मरण और सूर्यपुत्र यम, ये दोनों जिसके पथका अनुसरण किया करते हैं ॥ ४९ ॥

सम्यगन्वीक्षतां बुद्ध्या शान्तयाध्यात्मनित्यया ।
ध्यानाभ्यासाभिरामाणां योऽमृतत्वाय कल्पते ॥ ५० ॥

अध्यात्मचिन्तक शान्त बुद्धिसे अनुसंधान करनेवाले और ध्यानाभ्यासमें सानन्द अनुरक्त मनुष्योंके लिये जो अमृत रूपसे कल्पित होती है, उस बाह्याभ्यंतर विषयोंसे उपरत बुद्धि वृत्तिके सहारे उसे अवलोकन करो ॥ ५० ॥

यं समासाद्य वेगेन दिशामन्तं प्रपेदिरे ।
दक्षस्य दश पुत्राणां सहस्राणि प्रजापतेः ॥ ५१ ॥

दक्ष प्रजापतिके दस हजार पुत्र जिसके निकटवर्त्ती होके ब्रह्माण्ड भेदके दिग्दिगन्तके अन्तमें पहुंच गये ॥ ५१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

येन सृष्टः पराभूतो यात्येव न निवर्तते ।
परावहो नाम परो वायुः स दुरतिक्रमः ॥ ५२ ॥

जिसके जरिये जीव उपसृष्ट होकर फिर निवृत्त नहीं होता, वह परावह नामक वायु सबसे श्रेष्ठ और सबसे दुरतिक्रमणीय है ॥ ५२ ॥

एवमेतेऽदितेः पुत्रा मारुताः परमाद्भुताः ।
अनारमन्तः संवान्ति सर्वगाः सर्वधारिणः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार ये सात मरुद्गण अदितिके परम अद्भुत पुत्र हैं; ये सर्वत्र गमन और समस्त वस्तुओंको धारण करते हुए सदा बहते हैं ॥ ५३ ॥

एतत्तु महदाश्चर्यं यदयं पर्वतोत्तमः ।
कम्पितः सहसा तेन वायुनाभिप्रवायता ॥ ५४ ॥

उस अत्यंत वेगसे प्रवहमान वायुके जरिये जो यह उत्तम पर्वत सहसा कम्पित हुआ, यही अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ॥ ५४ ॥

विष्णोर्निःश्वासवातोऽयं यदा वेगसमीरितः ।
सहसोदीर्यते तात जगत्प्रव्यथते तदा ॥ ५५ ॥

हे तात ! यह सर्वव्यापी विष्णुका निःश्वास है; यह जब वेगपूर्वक समीरित होकर सहसा निकल पडता है, तब स्थावरजङ्गमात्मक जगत् व्यथित हुआ करता है ॥ ५५ ॥

तस्माद्ब्रह्मविदो ब्रह्म बाधीयन्तेऽतिवायति ।
वायोर्वायुभयं ह्युक्तं ब्रह्म तत्पीडितं भवेत् ॥ ५६ ॥

मूल पुरुषका निश्वास यदि सहसा उत्थित होकर कदाचित् जगत्को संहार करे; इसहीसे सब कोई व्यथित होते हैं, इसलिये वेद—बल जाननेवाले पुरुष प्रबल वायु बहनेके समय वेद नहीं पढते; वेदरूप वायु वेगपूर्वक उच्चारित होनेपर बाह्यवायु भयजनक होती है ॥ ५६ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं पराशरसुतः प्रभुः ।
उक्त्वा पुत्रमधीष्वेति व्योमगङ्गामगात्तदा ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥ ११४६३ ॥

पराशर पुत्र प्रभु व्यासदेव यह सब वचन कहके अपने पुत्रसे बोले, 'अब तुम अध्ययन करो' ऐसा कहके उस समय उन्होंने आकाशगङ्गामें स्नान करनेके लिये गमन किया ॥५७॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१५ ॥ ११४६३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

३१६

भीष्म उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये नारदः समुपागमत् ।
शुकं स्वाध्यायनिरतं वेदार्थान्वक्तुमीप्सितान् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— इतने ही समयके बीच उस सूने आश्रममें देवर्षि नारद स्वाध्याय-रत शुकदेवसे वेदोंका समस्त अर्थ कहनेकी अभिलाषा करके उनके समीप उपस्थित हुए ॥ १ ॥

देवर्षिं तु शुको दृष्ट्वा नारदं समुपस्थितम् ।
अर्घ्यपूर्वेण विधिना वेदोक्तेनाभ्यपूजयत् ॥ २ ॥

शुकदेवने देवऋषि नारदको आया हुआ देखके वेदोक्त विधिके अनुसार अर्घ्य दान करके उनकी पूजा की ॥ २ ॥

नारदोऽथाब्रवीत्प्रीतो ब्रूहि ब्रह्मविदां वर ।
केन त्वां श्रेयसा तात योजयामीति हृष्टवत् ॥ ३ ॥

अनन्तर नारद मुनि आनन्दित होके प्रसन्नचित्तसे बोले— हे तात ! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! कहो, तुम्हें कैसे कल्याणसे संयोजित करूं ? ॥ ३ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा शुकः प्रोवाच भारत ।
अस्मिँल्लोके हितं यत्स्यात्तेन मां योक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे भारत ! शुकदेवने नारद् मुनिका वचन सुनके उत्तर दिया, इस लोकमें जो हितकर हो, आप मुझे उस ही कल्याणसे सम्पन्न करिये ॥ ४ ॥

नारद उवाच—

तत्त्वं जिज्ञासतां पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
सनत्कुमारो भगवानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

नारद मुनि बोले— पहले समयमें आत्मानुशीलनपरायण तत्त्वजिज्ञासु ऋषियोंके निकट भगवान् सनत्कुमारने यह कथा कही थी ॥ ५ ॥

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥ ६ ॥

विद्याके समान नेत्र नहीं है, सत्यके समान तपस्या नहीं है, रागके समान दुःख नहीं है, और त्यागके समान दूसरा सुख नहीं है ॥ ६ ॥

निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता ।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम् ॥ ७ ॥

पाप कर्मोंके सदा निवृत्त रहना, सदा पुण्यकर्मोंको करना, सद्व्यवहार और सदाचार यही अत्यन्त उत्तम कल्याणका साधन है ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति ।
नालं स दुःखमोक्षाय सङ्गो वै दुःखलक्षणम् ॥ ८ ॥

असुखकर मनुष्य जन्म पाके जो पुरुष विषयासक्त होता है, वह मोहित हुआ करता है; विषयासक्त पुरुष कदाचित् दुःखमोचन करनेमें समर्थ नहीं होता, वह केवल दुःखका ही लक्षणमात्र है ॥ ८ ॥

सक्तस्य बुद्धिश्चलति मोहजालविवर्धिनी ।
मोहजालावृतो दुःखमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ ९ ॥

विषयासक्त मनुष्यकी बुद्धि मोहजालसे जडित होकर विचलित होती है । जो मनुष्य मोहजालमें छिपा रहता है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख भोग करता है ॥ ९ ॥

सर्वोपायेन कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
कार्यः श्रेयोर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ ॥ १० ॥

जो कल्याणकी इच्छा करे, उसे चाहिये, कि सर्व प्रयत्नसे काम और क्रोधको निग्रह करे; क्यों कि काम और क्रोध कल्याणको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ करते हैं ॥ १० ॥

नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेत मत्सरात् ।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥ ११ ॥

क्रोधसे सदा तपस्याकी रक्षा करे, मत्सरसे श्री को बचावे, मानावमानसे विद्याकी रक्षा करे और प्रमादसे आत्मरक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम् ।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं न सत्यादुद्यते परम् ॥ १२ ॥

दयालुता ही परम धर्म है, क्षमा ही परम बल है, आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, और सत्यसे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है ॥ १२ ॥

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं भवेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं मतं मम ॥ १३ ॥

सत्य बोलना ही कल्याणकारी है, और सत्यसे भी श्रेष्ठ हितकारक वचन कहना है; जो प्राणियोंके लिये अत्यन्त हितकर है, मेरे मतमें वही सत्य है ॥ १३ ॥

सर्वारम्भफलत्यागी निराशीर्निष्परिग्रहः ।
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान्स च पण्डितः ॥ १४ ॥

कार्य आरम्भ करनेके सब फलोंका त्यागी, आशारहित और निष्परिग्रह होकर जिसने सब विषयोंको परित्याग किया है, वही विद्वान् तथा वही पण्डित है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेभ्यश्चरत्यात्मवशैरिह ।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः ॥ १५ ॥

इस लोकमें जो अपनी वशीभूत इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रियविषयोंको अनासक्त भावसे अनुभव करता है, और जो सब विषयोंमें आसक्तिरहित, शान्तचित्त, निर्विकार और समाहित होता है, ॥ १५ ॥

आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च ।
स विमुक्तः परं श्रेयो नचिरेणाधिगच्छति ॥ १६ ॥

और आत्मभूत देहेन्द्रियोंके सहित उपस्थित रहके स्वतन्त्र भावसे विद्यमान रहता है, तथा देह आदिके सहित तादात्म्यरहित होकर केवलस्वरूप होता है, वह थोडे ही समयमें मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

अदर्शनमसंस्पर्शस्तथासंभाषणं सदा ।
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विन्दते परम् ॥ १७ ॥

हे मुनि ! जिसका जीवोंके सहित सदा दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण नहीं होता, वह परम कल्याणका लाभ करता है ॥ १७ ॥

न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ १८ ॥

किसी भी जीवकी हिंसा न करे, सबके सङ्ग मित्रताचरण करते हुए विचरे और यह मनुष्य जन्म पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे ॥ १८ ॥

आकिंचन्यं सुसंतोषो निराशीर्ह्यमचापलम् ।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः ॥ १९ ॥

चित्तविजयी आत्मज्ञ मनुष्यकी अकिञ्चनता, सन्तोष और कामना तथा चञ्चलताका त्याग करना ही परम कल्याणका साधन है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं ॥ १९ ॥

परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम् ॥ २० ॥

हे तात ! तुम परिग्रहका परित्याग कर जितेन्द्रिय होके, इस लोक और परलोकमें अभय और शोकरहित स्थानमें निवास करो ॥ २० ॥

निरामिषा न शोचन्ति त्यजेहामिषमात्मनः ।
परित्यज्यामिषं सौम्य दुःखतापाद्विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥

जिन लोगोंके भोग्य वस्तु नहीं हैं, वे शोक नहीं करते; इसलिये अपनी जो कुछ भोग्यवस्तु हो, उसे परित्याग करो । हे प्रियदर्शन ! भोग्य वस्तुओंके त्यागनेसे तुम दुःख और संतापसे मुक्त होंगे ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना ।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना ॥ २२ ॥

जो अजितको जय करनेकी इच्छा करे, उसे तपस्यामें रत, जितेन्द्रिय, मौनव्रती, संयतचित्त और सब आसक्तियोंसे विमुक्त होना उचित है ॥ २२ ॥

गुणसङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा ।
ब्राह्मणे नचिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम् ॥ २३ ॥

जो ब्राह्मण गुणोंमें– त्रिगुणात्मक विषयोंमें अनासक्त और सदा एकान्तवास रत होता है, वह थोडे ही समयके बीच परम सुख लाभ करता है ॥ २३ ॥

द्वंद्वारामेषु भूतेषु य एको रमते मुनिः ।
विद्धि प्रज्ञानतृप्तं तं ज्ञानतृप्तो न शोचति ॥ २४ ॥

जो मुनि मैथुनमें सुख माननेवाले प्राणियोंके बीच रहकर भी अकेले रहनेमें आनन्द मानता है, उसे प्रज्ञानतृप्त जानना चाहियें । जो ज्ञानसे तृप्त होता है, वह कदाचित् शोक नहीं करता ॥ २४ ॥

शुभैर्लभति देवत्वं व्यामिश्रैर्जन्म मानुषम् ।
अशुभैश्चाप्यधोजन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः ॥ २५ ॥

शुभ कर्मके जरिये देवत्व प्राप्त होता है, शुभाशुभ मिश्रित कर्मके जरिये मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ करता है, और केवल अशुभ कर्मोंके जरियें अधम जन्म अर्थात् तिर्यग् योनिमें जन्म होता है ॥ २५ ॥

तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः ।
संसारे पच्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुध्यसे ॥ २६ ॥

उन योनियोंमें जीव मृत्यु और जराके दुःखसे सदा पीडित होकर संतप्त होता है; इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है, उस ओर तुम क्यों नहीं ध्यान देते हो ? ॥ २६ ॥

अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ।
अनर्थे चार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थं नावबुध्यसे ॥ २७ ॥

तुम अहितकर विषयोंमें हितज्ञ हुए हो, विनाशशील वस्तुओंको ' ध्रुव ' नामसे जानते हो और अनर्थ विषयमें अर्थका बोध करते हो, यह बात तुम क्यों नहीं समझते हो ? ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संवेष्टयमानं बहुभिर्मोहतन्तुभिरात्मजैः ।
कोशकारवदात्मानं वेष्टयन्नावबुध्यसे ॥ २८ ॥

जैसे रेशमका कीडा बहुतसे आत्मज सूत्रके जरिये बंधकर मोह वशसे अपनेको नहीं जान सकता, तुम भी उस ही प्रकार अपनेको बांधके अपनेको जाननेमें असमर्थ होरहे हो; तो भी यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आती है ॥ २८ ॥

अलं परिग्रहेणेह दोषवान्हि परिग्रहः ।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स्वपरिग्रहात् ॥ २९ ॥

इस संसारमें परिग्रहका कोई प्रयोजन नहीं है, क्यों कि परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषवान् हुआ करता है, जैसे रेशमका कीडा निज परिग्रह निबन्धनसे बद्ध होता है ॥ २९ ॥

पुत्रदारकुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ ३० ॥

जैसे तालावके कीचडमें फंसके जङ्गली बूढे हाथी दुःखी होते हैं, वैसे ही स्त्री, पुत्र और कुटुम्बी लोगोंमें आसक्त जीव अवसन्न हुआ करते हैं ॥ ३० ॥

महाजालसमाकृष्टान्स्थले मत्स्यानिवोद्धृतान् ।
स्नेहजालसमाकृष्टान्पश्य जन्तून्सुदुःखितान् ॥ ३१ ॥

जैसे बडे जालमें फंसकर पानीसे बाहर आयीं हुई मछलियां तडपती हैं, वैसे ही स्नेह-जालके जरिये आकर्षित जीवोंको अत्यन्त दुःखित देखो ॥ ३१ ॥

कुटुम्बं पुत्रदारं च शरीरं द्रव्यसंचयाः ।
पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृतम् ॥ ३२ ॥

कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और धनसञ्चय आदि जो कुछ रहता है, वह सब कुछ पराया है, विनाशी है; इसमें अपना क्या है- सुकृत और दुष्कृत कर्ममात्र ही स्थायी होगा ॥ ३२ ॥

यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते ।
अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि ॥ ३३ ॥

सब वस्तु परित्याग कर अवश होके जब तुम्हें यहांसे गमन करना होगा, तब तुम क्यों अनर्थमें आसक्त होकर अपने प्रयोजनका अनुष्ठान करनेमें विरत हो रहे हो ? ॥ ३३ ॥

अविश्रान्तमनालम्बमपाथेयमदैशिकम् ।
तमःकान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि ॥ ३४ ॥

विश्रांति स्थान रहित, सहाराहीन, पाथेयवर्जित, अदैशिक और अन्धकारसें परिपूरित दुर्गम मार्गमें तुम अकेले किस प्रकारसे गमन करोगे ? ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हि त्वा प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वा यास्यन्तमनुयास्यति ॥ ३५ ॥

तुम्हारे प्रस्थान करनेपर कोई भी तुम्हारे पीछे नहीं जायगा; तुम्हारे गमन करनेपर केवल सुकृत वा दुष्कृत कर्मही तुम्हारा अनुगमन करेंगे ॥ ३५ ॥

विद्या कर्म च शौर्यं च ज्ञानं च बहुविस्तरम्
अर्थार्थमनुसार्यन्ते सिद्धार्थस्तु विमुच्यते ॥ ३६ ॥

विद्या, कर्म, शौर्य और बहुत विस्तृत ज्ञानका सहारा ही परमात्माकी प्राप्तिके लिये लिया जाता है; जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ है, वैसा ही पुरुष मुक्त होता है ॥ ३६ ॥

निबन्धनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैनां सुकृतो यान्ति नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ ३७ ॥

ग्रामवासी लोगोंका अनुराग ही यह बन्धन रसरी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रसरीको काटके परमार्थके मार्गपर गमन करते हैं और दुष्कर्मी पुरुष उसे नहीं काट सकते ॥ ३७ ॥

रूपकूलां मनःस्रोतां स्पर्शद्वीपां रसावहाम् ।
गन्धपङ्कां शब्दजलां स्वर्गमार्गदुरावहाम् ॥ ३८ ॥

रूप जिसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप, रस लहर, गन्ध कीचड, शब्द जल, और स्वर्गरूपी दुर्गम घाट है; ॥ ३८ ॥

क्षमारित्रां सत्यमयीं धर्मस्थैर्यवटाकराम् ।
त्यागवाताध्वगां शीघ्रां बुद्धिनावा नदीं तरेत् ॥ ३९ ॥

क्षमा नौका चलानेका दण्ड और धर्म नौकाको स्थिर करनेकी रसरी है; वह सत्यमयी, त्यागरूपी, अनुकूल वायुपथगामिनी, शीघ्रतासे गमन करनेवाली संसाररूपी नदीको बुद्धि-रूपी नौकासे पार किया जा सकता है; ॥ ३९ ॥

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज ॥ ४० ॥

धर्म और अधर्मको परित्याग करो और दोनों सत्य तथा मिथ्याको छोडो; सत्यानृत दोनोंको छोडके जिसके जरिये त्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो ॥ ४० ॥

त्यज धर्ममसंकल्पादधर्मं चाप्यहिंसया ।
उभे सत्यानृते बुद्ध्या बुद्धिं परमनिश्चयात् ॥ ४१ ॥

सङ्कल्पहीनतासे धर्मको परित्याग करो और अलिप्सा निबन्धनसे अधर्मको छोडो; बुद्धिके सहारे सत्य और मिथ्याको परित्याग करो और परमार्थ निश्चय बन्धनसे बुद्धिको भी त्यागो ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अस्थिस्थूणं स्नाययुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ४२ ॥

हड्डियोंके खंभे, स्नायु और बंधा हुआ मांस, रुधिरसे लिपटा हुआ, चमडेसे मढा हुआ, मूत्र–पुरीषसे पूरित होनेसे दुर्गन्धियुक्त, ॥ ४२ ॥

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासं समुत्सृज ॥ ४३ ॥

जरा–शोकसे युक्त, रोगका स्थान, दुःखरूप, रजोगुणरूपी धूलसे ढका हुआ और अनित्य पंञ्चभूतोंका घर– शरीरको परित्याग करो, इसकी आसक्ति छोडो ॥ ४३ ॥

इदं विश्वं जगत्सर्वमजगच्चापि यद्भवेत् ।
महाभूतात्मकं सर्वं महद्यत्परमाणु यत् ॥ ४४ ॥
इन्द्रियाणि च पञ्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः ॥ ४५ ॥

यह स्थावरजङ्गमात्मक समस्त संसार और महत् तत्त्व अर्थात् महाभूतमय बुद्धि, वे पांचों महाभूत, पञ्चप्राण और पञ्च इन्द्रिय तथा सत्त्व, रज, तम, ये तीनों गुण वशीभूत होकर देह त्यागनेके अनन्तर परलोकगामी जीव अव्यक्तसंज्ञक सप्तदश राशिरूपसे निर्णीत होता है ॥ ४४–४५ ॥

सर्वैरिहेन्द्रियार्थैश्च व्यक्ताव्यक्तैर्हि संहितः ।
पञ्चविंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गुणः ॥ ४६ ॥

व्यक्त–अव्यक्त संज्ञक शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये इन्द्रियोंके पांच विषय और मन्तव्य, बोद्धव्य तथा अहंकर्त्तव्यके सहित मिलके व्यक्तमय पचीस गुण हुआ करते हैं– इन तत्त्वोंके समूहको व्यक्ताव्यक्तमय समुदाय कहते हैं ॥ ४६ ॥

एतैः सर्वैः समायुक्तः पुमानित्यभिधीयते ।
त्रिवर्गोऽत्र सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा ॥ ४७ ॥

जो इन सब गुणोंसे संयुक्त होता है, उसका नाम पुरुष है । त्रिगर्व– धर्म, अर्थ और काम–, सुख–दुःख, और जीवन मरण ॥ ४७ ॥

य इदं वेद तत्त्वेन स वेद प्रभवाप्ययौ ।
पाराशर्येह बोद्धव्यं ज्ञानानां यच्च किंचन ॥ ४८ ॥

इन सबके जो यथार्थरूपसे जानता है, वही उत्पत्ति और लय किस प्रकारसे होती है, उसे जान सकता है। जानने योग्य विषयोंमें जो कुछ जानना होता है, उसे पारम्पर्यक्रमसे जानना उचित है ॥ ४८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥ ४९ ॥

इन्द्रियोंके जरिये जिन जिन विषयोंका ज्ञान होता है; उन्हीं विषयोंको व्यक्त कहा जाता है और जो इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण अनुमानसे जाने जाते हैं, उनको अव्यक्त जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तर्प्यते ।
लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यति ॥ ५० ॥

जैसे वर्षाकी धारासे प्यासा मनुष्य तृप्त होता है, वैसे वे जीव जिन्होंने इंद्रियोंको अपने वशमें किया है, तृप्त होते हैं; ज्ञानी प्राणियोंमें आत्माको व्याप्त और आत्मामें प्राणियोंको स्थित अवलोकन करता है ॥ ५० ॥

परावरदृशः शक्तिर्ज्ञानवेलां न पश्यति ।
पश्यतः सर्वभूतानि सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ५१ ॥

सब अवस्थाओंमें सदा सर्वभूतदर्शी परावरद्रष्टाकी ज्ञानमूलक शक्ति नष्ट नहीं होती ॥ ५१ ॥

ब्रह्मभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते ।
ज्ञानेन विविधान्क्लेशानतिवृत्तस्य मोहजान्
लोके बुद्धिप्रकाशेन लोकमार्गो न रिष्यते ॥ ५२ ॥

वह सहवासमें आकर भी अशुभ कर्मोंके जरिये सब भूतोंके युक्त नहीं होता; ज्ञानके जरिये जिसने विविध मोहज क्लेशोंको अतिक्रम किया है, लोकमें बुद्धिप्रकाशके जरिये उससे लोकाचार हिंसित नहीं होता ॥ ५२ ॥

अनादिनिधनं जन्तुमात्मनि स्थितमव्ययम् ।
अकर्तारममूर्तं च भगवानाह तीर्थवित् ॥ ५३ ॥

मोक्षके उपायको जाननेवाले भगवान् नारायण आत्मामें अधिष्ठित जीवको अनादिनिधन, अव्यय, अकर्ता और अमूर्त्त कहते हैं ॥ ५३ ॥

यो जन्तुः स्वकृतैस्तैस्तैः कर्मभिर्नित्यदुःखितः ।
स दुःखप्रतिघातार्थं हन्ति जन्तूननेकधा ॥ ५४ ॥

जो जीव अपने किये हुए कर्मोंके जरिये फदा दुःखित होता है, वह अपने दुःखको मिटानेके लिये अनेक प्रकारसे जीवहिंसा किया करता है ॥ ५४ ॥

ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यन्नवं बहु ।
तप्यतेऽथ पुनस्तेन भुक्त्वापथ्यमिवातुरः ॥ ५५ ॥

अनन्तर वह फिर नये नये दूसरे प्रकारके बहुतेरे कार्य आरम्भ करता है, आतुर पुरुषके अपथ्य भोजनकी भांति वह पुनर्वार उसहीके जरिये दुःखित हुआ करता है ॥ ५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजस्रमेव मोहार्तो दुःखेषु सुखसंज्ञितः ।
बध्यते मथ्यते चैव कर्मभिर्मन्थवत्सदा ॥ ५६ ॥

मोहसे अन्धा मनुष्य सदा दुःखकर विषयोंमें सुख बुद्धिका ज्ञान करता है, इसीसे वह सदा अपने किये हुए कर्मोंके जरिये मथने योग्य वस्तुकी भांति मथित और बद्ध हुआ करता है ॥ ५६ ॥

ततो निवृत्ता बन्धात्स्वात्कर्मणामुदयादिह ।
परिभ्रमति संसारं चक्रवद्बहुवेदनः ॥ ५७ ॥

अनन्तर वह प्रारब्ध कर्मोंके उदयसे इस लोकमें निज योनिसे अपने बन्धनोंसे निवृत्त होता है और फिर जन्म पाकर बहुत दुःख सहता हुआ चक्रकी भांति संसारमें घूमा करता है ॥ ५७ ॥

स त्वं निवृत्तबन्धस्तु निवृत्तश्चापि कर्मतः ।
सर्ववित्सर्वजित्सिद्धो भव भावविवर्जितः ॥ ५८ ॥

इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त, बन्धनोंसे मुक्त, सर्ववित् और सर्वजित् होके भावरहित हो जाओ ॥ ५८ ॥

संयमेन नवं बन्धं निवर्त्य तपसो बलात् ।
संप्राप्ता बहवः सिद्धिमप्यबाधां सुखोदयाम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥ ११५२२ ॥

तपोबलसे संयमके हेतु दृष्टिमात्रसे उत्पन्न बन्धनको अतिक्रम करके बहुतोंने बाधारहित सुखोदय-युक्त सिद्धि प्राप्त की है ॥ ५९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१६ ॥ ११५२२ ॥

३१७

नारद उवाच—

अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शान्तिकरं शिवम् ।
निशम्य लभते बुद्धिं तां लब्ध्वा सुखमेधते ॥ १ ॥

नारदमुनि बोले— मनुष्य अशोक होने वा शोकनाशके निमित्त शान्तिकर तथा कल्याणस्वरूप शास्त्रको सुनकर ज्ञान लाभ करता है और उस ही उत्तम ज्ञानको पाके सुखी होता है ॥ १ ॥

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २ ॥

सहस्रों शोकके विषय और सैकडों भयजनक कार्य प्रतिदिन मूढ मनुष्योंको घेरते हैं, पण्डितोंके निकट वे प्रविष्ट नहीं हो सकते; ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मादनिष्टनाशार्थमितिहासं निबोध मे ।
तिष्ठते चेद्वशे बुद्धिर्लभते शोकनाशनम् ॥ ३ ॥

इसलिये अपने अनिष्टनाशके लिये मेरे समीप एक इतिहास सुनो । यदि बुद्धि अपने वशमें रहे, तो शोक नष्ट होता है; ॥ ३ ॥

अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युजन्ते अल्पबुद्धयः ॥ ४ ॥

अल्प बुद्धिवाले मनुष्य अनिष्टके संयोग और इष्ट वस्तुके वियोगसे मानस—दुःखोंमें आक्रान्त हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिन्तयेत् ।
तानना द्रियमाणस्य स्नेहबन्धः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

विषयोंके अतीत होनेपर उनके गुणोंका चिन्तन न करे; जो पुरुष उसमें समादर नहीं करता है, वह स्नेहबन्धनसे छूटता है ॥ ५ ॥

दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्तते ।
अनिष्टवद्धितं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते ॥ ६ ॥

जिस समयमें अनुराग उत्पन्न हो, उसमें दोषदर्शी होवे; अपने कल्याणके लिये अनिष्टकारी देखके मनुष्य उस ही समय उससे विरक्त होवे ॥ ६ ॥

नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ ७ ॥

जो पुरुष अतीत विषयोंके लिये शोक करता है, उसे अर्थ, धर्म और यश कुछ भी प्राप्त नहीं होता है; इसलिये जो नहीं है, उसमें नियुक्त न होवे, उस विषयकी चिन्ता करनेसे वह कभी प्रत्यावृत्त नहीं होगा ॥ ७ ॥

गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च ।
सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते ॥ ८ ॥

जैसे सब भूत गुणोंसे युक्त होते हैं, वैसे ही वियुक्त हुआ करते हैं; सब विषय एक ही पुरुषके शोकास्पद नहीं होते ॥ ८ ॥

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ९ ॥

जो मनुष्य मृत व्यक्ति वा नष्ट हुई वस्तुके लिये शोक करता है, वह दुःखके जरिये दुःख लाभ करके दो प्रकारके अनर्थमें फंसता है ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाश्रु कुर्वन्ति ये बुद्ध्या दृष्ट्वा लोकेषु संततिम् ।
सम्यक्प्रपश्यतः सर्वं नाश्रुकर्मोपपद्यते ॥ १० ॥

जो मनुष्य जगत्में अपनी संतानकी मृत्यु हुई देखकर भी अश्रुपात नहीं करते, वेही धीर हैं; सभी वस्तुओंको सम भावसे देखनेपर किसीका भी आंसू बहाना योग्य नहीं है ॥ १० ॥

दुःखोपघाते शारीरे मानसे वाप्युपस्थिते ।
यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत् ॥ ११ ॥

शारीरिक वा मानसिक दुःखके अभिघात उपस्थित होनेपर जिसमें कोई यत्न नहीं किया जा सकता, उस विषयमें चिन्ता करनी अनुचित है ॥ ११ ॥

भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ १२ ॥

दुःखके विषयकी चिन्ता न करनीही दुःख नाशकी महौषधि है । दुःखकी चिन्ता करनेसे दुःख दूर नहीं होता, बल्कि अत्यन्त वर्द्धित होता है ॥ १२ ॥

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ १३ ॥

बुद्धिपूर्वक विचारसे मानसिक दुःख और औषधिके जरिये शारीरिक दुःखको दूर करे; विज्ञानका यही सामर्थ्य है; इसलिये बालकके समान न होवे ॥ १३ ॥

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥ १४ ॥

रूप, यौवन, जीवन, धनसञ्चय, आरोग्य और प्रियजनोंका सहवास, ये सभी अनित्य हैं; इसलिये विद्वान् पुरुष उनकी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति ।
अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम् ॥ १५ ॥

सारे देशपर आये हुए संकटके लिये किसी एक व्यक्तिको उसके लिये शोक करना उचित नहीं है । यदि उस संकटको टालनेका उपाय दीख पडे, तो शोक न करके उसके प्रतिकारकी चेष्टा करे ॥ १५ ॥

सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः ।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ॥ १६ ॥

इस जीवनमें सुखकी अपेक्षा निःसन्देह दुःखही अधिक है। मोहवशसे इन्द्रियविषयोंमें सभीको अनुराग होता है, और मृत्यु अप्रिय लगती है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

परित्यजति यो दुखं सुखं वाप्युभयं नरः ।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न तं शोचन्ति पण्डिताः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य सुख और दोनोंही परित्याग करता है, वह अत्यन्त सुखस्वरूप ब्रह्मभावको लाभ करनेमें समर्थ होता है; पण्डित लोग उसके लिये शोक नहीं करते हैं ॥ १७ ॥

दुःखमर्था हि त्यज्यन्ते पालने न च ते सुखाः ।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत् ॥ १८ ॥

सब अर्थोंको त्यागनेसे दुःख होता है, उसकी रक्षा करनेमें भी कोई सुख नहीं है, अर्थका उपार्जन करनेमें भी बहुत दुःख सहना होता है; इसलिये अर्थनाशके विषयकी चिन्ता न करे ॥ १८ ॥

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ।
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं संतोषं यान्ति पण्डिताः ॥ १९ ॥

साधारण मनुष्य पृथक् रूपसे धनका संग्रह करते हुए विशेष धनकी अवस्था प्राप्त होनेपर भी तृप्त नहीं होते; वे और अधिककी आशा करके मर जाते हैं; और पण्डित लोग सन्तोष लाभ किया करते हैं ॥ १९ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ २० ॥

सब विषयोंके संग्रहका अन्त विनाश है; उन्नतिका अन्त पतन है; संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अवश्य मरना है ॥ २० ॥

अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।
तस्मात्संतोषमेवेह धनं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ २१ ॥

तृष्णाका अन्त नहीं है, तुष्टि ही परम सुख है; इसलिये पण्डित लोग इस लोकमें सन्तोषको ही परम धन समझते हैं ॥ २१ ॥

निमेषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति ।
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत् ॥ २२ ॥

गमनशील अवस्था– आयु नित्य बीती जा रही है, वह निमेष भर नहीं ठहरती; जब कि अपना शरीर ही अनित्य है, तब कौन नित्यविषयका अनुशीलन करेगा ? ॥ २२ ॥

भूतेष्वभावं संचिन्त्य ये बुद्ध्वा तमसः परम् ।
न शोचन्ति गताध्वानः पश्यन्तः परमां गतिम् ॥ २३ ॥

जो ज्ञानी लोग प्राणियोंकी सत्ताके अभावका विषय अनुशीलन करके मनसे परे परमात्माका चिन्तन करते हैं, वे जीवनयात्रा समाप्त होनेपर परम पदका साक्षात्कार करके शोकके पार होते हैं ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संचिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम् ।
व्याघ्रः पशुमिवासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ २४ ॥

मनुष्यके काम भोगसे तृप्त न होकर विषय सञ्चय करते रहनेपर मृत्यु इस प्रकार उसे ग्रहण करते चल देती है, जैसे बाघ हरिनको उठा ले जाता है ॥ २४ ॥

अथाप्युपायं संपश्येद्दुःखस्य परिमोक्षणे ।
अशोचन्नारभेतैव युक्तश्चाव्यसनी भवेत् ॥ २५ ॥

जिससे दुःख दूर हो, वैसा उपाय सबको अवश्य अवलोकन करना चाहिये; जो शोकरहित होकर कार्यारम्भ करता है, और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, वह दुःखोंसे मुक्त होता है ॥ २५ ॥

शब्दे स्पर्शे च रूपे च गन्धेषु च रसेषु च ।
नोपभोगात्परं किंचिद्धनिनो बाधनस्य वा ॥ २६ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयोंमें उपभोगके कालमें ही धनी हो या निर्धन उसे किंचित् सुख मिलता है, उपभोगके अनन्तर नहीं ॥ २६ ॥

प्राक्संप्रयोगाद्भूतानां नास्ति दुःख मनामयन ।
विप्रयोगात्तु सर्वस्य न शोचेत्प्रकृतिस्थितः ॥ २७ ॥

जैसे प्राणियोंके संयोगके पहले कोई दुःख नहीं होता, संयोगके बाद जब वियोग होता है, तब सबको दुःख होता है; वैसे ही प्रकृतिस्थ पुरुषका विप्रयोगमें भी दुःख नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया ॥ २८ ॥

धीरजके सहारे शिश्न और उदरकी रक्षा करे, नेत्रके जरिये हाथ और पांवकी रक्षा करे, मनके जरिये आंख तथा कानकी रक्षा करे और विद्याके सहारे मन तथा वचनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

प्रणयं प्रतिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च ।
विचरेदसमुन्नद्धः स सुखी स च पण्डितः ॥ २९ ॥

परिचित वा अपरिचित पूजनीय तथा अन्य लोगोंमें आसक्तिसे रहित होकर विनीत भावसे जो पुरुष विचरता है, वही सुखी और वही विद्वान् है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत्स सुखी भवेत् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥ ११५५२ ॥

जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त होकर निरपेक्ष और निर्लोभभावसे बैठा रहता है और आत्माको सहाय करके विचरता है, वही सुखी होता है ॥ ३० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सतरहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१७ ॥ ११५५२ ॥

: ३१८ :

नारद उवाच—

सुखदुःखविपर्यासो यदा समुपपद्यते ।
नैनं प्रज्ञा सुनीतं वा त्रायते नापि पौरुषम् ॥ १ ॥

नारद मुनि बोले— जब मनुष्यको सुख— दुःखमें विपर्यास अर्थात् सुखमें दुःखबुद्धि और दुःखमें सुखबोध होता है, तब प्रज्ञा, सुनीति अथवा पौरुष उसका परित्राण नहीं कर सकते ॥ १ ॥

स्वभावाद्यत्नमातिष्ठेद्यत्नवान्नावसीदति ।
जरामरणरोगेभ्यः प्रियमात्मानमुद्धरेत् ॥ २ ॥

स्वभावके अनुसार ज्ञान प्राप्तिके लिये यत्न करे; जो यत्न करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता; सबसे प्रिय आत्माका जरा, मरण और रोगोंसे उद्धार करे ॥ २ ॥

रुजन्ति हि शरीराणि रोगाः शारीरमानसाः ।
सायका इव तीक्ष्णाग्राः प्रयुक्ता दृढधन्विभिः ॥ ३ ॥

दृढ धनुर्धरोंके जरिये प्रयुक्त चोखे बाणोंकी भांति शारीरिक और मानसिक रोग शरीरको रुग्ण करते हैं ॥ ३ ॥

व्याधितस्य विवित्साभिस्त्रस्यतो जीवितैषिणः ।
अवशस्य विनाशाय शरीरमपकृष्यते ॥ ४ ॥

प्यासके कारण व्यथित, क्लेशयुक्त, जीनेकी इच्छा करनेवाले, अवश मनुष्यके विनाशके निमित्त शरीर अपकृष्ट हो जाता है, ॥ ४ ॥

स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव ।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहानि पुनः पुनः ॥ ५ ॥

जैसे नदियोंके स्रोत सदा आगेकी ओर बहते रहते हैं, कदाचित् निवृत्त नहीं होते, वैसेही रात और दिन मनुष्योंकी परमायुको ग्रहण करते हुए बार बार गमन करते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Vedanta Dharma Sansthan. Digitized by eGangotri

व्यत्ययो ह्ययमत्यन्तं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
जातं मर्त्यं जरयति निमेषं नावतिष्ठते ॥ ६ ॥

शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंका यह निरन्तर होनेवाला परिवर्तन उत्पन्न हुए जीवोंको जराग्रस्त करता है; यह निमेषभर भी नहीं ठहरता है ॥ ६ ॥

सुखदुःखानि भूतानामजरो जरयन्नसौ ।
आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनः पुनरुदेति च ॥ ७ ॥

यह अजर आदित्य जो बार बार अस्त होके फिर उदय होता है, वही प्राणियोंके सुख और दुःखको जीर्ण करता है ॥ ७ ॥

अदृष्टपूर्वानादाय भावानपरिशङ्कितान् ।
इष्टानिष्टान्मनुष्याणामस्तं गच्छन्ति रात्रयः ॥ ८ ॥

रात्रियां मनुष्योंके अदृष्टपूर्व तथा अपरिशङ्कित इष्टानिष्ट भावोंको आदान करके अस्त हुआ करती हैं ॥ ८ ॥

यो यमिच्छेद्यथाकामं कामानां तत्तदाप्नुयात् ।
यदि स्यान्नपराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम् ॥ ९ ॥

पुरुषका कर्म यदि पराधीन न हो, तो जो पुरुष जिस वस्तुकी इच्छा करे, कामनाके अनुसार वह उसे प्राप्त कर सके ॥ ९ ॥

संयताश्च हि दक्षाश्च मतिमन्तश्च मानवाः ।
दृश्यन्ते निष्फलाः सन्तः प्रहीणाश्च स्वकर्मभिः ॥ १० ॥

संयमशील, दक्ष और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंसे श्रान्त होनेसे निष्फल होते दीख पडते हैं ॥ १० ॥

अपरे बालिशाः सन्तो निर्गुणाः पुरुषाधमाः ।
आशीर्भिरप्यसंयुक्ता दृश्यन्ते सर्वकामिनः ॥ ११ ॥

और दूसरे मूर्ख निर्गुण और अधम पुरुष किसीका आशीर्वाद न मिलनेपर भी सब काम्य वस्तुओंको भोगते हुए दीख पडते हैं ॥ ११ ॥

भूतानामपरः कश्चिद्धिंसायां सततोत्थितः ।
वञ्चनायां च लोकस्य स सुखेष्वेव जीर्यते ॥ १२ ॥

कोई पुरुष सदा जीवहिंसा करनेमें उद्यत और लोगोंको ठगनेमें अनुरक्त रहके सुखसे समय बिता रहकर बूढा होता है ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अचेष्टमानमासीनं श्रीः कंचिदुपतिष्ठति ।
कश्चित्कर्मानुसृत्यान्यो न प्राप्यमधिगच्छति ॥ १३ ॥

और किसी पुरुषके कुछ चेष्टा न करके बैठे रहनेपर भी लक्ष्मी उनके निकट उपस्थित होती है, तथा कोई मनुष्य काम करके भी अपने कर्मके अनुसार पाने योग्य वस्तुको भी नहीं पाते हैं ॥ १३ ॥

अपराधं समाचक्ष्व पुरुषस्य स्वभावतः ।
शुक्रमन्यत्र संभूतं पुनरन्यत्र गच्छति ॥ १४ ॥

पुरुषके स्वभावके अनुसार इसमें अपराध अवलोकन करो । अन्यत्र उत्पन्न हुआ वीर्य संतानोत्पादनके लिये अन्यत्र गमन करता है ॥ १४ ॥

तस्य योनौ प्रयुक्तस्य गर्भो भवति वा न वा ।
आम्रपुष्पोपमा यस्य निर्वृत्तिरुपलभ्यते ॥ १५ ॥

वही शुक्र योनिमें पडनेसे गर्भ होता है, कभी नहीं भी होता, तथा कभी उसकी उपलब्धि आमके बौरके भांति व्यर्थ जानी जाती है ॥ १५ ॥

केषांचित्पुत्रकामानामनुसंतानमिच्छताम् ।
सिद्धौ प्रयतमानानां नैवाण्डमुपजायते ॥ १६ ॥

कोई मनुष्य पुत्रकी कामना करते है और उस पुत्रके भी संतान चाहते हैं; और सदा सिद्धिके निमित्त प्रयत्नशील रहते हैं, तौ भी उनके एक भी अंडा भी उत्पन्न नहीं होता अर्थात् उन्हें सन्तान नहीं होती ॥ १६ ॥

गर्भाचोद्विजमानानां क्रुद्धादाशीविषादिव ।
आयुष्माञ्जायते पुत्रः कथं प्रेतः पितैव सः ॥ १७ ॥

और किसी किसीके विषधर सर्पकी भांति गर्भसे व्याकुल होनेपर भी उनको आयुष्यमान् पुत्र उत्पन्न होता है और वह पिताके समान नहीं होता ॥ १७ ॥

देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रगृद्धिभिः ।
दश मासान्परिधृता जायन्ते कुलपांसनाः ॥ १८ ॥

सन्तानकी इच्छा करनेवाले दीन स्त्री–मनुष्य देवपूजा और तपस्या करके दस महीना तक गर्भ धारण करते हैं, परन्तु उनके पुत्र उत्पन्न होके अन्तमें कुलाङ्गार होजाते हैं ॥ १८ ॥

अपरे धनधान्यानि भोगांश्च पितृसंचितान् ।
विपुलानभिजायन्ते लब्धास्तैरेव मङ्गलैः ॥ १९ ॥

दूसरे आनन्दपूर्वक उत्पन्न होकर पिताके सञ्चित बहुतसे धनधान्यको तथा भोगोंको पाके कुशलपूर्वक संवर्द्धित होते हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अन्योन्यं समभिप्रेत्य मैथुनस्य समागमे ।
उपद्रव इवाविष्टो योनिं गर्भः प्रपद्यते ॥ २० ॥

स्त्री-पुरुषोंके परस्पर अभिप्राय के अनुसार मैथुनके समागमसमयमें गर्भ उपद्रवकी भांति आविष्ट होके योनिलाभ करता है ॥ २० ॥

शीर्णं परशरीरेण निच्छवीकं शरीरिणम् ।
प्राणिनां प्राणसंरोधे मांसश्लेष्मविचेष्टितम् ॥ २१ ॥

स्थूल शरीर क्षीण होनेपर तथा जो मांस और कफसे युक्त है, वह शरीरधारी प्राणी मृत्युके बाद दूसरे शरीरको प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

निर्दग्धं परदेहेन परदेहं चलाचलम् ।
विनश्यन्तं विनाशान्ते नावि नावमिवाहितम् ॥ २२ ॥

जैसे जलमें नौकाको डूबती हुई देखके उसपर बैठनेवालोंकी सहायताके लिये दूसरी नौका आके उपस्थित होती है, वैसे ही परिणामशील शरीरको विनष्ट होते देखके जीवके अवलम्बके निमित्त कर्मफल उस ही समय देहान्तरकी संयोजना कर देते हैं ॥ २२ ॥

संगत्या जठरे न्यस्तं रेतोबिन्दुमचेतनम् ।
केन यत्नेन जीवन्तं गर्भं त्वमिह पश्यसि ॥ २३ ॥

सङ्गतिक्रमसे जठरमें पडे हुए अचेतन रेतबिन्दुको किस प्रकार यत्नके जरिये तुम जीवित गर्भ रूपसे देख रहे हो ? ॥ २३ ॥

अन्नपानानि जीर्यन्ते यत्र भक्षाश्च भक्षिताः ।
तस्मिन्नेवोदरे गर्भः किं नान्नमिव जीर्यते ॥ २४ ॥

जिस जठरमें पडके खानेपीनेकी सब वस्तु पच जाती हैं तथा सभी भक्ष्य पदार्थ जीर्ण होते हैं, उस उदरमें अन्नकी भांति गर्भ क्यों नहीं जीर्ण होता है ॥ २४ ॥

गर्भमूत्रपुरीषाणां स्वभावनियता गतिः ।
धारणे वा विसर्गे वा न कर्तुर्विद्यते वशः ॥ २५ ॥

गर्भमें मूत्र और मलके धारण करने या त्यागमें कोई स्वभावयुक्त गति है, परंतु कोई स्वाधीन कर्ता नहीं है ॥ २५ ॥

स्रवन्ति ह्युदराद्गर्भा जायमानास्तथापरे ।
आगमेन सहान्येषां विनाश उपपद्यते ॥ २६ ॥

कुछ गर्भ पेरसे गिर जाते हैं, कुछ जन्म लेते हैं; कितनोंकी जन्मके बाद मृत्यु हो जाती है ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतस्माद्योनिसंबन्धाद्यो जीवन्परिमुच्यते ।
प्रजां च लभते कांचित्पुनर्द्वन्द्वेषु सज्जति ॥ २७ ॥

इस योनिसम्बन्ध निबन्धनसे कोई जीता हुआ बाहर आता है, तब कोई सन्तानको पाता है और फिर द्वन्द्वयोगसे संयुक्त होता है ॥ २७ ॥

शतस्य सहजातस्य सप्तमीं दशमीं दशाम् ।
प्राप्नुवन्ति ततः पञ्च न भवन्ति शतायुषः ॥ २८ ॥

अनादिप्रवाहके सम्बन्धसे साथ उत्पन्न होनेवाले देहकी आयु नष्ट होते रहनेपर गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगण्ड, यौवन, स्थविरता, जरा, प्राणरोध और नाश– इन दस अवस्थाओंके बीच सातवीं दशा स्थविरता अर्थात् पुत्र, दारा, कुटुम्ब आदिको पालन करनेके लिये व्याकुलता और नौवीं दशा प्राणरोध ये दोनों अवस्था पञ्चभूतोंमें ही प्राप्त हुआ करती हैं; आत्माका इसके सङ्ग कुछ भी संसर्ग नहीं है ॥ २८ ॥

नाभ्युत्थाने मनुष्याणां योगाः स्युर्नात्र संशयः ।
व्याधिभिश्च विमथ्यन्ते व्यालैः क्षुद्रमृगा इव ॥ २९ ॥

मनुष्योंके अभ्युदयके विषयमें कुछ उपाय नहीं है, इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि बाघके जरिये क्षुद्र हरिनोंको जैसे कष्ट पहुंचते हैं, उसी प्रकार ये व्याधिसे सदा पीडित हुआ करते हैं ॥ २९ ॥

व्याधिभिर्भक्ष्यमाणानां त्यजतां विपुलं धनम् ।
वेदनां नापकर्षन्ति यतमानाश्चिकित्सकाः ॥ ३० ॥

व्याधिसे पीडित हुए मनुष्य वैद्योंको विपुल धन देते हैं, चिकित्सक वैद्य लोग रोग दूर करनेका बहुत यत्न करते हैं, तो भी उन रोगियोंकी पीडा दूर नहीं कर सकते हैं ॥ ३० ॥

ते चाति निपुणा वैद्याः कुशलाः संभृतौषधाः ।
व्याधिभिः परिकृष्यन्ते मृगा व्याधैरिवार्दिताः ॥ ३१ ॥

निपुण वैद्य, जो कि चिकित्साकार्यमें दक्ष होके औषध–सञ्चय कर रखते हैं, वे भी व्याधिके जरिये व्याधोंसे प्रपीडित हरिनकी भांति रोगोंसे आक्रान्त होते हैं ॥ ३१ ॥

ते पिबन्तः कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च ।
दृश्यन्ते जरया भग्ना नागा नागैरिवोत्तमैः ॥ ३२ ॥

वे लोग कषायरस और विविध प्रकारके घृत सेवन करके भी मतवाले हाथीके जरिये टूटे हुए वृक्षकी भांति जराजीर्ण दीख पडते हैं ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

के वा भुवि चिकित्सन्ते रोगार्तान्मृगपक्षिणः ।
श्वापदानि दरिद्रांश्च प्रायो नार्ता भवन्ति ते ॥ ३३ ॥

इस पृथ्वीमण्डल पर रोगसे आर्त्त मृग, पक्षी, श्वापद और दरिद्र मनुष्योंकी कौन चिकित्सा किया करता है ? ये सब प्रायः रोगसे पीडित नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥

घोरानपि दुराधर्षान्नृपतीनुग्रतेजसः ।
आक्रम्य रोग आदत्ते पशून्पशुपचो यथा ॥ ३४ ॥

जैसे प्रबल पशु निर्बल पशुओंको आक्रमण करके उन्हें दबा देते हैं, वैसे ही सब रोग घोर, दुराधर्ष और उग्र तेजस्वी राजाओंको आक्रमण करके उन्हें अपने वशमें करते हैं ॥ ३४ ॥

इति लोकमनाक्रन्दं मोहशोकपरिप्लुतम् ।
स्रोतसा सहसा क्षिप्तं ह्रियमाणं बलीयसा ॥ ३५ ॥

इस ही भांति दुःखसे पीडित, मोहशोकसे युक्त सब लोग स्रोतमें छोडी हुई वस्तुकी भांति बलवान् कालके जरिये हृत होरहे हैं, और वे आर्तनाद भी नहीं कर सकते हैं ॥ ३५ ॥

न धनेन न राज्येन नोग्रेण तपसा तथा ।
स्वभावा न्यतिवर्तन्ते ये नियुक्ताः शरीरिषु ॥ ३६ ॥

विधाताके द्वारा कर्मफल भोगमें नियुक्त होकर देहधारी लोग बहुतसे धन, राज्य वा कठोर तपस्याके जरिये प्रकृतिको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३६ ॥

न म्रियेरन्न जीर्येरन्सर्वे स्युः सर्वकामिकाः ।
नाप्रियं प्रतिपश्येयुरुत्थानस्य फलं प्रति ॥ ३७ ॥

अभ्युदय प्रयत्नका फल अपने हाथमें होता तो मनुष्य मृत वा बूढे नहीं होते; सबकी समस्त इच्छाएं पूरी हो जातीं और अप्रिय दर्शन नहीं करते ॥ ३७ ॥

उपर्युपरि लोकस्य सर्वो भवितुमिच्छति ।
यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा ॥ ३८ ॥

सब ही लोगोंके ऊपरसे ऊपर स्थान पानेकी इच्छा करते हैं, और शक्तिके अनुसार यत्न भी किया करते हैं, परन्तु वह घटना नहीं होती ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यमदमत्तांश्च मत्तान्मद्यमदेन च ।
अप्रमत्ताः शठाः शूरा विक्रान्ताः पर्युपासते ॥ ३९ ॥

अप्रमत्त विक्रमी शूर मनुष्य ऐश्वर्य-मदसे मत्त और मद्यमदसे मतवाले शठ मनुष्योंकी सब भांतिसे उपासना किया करते हैं ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्लेशाः परिनिवर्तन्ते केषांचिदसमीक्षिताः ।
स्वं स्वं च पुनरन्येषां न किंचिदभिगम्यते ॥ ४० ॥

किसी किसी पुरुषोंके क्लेश ध्यान दिये विनाही निवृत्त होते हैं, और कोई कोई मनुष्य प्रकृत रूपसे सब क्लेशोंको भोग किया करते हैं ॥ ४० ॥

महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंधिषु ।
वहन्ति शिबिकामन्ये यान्त्यन्ये शिबिकागताः ॥ ४१ ॥

कर्मफल भोगनेके विषयमें भी बडी विषमता देखी जाती है; कोई कोई पालकी उठाते हैं, और दूसरे उसी पालकीमें बैठके चलते हैं ॥ ४१ ॥

सर्वेषामृद्धिकामानामन्ये रथपुरःसराः ।
मनुजाश्च शतस्त्रीकाः शतशो विधवाः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

सभी मनुष्य समृद्धिकी इच्छा करते हैं, परंतु थोडेही रथपर चढकर चलते; हैं कोई पुरुष स्त्रीरहित हैं और सैकडों मनुष्य कई स्त्रियोंवाले हैं ॥ ४२ ॥

द्वंद्वारामेषु भूतेषु गच्छन्त्येकैकशो नराः ।
इदमन्यत्परं पश्य मात्र मोहं करिष्यसि ॥ ४३ ॥

सभी प्राणी सुख–दुःखादि द्वन्द्वोंमें रत रहते हैं; मनुष्य उनमेंसे एक एकका अनुभव करते हैं; यह जो ब्रह्म है, वह सबसे भिन्न समझो; इस विषयमें मोह मत करो ॥ ४३ ॥

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज ॥ ४४ ॥

धर्म और अधर्मको त्यागो । सत्य और मिथ्या दोनोंको परित्याग करो; सत्य और असत्य दोनोंका त्याग करके जिसके जरिये त्याग करते हो, उसे भी त्याग दो ॥ ४४ ॥

एतत्ते परमं गुह्यमाख्यातमृषिसत्तम ।
येन देवाः परित्यज्य मर्त्यलोकं दिवं गताः ॥ ४५ ॥

हे ऋषिसत्तम ! देवताओंने जिसके सहारे मर्त्यलोकको त्यागके स्वर्गमें गमन किया है, तुम्हारे समीप मैंने उस ही परम गुप्त विषयको कहा है ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच—

नारदस्य वचः श्रुत्वा शुकः परमबुद्धिमान् ।
संचिन्त्य मनसा धीरो निश्चयं नाध्यगच्छत ॥ ४६ ॥

भीष्म बोले– परम बुद्धिमान् धीर शुकदेव नारद मुनिका वचन सुनके उसे मनसे अनुशीलन करते हुए निश्चयलाभ न कर सके ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पुत्रदारैर्महान्क्लेशो विद्याम्नाये महाञ्श्रमः ।
किं नु स्याच्छाश्वतं स्थानमल्पक्लेशं महोदयम् ॥ ४७ ॥

वे विचार करने लगे कि पुत्र, स्त्री आदिके प्रतिपालनमें महान् क्लेश और विद्यासंपादनमें अत्यन्त परिश्रम है; इसलिये जिसमें अधिक क्लेश न हो और महोन्नति हो, ऐसा कौनसा उपाय है, जिससे नित्य स्थान प्राप्त हो जाय ॥ ४७ ॥

ततो मुहूर्तं संचिन्त्य निश्चितां गतिमात्मनः ।
परावरज्ञो धर्मस्य परां नैःश्रेयसीं गतिम् ॥ ४८ ॥

अनन्तर धर्मके परावरज्ञ शुकदेवने मुहूर्त्तभर तक अपने उपायके निश्चय करनेमें प्रवृत्त रहके अपने धर्मकी निःश्रेयस सम्बन्धिनी परम गतिका निर्णय किया ४८ ॥

कथं त्वहमसंक्लिष्टो गच्छेयं परमां गतिम् ।
नावर्तेयं यथा भूयो योनिसंसारसागरे ॥ ४९ ॥

मैं जिस प्रकार फिर इस योनिसंसार–सागरमें न लौटूं, असंश्लिष्ट अर्थात् सर्व उपाधियोंसे छूटकर किस प्रकार उस परम धामको प्राप्त करूंगा ॥ ४९ ॥

परं भावं हि काङ्क्षामि यत्र नावर्तते पुनः ।
सर्वसङ्गान्परित्यज्य निश्चितां मनसो गतिम् ॥ ५० ॥

जिस स्थानमें जानेसे फिर लौटना नहीं पडता, मैं उस परम भावकी आकांक्षा करता हूं; सर्व सङ्गपरित्याग करके मनही मन मैंने उस ही परम गतिको प्राप्त करनेका निश्चय किया है ॥५०॥

तत्र यास्यामि यत्रात्मा शमं मेऽधिगमिष्यति ।
अक्षयश्चाव्ययश्चैव यत्र स्थास्यामि शाश्वतः ॥ ५१ ॥

जिस स्थानमें मेरी आत्मा शान्तिलाभ करेगी और मैं जिस स्थानमें अक्षय, अव्यय और शाश्वत भावसे निवास करनेमें समर्थ हूंगा, उसही स्थानमें गमन करूंगा ॥ ५१ ॥

न तु योगमृते शक्या प्राप्तुं सा परमा गतिः ।
अबबन्धो हि मुक्तस्य कर्मभिर्नोपपद्यते ॥ ५२ ॥

योगके विना वह परम गति नहीं मिल सकती, और बुद्ध पुरुषका कर्मोंके निकृष्ट बन्धनसे बंधा रहना योग्य नहीं है ॥ ५२ ॥

तस्माद्योगं समास्थाय त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।
वायुभूतः प्रवेक्ष्यामि तेजोराशिं दिवाकरम् ॥ ५३ ॥

इसलिये गृह–स्वरूप देह परित्यागके योग अवलम्बन करते हुए वायुस्वरूप तेजोमय सूर्य-मण्डलके बीच प्रवेश करूंगा ॥ ५३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न ह्येष क्षयमाप्नोति सोमः सुरगणैर्यथा ।
कम्पितः पतते भूमिं पुनश्चैवाधिरोहति ।
क्षीयते हि सदा सोमः पुनश्चैवाभिपूर्यते ॥ ५४ ॥

देवता लोग चन्द्रमाका अमृत पीकर उसे क्षीण करते हैं, उसी प्रकार इस सूर्यमण्डलका क्षय नहीं होता; चन्द्रमण्डलमें गया हुआ जीव कर्मभोग समाप्त होनेपर कम्पित होके पृथ्वीपर गिरता है; फिर कर्मफल भोगनेके लिये चन्द्रलोकमें जाता है; चन्द्रमा सदा क्षीण होके फिर परिपूर्ण होता है, उसकी ह्रास-वृद्धिका क्रम कभी टूटता नहीं ॥ ५४ ॥

रविस्तु संतापयति लोकान्रश्मिभिरुल्बणैः ।
सर्वतस्तेज आदत्ते नित्यमक्षयमण्डलः ॥ ५५ ॥

सूर्य सदा तीक्ष्ण किरणोंके जरिये सब जगत्को सन्तापित करता है और सब पदार्थोंसे तेजको स्वयं आकर्षण किया करता है; इसलिये वह सदा अक्षयमण्डल रहता है ॥ ५५ ॥

अतो मे रोचते गन्तुमादित्यं दीप्ततेजसम् ।
अत्र वत्स्यामि दुर्धर्षो निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥ ५६ ॥

इस ही कारणसे दीप्त तेजशाली आदित्यमण्डलमें गमन करनेकी मेरी रुचि होती है। मैं निशङ्कचित्तसे सूर्यके स्थानमें वास करूंगा, फिर मैं दुर्धर्ष होऊंगा ॥ ५६ ॥

सूर्यस्य सदने चाहं निक्षिप्येदं कलेवरम् ।
ऋषिभिः सह यास्यामि सौरं तेजोऽतिदुःसहम् ॥ ५७ ॥

सूर्यके स्थानमें यह शरीर त्यागके ऋषियोंके सहित मैं अत्यन्त दुःसह सूर्यतेजमें प्रविष्ट हूंगा ॥ ५७ ॥

आपृच्छामि नगान्नागान्गिरीनुर्वीं दिशो दिवम् ।
देवदानवगन्धर्वान्पिशाचोरगराक्षसान् ॥ ५८ ॥

नग, नाग, पर्वत, पृथ्वी, दिशा, आकाश, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और लोकके बीच जो सब जीव हैं, उन सबसे आज्ञा मांगता हूं ॥ ५८ ॥

लोकेषु सर्वभूतानि प्रवेक्ष्यामि नसंशयः ।
पश्यन्तु योगवीर्यं मे सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ ५९ ॥

मैं जगतके सब भूतोंमें निःसन्देह प्रवेश करूंगा। ऋषियोंके सहित सब देवता मेरे योगबलको अवलोकन करें ॥ ५९ ॥

अथानुज्ञाप्य तमृषिं नारदं लोकविश्रुतम् ।
तस्मादनुज्ञां संप्राप्य जगाम पितरं प्रति ॥ ६० ॥

अनन्तर शुकदेव लोकविख्यात नारद महर्षिसे अनुमति मांगकें उनकी आज्ञासे पिताके निकट गये ॥ ६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽभिवाद्य महात्मानमृषिं द्वैपायनं मुनिम् ।
शुकः प्रदक्षिणीकृत्य कृष्णमापृष्टवान्मुनिः ॥ ६१ ॥

मुनि शुकदेवने महानुभाव श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके अपना अभिलषित विषय पूछा ॥ ६१ ॥

श्रुत्वा ऋषिस्तद्वचनं शुकस्य प्रीतो महात्मा पुनराह चैनम् ।
भो भोः पुत्र स्थीयतां तावदद्य यावच्चक्षुः प्रीणयामि त्वदर्थम् ॥ ६२ ॥

महात्मा व्यासदेव शुकदेवका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न होकर उनसे बोले, हे पुत्र ! तुम आज यहीं निवास करो, जिससे तुम्हें देखके मेरे दोनों नेत्र तृप्त–प्रसन्न हों ॥ ६२ ॥

निरपेक्षः शुको भूत्वा निःस्नेहो मुक्तबन्धनः ।
मोक्षमेवानुसंचिन्त्य गमनाय मनो दधे ।
पितरं संपरित्यज्य जगाम द्विजसत्तमः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८ ॥ ११६१५ ॥

शुकदेवने निरपेक्ष, निःस्नेह और संशयरहित होकर मोक्षविषयको सदा विचारते हुए गमन करनेमें ही मन लगाया, वे द्विजश्रेष्ठ पिताको परित्याग करके चले गये ॥ ६३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ ३१८ ॥ ११६१५ ॥

: ३१९ :

भीष्म उवाच—

गिरिपृष्ठं समारुह्य सुतो व्यासस्य भारत ।
समे देशे विविक्ते स निःशलाक उपाविशत् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! द्वैपायनपुत्र शुकदेव कैलास शिखरपर चढके निर्जन, तृणरहित, समतल स्थलमें बैठे ॥ १ ॥

धारयामास चात्मानं यथाशास्त्रं महामुनिः ।
पादत्प्रभृतिगात्रेषु क्रमेण क्रमयोगवित् ॥ २ ॥

उस क्रमयोगके जाननेवाले शुकदेवने चरण प्रभृति समस्त शरीरमें, शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार आत्माको धारण किया ॥ २ ॥

ततः स प्राङ्मुखो विद्वानादित्ये नचिरोदिते ।
पाणिपादं समाधाय विनीतवदुपाविशत् ॥ ३ ॥

अनन्तर सूर्यके उदय होते न होते विद्वान् व्यासपुत्र पूर्वकी ओर मुंह करके हाथपांव स्थिर कर विनीतभावसे बैठ रहे ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न तत्र पक्षिसंघातो न शब्दो नापि दर्शनम् ।
यत्र वैयासकिर्धीमान्योक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

बुद्धिमान् व्यासपुत्रने जिस स्थानमें योग करनेका उपक्रम किया, वहांपर पक्षियोंका समुदाय, शब्द वा उत्कट दर्शनयोग्य विषय कुछ भी न था ॥ ४ ॥

स ददर्श तदात्मानं सर्वसङ्गविनिःसृतम् ।
प्रजहास ततो हासं शुकः संप्रेक्ष्य भास्करम् ॥ ५ ॥

उन्होंने उस समय सर्वसङ्गसे मुक्त आत्माका दर्शन किया । शुकदेव भास्करका दर्शन करनेके अनन्तर जोरसे हंसने लगे ॥ ५ ॥

स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये ।
महायोगीश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद्विहायसम् ॥ ६ ॥

मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये उन्होंने फिर योग अवलम्बन करके महान योगीश्वर होकर आकाश अतिक्रम करनेका उपक्रम किया ॥ ६ ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा देवर्षिं नारदं तदा ।
निवेदयामास तदा स्वं योगं परमर्षये ॥ ७ ॥

अनन्तर वे देवर्षि नारदको प्रदक्षिणा करके उन परमर्षिसे निज योगका विषय निवेदन करने लगे ॥ ७ ॥

दृष्टो मार्गः प्रवृत्तोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु तपोधन ।
त्वत्प्रसादाद्गमिष्यामि गतिमिष्टां महाद्युते ॥ ८ ॥

हे तपोधन ! मैंने मोक्षका पथ देखा और उसही मार्गमें गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं । हे महातेजस्वी ! आपकी स्वस्ति होवे, मैं आपकी कृपासे अभिलषित स्थानमें गमन करूंगा ॥८॥

नारदेनाभ्यनुज्ञातस्ततो द्वैपायनात्मजः ।
अभिवाद्य पुनर्योगमास्थायाकाशमाविशत् ॥ ९ ॥

द्वैपायनपुत्र शुकदेवने नारद मुनिकी आज्ञा पाके उन्हें प्रणाम करके फिर योग अवलम्बन करते हुए आकाशमें प्रवेश किया ॥ ९ ॥

कैलासपृष्ठादुत्पत्य स पपात दिवं तदा ।
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्व्यासपुत्रः सुनिश्चितः ॥ १० ॥

श्रीमान् व्यासपुत्र शुकदेव आकाशचर और सुनिश्चित होकर कैलास पर्वतके ऊपरसे उठके आकाशमें गमन करने लगे ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमुद्यन्तं द्विजश्रेष्ठं वैनतेयसमद्युतिम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि मनोमारुतरंहसम् ॥ ११ ॥

विनतापुत्र गरुडके समान तेजस्वी, मन और वायुके तुल्य वेगशाली उस द्विजवरने जब आकाशमार्गसे गमन किया, उस समय सब कोई उन्हें देखने लगे ॥ ११ ॥

व्यवसायेन लोकांस्त्रीन्सर्वान्सोऽथ विचिन्तयन् ।
आस्थितो दीव्यमध्वानं पावकार्कसमप्रभः ॥ १२ ॥

अनन्तर अग्नि और सूर्यके समान तेजसे युक्त शुकदेव सर्वात्मता निश्चयके जरिये तीनों लोकोंका विचार करते हुए दीर्घपथको अवलम्बन करके गमन करने लगे ॥ १२ ॥

तमेकमनसं यान्तमव्यग्रमकुतोभयम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि जङ्गमानीतराणि च ॥ १३ ॥

उनके अव्यग्र और अकुतोभय होकर एकाग्रचित्तसे गमन करते रहनेपर समस्त चराचर प्राणियोंने उनको देखा ॥ १३ ॥

यथाशक्ति यथान्यायं पूजयांचक्रिरे तदा ।
पुष्पवर्षैश्च दिव्यैस्तमवचक्रुर्दिवौकसः ॥ १४ ॥

और निज शक्तिके अनुसार न्यायपूर्वक उनकी पूजा की; देवताओंने दिव्य फूलोंकी वर्षासे उन्हें परिपूरित किया ॥ १४ ॥

तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ऋषयश्चैव संसिद्धाः परं विस्मयमागताः ॥ १५ ॥

गन्धर्व और अप्सरावृन्द उन्हें देखके विस्मित हुए तथा सम्यक् सिद्ध ऋषि लोग भी उन्हें देखके अत्यन्त विस्मययुक्त हो गये ॥ १५ ॥

अन्तरिक्षचरः कोऽयं तपसा सिद्धिमागतः ।
अधःकायोर्ध्ववक्त्रश्च नेत्रैः समभिवाह्यते ॥ १६ ॥

तपस्याके सहारे सिद्धिलाभ करके यह कौन पुरुष आकाशमें विचरता है ? इसका मुख ऊपरकी ओर और शरीरका निचला भाग नीचेकी ओरही है; यह हम लोगोंके आनन्दको बढा रहा है ॥ १६ ॥

ततः परमधीरात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
भास्करं समुदीक्षन्स प्राङ्मुखो वाग्यतोऽगमत् ।
शब्देनाकाशमखिलं पूरयन्निव सर्वतः ॥ १७ ॥

सिद्धगणोंके इस प्रकार वितर्क करते रहने पर तीनों लोकमें विख्यात, परमधार्मिक धीर शुकदेव पूर्वकी ओर मुख करके तथा सूर्यकी तरफ दृष्टि करके और शब्दके जरिये मानो अखिल आकाशमण्डलको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे ॥ १७ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा सर्वाप्सरोगणाः ।
संभ्रान्तमनसो राजन्नासन्परमविस्मिताः ।
पञ्चचूडाप्रभृतयो भृशमुत्फुल्ललोचनाः ॥ १८ ॥

हे राजन् ! पञ्चचूडा आदि अप्सराएं अत्यन्त उत्फुल्लनेत्र और सम्भ्रान्तचित्त होकर सहसा उन्हें आकाशमार्गसे गमन करते हुए देखके अत्यन्त विस्मित हुई ॥ १८ ॥

दैवतं कतमं ह्येतदुत्तमां गतिमास्थितम् ।
सुनिश्चितमिहायाति विमुक्तमिव निःस्पृहम् ॥ १९ ॥

और सोचने लगीं कि यह कौन देवता श्रेष्ठगति अवलम्बन करके निस्पृह, निश्चित और विमुक्तकी भांति इस स्थानमें आगमन कर रहा है ? ॥ १९ ॥

ततः समतिचक्राम मलयं नाम पर्वतम् ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च यं नित्यमुपसेवते ।
ते स्म ब्रह्मर्षिपुत्रस्य विस्मयं ययतुः परम् ॥ २० ॥

अनन्तर शुकदेवने उर्वशी और पूर्वचित्तिके निवास मलयपर्वतकी ओर गमन किया। वे दोनों उस ब्रह्मर्षिपुत्रके प्रभावको देखकर अत्यन्त विस्मित हुईं ॥ २० ॥

अहो बुद्धिसमाधानं वेदाभ्यासरते द्विजे ।
अचिरेणैव कालेन नभश्चरति चन्द्रवत् ।
पितृशुश्रूषया बुद्धिं संप्राप्तोऽयमनुत्तमाम् ॥ २१ ॥

और कहने लगीं, कैसा आश्चर्य है ! वेदाभ्यासमें रत ब्राह्मणकी बुद्धिमें कितनी एकाग्रता है ! ये पितृसेवासे थोडे ही समयके बीच श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके चन्द्रमाकी भांति आकाशमें विचर रहे हैं; ॥ २१ ॥

पितृभक्तो दृढतपाः पितुः सुदयितः सुतः ।
अनन्यमनसा तेन कथं पित्रा विवर्जितः ॥ २२ ॥

ये पितृभक्त, महान् तपस्वी और पिताके प्रियपुत्र हैं, इसलिये उस अनन्यचित्त पिताने इन्हें जानेकी आज्ञा कैसे दे दी ? ॥ २२ ॥

उर्वश्या वचनं श्रुत्वा शुकः परमधर्मवित् ।
उदैक्षत दिशः सर्वा वचने गतमानसः ॥ २३ ॥

परम धर्मज्ञ शुकदेवने उर्वशीका वचन सुनकर उसके वचनमें ध्यान देके सब दिशाओंकी ओर देखा ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽन्तरिक्षं महीं चैव सशैलवनकाननाम् ।
आलोकयामास तदा सरांसि सरितस्तथा ॥ २४ ॥

वह उस समय आकाशमण्डल, पर्वत, बन और महारण्यके सहित पृथ्वीतल, तलाव और नदियोंको देखने लगे ॥ २४ ॥

ततो द्वैपायनसुतं बहुमानपुरःसरम् ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा निरीक्षन्ते स्म देवताः ॥ २५ ॥

अनन्तर चारों ओरसे सबकी अधिष्ठायी देवियां बहुमान करके हाथ जोडके द्वैपायनपुत्रको देखने लगीं ॥ २५ ॥

अब्रवीत्तास्तदा वाक्यं शुकः परमधर्मवित् ।
पिता यद्यनुगच्छेन्मां क्रोशमानः शुकेति वै ॥ २६ ॥

परम धर्मज्ञ शुकदेव उस समय उन देवियोंसे यह वचन बोले, मेरे पिता यदि शुक कहके आवाहन करते हुए मेरा अनुगमन करें, ॥ २६ ॥

ततः प्रतिवचो देयं सर्वैरेव समाहितैः ।
एतन्मे स्नेहतः सर्वे वचनं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥

तो आप सब कोई सावधान होकर उन्हें उत्तर देना । मेरे ऊपर स्नेहवशसे आप लोग मेरे इस वचनको प्रतिपालन करना ॥ २७ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा दिशः सवनकाननाः ।
समुद्राः सरितः शैलाः प्रत्यूचुस्तं समन्ततः ॥ २८ ॥

शुकदेवका वचन सुनके वनोंके सहित सब दिशा, समुद्र, नदी और पर्वतोंकी अधिष्ठात्री देवियोंने चारों ओरसे उन्हें उत्तर दिया ॥ २८ ॥

यथाज्ञापयसे विप्र बाढमेवं भविष्यति ।
ऋषेर्व्याहरतो वाक्यं प्रतिवक्ष्यामहे वयम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि एकोनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥ ११६४४ ॥

हे विप्रवर ! आपने जो आज्ञा की हम लोग उसे स्वीकार करते हैं; जब महर्षि आपकी बात पूछेंगे, तो हम लोग उन्हें प्रत्युत्तर देंगी ॥ २९ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३१९ ॥ ११६४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२० :

भीष्म उवाच—

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्मर्षिः सुमहातपाः ।
प्रातिष्ठत शुकः सिद्धिं हित्वा श्लोकांश्चतुर्विधान् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— महातपस्वी महर्षि शुकदेवने ऐसा कहके चार प्रकारके श्लोक अर्थात् मोक्ष-प्रतिबन्धक धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यमदको त्यागके सिद्धिमार्गमें प्रस्थान किया ॥ १ ॥

तमो ह्यष्टविधं हित्वा जहौ पञ्चविधं रजः ।
ततः सत्त्वं जहौ धीमांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २ ॥

बुद्धिमान् शुकदेवने आठ प्रकारके तमोगुणका— पुर्यष्टकसंज्ञक लिङ्गशरीर परित्याग करके, पांच प्रकारके रज अर्थात् शब्द, स्पर्श आदि पांचों विषयोंके प्रवर्त्तक वासनामय रजोगुणको परित्याग किया; अनन्तर सत्त्व अर्थात् शुद्धिके जरिये सर्वत्याग करके, जिसके सहारे सर्वत्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो, नारद मुनिके इस उपदेशके अनुसार सत्वगुणको भी परित्याग किया, वह मानो अद्भुतसा मालूम हुआ ॥ २ ॥

ततस्तस्मिन्पदे नित्ये निर्गुणे लिङ्गवर्जिते ।
ब्रह्मणि प्रत्यतिष्ठत्स विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

अनन्तर वह अग्नि नित्य, निर्गुण, लिङ्गवर्जित ब्रह्मपदमें स्थित हुए, तथा उस समय वे धूमरहित प्रज्वलित अग्निकी भांति देदीप्यमान दीखते थे ॥ ३ ॥

उल्कापाता दिशां दाहा भूमिकम्पास्तथैव च ।
प्रादुर्भूताः क्षणे तस्मिंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

उस महापुरुषके उपरमसमयमें जगत्के दुर्भाग्यसूचक उल्कापात, दिशादाह और भूमिकम्प होने लगा, वह भी अद्भुतसा मालूम हुआ ॥ ४ ॥

द्रुमाः शाखाश्च मुमुचुः शिखराणि च पर्वताः ।
निर्घातशब्दैश्च गिरिर्हिमवान्दीर्यतीव ह ॥ ५ ॥

वृक्षोंकी शाखाएं और पर्वतोंकी खिखर टूट टूट गिर पडीं । हिमालय पर्वत वज्रपातके शब्दोंके जरिये मानो विदीर्णसा हुआ ॥ ५ ॥

न बभासे सहस्रांशुर्न जज्वाल च पावकः ।
ह्रदाश्च सरितश्चैव चुक्षुभुः सागरास्तथा ॥ ६ ॥

सहस्रकिरणधारी सूर्यकी प्रभा फीकी पड गयी; अग्नि देव भी प्रज्वलित न रहे; तालाव, नदी और समुद्र क्षुब्ध हुए ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ववर्ष वासवस्तोयं रसवच्च सुगन्धि च ।
ववौ समीरणश्चापि दिव्यगन्धवहः शुचिः ॥ ७ ॥

देवराज इन्द्र उस समय सुगन्धित जल बरसाने लगे । दिव्य सुगन्धियुक्त पवित्र वायु बहने लगी ॥ ७ ॥

स शृङ्गेऽप्रतिमे दिव्ये हिमवन्मेरुसंभवे ।
संश्लिष्टे श्वेतपीते द्वे रुक्मरूप्यमये शुभे ॥ ८ ॥
शतयोजनविस्तारे तिर्यगूर्ध्वं च भारत ।
उदीचीं दिशमाश्रित्य रुचिरे संददर्श ह ॥ ९ ॥

हे भारत ! जिस समय शुकदेव मुनि हिमशैलसे सूर्यमण्डलकी ओर जा रहे थे, उस समय उन्होंने उत्तर दिशाको अवलम्बन करके हिमवान् और मेरुसे उत्पन्न श्वेत और पीतवर्ण तथा रौप्यमय सुवर्ण तिर्यग् वा ऊपरके हिस्सेमें प्रथम सौ योजन लम्ब, मनोहर अप्रतिम दिव्य दो शिखरोंको एक दूसरेसे सटे हुए देखा था ॥ ८–९ ॥

सोऽविशङ्केन मनसा तथैवाभ्यपतच्छुकः ।
ततः पर्वतशृङ्गे द्वे सहसैव द्विधाकृते
अदृश्येतां महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १० ॥

जब वह अविशङ्कचित्त होकर वहांसे ऊपरको उठे, तब सहसा वे दोनों पर्वत शिखर अलग अलग होके दीख पडे । हे महाराज ! उस समय यह अद्भुतसी बात हुई ॥ १० ॥

ततः पर्वतशृङ्गाभ्यां सहसैव विनिःसृतः ।
न च प्रतिजघानास्य स गतिं पर्वतोत्तमः ॥ ११ ॥

वह उस पहाडकी दोनों शिखरोंपरसे सहसा आगे चले गये, उक्त गिरिराजने उनकी गतिको न रोका ॥ ११ ॥

ततो महानभूच्छब्दो दिवि सर्वदिवौकसाम् ।
गन्धर्वाणामृषीणां च ये च शैलनिवासिनः ॥ १२ ॥

अनन्तर यह देख आकाशमण्डलमें देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों और उस पर्वतपर रहनेवाले लोगोंका अत्यन्त महान् शब्द प्रकट हुआ था ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा शुकमतिक्रान्तं पर्वतं च द्विधाकृतम् ।
साधु साध्विति तत्रासीन्नादः सर्वत्र भारत ॥ १३ ॥

हे भारत ! शुकदेवके पर्वत लांघकर आगे बढते और शैलशृंगोंके द्विधा होनेपर शैलवासीयोंका सब ओर " धन्य धन्य " शब्द सुनाई देने लगा ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स पूज्यमानो देवैश्च गन्धर्वैर्ऋषिभिस्तथा ।
यक्षराक्षससंघैश्च विद्याधरगणैस्तथा ॥ १४ ॥

हे महाराज ! उस कालमें गमन करनेके समय शुकदेव मुनि देवता, गन्धर्व, ऋषि, यक्ष, राक्षस और विद्याधरोंसे पूजित हुए थे ॥ १४ ॥

दिव्यैः पुष्पैः समाकीर्णमन्तरिक्षं समन्ततः ।
आसीत्किल महाराज शुकाभिपतने तदा ॥ १५ ॥

वहांसे शुकदेवके ऊपर उठते समय आकाशमण्डल सब प्रकारसे दिव्य फूलोंकी वर्षाके जरिये परिपूरित हुआ था ॥ १५ ॥

ततो मन्दाकिनीं रम्यामुपरिष्टादभिव्रजन् ।
शुको ददर्श धर्मात्मा पुष्पितद्रुमकाननाम् ॥ १६ ॥

अनन्तर धर्मात्मा शुकदेवने ऊपरकी ओर गमन करते समय खिले हुए फूलोंसे युक्त वृक्ष और वन तथा रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखा ॥ १६ ॥

तस्यां क्रीडन्त्यभिरताः स्नान्ति चैवाप्सरोगणाः ।
शून्याकारं निराकाराः शुकं दृष्ट्वा विवाससः ॥ १७ ॥

इस नदीमें अप्सरावृन्द शून्याकारसे शुकदेवको देखकर वस्त्ररहित होके भी जलक्रीडा और स्नान करनेमें ही अनुरक्त थीं ॥ १७ ॥

तं प्रक्रमन्तमाज्ञाय पिता स्नेहसमन्वितः ।
उत्तमां गतिमास्थाय पृष्ठतोऽनुससार ह ॥ १८ ॥

शुकदेवको सिद्धिके लिये उत्क्रमण करते जानके पिता व्यासदेवने स्नेहयुक्त होके उत्तम गति अवलम्बन कर पुत्रके पश्चात् गमन करते हुए उसका अनुसरण किया ॥ १८ ॥

शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वान्तरिक्षगाम् ।
दर्शयित्वा प्रभावं स्वं सर्वभूतोऽभवत्तदा ॥ १९ ॥

इधर शुकदेवने वायुलोकके उर्ध्वभागमें आकाशगतिको अवलम्बन करके निज प्रभाव प्रदर्शित करते हुए ब्रह्मत्वलाभ किया ॥ १९ ॥

महायोगगतिं त्वग्र्यां व्यासोत्थाय महातपाः ।
निमेषान्तरमात्रेण शुकाभिपतनं ययौ ॥ २० ॥

महातपस्वी व्यासदेव श्रेष्ठ भांतिके महायोगयुक्त गतिका अवलम्बन करके ऊपरको उठे और निमेष भरके बीच उस स्थान पर आके उपस्थित हुए, जहांसे शुकदेवने गमन किया था ॥२०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स ददर्श द्विधा कृत्वा पर्वताग्रं शुकं गतम् ।
शशंसुर्ऋषयस्तस्मै कर्म पुत्रस्य तत्तदा ॥ २१ ॥

वहां उन्होंने देखा कि शुकदेवने पर्वतकी शिखरोंको द्विधा करके गमन किया है; उस समय ऋषियोंने उनके पुत्रके अलौकिक कार्यको उनके समीप वर्णन किया ॥ २१ ॥

ततः शुकेति दीर्घेण शैक्षेणाक्रन्दितस्तदा ।
स्वयं पित्रा स्वरेणोच्चैस्त्रीँल्लोकाननुनाद्य वै ॥ २२ ॥

अनन्तर पिता व्यासदेव ऊंचे स्वरसे "शुक" इस दीर्घ शब्दके जरिये तीनों लोकोंको अनुनादित करते हुए रोने लगे ॥ २२ ॥

शुकः सर्वगतो भूत्वा सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।
प्रत्यभाषत धर्मात्मा भोःशब्देनानुनादयन् ॥ २३ ॥

धर्मात्मा शुकदेवने उस समय सर्वव्यापी, सर्वमुख और सर्वात्मा हुए थे; इसलिये उन्होंने 'भो' शब्दके जरिये अनुनाद करते हुए प्रत्युत्तर दिया ॥ २३ ॥

तत एकाक्षरं नादं भो इत्येव समीरयन् ।
प्रत्याहरज्जगत्सर्वमुच्चैः स्थावरजङ्गमम् ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत्ने एकाक्षरनाद 'भो' इस शब्दको ऊंचे स्वरसे उच्चारण करके प्रत्युत्तर दिया ॥ २४ ॥

ततः प्रभृति चाद्यापि शब्दानुच्चारितान्पृथक् ।
गिरिगह्वरपृष्ठेषु व्याजहार शुकं प्रति ॥ २५ ॥

तभीसे अबतक पर्वतोंके शिखरपर अथवा गुफाओंके आसपास उच्चारण किये हुए पृथक् पृथक् शब्दके अनुसार वहांके सभी चराचर निवासी शुकके निमित्त प्रत्युत्तर दिया करते हैं ॥ २५ ॥

अन्तर्हितः प्रभावं तु दर्शयित्वा शुकस्तदा ।
गुणान्संत्यज्य शब्दादीन्पदमध्यगमत्परम् ॥ २६ ॥

शुकदेवने उस समय शब्द आदि विषयोंको परित्याग करते हुए निज प्रभाव प्रदर्शित किया और अन्तर्हित होकर परमपद पाया ॥ २६ ॥

महिमानं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्यामिततेजसः ।
निषसाद गिरिप्रस्थे पुत्रमेवानुचिन्तयन् ॥ २७ ॥

व्यासदेव अत्यन्त तेजशाली पुत्रकी उस महिमाको देखकर उसहीकी सदा चिन्ता करते हुए शिखरपर बैठ रहे ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो मन्दाकिनीतीरे क्रीडन्तोऽप्सरसां गणाः ।
आसाद्य तमृषिं सर्वाः संभ्रान्ता गतचेतसः ॥ २८ ॥

अनन्तर मन्दाकिनीके किनारे जो सब अप्सराएं क्रीडा कर रही थीं, वे सब उस मुनिसत्तमको देखके अत्यन्त भयभीत और लज्जित हुई ॥ २८ ॥

जले निलिल्यिरे काश्चित्काश्चिद्गुल्मान्प्रपेदिरे ।
वसनान्याददुः काश्चिद्दृष्ट्वा मुनिसत्तमम् ॥ २९ ॥

कोई जलमें ही बैठ रहीं, कोई गुलमलताओंकी आडमें खडी हो गईं; किसी किसीने मुनि श्रेष्ठको देखकर शीघ्रताके सहित पहरनेका वस्त्र ग्रहण किया ॥ २९ ॥

तां मुक्ततां तु विज्ञाय मुनिः पुत्रस्य वै तदा ।
सक्ततामात्मनश्चैव प्रीतोऽभूद्व्रीडितश्च ह ॥ ३० ॥

उसे देखके महर्षिने निज पुत्रकी मुक्तता जानके प्रसन्न हुए और अपनी आसक्तिका विचार करके लज्जित हुए ॥ ३० ॥

तं देवगन्धर्ववृतो महर्षिगणपूजितः ।
पिनाकहस्तो भगवानभ्यागच्छत शंकरः ॥ ३१ ॥

इतने ही समयमें देव गन्धर्वोंसे घिरे हुए तथा महर्षियोंसे पूजित भगवान् पिनाकपाणि महादेव उनके सम्मुख प्रकट हुए ॥ ३१ ॥

तमुवाच महादेवः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं कृष्णद्वैपायनं तदा ॥ ३२ ॥

महादेव उस पुत्र-शोकसे दुःखी द्वैपायन मुनिको धीरज देके बोले ॥ ३२ ॥

अग्नेर्भूमेरपां वायोरन्तरिक्षस्य चैव ह ।
वीर्येण सदृशः पुत्रस्त्वया मत्तः पुरा वृतः ॥ ३३ ॥

पहले तुमने मेरे समीप अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके सदृश वीर्यवान् पुत्र मांगा था ॥ ३३ ॥

स तथालक्षणो जातस्तपसा तव संभृतः ।
मम चैव प्रभावेन ब्रह्मतेजोमयः शुचिः ॥ ३४ ॥

तुम्हारे वैसे ही लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न होके तपस्यासे संवर्द्धित हुआ और मेरी कृपासे ब्रह्मतेजोमय तथा पवित्र हुआ था ॥ ३४ ॥

स गतिं परमां प्राप्तो दुष्प्रापामजितेन्द्रियैः ।
दैवतैरपि विप्रर्षे तं त्वं किमनुशोचसि ॥ ३५ ॥

हे विप्रर्षि ! उसने अजितेन्द्रिय पुरुषों और देवताओंसे भी दुष्प्राप्य परम गति पाई है; फिर तुम उसके लिये क्यों शोक करते हो ? ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Rabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावत्स्थास्यन्ति सागराः ।
तावत्तवाक्षया कीर्तिः सपुत्रस्य भविष्यति ॥ ३६ ॥

जबतक सब पर्वत विद्यमान रहेंगे, तबतक समुद्र वर्त्तमान रहेंगे, तबतक पुत्रके सहित तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति होगी ॥ ३६ ॥

छायां स्वपुत्रसदृशीं सर्वतोऽनपगां सदा ।
द्रक्ष्यसे त्वं च लोकेऽस्मिन्मत्प्रसादान्महामुने ॥ ३७ ॥

हे महामुनि ! मेरी कृपासे तुम इस लोकमें सदा सब प्रकारसे स्थिर निज पुत्रकी सदृशी छाया देख सकोगे ॥ ३७ ॥

सोऽनुनीतो भगवता स्वयं रुद्रेण भारत ।
छायां पश्यन्समावृत्तः स मुनिः परया मुदा ॥ ३८ ॥

हे भारत ! महामुनि द्वैपायन स्वयं भगवान् रुद्रदेवसे अनुनीत होके पुत्रकी छाया देखके परम हर्षके सहित वहांसे लौटे ॥ ३८ ॥

इति जन्म गतिश्चैव शुकस्य भरतर्षभ ।
विस्तरेण मयाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जो पूछा था, यह मैंने उस ही शुकदेवके जन्म और परमपद प्राप्तिके वृत्तान्तको विस्तारके सहित कहा है ॥ ३९ ॥

एतदाचष्ट मे राजन्देवर्षिर्नारदः पुरा ।
व्यासश्चैव महायोगी संजल्पेषु पदे पदे ॥ ४० ॥

हे राजन् ! पहले समयमें देवर्षि नारद और महायोगी व्यासदेवने कथाप्रसङ्गसे मेरे निकट इस विषयको बार बार वर्णन किया था ॥ ४० ॥

इतिहासमिमं पुण्यं मोक्षधर्मार्थसंहितम् ।
धारयेद्यः शमपरः स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥ ११६८५ ॥

जो इस मोक्षधर्मसे युक्त पवित्र इतिहासकी धारणा करेगा, वह शमपरायण हो परमपद प्राप्त करनेमें समर्थ होगा ॥ ४१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२० ॥ ११६८५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२१ :

युधिष्ठिर उवाच—

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
य इच्छेत्सिद्धिमास्थातुं देवतां कां यजेत सः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे पितामह ! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी, इनके बीच जो सिद्धि अवलम्बनकी अभिलाष करे, उसे कौनसे देवताकी पूजा करनी चाहिये ? ॥ १ ॥

कुतो ह्यस्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम् ।
विधिना केन जुहुयादैवं पित्र्यं तथैव च ॥ २ ॥

किसकी कृपासे उसे अनावृत्तिफलक स्वर्ग मिलेगा और किस प्रकार परम कल्याण प्राप्त होगा ? दैव और पितृकर्ममें कौनसी विधिके अनुसार आहुति देनी होगी ? ॥ २ ॥

मुक्तश्च कां गतिं गच्छेन्मोक्षश्चैव किमात्मकः ।
स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते दिवः ॥ ३ ॥

मुक्त होनेपर किस स्थानमें जाना होगा ? मोक्ष किस प्रकार होती है ? स्वर्गमें जाकर ऐसा कौनसा कार्य करे, जिसके जरिये वहांसे फिर च्युत होना न पडे ? ॥ ३ ॥

देवतानां च को देवः पितॄणां च तथा पिता ।
तस्मात्परतरं यच्च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४ ॥

देवताओंका देवता कौन है ? पितरोंका पिता कौन है ? और उससे भी श्रेष्ठ और कौन है ? आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये ॥ ४ ॥

भीष्म उवाच—

गूढं मां प्रश्नवित्प्रश्नं पृच्छसे त्वमिहानघ ।
न ह्येष तर्कया शक्यो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ५ ॥

ऋते देवप्रसादाद्वा राजञ्ज्ञानागमेन वा ।
गहनं ह्येतदाख्यानं व्याख्यातव्यं तवारिहन् ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— हे अनघ ! तुम प्रश्नवित् होकर इस समय मुझसे जिस गूढ प्रश्नका विषय पूछते हो, यह देवताओंके अनुग्रह वा ज्ञानागमके विना सैकडों वर्षोंमें भी निर्णय करके नहीं कहा जा सकता । हे शत्रुनाशन महाराज ! इस कठिन आख्यानकी भी तुम्हारे समीप व्याख्या करना मुझे उचित बोध होता है ॥ ५-६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ७ ॥

प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और नरनारायण ऋषिके संवादयुक्त प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं ॥ ७ ॥

नारायणो हि विश्वात्मा चतुर्मूर्तिः सनातनः ।
धर्मात्मजः संबभूव पितैवं मेऽभ्यभाषत ॥ ८ ॥

भगवान् नारायणही विश्वात्मा, चतुर्मूर्ति और सनातन देवता है, यह मेरे पिताने मुझे कहा था; वे धर्मके पुत्र रूपसे प्रकट हुए थे ॥ ८ ॥

कृते युगे महाराज पुरा स्वायंभुवेऽन्तरे ।
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च ॥ ९ ॥

हे महाराज ! पहले समयमें स्वायंभुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें उन स्वयम्भू भगवानके नर, नारायण, हरि और कृष्ण— ऐसे चार अवतार हुए थे ॥ ९ ॥

तेभ्यो नारायणनरौ तपस्तेपतुरव्ययौ ।
बदर्याश्रममासाद्य शकटे कनकामये ॥ १० ॥

उनमेंसे अव्यय नारायण और नरने बदरिकाश्रममें एक सुवर्णमय रथपर स्थित हो तपस्या की थी ॥ १० ॥

अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोरमम् ।
तत्राद्यौ लोकनाथौ तौ कृशौ धमनिसंततौ ॥ ११ ॥

उनका वह मनोरम रथ आठ पहियोंसे युक्त था और उसमें अनेक प्राणी जुते हुए थे; जिसमें अधिष्ठित होकर आदि पुरुष लोकनाथ नर–नारायण तपस्यासे कृश हो गये और उनके शरीरकी नसें दिखायी देने लगीं ॥ ११ ॥

तपसा तेजसा चैव दुर्निरीक्ष्यौ सुरैरपि ।
यस्य प्रसादं कुर्वाते स देवौ द्रष्टुमर्हति ॥ १२ ॥

तपस्यासे उनका तेज बढनेके कारण वे देवताओंके भी दुर्निरीक्ष्य हुए थे; वे जिसके ऊपर कृपा करते थे, वही उन दोनों देवोंको देख सकता था ॥ १२ ॥

नूनं तयोरनुमते हृदि हृच्छयचोदितः ।
महामेरोर्गिरेः शृङ्गात्प्रच्युतो गन्धमादनम् ॥ १३ ॥

उन दोनोंकी अनुमतिके अनुसार अन्तर्यामीके जरिये प्रेरित होकर निश्चय ही महर्षि नारद महामेरु पर्वतकी शिखरसे उतरकर गन्धमादन पर्वत पर उतर पडे ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नारदः सुमहद्भूतं लोकान्सर्वानचीचरत् ।
तं देशमगमद्राजन्बदर्याश्रममाशुगः ॥ १४ ॥

हे महाराज ! नारद सब लोकोंमें भ्रमण करते थे; शीघ्रगामी देवर्षि नारद नरनारायण ऋषिके ब्रह्मयज्ञादिके समय उस महान् प्राणियोंसे युक्त बदरिकाश्रममें उपस्थित हुए ॥ १४ ॥

तयोराह्निकवेलायां तस्य कौतूहलं त्वभूत् ।
इदं तदास्पदं कृत्स्नं यस्मिँल्लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ १५ ॥
सदेवासुरगन्धर्वाः सर्षिकिंनरलेलिहाः ।
एका मूर्तिरियं पूर्वं जाता भूयश्चतुर्विधा ॥ १६ ॥

जब भगवान् नर और नारायका नित्य कर्मका समय हुआ, तब देव, असुर, गन्धर्व, ऋषि, किन्नर और महोरगोंके सहित समस्त लोक जिसमें प्रतिष्ठित है, क्या यह उसहीका निवासस्थान है ? ऐसा सोचके उनके मनमें बहुतही कौतूहल उत्पन्न हुआ । पहले जो मूर्त्ति केवल एक ही थी, अब वह धर्म–बुद्धिके लिये चार प्रकार होकर धर्म आदिके जरिये विशेष रूपसे वर्द्धित हुई है ॥ १५–१६ ॥

धर्मस्य कुलसंतानो महानेभिर्विवर्धितः ।
अहो ह्यनुगृहीतोऽद्य धर्म एभिः सुरैरिह ।
नरनारायणाभ्यां च कृष्णेन हरिणा तथा ॥ १७ ॥

कैसा आश्चर्य है ! इन चारोंने अपने धर्मसे धर्मकी परम्पराको बढाया है; नर–नारायण, कृष्ण और हरि, इन चारों देवताओंके जरिये इस समय धर्म अनुगृहीत हुआ है ॥ १७ ॥

तत्र कृष्णो हरिश्चैव कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
स्थितौ धर्मोत्तरौ ह्येतौ तथा तपसि धिष्ठितौ ॥ १८ ॥

कृष्ण तथा हरि किसी कारणान्तर निबन्धनसे स्थिति करते हैं, और ये दोनों धर्मप्रधान होकर तपोनिष्ठ होरहे हैं ॥ १८ ॥

एतौ हि परमं धाम कानयोराह्निकक्रिया ।
पितरौ सर्वभूतानां दैवतं च यशस्विनौ ।
कां देवतां नु यजतः पितॄन्वा कान्महामती ॥ १९ ॥

ये दोनों परमधाम स्वरूप हैं, ये दोनों परम तेजस्वी, सब भूतोंके पिता और यशस्वी देवता हैं, इसलिये इनका उपासना कर्म क्या है ? ये दोनों महाबुद्धिमान् कौनसे देवताका यजन तथा किस पितरोंका पूजन करते हैं ? ॥ १९ ॥

इति संचिन्त्य मनसा भक्त्या नारायणस्य ह ।
सहसा प्रादुरभवत्समीपे देवयोस्तदा ॥ २० ॥

महर्षि नारद मनही मन ऐसी ही चिन्ता करते हुए नारायणमें भक्तिवशसे उस समय सहसा उन दोनों देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए ॥ २० ॥

CC-0. Swami Mumukshanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृते दैवे च पित्र्ये च ततस्ताभ्यां निरीक्षितः ।
पूजितश्चैव विधिना यथाप्रोक्तेन शास्त्रतः ॥ २१ ॥

नर और नारायणने देव और पितृकार्यको पूरा करके नारदकी ओर देखा और देखते ही शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार उनकी पूजा की ॥ २१ ॥

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यमपूर्वं विधिविस्तरम् ।
उपोपविष्टः सुप्रीतो नारदो भगवानृषिः ॥ २२ ॥

उनका अपूर्व विधि विस्तार और अत्यंत आश्चर्यमय व्यवहार अवलोकन करके उनके निकट बैठे हुए भगवान् नारद ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

नारायणं संनिरीक्ष्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
नमस्कृत्वा महादेवमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

वह प्रसन्न अन्तःकरणसे महादेव नारायणको देखके उन्हें नमस्कार करके यह वचन बोले ॥ २३ ॥

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।
त्वमजः शाश्वतो धाता मतोऽमृतमनुत्तमम् ।
प्रतिष्ठितं भूतभव्यं त्वयि सर्वमिदं जगत् ॥ २४ ॥

हे देव ! समस्त पुराणोंके सहित साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंके बीच तुम अज, नित्य, धाता और अनुत्तम अमृत रूपसे सम्मत तथा वर्णित होते हो; भूत–भविष्यत् और यह समस्त जगत् तुममेंही प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥

चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ।
यजन्ते त्वामहरहर्नानामूर्तिसमास्थितम् ॥ २५ ॥

गार्हस्थ्यमूलक चारों आश्रमवाले सब लोग अनेक मूर्त्तियोंके अवलम्बसे प्रतिदिन तुम्हारी पूजा किया करते हैं ॥ २५ ॥

पिता माता च सर्वस्य जगतः शाश्वतो गुरुः ।
कं त्वद्य यजसे देवं पितरं कं न विद्महे ॥ २६ ॥

तुम समस्त जगत्के पिता, माता और शाश्वत गुरु हो; इस समय तुम कौनसे देवता तथा किस पितरकी पूजा करते हो, इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

अवाच्यमेतद्वक्तव्यमात्मगुह्यं सनातनम् ।
तव भक्तिमतो ब्रह्मन्वक्ष्यामि तु यथातथम् ॥ २७ ॥

श्री भगवान् बोले– हे ब्रह्मन् ! यह आत्मगुह्य सनातन विषय अवक्तव्य होनेपर भी तुम्हारी भक्तिमत्तासे कहना उचित समझके तुम्हारे समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करता हूं ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यत्तत्सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम् ॥ २८ ॥

जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और शाश्वत है; जो इन्द्रियों, विषयों और सब भूतोंसे पर है; ॥ २८ ॥

स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते ।
त्रिगुणव्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चेति कल्पितः ।
तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम ॥ २९ ॥

वही जीवोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञरूपसे वर्णित होता है; वही त्रिगुणातीत पुरुष रूपसे कल्पित हुआ करता है । हे द्विजसत्तम ! उसहीसे त्रिगुणात्मक अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है ॥ २९ ॥

अव्यक्ता व्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरव्यया ।
तां योनिमावयोर्विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।
आवाभ्यां पूज्यतेऽसौ हि दैवे पित्र्ये च कल्पिते ॥ ३० ॥

जो व्यक्त न होनेपर भी व्यक्तभावसे निवास करता है, अव्यया अर्थात् अपरिणामवती प्रकृति है । जो सत्ता स्वयं अव्यक्ता अर्थात् घट, पट आदि व्यक्त पदार्थोंमें सत्स्वरूपसे विद्यमान हो रही है वही प्रकृति है; उसे ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण जानो और जो सदसदात्मक अर्थात् निष्कल भावसे सत् और असत् कार्योंके कारण है, उसकी कल्पनाके अधिष्ठानत्व निबन्धनसे तदात्मक है, उसे ही हम देव और पितर कल्पना करके पूजा करते हैं ॥ ३० ॥

नास्ति तस्मात्परोऽन्यो हि पिता देवोऽथ वा द्विजः ।
आत्मा हि नौ स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयावहे ॥ ३१ ॥

उससे बढके परम देव, परम पिता तथा द्विज दूसरा कोई भी नहीं है; वही हम लोगोंकी आत्मा है, यह जानना चाहिये; इस ही लिये उसकी हम पूजा किया करते हैं ॥ ३१ ॥

तेनैषा प्रथिता ब्रह्मन्मर्यादा लोकभाविनी ।
दैवं पित्र्यं च कर्तव्यमिति तस्यानुशासनम् ॥ ३२ ॥

हे ब्रह्मन् ! उसहीसे यह लोकभाविनी धर्मकी मर्यादा प्रसिद्ध हुई है; 'दैव और पितृकर्म करना चाहिये' यही उसकी आज्ञा है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तपो दमः ।
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा, स्थाणु, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, दम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, ॥३३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वसिष्ठः परमेष्ठी च विवस्वान्सोम एव च ।
कर्दमश्चापि यः प्रोक्तः क्रोधो विक्रीत एव च ॥ ३४ ॥

वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम, क्रोध, (प्रचेता) और विक्रीत—॥ ३४ ॥

एकविंशतिरुत्पन्नास्ते प्रजापतयः स्मृताः ।
तस्य देवस्य मर्यादां पूजयन्ति सनातनीम् ॥ ३५ ॥

ये इक्कीस प्रजापति उससे उत्पन्न हुए हैं और ये सभी उस परम देवताकी सनातनकी धर्म मर्यादाका संमान और पूजन किया करते हैं ॥ ३५ ॥

दैवं पित्र्यं च सततं तस्य विज्ञाय तत्त्वतः ।
आत्मप्राप्तानि च ततो जानन्ति द्विजसत्तमाः ॥ ३६ ॥

उसके उद्देश्यसे दैव और पितृकर्म सदा करना योग्य है, इसे यथार्थ जानके उत्तम द्विज लोग उसकी कृपासे अपनी अभीष्ट वस्तुओंको तथा आत्मज्ञान पाते हैं ॥ ३६ ॥

स्वर्गस्था अपि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः ।
ते तत्प्रसादाद्गच्छन्ति तेनादिष्टफलां गतिम् ॥ ३७ ॥

स्वर्गवासी शरीरधारी जीव भी उसे नमस्कार करते हैं और वे लोग उसकी कृपासे तदादिष्ट उत्तम गति पाते हैं ॥ ३७ ॥

ये हीनाः सप्तदशभिर्गुणैः कर्मभिरेव च ।
कलाः पञ्चदश त्यक्त्वा ते मुक्ता इति निश्चयः ॥ ३८ ॥

जो लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दसों इन्द्रिय इन सत्रह गुणोंसे और सब कर्मोंसे रहित हो, पंद्रह कलाओंको त्यागकर स्थित हैं, वे ही मुक्त हैं, यह निश्चय है ॥ ३८ ॥

मुक्तानां तु गतिर्ब्रह्मन्क्षेत्रज्ञ इति कल्पितः ।
स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ॥ ३९ ॥

हे ब्रह्मन् ! मुक्त मनुष्योंकी गति क्षेत्रज्ञ है, यह निश्चित किया गया है; वह सर्वव्यापी और निर्गुण रूपसे कहा जाता है ॥ ३९ ॥

दृश्यते ज्ञानयोगेन आवां च प्रसृतौ ततः ।
एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयावः सनातनम् ॥ ४० ॥

और ज्ञानयोगके सहारे वह दीख पडता है । हम दोनों उसहीसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जानके उसी सनातन आत्माकी हम पूजा किया करते हैं ॥ ४० ॥

तं वेदाश्चाश्रमाश्चैव नानातनुसमास्थिताः ।
भक्त्या संपूजयन्त्याद्यं गतिं चैषां ददाति सः ॥ ४१ ॥

चारों वेद, चारों आश्रम तथा अनेक देह समाश्रित सब लोग भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और वह शीघ्र ही उन लोगोंको सद्गति प्रदान करता है ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये तु तद्भाविता लोके एकान्तित्वं समाश्रिताः ।
एतदभ्यधिकं तेषां यत्ते तं प्रविशन्त्युत ॥ ४२ ॥

इस लोकमें जो लोग सद्भावसे युक्त होकर अनन्य भावसे उसकी भक्ति करते हैं, उन्हें सबसे बडा लाभ ये होता है कि वे परिणाममें उसमें ही प्रवेश किया करते हैं ॥ ४२ ॥

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः ।
भक्त्या प्रेम्णा च विप्रर्षे अस्मद्भक्त्या च ते श्रुतः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥ ११७२८ ॥

हे नारद ! यह गुप्त वृत्तान्त तुम्हारे समीप कहा गया । हे विप्रर्षि ! हमारे ऊपर भक्ति और प्रीति करनेसे तुमने सहजमें इसे सुना है ॥ ४३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२१ ॥ ११७२८ ॥

: ३२२ :

भीष्म उवाच—

स एवमुक्तो द्विपदां वरिष्ठो नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।
जगाद वाक्यं द्विपदां वरिष्ठं नारायणं लोकहिताधिवासम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— पुरुषोंमें श्रेष्ठ महर्षि नारद पुरुषोत्तम नारायणका ऐसा वचन सुनके सब लोकोंके हितके अवलम्बन, पुरुषोंमें वरिष्ठ नारायणसे फिर वक्ष्यमाण रीतिसे यह वचन कहने लगे ॥१॥

यदर्थमात्मप्रभवेह जन्म तवोत्तमं धर्मगृहे चतुर्धा ।
तत्साध्यतां लोकहितार्थमद्य गच्छामि द्रष्टुं प्रकृतिं तवाद्याम् ॥ २ ॥

हे लोकनाथ ! आपने स्वयम्भू होकर भी जिस निमित्त धर्मके स्थानमें चार रूपसे जन्म ग्रहण किया, उस लोकहितकर कार्यको सिद्ध करिये । अब मैं आपकी आद्या प्रकृतिका दर्शन करनेके लिये गमन करता हूं ॥ २ ॥

वेदाः स्वधीता मम लोकनाथ तप्तं तपो नानृतमुक्तपूर्वम् ।
पूजां गुरूणां सततं करोमि परस्य गुह्यं न च भिन्नपूर्वम् ॥ ३ ॥

मैं सदा गुरुजनोंकी पूजा किया करता हूं, पहिले कभी दूसरेके गूढ विषयको प्रकाश नहीं किया, वेदोंको भली भांति पढा है और उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तथा कदाचित असत्य वचन नहीं कहा है ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गुप्तानि चत्वारि यथागमं मे शत्रौ च मित्रे च समोऽस्मि नित्यम् ।
तं चादिदेवं सततं प्रपन्न एकान्तभावेन वृणोम्यजस्रम् ।
एभिर्विशेषैः परिशुद्धसत्त्वः कस्मान्न पश्येयमनन्तमीशम् ॥ ४ ॥

हाथ, पांव, उदर और उपस्थ इन चारोंको शास्त्रके अनुसार मैंने संयत किया है। मैं सदा शत्रु-मित्रमें समदर्शी होकर उस आदिदेवके निकट शरणागत हुआ हूं और सदा अनन्य भावसे उसकी ही प्रार्थना किया करता हूं। इन सब कार्योंसे परिशुद्ध-सत्त्व होके भी मैं किस निमित्त अनन्त ईश्वरका दर्शन करनेमें असमर्थ होरहा हूं ? ॥ ४ ॥

तत्पारमेष्ठ्यस्य वचो निशम्य नारायणः सात्वतधर्मगोप्ता ।
गच्छेति तं नारदमुक्तवान्स संपूजयित्वात्मविधिक्रियाभिः ॥ ५ ॥

शाश्वत धर्मकी रक्षा करनेवाले नारायणने विधातृपुत्र नारदका ऐसा वचन सुनके यत्नके सहित उनका विधिपूर्वक सम्मान करके उन्हें गमन करनेके लियें आज्ञा दी ॥ ५ ॥

ततो विसृष्टः परमेष्ठिपुत्रः सोऽभ्यर्चयित्वा तमृषिं पुराणम् ।
खमुत्पपातोत्तमवेगयुक्तस्ततोऽधिमेरौ सहसा निलिल्ये ॥ ६ ॥

अनन्तर नारद मुनि उस प्राचीन नारायण ऋषिकी पूजा करके उनके समीपसे बिदा हुए और योगयुक्त होकर आकाशमें उठे और सहसा सुमेरु पर्वतके ऊपर आके अदृश्य हो गये ॥ ६ ॥

तत्रावतस्थे च मुनिर्मुहूर्तमेकान्तमासाद्य गिरेः स शृङ्गे ।
आलोकयन्नुत्तरपश्चिमेन ददर्श चात्यद्भुतरूपयुक्तम् ॥ ७ ॥

उन्होंने उस गिरिशृंगके निर्जन स्थानपर पहुंचके मुहूर्त्त भर वहां निवास किया। वहां स्थित होके वायव्यकोनकी ओर देखते देखते पूर्व-वर्णित एक अद्भुत दृश्यको देखा ॥ ७ ॥

क्षीरोदधेरुत्तरतो हि द्वीपः श्वेतः स नाम्ना प्रथितो विशालः ।
मेरोः सहस्रैः स हि योजनानां द्वात्रिंशतोर्ध्वं कविभिर्निरुक्तः ॥ ८ ॥

क्षीरोदधिके उत्तरतरफ श्वेत नामसे विख्यात जो विशाल द्वीप है, वह सुमेरु पर्वतके मूल स्थानसे बत्तीस हजार योजन ऊंचा है, यह विद्वानोंके जरिये निश्चितरूपसे वर्णित हुआ है ॥ ८ ॥

अतीन्द्रियाश्चानशनाश्च तत्र निष्पन्दहीनाः सुसुगन्धिनश्च ।
श्वेताः पुमांसो गतसर्वपापाश्चक्षुर्मुषः पापकृतां नराणाम् ॥ ९ ॥

वहांपर स्थूलशरीरकी आसक्तिसे रहित-अतीन्द्रिय, शब्द आदि विषय भोगहीन, निराहार, निश्चेष्ट, परमात्माके ध्यानमें रत शुद्धसत्त्वप्रधान पुरुष निवास करते हैं; उनके अङ्गोंसे उत्तम सुगन्ध निकलती है। सब पापोंसे रहित श्वेत वर्णवाले पुरुष वहां हैं; और तेजस्विता निबन्धनसे पापी मनुष्योंके नेत्रको मोषण किया करते हैं ॥ ९ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

व्रजास्थिकायाः सममानोन्माना दिव्यान्वयरूपाः शुभसारोपेताः ।
छत्राकृतिशीर्षा मेघौघनिनादाः सत्पुष्करचतुष्का राजीवशतपादाः॥ १० ॥

वे वज्रके समान हड्डी और शरीरसम्पन्न हैं । मान-अपमानको समान जाननेवाले, दिव्यरूपशाली और योगप्रभावजनित बलसे युक्त हैं । उनके मस्तक छत्रके समान हैं, उनका शब्द बादल गर्जनेके समान गम्भीर है, उनके चार बाहु पुष्करके समान हैं, उनके चरण सैकडों कमल सदृश रेखाओंसे युक्त हैं ॥ १० ॥

षष्ट्या दन्तैर्युक्ताः शुक्लैरष्टाभिर्दंष्ट्राभिर्ये ।
जिह्वाभिर्ये विष्वग्वक्त्रं लेलिह्यन्ते सूर्यप्रख्यम् ॥ ११ ॥

उनके श्वेतवर्णके साठ दांत हैं अर्थात् जगत्‌रूपी चणकचर्वण करनेमें समर्थ और संवत्सरसे युक्त हैं, अष्टदंष्ट्रा अर्थात् दिशाओंकी भांति सबके आश्रयभूत हैं, सूर्यके जरिये प्रकट हुए महीना, ऋतु, संवत्सरात्मक महाकालमय विश्ववक्त्रको पायसकी सांति लेहन करते हैं ॥११॥

भक्त्या देवं विश्वोत्पन्नं यस्मात्सर्वे लोकाः सूताः ।
वेदा धर्मा मुनयः शान्ता देवाः सर्वे तस्य विसर्गाः ॥ १२ ॥

जिससे सब लोग उत्पन्न हुए हैं और जिससे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, सब वेद, धर्म, शान्त स्वभाववाले मुनि और देवता लोग जिससे वशमें स्थित हैं; उन लोगोंने भक्तिके जरिये उसही देवको हृदयमें व्यक्त किया है ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

अतीन्द्रिया निराहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ।
कथं ते पुरुषा जाताः का तेषां गतिरुत्तमा ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर बोले- हे भरतसत्तम ! वे श्वेतद्वीपनिवासी पुरुष किस प्रकार अतीन्द्रिय, निराहार, निश्चेष्ट और परमात्म-ध्यानपरायण हुए थे, उनके शरीरसे सुगन्ध क्यों निकलती है ? तथा उन लोगोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वे किस उत्तम गतिको प्राप्त होते है ? ॥१३॥

ये विमुक्ता भवन्तीह नरा भरतसत्तम ।
तेषां लक्षणमेतद्धि यच्छ्वेतद्वीपवासिनाम् ॥ १४ ॥

हे भरतसत्तम ! जो सब मनुष्य इस लोकमें मुक्त होते हैं, उनका जैसा लक्षण है, श्वेतद्वीपवासी पुरुषोंका भी वैसा ही लक्षण आपने कहा है ॥ १४ ॥

तस्मान्मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ।
त्वं हि सर्वकथारामस्त्वां चैवोपाश्रिता वयम् ॥ १५ ॥

इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप मेरा सन्देह दूर करिये । आपकोही सब कथा आश्रय करती हैं, हम भी आपका आश्रय कर रहे हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

विस्तीर्णैषा कथा राजञ्श्रुता मे पितृसंनिधौ ।
सैषा तव हि वक्तव्या कथासारो हि स स्मृतः ॥ १६ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! यह कथावृत्तान्त बहुत विस्तीर्ण है, मैंने अपने पिताके निकट इसे सुना था । तुम्हारे समीप जो कहना होगा, वह सब कथाके बीच साररूपसे सम्मत हुआ है ॥ १६ ॥

राजोपरिचरो नाम बभूवाधिपतिर्भुवः ।।
आखण्डलसखः ख्यातो भक्तो नारायणं हरिम् ॥ १७ ॥

पहले समयमें उपरिचर नामक पृथिवीके स्वामी एक राजा थे; वह देवराजके सखा और नारायणके भक्तरूपसे विख्यात थे ॥ १७ ॥

धार्मिको नित्यभक्तश्च पितॄन्नित्यमतन्द्रितः ।
साम्राज्यं तेन संप्राप्तं नारायणवरात्पुरा ॥ १८ ॥

वह धार्मिक, सदा पितृभक्त और निरलस थे, इसीसे पहले नारयणके वरप्रभावसे उन्होंने साम्राज्य पाया था ॥ १८ ॥

सात्वतं विधिमास्थाय प्राक्सूर्यमुखनिःसृतम्
पूजयामास देवेशं तच्छेषेण पितामहान् ॥ १९ ॥

वे पहले सूर्यमुखनिःसृत शास्त्रोक्त विधिका आश्रय ले भगवान् नारायणकी पूजा करते थे; अनन्तर शेष बची हुई वस्तुओंसे पितरोंकी तृप्तिका विधान करते थे ॥ १९ ॥

पितृशेषेण विप्रांश्च संविभज्याश्रितांश्च सः ।
शेषान्नभुक्सत्यपरः सर्वभूतेष्वहिंसकः
सर्वभावेन भक्तः स देवदेवं जनार्दनम् ॥ २० ॥

पितरोंके तर्पणके अनन्तर बची हुई सामग्रीके जरिये ब्राह्मणोंको संविभाग कर आश्रितोंको भोजन कराके सबके पीछे बचे हुए अन्नका स्वयं भोजन करते थे वे । सत्यमें तत्पर रहते और किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करते थे । वह देवोंके देव जनार्दनके विषयमें सब प्रकारसे भक्तिमान् थे ॥ २० ॥

तस्य नारायणे भक्तिं वहतोऽमित्रकर्शन ।
एकशय्यासनं शक्रो दत्तवान्देवराट्स्वयम् ॥ २१ ॥

हे शत्रुनाशन ! वे राजा भगवान् नारायणमें अत्यन्त भक्ति करते थे, इसीसे देवराज उसे अपने साथ एकही शय्या और आसनपर बैठाते थे ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आत्मा राज्यं धनं चैव कलत्रं वाहनानि च।
एतद्भगवते सर्वमिति तत्प्रेक्षितं सदा ॥ २२ ॥

निज राज्य, धन, स्त्री और वाहन आदि जो कुछ था, उस राजाने भगवान्‌के उद्देश्यसे उन सब वस्तुओंको सदा समर्पण किया था ॥ २२ ॥

काम्यनैमित्तिकाजस्रं यज्ञियाः परमक्रियाः।
सर्वाः सात्वतमास्थाय विधिं चक्रे समाहितः ॥ २३ ॥

हे राजन्! वह राजा सावधान होकर काम्य और नैमित्तिक याज्ञिय कार्योंको सात्वत विधिके अनुसार निबाहता था ॥ २३ ॥

पञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः।
प्रायणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनम् ॥ २४ ॥

पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकारके शास्त्रके ज्ञानसंपन्न मुख्य मुख्य महानुभाव ब्राह्मण उसके स्थानमें भगवत्प्रोक्त उपहारके सहित उत्तम भोज्य सामग्रियोंको सबसे पहले भोजन करते थे ॥ २४ ॥

तस्य प्रशासतो राज्यं धर्मेणामित्रघातिनः।
नानृता वाक्समभवन्मनो दुष्टं न चाभवत्
न च कायेन कृतवान्स पापं परमण्वपि ॥ २५ ॥

उस शत्रुनाशन राजाके धर्मानुसार राज्यशासन करते रहनेपर उसका बचन कदापि मिथ्या नहीं हुआ और मन भी कभी किसी दोषके जरिये दूषित नहीं हुआ। उसने अपने शरीरके जरिये अणुमात्र भी पापकार्य नहीं किया था ॥ २५ ॥

ये हि ते मुनयः ख्याताः सप्त चित्रशिखण्डिनः।
तैरेकमतिभिर्भूत्वा यत्प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम् ॥ २६ ॥

चित्रशिखण्डि नामक जो सप्तऋषि विख्यात हैं, उन सबने एकवाक्य होकर श्रेष्ठ शास्त्रको बनाया ॥ २६ ॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महातेजा एते चित्रशिखण्डिनः ॥ २७ ॥

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेस्वी वसिष्ठ– ये सात प्रसिद्ध चित्र शिखण्डी ऋषि हैं ॥ २७ ॥

सप्त प्रकृतयो ह्येतास्तथा स्वायंभुवोऽष्टमः।
एताभिर्धार्यते लोकस्ताभ्यः शास्त्रं विनिःसृतम् ॥ २८ ॥

ये सात पुरुष चित्रशिखण्डी नामसे महत् अहङ्कार आदि मूर्ति धारण करके सप्त प्रकृति रूपसे विख्यात हैं। स्वायम्भुव मनु आठवें हैं, ये मूल प्रकृति कहाते हैं; इन सबने मिलकर इस जगत्‌को धारण किया है और इन्हींसे शास्त्र प्रकट हुए हैं ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एकाग्रमनसो दान्ता मुनयः संयमे रताः ।
इदं श्रेय इदं ब्रह्म इदं हितमनुत्तमम् ।
लोकान्संचिन्त्य मनसा ततः शास्त्रं प्रचक्रिरे ॥ २९ ॥

एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय और संयममें रत– इन मुनियोंने यही श्रेयस्कर श्रेष्ठ है, यही ब्रह्म है, यही सर्वोत्तम हितकर है, मनहीं मन जगत्के कल्याणका विचार करके सब शास्त्रोंको बनाया है ॥ २९ ॥

तत्र धर्मार्थकामा हि मोक्षः पश्चाच्च कीर्तितः ।
मर्यादा विविधाश्चैव दिवि भूमौ च संस्थिताः ॥ ३० ॥

उस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका विषय वर्णित है । द्युलोक और भूलोकमें विख्यात विविध मर्यादाओंका भी प्रतिपादन किया है ॥ ३० ॥

आराध्य तपसा देवं हरिं नारायणं प्रभुम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रं वै सर्वे ते ऋषिभिः सह ॥ ३१ ॥

प्रागुक्त उन ऋषियोंने अन्य ऋषियोंके सहित दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्ष पर्यन्त तपस्याके जरिये भगवान् नारायण हरिकी आराधना की थी ॥ ३१ ॥

नारायणानुशास्ता हि तदा देवी सरस्वती ।
विवेश तानृषीन्सर्वाल्लोकानां हितकाम्यया ॥ ३२ ॥

भगवान् नारायणने उससे प्रसन्न होकर सरस्वती देवीको उनके पास भेजा; उस समय सब लोकोंकी हितकामनासे सरस्वती देवीने उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रवेश किया था ॥३२॥

ततः प्रवर्तिता सम्यक्तपोविद्भिर्द्विजातिभिः ।
शब्दे चार्थे च हेतौ च एषा प्रथमसर्गजा ॥ ३३ ॥

अनन्तर उन तपोवित् ब्राह्मणोंने शब्द, अर्थ और हेतु विषयमें इस प्रथम सृष्टिके लिये मर्यादा प्रवर्त्तन किया ॥ ३३ ॥

आदावेव हि तच्छास्त्रमोंकारस्वरभूषितम् ।
ऋषिभिर्भावितं तत्र यत्र कारुणिको ह्यसौ ॥ ३४ ॥

जिस स्थानमें कारुणिक नारायण निवास करते थे, पहले ऋषियोंने वहांपर ओंकारस्वरपूजित उस शास्त्रको उन्हें सुनाया ॥ ३४ ॥

ततः प्रसन्नो भगवाननिर्दिष्टशरीरगः ।
ऋषीनुवाच तान्सर्वानदृश्यः पुरुषोत्तमः ॥ ३५ ॥

तब अनिर्दिष्टशरीरगामी, अदृश्य पुरुषोत्तम भगवान् प्रसन्न होकर उस ऋषियोंसे बोले ॥३५॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृतं शतसहस्रं हि लोकानामिदमुत्तमम् ।
लोकतन्त्रस्य कृत्स्नस्य यस्माद्धर्मः प्रवर्तते ॥ ३६ ॥

तुमने एक लाख श्लोकोंका यह उत्तम शास्त्र बनाया है; इससे सब लोकतन्त्रका धर्म प्रवृत्त होगा ॥ ३६ ॥

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च योनिरेतद्भविष्यति ।
ऋग्यजुः सामभिर्जुष्टमथर्वाङ्गिरसैस्तथा ॥ ३७ ॥

ये लोकमें प्रवृत्ति और निवृत्ति हेतुसे ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व वेदके मन्त्रोंसे प्रमाण ग्रन्थके समान होगे ॥ ३७ ॥

तथा प्रमाणं हि मया कृतो ब्रह्मा प्रसादजः ।
रुद्रश्च क्रोधजो विप्रा यूयं प्रकृतयस्तथा ॥ ३८ ॥

मेरे प्रसादसे उत्पन्न ब्रह्मा प्रमाणभूत है और क्रोधसे रुद्रको उत्पन्न किया है, तुम सब प्रजापति लोग तथा समस्त प्रकृति, ॥ ३८ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्भूमिरापोऽग्निरेव च ।
सर्वे च नक्षत्रगणा यच्च भूताभिशब्दितम् ॥ ३९ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि, नक्षत्रसमूह अथवा भूतशब्दसे जो कुछ मालूम होता है, ॥ ३९ ॥

अधिकारेषु वर्तन्ते यथास्वं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वे प्रमाणं हि यथा तथैतच्छास्त्रमुत्तमम् ॥ ४० ॥

उसके सहित ब्रह्मवादी लोग यथार्थ रूपसे निज निज अधिकारमें वर्त्तमान रहकर प्रमाणभूत माने जाते हैं; प्रमाणके अनुसार तुमने बनाया यह शास्त्र ही ॥ ४० ॥

भविष्यति प्रमाणं वै एतन्मदनुशासनम् ।
अस्मात्प्रवक्ष्यते धर्मान्मनुः स्वायंभुवः स्वयम् ॥ ४१ ॥

सबसे श्रेष्ठ होगा और मेरी यह आज्ञा सबकी ही प्रमाणित होगी । स्वायम्भुव मनु स्वयं इस शास्त्रसे धर्म वर्णन करेंगे ॥ ४१ ॥

उशना बृहस्पतिश्चैव यदोत्पन्नौ भविष्यतः ।
तदा प्रवक्ष्यतः शास्त्रं युष्मन्मतिभिरुद्धृतम् ॥ ४२ ॥

उशना और बृहस्पति जब उत्पन्न होंगे, तब वे दोनों तुम लोगोंकी बुद्धिके सहारे उद्धृत इस शास्त्रके प्रवक्ता होंगे ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वायंभुवेषु धर्मेषु शास्त्रे चोशनसा कृते ।
बृहस्पतिमते चैव लोकेषु प्रविचारिते ॥ ४३ ॥

हे द्विजसत्तम ऋषिवृन्द ! स्वायम्भुव मनुप्रणीत धर्मशास्त्र, शुक्राचार्य कृत और बृहस्पतिके बनाये हुए शास्त्रोंका मर्त्यलोकमें प्रचार होने पर ॥ ४३ ॥

युष्मत्कृतमिदं शास्त्रं प्रजापालो वसुस्ततः ।
बृहस्पतिसकाशाद्वै प्राप्स्यते द्विजसत्तमाः ॥ ४४ ॥

प्रजापालक वसु बृहस्पतिके निकट तुम लोगोंके बनाये हुए इस शास्त्रको पावेगा ॥ ४४ ॥

स हि मद्भावितो राजा मद्भक्तश्च भविष्यति ।
तेन शास्त्रेण लोकेषु क्रियाः सर्वाः करिष्यति ॥ ४५ ॥

वह सदभिप्रायशाली राजा मेरा भक्त होगा, वह लोकके बीच उस ही शास्त्रके अनुसार सब कार्योंको निबाहेगा ॥ ४५ ॥

एतद्धि सर्वशास्त्राणां शास्त्रमुत्तमसंज्ञितम् ।
एतदर्थ्यं च धर्म्यं च यशस्यं चैतदुत्तमम् ॥ ४६ ॥

सब शास्त्रोंके बीच लोकमें यही सबसे उत्तम है, यह अर्थ और धर्म जनक तथा श्रेष्ठ यशस्व रूप गिना जावेगा ॥ ४६ ॥

अस्य प्रवर्तनाच्चैव प्रजावन्तो भविष्यथ ।
स च राजा श्रिया युक्तो भविष्यति महान्वसुः ॥ ४७ ॥

इस शास्त्रके प्रवर्त्तन हेतुसे तुम लोग संतानवान् होओगे, प्रजापालक वसु राजा इस शास्त्रके प्रभावसे महान् और श्रीसंयुक्त होगा ॥ ४७ ॥

संस्थिते तु नृपे तस्मिञ्शास्त्रमेतत्सनातनम् ।
अन्तर्धास्यति तत्सत्यमेतद्वः कथितं मया ॥ ४८ ॥

उक्त राजाके इस लोकसे गमन करनेपर यह सनातन शास्त्र लुप्त होगा, यह सब वृत्तान्त मैंने तुम लोगोंके समीप वर्णन किया ॥ ४८ ॥

एतावदुक्त्वा वचनमदृश्यः पुरुषोत्तमः ।
विसृज्य तानृषीन्सर्वान्कामपि प्रस्थितो दिशम् ॥ ४९ ॥

अदृश्य पुरुषोत्तमने इतनी बात कहके उन सब ऋषियोंको वहीं छोडके किसी अनिर्दिष्ट दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ ४९ ॥

ततस्ते लोकपितरः सर्वलोकार्थचिन्तकाः ।
प्रावर्तयन्त तच्छास्त्रं धर्मयोनिं सनातनम् ॥ ५० ॥

अनन्तर सर्वलोकार्थचिन्तक वे लोकपिता लोग ऊपर कहे हुए धर्मके मूलभूत उस सनातन शास्त्रका जगत्में प्रचार करने लगे ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

उत्पन्नेऽङ्गिरसे चैव युगे प्रथमकल्पिते ।
साङ्गोपनिषदं शास्त्रं स्थापयित्वा बृहस्पतौ ॥ ५१ ॥

प्रथम कल्पके युगमें अङ्गिरासे बृहस्पति उत्पन्न हुए, तब उन्होंने साङ्गोपाङ्ग वेद और उपनिषदों सहित वह शास्त्र उनको पढाया ॥ ५१ ॥

जग्मुर्यथेप्सितं देशं तपसे कृतनिश्चयाः ।
धारणात्सर्वलोकानां सर्वधर्मप्रवर्तकाः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२२ ॥ ११७८० ॥

अनन्तर सर्वधर्मप्रवर्त्तक सब लोकोंको धारण करनेमें समर्थ सप्तर्षियोंने तपस्या करनेका निश्चय करके यथाभिलषित देशमें गमन किया ॥ ५२ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२२ ॥ ११७८० ॥

: ३२३ :

भीष्म उवाच—

ततोऽतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽङ्गिरसः सुते ।
बभूवुर्निर्वृता देवा जाते देवपुरोहिते ॥ १ ॥

भीष्म बोले– अनन्तर महाकल्पके बीतनेपर जब अंगिराके पुत्र बृहस्पति उत्पन्न होके देवताओंके पुरोहित हुए, उस समय देवताओंने प्रसन्नता लाभ की ॥ १ ॥

बृहद्ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः ।
एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान्बृहस्पतिः ॥ २ ॥

हे राजन् ! बृहत्, ब्रह्म और महत्, ये तीनों शब्द एक ही पर्यायवाची हैं; इसलिये बृहत्त्व, ब्रह्मत्त्व और महत्त्व गुणसे युक्त विद्वान् देवगुरुका नाम बृहस्पति हुआ ॥ २ ॥

तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः ।
अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक्चित्रशिखण्डिजम् ॥ ३ ॥

राजा उपरिचर वसु उनके प्रधान शिष्य थे; उन्होंने उनके समीप चित्रशिखण्डिज शास्त्रको विधिवत् पूरी रीतिसे पढा ॥ ३ ॥

स राजा भावितः पूर्वं दैवेन विधिना वसुः ।
पालयामास पृथिवीं दिवमाखण्डलो यथा ॥ ४ ॥

राजा उपरिचर वसुने पहले देवविधिके अनुसार शुद्धसत्त्व होकर इन्द्रके सुरलोक पालन करनेकी भांति अखण्ड भूमण्डलको पालन किया था ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ।
बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह ॥ ५ ॥

उस महानुभाव राजाने अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया । उपाध्याय बृहस्पति उस यज्ञमें होताका कार्य निर्वाह करनेके लिये वृत हुए ॥ ५ ॥

प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्यास्त्वभवंस्त्रयः ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ॥ ६ ॥

प्रजाप्रतिके पुत्र महर्षि एकत, द्वित और त्रित, ये तीन पुरुष सदस्य हुए थे ॥ ६ ॥

धनुषाक्षोऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू ।
ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्डयश्चैव महानृषिः ॥ ७ ॥

अनन्तर धनुषाक्ष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि ऋषि, महर्षि ताण्डय, ॥ ७ ॥

ऋषिः शक्तिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्च यः ।
कपिलश्च ऋषिश्रेष्ठः शालिहोत्रपितामहः ॥ ८ ॥

महाभाग शान्ति ऋषि, वेदशिरा, शालिहोत्रके पितामह ऋषिश्रेष्ठ कपिल ॥ ८ ॥

आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशंपायनपूर्वजः ।
कण्वोऽथ देवहोत्रश्च एते षोडश कीर्तिताः ।
संभृताः सर्वसंभारास्तस्मिन्राजन्महाक्रतौ ॥ ९ ॥

आद्यकठ, वैशम्पायनके बडे भाई तीत्तरि, कण्व और देवहोत्र– ये कुल मिलाकर सोलह ऋषि उस यज्ञमें दीक्षित हुए थे । हे राजन् ! उस महायज्ञमें सब यज्ञकी सामग्री इकठ्ठी की गई थी ॥ ९ ॥

न तत्र पशुघातोऽभूत्स राजैवं स्थितोऽभवत् ।
अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रो निराशीः कर्मसंस्तुतः
आरण्यकपदोद्गीता भागास्तत्रोपकल्पिताः ॥ १० ॥

उक्त यज्ञमें पशुहिंसा नहीं हुई थी, राजा श्रद्धावान् यजमान होकर उस यज्ञमें स्थित थे; वह अहिंसासे युक्त पवित्र, उदार और कामनाओंसे रहित होकर सब कार्योंमें संस्तुत हुआ था । आरण्यक स्थानोद्भूत सब पदार्थोंसे उसमें देवताओंके भाग कल्पित हुए थे ॥ १० ॥

प्रीतस्ततोऽस्य भगवान्देवदेवः पुरातनः ।
साक्षात्तं दर्शयामास सोऽदृश्योऽन्येन केनचित् ॥ ११ ॥

अनन्तर पुराण पुरुष देवोंके देव भगवान् नारायणने अन्य पुरुषोंके लिये अदृश्य होकर, केवल राजाके ऊपर प्रसन्नता निबन्धनसे उसे स्वयं दर्शन दिया ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji)•. Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वयं भागमुपाघ्राय पुरोडाशं गृहीतवान् ।
अदृश्येन हृतो भागो देवेन हरिमेधसा ॥ १२ ॥

और भगवान् नारायणने स्वयं अदृश्य रहकर अपने लिये अर्पित यज्ञभाग पुरोडाशको आघ्राण करके स्वयं ग्रहण किया ॥ १२ ॥

बृहस्पतिस्ततः क्रुद्धः स्रुवमुद्यम्य वेगितः ।
आकाशं घ्नन्स्रुवः पातै रोषादश्रूण्यवर्तयत् ॥ १३ ॥

यह देखकर बृहस्पति क्रुद्ध होकर स्रुवा उठाके वेगपूर्वक दौडे । वह स्रुवासे आकाशमें आघात करते हुए क्रोधवश होकर अपने नेत्रोंसे आंसू बहाने लगे ॥ १३ ॥

उवाच चोपरिचरं मया भागोऽयमुद्यतः ।
ग्राह्यः स्वयं हि देवेन मत्प्रत्यक्षं न संशयः ॥ १४ ॥

और उपरिचर राजासे बोले, यह उत्थित यज्ञभाग मेरे सम्मुखमें निःसन्देह स्वयं नारायणको ग्रहण करना होगा ॥ १४ ॥

उद्यता यज्ञभागा हि साक्षात्प्राप्ताः सुरैरिह ।
किमर्थमिह न प्राप्तो दर्शनं स हरिर्विभुः ॥ १५ ॥

इस यज्ञमें उत्थित सब यज्ञभाग देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपने अपने भाग ग्रहण किये, परन्तु सर्वभूतसंयोगी हरिने किस निमित्त यज्ञमें आकर प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया ? ॥ १५ ॥

ततः स तं समुद्भूतं भूमिपालो महान्वसुः ।
प्रसादयामास मुनिं सदस्यास्ते च सर्वशः ॥ १६ ॥

अनन्तर महान् भूमिपाल वसु और दूसरे सब सदस्यगण क्रोधयुक्त बृहस्पति मुनिको प्रसन्न करने लगे ॥ १६ ॥

ऊचुश्चैनमसंभ्रान्ता न रोषं कर्तुमर्हसि ।
नैष धर्मः कृतयुगे यस्त्वं रोषमचीकृथाः ॥ १७ ॥

सबने शान्तचित्त होकर उनसे कहा, आपको क्रोध करना उचित नहीं है । आपने जो क्रोध प्रकाश किया, वह सत्ययुगका धर्म नहीं है ॥ १७ ॥

अरोषणो ह्यसौ देवो यस्य भागोऽयमुद्यतः ।
न स शक्यस्त्वया द्रष्टुमस्माभिर्वा बृहस्पते ।
यस्य प्रसादं कुरुते स वै तं द्रष्टुमर्हति ॥ १८ ॥

हे बृहस्पति ! जिसका यज्ञभाग उठ गया है, वह देवता क्रोधी नहीं है । आप अथवा हम लोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं है । वह जिसके ऊपर कृपा करे, वही उसका दर्शन करनेमें समर्थ हो सकता है ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Anand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एकतद्वितत्रिता ऊचुः—

वयं हि ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः परिकीर्तिताः ।
गता निःश्रेयसार्थं हि कदाचिद्दिशमुत्तराम् ॥ १९ ॥

अनन्तर एकत, द्वित और त्रित उनसे बोले, हम प्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्ररूपसे विख्यात हैं; और किसी समय हम लोगोंने निःश्रेयस लाभके निमित्त उत्तर दिशामें गमन किया ॥ १९ ॥

तप्त्वा वर्षसहस्राणि चरित्वा तप उत्तमम् ।
एकपादस्थिताः सम्यक्काष्ठभूताः समाहिताः ॥ २० ॥

वहां सहस्र वर्षोंतक क्लेश सहके एकाग्रचित्त होकर श्रेष्ठ तपस्याचरण करते हुए स्थिर होकर काष्ठकी भांति एक चरणसे खडे रहे ॥ २० ॥

मेरोरुत्तरभागे तु क्षीरोदस्यानुकूलतः ।
स देशो यत्र नस्तप्तं तपः परमदारुणम् ।
कथं पश्येमहि वयं देवं नारायणं त्विति ॥ २१ ॥

हमने जिस स्थानमें अत्यंत दारुण तपस्या की थी, वह स्थान क्षीरोदसागरके किनारे सुमेरुके उत्तर तरफ है । हम इस तपस्यासे भगवान् नारायणका किस तरह दर्शन करेंगे, यह चाहते थे ॥ २१ ॥

ततो व्रतस्यावभृथे वागुवाचाशरीरिणी ।
सुतप्तं वस्तपो विप्राः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ २२ ॥

जब व्रत समाप्त होनेपर स्नान किया, उस समय अशरीरिणी वाणी सुन पडी— हे विप्रवृन्द ! तुम लोगोंने प्रसन्न अन्तःकरणसे उत्तम रीतिसे तपस्या की है ॥ २२ ॥

यूयं जिज्ञासवो भक्ताः कथं द्रक्ष्यथ तं प्रभुम् ।
क्षीरोदधेरुत्तरतः श्वेतद्वीपो महाप्रभः ॥ २३ ॥

तुम लोग भक्त हो और किस प्रकार प्रभु नारायणका दर्शन करोगे, उस विषयके जिज्ञासु हुए हो; इसलिये क्षीरसागरके उत्तर भागमें महाप्रभावयुक्त श्वेतदीप है ॥ २३ ॥

तत्र नारायणपरा मानवाश्चन्द्रवर्चसः ।
एकान्तभावोपगतास्ते भक्ताः पुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥

वहांपर चन्द्रमाके समान तेजसे युक्त नारायणमें रत मनुष्य एकान्त भावसे पुरुषोत्तममें भक्ति करके निवास करते हैं ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ते सहस्रार्चिषं देवं प्रविशन्ति सनातनम् ।
अतीन्द्रिया निराहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ॥ २५ ॥
एकान्तिनस्ते पुरुषाः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।
गच्छध्वं तत्र मुनयस्तत्रात्मा मे प्रकाशितः ॥ २६ ॥

श्वेतद्वीप–निवासी सब पुरुष स्थूल इन्द्रियोंसे रहित, निराहार, और निश्चेष्ट होते हैं; उनके शरीर से सुगन्ध निकलती है । वे अत्यन्त भक्तिनिष्ठ और परमात्माके ध्यानमें सदा रत हैं, वे लोग सनातन देव सहस्रार्चि नारायणमें प्रवेश किया करते हैं । हे मुनिवृन्द ! इसलिये तुम लोग वहां ही जाओ, उस स्थानमें हमारा स्वरूप प्रकाशित है । ॥ २५–२६ ॥

अथ श्रुत्वा वयं सर्वे वाचं तामशरीरिणीम् ।
यथाख्यातेन मार्गेण तं देशं प्रतिपेदिरे ॥ २७ ॥

अनन्तर हम लोग उस अशरीरिणी वाणीको सुनके यथा कहे मार्गको अवलम्बन करके उस देशमें गये ॥ २७ ॥

प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं तच्चित्तास्तद्दिदृक्षवः ।
ततो नो दृष्टिविषयस्तदा प्रतिहतोऽभवत् ॥ २८ ॥

जब हम लोग नारायणका ध्यान करते हुए उनके दर्शनकी इच्छासे श्वेत महाद्वीपमें पहुंचे, तब वह हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए और नयनगोचर होते ही उस ही समय अन्तर्द्धान होगये ॥ २८ ॥

न च पश्याम पुरुषं तत्तेजोहृतदर्शनाः ।
ततो नः प्रादुरभवद्विज्ञानं देवयोगजम् ॥ २९ ॥

उनके तेजःप्रभावसे हम लोगोंकी दर्शनेन्द्रिय आच्छन्न होगई, इससे फिर हम उस पुरुषको न देख सके; किन्तु उनके दक्षिण दर्शन निबन्धनसे हम लोगोंमें विज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

न किलातप्ततपसा शक्यते द्रष्टुमञ्जसा ।
ततः पुनर्वर्षशतं तप्त्वा तात्कालिकं महत् ॥ ३० ॥
व्रतावसाने शुशुभान्नरान्ददृशिरे वयम् ।
श्वेतांश्चन्द्रप्रतीकाशान्सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ३१ ॥

जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे लोग सहसा उसे नहीं देख सकते; इससे हम लोगोंने फिर एक सौ वर्षोंतक उस समयके अनुसार महत् तपस्या की; उस तपोमय व्रतकी समाप्ति होनेपर हमने शुभाचार पुरुषोंको देखा; वे लोग चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण और सब उत्तम गुण लक्षणोंसे युक्त थे ॥ ३०–३१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नित्याञ्जलिकृतन्ब्रह्म जपतः प्रागुदङ्मुखान् ।
मानसो नाम स जपो जप्यते तैर्महात्मभिः ।
तेनैकाग्रमनस्त्वेन प्रीतो भवति वै हरिः ॥ ३२ ॥

वे सदा हाथ जोडके पूर्वकी ओर मुख करके ब्रह्मका जप करते थे; वे महात्मा लोग जो जप करते थे, उसका नाम मानस जप है; वैसी उनके मनकी एकाग्रचित्तता निबन्धनसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते थे ॥ ३२ ॥

या भवेन्मुनिशार्दूल भाः सूर्यस्य युगक्षये ।
एकैकस्य प्रभा तादृक्साभवन्मानवस्य ह ॥ ३३ ॥

हे मुनीश्वर ! युगक्षयके समय सूर्यकी जैसी प्रभा होती है, उनमेंसे हर एक पुरुषकी वैसीही प्रभा थी ॥ ३३ ॥

तेजोनिवासः स द्वीप इति वै मेनिरे वयम्
न तत्राभ्यधिकः कश्चित्सर्वे ते समतेजसः ॥ ३४ ॥

हमने समझा कि वह द्वीप केवल तेजका ही निवास स्थान है। उस द्वीपके निवासी मनुष्योंके बीच सभी समान महातेजस्वी थे, कोई एक दूसरेसे अधिक तेजस्वी न दीख पडे ॥ ३४ ॥

अथ सूर्यसहस्रस्य प्रभां युगपदुत्थिताम्
सहसा दृष्टवन्तः स्म पुनरेव बृहस्पते ॥ ३५ ॥

हे बृहस्पति ! अनन्तर हमने फिर एक साथही सहस्रों सूर्योंके समान प्रभाको प्रकट होते हुए सहसा निरीक्षण किया ॥ ३५ ॥

सहिताश्चाभ्यधावन्त ततस्ते मानवा द्रुतम् ।
कृताञ्जलिपुटाः हृष्टा नम इत्येव वादिनः ॥ ३६ ॥

अनंतर वे समस्त मनुष्य एकत्रित होकर प्रसन्न चित्तसे हाथ जोडकर शीघ्रताके सहित वेगपूर्वक दौडके उनके निकट गये । वे सब कोई केवल 'नमः' यही वचन बोलने लगे ॥३६॥

ततोऽभिवदतां तेषामश्रौष्म विपुलं ध्वनिम् ।
बलिः किलोपहियते तस्य देवस्य तैर्नरैः ॥ ३७ ॥

हम लोग उस समय "नमो नमः" यह उनकी स्तुतिकी विपुल ध्वनि सुनने लगे । अनन्तर उन मनुष्योंने उस देवकी पूजाका उपहार लाके उपस्थित किया ॥ ३७ ॥

वयं तु तेजसा तस्य सहसा हृतचेतसः ।
न किंचिदपि पश्यामो हतदृष्टिबलेन्द्रियाः ॥ ३८ ॥

भगवान्के उस प्रचण्ड तेजने हमारे चित्तको सहसा हर लिया; परंतु हम लोगोंके नेत्रकी ज्योति, बल और इन्द्रियोंके अवसन्न होनेसे हमें कुछ भी स्पष्टरूपसे न दीख पडा ॥ ३८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एकस्तु शब्दोऽविरतः श्रुतोऽस्माभिरुदीरितः ।
जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ ३९ ॥

एकमात्र अविरत रूपसे उच्चारित शब्द ही हमें सुनाई देने लगा । वे कहते थे– हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम्हारी जय हो । हे विश्वभावन ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज
इति शब्दः श्रुतोऽस्माभिः शिक्षाक्षरसमीरितः ॥ ४० ॥

हे हृषीकेश महापुरुष ! हे पूर्वज ! तुम्हें नमस्कार है । शिक्षा और अक्षरयुक्त इस ही शब्दको हम लोग सुनने लगे ॥ ४० ॥

एतस्मिन्नन्तरे वायुः सर्वगन्धवहः शुचिः ।
दिव्यान्युवाह पुष्पाणि कर्मण्याश्चौषधीस्तथा ॥ ४१ ॥

उस समय सर्वगन्धवह पवित्र वायु दिव्य पुष्पों और कर्मयोग्य औषधियोंसे युक्त होकर बहने लगा ॥ ४१ ॥

तैरिष्टः पञ्चकालज्ञैर्हरिरेकान्तिभिर्नरैः ।
नूनं तत्रागतो देवो यथा तैर्वागुदीरिता ।
वयं त्वेनं न पश्यामो मोहितास्तस्य मायया ॥ ४२ ॥

उन अत्यन्त निष्ठायुक्त पञ्चकालज्ञ परम भक्तिमान् मनुष्योंने नारायणकी पूजा की । उन लोगोंने जिस प्रकार वचन उच्चारण किया, बोध होता है, उसहीके अनुसार वहांपर भगवान् नारायण प्रकट हुए हैं, परन्तु हम लोग उनकी मायासे मोहित होकर उन्हें देखनेमें समर्थ न हुए ॥ ४२ ॥

मारुते संनिवृत्ते च बलौ च प्रतिपादिते ।
चिन्ताव्याकुलितात्मानो जाताः स्मोऽङ्गिरसां वर ॥ ४३ ॥

हे अङ्गिरसप्रवर ! सुगन्धित वायुके सम्यक् निवृत्त और भगवान्को पूजाका उपहार प्रतिपादित होनेपर हम लोगोंका चित्त चिन्तासे व्याकुल हुआ ॥ ४३ ॥

मानवानां सहस्रेषु तेषु वै शुद्धयोनिषु ।
अस्मान्न कश्चिन्मनसा चक्षुषा वाप्यपूजयत् ॥ ४४ ॥

उन शुद्धयोनिवाले सहस्रों मनुष्योंके बीच किसीने मन अथवा दर्शनके सहारे हम लोगोंका सम्मान नहीं किया ॥ ४४ ॥

तेऽपि स्वस्था मुनिगणा एकभावमनुव्रताः ।
नास्मासु दधिरे भावं ब्रह्मभावमनुष्ठिताः ॥ ४५ ॥

अनन्य भावसे युक्त शान्त मुनियोंके ब्रह्मत्वका अनुष्ठान करते हुए हम लोगोंके विषयमें कोई भाव प्रकाशित न किया ॥ ४५

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽस्मान्सुपरिश्रान्तांस्तपसा चापि कर्शितान् ।
उवाच खस्थं किमपि भूतं तत्राशरीरकम् ॥ ४६ ॥

अन्तमें हम लोग तपस्याके जरिये अत्यन्त दुर्बल होकर थक गये थे; तब आकाशसे कोई शरीर रहित प्राणी (देवता) ने हमसे कहा ॥ ४६ ॥

दृष्टा वः पुरुषाः श्वेताः सर्वेन्द्रियविवर्जिताः ।
दृष्टो भवति देवेश एभिर्दृष्टैर्द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥

सब इन्द्रियोंसे रहित, श्वेत–वर्ण पुरुषोंका तुमने दर्शन किया है, इन द्विजश्रेष्ठोंके दीख पडनेसे ही देवेश हरिका दर्शन होता है ॥ ४७ ॥

गच्छध्वं मुनयः सर्वे यथागतमितोऽचिरात् ।
न स शक्यो अभक्तेन द्रष्टुं देवः कथंचन ॥ ४८ ॥

हे मुनिवृन्द ! तुम लोग जिस स्थानसे आये थे, शीघ्र ही वहां चले जाओ; अनन्य भक्ति-हीन मनुष्य किसी भांति उस देवका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४८ ॥

कामं कालेन महता एकान्तित्वं समागतैः ।
शक्यो द्रष्टुं स भगवान्प्रभामण्डलदुर्दृशः ॥ ४९ ॥

हे द्विजसत्तम ! बहुत समयतक अत्यन्त भक्तिनिष्ठ होनेपर प्रभामण्डलके सहारे उस दुर्दृश भगवान्का तुम लोग दर्शन करनेमें समर्थ होगे; ॥ ४९ ॥

महत्कार्यं तु कर्तव्यं युष्माभिर्द्विजसत्तमाः ।
इतः कृतयुगेऽतीते विपर्यासं गतेऽपि च ॥ ५० ॥

इसलिये तुम लोगोंको अत्यंत महान् कार्य करना होगा । हे विप्रवृन्द ! इसके अनन्तर सत्य-युगके बीतने और विपर्यस्त होनेपर ॥ ५० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे विप्राः प्राप्ते त्रेतायुगे ततः ।
सुराणां कार्यसिद्ध्यर्थं सहाया वै भविष्यथ ॥ ५१ ॥

वैवस्वत मन्वन्तरमें त्रेतायुगके प्रारम्भसमय देवताओंकी कार्य–सिद्धिके निमित्त तुम लोग सहायक होगे ॥ ५१ ॥

ततस्तदद्भुतं वाक्यं निशम्यैवं स सोमप ।
तस्य प्रसादात्प्राप्ताः स्मो देशमीप्सितमञ्जसा ॥ ५२ ॥

हे सोमप ! अनन्तर हम लोग उस अमृतसमान अद्भुत वचनको सुनके उन भगवान्की कृपासे शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें आ गये ॥ ५२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं सुतपसा चैव हव्यकव्यैस्तथैव च ।
देवोऽस्माभिर्न दृष्टः स कथं त्वं द्रष्टुमर्हसि ।
नारायणो महद्भूतं विश्वस्रग्घव्यकव्यभुक् ॥ ५३ ॥

इस प्रकारकी कठोर तपस्या और हव्य-कव्य प्रदान करनेपर भी जब हम लोग भी उस देवका दर्शन कर न सके, तब तुम किस प्रकारसे उसके दर्शन करनेमें समर्थ होगे ? नारायण देव विश्वस्रष्टा, हव्य-कव्य भोक्ता, महान् देवता हैं, इसलिये उनका दर्शन करनेके लिये पुण्य-पुञ्जकी आवश्यकता है ॥ ५३ ॥

भीष्म उवाच—

एवमेकतवाक्येन द्वितत्रितमतेन च ।
अनुनीतः सदस्यैश्च बृहस्पतिरुदारधीः ।
समानीय ततो यज्ञं दैवतं समपूजयत् ॥ ५४ ॥

भीष्म बोले— उदार बुद्धि बृहस्पतिने इस ही प्रकार एकतके वचन तथा द्वित और त्रितके मतानुसार सदस्योंसे अनुनीत होकर यज्ञको समाप्त करके देवताकी पूजा की ॥ ५४ ॥

समाप्तयज्ञो राजापि प्रजाः पालितवान्वसुः ।
ब्रह्मशापाद्दिवो भ्रष्टः प्रविवेश महीं ततः ॥ ५५ ॥

राजा उपरिचर वसु भी यज्ञ समाप्त होनेपर प्रजापालन करने लगे । एक समय उन्होंने ब्रह्म-शापद्वारा स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रवेश किया था ॥ ५५ ॥

अन्तर्भूमिगतश्चैव सततं धर्मवत्सलः ।
नारायणपरो भूत्वा नारायणपदं जगौ ॥ ५६ ॥

वह सदा धर्मानुरागी राजा भूमिके अन्तर्गत होनेपर भी नारायणपरायण होकर नारायण मन्त्रको जपते हुए उनकी कृपासे फिर स्वर्गमें गये ॥ ५६ ॥

तस्यैव च प्रसादेन पुनरेवोत्थितस्तु सः ।
महीतलाद्गतः स्थानं ब्रह्मणः समनन्तरम् ।
परां गतिमनुप्राप्त इति नैष्ठिकमञ्जसा ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥ ११८३७ ॥

उन्होंने नारायणमें निष्ठानिबन्धनके कारण पृथ्वीतलसे थोडे ही समयके बीच ब्रह्मलोकमें जाकर परम पद पाया ॥ ५७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२३ ॥ ११८३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२४ :

युधिष्ठिर उवाच—

यदा भक्तो भगवत आसीद्राजा महावसुः ।
किमर्थं स परिभ्रष्टो विवेश विवरं भुवः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— यदि महात्मा राजा उपरिचर वसु भगवान्‌के परम भक्त थे, तब किस लिये वे स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषीणी चैव संवादं त्रिदशानां च भारत ॥ २ ॥

भीष्म बोले— हे भारत ! इस विषयमें प्राचीन लोग ऋषिवृन्द और देवताओंके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको कहते हैं ॥ २ ॥

अजेन यष्टव्यमिति देवाः प्राहुर्द्विजोत्तमान् ।
स च छागो ह्यजो ज्ञेयो नान्यः पशुरिति स्थितिः ॥ ३ ॥

अजसे यज्ञ करना होगा ऐसा विधान है, ऐसा देवताओंने श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियोंसे कहकर फिर कहा— यहां अज शब्दसे बकरा जानना चाहिये, अन्य पशु नहीं; ऐसा निश्चय है ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः ।
अजसंज्ञानि बीजानि छागं न घ्नन्तुमर्हथ ॥ ४ ॥

ऋषिवृन्द बोले— यज्ञके समय ' बीजोंके जरिये याग करें ' यही वैदिकी श्रुति है। बीजोंकाही नाम अज है, इससे बकरा मारना हमें उचित नहीं है ॥ ४ ॥

नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः ॥ ५ ॥

हे देववृन्द ! यज्ञमें पशुवध करना साधुओंका धर्म नहीं है; यह सत्ययुग सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसमें किस प्रकार पशुहिंसा होसकती है ? ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

तेषां संवदतामेवमृषीणां विबुधैः सह ।
मार्गागतो नृपश्रेष्ठस्तं देशं प्राप्तवान्वसुः
अन्तरिक्षचरः श्रीमान्समग्रबलवाहनः ॥ ६ ॥

भीष्म बोले— इस ही प्रकार देवताओं के सङ्ग ऋषियोंका विवाद होते रहने पर, आकाशचर नृपश्रेष्ठ समग्रबलवाहन से युक्त श्रीमान् राजा उपरिचर वसु उस स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तं दृष्ट्वा सहसायान्तं वसुं ते त्वन्तरिक्षगम्
ऊचुर्द्विजातयो देवानेष छेत्स्यति संशयम् ॥ ७ ॥

द्विजातिवृन्द उस आकाशगामी वसुको सहसा गमन करते हुए देखके देवताओंसे बोले, यही राजा हम लोगोंके सन्देहको दूर करेगा ॥ ७ ॥

यज्वा दानपतिः श्रेष्ठः सर्वभूतहितप्रियः ।
कथं स्विदन्यथा ब्रूयाद्वाक्यमेष महान्वसुः ॥ ८ ॥

महात्मा वसुने विधिपूर्वक यज्ञ किया है, यह दानपति, श्रेष्ठ और सर्वभूतोंके हितप्रिय है, इसलिये यह महान वसु किस प्रकार शास्त्रके विपरीत वचन कहेगा ? ॥ ८ ॥

एवं ते संविदं कृत्वा विबुधा ऋषयस्तथा ।
अपृच्छन्सहसाभ्येत्य वसुं राजानमन्तिकात् ॥ ९ ॥

देवताओं और ऋषियोंने ऐसा ही विचार करके सहसा उस वसुराजके निकट जाके पूछा ॥ ९ ॥

भो राजन्केन यष्टव्यमजेनाहो स्विदौषधैः ।
एतन्नः संशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ॥ १० ॥

हे राजन् ! अज अथवा औषधि इन दोनोंमेंसे किस वस्तुके सहारे यज्ञ करना चाहिये ? हमारे इस संदेहका आप निवारण करें; आपका वहन हम लोगोंके समीप प्रमाण स्वरूपसे माना जायगा ॥ १० ॥

स तान्कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः ।
कस्य वः को मतः पक्षो ब्रूत सत्यं समागताः ॥ ११ ॥

राजा उपरिचर वसु हाथ जोडके उन लोगोंसे बोले, हे द्विजोत्तमगण ! आप लोगोंके बीच किसका क्या मत है, उसे सत्य कहिये ॥ ११ ॥

ऋषय ऊचुः—

धान्यैर्यष्टव्यमित्येष पक्षोऽस्माकं नराधिप ।
देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन्वदस्व नः ॥ १२ ॥

ऋषिवृन्द बोले– हे नराधिप ! धान्यके जरिये यज्ञ करना चाहिये, यह हम लोगोंका पक्ष है और देवताओंका पशुके जरिये ही यज्ञ करना मत है । हे राजन् ! इन दोनों मतोंके बीच आपको जो सम्मत हो, उसे हम लोगोंके समीप प्रकट करिये ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच—

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ।
छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ॥ १३ ॥

भीष्म बोले– उपरिचर वसुने देवताओंका मत जानके उनके पक्षको अवलम्बन करके अजका अर्थ है बकरा; इसलिये बकरेसे ही यज्ञ करना उचित है, ऐसा ही वचन कहा ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुपितास्ते ततः सर्वे मुनयः सूर्यवर्चसः ।
ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम् ॥ १४ ॥

अनन्तर सूर्यके समान तेजस्वी सब मुनियोंने क्रुद्ध होकर विमानमें स्थित देव–पक्षपाती वसुसे कहा ॥ १४ ॥

सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्मादिवः पत ।
अद्य प्रभृति ते राजन्नाकाशे विहता गतिः ।
अस्मच्छापाभिघातेन महीं भित्त्वा प्रवेक्ष्यसि ॥ १५ ॥

हे राजन् ! तुमने जिस कारणसे देवताओंका यक्ष ग्रहण किया है, उस ही निमित्त स्वर्गसे गिरो और आजसे तुम्हारी आकाश में विचरनेकी शक्ति विनष्ट हुई । हमारे शापसे तुम पृथ्वीतल भेद करके पातालमें प्रवेश करोगे ॥ १५ ॥

ततस्तस्मिन्मुहूर्तेऽथ राजोपरिचरस्तदा ।
अधो वै संबभूवाशु भूमेर्विवरगो नृपः ।
स्मृतिस्त्वेनं न प्रजहौ तदा नारायणाज्ञया ॥ १६ ३

उस समय उस ही मुहूर्त्तमें राजा उपरिचर वसुने नीचे गिरके पृथ्वीके विवरमें प्रवेश किया; परन्तु भगवान् नारायणकी आज्ञासे स्मृति शक्तिने उनका परित्याग नहीं किया ॥ १६ ॥

देवास्तु सहिताः सर्वे वसोः शापविमोक्षणम् ।
चिन्तयामासुरव्यग्राः सुकृतं हि नृपस्य तत् ॥ १७ ॥

इधर देवता लोग इकट्ठे होकर उक्त उपरिचर वसुके शापविमोचन करनेके निमित्त अव्यग्र भावसे चिन्ता करने लगे, यह उक्त राजाके सुकृतका फल है ॥ १७ ॥

अनेनास्मत्कृते राज्ञा शापः प्राप्तो महात्मना ।
अस्य प्रतिप्रियं कार्यं सहितैर्नो दिवौकसः ॥ १८ ॥

यह महानुभाव राजा हमारे लिये शापग्रस्त हुआ है । हे देववृन्द ! इसलिये हम लोगोंको इकट्ठे होके इसका अत्यन्त प्रिय करना चाहिये ॥ १८ ॥

इति बुद्ध्या व्यवस्याशु गत्वा निश्चयमीश्वराः ।
ऊचुस्तं हृष्टमनसो राजोपरिचरं तदा ॥ १९ ॥

देवता लोग इस विषयमें उद्योगी हो, मनही मन निश्चय करके प्रसन्नचित्तसे उपरिचर वसुसे बोले– ॥ १९ ॥

ब्रह्मण्यदेवं त्वं भक्तः सुरासुरगुरुं हरिम् ।
कामं स तव तुष्टात्मा कुर्याच्छापविमोक्षणम् ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम ब्रह्मण्य देव देवता और असुरोंके गुरु भगवान् श्रीहरि नारायणमें भक्ति किया करते हो इसलिये वे तुमपर अत्यन्त प्रसन्न होकर शापसे मुक्त करेंगे ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माननां तु द्विजातीनां कर्तव्या वै महात्मनाम् ।
अवश्यं तपसा तेषां फलितव्यं नृपोत्तम ॥ २१ ॥

हे नृपवर ! महानुभाव ब्राह्मणोंका अवश्य संमान करना योग्य है; अवश्य उन लोगोंके तपोबलकाही यह फल है ॥ २१ ॥

यतस्त्वं सहसा भ्रष्ट आकाशान्मेदिनीतलम् ।
एकं त्वनुग्रहं तुभ्यं दद्मो वै नृपसत्तम ॥ २२ ॥

हे नृपसत्तम ! जब कि तुम सहसा आकाशसे भ्रष्ट होके भूतलमें गिरे हो, तब हम लोग तुम्हारे ऊपर एक अनुग्रह करेंगे ॥ २२ ॥

यावत्त्वं शापदोषेण कालमासिष्यसेऽनघ ।
भूमेर्विवरगो भूत्वा तावन्तं कालमाप्स्यसि ।
यज्ञेषु सुहुतां विप्रैर्वसोर्धारां महात्मभिः ॥ २३ ॥

हे निष्पाप ! तुम शापवशसे जबतक भूमिके विवरमें वास करोगे, तबतक समाहित महात्मा ब्राह्मणोंके सहारे यज्ञसमयमें उत्तम रीतिसे होमकी वसुधारा पाओगे; ॥ २३ ॥

प्राप्स्यसेऽस्मदनुध्यानान्मा च त्वां ग्लानिरास्पृशेत् ।
न क्षुत्पिपासे राजेन्द्र भूमेश्छिद्रे भविष्यतः ॥ २४ ॥

हमारे चिन्तनसे तुम्हें वसुधाराकी प्राप्ति होगी, जिससे ग्लानि तुम्हें स्पर्श न कर सकेगी । हे राजेन्द्र ! भूविवरमें निवास करनेके समय तुम्हें भूख और प्यासका कष्ट नहीं होगा ॥२४॥

वसोर्धारानुपीतत्वात्तेजसाप्यायितेन च ।
स देवोऽस्मद्वरात्प्रीतो ब्रह्मलोकं हि नेष्यति ॥ २५ ॥

वसुधारा पान करनेसे तुम तेजःपुञ्जके जरिये परिपूरित होगे । हमारे वर–प्रभावसे भगवान् नारायण प्रसन्न होकर तुम्हें ब्रह्मलोकमें ले जांयगे ॥ २५ ॥

एवं दत्त्वा वरं राज्ञे सर्वे तत्र दिवौकसः ।
गताः स्वभवनं देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ २६ ॥

उन देवताओंने इस ही प्रकार राजाको वरदान करके निज निज स्थानपर गमन किया और महातपस्वी ऋषियोंने भी निजाश्रमको प्रस्थान किया ॥ २६ ॥

चक्रे च सततं पूजां विष्वक्सेनाय भारत ।
जप्यं जगौ च सततं नारायणमुखोद्गतम् ॥ २७ ॥

हे भारत ! अनन्तर उपरिचर वसुने विष्वक्सेन भगवान्की सतत पूजा की और वे सदा नारायण मुखोच्चारित मन्त्रका जप करने लगे ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्रापि पञ्चभिर्यज्ञैः पञ्चकालानरिन्दम ।
अजयद्धरिं सुरपतिं भूमेर्विवरगोऽपि सन् ॥ २८ ॥

हे शत्रुदमन ! वह भूविवरमें वास करके भी पञ्च महाकालमें पञ्चयज्ञके जरिये सुरपति श्रीहरिकी पूजा–आरधना करते थे ॥ २८ ॥

ततोऽस्य तुष्टो भगवान्भक्त्या नारायणो हरिः ।
अनन्यभक्तस्य सतस्तत्परस्य जितात्मनः ॥ २९ ॥

अनन्तर भगवान् नारायण उस अनन्यभक्त, जितचित्त श्रीहरिपरायण राजाकी भक्तिसे प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥

वरदो भगवान्विष्णुः समीपस्थं द्विजोत्तमम् ।
गरुत्मन्तं महावेगमाबभाषे स्मयन्निव ॥ ३० ॥

वरदाता भगवान् विष्णु उस समय निकटवर्ती, महावेगशाली, विहङ्गवर प्रियपात्र गरुडसे हंसकर बोले– ॥ ३० ॥

द्विजोत्तम महाभाग गम्यतां वचनान्मम ।
सम्राड्राजा वसुर्नाम धर्मात्मा मां समाश्रितः ॥ ३१ ॥

हे महाभाग खगेश्वर ! तुम मेरी आज्ञासे मुझमें अनुरक्त धर्मात्मा सम्राट् राजा वसुके पास जाओ ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणानां प्रकोपेन प्रविष्टो वसुधातलम् ।
मानितास्ते तु विप्रेन्द्रास्त्वं तु गच्छ द्विजोत्तम ॥ ३२ ॥

हे पक्षिराज ! वह ब्राह्मणोंके कोपसे पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए हैं । तोभी ब्राह्मण लोग उसके जरिये सदा सम्मानितही हुए हैं, इसलिये तुम राजाके निकट गमन करो ॥ ३२ ॥

भूमेर्विवरसंगुप्तं गरुडेह ममाज्ञया ।
अधश्चरं नृपश्रेष्ठं खेचरं कुरु माचिरम् ॥ ३३ ॥

हे गरुत्मन् ! पृथ्वीके विवरमें सुरक्षित रूपसे रहनेवाले उस अधश्चर नृपश्रेष्ठ वसुको तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही नभश्चर करो ॥ ३३ ॥

गरुत्मानथ विक्षिप्य पक्षौ मारुतवेगवान् ।
विवेश विवरं भूमेर्यत्रास्ते वाग्यतो वसुः ॥ ३४ ॥

अनन्तर वायुके समान वेगशाली गरुडने दोनों पंख फटकारते हुए जिस स्थाममें वसुराज निवास करते थे, उस पृथ्वीविवरमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत एनं समुत्क्षिप्य सहसा विनतासुतः ।
उत्पपात नभस्तूर्णं तत्र चैनममुञ्चत ॥ ३५ ॥

विनतापुत्र गरुड सहसा उसे उठाके शीघ्र ही आकाशमें उडे और उन्हें आकाशमें छोड दिया ॥ ३५ ॥

तस्मिन्मुहूर्ते संजज्ञे राजोपरिचरः पुनः ।
सशरीरो गतश्चैव ब्रह्मलोकं नृपोत्तमः ॥ ३६ ॥

उस ही मुहूर्त्तसे वह राजा फिर उपरिचर हुआ और उस नृपश्रेष्ठने सशरीर ब्रह्मलोकमें गमन किया ॥ ३६ ॥

एवं तेनापि कौन्तेय वाग्दोषाद्देवताज्ञया ।
प्राप्ता गतिरयज्वार्हा द्विजशापान्महात्मना ॥ ३७ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! इस प्रकार उस महात्मा वसुने भी देवताओंकी आज्ञासे वाचिक अपराध करनेके कारण ब्राह्मणोंके शापसे अधोगति प्राप्त की थी ॥ ३७ ॥

केवलं पुरुषस्तेन सेवितो हरिरीश्वरः ।
ततः शीघ्रं जहौ शापं ब्रह्मलोकमवाप च ॥ ३८ ॥

वह केवल परम पुरुष भगवान् श्रीहरिकी आराधना करके थोडे ही समयके बीच द्विजशापसे छूटके ब्रह्मलोकमें गये ॥ ३८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं ते भूता मानवा यथा ।
नारदोऽपि यथा श्वेतं द्वीपं स गतवान्ऋषिः ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥ ११८७६ ॥

हे नृपवर ! श्वेतदीपके निवासी मनुष्यगण जिस प्रकार थे, वह सब तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया । महर्षि नारदने जिस प्रकार श्वेत द्वीपमें गमन किया था, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ३९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२४ ॥ ११८७६ ॥

: ३२५ :

भीष्म उवाच—

प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं नारदो भगवान्ऋषिः ।
ददर्श तानेव नराञ्श्वेतांश्चन्द्रप्रभाञ्शुभान् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– भगवान् देवर्षि नारदने श्वेत महाद्वीपमें पहुंचके उन श्वेत वर्ण चन्द्रमाके समान कान्तियुक्त मनुष्योंको देखा ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पूजयामास शिरसा मनसा तैश्च पूजितः ।
दिदृक्षुर्जप्यपरमः सर्वकृच्छ्रधरः स्थितः ॥ २ ॥

और सिर नीचा करके प्रणाम किया और मनही मन उन लोगोंकी पूजा की; फिर उन लोगोंने भी नारदका सत्कार किया; फिर वे नारायणका दर्शन करनेके अभिलाषी होकर जपपरायण और समस्त कठोर नियमोंका पालन करते हुए स्थित रहे ॥ २ ॥

भूत्वैकाग्रमना विप्र ऊर्ध्ववाहुर्महामुनिः ।
स्तोत्रं जगौ स विश्वाय निर्गुणाय महात्मने ॥ ३ ॥

वह विप्रवर महामुनि एकाग्रचित्त, उर्ध्वबाहु होकर निर्गुण और गुणात्मक विश्वात्मा भगवान् नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

नारद उवाच—

नमस्ते देवदेव १। निष्क्रिय २। निर्गुण ३। लोकसाक्षिन् ४। क्षेत्रज्ञ ५। अनन्त ६। पुरुष ७। महापुरुष ८। त्रिगुण ९। प्रधान ॥ १० ॥

नारद मुनि बोले– हे देवोंके देव ! तुम जीवोंके अन्तर्यामी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; १। तुम सर्वव्यापकत्व निबन्धनसे निष्क्रिय हो; २। असङ्गत्व हेतुसे निर्गुण हो, ३। उदासीन बोधरूप होनेसे लोकसाक्षी हो, ४। देहद्वयके प्रकाशक जीव हो, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाते हो; ५। देशकाल तथा यथार्थमें परिच्छेदरहित होनेसे अनन्त हो, ६। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरके जिलानेवाले होनेसे पुरुष हो; ७। समष्टि स्थूल शरीर आदिके दाहक हो, इसलिये महापुरुष कहाते हो, ८। सत्व, रज और तमोरूपसे त्रिगुण, ९। तीनों गुणोंके सङ्घात रूप होनेसे प्रधान हो ॥ १० ॥

अमृत ११। व्योम १२। सनातन १३। सदसद्व्यक्ताव्यक्त १४। ऋतधामन् १५। पूर्वादिदेव १३। वसुप्रद १७। प्रजापते १८। सुप्रजापते १९। वनस्पते ॥ २० ॥

तुम अमृत अर्थात् सुधा स्वरूप हो; ११। तुम अव्याकृतात्मा होनेसे व्योम हो; १२। अनादि होनेसे सनातन हो; १३। कार्य और कारण रूपसे व्यक्त तथा अव्यक्त हो, १४। ऋतधामन् अर्थात् सत्यप्रकाश हो; १५। आदिदेव नारायण और १६। कर्म फलदाता हो, इसही कारण वसुप्रद कहाते हो; १७। तुम दक्ष आदि प्रजापति स्वरूप हो, १८। मोक्षोपदेशक सनकादि सुप्रजापति स्वरूप हो, २९। अश्वत्थ प्रभृति वनस्पति स्वरूप हो ॥ २० ॥

महाप्रजापते २१। ऊर्जस्पते २२। वाचस्पते २३। मनस्पते २४। जगत्पते २५।

तुम महाप्रजापति अर्थात् चतुर्मुख स्वरूप हो २१। तुम ब्रह्मादि जीव रूपसे पशुओंके पति हो, इसलिये उर्जस्पति कहाते हो २२। वाक्यके प्रवर्त्तक होनेसे वाचस्पति हो २३। तुम

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

दिवस्पते २६। मरुत्पते २७। सलिलपते २८। पृथिवीपते २९। दिक्पते ॥ ३० ॥

जगत्पति अर्थात् इन्द्रस्वरूप हो, २४। मनस्पति अर्थात् सूत्रात्मा हो, २५। दिवस्पति सूर्यस्वरूप हो, २६। मरुत्पति प्राणवायु स्वरूप हो, २७। जलपति वरुणस्वरूप हो, २८। तुम्हीं पृथ्वीपति राजा हो, २९। दिक्पति इन्द्र आदि दिक्पाल स्वरूप हो; ॥ ३० ॥

पूर्वनिवास ३१। ब्रह्मपुरोहित ३२। ब्रह्मकायिक ३३। महाकायिक ३४। महाराजिक ३५। चतुर्महाराजिक ३६। आभासुर ३७। महाभासुर ३८। सप्त-महाभासुर ३९। याम्य ॥ ४० ॥

महाप्रलयकालमें जगत् के आधार होनेसे पूर्वनिवास हो; ३१। ब्रह्माको वेद प्रदान किया है इसलिये ब्रह्मपुरोहित हो; ३२। ब्राह्मणशरीरसाध्य यज्ञ और अध्ययनादि स्वरूप हो, इस निमित्त ब्रह्मकायिक कहाते हो, ३३। महाकायिक हो; ३४। महाराजिक नामक देवगण विशेष ३५। और चतुर्महाराजिक, ३६। आभासुर ३७। महाभासुर, ३८। सप्त महासुर अर्थात् सप्तसंख्यक महत् यज्ञभाग स्वरूप हो ३९। तुम यमगण हो इसलिये याम्य कहाते हो; ॥ ४० ॥

महायाम्य ४१। संज्ञासंज्ञ ४२। तुषित ४३। महातुषित ४४। प्रतर्दन ४५। परिनिर्मित ४६। वशवर्तिन् ४७। अपरिनिर्मित ४८। यज्ञ ४९। महायज्ञ ॥ ५० ॥

तुम चित्रगुप्तादिरूप होनेसे महायाम्य कहे जाते हो; ४१। यमपत्नीमें आसक्त होनेसे संज्ञासंज्ञ हो; ४२। तुम तुषित ४३। और महातुषित देवगण स्वरूप हो; ४४। मृत्यु स्वरूप होनेसे प्रतर्दन कहाते हो४५। मृत्युकी सहायताके जरिये कल्पित काम रोगादिस्वरूप हो, इसीसे परिनिर्मित कहाते हो; ४६। तदन्य शम अर्थात आरोग्य स्वरूप होनेसे अपरिनिर्मित हो; ४७। कामादिग्रस्त न होनेसे वशवर्त्ती हो; ४८। तुम अग्निहोत्र आदि यज्ञ, ४९। ब्रह्मयज्ञ आदि महायज्ञ, ॥ ५० ॥

यज्ञसंभव ५१। यज्ञयोने ५२। यज्ञगर्भ ५३। यज्ञहृदय ५४। यज्ञस्तुत ५५। यज्ञभागहर ५६। पञ्चयज्ञधर ५७। पञ्चकालकर्तृगते ५८। पञ्चरात्रिक ५९। वैकुण्ठ ॥ ६० ॥

यज्ञ सम्भव ऋत्विक् आदि ५१। यज्ञयोनि वेद, ५२। यज्ञगर्भ अग्नि ५३। और यज्ञ-हृदय अर्थात् यज्ञादि उपासना स्वरूप हो ५४। तुम यज्ञस्तुत ५५। यज्ञभागहर, ५६। पञ्चयज्ञ धर हो ५७। और अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर इस पञ्चकालकर्तृत्वरूपसे जो गीतामें प्रसिद्ध है, तुम उनकी गति हो, इसलिये पञ्चकालकर्तृगति कहाते हो ५८। पञ्चरात्र नाम आगमगम्य होनेसे तुम पाञ्चरात्रिक हो ६९। तुम परमधाम हो, इसही निमित्त वैकुण्ठ कहाते हो; ॥ ६०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपराजित ६१। मानसिक ६२। परमस्वामिन् ६३। सुस्नात ६४। हंस ६५। परमहंस ६६। परमयाज्ञिक ६७। सांख्ययोग ६८। अमृतेशय ६९। हिरण्येशय ॥ ७० ॥

किसीके निकट पराजित न होनेसे अपराजित हो ६१। तुम मानसोपाधिक हो, इससे मानसिक कहाते हो ६२। तुम ब्रह्माके भी प्रभु हो, इसीसे परस्वामी कहाते हो, ६३। तुमने वेदव्रत समाप्त किया है, इससे तुम्हारा नाम सुस्नात है ६४। तुम त्रिदण्डधारी हो, इसीसे हंस ६५। और परमहंस नामक हैं; ६६। तुम परमयाज्ञिक ६७। और सांख्ययोग हो ६८। तुम जीवमात्रमें शयन कर रहे हो, इसीसे अमृतेशय नामक है; ६९। हृदयमें शयन करनेसे हिरण्येशय हो; ॥ ७० ॥

वेदेशय ७१। कुशेशय ७२। ब्रह्मेशय ७३। पद्मेशय ७४। विश्वेश्वर ७५। त्वं जगदन्वयः ७६। त्वं जगत्प्रकृतिः ७७। तवाग्निरास्यम्। ७८। वडवामुखोऽग्निः ७९। त्वमाहुतिः ॥ ८० ॥

तुम वेदेशय कहाते हो, ७१। समुद्रके जलमें शयन किया करते हो, इसलिये कुशेशय हो, ७२। वेदके बीच निवास करते हो, इससे ब्रह्मेशय नाम है, ७३। ब्रह्माण्डमें विद्यमान हो, इसीसे पद्मेशय कहाते हो, ७४। तुम विश्व संसाके ईश्वर होनेसे विश्वेश्वर कहाते हो ७५। जगत्में सत्त्व रूपसे तुम्हारा संबंध है, इसीसे तुम जगदन्वय हो, ७६। तुम ही जगत्की प्रकृति हो, ७७। अग्नि तुम्हाराही मुख स्वरूप है, ७८। तुम्हीं वडवामुख अग्नि स्वरूप हो ७९। तुम्हीं आहुति रूप हो ॥ ८० ॥

त्वं सारथिः ८१। त्वं वषट्कारः ८२। त्वमोंकारः ८३। त्वं मनः ८४। त्वं चन्द्रमाः ८५। त्वं चक्षुराद्यम् ८६। त्वं सूर्यः ८७। त्वं दिशां गजः ८८। दिग्भानो ८९। हयशिरः ॥ ९० ॥

सारथि अग्निरूप हो, ८१। तुमही वषट्कार, ८२। तुम्हीं ओंकार, ८३। तुम ही मन ८४। और चन्द्रमा हो, ८५। तुम ही चक्षुके देवता सूर्य हो; ८६। तुम ही सूर्य, ८७। तुम्हीं दिग्गज, ८८। तुम्हीं दिग्भानु-दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले ८९। और तुम्ही हयशिरा हो,॥९०॥

प्रथमत्रिसौपर्ण ९१। पञ्चाग्ने ९२। त्रिणाचिकेत ९३। षडङ्गनिधान ९४।

तुम्हीं तैत्तिरीय उपनिषदमें पठित प्रथम त्रिसुपर्ण मन्त्र अर्थात् आदित्यदैवत जगत्कर्ता हो, इस ही लिये प्रथम त्रिसौपर्ण कहाते हो ९१। तुम गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य और आवसथ्य पञ्चाग्नि स्वरूप हो ९२। नाचिकेत नामक अग्निको तीन बार जिसने चयन किया है, तुम वही त्रिणाचिकेत-संज्ञक हो; ९३। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्राग्ज्योतिष ९५। ज्येष्ठसामग ९६। सामिकव्रतधर ९७। अथर्वशिरः ९८। पञ्च-महाकल्प ९९। फेनपाचार्य ॥ १०० ॥

और ज्योतिष, इन षडङ्गविधान वेद स्वरूप हो ९४। तुम प्राग्ज्योतिष ९५। और ज्येष्ठसामग नामक सामगान स्वरूप हो; ९६। तुमने सामगोंके व्रतको धारण किया है, इससे सामिक-व्रतधर हो ९७। तुम अथर्वशिरा नामक उपनिषत् रूप हो, ९८। सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव और वैष्णव, इन पञ्चागमसे प्रतिपाद्य हो, इस ही निमित्त पञ्च महाकल्प कहाते हो ९९। तुम ही फेनपाचार्य, ॥ १०० ॥

बालखिल्य १०१। वैखानस १०२। अभग्नयोग १०३। अभग्नपरि-संख्यान १०४। युगादे १०५। युगमध्य १०६। युगनिधन १०७। आखण्डल १०८। प्राचीनगर्भ १०९। कौशिक ॥ ११० ॥

बालखिल्य, १०१। वैखानस, १०२। अभग्नयोग १०३। और अभग्नविचार हो १०४। तुमही युगादि, १०५। युगमध्य, १०६। युगनिधन १०७। आखण्डल अर्थात् इन्द्र हो; १०८। तुम्हीं प्राचीनगर्भ १०९। और कौशिकमुनि स्वरूप हो; ॥ ११० ॥

पुरुष्टुत १११। पुरुहूत ११२। विश्वरूप ११३। अनन्तगते ११४। अनन्त-भोग ११५। अनन्त ११६। अनादे ११७। अमध्य ११८। अव्यक्तमध्य ११९। अव्यक्त-निधन ॥ १२० ॥

तुम अनेक पुरुषोंसे स्तुत होते हो, इसीसे तुम्हारा नाम पुरुष्टुत है, १११। तुम पुरुहूत, ११२। विश्वरूप, ११३। अनन्तगति, ११४। अनन्त भोग ११५। अनन्त, ११६। अनादि, ११७। अमध्य, ११८। अव्यक्तमध्य, ११९। अव्यक्तनिधन हो, ॥ १२० ॥

व्रतावास १२१। समुद्राधिवास १२२। यशोवास १२३। तपोवास १२४। लक्ष्म्यावास १२५। विद्यावास १२६। कीर्त्यावास १२७। श्रीवास १२८। सर्वा-वास १२९। वासुदेव ॥ १३० ॥

तुमही व्रतके वास, १२१। समुद्राधिवास, १२२। यशोवास, १२३। तपोवास, १२४। लक्ष्म्यावास, १२५। विद्यावास, १२६। कीर्त्यावास, १२७। श्रीवास, १२८। सर्वावास १२९। वासुदेव हो ॥ १३० ॥

सर्वच्छन्दक १३१। हरिहय १३२। हरिमेध १३३। महायज्ञभागहर १३४। वरप्रद १३५। यम-नियम-महानियम-कृच्छ्रातिकृच्छ्र-महाकृच्छ्र-सर्वकृच्छ्र-

तुमही सर्व मनोरथप्रद हो, इस ही निमित्त सर्वछन्दक कहाते हो १३१। तुमने रामा-वतारमें हनुमान्‌को वाहन बनाया था, इसलिये हरिहय हो, १३२। तुम ही हरिमेध अर्थात् अश्वमेध यज्ञस्वरूप हो, १३३। तुम महायज्ञभागहर, १३४। वरप्रद, १३५। यम,-नियम,-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नियमधर १३६। निवृत्तधर्मप्रवचनगते १३७। प्रवृत्तवेदक्रिय १३८। अज १३९। सर्वगते ॥ १४० ॥

महानियम,–कृच्छ्र–अतिकृच्छ्र,–महाकृच्छ्र,–सर्वकृच्छ्र,–नियमधर, तुमही हो; १३६। निवृत्त धर्म, प्रवचनगत अर्थात् अध्ययनमें प्रवृत्त ब्रह्मचारी हो, १३७। तुम प्रवृत्त वेदक्रिय– वैदिक कर्मोंके प्रवर्तक, १३८। अज, १३९। सर्वगति, ॥ १४० ॥

सर्वदर्शिन् १४१। अग्राह्य १४२। अचल १४३। महाविभूते १४४। माहात्म्य-शरीर १४५। पवित्र १४६। महापवित्र १४७। हिरण्मय १४८। बृहत् १४९। अप्रतर्क्य ॥ १५० ॥

सर्वदर्शी, १४१। अग्राह्य, १४२। अचल, १४३। महाविभूति, १४४। माहात्म्य–शरीर अर्थात् विराटमूर्तिधारी, १४५। पवित्र, १४६। महापवित्र, १४७। हिरण्यमय, १४८। बृहत्, १४९। अप्रतर्क्य, ॥ १५० ॥

अविज्ञेय १५१। ब्रह्माग्र्य १५२। प्रजासर्गकर १५३। प्रजानिधनकर १५४। महामायाधर १५५। चित्रशिखण्डिन् १५६। वरप्रद १५७। पुरोडाशभागहर १५८। गताध्वन् १५९। छिन्नतृष्ण ॥ १६० ॥

अविज्ञेय, १५१। ब्रह्माग्र्य, १५२। प्रजासर्गकर, १५३। प्रजानिधनकर, १५४। महा-मायाधर, १५५। चित्रशिखण्डी, १५६। वरप्रद, १५७। पुरोडाशभागहर, १५८। गता-ध्वन्, १५९। छिन्नतृष्ण, ॥ १६० ॥

छिन्नसंशय १६१। सर्वतोनिवृत्त १६२। ब्राह्मणरूप १६३। ब्राह्मणप्रिय १६४। विश्वमूर्ते १६५। महामूर्ते १६६। बान्धव १६७। भक्तवत्सल १६८। ब्रह्मण्य-देव १६९। भक्तोऽहं त्वां दिदृक्षुः ॥ १७० ॥

छिन्नसंशय, १६१। सर्वतोनिवृत्त, १६२। ब्राह्मणरूप, १६३। ब्राह्मणप्रिय, १६४। विश्व-मूर्त्ति, १६५। महामूर्त्ति १६६। और बान्धव हो। १६७। हे भक्तवत्सल १६८। ब्रह्मण्यदेव १६९। मैं तुम्हारा दर्शन करनेके निमित्त अभिलाष करता हूं, ॥ १७० ॥

एकान्तदर्शनाय नमो नमः ॥ १७१ ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥ ११८८० ॥

तुम एकान्तदर्शन मोक्षस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है ॥ १७१ ॥४॥

महाभारतके शांन्तिपर्वमें तीन सौ पचीसवां अध्याय समाप्त॥ ३२५ ॥ ११८८० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) - Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२६ :

भीष्म उवाच—

एवं स्तुतः स भगवान्गुह्यैस्तथ्यैश्च नामभिः ।
तं मुनिं दर्शयामास नारदं विश्वरूपधृक् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— विश्वरूपधारी भगवानने इस ही प्रकार गुह्य और तथ्य नामोंके सहारे स्तुत होकर उस मुनिश्रेष्ठ नारदको दर्शन दिया ॥ १ ॥

किंचिच्चन्द्रविशुद्धात्मा किंचिच्चन्द्राद्विशेषवान् ।
कृशानुवर्णः किंचिच्च किंचिद्विष्ण्याकृतिः प्रभुः ॥ २ ॥

उस समय भगवान्का वह स्वरूप चन्द्रमासे कुछ विशुद्ध और चन्द्रमासे किञ्चित् विलक्षण विशिष्ट था; कुछ अग्निके समान तेजस्वी वर्णका और कुछ नक्षत्राकृतिके समान उज्ज्वल था; ॥ २ ॥

शुकपत्रवर्णः किंचिच्च किंचित्स्फटिकसप्रभः ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो जातरूपप्रभः क्वचित् ॥ ३ ॥

वह सर्वभूतसंयोगी प्रभु किञ्चित् तोतेकी पांखके समान हरा, कुछ स्फटिकके समान प्रभायुक्त, नीलाञ्जनचयप्रख्य और किञ्चित् सुवर्णरूप— सदृश प्रभायुक्त थे; ॥ ३ ॥

प्रवालाङ्कुरवर्णश्च श्वेतवर्णः क्वचिद्बभौ ।
क्वचित्सुवर्णवर्णाभो वैडूर्यसदृशः क्वचित् ॥ ४ ॥

किसी स्थलमें प्रवालाङ्कुरवर्ण, किसी स्थानमें श्वेतवर्ण, कहीं सुवर्णवर्णसदृश और किसी अंशमें वैदुर्य मणिके समान प्रभा दिखती थी ॥ ४ ॥

नीलवैडूर्यसदृश इन्द्रनीलनिभः क्वचित् ।
मयूरग्रीववर्णाभो मुक्ताहारनिभः क्वचित् ॥ ५ ॥

कहीं नील वैडूर्यसदृश, किसी स्थानमें इन्द्रनीलप्रभायुक्त, कहीं मयूरग्रीवाके समान प्रभासे युक्त और किसी स्थानमें मोतीके हारके समान कान्ति दृष्टिगोचर होती थी ॥ ५ ॥

एतान्वर्णान्बहुविधान्रूपे बिभ्रत्सनातनः ।
सहस्रनयनः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रपात् ॥ ६ ॥

सनातन भगवान् नारायणने अपने स्वरूपमें अनेक प्रकारके रंग धारण किये थे; वही श्रीमान् भगवान् सहस्रों नेत्र, शतशीर्ष, सहस्रों पैर ॥ ६ ॥

सहस्रोदरबाहुश्च अव्यक्त इति च क्वचित् ।
ॐकारमुद्गिरन्वक्त्रात्सावित्रीं च तदन्वयाम् ॥ ७ ॥

सहस्रों उदर और सहस्रों बाहुवाला है और कभी वह अव्यक्त भावसे निवास करता है; वह देव नारायण मुखमण्डलसे ओंकार और ओंकार सम्बन्धवती गायत्रीका जप करते थे ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शेषेभ्यश्चैव वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदोद्गतं वसु ।
आरण्यकं जगौ देवो हरिर्नारायणो वशी ॥ ८ ॥

वे सबको वशमें रखनेवाले भगवान् नारायण श्रीहरि अन्य मुखोंसे चारों वेदोंको उच्चारण करके आरण्यक मंत्रोंका गान कर रहे थे ॥ ८ ॥

वेदीं कमण्डलुं दर्भान्मणिरूपानथोपलान् ।
अजिनं दण्डकाष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम् ।
धारयामास देवेशो हस्तैर्यज्ञपतिस्तदा ॥ ९ ॥

यज्ञपति उन देवेश्वर श्री हरिने उस समय अपने हाथोंमें यज्ञ वेदी, कमण्डलु, दर्भ, चमकीले वर्णकी मणि, मृगचर्म, दण्डकाष्ठ और प्रज्वलित अग्निको धारण किया था ॥ ९ ॥

तं प्रसन्नं प्रसन्नात्मा नारदो द्विजसत्तमः ।
वाग्यतः प्रयतो भूत्वा ववन्दे परमेश्वरम् ।
तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ॥ १० ॥

द्विजसत्तम नारदने प्रसन्नचित्त तथा संयतवाक्य होकर उस श्रेष्ठ प्रसन्न परमेश्वरको प्रणाम करके उनकी वन्दना की; आदि देव अव्यय श्रीहरि उस समय नम्रशिरा नारद मुनिसे कहने लगे ॥ १० ॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।
इमं देशमनुप्राप्ता मम दर्शनलालसाः ॥ ११ ॥

महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शनकी अभिलाषासे इस स्थानमें आये थे, ॥ ११ ॥

न च मां ते ददृशिरे न च द्रक्ष्यति कश्चन ।
ऋते ह्यैकान्तिकश्रेष्ठात्त्वं चैवैकान्तिको मतः ॥ १२ ॥

परन्तु वे लोग मेरा दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हुए, अनन्य भक्तिके विना कोई भी मुझे नहीं देख सकता; तुम मेरे अनन्य भक्तोंमें श्रेष्ठ हो, इसीसे मेरा दर्शन पाया है ॥ १२ ॥

ममैतास्तनवः श्रेष्ठा जाता धर्मगृहे द्विज ।
तास्त्वं भजस्व सततं साधयस्व यथागतम् ॥ १३ ॥

हे द्विज ! धर्मके गृहमें उत्पन्न हुए ये नर-नारायण आदि मेरे ही स्वरूप हैं; इसलिये तुम सदा उनहीका भजन करो; जो कार्य प्राप्त हो, उसका साधन करो ॥ १३ ॥

वृणीष्व च वरं विप्र मत्तस्त्वं यमिहेच्छसि ।
प्रसन्नोऽहं तवाद्येह विश्वमूर्तिरिहाव्ययः ॥ १४ ॥

हे विप्र ! इस समय मेरे समीप जो वर मांगनेकी इच्छा हो, वह मांगो । मैं अव्यय होके भी इस समय विश्वमूर्त्ति धारण करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नारद उवाच—

अद्य मे तपसो देव यमस्य नियमस्य च ।
सद्यः फलमवाप्तं वै दृष्टो यद्भगवान्मया ॥ १५ ॥

नारद मुनि बोले– हे देव ! मैंने जब आप भगवान्‌का दर्शन किया, तब आज मेरी तपस्या, यम और नियमका फल प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥

वर एष ममात्यन्तं दृष्टस्त्वं यत्सनातन :।
भगवान्विश्वदृक्सिंहः सर्वमूर्तिर्महाप्रभुः ॥ १६ ॥

हे भगवान् ! तुम विश्वदर्शी, सिंहस्वरूप, सर्वमूर्त्तिमय, महाप्रभु और सनातन हो; इसलिये मैंने जब तुम्हारा दर्शन किया, तब इससे बढके दूसरा वर मेरे लिये कौनसा है ? ॥ १६ ॥

भीष्म उवाच—

एवं संदर्शयित्वा तु नारदं परमेष्ठिजम् ।
उवाच वचनं भूयो गच्छ नारद माचिरम् ॥ १७ ॥

भीष्म बोले– भगवान् इसी भांति विधातृपुत्र नारदको दर्शन देकर फिर उनसे बोले, हे नारद ! तुम गमन करो, विलम्ब मत करो ॥ १७ ॥

इमे ह्यनिन्द्रियाहारा मद्भक्ताश्चन्द्रवर्चसः।
एकाग्राश्चिन्तयेयुर्मां नैषां विघ्नो भवेदिति ॥ १८ ॥

ये अनिन्द्रिय, अनाहार और चन्द्रवर्चस पुरुष हमारे भक्त हैं, ये लोग एकाग्रचित्त होकर हमारा ध्यान करते हैं; इसलिये इन लोगोंके ध्यानमें विघ्न न होना चाहिये ॥ १८ ॥

सिद्धाश्चैते महाभागाः पुरा ह्येकान्तिनोऽभवन्।
तमोरजोविनिर्मुक्ता मां प्रवेक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ १९ ॥

ये सब महाभाग पुरुष सिद्ध हैं, और पहलेभी मोक्षपथावलम्बी अनन्य भक्त रहे हैं; ये तप और रजोगुणसे निर्मुक्त हैं, इससे ये लोग मुझमें निःसन्देह प्रवेश करेंगे ॥ १९ ॥

न दृश्यश्चक्षुषा योऽसौ न स्पृश्यः स्पर्शनेन च।
न घ्रेयश्चैव गन्धेन रसेन च विवर्जितः ॥ २० ॥

जो नेत्रोंसे देखे नहीं जाते, जो स्पर्शेन्द्रियसे ज्ञात नहीं होते, गन्धवत् सूंघनेके विषय नहीं हैं, और रसवर्जित हैं ॥ २० ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव न गुणास्तं भजन्ति वै।
यश्च सर्वगतः साक्षी लोकस्यात्मेति कथ्यते ॥ २१ ॥

सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण जिनकी भजना नहीं करते; जो सर्वगत, साक्षी और चैतन्य रूपसे लोगोंकी आत्मा कहे जाते हैं, ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न विनश्यति।
अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलस्तथा ॥ २२ ॥

सब प्राणियोंका नाश होनेपरभी स्वयं विनष्ट नहीं होते हैं; जो जन्मरहित, नित्य, शाश्वत, निर्गुण और निष्कल है ॥ २२ ॥

द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्चविंशकः।
पुरुषो निष्क्रियश्चैव ज्ञानदृश्यश्च कथ्यते ॥ २३ ॥

जो चौबीस तत्त्वोंसे भी अतीत पचीसवां तत्त्व कहके विख्यात हैं; जो अन्तर्यामी पुरुष, निष्क्रिय और ज्ञानमय नेत्रोंसे देखने योग्य कहके वर्णित हुआ करते हैं ॥ २३ ॥

यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता वै द्विजसत्तम।
स वासुदेवो विज्ञेयः परमात्मा सनातनः ॥ २४ ॥

इस संसारमें द्विजसत्तमगण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं, उसही सनातन परमात्माको वासुदेव जानो ॥ २४ ॥

पश्य देवस्य माहात्म्यं महिमानं च नारद।
शुभाशुभैः कर्मभिर्यो न लिप्यति कदाचन ॥ २५ ॥

हे नारद ! शुभाशुभ कर्मोंमें जो कदाचित् लिप्त नहीं होता, उस देवकी महिमा और माहात्म्य अवलोकन करो ॥ २५ ॥

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणानेतान्प्रचक्षते।
एते सर्वशरीरेषु तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥ २६ ॥

सत्त्व, रज और तम, इन तीनोंको गुण कहते हैं, ये सब शरीरोंमें स्थित रहते तथा भ्रमण किया करते हैं ॥ २६ ॥

एतान्गुणांस्तु क्षेत्रज्ञो भुङ्क्ते नैभिः स भुज्यते।
निर्गुणो गुणभुक्चैव गुणस्रष्टा गुणाधिकः ॥ २७ ॥

क्षेत्रज्ञ जीव इन सब गुणोंको भोग करता है, परन्तु गुण उसे भोग नहीं कर सकते। वह निर्गुण, गुणभोगी, गुणस्रष्टा और गुणाधिक है ॥ २७ ॥

जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते।
ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते ॥ २८ ॥

हे देवर्षि ! सम्पूर्ण जगत् जिसपर प्रतिष्ठत है, वह पृथ्वी जलमें विलीन होती है; जल अग्निमें लीन हुआ करता है, अग्नि वायुमें लीन होती है ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकाशमेव च ।
मनो हि परमं भूतं तदव्यक्ते प्रलीयते ॥ २९ ॥

वायु आकाशमें लीन हो जाती है, आकाश मनमें प्रलयको प्राप्त हुआ करता है, और परम भूत मन उस ही अव्यक्तमें लीन होता है ॥ २९ ॥

अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्क्रिये संप्रलीयते ।
नास्ति तस्मात्परतरं पुरुषाद्धि सनातनात् ॥ ३० ॥

हे ब्रह्मन् ! अव्यक्त भी निष्क्रिय पुरुषमें लीन हो जाता है; उस सनातन पुरुषके अतिरिक्त और कोई भी उत्कृष्ट वस्तु नहीं है ॥ ३० ॥

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
ऋते तमेकं पुरुषं वासुदेवं सनातनम् ।
सर्वभूतात्मभूतो हि वासुदेवो महाबलः ॥ ३१ ॥

उस एकमात्र शाश्वत पुरुष वासुदेवके अतिरिक्त इस जगत्में स्थावर जङ्गम कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है । महाबलवान् वासुदेव सब भूतोंके आत्मा हैं ॥ ३१ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
ते समेता महात्मानः शरीरमिति संज्ञितम् ॥ ३२ ॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये पांचों महाभूत एक साथ मिलके ही शरीर नाम धारण करते हैं ॥ ३२ ॥

तदाविशति यो ब्रह्मन्नदृश्यो लघुविक्रमः ।
उत्पन्न एव भवति शरीरं चेष्टयन्प्रभुः ॥ ३३ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो शीघ्रगामी चेतन अदृश्य होके इस शरीरमें प्रविष्ट होता है; वह जीवात्मा यथार्थमें उत्पन्न न होके भी मानो उत्पन्न होके शरीरचेष्टा निर्वाह करता है; वही संचालनमें समर्थ है ॥ ३३ ॥

न विना धातुसंघातं शरीरं भवति क्वचित् ।
न च जीवं विना ब्रह्मन्धातवश्चेष्टयन्त्युत ॥ ३४ ॥

पांचों भूतोंके मिलित समुदायके– धातुसंघातके अतिरिक्त शरीर कदापि उत्पन्न नहीं होता । हे ब्रह्मन् ! जीवके विना पांचों भूत– प्राण वायु चेष्टा नहीं कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

स जीवः परिसंख्यातः शेषः संकर्षणः प्रभुः ।
तस्मात्सनत्कुमारत्वं यो लभेत स्वकर्मणा ॥ ३५ ॥

इस शरीरमें जो प्रविष्ट होता है, वही जीव है; भगवान्के विश्वविधारक व्यूहविशेष सङ्कर्षण और शेष नामसे वह प्रभु संख्यात होता है । जो उसीसे उत्पन्न होकर निज कर्मोंके जरिये उससे जीवन्मुक्तत्व लाभ करता है ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यस्मिंश्च सर्वभूतानि प्रलयं यान्ति संक्षये ।
स मनः सर्वभूतानां प्रद्युम्नः परिपठ्यते ॥ ३६ ॥

और प्रलयकालमें सब प्राणी जिसमें लीन होते हैं, वह सब भूतोंका मन प्रद्युम्न नामसे कहा हुआ करता है ॥ ३६ ॥

तस्मात्प्रसूतो यः कर्ता कार्यं कारणमेव च ।
यस्मात्सर्वं प्रभवति जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सोऽनिरुद्धः स ईशानो व्यक्तिः सा सर्वकर्मसु ॥ ३७ ॥

जो सङ्कर्षणसे उत्पन्न होता है, वही कर्त्ता, कारण और कार्य स्वरूप है; और प्रद्युम्नसे यह स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् उत्पन्न होता है; इसहीका नाम अनिरुद्ध है; यही ईश्वर है, और सब कार्योंमें व्यक्त होरहा है ॥ ३७ ॥

यो वासुदेवो भगवान्क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।
ज्ञेयः स एव भगवाञ्जीवः संकर्षणः प्रभुः ॥ ३८ ॥

हे राजेन्द्र ! भगवान् वासुदेव जो क्षेत्रज्ञ और निर्गुण स्वरूपसे वर्णित हुए हैं, उन्हेंही प्रभावशाली सङ्कर्षण अर्थात् भगवान् जीव जानो ॥ ३८ ॥

संकर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते ।
प्रद्युम्नाद्योऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारो महेश्वरः ॥ ३९ ॥

सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं, इसे ही मन कहा जाता है । प्रद्युम्नसे जो अनिरुद्ध उत्पन्न होते हैं, वेही अहंकार और महेश्वर हैं ॥ ३९ ॥

मत्तः सर्वं संभवति जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
अक्षरं च क्षरं चैव सच्चासच्चैव नारद ॥ ४० ॥

हे नारद ! मुझसे ही स्थावरजङ्गममय समस्त जगत्, सदसत्, जीव और प्रकृत्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता भक्तास्तु ये मम ।
अहं हि पुरुषो ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः ॥ ४१ ॥

इस लोकमें मेरे भक्त लोग मुझमें प्रविष्ट होके मुक्त होते हैं; मुझे पचीसवें तत्त्व निष्क्रिय पुरुष रूपसे जानो ॥ ४१ ॥

निर्गुणो निष्कलश्चैव निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ।
एतत्त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते ।
इच्छन्मुहूर्तान्नश्येयमीशोऽहं जगतो गुरुः ॥ ४२ ॥

मैं निर्गुण, निष्कल, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हूं । तुम ऐसा मत समझो, कि ये रूपवान् हैं, इसलिये दीख पडते हैं । मैं इच्छा करनेसे मुहूर्त्तमात्रमें ही विलीन हो सकता हूं, मैं जगत्का गुरु और नियन्ता हूं ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि ।
मयैतत्कथितं सम्यक्तव मूर्तिचतुष्टयम् ॥ ४३ ॥

हे नारद ! तुम जो मेरा दर्शन करते हो, यह मेरी ही उत्पन्न की हुई माया है; इस ही प्रकार सब प्राणियोंके गुणोंसे युक्त न समझो; हे नारद ! तुम्हारे समीप मैंने अपने वासुदेव, सङ्कर्षण आदि चारों मूर्त्तियोंके विषयको पूर्ण रीतिसे वर्णन किया ॥ ४३ ॥

सिद्धा ह्येते महाभागा नरा ह्येकान्तिनोऽभवन् ।
तमोरजोभ्यां निर्मुक्ताः प्रवेक्ष्यन्ति च मां मुने ॥ ४४ ॥

हे मुनि ! ये मोक्षनिष्ठ महाभाग मनुष्य सिद्ध हुए हैं, ये पहले मेरे अनन्य भक्त रहे हैं; ये लोग तम और रजोगुणसे छूटकर मुझमें प्रविष्ट होंगे ॥ ४४ ॥

अहं कर्ता च कार्यं च कारणं चापि नारद ।
अहं हि जीवसंज्ञो वै मयि जीवः समाहितः ।
मैवं ते बुद्धिरत्राभूद्दृष्टो जीवो मयेति च ॥ ४५ ॥

मैं कर्त्ता, कार्य और कारण भी हूं; मैं ही जीव नामसे प्रसिद्ध हूं और मुझमें ही जीवकी स्थिति होती है । " मैंने जीवका दर्शन किया " तुम्हारी इस समय ऐसी बुद्धि न हो ॥४५॥

अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन्भूतग्रामान्तरात्मकः ।
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम् ॥ ४६ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं सर्वत्रगामी और सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हूं; सब प्राणियोंके तथा उनके शरीरोंके नष्ट होनेपर भी मैं विनष्ट नहीं होता ॥ ४६ ॥

हिरण्यगर्भो लोकादिश्चतुर्वक्त्रो निरुक्तगः ।
ब्रह्मा सनातनो देवो मम बह्वर्थचिन्तकः ॥ ४७ ॥

सब लोकोंके आदिभूत, चतुर्मुख, अनिर्वचनीय, हिरण्यगर्भ, और सनातन देव ब्रह्मा मेरे अनेक विषयोंका ध्यान किया करते हैं ॥ ४७ ॥

पश्यैकादश मे रुद्रान्दक्षिणं पार्श्वमास्थितान् ।
द्वादशैव तथादित्यान्वामं पार्श्वं समास्थितान् ॥ ४८ ॥

देखिये, ये ग्यारह रुद्र मेरी दहिनी ओर स्थित हैं; बारह आदित्य मेरी बाईं ओर खडे हैं ॥ ४८ ॥

अग्रतश्चैव मे पश्य वसूनष्टौ सुरोत्तमान् ।
नासत्यं चैव दस्रं च भिषजौ पश्य पृष्ठतः ॥ ४९ ॥

अगाडीमें सुरोत्तम आठों वसु निवास करते हैं; पीछे नासत्य और दस्र नामक दोनों देव वैद्य अश्विनी कुमार स्थित हैं, इन सबको देखो ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhuji). Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वान्प्रजापतीन्पश्य पश्य सप्त ऋषीनपि ।
वेदान्यज्ञांश्च शतशः पश्यामृतमथौषधीः ॥ ५० ॥

समस्त प्रजापति और सत्यात्मा सप्तर्षियोंको भी देखो । सब वेदों और सैकडों यज्ञों, अमृत और महौषधियोंको देखो ॥ ५० ॥

तपांसि नियमांश्चैव यमानपि पृथग्विधान् ।
तथाष्टगुणमैश्वर्यमेकस्थं पश्य मूर्तिमत् ॥ ५१ ॥

तपस्या, पृथक् पृथक् समस्त यम और नियम तथा अणिमा आदि अष्टगुणयुक्त ऐश्वर्यको एकत्रित मूर्त्तिके समान देखो ॥ ५१ ॥

श्रियं लक्ष्मीं च कीर्तिं च पृथिवीं च ककुद्मिनीम् ।
वेदानां मातरं पश्य मत्स्थां देवीं सरस्वतीम् ॥ ५२ ॥

श्री, लक्ष्मी, कीर्त्ति और ककुद्मिनी पृथ्वी अर्थात् पर्वतमय ककुदयुक्त पृथ्वी और वेदमाता सरस्वती देवीको मुझमें निवास करती हुई देखो ॥ ५२ ॥

ध्रुवं च ज्योतिषां श्रेष्ठं पश्य नारद खेचरम् ।
अम्भोधरान्समुद्रांश्च सरांसि सरितस्तथा ॥ ५३ ॥

हे नारद ! नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ आकाशचारी ध्रुव, बादल, समुद्र, सरोवर और नदियोंको भी मूर्त्तिमान् देखो ॥ ५३ ॥

मूर्तिमन्तः पितृगणांश्चतुरः पश्य सत्तम ।
त्रींश्चैवेमान्गुणान्पश्य मत्स्थान्मूर्तिविवर्जितान् ॥ ५४ ॥

चारों प्रकारके पितृगण भी मूर्तिमन्त देखो । हे मुनिसत्तम ! देखो, सत्व, रज और तम, ये मूर्त्तिरहित तीनों गुण मुझमें निवास करते हैं ॥ ५४ ॥

देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते ।
देवानां च पितॄणां च पिता ह्येकोऽहमादितः ॥ ५५ ॥

हे मुनि ! देवकार्यसे पितृकार्य श्रेष्ठ हैं; एकमात्र मैं ही सब देवताओं और पितरोंका भी पिता हूं ॥ ५५ ॥

अहं हयशिरो भूत्वा समुद्रे पश्चिमोत्तरे ।
पिबामि सुहुतं हव्यं कव्यं च श्रद्धयान्वितम् ॥ ५६ ॥

मैं पश्चिमोत्तर समुद्रमें हयशिरा होके श्रद्धान्वित होकर उत्तम रीतिसे होम किये हुए हव्य और कव्यका भी पान करता हूं ॥ ५६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मया सृष्टः पुरा ब्रह्मा मद्यज्ञमयजत्स्वयम् ।
ततस्तस्मै वरान्प्रीतो ददावहमनुत्तमान् ॥ ५७ ॥

मैंने पहले ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्होंने मेरे जरिये उत्पन्न होके स्वयं ही मुझ यज्ञपुरुषका यजन किया था; अनन्तर मैंने प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम वर प्रदान किये थे ॥ ५७ ॥

मत्पुत्रत्वं च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव च ।
अहंकारकृतं चैव नाम पर्यायवाचकम् ॥ ५८ ॥

प्रत्येक कल्पके आरम्भमें तुम हमारे पुत्र और सब लोगोंके अध्यक्ष होंगे; और तुम्हारा पर्यायवाची नाम अहङ्कार कर्ता होगा ॥ ५८ ॥

त्वया कृतां च मर्यादां नातिक्रान्स्यति कश्चन ।
त्वं चैव वरदो ब्रह्मन्वरेप्सूनां भविष्यसि ॥ ५९ ॥

कोई पुरुष तुम्हारी निर्दिष्ट की हुई मर्यादाको अतिक्रम न कर सकेगा । हे ब्रह्मन् ! तुम वर मांगनेवाले लोगोंको वर देनेमें समर्थ होओगे ॥ ५९ ॥

सुरासुरगणानां च ऋषीणां च तपोधन ।
पितॄणां च महाभाग सततं सांशितव्रत ।
विविधानां च भूतानां त्वमुपास्यो भविष्यसि ॥ ६० ॥

हे कठोर व्रती महाभाग तपोधन ! तुम देवता, असुर, ऋषि, पितर और विविध प्राणियोंके सदा उपास्य होगे ॥ ६० ॥

प्रादुर्भावगतश्चाहं सूरकार्येषु नित्यदा ।
अनुशास्यस्त्वया ब्रह्मन्नियोज्यश्च सुतो यथा ॥ ६१ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं देवकार्य साधन करनेके लिये उत्पन्न होके सदा पुत्रकी भांति तुम्हारा अनुशास्य और नियोज्य हूंगा ॥ ६१ ॥

एतांश्चान्यांश्च रुचिरान्ब्रह्मणेऽमिततेजसे ।
अहं दत्त्वा वरान्प्रीतो निवृत्तिपरमोऽभवम् ॥ ६२ ॥

अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको यह सब तथा और भी अनेक प्रकारके मनोहर वर देकर मैं प्रसन्न होकर निवृत्त हुआ था ॥ ६२ ॥

निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्तिः परमा स्मृता ।
तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत्सर्वाङ्गनिर्वृतः ॥ ६३ ॥

सब धर्मकी परम निवृत्ति ही निर्वाणरूपसे कही गई है । इसलिये निवृत्तिनिष्ठ और सर्वांग-निर्वृत्त होकर धर्माचरण करे ॥ ६३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

विद्यासहायवन्तं मामादित्यस्थं सनातनम् ।
कपिलं प्राहुराचार्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः ॥ ६४ ॥

सांख्य शास्त्रके सिद्धान्तका निश्चय करनेवाले आचार्य मुझे ही विद्याकी सहायतासे युक्त, सूर्य-मण्डलमें स्थित और सनातन कपिल कहते हैं ॥ ६४ ॥

हिरण्यगर्भो भगवानेष छन्दसि सुष्टुतः ।
सोऽहं योगगतिर्ब्रह्मन्योगशास्त्रेषु शब्दितः ॥ ६५ ॥

यह भगवान् हिरण्यगर्भ जो मेरे स्वरूप हैं– वेदमें विशेष रूपसे स्तुत हुए हैं । हे ब्रह्मन् ! योगी लोग जिसमें अनुरक्त होते हैं, वह योगशास्त्रमें वर्णित पुरुष मैं ही हूं ॥ ६५ ॥

एषोऽहं व्यक्तिमागम्य तिष्ठामि दिवि शाश्वतः ।
ततो युगसहस्रान्ते संहरिष्ये जगत्पुनः ।
कृत्वात्मस्थानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ६६ ॥

मैं शाश्वत होके भी व्यक्त भावसे आकाशमें निवास करता हूं । अनन्तर सहस्र युगोंके बाद जगत्का संहार करूंगा । सब चराचर भूतोंको अपनेमें स्थापित करूंगा ॥ ६६ ॥

एकाकी विद्यया सार्धं विहरिष्ये द्विजोत्तम ।
ततो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीह विद्यया ॥ ६७ ॥

हे द्विजोत्तम ! फिर मैं अकेला ही महाविद्याके सङ्ग विहार करूंगा । अन्तमें महाविद्याके जरिये फिर सारे जगत्को उत्पन्न करूंगा ॥ ६७ ॥

अस्मन्मूर्तिश्चतुर्थी या सासृजच्छेषमव्ययम् ।
स हि संकर्षणः प्रोक्तः प्रद्युम्नं सोऽप्यजीजनत् ॥ ६८ ॥

इसमें जो मेरी चौथी मूर्ति है, उसने अविनाशी शेषको उत्पन्न किया है; उस शेषको ही संकर्षण कहते हैं; संकर्षण ही प्रद्युम्नको उत्पन्न करता है ॥ ६८ ॥

प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽहं सर्गो मम पुनः पुनः ।
अनिरुद्धात्तथा ब्रह्मा तत्रादिकमलोद्भवः ॥ ६९ ॥

प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है । इसही प्रकार बार बार मैं सृष्टि करता हूं, अनिरुद्धसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं; जो मेरे नाभिकमलसे प्रकट हुए हैं ॥ ६९ ॥

ब्रह्मणः सर्वभूतानि चराणि स्थावराणि च ।
एतां सृष्टिं विजानीहि कल्पादिषु पुनः पुनः ॥ ७० ॥

ब्रह्मासे सब स्थावरजङ्गम जीव उत्पन्न होते हैं । इस लोकमें कल्पके आदिमें बार बार यह सृष्टि हुआ करती है इस बातको समझ लो ॥ ७० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यथा सूर्यस्य गगनादुदयास्तमयाविह ।
नष्टौ पुनर्बलात्काल आनयत्यमितद्युतिः ।
तथा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ॥ ७१ ॥
सत्त्वैराक्रान्तसर्वाङ्गां नष्टां सागरमेखलाम् ।
आनयिष्यामि स्वं स्थानं वाराहं रूपमास्थितः ॥ ७२ ॥

जैसे आकाशसे सूर्यका उदय होता है और आकाशमें ही वह अस्त होता है, ये उदय-अस्तके क्रम सदा चलते रहते हैं; वैसे ही जगत्‌की उत्पत्ति और लय होते हैं । जैसे सूर्यके अदृश्य होनेपर महाबलवान् काल बलपूर्वक फिर उसे लाके दृष्टिपथमें उपस्थित करता है, वैसे ही मैं सब प्राणियोंके हितके लिये वराह मूर्त्ति धारण करके सागरमेखला, सत्त्वगणसे आक्रान्त नष्टप्राय पृथ्वीको बलपूर्वक निजस्थानपर लाउंगा ॥ ७१-७२ ॥

हिरण्याक्षं हनिष्यामि दैतेयं बलगर्वितम् ।
नारसिंहं वपुः कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुनः ।
सुरकार्ये हनिष्यामि यज्ञघ्नं दितिनन्दनम् ॥ ७३ ॥

और बलसे गर्वित हिरण्याक्ष दैत्यको मारूंगा । इसके अतिरिक्त मैं फिर देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये नरसिंहरूप धारण करके यज्ञनाशक दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको मारूंगा ॥७३॥

विरोचनस्य बलवान्बलिः पुत्रो महासुरः ।
भविष्यति स शक्रं च स्वराज्याच्च्यावयिष्यति ॥ ७४ ॥

विरोचनका पुत्र बलि नामक एक बलवान् महासुर जन्मेगा; वह इन्द्रको उनके राज्यसे निकाल बाहर करेगा ॥ ७४ ॥

त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखे च शचीपतौ ।
अदित्यां द्वादशः पुत्रः संभविष्यामि कश्यपात् ॥ ७५ ॥

उसके जरिये तीनों लोक अपहृत और शचीपति इन्द्रके पराजित होनेपर, मैं अदितिके गर्भमें कश्यपके वीर्यसे द्वादश पुत्ररूपसे उत्पन्न हूंगा ॥ ७५ ॥

ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे ।
देवताः स्थापयिष्यामि स्वेषु स्थानेषु नारद ।
बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम् ॥ ७६ ॥

हे नारद ! अनन्तर मैं अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रको राज्य देकर, देवताओंको निज निज स्थानोंपर स्थापित करूंगा । और मैं बलिको पातालतलमें बसाऊंगा ॥ ७६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः ।
क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धबलवाहनम् ॥ ७७ ॥

मैं त्रेतायुगमें भृगुकुल भूषण परशुरामके रूपमें उत्पन्न हूंगा और उस समय समृद्धिशाली सेना–वाहनयुक्त क्षत्रियोंका नाश करूंगा ॥ ७७ ॥

संधौ तू समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ॥ ७८ ॥

अनन्तर त्रेता और द्वापरके सन्ध्यांश उपस्थित होनेपर मैं जगत्पति दाशरथि रामके रूपमें अवतार लूंगा ॥ ७८ ॥

त्रितोपघाताद्वैरूप्यमेकतोऽथ द्वितस्तथा ।
प्राप्स्यतो वानरत्वं हि प्रजापतिसुतावृषी ॥ ७९ ॥

प्रजापतिके पुत्र एकत और द्वित ऋषि, त्रितमुनिके विषयमें विश्वासघात करनेके कारण कुरूप होकर वानरयोनि लाभ करेंगे ॥ ७९ ॥

तयोर्ये त्वन्वये जाता भविष्यन्ति वनौकसः ।
ते सहाया भविष्यन्ति सुरकार्ये मम द्विज ॥ ८० ॥

हे द्विज ! उनके वंशमें जो वनवासी वानर जन्म लेंगे, वेही मेरे सुरकार्य साधनके विषयमें सहायक होंगे ॥ ८० ॥

ततो रक्षःपतिं घोरं पुलस्त्यकुलपांसनम् ।
हनिष्ये रावणं संख्ये सगणं लोककण्टकम् ॥ ८१ ॥

अनन्तर मैं पुलस्त्यकुलकलंक, महाघोर, रौद्रमूर्त्ति, सब लोकोंके कण्टकरूपी राक्षसपति रावणको उसके अनुयायियोंके सहित युद्धमें मारूंगा ॥ ८१ ॥

द्वापरस्य कलेश्चैव संधौ पर्यवसानिके ।
प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति ॥ ८२ ॥

द्वापर और कलियुगके सन्धिकालमें कंसका वध करनेके निमित्त मथुरामें मेरा अवतार होगा ॥ ८२ ॥

तत्राहं दानवान्हत्वा सुबहून्देवकण्टकान् ।
कुशस्थलीं करिष्यामि निवासं द्वारकां पुरीम् ॥ ८३ ॥

उस समय मैं बहुतेरे देवकण्टक दानवोंका संहार करके कुशस्थलीको द्वारकापुरी नामसे बसाकर उसमें निवास करूंगा ॥ ८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वसानस्तत्र वै पुर्यामदितेर्विप्रियंकरम् ।
हनिष्ये नरकं भौमं मुरं पीठं च दानवम् ॥ ८४ ॥

द्वारकापुरीमें निवास करते हुए अदितिके अप्रिय कार्य करनेवाले नरक, भौम, मुरु और पीठ नामक दानवोंको मारूंगा ॥ ८४ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरं रम्यं नानाधनसमन्वितम् ।
कुशस्थलीं नयिष्यामि हत्वा वै दानवोत्तमान् ॥ ८५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरवासी विविध धनरत्नोंसे युक्त दानवश्रेष्ठ नरकको मारकर, उसका सारा वैभव कुशस्थलीमें लाऊंगा ॥ ८५ ॥

शंकरं च महासेनं बाणप्रियहितैषिणम् ।
पराजेष्याम्यथोद्युक्तौ देवलोकनमस्कृतौ ॥ ८६ ॥

अनन्तर बाणराजाके प्रिय और हितैषी देवता तथा लोकवन्दित महेश्वर और कार्तिकेय मेरे साथ युद्धके लिये उद्यत होनेपर मैं उन्हें पराजित करूंगा ॥ ८६ ॥

ततः सुतं बलेर्जित्वा बाणं बाहुसहस्रिणम् ।
विनाशयिष्यामि ततः सर्वान्सौभनिवासिनः ॥ ८७ ॥

अनन्तर बलिके पुत्र सहस्र भुजावाले बाणासुरको जीतके सौभनिवासी समस्त दानवोंका वध करूंगा ॥ ८७ ॥

यः कालयवनः ख्यातो गर्गतेजोभिसंवृतः ।
भविष्यति वधस्तस्य मत्त एव द्विजोत्तम ॥ ८८ ॥

हे द्विजवर ! गर्गाचार्यके तेजसे उत्पन्न शक्तिमान् कालयवन नामसे प्रसिद्ध जो असुर होगा, मैं उसका भी वध करूंगा ॥ ८८ ॥

जरासंधश्च बलवान्सर्वराजविरोधकः ।
भविष्यत्यसुरः स्फीतो भूमिपालो गिरिव्रजे ।
मम बुद्धिपरिस्पन्दाद्वधस्तस्य भविष्यति ॥ ८९ ॥

सब राजाओंके विरोधी जरासन्ध नामक जो बलवान् असुर गिरिव्रजमें अत्यन्त प्रवृद्ध राजा होगा, वह मेरी ही बुद्धिकौशलसे मृत्युका मुख देखेगा ॥ ८९ ॥

समागतेषु बलिषु पृथिव्यां सर्वराजसु ।
वासविः सुसहायो वै मम ह्येको भविष्यति ॥ ९० ॥

पृथ्वीपर महाबली सब राजाओंके इकट्ठे होनेपर अकेला इन्द्रपुत्र धनञ्जय ही मेरा सहायक होगा ॥ ९० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं लोका वदिष्यन्ति नरनारायणावृषी ।
उद्युक्तौ दहतः क्षत्रं लोककार्यार्थमीश्वरौ ॥ ९१ ॥

उस ही समय सब लोग कहेंगे, कि ईश्वररूप नर-नारायण ऋषि ही लोककार्यके निमित्त उद्योगी होकर क्षत्रियकुलका संहार कर रहे हैं ॥ ९१ ॥

कृत्वा भारावतरणं वसुधाया यथेप्सितम् ।
सर्वेसात्वतमुख्यानां द्वारकायाश्च सत्तम ।
करिष्ये प्रलयं घोरमात्मज्ञातिविनाशनम् ॥ ९२ ॥

हे सत्तम ! पृथ्वीके इच्छावशसे उसके भारको उतारके द्वारकामें स्थित सब यदुवंशी श्रेष्ठोंका नाश करके अपनी जातिका विनाश रूप घोर कर्म करूंगा ॥ ९२ ॥

कर्माण्यपरिमेयानि चतुर्मूर्तिधरो ह्यहम् ।
कृत्वा लोकान्गमिष्यामि स्वानहं ब्रह्मसत्कृतान् ॥ ९३ ॥

मैं चारों मूर्त्तियोंको श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध धारण करके तथा अपरिमेय कार्योंको करके ब्रह्मासे सत्कृत होकर निज लोकोंमें गमन करूंगा ॥ ९३ ॥

हंसो हयशिराश्चैव प्रादुर्भावा द्विजोत्तम ।
यदा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता तदा ।
सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे ॥ ९४ ॥

हे द्विजवर ! हंस तथा हयशिरा ये मेरे अवतार हैं । वेद-श्रुति जिस समय नष्ट हुई है, उस समयमें मैंने उसे फिर प्रकाशमें लाया है; पहले सत्ययुगमें मैंने ही सब वेदोंसहित श्रुतियोंको प्रकट किया था ॥ ९४ ॥

अतिक्रान्ताः पुराणेषु श्रुतास्ते यदि वा क्वचित् ।
अतिक्रान्ताश्च बहवः प्रादुर्भावा ममोत्तमाः ।
लोककार्याणि कृत्वा च पुनः स्वां प्रकृतिं गताः ॥ ९५ ॥

मेरे जो अवतार व्यतीत हो चुके हैं, उन्हें तुमने प्रायः पुराणोंमें सुना होगा; मेरे बहुतेरे उत्तम अवतार हो चुके हैं; वे सब अवतार लोकहित कार्योंको निर्वाह करके फिर निज प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ९५ ॥

न ह्येतद्ब्रह्मणा प्राप्तमीदृशं मम दर्शनम् ।
यत्त्वया प्राप्तमद्येह एकान्तगतबुद्धिना ॥ ९६ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुमने अनन्य भक्ति पूर्वक मोक्षनिष्ठायुक्त बुद्धि अवलम्बन करके इस समय जिस प्रकारसे मेरा दर्शन किया है, ब्रह्मा भी इस प्रकार मेरा दर्शन नहीं कर सके ॥ ९६ ॥

×

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतत्ते सर्वमाख्यातं ब्रह्मन्भक्तिमतो मया ।
पुराणं च भविष्यं च सरहस्यं च सत्तम ॥ ९७ ॥

हे सत्तम ! तुम भक्तिमान् हो, इस ही लिये मैंने तुम्हारे समीप प्राचीन और भविष्यके सारे अवतारोंका रहस्यसहित वर्णन किया है ॥ ९७ ॥

एवं स भगवान्देवो विश्वमूर्तिधरोऽव्ययः ।
एतावदुक्त्वा वचनं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९८ ॥

इस ही प्रकार वह भगवान् विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी देव इतनी कथा सुनाके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान हो गये ॥ ९८ ॥

नारदोऽपि महातेजाः प्राप्यानुग्रहमीप्सितम् ।
नरनारायणौ द्रष्टुं प्राद्रवद्बदराश्रमम् ॥ ९९ ॥

महातेजस्वी नारद भी ईप्सित अनुग्रह लाभ करके नरनारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रममें चले गये ॥ ९९ ॥

इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम् ।
सांख्ययोगकृतं तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम् ॥ १०० ॥
नारायणमुखोद्गीतं नारदोऽश्रावयत्पुनः ।
ब्रह्मणः सदने तात यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ १०१ ॥

हे तात ! महर्षि नारदने जिस प्रकार इसका दर्शन किया और जिस प्रकार इसको सुना था, उस ही भांति ब्रह्माके स्थानमें साक्षात् नारायणके मुखसे वर्णित चारों वेदोंके विज्ञानसे युक्त सांख्य–योगसंयुक्त पञ्चरात्र नामक यह महोपनिषत् सुनाया था ॥ १००–१०१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

एतदाश्चर्यभूतं हि माहात्म्यं तस्य धीमतः ।
किं ब्रह्मा न विजानीते यतः शुश्राव नारदात् ॥ १०२ ॥

युधिष्ठिर बोले– इस आश्चर्यभूत बुद्धिमान भगवान् नारायणका माहात्म्य क्या ब्रह्मा नहीं जानते थे, जो उन्होंने नारदके मुखसे सुना ? ॥ १०२ ॥

पितामहो हि भगवांस्तस्मादेवादनन्तरः ।
कथं स न विजानीयात्प्रभावममितौजसः ॥ १०३ ॥

भगवान् पितामह ब्रह्मा उस ही देवसे उत्पन्न हुए हैं, इससे वह अत्यन्त तेजस्वी नारायणके प्रभावको किस लिये नहीं जानते थे ? ॥ १०३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भीष्म उवाच—

महाकल्पसहस्राणि महाकल्पशतानि च ।
समतीतानि राजेन्द्र सर्गाश्च प्रलयाश्च ह ॥ १०४ ॥

भीष्म बोले— हे राजेन्द ! सैकड़ों और हजारों महाकल्पोंकी सृष्टि और प्रलय व्यतीत हो चुके हैं ॥ १०४ ॥

सर्गस्यादौ स्मृतो ब्रह्मा प्रजासर्गकरः प्रभुः ।
जानाति देवप्रवरं भूयश्चातोऽधिकं नृप ।
परमात्मानमीशानमात्मनः प्रभवं तथा ॥ १०५ ॥

हे राजन् ! सृष्टिके आरम्भमें प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रभु प्रजापति उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह देवप्रवर आत्मप्रभव सर्वनियन्ता परमात्माको नारदसे भी अधिक जानते थे ॥ १०५ ॥

ये त्वन्ये ब्रह्मसदने सिद्धसंघाः समागताः ।
तेभ्यस्तच्छ्रावयामास पुराणं वेदसंमितम् ॥ १०६ ॥

ब्रह्माके स्थानमें जो सब दुसरे सिद्ध लोगोंके समुदाय इकट्ठे हुए थे, नारदने उन्हींको वह वेद—सदृश पुरातन पाञ्चरात्र सुनाया था ॥ १०६ ॥

तेषां सकाशात्सूर्यश्च श्रुत्वा वै भावितात्मनाम् ।
आत्मानुगामिनां ब्रह्म श्रावयामास भारत ॥ १०७ ॥
षट्षष्टिर्हि सहस्राणि ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
सूर्यस्य तपतो लोकान्निर्मिता ये पुरःसराः ।
तेषामकथयत्सूर्यः सर्वेषां भावितात्मनाम् ॥ १०८ ॥

हे भारत ! अनन्तर सूर्यदेवने उन शुद्धचित्तवाले सिद्धोंके निकट उसे सुनके, निज अनुगामी पवित्र बुद्धिवाले साठ हजार ऋषियोंको इस ब्रह्मज्ञानको सुनाया था। लोकमें तपते हुए सूर्यके आगे चलनेवाले जो ऋषि उत्पन्न हुए थे, उन्होंने उन भावितात्माओंको भी यह महिमा सुनायी थी ॥ १०७–१०८ ॥

सूर्यानुगामिभिस्तात ऋषिभिस्तैर्महात्मभिः ।
मेरौ समागता देवाः श्राविताश्चेदमुत्तमम् ॥ १०९ ॥

हे तात ! सूर्यके अनुगामी महात्मा ऋषियोंने सुमेरु पर्वतपर इकट्ठे हुए सब देवताओंको यह उत्तम माहात्म्य सुनाया था ॥ १०९ ॥

देवानां तु सकाशाद्वै ततः श्रुत्वासितो द्विजः ।
श्रावयामास राजेन्द्र पितॄणां मुनिसत्तमः ॥ ११० ॥

हे राजेन्द्र ! अनन्तर देवताओंके निकटसे द्विजवर मुनिसत्तम असितने उस माहात्म्यको सुनके पितरोंको सुनाया था ॥ ११० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मम चापि पिता तात कथयामास शंतनुः ।
ततो मयैतच्छ्रुत्वा च कीर्तितं तव भारत ॥ १११ ॥

हे तात ! मेरे पिता शन्तनुने यह मुझसे कहा । हे भारत ! मैंने उनसे सुनके इस समय तुम्हारे समीप इसका वर्णन किया है । ॥ १११ ॥

सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं यैरिदं श्रुतम् ।
सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ति पुनः पुनः ॥ ११२ ॥

देवताओं अथवा मुनियों अथवा जिन लोगोंने इस पुरातन ज्ञानको सुना है, वे लोग सब प्रकारसे बार बार परमात्माकी पूजा करते हैं ॥ ११२ ॥

इदमाख्यानमार्षेयं पारंपर्यागतं नृप
नावासुदेवभक्ताय त्वया देयं कथंचन ॥ ११३ ॥

हे राजन् ! इस परम्परासे प्रचलित ऋषिप्रणीत आख्यानको जो पुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है, तुम उससे किसी प्रकार न कहना ॥ ११३ ॥

मत्तोऽन्यानि च ते राजन्नुपाख्यानशतानि वै ।
यानि श्रुतानि धर्म्याणि तेषां सारोऽयमुद्धृतः ॥ ११४ ॥

हे राजन् ! तुमने मेरे समीपमें जो सैकडों उपाख्यान सुने हैं, उन सबके बीच यह साररूपसे निकाला गया है ॥ ११४ ॥

सुरासुरैर्यथा राजन्निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ।
एवमेतत्पुरा विप्रैः कथामृतमिहोद्धृतम् ॥ ११५ ॥

हे राजन् ! सुर और असुरोंने जिस प्रकार समुद्रको मथके उससे अमृत निकाला था, वैसे ही पहले समयमें ब्राह्मणोंने सब शास्त्रोंको मथकर इस कथारूपी अमृतको प्रकाशित किया है ॥ ११५ ॥

यश्चेदं पठते नित्यं यश्चेदं शृणुयान्नरः ।
एकान्तभावोपगत एकान्ते सुसमाहितः ॥ ११६ ॥

प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं भूत्वा चन्द्रप्रभो नरः ।
स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥ ११७ ॥

जो मनुष्य नित्य इसका पाठ करेगा और सदा सुनेगा, वह अत्यन्त एकाग्रचित्त और अनन्य भावमें आरूढ होके श्वेत नामक महाद्वीपमें पहुंचकर, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मनुष्यशरीर धारण करके सहस्रार्चियुक्त परम देव नारायणमें प्रविष्ट होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११६-११७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मुच्येदार्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् ।
जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तो भक्तगतिं व्रजेत् ॥ ११८ ॥

आर्त्त पुरुष आदिसे अन्ततक इस कथाको सुननेसे रोगसे छूट जाता है, जिज्ञासु पुरुष मनोवांछित फल पाता और भक्त निज गन्तव्य गतिको पाता है ॥ ११८ ॥

त्वयापि सततं राजन्नभ्यर्च्यः पुरुषोत्तमः ।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥ ११९ ॥

हे राजन् ! तुम भी सदा भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करना, वह समस्त जगत्का पिता, माता और गुरु है ॥ ११९ ॥

ब्रह्मण्यदेवो भगवान्प्रीयतां ते सनातनः ।
युधिष्ठिर महाबाहो महाबाहुर्जनार्दनः ॥ १२० ॥

हे महाबाहु युधिष्ठिर ! ब्रह्मण्यदेव महाबुद्धिमान् सनातन भगवान् जनार्दन तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न होवें ॥ १२० ॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वैतदाख्यानवरं धर्मराड्जनमेजय ।
भ्रातरश्चास्य ते सर्वे नारायणपराभवन् ॥ १२१ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भ्रातृगण इस उत्तम आख्यानको सुनके सब कोई भगवान् नारायणकी भक्तिमें रत हो गये ॥ १२१ ॥

जितं भगवता तेन पुरुषेणेति भारत ।
नित्यं जप्यपरा भूत्वा सरस्वतीमुदीरयन् ॥ १२२ ॥

हे भारत ! " उस भगवान् पुरुषोत्तमकी जय हो " अनन्तर सब कोई जपपरायण होके सदा इस ही वचनको उच्चारण करने लगे ॥ १२२ ॥

यो ह्यस्माकं गुरुः श्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
स जगौ परमं जप्यं नारायणमुदीरयन् ॥ १२३ ॥

हम लोगोंके श्रेष्ठ गुरु महामुनि श्रीकृष्णद्वैपायनने परम उत्तम नारायणका नाम उच्चारण करते हुए परम जप्य मन्त्रका जप किया ॥ १२३ ॥

गत्वान्तरिक्षात्सततं क्षीरोदममृताशयम् ।
पूजयित्वा च देवेशं पुनरायात्स्वमाश्रमम् ॥ १२४ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२६ ॥ १२००४ ॥

वह आकाशसे अमृताशय क्षीरसागरमें जाके देवेश्वरकी पूजा करके फिर अपने आश्रम पर चले आते थे ॥ १२४ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२६ ॥ १२००४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२७ :

जनमेजय उवाच—

कथं स भगवान्देवो यज्ञेष्वग्रहरः प्रभुः ।
यज्ञधारी च सततं वेदवेदाङ्गवित्तथा ॥ १ ॥

जनमेजय बोले— वह सर्व—शक्तिमान् भगवान् देव स्वयं यज्ञोंमें प्रथम भाग ग्रहण करनेवाले होकर किस प्रकार यज्ञ करते हैं; वह ही वेद—वेदाङ्गवेत्ता परमेश्वर नित्य यज्ञधारी हो किस प्रकार उसके भोक्ता हो सकते हैं ? ॥ १ ॥

निवृत्तं चास्थितो धर्मं क्षेमी भागवतप्रियः ।
प्रवृत्तिधर्मान्विदधे स एव भगवान्प्रभुः ॥ २ ॥

उस क्षमावान् निखिल सामर्थ्यवान् भगवान्ने निवृत्ति धर्म अवलम्बन किया है; इसके अतिरिक्त वह प्रवृत्ति धर्मका विधान भी करता है; ॥ २ ॥

कथं प्रवृत्तिधर्मेषु भागार्हा देवताः कृताः ।
कथं निवृत्तिधर्माश्च कृता व्यावृत्तबुद्धयः ॥ ३ ॥

किस प्रकारसे देवताओंको प्रवृत्तिधर्मभागार्ह किया है ? ऋषिमुनियोंको विषयोंसे विरक्त बुद्धि और निवृत्तधर्म परायण किसलिये किया ॥ ३ ॥

एतं नः संशयं विप्र छिन्धि गुह्यं सनातनम् ।
त्वया नारायणकथा श्रुता वै धर्मसंहिता ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म परस्पर विरुद्ध होनेपर भी दोनों किस प्रकार उसमें स्थित हुए ? तुमने सब भगवान् नारायणकथा और धर्मसंहिता सुनी है, इसलिये हमारे इस गूढ सन्देहको दूर करो ॥ ४ ॥

इमे सब्रह्मका लोकाः ससुरासुरमानवाः ।
क्रियास्वभ्युदयोक्तासु सक्ता दृश्यन्ति सर्वशः ।
मोक्षश्चोक्तस्त्वया ब्रह्मन्निर्वाणं परमं सुखम् ॥ ५ ॥

हे ब्रह्मन् ! ये ब्रह्मासे युक्त सुर और असुर तथा मनुष्योंके सहित सब लोक लौकिक अभ्युदय विधिमें संसक्त हुए देखे जाते हैं । आपने कहा कि मोक्ष ही परम निर्वाण शांति और परम सुख है ॥ ५ ॥

ये च मुक्ता भवन्तीह पुण्यपापविवर्जिताः ।
ते सहस्रार्चिषं देवं प्रविशन्तीति शुश्रुमः ॥ ६ ॥

इस लोकमें पुण्य—पापसे रहित होकर जो लोग मुक्ति लाभ करते हैं, वे सहस्रों किरणोंसे प्रकाशीत होनेवाले भगवान् नारायण देवमें प्रवेश किया करते हैं, हमने ऐसा ही सुना है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अहो हि दुरनुष्ठेयो मोक्षधर्मः सनातनः।
यं हित्वा देवताः सर्वा हव्यकव्यभुजोऽभवन् ॥ ७ ॥

यह पञ्चविध मोक्षप्रतिपादक सनातन धर्म अत्यन्त कष्टसे अनुष्ठान किया जाता है, देवता लोग जिसे परित्याग करके हव्य-कव्यभोजी हुए हैं, उसका अनुष्ठान करना कितना कठिन है, वह इसीसे जाना जाता है ॥ ७ ॥

किं नु ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्च बलभित्प्रभुः।
सूर्यस्ताराधिपो वायुरग्निर्वरुण एव च।
आकाशं जगती चैव ये च शेषा दिवौकसः ॥ ८ ॥

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, रुद्र, बलासुरका वध करनेवाला समर्थ देवराज इन्द्र, सूर्य, तारापति चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, स्वर्ग और भूर्लोक तथा इनके अतिरिक्त जो सब देवतावृन्द हैं ॥ ८ ॥

प्रलयं न विजानन्ति आत्मनः परिनिर्मितम्।
ततस्तेनास्थिता मार्गं ध्रुवमक्षयमव्ययम् ॥ ९ ॥

वे सब परमात्मासे परिनिर्मित मोक्षमार्गको नहीं जानते हैं इस ही कारण वे लोग शाश्वत, अव्यय और अक्षर निवृत्तिमार्गका आश्रय नहीं करते हैं ॥ ९ ॥

स्मृत्वा कालपरीमाणं प्रवृत्तिं ये समास्थिताः।
दोषः कालपरीमाणे महानेष क्रियावताम् ॥ १० ॥

जो लोग कालपरिमाणसे प्राप्त होनेवाले फलोंको लक्ष्य करके प्रवृत्ति मार्गका अवलम्बन करते हैं, उन क्रियावान् मनुष्योंमें कालपरिमाणसे महान् दोष दीख पडता है कि वे कालकी सीमामें बद्ध होकर कर्मफल भोगते हैं ॥ १० ॥

एतन्मे संशयं विप्र हृदि शल्पमिवार्पितम्।
छिन्धीतिहासकथनात्परं कौतूहलं हि मे ॥ ११ ॥

हे विप्र ! मेरे हृदयमें यह संशय कांटेकी भांति उपस्थित है; तुम इतिहास कहके उसे छेदन करो; इस विषयको जाननेके लिये मुझे अत्यन्त उत्सुकता हो रही है ॥ ११ ॥

कथं भागहराः प्रोक्ता देवताः क्रतुषु द्विज।
किमर्थं चाध्वरे ब्रह्मन्निज्यन्ते त्रिदिवौकसः ॥ १२ ॥

हे द्विजवर ! यज्ञके समय देवता लोग किस लिये भागहर रूपसे वर्णित हुए हैं ? हे ब्रह्मन ! किस लिये देवता लोग यज्ञमें पूजित होते हैं ? ॥ १२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ये च भागं प्रगृह्णन्ति यज्ञेषु द्विजसत्तम ।
ते यजन्तो महायज्ञैः कस्य भागं ददन्ति वै ॥ १३ ॥

हे द्विजसत्तम ! यज्ञस्थलमें जो लोग अपना हिस्सा लेते हैं, वे देवता महायज्ञके सहारे याग करनेमें प्रवृत्त होनेपर किसे यज्ञका भाग प्रदान किया करते हैं ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

अहो गूढतमः प्रश्नस्त्वया पृष्टो जनेश्वर ।
नातप्ततपसा ह्येष नावेदविदुषा तथा ।
नापुराणविदा चापि शक्यो व्याहर्तुमञ्जसा ॥ १४ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे प्रजानाथ ! तुमने अत्यन्त गूढ प्रश्न किया है; जिसने तपस्या नहीं की है, जो वेदों तथा पुराणोंका विद्वान् नहीं है, वह सहसा ऐसा प्रश्न करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १४ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि यन्मे पृष्टः पुरा गुरुः ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो वेदव्यासो महानृषिः ॥ १५ ॥

पहले मैंने भी इस ही विषयको अपने गुरु महर्षि वेदव्याससे पूछा था, उन्होंने हम लोगोंसे जो कहा था; वह तुम्हारे समीप कहूंगा ॥ १५ ॥

सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च सुदृढव्रतः ।
अहं चतुर्थः शिष्यो वै पञ्चमश्च शुकः स्मृतः ॥ १६ ॥

सिद्धचारणोंसे सेवित रमणीय सुमेरु पर्वतके ऊपरमें महाभाग वेदव्यासके सुमन्तु, जैमिनि, दृढव्रत पैल, मैं चौथा शिष्य और शुकदेव, पांचवें शिष्य माने गये हैं ॥ १६ ॥

एतान्समागतान्सर्वान्पञ्च शिष्यान्दमान्वितान् ।
शौचाचारसमायुक्ताञ्जितक्रोधाञ्जितेन्द्रियान् ॥ १७ ॥

ये सब पांचों शिष्य दमयुक्त, मनो निग्रह सम्पन्न, पवित्र आचारमें रत, क्रोध जीतनेवाले और जितेन्द्रिय हैं ॥ १७ ॥

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
मेरौ गिरिवरे रम्ये सिद्धचारणसेविते ॥ १८ ॥

अपने पास आये हुए इन सभी शिष्योंको व्यासने चारों वेद तथा पांचवां वेद महाभारत सिद्ध और चारणोंसे सेवित रमणीय सुमेरु पर्वतके ऊपरमें पढाया था ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेषामभ्यस्यतां वेदान्कदाचित्संशयोऽभवत् ।
एष वै यस्त्वया पृष्टस्तेन तेषां प्रकीर्तितः ।
ततः श्रुतो मया चापि तवाख्येयोऽद्य भारत ॥ १९ ॥

वेदाभ्यास करते रहने पर हम सब शिष्योंके मनमें कदाचित् यही सन्देह उत्पन्न हुआ था, जो तुमने पूछा है; हे भारत ! गुरु व्यासने हम शिष्योंको जो उत्तर दिया, गुरुके मुखसे मैंने उसे सुना था; आज तुम्हारे समीप वह सब वर्णन करूंगा ॥ १९ ॥

शिष्याणां वचनं श्रुत्वा सर्वाज्ञानतमोनुदः ।
पराशरसुतः श्रीमान्व्यासो वाक्यमुवाच ह ॥ २० ॥

निखिल अज्ञानरूपी अन्धकारके हरनेवाले पराशरके पुत्र श्रीमान् व्यासदेव शिष्योंके संशय-युक्त वचनको सुनके बोले ॥ २० ॥

मया हि सुमहत्तप्तं तपः परमदारुणम् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च जानीयामिति सत्तमाः ॥ २१ ॥

हे श्रेष्ठ शिष्यवृन्द ! मैंने समस्त भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये परम दारुण अत्यन्त महान् तपस्या की थी ॥ २१ ॥

तस्य मे तप्ततपसो निगृहीतेन्द्रियस्य च ।
नारायणप्रसादेन क्षीरोदस्यानुकूलतः ॥ २२ ॥

मैंने तपस्या पूर्ण करके इन्द्रियनिग्रह किया है, इसीसे भगवान् नारायणकी कृपासे क्षीरसागरके तटके समीप ॥ २२ ॥

त्रैकालिकमिदं ज्ञानं प्रादुर्भूतं यथेप्सितम् ।
तच्छृणुध्वं यथाज्ञानं वक्ष्ये संशयमुत्तमम् ।
यथा वृत्तं हि कल्पादौ दृष्टं मे ज्ञानचक्षुषा ॥ २३ ॥

मेरी इच्छाके अनुसार यह त्रैकालिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है; इसलिये तुम लोगोंके संशयके निवारणके लिये ज्ञानपूर्वक उत्तम रीतिसे कहता हूं, तुम सब कोई सुनो । सृष्टिके आरम्भमें जो घटना हुई थी, मैंने उसे ज्ञाननेत्रसे देखा है॥ २३ ॥

परमात्मेति यं प्राहुः सांख्ययोगविदो जनाः ।
महापुरुषसंज्ञां स लभते स्वेन कर्मणा ॥ २४ ॥

सांख्य योगके विद्वान् पुरुष जिसे परमात्मा कहते हैं, वह निज कर्मके सहारे महापुरुष कहके प्रसिद्ध होता है ॥ २४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मात्प्रसूतमव्यक्तं प्रधानं तद्विदुर्बुधाः।
अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नं लोकसृष्ट्यर्थमीश्वरात् ॥ २५ ॥

उसहीसे अव्यक्त उत्पन्न होता है, पण्डित लोग इस ही अव्यक्तको प्रधानके नामसे जानते हैं अव्यक्त ईश्वरसे ही लोकसृष्टिके लिये व्यक्त उत्पन्न हुआ था ॥ २५ ॥

अनिरुद्धो हि लोकेषु महानात्मेति कथ्यते।
योऽसौ व्यक्तत्वमापन्नो निर्ममे च पितामहम्।
सोऽहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोमयो हि सः ॥ २६ ॥

उसेही लोकोंमें अनिरुद्ध और महान् आत्मा कहा करते हैं व्यक्त भावको प्राप्त होके वही अनिरुद्ध पितामह ब्रह्माको उत्पन्न करता है; उस सर्वतेजोमयको ही अहंकार कहा जाता है ॥ २६ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
अहंकारप्रसूतानि महाभूतानि भारत ॥ २७ ॥

हे भारत ! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये महाभूत अहंकारसे उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

महाभूतानि सृष्ट्वाथ तद्गुणान्निर्ममे पुनः।
भूतेभ्यश्चैव निष्पन्ना मूर्तिमन्तोऽष्ट तान्शृणु ॥ २८ ॥

वह महाभूतोंको उत्पन्न करके फिर उनके शब्द–स्पर्श आदि गुणोंको प्रकट करता है। समस्त भूतोंसे जो मूर्त्तिमान् आठ रूप प्रकट होते हैं, उनके नाम सुनो ॥ २८ ॥

मरीचिरङ्गिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महात्मा वै मनुः स्वायंभुवस्तथा।
ज्ञेयाः प्रकृतयोऽष्टौ ता यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ २९ ॥

मरीची, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, महात्मा वसिष्ठ और स्वायम्भुव मनु; इन आठोंको प्रकृति जानना चाहिये, क्योंकि अष्ट–प्रकृतिसे ही सब लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ २९ ॥

वेदान्वेदाङ्गसंयुक्तान्यज्ञान्यज्ञाङ्गसंयुतान्।
निर्ममे लोकसिद्ध्यर्थं ब्रह्मा लोकपितामहः।
अष्टाभ्यः प्रकृतिभ्यश्च जातं विश्वमिदं जगत् ॥ ३० ॥

जगत्पितामह ब्रह्माने सब लोकोंकी सिद्धिके लिये जीवन–निर्वाहके लिये वेद–वेदाङ्गसंयुक्त और यज्ञोंका यज्ञाङ्गसम्पन्न किया है। अष्ट–प्रकृतिसे ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है ॥ ३० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रुद्रो रोषात्मको जातो दशान्यान्सोऽसृजत्स्वयम् ।
एकादशैते रुद्रास्तु विकाराः पुरुषाः स्मृताः ॥ ३१ ॥

ब्रह्माके क्रोधसे रुद्रने अवतार लेके, स्वयं दस अन्य रुद्रोंको उत्पन्न किया है । ये सब ग्यारह रुद्र विकार पुरुषरूपसे वर्णित होते हैं ॥ ३१ ॥

ते रुद्राः प्रकृतिश्चैव सर्वे चैव सुरर्षयः ।
उत्पन्ना लोकसिद्ध्यर्थं ब्रह्माणं समुपस्थिताः ॥ ३२ ॥

वे सब रुद्रगण, प्रकृति और देवर्षि लोग जो सब लोकोंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्पन्न हुए थे ब्रह्माके समीप गये ॥ ३२ ॥

वयं हि सृष्टा भगवंस्त्वया वै प्रभविष्णुना ।
येन यस्मिन्नधीकारे वर्तितव्यं पितामह ॥ ३३ ॥

वहां जाके बोले– हे पितामह ! प्रभावशाली आपने हम लोगोंको उत्पन्न किया है, इस समय हम लोगोंमेंसे जिसे जिस अधिकारमें स्थित रहना होगा, उस विषयमें उपदेश दीजिये ॥३३॥

योऽसौ त्वया विनिर्दिष्टो अधिकारोऽर्थचिन्तकः ।
परिपाल्यः कथं तेन सोऽधिकारोऽधिकारिणा ॥ ३४ ॥

आपने जो अर्थचिन्ताविषयक अधिकार निश्चय किया है, वह कर्त्ता उसे किस प्रकार पतिपालन करेंगे ? ॥ ३४ ॥

प्रदिशस्व बलं तस्य योऽधिकारार्थचिन्तकः ।
एवमुक्तो महादेवो देवांस्तानिदमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अधिकारके विषयमें कौन विचार करेगा और उसका कैसा बल होना चाहिये, आप उसे वर्णन करिये । महादेव प्रजापति ऐसा वचन सुनके उन देवताओंसे वक्ष्यमाण रीतिसे वचन कहने लगे ॥ ३५ ॥

साध्वहं ज्ञापितो देवा युष्माभिर्भद्रमस्तु वः ।
ममाप्येषा समुत्पन्ना चिन्ता या भवतां मता ॥ ३६ ॥

हे देवतावृन्द ! तुम लोगोंने मेरे समीप उत्तम विज्ञप्ति की है, तुम्हारा मङ्गल हो; तुम लोगोंने जैसा सोचा है, मुझे भी वैसी ही चिन्ता उत्पन्न हुई है ॥ ३६ ॥

लोकतन्त्रस्य कृत्स्नस्य कथं कार्यः परिग्रहः ।
कथं बलक्षयो न स्याद्युष्माकं ह्यात्मनश्च मे ॥ ३७ ॥

सब लोकोंके व्यवहारको किस प्रकार धारण करना चाहिये; तुम्हारा और मेरा किस प्रकारसे बल–शक्ति नष्ट न हो ॥ ३७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इतः सर्वेऽपि गच्छामः शरणं लोकसाक्षिणम् ।
महापुरुषमव्यक्तं स नो वक्ष्यति यद्धितम् ॥ ३८ ॥

इसे जाननेके लिये चलो; हम सब कोई यहांसे गमन करके उस लोकसाक्षी अव्यक्त महापुरुष नारायणदेवके शरणागत होवें, वह हमारे लिये जो हितकर होगा, वही उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥

ततस्ते ब्रह्मणा सार्धमृषयो विबुधास्तथा ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जग्मुर्लोकहितार्थिनः ॥ ३९ ॥

अनन्तर वे लोकहितैषी ऋषिवृन्द और देवता लोग ब्रह्माके सहित क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये ॥ ३९ ॥

ते तपः समुपातिष्ठन्ब्रह्मोक्तं वेदकल्पितम् ।
स महानियमो नाम तपश्चर्या सुदारुणा ॥ ४० ॥

वहां वे लोग ब्रह्मोक्त वेदकल्पित तपस्याका अनुष्ठान करने लगे । वह दारुण तपस्याचरण महानियम नामसे विख्यात हुआ ॥ ४० ॥

ऊर्ध्वं दृष्टिर्बाहवश्च एकाग्रं च मनोऽभवत् ।
एकपादस्थिताः सम्यक्काष्ठभूताः समाहिताः ॥ ४१ ॥

वे लोग ऊर्ध्वदृष्टि, ऊर्ध्वबाहु और एकाग्रचित्त हुए सभी एक चरणसे निवास करते हुए काष्ठकी भांति स्थित रहे ॥ ४१ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं ते तपस्तप्त्वा तदुत्तमम् ।
शुश्रुवुर्मधुरां वाणीं वेदवेदाङ्गभूषिताम् ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार उन लोगोंने देवपरिमाणसे सहस्र वर्षोंतक अत्यन्त उत्तम तपस्या करके वेद और वेदाङ्गोंसे भूषित मधुर वाणी सुनी ॥ ४२ ॥

भो भोः सब्रह्मका देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
स्वागतेनार्च्य वः सर्वाञ्श्रावये वाक्यमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

हे ब्रह्मा आदि देववृन्द तथा ऋषिओं ! हे तपस्वीगण ! तुम्हारा स्वागत पूछनेके अनन्तर सत्कार करके तुम्हें उत्तम वचन सुनाता हूं ॥ ४३ ॥

विज्ञातं वो मया कार्यं तच्च लोकहितं महत् ।
प्रवृत्तियुक्तं कर्तव्यं युष्मत्प्राणोपबृंहणम् ॥ ४४ ॥

तुम्हारा कार्य मुझे मालूम हुआ है । वह कार्य अत्यन्त बृहत् और लोक-हितकर है, तुम लोगोंको प्राणवायुको परिपुष्ट करनेवाली प्रवृत्तियुक्त उक्त कार्य करना योग्य है ॥ ४४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुतप्तं वस्तपो देवा ममाराधनकाम्यया ।
भोक्ष्यथास्य महासत्त्वास्तपसः फलमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

हे देवगण ! कामनाके निमित्त मेरी आराधनासे तुम लोगोंने उत्तम तपस्या की है । हे महा-सत्त्वगण ! तुम लोग इस तपस्याका महत् फल भोग करोगे ॥ ४५ ॥

एष ब्रह्मा लोकगुरुः सर्वलोकपितामहः ।
यूयं च विबुधश्रेष्ठा मां यजध्वं समाहिताः ॥ ४६ ॥

लोक गुरु सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा और तुम सब देवतालोग स्थिर होकर मेरे उद्देश्यसे यज्ञोंसे मेरा यजन करो ॥ ४६ ॥

सर्वे भागान्कल्पयध्वं यज्ञेषु मम नित्यशः ।
तथा श्रेयो विधास्यामि यथाधीकारमीश्वराः ॥ ४७ ॥

और तुम सब कोई यज्ञोंमें नित्य हमारे लिये भागकी कल्पना करो; कि कौन किस अधिकार का स्वामी होगा, फिर उसमें जिस प्रकार तुम लोगोंका कल्याण होगा, उसे मैं वर्णन करूंगा ॥ ४७ ॥

श्रुत्वैतद्देवदेवस्य वाक्यं हृष्टतनूरुहाः ।
ततस्ते विबुधाः सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः ॥ ४८ ॥

देवाधि देव भगवान्का यह वचन सुनके सब पुलकित हुए और अनन्तर उन सब ब्रह्मा आदि देवता और महर्षि लोगोंने ॥ ४८ ॥

वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं क्रतुमाहरन् ।
तस्मिन्सत्रे तदा ब्रह्मा स्वयं भागमकल्पयत् ।
देवा देवर्षयश्चैव सर्वे भागानकल्पयन् ॥ ४९ ॥

वेदमें कही हुई विधिके अनुसार वैष्णव यज्ञका आरम्भ किया । उस यज्ञमें ब्रह्माने स्वयं भगवान्के लिये नित्य भागकी कल्पना की और सब देवता तथा देवर्षिवृन्द भी अपना अपना भाग स्थिर करने लगे ॥ ४९ ॥

ते कार्तयुगधर्माणो भागाः परमसत्कृताः ।
प्रापुरादित्यवर्णं तं पुरुषं तमसः परम् ।
बृहन्तं सर्वगं देवमीशानं वरदं प्रभुम् ॥ ५० ॥

उस सत्ययुगमें धर्मयुक्त परम सत्कृत सब भाग आदित्य वर्ण, तमोगुणसे रहित, सर्वव्यापी, सर्वगामी, वरदाता पुरुष प्रभु ईशान देवके निकट उपस्थित हुए ॥ ५० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततोऽथ वरदो देवस्तान्सर्वानमरान्स्थितान् ।
अशरीरो बभाषेदं वाक्यं खस्थो महेश्वरः ॥ ५१ ॥

अनन्तर आकाशमें शरीररहित स्थित वरदाता देव महेश्वरने वहां खडे हुए उन सब देवताओंसे यह वचन कहा ॥ ५१ ॥

येन यः कल्पितो भागः स तथा समुपागतः ।
प्रीतोऽहं प्रदिशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम् ॥ ५२ ॥

जिसने जिस भागकी हमारे लिये कल्पना की थी, वे सब भाग उस ही प्रकार मेरे निकट उपस्थित हुए हैं; इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं, अब आवृत्तिलक्षण फल प्रदान करूंगा ॥ ५२ ॥

एतद्वो लक्षणं देवा मत्प्रसादसमुद्भवम् ।
यूयं यज्ञैरिज्यमानाः समाप्तवरदक्षिणैः ।
युगे युगे भविष्यध्वं प्रवृत्तिफलभोगिनः ॥ ५३ ॥

हे देवगण ! तुम लोगोंके सम्बन्धमें मेरे प्रसादसे यह लक्षण उत्पन्न होगा, कि तुम लोग युगयुगमें अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञोंके जरिये यजन करते हुए प्रवृत्ति–फलभागी होओगे ॥५३॥

यज्ञैर्यै चापि यक्ष्यन्ति सर्वलोकेषु वै सुराः ।
कल्पयिष्यन्ति वो भागांस्ते नरा वेदकल्पितान् ॥ ५४ ॥

हे देवताओं ! जो मनुष्य लोग सब लोकोंके बीच यज्ञके जरिये पूजा करनेमें प्रवृत्त होंगे, वे तुम लोगोंके लिये वेदमें कहे हुए सब भागोंकी कल्पना करेंगे ॥ ५४ ॥

यो मे यथा कल्पितवान्भागमस्मिन्महाक्रतौ ।
स तथा यज्ञभागार्हो वेदसूत्रे मया कृतः ॥ ५५ ॥

इस महायज्ञमें जिस देवताने जिस भांति मेरे भागको कल्पित किया है, मैंने वेदसूत्रमें उसे वैसा ही यज्ञभागी किया है ॥ ५५ ॥

यूयं लोकान्धारयध्वं यज्ञभागफलोदिताः ।
सर्वार्थचिन्तका लोके यथाधीकारनिर्मिताः ॥ ५६ ॥

इसलिये तुम लोग लोकके बीच निज अधिकारमें अधिष्ठित होके यज्ञभागके उचित फल और सर्वार्थचिन्तक होकर सब लोगोंको उन्नतिशील करोगे ॥ ५६ ॥

याः क्रियाः प्रचरिष्यन्ति प्रवृत्तिफलसत्कृताः ।
ताभिराप्यायितबला लोकान्वै धारयिष्यथ ॥ ५७ ॥

जो सब कार्य प्रवृत्तिफलके सहारे सत्कृत होकर प्रचारित होंगे, उन्हीं सब कार्योंके जरिये तुम लोग आप्यायित और बलसंयुक्त होकर सब लोकोंको धारण करोगे ॥ ५७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यूयं हि भाविता लोके सर्वयज्ञेषु मानवैः।
मां ततो भावयिष्यध्वमेषा वो भावना मम ॥ ५८ ॥

तुम लोगोंके विषयमें मेरी यह भावना होती है, कि तुम लोग सब यज्ञोंमें मनुष्योंके जरिये पूजित होगे। अनन्तर तुम लोग मेरा ध्यान करोगे ॥ ५८ ॥

इत्यर्थं निर्मिता वेदा यज्ञाश्चौषधिभिः सह।
एभिः सम्यक्प्रयुक्तैर्हि प्रीयन्ते देवताः क्षितौ ॥ ५९ ॥

इस ही निमित्त सब वेद, और औषधियों सहित यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई हैं; पृथ्वीतलमें यह सब वेद विधिके अनुसार पूर्णरीतिसे प्रयुक्त होनेसे देवता लोग प्रीति लाभ करेंगे ॥ ५९ ॥

निर्माणमेतद्युष्माकं प्रवृत्तिगुणकल्पितम्।
मया कृतं सुरश्रेष्ठा यावत्कल्पक्षयादिति।
चिन्तयध्वं लोकहितं यथाधीकारमीश्वराः ॥ ६० ॥

हे सुरश्रेष्ठगण ! मैंने तुम लोगोंकी प्रवृत्ति गुणके सहित सृष्टि की है; इसलिये जबतक कल्पका अन्त न होगा, तबतक तुम लोग निज निज अधिकारके ईश्वर होकर लोगोंके हितका विचार करो ॥ ६० ॥

मरीचिरङ्गिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिता हि वै ॥ ६१ ॥

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठये सातों ऋषि ब्रह्माके मानससे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६१ ॥

एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिताः।
प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापत्येन कल्पिताः ॥ ६२ ॥

ये लोग वेदवित् और मुख्य वेदाचार्य प्रवृत्तिधर्म–परायण प्रजापतिरूपसे कल्पित हुए हैं ॥ ६२ ॥

अयं क्रियावतां पन्था व्यक्तीभूतः सनातनः।
अनिरुद्ध इति प्रोक्तो लोकसर्गकरः प्रभुः ॥ ६३ ॥

क्रियावान् पुरुषोंका यह सनातन पथ कहा गया है; सर्वशक्तिसंयुक्त लोकसर्गकर पुरुष अनिरुद्ध कहके वर्णित हुए हैं ॥ ६३ ॥

सनः सनत्सुजातश्च सनकः ससनन्दनः।
सनत्कुमारः कपिलः सप्तमश्च सनातनः ॥ ६४ ॥

सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और सातवें सनातन ॥ ६४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तैते मानसाः प्रोक्ता ऋषयो ब्रह्मणः सुताः।
स्वयमागतविज्ञाना निवृत्तिं धर्ममास्थिताः ॥ ६५ ॥

ये ऋषिप्रवर सप्तम, ब्रह्माके मानसपुत्र कहाते हैं; इन लोगोंमें स्वयं विज्ञान उत्पन्न हुआ है, इन्होंने निवृत्तिमार्गको अवलम्बन किया है ॥ ६५ ॥

एते योगविदो मुख्याः सांख्यधर्मविदस्तथा।
आचार्या मोक्षशास्त्रे च मोक्षधर्मप्रवर्तकाः ॥ ६६ ॥

ये प्रमुख योग वित्त, सांख्य धर्म विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य और मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं ॥ ६६ ॥

यतोऽहं प्रसृतः पूर्वमव्यक्तात्त्रिगुणो महान्।
तस्मात्परतरो योऽसौ क्षेत्रज्ञ इति कल्पितः।
सोऽहं क्रियावतां पन्थाः पुनरावृत्तिदुर्लभः ॥ ६७ ॥

प्रथम जो अव्यक्त प्रकृतिसे त्रिगुणात्मक महान् अहङ्कार प्रकट हुआ, जो उससे भी परे है, वही क्षेत्रज्ञ रूपसे कहा गया है। वह क्षेत्रज्ञ मैं हूं; वह क्रियावान् मनुष्यों अर्थात् पुनरावृत्तिविशिष्ट लोगोंके लिये यह निवृत्तिमार्ग दुर्लभ है ॥ ६७ ॥

यो यथा निर्मितो जन्तुर्यस्मिन्यस्मिंश्च कर्मणि।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा तत्फलं सोऽश्नुतेऽवशः ॥ ६८ ॥

जो जीव जिस कर्ममें जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति मार्गमें वह सब ही महत् फलको उपभोग करता है ॥ ६८ ॥

एष लोकगुरुर्ब्रह्मा जगदादिकरः प्रभुः।
एष माता पिता चैव युष्माकं च पितामहः।
मयानुशिष्टो भविता सर्वभूतवरप्रदः ॥ ६९ ॥

ये लोकगुरु ब्रह्मा जगत्के आदिकर्त्ता प्रभावयुक्त प्रजापति तुम लोगोंके पिता, माता और पितामह हैं; ये मुझसे अनुशिष्ट होकर सब प्राणियोंके वरप्रद होंगे ॥ ६९ ॥

अस्य चैवानुजो रुद्रो ललाटाद्यः समुत्थितः।
ब्रह्मानुशिष्टो भविता सर्वत्रसवरप्रदः ॥ ७० ॥

जो ललाटसे उत्पन्न होकर रुद्ररूपसे इनके अनुज हुए हैं, वे ब्रह्माकी आज्ञासे सबको वर प्रदान करनेमें समर्थ होंगे ॥ ७० ॥

गच्छध्वं स्वानधीकारांश्चिन्तयध्वं यथाविधि।
प्रवर्तन्तां क्रियाः सर्वाः सर्वलोकेषु माचिरम् ॥ ७१ ॥

अब तुम लोग जाओ और अपने अपने अधिकारपर जाके विधिपूर्वक उसका पालन करो; समस्त लोकोंके बीच सब कार्योंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त रहो, बिलम्ब मत करो ॥ ७१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रदृश्यन्तां च कर्माणि प्राणिनां गतयस्तथा ।
परिनिर्मितकालानि आयूंषि च सुरोत्तमाः ॥ ७२ ॥

हे सुरोत्तम गण ! इस लोकमें परमायुका परिमित समय है, इसलिये प्राणियोंके कर्म और गतिका विषय वर्णन करो ॥ ७२ ॥

इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते : ।
अहिंस्या यज्ञपशवो युगेऽस्मिन्नैतदन्यथा ।
चतुष्पात्सकलो धर्मो भविष्यत्यत्र वै सुराः ॥ ७३ ॥

इस समय सब कालसे श्रेष्ठ सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ है; इस युगमें याज्ञिय पशु अहिंस्य रहेंगे, इसमें अन्यथा न होगा । हे देवगण ! इस सत्ययुगमें सब धर्म चार चरणमे स्थित रहेंगे ॥ ७३ ॥

ततस्त्रेतायुगं नाम त्रयी यत्र भविष्यति ।
प्रोक्षिता यत्र पशवो वधं प्राप्स्यन्ति वै मखे ।
तत्र पादचतुर्थो वै धर्मस्य न भविष्यति ॥ ७४ ॥

अनन्तर त्रेतायुग प्रवर्त्तित होगा, उसमें तीनों वेद वर्तमान रहेंगे; प्रोक्षित मन्त्रोंद्वारा पवित्र किये गये पशुओंका यज्ञमें वध किया जावेगा, धर्मका चौथा चरण–अंश न रहेगा ॥ ७४ ॥

ततो वै द्वापरं नाम मिश्रः कालो भविष्यति ।
द्विपादहीनो धर्मश्च युगे तस्मिन्भविष्यति ॥ ७५ ॥

इसके अनन्तर द्वापर नाम मिश्रकाल–धर्म और अधर्मसे युक्त आवेगा, उस युगमें धर्मके दो चरण ही रहेंगे ॥ ७५ ॥

ततस्तिष्येऽथ संप्राप्ते युगे कलिपुरस्कृते ।
एकपादस्थितो धर्मो यत्र तत्र भविष्यति ॥ ७६ ॥

अन्तमें पुष्य नक्षत्रमें कलियुगके उपस्थित होनेपर धर्म सर्वत्र एक चरणसे निवास करेगा ॥ ७६ ॥

देवा ऊचुः—

एकपादस्थिते धर्मे यत्रकचनगामिनि ।
कथं कर्तव्यमस्माभिर्भगवंस्तद्वदस्व नः ॥ ७७ ॥

देवाता बोले– हे भगवन् ! जब धर्म जिस किसी स्थान पर जाके एक चरणसे निवास करेगा, उस समय हम लोगोंको क्या करना योग्य है ? आप उसे ही वर्णन करिये ॥ ७७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच—

यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च तपः सत्यं दमस्तथा ।
अहिंसाधर्मसंयुक्ताः प्रचरेयुः सुरोत्तमाः ।
स वै देशः सेवितव्यो मा वोऽधर्मः पदा स्पृशेत् ॥ ७८ ॥

श्रीभगवान् बोले— हे सुरोत्तमगण ! कलिकालमें जिस स्थानमें वेद, यज्ञ, तपस्या, सत्य, दम और अहिंसा धर्म संयुक्त होकर प्रचारित होगी, तुम लोग उस ही स्थानमें निवास करोगे; ऐसा करनेसे अधर्म तुम लोगोंको अपने एक पैरसे भी स्पर्श न कर सकेगा ॥ ७८ ॥

व्यास उवाच—

तेऽनुशिष्टा भगवता देवाः सर्षिगणास्तथा ।
नमस्कृत्वा भगवते जग्मुर्देशान्यथेप्सितान् ॥ ७९ ॥

व्यासदेव बोले, ऋषियोंके सहित देवता लोग भगवान्‌की ऐसी आज्ञा सुनकर उन्हें नमस्कार करके निज निज अभिलषित स्थानपर गये ॥ ७९ ॥

गतेषु त्रिदिवौकःसु ब्रह्मैकः पर्यवस्थितः ।
दिदृक्षुर्भगवन्तं तमनिरुद्धतनौ स्थितम् ॥ ८० ॥

सुर पुरवासी देवताओंके सहित ऋषियोंके चले जानेपर, केवल एकमात्र ब्रह्मा अनिरुद्ध तनुसे अधिष्ठित उस भगवान्‌का दर्शन करनेके अभिलाषी होकर वहां स्थित रहे ॥ ८० ॥

तं देवो दर्शयामास कृत्वा हयशिरो महत् ।
साङ्गानावर्तयन्वेदान्कमण्डलुगणित्रधृक् ॥ ८१ ॥

भगवान्‌ने कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करके साङ्ग वेदोंकी आवृत्ति करते हुए सुन्दर तथा महत् हयशिरा मूर्त्ति धारण करके उन्हें दर्शन दिया ॥ ८१ ॥

ततोऽश्वशिरसं दृष्ट्वा तं देवममितौजसम् ।
लोककर्ता प्रभुर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया ॥ ८२ ॥

लोककर्त्ता प्रभावशाली प्रजापति ब्रह्माने अत्यंत तेजस्वी भगवान् हयशिरा देवको देखकर सब लोकोंकी हितकामनासे ॥ ८२ ॥

मूर्ध्ना प्रणम्य वरदं तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ।
स परिष्वज्य देवेन वचनं श्रावितस्तदा ॥ ८३ ॥

सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक देवताके सम्मुख हाथ जोडके खडे रहे । भगवान्‌ने उस समय विधाताको आलिङ्गन करके उन्हें यह वक्ष्यमाण वचन सुनाया ॥ ८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

लोककार्यगतीः सर्वास्त्वं चिन्तय यथाविधि ।
धाता त्वं सर्वभूतानां त्वं प्रभुर्जगतो गुरुः ।
त्वय्यावेशितभारोऽहं धृतिं प्राप्स्याम्यथाञ्जसा ॥ ८४ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम सब लोकोंके कार्य तथा गतियोंका विधिपूर्वक चिन्तन करो; तुम सब भूतोंके विधाता हो, तुम ही जगत्के प्रभु और गुरु हो; मैंने तुम्हें यह भार समर्पण करके यथार्थ सन्तोष अवलम्बन किया है ॥ ८४ ॥

यदा च सुरकार्यं ते अविषह्यं भविष्यति ।
प्रादुर्भावं गमिष्यामि तदात्मज्ञानदेशिकः ॥ ८५ ॥

जिस समय तुम्हें देवताओंका कार्य असह्य होगा, तब मैं आत्मज्ञान और उपाय कहनेके लिये तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊंगा ॥ ८५ ॥

एवमुक्त्वा हयशिरास्तत्रैवान्तरधीयत ।
तेनानुशिष्टो ब्रह्मापि स्वं लोकमचिराद्गतः ॥ ८६ ॥

हयशिरा ऐसा ही कहके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये । ब्रह्मा भी उनकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही निज लोकमें चले गये ॥ ८६ ॥

एवमेष महाभागः पद्मनाभः सनातनः ।
यज्ञेष्वग्रहरः प्रोक्तो यज्ञधारी च नित्यदा ॥ ८७ ॥

इस ही प्रकार वह महाभाग सनातन भगवान् पद्मनाभ सब यज्ञोंके अग्रहर और नित्यकाल यज्ञधारी कहके अनेक भांतिसे वर्णित हुए हैं ॥ ८७ ॥

निवृत्तिं चास्थितो धर्मं गतिमक्षयधर्मिणाम् ।
प्रवृत्तिधर्मान्विदधे कृत्वा लोकस्य चित्रताम् ॥ ८८ ॥

उन्होंने अक्षय धर्मशालियोंकी गतिरूप निवृत्ति धर्मको अवलम्बन किया है और सब लोकोंकी विचित्रता करके प्रवृत्ति धर्मका विधान किया है ॥ ८८ ॥

स आदिः स मध्यः स चान्तः प्रजानां स धाता स धेयः स कर्ता स कार्यम् ।
युगान्ते स सुप्तः सुसंक्षिप्य लोकान्युगादौ प्रबुद्धो जगद्ध्युत्ससर्ज ॥ ८९ ॥

वही प्रजाके आदि है, वही मध्य, अन्त और धाता है, वही धेय है, वही कर्त्ता और वही कार्य है; वह युगान्त कालमें सब लोकोंका संहार करके सो जाता है और युगके आरम्भमें सावधान होकर जगत्की सृष्टि किया करता है ॥ ८९ ॥

तस्मै नमध्वं देवाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
अजाय विश्वरूपाय धाम्ने सर्वदिवौकसाम् ॥ ९० ॥

तुम सब कोई उस नारायण देवको नमस्कार करो; वही निर्गुण, गुणात्मा, अज, विश्वरूप और स्वर्गवासियोंका धाम स्वरूप है ॥ ९० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

महाभूताधिपतये रुद्राणां पतये तथा ।
आदित्यपतये चैव वसूनां पतये तथा ॥ ९१ ॥

वही महाभूतोंका अधिपति, रूद्रगणका स्वामी आदित्यपति तथा वसुगणका प्रभु है ॥ ९१ ॥

अश्विभ्यां पतये चैव मरुतां पतये तथा ।
वेदयज्ञाधिपतये वेदाङ्गपतयेऽपि च ॥ ९२ ॥

वह दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वामी, मरुद्गणोंका प्रभु, वेद और यज्ञोंके अधिपति तथा वेदांग-पति है ॥ ९२ ॥

समुद्रवासिने नित्यं हरये मुञ्जकेशिने ।
शान्तये सर्वभूतानां मोक्षधर्मानुभाषिणे ॥ ९३ ॥

वही सदा समुद्रवासी हरि और मुञ्जकेशी है, वह शान्त है, और सब भूतोंको मोक्ष धर्मका उपदेश देता है ॥ ९३ ॥

तपसां तेजसां चैव पतये यशसोऽपि च ।
वाचश्च पतये नित्यं सरितां पतये तथा ॥ ९४ ॥

वही तपस्या, तेज और यशका पति, वाणीपति तथा सरिताओंका पति और नित्य संरक्षक है ॥ ९४ ॥

कपर्दिने वराहाय एकशृङ्गाय धीमते ।
विवस्वतेऽश्वशिरसे चतुर्मूर्तिधृते सदा ॥ ९५ ॥

वह जटाजूटधारी, एक सींगवाला वराह, धीमान्, विवस्वान्, अश्वशिरा और चतुर्मूर्त्तिधारी है ॥ ९५ ॥

गुह्याय ज्ञानदृश्याय अक्षराय क्षराय च ।
एष देवः संचरति सर्वत्रगतिरव्ययः ॥ ९६ ॥

सदा गुह्य स्वरूप, ज्ञानरूपी नेत्रसे दीखनेवाला और अक्षर तथा क्षर स्वरूप है । यह सर्वत्र गमनशील अव्यय देव भ्रमण कर रहा है ॥ ९६ ॥

एवमेतत्पुरा दृष्टं मया वै ज्ञानचक्षुषा ।
कथितं तच्च वः सर्वं मया पृष्टेन तत्त्वतः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार ही ज्ञाननेत्रसे मैंने पहले समयमें इसे देखा था । हे शिष्यगण ! तुम लोगोंके पूछने-पर यथार्थ रूपसे यह सब कहा है ॥ ९७ ॥

क्रियतां मद्वचः शिष्याः सेव्यतां हरिरीश्वरः ।
गीयतां वेदशब्दैश्च पूज्यतां च यथाविधि ॥ ९८ ॥

अब मेरे वचनके अनुसार ईश्वर श्रीहरिकी सेवा करो, वेदमंत्रोंके जरिये उनका यश गाओ और विधि पूर्वक उनकी पूजा करो ॥ ९८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Prabhuji. Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्तास्तु वयं तेन वेदव्यासेन धीमता ।
सर्वे शिष्याः सुतश्चास्य शुकः परमधर्मवित् ॥ ९९ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— उन बुद्धिमान् वेदव्यासने हम सब शिष्योंसे तथा अपने परम धर्मज्ञ पुत्र शुकदेवसे ऐसा ही कहा था ॥ ९९ ॥

स चास्माकमुपाध्यायः सहास्माभिर्विशां पते ।
चतुर्वेदोद्गताभिश्च ऋग्भिस्तमभितुष्टुवे ॥ १०० ॥

हे महाराज ! गुरु देव व्यास हम लोगोंके सहित चतुर्वेदोद्गत ऋचाओंके जरिये उसकी सब प्रकारसे स्तुति करने लगे ॥ १०० ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
एवं मेऽकथयद्राजन्पुरा द्वैपायनो गुरुः ॥ १०१ ॥

हे महाराज ! पहले समयमें मेरे गुरु वेदव्यासने मुझसे जो कहा था वह सब मैंने तुम्हारे समीप तुम्हारे पूछनेपर वर्णन किया ॥ १०१ ॥

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं यश्चेदं परिकीर्तयेत् ।
नमो भगवते कृत्वा समाहितमना नरः ॥ १०२ ॥

जो पुरुष स्थिरबुद्धि होकर " नमो भगवते " ऐसा वचन करके इस विषयको सदा सुनता है और इसका पाठ करता है ॥ १०२ ॥

भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपसमन्वितः ।
आतुरो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ १०३ ॥

वह द्युतिमान्, बलरूपसे युक्त और रोगरहित होता है; आतुर पुरुष रोगसे और बद्ध पुरुष बन्धनसे छूट जाता है ॥ १०३ ॥

कामकामी लभेत्कामं दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
ब्राह्मणः सर्ववेदी स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो विपुललाभः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १०४ ॥

कामनावाला कामनाके अनुसार काम्य विषय प्राप्त करके दीर्घायु होता है । ब्राह्मण सब वेदोंका ज्ञाता, क्षत्रिय विजयी, वैश्य अत्यन्त धनवान् और शूद्र सुखी हुआ करता है ॥१०४॥

अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चैवेप्सितं पतिम् ।
लग्नगर्भा विमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ।
वन्ध्या प्रसवमाप्नोति पुत्रपौत्रसमृद्धिमत् ॥ १०५ ॥

पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होता है, कन्या अभिलषित पति पाती है, गर्भिणी स्त्री विमुक्त होती तथा पुत्रप्रसव करती है, वन्ध्या समृद्धिशाली पुत्रपौत्र प्रसव किया करती है ॥ १०५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

क्षेमेण गच्छेदध्वानमिदं यः पठते पथि ।
यो यं कामं कामयते स तमाप्नोति च ध्रुवम् ॥ १०६ ॥

मार्गमें जो मनुष्य इसका पाठ करता है, वह निर्विघ्नताके सहित मार्गमें गमन करनेमें समर्थ होता है । इसे पढने और सुननेवाला पुरुष जैसी कामना करता है, वह निश्चय ही उसे पाता है ॥ १०६ ॥

इदं महर्षेर्वचनं विनिश्चितं महात्मनः पुरुषवरस्य कीर्तनम् ।
समागमं चर्षिदिवौकसामिमं निशम्य भक्ताः सुसुखं लभन्ते ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२७ ॥ १२१११ ॥

यह पुरुषश्रेष्ठ महर्षिका निश्चित वचन है, और देवर्षि तथा देवताओंके समागमसे युक्त महात्मा पुरुषोत्तमकी कथा कहने अथवा सुननेसे भक्तजन परम सुखलाभ करते हैं ॥ १०७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२७ ॥ १२१११ ॥

: ३२८ :

जनमेजय उवाच—

अस्तौषीद्यैरिमं व्यासः सशिष्यो मधुसूदनम् ।
नामभिर्विविधैरेषां निरुक्तं भगवन्मम ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले— हे भगवन् ! शिष्योंके सहित वेदव्यास मुनिने जिन विविध नामोंके सहारे मधुसूदनकी स्तुति की थी, मैं उन सब नामोंके निरुक्त अर्थात् निर्वाचन सुननेके लिये अभिलाषी हुआ हूं ॥ १ ॥

वक्तुमर्हसि शुश्रूषोः प्रजापतिपतेर्हरेः ।
श्रुत्वा भवेयं यत्पूतः शरच्चन्द्र इवामलः ॥ २ ॥

इसलिये मैं प्रजापतियोंके पति भगवान् श्रीहरिके नामोंकी व्याख्या सुनना चाहता हूं; उन्हें सुनकर मैं निर्मल शरत्कालके चन्द्रमाकी भांति पवित्र हूंगा, आपही उस विषयको वर्णन करने योग्य हैं ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—

शृणु राजन्यथाचष्ट फल्गुनस्य हरिर्विभुः ।
प्रसन्नात्मात्मनो नाम्नां निरुक्तं गुणकर्मजम् ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! प्रभावशाली श्रीहरि नारायणने अर्जुनके ऊपर प्रसन्न होकर सर्वज्ञत्व आदि गुणों और जगत्सृष्टि प्रभृति कर्म-जनित नामोंका जो निरुक्त कहा था, उसे सुनो ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नामभिः कीर्तितैस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
पृष्टवान्केशवं राजन्फल्गुनः परवीरहा ॥ ४ ॥

राजन् ! जिन नामोंसे नारायण केशवका वर्णन किया जाता है, उन सबका निरुक्त शत्रु-नाशन धनञ्जयने पूछा था ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच—

भगवन्भूतभव्येश सर्वभूतसृगव्यय ।
लोकधाम जगन्नाथ लोकानामभयप्रद ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले— हे भूत भव्येश भगवन् ! हे सर्वभूतोंकी सृष्टि करनेवाले ! अव्यय ! हे लोकधाम जगन्नाथ ! दे सब लोकोंको अभयप्रद ! ॥ ५ ॥

यानि नामानि ते देव कीर्तितानि महर्षिभिः ।
वेदेषु सपुराणेषु यानि गुह्यानि कर्मभिः ॥ ६ ॥

हे देव ! महर्षियोंके जरिये तुम्हारे जो सब नाम वर्णित हुए हैं और वेद तथा पुराणोंके बीच कर्मवशसे जो सब नाम गुप्त हैं ॥ ६ ॥

तेषां निरुक्तं त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि केशव ।
न ह्यन्यो वर्तयेन्नाम्नां निरुक्तं त्वामृते प्रभो ॥ ७ ॥

हे केशव ! मैं तुम्हारे निकट उन नामोंको निर्वाचन सुननेकी इच्छा करता हूं । हे प्रभु ! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन नामोंका निरुक्त वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु ।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले— हे अर्जुन ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, उपनिषद्, पुराण, ज्योतिष, ॥ ८ ॥

सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च ।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ॥ ९ ॥

सांख्य, योगशास्त्र और आयुर्वेदके बीच महर्षियोंने मेरे अनेक प्रकारके नाम वर्णन किये हैं ॥ ९ ॥

गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि च कानिचित् ।
निरुक्तं कर्मजानां च शृणुष्व प्रयतोऽनघ ।
कथ्यमानं मया तात त्वं हि मेऽर्धं स्मृतः पुरा ॥ १० ॥

उनके बीच कोई कोई नाम गुणोंके अनुसार हैं और कुछ कर्मज हैं । हे अनघ ! इसलिये तुम एकाग्रचित्त होकर मेरे द्वारा उन कर्मज नामोंका निरुक्त सुनो । हे तात ! मैं तुम्हे उन नामोंकी व्युत्पत्ति कहता हूं, क्योंकि पहलेसेही तुम मेरे अर्द्धाङ्ग रूपसे स्मृत हुए हो ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

[नमोऽतियशसे तस्मै देहिनां परमात्मने ।
नारायणाय विश्वाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ ११ ॥
विश्वात्मा निर्गुण और गुणमय अत्यन्त यशस्वी देहधारियोंकी अन्तरात्मा है इससे उस नारायणदेवको नमस्कार है ॥ ११ ॥

यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रश्च क्रोधसंभवः ।
योऽसौ योनिर्हि सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १२ ॥]
जिसकी कृपासे ब्रह्माने जन्म लिया और जिसके क्रोधसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए हैं, वही स्थावर-जङ्गम सबकी उत्पत्तिका कारण है ॥ १२ ॥

अष्टादशगुणं यत्तत्सत्त्वं सत्त्ववतां वर ।
प्रकृतिः सा परा मह्यं रोदसी योगधारिणी ।
ऋता सत्यामराजय्या लोकानामात्मसंहिता ॥ १३ ॥
हे सात्त्विकोंमें प्रवर ! प्रीति, कार्य, उद्रेक, लघुता, सुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धधानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, आर्जव, समता, सत्य और अनसूया, इन अठारहों गुणोंको सत्त्व कहते हैं। मेरी परा प्रकृति अष्टादश गुणमयी है; यह प्रकृति ही योग-बलसे द्युलोक और भूर्लोकको धारण कर रही है । यही ऋता अर्थात् ब्रह्मलोक पर्यन्त कर्म फल स्वरूप है, सत्या अर्थात् अबाधित चिन्मात्र स्वरूप है; अमरण धर्मशीला, अजया प्रकृति ही सब लोकोंकी आत्मसंज्ञा संयुक्त है ॥ १३ ॥

तस्मात्सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ।
ततो यज्ञश्च यष्टा च पुराणः पुरुषो विराट् ।
अनिरुद्ध इति प्रोक्तो लोकानां प्रभवाप्ययः ॥ १४ ॥
उस धातादि स्वरूप परमात्मामें अध्वस्त सत्त्वसे सृष्टि और प्रलय आदि सब विक्रिया प्रवर्त्तित हुआ करती हैं । तपस्या यज्ञ और यजमान वह सनातन विराट पुरुष अनिरुद्ध रूपसे वर्णित हुआ करता है, इसहीसे सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय होते हैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मे रात्रिक्षये प्राप्ते तस्य ह्यमिततेजसः ।
प्रसादात्प्रादुरभवत्पद्मं पद्मनिभेक्षण ।
तत्र ब्रह्मा समभवत्स तस्यैव प्रसादजः ॥ १५ ॥
हे कमलनयन अर्जुन ! ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत होनेपर उस अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल उत्पन्न हुआ था; उसी कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्मा उसहीकी कृपासे जन्म ग्रहण करते हैं ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अह्नः क्षये ललाटाच्च सुतो देवस्य वै तथा ।
क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥ १६ ॥

ब्रह्माके दिनके बीतते पर उस क्रोधाविष्ट देवके ललाटसे संहार करनेवाला रुद्र नामक पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ ।
तदादेशितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ।
निमित्तमात्रं तावत्र सर्वप्राणिवरप्रदौ ॥ १७ ॥

ये दोनों देवश्रेष्ठ भगवान्‌की कृपा और क्रोधसे उत्पन्न होते हैं और उनकी आज्ञानुसार यथा-योग्य कार्यमें प्रवृत्त होकर सृष्टि और संहारका कार्य करते हैं; सब प्राणियोंके वरप्रद वे दोनों ब्रह्मा और रुद्र सृष्टि तथा संहार कार्यमें निमित्त मात्र हैं ॥ १७ ॥

कपर्दी जटिलो मुण्डः श्मशानगृहसेवकः ।
उग्रव्रतधरो रुद्रो योगी त्रिपुरदारुणः ॥ १८ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! कपर्दी, (जटाजूटधारी) जटिल, मूण्ड, श्मशान गृहवासी, उग्र व्रतधर, रुद्र, योगी, त्रिपुर दारुण, ॥ १८ ॥

दक्षक्रतुहरश्चैव भगनेत्रहरस्तथा ।
नारायणात्मको ज्ञेयः पाण्डवेय युगे युगे ॥ १९ ॥

दक्ष यज्ञहर और भगनेत्रहर भगवान् रुद्रको युगयुगमें नारायणस्वरूप ही जानना चाहिये ॥ १९ ॥

तस्मिन्हि पूज्यमाने वै देवदेवे महेश्वरे ।
संपूजितो भवेत्पार्थ देवो नारायणः प्रभुः ॥ २० ॥

हे पृथापुत्र ! उस देवोंके देव महेश्वरके पूजित होनेसे प्रभु नारायण देव पूजित होते हैं ॥ २० ॥

अहमात्मा हि लोकानां विश्वानां पाण्डुनन्दन ।
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं संपूजयाम्यहम् ॥ २१ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! मैं सब जगत्‌की अन्तरात्मा हूं, इसलिये अपने आत्मरूप रुद्रकी पहले पूजा किया करता हूं ॥ २१ ॥

यद्यहं नार्चयेयं वै ईशानं वरदं शिवम् ।
आत्मानं नार्चयेत्कश्चिदिति मे भावितं मनः ।
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्तते ॥ २२ ॥

यदि वरदाता ईश्वर शिवकी मैं पूजा न करूं, तो मेरे आत्मारूप शङ्काकी कोई पूजा न करेगा, ऐसी मेरी धारणा है; सब लोग मेरे किये हुए प्रमाणका अनुसरण किया करते हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम् ।
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनु तं स हि मामनु ॥ २३ ॥

इसलिये प्रमाण सबका ही पूज्य है, इसी निमित्त मैं रुद्रकी पूजा किया करता हूं। जो पुरुष शिवको जानता है वही मुझे भी जानता है; जो उसका अनुगत है; वही मेरा भी अनुगत है ॥ २३ ॥

रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम् ।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ॥ २४ ॥

हे कौन्तेय ! रुद्र और नारायण दो रूपसे एक ही हैं; इसलिये दो स्वरूप धारण करके सब कार्योंमें व्यक्तिस्थ होकर लोकमें विचरते हैं ॥ २४ ॥

न हि मे केनचिद्देयो वरः पाण्डवनन्दन ।
इति संचिन्त्य मनसा पुराणं विश्वमीश्वरम् ।
पुत्रार्थमाराधितवानात्मानमहमात्मना ॥ २५ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! कोई पुरुष मुझे वर देनेमें समर्थ नहीं है; मैं मनहीमन ऐसा ही विचार करके पुराण पुरुष ईश्वर रुद्रदेवकी पुत्रके निमित्त आप ही अपनी आराधना की थी ॥ २५ ॥

न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधाय तु ।
ऋत आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम् ॥ २६ ॥

सर्वव्यापी विष्णु अपने सिवा और किसी देवताको प्रणाम नहीं करते; इसही निमित्त मैं रुद्रदेवकी आराधना करता हूं ॥ २६ ॥

सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवाः सहर्षिभिः ।
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्रके सहित सब देवता तथा ऋषि लोग देवश्रेष्ठ नारायण श्रीहरिकी पुजा करते हैं ॥ २७ ॥

भविष्यतां वर्ततां च भूतानां चैव भारत ।
सर्वेषामग्रणीर्विष्णुः सेव्यः पूज्यश्च नित्यशः ॥ २८ ॥

हे भारत ! भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् प्राणियोंके लिये भगवान् विष्णु ही अग्रगण्य, सबके सेवनीय और सदा पूजनीय हैं ॥ २८ ॥

नमस्व हव्यदं विष्णुं तथा शरणदं नम ।
वरदं नमस्व कौन्तेय हव्यकव्यभुजं नम ॥ २९ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! हव्यदाता विष्णुको नमस्कार करो और शरण दाता श्रीहरिको प्रणाम करो, वरदाता विष्णुको नमस्कार करो तथा हव्यकव्य भोक्ता भगवान्‌को प्रणाम करो ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चतुर्विधा मम जना भक्ता एवं हि ते श्रुतम् ।
तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठास्ते चैवानन्यदेवताः ।
अहमेव गतिस्तेषां निराशीःकर्मकारिणाम् ॥ ३० ॥

तुमने मुझसे ऐसा सुना है कि जिज्ञासु, आर्त्त, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकारके मनुष्य ही मेरे भक्त हैं; उसमेंसे जो लोग अपनेसे पृथक् दूसरे देवताओंकी आराधना न करके केवल मुझमें ही अत्यन्त निष्ठावान् हैं, वेही श्रेष्ठ हैं; उन निष्काम भावसे कर्म करनेवाले भक्तोंकी मैंही परम गति हूं ॥ ३० ॥

ये च शिष्टास्त्रयो भक्ताः फलकामा हि ते मताः ।
सर्वे च्यवनधर्माणः प्रतिबुद्धस्तु श्रेष्ठभाक् ॥ ३१ ॥

इसके अतिरिक्त जो तीन प्रकारके भक्त शेष हैं; वे लोग फलकी कामना करनेवाले माने जाते हैं; इसलिये वे लोग धर्मसे नीचे गिरनेवाले होते हैं, इस ही कारणसे पुण्यभोगके अनन्तर स्वर्गादि लोकोंसे च्युत होते हैं और जो ज्ञानी भक्त हैं, वही श्रेष्ठ फलका भागी होता हैं ॥ ३१ ॥

ब्रह्माणं शितिकण्ठं च याश्चान्या देवताः स्मृताः ।
प्रबुद्धवर्याः सेवन्ते मामेवैष्यन्ति यत्परम् ।
भक्तं प्रति विशेषस्ते एष पार्थानुकीर्तितः ॥ ३२ ॥

ज्ञानी भक्त ब्रह्मा, शिव तथा दूसरे देवताओंकी सेवा करते हुए मुझ परमात्माको ही पाते हैं। हे पार्थ ! भक्तके विषयमें मुझे जो विशेष है, यह तुम्हारे समीप वही विषय कहा गया ॥३२॥

त्वं चैवाहं च कौन्तेय नरनारायणौ स्मृतौ ।
भारावतरणार्थं हि प्रविष्टौ मानुषीं तनुम् ॥ ३३ ॥

हे कौन्तेय ! तुम और मैं, अर्थात् हम दोनों नर–नारायण नामक ऋषि हैं और पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये मनुष्य रूपसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३३ ॥

जानाम्यध्यात्मयोगांश्च योऽहं यस्माच्च भारत ।
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाभ्युदयिकोऽपि च ॥ ३४ ॥

हे भारत ! मैं अध्यात्म योगोंको जानता हूं तथा मैं कौन हूं और कहांसे आया हूं– यह भी जानता हूं; इस कारण निवृत्ति लक्षण और अभ्युदयिक धर्म भी जानता हूं ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नराणामयनं ख्यातमहमेकः सनातनः ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं मम तत्पूर्वमतो नारायणो ह्यहम् ॥ ३५ ॥

केवल एकमात्र सदा मैंही मनुष्योंका स्थान अर्थात् अवलम्ब हूं, इसही निमित्त मेरा नाम नारायण है, अथवा जलसमूहको नार कहते हैं, क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है; सृष्टिके पहिले वही समस्त नार (जल) मेरा निवास स्थान था, इस ही कारणसे मैं नारायण हूं ॥ ३५ ॥

छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ॥ ३६ ॥

मैं सूर्य स्वरूपसे किरणोंके सहारे अखिल जगत्को परिपूर्ण—व्याप्त करता हूं; और सब प्राणी मुझमें निवास करते हैं; इसही निमित्त मैं वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ हूं ॥ ३६ ॥

गतिश्च सर्वभूतानां प्रजानां चापि भारत ।
व्याप्ता मे रोदसी पार्थ कान्तिश्चाभ्यधिका मम ॥ ३७ ॥

हे भारत ! मैं सर्वभूतोंकी गति और उत्पतिका कारण हूं । हे पार्थ ! द्युलोक और भूलोक मुझसे व्याप्त हो रहा है, मेरा तेज भी सबसे अधिक है; क्योंकि मेरे तेजसे समस्त जगत् प्रकाशित हो रहा है ॥ ३७ ॥

अधिभूतानि चान्तेऽहं तदिच्छंश्चास्मि भारत ।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ॥ ३८ ॥

हे भारत ! दिव्य—अदिव्य सब प्राणी अन्तकालमें जिसे पानेकी इच्छा करते हैं, मैं वही ब्रह्म हूं । हे पार्थ ! मैंने तीनों लोकोंको आक्रमण किया है, इसी कारणसे विष्णु नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ ३८ ॥

दमात्सिद्धिं परीप्सन्तो मां जनाः कामयन्ति हि ।
दिवं चोर्वीं च मध्यं च तस्माद्दामोदरो ह्यहम् ॥ ३९ ॥

मनुष्य लोग मुझे पानेके लिये अपनी इन्द्रियोंको दमन करते हुए सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, तथा दमसेही वे द्युलोक, भूलोक और मध्यलोकोंमें ऊंचा स्थान प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये मैं दामोदर हूं अर्थात् दम शब्दसे " दमन " अर्थ जाना जाता है, इन्द्रिय दमन होनेसे जिसके जरिये स्वर्गादि लोग प्राप्त होते हैं, वही दामोदर है ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पृश्निरित्युच्यते चान्नं वेदा आपोऽमृतं तथा ।
ममैतानि सदा गर्भे पृश्निगर्भस्ततो ह्यहम् ॥ ४० ॥

अन्न, वेद, जल और अमृत– इन चारोंको प्रश्नि कहते हैं; ये सब सदा मेरे उदरमें विद्यमान हैं, इसलिये मैं प्रश्निगर्भ हूं ॥ ४० ॥

ऋषयः प्राहुरेवं मां त्रितकूपाभिपातितम् ।
पृश्निगर्भ त्रितं पाहीत्येकतद्वितपातितम् ॥ ४१ ॥

एकत और द्वितके द्वारा कूपमें गिराये हुए त्रितकी हे प्रश्निगर्भ ! रक्षा करो, ऋषियोंने मुझे इसही प्रकार प्रार्थना करके कहा था ॥ ४१ ॥

ततः स ब्रह्मणः पुत्र आद्यो ऋषिवरस्त्रितः ।
उत्ततारोदपानाद्वै पृश्निगर्भानुकीर्तनात् ॥ ४२ ॥

अनन्तर ब्रह्माके आदि पुत्र ऋषिश्रेष्ठ त्रित मेरा ' प्रश्निगर्भ ' नाम लेनेसे कूएसे बाहर हुए थे ॥ ४२ ॥

सूर्यस्य तपतो लोकानग्नेः सोमस्य चाप्युत ।
अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिताः ।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः ॥ ४३ ॥

लोकोंको तपानेवाले सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी सारी किरणें जो प्रकाशित होती हैं, वे मेरे केशसंज्ञक हैं; इसी निमित्त सर्वज्ञ द्विजसत्तमगण मुझे केशव कहते हैं ॥ ४३ ॥

स्वपत्न्यामाहितो गर्भ उतथ्येन महात्मना ।
उतथ्येऽन्तर्हिते चैव कदाचिद्देवमायया ।
बृहस्पतिरथाविन्दत्तां पत्नीं तस्य भारत ॥ ४४ ॥

हे अर्जुन ! महात्मा उतथ्यके सहारे बृहस्पतिकी पत्नी गर्भ अर्पित होनेपर देवमायासे जब उतथ्य अन्तर्द्धान हुए, तब महानुभाव बृहस्पति अपनी भार्याके निकट उपस्थित हुए ॥४४॥

ततो वै तमृषिश्रेष्ठं मैथुनोपगतं तथा ।
उवाच गर्भः कौन्तेय पञ्चभूतसमन्वितः ॥ ४५ ॥

हे कौन्तेय ! जब ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पति मैथुनके निमित्त भार्याके निकट गये, तब पञ्चभूतोंसे संयुक्त गर्भ बोला ॥ ४५ ॥

पूर्वागतोऽहं वरद नार्हस्यम्बां प्रबाधितुम् ।
एतद्बृहस्पतिः श्रुत्वा चुक्रोध च शशाप च ॥ ४६ ॥

हे वर देनेवाले ! मैं पहलेसे ही इस गर्भमें आया हूं, इसलिये आप मेरी माताको पीडित न करिये । बृहस्पतिने ऐसा वचन सुनके क्रुद्ध होकर शाप दिया ॥ ४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैथुनोपगतो यस्मात्त्वयाहं विनिवारितः ।
तस्मादन्धो जास्यसि त्वं मच्छापान्नात्र संशयः ॥ ४७ ॥

मैं मैथुनके निमित्त आगमन करके जब तुमसे रोका गया हूं, तब तुम मेरे शापसे निःसन्देह अन्धे होगे ॥ ४७ ॥

स शापादृषिमुख्यस्य दीर्घं तम उपेयिवान् ।
स हि दीर्घतमा नाम नाम्ना ह्यासीदृषिः पुरा ॥ ४८ ॥

ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पतिके शापसे वह गर्भ अधिक अन्धकारको प्राप्त हुआ । इसही कारणसे पहले समयमें उस गर्भसे उत्पन्न ऋषि दीर्घतमा नामसे विख्यात हुए ॥ ४८ ॥

वेदानवाप्य चतुरः सांगोपांगान्सनातनान् ।
प्रयोजयामास तदा नाम गुह्यमिदं मम ॥ ४९ ॥

उन्होंने साङ्गोपाङ्ग चारों सनातन वेदोंको पढके मेरे गुह्यनामको प्रयोजित किया ॥ ४९ ॥

आनुपूर्व्येण विधिना केशवेति पुनः पुनः ।
स चक्षुष्मान्समभवद्गौतमश्चाभवत्पुनः ॥ ५० ॥

फिर विस्तारके सहित विधिपूर्वक मेरे इस केशव नामको बार बार उच्चारण करनेसे वह नेत्रवान् हुए और उस ही निमित्त गौतम नामसे विख्यात हुए ॥ ५० ॥

एवं हि वरदं नाम केशवेति ममार्जुन ।
देवानामथ सर्वेषामृषीणां च महात्मनाम् ॥ ५१ ॥

हे अर्जुन ! इस ही प्रकार मेरा यह वर देनेवाला केशव नाम प्रसिद्ध हुआ, वह समस्त देवताओं और महानुभाव ऋषियोंके लिये वरदायक है ॥ ५१ ॥

अग्निः सोमेन संयुक्त एकयोनि मुखं कृतम् ।
अग्नीषोमात्मकं तस्माज्जगत्कृत्स्नं चराचरम् ॥ ५२ ॥

तापन और आप्यायन निबन्धनसे जठराग्नि, अन्नस्वरूप चन्द्रमाके सहित संयुक्त होकर एक योनित्वको प्राप्त हुए; इसलिये स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् अग्निचन्द्रमामय हुआ है ॥ ५२ ॥

अपि हि पुराणे भवति १ । एकयोन्यात्मकावग्नीषोमौ २ । देवाश्चाग्निमुखा इति ३ । एकयोनित्वाच्च परस्परं महयन्तो लोकान्धारयन्त इति ४ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥ १२१६४॥

वर्त्तमान पुराणोंमें भी १ । अग्नि और चन्द्रमा एकयोनि हैं २ । तथा देववृन्द अग्निमुख कहके प्रसिद्ध हैं, ३ । एकयोनित्व प्रयुक्त होनेसे ये परस्पर भोक्तृ योग्य भावसे संयुक्त होके सब लोकोंको धारण करते हैं ४ ॥ ५३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२८ ॥ १२१६४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३२९ :

अर्जुन उवाच—

अग्नीषोमौ कथं पूर्वमेकयोनी प्रवर्तितौ ।
एष मे संशयो जातस्तं छिन्धि मधुसूदन ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे मधुसूदन ! अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार पहले एकयोनि हुए थे ? मुझे यही सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस संशयको दूर करिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच—

हन्त ते वर्तयिष्यामि पुराणं पाण्डुनन्दन ।
आत्मतेजोद्भवं पार्थ शृणुष्वैकमना मम ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले– हे पाण्डुपुत्र ! पार्थ ! अच्छा, मैं तुम्हारे समीप अपने तेजसे उत्पन्न हुए प्राचीन विषयको वर्णन करता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो ॥ २ ॥

संप्रक्षालनकालेऽतिक्रान्ते चतुर्थे युगसहस्रान्ते १ । अव्यक्ते सर्वभूतप्रलये स्थावरजङ्गमे २ । ज्योतिर्धरणिवायुरहितेऽन्धे तमसि जलैकार्णवे लोके ३ । तम इत्येवाभिभूतेऽसंज्ञकेऽद्वितीये प्रतिष्ठिते ४ । नैव रात्र्यां न दिवसे न सति नासति न व्यक्ते नाव्यक्ते व्यवस्थिते ५ । एतस्यामवस्थायां नारायणगुणाश्रयादक्षयादजरादनिन्द्रियादग्राह्यादसंभवात्सत्यादहिंस्राल्ललामाद्विविधप्रवृत्तिविशेषात् ६ । अक्षयादजरामरादमूर्तितः सर्वव्यापिनः सर्वकर्तुः शाश्वतात्तमसः पुरुषः प्रादुर्भूतो हिररव्ययः ७ ॥ ३ ॥

प्रलयकालके समय हजार चतुर्युग बीतने तथा सब लोकोंके लिये प्रलयकाल उपस्थित होनेपर १ । और स्थावरजङ्गममय सब भूतोंके अव्यक्तमें लीन होनेपर २ । जगत् अन्धकारसे परिपूरित, अग्नि, वायु और पृथ्वीसे रहित तथा जलवत् चैतन्य मात्र समुद्र समान सर्वत्र व्याप्त होनेपर ३ । और तमकी भांति अद्वितीय ब्रह्मके निज महिमामें निवास करनेपर ४ । जब रात्रि, दिन, सत, असत् व्यक्त परिमाणु और माया विचित्रित अव्यक्त कुछ भी न था; केवल निर्विशेष सन्मात्र ब्रह्म ही स्थित था ५ । ऐसी अवस्थामें नारायणके गुण ऐश्वर्य आदिके अवलम्ब अक्षय, अजय, अनिन्द्रिय, अग्राह्य, असम्भव, सत्य, अहिंस्र, रत्नवत् भावरूप ललामभूत, विविध प्रवृत्ति विशेष, ६ । अक्षर, जरा और मूर्त्ति–विवर्जित, सर्वव्यापी, सर्वकर्त्तृ, शाश्वत तम सन्निधानसे चिदात्म हुआ था, वही अहंप्रत्ययका विषय अव्यय श्रीहरि है ७ ॥३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निदर्शनमपि ह्यत्र भवति १। नासीदहो न रात्रिरासीत् २। न सदासीन्नासदासीत् ३। तम एव पुरस्तादभवद्विश्वरूपम् ४। सा विश्वस्य जननीत्येवमस्यार्थोऽनुभाष्यते ५॥ ४॥

इस विषयमें यह वेदका प्रमाण है, १। कि सृष्टिके पहिले न दिन था, न रात्रि थी, २। न सत् था, न असत् था, ३। केवल अन्धकार ही सामने था, वही विश्वरूप हो रहा था, ४ वह अन्धकार ही विश्वकी जननी है, भाष्यके बीच ऐसा ही अर्थ जाना गया है ५॥ ४॥

तस्येदानीं तमःसंभवस्य पुरुषस्य पद्मयोनेर्ब्रह्मणः प्रादुर्भावे स पुरुषः प्रजाः सिसृक्षमाणो नेत्राभ्यामग्नीषोमौ ससर्ज १। ततो भूतसर्गे प्रवृत्ते प्रजाक्रमवशाद्ब्रह्मक्षत्रमुपातिष्ठत् २। यः सोमस्तद्ब्रह्म यद्ब्रह्म ते ब्राह्मणाः ३। योऽग्निस्तत्क्षत्रं क्षत्राद्ब्रह्म बलवत्तरम् ४। कस्मादिति लोकप्रत्यक्षगुणमेतत्तद्यथा ५। ब्राह्मणेभ्यः परं भूतं नोत्पन्नपूर्वम् ६। दीप्यमानेऽग्नौ जुहोतीति कृत्वा ब्रवीमि ७। भूतसर्गः कृतो ब्रह्मणा भूतानि च प्रतिष्ठाप्य त्रैलोक्यं धार्यत इति ८॥ ५॥

अनन्तर उस तमसे उत्पन्न पद्मयोनि पुरुषसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उस पुरुष अर्थात् हरिने प्रजासमूहको उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दोनों नेत्रोंसे अग्नि और चन्द्रमाको उत्पन्न किया १। अनन्तर भूतोंकी उत्पत्ति होनेपर धीरे धीरे प्रजासमूह ब्राह्मण और क्षत्रिय रूपसे उत्पन्न हुए २। जो सोम है, वही ब्रह्म है, जो ब्रह्म है, वही ब्राह्मण है, ३। जो अग्नि है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रियसे ब्राह्मण बलवान् हैं, ४। यह कैसे ? तो ब्राह्मणकी यह प्रबलताका गुण सब लोगोंको प्रत्यक्ष है ५। ब्राह्मणोंसे उत्तम जीव पहले उत्पन्न नहीं हुआ ६। जो लोग प्रज्वलित अग्निमें आहुति प्रदान करते हैं; इस ही निमित्त कहता हूं, ७। ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है, और वह सब भूतोंको प्रतिष्ठित करके तीनों लोकोंको धारण कर रहे हैं ८॥ ५॥

मन्त्रवादोऽपि हि भवति १। त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषाम् २। हितो देवेभिर्मानुषे जने इति ३। निदर्शनं चात्र भवति ४। विश्वेषामग्ने यज्ञानां होतेति ४। हितो देवैर्मानुषैर्जगत इति ६। अग्निर्हि यज्ञानां होता कर्ता ७। स चाग्निर्ब्रह्म ८॥६॥

इसहीके सहारे ब्राह्मण—महात्म्यको प्रसिद्ध करनेवाला मन्त्रवाद भी सिद्ध होता है १। हे अग्नि ! तुम सब विश्वके यज्ञोंके होतृ स्वरूप ऋत्विक् हो २। इसलिये समस्त देवोंके सहित मनुष्य और प्रजाके हितकर हो ३। इस विषयमें यह प्रमाण है ४। हे अग्नि ! तुम समस्त देवता और मनुष्यों सहित जगतके हित करनेवाले हो ५। इस ही निमित्त तुम यज्ञोंके होता अर्थात् ऋत्विक् स्वरूप हो ६। अग्नि ही यज्ञोंमें होता, कर्त्ता अर्थात् यजमान है ७। और वह अग्नि ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण हैं ८॥ ६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. (Prachin) . Vedic Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न ह्यृते मन्त्राद्धवनमस्ति १। न विना पुरुषं तपः संभवति २। हविर्मन्त्राणां संपूजा विद्यते देवमनुष्याणामनेन त्वं होतेति नियुक्तः ३। ये च मानुषा होत्राधिकारास्ते च ४। ब्राह्मणस्य हि याजनं विधीयते न क्षत्रवैश्ययोर्द्विजात्योः ५। तस्माद्ब्राह्मणा ह्यग्निभूता यज्ञानुद्वहन्ति ६। यज्ञा देवांस्तर्पयन्ति देवाः पृथिवीं भावयन्ति ७॥ ७॥

मन्त्रोंके विना हवन नहीं होता १। विना पुरुषके तपस्या नहीं हो सकती २। और हविष्य युक्त मन्त्रोंके सम्बन्धसे देवता, मनुष्य और ऋषियोंकी पूजा होती है; इस ही निमित्त तुम होतृ स्वरूपसे नियुक्त किये गये हो ३। मनुष्योंमें जो होताके अधिकारी हैं, वे ब्राह्मण ही है; ४। ब्राह्मणोंमेंही याजन विहित है, क्षत्रिय और वैश्योंके द्विजाति होनेपर भी उनमें याजन विहित नहीं है ५। इसलिये ब्राह्मण लोग अग्नि स्वरूप होकर यज्ञोंका भार वहन करते हैं ६। वेही समस्त यज्ञ देवताओंको तृप्त करते हैं, देवता लोग यथा समयपर वर्षा आदिसे पृथ्वीको धनधान्यसे समृद्ध किया करते हैं ७॥ ७॥

शतपथे हि ब्राह्मणं भवति १। अग्नौ समिद्धे स जुहोति यो विद्वान्ब्राह्मणमुखे दानाहुतिं जुहोति २। एवमप्यग्निभूता ब्राह्मणा विद्वांसोऽग्निं भावयन्ति ३। अग्निर्विष्णुः सर्वभूतान्यनुप्रविश्य प्राणान्धारयति ४। अपि चात्र सनत्कुमारगीताः श्लोका भवन्ति ५॥ ८॥

शतपथ ब्राह्मणमें भी ब्राह्मण ही प्रतिपन्न हुआ है १। कि जो विद्वान् ब्राह्मणके मुख रूपी अग्निमें आहुति देता है, वह समृद्ध अग्निमें होम किया करता है २। इस ही प्रकार अग्निस्वरूपी विद्वान् ब्राह्मण अग्निकी आराधना करते हैं ३। सर्वव्यापी अग्निदेव विष्णुरूपसे सब प्राणियोंके शरीरमें प्रविष्ट होकर उनके प्राणोंको धारण किया करता है ४। इसके अतिरिक्त सनत्कुमारके कहे हुए इस विषयमें ये श्लोक हैं ५। ॥ ८॥

विश्वं ब्रह्मासृजत्पूर्वं सर्वादिर्निरवस्करम्।
ब्रह्मघोषैर्दिवं तिष्ठन्त्यमरा ब्रह्मयोनयः ॥ ९॥

सबके आदिकारण ब्रह्माने पहले इस निर्मल जगत्को उत्पन्न किया था। ब्रह्मयोनि अमर देवता लोग वेदध्वनिके जरिये स्वर्गमें स्थित हुआ करते हैं॥ ९॥

ब्राह्मणानां मतिर्वाक्यं कर्म श्रद्धा तपांसि च।
धारयन्ति महीं द्यां च शैत्याद्वार्यमृतं यथा ॥ १०॥

ब्राह्मणोंकी बुद्धि, वाक्य कर्म, श्रद्धा, तपस्या और वचनामृत जैसे शैत्य दूध, दहीको धारण करता है, उसी प्रकार स्वर्ग और महीमण्डलको धारण कर रहे हैं॥ १०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नास्ति मातृसमो गुरुः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति प्रेत्य चेह च भूतये ॥ ११ ॥

सत्यसे परम धर्म और कुछभी नहीं है। माताके समान कोई गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें कल्याण निमित्त ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है॥ ११ ॥

नैषामुक्षा वर्धते नोत वाहा न गर्गरो मथ्यते संप्रदाने।
अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति येषां राष्ट्रे ब्राह्मणा वृत्तिहीनाः ॥ १२ ॥

जिनके राज्यमें ब्राह्मण वृत्तिरहित होके वास करते हैं, उन राजाओंकी सवारी, बैल और घोडे नहीं रहते, उनके यहां दही–दूधके मटके दूसरोंको देनेकेलिये मथित नहीं होते हैं, वे राजा मर्यादारहित होके विनष्ट होते तथा दस्यु के समान हुआ करते हैं ॥ १२ ॥

वेदपुराणेतिहासप्रामाण्यान्नारायणमुखोद्गताः सर्वात्मानः सर्वकर्तारः सर्वभावनाश्च ब्राह्मणाः १। वाक्संयमकालं हि तस्य देवस्य वरप्रदस्य ब्राह्मणाः प्रथमं प्रादुर्भूता ब्राह्मणेभ्यश्च शेषा वर्णाः प्रादुर्भूताः २। इत्थं च सुरासुरविशिष्टा ब्राह्मणा यदा मया ब्रह्मभूतेन पुरा स्वयमेवोत्पादिताः सुरासुरमहर्षयो भूतविशेषाः स्थापिता निगृहीताश्च ३॥ १३॥

वेद, पुराण और इतिहासके प्रमाणके अनुसार ब्राह्मण लोग भगवान् नारायणके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, वेही सर्वात्मा, सर्वकर्त्ता और सर्वसत्त्वस्वरूप हैं १। उस वरप्रद महादेवके वाक् संयममें ब्राह्मण ही पहले उत्पन्न हुए और ब्राह्मणोंसे शेष तीनों वर्ण उत्पन्न हुए थे २। इस ही प्रकार जब कि पहले मैंने स्वयं ब्रह्मारूप होकर ब्राह्मणोंको और सुरअसुरोंसे भी श्रेष्ठ उत्पन्न किया है, तब ब्राह्मणोंने ही देवता, असुर, महर्षि आदि जो भूतविशेष है उन्हे स्थापित और निगृहीत किया है ३। ॥ १३ ॥

अहल्याधर्षणनिमित्तं हि गौतमाद्धरिश्मश्रुतामिन्द्रः प्राप्तः १। कौशिकनिमित्तं चेन्द्रो मुष्कवियोगं मेषवृषणत्वं चावाप २। अश्विनोर्ग्रहप्रतिषेधोद्यतवज्रस्य पुरंदरस्य च्यवनेन स्तम्भितो बाहुः ३। क्रतुवधप्राप्तमन्युना च दक्षेण भूयस्तपसा चात्मानं संयोज्य नेत्राकृतिरन्या ललाटे रुद्रस्योत्पादिता ४।॥ १४ ॥

अहल्याका धर्म नष्ट करनेसे गौतमके शापसे देवराज इन्द्र हरिश्मश्रु हुए हैं १। कौशिक विश्वामित्रके निमित्त इन्द्र मुष्कहीन होकर मेषवृषणत्वको प्राप्त हुए २। दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये नियन यज्ञभागका निषेध करनेके निमित्त वज्र उठाये हुए इन्द्रकी दोनों भुजाओं च्यवनके द्वारा स्तम्भित हुई थीं ३। यज्ञविधातके हेतु क्रुद्ध होकर दक्षने भारी तपस्याके सहारे आत्मसंयोजना करके रुद्रदेवके ललाटमें एक तीसरी नेत्राकृति उत्पन्न की थी ४।॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्रिपुरवधार्थं दीक्षामभ्युपगतस्य रुद्रस्योशनसा शिरसो जटा उत्कृत्य प्रयुक्ताः१। ततः प्रादुर्भूता भुजगाः २। तैरस्य भुजगैः पीड्यमानः कण्ठो नीलतामुपनीतः ३। पूर्वे च मन्वन्तरे स्वायंभुवे नारायणहस्तबन्धग्रहणान्नीलकण्ठत्वमेव वा ४।॥ १५॥

शुक्राचार्यने त्रिपुरनिवासी दैत्योंके वधके लिये दीक्षाके निमित्त निकट आये हुए रुद्रके सिरसे जटाएं उखाडकर उन्हींका प्रयोग किया १। उन जटाओंसे सर्पसमुह उत्पन्न हुए २। उन सर्पोंसे पीडित होनेसे महादेवका कण्ठ नीलवर्ण हुआ है ३। और पहले कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें नारायणके हाथके सहारे उनका कण्ठ ग्रहण किये जानेसे रुद्रदेव नीलकण्ठ हुए ४।॥ १५॥

अमृतोत्पादने पुरश्चरणतामुपगतस्याङ्गिरसो बृहस्पतेरुपस्पृशतो न प्रसादं गतवत्यः किलापः १। अथ बृहस्पतिरपां चुक्रोध २। यस्मान्ममोपस्पृशतः कलुषीभूता न प्रसादमुपगतास्तस्मादद्यप्रभृति झषमकरमत्स्यकच्छपजन्तुसंकीर्णाः कलुषीभवतेति ३। तदाप्रभृत्यापो यादोभिः संकीर्णाः संवृत्ताः ४।॥ १६॥

अमृत उत्पन्न करनेके लिये पुरश्चरण करनेके हेतु अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिने जलको स्पर्श किया परन्तु वह जल स्वच्छ नहीं हुआ १। तब बृहस्पति जलके विषयमें क्रुद्ध होकर बोले २। मेरे स्पर्श करनेपरभी जब तुम निर्मल न हुए और किसी प्रकार प्रसन्न न हुए, उसही कारण आजसे मकर, मत्स्य कछुए आदि जलजन्तुओंसे कलुषित होते रहोगे ३। बृहस्पतिने जब ऐसा शाप दिया तभीसें समस्त सलिल जल जन्तुओंसे भर गया ४।॥ १६॥

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत्स्वस्रीयोऽसुराणाम् १। स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमददत्परोक्षमसुरेभ्यः २।॥ १७॥

त्वष्टापुत्र विश्वरूप देवताओंके पुरोहित थे, वह असुरोंके भानजे लगते थे १ वे देवताओंके प्रत्यक्षमें और असुरोंको परोक्षमें यज्ञ भाग प्रदान करते थे २॥ १७॥

अथ हिरण्यकशिपुं पुरस्कृत्य विश्वरूपमातरं स्वसारमसुरा वरमयाचन्त १। हे स्वसरयं ते पुत्रस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपस्त्रिशिरा देवानां पुरोहितः प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमददत्परोक्षमस्माकम् २। ततो देवा वर्धन्ते वयं क्षीयामः ३। तदेनं त्वं वारयितुमर्हसि तथा यथास्मान्भजेदिति ४॥ १८॥

अनन्तर असुरोंने हिरण्यशिपुको अगाडी करके निज भगिनी विश्वरूपकी माताके निकट जाके वर मांगा १। हे बहिन ! तुम्हारा यह पुत्र त्वष्टातनय त्रिशिरा विश्वरूप देवताओंका पुरोहित हुआ है; इसने देवताओंको प्रत्यक्ष और हमको परोक्षमें यज्ञभाग प्रदान किया है २। इस ही कारणसे देवता लोग वर्धित और हम लोग क्षीण हुए हैं ३। इससे तुम इसे निवारण करो और जिस प्रकार यह हमारे वशमें हो, उसके निमित्त आज्ञा दो ४॥ १८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ विश्वरूपं नन्दनवनमुपगतं मातोवाच १। पुत्र किं परपक्षवर्धनस्त्वं मातुलपक्षं नाशयसि २। नार्हस्येवं कर्तुमिति ३। स विश्वरूपो मातुर्वाक्यमनतिक्रमणीयमिति मत्वा संपूज्य हिरण्यकशिपुमगात् ४ ॥ १९ ॥

अनन्तर विश्वरूपकी माता नन्दनवनमें पहुंचके निज पुत्रसे बोली, १। हे पुत्र ! तुम क्यों परपक्षवर्धक होके मातुलपक्ष विनष्ट करते हो ? २। तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है ३। विश्वरूप माताका वचन अनतिक्रमणीय समझके उसका सत्कार करके हिरण्यकशिपुके निकट गये ४ ॥ १९ ॥

हैरण्यगर्भाच्च वसिष्ठाद्धिरण्यकशिपुः शापं प्राप्तवान् १। यस्मात्त्वयान्यो वृतो होता तस्मादसमाप्तयज्ञस्त्वमपूर्वात्सत्त्वजाताद्वधं प्राप्स्यसीति २। तच्छापदानाद्धिरण्यकशिपुः प्राप्तवान्वधम् ३ ॥ २० ॥

ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठसे हिरण्यकशिपु शापग्रस्त हुआ था १। वह शाप यह था, कि जिस लिये तुमने मेरा अपमान करके दूसरे होताको वरण किया है, उस ही कारणसे यह यज्ञ समाप्त न होते ही विलक्षण प्राणीके जरिये मृत्युको प्राप्त होंगे २। उस ही शाप निबन्धनसे हिरण्यकशिपुका वध हुआ ३ ॥ २० ॥

विश्वरूपो मातृपक्षवर्धनोऽत्यर्थं तपस्यभवत् १। तस्य व्रतभङ्गार्थमिन्द्रो बहूनीः श्रीमत्योऽप्सरसो नियुयोज २। ताश्च दृष्ट्वा मनः क्षुभितं तस्याभवत्तासु चाप्सरःसु नचिरादेव सक्तोऽभवत् ६। सक्तं चैनं ज्ञात्वाप्सरस ऊचुर्गच्छामहे वयं यथागतमिति ४ ॥ २१ ॥

अनन्तर विश्वरूपने मातृपक्ष वर्धित करनेके लिये घोर तपस्या की थी १। उनके व्रतको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने बहुतेरी सुन्दरी अप्सराओंको नियुक्त किया २। उन अप्सराओंको देखकर विश्वरूपका मन चञ्चल हुआ। थोडे ही समयमें वे उनमें आसक्त हुए ३। अप्सराओंने उन्हें अनुरक्त जानके कहा, हम जहांसे आई हैं वहांको जायंगी ४ ॥ २१ ॥

तास्त्वाष्ट्र उवाच १। क्व गमिष्यथ आस्यतां तावन्मया सह श्रेयो भविष्यतीति २। तास्तमब्रुवन् ३। वयं देवस्त्रियोऽप्सरस इन्द्रं वरदं पुरा प्रभविष्णुं वृणीमह इति ४ ॥ २२ ॥

त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप उनसे बोले १। तुम लोग कहां जाओगी ? मेरे सङ्ग वास करो, तुम्हारा कल्याण होगा २। अप्सराओंने उनसे कहा, ३। हम देवाङ्गना अप्सराएं हैं; हमने पहले वरदाता प्रभावशाली देवराज इन्द्रको वरण किया है ४ ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ ता विश्वरूपोऽब्रवीदद्यैव सेन्द्रा देवा न भविष्यन्तीति १। ततो मन्त्राञ्जजाप २। तैर्मन्त्रैः प्रावर्धत त्रिशिराः ३। एकेनास्येन सर्वलोकेषु द्विजैः क्रियावद्भिर्यज्ञेषु सुहुतं सोमं पपावेकेनाप एकेन सेन्द्रान्देवान् ४। अथेन्द्रस्तं विवर्धमानं सोमपानाप्यायितसर्वगात्रं दृष्ट्वा चिन्तामापेदे ५ ॥ २३ ॥

अनन्तर विश्वरूप बोले– आजसे ही इन्द्रादि देतताओंका अब कुछ प्रभाव न रहेगा १। ऐसा कहके उन्होंने मन्त्रोंको जपा २। उस मन्त्रके सहारे त्रिशिरा अत्यन्त वर्धित हुए ३। वह एक मुखसे सब लोकोंके बीच क्रियावान् ब्राह्मणोंके द्वारा यज्ञ स्थलमें यथावत् हुत सोमपान करने लगे। दूसरे मुखसे अन्न ग्रहण किया और तीसरे मुखसे इन्द्रके सहित सब देवताओंके तेजको पीने लगे ४। अनन्तर इन्द्र उसे विशेष रूपसे वर्धित और सोमपानके सहारे सर्वशरीर परिपुष्ट हुआ देखकर देवताओंके सहित चिन्ता करने लगे ५ ॥ २३ ॥

देवाश्च ते सहेन्द्रेण ब्रह्माणमभिजग्मुरूचुश्च १। विश्वरूपेण सर्वयज्ञेषु सुहुतः सोमः पीयते २। वयमभागाः संवृत्ताः ३। असुरपक्षो वर्धते वयं क्षीयामः ४। तदर्हसि नो विधातुं श्रेयो यदनन्तरमिति ५ ॥ २४ ॥

अन्तमें इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माके निकट गमन किया; वे लोग वहां पहुंचके बोले १। विश्वरूप सब यज्ञोंमें विधिपूर्वक होते गये सोमकापान करता है २। हम सब कोई यज्ञभागसे रहित हुए हैं ३। असुर लोग वर्द्धित हुए और हम क्षीण होरहे हैं ४। इसलिये इसके अनन्तर जिस प्रकार हमारा कल्याण हो, आपको उसका विधान करना उचित है ५ ॥ २४ ॥

तान्ब्रह्मोवाच ऋषिर्भार्गवस्तपस्तप्यते दधीचः १। स याच्यतां वरं यथा कलेवरं जह्यात् २। तस्यास्थिभिर्वज्रं क्रियतामिति ३ ॥ २५ ॥

ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं १। उनके समीप जाके वर मांगो और वह जिस प्रकार शरीर परित्याग करें, वैसा ही उपाय करो २। जब वे शरीर परित्याग करेंगे, तब उनकी हड्डियोंसे वज्र बनाना ३ ॥ २५ ॥

देवास्तत्रागच्छन्यत्र दधीचो भगवानृषिस्तपस्तेपे १। सेन्द्रा देवास्तमभिगम्योचुर्भगवंस्तपसः कुशलमविघ्नं चेति २। तान्दधीच उवाच स्वागतं भवद्भ्यः किं क्रियताम् ३। यद्वक्ष्यथ तत्करिष्यामीति ४। ते तमब्रुवञ्शरीरपरित्यागं लोक-

अनन्तर जिस स्थानमें भगवान् महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे थे १। इन्द्र आदि देवता उस ही स्थानपर गये और वहां जाके उनसे बोले, हे भगवन्! आपकी तपस्यामें कुशल है न? कुछ विघ्न तो नहीं हुआ? २। दधीचि उन लोगोंसे बोले, आप लोगोंका स्वागत है; कहिये, आपकी क्या सेवा करनी होगी? ३। आप लोग जो कहेंगे, मैं वही

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

हितार्थं भगवान्कर्तुमर्हतीति ५। अथ दधीचस्तथेवाविमनाः सुखदुःखसमो महायोगी आत्मानं समाधाय शरीरपरित्यागं चकार ६ ॥ २६ ॥

करूंगा ४। उन लोगोंने दधीचिसे कहा, सब लोगोंके हितके निमित्त आप भगवान्को शरीर त्यागना उचित है ५। अनन्तर महायोगी दधीचिने पहलेकी भांति चित्त स्थिर कर सुखदुःखमें समान ज्ञान करके आत्माको परमात्मामें लगाते हुए अपने शरीरका परित्याग किया ६ ॥ २६ ॥

तस्य परमात्मन्यवस्थिते तान्यस्थीनि धाता संगृह्य वज्रमकरोत् १। तेन वज्रेणाभेद्येनाप्रधृष्येण ब्रह्मास्थिसंभूतेन विष्णुप्रविष्टेनेन्द्रो विश्वरूपं जघान २। शिरसां चास्य छेदनमकरोत् ३। तस्मादनन्तरं विश्वरूपगात्रमथनसंभवं त्वष्ट्रोत्पादितमेवारिं वृत्रमिन्द्रो जघान ४ ॥ २७ ॥

जब उनका आत्मा शरीरसे पृथक् हुआ तब धाताने उनकी हड्डियोंको संग्रह करके वज्र बनाया १। देवराज इन्द्रने उस ब्राह्मणकी हड्डीके बने हुए अभेद्य अनभिभवनीय विष्णुप्रविष्ट वज्रसे विश्वरूपका वध किया २। विश्वरूपके तीनों शिरोंको काट दिया ३। अनन्तर उसके शरीरको मंथके त्वष्टाने इन्द्रके शत्रु वृत्रको उत्पन्न किया था; इन्द्रने उस वृत्रका भी वध किया ४ ॥ २७ ॥

तस्यां द्वैधीभूतायां ब्रह्मवध्यायां भयादिन्द्रो देवराज्यं परित्यज्य अप्सु संभवां शीतलां मानससरोगतां नलिनीं प्रपेदे १। तत्र चैश्वर्ययोगादणुमात्रो भूत्वा बिसग्रन्थिं प्रविवेश २ ॥ २८ ॥

अनन्तर इन्द्रके पास दोहरी ब्रह्महत्या प्रकट हुई, तब डरके इन्द्रने देवराज्यका परित्याग किया; देवताओंके राज्यको त्यागके इन्द्र जलसे उत्पन्न मानसरोवरवासिनी शीतला नलिनीके निकट उपस्थित हुए १। और ऐश्वर्यके योगबलसे अणुमात्र होकर उस कमलिनीके मृणालकी ग्रन्थिमें प्रविष्ट हुए २ ॥ २८ ॥

अथ ब्रह्मवध्याभयप्रनष्टे त्रैलोक्यनाथे शचीपतौ जगदनीश्वरं बभूव १। देवान्रजस्तमश्चाविवेश २। मन्त्रा न प्रावर्तन्त ३। महर्षीणां रक्षांसि प्रादुरभवन् ४। ब्रह्म चोत्सादनं जगाम ५। अनिन्द्राश्चाबला लोकाः सुप्रधृष्या बभूवुः ६ ॥ २९ ॥

अनन्तर तब त्रिलोकीनाथ इन्द्रके ब्रह्महत्याके भयसे छिपनेपर जगत् अनीश्वर हुआ १। रज और तमोगुणने देवताओंको आक्रमण किया २। महर्षियोंके मन्त्र निष्प्रभ हुए ३। राक्षसोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होने लगी, ४। वेद नष्ट होगये, ५। इन्द्रके अभावमें सब लोग निर्बल होनेसे अनायास ही अभिभवनीय हुए ६ ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ देवा ऋषयश्चायुषः पुत्रं नहुषं नाम देवराजत्वेऽभिषिषिचुः १। नहुषः पञ्चभिः शतैर्ज्योतिषां ललाटे ज्वलद्भिः सर्वतेजोहरैस्त्रिविष्टपं पालयांबभूव २। अथ लोकाः प्रकृतिमापेदिरे स्वस्थाश्च बभूवुः ३॥ ३०॥

अनन्तर देवताओं और ऋषियोंने आयुके पुत्र नहुष राजाको देवराज्यपर अभिषिक्त किया १। नहुष सब प्राणियोंके तेजको हरनेवाले ललाटमें पांच सौ ज्योतिःयुक्त होके स्वर्ग-राज्य शासन करने लगे २। अनन्तर सब लोग प्रकृतिस्थ हुए, सभी स्वस्थ और हृष्ट होनें लगे ३॥ ३०॥

अथोवाच नहुषः १। सर्वं मां शक्रोपभुक्तमुपस्थितमृते शचीमिति २। स एवमुक्त्वा शचीसमीपमगमदुवाच चैनाम् ३। सुभगेऽहमिन्द्रो देवानां भजस्व मामिति ४। तं शची प्रत्युवाच ५। प्रकृत्या त्वं धर्मवत्सलः सोमवंशोद्भवश्च ६। नार्हसि परपत्नीधर्षणं कर्तुमिति ७॥ ३१॥

उस समय नहुष बोले १। शचीके अतिरिक्त इन्द्रकी उपभुक्त समस्त वस्तुएं मेरे निकट उपस्थित हुई हैं २। वह ऐसा कहके शचीके निकट गये और उससे बोले ३। हे सुभगे! मैं देवताओंका अधिपति इन्द्र हूं, इसलिये तुम मेरी सेवा करो ४। शचीने उन्हें उत्तर दिया ५। तुम स्वभावसे ही धर्मवत्सल और विशेष करके चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो ६। इसलिये परायी स्त्रीका पातिव्रत्य नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है ७॥ ३१॥

तामथोवाच नहुषः १। ऐन्द्रं पदमध्यास्यते मया २। अहमिन्द्रस्य राज्यरत्न-हरो नात्राधर्मः कश्चित्त्वमिन्द्रभुक्तेति ३। सा तमुवाच ४। अस्ति मम किंचिद्व्रत-मपर्यवसितम् ५। तस्यावभृथे त्वामुपगमिष्यामि कैश्चिदेवाहोभिरिति ६। स शच्यै-वमभिहितो नहुषो जगाम ७॥ ३२॥

नहुषने उस समय उससे कहा १। मैं इन्द्रत्व पद पर अधिष्ठित हुआ हूं २। इन्द्रके राज्य, धन और रत्नोंपर मेरा अधिकार है; तुम इन्द्रकी उपभुक्ता हो, इसलिये तुम्हें उपभोग करनेसे मुझे कुछ अधर्म न होगा ३। शची नहुषसे बोली ४। मेरा कोई एक व्रत है, वह अभी समाप्त नहीं हुआ है; ५। उस व्रतके समाप्त होने पर स्नान करके कई एक दिनके बीच तुम्हारे निकट गमन करूंगी ६। इन्द्राणीका ऐसा वचन सुनके नहुषने वहांसे गमन किया ७॥ ३२॥

अथ शची दुःखशोकार्ता भर्तृदर्शनलालसा नहुषभयगृहीता बृहस्पति-

अनन्तर नहुषके भयसे डरी हुई दुःखी और शोकार्त्ता शची पतिको देखनेकेनिमित्त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मुपागच्छत् १। स च तामभिगतां दृष्ट्वैव ध्यानं प्रविश्य भर्तृकार्यतत्परां ज्ञात्वा बृहस्पतिरुवाच २। अनेनैव व्रतेन तपसा चान्विता देवीं वरदामुपश्रुतिमाह्वय ३। सा तवेन्द्रं दर्शयिष्यतीति ४ ॥ ३३ ॥

व्याकुल होकर बृहस्पतिके निकट गई १। बृहस्पति उसे अत्यन्त व्याकुल देख कर तथा ध्यान अवलम्बन करके भर्तृ कार्यमें तत्पर जानके बोले २। तुम इस पतिव्रत और तपस्यासे युक्त होकर वरदात्री उपश्रुति देवीको आवाहन करो ३। वह तुम्हें तुम्हारे इन्द्रको दिखा देगी ४ ॥ ३३ ॥

साथ महानियममास्थिता देवीं वरदामुपश्रुतिं मन्त्रैराह्वयत् १। सोपश्रुतिः शचीसमीपमगात् २। उवाच चैनामियमस्मि त्वयोपहूतोपस्थिता ३। किं ते प्रियं करवाणीति ४। तां मूर्ध्ना प्रणम्योवाच शची भगवत्यर्हसि मे भर्तारं दर्शयितुं त्वं सत्या मता चेति ५। सैनां मानसं सरोऽनयत् ६। तत्रेन्द्रं बिसग्रन्थिगतमदर्शयत् ७ ॥ ३४ ॥

अनन्तर शची महानियमवती होकर वरदात्री उपश्रुति देवीको मन्त्रके द्वारा आह्वान करने लगी १। वह उपश्रुति देवी शचीके समीप आयी; २। और उससे बोली, यह मैं तुम्हारे सामने खडी हूं; तुम्हारे बुलानेके अनुसार मैं आई हूं, ३। तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य साधन करूं ? ४। शची सिर झुकाके उसे प्रणाम करके बोली, हे भगवति ! तुम मेरे पतिको मुझे दिखा दो, तुम सत्यरूपिणी और परम श्रेष्ठा हो ५। उपश्रुति उस समय शचीको मानस-सरोवरपर ले गई ६। और वहांपर मृणालकी ग्रन्थिमें सूक्ष्म भावसे स्थित इन्द्रको दिखा दिया ७ ॥ ३४ ॥

तामिन्द्रः पत्नीं कृशां ग्लानां च दृष्ट्वा चिन्तयांबभूव १। अहो मम महदुःख मिदमद्योपगतम् २। नष्टं हि मामियमन्विष्योपागमदुःखार्तेति ३। तामिन्द्र उवाच कथं वर्तयसीति ४। सा तमुवाच ५। नहुषो मामाह्वयति ६। कालश्चास्य मया कृत इति ७ ॥ ३५ ॥

इन्द्र निज पत्नीको कृशित और दुःखी देखककर चिन्ता करने लगे १। हाय ! मुझे यह कैसा महान् दुःख आज उपस्थित हुआ ? २। मेरे छिपने पर भी मेरी दुःखार्त्ता पत्नी मुझे खोजके सम्मुख उपस्थित हुई है ३। इन्द्र उससे बोले, कैसी हो ? ४। शचीने इन्द्रसे कहा ५। नहुष मुझे भार्या बनानेके लिये आह्वान करता है ६। मैंने उससे कुछ कालके निमित्त अवसर लिया है ७ ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तामिन्द्र उवाच १। गच्छ २। नहुषस्त्वया वाच्योऽपूर्वेण मामृषियुक्तेन यानेन त्वमधिरूढ उद्वहस्व ३। इन्द्रस्य हि महान्ति वाहनानि मनसः प्रियाण्यधिरूढानि मया ४। त्वमन्येनोपयातुमर्हसीति ५। सैवमुक्ता हृष्टा जगाम ६। इन्द्रोऽपि बिसग्रन्थिमेवाविवेश भूयः ७॥ ३६॥

इन्द्रने उससे कहा १। तुम जाओ २। और नहुषसे कहो, तुम ऋषियोंसे जुते हुए अपूर्व यानपर चढके आओ और मुझे ले चलो ३। इन्द्रके अनेक प्रकार उत्तम और महान् सब वाहन विद्यमान हैं, मैंने अपनी इच्छानुसार सब यानों पर आरोहण किया हैं ४। तुम दुसरे किसी नवीन यान पर चढके मेरे निकट आना ५। इन्द्रने जब ऐसा कहा तब शची हर्षित होके वहांसे लौट गयी ६। इन्द्र भी फिर कमलकी नालमें प्रविष्ट हुए ७॥ ३६॥

अथेन्द्राणीमभ्यागतां दृष्ट्वोवाच नहुषः पूर्णः स काल इति १। तं शच्यब्रवीच्छक्रेण यथोक्तम् २। स महर्षियुक्तं वाहनमधिरूढः शचीसमीपमुपागच्छत् ३॥ ३७॥

इसके अनन्तर इन्द्राणीको आई हुई देखके नहुषने उससे कहा, तुम्हारा वह समय पूरा हुआ है १। उस समय शचीने उससे वही वचन कहा, जो कि उससे इन्द्रने कहा था २। अनन्तर नहुष महर्षियुक्त सवारी पर चढके शचीके निकट जाने लगे ३॥ ३७॥

अथ मैत्रावरुणिः कुम्भयोनिरगस्त्यो महर्षीन्विक्रियमाणांस्तान्नहुषेणापश्यत् १। पद्भ्यां च तेनास्पृश्यत २। ततः स नहुषमब्रवीदकार्यप्रवृत्त पाप पतस्व महीम् ३। सर्पो भव यावद्भूमिर्गिरयश्च तिष्ठेयुस्तावदिति ४। स महर्षिवाक्यसमकालमेव तस्माद्यानादवापतत् ५॥ ३८॥

उस समर्थ मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोनि ऋषिवर अगस्त्यने देखा, कि नहुषके द्वारा सब महर्षि धिक्कृत होरहे हैं १। देखते नहुषने उन्हें दोनों पैरोंसे धक्के दिये २। अनन्तर अगस्त्य मुनि नहुषसे बोले, रे अकार्यमें प्रवृत्त पापी! तू पृथ्वी पर गिर जा ३। जब तक भूमि और पर्वत विद्यमान रहेंगे तब तक तू सर्प होके निवास करेगा ४। नहुष महर्षिके ऐसा कहते ही उस ही समय यानसे नीचे गिर पडा ५॥ ३८॥

अथानिन्द्रं पुनस्त्रैलोक्यमभवत् १। ततो देवा ऋषयश्च भगवन्तं विष्णुं शरणमिन्द्रार्थेऽभिजग्मुः २। ऊचुश्चैनं भगवन्निन्द्रं ब्रह्मवध्याभिभूतं त्रातुमर्हसीति ३।

तीनों लोक फिर इन्द्रसे सूने हुए १। अनन्तर देवता और ऋषि इन्द्रके निमित्त भगवान् विष्णुकी शरणमें गये २। और उनसे कहा। हे भगवन्! ब्रह्महत्यासे पीडित हुए

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः स वरदस्तानब्रवीदश्वमेधं यज्ञं वैष्णवं शक्रोऽभियजतु ४। ततः स्वं स्थानं प्राप्स्यतीति ५ ॥ ३९ ॥

इन्द्रकी रक्षा करनी आपको उचित है ३। देवताओं और ऋषियोंका वचन सुनके वरदाता विष्णु उनसे बोले, इन्द्र विष्णुके उद्देश्यसे अश्वमेध यज्ञ करे ४। तो फिर वे निज पदको पावेंगे ५ ॥ ३९ ॥

ततो देवा ऋषयश्चेन्द्रं नापश्यन्यदा तदा शचीमूचुर्गच्छ सुभगे इन्द्रमानयस्वेति १। सा पुनस्तत्सरः समभ्यगच्छत् २। इन्द्रश्च तस्मात्सरसः समुत्थाय बृहस्पतिमभिजगाम ३। बृहस्पतिश्चाश्वमेधं महाक्रतुं शक्रायाहरत् ४। ततः कृष्णसारङ्गं मेध्यमश्वमुत्सृज्य वाहनं तमेव कृत्वा इन्द्रं मरुत्पतिं बृहस्पतिः स्वस्थानं प्रापयामास ५ ॥ ४० ॥

देवता और ऋषियोंने जब इन्द्रको कहीं न देखा; तब शचीसे कहा, हे सुभगे ! जाओ, इन्द्रको यहां ले आओ १। शची फिर उस ही सरोवरके निकट गई २। तब इन्द्र उस सरोवरसे निकलकर बृहस्पतिके समीपमें उपस्थित हुए ३। बृहस्पति इन्द्रके निमित्त अश्वमेध महायज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए ४। उस यज्ञमें कृष्णसारङ्ग मेध्य अश्व उत्सर्ग करके उसे वाहन बनाकर बृहस्पतिने सुरपति इन्द्रको निज पदपर प्रतिष्ठित किया ५ ॥ ४० ॥

ततः स देवराड्देवैर्ऋषिभिः स्तूयमानस्त्रिविष्टपस्थो निष्कल्मषो बभूव १। ब्रह्मवध्यां चतुर्षु स्थानेषु वनिताग्निवनस्पतिगोषु व्यभजत् २। एवमिन्द्रो ब्रह्मतेजःप्रभावोपबृंहितः शत्रुवधं कृत्वा स्वस्थानं प्रापितः ३ ॥ ४१ ॥

अनन्तर वह सुरराज देवताओं तथा ऋषियोंसे स्तुतियुक्त होकर निष्पाप होकर स्वर्गमें रहने लगे १। और स्त्री, अग्नि, वनस्पति और गौ, इन चार स्थानोंमें उन्होंने अपनी ब्रह्महत्याको विभक्त कर रखा २। इस ही प्रकार इन्द्रने ब्रह्मतेजके प्रभावसे वर्द्धित होकर शत्रुका वध करके निज पद पाया था ३ ! ॥ ४१ ॥

आकाशगङ्गागतश्च पुरा भरद्वाजो महर्षिरुपास्पृशंस्त्रीन्क्रमान्क्रमता विष्णुना भ्यासादितः १। स भरद्वाजेन ससलिलेन पाणिनोरसि ताडितः सलक्षणोरस्कः संवृत्तः २ ॥ ४२ ॥

पहिले समयमें महर्षि भरद्वाज आकाशगङ्गामें गमन करके उसमें आचमन करते थे, तब तीन पगसे त्रिलोकोंकी नापते हुए भगवान् विष्णु उनके पास आये १। भरद्वाजने चुल्लूमें जल लेके उसहीसे नारायणके वक्षस्थलमें आघात किया, तभीसे उनका वक्षस्थल चिन्हयुक्त होरहा है २ ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भृगुणा महर्षिणा शप्तोऽग्निः सर्वभक्षत्वमुपनीतः १ ॥ ४३ ॥
महर्षि भृगुके अभिशापसे अग्निदेव सर्वभक्षी हुए हैं १ ॥ ४३ ॥

अदितिर्वै देवानामन्नमपचदेतद्भुक्त्वासुरान्हनिष्यन्तीति १। तत्र बुधो व्रतचर्यासमाप्तावागच्छत् २। अदितिं चावोचद्भिक्षां देहीति ३। तत्र देवैः पूर्वमेतत्प्राश्यं नान्येनेत्यदितिर्भिक्षां नादात् ४। अथ भिक्षाप्रत्याख्यानरुषितेन बुधेन ब्रह्मभूतेन विवस्वतो द्वितीये जन्मन्यण्डसंज्ञितस्याण्डं मारितमदित्याः ५। स मार्तण्डो विवस्वानभवच्छ्राद्धदेवः ६ ॥ ४४ ॥

अदितिने देवताओंके निमित्त अन्नपाक किया था, वे लोग उस ही अन्नको खाके असुरोंको मारेंगे, यही उद्देश्य था १। उस समय बुध व्रत समाप्त होनेपर अदितिके निकट गये २। और अदितिसे बोले– भिक्षा दीजिये ३। 'देवता लोग पहले इस अन्नको भोजन करेंगे, दुसरा कोई भी उसे भोजन न करने पावेगा' इस ही निमित्त अदितिने बुधको भिक्षा नहीं दी ४। भिक्षा न पाने पर बुध स्वरूप ब्राह्मणने रुष्ट होकर अण्ड नामधारी विवस्वान्के दूसरे जन्मके समय वह अदितिके पेटका अण्ड मारा ५। मृत अण्डसे प्रकट होनेके कारण श्राद्धदेव संज्ञक विवस्वान् मार्तण्ड नामसे प्रसिद्ध हुए ६ ॥ ४४ ॥

दक्षस्य वै दुहितरः षष्टिरासन् १। ताभ्यः कश्यपाय त्रयोदश प्रादाद्दश धर्माय दश मनवे सप्तविंशतिमिन्दवे २। तासु तुल्यासु नक्षत्राख्यां गतासु सोमो रोहिण्यामभ्यधिकां प्रीतिमकरोत् ३। ततस्ताः शेषाः पत्न्य ईर्ष्यावत्यः पितुः समीपं गत्वेममर्थं शशंसुः ४। भगवन्नस्मासु तुल्यप्रभावासु सोमो रोहिणीमधिकं भजतीति ५। सोऽब्रवीद्यक्ष्मैनमावेक्ष्यतीति ६ ॥ ४५ ॥

प्रजापति दक्षकी साठ कन्याएं थीं १। उनमेंसे उन्होंने कश्यपको तेरह, धर्मको दस, मनुको दस और चन्द्रमाको सत्ताईस कन्याएं दान कीं २। चन्द्रमाको दी हुई सभी कन्याएं समान रूपवती तथा नक्षत्र नामसे विख्यात थीं। सबके समान होने पर भी चन्द्रमा रोहिणीसे अधिक प्रीति करते थे ३। उसहीसे शेष अन्य स्त्रियोंने ईर्षावती होकर पिताके निकट जाके इस विषयको वर्णन किया ४। हे भगवान्! हम सबके तुल्यप्रभा होनेपर भी रजनीनाथ रोहिणीसे अधिक प्रीति करते हैं ५। दक्ष बोले, 'चन्द्रमाके शरीरमें यक्ष्मा रोग प्रवेश करेगा' ६ ॥ ४५ ॥

दक्षशापात्सोमं राजानं यक्ष्माविवेश १। स यक्ष्मणाविष्टो दक्षमगमत् २। दक्षश्चैनमब्रवीन्न समं वर्तस इति ३। तत्रर्षयः सोममब्रुवन्क्षीयसे यक्ष्मणा ४।

दक्षके उस ही शापसे यक्ष्माने राजा चन्द्रमाके शरीरमें प्रवेश किया; १। चन्द्रमा यक्ष्मायुक्त होकर दक्षके निकट गये २। दक्ष इनसे बोले, तुम अपनी सब पत्नियोंके पति

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पश्चिमस्यां दिशि समुद्रे हिरण्यसरस्तीर्थम् ५ । तत्र गत्वात्मानमभिषेचयस्वेति ६ । अथागच्छत्सोमस्तत्र हिरण्यसरस्तीर्थम् ७ । गत्वा चात्मनः स्नपनमकरोत् ८ । स्नात्वा चात्मानं पाप्मनो मोक्षयामास ९ । तत्र चावभासितस्तीर्थे यदा सोमस्तदाप्रभृति तीर्थं तत्प्रभासमिति नाम्ना ख्यातं बभूव १० । तच्छापादद्यापि क्षीयते सोमोऽमावास्यान्तरस्थः ११ । पौर्णमासीमात्रेऽधिष्ठितो मेघलेखाप्रतिच्छन्नं वपुर्दर्शयति १२ । मेघसदृशं वर्णमगमत्तदस्य शशलक्ष्म विमलमभवत् १३ ॥ ४६ ॥

समान व्यवहार नहीं करते, हो ३ । उस समय ऋषियोंने चन्द्रमासे कहा, तुम यक्ष्मासे क्षीण होते हो, ४ । इसलिये पश्चिम दिशाकी ओर समुद्रके निकट हिरण्य सरोवर नामक तीर्थ है ५ । वहां जाके तुम स्नान करो ६ । अनन्तर सोम उस हिरण्य सरोवर तीर्थमें गये ७ । वहां जाके स्नान किया ८ । स्नान करके उन्होंने अपने आपको पापसे छुडाया ९ । चन्द्रमा उस तीर्थमें दिव्य प्रभासे प्रभावित हुए थे, उस ही समयसे वह स्थान प्रभास तीर्थके नामसे विख्यात हुआ है १० । उसी दक्षशापसे अब तक भी चन्द्रमा कृष्णपक्षमें अमावास्यातक क्षीण होता है ११ । और शुक्लपक्षमें पौर्णिमातक उसकी वृद्धि होती है; उसका मण्डलाकार स्वरूप मेघकी शाम रेखासे आच्छन्न दिखायी देता है १२ । वह मेघ सदृश वर्णका हुआ है; इसका निर्मल अंश शश–कलङ्क रूपसे प्रकाशित है १३ ॥ ४६ ॥

स्थूलशिरा महर्षिर्मेरोः प्रागुत्तरे दिग्भावे तपस्तेपे १ । तस्य तपस्तप्यमानस्य सर्वगन्धवहः शुचिर्वायुर्विवायमानः शरीरमस्पृशत् २ । स तपसा तापितशरीरः कृशो वायुनोपवीज्यमानो हृदयपरितोषमगमत् ३ । तत्र तस्यानिलव्यजनकृतपरितोषस्य सद्यो वनस्पतयः पुष्पशोभां न दर्शितवन्त इति स एताञ्शशाप न सर्वकालं पुष्पवन्तो भविष्यथेति ४ ॥ ४७ ॥

स्थूलशिरा महर्षिने सुमेरु पर्वतके पूर्वोत्तर दिशामें तपस्या की थी १ । जब वह तपस्या कर रहे थे, तब सर्वगन्धवाहक पवित्र वायुने बहते हुए उनका शरीर स्पर्श किया; २ । वह तपस्यासे तापित और शरीरसे कृश हुए थे, इससे वायुसे उपवीज्यमान होकर हृदयसे परितुष्ट हुए ३ । उस समय उनके उस अनिल–व्यञ्जनकृत परितोषक चिन्हस्वरूप वनस्पतियोंने पुष्पशोभा प्रदर्शित नहीं की । महर्षिने उन वनस्पतियोंको यह शाप दिया, कि सब समयमें तुम पुष्पवन्त न होगे ४ ॥ ४७ ॥

नारायणो लोकहितार्थं वडवामुखो नाम महर्षिः पुराभवत् १ । तस्य मेरौ तपस्तप्यतः समुद्र आहूतो नागतः २ । तेनामर्षितेनात्मगात्रोष्मणा समुद्रः स्तिमि-

पहले समयमें नारायण सब लोकोंके हितके निमित्त बडवामुख नामक महर्षि हुए थे १ । उन्होंने सुमेरु पर्वतपर तपस्या करते हुए समुद्रको आवाहन किया, परन्तु समुद्र

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तजलः कृतः ३। स्वेदप्रस्यन्दनसदृशश्चास्य लवणभावो जनितः ४। उक्तश्चापेयो भविष्यसि ५। एतच्च ते तोयं वडवामुखसंज्ञितेन पीयमानं मधुरं भविष्यति ६। तदेतदद्यापि वडवामुखसंज्ञितेनानुवर्तिना तोयं सामुद्रं पीयते ७ ॥ ४८ ॥

आवाहन करनेपर उनके निकट उपस्थित नहीं हुआ २। तब उन्होंने क्रुद्ध होकर निज शरीरकी गर्मीसे समुद्रको स्तिमित जल किया; पसीना झरनेके भांति समुद्रका जल खारा हो गया ४। उन्होंने समुद्रसे कहा तुम अपेय होगे ५। तुम्हारा जल बाडवामुखके सहारे पीयमान होनेसे मधुर होगा ६। इसीसे आजतक समुद्रका जल उसके अनुवर्त्ती बाढवामुखके सहारे पीयमान होता है ७ ॥ ४८ ॥

हिमवतो गिरेर्दुहितरमुमां रुद्रश्चकमे १। भृगुरपि च महर्षिर्हिमवन्तमागम्याब्रवीत्कन्यामुमां मे देहीति २। तमब्रवीद्धिमवानभिलषितो वरो रुद्र इति ३। तमब्रवीद्भृगुर्यस्मात्त्वयाहं कन्यावरणकृतभावः प्रत्याख्यातस्तस्मान्न रत्नानां भवान्भाजनं भविष्यतीति ४। अद्यप्रभृत्येतदवस्थितमृषिवचनम् ५ ॥ ४९ ॥

रुद्रदेवने हिमालय शैलकी पुत्री उमाकी कामना की १। उस समय महर्षि भृगु भी हिमवानके निकट जाके बोले, यह कन्या मुझे दान करो २। हिमालयने उनसे कहा, रुद्र इसके अभिलषित वर हैं ३। भृगुने उन्हें उत्तर दिया, मैं कन्याका वरण करनेकी भावना लेकर यहां आया था, परंतु तुमने मुझे कन्या देना अस्वीकार किया है, तब तुम अबसे रत्नोंके भण्डार नहीं होगे। आज भी ऋषिका वचन हिमवान्को लागू हो रहा है ५ ॥ ४९ ॥

तदेवंविधं माहात्म्यं ब्राह्मणानाम् १। क्षत्रमपि शाश्वतीमव्ययां पृथिवीं पत्नीमभिगम्य बुभुजे २। तदेतद्ब्रह्माग्नीषोमीयम् ३। तेन जगद्धार्यते ४ ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९ ॥ १२२१४ ॥

ब्राह्मणोंका इस ही प्रकार माहात्म्य है १। क्षत्रिय जाति भी शाश्वती और अव्यया पृथ्वीको पत्नीभावसे उपभोग करती है २। यह जो अग्नि और सोमीय ब्रह्म है ३। उसके सहारे यह जगत् धारण किया जाता है ४ ॥ ५० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२९ ॥ १२२१४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३३० :

श्रीभगवानुवाच—

सूर्याचन्द्रमसौ शश्वत्केशौ मे अंशुसंज्ञितैः ।
बोधयंस्तापयंश्चैव जगदुत्तिष्ठतः पृथक् ॥ १ ॥

श्री भगवान् बोले– सूर्य और चन्द्रमा मेरे नेत्र हैं, उनकी किरणोंको मेरे केश कहे गयें हैं; चन्द्रमा और सूर्य जगत्को प्रबुद्ध और तापित करते हुए धारण कर रहे हैं ॥ १ ॥

बोधनात्तापनाच्चैव जगतो हर्षणं भवेत् ।
अग्नीषोमकृतैरोभिः कर्मभिः पाण्डुनन्दन ।
हृषीकेशोऽहमीशानो वरदो लोकभावनः ॥ २ ॥

ये दोनों बोधन और तापन हेतुसे जगत्के हर्षदायक हुए हैं। हे पाण्डुनन्दन! अग्नि और चन्द्रमाके इन सब कर्मोंसे मैं विश्वभावन वरदायक ईश्वर हृषीकेश नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥

इडोपहूतयोगेन हरे भागं क्रतुष्वहम् ।
वर्णश्च मे हरिश्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ॥ ३ ॥

और यज्ञमें मैं 'इळोपहूता सह दिवा' इत्यादि मन्त्रोंसे आहूत होकर यज्ञभाग हरण करता हूं, इस ही निमित्त अथवा मेरा वर्ण हरिन्मणिके समान है, इस ही लिये मैं हरि नामस स्मृत हुआ करता हूं ॥ ३ ॥

धाम सारो हि लोकानामृतं चैव विचारितम् ।
ऋतधामा ततो विप्रैः सत्यश्चाहं प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

मैं सब लोगोंका श्रेष्ठ धाम और अबाधित सत्य ऋतु–स्वरूप हूं; इस हीसे ब्राह्मण लोग मुझे ऋतुधामा कहते हैं ॥ ४ ॥

नष्टां च धरणीं पूर्वमविन्दं वै गुहागताम् ।
गोविन्द इति मां देवा वाग्भिः समभितुष्टुकः ॥ ५ ॥

पहले समयमें मैंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीको धारण किया था, इस ही निमित्त देवता लोग गोविन्द नामसे मेरी स्तुति किया करते हैं ॥ ५ ॥

शिपिविष्टेति चाख्यायां हीनरोमा च यो भवेत् ।
तेनाविष्टं हि यत्किंचिच्छिपिविष्टं हि तत्स्मृतम् ॥ ६ ॥

अवयवरहित निष्कल अर्थात् निरंशको शिपि कहते हैं, उस शिपिरूपसे मैं सब वस्तुओंमें प्रविष्ट होरहा हूं इसीसे लोग मुझे शिपिविष्ट नामसे स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान् ।
शिपिविष्ट इति ह्यस्मादगुह्यनामधरो ह्यहम् ॥ ७ ॥

यास्क ऋषिने अव्यग्र चित्त होकर अनेक यज्ञोंमें शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति की थी; इस ही लिये मैंने शिपिविष्ट इस गुप्त नामको धारण किया है ॥ ७ ॥

स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्को ऋषिरुदारधीः ।
मत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमभिजग्मिवान् ॥ ८ ॥

उदार बुद्धिशक्तिसे युक्त यास्क ऋषिने शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति करके मेरी ही कृपासे वेदहरणके समय पातालतलमें अन्तर्हित निरुक्त लाभ किया था ॥ ८ ॥

न हि जातो न जायेऽहं न जनिष्ये कदाचन ।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां तस्मादहमजः स्मृतः ॥ ९ ॥

मैंने पहले कभी जन्म ग्रहण नहीं किया, न करता हूं, न आगे कभी करूंगा; मैं सब भूतोंका क्षेतज्ञ आत्मा हूं इस ही निमित्त अज नामसे अभिहित हुआ करता हूं ॥ ९ ॥

नोक्तपूर्वं मया क्षुद्रमश्लीलं वा कदाचन ।
ऋता ब्रह्मसुता सा मे सत्या देवी सरस्वती ॥ १० ॥

पहिले मैंने कभी क्षुद्र अथवा अश्लील वचन नहीं कहा, सत्या और परम सत्या ब्रह्मकन्या सरस्वती देवी सदा मेरी वाणी है ॥ १० ॥

सच्चासच्चैव कौन्तेय मयावेशितमात्मनि ।
पौष्करे ब्रह्मसदने सत्यं मामृषयो विदुः ॥ ११ ॥

हे कौन्तेय ! सत् और असत् दोनों ही मेरे आत्मामें आवेशित हैं । मेरे नाभिसे प्रकट हुआ कमलही ब्रह्माका उत्पत्तिस्थान है, ऋषि लोग मुझे ही सत्य स्वरूप जानते हैं ॥ ११ ॥

सत्त्वान्न च्युतपूर्वोऽहं सत्त्वं वै विद्धि मत्कृतम् ।
जन्मनीहाभवत्सत्त्वं पौर्विकं मे धनंजय ॥ १२ ॥

हे धनञ्जय ! पहले मैं कभी सत्त्वसे च्युत नहीं हुआ हूं; जानना चाहिये कि सत्ब्रह्म तथा उसकी सत्ता मेरे सहारेसे ही विहीत हुई है; मेरी पहले समयकी सत्ता इस जन्ममेंभी विद्यमान है ॥ १२ ॥

निराशीः कर्मसंयुक्तं सात्वतं मां प्रकल्पय ।
सात्वतज्ञानदृष्टोऽहं सात्वतः सात्वतां पतिः ॥ १३ ॥

मैं निष्काम कर्म संयुक्त सत्त्वत अर्थात् सत्त्वके सहारे पालन किया करता हूं; मैं अकल्मष हूं, अर्थात् मुझमें कुछ पाप नहीं है, पञ्चरात्र आदि ज्ञानसे मैं दीख पडता हूं; इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे सात्त्वत कहा करते है ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कृषामि मेदिनीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो महान् ।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात्तस्मात्कृष्णोऽहमर्जुन ॥ १४ ॥

हे पार्थ ! अर्जुन ! मैं काले लोहेका महान् हलफालरूपी होकर पृथ्वीका कर्षण किया करता हूं, मेरा रूप कृष्ण वर्ण है, इसीसे मेरा कृष्ण नाम है ॥ १४ ॥

मया संश्लेषिता भूमिरद्भिर्व्योम च वायुना ।
वायुश्च तेजसा सार्धं वैकुण्ठत्वं ततो मम ॥ १५ ॥

मैंने जलके सहित भूमि, वायुके सहित आकाश और अग्निके सहित वायुको संश्लेषित किया है; अर्थात् पञ्च भूतोंके कुण्ठा अर्थात् मेलन–विषयमें असामर्थ्य विनष्ट किया है, इस ही निमित्त मेरा नाम वैकुण्ठ है ॥ १५ ॥

निर्वाणं परमं सौख्यं धर्मोऽसौ पर उच्यते ।
तस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा ॥ १६ ॥

परम सौख्यपूर्ण निर्वाण ही ब्रह्म है; वही परम धर्म रूपसे वर्णित हुआ करता है; उस धर्मसे मैं पहले कभी च्युत नहीं हुआ हूं, इस ही निमित्त मेरा नाम अच्युत है ॥ १६ ॥

पृथिवीनभसी चोभे विश्रुते विश्वलौकिके ।
तयोः संधारणार्थं हि मामधोक्षजमञ्जसा ॥ १७ ॥

पृथ्वी और आकाश ये दोनों ही विश्व लौकिक कहके प्रसिद्ध हैं; उन दोनोंको अनायास परिपूर्णरीतिसे धारण करनेके कारण लोग मुझे अधोक्षज कहते हैं ॥ १७ ॥

निरुक्तं वेदविदुषो ये च शब्दार्थचिन्तकाः ।
ते मां गायन्ति प्राग्वंशे अधोक्षज इति स्थितिः ॥ १८ ॥

वेदशब्दार्थचिन्तक वेदवित् पुरुष मुझे यथार्थ रूपसे अधोक्षज अर्थात् जगल्लय, स्थिति और जन्मका स्थान कहा करते हैं। ऋषि लोग यज्ञशालाके एक अंशमें अधोक्षज नामसे मेरी स्तुति करते हैं, इसलिये मेरा नाम अधोक्षज है ॥ १८ ॥

शब्द एकमतैरेष व्याहृतः परमर्षिभिः ।
नान्यो ह्यधोक्षजो लोके ऋते नारायणं प्रभुम् ॥ १९ ॥

महर्षियोंके सहारे पृथक् पदके द्वारा अधोक्षज शब्द उच्चारण किया जाता है; सर्वशक्तिमान् नारायणके अतिरिक्त अधोक्षज शब्दका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है ॥ १९ ॥

घृतं ममार्चिषो लोके जन्तूनां प्राणधारणम् ।
घृतार्चिरहमव्यग्रैर्वेदज्ञैः परिकीर्तितः ॥ २० ॥

जन्तुओंका प्राणाधार घृत ही मेरे स्वरूपभूत अग्निकी अर्चिष–ज्वाला है, इस ही निमित्त अव्यग्र वेदज्ञ पुरुषोंके द्वारा मैं घृतार्चि नामसे वर्णित हुआ करता हूं ॥ २० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्रयो हि धातवः ख्याताः कर्मजा इति च स्मृताः ।
पित्तं श्लेष्मा च वायुश्च एष संघात उच्यते ॥ २१ ॥

पित्त, कफ और वात, ये तीनों कर्मज माने गये धातु विख्यात हैं; इन तीनोंको ही संघात कहते हैं ॥ २१ ॥

एतैश्च धार्यते जन्तुरेतैः क्षीणैश्च क्षीयते ।
आयुर्वेदविदस्तस्मात्त्रिधातुं मां प्रचक्षते ॥ २२ ॥

तीनों धातुओंसे सब जीव विधृत हो रहे हैं, धातुक्षय होनेसे जीवन क्षीण हुआ करता है; इस ही निमित्त आयुर्वेदके जाननेवाले पुरुष मुझे त्रिधातु कहा करते हैं ॥ २२ ॥

वृषो हि भगवान्धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत ।
नैघण्टुकपदाख्यातं विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥ २३ ॥

हे भारत ! लोकोंमें भगवान् धर्म वृष रूपसे विख्यात हैं; निघण्टु अर्थात् वैदिक शब्दार्थ बोधक कोशमें वृषका अर्थ धर्म है; इसलिये उत्तम धर्म स्वरूप मुझे वृष जानो ॥ २३ ॥

कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।
तस्माद्वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ॥ २४ ॥

कपि शब्दसे वराह और श्रेष्ठ तथा धर्म शब्दसे वृष कहा जाता है, इस ही लिये प्रजापति कश्यप मुझे वृषाकपि कहते हैं ॥ २४ ॥

न चादिं न मध्यं तथा नैव चान्तं कदाचिद्विदन्ते सुराश्चासुराश्च ।
अनाद्यो ह्यमध्यस्तथा चाप्यनन्तः प्रगीतोऽहमीशो विभुर्लोकसाक्षी ॥ २५ ॥

देवता और असुर किसी समयमें भी मेरा आदि, मध्य और अन्त कुछ भी नहीं जानते, इस ही निमित्त मैं अनादि, अमध्य और अनन्त रूपसे वर्णित हुआ करता हूं; मैं लोकसाक्षी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूं ॥ २५ ॥

शुचीनि श्रवणीयानि शृणोमीह धनंजय ।
न च पापानि गृह्णामि ततोऽहं वै शुचिश्रवाः ॥ २६ ॥

हे धनञ्जय ! मैं पवित्र और सुनने योग्य विषयोंको ही सुना करता हूं, पापोंको ग्रहण नहीं करता, इस ही निमित्त मेरा नाम शुचिश्रवा है ॥ २६ ॥

एकशृङ्गः पुरा भूत्वा वराहो दिव्यदर्शनः ।
इमामुद्धृतवान्भूमिमेकशृङ्गस्ततो ह्यहम् ॥ २७ ॥

पहले समयमें मैंने दिव्य दर्शनवाले एकशृङ्ग वराहमूर्त्ति धारण करके इस वसुन्धराका उद्धार किया था, इसीसे मैं एकशृङ्ग नामसे अभिहित होता हूं ॥ २७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तथैवासं त्रिककुदो वाराहं रूपमास्थितः।
त्रिककुत्त्वेन विख्यातः शरीरस्य तु मापनात् ॥ २८ ॥

जब मैंने उस भांतिसे वराह रूप धरा, उस समय स्कन्ध, पोत्र, सूकरके मुखाग्र तथा दांत ऊंचे हुए थे, इस ही निमित्त शरीरके मापसे मैं त्रिककुद् नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २८ ॥

विरिञ्च इति यः प्रोक्तः कपिलज्ञानचिन्तकैः।
स प्रजापतिरेवाहं चेतनात्सर्वलोककृत् ॥ २९ ॥

कपिल मुनिके द्वारा प्रतिपादित सांख्य शास्त्रके ज्ञानी महर्षि लोग जो विरिंच कहा करते हैं, मैं चेतन निबन्धन कर्तृत्व रूपसे वही प्रजापति हूं, इसीसे विरञ्च नामसे प्रसिद्ध हुआ करता हूं ॥ २९ ॥

विद्यासहायवन्तं मामादित्यस्थं सनातनम्।
कपिलं प्राहुराचार्याः सांख्या निश्चितनिश्चयाः ॥ ३० ॥

निश्चित-निश्चय सांख्य मतको अवलम्बन करनेवाले आचार्य लोग मुझे विद्यासहायविशिष्ट आदित्यस्थ सनातन देवता कपिल कहा करते हैं ॥ ३० ॥

हिरण्यगर्भो द्युतिमानेष यश्छन्दसि स्तुतः।
योगैः संपूज्यते नित्यं स एवाहं विभुः स्मृतः ॥ ३१ ॥

जो द्युतिमान् हिरण्यगर्भ रूपसे वेदके बीच स्तुत होता है, और योगी लोग जिसकी सदा पूजा और स्मरण किया करते हैं, इस भूलोकमें मैं उस ही रूपसे स्मृत हुआ हूं ॥ ३१ ॥

एकविंशतिशाखं च ऋग्वेदं मां प्रचक्षते।
सहस्रशाखं यत्साम ये वै वेदविदो जनाः।
गायन्त्यारण्यके विप्रा मद्भक्तास्तेऽपि दुर्लभाः ॥ ३२ ॥

वेद जाननेवाले पुरुष मुझे ही इक्कीस हजार शाखाओंसे युक्त ऋग्वेद और एक हजार शाखाओंसेयुक्त सामवेद कहा करते हैं। मेरे भक्त दुर्लभ विप्रवृन्द आरण्यक वेदमन्त्रोंसे मेरा यश गाते हैं ॥ ३२ ॥

षट्पञ्चाशतमष्टौ च सप्तत्रिंशतमित्युत।
यस्मिञ्शाखा यजुर्वेदे सोऽहमाध्वर्यवे स्मृतः ॥ ३३ ॥

जिस यजुर्वेदमें एक सौ एक शाखएं विद्यमान हैं, यजुर्वेद जाननेवाले पुरुषोंके निकट मैं उस ही यजुःस्वरूपसे स्मृत हुआ हूं ॥ ३३ ॥

पञ्चकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम्।
कल्पयन्ति हि मां विप्रा अथर्वाणविदस्तथा ॥ ३४ ॥

पञ्चकल्पयुक्त अथर्ववेद जो अभिचार आदि कार्योंसे परिबृंहित होरहा है, अथर्ववेदके जाननेवाले ब्राह्मण लोग मुझे ही अथर्वरूपसे कल्पना किया करते हैं ॥ ३४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

शाखाभेदाश्च ये केचिद्याश्च शाखासु गीतयः।
स्वरवर्णसमुच्चाराः सर्वांस्तान्विद्धि मत्कृतान् ॥ ३५ ॥

जो समस्त शाखाभेद और शाखाओंमें जितने गीत तथा स्वर और वर्णके उच्चारण करनेकी जितनी रीतियां हैं, वे सब मुझसे ही बनायी हुई जानो ॥ ३५ ॥

यत्तद्धयशिरः पार्थ समुदेति वरप्रदम्।
सोऽहमेवोत्तरे भागे क्रमाक्षरविभागवित् ॥ ३६ ॥

हे पार्थ ! हयशिरा रूपसे जो वरप्रद होके प्रकट होता है, मैं ही उस रूपसे क्रम क्रमसे अक्षर विभागका बोध किया करता हूं ॥ ३६ ॥

रामादेशितमार्गेण मत्प्रसादान्महात्मना।
पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद्भूतात्सनातनात्।
बाभ्रव्यगोत्रः स बभौ प्रथमः क्रमपारगः ॥ ३७ ॥

मेरी ही कृपाप्रसादसे रामदेवके कहे हुए ध्यानमार्गके सहारे महानुभाव पाञ्चाल मुनि उस सनातन पुरुषसे वेदका क्रम अर्थात् दोनों पदके विभाग और अक्षर विभागको जानते हैं। बाभ्रव्यगोत्री पाञ्चाल मुनि पहले क्रमपारग रूपसे विख्यात हुए ॥ ३७ ॥

नारायणाद्वरं लब्ध्वा प्राप्य योगमनुत्तमम्।
क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः ॥ ३८ ॥

भगवान् नारायणके निकट वर पानेसे अनुत्तम योग प्राप्त करके वेदके क्रमविभाग और शिक्षाका प्रणयन महर्षि गालवने किया ॥ ३८ ॥

कण्डरीकोऽथ राजा च ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्।
जातीमरणजं दुःखं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः।
सप्तजातिषु मुख्यत्वाद्योगानां संपदं गतः ॥ ३९ ॥

कण्डरीककुलमें उत्पन्न प्रतापवान् राजा ब्रह्मदत्तने सातजन्मोंके जन्ममरणजनित दुःखोंको बारबार स्मरण करके वैराग्यके कारण योगसम्पत्ति प्राप्त की थी ॥ ३९ ॥

पुराहमात्मजः पार्थ प्रथितः कारणान्तरे।
धर्मस्य कुरुशार्दूल ततोऽहं धर्मजः स्मृतः ॥ ४० ॥

हे कुन्तीनन्दन ! पहले समयमें मैं किसी कारणसे धर्मके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुआ था, इसही निमित्त ऋषि लोग मुझे धर्मज कहके स्मरण करते हैं ॥ ४० ॥

नरनारायणौ पूर्वं तपस्तेपतुरव्ययम्।
धर्मयानं समारूढौ पर्वते गन्धमादने ॥ ४१ ॥

पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर धर्मयानमें चढके नर और नारायणने अक्षय तपस्या की थी ॥ ४१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्कालसमयं चैव दक्षयज्ञो बभूव ह ।
न चैवाकल्पयद्भागं दक्षो रुद्रस्य भारत ॥ ४२ ॥

उसही समयमें दक्षका यज्ञ हुआ था। हे भारत! उस यज्ञमें दक्षने रुद्रदेवके भागकी कल्पना नहीं की थी ॥ ४२ ॥

ततो दधीचिवचनाद्दक्षयज्ञमपाहरत् ।
ससर्ज शूलं क्रोधेन प्रज्वलन्तं मुहुर्मुहुः ॥ ४३ ॥

उसही निमित्त महादेवने क्रुद्ध होकर दधीचिके वचनके अनुसार दक्षका यज्ञ विनष्ट किया। उन्होंने क्रुद्ध होकर बारबार प्रज्वलित त्रिशूलका प्रयोग किया ॥ ४३ ॥

तच्छूलं भस्मसात्कृत्वा दक्षयज्ञं सविस्तरम् ।
आवयोः सहसागच्छद्बदर्याश्रममन्तिकात् ।
वेगेन महता पार्थ पतन्नारायणोरसि ॥ ४४ ॥

वह त्रिशूल दक्षके विशाल यज्ञको भस्त करके सहसा बदरिकाश्रममें हम दोनोंके निकट उपस्थित हुआ। हे पार्थ! वह त्रिशूल महावेगके सहित नारायणके वक्षस्थलपर गिरा ॥ ४४ ॥

ततः स्वतेजसाविष्टाः केशा नारायणस्य ह ।
बभूवुर्मुञ्जवर्णास्तु ततोऽहं मुञ्जकेशवान् ॥ ४५ ॥

नारायणके समस्त केश उस त्रिशूलके तेजसे परिपूर्ण होकर मुञ्जवर्ण हुए थे, इस ही निमित्त मैंने मुञ्जकेश नाम धारण किया है ॥ ४५ ॥

तच्च शूलं विनिर्धूतं हूंकारेण महात्मना ।
जगाम शंकरकरं नारायणसमाहतम् ॥ ४६ ॥

अनन्तर उस त्रिशूलको महात्मा नारायणने हुङ्कारध्वनिसे पीछे हटाया और वह आहत होके फिर शङ्करके हाथमें चला गया ॥ ४६ ॥

अथ रुद्र उपाधावत्तावृषी तपसान्वितौ ।
तत एनं समुद्धूतं कण्ठे जग्राह पाणिना ।
नारायणः स विश्वात्मा तेनास्य शितिकण्ठता ॥ ४७ ॥

जब शूल हाथमें लौट आया, तब रुद्रदेव उन तपस्यायुक्त नर और नारायण दोनों ऋषियोंकी ओर दौडे। आक्रमणकारी रुद्रदेवके वेगपूर्वक निकट आनेपर विश्वात्मा नारायणने हाथसे उनका कण्ठ पकड लिया। कृष्णवर्ण नारायणके करसम्बन्धसे रुद्रका कण्ठ नीलवर्ण हो गया, उसही समयसे वह शितिकण्ठ नामसे विख्यात हुए ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ रुद्रविघातार्थमिषीकां जगृहे नरः।
मन्त्रैश्च संयुयोजाशु सोऽभवत्परशुर्महान् ॥ ४८ ॥

अनन्तर नरने रुद्रके विनाशके निमित्त इषिका उठायी और शीघ्रही मन्त्रयुक्त करनेसे वह अत्यन्त महान् परशुके रूपमें परिणत हुई ॥ ४८ ॥

क्षिप्तश्च सहसा रुद्रे खण्डनं प्राप्तवांस्तदा।
ततोऽहं खण्डपरशुः स्मृतः परशुखण्डनात् ॥ ४९ ॥

नरके द्वारा वह परशु सहसा चलाये जानेपर रुद्रके द्वारा खण्डित कर दिया गया; परशु खण्डन करनेके कारण उसही समयसे मैं खण्डपरशु नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४९ ॥

अर्जुन उवाच—

अस्मिन्युद्धे तु वार्ष्णेय त्रैलोक्यमथने तदा।
जयं कः प्राप्तवांस्तत्र शंसैतन्मे जनार्दन ॥ ५० ॥

अर्जुन बोले— हे वृष्णिवंशनन्दन जनार्दन ! उस समयमें इस त्रैलोक्य शमनसंग्राममें किसकी जय हुई ? वह मेरे निकट वर्णन करो ॥ ५० ॥

श्रीभगवानुवाच—

तयोः संलग्नयोर्युद्धे रुद्रनारायणात्मनोः।
उद्विग्नाः सहसा कृत्स्ना लोकाः सर्वेऽभवंस्तदा ॥ ५१ ॥

श्री भगवान् बोले— रुद्र और नारायणके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर सब लोकोंके सब प्राणी सहसा व्याकुल हुए ॥ ५१ ॥

नागृह्णात्पावकः शुभ्रं मखेषु सुहुतं हविः।
वेदा न प्रतिभान्ति स्म ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ५२ ॥

यज्ञोंके समयमें अग्निने विशुद्ध और उत्तम रीतिसे होम करी हुई हविको भी ग्रहण नहीं किया; आत्मज्ञ ऋषियोंके निकट वेदोंकी प्रतिमा न रही ॥ ५२ ॥

देवान्रजस्तमश्चैव समाविविशतुस्तदा।
वसुधा संचकम्पेऽथ नभश्च विपफाल ह ॥ ५३ ॥

उस समय रज और तमोगुण देवताओंमें प्रविष्ट हुआ। पृथ्वी कांपने लगी और आकाश मण्डल विचलित हो गया ॥ ५३ ॥

निष्प्रभाणि च तेजांसि ब्रह्मा चैवासनाच्च्युतः।
अगाच्छोषं समुद्रश्च हिमवांश्च व्यशीर्यत ॥ ५४ ॥

तेजस्वी पदार्थोंकी प्रभा हीन हुई और ब्रह्मा आसनसे च्युत हुए; समुद्र सूख गया और हिमालय पर्वत टूटने लगा ॥ ५४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नेवं समुत्पन्ने निमित्ते पाण्डुनन्दन ।
ब्रह्मा वृतो देवगणैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ।
आजगामाशु तं देशं यत्र युद्धमवर्तत ॥ ५५ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! इस ही प्रकार उन अशकुनोंके उत्पन्न होनेपर जिस स्थानमें संग्राम होरहा था, वहां महानुभाव ऋषियों और देवताओंसे घिरकर प्रजापति ब्रह्मा शीघ्र ही उपस्थित हुए ॥५५॥

साञ्जलिप्रग्रहो भूत्वा चतुर्वक्त्रो निरुक्तगः ।
उवाच वचनं रुद्रं लोकानामस्तु वै शिवम् ।
न्यस्यायुधानि विश्वेश जगतो हितकाम्यया ॥ ५६ ॥

उस समय निरुक्तगम्य चतुर्मुख ब्रह्मा हाथ जोडके रुद्रसे यह वचन बोले– 'सब लोगोंका मङ्गल होवे' हे विश्वेश्वर ! जगत्की हितकामनाके लिये अस्त्रोंको परित्याग करो ॥ ५६ ॥

यदक्षरमथाव्यक्तमीशं लोकस्य भावनम् ।
कूटस्थं कर्तृनिर्द्वन्द्वमकर्तेति च यं विदुः ॥ ५७ ॥

जिसे सब लोग अक्षय, अव्यक्त, ईश्वर, लोकभावन, कूटस्थ निर्द्वन्द्व, कर्ता, और अकर्त्ता जानते हैं ॥ ५७ ॥

व्यक्तिभावगतस्यास्य एका मूर्तिरियं शिवा ।
नरो नारायणश्चैव जातौ धर्मकुलोद्वहौ ॥ ५८ ॥

उसहीकी व्यक्तभाव निबन्धनसे यह कल्याणमयी मूर्ति है; उन्होंने धर्मके वंशवद्धिके लिये नर–नारायण रूपसे अवतार लिया है ॥ ५८ ॥

तपसा महता युक्तौ देवश्रेष्ठौ महाव्रतौ ।
अहं प्रसादजस्तस्य कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
त्वं चैव क्रोधजस्तात पूर्वसर्गे सनातनः ॥ ५९ ॥

येही महत् तमस्यायुक्त महाव्रती और सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं । मैं किसी कारणसे उस ही नारायणकी कृपा प्रसादसे उत्पन्न हुआ हूं । हे तात ! तुम पहले समयमें उनके क्रोधसे प्रकट हुए सनातन पुरुष हैं ॥ ५९ ॥

मया च सार्धं वरदं विबुधैश्च महर्षिभिः ।
प्रसादयाशु लोकानां शान्तिर्भवतु माचिरम् ॥ ६० ॥

हे वरद ! इससे देवताओं, महर्षियों और मेरे सहित इस देवको शीघ्र प्रसन्न करो; विलम्ब मत करो, सब लोकोंमें शान्ति होनी चाहिये ॥ ६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ब्रह्मणा त्वेवमुक्तस्तु रुद्रः क्रोधाग्निमुत्सृजन् ।
प्रसादयामास ततो देवं नारायणं प्रभुम् ।
शरणं च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हरिम् ॥ ६१ ॥

ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके रुद्रदेव क्रोधाग्निको परित्याग करके, सर्वशक्तिमान् नारायणदेवको प्रसन्न करने लगे और वरदाता, आदिकर्त्ता, वरणीय श्रीहरी नारायणके शरणापन्न हुए ॥ ६१ ॥

ततोऽथ वरदो देवो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
प्रीतिमानभवत्तत्र रुद्रेण सह संगतः ॥ ६२ ॥

अनन्तर क्रोधविजयी, जितेन्द्रिय, वरदाता नारायण देव प्रसन्न होकर उसही स्थानमें रुद्रके सहित मिले ॥ ६२ ॥

ऋषिभिर्ब्रह्मणा चैव विबुधैश्च सुपूजितः ।
उवाच देवमीशानमीशः स जगतो हरिः ॥ ६३ ॥

जगदीश्वर श्रीहरि ऋषियों, देवताओं और ब्रह्माके द्वारा विशेष रूपसे पूजित होकर देवेश्वर ईशानसे बोले ॥ ६३ ॥

यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु ।
नावयोरन्तरं किंचिन्मा ते भूद्बुद्धिरन्यथा ॥ ६४ ॥

जो तुम्हें जानता है वही मुझे जान सकता है; जो तुम्हारे निकट है, वह मेरे भी निकटवर्ती है; मुझमें और तुममें कुछभी प्रभेद नहीं है; इस से तुम अन्यथा बुद्धि मत करो ॥ ६४ ॥

अद्य प्रभृति श्रीवत्सः शूलाङ्कोऽयं भवत्वयम् ।
मम पाण्यङ्कितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि ॥ ६५ ॥

आजसे यह शूलचिन्ह मेरा श्रीवत्स चिन्ह होगा और तुम भी मेरे पाणिसे अङ्कित होकर आजसे श्रीकण्ठ होगे ॥ ६५ ॥

एवं लक्षणमुत्पाद्य परस्परकृतं तदा ।
सख्यं चैवातुलं कृत्वा रुद्रेण सहितावृषी ।
तपस्तेपतुरव्यग्रौ विसृज्य त्रिदिवौकसः ॥ ६६ ॥

नर और नारायण दोनों ऋषियोंने उस समय रुद्रके सङ्ग अतुल मित्रता और इस ही प्रकार परस्परकृत लक्षण उत्पन्न करके देवताओंको विदा करके अव्यग्रचित्तसे तपस्या करने लगे ॥ ६६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एष ते कथितः पार्थ नारायणजयो मृधे ।
नामानि चैव गुह्यानि निरुक्तानि च भारत ।
ऋषिभिः कथितानीह यानि संकीर्तितानि ते ॥ ६७ ॥

हे पार्थ ! यह तुम्हारे निकट युद्धमें नारायण की जय कही गई और गोपनीय समस्त नाम तथा निरुक्त, जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए थे, वह भी कहे गये ॥ ६७ ॥

एवं बहुविधै रूपैश्चरामीह वसुंधराम् ।
ब्रह्मलोकं च कौन्तेय गोलोकं च सनातनम् ।
मया त्वं रक्षितो युद्धे महान्तं प्राप्तवाञ्जयम् ॥ ६८ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! मैं इस ही प्रकार अनेक भांतिके रूपसे भूलोक, ब्रह्मलोक और शाश्वत गोलोकोंमें भ्रमण किया करता हूं युद्धस्थलमें मैंने तुम्हारी रक्षा की थी, इसीसे तुमने महत् जय प्राप्त की है ॥ ६८ ॥

यस्तु ते सोऽग्रतो याति युद्धे संप्रत्युपस्थिते ।
तं विद्धि रुद्रं कौन्तेय देवदेवं कपर्दिनम् ॥ ६९ ॥

हे कान्तेय ! युद्ध उपस्थित होनेपर जो तुम्हारे आगे आगे गमन करते थे, उन्हें तुम देवोंके देव जटाजूटधारी रुद्र जानो ॥ ६९ ॥

कालः स एव कथितः क्रोधजेति मया तव ।
निहतांस्तेन वै पूर्वं हतवानसि वै रिपून् ॥ ७० ॥

वही क्रोधज काल हैं, यह मैंने तुमसे पहिले ही कहा है; तुमने जो सब शत्रुओंका वध किया है, वे सब उस कालके जरिये पहलेसे ही मरे हुए थे ॥ ७० ॥

अप्रमेयप्रभावं तं देवदेवमुमापतिम् ।
नमस्व देवं प्रयतो विश्वेशं हरमव्ययम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥ १२२८५ ॥

तुम सावधान होकर उस अप्रमेय, प्रभावयुक्त, देवोंके देव, उमापति विश्वेश्वर अक्षर हरको नमस्कार करो ॥ ७१ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३० ॥ १२२८५ ॥

: ३३१ :

जनमेजय उवाच—

ब्रह्मन्सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ।
यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले— हे ब्रह्मन् ! तुमने जो उत्तम और महत् उपाख्यान कहा, उसे सुनके सब मुनि अत्यन्त विस्मययुक्त हुए हैं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इदं शतसहस्राद्धि भारताख्यानविस्तरात् ।
आमथ्य मतिमन्थेन ज्ञानोदधिमनुत्तमम् ॥ २ ॥

एक लाख श्लोकोंसे युक्त बृहत् भारताख्यानसे बुद्धिरूपी मंथानी दण्डके सहारे अत्यन्त उत्तम ज्ञान समुद्रको मंथके यह नारायणकथाके अवलम्बसे वाक्य रूपी अमृत आपके द्वारा इस प्रकार निकाला गया ॥ २ ॥

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ॥ ३ ॥

जैसे दहीसे मक्खन मलयगिरिसे चन्दन, वेदोंसे आरण्यकविभाग और औषधियोंसे अमृत सार रूपसे निकाला गया है ॥ ३ ॥

समुद्धृतमिदं ब्रह्मन्कथामृतमनुत्तमम् ।
तपोनिधे त्वयोक्तं हि नारायणकथाश्रयम् ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! उसी प्रकार आपने यह कथारूपी उत्तम अमृत निकाला है; हे तपोनिधे ! आपने भगवान् नारायणकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली जो बातें कही है, वे इस ग्रन्थकी सारभूत हैं ॥ ४ ॥

स हीशो भगवान्देवः सर्वभूतात्मभावनः ।
अहो नारायणं तेजो दुर्दर्शं द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

वही सबके ईश्वर भगवान् नारायण सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं; हे द्विजसत्तम ! कैसा आश्चर्य है ! नारायणका तेज क्या ही दुर्दर्श है ॥ ५ ॥

यत्राविशन्ति कल्पान्ते सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ।
ऋषयश्च सगन्धर्वा यच्च किंचिच्चराचरम् ।
न ततोऽस्ति परं मन्ये पावनं दिवि चेह च ॥ ६ ॥

प्रलयकालमें ब्रह्मा आदि सब देवता, ऋषि, गन्धर्व और स्थावर-जङ्गममय जो कुछ हैं, वह जब जिसमें प्रविष्ट होते हैं; बोध होता है, कि इस लोक और स्वर्गलोकमें उससे परम पवित्र महान् और कोई भी नहीं है ॥ ६ ॥

सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
न तथा फलदं चापि नारायणकथा यथा ॥ ७ ॥

भगवान् नारायणकी कथा जिस प्रकार फल देनेवाली है, सब आश्रमोंमें जाना तथा सब तीर्थोंमें स्नान करना वैसा फलप्रद नहीं है ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सर्वथा पाविताः स्मेह श्रुत्वेमामादितः कथाम् ।
हरेर्विश्वेश्वरस्येह सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ ८ ॥

विश्वेश्वर नारायण श्रीहरिकी यह सब पापोंको नाश करनेवाली कथा आरंभसे सुनके इस समय हम लोग सब भांतिसे पवित्र हुए हैं ॥ ८ ॥

न चित्रं कृतवांस्तत्र यदार्यो मे धनंजयः ।
वासुदेवसहायो यः प्राप्तवाञ्जयमुत्तमम् ॥ ९ ॥

मेरे पूज्य पितामह धनञ्जयने उस संग्राममें जो भगवान् श्रीकृष्णकी सहायता पाकर अत्यन्त उत्तम जय प्राप्त किया था, वह कुछ अद्भुत कार्य नहीं किया ॥ ९ ॥

न चास्य किंचिदप्राप्यं मन्ये लोकेष्वपि त्रिषु ।
त्रैलोक्यनाथो विष्णुः स यस्यासीत्साह्यकृत्सखा ॥ १० ॥

मुझे बोध होता है, तीनों लोकोंके बीच उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं था । त्रिलोकीनाथ भगवान् नारायण जब उनके सहायक और सखा थे तब वह सब कुछ कर सकते थे ॥१०॥

धन्याश्च सर्व एवासन्ब्रह्मंस्ते मम पूर्वकाः ।
हिताय श्रेयसे चैव येषामासीज्जनार्दनः ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन् ! साक्षात् जनार्दन उनके हित और मङ्गलकी चिन्ता करते थे, अतः वे मेरे सभी पूर्वज धन्य थे ॥ ११ ॥

तपसापि न दृश्यो हि भगवाल्लोकपूजितः ।
यं दृष्टवन्तस्ते साक्षाच्छ्रीवत्साङ्कविभूषणम् ॥ १२ ॥

लोकपूजित भगवान्का तपस्याके सहारे भी दर्शन नहीं किया जा सकता है; किन्तु उन्होंने उस वत्सचिन्हविभूषित श्रीहरिका प्रत्यक्ष दर्शन किया था ॥ १२ ॥

तेभ्यो धन्यतरश्चैव नारदः परमेष्ठिजः ।
न चाल्पतेजसमृषिं वेद्मि नारदमव्ययम् ।
श्वेतद्वीपं समासाद्य येन दृष्टः स्वयं हरिः ॥ १३ ॥

ब्रह्माके पुत्र नारद मुनि उन सब लोगोंसे अधिक धन्य हैं; जिन्होंने श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं साक्षात् श्रीहरिका दर्शन किया है, उन अविनाशी नारद ऋषिको मैं अल्पतेजस्वी नहीं समझता; ॥ १३ ॥

देवप्रसादानुगतं व्यक्तं तत्तस्य दर्शनम् ।
यद्दृष्टवांस्तदा देवमनिरुद्धतनौ स्थितम् ॥ १४ ॥

कारण उन्होंने उस समयमें जो अनिरुद्ध शरीरमें स्थित श्रीहरिका दर्शन किया था, भगवान् उनके व्यक्त रूपका दर्शन होना उन भगवान्की कृपाका फल है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बदरीमाश्रमं यत्तु नारदः प्राद्रवत्पुनः ।
नरनारायणौ द्रष्टुं किं नु तत्कारणं मुने ॥ १५ ॥

हे मुनि ! नारदने किस कारणसे बदरिकाश्रममें फिर नर–नारायणका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था ? ॥ १५ ॥

श्वेतद्वीपान्निवृत्तश्च नारदः परमेष्ठिजः ।
बदरीमाश्रमं प्राप्य समागम्य च तावृषी ॥ १६ ॥

विधातृपुत्र नारद श्वेतद्वीपसे लौटकर बदरिकाश्रममें जाके उन दोनों नर–नारायण ऋषियोंसे मिले ॥ १६ ॥

कियन्तं कालमवसत्काः कथाः पृष्टवांश्च सः ।
श्वेतद्वीपादुपावृत्ते तस्मिन्वा सुमहात्मनि ॥ १७ ॥

तब वहां उन्होंने कबतक वास किया ? और वहां उन्होंने कौन कौनसी कथाएं पूछी ? और महानुभाव नारद मुनिके श्वेतद्वीपसे लौटनेपर ॥ १७ ॥

किमब्रूतां महात्मानौ नरनारायणावृषी ।
तदेतन्मे यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १८ ॥

नर–नारायण ऋषियोंने उनसे क्या कहा था ? यह सब वृत्तान्त यथार्थ रुपसे मेरे समीप आपही वर्णन करने योग्य हैं ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ।
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम् ॥ १९ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– जिनकी कृपासे मैं इस भगवान् नारायणकीकथाको कहूंगा, उन अत्यन्त तेजस्वी भगवान् वेदव्यास मुनिको नमस्कार करता हूं ॥ १९ ॥

प्राप्य श्वेतं महाद्वीपं दृष्ट्वा च हरिमव्ययम् ।
निवृत्तो नारदो राजंस्तरसा मेरुमागमत् ।
हृदयेनोद्वहन्भारं यदुक्तं परमात्मना ॥ २० ॥

हे महाराज ! नारद मुनि श्वेतद्वीपमें जाकर अविनाशी श्रीहरि नारायणका दर्शन करके वहांसे लौटकर वेगपूर्वक सुमेरुपर्वतपर आये थे । परमात्मा श्रीहरिने उनसे जो कहा था, उस ही कार्य भारको वे हृदयसे धारण करते थे ॥ २० ॥

पश्चादस्याभवद्राजन्नात्मनः साध्वसं महत् ।
यद्गत्वा दूरमध्वानं क्षेमी पुनरिहागतः ॥ २१ ॥

हे राजन् ! अन्तमें उन्हें महान् आश्चर्य हुआ था कि मैं दूर स्थानमें जाके कुशलपूर्वक फिर इस ही स्थानमें कैसे लौट आया हूं ? ॥ २१ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततो मेरोः प्रचक्राम पर्वतं गन्धमादनम् ।
निपपात च खात्तूर्णं विशालां बदरीमनु ॥ २२ ॥

अर्थात् यही मेरे लिये मङ्गल है । अनन्तर वे सुमेरुसे गन्धमादन पर्वतपर गये, वहांसे विशाल बदरी तीर्थके समीप शीघ्रही आकाशसे नीचे उतर पडे ॥ २२ ॥

ततः स ददृशे देवौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
तपश्चरन्तौ सुमहदात्मनिष्ठौ महाव्रतौ ॥ २३ ॥

अनन्तर उन्होंने प्राचीन ऋषिसत्तम नर–नारायणका दर्शन किया । देखा कि, वे दोनों आत्मनिष्ठ और दृढव्रती होकर तपस्या कर रहे हैं ॥ २३ ॥

तेजसाभ्यधिकौ सूर्यात्सर्वलोकविरोचनात् ।
श्रीवत्सलक्षणौ पूज्यौ जटामण्डलधारिणौ ॥ २४ ॥

वे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी थे; वे दोनों श्रीवत्स लक्षणसे युक्त, पूजनीय और जटाजूट मण्डित थे ॥ २४ ॥

जालपादभुजौ तौ तु पादयोश्चक्रलक्षणौ ।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ तथा सुष्कचतुष्किणौ ॥ २५ ॥

उनके हाथोंमें हंसका और दोनों चरणोंमें चक्रका चिन्ह था; वक्षःस्थल विशाल, दोनों भुजाएं जानुतक लम्बी और अण्डकोशमें चारचार बीज थे ॥ २५ ॥

षष्टिदन्तावष्टदंष्ट्रौ मेघौघसदृशस्वनौ ।
स्वास्यौ पृथूललाटौ च सुहनु सुभ्रुनासिकौ ॥ २६ ॥

मुखमें साठ दांत और आठ दाढें और बादल सदृश शब्दसे युक्त थे । उनका मुख अत्यन्त सुन्दर, ऊंचा ललाट, सुन्दर ठोढी भौंएं और नासिका अत्यन्त सुन्दर थीं ॥ २६ ॥

आतपत्रेण सदृशे शिरसी देवयोस्तयोः ।
एवं लक्षणसंपन्नौ महापुरुषसंज्ञितौ ॥ २७ ॥

उन दोनों देवोंके शिर छत्रके समान थे ऐसे श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त वे दोनों ऋषि महापुरुष नामसे विख्यात थे ॥ २७ ॥

तौ दृष्ट्वा नारदो हृष्टस्ताभ्यां च प्रतिपूजितः ।
स्वागतेनाभिभाष्याथ पृष्टश्चानामयं तदा ॥ २८ ॥

नारद उनका दर्शन करके प्रसन्न हुए । उन्होंने नारदकी पूजा की और स्वागतप्रश्न करके कुशल पूछा ॥ २८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बभूवान्तर्गतमतिर्निरीक्ष्य पुरुषौत्तमौ।
सदोगतास्तत्र ये वै सर्वभूतनमस्कृताः ॥ २९ ॥

नारद मुनि उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर मनही मन विचार करने लगे। भगवान्‌की सभामें सर्व प्राणियोंसे नमस्कृत जिन ऋषियोंका ॥ २९ ॥

श्वेतद्वीपे मया दृष्टास्तादृशावृषिसत्तमौ।
इति संचिन्त्य मनसा कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
उपोपविविशे तत्र पीठे कुशमये शुभे ॥ ३० ॥

मैंने श्वेतद्वीपमें दर्शन किया है, ये दोनों ऋषिश्रेष्ठ भी वैसे ही हैं। नारद मनही मन ऐसाही विचारकरके उनकी प्रदक्षिणा करके एक उत्तम कुशासन पर बैठ गये ॥ ३० ॥

ततस्तौ तपसां वासौ यशसां तेजसामपि।
ऋषी शमदमोपेतौ कृत्वा पूर्वाह्णिकं विधिम् ॥ ३१ ॥

अनन्तर तपस्या, यश और तेजके निवासस्थान, शम-दमसे युक्त वे नर-नारायण ऋषि पूर्वाह्णिक क्रिया समाप्त करके ॥ ३१ ॥

पश्चान्नारदमव्यग्रौ पाद्यार्घ्याभ्यां प्रपूज्य च।
पीठयोश्चोपविष्टौ तौ कृतातिथ्याह्निकौ नृप ॥ ३२ ॥

पश्चात् अव्यग्र चित्तसे पाद्य और अर्घ्यसे नारद मुनिकी पूजा करने लगे। हे राजन्! वे नारदका आतिथ्य और नित्य कर्म पूर्ण करके कुशासनपर बैठ गये ॥ ३२ ॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु स देशोऽभिव्यराजत।
आज्याहुतिमहाज्वालैर्यज्ञवाटोऽग्निभिर्यथा ॥ ३३ ॥

उनके वहां बैठने पर वह स्थान मानो घृतहोमके द्वारा महाज्वालायुक्त तीनों अग्निओंसे शोभित यज्ञमण्डपकी भांति दिखाई देने लगा ॥ ३३ ॥

अथ नारायणस्तत्र नारदं वाक्यमब्रवीत्।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं कृतातिथ्यं सुखस्थितम् ॥ ३४ ॥

अनन्तर नारद मुनिके वहां पर अतिथि सत्कारसे विश्रामयुक्त होकर सुखसे बैठने पर नारायणने उनसे यह वचन कहा ॥ ३४ ॥

अपीदानीं स भगवान्परमात्मा सनातनः।
श्वेतद्वीपे त्वया दृष्ट आवयोः प्रकृतिः परा ॥ ३५ ॥

इस समय तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंका परम कारणरूप सनातन परमात्माका दर्शन किया है? ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नारद उवाच—

दृष्टो मे पुरुषः श्रीमान्विश्वरूपधरोऽव्ययः ।
सर्वे हि लोकास्तत्रस्थास्तथा देवाः सहर्षिभिः ।
अद्यापि चैनं पश्यामि युवां पश्यन्सनातनौ ॥ ३६ ॥

नारद मुनि बोले— विश्वरूपधारी श्रीमान् अव्यय परम पुरुषका मैंने दर्शन किया है, देवताओं और ऋषियोंके सहित सब लोक उसमें ही निवास करते हैं। इस समय भी आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर यहीं उन भगवान्‌को अवलोकन करता हूं ॥ ३६ ॥

यैर्लक्षणैरुपेतः स हरिरव्यक्तरूपधृक् ।
तैर्लक्षणैरुपेतौ हि व्यक्तरूपधरौ युवाम् ॥ ३७ ॥

वह अव्यक्त स्वरूप श्रीहरि जिन सब लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, तुम भी व्यक्तरूप धारण करके उन्हीं सब लक्षणोंसे विराज रहे हो ॥ ३७ ॥

दृष्टौ मया युवां तत्र तस्य देवस्य पार्श्वतः ।
इह चैवागतोऽस्म्यद्य विसृष्टः परमात्मना ॥ ३८ ॥

मैंने वहांपर परम देवके बगलमें तुम्हारा दर्शन किया है; परमात्माके समीपसे बिदा होकर अब इस स्थानमें आया हूं ॥ ३८ ॥

को हि नाम भवेत्तस्य तेजसा यशसा श्रिया ।
सदृशस्त्रिषु लोकेषु ऋते धर्मात्मजौ युवाम् ॥ ३९ ॥

तीनों लोकोंमें धर्मपुत्र तुम दोनोंके अतिरिक्त तेज, यश और श्रीके द्वारा कौन उसके समान हो सकता है ? ॥ ३९ ॥

तेन मे कथितं पूर्वं नाम क्षेत्रज्ञसंज्ञितम् ।
प्रादुर्भावाश्च कथिता भविष्यन्ति हि ये यथा ॥ ४० ॥

पहलेही क्षेत्रज्ञसंज्ञित उन्होंने सब धर्म मुझसे कहे हैं; इस लोकमें जिस प्रकार उनके जो सब अवतार होंगे, उन्हें भी कहा है ॥ ४० ॥

तत्र ये पुरुषाः श्वेताः पञ्चेन्द्रियविवर्जिताः ।
प्रतिबुद्धाश्च ते सर्वे भक्ताश्च पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥

वहां पर पञ्चेन्द्रियोंसे रहित जो सब श्वेतवर्ण पुरुष हैं, वे सभी पुरुषोत्तम श्रीविष्णुके भक्त और ज्ञानी हैं ॥ ४१ ॥

तेऽर्चयन्ति सदा देवं तैः सार्धं रमते च सः ।
प्रियभक्तो हि भगवान्परमात्मा द्विजप्रियः ॥ ४२ ॥

तथा वे सदा उस पुरुषोत्तम नारायण देवकी पूजा—अर्चा किया करते हैं, और वह भगवान् भी उनके सहित निरन्तर क्रीडा करते हैं। भगवान् भक्तोंपर अनुरक्त हैं, और द्विजातियोंको प्रिय समझते हैं ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रमते सोऽर्च्यमानो हि सदा भागवतप्रियः ।
विश्वभुक्सर्वगो देवो बान्धवो भक्तवत्सलः ।
स कर्ता कारणं चैव कार्यं चातिबलद्युतिः ॥ ४३ ॥

वह सदा भागवतप्रिय हैं; वह विश्वभुक् सर्वग बन्धु और भक्तवत्सल देव श्रीहरि परमात्मा पूजित होनेसे प्रसन्न हुआ करता है । वह अत्यन्त बलयुक्त और द्युतिशाली हैं, वही कर्त्ता, कारण और कार्य स्वरूप है ॥ ४३ ॥

तपसा योज्य सोऽऽत्मानं श्वेतद्वीपात्परं हि यत् ।
तेज इत्यभिविख्यातं स्वयंभासावभासितम् ॥ ४४ ॥

वह श्वेतद्वीपमें आत्माको तपोयुक्त करके निज प्रभाके सहारे प्रकाशमान होकर परम ज्योतिः-स्वरूपसे सर्वत्र विख्यात हो रहा है ॥ ४४ ॥

शान्तिः सा त्रिषु लोकेषु सिद्धानां भावितात्मनाम् ।
एतया शुभया बुद्ध्या नैष्ठिकं व्रतमास्थितः ॥ ४५ ॥

तीनों लोकोंके बीच सिद्ध तथा पवित्रात्माओंकी शान्ति है; इस शुभ बुद्धिसे उसने नैष्ठिक व्रत अवलम्बन किया है ॥ ४५ ॥

न तत्र सूर्यस्तपति न सोमोऽभिविराजते ।
न वायुर्वाति देवेशे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ४६ ॥

जब वह देवेश महादुश्चर तपस्या करता है, उस समय न उसे सूर्य तापित करता है, न चन्द्रमा उसके निकट विराजमान होता और न वायु बहता है ॥ ४६ ॥

वेदीमष्टतलोत्सेधां भूमावास्थाय विश्वभुक् ।
एकपादस्थितो देव ऊर्ध्वबाहुरुदङ्मुखः ।
साङ्गानावर्तयन्वेदांस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ ४७ ॥

विश्वकर्त्ता नारायण पृथ्वीपर आठ अंगुल ऊंची वेदी स्थापित करके उदङ्मुख, एकपदस्थित तथा ऊर्ध्वबाहु होके सांग वेदपाठ और तपस्या करते हैं ॥ ४७ ॥

यद्ब्रह्मा ऋषयश्चैव स्वयं पशुपतिश्च यत् ।
शेषाश्च विबुधश्रेष्ठा दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ४८ ॥

ब्रह्मा, ऋषि, स्वयं महादेव, शेष, समस्त श्रेष्ठ देवता और दैत्य, दानव, राक्षस, ॥ ४८ ॥

नागाः सुपर्णा गन्धर्वाः सिद्धा राजर्षयश्च ये ।
हव्यं कव्यं च सततं विधिपूर्वं प्रयुञ्जते ।
कृत्स्नं तत्तस्य देवस्य चरणावुपतिष्ठति ॥ ४९ ॥

नाग, गरुड, गन्धर्व, सिद्ध और राजर्षि लोग सदा विधिपूर्वक जो सब हव्य, कव्य प्रदान करते हैं, वह सब उस देवके दोनों चरणोंमें उपस्थित होता है ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

याः क्रियाः संप्रयुक्तास्तु एकान्तगतबुद्धिभिः ।
ताः सर्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम् ॥ ५० ॥

अव्यभिचरित बुद्धिशाली अत्यन्त भक्तिनिष्ठ मनुष्य जो सब क्रियाएं समर्पित करते हैं, भगवान् नारायण उन सबको स्वयं शिरोधार्य किया करते हैं ॥ ५० ॥

न तस्यान्यः प्रियतरः प्रतिबुद्धैर्महात्मभिः ।
विद्यते त्रिषु लोकेषु ततोऽस्म्यैकान्तिकं गतः ।
इह चैवागतस्तेन विसृष्टः परमात्मना ॥ ५१ ॥

ज्ञानसे प्रदीप्त महात्माभक्तोंसे भिन्न तीनों लोकोंके बीच दूसरा कोई भी उसे प्रिय नहीं है; इस ही निमित्त मैं उसमें अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ हूं । उस परमात्माके निकटसे विदा होकर मैं इस स्थानमें आया हूं ॥ ५१ ॥

एवं मे भगवान्देवः स्वयमाख्यातवान्हरिः ।
आसिष्ये तत्परो भूत्वा युवाभ्यां सह नित्यशः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३१ ॥ १२३३७ ॥

मैंने जो कुछ कहा, भगवान् नारायणनें मुझसे स्वयं वह सब कहा है । अब मैं परमात्मपरायण होकर सदा तुम्हारे सहित निवास करूंगा ॥ ५२ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ इकतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३१ ॥ १२३३७ ॥

: ३३२ :

नरनारायणावूचतुः—

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यत्ते दृष्टः स्वयं प्रभुः ।
न हि तं दृष्टवान्कश्चित्पद्मयोनिरपि स्वयम् ॥ १ ॥

श्रीनर-नारायण ऋषि बोले- हे देवर्षि ! तुम धन्य और अनुगृहीत हो, क्योंकि तुमने स्वयं भगवान् नारायणका दर्शन किया है; दूसरेकी बात तो दूर रहे, स्वयं पद्मयोनि ब्रह्माने भी उसका दर्शन नहीं किया है ॥ १ ॥

अव्यक्तयोनिर्भगवान्दुर्दर्शः पुरुषोत्तमः ।
नारदैतद्धि ते सत्यं वचनं समुदाहृतम् ॥ २ ॥

हे नारद ! अव्यक्तयोनि भगवान् पुरुषोत्तम दुर्दर्श हैं, यह तुमने हमसे यथार्थ वचन कहा है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नास्य भक्तैः प्रियतरो लोके कश्चन विद्यते ।
ततः स्वयं दर्शितवान्स्वमात्मानं द्विजोत्तम ॥ ३ ॥

हे द्विजोत्तम ! लोकके बीच भक्तके अतिरिक्त उसे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त स्वयं अपना दर्शन दिया है ॥ ३ ॥

तपो हि तप्यतस्तस्य यत्स्थानं परमात्मनः ।
न तत्संप्राप्नुते कश्चिदते ह्यावां द्विजोत्तम ॥ ४ ॥

हे विप्रवर ! परमात्मा जिस स्थानमें तपस्या करता है, हम दोनोंके अतिरिक्त दूसरे किसीको भी वह स्थान नहीं प्राप्त होता ॥ ४ ॥

या हि सूर्यसहस्रस्य समस्तस्य भवेद्द्युतिः ।
स्थानस्य सा भवेत्तस्य स्वयं तेन विराजता ॥ ५ ॥

जैसा एक सहस्र सूर्योंका प्रकाश होता है, वह जिस स्थानमें विराजता है, उसकी स्वयं ही वैसी शोभा हुआ करती है ॥ ५ ॥

तस्मादुत्तिष्ठते विप्र देवाद्विश्वभुवः पतेः ।
क्षमा क्षमावतां श्रेष्ठ यया भूमिस्तु युज्यते ॥ ६ ॥

हे क्षमायुक्त विप्रवर ! उस विश्वविधाता विश्वेश्वर देवसे क्षमा उत्पन्न होती है, जिस क्षमासे वसुन्धरा संयुक्त होरही है ॥ ६ ॥

तस्माच्चोत्तिष्ठते देवात्सर्वभूतहितो रसः ।
आपो येन हि युज्यन्ते द्रवत्वं प्राप्नुवन्ति च ॥ ७ ॥

उस सब भूतोंके हितैषी नारायणदेवसे रस उत्पन्न हुआ है । जल उस ही रसके सहित मिलित तथा द्रवत्वको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तस्मादेव समुद्भूतं तेजो रूपगुणात्मकम् ।
येन स्म युज्यते सूर्यस्ततो लोकान्विराजते ॥ ८ ॥

रूपगुणात्मक तेज उसहीसे प्रकट हुआ है, जिससे सूर्य संयुक्त होकर लोकोंके बीच विराज रहा है । ॥ ८ ॥

तस्मादेवात्समुद्भूतः स्पर्शस्तु पुरुषोत्तमात् ।
येन स्म युज्यते वायुस्ततो लोकान्विवात्यसौ ॥ ९ ॥

उस पुरुषोत्तमसे स्पर्श उत्पन्न होता है; जिसके संयोगसे वह वायु लोकोंमें बह रहा है ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्माच्चोत्तिष्ठते शब्दः सर्वलोकेश्वरात्प्रभोः।
आकाशं युज्यते येन ततस्तिष्ठत्यसंवृतम् ॥ १० ॥

उस सर्वलोकेश्वर प्रभुसे शब्द उत्पन्न हुआ है, जिसके सहित आकाश संयुक्त होरहा है, और उस ही निमित्त असंवृत हुआ है ॥ १० ॥

तस्माच्चोत्तिष्ठते देवात्सर्वभूतगतं मनः।
चन्द्रमा येन संयुक्तः प्रकाशगुणधारणः ॥ ११ ॥

उस देवसे ही सर्वभूतस्थित मन उत्पन्न होता है, जिस मनके सहित संयुक्त होकर चन्द्रमाने प्रकाश गुण धारण किया है ॥ ११ ॥

षड्भूतोत्पादकं नाम तत्स्थानं देवसंज्ञितम्।
विद्यासहायो यत्रास्ते भगवान्हव्यकव्यभुक् ॥ १२ ॥

जिसमें हव्य-कव्य भोक्ता भगवान् विद्यासहायक होकर निवास करते हैं, वह वेद संज्ञक स्थान षड्भूतोत्पादक कहलाता है ॥ १२ ॥

ये हि निष्कल्मषा लोके पुण्यपापविवर्जिताः।
तेषां वै क्षेममध्वानं गच्छतां द्विजसत्तम।
सर्वलोकतमोहन्ता आदित्यो द्वारमुच्यते ॥ १३ ॥

हे द्विजसत्तम! लोकमें जो लोग पुण्यपापसे रहित और निर्मल हैं; वे कल्याण पथमें गमनशील हैं, उन सब पुरुषोंके सम्बन्धमें सब लोकोंके बीच तमोनाशक आदित्य ही द्वार स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है ॥ १३ ॥

आदित्यदग्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केनचित्कचित्।
परमाणुभूता भूत्वा तु तं देवं प्रविशन्त्युत ॥ १४ ॥

दरवाजेमें प्रवेश करनेके समय सूर्य उनके सब अङ्ग जलाते हैं, इसीसे कोई उन्हें कभी नहीं देख सकते। वे लोग परमाणु स्वरूप होकर उस ही देवमें प्रवेश करते हैं ॥ १४ ॥

तस्मादपि विनिर्मुक्ता अनिरुद्धतनौ स्थिताः।
मनोभूतास्ततो भूयः प्रद्युम्नं प्रविशन्त्युत ॥ १५ ॥

फिर उससे भी निर्मुक्त होकर वे अनिरुद्ध शरीरमें स्थित रहते हैं। अनन्तर मन स्वरूप होकर प्रद्युम्न शरीरमें प्रविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

प्रद्युम्नाच्चापि निर्मुक्ता जीवं संकर्षणं तथा।
विशन्ति विप्रप्रवराः सांख्या भागवतैः सह ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर प्रद्युम्न शरीरसे निकलके भागवत और सांख्ययोग अवलम्बी पुरुष जीव स्वरूप सङ्कर्षणमें प्रवेश किया करते हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमञ्जसा ।
प्रविशन्ति द्विजश्रेष्ठ क्षेत्रज्ञं निर्गुणात्मकम् ।
सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः ॥ १७ ॥

शेषमें वे तीनों गुणोंसे रहित द्विजश्रेष्ठ पुरुष निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ परमात्मामें शीघ्र प्रवेष करते हैं; उसे ही यथार्थ रूपसे सर्वावास वासुदेव और क्षेत्रज्ञ जानो ॥ १७ ॥

समाहितमनस्काश्च नियताः संयतेन्द्रियाः ।
एकान्तभावोपगता वासुदेवं विशन्ति ते ॥ १८ ॥

जो लोग सदा स्थिरचित्तवाले, नियत, संयतेन्द्रिय और अनन्य भावसे युक्त हैं, वे साक्षात् वासुदेवमें प्रवेष करते हैं ॥ १८ ॥

आवामपि च धर्मस्य गृहे जातौ द्विजोत्तम ।
रम्यां विशालामाश्रित्य तप उग्रं समास्थितौ ॥ १९ ॥

हे द्विजसत्तम ! हमने भी धर्मके गृहमें जन्म लेकर रमणीय बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या अवलम्बन की है ॥ १९ ॥

ये तु तस्यैव देवस्य प्रादुर्भावाः सुरप्रियाः ।
भविष्यन्ति त्रिलोकस्थास्तेषां स्वस्तीत्यतो द्विज ॥ २० ॥

हे द्विज ! देवताओंके प्रिय कार्य साधनके निमित्त तीनों लोकोंके बीच भगवान् नारायणके जो अवतार होनेवाले हैं, उनकी स्वस्ति होवे ॥ २० ॥

विधिना स्वेन युक्ताभ्यां यथापूर्वं द्विजोत्तम ।
आस्थिताभ्यां सर्वकृच्छ्रं व्रतं सम्यक्तदुत्तमम् ॥ २१ ॥

हे द्विजोत्तम तपोधन ! हमने पहलेकी भांति निज विधिसे युक्त और सर्वकृच्छ्र सर्वोत्तम व्रत अवलम्बन करते हुए ॥ २१ ॥

आवाभ्यामपि दृष्टस्त्वं श्वेतद्वीपे तपोधन ।
समागतो भगवता संजल्पं कृतवान्यथा ॥ २२ ॥

श्वेत द्वीपमें तुम्हें अवलोकन किया है तुमने भगवानके निकटमें समागत होकर जो वार्तालाप किया है ॥ २२ ॥

सर्वं हि नौ संविदितं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यद्भविष्यति वृत्तं वा वर्तते वा शुभाशुभम् ॥ २३ ॥

उसे भी उत्तम रीतसे जाना है । सचराचर तीनों लोकोंके बीच जो कुछ शुभाशुभ होगा हुआ और होता है, वह सब हमसे छिपा नहीं है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तयोर्वाक्यं तपस्युग्रेऽभ्यवर्तत ।
नारदः प्राञ्जलिर्भूत्वा नारायणपरायणः ॥ २४ ॥

श्री वैशम्पायन मुनि बोले— उग्र तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए भगवान् नर—नारायणके मुखसे यह कथा सुनके नारदने उन्हें हाथ जोडकर प्रणाम किया और वे नारायण परायण हुए ॥ २४ ॥

जजाप विधिवन्मन्त्रान्नारायणगतान्बहून् ।
दिव्यं वर्षसहस्रं हि नरनारायणाश्रमे ॥ २५ ॥

उन्होंने नर—नारायणके आश्रममें देव परिमाणसे सहस्र वर्षोंतक वास करके अनेक प्रकारसे नारायण मन्त्रोंको विधिपूर्वक जप किया ॥ २५ ॥

अवसत्स महातेजा नारदो भगवानृषिः ।
तमेवाभ्यर्चयन्देवं नरनारायणौ च तौ ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३२ ॥ १२३६३ ॥

महातेजस्वी भगवान् नारदऋषि उस परम देव और नर—नारायणकी सब प्रकारसे पूजा—आराधना करते हुए उनके आश्रममें निवास करने लगे ॥ २६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३२ ॥ १२३६३ ॥

: ३३३ :

वैशम्पायन उवाच—

कस्यचित्त्वथ कालस्य नारदः परमेष्ठिजः ।
दैवं कृत्वा यथान्यायं पित्र्यं चक्रे ततः परम् ॥ १ ॥

श्री वैशम्पायन मुनि बोले— कुछ कालके अनन्तर परमेष्ठिपुत्र नारदने विधिपूर्वक दैवकृत्य करके उसके अनन्तर पितृकार्य किया ॥ १ ॥

ततस्तं वचनं प्राह ज्येष्ठो धर्मात्मजः प्रभुः ।
क इज्यते द्विजश्रेष्ठ दैवे पित्र्ये च कल्पिते ॥ २ ॥

अनन्तर जेठे धर्मपुत्र सर्व ऐश्वर्यवान नरने उनसे यह वचन कहा हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम इस कल्पित दैव और पित्र्य कार्यमें किसीकी पूजा करते हो ? ॥ २ ॥

त्वया मतिमतां श्रेष्ठ तन्मे शंस यथागमम् ।
किमेतत्क्रियते कर्म फलं चास्य किमिष्यते ॥ ३ ॥

हे मतिमत्प्रवर ! तुम यह कौनसा कर्म कर रहे हो और इससे कैसा फल पानेकी कामना करते हो ? उसे मेरे निकट शास्त्रविधिके अनुसार वर्णन करो ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Puri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नारद उवाच—

त्वयैतत्कथितं पूर्वं दैवं कर्तव्यमित्यपि ।
दैवतं च परो यज्ञः परमात्मा सनातनः ॥ ४ ॥

नारद मुनि बोले– दैव कर्म करना चाहिये, ऐसा तुमने पहले कहा था; क्योंकि देवकर्म उत्तम यज्ञ है और यज्ञ परम देव सनातन परमात्माका स्वरूप है ॥ ४ ॥

ततस्तद्भावितो नित्यं यजे वैकुण्ठमव्ययम् ।
तस्माच्च प्रसृतः पूर्वं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५ ॥

उस ही निमित्त मैं उसमें रत होके अविनाशी भगवान् वासुदेवकी सदा पूजा किया करता हूं । उस नारायणसे ही प्रथम लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥

मम वै पितरं प्रीतः परमेष्ठ्यप्यजीजनत् ।
अहं संकल्पजस्तस्य पुत्रः प्रथमकल्पितः ॥ ६ ॥

परमेष्ठि श्रीहरिने प्रसन्न होके मेरे पिताको उत्पन्न किया था; मैं उनका प्रथम सङ्कल्पज पुत्र हूं ॥ ६ ॥

यजाम्यहं पितॄन्साधो नारायणविधौ कृते ।
एवं स एव भगवान्पिता माता पितामहः ।
इज्यते पितृयज्ञेषु मया नित्यं जगत्पतिः ॥ ७ ॥

हे साधो ! इसी कारण मैं पहले नारायणकी पूजा करता हूं, फिर पितरोंका पूजन करता हूं; वह जगत्पति भगवान् नारायणही मेरे पिता, माता और पितामह हैं; इसलिये वह जगत्पति पितृ यज्ञोंमें सदा पूजित होते हैं ॥ ७ ॥

श्रुतिश्चाप्यपरा देव पुत्रान्हि पितरोऽयजन् ।
वेदश्रुतिः प्रणष्टा च पुनरध्यापिता सुतैः ।
ततस्ते मन्त्रदाः पुत्राः पितृत्वमुपपेदिरे ॥ ८ ॥

एक दूसरी श्रुति है कि पिताओंने पुत्रोंका पूजन किया; पितरोंमें वेद सुनना प्रनष्ट होनेपर उन्होंने पुत्रोंसे उसे पढा था अर्थात् देवताओंने अग्निष्वात्तादि पुत्रोंको वेद पढाके असुरोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था । उस संग्राममें बहुत दिनतक प्रवृत्त रहनेसे श्रुति स्मरण न हुई, इसलिये उन लोगोंने पुत्रोंके निकट फिर वेद पढा । इस ही निमित्त मन्त्रदाता अग्निष्वात्त प्रभृति पितृत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥

नूनं पुरैतद्विदितं युवयोर्भावितात्मनोः ।
पुत्राश्च पितरश्चैव परस्परमपूजयन् ॥ ९ ॥

पुत्रों और पितरोंने परस्पर एक दूसरेकी पूजा की थी, यह बात आप दोनों विशुद्धात्माओंको निश्चय ही पहलेसे ही ज्ञात होगी ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Satyamitranand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

त्रीन्पिण्डान्न्यस्य वै पृथ्व्यां पूर्वं दत्त्वा कुशानिति ।
कथं तु पिण्डसंज्ञां ते पितरो लेभिरे पुरा ॥ १० ॥

देवताओं पृथ्वीपर पहले कुश बिछाकर उनपर पितरोंके निमित्त तीन पिण्ड स्थापित करके पूजा की थी । इसका क्या कारण है ? यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि पहले समयमें पितरोंकी किस प्रकार पिण्ड संज्ञा हुई ? ॥ १० ॥

नरनारायणावूचतुः—

इमां हि धरणीं पूर्वं नष्टां सागरमेखलाम् ।
गोविन्द उज्जहाराशु वाराहं रूपमाश्रितः ॥ ११ ॥

नर–नारायण बोले, हे नारद ! पहले समयमें भगवान् गोविन्दने वाराह देह धारण करके इस नष्टप्राय सागरमेखला वसुन्धराका शीघ्र उद्धार किया था ॥ ११ ॥

स्थापयित्वा तु धरणीं स्वे स्थाने पुरुषोत्तमः ।
जलकर्दमलिप्ताङ्गो लोककार्यार्थमुद्यतः ॥ १२ ॥

पुरुषोत्तम गोविन्द पृथ्वीको स्वस्थानमें स्थापित करके जल और कीचडसे लिप्त अङ्गोंसे ही लोकहित कार्य सिद्धिके हेतु उद्योगी हुए थे ॥ १२ ॥

प्राप्ते चाह्निककाले तु मध्यंदिनगते रवौ ।
दंष्ट्राविलग्नान्मृत्पिण्डान्विधूय सहसा प्रभुः ।
स्थापयामास वै पृथ्व्यां कुशानास्तीर्य नारद ॥ १३ ॥

सूर्यके मध्यस्थानमें गमन करने पर जब उनके सन्ध्या करनेका समय उपस्थित हुआ, तब उन्होंने दाढोमें लगी हुई मिटीके सहसा तीन पिण्ड बनाये नारद ! फिर पृथ्वीतलमें कुश बिछाकर उनको उसहीके ऊपर रख दिया ॥ १३ ॥

स तेष्वात्मानमुद्दिश्य पित्र्यं चक्रे यथाविधि ।
संकल्पयित्वा त्रीन्पिण्डान्स्वेनैव विधिना प्रभुः ॥ १४ ॥

उन्होंने उन तीनों पिण्डोंमें आत्माके उद्देश्य करके विधिपूर्वक पितृकार्य पूरा किया । उस सर्व शक्तिमान देवेशने अपने ही विधिसे तीनों पिण्डोंकी कल्पना की ॥ १४ ॥

आत्मगात्रोष्मसंभूतैः स्नेहगर्भैस्तिलैरपि ।
प्रोक्ष्यापवर्गं देवेशः प्राङ्मुखः कृतवान्स्वयम् ॥ १५ ॥

और स्वयं ही पूर्वकी ओर मुख करके निज शरीरकी ऊष्मतासे उत्पन्न हुए स्नेहगर्भ तिलके सहारे पिण्ड प्रोक्षण करके प्रदान किया ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मर्यादास्थापनार्थं च ततो वचनमुक्तवान् ।
अहं हि पितरः स्रष्टुमुद्यतो लोककृत्स्वयम् ॥ १६ ॥

और धर्मका मर्यादा स्थापित करनेके लिये यह वचन बोले मैं स्वयं लोककर्त्ता होनेपर भी पितरोंको उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हुआ हूं ॥ १६ ॥

तस्य चिन्तयतः सद्यः पितृकार्यविधिं परम् ।
दंष्ट्राभ्यां प्रविनिर्धूता ममैते दक्षिणां दिशम् ।
आश्रिता धरणीं पिण्डास्तस्मात्पितर एव ते ॥ १७ ॥

पितृकार्य विधिका विचार करते करते मेरे दोनों दाढोंसे ये तीन पिण्ड बाहर होकर दक्षिण दिशामें पृथ्वीको अवलम्बन कर रहे हैं; विष्णुके शालग्राम मूर्त्तिकी भांति ये पितृमूर्त्ति सम्पन्न हुए हैं ॥ १७ ॥

त्रयो मूर्तिविहीना वै पिण्डमूर्तिधरास्त्विमे ।
भवन्तु पितरो लोके मया सृष्टाः सनातनाः ॥ १८ ॥

तीन पितर मूर्त्तिविहीन होनेपर भी मेरे सहारे उत्पन्न हुए इन ही पिण्डमूर्त्तियोंको धारण करके लोकमें सनातन पितर रूपसे विख्यात होंगे । ॥ १८ ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
अहमेवात्र विज्ञेयस्त्रिषु पिण्डेषु संस्थितः ॥ १९ ॥

मुझे ही इन तीनों पिण्डोंके बीच पिता, पितामह और प्रपितामह रूपसे स्थित हुआ जानो ॥ १९ ॥

नास्ति मत्तोऽधिकः कश्चित्को वाभ्यर्च्यो मया स्वयम् ।
को वा मम पिता लोके अहमेव पितामहः ॥ २० ॥

मुझसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, दूसरा कौन पुरुष मेरा पूज्य है, जिसका स्वयं मैं पूजन करूं ? लोकमें मेरा पिता कौन है ? सबका पितामह मैं ही हूं ॥ २० ॥

पितामहपिता चैव अहमेवात्र कारणम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं देवदेवो वृषाकपिः ॥ २१ ॥

मैं ही पितामह पिता हूं, मैं ही इस विषयमें कारण हूं । हे विप्र ! देवताओंके प्रभु वृषाकपि ऐसा वचन कहके ॥ २१ ॥

वराहपर्वते विप्र दत्त्वा पिण्डान्सविस्तरान् ।
आत्मानं पूजयित्वैव तत्रैवादर्शनं गतः ॥ २२ ॥

वराह पर्वतपर बहुतसे पिण्डप्रदानपूर्वक अपनी ही पितरोंके रूपमें पूजा करके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एतदर्थं शुभमते पितरः पिण्डसंज्ञिताः ।
लभन्ते सततं पूजां वृषाकपिवचो यथा ॥ २३ ॥

हे शुभमते ब्रह्मन् ! इसलिये पिण्डसंज्ञक पितृगण जो सदा पूजित हुआ करते हैं, वृषाकपिका वचन ही उनकी मर्यादाका हेतु है ॥ २३ ॥

ये यजन्ति पितॄन्देवान्गुरूंश्चैवातिथींस्तथा ।
गाश्चैव द्विजमुख्यांश्च पृथिवीं मातरं तथा ।
कर्मणा मनसा वाचा विष्णुमेव यजन्ति ते ॥ २४ ॥

जो लोग मन, वचन और कर्मसे पितर, देवता, गुरु, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पृथ्वी और माताकी पूजा करते हैं, वे लोग विष्णुकी ही पूजा किया करते हैं ॥ २४ ॥

अन्तर्गतः स भगवान्सर्वसत्त्वशरीरगः ।
समः सर्वेषु भूतेषु ईश्वरः सुखदुःखयोः ।
महान्महात्मा सर्वात्मा नारायण इति श्रुतः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३३ ॥ १२३८८ ॥

सर्व प्राणियोंके शरीरगामी वह भगवान् सबमें ही व्याप्त है; वह सब भूतोंमें समान और सुख-दुःखका ईश्वर, महान् महात्मा और सर्वात्मा नारायण है, ऐसा श्रुतिमें कहा गया है ॥ २५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३३ ॥ १२३८८ ॥

: ३३४ :

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वैतन्नारदो वाक्यं नरनारायणेरितम् ।
अत्यन्तभक्तिमान्देवे एकान्तित्वमुपेयिवान् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— नारद मुनि नर-नारायणके मुखसे ऐसी कथा सुनके भगवान् नारायणमें अत्यन्त भक्तिमान होकर वे उनके अनन्य भक्त हो गये ॥ १ ॥

प्रोष्य वर्षसहस्रं तु नरनारायणाश्रमे ।
श्रुत्वा भगवदाख्यानं दृष्ट्वा च हरिमव्ययम् ।
हिमवन्तं जगामाशु यत्रास्य स्वक आश्रमः ॥ २ ॥

उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें सहस्र वर्ष पर्यन्त वास करके भगवानका आख्यान सुनके तथा अविनाशी श्रीहरि नारायणका दर्शन करके जिस स्थानमें उनका अपना आश्रम था, उस ही हिमालय पर्वतपर गमन किया ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तावपि ख्याततपसौ नरनारायणावृषी ।
तस्मिन्नेवाश्रमे रम्ये तेपतुस्तप उत्तमम् ॥ ३ ॥

विख्यात तपस्वी नर—नारायण दोनों ऋषि भी उस रमणीय आश्रममें उत्तम तपस्या करने लगे ॥ ३ ॥

त्वमप्यमितविक्रान्तः पाण्डवानां कुलोद्वहः ।
पावितात्माद्य संवृत्तः श्रुत्वेमामादितः कथाम् ॥ ४ ॥

हे नृपसत्तम ! तुम पाण्डवकुलधुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी हो; आज इस कथाको आरंभसे सुनके तुम्हारा आत्मा पवित्र हुआ है ॥ ४ ॥

नैव तस्य परो लोको नायं पार्थिवसत्तम ।
कर्मणा मनसा वाचा यो द्विष्याद्विष्णुमव्ययम् ॥ ५ ॥

जो पुरुष अविनाशी विष्णुसे वचन, मन और कर्मके द्वारा विद्वेष करता है, उसके लिये यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥

मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः ।
यो द्विष्याद्विबुधश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् ॥ ६ ॥

जो पुरुष देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायण श्रीहरिसे विद्वेष करता है; उसके पितर सदा नरकमें डूबते रहते हैं ॥ ६ ॥

कथं नाम भवेद्द्वेष्य आत्मा लोकस्य कस्यचित् ।
आत्मा हि पुरुषव्याघ्र ज्ञेयो विष्णुरिति स्थितिः ॥ ७ ॥

हे पुरुषप्रवर ! क्या किसीका आत्मा अपने आत्माके साथ द्वेषी हो सकता है; विष्णुको ही सबका आत्मा जानो, यही शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ७ ॥

य एष गुरुरस्माकमृषिर्गन्धवतीसुतः ।
तेनैतत्कथितं तात माहात्म्यं परमात्मनः ।
तस्मान्छ्रुतं मया चेदं कथितं च तवानघ ॥ ८ ॥

हे तात ! गन्धवतीपुत्र महर्षि वेदव्यास जो कि हमारे गुरु हैं, उन्होंने ही यह अव्यय परमात्माका माहात्म्य कहा है; हे निष्पाप ! मैंने उनसे सुनके यह विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया है ॥ ८ ॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
को ह्यन्यः पुरुषव्याघ्र महाभारतकृद्भवेत् ।
धर्मान्नानाविधांश्चैव को ब्रूयात्तमृते प्रभुम् ॥ ९ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! भूमण्डलमें कृष्णद्वैपायन व्यासदेवको ही परम समर्थ नारायण स्वरूप जानो; उनके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष महाभारतका रचनाकर्त्ता हो सकता है ? और उस अनन्त शक्तिमानके अतिरिक्त कौन अनेक भांतिके धर्मोंका वर्णन करनेमें समर्थ होता ? ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वर्ततां ते महायज्ञो यथा संकल्पितस्त्वया ।
संकल्पिताश्वमेधस्त्वं श्रुतधर्मश्च तत्त्वतः ॥ १० ॥

तुमने जैसा सङ्कल्प किया है; उस ही के अनुसार तुम्हारा यह महायज्ञ सदा चालु रहे; तुमने अश्वमेध यज्ञका संकल्प करके यथार्थ धर्म सुना है ॥ १० ॥

एतत्तु महदाख्यानं श्रुत्वा पारिक्षितो नृपः ।
ततो यज्ञसमाप्त्यर्थं क्रियाः सर्वाः समारभत् ॥ ११ ॥

नृपसत्तम जनमेजयने यह महान् आख्यान सुननेके अनन्तर यज्ञसमाप्तिके लिये सब कार्य आरम्भ किया ॥ ११ ॥

नारायणीयमाख्यानमेतत्ते कथितं मया ।
नारदेन पुरा राजन्गुरवे मे निवेदितम् ।
ऋषीणां पाण्डवानां च शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः ॥ १२ ॥

मैंने यह नारायणका महात्म्य सम्बन्धी आख्यान तुम्हें कहा है । राजन् ! पहले समयमें नारदने जो कथा देवगुरुके निकट कही थी, ऋषिगण और पाण्डवोंके बीच श्रीकृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर वही वर्णित हुई थी ॥ १२ ॥

स हि परमगुरुर्भुवनपतिर्धरणिधरः शमनियमनिधिः ।
श्रुतिविनयनिधिर्द्विजपरमहितस्तव भवतु गतिर्हरिरमरहितः ॥ १३ ॥

सब प्राणी और भुवनके पति धरणिधर, शम और नियमकी निधि श्रुति तथा विनयके आधार, वह परमर्षि द्विजोंके परम हितैषी तथा देवताओंके हितचिन्तक तुम्हारे अवलम्ब होवें ॥ १३ ॥

तपसां निधिः सुमहतां महतो यशसश्च भाजनमरिष्टहा ।
एकान्तिनां शरणदोऽभयदो गतिदोऽस्तु वः स मखभागहरस्त्रिगुणातिगः ॥१४॥

उत्तम महत् तपस्याके आधार, विशाल यशके पात्र, अरिष्टोंको नष्ट करनेवाले, अनन्य भक्तोंके शरण, अभयदाता, सद्गतिदाता, यज्ञभागहर त्रिगुणातिग वह श्रीहरि तुम्हारी रक्षा करें ॥ १४ ॥

चतुष्पश्चधरः पूर्तेष्टयोश्च फलभागहरः ।
विदधाति नित्यमजितोऽतिबलो गतिमात्मगां सुकृतिनामृषिणाम् ॥ १५ ॥

जिसने चार वेद और पांच यज्ञोंको धारण किया है, जो वापी आदि पूर्त्तकर्म और अग्निहोत्र आदि इष्ट कर्मका फलभाग ग्रहण करता है, वह नित्य अपराजित, अत्यन्त बलशाली, वह भगवान् सुकृतशाली ऋषियोंकी आत्मगामिनी मतिका विधान करे ॥ १५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तं लोकसाक्षिणमजं पुरुषं रविवर्णमीश्वरगतिं बहुशः ।
प्रणमध्वमेकमतयो यतयः सलिलोद्भवोऽपि तमृषिं प्रणतः ॥ १६ ॥

उस लोकसाक्षी, जन्मरहित, पुरुष, आदित्यवर्ण, अखिलगति ईश्वरको एकाग्र चित्तसे प्रणाम करो; क्योंकि उस वासुदेव स्वरूप नारायण ऋषिको शेषशायी भी प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥

स हि लोकयोनिरमृतस्य पदं सूक्ष्मं पुराणमचलं परमम् ।
तत्सांख्ययोगिभिरुदारधृतं बुद्ध्या यतात्मभिर्विदितं सततम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३४ ॥ १२४०५ ॥

वह सब लोकोंकी उत्पत्तिका कारण, अमृतधाम, सूक्ष्म, दूसरोंको शरण देनेवाले, अचल और परम पद है; निरुद्ध चित्तवाले सांख्ययोगी लोग उस सनातन नारायणको बुद्धिके बीच सदा उदाररूपसे धारण किये हैं ॥ १७ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३४ ॥ १२४०५ ॥

: ३३५ :

जनमेजय उवाच—

श्रुतं भगवतस्तस्य माहात्म्यं परमात्मनः ।
जन्म धर्मगृहे चैव नरनारायणात्मकम् ।
महावराहसृष्टा च पिण्डोत्पत्तिः पुरातनी ॥ १ ॥

जनमेजय बोले— हे ब्रह्मन् ! सर्वऐश्वर्ययुक्त परमात्मा श्रीहरिका माहात्म्य और उसका धर्मके गृहमें नर—नारायण स्वरूपसे जन्मवृत्तान्त सुना । भगवान् महावराहने प्राचीन कालमें पिण्डोंकी उत्पत्ति की और पिण्डदानकी मर्यादा चलायी ॥ १ ॥

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च यो यथा परिकल्पितः ।
स तथा नः श्रुतो ब्रह्मन्कथ्यमानस्त्वयानघ ॥ २ ॥

और प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके विषयमें जिस प्रकार जैसा धर्म कल्पित हुआ था, आपके कहे हुए वह सब वृत्तान्त मैंने सुना ॥ २ ॥

यच्च तत्कथितं पूर्वं त्वया हयशिरो महत् ।
हव्यकव्यभुजो विष्णोरुदक्पूर्वे महोदधौ ।
तच्च दृष्टं भगवता ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ ३ ॥

पहले आपने पूर्वोत्तर महासागरके समीप हव्य—कव्य भोक्ता श्रीहरीका उत्तम और महान् हयशिरा अवतारका वर्णन कहा है; फिर भगवान् परमेष्ठि ब्रह्माने उसका दर्शन किया, यह भी कहा ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

किं तदुत्पादितं पूर्वं हरिणा लोकधारिणा।
रूपं प्रभावमहतामपूर्वं धीमतां वर ॥ ४ ॥

हे धीमान्! लोकोंको धारण करनेवाले श्रीहरिने किस निमित्त वह महाप्रभावयुक्त अद्भुत रूप उत्पन्न किया? ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा हि विबुधश्रेष्ठमपूर्वममितौजसम्।
तदश्वशिरसं पुण्यं ब्रह्मा किमकरोन्मुने ॥ ५ ॥

हे मुनि! उस अत्यन्त तेजस्वी देवप्रवर पवित्र और अद्भुत अश्वशिराको देखकर ब्रह्माने क्या किया था? ॥ ५ ॥

एतन्नः संशयं ब्रह्मन्पुराणज्ञानसंभवम्।
कथयस्वोत्तममते महापुरुषनिर्मितम्।
पाविताः स्म त्वया ब्रह्मन्पुण्यां कथयता कथाम् ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन्! हमें इस पुराणज्ञानमें सन्देह होता है, हे उत्तमबुद्धिवाले! भगवानने किस निमित्त महापुरुष रूपसे अवतार लिया, वही कहो। आपने यह पवित्र कथा कहकर हम लोगोंको पवित्र कर दिया है ॥ ६ ॥

वैशंपायन उवाच—

कथयिष्यामि ते सर्वं पुराणं वेदसंमितम्।
जगौ यद्भगवान्व्यासो राज्ञो धर्मसुतस्य वै ॥ ७ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— भगवान् वेदव्यासने राजा धर्मपुत्रके निकट जो कुछ कहा था, वह वेदतुल्य सब पुराण मैं तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा ॥ ७ ॥

श्रुत्वाश्वशिरसो मूर्तिं देवस्य हरिमेधसः।
उत्पन्नसंशयो राजा तमेव समचोदयत् ॥ ८ ॥

राजा भगवान् अश्वशिरा अवतारकी कथा सुनके सन्देहयुक्त होकर वह वक्ष्यमाण वचन कहा था ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यत्तद्दर्शितवान्ब्रह्मा देवं हयशिरोधरम्।
किमर्थं तत्समभवद्वपुर्देवोपकल्पितम् ॥ ९ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले— हे सत्तम! ब्रह्माने जो हयशिरा देवका दर्शन किया था, वह अवतार किस निमित्त उस देवने धारण किया था? उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

व्यास उवाच—

यत्किंचिदिह लोके वै देहबद्धं विशां पते।
सर्वं पञ्चभिराविष्टं भूतैरीश्वरबुद्धिजैः ॥ १० ॥

श्रीव्यास मुनि बोले— हे नरनाथ ! इस जगत्में जितने शरीरधारी प्राणि हैं, वे सब ईश्वरके सङ्कल्प मात्रसे पञ्चभूतोंके द्वारा परिपूर्ण हैं ॥ १० ॥

ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणो विराट्।
भूतान्तरात्मा वरदः सगुणो निर्गुणोऽपि च।
भूतप्रलयमव्यक्तं शृणुष्व नृपसत्तम ॥ ११ ॥

सर्वशक्तिमान भगवान् नारायण इस जगतके ईश्वर और स्रष्टा हैं, वह सब भूतोंके अन्तरात्मा, वरदाता, सगुण और निर्गुण हैं। हे नृपसत्तम ! तुम पञ्चभूतोंके अव्यय प्रलयका विषय सुनो ॥ ११ ॥

धरण्यामथ लीनायामप्सु चैकार्णवे पुरा।
ज्योतिर्भूते जले चापि लीने ज्योतिषि चानिले ॥ १२ ॥

पहिले समयमें जगत्के समुद्रमय होजाने पर पृथ्वी जलमें लीन हुई, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, ॥ १२ ॥

वायौ चाकाशसंलीने आकाशे च मनोनुगे।
व्यक्ते मनसि संलीने व्यक्ते चाव्यक्ततां गते ॥ १३ ॥

वायु आकाशमें और आकाशके मनमें लीन होने पर मन महत्तत्त्वमें लीन हुआ और व्यक्तका अव्यक्त प्रकृतिमें ॥ १३ ॥

अव्यक्ते पुरुषं याते पुंसि सर्वगतेऽपि च
तम एवाभवत्सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १४ ॥

अव्यक्तका पुरुषमें और पुरुषके परब्रह्ममें लीन होनेपर सब तमोमय होकर विशेष विज्ञान लुप्त होगया था, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था ॥ १४ ॥

तमसो ब्रह्म संभूतं तमोमूलमृतात्मकम्।
तद्विश्वभावसंज्ञान्तं पौरुषीं तनुमास्थितम् ॥ १५ ॥

तमःसन्निधानसे जगत्कारण परव्योमाख्य ब्रह्म प्रकट हुआ। तमसे ही अधिष्ठानमात्रमें प्रपञ्चात्मक ब्रह्मने वैराग्य शरीर अवलम्बन करके विश्व नाम धारण किया है ॥ १५ ॥

सोऽनिरुद्ध इति प्रोक्तस्तत्प्रधानं प्रचक्षते।
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं त्रिगुणं नृपसत्तम ॥ १६ ॥

उसे ही अनिरुद्ध कहा जाता है, और उसको ही पण्डित लोग प्रधान कहा करते हैं। हे नृपसत्तम ! उस प्रधानको ही अव्यक्त और त्रिगुणात्मक जानो ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्यासहायवान्देवो विष्वक्सेनो हरिः प्रभुः ।
अप्स्वेव शयनं चक्रे निद्रायोगमुपागतः ।
जगताश्चिन्तयन्सृष्टिं चित्रां बहुगुणोद्भवाम् ॥ १७ ॥

विद्या अर्थात् निर्विशेष चिन्मात्ररूपी वृत्तिके सहायक भगवान् विष्वक्सेन श्रीहरीने जगत्की विविध विचित्र रचना युक्त नाना गुणोंसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टिके विषयको विचारते हुए योगनिद्राके सहारे जलमें शयन किया था ॥ १७ ॥

तस्य चिन्तयतः सृष्टिं महानात्मगुणः स्मृतः ।
अहंकारस्ततो जातो ब्रह्मा शुभचतुर्मुखः ।
हिरण्यगर्भो भगवान्सर्वलोकपितामहः ॥ १८ ॥

उन्होंने सोचा; कि मैं सृष्टिकार्य अर्थात् प्रजा रूपसे अनेक होऊंगा, ऐसा विचारते हुए आत्मगुण महान्को स्मरण किया, उस महान्से अहंकार उत्पन्न हुआ । वही कल्याणकारी शुभ चार मुखवाले हिरण्यगर्भ लोकपितामह ब्रह्मा हैं ॥ १८ ॥

पद्मोऽनिरुद्धात्संभूतस्तदा पद्मनिभेक्षणः ।
सहस्रपत्रे द्युतिमानुपविष्टः सनातनः ॥ १९ ॥

वह कमलनयन ब्रह्मा उस समय अनिरुद्धसे उत्पन्न होकर सहस्र पत्रवाले कमल अर्थात् ब्रह्माण्डमें बैठ गये; वह द्युतिमान् और सनातन हैं ॥ १९ ॥

ददृशेऽद्भुतसंकाशो लोकानापोमयान्प्रभुः ।
सत्त्वस्थः परमेष्ठी स ततो भूतगणान्सृजत् ॥ २० ॥

उस अद्भुत रूपवाले ब्रह्माने पहले जलमय समस्त लोकोंको देखा । अनन्तर उस सत्त्ववर्ती अनादिनिधन ब्रह्माने भूतगणोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥

पूर्वमेव च पद्मस्य पत्रे सूर्यांशुसप्रभे ।
नारायणकृतौ बिन्दू अपामास्तां गुणोत्तरौ ॥ २१ ॥

सूर्यकी किरण समान प्रभायुक्त पद्मके पत्र अर्थात् एक अखण्ड स्थानमें पहले नारायण–विरचित गुण प्रधान जलकी दो बूंदें थी, वे रज और तम गुणकी प्रतीक थीं ॥ २१ ॥

तावपश्यत्स भगवाननादिनिधनोऽच्युतः ।
एकस्तत्राभवद्बिन्दुर्मध्वाभो रुचिरप्रभः ॥ २२ ॥

आदि–अन्तसे रहित भगवान् अच्युतने उन दोनों बूंदोंको देखा; उनके बीच जलकी पहली बूंद मधुकी भांति आभा और मनोहर प्रभासे युक्त थी ॥ २२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स तामसो मधुर्जातस्तदा नारायणाज्ञया ।
कठिनस्त्वपरो बिन्दुः कैटभो राजसस्तु सः ॥ २३ ॥

वह उस समय नारायणकी आज्ञानुसार तामस मधु नामक दैत्यके आकारमें परिणत हुई; दूसरी बूंद कठोर थी इसलिये रजःप्रधान कैटभ रूपसे प्रकट हुई ॥ २३ ॥

तावभ्यधावतां श्रेष्ठौ तमोरजगुणान्वितौ ।
बलवन्तौ गदाहस्तौ पद्मनालानुसारिणौ ॥ २४ ॥

उन तम और रजोगुणसे युक्त, श्रेष्ठ, बलवान्, हाथमें गदा लिये हुए पद्मनालके अनुसार मधु और कैटभ जन्मते ही सब ओर दौडने लगे ॥ २४ ॥

ददृशातेऽरविन्दस्थं ब्रह्माणममितप्रभम् ।
सृजन्तं प्रथमं वेदांश्चतुरश्चारुविग्रहान् ॥ २५ ॥

उन्होंने सुन्दर विग्रह और चारों वेदोंके उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको कमलके बीच स्थित देखा ॥ २५ ॥

ततो विग्रहवन्तौ तौ वेदान्दृष्ट्वासुरोत्तमौ ।
सहसा जगृहतुर्वेदान्ब्रह्मणः पश्यतस्तदा ॥ २६ ॥

अनन्तर उन विशाल शरीरवाले दोनों असुरश्रेष्ठ पुरुषोंने वेदोंको ब्रह्माके देखते ही सहसा छीन लिया ॥ २६ ॥

अथ तौ दानवश्रेष्ठौ वेदान्गृह्य सनातनान् ।
रसां विविशतुस्तूर्णमूदक्पूर्वे महोदधौ ॥ २७ ॥

अन्तमें वे दोनों श्रेष्ठ दानव सनातन वेदोंका अपहरण करके पूर्वोत्तर महा-समुद्रके मार्गसे शीघ्रही पातालमें चले गये ॥ २७ ॥

ततो हृतेषु वेदेषु ब्रह्मा कश्मलमाविशत् ।
ततो वचनमीशानं प्राह वेदैर्विनाकृतः ॥ २८ ॥

वेदोंके हरे जानेपर ब्रह्मा मोहयुक्त हुए; वे वेदरहित होके परम ईश्वरसे यह वचन कहने लगे ॥ २८ ॥

वेदा मे परमं चक्षुर्वेदा मे परमं बलम् ।
वेदा मे परमं धाम वेदा मे ब्रह्म चोत्तमम् ॥ २९ ॥

वेद ही मेरे परम नेत्र हैं, वेद ही मेरे परम बल हैं, वेद ही मेरा परम धाम है, सब वेद ही मेरे परम उपास्य देव है ॥ २९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मम वेदा हृताः सर्वे दानवाभ्यां बलादितः ।
अन्धकारा हि मे लोका जाता वेदैर्विनाकृताः ।
वेदानृते हि किं कुर्यां लोकान्वै स्रष्टुमुद्यतः ॥ ३० ॥

दोनों प्रबल दानवोंने इस स्थानसे बलपूर्वक मेरे वेदोंको हर लिया है, वेदके विना सब लोक मुझे अन्धकारमय बोध होते हैं। विना वेदोंके मैं किस प्रकार सब लोगोंकी सृष्टि करूं? ॥३०॥

अहो बत महद्दुःखं वेदनाशनजं मम ।
प्राप्तं दुनोति हृदयं तीव्रशोकाय रन्धयन् ॥ ३१ ॥

हाय ! वेद नष्ट होनेसे मुझे महत् दुःख उपस्थित हुआ है; मेरे शोकमग्न हृदयको तीव्र दुःखसे पीडा देता है ॥ ३१ ॥

को हि शोकार्णवे मग्नं मामितोऽद्य समुद्धरेत् ।
वेदांस्तानानयेन्नष्टान्कस्य चाहं प्रियो भवे ॥ ३२ ॥

इस समय शोकरूपी समुद्रमें डूबे हुए मेरा यहांसे कौन उद्धार करेगा । कौन नष्ट हुए वेदोंको फिर ले आवेगा ? मैं किसका प्रिय हूंगा ? ॥ ३२ ॥

इत्येवं भाषमाणस्य ब्रह्मणो नृपसत्तम ।
हरेः स्तोत्रार्थमुद्भूता बुद्धिर्बुद्धिमतां वर ।
ततो जगौ परं जप्यं साञ्जलिप्रग्रहः प्रभुः ॥ ३३ ॥

हे नृपसत्तम ! हे बुद्धिमत्प्रवर ! ब्रह्माके इस ही प्रकार विचार करते रहने पर भगवान् श्रीहरि नारायणके स्तोत्रके लिये उनमें बुद्धि उत्पन्न हुई । अनन्तर प्रभु ब्रह्मा हाथ जोडके परम जप्यमन्त्रको जपने लगे ॥ ३३ ॥

नमस्ते ब्रह्महृदय नमस्ते मम पूर्वज ।
लोकाद्य भुवनश्रेष्ठ सांख्ययोगनिधे विभो ॥ ३४ ॥

हे ब्रह्महृदय ! तुम्हें नमस्कार है। मेरे पूर्वज ! तुम्हें प्रणाम है । हे जगत्के आदिकारण ! भुवनश्रेष्ठ ! सांख्ययोगके आश्रय ! विभो ! तुम्हें प्रणाम है ॥ ३४ ॥

व्यक्ताव्यक्तकराचिन्त्य क्षेमं पन्थानमास्थित ।
विश्वभुक्सर्वभूतानामन्तरात्मन्नयोनिज ॥ ३५ ॥

हे व्यक्त जगत् और अव्यक्त परमाणु आदि उत्पन्न करनेवाले अचिन्त्य ! तुम क्षेमकर पथमें निवास कर रहे हो । हे अयोनिज ! तुम विश्वभुक् और तुम ही सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हो ॥ ३५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अहं प्रसादजस्तुभ्यं लोकधाम्ने स्वयंभुवे ।
त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम् ॥ ३६ ॥

हे लोकधाम ! तुम स्वयम्भु हो, मैं तुम्हारी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं । पहले तुमसे ही मेरा द्विजोंसे सत्कृत मानस जन्म हुआ है ॥ ३६ ॥

चाक्षुषं वै द्वितीयं मे जन्म चासीत्पुरातनम् ।
त्वत्प्रसादाच्च मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत् ॥ ३७ ॥

और दूसरी बार पहले तुम्हारे नेत्रसे मेरा जन्म हुआ था; तुम्हारी कृपासे तीसरी बार मेरा महत्त्वपूर्ण वाचिक जन्म हुआ । ॥ ३७ ॥

त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो ।
नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः पञ्चममुच्यते ॥ ३८ ॥

हे विभु ! तुमहीसे मेरा चौथा कानोंसे जन्म हुआ; अनन्तर नासिकासे मेरा पांचवा उत्तमजन्म कहा जाता है ॥ ३८ ॥

अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम् ।
इदं च सप्तमं जन्म पद्मजं मेऽमितप्रभ ॥ ३९ ॥

तुमसेही मेरा छठवां जन्म अण्डज कहा गया है। हे अत्यंत तेजस्वी प्रभु ! मेरा सर्व प्राणियोंकी बुद्धिवासनाका उद्बोधक यह वर्त्तमान पद्मजन्म सातवां कहके विख्यात हुआ है ॥ ३९ ॥

सर्गे सर्गे ह्यहं पुत्रस्तव त्रिगुणवर्जितः ।
प्रथितः पुण्डरीकाक्ष प्रधानगुणकल्पितः ॥ ४० ॥

प्रतिसर्गमें ही मैं त्रिगुणरहित तुम्हारे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ करता हूं; हे पुण्डरीकाक्ष ! शुद्ध सत्वमय शरीरसे मैं उत्पन्न हुआ हूं ॥ ४० ॥

त्वमीश्वरस्वभावश्च स्वयंभूः पुरुषोत्तमः ।
त्वया विनिर्मितोऽहं वै वेदचक्षुर्वयोतिगः ॥ ४१ ॥

तुम ही इश्वर, स्वभाव स्वयम्भू और पुरुषोत्तम हैं । तुमने मुझे वेदरूपी नेत्रोंसे युक्त बनाया है, आपकी कृपासे कालातीत हूं ॥ ४१ ॥

ते मे वेदा हृताश्चक्षुरन्धो जातोऽस्मि जागृहि ।
ददस्व चक्षुषी मह्यं प्रियोऽहं ते प्रियोऽसि मे ॥ ४२ ॥

इस समय मेरे वही नेत्रस्वरूप वेद अपहृत हुए हैं; इसहीसे मैं अन्ध हुआ हूं; इससे तुम जाग्रत होके मुझे नेत्र दान करो; मैं तुम्हारा प्रिय हूं और तुम भी मेरे प्रिय हो ॥ ४२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एवं स्तुतः स भगवान्पुरुषः सर्वतोमुखः ।
जहौ निद्रामथ तदा वेदकार्यार्थमुद्यतः ।
ऐश्वरेण प्रयोगेण द्वितीयां तनुमास्थितः ॥ ४३ ॥

सर्वतोमुख पुरुष भगवान्ने उस समय इस प्रकार स्तुत होकर निद्रा परित्याग की । उस समय उन्होंने वेदकार्यके लिये ऐश्वर्य प्रयोगके द्वारा दूसरा शरीर धारण किया ॥ ४३ ॥

सुनासिकेन कायेन भूत्वा चन्द्रप्रभस्तदा ।
कृत्वा हयशिरः शुभ्रं वेदानामालयं प्रभुः ॥ ४४ ॥

तब प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त शरीरके द्वारा चन्द्रप्रभा समान होके श्वेतवर्ण हयशिरा रूपसे वेदोंके अवलम्ब हुए ॥ ४४ ॥

तस्य मूर्धा समभवद्द्यौः सनक्षत्रतारका ।
केशाश्चास्याभवन्दीर्घा रवेरंशुसमप्रभाः ॥ ४५ ॥

नक्षत्र और तारोंसे युक्त आकाशमण्डल उनका सिर हुआ, सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशसे युक्त उनके केश अत्यन्त लम्बे हुए ॥ ४५ ॥

कर्णावाकाशपाताले ललाटं भूतधारिणी ।
गङ्गा सरस्वती पुण्या भ्रूवावास्तां महानदी ॥ ४६ ॥

आकाश और पाताल उनके दोनों कान, समस्त प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट, पुण्यमयी महानदियां गङ्गा और सरस्वती उनकी दोनों भौंहें थी ॥ ४६ ॥

चक्षुषी सोमसूर्यौ ते नासा संध्या पुनः स्मृता ।
ॐकारस्त्वथ संस्कारो विद्युज्जिह्वा च निर्मिता ॥ ४७ ॥

चन्द्रमा और सूर्य उनके दोनों नेत्र तथा सन्ध्या उनकी नासिका स्वरूप हुई । ओंकार उनका आभूषण और बिजली उनकी जिह्वारूप हुई ॥ ४७ ॥

दन्ताश्च पितरो राजन्सोमपा इति विश्रुताः ।
गोलोको ब्रह्मलोकश्च ओष्ठावास्तां महात्मनः ।
ग्रीवा चास्याभवद्राजन्कालरात्रिर्गुणोत्तरा ॥ ४८ ॥

हे राजन् ! सोमपान करनेवाले पितर लोग उनके दांत रूपसे कहे गये हैं, गोलोक और ब्रह्मलोक उस महात्माके ओठ थे हे महाराज ! गुणप्रधान कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी ॥४८॥

एतद्धयशिरः कृत्वा नानामूर्तिभिरावृतम् ।
अन्तर्दधे स विश्वेशो विवेश च रसां प्रभुः ॥ ४९ ॥

वह सर्वशक्तिमान विश्वेश्वर अनेक मूर्त्तियोंसे आवृत्त यह हयशिरा मूर्त्ति धारण करके अन्तर्हित होकर उस ही समय पातालमें प्रविष्ट हुए ॥ ४९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

रसां पुनः प्रविष्टश्च योगं परममास्थितः ।
शैक्षं स्वरं समास्थाय ओमिति प्रासृजत्स्वरम् ॥ ५० ॥

उन्होंने रसातलमें प्रवेश करके परम योगका अवलम्बन करके शिक्षासम्बन्धीय स्वरके सहारे ओम स्वरको उत्पन्न किया ॥ ५० ॥

स स्वरः सानुनादी च सर्वगः स्निग्ध एव च ।
बभूवान्तर्महीभूतः सर्वभूतगुणोदितः ॥ ५१ ॥

वह नाद और स्वरसे विशिष्ट कोमल प्रतिध्वनियुक्त स्वर रसातलमें सब ओर प्रकट होके सब प्राणियोंको हितकर हुआ ॥ ५१ ॥

ततस्तावसुरौ कृत्वा वेदान्समयबन्धनान् ।
रसातले विनिक्षिप्य यतः शब्दस्ततो द्रुतौ ॥ ५२ ॥

अनन्तर उन दोनों असुरोंने वेदोंको काल पाशसे बद्ध करके रसातलमें फेंक दिया और जिधर वह शब्द होता था उधर ही दौडे ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्देवो हयशिरोधरः ।
जग्राह वेदानखिलान्रसातलगतान्हरिः ।
प्रादाच्च ब्रह्मणे भूयस्ततः स्वां प्रकृतिं गतः ॥ ५३ ॥

हे राजन् ! इतने ही समयमें हयग्रीव रूपधारी भगवान् श्रीहरिने पातालमें पडे हुए उन निखिल वेदोंको ग्रहण किया और वह समस्त वेद ब्रह्माको फिर प्रदान करके निज प्रकृतिको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥

स्थापयित्वा हयशिर उदक्पूर्वे महोदधौ ।
वेदानामालयश्चापि बभूवाश्वशिरास्ततः ॥ ५४ ॥

पूर्वोत्तर समुद्र तटके समीप वेदोंके आश्रय, तथा वेदोंके उद्धार निमित्त ही भगवान् अश्वशिरा हुए थे ॥ ५४ ॥

अथ किंचिदपश्यन्तौ दानवौ मधुकैटभौ ।
पुनराजग्मतुस्तत्र वेगितौ पश्यतां च तौ ।
यत्र वेदा विनिक्षिप्तास्तत्स्थानं शून्यमेव च ॥ ५५ ॥

अनन्तर दानवश्रेष्ठ मधु और कैटभ वेदध्वनिके स्थानपर कुछ भी न देखकर, वेगपूर्वक उस स्थानपर लौट आये, जिस स्थानमें वेदोंको फेंका था, उस स्थलको भी उन्होंने सुना देखा, ॥ ५५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः उत्तममास्थाय वेगं बलवतां वरौ ।
पुनरुत्तस्थतुः शीघ्रं रसानामालयात्तदा ।
ददृशाते च पुरुषं तमेवादिकरं प्रभुम् ॥ ५६ ॥

फिर वे दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ असुर अत्यन्त वेगके सहित शीघ्रही पातालसे ऊपर उठे और सर्वशक्तिसम्पन्न आदिपुरुषको देखा ॥ ५६ ॥

श्वेतं चन्द्रविशुद्धाभमनिरुद्धतनौ स्थितम् ।
भूयोऽप्यमितविक्रान्तं निद्रायोगमुपागतम् ॥ ५७ ॥

वे चन्द्रमाके समान विशुद्धात्मा, उज्ज्वल प्रभायुक्त और गौर वर्णके थे; अनिरुद्ध शरीरमें स्थित थे; वे अत्यन्त पराक्रमी भगवान् योगनिद्रामें सो रहे थे ॥ ५७ ॥

आत्मप्रमाणरचिते अपामुपरि कल्पिते ।
शयने नागभोगाढ्ये ज्वालामालासमावृते ॥ ५८ ॥

पानीके ऊपर शेषनागकी निर्मित शय्या जो भगवानके शरीरके अनुरूप थी और ज्वाला मालाओंसे आवृत थी ॥ ५८ ॥

निष्कल्मषेण सत्त्वेन संपन्नं रुचिरप्रभम् ।
तं दृष्ट्वा दानवेन्द्रौ तौ महाहासमथोच्चताम् ॥ ५९ ॥

उस पर विशुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न मनोहर प्रभायुक्त भगवान् नारायण निद्रित हुए थे, वे दोनों दानवेन्द्र उन्हें देखकर ऊंचे स्वरसे हंसने लगे ॥ ५९ ॥

ऊचतुश्च समाविष्टौ रजसा तमसा च तौ ।
अयं स पुरुषः श्वेतः शेते निद्रामुपागतः ॥ ६० ॥

और रज तथा तमोगुणसे युक्त होकर वे दोनों बोले, यह वही श्वेत वर्णवाला पुरुष निद्रित होकर सोरहा है ॥ ६० ॥

अनेन नूनं वेदानां कृतमाहरणं रसात् ।
कस्यैष को नु खल्वेष किं च स्वपिति भोगवान् ॥ ६१ ॥

निःसन्देह इसी पुरुषने पातालसे वेदोंका हरण किया है । यह किसका पुत्र है ? कौन है ? किसलिये भोगशय्यापर सोरहा है ॥ ६१ ॥

इत्युच्चारितवाक्यौ तौ बोधयामासतुर्हरिम् ।
युद्धार्थिनौ तु विज्ञाय विबुद्धः पुरुषोत्तमः ॥ ६२ ॥

दोनों दैत्योंने ऐसा ही वचन कहके भगवान् नारायणको जगाया । पुरुषोत्तमने सावधान होके उन दोनों असुरेन्द्रोंको युद्धार्थी समझा ॥ ६२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

निरीक्ष्य चासुरेन्द्रौ तौ ततो युद्धे मनो दधे ।
अथ युद्धं समभवत्तयोर्नारायणस्य च ॥ ६३ ॥

और उन दोनों असुरेन्द्रोंको देखकर युद्ध करनेमें चित्त लगाया । अनन्तर उन दोनोंके सङ्ग नारायणका युद्ध हुआ ॥ ६३ ॥

रजस्तमोविष्टतनू तावुभौ मधुकैटभौ ।
ब्रह्मणोपचितिं कुर्वञ्जघान मधुसूदनः ॥ ६४ ॥

मधु और कैटभका शरीर रज और तमोगुणसे परिपूरित था । मधुसूदनने ब्रह्माका सम्मान करके उन दोनोंका वध किया ॥ ६४ ॥

ततस्तयोर्वधेनाशु वेदापहरणेन च ।
शोकापनयनं चक्रे ब्रह्मणः पुरुषोत्तमः ॥ ६५ ॥

पुरुषोत्तमने शीघ्र ही उनका नाश किया और वेदोंको वापस लाके ब्रह्माका शोक दूर किया ॥ ६५ ॥

ततः परिवृतो ब्रह्मा हतारिर्वेदसत्कृतः ।
निर्ममे स तदा लोकान्कृत्स्नान्स्थावरजङ्गमान् ॥ ६६ ॥

अनन्तर वेदसे सत्कृत होनेपर ब्रह्माने श्रीहरिसे सुरक्षित होकर उस समय स्थावरजङ्गम समस्त भूतोंकी सृष्टि की ॥ ६६ ॥

दत्त्वा पितामहायाग्र्यां बुद्धिं लोकविसर्गिकीम् ।
तत्रैवान्तर्दधे देवो यत एवागतो हरिः ॥ ६७ ॥

देवोंके देव श्रीहरि पितामह ब्रह्माको लोकरचनाकी उत्तम बुद्धि प्रदान करके वहीं अन्तर्धान हो गये; जिस स्थानसे वे आये थे, उस ही स्थानमें चले गये ॥ ६७ ॥

तौ दानवौ हरिर्हत्वा कृत्वा हयशिरस्तनुम् ।
पुनः प्रवृत्तिधर्मार्थं तामेव विदधे तनुम् ॥ ६८ ॥

नारायणने हयग्रीव शरीर धारण करके उन दोनों दानवोंका वध किया था; फिर प्रवृत्ति धर्मका प्रचार करनेके लिये उन्होंने उस शरीरको धारण किया था ॥ ६८ ॥

एवमेष महाभागो बभूवाश्वशिरा हरिः ।
पौराणमेतदाख्यातं रूपं वरदमैश्वरम् ॥ ६९ ॥

महाभाग श्रीहरि इस ही प्रकार अश्वशिरा हुए थे, वरदाता ईश्वरका यह प्राचीन रूप प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यो ह्येतद्ब्राह्मणो नित्यं शृणुयाद्धारयेत वा ।
न तस्याध्ययनं नाशमुपगच्छेत्कदाचन ॥ ७० ॥

जो ब्राह्मण परब्रह्मका यह माहात्म्य सुनता अथवा स्मरण करता है, उसका अध्ययन कदापि विनष्ट नहीं होता ॥ ७० ॥

आराध्य तपसोग्रेण देवं हयशिरोधरम् ।
पञ्चालेन क्रमः प्राप्तो रामेण पथि देशिते ॥ ७१ ॥

पञ्चाल मुनिने उग्र तपस्याके सहारे हयग्रीव देवकी आराधना करके देव रामके आदेशित पथसे चलकर वेदोंका क्रमविभाग प्राप्त किया था ॥ ७१ ॥

एतद्धयशिरो राजन्नाख्यानं तव कीर्तितम् ।
पुराणं वेदसमितं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ७२ ॥

हे महाराज ! तुमने मुझसे जो पूछा था, उस वेदतुल्य प्राचीन हयशिरा आख्यानको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया ॥ ७२ ॥

यां यामिच्छेत्तनुं देवः कर्तुं कार्यविधौ क्वचित् ।
तां तां कुर्याद्विकुर्वाणः स्वयमात्मानमात्मना ॥ ७३ ॥

भगवान् नारायण किसी कार्यके अनुष्ठान विषयमें जैसी मूर्त्ति धारण करनेकी इच्छा करें, वह स्वयं ही वैसी मूर्त्ति धारण कर लेते हैं ॥ ७३ ॥

एष वेदनिधिः श्रीमानेष वै तपसो निधिः ।
एष योगश्च सांख्यं च ब्रह्म चाग्र्यं हरिर्विभुः ॥ ७४ ॥

येही वेदोंके अवलम्ब हैं, येही श्रीमान् तपस्याके निधि हैं, येही योग, सांख्य, परब्रह्म, श्रेष्ठ हविष्य और विभु हैं ॥ ७४ ॥

नारायणपरा वेदा यज्ञा नारायणात्मकाः ।
तपो नारायणपरं नारायणपरा गतिः ॥ ७५ ॥

सब वेद नारायणपर, समस्त यज्ञ नारायणात्मक, सब तपस्या नाराणयाश्रय और सब गति नारायण पर है ॥ ७५ ॥

नारायणपरं सत्यमृतं नारायणात्मकम् ।
नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः ॥ ७६ ॥

सत्य नारायणनिष्ठ, ऋत अर्थात् परम सत्य नारायणात्मक और पुनरावृत्तिदुर्लभ निवृत्ति प्रधान धर्म भी नारायण पर है ॥ ७६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः ।
नारायणात्मको गन्धो भूमौ श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ ७७ ॥

प्रवृत्तिलक्षण धर्म भी नारायणात्मक है, उत्तम गन्ध जो कि भूमिमें अनुप्रविष्ट होरही है, वह भी नारायणात्मक है ॥ ७७ ॥

अपां चैव गुणो राजन्रसो नारायणात्मकः ।
ज्योतिषां च गुणो रूपं स्मृतं नारायणात्मकम् ॥ ७८ ॥

हे राजन् ! जलके गुण समस्त रस नारायणमय हैं, ज्योतिका परम गुणरूप नारायण स्वरूप ही है ॥ ७८ ॥

नारायणात्मकश्चापि स्पर्शो वायुगुणः स्मृतः ।
नारायणात्मकश्चापि शब्द आकाशसंभवः ॥ ७९ ॥

वायुका गुण स्पर्श भी नारायणस्वरूप कहा गया है, आकाशसे उत्पन्न हुआ शब्द भी नारायणात्मक है ॥ ७९ ॥

मनश्चापि ततो भूतमव्यक्तगुणलक्षणम् ।
नारायणपरः कालो ज्योतिषामयनं च यत् ॥ ८० ॥

अव्यक्तगुण लक्षणयुक्त मन उसहीसे उत्पन्न हुआ है, काल और ज्योतियुक्त पदार्थोंका अयन नारायणपरायण है ॥ ८० ॥

नारायणपरा कीर्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च देवताः ।
नारायणपरं सांख्यं योगो नारायणात्मकः ॥ ८१ ॥

कीर्त्ति, श्री और लक्ष्मी देवियां नारायणपरायण हैं, सांख्य और योगशास्त्र भी नारायणात्मक हैं ॥ ८१ ॥

कारणं पुरुषो येषां प्रधानं चापि कारणम् ।
स्वभावश्चैव कर्माणि दैवं येषां च कारणम् ॥ ८२ ॥

पुरुष, प्रधान प्रकृति, स्वभाव, कर्म और दैव, ये जिन वस्तुओंके कारण हैं, वे भी नारायण रूप ही है ॥ ८२ ॥

पञ्चकारणसंख्यातो निष्ठा सर्वत्र वै हरिः ।
तत्त्वं जिज्ञासमानानां हेतुभिः सर्वतोमुखैः ॥ ८३ ॥

ईश्वर श्रीहरि पांचों कारणोंके रूपमें सर्वत्र ही अधिष्ठित होरहा है सब सर्वव्यापक हेतुओंसे तत्त्वको जाननेकी इच्छा करते हैं ॥ ८३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तत्त्वमेको महायोगी हरिर्नारायणः प्रभुः ।
सब्रह्मकानां लोकानामृषीणां च महात्मनाम् ॥ ८४ ॥

एकमात्र सर्वशक्तिमान् महायोगी श्रीहरि ही ज्ञातव्यतत्त्व है सब लोकोंके सहित ब्रह्मा आदि देवताओं, महानुभाव ऋषियों, ॥ ८४ ॥

सांख्यानां योगिनां चापि यतीनामात्मवेदिनाम् ।
मनीषितं विजानाति केशवो न तु तस्य ते ॥ ८५ ॥

सांख्य वेत्ताओं, योगियों और आत्मज्ञ यतियोंके मनोवाञ्छित विषयोंको विशेष रीतिसे केशव जानता है; परन्तु ये सब उसके अभिप्रायको जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ८५ ॥

ये केचित्सर्वलोकेषु दैवं पित्र्यं च कुर्वते ।
दानानि च प्रयच्छन्ति तप्यन्ति च तपो महत् ॥ ८६ ॥

सब लोकोंके बीच जो पुरुष दैव और पितर कर्म करते हैं, दान करते तथा महत् तपस्या करते हैं ॥ ८६ ॥

सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वरं विधि .ास्थितः ।
सर्वभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते ॥ ८७ ॥

भगवान् विष्णु ही उन सबके अवलम्ब हैं । वेही ऐश्वर्ययुक्त और सब प्राणियोंके निवास-स्थान हैं, इस ही निमित्त वासुदेव नामसे विख्यात हैं ॥ ८७ ॥

अयं हि नित्यः परमो महर्षिर्महाविभूतिर्गुणवान्निर्गुणाख्यः ।
गुणैश्च संयोगमुपैति शीघ्रं कालो यथर्तावृतुसंप्रयुक्तः ॥ ८८ ॥

यह परम महर्षि नारायण नित्य महाविभूति आर गुणवर्जित है, तथा जैसे गुणहीन काल ऋतुओंके सहित गुणोंसे संप्रयुक्त होता है, वैसेही ईश्वर भी कार्यवशसे शीघ्र ही गुणोंसे संयुक्त हुआ करता है ॥ ८८ ॥

नैवास्य विन्दन्ति गतिं महात्मनो न चागतिं कश्चिदिहानुपश्यति ।
ज्ञानात्मकाः संयमिनो महर्षयः पश्यन्ति नित्यं पुरुषं गुणाधिकम् ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३५ ॥ १२४९४ ॥

इस लोकमें उस महात्माकी गतिको कोई भी नहीं जानता और उसके आगमनको भी कोई देखनेमें समर्थ नहीं होता है । जो सब ज्ञानमय महर्षि विद्यमान हैं, वे ही उस गुणाधिक, नित्य पुरुषको अवलोकन करते हैं ॥ ८९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३५ ॥ १२४९४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३३६ :

जनमेजय उवाच—

अहो ह्येकान्तिनः सर्वान्प्रीणाति भगवान्हरिः ।
विधिप्रयुक्तां पूजां च गृह्णाति भगवान्स्वयम् ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले— कैसा आश्चर्य है, कि भगवान् नारायण सब मुमुक्षु पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होते और वह स्वयं उनकी विधिपूर्वक की हुई पूजा ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

ये तु दग्धेन्धना लोके पुण्यपापविवर्जिताः ।
तेषां त्वयाभिनिर्दिष्टा पारंपर्यागता गतिः ॥ २ ॥

इस लोकमें जिन लोगोंकी वासना विनष्ट हुई है और जो लोग पुण्यपापसे रहित हैं, उनकी परम्पराप्राप्त गति अर्थात् ज्ञानके विषयको आपने वर्णन किया है ॥ २ ॥

चतुर्थ्यां चैव ते गत्यां गच्छन्ति पुरुषोत्तमम् ।
एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम् ॥ ३ ॥

वे लोग चौथी गति अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सङ्कर्षणकी उपेक्षा करके भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तमको पाते हैं । ऐकान्तिक पुरुष अर्थात् निष्काम भक्त लोग परम पद लाभ करते हैं ॥ ३ ॥

नूनमेकान्तधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः ।
अगत्वा गतयस्तिस्रो यद्गच्छत्यव्ययं हरिम् ॥ ४ ॥

मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि यह अनन्य भावसे भगवान्का भजनरूप धर्म ही श्रेष्ठ तथा नारायणको प्रिय है । क्योंकि ऐकान्तिक पुरुष तीनों गतियोंकी अनिरुद्ध प्रभृतिकी उपासना न करके ही सीधे चौथी गतिमें पहुंचकर अविनाशी श्रीहरिको पाते हैं ॥ ४ ॥

सहोपनिषदान्वेदान्ये विप्राः सम्यगास्थिताः ।
पठन्ति विधिमास्थाय ये चापि यतिधर्मिणः ॥ ५ ॥

जो सब विप्र यत्नवान होकर विधिपूर्वक उपनिषदोंके सहित वेदोंका पाठ करते हैं और जो लोग यतिधर्मसे युक्त हैं ॥ ५ ॥

तेभ्यो विशिष्टां जानामि गतिमेकान्तिनां नृणाम् ।
केनैष धर्मः कथितो देवेन ऋषिणापि वा ॥ ६ ॥

उनसे ऐकान्तिक पुरुषोंकी गति उत्तम मालूम होती है । कौन देवता तथा किस ऋषिके द्वारा यह भक्तिरूप धर्म वर्णित हुआ है ? ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एकान्तिनां च का चर्या कदा चोत्पादिता विभो ।
एतन्मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ॥ ७ ॥

ऐकान्तिक पुरुषोंके कैसे आचरण हैं और किस समयमें वे उत्पन्न हुए थे ? हे विभु ! मेरा यह सन्देह दूर करो; इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच—

समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे ।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ॥ ८ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् ! संग्रामभूमिमें कौरव—पाण्डवोंकी सेना उपस्थित होने पर जब अर्जुन अन्यमनस्क हुए थे, उस समय स्वयं भगवानने उन्हें गीतामें इस धर्मको कहा था ॥ ८ ॥

आगतिश्च गतिश्चैव पूर्वं ते कथिता मया ।
गहनो ह्येष धर्मो वै दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ॥ ९ ॥

वह आगति और गतिका विषय पहले मैं तुम्हारे समीप कह चुका हूं; यह धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है और अविशुद्ध मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्विज्ञेय है ॥ ९ ॥

संमितः सामवेदेन पुरैवादियुगे कृतः ।
धार्यते स्वयमीशेन राजन्नारायणेन ह ॥ १० ॥

राजन् ! पहिले समय आदि युगमें यह धर्म सामवेदके सहित समभावसे निर्मित हुआ और स्वयं जगत्के ईश्वर नारायणने इसे धारण किया है ॥ १० ॥

एतमर्थं महाराज पृष्टः पार्थेन नारदः ।
ऋषिमध्ये महाभागः शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः ॥ ११ ॥

हे महाराज ! इस धर्मके निमित्त युधिष्ठिरने ऋषियोंके बीच श्रीकृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर महाभाग नारद मुनिसे पूछा था ॥ ११ ॥

गुरुणा च ममाप्येष कथितो नृपसत्तम ।
यथा तु कथितस्तत्र नारदेन तथा शृणु ॥ १२ ॥

हे नृपसत्तम ! मेरे गुरुने भी इस विषयको वर्णन किया था; उस समय नारद मुनिने उन लोगोंसे जिस प्रकार कहा था, उसे सुनो ॥ १२ ॥

यदासीन्मानसं जन्म नारायणमुखोद्गतम् ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल तदा नारायणः स्वयम् ।
तेन धर्मेण कृतवान्दैवं पित्र्यं च भारत ॥ १३ ॥

हे पृथ्वीपाल भारत ! जिस समय नारायणके मुखसे ब्रह्माका मानस जन्म हुआ था, उस समय स्वयं उन्हें यह धर्म कहा था; नारायणने उक्त धर्मके सहारे देव और पितरकर्म किया था ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

फेनपा ऋषयश्चैव तं धर्मं प्रतिपेदिरे ।
वैखानसाः फेनपेभ्यो धर्ममेतं प्रपेदिरे ।
वैखानसेभ्यः सोमस्तु ततः सोऽन्तर्दधे पुनः ॥ १४ ॥

फेनप ऋषियोंने वही धर्म ग्रहण किया । फेनप ऋषियोंसे वैखानस मुनियोंने उस धर्मको पाया । वैखानस मुनियोंके निकटसे उस धर्मको चन्द्रमाने पाया; अनन्तर वह धर्म फिर लुप्त हो गया ॥ १४ ॥

यदासीच्चाक्षुषं जन्म द्वितीयं ब्रह्मणो नृप ।
तदा पितामहात्सोमादेतं धर्ममजानत ।
नारायणात्मकं राजन्रुद्राय प्रददौ च सः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! जब ब्रह्माका दूसरा चाक्षुष जन्म हुआ, तब उन्होंने चन्द्रमाके निकट वह धर्म सुना था । हे महाराज ! ब्रह्माने नारायणस्वरूप वह धर्म रुद्रको दिया था ॥ १५ ॥

ततो योगस्थितो रुद्रः पुरा कृतयुगे नृप ।
बालखिल्यानृषीन्सर्वान्धर्ममेतमपाठयत् ।
अन्तर्दधे ततो भूयस्तस्य देवस्य मायया ॥ १६ ॥

राजन् ! अनन्तर जब सत्ययुगमें रुद्रने योग अवलम्बन किया था, उस समय उन्होंने बालखिल्य ऋषियोंको वह धर्म प्रदान किया; अनन्तर भगवान् विष्णु देवकी मायासे वह धर्म फिर लुप्त हुआ ॥ १६ ॥

तृतीयं ब्रह्मणो जन्म यदासीद्वाचिकं महत् ।
तत्रैष धर्मः संभूतः स्वयं नारायणान्नृप ॥ १७ ॥

हे राजन् ! जब ब्रह्माका महत्त्वपूर्ण वाचिक नामक तीसरा जन्म हुआ था, उस समय यह धर्म स्वयं नारायणसे फिर प्रकट हुआ ॥ १७ ॥

सुपर्णो नाम तमृषिः प्राप्तवान्पुरुषोत्तमात् ।
तपसा वै सुतप्तेन दमेन नियमेन च ॥ १८ ॥

सुपर्ण नामक ऋषिने उत्तम रीतिसे अनुष्ठित तपस्या, दम और नियमके द्वारा पुरुषोत्तमके निकटसे यह धर्म प्राप्त किया था ॥ १८ ॥

त्रिः परिक्रान्तवानेतत्सुपर्णो धर्ममुत्तमम् ।
यस्मात्तस्माद्व्रतं ह्येतत्त्रिसौपर्णमिहोच्यते ॥ १९ ॥

सुपर्णने प्रतिदिन तीन बार इस उत्तम धर्मकी आवृत्ति की थी, इस ही निमित्त यह त्रिसौपर्ण व्रत रूपसे यहां कहा जाता है ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ऋग्वेदपाठपठितं व्रतमेतद्धि दुश्चरम् ।
सुपर्णाच्चाप्यधिगतो धर्म एष सनातनः ॥ २० ॥

यह दुश्चर व्रतधर्म ऋग्वेदपाठके बीच पठित हुआ है। इस सनातन धर्मको सुपर्णसे प्राप्त करके ॥ २० ॥

वायुना द्विपदां श्रेष्ठ प्रथितो जगदायुषा ।
वायोः सकाशात्प्राप्तश्च ऋषिभिर्विघसाशिभिः ॥ २१ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! जगत्के प्राणस्वरूप वायुने उसका प्रचार किया; वायुसे विघसाशी ऋषियोंने उसे पाया, ॥ २१ ॥

तेभ्यो महोदधिश्चैनं प्राप्तवान्धर्ममुत्तमम् ।
ततो सोऽन्तर्दधे भूयो नारायणसमाहितः ॥ २२ ॥

ऋषियोंसे यह उत्तम धर्म समुद्रको मिला; अनन्तर नारायणमें समाहित होकर यह धर्म फिर विलीन हुआ ॥ २२ ॥

यदा भूयः श्रवणजा सृष्टिरासीन्महात्मनः ।
ब्रह्मणः पुरुषव्याघ्र तत्र कीर्तयतः शृणु ॥ २३ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जब फिर महात्मा ब्रह्माकी श्रवणज अर्थात् अनाहत ध्वनिरूपी उत्पत्ति हुई थी, उस समयमें जसी घटना हुई उसे कहता हूं, सुनो ॥ २३ ॥

जगत्स्रष्टुमना देवो हरिर्नारायणः स्वयम् ।
चिन्तयामास पुरुषं जगत्सर्गकरं प्रभुः ॥ २४ ॥

देवोंके देव नारायण श्रीहरिने स्वयं जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा करके किसी पुरुषका चिन्तन किया जो जगत्की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो ॥ २४ ॥

अथ चिन्तयतस्तस्य कर्णाभ्यां पुरुषः सृतः ।
प्रजासर्गकरो ब्रह्मा तमुवाच जगत्पतिः ॥ २५ ॥

अनन्तर चिन्ता करते रहने पर उनके दोनों कानोंसे प्रजाकी सृष्टि करनेवाला पुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस समय जगत्पति नारायणने उससे कहा ॥ २५ ॥

सृज प्रजाः पुत्र सर्वा मुखतः पादतस्तथा ।
श्रेयस्तव विधास्यामि बलं तेजश्च सुव्रत ॥ २६ ॥

हे पुत्र ! तुम मुख और पाद आदि अङ्गोंसे समस्त प्रजा उत्पन्न करो। हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे बल, तेज और कल्याणका विधान करूंगा ॥ २६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

धर्मं च मत्तो गृह्णीष्व सात्वतं नाम नामतः ।
तेन सर्वं कृतयुगं स्थापयस्व यथाविधि ॥ २७ ॥

तुम मुझसे सात्वत नामक धर्मको ग्रहण करो और उस ही सात्वत धर्मसे उत्पन्न हुए समस्त सत्ययुगको विधिपूर्वक स्थापित करो ॥ २७ ॥

ततो ब्रह्मा नमश्चक्रे देवाय हरिमेधसे ।
धर्मं चाग्र्यं स जग्राह सरहस्यं ससंग्रहम् ।
आरण्यकेन सहितं नारायणमुखोद्गतम् ॥ २८ ॥

अनन्तर ब्रह्माने उस देवेश्वर श्रीहरिको नमस्कार करके उन नारायण देवके मुखसे प्रकट आरण्यक, रहस्य और संग्रहके सहित उस श्रेष्ठ धर्मका ग्रहण किया ॥ २८ ॥

उपदिश्य ततो धर्मं ब्रह्मणेऽमिततेजसे ।
तं कार्तयुगधर्माणं निराशीःकर्मसंज्ञितम् ।
जगाम तमसः पारं यत्राव्यक्तं व्यवस्थितम् ॥ २९ ॥

फिर उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको इस धर्मका उपदेश करके, कार्तयुगके धर्मसे युक्त, निष्काम कर्म नामक तमोगुणसे अतीत अव्यक्त रूपसे जिस स्थानमें पहले स्थित थे, उस ही स्थान पर चले गये ॥ २९ ॥

ततोऽथ वरदो देवो ब्रह्मलोकपितामहः ।
असृजत्स तदा लोकान्कृत्स्नान्स्थावरजङ्गमान् ॥ ३० ॥

अनन्तर लोकपितामह वरदाता ब्रह्माने समस्त चराचर लोकोंको उत्पन्न किया ॥ ३० ॥

ततः प्रावर्तत तदा आदौ कृतयुगं शुभम् ।
ततो हि सात्वतो धर्मो व्याप्य लोकानवस्थितः ॥ ३१ ॥

उस समय पहले शुभ कल्याणमय सत्ययुग प्रवृत्त हुआ; उस युगमें सात्वत धर्म सब लोकोंमें व्याप्त होके स्थित रहा ॥ ३१ ॥

तेनैवाद्येन धर्मेण ब्रह्मा लोकविसर्गकृत् ।
पूजयामास देवेशं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ३२ ॥

जगत्स्रष्टा ब्रह्माने उस आद्य धर्मसे सर्वशक्तिमान् देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा की ॥ ३२ ॥

धर्मप्रतिष्ठाहेतोश्च मनुं स्वारोचिषं ततः ।
अध्यापयामास तदा लोकानां हितकाम्यया ॥ ३३ ॥

अनन्तर सब लोकोंकी हितकामनासे धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये उस समय ब्रह्माने वह धर्म स्वारोचिष मनुको पढाया ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Swami Mukteshwar Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः स्वारोचिषः पुत्रं स्वयं शङ्खपदं नृप।
अध्यापयत्पुराव्यग्रः सर्वलोकपतिर्विभुः ॥ ३४ ॥

हे राजन्! सर्वलोकपति विभु स्वारोचिष मनुने अव्यग्र भावसे निज पुत्र शङ्खपदको इस धर्मका उपदेश दिया ॥ ३४ ॥

ततः शङ्खपदश्चापि पुत्रमात्मजमौरसम्।
दिशापालं सुधर्माणमध्यापयत भारत।
ततः सोऽन्तर्दधे भूयः प्राप्ते त्रेतायुगे पुनः ॥ ३५ ॥

हे भारत! शङ्खपदने भी अपने औरस पुत्र दिक्पाल सुधर्मको यह धर्म पढाया। अनन्तर त्रेता युग उपस्थित होनेपर फिर वह धर्म अन्तर्हित हुआ ॥ ३५ ॥

नासिक्यजन्मनि पुरा ब्रह्मणः पार्थिवोत्तम।
धर्ममेतं स्वयं देवो हरिर्नारायणः प्रभुः।
उज्जगाराराविन्दाक्षो ब्रह्मणः पश्यतस्तदा ॥ ३६ ॥

हे महाराज! अनन्तर प्रजापतिके नासत्य जन्मके समय स्वयं श्रीहरि कमललोचन देव नारायणने ब्रह्माके सन्मुख इस सात्वत धर्मको वर्णन किया था ॥ ३६ ॥

सनत्कुमारो भगवांस्ततः प्राधीतवान्नृप।
सनत्कुमारादपि च वीरणो वै प्रजापतिः।
कृतादौ कुरुशार्दूल धर्ममेतमधीतवान् ॥ ३७ ॥

हे राजन्! उनसे सनत्कुमारने प्रथम इसे अध्ययन किया हे कुरुपुङ्गव! सत्ययुगके प्रारम्भमें प्रजापति वीरणने सनत्कुमारके निकट इस सात्वत धर्मको पढा था ॥ ३७ ॥

वीरणश्चाप्यधीत्यैनं रौच्याय मनवे ददौ।
रौच्यः पुत्राय शुद्धाय सुव्रताय सुमेधसे ॥ ३८ ॥

वीरणने इसे पढके रौच्य मुनिको अध्ययन कराया; रौच्यने पवित्र, उत्तम व्रत करनेवाले, मेधावी ॥ ३८ ॥

कुक्षिनाम्नेऽथ पुत्रदौ दिशां पालाय धर्मिणे।
ततः सोऽन्तदधे भूयो नारायणमुखोद्गतः ॥ ३९ ॥

दिक्पाल धार्मिक कुक्षि नामक निज पुत्रको उक्त धर्म प्रदान किया था। अनन्तर नारायणके मुखसे उत्पन्न हुआ यह धर्म फिर अन्तर्हित हुआ ॥ ३९ ॥

अण्डजे जन्मनि पुनर्ब्रह्मणे हरियोनये।
एष धर्मः समुद्भूतो नारायणमुखात्पुनः ॥ ४० ॥

ब्रह्माके अण्डज जन्ममें भगवान्से उत्पन्न हुए ब्रह्माके लिये फिर भगवान् नारायणके मुखसे यह प्रकट हुआ ॥ ४० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

गृहीतो ब्रह्मणा राजन्प्रयुक्तश्च यथाविधि ।
अध्यापिताश्च मुनयो नाम्ना बर्हिषदो नृप ॥ ४१ ॥

ब्रह्माने उस धर्मको ग्रहण किया और उन्होंने उसे विधिपूर्वक प्रयुक्त किया। हे राजन् ! अनन्तर उन्होंने उसे बर्हिषद नामक मुनियोंको पढाया ॥ ४१ ॥

बर्हिषद्भ्यश्च संक्रान्तः सामवेदान्तगं द्विजम् ।
ज्येष्ठं नाम्नाभिविख्यातं ज्येष्ठसामव्रतो हरिः ॥ ४२ ॥

बर्हिषद मुनियोंसे सामवेदके पारदर्शी ज्येष्ठ नामक प्रसिद्ध विप्रने इसे पाया था, इस ही लिये इसका नाम ज्येष्ठसामव्रत हुआ है ॥ ४२ ॥

ज्येष्ठाच्चाप्यनुसंक्रान्तो राजानमविकम्पनम् ।
अन्तर्दधे ततो राजन्नेष धर्मः प्रभोर्हरेः ॥ ४३ ॥

जेष्ठसे अविकम्पन राजाके निकट यह धर्म संक्रान्त हुआ था। हे राजन् ! अनन्तर फिर यह भगवान् श्रीहरिका धर्म लुप्त हुआ ॥ ४३ ॥

यदिदं सप्तमं जन्म पद्मजं ब्रह्मणो नृप ।
तत्रैष धर्मः कथितः स्वयं नारायणेन हि ॥ ४४ ॥
पितामहाय शुद्धाय युगादौ लोकधारिणे ।
पितामहश्च दक्षाय धर्ममेतं पुरा ददौ ॥ ४५ ॥

हे महाराज ! ब्रह्माका यह कमलसे सातवां जन्म हुआ है। इस बार युगके प्रारम्भसे श्रीहरिने लोकविधाता शुद्धसत्व प्रजापतिके निकट इस धर्मको वर्णन किया था। अनन्तर पितामहने पहले समयमें दक्षको यह धर्म उपदेश किया था ॥ ४४–४५ ॥

ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे प्रादादक्षो नृपोत्तम ।
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वाञ्जगृहे ततः ॥ ४६ ॥

हे भारत ! दक्षने अपने ज्येष्ठ दौहित्र सविताके अग्रज आदित्यको इसे प्रदान किया। उनसे विवस्वानने इस धर्मको ग्रहण किया ॥ ४६ ॥

त्रेतायुगादौ च पुनर्विवस्वान्मनवे ददौ ।
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ॥ ४७ ॥

अनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वानने निज पुत्र वैवस्वत मनुको यह धर्म प्रदान किया; मनुने सब लोकोंको पालन करनेके निमित्त अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुको यह धर्म अध्ययन कराया ॥ ४७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः ।
गमिष्यति क्षयान्ते च पुनर्नारायणं नृप ॥ ४८ ॥

हे महाराज ! इक्ष्वाकुके द्वारा प्रचारित होकर यह धर्म सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है । कल्पान्तके समय फिर यह धर्म फिर भगवान् नारायणमें लीन होगा ॥ ४८ ॥

व्रतिनां चापि यो धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम ।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः ॥ ४९ ॥

हे नृपोत्तम ! यतियोंका जैसा धर्म है, वह पहले हरि गीताके बीच संक्षिप्तविधिके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप कहा है ॥ ४९ ॥

नारदेन तु संप्राप्तः सरहस्यः ससंग्रहः ।
एष धर्मो जगन्नाथात्साक्षान्नारायणान्नृप ॥ ५० ॥

हे राजन् ! नारद मुनिने रहस्य और संग्रहके सहित इस धर्मको साक्षात् जगदीश्वर नारायणके समीप प्राप्त किया था ॥ ५० ॥

एवमेष महान्धर्म आद्यो राजन्सनातनः ।
दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च सात्वतैर्धार्यते सदा ॥ ५१ ॥

हे राजन् ! इस ही प्रकार यह महान् धर्म आद्य और नित्य है; यह भक्तिरहित मनुष्योंसे दुर्विज्ञेय और दुष्कर है; सात्वत मतावलम्बी मनुष्य इसे सदा धारण किया करते हैं ॥५१॥

धर्मज्ञानेन चैतेन सुप्रयुक्तेन कर्मणा ।
अहिंसाधर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः ॥ ५२ ॥

यह धर्म ज्ञानपूर्वक उत्तम रीतिसे प्रयुक्त कर्म तथा अहिंसा धर्मयुक्त इसका ज्ञान होनेसे जगदीश्वर श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥

एकव्यूहविभागो वा क्वचिद्द्विव्यूहसंज्ञितः ।
त्रिव्यूहश्चापि संख्यातश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते ॥ ५३ ॥

वह कभी एक व्यूह, कभी दो व्यूह, कदापि तीन व्यूह और कभी चतुर्व्यूहसे विभक्त होकर भक्तोंके द्वारा उपासना किये हुए दीख पडते हैं ॥ ५३ ॥

हरिरेव हि क्षेत्रज्ञो निर्ममो निष्कलस्तथा ।
जीवश्च सर्वभूतेषु पञ्चभूतगुणातिगः ॥ ५४ ॥

श्रीहरि ही क्षेत्रज्ञ, निर्मम, निष्कल और पञ्चभूतोंके गुणोंको अतिक्रम करके सब प्राणियोंमें निवास करता है ॥ ५४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मनश्च प्रथितं राजन्पञ्चेन्द्रियसमीरणम् ।
एष लोकनिधिर्धीमानेष लोकविसर्गकृत् ॥ ५५ ॥

हे महाराज ! नारायण ही कान आदि पांचों इन्द्रियोंके परिचालक, मन अथवा अहङ्कार रूपसे प्रसिद्ध है । वह बुद्धिमान श्रीहरि ही सब लोकोंका सृष्टि कर्त्ता है, वही सब लोकोंका प्रवर्त्तक और अन्तर्यामी है ॥ ५५ ॥

अकर्ता चैव कर्ता च कार्यं कारणमेव च ।
यथेच्छति तथा राजन्क्रीडते पुरुषोऽव्ययः ॥ ५६ ॥

वही कर्त्ता और अकर्ता है, वही कार्य और कारण है । हे महाराज ! वह अविनाशी पुरुष जिस प्रकार इच्छा करे, उस ही भांति क्रीडा किया करता है ॥ ५६ ॥

एष एकान्तिधर्मस्ते कीर्तितो नृपसत्तम ।
मया गुरुप्रसादेन दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ।
एकान्तिनो हि पुरुषा दुर्लभा बहवो नृप ॥ ५७ ॥

हे नृपसत्तम ! यह मैंने गुरुकी कृपासे ज्ञात हुए, तुम्हारे समीपमें अपवित्र बुद्धिवाले पुरुषोंसे दुर्विज्ञेय निष्काम भक्तोंके धर्मका वर्णन किया । हे महाराज ! निष्काम अनन्य भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे बहुत नहीं होते ॥ ५७ ॥

यद्येकान्तिभिराकीर्णं जगत्स्यात्कुरुनन्दन ।
अहिंसकैरात्मविद्भिः सर्वभूतहिते रतैः ।
भवेत्कृतयुगप्राप्तिराशीःकर्मविवर्जितैः ॥ ५८ ॥

हे कुरुनन्दन ! यदि वैसे अहिंसक, आत्मज्ञ, सब प्राणियोंके हितमें रत, निष्काम भक्तोंके द्वारा जगत् परिपूरित होता, तो सदा ही सत्ययुग वर्त्तमान रहता और समस्त काम्यकर्म नष्ट होजाते ॥ ५८ ॥

एवं स भगवान्व्यासो गुरुर्मम विशां पते ।
कथयामास धर्मज्ञो धर्मराज्ञे द्विजोत्तमः ॥ ५९ ॥
ऋषीणां संनिधौ राजञ्शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः ।
तस्याप्यकथयत्पूर्वं नारदः सुमहातपाः ॥ ६० ॥

हे नरनाथ ! मेरे गुरु द्विजश्रेष्ठ धर्मज्ञ भगवान् व्यासदेवने ऋषियोंके निकट श्रीकृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर धर्मराजसे इस ही प्रकार धर्म विषय वर्णन किया था; इसके भी पहले महातपस्वी नारदने यह धर्मका विषय कहा था ॥ ५९–६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

देवं परमकं ब्रह्म श्वेतं चन्द्राभमच्युतम् ।
यत्र चैकान्तिनो यान्ति नारायणपरायणाः ॥ ६१ ॥

नारायणपरायण भक्त लोग जिस स्थानमें गमन किया करते हैं, वह श्वेतवर्ण चन्द्रमा तुल्य प्रकाशमान अच्युत देव ही परब्रह्म है ॥ ६१ ॥

जनमेजय उवाच—

एवं बहुविधं धर्मं प्रतिबुद्धैर्निषेवितम् ।
न कुर्वन्ति कथं विप्रा अन्ये नानाव्रते स्थिताः ॥ ६२ ॥

महाराज जनमेजय बोले— हे ब्रह्मन् ! ज्ञानियोंके द्वारा सेवित इस प्रकार जो यह अनेक गुणोंसे युक्त धर्म है, अन्य ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके व्रत—नियमोंमें स्थित होके किस कारणसे इस धर्मका आचरण नहीं किया ? ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तिस्रः प्रकृतयो राजन्देहबन्धेषु निर्मिताः ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति भारत ॥ ६३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— भरतवंशावतंस महाराज ! शरीरके बन्धनमें बन्धे हुए जीवोंके बीच सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन भांतिकी प्रकृतियां निर्मित हुई हैं ॥ ६३ ॥

देहबन्धेषु पुरुषः श्रेष्ठः कुरुकुलोद्वह ।
सात्त्विकः पुरुषव्याघ्र भवेन्मोक्षार्थनिश्चितः ॥ ६४ ॥

हे कुरुवंशधर पुरुष—प्रवर ! देहयुक्त जीवोंके बीच सात्त्विक पुरुष श्रेष्ठ है, और वही मोक्षका निश्चित अधिकारी है ॥ ६४ ॥

अत्रापि स विजानाति पुरुषं ब्रह्मवर्तिनम् ।
नारायणपरो मोक्षस्ततो वै सात्त्विकः स्मृतः ॥ ६५ ॥

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक पुरुषोंके बीच सात्विक मनुष्य ही ब्रह्म—वित्तम पुरुषको जान सकता है । मोक्षके परम आश्रय नारायण है, इसही लिये मुमुक्षु पुरुष सात्विक कहके प्रसिद्ध है ॥ ६५ ॥

मनीषितं च प्राप्नोति चिन्तयन्पुरुषोत्तमम् ।
एकान्तभक्तिः सततं नारायणपरायणः ॥ ६६ ॥

अत्यन्त भक्तियुक्त, नारायणपरायण पुरुष सदा भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करता हुआ मनोवांछित विषय प्राप्त करता है ॥ ६६ ॥

मनीषिणो हि ये केचिद्यतयो मोक्षकाङ्क्षिणः ।
तेषां वै छिन्नतृष्णानां योगक्षेमवहो हरिः ॥ ६७ ॥

जो सब मोक्षके अभिलाषी मनीषि पुरुष यतिव्रत अवलम्बन करते हैं श्रीहरि ही उन तृष्णारहित पुरुषोंके योगक्षेमका विधान किया करते हैं ॥ ६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः ।
सात्त्विकस्तु स विज्ञेयो भवेन्मोक्षे च निश्चितः ॥ ६८ ॥

जिस जन्ममरण आदिक दुःखमें पडे हुए पुरुषको मधुसूदन कृपापूर्वक अवलोकन करते हैं, वही मोक्ष विषयमें निश्चित अधिकारी रहता है, और उसे ही सात्त्विक पुरुष जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

सांख्ययोगेन तुल्यो हि धर्म एकान्तसेवितः ।
नारायणात्मके मोक्षे ततो यान्ति परां गतिम् ॥ ६९ ॥

ऐकान्तिक भक्तोंसे सेवित धर्म सांख्य और योगके समान है; इस ही लिये नारायणात्मक मोक्ष विषयमें सात्त्विक मनुष्य परम गति पाते हैं ॥ ६९ ॥

नारायणेन दृष्टश्च प्रतिबुद्धो भवेत्पुमान् ।
एवमात्मेच्छया राजन्प्रतिबुद्धो न जायते ॥ ७० ॥

जिस पुरुषके ऊपर नारायणकी कृपादृष्टि होती है, वही प्रतिबुद्ध अर्थात् तत्त्व-ज्ञानसे युक्त हुआ करता है । हे महाराज ! अपनी इच्छासे कोई तत्त्वज्ञानी नहीं होसकता ॥ ७० ॥

राजसी तामसी चैव व्यामिश्रे प्रकृती स्मृते ।
तदात्मकं हि पुरुषं जायमानं विशां पते ।
प्रवृत्तिलक्षणैर्युक्तं नावेक्षति हरिः स्वयम् ॥ ७१ ॥

हे राजन् ! राजसी और तामसी ये दोनों मिलीजुली अर्थात् दोषयुक्त प्रकृति कहके वर्णित हुई हैं । उस स्वरूपसे उत्पन्न हुए प्रवृत्तिलक्षणयुक्त पुरुषकी ओर स्वयं भगवान् श्रीहरि नहीं देखते ॥ ७१ ॥

पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
रजसा तमसा चैव मानुषं समभिप्लुतम् ॥ ७२ ॥

रज और तमोगुणसे जिसका मानस परिलुप्त होता है, उस उत्पन्न होनेवाले मनुष्यको लोक-पितामह ब्रह्मा प्रवृत्तिमार्गमें नियुक्त करते हैं ॥ ७२ ॥

कामं देवाश्च ऋषयः सत्त्वस्था नृपसत्तम ।
हीनाः सत्त्वेन सूक्ष्मेण ततो वैकारिकाः स्मृताः ॥ ७३ ॥

नृपोत्तम ! देवता और ऋषि लोग सब भांतिसे कामनायुक्त सत्त्वस्थ हैं । उनमें भी सूक्ष्म सत्त्व तत्त्वोंसे हीन होते हैं, उन्हें वैकारिक कहा जाता है ॥ ७३ ॥

जनमेजय उवाच—

कथं वैकारिको गच्छेत्पुरुषः पुरुषोत्तमम् ॥ ७४ ॥

महाराज जनमेजय बोले- हे ब्रह्मन् ! वैकारिक पुरुष किस प्रकारसे भगवान् पुरुषोत्तमको प्राप्त कर सकता है ? ॥ ७४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

वैशम्पायन उवाच—

सुसूक्ष्मसत्त्वसंयुक्तं संयुक्तं त्रिभिरक्षरैः ।
पुरुषः पुरुषं गच्छेन्निष्क्रियः पञ्चविंशकम् ॥ ७५ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! वैकारिक अहङ्कार अर्थात् पञ्चविंशति जीव अत्यन्त सूक्ष्म है, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जाता; वह अनारोपित रूपयुक्त अधिष्ठान मात्र, अकार, उकार और मकार, इन तीनों अक्षरोंसे संयुक्त तथा निष्क्रिय पुरुषको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च ।
परस्पराङ्गान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते ।
एष एकान्तिनां धर्मो नारायणपरात्मकः ॥ ७६ ॥

समस्त सांख्य, आत्मानात्मविवेक, चित्तवृत्ति निरोधरूप योग, जीव ब्रह्मके अभेदपर तत्त्वमसि आदि वाक्यज ज्ञान वेदारण्यक और भक्तिमार्गरूप पञ्चरात्र, ये सब एक होनेपर भी परस्परमें एक दूसरेके अङ्गस्वरूप हैं; इसलिये यही नारायणनिष्ठ ऐकान्तिक अर्थात् निष्काम भक्तोंका धर्म कहा जाता है ॥ ७६ ॥

यथा समुद्रात्प्रसृता जलौघास्तमेव राजन्पुनराविशन्ति ।
इमे तथा ज्ञानमहाजलौघा नारायणं वै पुनराविशन्ति ॥ ७७ ॥

हे महाराज ! जैसे समुद्रसे उठके जल बरसता है, और फिर समुद्रमेंही प्रवेश करता है, उसही प्रकार यह सब ज्ञानस्वरूप महासागर नारायणसे ही प्रकट होकर नारायणमें फिर प्रविष्ट हुआ करता है ॥ ७७ ॥

एष ते कथितो धर्मः सात्वतो यदुबान्धव ।
कुरुष्वैनं यथान्यायं यदि शक्नोषि भारत ॥ ७८ ॥

हे यदुबान्धव ! यह मैंने तुम्हारे समीप सात्वत धर्मका वर्णन किया है । हे भारत ! यदि तुम समर्थ हो, तो विधिपूर्वक इस ही प्रकार धर्माचरण करो ॥ ७८ ॥

एवं हि सुमहाभागो नारदो गुरवे मम ।
श्वेतानां यतिनामाह एकान्तगतिमव्ययाम् ॥ ७९ ॥

महाभाग नारदने मेरे गुरुके निकट इस ही भांति गृहवासी काषाय वस्त्रधारी यतियोंकी ऐकान्तिकी गतिका विषय वर्णन किया था ॥ ७९ ॥

व्यासश्चाकथयत्प्रीत्या धर्मपुत्राय धीमते ।
स एवायं मया तुभ्यमाख्यातः प्रसृतो गुरोः ॥ ८० ॥

व्यासदेवने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके समीप इसे कहा था; उस ही गुरुदेवके द्वारा प्रचारित इस धर्मको मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया है ॥ ८० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इत्थं हि दुश्चरो धर्म एष पार्थिवसत्तम ।
यथैव त्वं तथैवान्ये न भजन्ति विमोहिताः ॥ ८१ ॥

हे पार्थिवसत्तम ! यह धर्म अत्यन्त दुष्कर है, तुम इसे सुनके जिस प्रकार मोहित हुए हो, दूसरे पुरुष भी इसे सुननेसे उस ही भांति मोहित हुआ करते हैं ॥ ८१ ॥

कृष्ण एव हि लोकानां भावनो मोहनस्तथा ।
संहारकारकश्चैव कारणं च विशां पते ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि षट्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३६ ॥ १२५७६ ॥

हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्ण ही सब लोकोंका पालन करते और वही सबको मोहित किया करते हैं, वही सबके संहार करनेवाले और कारण स्वरूप हैं ॥ ८२ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३६ ॥ १२५७६ ॥

: ३३७ :

जनमेजय उवाच—

सांख्यं योगं पञ्चरात्रं वेदारण्यकमेव च ।
ज्ञानान्येतानि ब्रह्मर्षे लोकेषु प्रचरन्ति ह ॥ १ ॥

जनमेजय बोले— हे ब्रह्मर्षि ! सांख्य, योग, पञ्चरात्र और वेदोंके आरण्यक भाग- ये सब ज्ञानकाण्ड लोकोंमें प्रचारित हैं ॥ १ ॥

किमेतान्येकनिष्ठानि पृथङ्निष्ठानि वा मुने ।
प्रब्रूहि वै मया पृष्टः प्रवृत्तिं च यथाक्रमम् ॥ २ ॥

हे मुनि ! ये सब ज्ञानकाण्ड एकनिष्ठ हैं, अथवा पृथक्निष्ठ हैं ? मैं इसे ही पूछता हूं, आप विधिपूर्वक इस ही वृत्तान्तको वर्णन करिये और प्रवृत्तिका भी क्रमशः वर्णन करें ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—

जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं यं द्वीपमध्ये सुतमात्मवन्तम् ।
पराशराद्गन्धवती महर्षिं तस्मै नमोऽज्ञानतमोनुदाय ॥ ३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— गन्धवतीने द्वीपके बीच आत्मयोग निबन्धनसे पराशरके द्वारा अत्यन्त उदार जिस परम उत्कृष्ट बहुज्ञ पुत्रको प्रसव किया था, उस अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले परम ऋषिको नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं महर्षिमार्षेयविभूतियुक्तम् ।
नारायणस्यांशजमेकपुत्रं द्वैपायनं वेदमहानिधानम् ॥ ४ ॥

पण्डित लोग जिसे पितामहके आदिभूत नारायणके अंशज, पिताके एकही पुत्र और हिरण्य-गर्भके ऐश्वर्ययुक्त वेदोंके महानिधान महर्षि द्वैपायन कहा करते हैं, उसे नारायणसे गिनती करके छठवां अवतार जानना चाहिये ॥ ४ ॥

तमादिकालेषु महाविभूतिर्नारायणो ब्रह्ममहानिधानम् ।
ससर्ज पुत्रार्थमुदारतेजा व्यासं महात्मानमजः पुराणः ॥ ५ ॥

पहले समयमें महा ऐश्वर्यशाली, उदारस्वभाव, तेजवी, अज और पुराणपुरुष नारायणने वेदोंके महानिधान उस महानुभाव व्यासदेवको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

जनमेजय उवाच—

त्वयैव कथितं पूर्वं संभवो द्विजसत्तम ।
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः ॥ ६ ॥

जनमेजय बोले— हे द्विजसत्तम ! पहले आपने ही व्यासदेवकी उत्पत्तिका विषय कहा था, कि वसिष्ठके पुत्र शक्ति, शक्तिके पुत्र पराशर ॥ ६ ॥

पराशरस्य दायादः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
भूयो नारायणसुतं त्वमेवैनं प्रभाषसे ॥ ७ ॥

और पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन मुनि व्यास हैं । अब आप फिर उन्हें नारायणका पुत्र कहते हैं ॥ ७ ॥

किमतः पूर्वजं जन्म व्यासस्यामिततेजसः ।
कथयस्वोत्तममते जन्म नारायणोद्भवम् ॥ ८ ॥

इसलिये अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवका क्या वह पहला जन्म है ? हे महाबुद्धिमान् ! व्यास-देवकी जिस प्रकार नारायणसे उत्पत्ति हुई थी, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ८ ॥

वैशंपायन उवाच—

वेदार्थान्वेत्तुकामस्य धर्मिष्ठस्य तपोनिधेः ।
गुरोर्मे ज्ञाननिष्ठस्य हिमवत्पाद आसतः ॥ ९ ॥

श्री वैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! समस्त वेदार्थ जाननेकी इच्छासे जब धर्मिष्ठ, तपस्या करनेमें निष्ठावान तपोनिधि ज्ञाननिष्ठ मेरे गुरुने हिमगिरिपर्वत शिखरपर निवास किया था॥९॥

कृत्वा भारतमाख्यानं तपःश्रान्तस्य धीमतः ।
शुश्रूषां तत्परा राजन्कृतवन्तो वयं तदा ॥ १० ॥

उस समय उस धीमान् ऋषिके महाभारताख्यान बनाके तपसे श्रान्त होने पर, हम लोगोने उनकी सेवा की थी ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च सुदृढव्रतः ।
अहं चतुर्थः शिष्यो वै शुको व्यासात्मजस्तथा ॥ ११ ॥

सुमन्तु, जैमिनि, दृढव्रती पैल, चौथा मैं, और व्यासदेवके पुत्र शुकदेव पाचवें थे ॥ ११ ॥

एभिः परिवृतो व्यासः शिष्यैः पञ्चभिरुत्तमैः ।
शुशुभे हिमवत्पादे भूतैर्भूतपतिर्यथा ॥ १२ ॥

इन्हीं पांचों उत्तम शिष्योंसे व्यासदेव सदा घिरकर हिमालयके शिखर पर भूतोंसे घिरे हुए भूतपति भगवान् महादेवकी भांति विराजते थे ॥ १२ ॥

वेदानावर्तयन्साङ्गान्भारतार्थांश्च सर्वशः ।
तमेकमनसं दान्तं युक्ता वयमुपास्महे ॥ १३ ॥

हम लोग अंगोंके सहित सब वेदोंकी आवृत्ति करते और महाभारतके अर्थको सब प्रकारसे विचारते हुए, उस एकचित तथा जितेंद्रिय गुरुकी स्थिर होकर सेवा करते थे ॥ १३ ॥

कथान्तरेऽथ कस्मिंश्चित्पृष्टोऽस्माभिर्द्विजोत्तमः ।
वेदार्थान्भारतार्थांश्च जन्म नारायणात्तथा ॥ १४ ॥

अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे हम लोगोंने उन द्विजवरको वेदार्थ, भारतका अर्थ और भगवान् नारायणसे उनके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त पूछा ॥ १४ ॥

स पूर्वमुक्त्वा वेदार्थान्भारतार्थांश्च तत्त्ववित् ।
नारायणादिदं जन्म व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १५ ॥

तत्त्ववित् व्यासदेवने पहले वेदार्थ और भारतका अर्थ कहके, फिर वे भगवान् नारायणसे अपनी उत्पत्तिका पूर्ण वृत्तान्त कहने लगे ॥ १५ ॥

शृणुध्वमाख्यानवरमेतदार्षेयमुत्तमम् ।
आदिकालोद्भवं विप्रास्तपसाधिगतं मया ॥ १६ ॥

हे विप्रगण ! पहले समयमें प्रकट हुआ यह ऋषिप्रणीत उत्तम आख्यान जो कि मुझे तपस्याके सहारे मालूम हुआ है, उसे कहता हूं, सुनो ॥ १६ ॥

प्राप्ते प्रजाविसर्गे वै सप्तमे पद्मसंभवे ।
नारायणो महायोगी शुभाशुभविवर्जितः ॥ १७ ॥

सातवें कल्पके प्रारम्भमें जब सातवीं बार ब्रह्माका कमलसे जन्म ग्रहण करनेका समय आया, तब शुभाशुभ कर्मोंसे रहित, महायोगी नारायणने, ॥ १७ ॥

ससृजे नाभितः पुत्रं ब्रह्माणममितप्रभम् ।
ततः स प्रादुरभवदथैनं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

नाभिकमलसे पहले अमित तेजस्वी ब्रह्माको उत्पन्न किया । ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर भगवान् नारायण उनसे बोले, ॥ १८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

मम त्वं नाभितो जातः प्रजासर्गकरः प्रभुः ।
सृज प्रजास्त्वं विविधा ब्रह्मन्सजडपण्डिताः ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा उत्पन्न करनेकी शक्तिसे संयुक्त होकर मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हो; इसलिये जड और चैतन्ययुक्त विविध प्रजाकी सृष्टि करो ॥ १९ ॥

स एवमुक्तो विमुखश्चिन्ताव्याकुलमानसः ।
प्रणम्य वरदं देवमुवाच हरिमीश्वरम् ॥ २० ॥

ब्रह्माने भगवान् नारायणका ऐसा वचन सुनके सृष्टि कार्यसे विमुख तथा चिन्तासे व्याकुल मन होकर, वरदाता ईश्वर तेजस्वी श्रीहरिका प्रणाम करके बोले ॥ २० ॥

का शक्तिर्मम देवेश प्रजाः स्रष्टुं नमोऽस्तु ते ।
अप्रज्ञावानहं देव विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २१ ॥

हे देवेश ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं; प्रजाको उत्पन्न करनेमें मेरी क्या सामर्थ्य है ? हे देव ! मैं बुद्धिमान् नहीं हूं, इसलिये इसके अनन्तर जैसा करना हो, तुम उसका विधान करो ॥२१॥

स एवमुक्तो भगवान्भूत्वाथान्तर्हितस्ततः ।
चिन्तयामास देवेशो बुद्धिं बुद्धिमतां वरः ॥ २२ ॥

अनन्तर बुद्धिमत्प्रवर देवेश्वर भगवान प्रजापति ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होकर बुद्धिका विचार करने लगे ॥ २२ ॥

स्वरूपिणी ततो बुद्धिरुपतस्थे हरिं प्रभुम् ।
योगेन चैनां निर्योगः स्वयं नियुयुजे तदा ॥ २३ ॥

भगवान्के चिन्तन करते रहनेपर मूर्त्तिमती बुद्धि सर्व ऐश्वर्यशाली श्रीहरि नारायणके निकट प्रकट हुई । अनन्तर निर्योगी भगवान् स्वयं ही उस बुद्धिको योगशक्तिसे सम्पन्न कर दिया ॥ २३ ॥

स तामैश्वर्ययोगस्थां बुद्धिं शक्तिमतीं सतीम् ।
उवाच वचनं देवो बुद्धिं वै प्रभुरव्ययः ॥ २४ ॥

अविनाशी प्रभु नारायणने उस ऐश्वर्ययोग अवलम्बन करनेवाली गतिशालिनी सती बुद्धिसे कहा ॥ २४ ॥

ब्रह्माणं प्रविशस्वेति लोकसृष्ट्यर्थसिद्धये ।
ततस्तमीश्वरादिष्टा बुद्धिः क्षिप्रं विवेश सा ॥ २५ ॥

तुम लोक सृष्टि सिद्ध करनेके लिये प्रजापति ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रवेश करो । अनन्तर ईश्वरकी आज्ञासे बुद्धि शीघ्र ही ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हुई ॥ २५ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथैनं बुद्धिसंयुक्तं पुनः स ददृशे हरिः ।
भूयश्चैनं वचः प्राह सृजेमा विविधाः प्रजाः ॥ २६ ॥

जब भगवान् नारायणने ब्रह्माको बुद्धियुक्त देखा, तब फिर प्रकट होके उनसे कहा, हे ब्रह्मन् ! इन सब विविध प्रजासमूहको उत्पन्न करो ॥ २६ ॥

एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
प्राप चैवं मुहूर्तेन स्वस्थानं देवसंज्ञितम् ॥ २७ ॥

भगवान् ऐसी आज्ञा देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये और मुहूर्त्तकालके बीच अपने देव धाममें पहुंचे ॥ २७ ॥

तां चैव प्रकृतिं प्राप्य एकीभावगतोऽभवत् ।
अथास्य बुद्धिरभवत्पुनरन्या तदा किल ॥ २८ ॥

वहां पूर्वप्रकृतिको प्राप्त होकर एक भावसे निवास करने लगे; फिर उनके मनमें अन्य प्रकारका दुसरा विचार उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥

सृष्टा इमाः प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
दैत्यदानवगन्धर्वरक्षोगणसमाकुलाः ।
जाता हीयं वसुमती भाराक्रान्ता तपस्विनी ॥ २९ ॥

इधर परमेष्ठी प्रजापतिके द्वारा इन सब प्रजाओंकी सृष्टि हुई; यह तपस्विनी वसुमती दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसोंसे परिपूरित होनेसे उनके बोझेसे आक्रान्त हुई है ॥ २९ ॥

बहवो बलिनः पृथ्व्यां दैत्यदानवराक्षसाः ।
भविष्यन्ति तपोयुक्ता वरान्प्राप्स्यन्ति चोत्तमान् ॥ ३० ॥

पृथ्वीमण्डलपर बहुतेरे दैत्य, दानव और राक्षस लोग बलवान् होंगे और वे लोग तपस्या करके उत्तम वर पावेंगे ॥ ३० ॥

अवश्यमेव तैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितैः ।
बाधितव्याः सुरगणा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तत्र न्याय्यमिदं कर्तुं भारावतरणं मया ॥ ३१ ॥

वे सब वरके अभिमानसे मत्त होकर अवश्य ही देवताओं और तपोधन ऋषियोंके कार्यमें बाधा करेंगे, उस समय पृथ्वीका भार उतारना मेरा न्याय्यकार्य होगा ॥ ३१ ॥

अथ नानासमुद्भूतैर्वसुधायां यथाक्रमम् ।
निग्रहेण च पापानां साधूनां प्रग्रहेण च ॥ ३२ ॥

अनन्तर पृथ्वीपर क्रमशः विधिपूर्वक अनेक प्रकारके अवतारोंके सहारे पापाचारियोंके निग्रह और साधुओंको पालन करनेके कारण ॥ ३२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

इमां तपस्विनीं सत्यां धारयिष्यामि मेदिनीम् ।
मया ह्येषा हि ध्रियते पातालस्थेन भोगिना ॥ ३३ ॥

मैं इस तपस्विनी सत्यस्वरूप पृथ्वीको धारण करूंगा; मैं पातालमें शेषनागके रूपसे इस पृथ्वीको धारण कर रहा हूं ॥ ३३ ॥

मया धृता धारयति जगद्धि सचराचरम् ।
तस्मात्पृथ्व्याः परित्राणं करिष्ये संभवं गतः ॥ ३४ ॥

मैंने इसे धारण किया है; इसहीसे यह स्थावर-जङ्गमात्मक निखिल जगत्को धारण करती है । इसलिये मैं अवतार लेके इसका परित्राण करूंगा ॥ ३४ ॥

एवं स चिन्तयित्वा तु भगवान्मधुसूदनः ।
रूपाण्यनेकान्यसृजत्प्रादुर्भावभवाय सः ॥ ३५ ॥

भगवान् मधुसूदनने इसही प्रकार विचार करके उत्पत्तिविषयमें अनेक प्रकरका रूप धारण किया ॥ ३५ ॥

वाराहं नारसिंहं च वामनं मानुषं तथा ।
एभिर्मया निहन्तव्या दुर्विनीताः सुरारयः ॥ ३६ ॥

वाराह, नारसिंह, वामन और मनुष्य, इन सब मूर्त्तियोंके सहारे मैं दुर्विनीत दानवोंको मारूंगा ॥ ३६ ॥

अथ भूयो जगत्स्रष्टा भोःशब्देनानुनादयन् ।
सरस्वतीमुच्चचार तत्र सारस्वतोऽभवत् ॥ ३७ ॥

अनन्तर जगत्स्रष्टा श्रीहरिने 'भोः' शब्दके सहारे सब दिशाओंको अनुनाद करते हुए वाणीका (सरस्वती) उच्चारण किया; उस वाणीसे उत्पन्न होनेके कारण सारस्वतका आविर्भाव हुआ ॥ ३७ ॥

अपान्तरतमा नाम सुतो वाक्संभवो विभोः ।
भूतभव्यभविष्यज्ञः सत्यवादी दृढव्रतः ॥ ३८ ॥

और भगवान्के वाणीसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम अपान्तरतमा हुआ वह भूतभव्यभविष्यज्ञ, सत्यवादी और दृढव्रती थे ॥ ३८ ॥

तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः ।
वेदाख्याने श्रुतिः कार्या त्वया मतिमतां वर ।
तस्मात्कुरु यथाज्ञप्तं मयैतद्वचनं मुने ॥ ३९ ॥

देवोंके देव अविनाशी श्रीहरि उस नतमस्तक पुत्रको सम्बोधन करके बोले- हे मतिमत्प्रवर मुनि ! तुम्हें वेदोंकी व्याख्याके लिये ऋक्, साम, यजुष् आदि श्रुतियोंका संग्रह करना है; मैंने जैसी आज्ञा दी है, उसहीके अनुसार तुम मेरे वचनका प्रतिपालन करो । मुझे तुमसे इतनाही कहना है ॥ ३९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तेन भिन्नास्तदा वेदा मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे ।
ततस्तुतोष भगवान्हरिस्तेनास्य कर्मणा ।
तपसा च सुतप्तेन यमेन नियमेन च ॥ ४० ॥

उसने भगवानकी आज्ञानुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदोंका विभाग किया । भगवान् श्रीहरि उसके वैसे कर्म और उत्तम रीतिसे अनुष्ठान की हुई तपस्या तथा यम-नियमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच—

मन्वन्तरेषु पुत्र त्वमेवं लोकप्रवर्तकः ।
भविष्यस्यचलो ब्रह्मन्नप्रधृष्यश्च नित्यशः ॥ ४१ ॥

श्रीभगवान बोले— हे पुत्र ! हे ब्रह्मन् ! तुम सब मन्वन्तरोंमें इस ही प्रकार अचल और अप्रधृष्य होकर सदा ऐसे ही लोकोंके प्रवर्त्तक होंगे ॥ ४१ ॥

पुनस्तिष्ये च संप्राप्ते कुरवो नाम भारताः ।
भविष्यन्ति महात्मानो राजानः प्रथिता भुवि ॥ ४२ ॥

फिर कलियुगके प्रारम्भमें भरतवंशमें कौरवनामक महानुभाव राजा भूमण्डलमें प्रसिद्ध होंगे ॥ ४२ ॥

तेषां त्वत्तः प्रसूतानां कुलभेदो भविष्यति ।
परस्परविनाशार्थं त्वामृते द्विजसत्तम ॥ ४३ ॥

हे द्विजसत्तम ! तुमसे उत्पन्न हुए उन कौरवोंकी परस्पर विनाश होनेके लिये फूट होगी; तुम्हारे सहयोगके बिना उनमें युद्ध होगा ॥ ४३ ॥

तत्राप्यनेकधा वेदान्भेत्स्यसे तपसान्वितः ।
कृष्णे युगे च संप्राप्ते कृष्णवर्णो भविष्यसि ॥ ४४ ॥

उस समय तुम तपस्यायुक्त होकर वेदोंको अनेक प्रकारसे विभिन्न करोगे । कलियुगमें तुम कृष्णवर्णके होंगे ॥ ४४ ॥

धर्माणां विविधानां च कर्ता ज्ञानकरस्तथा ।
भविष्यसि तपोयुक्तो न च रागाद्विमोक्ष्यसे ॥ ४५ ॥

तुम विविध धर्मोंके कर्त्ता और ज्ञानप्रवर्त्तक होगे और तपसे युक्त होनेपर भी रागरहित न होगे ॥ ४५ ॥

वीतरागश्च पुत्रस्ते परमात्मा भविष्यति ।
महेश्वरप्रसादेन नैतद्वचनमन्यथा ॥ ४६ ॥

भगवान् महादेवकी कृपासे तुम्हारा पुत्र रागरहित होकर परमात्मा स्वरूप होगा; मेरा यह वचन मिथ्या न होगा ॥ ४६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यं मानसं वै प्रवदन्ति पुत्रं पितामहस्योत्तमबुद्धियुक्तम् ।
वसिष्ठमग्र्यं तपसो निधानं यश्चापि सूर्यं व्यतिरिच्य भाति ॥ ४७ ॥

ब्राह्मण लोग जिन्हे पितामह ब्रह्माका मानसपुत्र सबसे श्रेष्ठ वसिष्ठ कहते हैं, जो उत्तम बुद्धिसे युक्त और तपोनिधि हैं, जिनका तेज सूर्यको भी अतिक्रम करता है ॥ ४७ ॥

तस्यान्वये चापि ततो महर्षिः पराशरो नाम महाप्रभावः ।
पिता स ते वेदनिधिर्वरिष्ठो महातपा वै तपसो निवासः ।
कानीनगर्भः पितृकन्यकायां तस्माद्दवेस्त्वं भविता च पुत्रः ॥ ४८ ॥

उनके वंशमें पराशर नामवाले महाप्रभावयुक्त महर्षिका जन्म होगा, वही वेदनिधि, वरिष्ठ, महातपस्वी तपोनिधि तुम्हारे पिता होंगे । तुम उन ही महर्षिके द्वारा पिताके घरमें रहनेवाली एक कुमारी कन्याके गर्भसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होगे और कानीनगर्भ कहे जाओगे ॥ ४८ ॥

भूतभव्यभविष्याणां छिन्नसर्वार्थसंशयः ।
ये ह्यतिक्रान्तकाः पूर्वं सहस्रयुगपर्ययाः ॥ ४९ ॥

तुम भूत, वर्तमान, भविष्यत्के समस्त विषयोंके संशयको नष्ट करोगे । पहले जो सहस्रयुगोंके कल्प व्यतीत हुए हैं ॥ ४९ ॥

तांश्च सर्वान्मयोद्दिष्टान्द्रक्ष्यसे तपसान्वितः ।
पुनर्द्रक्ष्यसि चानेकसहस्रयुगपर्ययान् ॥ ५० ॥

तुम तपस्यायुक्त होकर मेरी आज्ञासे उन सब युगधर्मोंको अवलोकन करोगे और भविष्यमें होनेवाले अनेक कल्प भी देख सकोगे ॥ ५० ॥

अनादिनिधनं लोके चक्रहस्तं च मां मुने ।
अनुध्यानान्मम मुने नैतद्वचनमन्यथा ॥ ५१ ॥

हे मुनि ! मेरा नित्य चिन्तन करनेसे मुझ अनादि निधन परमात्माको हाथमें चक्र लिये देखोगे। मेरा यह वचन मिथ्या न होगा ॥ ५१ ॥

शैनश्चरः सूर्यपुत्रो भविष्यति मनुर्महान् ।
तस्मिन्मन्वन्तरे चैव सप्तर्षिगणपूर्वकः ।
त्वमेव भविता वत्स मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ५२ ॥

सूर्यपुत्र शनैश्चर सुमहान् मनु होंगे, हे पुत्र ! उस मन्वन्तरमें तुम मेरी कृपासे निःसन्देह मन्वादिगणोंमें अग्रगण्य होगे ॥ ५२ ॥

व्यास उवाच—
एवं सारस्वतमृषिमपान्तरतमं तदा ।
उक्त्वा वचनमीशानः साधयस्वेत्यथाब्रवीत् ॥ ५३ ॥

श्री वेद व्यासमुनि बोले– ईश्वरने अपान्तरतमा सारस्वत ऋषिसे ऐसा ही वचन कहते उन्हें प्रस्थान करनेके निमित्त आज्ञा देते हुए कहा अपना काम करो ॥ ५३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सोऽहं तस्य प्रसादेन देवस्य हरिमेधसः ।
अपान्तरमा नाम ततो जातोऽऽज्ञया हरेः ।
पुनश्च जातो विख्यातो वसिष्ठकुलनन्दनः ॥ ५४ ॥

उस भगवान् हरिमेधा देवकी कृपा अनुसार मैंने पहले अपान्तरतमा नामसे जन्म ग्रहण किया था। अब उन श्रीहरिकी आज्ञासे पुनर्वार मैं वसिष्ठकुलका आनन्दवर्द्धक होकर व्यासके नामसे उत्पन्न होके विख्यात हुआ हूं ॥ ५४ ॥

तदेतत्कथितं जन्म मया पूर्वकमात्मनः ।
नारायणप्रसादेन तथा नारायणांशजम् ॥ ५५ ॥

नारायणकी कृपासे तथा उनहींके अंशसे मेरा जो पहले जन्म हुआ था, उसे मैंने वर्णन किया ॥ ५५ ॥

मया हि सुमहत्तप्तं तपः परमदारुणम् ।
पुरा मतिमतां श्रेष्ठाः परमेण समाधिना ॥ ५६ ॥

हे मतिमत्प्रवर शिष्यगण ! पहले समयमें मैंने परम समाधिके सहित अत्यन्त ही कठोर और महान् तपस्या की थी ॥ ५६ ॥

एतद्वः कथितं सर्वं यन्मां पृच्छथ पुत्रकाः ।
पूर्वजन्म भविष्यं च भक्तानां स्नेहतो मया ॥ ५७ ॥

हे शिष्यवृन्द ! तुम लोगोंने जो पूछा था, गुरु भक्त शिष्योंके स्नेहवशसे मैंने पूर्व जन्म और भविष्यत्का समस्त वृत्तान्त तुम लोगोंके समीप कहा है ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एष ते कथितः पूर्वं संभवोऽस्मद्गुरोर्नृप ।
व्यासस्याक्लिष्टमनसो यथा पृष्टः पुनः शृणु ॥ ५८ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! यही पहले क्लेशरहित चित्तवाले अपने गुरु व्यासदेवका जन्मवृत्तान्त तुमसे कहा है। और जो तुम पूछते हैं उसे कहता हूं, सुनो ॥ ५८ ॥

सांख्यं योगं पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा ।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै ॥ ५९ ॥

हे राजर्षि ! सांख्य, योग, पञ्चरात्र, समस्त वेद और पाशुपत शास्त्र– इन सब ज्ञानप्रतिपादक शास्त्रोंको अनेक मतोंसे संयुक्त जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते ।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः ॥ ६० ॥

सांख्य शास्त्रके वक्ता कपिल मुनि हैं, वे परम ऋषि रूपसे वर्णित हुए हैं; योगशास्त्रके पुरातन ज्ञाता हिरण्यगर्भ ब्रह्मा हैं; दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ६० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥ ६१ ॥

अपान्तरतमा ऋषि वेदाचार्य कहके वर्णित हुए हैं, इस लोकमें कोई कोई उन्हें प्राचीनगर्भ ऋषि कहा करते हैं ॥ ६१ ॥

उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥ ६२ ॥

ब्रह्माके पुत्र उमापति, भूतनाथ, श्रीकण्ठ शिवने सावधानचित्त होकर यह पाशुपत ज्ञान-शास्त्र कहा है ॥ ६२ ॥

पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वेत्ता तु भगवान्स्वयम् ।
सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते ॥ ६३ ॥

हे नृपवर ! भगवान् नारायण स्वयं समस्त पञ्चरात्रके जाननेवाले हैं; इन सब शास्त्रोंके बीच यही दीख पडता है ॥ ६३ ॥

यथागमं यथाज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुः ।
न चैनमेवं जानन्ति तमोभूता विशां पते ॥ ६४ ॥

कि आगम और अनुभवके अनुसार सब ऐश्वर्योंसे युक्त परमात्मा ही सब, शास्त्रोंका परम तात्पर्य और विषयीभूत है । ने नरनाथ ! मोहसे छिपे हुए मनुष्य लोग नारायणको इस प्रकार नहीं जान सकते ॥ ६४ ॥

तमेव शास्त्रकर्तारं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
निष्ठां नारायणमृषिं नान्योऽस्तीति च वादिनः ॥ ६५ ॥

शास्त्र बनानेवाले मनीषियोंने उस नारायण ऋषिको ही समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य परम लक्ष्य कहा है; शास्त्रोंका पतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ६५ ॥

निःसंशयेषु सर्वेषु नित्यं वसति वै हरिः ।
ससंशयान्हेतुबलान्नाध्यावसति माधवः ॥ ६६ ॥

ज्ञानबलसे निःसंदेह हुए पुरुषोंमें नारायण सदा निवास कर रहा है, और संशय करनेवाले कुतर्की मनुष्योंमें वह भगवान् माधव स्थिति नहीं करता ॥ ६६ ॥

पञ्चरात्रविदो ये तु यथाक्रमपरा नृप ।
एकान्तभावोपगतास्ते हरिं प्रविशन्ति वै ॥ ६७ ॥

हे महाराज ! जो लोग पञ्चरात्रके जाननेवाले, क्रमपरायण और निष्काम धर्ममें अनन्य भावसे निष्ठावान् हैं, वेही भगवान् नारायणमें प्रवेश किया करते हैं ॥ ६७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सांख्यं च योगं च सनातने द्वे वेदाश्च सर्वे निखिलेन राजन् ।
सर्वैः समस्तैर्ऋषिभिर्निरुक्तो नारायणो विश्वमिदं पुराणम् ॥ ६८ ॥

हे राजन् ! सांख्य, योगशास्त्र और निखिल वेदश्रुति प्रतिपादनका हेतु, आदि और अन्तसे रहित हैं, इसहीसे सनातन कहाता है, समस्त ऋषियोंके द्वारा ऐसा ही निरूपित हुआ है, कि पुराण पुरुष नारायण ही यह दृश्यमान समस्त जगत्‌रूप है ॥ ६८ ॥

शुभाशुभं कर्म समीरितं यत्प्रवर्तते सर्वलोकेषु किंचित् ।
तस्मादृषेस्तद्भवतीति विद्याद्दिव्यन्तरिक्षे भुवि चाप्सु चापि ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३७ ॥ १२६४५ ॥

वेदविहित जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म सब लोकोंमें अर्थात् द्युलोक, भूलोक, अन्तरिक्ष और जलके बीच प्रवर्त्तित होते हैं, उन्हें यह जानना चाहिये, कि ये सब उसही परम ऋषि नारायणसे प्रवर्त्तित हुए हैं ॥ ६९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३७ ॥ १२६४५ ॥

: ३३८ :

जनमेजय उवाच—

बहवः पुरुषा ब्रह्मन्नुताहो एक एव तु ।
को ह्यत्र पुरुषः श्रेष्ठः को वा योनिरिहोच्यते ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले– हे ब्रह्मन् ! पुरुष अनेक अथवा एक ही है ? इस जगत्‌में श्रेष्ठ पुरुष कौन है और किसे यहां सबकी उत्पत्तिका स्थान कहा है ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच—

बहवः पुरुषा लोके सांख्ययोगविचारिणाम् ।
नैतदिच्छन्ति पुरुषमेकं कुरुकुलोद्वह ॥ २ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे कुरुकुलधुरन्धर ! सांख्य और योगशास्त्रका विचार करके देखनेसे व्यवहारके समय अनेक पुरुष दीखते हैं; उक्त मतावलम्बी पुरुष एक पुरुषवादको अङ्गीकार नहीं करते ॥ २ ॥

बहूनां पुरुषाणां च यथैका योनिरुच्यते ।
तथा तं पुरुषं विश्वं व्याख्यास्यामि गुणाधिकम् ॥ ३ ॥

अनेक पुरुषोंकी जिस प्रकार एक योनि कही जाती है और विश्वमय एक पुरुष जिस भांतिसे गुणाधिक होता है, उस विषयके कहनेके पहले ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नमस्कृत्वा तु गुरवे व्यासायामिततेजसे ।
तपोयुक्ताय दान्ताय वन्द्याय परमर्षये ॥ ४ ॥

मैं अमित तेजस्वी, तपस्वी, जितेन्द्रिय और वन्दनीय निज गुरु महर्षि व्यास देवको नमस्कार करके उसकी व्याख्या करता हूं ॥ ४ ॥

इदं पुरुषसूक्तं हि सर्ववेदेषु पार्थिव ।
ऋतं सत्यं च विख्यातमृषिसिंहेन चिन्तितम् ॥ ५ ॥

हे महाराज ! यह पुरुषसूक्त तथा सत्य, परम सत्य समस्त वेदोंके बीच ऋषिश्रेष्ठ व्यासदेव मुनिके द्वारा चिन्तित रूपसे विख्यात है ॥ ५ ॥

उत्सर्गेणापवादेन ऋषिभिः कपिलादिभिः ।
अध्यात्मचिन्तामाश्रित्य शास्त्राण्युक्तानि भारत ॥ ६ ॥

हे भारत ! कपिल आदि ऋषियोंने अध्यात्मयोगके सहारे सामान्य और विशेष विधिके अनुसार बहुतेरे शास्त्रोंका वर्णन किया है ॥ ६ ॥

समासतस्तु यद्व्यासः पुरुषैकत्वमुक्तवान् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि प्रसादादमितौजसः ॥ ७ ॥

व्यासदेवने जो संक्षेपसे एकपुरुषवाद कहा है, मैं उसी अमिततेजस्वी ऋषिकी कृपासे उसे ही तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं ॥ ७ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ब्रह्मणा सह संवादं त्र्यम्बकस्य विशां पते ॥ ८ ॥

हे नरनाथ ! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्माके सहित महादेवके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं ॥ ८ ॥

क्षीरोदस्य समुद्रस्य मध्ये हाटकसप्रभः ।
वैजयन्त इति ख्यातः पर्वतप्रवरो नृप ॥ ९ ॥

हे महाराज ! क्षीरसागरके बीच सुवर्णके समान प्रभासे युक्त वैजयंत नामका विख्यात एक उत्तम पर्वत है ॥ ९ ॥

तत्राध्यात्मगतिं देव एकाकी प्रविचिन्तयन् ।
वैराजसदने नित्यं वैजयन्तं निषेवते ॥ १० ॥

प्रजापति ब्रह्मा वैराजस्थानसे नित्य वहांपर आके एकान्तमें अध्यात्मगतिका विचार करते हुत्र उस पहाड पर निवास करते हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अथ तत्रासतस्तस्य चतुर्वक्त्रस्य धीमतः ।
ललाटप्रभवः पुत्रः शिव आगाद्यदृच्छया ।
आकाशेनैव योगीशः पुरा त्रिनयनः प्रभुः ॥ ११ ॥

एक बार जब बुद्धिमान चतुर्भुवन ब्रह्मा वहांपर बैठे थे, उस ही समय उनके ललाटसे प्रकट हुए पुत्र महायोगी, तीन नेत्रवाले भगवान् शिव आकाशमार्गसे इच्छापूर्वक उस स्थानपर आके उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

ततः खान्निपपाताशु धरणीधरमूर्धनि ।
अग्रतश्चाभवत्प्रीतो ववन्दे चापि पादयोः ॥ १२ ॥

उन्होंने शीघ्र ही आकाशसे उस पहाडकी शिखरपर प्रजापति ब्रह्माके अगाडी आके उपस्थित और प्रसन्न होके उनके दोनों चरणोंकी वन्दना की ॥ १२ ॥

तं पादयोर्निपतितं दृष्ट्वा सव्येन पाणिना ।
उत्थापयामास तदा प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥ १३ ॥

चरणपर गिरते हुए देखकर उस समय अकेले सर्व समर्थ भगवान प्रजापतिने उन्हें बायें हाथसे उठाया ॥ १३ ॥

उवाच चैनं भगवांश्चिरस्यागतमात्मजम् ।
स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मेऽन्तिकम् ॥ १४ ॥

और बहुत समयके अनन्तर आये हुए पुत्रसे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे। हे महाबाहो ! तुम्हारा स्वागत है। तुमने सुखसे आगमन किया है न ? भाग्यसे ही तुम मेरे समीप आये हो ॥ १४ ॥

कच्चित्ते कुशलं पुत्र स्वाध्यायतपसोः सदा ।
नित्यमुग्रतपास्त्वं हि ततः पृच्छामि ते पुनः ॥ १५ ॥

तुम्हारा वेदाध्ययन और तपस्या कुशलपूर्वक होती है न ? तुम सदा उग्र तपस्या किया करते हो, इस ही निमित्त बार बार तपके विषयमें पूंछता हूं ॥ १५ ॥

रुद्र उवाच—

त्वत्प्रसादेन भगवन्स्वाध्यायतपसोर्मम ।
कुशलं चाव्ययं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १६ ॥

रुद्र बोले– हे भगवन् ! आपकी कृपासे मेरे स्वाध्याय और तपस्या सकुशल अविरत चल रहे हैं; तथा समस्त जगत्का मङ्गल है ॥ १६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चिरदृष्टो हि भगवान्वैराजसदने मया ।
ततोऽहं पर्वतं प्राप्तस्त्विमं त्वत्पादसेवितम् ॥ १७ ॥

बहुत समय व्यतीत हुआ कि मैंने वैराजभवनमें आपका दर्शन किया था, इस ही निमित्त आपके चरणोंद्वारा सेवित इस पर्वतपर आया हूं ॥ १७ ॥

कौतूहलं चापि हि मे एकान्तगमनेन ते ।
नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति पितामह ॥ १८ ॥

आपके इस अत्यन्त निर्जन स्थानमें आगमन करनेसे मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है । हे भगवन् ! इस निर्जन स्थानमें आनेका कारण सामान्य होगा, वैसा भी मुझे नहीं मालूम होता है ॥ १८ ॥

किं नु तत्सदनं श्रेष्ठं क्षुत्पिपासाविवर्जितम् ।
सुरासुरैरध्युषितमृषिभिश्चामितप्रभैः ॥ १९ ॥

परन्तु आपका स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ, भूखप्याससे रहित, अत्यन्त तेजस्वी ऋषियों और सुरासुरोंसे अध्युषित है ॥ १९ ॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं संनिषेवितम् ।
उत्सृज्येमं गिरिवरमेकाकी प्राप्तवानसि ॥ २० ॥

गन्धर्व और अप्सराओंसे सदा निषेवित है, इसलिये वैसे स्थानको परित्याग करके किसलिये आप अकेले इस पर्वतपर आये हैं ? ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच—

वैजयन्तो गिरिवरः सततं सेव्यते मया ।
अत्रैकाग्रेण मनसा पुरुषश्चिन्त्यते विराट् ॥ २१ ॥

ब्रह्मा बोले— मैं इस वैजयन्त पर्वतपर सदा निवास करता हूं, क्योंकि इस स्थानपर एकाग्र चित्तसे विराट पुरुषका ध्यान किया करता हूं ॥ २१ ॥

रुद्र उवाच—

बहवः पुरुषा ब्रह्मंस्त्वया सृष्टाः स्वयंभुवा ।
सृज्यन्ते चापरे ब्रह्मन्स चैकः पुरुषो विराट् ॥ २२ ॥

रुद्र बोले— हे ब्रह्मन् ! आपने स्वयम्भू होकर अनेक पुरुषोंको उत्पन्न किया है और दूसरी अनेक प्रकारकी सृष्टि होती हैं, परन्तु विराट भी तो एक पुरुष ही है; तब उसमें क्या विशेषता है ? ॥ २२ ॥

को ह्यसौ चिन्त्यते ब्रह्मंस्त्वया वै पुरुषोत्तमः ।
एतन्मे संशयं ब्रूहि महत्कौतूहलं हि मे ॥ २३ ॥

इसलिये आप एकमात्र जिस पुरुषोत्तमका ध्यान करते हैं; वह कौन है ? आप मेरे संदेहके विषयको वर्णन करिये; इसमें मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है ॥ २३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri Research Institute, Haridwar. Digitized by eGangotri

ब्रह्मोवाच—

बहवः पुरुषाः पुत्र ये त्वया समुदाहृताः ।
एवमेतदतिक्रान्तं द्रष्टव्यं नैवमित्यपि ।
आधारं तु प्रवक्ष्यामि एकस्य पुरुषस्य ते ॥ २४ ॥

ब्रह्मा बोले— हे पुत्र ! तुमने जिन समस्त पुरुषोंका विषय कहा है, वे अनेक हैं; और जिसका मैं ध्यान करता हूं, वह इन सबको अतिक्रम करके स्थित है, इस ही निमित्त दृष्टिगोचर नहीं है, वह एकमात्र पुरुषही समस्त पुरुषोंका आधार निवासस्थान है ॥ २४ ॥

बहूनां पुरुषाणां स यथैका योनिरुच्यते ।
तथा तं पुरुषं विश्वं परमं सुमहत्तमम् ।
निर्गुणं निर्गुणा भूत्वा प्रविशन्ति सनातनम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३८ ॥ १२६७० ॥

और वही अनेक पुरुषोंकी योनि— एकमात्र कारण कहके वर्णित हुआ करता है । उस विश्व-व्यापी कारण स्वरूप सूत्रात्मा सनातन निर्गुण पुरुषमें साधन करनेवाले गुणातीत लोग प्रवेश किया करते हैं ॥ २५ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३८ ॥ १२६७० ॥

३३९

ब्रह्मोवाच—

शृणु पुत्र यथा ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च निरुच्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मा बोले— हे पुत्र ! यह पुरुष पूर्णत्वके कारण जिस प्रकारसे पुरुषशब्दवाच्य है, आदि अन्तसे रहित होनेसे शाश्वत है, अपरिणामित्व होनेसे अव्यय कहाता है; अवयवरहित है, इस ही निमित्त अक्षय कहा जाता है, वचन और मनके अगोचर होनेसे अप्रमेय है, तथा सबके उपादान कारण होनेसे जिस प्रकार सर्वगरूपसे वर्णित होता है, उसे सुनो ॥ १ ॥

न स शक्यस्त्वया द्रष्टुं मयान्यैर्वापि सत्तम ।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानदृश्यो ह्यसौ स्मृतः ॥ २ ॥

हे सत्तम ! तुम, मैं अथवा दूसरे पुरुष उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं, ज्ञानेन्द्रियके सहित सगुण अथवा शम दम आदिसे रहित निर्गुण मूढ पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकते। वह विश्वात्मा केवल ज्ञानसे देखा जाता है अर्थात् चिन्मात्रके सहारे ही उस स्वयंप्रकाशका दर्शन किया जा सकता है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

अशरीरः शरीरेषु सर्वेषु निवसत्यसौ ।
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्यति कर्मभिः ॥ ३ ॥

वह स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंसे रहित होनेपर भी सर्व शरीरोंमें निवास कर रहा है, और शरीरोंमें वास करनेपर भी उनके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ३ ॥

ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंज्ञिताः ।
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित्कचित् ॥ ४ ॥

वही मेरे तुम्हारे और दूसरे जो सब शरीर धारी जीव हैं, उन सबके भी अन्तरात्मा है । वही सबका साक्षी है, कोई भी उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४ ॥

विश्वमूर्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।
एकश्चरति क्षेत्रेषु स्वैरचारी यथासुखम् ॥ ५ ॥

वह विश्वमुख, विश्वभुज, विश्वपाद, विश्व—नयन और विश्वनासिक है; वही अकेला स्वेच्छाचारी होकर सर्व क्षेत्रोंमें सुखपूर्वक भ्रमण कर रहा है ॥ ५ ॥

क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजानि च शुभाशुभे ।
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ६ ॥

वह योगात्मा क्षेत्र अर्थात् समस्त शरीर और शुभाशुभ कर्मरूप बीजको जानता है, इसीसे क्षेत्रज्ञ नामसे वर्णित होता है ॥ ६ ॥

नागतिर्न गतिस्तस्य ज्ञेया भूतेन केनचित् ।
सांख्येन विधिना चैव योगेन च यथाक्रमम् ॥ ७ ॥

प्राणियोंके बीच उसकी अगति और गतिका विषय कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है; मैं क्रमशः सांख्य और योगकी विधिसे ॥ ७ ॥

चिन्तयामि गतिं चास्य न गतिं वेद्मि चोत्तमाम् ।
यथाज्ञानं तु वक्ष्यामि पुरुषं तं सनातनम् ॥ ८ ॥

उसकी गतिका मैं विचारकर रहा हूं, परन्तु उस उत्तर गतिको जान नहीं सका; परंतु मेरे अनुभवके अनुसार उस सनातन पुरुषका वर्णन करता हूं ॥ ८ ॥

तस्यैकत्वं महत्त्वं हि स चैकः पुरुषः स्मृतः ।
महापुरुषशब्दं स बिभर्त्येकः सनातनः ॥ ९ ॥

वह एक और महान् है, अकेला वही पुरुषरूपसे वर्णित होता है; वह सनातन पुरुष ही महापुरुष शब्दसे प्रतिपादित है ॥ ९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

एको हुताशो बहुधा समिध्यते एकः सूर्यस्तपसां योनिरेका ।
एको वायुर्बहुधा वाति लोके महोदधिश्चाम्भसां योनिरेकः ।
पुरुषश्चैको निर्गुणो विश्वरूपस्तं निर्गुणं पुरुषं चाविशन्ति ॥ १० ॥

एक ही अग्नि अनेक प्रकारसे प्रज्वलित होती है; सूर्य एक है, और तपस्याकी योनी एक ही है । एक ही वायु जगतमें अनेक प्रकारसे बहती है और समस्त जलकी योनी महासागर एक ही है । अखिल विश्व जिसका स्वरूप है, वह निर्गुण पुरुष एक ही है, उसकी निर्गुण पुरुषमें सब प्राणी लीन होते हैं ॥ १० ॥

हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म हित्वा शुभाशुभम् ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा एवं भवति निर्गुणः ॥ ११ ॥

देह आदि सब गुणमय पदार्थोंकी ममता छोडके उसही निबन्धनसे शुभ–अशुभ कार्योंको परित्याग करनेसे, सत्य और मिथ्या अर्थात् जीवाख्य अक्षर तथा प्रधान अर्थात् भोक्ता और भोग्यको त्यागनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अचिन्त्यं चापि तं ज्ञात्वा भावसूक्ष्मं चतुष्टयम् ।
विचरेद्यो यतिर्यत्तः स गच्छेत्पुरुषं प्रभुम् ॥ १२ ॥

उस निर्गुणको मनके अगोचर सत्तामात्रके सूक्ष्मरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण, वासुदेवपर पर्याय अर्थात् विराट, सूत्रात्मा, अन्तर्यामी और शुद्ध ब्रह्मरूप जानके जो स्थूल सूक्ष्म प्रविलापन क्रमसे नित्य समाधिका अनुष्ठान करता है, वही अत्यन्त शान्त साधक मनुष्य परम पुरुषको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

एवं हि परमात्मानं केचिदिच्छन्ति पण्डिताः ।
एकात्मानं तथात्मानमपरेऽध्यात्मचिन्तकाः ॥ १३ ॥

कोई कोई योगमतावलम्बी पण्डित लोग इस ही प्रकार योगमार्गके द्वारा परमात्माको जाननेकी इच्छा करते हैं । दूसरे अध्यात्मचिन्तक अर्थात् सांख्यमतवाले मनीषी पुरुष प्रत्यगात्माको एकात्मा अर्थात् ब्रह्मके सहित अभिन्न समझते हैं ॥ १३ ॥

तत्र यः परमात्मा हि स नित्यं निर्गुणः स्मृतः ।
स हि नारायणो ज्ञेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः ।
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १४ ॥

वहां जो परमात्मा है वह सदा ही निर्गुण माना जाता है; उसे ही नारायण और सर्वात्मा पुरुष जानना चाहिये; जैसे कमलका पत्ता जलसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह भी कर्मफलसे लिप्त नहीं है ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते ।
ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते हि सः ।
एवं बहुविधः प्रोक्तः पुरुषस्ते यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

दूसरा जो सब कर्मोंका कर्ता है, और बन्धन और मोक्षके द्वारा युक्त हुआ करता है, वही जीवात्मा उससे भिन्न है। उसीका पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय, इन सत्रह तत्त्वोंसे युक्त सूक्ष्म शरीरसे संयोग होता है; इस ही प्रकार अनेक प्रकारसे पुरुषका विषय तुम्हारे समीप विधिपूर्वक कहा गया; सोपाधिक आत्मा जीव कर्मभेदसे देवता, तिर्यक् मनुष्य आदि रूपसे अनेक प्रकार होता है। इस प्रकार क्रमशः पुरुषकी एकता और अनेकता कही गयी ॥१५॥

यत्तत्कृत्स्नं लोकतन्त्रस्य धाम वेद्यं परं बोधनीयं सबोद्धृ ।
मन्ता मन्तव्यं प्राशिता प्राशितव्यं घ्राता घ्रेयं स्पर्शिता स्पर्शनीयम् ॥ १६ ॥

जो चैतन्य ज्योति सब लोकोंकी प्रकाशक है, वही परम वेद्य, बोद्धा, बोधनीय, ईश्वर और जीव कहाता है; वही मन्ता और मन्तव्य है, वही भोक्ता और भोजनीय है, वही घ्राता और घ्रेय है, वही स्पर्शिता और स्पर्शनीय है ॥ १६ ॥

द्रष्टा द्रष्टव्यं श्राविता श्रावणीयं ज्ञाता ज्ञेयं सगुणं निर्गुणं च ।
यद्वै प्रोक्तं गुणसाम्यं प्रधानं नित्यं चैतच्छाश्वतं चाव्ययं च ॥ १७ ॥

वही द्रष्टा तथा द्रष्टव्य है; वही श्राविता और श्रावणीय है, वही ज्ञाता तथा ज्ञेय कहाता है, वही सगुण और निर्गुण है। पहले जो प्रधान नामसे गुणोंका साम्य वर्णित हुआ है, जो महत्तत्त्वोंकी योनि है, वह भी इस चैतन्य ज्योतिसे पृथक् नहीं है; क्योंकि वह नित्य अर्थात् अनादि अव्यय अर्थात् अपरिणामी है ॥ १७ ॥

यद्वै सूते धातुराद्यं निधानं तद्वै विप्राः प्रवदन्तेऽनिरुद्धम् ।
यद्वै लोके वैदिकं कर्म साधु आशीर्युक्तं तद्धि तस्योपभोज्यम् ॥ १८

जो पहले ब्रह्माको प्रकट करके महत्तत्त्वों को उत्पन्न करता है, ब्राह्मण लोग उसे ही अनिरुद्ध कहते हैं। लोकमें जो आशीर्युक्त उत्तम वैदिक कर्म हुआ करते हैं वे उस उसही अनिरुद्धात्मा पुरुषकी प्रसन्नता लिये ही होते है ॥ १८ ॥

देवाः सर्वे मुनयः साधु दान्तास्तं प्राग्यज्ञैर्यज्ञभागं यजन्ते ।
अहं ब्रह्मा आद्य ईशः प्रजानां तस्माज्जातस्त्वं च मत्तः प्रसूतः ।
मत्तो जगज्जङ्गमं स्थावरं च सर्वे वेदाः सरहस्या हि पुत्र ॥ १९ ॥

सब देवता, साधु तथा शान्त स्वभाववाले मुनिलोग उसहीको यज्ञभाग प्रदान करके पूजा किया करते हैं। मैं पूजामूहका आदि प्रभु ब्रह्मा हूं, मैं उस ही देवसे उत्पन्न हुआ हूं, और तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो। हे पुत्र मुझसे ही स्थावर-जङ्गममय जगत् और रहस्यके सहित सब वेद उत्पन्न हुए है; इसलिये जो मेरा पूजनीय है, वह स्थावर जङ्गमात्मक जीवगणोंका भी आराधनीय है सब प्राणियोंको उचित है, कि उसकी पूजा करें ॥ १९ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

चतुर्विभक्तः पुरुषः स क्रीडति यथेच्छति।
एवं स एव भगवाञ्ज्ञानेन प्रतिबोधितः ॥ २० ॥

वह पुरुष वासुदेव आदिरूपसे चार प्रकारसे विभक्त होकर इच्छानुसार क्रीडा कर रहा है; परमात्मा इस ही भांति स्वरूपके अभिन्न ज्ञानके सहारे जाना जाता है ॥ २० ॥

एतत्ते कथितं पुत्र यथावदनुपृच्छतः।
सांख्यज्ञाने तथा योगे यथावदनुवर्णितम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३९ ॥ १२६९१ ॥

हे पुत्र ! तुमने जो पूछा था, मैंने उस ही सांख्यज्ञान और योगशास्त्रके मतके अनुसार निगूढ तत्त्वको तुम्हारा समीप यथावत रूपसे सब वर्णन किया ॥ २१ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३९ ॥ १२६९१ ॥

: ३४० :

युधिष्ठिर उवाच—

धर्माः पितामहेनोक्ता मोक्षधर्माश्रिताः शुभाः।
धर्ममाश्रमिणां श्रेष्ठं वक्तुमर्हसि मे भवान् ॥ १ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले– हे पितामह ! आपने मोक्षधर्मके सहारे पवित्र–कल्याणमय धर्मोंका वर्णन किया, अब आश्रमवासियोंका श्रेष्ठ धर्म कहिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—

सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलोदयः।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया ॥ २ ॥

भीष्म बोले– सब आश्रमोंके विहित धर्म ही स्वर्गसाधन और सत्यफल देनेवाले हैं; और बहुतेर उत्तम महान् यज्ञ, दान तथा तप जिसके द्वारस्वरूप हैं, उस धर्मके कार्य इस लोकमें विफल नहीं होते ॥ २ ॥

यस्मिन्यस्मिंस्तु विषये यो यो याति विनिश्चयम्।
स तमेवाभिजानाति नान्यं भरतसत्तम ॥ ३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! सब आश्रमोंमें ही स्वर्ग और मोक्ष है, उसके बीच जिसकी जिसमें रुची होती है, वह उसहीके सहारे कृतकृत्य होकर दूसरे धर्मको अवलम्बन नहीं करता ॥ ३ ॥

अपि च त्वं नरव्याघ्र श्रोतुमर्हसि मे कथाम्।
पुरा शक्रस्य कथितां नारदेन सुरर्षिणा ॥ ४ ॥

हे राजन् ! पहले समयमें देवर्षि नारद मुनिके संग सुरराज इन्द्र की जो वार्ता हुई थी, उसे मैं कहता हूं, तुम सुनो ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सुरर्षिर्नारदो राजन्सिद्धस्त्रैलोक्यसंमतः।
पर्येति क्रमशो लोकान्वायुरव्याहतो यथा ॥ ५ ॥

हे महाराज ! तीनों लोकोंमें विख्यात सम्मानित देव नारद मुनि अव्याहत गतिवाली वायुकी भांति क्रमसे सब लोकोंमें भ्रमण करते हैं ॥ ५ ॥

स कदाचिन्महेष्वास देवराजालयं गतः।
सत्कृतश्च महेन्द्रेण प्रत्यासन्नगतोऽभवत् ॥ ६ ॥

हे महाधनुर्धर ! अनन्तर वह किसी समय देवराज इन्द्रके भवनमें गये, वहां जाके इन्द्रसे सत्कारयुक्त होके उनके निकट बैठ गये ॥ ६ ॥

तं कृतक्षणमासीनं पर्यपृच्छच्छचीपतिः।
ब्रह्मर्षे किंचिदाश्चर्यमस्ति दृष्टं त्वयानघ ॥ ७ ॥

उनके बैठने और विश्राम करनेपर शचीपति इन्द्रने उनसे पूछा, हे पापरहित ब्रह्मर्षि ! आपने कौनसा आश्चर्ययुक्त विषय देखा है ? ॥ ७ ॥

यथा त्वमपि विप्रर्षे त्रैलोक्यं सचराचरम्।
जातकौतूहलो नित्यं सिद्धश्चरसि साक्षिवत् ॥ ८ ॥

हे विप्रर्षि ! जब आप सिद्ध होके कौतूहलके लिये साक्षीकी भांति सदा सचराचर तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया करते हैं ॥ ८ ॥

न ह्यस्त्यविदितं लोके देवर्षे तव किंचन।
श्रुतं वाप्यनुभूतं वा दृष्टं वा कथयस्व मे ॥ ९ ॥

देवर्षि ! तब लोकके बीच कुछ भी आपसे छिपा नहीं है, इससे आपके द्वारा जो कुछ श्रुत, अनुभूत अथवा दृष्ट विषय हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये ॥ ९ ॥

तस्मै राजन्सुरेन्द्राय नारदो वदतां वरः।
आसीनायोपपन्नाय प्रोक्तवान्विपुलां कथाम् ॥ १० ॥

हे महाराज ! वक्तृवर नारद मुनिने उस समय सुखसे निकटमें बैठे हुए देवराज इन्द्रसे एक विस्तृत कथा कही ॥ १० ॥

यथा येन च कल्पेन स तस्मै द्विजसत्तमः।
कथां कथितवान्पृष्टस्तथा त्वमपि मे शृणु ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४० ॥ १२७०२ ॥

द्विजसत्तम नारद मुनिने इन्द्रके पूछनेपर जिस प्रकार जिस कल्पमें उनसे वह कथा कही थी, उसे तुम भी मेरे समीप सुनो ॥ ११ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४० ॥ १२७०२ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३४१ :

भीष्म उवाच—

आसीत्किल कुरुश्रेष्ठ महापद्मे पुरोत्तमे ।
गङ्गाया दक्षिणे तीरे कश्चिद्विप्रः समाहितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे नरश्रेष्ठ ! गङ्गाके दहिने किनारेपर महापद्मनामक उत्तम नगरके बीच एकाग्र-चित्त वाला कोई एक ब्राह्मण रहता था ॥ १ ॥

सौम्यः सोमान्वये वेदे गताध्वा छिन्नसंशयः ।
धर्मनित्यो जितक्रोधो नित्यतृप्तो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥

वह सौम्य स्वभावका था; उसका जन्म सोमके कुलमें— अत्रिगोत्रमें— हुआ था; उसने वेदपथको जानके संशयको छेदन किया था । वह सदा धर्ममें रत, क्रोधको जीतनेवाला, सदा तृप्त रहनेवाला और जितेन्द्रिय था ॥ २ ॥

अहिंसानिरतो नित्यं सत्यः सज्जनसंमतः ।
न्यायप्राप्तेन वित्तेन स्वेन शीलेन चान्वितः ॥ ३ ॥

वह सदा अहिंसा व्रतमें रत, सत्यवादी और सज्जनसम्मत था । वह न्यायसे प्राप्त हुए वित्त और ब्राह्मणोचित शीलसे युक्त था ॥ ३ ॥

ज्ञातिसंबन्धिविपुले मित्रापाश्रयसंमते ।
कुले महति विख्याते विशिष्टां वृत्तिमास्थितः ॥ ४ ॥

तथा वह स्वजनों सम्बन्धियोंसे युक्त, मित्र— पुत्र स्त्री आदिसे सम्पन्न होकर उत्तम विख्यात महत् वंशमें श्रेष्ठ वृत्ति अवलम्बन करके निवास करता था ॥ ४ ॥

स पुत्रान्बहुलान्दृष्ट्वा विपुले कर्मणि स्थितः ।
कुलधर्माश्रितो राजन्धर्मचर्यापरोऽभवत् ॥ ५ ॥

हे महाराज ! उसने अपने अनेक पुत्रोंको देखकर, लौकिक कार्यसे विरक्त हो वह महान् कर्ममें लग गया और कुलधर्मके सहारे धर्माचरण करनेमें ही तत्पर रहने लगा ॥ ५ ॥

ततः स धर्मं वेदोक्तं यथाशास्त्रोक्तमेव च ।
शिष्टाचीर्णं च धर्मं च त्रिविधं चिन्त्य चेतसा ॥ ६ ॥

अनन्तर उसने वेदमें कहे हुए निजधर्म, शास्त्रोक्त धर्म और शिष्टोंके आचरित धर्म, इन तीन प्रकारके धर्मोंका मनही मन विचार—चिन्तन किया ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

किं नु मे स्याच्छुभं कृत्वा किं क्षमं किं परायणम् ।
इत्येवं खिद्यते नित्यं न च याति विनिश्चयम् ॥ ७ ॥

क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा ? मेरा क्या कर्तव्य है और कौन धर्म मेरा परम अवलम्बन है ? इसे ही सोचते दुःखित होने लगा और कुछ भी निश्चय न कर सका ॥ ७ ॥

तस्यैवं खिद्यमानस्य धर्मं परममास्थितः ।
कदाचिदतिथिः प्राप्तो ब्राह्मणः सुसमाहितः ॥ ८ ॥

वह परम धर्म अवलम्बन करके जब इस प्रकार क्लेशित हुआ, उस ही समय एक समाहित अतिथि ब्राह्मण उसके समीप उपस्थित हुआ; ॥ ८ ॥

स तस्मै सत्क्रियां चक्रे क्रियायुक्तेन हेतुना ।
विश्रान्तं चैनमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४१ ॥ १२७११ ॥

उसने यथायोग्य अतिथिसत्कार करके उसे सम्मानित किया और अतिथिके विश्राम करके सुखपूर्वक बैठनेपर उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगा ॥ ९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४१ ॥ १२७११ ॥

: ३४२ :

ब्राह्मण उवाच—

समुत्पन्नाभिधानोऽस्मि वाङ्माधुर्येण तेऽनघ ।
मित्रतामभिपन्नस्त्वां किंचिद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोला— हे अनघ ! मैं तुम्हारे वचनकी कोमलतासे स्नेह बद्ध हुआ हूं; आपके ऊपर मेरा मित्रभाव हो गया है; मैं कुछ कहता हूं, मेरा वचन सुनो ॥ १ ॥

गृहस्थधर्मं विप्रेन्द्र कृत्वा पुत्रगतं त्वहम् ।
धर्मं परमकं कुर्यां को हि मार्गो भवेद्द्विज ॥ २ ॥

हे विप्रवर ! मैंने पुत्रोत्पादन पर्यन्त गृहस्थ धर्मका प्रतिपालन किया है; इस समय कौनसा परम धर्म अवलम्बन करूं ? मैं कौनसे मार्गका सहारा लूं ? ॥ २ ॥

अहमात्मानमात्मस्थमेक एवात्मनि स्थितः ।
कर्तुं काङ्क्षामि नेच्छामि बद्धः साधारणैर्गुणैः ॥ ३ ॥

मैंने आत्माको आसरा करके आत्मज्ञानके निमित्त अकेले ही निवास करनेकी इच्छा की है, परन्तु विषयपाशमें बद्ध होकर किसी कर्मको करनेकी इच्छा वा अभिलाषा नहीं करता ॥३॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यावदेवानतीतं मे वयः पुत्रफलाश्रितम् ।
तावदिच्छामि पाथेयमादातुं पारलौकिकम् ॥ ४ ॥

मेरी आयु पुत्रसे फल पानेकी कामनामें व्यतीत हुई है, अब मैं पारलौकिक पाथेयको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ ४ ॥

अस्मिन्हि लोकसंताने परं पारमभीप्सतः ।
उत्पन्ना मे मतिरियं कुतो धर्ममयः प्लवः ॥ ५ ॥

इस संसारके पार जानेकी आकांक्षा होनेसे मुझे ऐसी ही बुद्धी उत्पन्न हुई है, कि संसार-सागरको तरनेमें समर्थ धर्ममयी नौका कहां पाऊंगा ? ॥ ५ ॥

समुह्यमानानि निशम्य लोके निर्यात्यमानानि च सात्त्विकानि ।
दृष्ट्वा च धर्मध्वजकेतुमालां प्रकीर्यमाणामुपरि प्रजानाम् ॥ ६ ॥

सात्त्विक पुरुषोंको भी संसारके विषयोंमें मोहित होकर पीडित सुनके तथा प्रजासमूहके ऊपर यमराजकी ध्वजाएं पहराती हुई देखकर ॥ ६ ॥

न मे मनो रज्यति भोगकाले दृष्ट्वा यतीन्प्रार्थयतः परत्र ।
तेनातिथे बुद्धिबलाश्रयेण धर्मार्थतत्त्वे विनियुङ्क्ष्व मां त्वम् ॥ ७ ॥

मेरा मन भोगकालमें प्राप्त विषयभोगमें अनुरक्त नहीं है, और परिव्राजकोंको दूसरेके गृहपर अन्न मांगते हुए देखकर यतिधर्ममें भी मेरा मन अनुरक्त नहीं होता । हे अतिथि ! इसलिये तुम बुद्धिबलके सहारे धर्मके द्वारा मुझ दोलायमान पुरुषको धर्ममें नियुक्त करो ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच—

सोऽतिथिर्वचनं तस्य श्रुत्वा धर्माभिलाषिणः ।
प्रोवाच वचनं श्लक्ष्णं प्राज्ञो मधुरया गिरा ॥ ८ ॥

भीष्म बोले— बुद्धिमान अतिथि उस धर्मके अभिलाषी ब्राह्मणका वचन सुनके मधुर वाणीमें उत्तम वचन कहने लगा ॥ ८ ॥

अहमप्यत्र मुह्यामि ममाप्येष मनोरथः ।
न च संनिश्चयं यामि बहुद्वारे त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥

मैं भी इस विषयमें मुग्ध होरहा हूं; मेरी भी यही मनोकामना है; अनेकद्वारवाले—साधनवाले स्वर्गकी प्राप्तिके विषयमें मैं भलीभांति निश्चय नहीं कर सका ॥ ९ ॥

केचिन्मोक्षं प्रशंसन्ति केचिद्यज्ञफलं द्विजाः ।
वानप्रस्थाश्रमं केचिद्गार्हस्थ्यं केचिदाश्रिताः ॥ १० ॥

कोई कोई ब्राह्मण मोक्षकी प्रशंसा करते हैं, कोई यज्ञफलको श्रेष्ठ कहा करते हैं, कोई वानप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन कर रहे हैं, कोई गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करके निवास करते हैं ॥१०॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

राजधर्माश्रयं केचित्केचिदात्मफलाश्रयम्।
गुरुचर्याश्रयं केचित्केचिद्वाक्यं यमाश्रयम् ॥ ११ ॥

किसीने राजधर्मको अवलम्बन किया है, कोई पुरुष आत्मफलका सहारा करके निवास करते हैं, कोई कोई गुरु-शुश्रूषा धर्म अवलम्बन करनेकी प्रशंसा किया करते हैं, कोई कोई पुरुष मौनव्रत ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥ ११ ॥

मातरं पितरं केचिच्छुश्रूषन्तो दिवं गताः।
अहिंसया परे स्वर्गं सत्येन च तथा परे ॥ १२ ॥

कोई कोई मनुष्य मातापिताकी सेवा करनेसे स्वर्गमें गये हैं, कोई अहिंसासे और कोई सत्य वचनसे स्वर्ग प्राप्ति कर चुके हैं ॥ १२ ॥

आहवेऽभिमुखाः केचिन्निहताः स्विदिवं गताः।
केचिदुञ्छव्रतैः सिद्धाः स्वर्गमार्गसमाश्रिताः ॥ १३ ॥

कोई पुरुष संग्राममें शत्रुओंका सामना करते हुए मारे जाकर सुरलोकवासी हुए हैं, कितने उञ्छवृत्तिका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होकर स्वर्गमार्गी हुए हैं ॥ १३ ॥

केचिदध्ययने युक्ता वेदव्रतपराः शुभाः।
बुद्धिमन्तो गताः स्वर्गं तुष्टात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

कोई कोई बुद्धिमान् मनुष्य वेदव्रतपरायण, स्वाध्यायमें अनुरक्त, प्रसन्नचित्त और जितेन्द्रिय होकर स्वर्गमें जाकर सुख भोग करते हैं ॥ १४ ॥

आर्जवेनापरे युक्ता निहतानार्जवैर्जनैः।
ऋजवो नाकपृष्ठे वै शुद्धात्मानः प्रतिष्ठिताः ॥ १५ ॥

कितने ही पुरुषोंने सरलतायुक्त होनेसे भी स्वर्गमें गमन किया है। कोई कोई सरल स्वभाववाले मनुष्य कुटिल पुरुषोंके द्वारा मरके शुद्धचित्तसे स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ १५ ॥

एवं बहुविधैर्लोके धर्मद्वारैरनावृतैः।
ममापि मतिराविग्ना मेघलेखेव वायुना ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४२ ॥ १२७२७ ॥

जैसे वायुके सहारे बादल इधर उधर होजाते हैं, वैसे ही जगत्के बीच इसही प्रकार अनेक अनावृत धर्मोंके द्वारा हमारी भी बुद्धि पूर्णरूपसे भ्रान्तियुक्त होरही है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४२ ॥ १२७२७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३४३ :

अतिथिरुवाच—

उपदेशं तु ते विप्र करिष्येऽहं यथागमम् ।
गुरुणा मे यथाख्यातमर्थतस्तच्च मे शृणु ॥ १ ॥

अतिथि बोला— हे विप्र ! मेरे गुरुने मुझे जैसा तात्त्विक उपदेश दिया है, उसहीके अनुसार मैं तुमसे ज्योंका त्यों कहता हूं, तुम इस विषयको भलीभांति सुनो ॥ १ ॥

यत्र पूर्वाभिसर्गेण धर्मचक्रं प्रवर्तितम् ।
नैमिषे गोमतीतीरे तत्र नागाह्वयं पुरम् ॥ २ ॥

पहले कल्पके समयमें जिस स्थानमें धर्मचक्र प्रवर्त्तित हुआ था, उस नैमिष तीर्थमें गोमतीके तीरपर नागपुर नामक एक नगर है ॥ २ ॥

समग्रैस्त्रिदशैस्तत्र इष्टमासीद्द्विजर्षभ ।
यत्रेन्द्रातिक्रमं चक्रे मान्धाता राजसत्तमः ॥ ३ ॥

हे द्विजवर ! उस स्थानमें सब देवताओंने यज्ञ किया था; वहांपर यज्ञ करके राजसत्तम मान्धाता इन्द्रसे सभी आगे बढ गये थे ॥ ३ ॥

कृताधिवासो धर्मात्मा तत्र चक्षुःश्रवा महान् ।
पद्मनाभो महानागः पद्म इत्येव विश्रुतः ॥ ४ ॥

इस ही स्थानमें महान् महात्मा पद्मनाभ नामक पद्म इस ही रूपसे विख्यात महान् चक्षुःश्रवा महानाग वास करता है ॥ ४ ॥

स वाचा कर्मणा चैव मनसा च द्विजर्षभ ।
प्रसादयति भूतानि त्रिविधे वर्त्मनि स्थितः ॥ ५ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! वह कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गोंमें स्थित रहके वचन, मन और कर्मसे प्राणियोंको प्रसन्न करता है ॥ ५ ॥

साम्ना दानेन भेदेन दण्डेनेति चतुर्विधम् ।
विषमस्थं जनं स्वं च चक्षुर्ध्यानेन रक्षति ॥ ६ ॥

साम, दान, भेद और दण्डके सहारे विषमस्थ पुरुषको राहपर लाता है और स्वयं नेत्रादि इन्द्रियोंको विचारके द्वारा कुमार्गसे बचाता है ॥ ६ ॥

तमभिक्रम्य विधिना प्रष्टुमर्हसि काङ्क्षितम् ।
स ते परमकं धर्मं नमिथ्या दर्शयिष्यति ॥ ७ ॥

तुम उसके समीप जाके विधिपूर्वक मनोवाञ्छित विषय पूछ सकते हो; वह तुम्हें परम उत्तम धर्मका दर्शन करायेगा; मिथ्या धर्म प्रदर्शित न करेगा ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स हि सर्वातिथिर्नागो बुद्धिशास्त्रविशारदः ।
गुणैरनवमैर्युक्तः समस्तैराभिकामिकैः ॥ ८ ॥

वह नाग सबका आतिथ्य करता है, वह बुद्धिमान् और शास्त्रोंका जाननेवाला है, वह उत्तम गुणोंसे युक्त और समस्त अभीप्सित गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ८ ॥

प्रकृत्या नित्यसलिलो नित्यमध्ययने रतः ।
तपोदमाभ्यां संयुक्तो वृत्तेनानवरेण च ॥ ९ ॥

वह स्वाभाविक ही जलके समान निर्मल है, सदा अध्ययनमें रत रहता है; तपस्या, इन्द्रिय-निग्रह और अत्युत्तम चरित्रोंसे संयुक्त है ॥ ९ ॥

यज्वा दानरुचिः क्षान्तो वृत्ते च परमे स्थितः ।
सत्यवागनसूयुश्च शीलवानभिसंश्रितः ॥ १० ॥

वह यज्ञ करनेवाला, दाता, क्षमाशील, सच्चरित्र, सत्यवादी, असूयारहित, शीलवान और संयतेन्द्रिय है ॥ १० ॥

शेषान्नभोक्ता वचनानुकूलो हितार्जवोत्कृष्टकृताकृतज्ञः ।
अवैरकृद्भूतहिते नियुक्तो गङ्गाह्रदाम्भोऽभिजनोपपन्नः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४३ ॥ १२७३८ ॥

वह यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको भोजन करनेवाला, अनुकूल वचन कहनेवाला, हितैषी, विनयी और श्रेष्ठ विषयोंमें कृतार्थ, कृतज्ञ, शत्रुतारहित, प्राणियोंके हितमें नियुक्त गङ्गाके ह्रदजल स्वरूप पवित्र और सद्वंशमें उत्पन्न हुआ है ॥ ११ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४३ ॥ १२७३८ ॥

३४४

ब्राह्मण उवाच—

अतिभारोद्यतस्यैव भारापनयनं महत् ।
पराश्वासकरं वाक्यमिदं मे भवतः श्रुतम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोला— मुझपर बडा भारी बोझ लदा हुआ था, उसे आज तुमने उतार दिया; यह बडा कार्य हुआ; आपकी बात मैंने सुनी, वह दूसरोंको आनन्द देनेवाली है ॥ १ ॥

अध्वक्लान्तस्य शयनं स्थानक्लान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधार्त्तस्य च भोजनम् ॥ २ ॥

मार्गसे थके हुए पुरुषको शय्या स्थानरहित पुरुषको बैठनेका सहारा, प्यासेको जल, भूखेको भोजन मिलनेसे संतोष होता है, उतनीहि प्रसन्नता आपकी बात सुनकर मुझे मिली है ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ईप्सितस्येव संप्राप्तिरन्नस्य समयेऽतिथेः ।
एषितस्यात्मनः काले वृद्धस्येव सुतो यथा ॥ ३ ॥

अतिथिको यथासमयसे मनके इच्छित अन्न प्राप्त होना, समयपर अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिसे मनको, बूढे पुरुषको कालक्रमसे पुत्रलाभ ॥ ३ ॥

मनसा चिन्तितस्येव प्रीतिस्निग्धस्य दर्शनम् ।
प्रह्लादयति मां वाक्यं भवता यदुदीरितम् ॥ ४ ॥

और मनही मन विचारे हुए प्रीतियुक्त पुरुषका दर्शन होनेकी भांति आपके मुखसे निकले हुए वचन मुझे अत्यन्त ही आनन्दित कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दत्तचक्षुरिवाकाशे पश्यामि विमृशामि च ।
प्रज्ञानवचनाद्योऽयमुपदेशो हि मे कृतः
बाढमेवं करिष्यामि यथा मां भाषते भवान् ॥ ५ ॥

प्रज्ञानवचनके हेतु आपने मुझे जो उपदेश देकर आंखोंका दान ही किया है; उस उपदेशको सुनकर मैं आकाशकी ओर देखता और कर्तव्यका विचार करता हूं; आपने मुझसे जैसा कहा है; उसे मैं अवश्य ही करूंगा ॥ ५ ॥

इहेमां रजनीं साधो निवसस्व मया सह ।
प्रभाते यास्यति भवान्पर्याश्वस्तः सुखोषितः
असौ हि भगवान्सूर्यो मन्दरश्मिरवाङ्मुखः ॥ ६ ॥

हे साधु ! आप यह रात्रि मेरे साथ व्यतीत करिये, सबेरे सुखसे उठने और नित्य कर्म करनेके अनन्तर जिस स्थानमें जानेकी इच्छा होगी, वहां जाइयेगा । इस समय यह भगवान सूर्य तेजरहित तथा अस्त होरहे हैं ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच—

ततस्तेन कृतातिथ्यः सोऽतिथिः शत्रुसूदन ।
उवास किल तां रात्रिं सह तेन द्विजेन वै ॥ ७ ॥

भीष्म बोले— हे शत्रुनाशन ! अनन्तर उस अतिथिने ब्राह्मणके द्वारा अतिथिसत्कारसे युक्त होकर उसके सङ्ग वह रात्रि वहां ही बिताई ॥ ७ ॥

तत्तच्च धर्मसंयुक्तं तयोः कथयतोस्तदा ।
व्यतीता सा निशा कृत्स्ना सुखेन दिवसोपमा ॥ ८ ॥

उस समय उन दोनोंके मोक्षधर्मविषयक वार्त्तालाप होते रहनेसे वह रात्रि दिनकी भांति परम सुखसे व्यतीत हुई ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ततः प्रभातसमये सोऽतिथिस्तेन पूजितः।
ब्राह्मणेन यथाशक्त्या स्वकार्यमभिकाङ्क्षता ॥ ९ ॥

अनन्तर भोरके समय वह अतिथि निज कार्यसिद्धिकी अभिलाष करनेवाले उस ब्राह्मणके द्वारा शक्तिके अनुसार पूजित होकर वहांसे चला गया ॥ ९ ॥

ततः स विप्रः कृतधर्मनिश्चयः कृताभ्यनुज्ञः स्वजनेन धर्मवित्।
यथोपदिष्टं भुजगेन्द्रसंश्रयं जगाम काले सुकृतैकनिश्चयः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४४ ॥ १२७४८ ॥

इधर वह धर्मिष्ठ ब्राह्मण कर्तव्य कार्यका निश्चय करके स्वजनोंकी अनुमति लेकर सब समयमें एकनिश्चय अवलम्बन करके अतिथिके उपदेशके अनुसार भुजगेन्द्रके स्थानमें जानेके निमित्त शीघ्र प्रस्थान किया ॥ १० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४४ ॥ १२७४८ ॥

: ३४५ :

भीष्म उवाच—

स वनानि विचित्राणि तीर्थानि च सरांसि च।
अभिगच्छन्क्रमेण स्म कंचिन्मुनिमुपस्थितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— वह ब्राह्मण क्रमसे विचित्र वनों, तीर्थों और समस्त तालाबोंको अतिक्रम करके जाते जाते किसी मुनिके समीप उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

तं स तेन यथोद्दिष्टं नानं विप्रेण ब्राह्मणः।
पर्यपृच्छद्यथान्यायं श्रुत्वैव च जगाम सः ॥ २ ॥

ब्राह्मणने उस अतिथिके कहे हुए वचनके अनुसार उक्त मुनिसे विधिपूर्वक नागेन्द्रका वृत्तान्त पूछा और उनके निकट उस नागका समाचार सुनके फिर आगे जाने लगा ॥ २ ॥

सोऽभिगम्य यथाख्यायं नागायतनमर्थवित्।
प्रोक्तवानहमस्मीति भोःशब्दालंकृतं वचः ॥ ३ ॥

वह अर्थवित् ब्राह्मणने यथारीतिसे नागके स्थानपर जाकर 'भोः' शब्दके द्वारा पुकारके यह वचन कहा "मैं आया हूं" ॥ ३ ॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा रूपिणी धर्मवत्सला।
दर्शयामास तं विप्रं नागपत्नी पतिव्रता ॥ ४ ॥

पतिव्रता, धर्मभीरु, परमरूपवती नागपत्नीने उसका ऐसा वचन सुनकर उसे दर्शन दिया ॥४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

सा तस्मै विधिवत्पूजां चक्रे धर्मपरायणा ।
स्वागतेनागतं कृत्वा किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ५ ॥

धर्मवत्सला नागभार्याने उस आये हुए ब्राह्मणकी विधिपूर्वक पूजा की और स्वागत प्रश्न करके बोली, " कहिये विप्र, कौनसा कार्य करूं ? " ॥ ५ ॥

ब्राह्मण उवाच—

विश्रान्तोऽभ्यर्चितश्चास्मि भवत्या श्लक्ष्णया गिरा ।
द्रष्टुमिच्छामि भवति तं देवं नागमुत्तमम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मण बोला— हे भद्रे ! मैं तुम्हारा उत्तम, मधुर और पवित्र वचन सुननेसे विश्रामयुक्त तथा सत्कृत हुआ हूं; इस समय सर्वोत्तम नागेन्द्रदेवका दर्शन करनेकी अभिलाष करता हूं ॥ ६ ॥

एतद्धि परमं कार्यमेतन्मे फलमीप्सितम् ।
अनेनार्थेन चास्म्यद्य संप्राप्तः पन्नगालयम् ॥ ७ ॥

उनका दर्शन मिलना ही मेरा परम कार्य और एकमात्र अभिलषित विषय है; इस ही निमित्त आज मैं नागराजके स्थानपर आया हूं ॥ ७ ॥

नागभार्योवाच—

आर्य सूर्यरथं वोढुं गतोऽसौ मासचारिकः ।
सप्ताष्टभिर्दिनैर्विप्र दर्शयिष्यत्यसंशयम् ॥ ८ ॥

नागपत्नी बोली— हे आर्य ! विप्र ! मेरे स्वामी महीना भरके लिये सूर्यका रथ खींचनेके निमित्त गये हैं, आप पंद्रह दिनोंके बीच उनका निःसन्देह दर्शन करेंगे ॥ ८ ॥

एतद्विदितमार्यस्य विवासकरणं मम ।
भर्तुर्भवतु किं चान्यत्क्रियतां तद्वदस्व मे ॥ ९ ॥

मेरे पतिके अन्य स्थानमें जानेका कारण आपको मालूम हुआ; परन्तु आपका और जो कुछ कार्य हो, उसके लिये आज्ञा करिये ॥ ९ ॥

ब्राह्मण उवाच—

अनेन निश्चयेनाहं साध्वि संप्राप्तवानिह ।
प्रतीक्षन्नागमं देवि वत्स्याम्यस्मिन्महावने ॥ १० ॥

ब्राह्मण बोला— हे पतिव्रता देवि ! मैं उस ही नागराजके दर्शनके निमित्त निश्चय करके इस स्थानमें आया हूं, इसलिये उनके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए इस महावनमें निवास करूंगा ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

संप्राप्तस्यैव चाव्यग्रमावेद्योऽहमिहागतः ।
ममाभिगमनं प्राप्तो वाच्यश्च वचनं त्वया ॥ ११ ॥

तुम आनेपर इस स्थानमें मेरे आनेका समाचार अव्यग्रभावसे उन्हें सुनाना और समयके अनुसार उन्हें मेरे समीप आकर दर्शन देनेके लिये अनुरोध करना ॥ ११ ॥

अहमप्यत्र वत्स्यामि गोमत्याः पुलिने शुभे ।
कालं परिमिताहारो यथोक्तं परिपालयन् ॥ १२ ॥

मैं उक्त समयकी प्रतीक्षा करते हुए परिमित आहार स्वीकार करके इस गोमती नदीके पवित्र स्थानमें वास करूंगा ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच—

ततः स विप्रस्तां नागीं समाधाय पुनः पुनः ।
तदेव पुलिनं नद्याः प्रययौ ब्राह्मणर्षभः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४५ ॥ १२७६१ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण नागभार्यासे बार बार ऐसा ही निवेदन करके गोमती नदीके पवित्र स्थानमें चला गया ॥ १३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४५ ॥ १२७६१ ॥

: ३४६ :

भीष्म उवाच—

अथ तेन नरश्रेष्ठ ब्राह्मणेन तपस्विना ।
निराहारेण वसता दुःखितास्ते भुजंगमाः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे महाराज ! अनन्तर उस तपस्वी ब्राह्मणके निराहार निवास करते रहने पर नागराजके बान्धव भुजङ्गवृन्द दुःखित हुए ॥ १ ॥

सर्वे संभूय सहितास्तस्य नागस्य बान्धवाः ।
भ्रातरस्तनया भार्या ययुस्तं ब्राह्मणं प्रति ॥ २ ॥

उसके भाई, पुत्र, भार्या और सब बान्धव इकट्ठे होकर उस ब्राह्मणके निकट गये ॥ २ ॥

तेऽपश्यन्पुलिने तं वै विविक्ते नियतव्रतम् ।
समासीनं निराहारं द्विजं जप्यपरायणम् ॥ ३ ॥

उन्होंने उस नदीके तटपर निर्जन प्रदेशमें नियतव्रत, निराहारी और जपपरायण ब्राह्मणको बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ते सर्वे समभिक्रम्य विप्रमभ्यर्च्य चासकृत् ।
उचुर्वाक्यमसंदिग्धमातिथेयस्य बान्धवाः ॥ ४ ॥

वे सब कोई उस अतिथि ब्राह्मणके निकट उपस्थित होकर बार बार उसकी पूजा करते हुए यह सन्देहरहित वचन बोले ॥ ४ ॥

षष्ठो हि दिवसस्तेऽद्य प्राप्तस्येह तपोधन ।
न चाभिलषसे किंचिदाहारं धर्मवत्सल ॥ ५ ॥

हे धर्मवत्सल तपोधन ! छः दिन आपको इस स्थान पर आये होगये, परन्तु भोजनके लिये आपने कुछ भी न कहा ॥ ५ ॥

अस्मानभिगतश्चासि वयं च त्वामुपस्थिताः ।
कार्यं चातिथ्यमस्माभिर्वयं सर्वे कुटुम्बिनः ॥ ६ ॥

आप हमारे अतिथि रूपमें आये हैं, हम लोग भी आपकी सेवामें उपस्थित हैं; अतिथिका सत्कार करना हमारा कर्तव्य कार्य है, क्यों कि हम सब कोई उन नागेन्द्रके कुटुम्बी और गृहस्थ हैं ॥ ६ ॥

मूलं फलं वा पर्ण वा पयो वा द्विजसत्तम ।
आहारहेतोरन्नं वा भोक्तुमर्हसि ब्राह्मण ॥ ७ ॥

हे द्विजसत्तम ! आहारके निमित्त तुम्हें फल, मूल, पत्र अथवा दूध वा अन्न भोजन करना उचित बोध होता है ॥ ७ ॥

त्यक्ताहारेण भवता वने निवसता सता ।
बालवृद्धमिदं सर्वं पीड्यते धर्मसंकटात् ॥ ८ ॥

तुम्हारे आहार परित्याग करके इस वनमें निवास करनेसे हमारे धर्ममें आधा आनेके कारण सब बालक, बूढे और हम पीडित होरहे हैं ॥ ८ ॥

न हि नो भ्रूणहा कश्चिद्राजापथ्योऽनृतोऽपि वा ।
पूर्वाशी वा कुले ह्यस्मिन्देवतातिथिबन्धुषु ॥ ९ ॥

हमारे वंशमें कोई भ्रूणहत्या करनेवाला, अहित करनेवाला राजा और मिथ्याभाषी नही हैं; देवता, अतिथि तथा बान्धवोंके भूखे रहनेपर किसीने पहले कभी भोजन नहीं किया ॥ ९ ॥

ब्राह्मण उवाच—

उपदेशेन युष्माकमाहारोऽयं मया वृतः ।
द्विरूनं दशरात्रं वै नागस्यागमनं प्रति ॥ १० ॥

ब्राह्मण बोले— तुम लोगोंके उपदेशके सहारे ही मेरा आहार हुआ, ऐसा आप समझें; नागराजके आगमनके निमित्त केवल आठ रातें ही बाकी हैं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

यद्यष्टरात्रे नियति नागमिष्यति पन्नगः।
तदाहारं करिष्यामि तन्निमित्तमिदं व्रतम् ॥ ११ ॥

आठ रात्रिके अनन्तर यदि पन्नगराज आगमन न करेंगे, तब मैं भोजन करूंगा; उस ही निमित्त मैंने यह व्रत धारण किया है ॥ ११ ॥

कर्तव्यो न च संतापो गम्यतां च यथागतम्।
तन्निमित्तं व्रतं मह्यं नैतद्भेत्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥

तुम लोग कुछ भी दुःख मत करो; जिस स्थानसे आये हो वहां ही चले जाओ; मैंने नागराजके दर्शनके लिये जो व्रत किया है, उसे भङ्ग करना तुम लोगोंको उचित नहीं है ॥ १२ ॥

तेन ते समनुज्ञाता ब्राह्मणेन भुजंगमाः।
भवनं स्वमेव जग्मुरकृतार्था नरर्षभ ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४६ ॥ १२७७४ ॥

हे नरनाथ ! भुजङ्गवृन्द पूरी रीतिसे उस ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात तथा अकृतकार्य होकर निज स्थानपर चले आये ॥ १३ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ छीयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४६ ॥ १२७७४ ॥

: ३४७ :

भीष्म उवाच—

अथ काले बहुतिथे पूर्णे प्राप्ते भुजंगमः।
दत्ताभ्यनुज्ञः स्वं वेश्म कृतकर्मा विवस्वतः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— अनन्तर कई दिनोंका समय पूरा होनेपर नागराजने कृतकार्य होके सूर्यकी आज्ञा पाके निज स्थान पर आगमन किया ॥ १ ॥

तं भार्या समभिक्रामत्पादशौचादिभिर्गुणैः।
उपपन्नां च तां साध्वीं पन्नगः पर्यपृच्छत ॥ २ ॥

उनकी भार्या पांव धोनेके लिये जल, पाद्य आदि सामग्रियोंके साथ उनके निकट आई तब नागराजने साध्वीसे पूछा— ॥ २ ॥

अपि त्वमसि कल्याणि देवतातिथिपूजने।
पूर्वमुक्तेन विधिना युक्ता युक्तेन मत्समम् ॥ ३ ॥

हे कल्याणि ! मेरे द्वारा बतायी उपयुक्त विधिसे तुम मेरे समान देवता और अतिथियोंके पूजनमें तत्पर तो रही हो न ? ॥ ३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न खल्वस्यकृतार्थेन स्त्रीबुद्ध्या मार्दवीकृता।
मद्वियोगेन सुश्रोणि विमुक्ता धर्मसेतुना ॥ ४ ॥

हे सुश्रोणि! स्त्रीबुद्धिके कारण तुमने मेरे वियोगमें अकृतार्थ धर्मसे विमुक्त होकर पूजन कार्यमें शिथिलता तो नहीं की? ॥ ४ ॥

नागभार्योवाच—

शिष्याणां गुरुशुश्रूषा विप्राणां वेदपारणम्।
भृत्यानां स्वामिवचनं राज्ञो लोकानुपालनम् ॥ ५ ॥

नागपत्नी बोले— शिष्योंको गुरुसेवा, ब्राह्मणोंको वेदाध्ययन, सेवकोंको स्वामीकी आज्ञाका प्रतिपालन करना और राजाका प्रजापालन करना धर्म है ॥ ५ ॥

सर्वभूतपरित्राणं क्षत्रधर्म इहोच्यते।
वैश्यानां यज्ञसंवृत्तिरातिथेयसमन्विता ॥ ६ ॥

इस लोकमें सब प्राणियोंके परित्राण करनेको ही क्षत्रियधर्म कहा जाता है। वैश्योंका आतिथ्ययुक्त यज्ञ कार्यका निर्वाह करना ही धर्म है ॥ ६ ॥

विप्रक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषा शूद्रकर्म तत्।
गृहस्थधर्मो नागेन्द्र सर्वभूतहितैषिता ॥ ७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका कर्तव्य कर्म है। हे नागेन्द्र! सब प्राणियोंके हितकी इच्छा करना गृहस्थका धर्म है ॥ ७ ॥

नियताहारता नित्यं व्रतचर्या यथाक्रमम्।
धर्मो हि धर्मसंबन्धादिन्द्रियाणां विशेषणम्। ॥ ८ ॥

नियताहारता और नित्य विधिपूर्वक व्रताचरण सबका धर्म कहके वर्णित हुआ है। इन्द्रियोंके धर्म सम्बन्धसे विशेष प्रकारका धर्म हुआ करता है ॥ ८ ॥

अहं कस्य कुतो वाहं कः को मे ह भवेदिति।
प्रयोजनमतिर्नित्यमेवं मोक्षाश्रमी भवेत् ॥ ९ ॥

मैं किसका हूं? कहांसे आया हूं? मैं कौन हूं? और हमाराही कौन है? संन्यासाश्रममें इस ही प्रकार ज्ञानका सदा प्रयोजन होता है ॥ ९ ॥

पतिव्रतात्वं भार्यायाः परमो धर्म उच्यते।
तवोपदेशान्नागेन्द्र तच्च तत्त्वेन वेद्मि वै ॥ १० ॥

हे नागराज! भार्याका पातिव्रत्य ही परम धर्म है; तुम्हारे उपदेशके अनुसार मैं उसे यथार्थ रूपसे जानती हूं ॥ १० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

साहं धर्मं विजानन्ती धर्मनित्ये त्वयि स्थिते।
सत्पथं कथमुत्सृज्य यास्यामि विषमे पथि ॥ ११ ॥

इसलिये धर्ममें रत तुम्हारे सहारे मैं धर्मको जानकर किस प्रकार सतपथको छोडके कुपथमें पांव रखूंगी ? ॥ ११ ॥

देवतानां महाभाग धर्मचर्या न हीयते।
अतिथीनां च सत्कारे नित्ययुक्तास्म्यतन्द्रिता ॥ १२ ॥

हे महाभाग ! देवताओंके सम्बन्धमें धर्म परित्यक्त नहीं हुआ और अतिथियोंके सत्कार विषयमें मैं आलस्यरहित होके सदा नियुक्त रहती हूं ॥ १२ ॥

सप्ताष्टदिवसास्त्वद्य विप्रस्येहागतस्य वै।
स च कार्यं न मे ख्याति दर्शनं तव काङ्क्षति ॥ १३ ॥

आज पंद्रह दिन हुए, यहां पर एक ब्राह्मण आया है; उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं कहा, वह केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाष करता है ॥ १३ ॥

गोमत्यास्त्वेष पुलिने त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।
आसीनोऽऽवर्तयन्ब्रह्म ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ १४ ॥

वह कठोरव्रती ब्राह्मण गोमतीके तटपर वेदोंका पारायण करते हुए तुम्हारा दर्शन पानेके निमित्त बैठा है ॥ १४ ॥

अहं त्वनेन नागेन्द्र सामपूर्वं समाहिता।
प्रस्थाप्यो मत्सकाशं स संप्राप्तो भुजगोत्तमः ॥ १५ ॥

हे नागेन्द्र ! उस महाभाग ब्राह्मणने मुझसे यह सत्य प्रतिज्ञा करा ली है, कि नागराजके आनेपर उन्हें तुम मेरे निकट भेजना ॥ १५ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाप्राज्ञ तत्र गन्तुं त्वमर्हसि।
दातुमर्हसि वा तस्य दर्शनं दर्शनश्रवः ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४७ ॥ १२७९० ॥

हे महाप्राज्ञ ! इसलिये यह वृतान्त सुनके उस स्थानपर तुम्हें जाना उचित है। उस ब्राह्मणको दर्शन देना तुम्हारा उचित कार्य मालूम होता है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४७ ॥ १२७९० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३४८ :

नाग उवाच—

अथ ब्राह्मणरूपेण कं तं समनुपश्यसि ।
मानुषं केवलं विप्रं देवं वाथ शुचिस्मिते ॥ १ ॥

नाग बोला— हे शुचिस्मिते ! तुमने ब्राह्मण रूपसे जिसे देखा है, वह कौन है ? केवल मनुष्य जातिका ब्राह्मण है अथवा कोई देवता है ? ॥ १ ॥

को हि मां मानुषः शक्तो द्रष्टुकामो यशस्विनि ।
संदर्शनरुचिर्वाक्यमाज्ञापूर्वं वदिष्यति ॥ २ ॥

हे यशस्विनी ! मनुष्य होके कौन मुझे देखनेमें समर्थ हो सकता है ? और दर्शन करनेके निमित्त अभिलाषी होकर कौन इस प्रकार आज्ञासूचक वचन कह सकता है ? ॥ २ ॥

सुरासुरगणानां च देवर्षीणां च भामिनि ।
ननु नागा महावीर्याः सौरसेयास्तरस्विनः ॥ ३ ॥

हे भामिनि ! देवता, असुर और महर्षियोंके बीच सुरभिगन्धवाहक बलवान् नागगण ही महावीर्यशाली और अत्यन्त वेगशाली होते हैं ॥ ३ ॥

वन्दनीयाश्च वरदा वयमप्यनुयायिनः ।
मनुष्याणां विशेषेण धनाध्यक्षा इति श्रुतिः ॥ ४ ॥

वे सबको वन्दनीय और अपने सेवकोंको वरद हैं, मैं भी उन्हींका अनुयायी हूं; श्रुतिका कहना है कि मनुष्योंके हम धनाध्यक्ष हैं ॥ ४ ॥

नागभार्योवाच—

आर्जवेनाभिजानामि नासौ देवोऽनिलाशन ।
एकं त्वस्य विजानामि भक्तिमानतिरोषणः ॥ ५ ॥

नागपत्नी बोली— हे पवनाशन ! उसका जैसा रूप और सरलता है, उससे जाना जाता है, कि वह देवता नहीं है; उसमें एक विशेषता है कि वह आप क्रोधीके भक्तिमान् और अत्यन्त पवित्र स्वभाववाला ब्राह्मण है ॥ ५ ॥

स हि कार्यान्तराकाङ्क्षी जलेप्सुः स्तोककः यथा ।
वर्षं वर्षप्रियः पक्षी दर्शनं तव काङ्क्षति ॥ ६ ॥

वह जलकी इच्छा करनेवाले चातककी भांति कार्यान्तरका अभिलाषी है, जैसे वर्षाप्रिय चातक—पक्षी बादलके बरसनेकी कामना करता है, वैसे ही वह तुम्हारे दर्शनकी आकांक्षा कर रहा है ॥ ६ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न हि त्वा दैवतं किंचिद्विविघ्नं प्रतिपालयेत् ।
तुल्ये ह्यभिजने जातो न कश्चित्पर्युपासते ॥ ७ ॥

आप उसे देवताके प्रति किस प्रकारका विघ्न उत्पन्न न कीजिये; समान वंशमें उत्पन्न होके कोई किसी अतिथिकी उपेक्षा नहीं करता ॥ ७ ॥

तद्रोषं सहजं त्यक्त्वा त्वमेनं द्रष्टुमर्हसि ।
आशाछेदेन तस्याद्य नात्मानं दग्धुमर्हसि ॥ ८ ॥

इसलिये सहज रोष परित्याग करके उसे दर्शन देना तुम्हारा उचित कार्य है । उसकी आशाको भङ्ग करके इस समय तुम्हें आत्माको जलाना उचित नहीं है ॥ ८ ॥

आशया त्वभिपन्नानामकृत्वाश्रुप्रमार्जनम् ।
राजा वा राजपुत्रो वा भ्रूणहत्यैव युज्यते ॥ ९ ॥

जो लोग आशा करके निकट आया करते हैं, उन लोगोंके आंसूको न पूंछनेसे राजा हो अथवा राजपुत्र ही हो, उसे अवश्य ही भ्रूणहत्याके पापमें लिप्त होना पडता है ॥ ९ ॥

मौनाज्ज्ञानफलावाप्तिर्दानेन च यशो महत् ।
वाग्मित्वं सत्यवाक्येन परत्र च महीयते ॥ १० ॥

मौनावलम्बनसे ज्ञानफलकी प्राप्ति होती है, दानके सहारे महत् यश और सत्य वचनके द्वारा इस लोकमें वाग्मिता लाभ करके मनुष्य परलोकमें पूजनीय हुआ है ॥ १० ॥

भूमिप्रदानेन च गतिं लभत्याश्रमसंमिताम् ।
नष्टस्यार्थस्य संप्राप्तिं कृत्वा फलमुपाश्नुते ॥ ११ ॥

भूमि दान करनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके पाने योग्य स्थान मिलता है, नष्ट विषयके उपार्जनसे अवश्य ही फल भोग हुआ करता है ॥ ११ ॥

अभिप्रेतामसंक्लिष्टां कृत्वाकामवतीं क्रियाम् ।
न याति निरयं कश्चिदिति धर्मविदो विदुः ॥ १२ ॥

अभिप्रेत, असंक्लिष्ट, आत्महितकर कर्म करके कोई नरकमें नहीं पडता, धर्म जाननेवाले महात्मा पुरुष ऐसा ही वचन कहा करते हैं ॥ १२ ॥

नाग उवाच—

अभिमानेन मानो मे जातिदोषेण वै महान् ।
रोषः संकल्पजः साध्वि दग्धो वाचाग्निना त्वया ॥ १३ ॥

नाग बोला— हे पतिव्रते ! अभिमानके हेतुसे मुझमें अहङ्कार नहीं है, जाति–दोषसे पहले मैं महान् अहंकारमदसे मत्त था, परन्तु मेरा वह संकल्पजनित रोष इस समय तुम्हारे वचन-स्वरूप अग्निसे जल गया ॥ १३ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

न च रोषादहं साध्वि पश्येयमधिकं तमः ।
तस्य वक्तव्यतां याति विशेषेण भुजंगमाः ॥ १४ ॥

हे साध्वि ! मैं रोषसे बढकर मोहित करनेवाला दूसरा कोई दोष नहीं देखता, और क्रोधके लिये भुजंगगण ही अधिक निंदित हैं ॥ १४ ॥

दोषस्य हि वशं गत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
तथा शक्रप्रतिस्पर्धी हतो रामेण संयुगे ॥ १५ ॥

देवराज इन्द्रके साथ द्वेष करनेवाला अत्यन्त प्रतापशाली रावण क्रोधके वशमें होकर युद्धमें रामचन्द्रके द्वारा मारा गया ॥ १५ ॥

अन्तःपुरगतं वत्सं श्रुत्वा रामेण निर्हृतम् ।
धर्षणाद्रोषसंविग्नाः कार्तवीर्यसुता हताः ॥ १६ ॥

अन्तःपुरमें स्थित होम धेनुके बछडे परशुरामके द्वारा हरण किये गये, उसे सुनके क्रूरस्वभाव तथा क्रोधी कार्त्तवीर्यके सब पुत्र मारे गये ॥ १६ ॥

जामदग्न्येन रामेण सहस्रनयनोपमः ।
संयुगे निहतो रोषात्कार्तवीर्यो महाबलः ॥ १७ ॥

इन्द्रके समान पराक्रमी महाबलवान कार्त्तवीर्य भी क्रोधके वशमें होकर जमदग्निपुत्र परशुरामके हाथसे युद्धमें मारा गया ॥ १७ ॥

तदेष तपसां शत्रुः श्रेयसश्च निपातनः ।
निगृहीतो मया रोषः श्रुत्वैवं वचनं तव ॥ १८ ॥

इसलिये तुम्हारा यह वचन सुनके मैंने तपस्यामें विघ्नकारी और कल्याणयुक्त कार्योंके बाधक क्रोधको निग्रह किया ॥ १८ ॥

आत्मानं च विशेषेण प्रशंसाम्यनपायिनि ।
यस्य मे त्वं विशालाक्षि भार्या गुणासर्वन्विता ॥ १९ ॥

हे विशालनयनी ! जब तुम मेरी अनपायिनी– कभी विलन न होनेवाली और गुणशालिनी भार्या हो, तब मैं अपनी और अपने सौभाग्यकी भी विशेष रूपसे प्रशंसा करता हूं ॥ १९ ॥

एष तत्रैव गच्छामि यत्र तिष्ठत्यसौ द्विजः ।
सर्वथा चोक्तवान्वाक्यं नाकृतार्थः प्रयास्यति ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४८ ॥ १२८१० ॥

अब मैं उसी स्थानमें जाता हूं, जहांपर वह ब्राह्मण निवास करता है; वह जो कहेगा वही करूंगा; अब वह अतिथि ब्राह्मण निःसन्देह कृतकार्य होकर प्रस्थान करेगा ॥ २० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ अडतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४८ ॥ १२८१० ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

: ३४९ :

भीष्म उवाच—

स पन्नगपतिस्तत्र प्रययौ ब्राह्मणं प्रति।
तमेव मनसा ध्यायन्कार्यवत्तां विचारयन् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– नागराजने मनही मन उस ब्राह्मणके कार्यकी चिन्ता तथा विचार करते हुए उसके समीप गमन किया ॥ १ ॥

तमभिक्रम्य नागेन्द्रो मतिमान्स नरेश्वर।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं प्रकृत्या धर्मवत्सलः ॥ २ ॥

हे महाराज ! स्वभावसे ही धर्मवत्सल वह बुद्धिमान् नागराज ब्राह्मणके निकट जाके यह मधुर वचन बोला ॥ २ ॥

भो भो क्षाम्याभिभाषे त्वां न रोषं कर्तुमर्हसि।
इह त्वमभिसंप्राप्तः कस्यार्थे किं प्रयोजनम्। ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मुझे क्षमा करें; मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम क्रोध प्रकाशित न करना। तुम किस निमित्त इस स्थानमें आये हो ? तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है ? ॥ ३ ॥

आभिमुख्यादभिक्रम्य स्नेहात्पृच्छामि ते द्विज।
विविक्ते गोमतीतीरे कं वा त्वं पर्युपाससे ॥ ४ ॥

हे द्विज ! मैं सम्मुख आके स्नेहपूर्वक तुमसे पूछता हूं, कि तुम मनुष्यरहित इस निर्जन स्थानमें गोमतीके पवित्र तटपर किसकी उपासना वा आराधना करते हो ? ॥ ४ ॥

ब्राह्मण उवाच—

धर्मारण्यं हि मां विद्धि नागं द्रष्टुमिहागतम्।
पद्मनाभं द्विजश्रेष्ठं तत्र मे कार्यमाहितम् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण बोला– हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरा नाम धर्मारण्य है; पद्मनाभ नागराजका दर्शन करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, उन्हींके समीप मेरा प्रयोजन है ॥ ५ ॥

तस्य चाहमसान्निध्यं श्रुतवानस्मि तं गतम्।
स्वजनं तं प्रतीक्षामि पर्जन्यमिव कर्षकः ॥ ६ ॥

उनके स्वजनोंके निकट मैंने यह वचन सुना है, कि वह यहांपर नहीं है; इतना वृत्तान्त सुनके मैं इस प्रकार उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, जैसे किसान जल–वर्षाकी प्रतीक्षा करता है ॥ ६ ॥

तस्य चाक्लेशकरणं स्वस्तिकारसमाहितम्।
वर्तयाम्ययुतं ब्रह्म योगयुक्तो निरामयः ॥ ७ ॥

मैं योगयुक्त और निरोग रहके उस नागराजके अक्लेश और स्वस्ति होनेके लिये वेद–पाठ करता हूं ॥ ७ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

नाग उवाच—

अहो कल्याणवृत्तस्त्वं साधु सज्जनवत्सलः।
अवाढ्यस्त्वं महाभाग परं स्नेहेन पश्यसि ॥ ८ ॥

नाग बोला– ओहो ! तुम क्या ही शुभ चरित्रयुक्त साधु और क्या सज्जन हो। हे महाभाग ! तुम्हारे चरित्रकी कथा क्या कहूं, तुम मेरे ऊपर अत्यन्त ही स्नेहदृष्टि कर रहे हो ॥ ८ ॥

अहं स नागो विप्रर्षे यथा मां विन्दते भवान्।
आज्ञापय यथा स्वैरं किं करोमि प्रियं तव ॥ ९ ॥

हे विप्रर्षि ! मैं वही नाग हूं; तुम मुझे जैसा जानते हो, मैं वैसा ही हूं; तुम इच्छानुसार आज्ञा करो, मैं तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य साधन करूं ? ॥ ९ ॥

भवन्तं स्वजनादस्मि संप्राप्तं श्रुतवानिह।
अतस्त्वां स्वयमेवाहं द्रष्टुमभ्यागतो द्विज ॥ १० ॥

स्वजनके मुखसे तुम्हारा इस स्थानमें आना सुनकर मैं यहांपर स्वयं तुम्हें देनेके लिये आया हूं ॥ १० ॥

संप्राप्तश्च भवानद्य कृतार्थः प्रतियास्यति।
विस्रब्धो मां द्विजश्रेष्ठ विषये योक्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

हे महाभाग विप्रवर ! जब तुम इस स्थानमें आये हो, तो आज कृतकार्य होके जाओगे, हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम विश्वासी होकर मुझे निज अभिलषित विषयके निमित्त आज्ञा करो ॥ ११ ॥

वयं हि भवता सर्वे गुणाकीता विशेषतः।
यस्त्वमात्महितं त्यक्त्वा मामेवेहानुरुध्यसे ॥ १२ ॥

तुमने अपने विशेष गुणके सहारे हम सब लोगोंको खरीद लिया है, क्यों कि तुम अपना हित परित्याग करके मेरे निमित्त शुभानुध्यायी हुए हो ॥ १२ ॥

ब्राह्मण उवाच—

आगतोऽहं महाभाग तव दर्शनलालसः।
कंचिदर्थमनर्थज्ञः प्रष्टुकामो भुजंगम ॥ १३ ॥

ब्राह्मण बोला– हे महाभाग भुजङ्गम ! मैं तुम्हारे दर्शनका अभिलाषी होकर यहांपर आया हूं; मैं अर्थानभिज्ञ हूं, इसलिये तुमसे कोई विषय पूछनेकी इच्छा करता हूं ॥ १३ ॥

अहमात्मानमात्मस्थो मार्गमाणोऽऽत्मनो हितम्।
वासार्थिनं महाप्राज्ञ बलवन्तमुपास्मि ह ॥ १४ ॥

मैं आत्मा अर्थात् जीवका विश्रामस्थान अन्वेषण करते हुए आत्मस्थ अर्थात् समस्त विषयोंसे विरत होके चलचित्तके बीच वासार्थी महाप्राज्ञ आत्माकी उपासना करता हूं, मैं अनुरक्त वा विरक्त नहीं हूं ॥ १४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

प्रकाशितस्त्वं स्वगुणैर्यशोगर्भगभस्तिभिः ।
शशाङ्करसंस्पर्शैर्हृद्यैरात्मप्रकाशितैः ॥ १५ ॥

तुम यशपूरित गभस्तियुक्त चन्द्रकिरण सदृश स्पर्श सुखकर हृदयग्राही आत्म प्रकाशित निज गुणोंके सहारे विख्यात हुए हो ॥ १५ ॥

तस्य मे प्रश्नमुत्पन्नं छिन्धि त्वमनिलाशन ।
पश्चात्कार्यं वदिष्यामि श्रोतुमर्हति मे भवान् ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३४९ ॥ १२८२६ ॥

हे अनिलाशन ! इसलिये मेरे अन्तःकरणमें जो प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसका उत्तर देके तुम उस सन्देहको छेदन करो; इसके अनन्तर फिर मैं अपने प्रयोजनका विषय कहूंगा, वह तुम्हें सुनना उचित है ॥ १६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ ३४९ ॥ १२८२६ ॥

: ३५० :

ब्राह्मण उवाच—

विवस्वतो गच्छति पर्ययेण वाहु भवांस्तं रथमेकचक्रम् ।
आश्चर्यभूतं यदि तत्र किञ्चिद्दृष्टं त्वया शंसितुमर्हसि त्वम् ॥१॥

ब्राह्मण बोला– तुम पर्यायक्रमसे सूर्यदेवका एकचक्र रथको खींचनेके निमित्त जाया करते हो, वहांपर यदि कोई आश्चर्यविषय दीख पडता हो तो उसे मेरे निकट वर्णन करो ॥ १ ॥

नाग उवाच—

यस्य रश्मिसहस्रेषु शाखास्विव विहङ्गमाः ।
वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ॥ २ ॥

नाग बोला– जैसे पक्षीवृन्द वृक्षकी शाखाओंके अवलम्बसे निवास करते हैं, उस ही प्रकार उनकी सहस्र किरणोंके अवलम्बसे देवताओंके सहित सिद्ध और मुनिवृन्द निवास करते हैं ॥२॥

यतो वायुर्विनिःसृत्य सूर्यरश्म्याश्रितो महान् ।
विजृम्भत्यम्बरे विप्र किमाश्चर्यतरं ततः ॥ ३ ॥

सूर्यकिरणके अवलम्बसे ही महान् वायु जिससे प्रकट होके आकाशमें चलती है, वहांपर इसकी अपेक्षा और आश्चर्य क्या होगा ? ॥ ३ ॥

शुक्लो नामासितः पादो यस्य वारिधरोऽम्बरे ।
तोयं सृजति वर्षासु किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ४ ॥

उस सूर्यकाही स्वरूप शुक्ल नामक काला मेघ जलकी सृष्टि आकाशमें वर्षाकालके समय करता है, इससे बढके और आश्चर्य क्या होगा ? ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

योऽष्टमासांस्तु शुचिना किरणेनोज्झितं पयः ।
प्रयच्छत्ते पुनः काले किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ५ ॥

जो सूर्य आठ महीनेतक अपनी पवित्र किरणोंके सहारे आकर्षित जलको फिर कालक्रमसे बरसाता है, इससे बढके और आश्चर्य क्या होगा ? ॥ ५ ॥

यस्य तेजोविशेषेषु नित्यमात्मा प्रतिष्ठितः ।
यतो बीजं मही चेयं धार्यते सचराचरम् ॥ ६ ॥

जिसके तेजोविशेषमें नित्य परमात्मा प्रतिष्ठित है, जिसके कारण चराचरोंसे युक्त पृथ्वीने बीज धारण किया है ॥ ६ ॥

यत्र देवो महाबाहुः शाश्वतः परमोऽक्षरः ।
अनादिनिधनो विप्र किमाश्चर्यमतः परम् ॥ ७ ॥

जिसमें महाबाहु, शाश्वत, अक्षर, अनादिनिधन परम देव पुरुषोत्तम विराजमान है; हे विप्र! इससे बढके और कौनसा आश्चर्य होगा ? ॥ ७ ॥

आश्चर्याणामिवाश्चर्यमिदमेकं तु मे शृणु ।
विमले यन्मया दृष्टमम्बरे सूर्यसंश्रयात् ॥ ८ ॥

निर्मल आकाशमें अम्बरमणिके सहारे मैंने जिन सब आश्चर्योंका भी आश्चर्य देखा है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो ॥ ८ ॥

पुरा मध्याह्नसमये लोकांस्तपति भास्करे ।
प्रत्यादित्यप्रतीकाशः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ९ ॥

पहले समयमें मध्यान्हकालके बीच जब भगवान् सूर्य सब लोकोंको तपा रहे थे, उस समय दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुष दीख पडा । वह सब ओरसे प्रकाशित हो रहा था ॥ ९ ॥

स लोकांस्तेजसा सर्वान्स्वभासा निर्विभासयन् ।
आदित्याभिमुखोऽभ्येति गगनं पाटयन्निव ॥ १० ॥

वह निज तेज और कान्तिके सहारे समस्त लोकोंको प्रकाशित करके मानो आकाशमण्डलको विपाटन करते हुए आदित्यमण्डलकी ओर आने लगा ॥ १० ॥

हुताहुतिरिव ज्योतिर्व्याप्य तेजोमरीचिभिः ।
अनिर्देश्येन रूपेण द्वितीय इव भास्करः ॥ ११ ॥

जिस अग्निमें आहुति की गई है, वैसी अग्नि ज्योतिको निज तेजपुञ्ज तथा किरणोंके द्वारा आवरण करते हुए, वह अनिर्देश्य रूपसे द्वितीय सूर्यकी भांति आके उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

तस्याभिगमनप्राप्तौ हस्तो दत्तो विवस्वता ।
तेनापि दक्षिणो हस्तो दत्तः प्रत्यर्चनार्थिना ॥ १२ ॥

उसके आगमन करते ही भगवान् विवस्वानने उससे मिलनेके लिये अपना हाथ उसकी ओर बढाया; उसने भी उनकी पूजा करनेके लिये अपना दहिना हाथ प्रदान किया ॥ १२ ॥

ततो भित्त्वैव गगनं प्रविष्टो रविमण्डलम् ।
एकीभूतं च तत्तेजः क्षणेनादित्यतां गतम् ॥ १३ ॥

अनन्तर वह आकाशको भेद करके किरणमण्डलमें प्रविष्ट हुआ, वह तेज आदित्यके सङ्ग मिलकर क्षणभरमें एकत्रित हुआ ॥ १३ ॥

तत्र नः संशयो जातस्तयोस्तेजःसमागमे ।
अनयोः को भवेत्सूर्यो रथस्थो योऽयमागतः ॥ १४ ॥

उस समय उन दोनोंके तेज एकत्रित होने पर हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ, कि रथस्थ और आगन्तुक, इन दोनोंमेंसे सूर्य कौन है ? ॥ १४ ॥

ते वयं जातसंदेहाः पर्यपृच्छामहे रविम् ।
क एष दिवमाक्रम्य गतः सूर्य इवापरः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते शांतिपर्वणि पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५० ॥ १२८४१ ॥

जब हम लोगोंको ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, तब हमने दिवाकरसे पूछा, कि आकाशको आक्रमण करते हुए दूसरे सूर्यकी भांति जिसने आगमन किया है, वह कौन है ? ॥ १५ ॥

महाभारतके शांतिपर्वमें तीन सौ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ३५० ॥ १२८४१ ॥

: ३५१ :

सूर्य उवाच—

नैष देवोऽनिलसखो नासुरो न च पन्नगः ।
उञ्छवृत्तिव्रते सिद्धो मुनिरेष दिवं गतः ॥ १ ॥

सूर्य बोले— ये वायुके मित्र अग्निदेव अथवा असुर तथा पन्नग नहीं हैं; इस मुनिने उञ्छवृत्ति व्रतसे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन किया है ॥ १ ॥

एष मूलफलाहारः शीर्णपर्णाशनस्तथा ।
अब्भक्षो वायुभक्षश्च आसीद्विप्रः समाहितः ॥ २ ॥

यह फलमूलाहारी होके तथा सूखे पत्ते खाकर अन्तमें जल, वायु पानके द्वारा जीवन धारण करनेवाले समाधिमें निष्ठावान् ब्राह्मण थे ॥ २ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

ऋचश्चानेन विप्रेण संहितान्तरभिष्टुताः ।
स्वर्गद्वारकृतोद्योगो येनासौ त्रिदिवं गतः ॥ ३ ॥

इस ब्राह्मणने वेदपाठसे भगवान् ऋग्वेदकी सब भांतिसे स्तुति की थी, इसहीके सहारे स्वर्गद्वारका कपाट खोलके इन्होंने स्वर्गधाममें गमन किया है ॥ ३ ॥

असन्नधीरनाकाङ्क्षी नित्यमुञ्छशिलाशनः ।
सर्वभूतहिते युक्त एष विप्रो भुजंगम ॥ ४ ॥

हे नागराज ! इसे किसी विषयमें आसक्ति वा अभिलाषा नहीं थी, यह सदा उञ्छवृत्ति और शिलाचार परिप्राप्त वृत्तिके सहारे जीविका निर्वाह करता था, यह ब्राह्मण सदा सब प्राणियोंके हितकर कार्योंमें रत रहता था ॥ ४ ॥

न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च पन्नगाः ।
प्रभवन्तीह भूतानां प्राप्तानां परमां गतिम् ॥ ५ ॥

उत्तम गति पानेवाले प्राणियोंके ऊपर देवता, गन्धर्व, असुर और पन्नगगण प्रभुत्व करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥

नाग उवाच—

एतदेवंविधं दृष्टमाश्चर्यं तत्र मे द्विज ।
संसिद्धो मानुषः कार्यो योऽसौ सिद्धगतिं गतः ।
सूर्येण सहितो ब्रह्मन्पृथिवीं परिवर्तते ॥ ६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि एकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५१ ॥ १२८४७ ॥

नाग बोला— हे द्विजश्रेष्ठ ! उस सूर्यमण्डलमें इसही प्रकार मैंने आश्चर्य अवलोकन किया था। हे ब्रह्मन् ! उञ्छवृत्तिसे सिद्ध हुआ जो मनुष्य इच्छानुसार पूरी रीतिसे सिद्ध होकर उस सिद्धस्थानमें गमन करता है, वह सूर्यके सहित पृथ्वी परिभ्रमण करनेमें समर्थ होता है ॥ ६ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ३५१ ॥ १२८४७ ॥

: ३५२ :

ब्राह्मण उवाच—

आश्चर्यं नात्र संदेहः सुप्रीतोऽस्मि भुजंगम ।
अन्वर्थोपगतैर्वाक्यैः पन्थानं चास्मि दर्शितः ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोला— हे भुजङ्गम ! यह अवश्य आश्चर्य है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं; तुममें यथार्थ कथा कहके मुझे मार्ग दिखाया है; इससे मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं ॥ १ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि साधो भुजगसत्तम।
स्मरणीयोऽस्मि भवता संप्रेषणनियोजनैः ॥ २ ॥

हे साधु भुजंगसत्तम ! तुम्हारा कल्याण हो; मैं गमन करता हूं; सम्प्रेषण और नियोजनके सहारे मैं तुम्हारा स्मरणीय हुआ ॥ २ ॥

नाग उवाच—

अनुक्त्वा मद्गतं कार्यं केदानीं प्रस्थितो भवान्।
उच्यतां द्विज यत्कार्यं यदर्थं त्वमिहागतः ॥ ३ ॥

नाग बोला— हे द्विज ! तुम अपने मनके कार्यको विना कहे, इस समय कहां जाते हो ? तुम्हारा जो कार्य है, तुम जिस निमित्त इस स्थानमें आये हो, उसे वर्णन करो ॥ ३ ॥

उक्तानुक्ते कृते कार्ये मामामन्त्र्य द्विजर्षभ।
मया प्रत्यभ्यनुज्ञातस्ततो यास्यसि ब्राह्मण ॥ ४ ॥

हे विप्रवर ! तुम कहें या न कहें, मुझसे जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जायगा तब मुझसे पूछकर, मेरी अनुमतिके अनुसार निज अभिलषित स्थानपर जानेमें समर्थ होगे ॥ ४ ॥

न हि मां केवलं दृष्ट्वा त्यक्त्वा प्रणयवानिह।
गन्तुमर्हसि विप्रर्षे वृक्षमूलगतो यथा ॥ ५ ॥

हे विप्रर्षि ! तुम प्रणयवान् होकर इस स्थानमें मुझे अकेला देखकर वृक्षमूलमें समागत पुरुषकी भांति त्यागके चले जाओगे, ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ५ ॥

त्वयि चाहं द्विजश्रेष्ठ भवान्मयि न संशयः।
लोकोऽयं भवतः सर्वः का चिन्ता मयि तेऽनघ ॥ ६ ॥

हे निष्पाप विप्रवर ! मैं तुम्हारे ऊपर भक्तिमान हूं, तुम भी निःसन्देह मुझमें अनुरक्त हो, इसमें संशय नहीं है; ये सब लोक तुम्हारे ही अनुगत हैं, इसलिये मेरे समान मुझ मित्रके वर्त्तमान रहते तुम्हें क्या चिन्ता है ? ॥ ६ ॥

ब्राह्मण उवाच—

एवमेतन्महाप्राज्ञ विज्ञातार्थं भुजंगम।
नातिरिक्तास्त्वया देवाः सर्वथैव यथातथम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मण बोला— हे आत्मतत्वके जाननेवाले महाबुद्धिमान् भुजंगम ! यह इसी प्रकार है; देवता भी आपसे बढकर नहीं हैं, यह बात सर्वथा यथार्थ है ॥ ७ ॥

य एवाहं स एव त्वमेवमेतद्भुजंगम।
अहं भवांश्च भूतानि सर्वे सर्वत्रगाः सदा ॥ ८ ॥

हे भुजंगम ! जो तुम हो, वही मैं हूं और जो मैं हूं, वही तुम हो; तुमने जो आदित्यान्तर्वर्त्ती पुरुषकी कथा कही है; तुम, मैं और आकाश आदि समस्त भूत सदा उसमें ही निवास कर रहे हैं ॥ ८ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

आसीत्तु मे भोगपते संशयः पुण्यसंचये।
सोऽहमुञ्छव्रतं साधो चरिष्याम्यर्थदर्शनम् ॥ ९ ॥

हे नागराज! मुझे पुण्यसञ्चय के विषयमें सन्देह था। हे साधु! अब मैं तुम्हारे उपदेशके अनुसार परमार्थसाधनके लिये उञ्छव्रतका आचरण करूंगा ॥ ९ ॥

एष मे निश्चयः साधो कृतं कारणवत्तरः।
आमन्त्रयामि भद्रं ते कृतार्थोऽस्मि भुजंगम ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५२ ॥ १२८५७ ॥

यही मुझे श्रेष्ठ साधन निश्चय हुआ है, आपसे मेरा कार्य अत्यंत उत्तम रीतिसे सम्पन्न हुआ; हे साधु! अब मैं तुम्हें आमन्त्रण करता हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे भुजंगम! अब मैं कृतार्थ हुआ ॥ १० ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ३५२ ॥ १२८५७ ॥

: ३५३ :

भीष्म उवाच—

स चामन्त्र्योरगश्रेष्ठं ब्राह्मणः कृतनिश्चयः।
दीक्षाकाङ्क्षी तदा राजंश्च्यवनं भार्गवं श्रितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे महाराज! वह ब्राह्मण कृतनिश्चय होकर नागराजको आमन्त्रण करके दीक्षाभिलाषी अर्थात् दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि करके उञ्छव्रत करनेके निमित्त अभिलाषी होकर भृगुवंशमें उत्पन्न हुए च्यवनका आसरा उसने ग्रहण किया ॥ १ १ ॥

स तेन कृतसंस्कारो धर्ममेवोपतस्थिवान्।
तथैव च कथामेतां राजन्कथितवांस्तदा ॥ २ ॥

च्यवन मुनिके द्वारा संस्कार किये जाने पर वह धर्मनिष्ठावान् हुआ। राजन्! उसने उञ्छ-वृत्तिकी इस कथाको च्यवन मुनिसे भी कहा ॥ २ ॥

भार्गवेणापि राजेन्द्र जनकस्य निवेशने।
कथैषा कथिता पुण्या नारदाय महात्मने ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र! महाराज जनकके स्थानपर भार्गव च्यवन मुनिने महात्मा नारद मुनिके निकट यह पवित्र कथा कही थी ॥ ३ ॥

नारदेनापि राजेन्द्र देवेन्द्रस्य निवेशने।
कथिता भरतश्रेष्ठ पृष्टेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ ४ ॥

हे भरश्रेष्ठ! हे राजेन्द्र! अक्लिष्टकर्मा नारद मुनिने देवराजके स्थानमें पूछे जानेपर इस कथाको कहा था ॥ ४ ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

देवराजेन च पुरा कथैषा कथिता शुभा ।
समस्तेभ्यः प्रशस्तेभ्यो वसुभ्यो वसुधापि ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! पहले समयमें देवराज इन्द्रने सब श्रेष्ठ विप्रोंसे यह कल्याणदायिनी कथा कही थी ॥ ५ ॥

यदा च मम रामेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
वसुभिश्च तदा राजन्कथेयं कथिता मम ॥ ६ ॥

हे राजन् ! जिस समय परशुरामके संग मेरा अत्यन्त दारुण संग्राम हुआ था, उस समय वसुगणोंने इस कथाको मेरे समीप वर्णन किया था ॥ ६ ॥

पृच्छमानाय तत्त्वेन मया तुभ्यं विशां पते ।
कथेयं कथिता पुण्या धर्म्या धर्मभृतां वर ॥ ७ ॥

हे धार्मिकप्रवर महाराज ! तुमने यथार्थ रीतिसे परम धर्मके सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने तुम्हारे समीप उस पवित्र धर्मयुक्त उत्तम कथाको वर्णन किया है ॥ ७ ॥

तदेष परमो धर्मो यन्मां पृच्छसि भारत ।
असन्नधीरनाकाङ्क्षी धर्मार्थकरणे नृप ॥ ८ ॥

हे भारत ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, यह वही परम धर्म मैंने कहा है। धर्मार्थ विषयमें अनभिलाषी वीर पुरुषोंके जितेन्द्रिय होकर निष्काम कर्म करनेसे उनके लिये मोक्षका द्वार खुला रहता है ॥ ८ ॥

स च किल कृतनिश्चयो द्विजाग्र्यो भुजगपतिप्रतिदेशितार्थकृत्यः ।
यमनियमसमाहितो वनान्तं परिगणितोञ्छशिलाशनः प्रविष्टः ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३५३ ॥ १२८६६ ॥
॥ समाप्तं मोक्षधर्मपर्व ॥ समाप्तं शान्तिपर्व ॥

हे महाराज ! वह उञ्छव्रत साधनमें निश्चय करनेवाला ब्राह्मण नागराजकी आज्ञानुसार आत्मकृत्य निबाहते तथा यमनियमको सहन करते हुए उञ्छव्रत अवलम्बके सहारे जीवन धारण करके वनमें प्रविष्ट हुआ था ॥ ९ ॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें तीन सौ तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥ ३५३ ॥ १२८६६ ॥
॥ मोक्षधर्मपर्व समाप्त ॥ शान्तिपर्व समाप्त ॥

॥ शान्तिपर्व समाप्त ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

पारडी [जि. वलसाड]

CC-0. Swami Atmanantl Giri (Prabhuji) . Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri